सिख-इतिहास

लेखक

ठाकुर देशराज

प्रकाशक

ग्रामोत्थान विद्यापीठ, संगरिया

प्रथमवार २०००

मूल्य

50/ ~~पच्चीस रुपए~~

वैसाख, संवत् २०११

प्रकाशक · ग्रामोत्थान विद्यापीठ संगरिया, जिला गंगानगर (राजस्थान)

मुद्रक हिन्दी प्रिंटिंग प्रेस, २७ शिवाश्रम, क्वीन्स रोड, दिल्ली

समर्पण

भारत की अनेक धार्मिक संस्थाओं के प्राण और इस युग में भामाशाह की प्रतिमूर्ति तथा भारत व भारत से अन्यत्र हिन्दु, बौद्ध, सिख आदि सभी को सिख-गुरुओं, एवं देश के अन्य ऋषि-मुनियों और साधु-सन्तों द्वारा मर्यादित परम्परा की अक्षुण्ण, अबाध्य, अकाट्य पवित्र-पावन-धारा में बहते देखने के इच्छुक

श्री सेठ जुगलकिशोर जी बिरला

के कर-कमलों में

सादर, सप्रेम और निष्ठा-पूर्वक समर्पित

सिख-इतिहास पर कुछ सम्मतियाँ

हिन्दी-जगत में सुपरिचित स्वामी केशवानन्द जी ने सिखो का महान् गौरवपूर्ण इतिहास (हिन्दी मे) प्रकाशित कराया है। उससे न केवल सिख ही प्रसन्न होंगे बल्कि हिन्दुओं की भी गुरु महानुभावों के आदर्श-जीवन और अमृत-मयी उपदेशों को पढकर आत्म-तुष्टि होगी।

मैं चाहता हूँ इस इतिहास का सिख और हिन्दू सभी मे समान रूप से आदर और प्रचार हो। इस इतिहास के लेखक ठाकुर देशराज जी भी बधाई के पात्र हैं। जिन्होंने इसे बड़े परिश्रम-पूर्वक तैयार किया है।

अमृतसर

२३—४—५४

●

सिखो के गौरवपूर्ण इतिहास को हिन्दी में लिखकर ठाकुर देशराज जी ने हिन्दी-साहित्य की एक बड़ी कमी को तो पूरा किया ही है, साथ ही सिखों के साथ भी अहसान किया है। स्वामी केशवानन्द जी भी कम धन्यवाद के पात्र नही हैं जिन्होंने इतने बडे ग्रन्थ के प्रकाशन का समस्त भार उठाया है। मैं प्रत्येक सिख से आशा करूँगा कि वह इस इतिहास को प्रत्येक घर में पहुँचाने की कोशिश करे।

पटियाला

२४—४—५४

ज्ञानसिंह राड़ेवाला

भू० पू० मुख्य मत्री, पेप्सू

●

स्वामी केशवानन्द जी को मैं निकट से जानता हूँ। उन्होंने शिक्षा-प्रचार और साहित्य सवर्धन का बहुत कार्य किया है। अब उन्होंने हिन्दी मे सिखों का एक मुकम्मिल इतिहास तैयार कराया है। जिसमें गुरुओं से लेकर सिख-राज्यों, सिख-शहीदों, सिख-महिलाओं और सिखों की राजनैतिक, धार्मिक एवम् सामाजिक प्रवृत्तियों का सन् १६४८ तक का विशद और सजीव वर्णन हैं। उनके इस कार्य में शिरोमणी गुरुद्वारा प्रबन्धक कमेटी ने भी आर्थिक सहायता दी है। स्वामी जी के इस प्रयत्न का मैं हृदय से स्वागत करता हूँ। साथ ही इसके लेखक ठाकुर देशराज जी के परिश्रम और लगन की हृदय से प्रशसा करता हूँ। मेरी इच्छा है कि प्रत्येक साहित्यिक व्यक्ति के पास और वाचनालयों में इसकी एक-एक प्रति हो।

जालधर

२३—४—५४

ज्ञानी करतारसिंह

भू० पू० मत्री पजाब

●

हिन्दी में सिखों सम्बन्धी पूरी जानकारी कराने वाली एक पुस्तक की बड़ी आवश्यकता थी। मुझे प्रसन्नता है कि स्वामी केशवानन्द जी ने इस आवश्यकता को पूरा कर दिया है। उन्होंने हिन्दी के प्रसिद्ध लेखक ठाकुर देशराज जी से हिन्दी मे सिख इतिहास लिखाकर सिख और हिन्दू सभी ऐसे लोगों के साथ उपकार किया है जो भारत की बहादुराना परम्पराओं में प्रेम रखते हैं।

अमृतसर
२७—४ —

धनवन्तसिंह गुरुदासपुरी
जैनरल सैक्रेटरी शि० गु० प्र० कमेटी

●

राजस्थान और पंजाब की जहाँ सरहदें मिलती हैं, उन फीरोजपुर, हिसार और गंगानगर जिलों मे स्वामी केशवानन्द जी ने शिक्षा प्रचार और नव चेतना पैदा करने के लिये बहुत काम किया है। अब उन्होंने एक बड़ा कार्य सिखों का राष्ट्रभाषा हिन्दी में एक मुस्तनद और मुकम्मिल इतिहास तैयार करवा कर किया है। इस इतिहास की छपाई और कागज तो बढिया है ही, किन्तु विषय, वर्णन भी बड़ा सुन्दर है। इसके लेखक ठाकुर देशराज ने इसको कई वर्ष की मेहनत से तैयार किया है। मैं चाहता हूँ प्रत्येक शिक्षण संस्था में इसकी कापी होनी चाहिये।

नई दिल्ली
४—५—५४

ज्ञानी गुरमुखसिंह मुसाफिर
प्रेजीडेन्ट—पंजाब प्रादेशिक कांग्रेस कमेटी

●

हिन्दी मे सिख गुरुओं और सिख शहीदों एवं सिख सूरमाओं के ऊँचे कारनामों को पूरे तौर पर बताने वाली एक पुस्तक की बड़ी जरूरत थी। मुझे खुशी है कि स्वामी केशवानन्द जी ने जो एक उत्साही और कर्मठ साधु हैं इस कमी को भी पूरा कर दिया है। हिन्दी में सिख इतिहास प्रकाशित कराके उन्होंने हिन्दी भाषा की बड़ी सेवा की है और सिख और हिन्दू दोनों ही उनके इस बात के लिये उनके कृतज्ञ हैं। मैं चाहता हूँ इसकी सब जगह खपत हो जिससे इसके प्रकाशकों का उत्साह बढे।

नई दिल्ली
२३—४—५४

हुकमसिंह एम० पी०

●

मुझे यह कहते प्रसन्नता होती है कि ठाकुर देशराज जी ने हिन्दी मे सिखों का एक मुकम्मिल और मुस्तनद इतिहास लिखा है। इसके लिये हम उनके आभारी हैं (राजनैतिक कान्फ्रेंस भरतपुर में दिये गये भाषण का एक अंश)

ईश्वरसिंह मझैल
भू० पू० मन्त्री पंजाब

●

हिन्दी सिख इतिहास के सम्बन्ध में मैं हृदय से इस बात का आकांक्षी हूँ कि प्रत्येक हिन्दी पढे-लिखे सिख के घर इसकी पहुँच हो। इसके लेखक ठाकुर देशराज व प्रकाशक स्वामी केशवानन्द दोनों ही धन्यवाद के पात्र हैं।

अमरसिंह दोसान्झ
मैनेजिंग डायरेक्टर दैनिक "अकाली पत्रिका"

जालंधर
२५—४—५४

●

सिख गुरुओं की अमर वाणियो और सिख वीरों के महान् कारनामों की गाथाये हिन्दी जगत तक पहुँचाने का जो पवित्र काम स्वामी केशवानन्द जी ने ठाकुर देशराज से एक पूर्ण और प्रामाणिक इतिहास लिखाकर कराया है। उससे मुझे निहायत प्रसन्नता हुई है। मैं ऐसे प्रत्येक सिख और हिन्दू से जो हिन्दी जानता है, आशा करता हूँ कि इस इतिहास की एक प्रति अपने पास रखे।

दिल्ली
३—५—५४

दर्शनसिंह फेरुमान
ससद सदस्य

मुझे इस बात को जानकर निहायत खुशी हुई कि हिन्दी मे भी सिखों का एक विस्तृत विवरण वाला इतिहास प्रकाशित हो रहा है। मैं इस प्रयत्न का हार्दिक स्वागत करता हूँ और आशा करता हूँ कि इस इतिहास को हिन्दी जगत मे उचित स्थान प्राप्त होगा

देहली
४—५—५४

बुद्धसिंह नारंग
मालिक : अखबार "फतेह" और "प्रीतम"

हिन्दी मे ठाकुर देशराज जी ने जो सिख इतिहास लिखा है वह सर्वाङ्गपूर्ण और प्रमाणिक होने के साथ ही सरस भी है। मैं चाहता हूँ कि सर्व भारतीयों मे वे सिख हो चाहे हिन्दू इसका अधिकाधिक प्रचार होवे।

नई दिल्ली
६—५—५४

अचरसिंह एम० ए०
सम्पादक—साप्ताहिक "रिपब्लिक"

हिन्दी मे सिखो का गौरव-पूर्ण इतिहास देखकर मुझे इतनी खुशी हुई जिसका इजहार नही कर सकता। यह एक बहुत अच्छा काम है जिसकी हरएक समझदार आदमी प्रशंसा करेगा। मैं चाहता हूँ कि सिख इसकी हजारो प्रतियाँ खरीद कर इस इतिहास के लेखक ठाकुर देशराज और प्रकाशक स्वामी केशवानन्द के उत्साह को बढावें।

नई दिल्ली
८—५—५४

गोपालसिंह (कौमी)

यह सर्वा गपूर्ण इतिहास हिन्दी साहित्य के विशेष अंग की पूर्ति करेगा। इस इतिहास मे सिक्खों से सम्बन्ध रखने वाली प्रत्येक बात का सविस्तर वर्णन है। इसे 'सिक्ख-विश्व कोश' कहा जाय तो अत्युक्ति न होगी।

—डा० बाबूराम सक्सेना, एम० ए०, डी० लिट्०
प्रयाग विश्वविद्यालय, प्रयाग

ठाकुर देशराज जी द्वारा लिखित हिन्दी में 'गुरु इतिहास' तथा 'सिख-इतिहास' का मसौदा मैंने भली प्रकार पढ़ा है। इस ग्रंथ में सुयोग्य तथा खोजी लेखक ने वह सारे ही गुण भर दिये हैं जोकि इतिहास में होने जरूरी हैं। हिन्दी पढ़ी-लिखी जनता के लिये यह इतिहास एक अमूल्य वस्तु है।

ज्ञानी हरिनामसिंह 'बल्लभ'

भूतपूर्व सम्पादक, 'सिखवीर'—नई दिल्ली।

लेखक
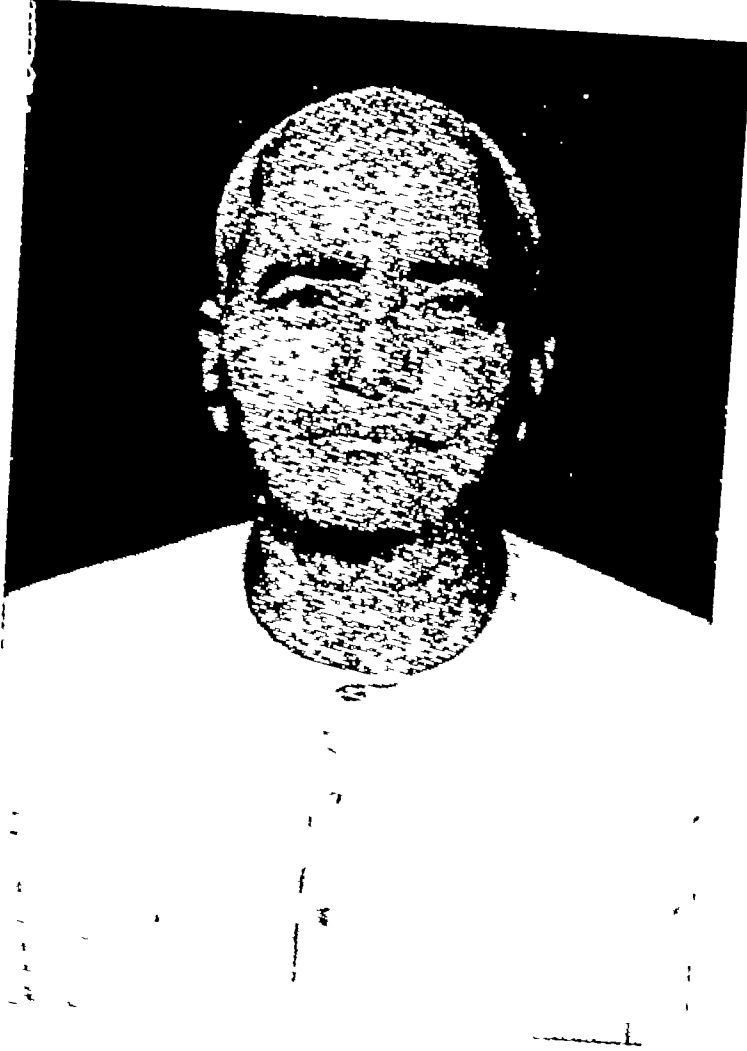
ठाकुर देशराज

भूमिका लेखक

डाक्टर गंडासिंह

भूमिका

I have read through most of the History of Sikhs in Hindi by Thakur Desh Raj and have suggested certain changes here and there I am now of opinion that it is the best book so far written on the subject in Hindi and Thakur Desh Raj deserves to be congratulated for the commendable work that he has produced It is a complete History of the Sikhs from the time of the Gurus to that of the desolution of the Sikh Empire, with an account of sikh Institutions and customs and manners It contains also chapters on the Sikh States and prominent Jagirs

He has made a very valuable addition in the Hindi literature and the Indian public in general should be thankful to him for the service he has done to the sacred cause of national history The Sikh Community also owes him a debt of gratitude for placing their history when published, in the hands of millions of the Hindi-knowing Indians The learned author has tried to go into the spirit of the teachings of the Gurus and to express them with spirit and enthusiasm, and, to my mind, he has succeeded to a great extent,

The greatest credit is due to Swami Keshwanand, the founder of the Sahitya Sadan Abohar for the undertaking of its publication which should be whole-heartedly helped by one and all interested in Sikh History

Sd/ Ganda Singh
Research Scholar In Sikh History,
Khalsa College, Amritsar

ठाकुर देशराज द्वारा लिखित हिन्दी सिख इतिहास का मैंने अधिकाश भाग पढा है और जहाँ तहाँ कुछ परिवर्तन के सुझाव रखे हैं। मेरी राय अब यह है कि हिन्दी मे इस विषय की यह पुस्तक सर्वोत्तम है और इस प्रशसनीय कार्य के लिए बधाई के पात्र हैं।

गुरुओं के उद्‌भव काल से लेकर सिख साम्राज्य के अध पतन तथा सिख सस्थाओ व सिखो के रीति रिवाजो के वर्णन सहित सर्वाङ्गीण इतिहास है। इसके अलावा इसमें सिख राज्यों तथा महत्त्वशाली जागीरों का भी उल्लेख है।

लेखक ने इस इतिहास के द्वारा हिन्दी साहित्य में एक बहुमूल्य वृद्धि की है और इस राष्ट्रीय इतिहास के पुनीत कार्य द्वारा जो सेवा की है उसके लिए भारतीय जनता को कृतज्ञ होना चाहिए। सिख जाति उनकी ऋणी है कि उनका इतिहास प्रकाशित होकर लाखों हिन्दी भाषी लोगों के हाथों पहुँच रहा है। विद्वान लेखक ने गुरुओं की शिक्षा की तह तक पहुँचने का प्रयास किया है और मेरे ख्याल में लेखक इस प्रयत्न में बहुत दूर तक सफल हुआ है।

साहित्य सदन अबोहर के सस्थापक स्वामी केशवानन्द जी विशेष रूप से श्रेय के पात्र हैं जिन्हों ने इतिहास को प्रकाशित करने की जिम्मेदारी अपने ऊपर ली है।

सिख इतिहास में रुचि रखने वाले समस्त लोगों को इस काम में उनकी हार्दिक सहायता करनी चाहिए।

ह० गण्डासिंह
अन्वेषक—सिख इतिहास विभाग,
खालसा कालेज, अमृतसर

प्रस्तावना

पंजाब प्रकृति का क्रीड़ास्थल कहलाता है। शस्य श्यामला का विशेषण भारत के लिए सत्यत. ही यहाँ लागू होता है। पंजाब से अभिप्राय उस समूचे पंजाब से है जिसका चित्र आज भी लोगों के हृदय में अमिट रूप से विराजमान है, ऐसा पंजाब सदा हीहै प्रकृति का क्रीड़ा-कौतुक रहा है, और आज भी उसका कटा हुआ अंग अपनी शोभा खो नहीं बैठा है। इसी पावन भूमि पर उद्‌भव हुआ वेदों का गान उछलते हुए नद और नदियों की बहती हुई तरंगों के साथ-साथ सारे भारत में फैला। पंजाब की भूमि का प्रत्येक कण अपने अन्दर एक इतिहास का चित्र लिये बैठा है। जरा सा प्रयत्न करने पर ही उसकी झलक दिखाई दे सकती है।

पजाब को जहाँ अपने साहित्य-भडार पर और उन साहित्यकारों पर--जिनके साहित्य ने संसार को अमरता का सदेश दिया है--गर्व है, वहाँ पजाब अपने वीरों और साधु, सन्तों पर भी स्वाभिमान करता है जिन्होंने अपने तन, मन, से इसकी समुन्नति में सहयोग दिया। यूनान के आक्रमणकारियों को विफल बनाने में और उनकी तथाकथित सभ्यता से भारत को बचाये रखने में, इसी पंजाब ने सब से बढ़ कर भाग लिया है, यहाँ की विश्व विद्यापीठ तक्षशिला के स्नातक, चाहे वे राजनीति के स्नातक रहे हों या कृषि के। अपनी विद्या के कारण सारे संसार मे अपनी महिमा एवं चातुरी का झंडा लहरा चुके है। चाणक्य, चन्द्रगुप्त, पाणिनी, चरक आदि का नाम प्रत्येक व्यक्ति जानता है। यह सब पंजाब के सपूत थे अत इन सब पर पंजाब को गर्व है, यह भी सबको पता है कि पंजाब ने कभी अपना 'पानी' नहीं खोया, वह तो सदा अपने समूचे देश के 'पानी' को न खोने देने के लिये संघर्ष करता रहा है।

इसी पंचनद की पवित्र भूमि में लगभग पौने पाँच सौ वर्ष पहले प्रभु की अमर ज्योति के सच्चे रूप श्री गुरु नानक देव जी ने जन्म लिया और उन्हीं के शिष्य (सिख) अपने तन, मन और धन से धर्म नाशकों से जूझते रहे हैं तथा अपना बलिदान देकर भी धर्म उद्धार मे प्रवृत्त रहे हैं। स्वयं गुरु नानकदेव जी की दिव्य आँखों ने भारत का भविष्य देख लिया था इसी कारण बिना किसी भेद-भाव के सबको एक सूत्र में बांधने का क्रम उन्होंने चलाया, उनकी शिक्षाओं से अनुप्राणित शिष्यों का जो समूह संगठित हुआ वही सिख समाज के नाम से अभिहित हुआ।

श्री गुरु नानक देव जी से पहले भारत का चित्र ठाकुर देशराज जी द्वारा लिखे गये इस इतिहास में पूर्णतया अंकित है, सचमुच ऐसी ही दशा थी उस समय के भारत की यद्यपि यवनों और हिन्दुओं में एकता भाव उत्पन्न करने के लिए कबीर, रामानन्द और जायसी द्वारा प्रयत्न हुए अवश्य थे किन्तु सफलता के चिह्न दृष्टिगोचर नहीं हो रहे थे चूँकि हिन्दू जाति अपने ऊपर से आत्म विश्वास खो बैठी थी अत इस बात की आवश्यकता थी कि उसमे नवोत्साह और आत्म-विश्वास पैदा किया जाय। नानक देव जी

ने यही किया और खोई हुई शक्ति को फिर से प्राप्त करने का काम उनके दशम रूप श्री गुरु गोविन्दसिंह जी ने इसी बात को 'पथ प्रकाश' में इस प्रकार व्यक्त किया है।

"भई अधिक जब ऐम विरामी, तब विचार ईश्वर जग स्वामी।
पालन हेत सनातन नेतं, वैदिक धरम रखन के हेते।
आप प्रभु गुरु नानक रूप, प्रगट भए जग में मुख भूप।

यह शब्द स्पष्ट ही उस समय वैदिक के धर्म की क्रियाओं में ढील सूचित करते हैं, और था भी सचमुच ऐसा ही, क्योंकि पाखण्डवाद पूरी तरह व्याप्त हो रहा था, इस पाखण्ड से वैदिक धर्म की शुद्धता की रक्षा आवश्यक थी जिसे गुरु नानक देव जी ने पूर्ण किया। अनेक प्रकार के मत मतान्तरों और आपस के वैमनस्य के बीहड़ जंगलों में भटकने वाले लोगों के लिये एक अमर सन्देश लेकर श्री गुरु नानक आये और उन्होंने लोगों को धीरज, सत्य और सन्तोष का पाठ पढ़ाया। गुरु नानक देव और उनके परवर्तियों का यह पुनीत कार्य भी निर्विघ्न रूप से न चलने दिया गया। उनके शिष्य समुदाय पर अनेक विपत्तियों के पहाड़ ढाहे गये। जिसके कारण उनके पथ का पथिक बनना हँसी खेल का काम नहीं रहा। इसी परिस्थिति का मार्मिक चित्रण दसवें नानक श्री गुरु गोविन्दसिंह जी के इस वाक्य से हमारे सामने आता है। "जो तोहि प्रेम खेलन का चाव, सिरधर तली गली मोरी आव।" वास्तव में ही सिख लोग घोर से घोर यंत्रणायें सहकर और सभी प्रकार के अत्याचारों का सामना करके आगे बढ़े और गुरु गोविन्दसिंह के "सिर धर तली गली मोरी आव' के आह्वान में पूरा किया।

गुरु नानकदेव जी और उनके परवर्ती गुरुओं के विषय में इसी इतिहास में सब कुछ लिख दिया गया है। हम तो केवल इतना कहना चाहते हैं कि उनकी शांतमयी भावना ने सदा सिखों को उत्तेजित होने से रोका। पर वे कब तक यवनों के अत्याचार के सामने झुके रहते। यह ठीक है कि श्री गुरु महानुभावों के दिव्य सन्देश को कुछ यवनों ने भी अपनाया परन्तु अपार राज्य और शासन की मदान्धता उन्हें अधिक न रोक रख सकी। और आरम्भ हुए, किसी महापुरुष को गाय के चमड़े में मढ़वाया गया, किसी को जलते रेत से भूना गया, और किसी को जलते चिमटों से नोचा गया, आखिर क्यों? क्योंकि वे सत्यनाम के उपासक थे, और अपने धर्म में आस्था रखते थे, वे इस देश के लिये, इसकी आन के लिये सब कुछ स्वाहा कर रहे थे। प्राणों की बलि देकर भी इसकी प्रतिष्ठा बनाये रखना चाहते थे और स्पष्ट शब्दों में वह उन धर्मान्ध अत्याचारियों के विरोध में अपनी छाती तानकर खड़े हो रहे थे जो सारे देश को इस्लाम के झंडे के नीचे लाना चाहते थे, धर्म शब्द जिन अर्थों को अपने अन्दर छिपाये हुए है वे उसी के सच्चे उपासक थे। धर्म की इसी ज्योति की अखंडता को उन्होंने कायम रखा। भले ही इस्लाम की आंधी चली, दीपक बुझाने का प्रयत्न किया परन्तु एक दीपक की लौ बुझाई नहीं कि दूसरे का दिव्य प्रकाश फैल उठा। उनका सिद्धान्त था —

दीपक ते दीपक प्रगास्या त्रं भुवन ज्योति जगाई।
दीपक की जोत सदा ही जले
इक जन जाए दूजा आये ज्योति अमर रहे।

इसी अमर ज्योति की एक शिखा—जिसे हम श्री गुरु तेगबहादुर जी के नाम से संबोधन कर सकते हैं—जब अपने दिव्य प्रकाश से जनमन को प्रकाशित कर रही थी। अत्याचारियों द्वारा बुझा दी गई तो इस हिन्दू जाति की आँखें भौचक्की हुईं और ज्यों ही वह ज्योति गुरु गोविन्दसिंह जी के रूप में

प्रस्तावना - लेखक
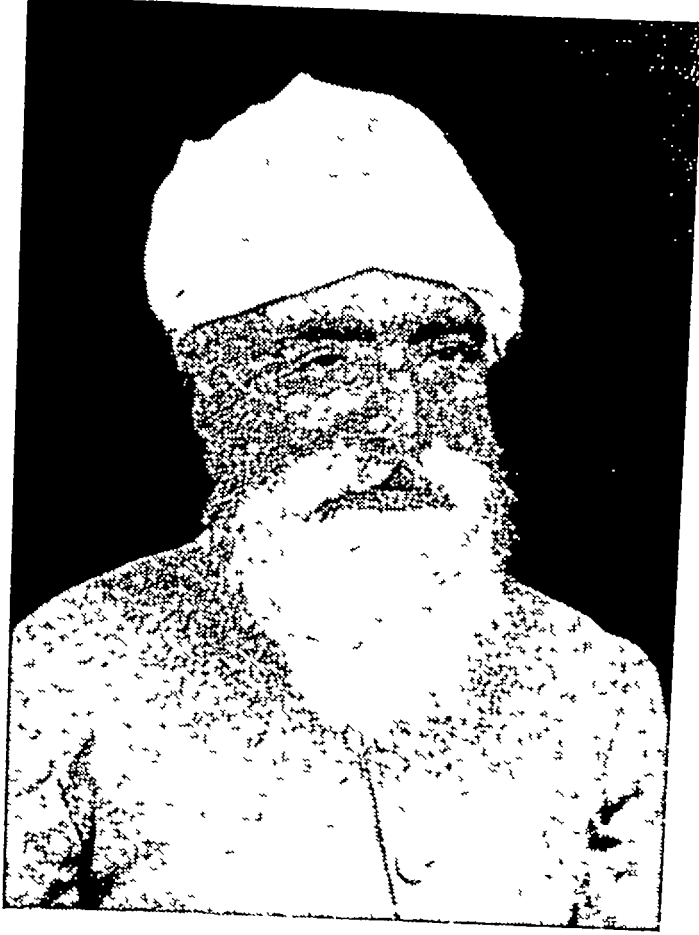
श्री सन्त इन्द्रसिंह जी 'चक्रवर्ती'

प्रकाशित हुई यह जाति अपनी अकर्मण्यता छोड़ कर आगे बढ़ी। और महान आत्मा अखंड ज्योति के सत्य स्वरूप श्री दशमेश गुरु गोविन्दसिंह जी महाराज ने समय की पुकार को पूरा किया। वह समय कैसा था उसका चित्र भाई ज्ञानसिंह जी ज्ञानी ने इन शब्दों में खींचा है।

"सैयद शेख मुगल पठान, ज़ालिम भए जभी बलवान ॥
हिन्दुन को दुःख दियो महाए। देवन के मन्दिर गिरवाए ॥
घोर नाथ से औघड साधू, पडत दत से सुमति अगाधू।
मरवा चीला को खिलवाए, केचित कुत्तियो से फडवाए।
केचित मेखें ठोक सुकाए, केचित कच्चे चाम मढाए।
तुरक रोवना जिनें न मान्यो, तिन तिन को अति दुःख हान्यो।
यज्ञ हवन कोई करन ना पाए, करे जो तिह दुःख दे मरवाए।
सुन्दर पिखें जाह की तरनी, पकर करें बलसों निज घरनी।
काजी रिशवत लै कर सारे, साचे को झूठा कर डारे।

इसी कठिन परिस्थिति मे—"धरम चलावन सत उबारन, दुष्ट सबन को मूल उखारन" के लिये वीरता की साकार प्रतिमा श्री गुरु गोविंन्दसिंह जी आगे बढ़े। हां, इसके लिए यह आवश्यक था कि शक्ति पूजन हो और उन्होंने शक्ति पूजन के लिए वह सभी कुछ किया जो करना चाहिए था, "चण्डी चरित्र" इसका प्रमाण है।

उन्होने कहा है—

धूप दीप संवार आरती करत पूजा चार सुर।
घसत कुकुम अगर चंदन पुष्प गध सुगध चर ॥
नईवेद नाना भात विजन विविध मेवे जात तर।
अनिक कुसुम सुगध नाना भात परिमल पसर कर ॥ (सर्व लोह प्रकाश)

यज्ञ होम आदि की रक्षा उन्होंने प्राणपन से की इसके लिए उन्हे बहुत मूल्य चुकाना पड़ा, मित्रो के साथ साथ पुत्रों का बलिदान भी देना पड़ा, परन्तु दशमेश पिता का ही यह हृदय था कि अपने देश और धर्म के लिए सब कुछ सह कर भी कर्त्तव्य पथ पर चलने से पांव नहीं रोका। यह ज्योति अपना अखण्ड रूप लिए हुए दूसरों को सदा न्याय का राह दिखाती हुई सतत जलती रही। इसी ज्योति के एक रूप की झलक हमे बदा बहादुर मे भी मिलती है, जिसके बलिदान की कहानी इतिहास अपने अमर शब्दो मे पुकार पुकार कर सुनाता है।

जिस एकता की ओर श्री गुरु नानक देव जी ने सरस दृष्टि से ताका था वह महाराज रणजीतसिह तक ही सीमित रह गई। इसके बाद भी चली, मगर लंगड़ा कर। यह सच्ची बात है कि जो सुन्दर दृश्य भारत को चन्द्रगुप्त मौर्य के समय मे देखने को मिला था वैसा ही शायद थोड़ा बहुत कम इस भारत ने महाराजा रणजीतसिंह के समय मे देखा। वेद विहित रंग का केसरिया झडा उन्होंने कहा तक लहराया था इसे इतिहास के पाठक स्वय जान जाएगे। बस इसके बाद तो गुरु महाराज के शिष्य (सिख) अपना दूसरा ही रूप ले बैठे जिससे आज तक भी उन्हे अवकाश नहीं मिला।

रणजीतसिंह जी के पश्चात् सिख बादशाहत समाप्त हो गई। विलासिता की घुट्टी जो अंगरेज भारत के लिए विशेष तौर से लाया था उसे पीकर वह शिष्य पंथ यादवों की तरह परस्पर लड़कर विनष्ट

होने का उपक्रम कर बैठा, परन्तु सत्य धर्म की भागीरथी सतगुरु श्री रामसिंह जी महाराज का पावन वरदान पाकर साहस के साथ साथ अत्याचार को मिटाने की उमंगों के तरंगों के रूप में उछलती हुई आगे बढ़ी। गौ, गरीब की रक्षा यज्ञ हवन की पुनीत भावना के पोषण का मूल मंत्र लेकर सद्गुरु श्री रामसिंह जी महाराज के शिष्य वर्ग ने सिख पंथ की सच्चे रूप में सेवा की। गौ, गरीब द्रोही, यज्ञ हवन के नाशकों का नाश चुन चुन कर किया, और इस तरह अंगरेज का बिछाया हुआ जाल तोड़ने के लिये सहयोग की नींव डाली।

इस इतिहास के लेखक ठाकुर देशराज से बन्दाबहादुर के सम्बन्ध में मेरा मतभेद है वह यह कि बन्दा सिंह नहीं बना। उसने अपने को गुरु जी का बन्दा अवश्य कहा था किन्तु पाहिल नहीं ली थी। बन्दा को बन्दासिंह कहना वैसा ही है जैसा आदमी को आदमी सिंह व मनुष्य को मनुष्य सिंह।

पुस्तक की भाषा छपाई आदि सब सुन्दर है। कहीं कहीं कुछ शब्द ऐसे आ गए हैं जो भारत की मसद में बाहर से आने वाले अरबी, ईरानी और तुरकी के राजदूतों की तरह अपना वेष निराला लिए हुए होने के कारण अहिन्दी जान पडते हैं। ठाकुर श्री देशराज जी का प्रयत्न वास्तव में महान और स्तुत्य है। इस इतिहास की विशेषता यह है कि सिखों सम्बन्धी कोई भी बात छोडी नहीं गई है। लिखने की शैली इतनी अच्छी है कि कहीं कहीं तो इतिहास उपन्यास का सा आनन्द देता है। वास्तव में इसी कृति में ठाकुर साहिब की कला अपना रूप लेकर उपस्थित हुई है।

मेरा यह सौभाग्य है कि मुझे ऐसे विशिष्ट इतिहास के लिए कुछ पंक्तियां लिखने का अवसर मिला है। इसके लिए हिन्दी जगत को भी कृतज्ञ होना चाहिए कि उसे सिख इतिहास का पूर्ण रूप अवलोकनार्थ प्राप्त हो रहा है। यह सब कृपा स्वामी श्री केशवानन्द जी की है जिन्हों ने सदा अपने अनथक प्रयत्नों से हिन्दी जगत को ठाकुर श्री देशराज जी जैसे हीरों से जगमगाने का काम किया है। स्वामी जी के कार्य और प्रणाली से शायद ही कोई अपरिचित होगा।

अन्त में मैं ठाकुर श्री देशराज जी के प्रति कृतज्ञ हूं कि उन्हो ने हिन्दी जगत को एक ऐसा अमूल्य ग्रन्थ रत्न दिया है जिसकी किं आभा में हम अपने गत वैभव देख सकते हैं। मुझे यह कहने में भी प्रसन्नता है कि इन पंक्तियों के लिखने में श्री ओंप्रकाश आनन्द ने मेरा हाथ बटा कर मेरी व्यस्तता को कम किया है। मैं आशा रखता हूं कि ऐसी अमूल्य पुस्तक का सर्वत्र मान होगा और यह सफलता प्राप्त करेगी।

उपभाषा विशेषज्ञ, पंजाबी विभाग
पटियाला ५-१-१९५४

सन्त इन्द्रसिंह 'चक्रवर्ती'

लेखक की ओर से

सिख भारतवर्ष की एक ख्यातिनामा जाति है। ख्यातिनामा भी ऐसी कि जिसका नाम भारत के कोने कोने मे तो व्याप्त है ही साथ ही दूसरे मुल्को मे भी उसका नाम है। उसका यह नाम पिछली शताब्दियों में किये गये उसके बहादुराना कारनामो से तो हुआ ही है—साथ ही उन्होंने अपने को हर क्षेत्र मे योग्य बनाकर भी शोहरत हासिल की है।

सिखों की गिनती भारत की सामरिक जातियों में होती है किन्तु उन्होने राजपूत और जाटों की भाति एक ही प्रकार की उन्नति नहीं की है। उनकी उन्नति बहुमुखी है। उनमे विद्वान्, योद्धा, व्यवसायी और कलाकार अथवा कारीगर सभी अच्छे श्रेणी के मिलते हैं।

सिखों मे जहाँ साहस, बलिदान की भावना और शूरवीरता है। वहाँ उनमे प्रत्येक काम में चिपट कर उसमें पारगत होने की लगन और अपने उद्देश्य की पूर्ति के लिये चतुरतापूर्ण अध्यवसाय भी है। वे पूरे परिश्रमी होते हैं। आज कौन सा धधा है जिसमें सिख अग्रणी बनने की होड़ न कर रहे हों। कौन सा प्रात और देश है जहाँ वे न पहुँच रहे हों। धीरे धीरे उन्होंने अपने को एक जाति के पद से उठाकर समाज के रूप में परिणित कर लिया है। वैसे ऐतिहासिक दृष्टि से देखा जाय तो 'सिख' आरभ से ही एक जाति की बजाय समाज ही है। क्योंकि उनमें एक ही वर्ण अथवा एक ही जाति के लोग नहीं है। उसमे सभी वर्णों, सभी जातियों और धर्मों के लोग आरम्भ से ही हैं। किन्तु वे सब हैं, हिन्दू जाति की उप जातियों मे से ही।

आज भारत में उनका एक अपना समाज और अपना पंथ है। कुछ ब्राह्मणो की अनुदारता कुछ उनकी खुद अपने को अलग रखने की चाह और कुछ अग्रेज शासकों के प्रोत्साहन से वाह्यरूप उनका भारतमें एक तीसरा धर्म और तीसरा समाज जैसा बन गया है।

वैसे नस्ल और वश परम्परा से तथा धर्म के मूलभूत सिद्धान्तों से वे भी उतने ही आर्य-हिन्दू हैं। जितनी उत्तरी भारत की कोई भी जाति हो सकती है किन्तु उनके अलग सगठन और वेश भूषा तथा नित्त नैमितिक आचार व्यवहार के ढग ने उन्हे अलग समाज के रूप में परिणित कर दिया है।

उत्तरी भारत के प्रायः हिन्दू यह मानते हैं कि सिखों ने एक समय भारत की लाज और हिन्दू-धर्म की रक्षा के लिये बड़े-बडे बलिदान किये थे। प्रत्येक हिन्दू की गुरुनानक मे अपार श्रद्धा है और गुरु गोविन्दसिंह के शौर्य और तप से समस्त हिन्दू जनता प्रभावित है। यही कारण है कि दिल्ली से लेकर पेशावर तक के प्रत्येक हिन्दू के घर में गुरुओं की फोटो उसी प्रेम से सजी हुई पाई जायेंगी, जिस प्रेम से कि अन्य महापुरुषों की, और ग्रन्थ साहब तो उनके साझे की उपासना-पुस्तक है।

पजाब के हिन्दू गुरुओं और उनके बहादुर शिष्यों के कारनामो को बड़े चाव से पढते हैं। यह चाव दिल्ली से नीचे के भारत में भी आरम्भ से ही है और अब जब कि पंजाबसे बाहर भी सिख प्रभाव बढने लगा है तो यह चाव

और भी बढ़ गया है किन्तु हिन्दी-भाषी भारत के हिन्दुओं के लिये सिखों के सम्बन्ध में पूरी जानकारी देने वाले ग्रन्थ का एक दम अभाव था। कुछ छोटी-छोटी किताबें सिखों और उनके गुरुओं के सम्बन्ध की हिन्दी में प्रकाशित हुई किन्तु वे सिखों सम्बन्धी सभी जिज्ञासाओं का समाधान करने वाली न थीं।

जाट-इतिहास के लिखने के समय में सिखों के सम्बन्ध में जानकारी प्राप्त करना मुझे भी आवश्यक हो गया। क्योंकि सिखों में जाटों की एक बड़ी आबादी है तथा हिन्दू जाट और सिख जाट भिन्न-भिन्न सम्प्रदायों के अनुयायी होते हुए भी शादी सम्बन्धों में अलग नहीं हैं। भरतपुर, धौलपुर और मुरसान के हिन्दू-जाट-राजे पटियाला जींद, फरीदकोट और नाभा सिख-जाट-राजों में ब्याहे जाते रहे है। सिखों की वीरतापूर्ण अनेक गाथाओं से मैं चौ० रिछपालसिंह जी धमेड़ा के लेखों द्वारा जोकि जाटवीर में लगातार प्रकशित हुए थे, सन् १६२५ में ही परिचित हो चुका था।

सन् १६३४ ई० के बसन्त पर जाट इतिहास प्रकाशित हुआ। सिख-जाटो में भी उसकी खपत हुई। सिख जाटों ने उसे इतना पसन्द किया कि सीरीज के रूप में कुछ उत्साही सिखों ने उर्दू में उसका प्रकाशन आरम्भ कर दिया। इससे मेरे मन में सिखों की पूरी जानकारी हिन्दू-जगत के सामने रखने की उत्कठा उत्पन्न हुई किन्तु यह उत्कटा शीघ्र ही अमल में न आ सकी।

सन् १६३७ में चौधरी देवासिंह बोचल्या जोकि जयपुर राज्य (अब डिवीजन) के खडेलावाटी इलाके के निवासी हैं। साहित्य-सदन अबोहर' पहुँचे। वहाँ उनकी सदन के सस्थापक और ग्रामोत्थान विद्यापीठ, सगरिया के सचालक स्वामी केशवानद जी से भेंट हुई और उन्होंने मेरा लिखा जाट इतिहास स्वामी जी को दिखाया।

स्वामी केशवानद जी के दर्शन सन् १६३२ में मैं अजमेर के ऐतिहासिक आर्य्य-सम्मेलन मे चौधरी हरिश्चन्द्र जी गगानगर और जीवनराम जी दीनगढ़ के सौजन्य से कर चुका था। जब देवासिह जी ने लिखा कि आपको अबोहर आकर स्वामी जी से मिलना चाहिए तो मैं बिना विलब के अबोहर पहुँचा और चूकि स्वामीजी सिखों के बीच में रहते थे अत मैंने उनसे सिख इतिहास लिखने में मेरी सहायता करने की प्रार्थना की। जिसे उन्होंने स्वीकार कर लिया, यही सिख इतिहास के लिखने की प्रेरणा का इतिहास है।

सन् १६३८ ई० मे स्वामी केशवानन्द जी ने फीरोजपुर जिले के कुछ प्रतिष्ठित सिखों से जिनमें एक दो तो शिरोमणि गुरुद्वारा प्रबधक कमेटी के भी मेम्बर थे एक सिख इतिहास कमेटी बना दी। मैं अबोहर बैठ गया। पूरे आठ महीने उपलब्ध सामग्री का अध्ययन किया। उसके बाद आचार्य बशीधर जी को जोकि आजकल नई शिक्षा के प्रयोग-कर्त्ताओं में अपना अच्छा स्थान रखते हैं और जिनके लिये जोधपुर के लोक-प्रिय मत्रिमडल ने एक लाख रुपया देकर एक शिक्षालय जोधपुर में खुलवा दिया है—साथ लेकर फीरोजपुर के कन्या महाविद्यालय की लाइब्रेरी में बैठा। उन दिनों फीरोजपुर के कन्या महाविद्यालय की आचार्या और सचालिका बीबी गुरबख्शकौर थीं जोकि इस महाविद्यालय के संस्थापक और स्त्री शिक्षा के प्रबल हिमायती भाई तख्तसिंह जी की सुपुत्री थीं। उन्होंने हमें पूरी सुविधायें हमारे अध्ययन और खोज कार्य के लिये दीं। अध्ययन के इन दिनों में मैंने सिखों के तीर्थो और प्रमुख ऐतिहासिक स्थानों की यात्रा भी की। मै कह सकता हूँ कि इस कार्य के लिये मैंने कम से कम पचास हजार पृष्ठ व सैंकडों छोटी मोटी पुस्तकें पढ़ीं। तब यह सिख-इतिहास जो अब पाठकों के हाथ मे है,तैयार हुआ। इसके लिखने के दिनों मे मैंने १५-१६ घटे रोज परिश्रम किया है।

१ पजाब में साहित्य सदन अबोहर अपने ढग की एक बडी हिन्दी सस्था है। इसके अधीनस्थ एक बड़ा पुस्तकालय और सग्रहालय है। विशारद, रत्न, प्रभाकर आदि परीक्षाओं के दिलाने के लिये एक शिक्षणालय भी है। गांवों के लिये चलता पुस्तकालय है।

जब इतिहास पूरा हो गया तो स्वामी केशवानन्द जी ने मुझे सिखों के प्रसिद्ध और तपस्वी लेखक भाई वीरसिंह जी के पास भेजा। वीरसिंह जी का सिखो मे बहुत आदर है। उन्होंने सिख साहित्य का बहुत ही अधिक सृजन किया है वे प्रसन्न चित्त और शातमुद्रा से मिले। मेरे लिखे इतिहास के कुछ प्रसग उन्होंने सुने और मुझे एक चिट्ठी खालसा कालेज के प्रोफेसर(अब डाक्टर आफ लिटरेचर)सरदार गडासिंह के नाम लिखकर उनके पास भेजा। उन दिनों वे इतिहास के ही प्रोफेसर थे। उन्होंने काफी समय देकर इतिहास को सुना और तब इस ग्रथ की भूमिका लिखी।

इसके पश्चात् देश में रियासती सघर्ष आरम्भ हो गये और प्रजामण्डल के प्रेसीडेन्ट की हैसियत से मैं भरतपुर की जेल में चला गया। फिर सन् १९४२ का "अग्रेजो भारत छोड़ो" आन्दोलन आरम्भ हो गया जिसमे स्वामी केशवानन्द जी भी उलझ गये। उसके बाद स्थितिया इसी प्रकार की आती रहीं। स्वामी जी और मैं राजनैतिक उलझनों मे बराबर फसे रहे। मैं भरतपुर में वहाँ की असेम्बली का डिप्टी स्पीकर और फिर राजस्व मत्री बन कर उधर उलझा रहा और इधर स्वामी जी सगरिया के ग्रामोत्थान विद्यापीठ को भव्य रूप देने में चिपट गये। इस प्रकार सन् १९५३ आ गया। सन् १९५१ में होने वाले आम चुनावों मे मैं हार गया और स्वामी जी को उनकी अनिच्छा होते हुए भी सयोग ने भारत की राजपरिषद में ला बिठाया। स्वामीजी ने मेरी हार को शुभ काम में परिणित करने के लिये मुझे बुलाकर दिल्ली बिठा दिया।

इसका दर्शन भाग मैंने दिल्ली में बैठ कर ही लिखा है। और यह इसी वर्ष की कृति है। शेष इतिहास मे जहाँ तहाँ कुछ घटनायें और जोड दी गई हैं। वरना सारा मैटर वही है जो सन् १९४१ के पहले लिखा गया था।

यह इतिहास हिन्दू और सिख दोनों को ध्यान में रख कर लिखा गया है इसलिये इसमें सरल हिन्दी के प्रयोग की कोशिश की गई है। फिर भी सिख इस हिन्दी को भी कठिन मानते हैं किन्तु बहुत यत्न करने पर भी और अधिक सरल एव उर्दू-मय न बना सका। कुछ लोग ऐसे भी हैं जिन्हें इसमें उर्दू शब्दो के प्रयोग पर प्रसन्नता नहीं है।

इस ग्रथ की भाषा, लेखन शैली और सामग्री कैसी है? इसका निर्णय पाठक ही करेंगे। मैं तो यही कह सकता हूँ कि मैंने इसे पूर्ण मनोयोग, परिश्रम और निष्पक्ष भाव से लिखा है।

सिख इतिहास की अनेक घटनाओं और तथ्यों पर सिख इतिहास के लेखकों में मतभेद रहा है और अब भी है। उनमें से मोटे मोटे मतभेद इन बातों पर हैं।

(१) गुरुनानक देव कार्तिक मे हुए या बैसाख में ? दोनों पक्ष अपने अपने समर्थन में अनेक प्रमाण पेश करते हैं। मैंने उनका जन्म कार्तिक में ही माना है। उसका आधार उनका नाम है। क्योंकि उनका नाम उनके उन नक्षत्र ग्रह और राशियों के आधार पर रक्खा गया था जो उनके जन्म के समय वर्तमान थे। इसीलिये मैंने उनकी जन्म कुण्डलिया भी इस ग्रथ में अकित कर दी हैं। सिख लेखक जन्म कुण्डलियों पर विश्वास नहीं करते। वे करें या न करें जन्म कुण्डली बनवाने वाला तो कालूराय था जो पक्का सनातनी हिन्दू था। और नाम रखने वाले भी सनातनी पडित थे न कि आज के लेखक।

(२) गुरु गोविंदसिंहजी के पुत्रों का सरहिंदकी दीवारों में चुने जानेपर भी मतभेद है। मैं कागजों, दस्तावेजो से भी अधिक प्रामाणिक लोक श्रुतियों को मानता हूँ। सैंकडों वर्ष से पीढ़ी दर पीढी सारा पजाबय ही सुनता आ रहा है कि गुरु गोविंदसिंह जी के दो पुत्र सरहिंद की दीवारों में चुन दिये गये थे।

(३) कुछ लोग यह भी कहते हैं कि गुरु गोविंदसिंह जी के दो पुत्रों का चमकौर मे मारा जाना सही नहीं है। इस प्रकार के लेखकों में ५२ कवियों में से कविवर सेनापति भी हैं जो कि गुरु गोविंदसिंह जी के दरबारी कवि थे। यह विषय अवश्य अनुसधान चाहता है।

(४) बन्दा वैरागी सिख नहीं बना। यह बात अधिकाश में वे विद्वान कहते हैं जो सिख नहीं हैं। बेचारे

बन्दा के जीवन में उनके प्रतिद्वदी सिखों ने कहा कि बन्दा सिख नहीं है। और अब गैर सिख कहते हैं कि बन्दा सिख नहीं था। मैं भी कहता हूँ कि बन्दा आज का जैसा सिख तो नहीं था जो अपने को हिन्दू ही नहीं मानते किंतु वह गुरुगोविंदसिंह जी का बन्दा अवश्य बना था वरना तो वह माधवदास था जो कि लक्ष्मणसिंह राजपूत का वैरागी रूप था। बन्दा तो उसका अपना स्वीकार किया हुआ तीसरा रूप था। यदि वह सिख नहीं बना था तो हजारों सिख क्यों उसे गुरू के रूप में देखने लगे थे और बन्दई सिख आज भी क्यों सिख नाम से अभिहित होते हैं। वह सिख तो अवश्य था किन्तु यह बात दूसरी है कि वह सिंह था या सिर्फ बन्दा।

(५) गुरु गोविंदसिंह ने यह भी नहीं कहा कि "अब से गुरु प्रणाली समाप्त की जाती है और ग्रंथ साहब ही को गुरुस्वरूप मानना।" न भी कहा हो तब भी इससे इनकार नहीं किया जा सकता कि सिखो की यह धारणा इतनी दृढ़ बन गई है कि वे इसके लिए किसी दूसरे प्रमाण की आवश्यकता नहीं समझते।

ऐसी ही कुछ और भी बातें है। किन्तु मैं विवाद में पड़ने की अपेक्षा सीधे साधे और वर्णनात्मक ढग से सिख इतिहास की उस सामग्री को जो अग्रेजी, उर्दू और गुरुमुखी मे बिखरी हुई अवस्था में बाहुल्यता से प्राप्त थी किन्तु हिन्दी में उसका अभाव था--एकत्रित करने भर तक सीमित रहा हूँ। मैंने सामूहिक तथ्यों और सुविदित घटनाओं को ही अपनाया है। विद्वता के प्रदर्शन के लिए ऊँचे लेखक जो बहस छेड़ते हैं। वह मैंने किसी भी घटना और तथ्य पर नहीं छेड़ी। क्योंकि मेरा इरादा सिख इतिहास या सिख धर्म पर निबन्ध लिखने का नहीं बल्कि वृत्तान्तों और तथ्यों का सकलन करने का था - वही मैंने किया है। मैं सिख नहीं हूँ। इसलिए न मेरा दृष्टिकोण सिख लेखकों जैसा रहा है और न उदासियों सिंह-सभाइयों और नामधारियों का जैसा। मैं पंजाबी भी नहीं हूं। इसलिए मेरा दृष्टिकोण पजाबी हिन्दू लेखकों जैसा भी नहीं रहा है। मैंने जैसा सिख इतिहास को समझा और सिखों के सम्बन्ध मे जैसा प्राप्त सामग्री से मुझे समझ पड़ा वैसा ही मैंने लिखा है।

मैं मानता हूं कि इस इतिहास में उदासियों, नामधारियों और निर्मलों आदि का वर्णन थोड़ा है किन्तु सिख इतिहास (समष्टि) से जितना उनका वर्णन सम्बन्ध रखता है उतना ही तो इसमें आ सकता था।

मुझे यह स्वीकार करना पड़ेगा कि प्रूफ देखते समय मुझ से ही कुछ भूलें सशोधित करने में हो गई हैं। यथा हकीकतराय और फूलसाहब को कम्पोजीटरों ने यह सोचकर कि सिख इतिहास में तो सिंह ही सिंह हैं—राय और साहब की बजाय सिंह लिख दिया और वह मेरी नजर से भी बच गया। इसी तरह कहीं वाणियों के पद-न्यास मे त्रुटिया हो गई हैं किंतु जहा तक मै जानता हूँ, इरादतन मैंने ऐसा नहीं किया।

देहली में रहते समय इस ग्रंथ का जो भाग लिखा गया है। उसमे ज्ञानी हरनामसिंह जी "वल्लभ" का उचित सहयोग रहा है। वे मेरे पुराने सिख मित्रों में से हैं।

मैं स्वामी केशवानन्द जी का चिरकृतज्ञ रहूँगा क्योंकि उन्हीं की सहायता और उत्साह वर्द्धन का यह फल है कि इतने बडे ग्रथ और भारत की एक महान् जाति का इतिहास लिखने का श्रेय मुझे प्राप्त हुआ। मैं उनके एक सुयोग्य कार्य-कर्ता श्री कुलभूषणजी जो-बीसियों वर्ष से उनके सहकारी रहे है-का भी कृतज्ञ हूँ जिन्होने कि पत्र व्यवहार प्रूफ सशोधन और प्रकाशन सम्बन्धी सलाह मशविरे में मुझे तथा स्वामी जी को काफी सहायता दी है। हिन्दी प्रिंटिंग-प्रेस देहली—जिसमें कि यह इतिहास छपा है—के सचालक श्री श्यामकुमार और श्यामसुन्दरजी का भी इसलिए कृतज्ञ हू कि उन्होने इसे शीघ्र प्रकाशित करने में लग्न से काम किया है।

अघीना (भरतपुर)
वैसाख स०२०११

देशराज

प्रकाशकीय वक्तव्य

इससे तो कोई इनकार नहीं कर सकता कि सिख गुरुओं के हिन्दू जाति और भारत देश पर बहुत बडे अहसान हैं। ऋषि दयानन्द, राजा राम मोहन राय और परमहस रामकृष्ण से पहले जिन्होंने बिना जाति और धर्म भेद के अपने उपदेशों को मनुष्य मात्र के लिये फैलाया था—वे सिख गुरु ही थे। उनकी वाणियों से सर्व साधारण ने लाभ उठाया। उनका मिशन सब के लिये था और उन्होंने सबको अपना समझा।

'गुरु ग्रन्थ साहिब' में जहा गुरुवाणियों का सग्रह है। वहा बिना जाति और मजहब के भेद के दूसरे सतों की वाणियों का भी संग्रह है जिनमें छीपी (नामा) जुलाहे (कबीर) चमार (रैदास) जाट (धन्ना) ब्राह्मण (रामानन्द) और मुस्लिम फकीर (शेख फरीद) जैसे विभिन्न जातियो और धर्मों के सन्त शामिल हैं।

सचाई यह है कि गुरुओं की वाणी की रचना भाषा या बोली को लेकर जाति या कुटुम्बको लेकर अथवा अन्य किसी स्वार्थ या आग्रह को लेकर नहीं हुई है। और इन वाणियों के द्वारा नये आचार विचार नये सम्प्रदाय एव नवीन धर्म के स्थापन के प्रयत्न की बजाय पुरानी रूढ़ियों, रस्म रिवाजों, आचार विचारों के आडम्बरों और पाखण्डों को उखाड़ फेंकने का प्रयत्न और प्रचार किया गया है। जिससे कि लोग सरल जीवन, उत्तम आचार वाले और सब के साथ सौहार्द का बर्ताव करने वाले बन जावें तथा "वसुधैव कुटुम्बकम" (ससार हमारा कुटुम्ब है) के सिद्धान्त को अपनाकर सुख और शाति का जीवन बितावें।

इन महामना गुरुओं की वाणी में भक्ति का ऊचे से ऊचा सिद्धान्त "ब्रह्म दीसै ब्रह्म सुणिये ब्रह्मो ब्रह्म बखा:-निये। आतम पसारा करनहारा ब्रह्म भिन्न न जाणिये।" भरा पड़ा है। जो वेद,शास्त्र और पुराणोंको पढ़ते तो हैं किन्तु उनकी शिक्षाओं पर अमल नहीं करते हैं। उनके लिये भी "चार पुकारें न तू माने। षट भी एकों बात बखानें॥ दस अष्टो मिलि एकौ कहीइआ। तौ भी जोगी भेद न लहीइआ॥" शब्दों में चेतावनी दी थी।

उस युग के लोगों के हृदय से भय, आशका, भ्रम और आत्म-ग्लानि के भावों को दूर करके ईश्वर मे दृढ विश्वास, आस्था और भक्ति पैदा करना अत्यावश्यक था। प्रातः ब्राह्म मुहूर्त्त में उठना, शौच स्नान करना और फिर भजन में लगना। इस तरह की जीवन चर्या बनाना और शुभकर्मों मे (लोगों को) लगाना उनके उपदेशो का मूल उद्देश्य था। "चिड़ी चु हकी पौ फटी वेंगन बहुत तरग। अचरज रूप सतन घरे नानक नामें रग॥" का आदर्श उनके सन्मुख था।

गुरुओं का प्रधान मार्ग भक्ति मार्ग था। वे स्वयम् भक्ति स्वरूप थे और दूसरे लोगों को भी ऐसा ही बनाना चाहते थे। उनके इस मार्ग में भी जब विघ्न पड़ा तब वे भक्ति के साथ ही पुरुषार्थ (युद्ध) को भी अपनाने को विवश हुए। यह करवट गुरु हरिगोविन्द जी ने तब बदली जब कि उनके पिता गुरु अर्जुन देव जी को अकारण अनेक असहनीय यत्रणायें देकर बलिदान कर दिया गया। इससे पहले तो गुरु लोग अपने भक्ति-मार्ग को ही प्रशस्त करने में लगे हुए थे। गुरु नानकदेवजी के भवित चेतावनी संबधी जो प्रवचन थे। गुरु अगद देव जी ने उन्हें उस

समय की पजाव में प्रचलित लिपि में जो अब गुरुमुखी के नाम से प्रख्यात है सग्रह कराया। गुरु अमरदास जी ने भक्ति के साथ सेवा का--अपने जीवन को उत्कृष्ट सेवामय बनाकर-आदर्श लोगों के सामने रक्खा। गुरु रामदास जी ने भक्ति को साकार रूप देने और अधिक आस्था उत्पन्न करने के लिये अमृत-सरोवर की आधार-शिला रक्खी। गुरु अर्जुनदेव जी ने अपने समय तक की समस्त गुरुवाणियों और अन्य सन्तों तथा भक्तों की गुरु-यश सवर्धनी कविता का सग्रह कराया। यही संग्रह 'ग्रन्थ साहिब'' की प्रथम वीढ़ था।

हम पहिले ही कह चुके हैं कि गुरु लोग अपने पराये के स्तर से बहुत ऊचे उठे हुए थे। इसका उत्कृष्ट उदाहरण गुरु नानकदेव जी द्वारा अपने पुत्रो की बजाय अगददेव जी को अपना उत्तराधिकारी नियुक्त करना है यद्यपि उनके बड़े पुत्र बाबा श्रीचन्द जी उत्कृष्ट विद्वान और अत्युच्च चरित्रवान थे किन्तु चूकि उनकी रुचि तप प्रधान थी। अतः गुरु नानकदेव जी ने उनको उसी मार्ग पर बढ़ने की स्वतन्त्रता बख्शी।

गुरु नानक देव मे जो तपः भावना और वीतरागपन था वह बाबा श्रीचन्द में और जो सेवा एवं जन-कल्याण भाव था वह अगद देव जी मे प्रस्फुटित हुआ और इस में सन्देह नहीं कि बाबा श्रीचन्दजी का उदासीन समाज और अंगददेव जी का सिख समाज दोनों ही समान रूप से आगे बढ़े और गुरु नानकदेव जी के मन्तव्यों को दोनों ने ही आगे बढाया। पंजाब से बाहर उदासियों ने नानक-मत को फैलाने में प्राथमिकता प्राप्त की। बाबा श्रीचन्द गुरुओं का कल्याण चाहते थे तो गुरु लोग भी अपने आदि गुरु का पुत्र तथा एक वीतराग तपस्वी समझकर उन्हें सन्मान देते थे। छटे गुरु हरिगोविन्द जी ने अपने जेष्ट पुत्र गुरुदित्ता जी को बाबा जी की सेवा के लिये भेंट कर दिया था जो आगे चल कर दीन दुखियों के टिक्का (सहारा) बने।

गुरु हरिगोविन्द जी ने मर्माहत होकर अत्याचार का प्रतिशोध करने के लिये जो करवट बदली थी। उसमें नवें गुरु श्री तेगबहादुरजी तक साधारण सी ही प्रगति हुई किन्तु दसवें पातशाह के समय में उसमें वह क्रांतिकारी परिवर्तन आया कि न केवल सिखों बल्कि सारे पंजाब अथवा यों कहिये कि उत्तरी भारत में एक नया ही रग पैदा हो गया।

गुरु तेगबहादुर जी के अनुपम बलिदान के बाद जो क्षोभ और प्रतिशोध भावना की बाढ सिख समाज में आई। वही आगे चलकर खालसा पथ की आधार शिला बनी। गुरु तेगबहादुर के बलिदान के पश्चात् उनके सुयोग्य पुत्र एव उत्तराधिकारी श्री गुरु गोविन्द सिंह जी ने जिस प्रकार उस समय की विकट परिस्थितियों का सामना करने के लिये खालसा पंथ को जन्म दिया यह उन्हीं की विलक्षण बुद्धिका पराक्रम था। अपने निकट के पहाड़ी राजाओं को जब वे नवोत्साह से मंडित करने के प्रयत्न में असफल हुए तो जिस प्रकार पुराने क्षत्रियों से निराश होने पर कुछ ऋषियों ने आबू में यज्ञ करके चार नये क्षत्रिय खानदानों का निर्माण किया और उन्हें एक नए वश (सूर्य और चन्द्र नहीं) अग्निवश के नाम से अभिहित किया था। उसी भाति काल और स्थिति के पारखी गुरु गोविन्दसिंह जी ने राजपूत-क्षत्रियों से निराश होकर एक नये योद्धा-सम्प्रदाय को जन्म दिया और उसे खालसा (विशुद्ध एव कसौटी पर कसा हुआ) के नाम से सबोधित किया। खालसा में बिना जाति पाति भेद के उन सब खत्री, जाट, कहार नाई छीपी को शामिल किया जो सिर देने को उद्यत हुए। उनको गुरु गोविन्द सिंह जी ने यह पाठ भी पढा दिया कि ''एक पिता एकस के हम बालक।' इस प्रकार जाति पाति के थोथे आडम्बरों को एक ओर फेंकने वालों के एक नये समाज ''खालसा'' को उन्होने जन्म दिया। वे समझते थे मनुष्य परिस्थितियों का पुतला है। जैसी परिस्थितियों मे वह पलेगा वैसा ही बन जायगा। जब भेड़ियों की मादमें पाला गया मानव-बालक भेड़ियों जैसे स्वभाव और रहन सहन का बन जाता है तो उसे शूरवीर, सज्जन और दयालु भी बनाया जा सकता है। परिस्थितिया और संस्कार मनुष्य को कुछ से कुछ बना देते हैं। तैमूर और चगेज ने जहा भेड़ बकरियों की भाति एक समय पजाबके हिन्दुओं को जिबह किया

था वहा गुरु गोविन्दसिंह की दीक्षा से अभिषिक्त हुए इन लोगों ने गुरु के 'बाजन से चिड़ी लड़ाऊ' घोष को चरिताथ कर दिया। करते भी क्यों न जब कि पिछली कई सदियों से शूद्र और नीच घोषित किये जाने वाले लोगों को गुरु गोविन्दसिंह ने "रगरेटा गुरु का बेटा" घोषित कर दिया था।

गुरु गोविन्दसिंह मे जहा एक योद्धाका तेज व्याप्त था। वहा उनमे एक विद्वान्, एक दाता और एक राजनेता के गुणों का भी सम्मिश्रण था। वे एक रूप मे एक प्रबल योद्धा, एक दयालु सत, एक साहित्यज्ञ और कला मर्मज्ञ विद्वान् तथा एक उदार दाता और राज पुरुष थे। उनकी साहित्यिक प्रतिभा का आभास हमें दशम ग्रथसे मिलता है। इस गुण से प्रभावित होकर उनके इर्द-गिर्द विद्वान् कवियों का एक खासा जमघट रहता था, उन्होने सस्कृत के अध्ययन के लिये अपने कई सिखो को काशी भी भेजा था। जिनमें अनेकों सस्कृत के विद्वान् होकर वापिस आये और गुरु-मन्तव्यो का जिन्होने सस्कृत मे अनुवाद भी किया।

गुरु गोविन्द सिंह ने त्याग और बलिदानों का जो सिलसिला आरम्भ किया था। वह एक दिन रग लाया और सैंकडो हजारो वृद्ध, युवा, बालकों एव माता बहनो के बलिदानों की नीव पर सिख अथवा खालसा राज्य की नींव पड़ गई। कुरुक्षेत्र से लेकर जमरूद के उस पार तक और काश्मीर जम्मू की सुहावनी भूमि से लेकर सिंध की पच्छिमी सीमाओं तक खालसा राज्यो का झडा लहरा गया।

सिख खूब बढे। उनका लोहा दुर्दान्त पठान भी मान गये। वे और भी बढ़ते यदि अपने व्यक्तिगत हितो की कुरबानी और अहम् का परित्याग उसी भाति करते रहते जैसा कि गुरुओं का उन्हें उपदेश था। किन्तु वे ऐसा न कर सके और अग्रेजी सत्ता उनके वैभव को निगल गई। उनको ही नहीं सारे भारत को ही निगल गई।

कोई भी सदा न तो गुलाम ही रहता है और न अवनत ही। भारत भी उठा और वह स्वतन्त्र हो गया। आज भारत स्वतन्त्र है। स्वतन्त्र भारत के अनुकूल ही सबको आज फिर एक मन एक प्राण हो जाना है। एक मन होने के लिये एक दूसरे के भावों के समझने के लिये एक भाषा की आवश्यकता होती है। भारतीय सविधान ने हिन्दी को जो कि देवनागरी लिपि में लिखी जाती है राष्ट्र की भाषा स्वीकार किया है। कुछ लोग प्रातीय भाषाओं की आवाज उठा रहे हैं और भाषाओं के आधार पर ही प्रातों की रचना भी चाहते हैं। सिखो ने भी चाहे सामूहिक रूप में और चाहे एक पार्टी के रूप में पजाबी भाषी प्रात की माग आरम्भ की है। पजाबी पजाब के समस्त निवासियों की बोली है। उसमें न तो हिन्दुओंको यह समझना है कि पजाबी से सिख उनके ऊपर हावी हो जावेंगे। और न सिखों को ही यह समझना है कि पंजाबी केवल उन्हीं की है। हमें तो कहना यह है कि प्रत्येक सिख को हिन्दी सीखनी चाहिये क्योंकि उनका समस्त धार्मिक साहित्य हिन्दी बोली में है। बिना हिन्दी के अच्छे ज्ञान के वे अपने धर्म के मम को कैसे जान सकेंगे। उनके धर्म को आज कोई खतरा नहीं। आज तो देश विधर्मियो के हाथ मे नहीं है। मैं जानता हूँ कि विषय अप्रासंगिक है किन्तु है सिखो के भावी भारत मे सुयोग देने के लिये, उन्हें सच्चे सिख बनाने के पक्ष मे। और सच्चे सिख के अर्थ सच्चे भारतीय के ही हैं।

अब तक मैंने सिखो, सिख गुरुओ और सिखो की पूर्व परिस्थितियों एव उनके उत्थान और ह्रास पर लिखा अब कुछ शब्द इस "सिख-इतिहास" पर लिखना चाहता हू जो पाठकों के हाथ में है।

१५ वर्ष पूर्व की बात है कि ठाकुर देशराज जी ने सिख-इतिहास के लिखने में मेरी सहायता की आकाक्षा प्रकट की। मैंने भी यह अनुभव किया कि हिन्दी साहित्य में सिखो सम्बन्धी सर्व प्रकार की जानकारी की एक पुस्तक का होना आवश्यक है अत मैंने फीरोजपुर जिले के कुछ प्रतिष्ठित सज्जनों की एक समिति इस काम में परामर्श और उचित सहायता देने के लिये बना दी और साहित्य सदन अबोहर में बैठकर लिखने की सुविधायें भी ठाकुर देशराज जी को प्रदान कर दीं।

समय की पंजाब में प्रचलित लिपि में जो अब गुरुमुखी के नाम से प्रख्यात है संग्रह कराया। गुरु अमरदास जी ने भक्ति के साथ सेवा का—अपने जीवन को उत्कृष्ट सेवामय बनाकर-आदर्श लोगों के सामने रक्खा। गुरु रामदास जी ने भक्ति को साकार रूप देने और अधिक आस्था उत्पन्न करने के लिये अमृत-सरोवर की आधार-शिला रक्खी। गुरु अर्जुनदेव जी ने अपने समय तक की समस्त गुरुवाणियों और अन्य सन्तों तथा भक्तों की गुरु-यश सम्वर्धनी कविता का संग्रह कराया। यही संग्रह 'ग्रन्थ साहिब' की प्रथम नींव था।

हम पहिले ही कह चुके हैं कि गुरु लोग अपने पराये के स्तर से बहुत ऊँचे उठे हुए थे। इसका उत्कृष्ट उदाहरण गुरु नानकदेव जी द्वारा अपने पुत्रों की बजाय अंगददेव जी को अपना उत्तराधिकारी नियुक्त करना है यद्यपि उनके बड़े पुत्र बाबा श्रीचन्द जी उत्कृष्ट विद्वान और अत्युच्च चरित्रवान थे किन्तु चूंकि उनकी रुचि तप. प्रधान थी। अत गुरु नानकदेव जी ने उनको उसी मार्ग पर बढ़ने की स्वतन्त्रता बख्शी।

गुरु नानक देव में जो तप. भावना और वीतरागपन था वह बाबा श्रीचन्द में और जो सेवा एवं जन-कल्याण भाव था वह अंगद देव जी में प्रस्फुटित हुआ और इस में सन्देह नहीं कि बाबा श्रीचन्दजी का उदासीन समाज और अंगददेव जी का सिक्ख समाज दोनों ही समान रूप से आगे बढे और गुरु नानकदेव जी के मन्तव्यों को दोनों ने ही आगे बढ़ाया। पंजाब से बाहर उदासियों ने नानक-मत को फैलाने में प्राथमिकता प्राप्त की। बाबा श्रीचन्द गुरुओं का कल्याण चाहते थे तो गुरु लोग भी अपने आदि गुरु का पुत्र तथा एक वीतराग तपस्वी समझकर उन्हें सन्मान देते थे। छटे गुरु हरिगोविन्द जी ने अपने जेष्ट पुत्र गुरुदित्ता जी को बाबा जी की सेवा के लिये भेंट कर दिया था जो आगे चल कर दीन दुखियों के टिक्का (सहारा) बने।

गुरु हरिगोविन्द जी ने मर्माहत होकर अत्याचार का प्रतिशोध करने के लिये जो करवट बदली थी। उसमें नवें गुरु श्री तेगबहादुरजी तक साधारण सी ही प्रगति हुई किन्तु दसवें पातशाह के समय में उसमें वह क्रांतिकारी परिवर्तन आया कि न केवल सिक्खों बल्कि सारे पंजाब अथवा यों कहिये कि उत्तरी भारत में एक नया ही रंग पैदा हो गया।

गुरु तेगबहादुर जी के अनुपम बलिदान के बाद जो क्षोभ और प्रतिशोध भावना की बाढ़ सिक्ख समाज में आई। वही आगे चलकर खालसा पंथ की आधार शिला बनी। गुरु तेगबहादुर के बलिदान के पश्चात् उनके सुयोग्य पुत्र एवं उत्तराधिकारी श्री गुरु गोविन्द सिंह जी ने जिस प्रकार उस समय की विकट परिस्थितियों का सामना करने के लिये खालसा पंथ को जन्म दिया यह उन्हीं की विलक्षण बुद्धि का पराक्रम था। अपने निकट के पहाड़ी राजाओं को जब वे नवोत्साह से मंडित करने के प्रयत्न में असफल हुए तो जिस प्रकार पुराने क्षत्रियों से निराश होने पर कुछ ऋषियों ने आबू में यज्ञ करके चार नये क्षत्रिय खानदानों का निर्माण किया और उन्हें एक नए वंश (सूर्य और चन्द्र नहीं) अग्निवंश के नाम से अभिहित किया था। उसी भांति काल और स्थिति के पारखी गुरु गोविन्दसिंह जी ने राजपूत-क्षत्रियों से निराश होकर एक नये योद्धा-सम्प्रदाय को जन्म दिया और उसे खालसा (विशुद्ध एवं कसौटी पर कसा हुआ) के नाम से सम्बोधित किया। खालसा में बिना जाति पांति भेद के उन सब खत्री, जाट, कहार, नाई छींबी को शामिल किया जो सिर देने को उद्यत हुए। उनको गुरु गोविन्द सिंह जी ने यह पाठ भी पढ़ा दिया कि 'एक पिता एकस के हम बालक'। इस प्रकार जाति पांति के थोथे आडम्बरों को एक ओर फेंकने वालों के एक नये समाज "खालसा" को उन्होंने जन्म दिया। वे समझते थे मनुष्य परिस्थितियों का पुतला है। जैसी परिस्थितियों में वह पलेगा वैसा ही बन जायगा। जब भेड़ियों की मान्दों में पाला गया मानव—बालक भेड़ियों जैसे स्वभाव और रहन सहन का बन जाता है तो उसे शूरवीर, सज्जन और दयालु भी बनाया जा सकता है। परिस्थितियां और संस्कार मनुष्य को कुछ से कुछ बना देते हैं। तैमूर और चंगेज ने जहां भेड़ बकरियों की भांति एक समय पंजाबके हिन्दुओं को जिबह किया

था वहा गुरु गोविन्दसिंह की दीक्षा से अभिषिक्त हुए इन लोगो ने गुरु के 'बाजन से चिड़ी लड़ाऊ' घोष को चरिताथ कर दिया। करते भी क्यों न जब कि पिछली कई सदियों से शूद्र और नीच घोषित किये जाने वाले लोगों को गुरु गोविन्दसिंह ने "रगरेटा गुरु का बेटा" घोषित कर दिया था।

गुरु गोविन्दसिंह में जहा एक योद्धाका तेज व्याप्त था। वहा उनमे एक विद्वान्, एक दाता और एक राजनेता के गुणों का भी सम्मिश्रण था। वे एक रूप मे एक प्रबल योद्धा, एक दयालु संत, एक साहित्यज्ञ और कला मर्मज्ञ विद्वान् तथा एक उदार दाता और राज पुरुष थे। उनकी साहित्यिक प्रतिभा का आभास हमें दशम ग्रथसे मिलता है। इस गुण से प्रभावित होकर उनके इर्द-गिर्द विद्वान् कवियों का एक खासा जमघट रहता था, उन्होंने सस्कृत के अध्ययन के लिये अपने कई सिखों को काशी भी भेजा था। जिनमें अनेकों सस्कृत के विद्वान् होकर वापिस आये और गुरु-मन्तव्यों का जिन्होंने सस्कृत मे अनुवाद भी किया।

गुरु गोविन्दसिंह ने त्याग और बलिदानों का जो सिलसिला आरम्भ किया था। वह एक दिन रग लाया और सैंकड़ो हजारो वृद्ध, युवा, बालकों एव माता बहनो के बलिदानों की नींव पर सिख अथवा खालसा राज्य की नींव पढ गई। कुरुक्षेत्र से लेकर जमरूद के उस पार तक और काश्मीर जम्मू की सुहावनी भूमि से लेकर सिंध की पच्छिमी सीमाओं तक खालसा राज्यो का झंडा लहरा गया।

सिख खूब बढे। उनका लोहा दुर्दान्त पठान भी मान गये। वे और भी बढ़ते यदि अपने व्यक्तिगत हितो की कुरबानी और अहम् का परित्याग उसी भाति करते रहते जैसा कि गुरुओ का उन्हें उपदेश था। किन्तु वे ऐसा न कर सके और अग्रेजी सत्ता उनके वैभव को निगल गई। उनको ही नहीं सारे भारत को ही निगल गई।

कोई भी सदा न तो गुलाम ही रहता है और न अवनत ही। भारत भी उठा और वह स्वतन्त्र हो गया। आज भारत स्वतन्त्र है। स्वतन्त्र भारत के अनुकूल ही सबको आज फिर एक मन एक प्राण हो जाना है। एक मन होने के लिये एक दूसरे के भावों के समझने के लिये एक भाषा की आवश्यकता होती है। भारतीय सविधान ने हिन्दी को जो कि देवनागरी लिपि में लिखी जाती है राष्ट्र की भाषा स्वीकार किया है। कुछ लोग प्रातीय भाषाओ की आवाज उठा रहे हैं और भाषाओं के आधार पर ही प्रातो की रचना भी चाहते हैं। सिखो ने भी चाहे सामूहिक रूप मे और चाहे एक पार्टी के रूप में पंजाबी भाषी प्रात की माग आरम्भ की है। पजाबी पजाब के समस्त निवासियो की बोली है। उसमें न तो हिन्दुओंको यह समझना है कि पजाबी से सिख उनके ऊपर हावी हो जावेंगे। और न सिखों को ही यह समझना है कि पजाबी केवल उन्हीं की है। हमें तो कहना यह है कि प्रत्येक सिख को हिन्दी सीखनी चाहिये क्योकि उनका समस्त धार्मिक साहित्य हिन्दी बोली में है। बिना हिन्दी के अच्छे ज्ञान के वे अपने धर्म के मम को कैसे जान सकेंगे। उनके धर्म को आज कोई खतरा नही। आज तो देश विधर्मियो के हाथ में नहीं है। मैं जानता हूँ कि विषय अप्रासंगिक है किन्तु है सिखों के भावी भारत मे सुयोग देने के लिये, उन्हें सच्चे सिख बनाने के पक्ष में। और सच्चे सिख के अर्थ सच्चे भारतीय के ही हैं।

अब तक मैंने सिखों, सिख गुरुओ और सिखों की पूर्व परिस्थितियों एव उनके उत्थान और ह्रास पर लिखा अब कुछ शब्द इस "सिख-इतिहास" पर लिखना चाहता हू जो पाठको के हाथ में है।

१५ वर्ष पूर्व की बात है कि ठाकुर देशराज जी ने सिख-इतिहास के लिखने में मेरी सहायता की आकाक्षा प्रकट की। मैंने भी यह अनुभव किया कि हिन्दी साहित्य में सिखों सम्बन्धी सर्व प्रकार की जानकारी की एक पुस्तक का होना आवश्यक है अत. मैंने फीरोजपुर जिले के कुछ प्रतिष्ठित सज्जनों की एक समिति इस काम मे परामर्श और उचित सहायता देने के लिये बना दी और साहित्य सदन अबोहर में बैठकर लिखने की सुविधायें भी ठाकुर देशराज जी को प्रदान कर दीं।

ठाकुर देशराज जी परिश्रमी लगनशील और विद्व-द्त्त लेखक हैं। इसलिये उन्होंने इस काम में तन्मयता से चिपट कर और पूर्ण हिम्मत करके साल डेढ साल के भीतर-भीतर इस काम को पूरा कर लिया। साहित्य सदन में जो पुस्तकों का भण्डार था ही, उनके सिवा भी जिन उर्दू, फारसी और अंग्रेजी पुस्तकों की आवश्यकता पड़ी। उन्हें मगाने का प्रयत्न किया गया और जो न मिलीं उनके देखने के लिये कन्या महाविद्यालय फिरोजपुर और खालसा कालेज अमृतसर में लेखक महोदय को जाना पड़ा।

दैवयोग से इतिहास लिखने के दिनों में ही द्वितीय महायुद्ध और उसके पश्चात् ही 'अंग्रेजो भारत छोड़ो' आन्दोलन आरंभ हो गया। साथ ही बाजार में कागज मिलने में कठिनाई भी पैदा हो गई, अत इस इतिहास के छपने का मामला खटाई में पड गया।

दो वर्ष पहले ठाकुर देशराज जी ने इसे प्रकाशित करने का प्रश्न उठाया। हमने इसे ग्रामोत्थान विद्यापीठ सगरिया के प्रकाशन विभाग द्वारा प्रकाशित करने का सकल्प किया किन्तु चूंकि इस प्रकाशन सस्था के पास इतने बड़े ग्रन्थ के प्रकाशन के व्यय को सहन करने की सामर्थ्य न थी अत सिक्खों की प्रतिनिधि सस्था शिरोमणि गुरुद्वारा प्रबन्धक कमेटी अमृतसर को इस पवित्र काम में सहायता देने के लिये लिखा। कमेटी ने उदारता पूर्वक पाच हजार रुपया नकद देकर हमारे उत्साह को बढाया। अत इस ग्रन्थ की प्रकाशन सस्था, शिरोमणि गुरुद्वारा कमेटी की अत्यन्त आभारी तथा कृतज्ञ है।

इसके पश्चात् हमने अपने इलाके के उदार और साहित्य प्रेमी सिक्ख सरदारों से भी सहायता प्राप्त की है। और यह उन उदार सहायकों की ही उदारता का फल है कि यह महत्वपूर्ण इतिहास प्रकाशित हो सका है। आशा यह थी कि यह इतिहास तीन चार मास में ही छप जायेगा किन्तु ऐसा न हो सका और लगभग एक वर्ष ही लग गया कारण कि इतनी बडी रकम के छपने में समय तो लगना ही था इसके सिवा बीच में मुझे स्वयम् डेढ महीने के लगभग बुखार के हवाले रहना पडा और एक फसल यों ही निकल गई। उसके अतिरिक्त भी इसके प्रकाशन में अनेक कठिनाइयों और हानियां हमें तथा ग्रामोत्थान विद्यापीठ को सहन करनी पड़ी हैं क्योंकि इसके लिये कार्य करने के कारण विद्यापीठ के अन्य आवश्यक कार्यों के लिये ठीक समय पर योग न दिया जा सका। हमें इस सिक्ख इतिहास के प्रकाशित होने से प्रसन्नता है कारण कि इससे हिन्दी साहित्य के एक अभाव की पूर्ति होती है। इस पूर्ति से सिक्ख जाति और सिख धर्म के सम्बन्ध में हिन्दी जनता को सही परिचय प्राप्त करने का साधन प्रस्तुत हो गया है। यह इतिहास एक प्रकार से सिक्खों सम्बन्धी जानकारी के लिये कोष है। इसके साथ ही एक प्रशंसनीय कार्य लेखक ने यह किया है कि इसमें लगभग सवा सौ पृष्ठ का 'गुरुमत-दर्शन' अध्याय और जोड दिया है। सिक्खधर्म जिसे कि 'गुरुमत' कहा जाता है अपने अन्दर क्या दार्शनिकता रखता है और वह दार्शनिकता हिन्दू-दर्शन के साथ कितना मेल खाती है? तथा उसका आधार और प्रवाह क्या है? इस विषय पर पूरा प्रकाश इस अध्याय में डाला गया है। जो सिक्खों के लिये भी अध्ययन की एक अच्छी सामग्री प्रस्तुत करता है।

एक बात जिस पर कि इतिहास के लेखक ठाकुर देशराज जी ने बहुत कम प्रकाश डाला है। हम और कहना चाहते हैं वह यह कि पंजाब और पंजाब से बाहर गुरुमत के फैलाव के लिये सिख गुरुओं और उनके प्रचारकों की भांति ही उदासीन सम्प्रदाय के आचार्यों और विद्वानों ने भी काफी काम किया है। उदासीन सम्प्रदाय के पुनरुद्धार कर्ता बाबा श्रीचन्द जी थे जो गुरु नानकदेव जी के ज्येष्ठ पुत्र थे। अपने पिता के संसर्ग से वैराग्य उन्हें बपौती में मिला था। वह सनक, सनन्दन, शंकराचार्य और ऋषि दयानन्द की भांति बाल-ब्रह्मचारी और बाल सन्यासी थे। हिन्दुओं की आश्रम व्यवस्था के अनुसार सन्यास (७५ वर्ष की आयु के पश्चात् आरम्भ होने वाला) चौथा आश्रम है किन्तु वे उपरोक्त ऋषियों की भांति पहले अवस्था में ही सन्यासी हो गये थे। उनके तप और त्याग का आदर गुरु घर

साहित्य सदन, अबोहर
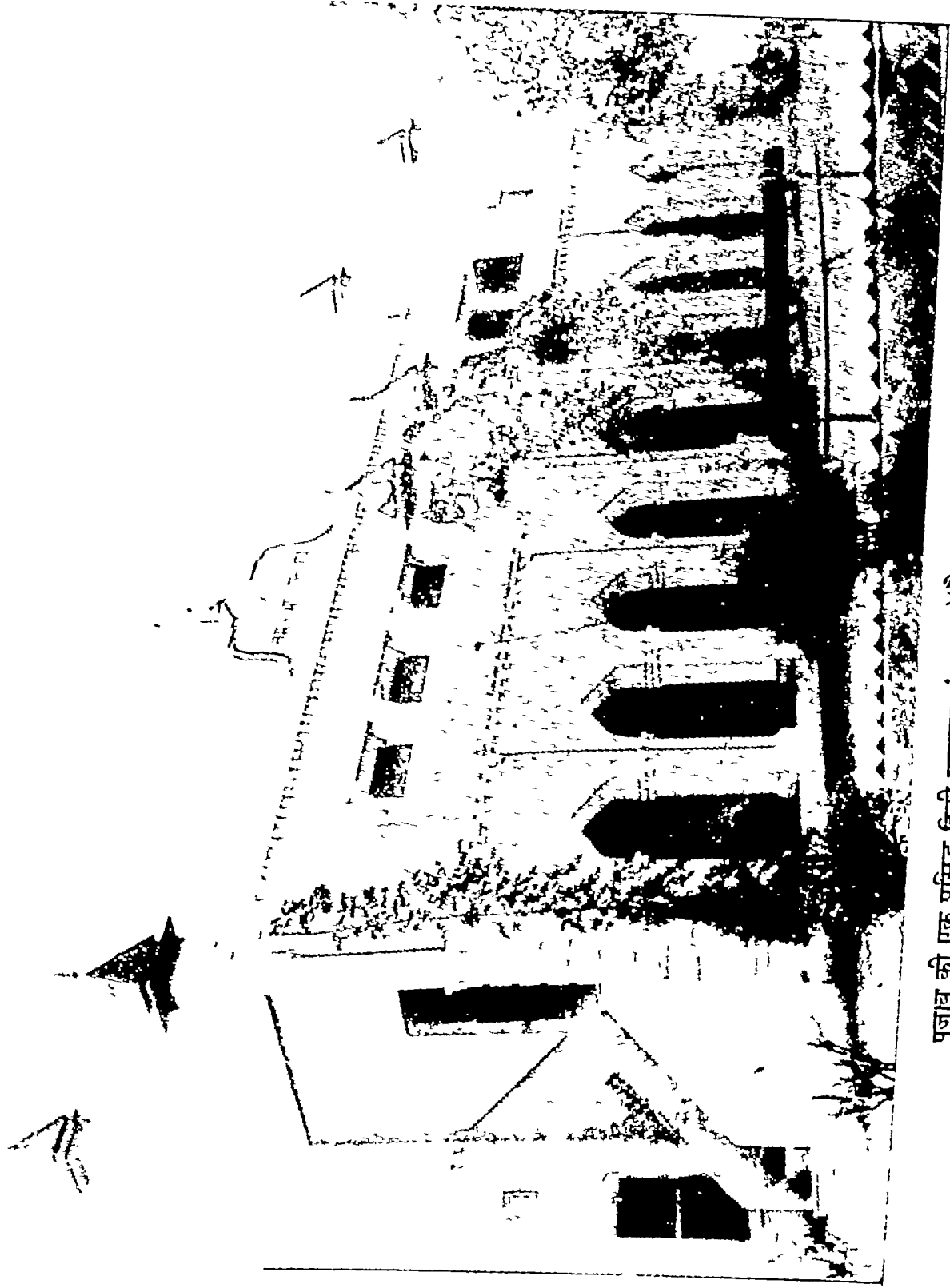
पंजाब की एक प्रसिद्ध हिंदी प्रचारक संस्था जहाँ बैठ कर यह इतिहास लिखा गया

ग्रामोत्थान विद्यापीठ, संगरिया (राजस्थान)
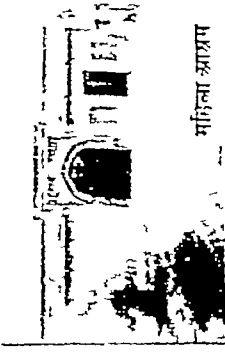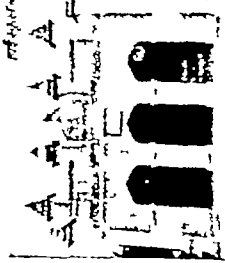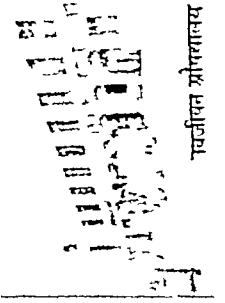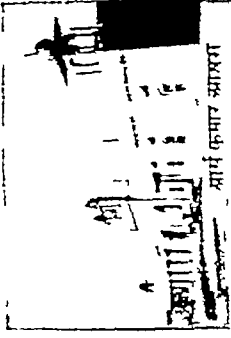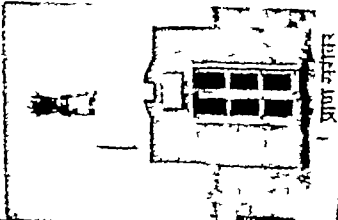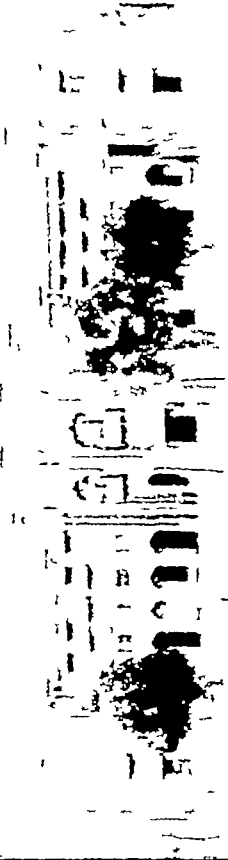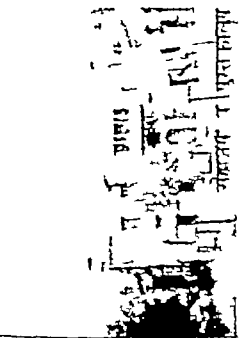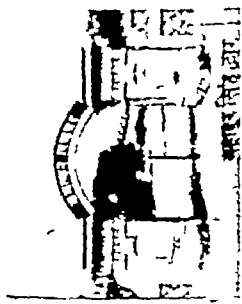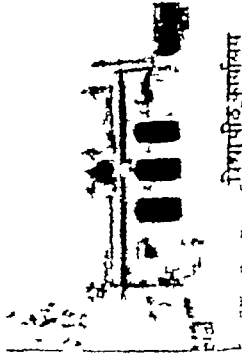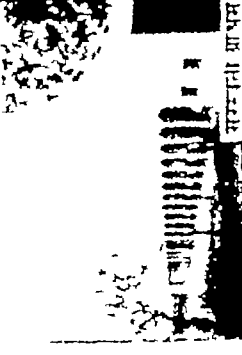
जिसके द्वारा यह इतिहास प्रकाशित किया गया

में भी होता था। छटे गुरु श्री हरिगोविन्द जी ने अपने बड़े पुत्र गुरु दित्ता जी को बाबा जी की सेवा मे भेंट कर दिया था। आरभ मे इस प्रकार का घनिष्ट सम्बन्ध उदासियो और गुरु घराने में था। उस समय उदासी पूर्वी भारत मे नानक पथी भी बोले जाते थे। और इस में सन्देह नही कि उदासी सतो ने नानक पन्थ का काफी प्रचार किया। जहा जहा गुरु लोगो ने यात्रायें की थीं वहा वहा उन्होने गुरुद्वारे (डेरे) बनवाये और वहां के अपने भक्तो को गुरु वाणी का रसास्वादन कराते रहे। उनकी भी धार्मिक पुस्तक ग्रन्थ साहब रही।

लखनऊ, रानोपाली और अयोध्या के सतो को इन उदासीन आचार्यों के चमत्कार के सामने झुकना पडा था और वे भी इनके पन्थ मे आगये थे।

प्रयाग काशी आदि मे जो कु भ के मेले होते है, उनमें उदासी साधुओ ने बडी कुर्बानियों और प्रयत्नों के पश्चात अखिल भारतीय आधार पर ग्रन्थ साहब के जुलूस निकालने तय करा लिये। अब तक भी बाबा श्रीचन्द के डोले के साथ ग्रन्थ साहब को भी कु भ के अवसरों पर निकालते हैं।

पजाब के बाहर भारत मे हमने जगली जातियो को भी बाबा नानक का नाम और उनकी वाणियो का कीर्तन करते देखा है। उन तक यही उदासीन साधु पहुँचे है और उनमे नानक-धर्म का प्रचार किया है। इस प्रकार उदासीन साधु एक लम्बे समय तक सिखों के पूरक रहे है किन्तु जब से गुरद्वारो पर सिखों ने अधिकार का काम अपने हाथ लिया तब से बाबा नानक की ये दोनो सताने आपस मे खिच सी गई है। वर्तमान में कुछ भी हों किन्तु भूत मे गुरु मत के प्रचार मे उदासी, निर्मले और नामधारी अलग अलग नहीं रहे। उनका मूल एक है। उदासी गुरु नानक देव के पुत्र बाबा श्रीचन्द के अनुयायी है तो सिख उनके प्रिय शिष्य अगद देव जी की शिष्य परम्परा मे हैं।

यह एक ऐतिहासिक सचाई थी जिस की ओर मुझे सकेत करना था अत. इसी हेतु यह थोडी सी पक्तिया लिखनी पडी हैं कि उदासियो की नानक पथ के प्रचार में कम सेवायें नहीं है। उन्होने बड़ी बडी कठिनाइयों से सस्कृत शिक्षा पाकर फिर सस्कृत मे "गुरु नानक चन्द्रोदय" 'जपुजी साहब का सस्कृत भाष्य' 'गुरु नानक गीता' 'गुरु नानक निरकार मीमासा' आदि ग्रन्थ लिख कर गुरुमत का प्रकाश और प्रचार किया था। गुरुमुखी न जानने के कारण काशी उज्जैन, जयपुर प्रयाग आदि के जो पण्डितजन गुरुनानक के मतव्यों से अजान थे उनको गुरुमत का सन्देश इन्हीं उदासियों ने पहुँचाया था। अत उदासियो का भी गुरुमत-प्रचार में एक अच्छा भाग और स्थान है।

—केशवानन्द

लेखक का परिचय

इस सिख इतिहास के लेखक श्री ठाकुर देशराज राजस्थान के प्रथम श्रेणी के उन किसान नेताओं में से हैं जिन्होंने पिछली दो दशाब्दियों में राजस्थान के किसानों में जागृति पैदा करने में अपने को खपाया है। उन्होंने राजस्थान के किसानों में उस समय जागृति का कार्य आरम्भ किया था जबकि राजाओं और जागीरदारों का आतंक अपनी पराकाष्ठा पर था। सीकर और शेखावाटी के किसान-आन्दोलन आपके ही नेतृत्व में संचालित हुए थे।

भरतपुर में कांग्रेस (प्रजामंडल) को जन्म देने का श्रेय आप ही को है। सन् १६३०, १६३६ और १६४८ में आपने तीन बार जेल-यात्रा की। जयपुर राज्य में आप के प्रवेश पर दो साल से ऊपर पाबन्दी रही और बीकानेर के षडयन्त्र केस में जो महाराजा गंगासिंह के समय में खूबराम सर्राफ, गोपालदास स्वामी आदि पर चला था उसमें भी आप का नाम लिया गया। अजमेर-मेरवाड़ा, बीकानेर, जोधपुर, जयपुर, अलवर और भरतपुर आपके कार्य के क्षेत्र रहे। इस तरह से राजस्थान में इनका काफी नाम और काम है।

साहित्यिक क्षेत्र में उन्होंने 'राजस्थान सन्देश', 'गणेश', 'किसान सन्देश', 'किसान जगत' और 'नव जागृति' के सम्पादक तथा 'जाट-इतिहास', 'किसान-राज्य, "आर्थिक कहानिया, "तरुणाई के बोल" आदि पुस्तकों के रचियता के रूप में ख्याति प्राप्त की है।

ठाकुर देशराज जी का जन्म ब्रज में संवत् १६५८ विक्रमी में द्वितीय श्रावण सुदी एकादशी को भरतपुर राज्य के जघीना गाँव में श्री ठाकुर छीतरसिंह के घर माता सुन्दरी देवी के उदर से जन्म लेने का आपको सौभाग्य प्राप्त हुआ।

सन् १६७३ में आपकी सार्वजनिक कार्यों में रुचि उत्पन्न हुई और उसी समय से आर्य समाज, हिन्दू सभा और जाट महासभा के कामों में हिस्सा लेने लग गये। पंजाब में लाला लाजपतराय पर लाठी चार्ज होने के बाद आपने कांग्रेस के कामों में भाग लेना आरम्भ कर दिया और सन् १६४२ तक बराबर कांग्रेस के कार्यों में भाग लेते रहे। उसके पश्चात् से आपके जीवन का लक्ष्य साहित्य सेवा और किसानों की जागृति बन गया। एक बार आप हरिपुरा कांग्रेस अधिवेशन के लिये आगरे जिले की ओर से प्रतिनिधि चुने गये थे। उन दिनों आप भरतपुर से निर्वासित होने के कारण आगरे में ही रहते थे।

सन् १६४४ में जब भरतपुर में ऐसेम्बली की स्थापना हुई जिसका कि नाम ब्रजजया प्रतिनिधि समिति था उसमें आपकी किसान पार्टी बहुमत में निर्वाचित हुई और आप उस ऐसेम्बली के डिप्टी स्पीकर चुने गये और इस पद पर लगातार ४ वर्ष तक आपने काम किया। सन् १६४८ में जब भरतपुर में लोकप्रिय मन्त्रिमण्डल की स्थापना हुई तो आप उसमें राजस्व मन्त्री चुने गये।

इस प्रकार आपने राजनैतिक और साहित्यिक दोनों ही क्षेत्रों में काफी प्रसिद्धि प्राप्त की है। आप परिश्रमी, मननशील और धुन के पक्के आदमियों में से हैं। मिलनसारी और सौजन्य आपके ईश्वर-प्रदत्त गुण हैं।

ग्रामोत्थान विद्यापीठ
संगरिया

कुलभूषण

श्री कुलभूषण

श्री ज्ञानी हरिनामसिंह 'वल्लभ'

कृतज्ञता-ज्ञापन

यह उचित ही होगा कि 'सिख इतिहास' के प्रकाशन के अवसर पर हम उन मित्रों और हितैषियो के प्रति कृतज्ञता प्रकट करे जिनका इस इतिहास के प्रकाशन मे सौहार्दपूर्ण सहयोग रहा है।

सब से अधिक श्रेय के पात्र है सरदार गडासिंह जी—जो इस इतिहास के लिखने के दिनों में खालसा कालेज अमृतसर मे 'सिख हिस्ट्री' के रिसर्च स्कालर एव प्रोफेसर थे और अब पेप्सु मे पुरातत्व के डाइरेक्टर हैं। इस बीच मे आपने अहमदशाह अब्दाली पर निबन्ध (थीसिस) लिखकर डाक्ट्रेट भी प्राप्त कर लिया है।

उन्होंने अपने कार्यों में व्यस्त रहते हुए भी समय निकाल कर इस इतिहास के लगभग तीन चौथाई भाग का अध्ययन किया है और फिर अपनी अमूल्य सम्मति प्रदान करने का अनुग्रह किया है। उनकी सम्मति हम भूमिका शीर्षक मे इस इतिहास मे प्रकाशित कर रहे हैं।

इस अवसर पर हम सिखो की सर्व प्रिय धार्मिक एवं साहित्यिक संस्था—"शिरोमणि गुरुद्वारा प्रबन्धक कमेटी" अमृतसर की उस उदारता को भी नहीं भुला सकते है जो उसने मुक्त-हस्त से इस इतिहास को छपाने के लिये पांच हजार रुपये की नकद रकम प्रदान करके की है। हम हृदय से कमेटी के पदाधिकारियों और सदस्यों के कृतज्ञ है।

फाजिलका व मुक्तसर (तहसील) इलाके के सम्पन्न सरदारो ने भी इस पुनीत कार्य मे उत्साहपूर्वक आर्थिक सहायता दी है। यही क्यों बादल के सरदार श्री रघुराजसिंह गुरुराजसिंह जी, झींडवाली के सरदार श्री जोगेन्द्रसिंह जी और गोविन्दगढ़ के सरदार श्री करतारसिंह जी, बांडीवाला के सरदार लालसिंह जी और गहेंडोब के सरदार ईश्वरसिंह जी और अबलखराना के सरदार टेकसिंह जी ने अपना समय देकर इस काम के लिये आर्थिक सहायता सग्रह कराई। जिन-जिन लोगों ने इस कार्य मे हमे सहायता दी उनकी सूची इस इतिहास के अन्तिम पृष्ठों मे प्रकाशित कर रहे है।

नामधारी सिखों के प्रसिद्ध विद्वान सत इन्द्रसिंह चक्रवर्ती ने प्रस्तावना के लिये कुछ शब्द लिखने का अनुग्रह किया है हम उनके भी कृतज्ञ हैं।

दरबार साहिब पटियाला द्वारा प्रकाशित 'गुरुशब्द रत्नाकर' महान् कोष के लेखक व प्रकाशक के हम इसलिये कृतज्ञ हैं कि उसके चित्रों के आधार पर हमने कुछ चित्र इस इतिहास के लिये तैयार कराये हैं।

श्री सेठ जुगलकिशोर जी बिडला ने जो कि समस्त आर्य्य, (हिन्दू) धर्मों की एकता के प्रबल समर्थक हैं तथा जिन्हे सिख भी अपने मित्र की दृष्टि से देखते हैं, इसका समर्पण स्वीकार किया है इससे हमे पूर्ण प्रसन्नता और संतुष्टि है।

यह कहने मे हमे प्रसन्नता होती है कि इसके लिखाने का गौरव पजाब की प्रसिद्ध सस्था साहित्य-सदन अबोहर को है और प्रकाशित कराने का श्रेय ग्रामोत्थान विद्यापीठ, सगरिया को। इन दोनों ही संस्थाओं से हमारा सम्बन्ध है और दोनों का ही इस शुभ काम में सहयोग है।

—केशवानन्द

सिख इतिहास की विषय सूची

चित्र-सूची

पंजाबी प्रेस सदरबाजार दिल्ली के सौजन्य से महाराजा रणजीतसिंह, बाबा फूलसिंह, गुरु रामदास जी, बलिदान, गुरु गोविन्दसिंह जी, गुरु नानकदेव जी, हरिसिंह नलुवा, बाबा दीपसिंह जी तथा शहीद बन्दा बहादुर के चित्रों के डिजाइन प्राप्त हुए हैं जिनके आधार पर ब्लाक बनवा कर इस इतिहास में चित्र दिये गये हैं। अत: हम प्रेस मालिकान के कृतज्ञ हैं। उक्त चित्रों का कापी राइट पंजाबी प्रेस को ही है।

प्रकाशक—

पहला अध्याय

गुरु नानक से पहले का भारत

इस बात से प्रत्येक भारतीय जानकार है कि गुरु नानक देव जी महाराज का जिस समय जन्म हुआ था, उस समय हिन्दू धर्म और भारत देश एक भयंकर खतरे मे से गुजर रहे थे। काश्मीर से लेकर कन्याकुमारी तक और बिलोचिस्तान से लेकर आसाम तक सारा देश उन लोगों की हुकूमत मे था जो न तो भारतवासी ही थे और न इस देश के वाशिन्दों के सहधर्मी ही। वे मंगोल, तुर्क, ईरान और अफगानिस्तान प्रभृति देशों के उन भारत-विजयी लोगों की सन्तान थे जिन्होंने गुरु नानकदेव जी से ५००-६०० वर्ष पूर्व से भारत मे—लूट खसोट और स्वधर्म प्रचार के लिये आना आरंभ किया था और फिर जीवन निर्वाह की सुविधायें—स्वदेश की अपेक्षा अधिक मात्रा मे—यहाँ पाकर बस जाना उचित समझा।

इनमे अधिकाश अपने धर्म के पक्के और दूसरे धर्मों के प्रति घोर तास्सुबी थे। शासकों की अपेक्षा इनका पुरोहित वर्ग जो काजी और मुल्लाओं के नाम से अभिहित होता था—दूसरे धर्मों के प्रति अधिक असहिष्णुता के भाव रखता था। हालाकि इन लोगों ने हिन्दुस्तान को अनेक अच्छे खयालात और कला कौशल के ज्ञान दिये किन्तु धर्म-प्रसार के इनके जो ढंग थे वह मानवता की सीमा से बहुत परे और हृदय हिला देने वाले थे यही कारण था कि हिन्दुओं की उस समय की दशा खाडव-वन के उन जीव धारियों की जैसी थी जो दावानल से धांय-धांय जल रहा था।

भारत देश और हिन्दू जाति के इन जलते-बलते दिनों में भी यह बात नहीं थी कि हिन्दू राजाओं के राज्यों से देश शून्य था। गणना के लिहाज से तो उस समय भी लगभग आधे देश मे राजपूत नाम से मशहूर होने वाले अनेक हिन्दू खान्दान राज करते थे। ये सब मिलकर चाहते तो उन अत्याचारों को खत्म भी कर सकते थे और भारत को स्वतन्त्र भी किन्तु यह लोग ऐसा न कर सके, (उलटा) हुआ यह कि इन्होंने परस्पर एक दूसरे की स्वतन्त्रता अपहरण कराने के लिये देश को रौंदने वाले और हिन्दू धर्म को ध्वंस करने वालों का साथ दिया। यह (राजपूत) लोग आपस मे ऊँच-नीच के भावों से यहां तक ओत-प्रोत थे कि एक दूसरे की अधीनता एवं अनुशासन मे रहना अपने वंश की हेटी समझते थे किन्तु विधर्मी शासकों के साथ इनमें से अनेकों ने लड़की देने मे भी वंश मर्यादा का लोप न समझा। हमे यह कहने मे कोई हिचक नहीं है कि मराठा और सिखों के उस प्रयत्न में भी इन लोगों द्वारा बाधा

पहुँची जो उन्होंने हिन्दू पादशाही स्थापित करने के लिए किया था। और यही कारण है कि भारत को राजनैतिक मुक्ति दिलाने और हिन्दू धर्म को इस्लाम की धधकती लपटों से बचाने के लिए गुरु नानकदेव जी के दशवें उत्तराधिकारी गुरु गोविन्दसिंह जी को एक नई जाति (खालसा) की स्थापना करनी पड़ी।

गुरु नानक जी से पूर्व भारत की वास्तविक दशा बताने के लिए हमें कुछ अधिक लम्बाई के साथ चर्चा करनी पड़ेगी।

६०० ई० से १२ वीं सदी तक

इतिहासकारों के मत से ईसा की छठी सदी से लगाकर बारहवीं सदी के बीच का समय राजपूत काल माना जाता है। क्योंकि इस बीच में भारत मे जितने भी शासक खान्दान थे वह सब अपने को राजपूत कहते थे और यह भी सही है कि इन छ सौ वर्षों तक भारत मे राजपूतों का ही वैशिष्य रहा। वैसे इसके बाद भी और कल तक राजपूतों के भारत मे अनेकों राज्य रहे हैं किन्तु ये समय उनकी खुद मुख्त्यारी के समय नहीं कहे जा सकते। सर्वोपरिसत्ता उनकी बारहवीं सदी से आगे नष्ट हो गई। भारत के इतिहास मे इन छ सौ वर्षों को हिन्दू काल भी कहा जाता है उसका कारण यही है कि हिन्दू नाम से अभिहित होने वाले धर्म और जाति इन्हीं ६०० वर्षों मे इस रूप को प्राप्त हुए थे इन्ही छ सौ वर्षों में बौद्ध और जैनधर्मों का खात्मा किया गया था।[1] हमारा मौजूदा हिन्दू-समाज बौद्ध-जैन धर्मों के नष्ट किये जाने के बाद का निर्माण किया हुआ ही है। ये दोनों भी आर्य्य धर्म के ही अंग थे और आर्य्य कुमारों द्वारा ही[2] प्रादुर्भित भी हुए थे किन्तु कुछ अंशों मे ब्राह्मण विरोधी होने के कारण इनके साथ ब्राह्मणों का संघर्ष छिड़ गया। ब्राह्मण अपने प्रयत्न मे सफल हुए और उन्होंने बौद्ध धर्म का तो भारत से निशान ही मिटा दिया। थानेश्वर के प्रसिद्ध राजा हर्षवर्द्धन शिलादित्य के बाद बौद्धों मे कोई बड़ा राजा शेष न रह गया था। सिन्ध और काबुल के प्रदेशों के जो छोटे-छोटे बौद्ध राजा थे वह भी ब्राह्मणों ने राजच्युत कर दिये। बौद्ध धर्म को छोड़ कर जो क्षत्रिय खान्दान ब्राह्मण धर्म स्वीकार कर लेते थे वे राजपूत नाम से अभिहित होते थे। नये ऐसे समूह भी जो प्राचीन क्षत्रिय वंशों के तो उत्तराधिकारी न थे किन्तु जिन्होंने ब्राह्मण धर्म को स्वीकार कर लिया और राजशक्ति भी प्राप्त कर ली वे भी राजपूत दल में शामिल कर दिये गये। अग्नि वंशी राजपूतों के लिए भी इतिहासकारों का ऐसा ही खयाल है। अनेक स्थानों पर बौद्ध राज्यों को नष्ट करके ब्राह्मण लोग खुद भी शासक बने। सिन्ध के साहसीराय[3] और काबुल के लल्लिय बौद्ध राजा को हटाने के बाद क्रमश चच और साम्यन्त नाम के ब्राह्मणों के अधिकार कर लेने की बात काफी प्रकाश में आचुकी है। आगे चलकर ऐसे ब्राह्मण शासक खान्दान भी राजपूत समुदाय में ही मिल गये। इस तरह से इन छ. सौ वर्षों मे बौद्ध धर्म और साम्राज्य के भवन को ढहाकर जो इमारत खडी की गई थी वह हिन्दू-धर्म और राजपूत-साम्राज्य के नाम से मशहूर हुई।

यह छ सौ वर्ष का समय भी ऐसा समय नहीं था जिसे हम भारत के लिए एकता और शांति का समय कह सके। बाहरी तौर से हिन्दू धर्म और हिन्दू समाज की रचना अवश्य इस समय में हो रही थी[4]

१. जैन धर्म कुछ समस्ती अवस्था में भारत में अभी भी शेष है। —लेखक

२ देखो हिन्दू मिडीवल इण्डिया अथवा भारतीय संस्कृति का इतिहास।

३. मौजूदा हिन्दू धर्म बौद्ध धर्म के बाद का है। जो कि कुछ अंशो में वैदिक की भी छाया है। और यह उन समस्त बौद्ध जैन विरोधी सम्प्रदायों का संगठन है जो शैव, शाक्त, वैष्णव आदि नामों से प्रकट हुए थे।

४. देखो चचनामा

किन्तु अनैक्यता, भिन्नता और विद्वेष की अग्नि अन्दर ही अन्दर काफी सुलग रही थी। आठवी सदी में सिन्ध को चन्द अरबों ने जीत लिया था। इसका एक कारण— और भारी कारण—यह भी था कि सिन्ध के जाट, लुहानें और दूसरे इसी प्रकार के लोगों ने सिन्ध के राजा दाहिर का साथ नहीं दिया। देते भी क्यों जबकि दाहिर के बाप चच ने उनके साथ केवल इस कारण से कि वे बौद्ध थे पशुओं का सा व्यवहार किया था। उनके लिये घोड़ों पर चढ़ना हथियार बांधना और सुन्दर वस्त्र पहनना तक निषद्ध करार दे दिया था।[1] मुहम्मद कासिम चन्द अरबों से सारे सिन्ध को जीत ले और पंजाब की ओर भी बढ़ जाय यह कम आश्चर्य की बात नहीं है किन्तु वास्तविकता तो यह है कि सिन्ध और पंजाब का जनसमूह उस समय एक कब था जो विदेशी आक्रान्ता का मुकाबिला करता। इस तरह यह कहा जा सकता है कि भारत इन छः सौ वर्षों मे एकता के सूत्र मे तनक भी न पिरोया जा सका था किन्तु हुआ यह था कि वह छोटे-छोटे टुकड़ों—जाति-पांति और सम्प्रदायों मे बंट गया था।

पिछले एक हजार वर्ष

गुरु नानक देव जी के जन्म से पहिले का एक हजार वर्ष का लॅबा समय भारतवर्ष के लिये निहायत ही बुरा समय कहा जा सकता है कासिम, गजनवी, गोरी ओर तैमूर जैसे आक्रान्ता भारत के इस सिरे से घुसते हैं और मध्य तक मार पीट कर लूटते खसोटते चले जाते हैं, साथ ही जब विदा होते हैं तो इस देश के लूट के माल को भी इसी देश के आदमियों के सिर पर रखवाकर ले जाते हैं। मन्दिरों को ढहा देते हैं। मूर्तियों को चूर कर देते है। मॉ, बहिन और बेटियो को भेड़ी और बकरियों की भॉति हॉक ले जाते हैं किन्तु राष्ट्र की आत्मा नहीं तिलमिलाती है उसका पुरुषत्व नहीं जागृत होता है। और न वह अपमान से जमीन में गड़ता है। यह क्या बात थी? ऐसा क्या था? आज यह बात हमारे दिमाग को परेशान कर डालती है। वास्तव में बात यह है कि उस समय राष्ट्रीयता तो थी ही कहॉ? लोग राष्ट्र का तो नाम तक न जानते थे। समस्त राष्ट्र (देश) के लिये सोचने वाला कोई न तो उस समय व्यक्ति ही था और नाहीं कोई सम्प्रदाय और पंथ। प्रत्येक व्यक्ति केवल अपनी चिन्ता करता था समिष्ट-वाद कतई नष्ट हो चुका था। अपनी चिन्ता भी केवल मुक्ति की। स्वच्छता और स्वस्थता की नहीं। शरीर को नाशवान मानकर "एक दिन मिट्टी मे मिल जाना है क्यों धोता नर कंकाल को" इस लोकोक्ति को लोग अपना सिद्धान्त बनाये हुये थे। ग्यारहवों सदी के अरब यात्री अलबरूनी ने बताया है कि लाग शरीर और घरों की शुद्धता की ओर बहुत ही कम ध्यान देते हैं। नाखूनों को बढ़ाये रहते है। साधु और पुजारी कहे जाने वाले लोग तो ओर भी मैले कुचैले रहते हैं।

उस समय के धर्म ने भारत को निराशावाद की अतुल संपति दी हुई थी। ससार उनके लिये मिथ्या और परिवार भार रूप था। हालाकि इस मिथ्या संसार में हीं वे सब प्रकार के आनन्द भोगते थे, गीता का सुन्दर उपदेश कौन किसको मारता और कौन मरता है? बिल्कुल उल्टे रूप मे माना जा रहा था। आत्म-विश्वास और स्वावलंब कतई नष्ट हो चुके थे। भयंकर से भयकर और छोटी से छोटी आपत्ति को ईश्वर का कोप समझते थे, "ईश्वर को ऐसा ही करना था, उसकी मर्जी के आगे पेश नहीं जाती है।" यह उस समय हिन्दू जाति का मोटो था। भूत, पिशाच, देवी देवता और अदृश्य पर उनका

१. देखो चचनामा।

भारी विश्वास था। मुहम्मद कासिम ने जब सिन्ध को घेरा तो युद्ध के पहले ही भविष्य वाणी कर दी गई कि लड़ाई करना व्यर्थ है अरबों से जीता न जा सकेगा। पृथ्वीराज रासो में भी इस बात की झलक है। अदृश्य वाणी पृथ्वीराज को भी सूचना देती है कि तुम्हे गौरी से हारना पड़ेगा। भागवत पुराणादि धार्मिक ग्रन्थों में भी भारत के भविष्य को पहले से ही अंकित कर दिया गया था। यह भविष्य कथन किया तो इसलिये जाता था कि भविष्य वक्ताओं का मान बढ़े किन्तु हिन्दू जाति का इन भविष्य कथनों से जो अपार घाटा होने को था उसका किसी भी भविष्य वक्ता ने ख्याल नहीं किया ? करते भी क्यों जबकि उनके दिल में समिष्टि के हित का कोई खयाल ही न था। इस तरह से यह तेतीस करोड की जन-संख्या रखने वाला भारत देश अंधविश्वासों और विभिन्न सम्प्रदायों और जातियों के कारण कपास के पौदों की तरह बँटा हुआ था। जत्थेबन्दी की तो कोई भावना देश में थी ही नहीं। अधिक से अधिक इतना कहने भर को जत्थे बन्दी थी कि हम अमुक संप्रदाय और पंथ के हैं। पंथ और सम्प्रदायों में भी लोग इसलिये थे कि वे मुक्ति दिलाने मे सहायक होंगे। परलोक का रास्ता बतावेंगे इस तरह यह परलोक का भूखा भारत इहिलोक मे पुरुषत्व हीन और "अनार्य्य जुष्टमकीर्ति कर्म जैसा जीवन बिता रहा था।

इस स्थिति का इतिहास

भारत देश मे इस प्रकार की हीन और नाकाबिले बर्दाश्त हालत पैदा क्यों हो गई थी। इस बात का कुछ इतिहास पेश करना अच्छाही होगा। क्योंकि इससे असलियतको समझनेमें भी सहायता मिलेगी।

सांकेतिक तौर पर यह हम पहले ही बता चुके हैं कि बौद्ध और जैन धर्मों ने ब्राह्मण वर्ण के खिलाफ काफी प्रचार किया था जैनों ने ब्राह्मण वर्ण ही को उड़ा दिया था। केवल—क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र—तीन ही वर्ण रक्खे थे। उन पर टैक्स भी लगा दिये थे। अतः ब्राह्मणों ने भी अपनी मान मर्यादा को कायम रखने के लिये प्रयत्नों मे कोई कसर न छोडी। एक समय आया कि बौद्ध धर्म गिरने लगा। उसके गिरने के कारणों मे उसकी आन्तरिक कमजोरी ने भी साथ दिया। आन्तरिक कमजोरियों में दो कमजोरी मुख्य हैं। एक भिक्षु और भिक्षुनिओं में संयम का बांध टूट जाना दूसरे बौद्ध राजाओं का युद्ध से घबराना, कारण कि युद्ध मे जो नर संहार होता था उससे वे अपने अहिन्सा सिद्धान्तों के कारण घबराते थे। ब्राह्मण प्रचारकों ने बौद्ध और जैन राजाओं की इन दोनों कमजोरियों से लाभ उठाया। मगध, अग वंग और कलिंग के बौद्ध राजाओं को उसके ब्राह्मण-धर्मी वजीरों ने गद्दी से उतार दिया। मालवे और मध्य भारत में यही हुआ। नन्द, मौर्य्य वज्जियन, वर्द्धन और आन्ध्र लोगों के स्थान पर पुष्यमित्र, कन्व और गुप्त आदि नये वंश प्रकट हुए। जिन्होंने बड़े बड़े अश्वमेघ यज्ञ भी किये ताकि उनके—धारण किये हुए नए धर्म का और भी अधिकाधिक प्रचार हो।

उत्तर काल में समस्त भारत में इस नवधर्म से मंडित राज-वंशों का राज्य हो गया। जो शिशोदिया, राठौर, चौहान और सोलंकी आदि नामों से प्रसिद्ध हो चुके थे। इतनी बड़ी राजनैतिक सफलता प्राप्त करने में ब्राह्मण और बौद्ध धर्मावलम्बियों मे संघर्ष भी काफी हुए। रक्त पात भी हुए किन्तु हमें उन समस्त घटनाओं पर प्रकाश नहीं डालना है। हाँ, इतना अवश्य कह देना है कि इस प्रकार की राजसत्ता प्राप्त कर लेने से ब्राह्मणों ने अपने उस खोये हुए वैभव से अधिक (पुनः) प्राप्त कर लिया जितना कि वे बौद्ध और जैनों के समय में खो चुके थे।

राजनैतिक सत्ता प्राप्त करने के प्रयत्नों के अलावा ब्राह्मणों के उन प्रयत्नो का भी कम महत्व नहीं है जो उन्होंने जैन और बौद्धों के महान् दार्शनिक ज्ञान को पीछे हटा देने के लिए किया था। जैन-बौद्ध दर्शनों मे ईश्वर, जोव और प्रकति के सम्बन्ध से अत्यन्त गहराई मे पैठ कर जो सिद्धान्त स्थिर किए गये है उनके स्थान पर उतने ही उज्वल दार्शनिक खयालात बिना पेश किए जैन और बौद्ध पडितों को परास्त नहीं किया जा सकता था। उत्तर बौद्ध-काल मे इस ओर किया गया ब्राह्मणों का प्रयत्न भारत ही नहीं अपितु ससार के लिए एक अलभ्य प्रयत्न है। यह प्रयत्न पट-दर्शन के रूप मे आज ससार के सामने है। आधुनिक भारत के समस्त सम्प्रदायों मे जो भी सार-पदार्थ है वह इन पट-दर्शनों की छाया प्रतिच्छाया है।

किन्तु, दर्शनों के ऊंचे ज्ञान सर्व साधारण की समझने की चीज नहीं होते है, इसलिये ब्राह्मणो का यह महान ज्ञान भी काशी और कश्मीर के पंडितों तक—सो भी केवल वाद-विवाद की वस्तु के रूप मे—रह गया। जैन और बौद्ध धर्मों के भी समस्त अनुयायी उस उच्च ज्ञान को नहीं जानते थे जो उनके दर्शनों मे है। प्रायः समस्त बौद्ध लोग अपने धर्म मे आस्था प्रकट करने के लिए महात्मा बुद्ध की चरण-प्रतिमाओ की पूजा किया करते थे। जैन लोग भी स्वामी पार्श्वनाथ और महावीर जी की सुसज्जित एवं नग्न मूर्तियों को पूज कर अपने अटल-धर्मप्रेम का परिचय देते थे। इस तरह से ये दोनो धर्म सामूहिक रूप से पौत्तलिक (मूर्ति पूजक) धर्म थे। इनकी प्रति स्पर्द्धा से खड़े किए गये नवीन हिन्दू धर्म मे भी आगे चल कर मूर्ति पूजा को स्थान मिल गया। शकराचार्य और कुमारिल भट्ट के बाद जो संत इस धर्म को आगे बढ़ाने वाले हुए उन्होंने अपने २ इष्ट देवो की पूजा के लिए लाकर खड़ा कर दिया।

वेदों मे परमात्मा को ब्रह्मा (सृजन कर्ता), विष्णु (पालन कर्ता) और शिव (कल्याण कर्ता) के नामों से याद किया गया है। उसके इन त्रिरूपों के आधार पर उनकी मूर्तियां मन्दिर और मठों में स्थापित कर दी गई। प्रकृति के उपासकों ने माया, महामाया और इस प्रकार जगदम्बा आदि की मूर्तिया कायम कर लीं। मूर्ति पूजा का यह पहला रूप था जो बौद्धों के प्रतिरोध मे नवीन हिन्दू समाज ने ग्रहण किया।

जैन लोगों मे पूर्व-भव (पुराने जन्म)की बाते बताने का बड़ा रिवाज था। कह नहीं सकते भारत मे यह रिवाज वे कहां से लाए थे क्योंकि भारत के वैदिक, स्मार्तक और औपनिषधक किसी भी समय मे यह-पूर्व भव बताने की प्रथा न थी। इस तरह से अपरिपक्क मस्तिष्क के लोगो पर बड़ा असर पडता था। ब्राह्मण वर्ग द्वारा निर्मित नये हिन्दू धर्म मे भी कुछ हेर-फेर के साथ इस रिवाज को ग्रहण कर लिया। हाथ की रेखाओं को देख कर भूत भविष्य को बाते बताने की कला ईजाद कर ली गई जिसे सामुद्रिक शास्त्र का नाम दिया गया। कहा गया कि महेश से यह विद्या समुद्र ने सीखी थी। महेश के मानी लोग उस शिवजी के समझते है जो इतिहासों मे असुरों के साथ लडता हुआ अथवा उन्हे वर देता हुआ वर्णन किया गया है। वास्तव मे मौर्यो से पहले नन्द काल मे महेश एक प्रसिद्ध वैयाकरण गुजरा है समुद्र नाम का पंडित उसका शिष्य था। पाणिनी से कुछ ही पहले महेश वैयाकरण हुआ है। इसके साथ ही कुग्रहों और कुमुहुर्तों के अनिष्ट को भी गणित ज्योतिष मे शामिल कर लिया। भविष्य जानने के लिये स्वभावत उत्कंठा होती है।

शरीर शास्त्र के अनुसार यह बात आश्चर्य की नहीं कि नाक के दो नथुनों से बारी-बारी से हवा का आवागमन होता है। शरीर के भीतर प्रवाहित होने वाली वायु का रक्त गति से सम्बन्ध होने के कारण उसका शरीर और मन पर भी सुस्ती फुर्ती आलस्य और नींद एव उत्साह अनुत्साह के रूप मे असर पड़ता

है। दॉया स्वर चलता हो तब स्फूर्तिवान और बॉया चलता हो तो सुस्ती दायक गति होने के कारण कार्यों मे कुछ लोग इसका खयाल रखते थे आगे इसी को बढ़ा कर सगुन की प्रणाली डाल ली गई।

इस तरह से हिन्दू समाज ब्राह्मणों के दिये हुए उच्च दार्शनिक ज्ञान से तो निरन्तर वचित होता गया और वह प्रत्येक बुद्धि हीनता और अकर्मण्यता के जाल मे फंसता गया। मूर्ति पूजा यहा तक वढी कि शिव, विष्णु और ब्रह्मा का स्थान राम, कृष्ण ने लिया और फिर चामुण्ड, भैरवों, चडी, भुमिया आदि के रूप में आ गई। आगे की सदियों मे तो हालत यह हुई कि प्रत्येक गाव मे एक चामुण्ड का एक भैरों का एक महादेव का एक रामकृष्ण का और एक हनुमान का मठ वनाना जरूरी हो गया। चामुण्ड को गाव की रोग योग से रक्षा करने वाली, भैरों और हनुमान को भूत जिन्नों से वचाने वाल,महादेव को सम्पत्ति देने वाला और रामकृष्ण को वैकुण्ठ धाम पहुँचाने वाला की दृढ़ कल्पना हृदयों मे जमा ली गई चेचक के निकलने पर देवी माता का नाराज हो जाना और कगाल होने पर शिवजी का कुपित होना माना जाने लगा था। इन मठों मे जो लोग नियुक्त रहते थे वे जतर, मंतर, जप, जाप, और अनुष्ठान से रोगों को दूर करने और देवताओं को प्रसन्न करने का काम करते थे। लोग यहाँ तक विश्वास करने लग गये थे कि शत्रु के आयु, वल, कुटम्व और धन का नाश भी इन अनुष्टानों और जप, तपों से किया कराया जा सकता है। कौन नहीं जानता कि महमूद गजनवी के सोमनाथ को चूर-चूर कर देने तक यही कहा गया था कि वे स्वत ही यवनों का नाश कर देंगे। लडने की क्या आवश्यकता है। शिवाजी जैसा वहादुर और चतुर आदमी भी लड़ने से पहले देवी के मदिर में घुटने टेकने जाया करता था। इस तरह का अन्ध विश्वास पूरी गहराई के साथ ईसा की आरभिक सदियों से गुरु नानक जी के जन्म काल तक फैल चुका था।

संतों के हाथ वागडोर

वौद्ध और जैन धर्मों का मुकाविला और विनाश केवल ब्राह्मण अथवा हिन्दू राजाओं ही ने कर दिया हो, ऐसी बात नहीं है। इसमे अनेकों उन गृह त्यागी साधु सतों का भी हाथ था जो जैन यतिओं अथवा बौद्धभिक्षुओं की भॉति घरबार और समस्त सुखों को छोड कर त्यागी होचुके थे, स्वामी शंकराचार्य जी उन वौद्ध भिक्षुओं की जानकारी भी प्राप्त कर चुके थे जो विना ही ज्ञान और योग्यता के भिक्षु वन जाते थे और अपनी युवा अवस्था के झकोरों में सयम करने मे भी विफल सिद्ध होते थे। अत उन्होंने साधू वनने के कुछ कडे नियम व प्रतिवन्ध रक्खे। स्त्रियों के साध्वी वनने के रिवाज को तो उन्होंने कतई उठा दिया था। साधु वनने का अधिकार भी उन्होंने केवल द्विजों के लिये ही रक्खा। शायद वे समझते होंगे कि द्विज जातिया तो शिक्षित होना अपना अटल नियम बनाये रक्खेगी किन्तु सखेद कहना पड़ता है कि ऐसा हुआ नहीं, द्विजों में भी आगे के समय में तो अधिकाश समूह निरक्षर ही रहता रहा। और इन द्विजों मे से साधु सत वनने वाले भी अधिकाश निरक्षर ही रहते थे। समाज के पास इन सतों का सम्पर्क ब्राह्मण पुरोहितों की अपेक्षा अधिक था और ब्राह्मण वैसे भी अपनी अनन्तकाल से चली आई आदत के अनुसार यजमानी के काम मे ही लगे रहते थे। उपदेश का प्राय सारा भार इन साधु सतों पर ही था। परिव्राजक और स्थानिक इनके दो मुख्य समूह थे। इस प्रकार जनता की मनोवृत्ति के सचालन की वागडोर प्राय इन साधु सतों के हाथ आ गई थी। इनमें पढ़े लिखे और निरक्षर—जैसा कि ऊपर कह चुके हैं दोनों प्रकार के होते थे और अधिकाश में तो अनपढ़ ही होते थे। फिर भला समाज का कहां तक

कल्याण इन लोगों के हाथों हो सकता था। श्रद्धा के कारण जनता से इन्हे पैसे भी काफी मिलते थे अत भाग, गांजा और चरस के दम लगाने का दुर्व्यसन इन लोगों मे घर कर गया। आगे इन लोगों ने अखाड़े कायम कर लिये। भिक्षु संघ की तरह नागा लोगो के अखाड़ों की संख्या भी बढ़ने लगी। पौत्तलिक धर्म को इन लोगों ने ब्राह्मणों की अपेक्षा कहीं बहुत ज्यादा उत्तेजन दिया।

किन्तु यह नहीं कहा जा सकता कि इन साधु संतो मे से सब ही एक से निकले, कुछ तो इतने ऊँचे चरित्र और खयालात के थे जो अपना नाम धार्मिक इतिहास मे अमर कर गये है। इन्हीं प्रसिद्ध सतो मे से कुछेक के मन्तव्य और कार्य्यों का यहां हम दिग्दर्शन करना चाहते है। किन्तु उससे पहले हम यह भी कहना चाहते है कि स्वामी शंकराचार्य्य की साधु होने सम्बन्धी जो प्रणाली थी उनमे गुरु नानक जी ने एक ऐसा संशोधन किया जिसके कारण एक परिवर्तनकारी रुख इस प्रथा में हो गया। उन्होंने अपनी विलक्षण और भविष्य निर्धारणी मेधा से सोचकर स्पष्ट ऐलान किया कि यह कोई आवश्यक बात नहीं है कि परमेश्वर अथवा सद्‌गति घर को छोड़ देने ही से प्राप्त हो सकेंगे। महात्मा कबीर भी इसी सिद्धान्त के संत थे। पूरा विवेचन तो इस प्रसग पर आगे के पृष्ठों मे करेंगे। यहा तो केवल उन थोड़े से संतों के कार्यो पर प्रकाश डालते है जिनका कि हिन्दू समाज के अग प्रत्यंग पर एक बड़ा भारी प्रभाव पड़ा था और जिसके कारण उसे सुदिन और कुदिन भी देखने पड़े थे।

शकराचार्य्य जी के दस शिष्य थे वे दशनाम से मशहूर है। इनमे से चार तो मठाधीश हुए। इन मठों मे शिव मूर्ति की उपासना की जाती है क्योंकि इन शिष्यों का खयाल था कि स्वामी शंकराचार्य जी साक्षात शिवजी का अवतार थे। शेष छ: ने नास्तिक पंथ का अनुकरण किया। यह घटना दसवीं शताब्दी की है। कहा जाता है रामानुज शंकराचार्य जी के भानजे और शिष्य थे उन्होंने शंकराचार्य जी से कहा था कि आपका पंथ मुझे नहीं रुचता उसमे कुछ सुधार होना चाहिए। स्वामी शंकराचार्य जी के बाद स्वामी रामानुज जी ने अपना पंथ अलग से चलाया। इस पंथ मे प्राय ब्राह्मण ही लिये जाते थे। उनके आचार सम्बन्धी कुछ कठोर नियमों का भी निर्माण किया। उपासना शिवजी की वजाय विष्णु की रक्खी। तिलक, माला छाप का भिन्न प्रकार के साम्प्रदायिक चिह्न नियत किए। रामानुज कहते थे कि निराकार ईश्वर का चिन्तन सर्व साधारण के लिए असम्भव है। अत. उसका रूप और स्वभाव निश्चित करना आवश्यक है। अत. उन्होंने विष्णु की कल्पना श्वेत वस्त्रधारी और श्वेत भोजन वादी के रूप मे पेश की। इस सम्प्रदाय के लोग भी श्वेत वस्त्रों को ही अधिक पसंद करने लगे और विष्णु मूर्तियों के सामने भोग भी सफेद—खीर, दही, मिश्री और पेड़े आदि पदार्थों का ही लगने लगा।

रामानुज

रामानुज ने विष्णु पूजा के अलावा अपने सम्प्रदाय मे गुरु पूजा भी प्रचलित की। तन, मन, धन सब गुरु चरणों पर अर्पण की प्रवृत्ति शनै. शनै पराकाष्ठा पर उनके सम्प्रदाय मे पहुँच गई। इसका फल यह हुआ कि लोगों की स्वतन्त्रतापूर्वक सोचने की बुद्धि कतई तौर से नष्ट हो गई। कर्मवाद की किलासफी पीछे पड़ गई। अन्ध विश्वास घोरतम रूप से फैल गया। स्वामी रामानुज का यह समय ११-१२ वीं ई० सदी का है।

स्वामी रामानुजचार्य का यह मत वैष्णव मत के नाम से मशहूर हुआ। इसे प्रचारित करने के लिये आपने शंकराचार्य के अद्वैतवाद और शैवों के मायावाद के विरुद्ध काफी प्रचार किया था। उन्होंने अपने ही समय मे ७०० विष्णु मन्दिर वनवा दिये थे।

ईश्वर जीव और प्रकृति को नित्य मानते हुए भी आपने ईश्वर के अवतार लेने की कल्प रक्खी थी। दुष्टों के संहार और धर्म की स्थापना के लिए परमात्मा शरीर धारण करता है। सम्भव है कल्पना से स्वामी रामानुज शैवों के मुकाबिले में अपना सम्प्रदाय बढ़ाने में सरलता से सफल हुए हों कि सर्व साधारण को इस सिद्धान्त के अपनाने से हानि भी हुई। दुष्टों के स्वत दंड देने की प्रवृत्ति उ अन्दर से नष्ट हो गई और इसका फल यह हुआ कि जब विदेशी आक्रान्ताओं ने बुरे से बुरे कृत्य देश में किये तो लोग इस आशा से बर्दाश्त करते रहे कि इन दुष्टों को परमात्मा स्वयं भुगत लेंगे।

छूत,छात और आचार विचार से रहने का सिद्धान्त व्यक्तिगत अच्छा हो सकता है। कि समाज के टुकडे करने और नीच ऊँच के भाव पैदा करने में भी स्वामी रामानुज जी के इस सिद्धान्त कुछ कम काम नहीं किया। दक्षिण में तो जहां कि स्वामी रामानुज पैदा हुए थे इस सिद्धान्त का इत घातक प्रभाव पड़ा कि अछूत लोगों की छाया पड़ने से ही लोग अपने को अपवित्र मानने लगे। व अब तक तालाबों से इतनी दूर होकर अछूतों को गुजरना पड़ता है कि उनकी छाया तालाब तक पहुँच जाय।

रामानुज के बाद दूसरा नाम जो धार्मिक जगत में आता है वह स्वामी रामनन्दजी का है। आप 'श्री' या लक्ष्मी सम्प्रदाय की स्थापना की और आगे चलकर यही विष्णु लक्ष्मी अथवा राम सीता या कृष्ण राधा की पूजा के रूप में परिवर्तित हो गई। कहा जाता है स्वामी रामानन्द जी ने सभी जातियों को वैष्णव होने का रास्ता खोल दिया था। इस तरह से प्राय. सारे ही भारत में वैष्णव मत फैलने में समर्थ हुआ। आपके पीछे माधवाचार्य, वल्लभाचार्य और निम्बकाचार्य ने कुछ ही हेर फेर के साथ इस पंथ को और भी उत्तेजन दिया। रामानन्द जी मूर्ति पूजा के पक्षपाती थे किन्तु माधव, वल्लभ और निम्बार्क ने मूर्ति पूजा का बहुत ज्यादा प्रचार किया।

रामानंद

विष्णु के स्थान पर रामचन्द्र जी की पूजा का प्रचार स्वामी रामानंद जी के ही समय से आरंभ हुआ था। रामचन्द्र और सीता जी क्रमशः विष्णु और लक्ष्मी का अवतार हैं यह कल्पना स्वामी रामानंद जी के समय मे आरम्भ हुई और आगे की सदियों में तो इस प्रकार से लोगों के दिमाग मे घर कर गई कि यह ज्ञात होने लगा मानो कल्पान्तर से यह बात सही है।

शंकर मत रामानुज और रामानन्द प्रभृत्ति संतों के उपदेशों और सिद्धान्तों से मिट गया हो ऐसी बात नहीं। हो यह रहा था कि दिन पर दिन नये सम्प्रदाय बढ़ते जा रहे थे। दस नाम के स्थान पर शंकराचार्य के अनुयाइयों के ही लगभग १०० फिरके बन चुके थे कोई उनके अद्वैतवाद को लेकर अलग पथ चला रहा था तो कोई योग मार्ग को लेकर। पंजाब मे प्रकट होने वाले गुरु गोरखनाथ जी ने योग धर्म का ही प्रचार किया। रामानुजी लोगों के जैसे संख, चक्र, गदा पद्म के चिह्न थे गोरखनाथी लोग गले मे रुद्राक्ष की माला और कानों मे भारी-भारी कुंडल पहनते थे। वस्त्र श्वेत और पीत की अपेक्षा गेरुए पहनते थे। यह गोरखनाथी संतों की पहचान थी। पंजाब प्रान्त में इस मत का खूब प्रचार हुआ। वास्तव में गोरखनाथ जी का पंथ सिद्धमत और शिव मत का एक मिश्रित रूपान्तर था। चूंकि इस पंथ में स्त्रियों को भी गुरु मन्त्र दिया जाता था अत. शिव मूर्ति के साथ पार्वती जी की भी पूजा और उपासना आरंभ हो गई। भारत में जोगियों की एक बड़ी भारी जाति गोरखनाथी साधुओं का विकृत रूप है।

गोरखनाथ

मनुष्यता के अधिक नजदीक ले जाने वाला और प्रत्येक मनुष्य के लिए कल्याण के भाव रखने वाला इन सतो मे महात्मा कबीर है। कहा तो यह जाता है कि वे स्वामी रामानन्द जी के शिष्य थे किन्तु उन्होंने जो भी कुछ कहा है वह उनका निज का ज्ञान और अन्तर आत्मा की आवाज थी। उन्होंने पौतलिक धर्म के विरुद्ध और अन्य विश्वासों के विरोध मे स्पष्ट आवाज उठाई थी। वे एक धर्म प्रचारक की अपेक्षा समाज सुधारक अधिक थे। द्विज लोग उनसे सदैव असंतुष्ट रहे। हीन जातियो ने उनके उपदेशों को वडी तत्परता से ग्रहण किया। ईश्वर के सम्बन्ध मे वे अपने विचार अलंकारिक भापा मे प्रकट करते थे। वे बहुत उदार थे किन्तु व्यक्ति निर्माण के लिए वे भी दूसरे संतो की तरह चुप ही रहे।

कबीर

बंगाल मे चैतन्य स्वामी ने वही किया जो दक्षिण मे रामानुज और मध्य भारत मे रामानन्द वल्लभ प्रभृति संतों ने किया था। आपने राधा कृष्ण की पूजा का प्रचलन किया। आप गा, गा, कर और नाच कर प्रभु भक्ति का प्रचार करते थे। सारा वगाल आपके रग मे रगा हुआ था। शक्ति (दुर्गे) पूजा का केन्द्र वगाल इनके प्रचार से शाक्त और वैष्णव दोनों मतों के रंग मे अद्भुत प्रकार मे रंग गया। इसी प्रकार का ढग मध्य भारत मे वल्लभाचार्य के प्रचार से हुआ। यहा भी लोग मन्दिरों मे नाच कूद कर हरि कीर्तन करने लग गये। मन्दिरों मे देवता की राधा रूप से अर्चना करने का रिवाज भी चल पडा। पुजारियों की भाति ही मंदिरों मे पुजारिनों का दल भी बढ़ने लगा। दक्षिण मे देवदासियाँ और व्रज मे सखियाँ मन्दिरों की शोभा बढ़ाने लगी। यह भक्ति का प्रेम यहाँ तक वढा कि भगवान कृष्ण ही सबके सच्चे पति माने जाने लगे। विवाहित पतियों के लिए स्त्रियाँ यह कहने लग गई आप तो मेरे शरीर के पति हैं आत्मा के पति आप नहीं। स्त्री पुरुष के नैसर्गिक प्रेम को इस से वडा धक्का लगा। तीर्थवासी प्रायः सभी स्त्रियाँ अपने सत गुरुओं की सेवा मे अधिकांश समय विताने लगीं। कुछ ने शादियां करना भी बन्द कर दिया वह अपने को भगवान कृष्ण की पत्नी मानने लगी। तन, मन, कृष्ण के अर्पण के वाद स्वार्थी साधु अपने लिए कृष्ण का प्रतिबिम्ब बताने लगे। हद यहा तक न रही कुछ पुरुष भी अपने को राधा ललिता और चन्द्रकला समझने लगे। इस तरह व्रज मे सखी सम्प्रदाय की नींव पड़ी।

चैतन्य

भारत के संतों की वरावर ही मीरा का भी ऊँचा स्थान है उसके भजन और पद हृदयों मे भक्ति का संचार किये वगैर नहीं रह सकते। राना कुम्भा की यह राजमहिषी भी भक्ति आवेश मे अपने को कृष्ण की पत्नी का भाव रखती थी। उसने स्पष्ट कहा था "कोई कहो कुलटा कुलीन कोई कहौ कलंकिनी किन्तु मेरे तो गिरधर गुपाल और ना कोई"। मीरा के उज्ज्वल चरित्र और कठिन तप के लिए हमारे हृदय अभिमान से भर जाते हैं किन्तु यह रोग सारे देश मे गलत तरीके पर फैल रहा था और यही तत्कालीन समाज के लिए गर्त की ओर ले जाने वाला भी था।

मीरा

राम और कृष्ण की सपत्नीक पूजा को स्थायित्व और अटल महत्व देने वाले दो महात्मा भारत मे बहुत ऊंचे दर्जे के हुए है। एक सूरदास जी और दूसरे तुलसीदास जी। ये दोनों जहाँ स्वयं आदर्श थे वहाँ इनके कार्य भी हिन्दू समाज को ऊँचा उठाने वाले सिद्ध हुए हैं। यद्यपि सिख गुरुओं की भांति इन्होंने कोई रणवीरों का दल खड़ा नहीं किया फिर भी यह हिन्दू जाति को रक्षा का अभेद कवच पहना गए। भक्ति के साथ ही चरित निर्माण की ओर समाज

सूर और तुलसीदास

एवं धर्म संशोधन की इनकी कार्य शैलियाँ बहुत उपयोगी सिद्ध हुईं। भारत के हजारों सम्प्रदायों को एक करने के लिए तुलसीदास का प्रयत्न सर्वोत्कृष्ट प्रयत्न है। उनका रामायण. वैष्णव. शैव, शाक्त. द्वैतवादी और अद्वैतवादी सबका साझे का ग्रन्थ समझा जा सकता है। उसमें जाति देश और समाज निर्माण के लिए सब कुछ है। "सब से कठिन जाति अपमाना" की आवाज एक हजार के लम्बे अर्से के बाद महात्मा तुलसीदास के ही ग्रन्थ मे दिखाई देती है। भक्ति के साथ वीरता साहस धैर्य. उत्साह और पुरुषत्व की शिक्षा केवल तुलसी दास की रामायण मे है। कृष्ण और देवताओं की पत्नी बनने की रुचि रखने वाली स्त्रियों केलिए तुलसीदास ने स्पष्ट कहा "एके व्रत एके दृढ़ नेमा। तन मन सन पति चरनन प्रेमा उन्हे वैरागिन बनने की अपेक्षा सद्गृहस्थिनी बनने के लिए मोडने वाले तुलसीदास ही थे।

इस प्रकार सन् ६०० से लेकर गुरु नानक जी के समय तक और भी अनेक संत हुए हैं। जिन्होंने अपने-अपने सिद्धान्तों के अनुसार अनेक सम्प्रदाय स्थापित किये। जिस समय गुरु नानक जी अवतरित हुए थे। उस समय तक भारत का हिन्दू समाज अनेक सम्प्रदायों मे बंट गया था दक्षिण भारत, मध्य भारत और उत्तर भारत में ऐसे हजारों संत समुदाय थे।

और भी संत

इन सम्प्रदायों का देश और समाज पर जैसा असर पड़ा था वह पीछे के वर्णन से भली प्रकार समझ मे आ सकता है। फिर भी यहा हम बता देना चाहते है कि इन सम्प्रदायों ने जैन. बौद्ध धर्मों से उत्पन्न हुई नास्तिकता को भले ही दूर कर दिया हो किन्तु ईश्वर के सम्बन्ध मे न तो सही जानकारी ही लोगों को हुई थी और न उनकी भक्ति का ही तरीका आदर्श था। हाँ, सारा देश मूर्ति पूजक हो गया था। सो भी किसी एक देवता की मूर्ति का नहीं। सैकड़ों और हजारों देवताओं की मूर्तियों पूजी जाती थीं। इस तरह से एकेश्वरवाद नष्ट हो चुका था और बहु देव पूजा प्रचलित हो गई थी। इन मूर्ति देवों के चमत्कार और करामातों की विचित्र कहानियाँ भी पुजारी लोग सेवकों को सुनाते थे। इस तरह से सर्व साधारण अन्ध विश्वासी. पराश्रयी और कुण्ठित बुद्धि हो रहा था। रोग. शोक और दुःख सब का आना जाना (आम लोग) इन देवताओं की प्रसन्नता अथवा कोप का फल समझते थे। मारण, उच्चाटन. जन्तर-मंतर में अधिक से अधिक शक्ति का विश्वास होने लगा था। व्यक्ति और समाज का तेज. ओज बुद्धि, साहस. शौर्य्य और आत्म चिन्तन तथा पौरुष नष्ट हो चुका था। पारस्परिक सहयोग. साहचर्य्य, समाज मे नाम निशान को भी शेष न रह गये थे। सम्प्रदाय भेद श्रेणी भेद और जाति भेद ने सारे हिन्दू समाज को छिन्न-भिन्न कर रक्खा था यद्यपि देश में उस समय ३० करोड़ मनुष्य बसते थे किन्तु समान उद्देश्य और समान महत्वाकांक्षाओं वाले तीस लाख तो क्या तीस हजार भी न थे।

प्रभाव

किसी भी कार्य को वे अपने बल और बुद्धि के भरोसे पर न तो आरम्भ ही करते थे और न उसे पूरा कर लेने की अपने मे सामर्थ्य ही समझते थे। व्यापार के लिए 'बाहर जाने के लिए' खेत मे बीज बोने के लिए. बच्चों की शादी करने के लिए प्राय सब ही कामों के लिए सगुन दिखाते थे या मुहूर्त पूछते थे। पहलवानों को यद्यपि कुश्ती अपने ही बल पर लडनी पडती थी किन्तु उसे जीतने का विश्वास रखना पडता था भैरों बाबा की मेहरबानी पर। दुकानदार को सौदा दुकान से ही बेचना पडता था किन्तु विश्वास उसका यही रहता था कि लाभ महादेव की कृपा से ही होगा।

बात यह न थी कि समाज की बागडोर इस समय ब्राह्मणों या साधु संतो के ही हाथ मे हो। अव्वल तो इनमे भी साक्षर और विद्वान लोगो का एक दम घाटा था किन्तु यहाँ पर तो परले सिरे के मूर्ख और ढोंगी हिन्दू जाति के नेता बने बैठे थे। ज्ञान-विज्ञान और बुद्धि का तो नाम निशान भी शेष न रहा था। यह उस समय के भारत की सामाजिक और धार्मिक अवस्था है जब कि निरंकारी गुरु नानकदेव पैदा हुए थे और यह अवस्था सौ पचास वर्ष से पैदा नहीं हुई थी किन्तु यह अवस्था पूरे एक हजार वर्ष से थी। ईसा की छटी सदी से लेकर सोलहवीं सदी तक ज्यों-ज्यो समय बीतता गया हिन्दू जाति की अवस्था भयावह होती गई। इस बीच में यदि कोई प्रयत्न कुछ उलट फेर करने का भी हुआ तो वह केवल ईश्वर सम्बन्धी विश्वासो और भक्ति के तरीकों मे हेर फेर करने का हुआ। सामाजिक और बौद्धिक विकास को सहायता देने वाला कोई भी प्रयत्न नहीं हुआ।

इस शोचनीय और हृदय द्रावक सामाजिक पतन से भारत देश को जो अपमान सहना पड़ा एव जो हानि उठानी पडी, उसका भी थोड़ा सा जिक्र कर देना हम उचित समझते है।

भारतीय समाज के इस प्रकार हत-प्रभ हो जाने से विदेशी अक्रान्ताओं ने खूब लाभ उठाया। 'सूनी भेड प्रयाग नहाती है' लोकोक्ति के अनुसार स्वच्छन्दता और निर्भीकता के साथ उन्होंने भारत पर आक्रमण किये और इस देश की सपत्ति को लूटा। अकेले महमूद गजनवी ने ही १२ बार हमले किये और प्रत्येक बार असख्य सम्पत्ति यहां से ले गया। इससे पहले और बाद के सभी आक्रमणकारियों ने हिन्दुस्तान को इसी निर्दयता से लूटा था। इस लूट खसोट और नृशंसता का थोडा सा इतिहास देना हम जरूरी समझते है।

सन ६१२ ई० मे मुहम्मदबिन कासिम ने जो कि कुल २० वर्ष का एक अलहड नौजवान था केवल छ हजार अरब सिपाहियों के साथ भारत पर चढ़ाई की। बिलोचिस्तान के रास्ते से सिन्ध मे घुस गया। सिन्ध के दाहिर राजा ने दस हजार सवार और बीस हजार पैदलों से उसका मुकाबिला किया। किन्तु हार गया। इस हार के कई कारण थे और वे सभी कारण उस समय की सामाजिक स्थिति से सम्बन्ध रखते हैं। दाहिर एक अय्याशी राजा था। सेना के लोगों की युद्ध शिक्षा का कोई प्रबध न था। बौद्ध भिक्षुओं ने घूम-घूम कर भविष्यवाणी कर दी थी कि दाहिर हारेगा। लड़ाई के समय एक ब्राह्मण ज्योतिषी ने कासिम को बताया कि यदि अमुक मंदिर का झडा गिरा दिया जाय तो सारी सेना भाग जायेगी क्योंकि हिन्दू सेना समझेगी देवता कुपित हो गया है। कासिम ने ऐसा ही किया। दाहिर की सेना भाग गई और वह युद्ध मे मारा गया। उस ब्राह्मण ने लालच वश गुप्त खजाने का पता भी दे दिया। इस खजाने की लूट से कासिम को १७२०० मन सोने की मूर्तियाँ प्राप्त की इनमे एक मूर्ति तो ३० मन की थी। कई ऊँटों पर लादने लायक हीरा, पन्ना और मोती मानिक उसके हाथ लगे। यह सारा माल कासिम ने मय दाहिर की राजकुमारियों के अरब के खलीफा की सेवा मे भेज दिया। इसके बाद उसने नगरों और गावों का लूटना शुरू किया और बराबर उस समय तक जुलम करता रहा जब तक कि उसे अरब वापिस न बुला लिया गया। अपने समय मे वह हजारों हिन्दुओं को मुसलमान बना गया और हजारों को मौत के घाट उतार गया। कासिम के बाद कोई बड़ा हमला लगभग २०० वर्ष तक नहीं हुआ किन्तु इसके यह माने नहीं है कि भारत की सभ्यता और जातियता को बाहरी लोगों से हानि नहीं पहुँच रही थी। दसवीं सदी मे मलाबार का एक हिन्दू राजा अन्धविश्वास के कारण मुसलमान हो गया। उसने रात्रि को स्वप्न देखा कि चन्द्रमा के दो टुकडे हो गए है। एक मुसलमान सौदागर ने जो कि लका से लौटा था इस स्वप्न का

अर्थ उसे बताया कि ईश्वर ने अरब में एक ऐसी विभूति पैदा की है जो संसार के लिये दूसरा चन्द्रमा साबित होगी। राजा मक्के मदीने की यात्रा को चला गया और मुसलमान हो गया। अरब से एक सरदार ने आकर उसके राज्य में अनेकों मस्जिद बनवाईं। गुजरात और दक्षिण में सैकड़ों अरब सौदागर और फकीर प्रचार कार्य के लिए आकर बस रहे थे और बराबर अपने धर्म का प्रचार करते थे यहीं की स्त्रियों से अपने घर बसाते थे किन्तु हिन्दू समाज को इसका कुछ भी रंज न था।

ग्यारहवी सदी के आरम्भ में महमूद गजनवी ने आक्रमण किया और बराबर २० वर्ष तक आक्रमण करता ही रहा। महमूद के इस प्रकार के धर्म जोश से अरब का खलीफा बहुत प्रसन्न हुआ और उसने महमूद को 'अमीनुल मिल्लत' और 'अमीनुल दौलत' का खिताब दिया। महमूद ने आजीवन भारत पर चढ़ाई करने और इस्लाम धर्म का प्रचार करने की प्रतिज्ञा करली थी[1] इस जोश को पूरा करने में उसने कोई कसर नहीं छोड़ी "आइने तवारीखनुमा" के लेखक ने लिखा है कि महमूद ने लगभग दस हजार मन्दिर बर्बाद कर दिये।[2] तारीख फरीस्ता आदि के आधार पर कहा जाता है कि लाहौर के राजा जैपाल और आनन्द पाल ने आरम्भ के हमलों में महमूद से मुकाबिला किया था और अफगानिस्तान पर भी चढ़ाई की थी किन्तु वह भारी फौज रखते हुए भी हार गया। इसका कारण वही लड़ाई की बेतरतीबी और देश के कुछ लोगों की कि जयचन्दी प्रवृत्ति ही है। देश में देशभक्ति और जातीयता तो थी ही नहीं, इसलिए लोग अपने निज के स्वार्थ के लिए बड़े से बड़ा अपराध करने में भी नहीं झिझकते थे। महमूद से हार जाने के कारण राजा जयपाल अग्नि में जलकर प्रायश्चित करता है यह अन्ध विश्वास नहीं तो क्या है। आगे भी जयपाल के लड़के आनन्द पाल को भी सदैव उसके ब्राह्मण मंत्रियों ने गलत ही सलाह दीं। "फरिस्ते" से पता चलता है कि महमूद को भी भारत में किसी ने तंग किया था तो वे जाट थे उन्होंने उसे जबकि वह मथुरा का बहुत सा माल लूट कर ले जा रहा था सिन्ध के छोर पर लूट लिया। महमूद बहुत बिगड़ा और उसने दुबारा पूरी तैयारी के साथ जाट और गक्खरों को दंड देने के लिए चढ़ाई की।

भारत की लूट जो महमूद ने की उसके कुछ आंकड़े इतिहासकार इस प्रकार बयान करते हैं। नगर कोट के मन्दिर की लूट में उसे ७४० मन सोना ७०० मन चांदी सोने के बर्तन २००० मन चांदी और २० मन जवाहिरात प्राप्त हुए। मथुरा की लूट से १०० ऊँट चांदी के मूर्तियों और धातुओं के भरवाये गये ५ मूर्तिया निरे सोने की हाथ लगीं जिनमें से एक का वजन चार मन का था। ५३०० आदमियों को जिनमें मर्द औरत और बच्चे थे भेड़ बकरियों की भाँति अपने देश को हाक लेगया। "फरिस्ता" लिखता है कि थानेश्वर की अतुल लूट के साथ इतने आदमी यहा से गुलाम बनाकर गजनी लेजाये गये कि सारा गजनी हिन्दुओं से पट गया। "मुहमद अल-उटबी ने लिखा है कि महमूद मथुरा से इतने हिन्दू पकड़ कर ले गया कि फी आदमी २॥) २॥) देकर बेचा गया। यह सब गुलाम बना लिए गये। सबसे बड़ी लूट सोमनाथ के मन्दिर की बताई जाती है। इस मन्दिर में ५३ खंभे थे। जो बहुमूल्य रत्नों से जड़े हुए थे। ४० मन भारी सोने की जंजीर में घंटा लटकता रहता था। पाच गज ऊंची शिवजी की स्वर्ण मूर्ति थी। महमूद ने यह सब लूट लिया। गजनी जाकर मूर्ति का एक टुकड़ा मस्जिद की सीढ़ियों में और

१ मुख्तसिर तवारीख हिन्द सन १८८७ लाहौर सफा ४८

२ सफा ८ आइने तारीख नुमा १८८१

एक अपने महल की सीढ़ियों में लगवा दिया। मन्दिर में जो हजारों दासियाँ पुजारियों के एश व आराम के लिए थीं उन्हें पकड़कर अपने देश को ले गया।

सोमनाथ गजनी से बहुत दूर है। उस तक पहुँचने के लिये अनेकों पहाड़ और नदियों को पार करना पड़ता था। सबसे भयकर सिन्ध का रेगिस्तान था जहाँ दस-दस कोस तक पानी का अभाव था। इतनी दूर तक धावे मारने के लिए महमूद के साहस पर आश्चर्य किया जा सकता है किन्तु उससे भी कहीं अधिक आश्चर्य हिन्दू जाति की दशा पर होता है कि चार छः छोटे मोटे राजाओं के सिवा किसी ने उसका मुकाबिला नहीं किया। मन्दिरों के तोड़ने पर स्त्रियों के अपहरण और धर्म भ्रष्ट करने पर पुंसत्व नहीं जागा, यह कम आश्चर्य और शर्म की बात नहीं है।

अलबरुनी ने हिन्दुओं की इस हीन दशा का वर्णन इस प्रकार किया है:—"भारत बहुत छोटे २ राज्यो में विभक्त है देश मे कोई ऐसी बड़ी राजसत्ता नहीं है जिसके इशारे पर यह एक होसके। यह आपस मे लड़ते भिड़ते रहते हैं। ब्राह्मण अपने को ऊँचा बनाने और शेष समाज पर आतंक जमाए रखने की धुनि में व्यस्त हैं। जाति भेद का द्वेष इतने जोर पर है कि वैश्यों और शूद्रों को वेद पाठ करते देखकर ब्राह्मण आग बबूला हो जाते हैं और उनपर तलवार लेकर टूट पड़ते हैं। और उन्हे लेजाकर राज दर ार मे पेश कर देते हैं। जहाँ उनकी जिव्हा काट ली जाती है। ब्राह्मण सब प्रकार के राज कर से मुक्त हैं। स्त्रियों को सती कर दिया जाता है। विदेश का आना जाना निषद्ध माना जाता है। उनमे पार-स्परिक सदभावनाए बहुत कम हैं।"

यह हालत थी भारत देश की फिर क्यों न महमूद गजनवी अपने उद्देश्य मे सफल हो जाता। यहां उसने अथवा उसके पहले के आक्रान्ताओं ने जिन लोगों को मुस्लमान बनाया था वे फिर कभी भी हिन्दू जाति मे नहीं मिलाए गये। हालाकि उन लोगों ने अपने पुरोहितों और सजातियों से बहुतेरी प्रार्थनाए हिन्दू होने के लिए कीं।

महमूद ने भारत के जिन हिस्सों को विजय किया था उनमे उसने अंतिम दिनों मे अपने सूबेदार भी नियत कर दिये थे। लाहौर मे उसने अपने बेटे सुल्तान मुहम्मद को छोड दिया था। 'यवनराज' बशावली के लेखक ने इन गजनवी हाकिमों की जो कि लाहौर मे बैठकर पंजाब की हकूमत करते थे इस इस प्रकार सूची दी है। १ सुल्तान महमूद २ सुल्तान मसऊद ३ अमीर मोदूद ४ मसऊद ५ अबुल अली ६ अब्दुल रसीद ७ फरूख जाद ८ इब्राहीम ९ मसऊद १० शेरजाद ११ आसलखां १२ बहराम शाह १३ खुशरोशाह १४ खुशरो। इसको सन् ११८८ में पकड़ कर शहाबुद्दी गोरी ने गजनी भेज दिया था। इस लबे अर्से में पंजाब मे इन गजनवी हाकिमों ने अपने धर्म प्रचार और लूट खसोट मे कोई कसर न छोड़ी थी।

गजनवी के बाद भारत पर आक्रमण करने का नम्बर मुहम्मद गोरी का आता है। इस डेढ़ सौ वर्ष के अरसे में भारत की राजनैतिक दशा मे कुछ थोड़ा सा अन्तर यह पड़ा था कि मध्यभारत मे दो बड़ी सल्तनतें हिन्दुओं की—देहली और कन्नौज में बन चुकी थीं। दो सल्तनतें और भी जरा अच्छी शक्तिशाली थीं। एक गुजरात मे सोलंकियों की दूसरी चित्तोड़ मे शिशोदियों की। ये चारों ही आपस में नातेदार थे यदि मिलकर मुहम्मद गौरी का सामना करते तो उसके साथी चना चबैना की तरह इनके हिस्से में आते किन्तु इनमे तो आपस मे कलह था। गुजरात के कुछ सोलंकी चौहानों के दरबार मे रहते थे। एक दिन एक सोलकी ने मूंछों पर ताव दे दिया। पृथ्वीराज का चाचा कान्ह इसी पर आपे से बाहर हो

गया। उसने यह कहते हुए सोलंकी का सिर काट दिया कि चौहानो के सामने कोई दूसरा मूछों पर ताव नहीं दे सकता है। कान्ह के इस मिथ्याभिमान का फल यह निकला कि सोलंकियों और चौहानों मे एक घोर युद्ध हुआ और सदा के लिए वैर वंध गया। गहरवार (कनोजिए) और चौहानों मे गहरी शत्रुता संयोगिता के ऊपर होगई। संयोगिता के ऊपर दोनों ओर के लगभग १८ लाख आदमी काम आए। पृथ्वीराज के १०८ सरदारों में से ६४ सरदार नौ लाख सैनिकों के साथ मारे गए। यह युद्ध लगातार ६४ दिन तक हुआ था।

यह ी एक दो लड़ाइयों मे पृथ्वीराज मुहम्मद गौरी को हरा चुका था। इसमे कोई सन्देह नहीं कि अपने समय का पृथ्वीराज एक महान् योद्धा और निपुण सेनापति था किन्तु वह अन्ध विश्वासी भी पूरा था। अजमेर को केवल एक फकीर चिस्ती के जादू के भय से छोड़कर भाग गया था। घटना इस प्रकार वताई जाती है कि एक मुसलमान फकीर अजमेर के बाजार मे धरना देकर बैठ गया। चामुडराय उसे हटाने आया। उसने जादू से अग्नि की लपट पैदा कर दी। साथ ही कहा कि में तुम सब को जला दूंगा। बस तारागढ़ खाली कर दिया गया।

गहरवार और सोलंकी पृथ्वीराज को तबाह कर देना चाहते थे और पृथ्वीराज उधर राजमहलों मे कामान्धता के भोग भोग रहा था। इस मौके से लाभ उठाने के लिए मुहम्मद गौरी ने एक लाख बीस हज़ार पठान लेकर भारत पर चढ़ाई कर दी। गहरवार और सोलंकियों ने उसका साथ नहीं दिया। तलावड़ीके मैदान मे पृथ्वीराज कैद कर लिया गया। दिल्ली की खूब लूट की गई। और भारत की राजधानी दिल्ली का अधिपति गौरी ने अपना एक गुलाम कुतुबुद्दीन बना दिया। इस तरह भारत को गुलाम का गुलाम बनना पड़ा।

इसके दूसरे वर्ष मुहम्मद गौरी ने कन्नौज पर चढ़ाई कर दी। जयचन्द ने एक मूर्खता इन दिनों यह की थी कि अपनी सेना मे लगभग पचास हज़ार मुसलमानों को भरती कर लिया था। यह सब उलटे राठौरों मे ही लडने लगे। जयचंद इस लड़ाई में मारा गया और भारत की कुवेरपुरी कन्नौज लूट ली गई। मुसलमान इतिहासकार कहते हैं कि यहा से लूट मे गौरी ४००० ऊटों पर लादकर चॉदी सोना और जवाहिरात गजनी को ले गया था। १००० मदिरों को उसने विध्वस कराया था। हज़ारों राजपूत और ब्राह्मण बालाओं को पठान अपनी लौंडी बनाने को यहाँ से ले गये।

महत्वाकाक्षी कुतुबुद्दीन ने हांसी, मेरठ कोल रणथम्भोर, गवालियर कालिंजर और गुजरात की ईट से ईट बजादी। हज़ारों मन्दिरों को धूल मे मिला कर उनके स्थानों पर मस्जिदे खडी करा दीं। लाखों नर नारियों को कत्ल कर दिया। अपने सरदारों को भारत मे चारों ओर मार काट और विजय करने के लिए फैला दिया। जिनमे से बखित्यार ने विहार और बगाल को मटियामेट किया। रास्ते मे काशी की भी खबर ली। विहार मे १२००० भिक्षुओं को कत्ल कराया और उनके पुस्तकालय को आग लगाकर भस्म करा दिया। इसके बाद अल्तमश ने उज्जैन पर चढ़ाई की और वहा के प्रसिद्ध मन्दिर महाकाल को मटियामेट किया।

कुतुबुद्दीन और उसके अन्य ७ उत्तराधिकारियों ने १०० वर्ष तक इसी प्रकार भारत माँ की छाती पर मूंग दली। फिर इन गुलामों के बाद खिलजी भारत के शासक हुए। इन लोगों ने भी दिल भर कर हिन्दू जाति को तग किया और लूटा खसोटा। अलाउद्दीन खिलजी के भयानक और रोमाञ्चकारी कारनामों को पढ कर आज भी मुट्ठियाँ बध जाती है और शरीर गर्म हो जाता है। उसने दगा फरेब, मक्कारी

सब प्रकार से हिन्दुओ को नेस्त नाबूद करने की कोशिश की। उसके सम्बन्ध की चन्द घटनाएँ यहाँ दी जाती है—तारीख 'आलाई' का लेखक लिखता है कि एक दिन अलाउद्दीन ने काज़ी से पूछा कि काफिर हिन्दुओं के वास्ते शरह मे किस सजा का बयान है। काजी ने कहा हिन्दू तो मुसलमान के वास्ते खेती है। जिससे चाँदी मागने पर सोना मिलना चाहिए। गन्ने को जितना भी अच्छी प्रकार से पेला जायेगा उतना ही ज्यादा वह रस देगा हिन्दू भी इसी प्रकृति के है। अगर मुसलमान थूके तो हिन्दू को तो खुशी के साथ अपना मुँह खोल देना चाहिए। हदीस मे पैगम्बर साहब ने फर्माया है कि काफिरों को लूटे गुलाम बनाये। हिन्दुओ का माल तो मुसलमानों के वास्ते वैसा ही है जैसा बच्चे के लिए माँ का दूध। जितना भी कोई मोमन हिन्दुओं को कष्ट देगा उतना उसके लिए बहिश्त का रास्ता सरल होगा।" काजी के इस फतवे पर अलाउद्दीन ने कहा, काजी जी शरह की बात पूरी होनी तो दूर है किन्तु मैंने अपने सैनिकों को हुक्म दे रक्खा है कि किसी हिन्दू के घर छ महीने के गुजारे से ज्यादा कोई चीज मत रहने दो। घी, दूध, मूंग, चावल, फल आदि कोई भी अच्छा खाद्य पदार्थ हिन्दुओं के खाने को मत छोड़ो। सुन्दर लडके लड़कियों को भी उठा लाओ।" तारीख फरिश्ता ने लिखा है कि बादशाह की सख्तियों और लूट पाट से लाखों हिन्दू इतने तबाह हो गए कि उनमे से हजारों को मुसलमानों के यहाँ मजदूरी करके अपना पेट पालना पड़ा।" एक दिन काजी ने बादशाह से कहा कि आपके राज्य मे काफिर इतने तबाह हो गये हैं कि उनके स्त्री बच्चे मुसलमानों के द्वार पर आकर रोते और भीख मांगते है। मैं समझता हूँ। इस्लाम की इतनी बड़ी सेवा के उपलक्ष मे आपको बहिश्त अवश्य ही मिलेगा।

इसी अलाउद्दीन खिलजी के कारण जैसलमेर की चौबीस सौ और चितौड़ की तेरह हजार राजपूतनियों को आत्मघात करके अपनी आबरु बचानी पड़ी थी। फिर भी सैकड़ों हजारों हिन्दू ललनाओं को अपने धर्म से इसके सिपाहियों द्वारा हाथ धोना पड़ा था। खुद इसने गुजरात के राना कर्ण की स्त्री को अपने घर में डाल लिया था और रानी की बेटी को अपने लड़के की स्त्री बना कर अपने दिल को शांत किया।

२० वर्ष के अपने शासन मे खिलजी लोगों ने हिन्दुओं के साथ वह सब कुछ किया। जिसके करने की उनके शैतान काजियों ने सलाह दी। एक मुसलमान लेखक मीर अब्दुल्ला ने लिखा है कि अपने दीन का प्रचार करने मे अलाउद्दीन दूसरा (खलीफा) उमर साबित हुआ।

खिलजियों के बाद दिल्ली के तख्त पर तुगलक वंशी मुसलमानो की हकूमत हुई। इसके छ बादशाहों ने लगभग १०० वर्ष तक राज किया। इनमे मुहम्मद तुगलुक मिहरगुल हूण से भी भयानक नर राक्षस था। कहा जाता है कि मिहरगुल ने अपनी प्रसन्नता के लिए हाथियों को पहाड़ों से धकेलवाया था किन्तु मुहम्मद तुगलक ने तो मनुष्यों का शिकार खेला था एक दिन उसने हजारों स्त्री पुरुप और बच्चों को एक बाडे मे घिरवाकर विभिन्न हथियारों से शिकार खेली। नाक, कान कटवा लेने आँख निकलवा लेने और सिर मे लोहे की कीलें ठोक देने मे उसे आनन्द आता था।

फीरोजशाह तुगलक ने जब नगरकोट को ध्वंस किया तो वहां के हिन्दुओ के गले मे गौ मास के तोबडे लटकवा दिए और फिर उन्हे बाजार घुमाकर वही मास खिलाया। जिन्होंने नहीं खाया उनके सिर कटवाये। एक मूर्तिपूजक ब्राह्मण को जिन्दा जलवा दिया।

इस तुगलक खान्दान के समय मे ही तैमूर ने भारत पर आक्रमण किया। १३९८ ई. मे ९२ हजार तातारी भेड़ियों को लेकर वह भारत मे घुस आया। नगरों को जलाता हुआ कत्लेआम करता हुआ

वह भटनेर पहुँचा। यहा उसने एक घंटे में दस हजार आदमियों का कत्ल कराया। यहां से दिल्ली की ओर बढ़ा। रास्ते में हजारों स्त्री पुरुषों को भेड बकरी की भाति अपने साथ हाकता हुआ चला। दिल्ली पहुँचते पहुँचते एक लाख कैदी उसके साथ हो गये। इन सबको रोटी देना मुश्किल समझ कर १५ वर्ष से ऊपर के प्रत्येक आदमी को कत्ल करा दिया। लाशों का ढेर लग गया खून की नहर वह निकली किन्तु तैमूर प्रसन्न था। दिल्ली मे घुस कर नगर मे आग लगा देने का हुक्म दे दिया। बराबर पाच दिन आग की लपटें लूट पाट और कत्लेआम के बीच दिल्ली में हाहाकार मचा रहा। कहा जाता है कि एक लाख आदमियों की जानें इस तरह से ली गईं। इसके बाद तैमूर ने अपने को कृत-कृत्य हुआ जान कर शाही मस्जिद में नमाज पढ़ी और फिर खुशी मे सुरा और सुन्दरियों का सेवन किया। दिल्ली के बाद मेरठ की ओर तैमूर ने कूच किया। यहा पर पचास हजार स्त्री पुरुषों का कत्ल किया गया। हजारों स्त्री बच्चों को कैदी बनाया यहा से हरिद्वार जाकर यही काड किया। उन दिनों हरिद्वार में मेला था। मेले में इसके सिपाही भूखे भेड़ियों की भाति घुस कर कत्ल करने लगे।

इस तरह से महीनों हिन्दुस्तान मे रह कर तैमूर ने नगा नाच नाचा और अत में यहां महामारी और अनेक आक्रमणकारी रोग छोड़ कर स्वदेश को चला गया। वह यहां से इतना धन ले गया कि उसने अपने एक लाख से ऊपर सैनिकों को आठ साल की पेशगी तनख्वाह दे दी। फिर भी अपने बचे हुए धन का अनुमान नहीं लगा सका।

तैमूर के जाने के बाद तुगलक खान्दान का राज खतम हो गया और सैयद खान्दान भारत के रग मच पर आया। सैयदों का प्रभाव बड़ा भारी न था। अत. इनके समय मे देश मे अनेकों छोटे-छोटे राज्य बन गये और ३७ वर्ष के बाद इनके हाथ से भी दिल्ली निकल गई और लोदियों के हाथ मे आई। इब्राहीम लोदी इस खान्दान का पहला बादशाह था। इसके राज्य मे भी वही जुल्म हिन्दुओं के साथ जारी रहे। मन्दिर और मूर्तियाँ तो तोडे ही जाते थे किन्तु तीर्थ यात्रा करना भी हिन्दुओं का रोका जा रहा था। "इसके समय मे एक ब्राह्मण की जीभ केवल इतने से अपराध पर निकलवा ली गई थी कि उसने हिन्दू धर्म को ससार के किसी भी धर्म से घटिया न होने का उपदेश दिया था।

लोदियों के समय में तैमूर के वंशज बाबर ने भारत पर आक्रमण किया। कहा जाता है बाबर एक दयालु मुसलमान था किन्तु हिन्दुओं के लिये तो उसने भी खूब कतल कराया। उसने अपने हाथ से लिखी हुई किताब तुजुक बाबरी में लिखा है—"लड़ाई में जो हिन्दू कैदी हाथ लगते थे उन्हे मेरे तम्बू के सामने कत्ल किया जाता था एक दिन तो इतने कत्ल हुए कि खून और लाशों के मारे तीन बार जगह बदलनी पड़ी।"

वास्तव में बात तो यह थी कि आक्रान्ता मुसलमानों ने हिन्दुओं को गाजर मूली समझ रक्खा था। गुलबर्गा के छोटे से अमीर ने तैलंग के राजा की लडकी को उसकी जीभ कटवा कर जीता अग्नि में भून डाला था और पाच लाख हिन्दुओं के सिर गर्दन से जुदा कर दिये गए।

इन कत्लों और हत्याकाडों के बाद ये मुसलमान लुटेरे और शासक पश्चाताप नहीं करते थे किन्तु उत्सव मानते थे। जिस दिन भारी कत्ल होते थे उस दिन विशेष रूप से यह लोग शराब पीते और नाच रग कराते।

यह सब कुछ हुआ और पूरे एक हजार वर्ष—उस समय तक हुआ जब तक कि पंजाब में गुरुओं के लाडले सिखों और दक्षिण में सत रामदास जी के शिष्य वीर शिवाजी ने तलवार न पकड़ ली। किन्तु

इन एक हजार वर्षों में प्रायः सारा भारत मुसलमानों की हुकूमत मे पहुँच चुका था। हिमालय की तरैटी के और राजस्थानी रेगीस्तान के कुछ एक राजपूतों को छोड़ कर कहीं भी हिन्दू शासक शेष न थे। और शेष रहने वाले भी उन मुसलमान शासकों के हाथ के हथियार ही साबित हो रहे थे।

आठवीं सदी मे सिन्ध, ११ वीं सदी मे पंजाब, १२ वीं सदी मे दिल्ली,गवालियर और चौदहवीं सदी में कश्मीर और गुजरात हिन्दुओं के हाथ से निकल गये। बिहार, बंगाल और दक्षिण भारत बारहवीं और तेरहवीं सदी मे ही मुसलमानों के हाथ पहुँच गये थे। उड़ीसा ने एक लम्बे अर्से तक अपने को बचाये रक्खा किन्तु मुगल हुकूमत उसे भी निगल गई। हाँ कहीं-कहीं, छोटे-छोटे राजा और जागीरदार प्रत्येक प्रात मे अपना जीवन निर्वाह कर रहे थे किन्तु उनकी स्थिति रणमल भट्टी से अधिक कहीं भी नहीं रही जान पड़ती जिसने अपनी लड़की देकर कुछ समय के लिए अपने प्राणों और राज्य की रक्षा कर ली थी। इन शेष राज्यों पर भी कोई अभिमान नहीं किया जा सकता।

यह हालत तो हो गई थी उस समय राजनैतिक और धार्मिक भारत की। अब थोड़ा सा प्रकाश उस समय के भारत की आर्थिक अवस्था पर और डालना चाहते हैं।

आर्थिक अवस्था

एक समय था कि भारत का व्यापार अरब, ईरान और चीन तक होता था। महाराजा कनिष्क के समय मे कश्मीर की पश्म अरब तक पहुँचती थी। और भी कच्चा माल विदेशों मे यहाँ के व्यापारी ले जाते थे और दूसरे देशों की भी अनेकों चीजे यहां लाते थे। यह व्यापार जल, थल दोनों ही मार्गों से होता था। बड़ी-बड़ी नावे इस देश की नदियों और भारत अरब के बीच के सागर मे चलती थीं। किन्तु बौद्ध धर्म के मटियामेट करने की धुनि मे यहाँ के धर्माचार्यों ने विदेश गमन पर भी रोक लगा दी। समुद्र यात्रा और विदेश गमन करने वालों को जाति से बाहर निकाल देने का भयंकर दण्ड दिया जाने लगा। इस तरह से विदेशो के साथ व्यापार करने की प्रणाली तो कतई मिट गई। इस प्रतिबन्ध से कला और कारीगरी को भी बड़ा धक्का लगा। विदेशगमन निषेध के साथ ही अन्तर-प्रान्तीय यातायात और व्यापार मे भी शिथिलता आ गई क्योंकि खाने पीने और छूतछात के कड़े नियमों ने लोगों को इस बात के लिए बाध्य कर दिया कि वे अपने ही प्रांत और सजातियों से आगे कोई संबंध न रक्खे। व्यापार का तो इस तरह से चौपट हो गया।

खेती के काम को मुश्किल बना दिया। विदेशी आक्रान्ताओं और हाकिमों ने, किसानो की खड़ी हुई फसलों मे होकर लश्कर जा रहे है। बर्बाद कर रहे हैं और आवश्यकता हुई तो किसानों को बेगार मे पकड़ कर ले जा रहे है। इस तरह से खेती से भला क्या बचत हो सकती थी। किसान बेचारो को साथ मे तलवार और गाव मे एक ऊँचे मँच पर नगाड़ा रखना पड़ता था इस तरह से वे कुछ कमा पाते थे। इस कमाई मे से भी लूट पाट होती रहती थी और जजिया देना पड़ता था वह अलग था।

देश का पुरातन संचित धन जो अशोक कनिष्क और गुप्त राजाओं के जमाने से पहिले का लोगो के पास था वह लुट कर गजनी काबुल और कन्धार पहुँच चुका था। या वह भारत के मुसलमान शासकों और उनके सिपाहियों के घरों मे संचित हो रहा था। हिन्दुओं की तबाही का इससे और क्या बड़ा दृश्य उस समय का हो सकता है कि हजारो हिन्दू स्त्री और बच्चे मुसलमानों के घरों मे जाकर या तो मजदूरी करते थे या उनके द्वारों पर भीख मागने को विवश होते थे। इस भूख प्यास. लूट मार और कत्लो की

मरमार से देश की भारी आबादी घट गई थी। जिम ममय गुरु नानक देव इम संसार में आए थे सारे भारत में कुल २० करोड़ की आबादी थी। जो मुश्किल से जहागीर के ममय तक बाईस करोड़ हो गई थी। जिसमे चार करोड़ के लगभग मुसलमान थे।[1]

यहाँ का वैदेशिक व्यापार तो प्राय विदेशी मुसलमानो के हाथ जा चुका था। चोल मडल के किनारे बहुत सी मंडिया बन गई थी। "वस्साफ' ने लिखा है कि मावर से समुद्र का वह किनारा जो कोलम से नलोर तक फैला हुआ है। चीन, हिन्द और सिन्ध के मालों से लदे हु बड़े-बडे जहाज गुजरते हैं; जिनमें इराक, खुरासान और यूरोप के लिए वहां से लदकर माल जाता है और फिर वहा से बहुमूल्य कारीगरी की चीजें यहा आती हैं।" आगे वह फिर लिखता है—"प्रतिवर्ष दस हजार घोड़े फारस से यहा आते हैं जिनकी कीमत लगभग २२ लाख दीनार होती है।"

इस तरह से हमारा देश एक ओर लोमहर्षण अत्याचारों और दूसरी ओर व्यवसाय धंधों के नष्ट होने के कारण दीनहीन अवस्था को प्राप्त हो गया था। और समस्त देश मे मायूमी, निराशा और हाय-हाय ! का वातावरण फैला हुआ था। इतने पर भी निट्ठले भिक्षुओं और साधुओं के दलों के दल देश में बढ़ रहे थे जो समाज के रहे सहे खून को चूस कर मौज उड़ाते थे। देश की इसी दयनीय दशा के बीच परमात्मा ने निरकारी नानक को संसार में भेजा।

इस समय का चित्र काव्यमय भाषा में इस प्रकार व्यक्त किया जा सकता है कि "यहा उस ममय मानवता के स्थान पर पशुता, सहृदयता के स्थान पर निर्दयता, धर्म के नाम पर ढोंग, भक्ति के बहाने प्रपंच, दया और दयालुता के स्थान पर खूनी फाग के खेल खेले जा रहे थे।"

उस समय न यहां राष्ट्रीयता थी और न धर्म रक्षा के हेतु प्राण देने की ऊँची भावना का अश न किसी को यहाँ किसी के प्रति सहानुभूति थी और न किन्हीं का कोई सम्मिलित उद्देश्य था। सब को केवल अपनी-अपनी चिन्ता थी सो भी सत्साहस और उत्साह के साथ नहीं किन्तु परावलम्ब और निराशा के साथ समाज अनेकों जाति, उपजाति, शाखा और प्रशाखाओं मे बँट चुका था। प्रत्येक जाति और शाखा दूसरी जाति और शाखा को अपने से नीच एवं हेटी समझती थी और खान पान व्यवहार किसी में भी एक्य और सामंजस्य न था। इस तरह से हिन्दू राष्ट्रीय पिंड के अस्थि पंजर ढीले हुए पड़े थे।"

स्वयं गुरु नानक देव जी ने हिन्दू जाति की इस हीन दशा को देखकर कहा था—"हे परमात्मा तुमने खुरासान पर तो कृपा की और भारत पर कोप किया। कोई सीधे तुमको दोष न दे इसलिये यम रूपी यवनों को यहा अत्याचार करने के लिए भेज दिया. भगवान अब तो बहुत हो चुका है हिन्दू काफी पीटे जा चुके हैं। स्वामी आप तो सभी के हैं।"[2]

स्त्रियों की दुर्दशा को देखकर गुरु जी ने हृदय-द्रावक शब्दों मे कहा था—"जिन देवियों के सिर के केश पट्टियों के रूप में सँवारे हुए थे। जिनकी मांग सिन्दूर से शोभित होती थीं। आज वह केश मूडे जा रहे हैं। और उनके मुँह में धूल झोंकी जाती है।

जो महलों में आनन्द करती थी आज उनके बैठने के लिए जगह नहीं है।

व्याह के समय जो पालकियों में सवार होकर आई थीं। जिनके खाने के लिए अनेक प्रकार के

१ तुजुक जहांगीर के आधार पर।

२ खुरासान खसमाना किया हिन्दुस्तान डराया। आदि पद।

स्वादिष्ट व्यंजन, सोने के लिए सुन्दर पलंग, और पहनने के लिए उत्तम उत्तम वस्त्र और आभूषण मिले थे। आज वही धन और यौवन उनके वैरी हो रहे हैं। उनके पैरों मे बेड़ियाँ पड़ी हुई हैं। सतीत्व नष्ट किए जा रहे हैं। गहने उतारे जा रहे हैं। रोटी से भी मोहताज हैं।"[1]

प्रकृति का एक यह भी नियम बताया जाता है कि "जिन लोगों पर अत्याचार होता है वे परस्पर मिल जाते हैं, क्योंकि अत्याचार मे मिलाने की अद्भुत शक्ति है। यही क्यों पीड़ित वर्ग या समाज पर दर्शक भी सहानुभूति प्रकट करने लगते हैं।" किन्तु इन एक हजार वर्षों के लंबे समय मे भारी से भारी और हृदय विदारक अत्याचार हिन्दुओं पर हुये किन्तु उन्होंने एकता के लिए करवट तक नहीं बदली, मुस्लमान अपनी धर्मान्धतापूर्ण नीति और आनन्द विलास के कारण आपस मे ही लड़ भिड़ कर परिवर्तित अवश्य हो रहे थे किन्तु हिन्दू बिल्कुल निश्चेष्ट थे। उनके लिए कई सुअवसर आए किन्तु उन्होंने उसमे लाभ नहीं उठाया। इसका कारण यह था उन्हे जो उपदेश मिलते थे उसमें इहलोक के लिए कोई महत्वाकाक्षा थी ही नहीं। स्वराज्य और पर राज्य के बीच जो अन्तर होता है उसके सम्बन्ध मे वे कभी एक क्षण तक भी नहीं विचारते थे। इसीलिए न उनमे एक देशीयता थी और न एक जातीयता। उनके लिए उनके प्रान्त और जिले ही स्वदेश और अपने घर ही घर थे। समस्त भारत और भारतीयों के प्रति कोई भी कुछ जिम्मेवारी महसूस नहीं करता था। यही कारण था कि भारत की राज्यश्री को लावारिस समझकर दूसरे लोग भोग रहे थे और इनके स्त्री बच्चों को उनकी दया पर जीवित रहने और उनके कोप पर प्राण गँवाने का अधिकार मिला हुआ था। इस हालत को भी यहाँ के हिन्दू धर्मप्रिय लोगों की हालत समझते थे। अपने को अब भी एक दूसरे से ऊँचा नीचा समझते हुए अहँकार का जीवन बिताते थे।

गुरू नानक आये और उन्होने दुःख भरे हृदय से इनकी दशा का अनुभव किया और परमपिता परमात्मा से इनके कल्याण के लिए प्रार्थना की। साथ ही उन गलत खयालातों को भी दूर किया जिनके कारण हिन्दू समाज भीतर ही भीतर घुना जा रहा था।

१. जिन सिर सोहं पट्टिया मांगे पायें सिंदूर। पद के अनुसार।

द्वितीय अध्याय

सिख सम्प्रदायान्तर्गत कुछ प्रमुख जातियाँ और उनका परिचय

ऐसी हीन थी उस समय हिन्दू भारत की अवस्था। जैसा कि पहिले अध्याय मे बताया गया है। गुरू नानक देव जी तथा अन्य गुरू महानुभावों ने भी इसी हिन्दू भारत में जन्म लिया था कौन? जानता था कि गुरुओं के के प्रताप से उनके शिष्यों का कोई ऐसा गिरोह भी खड़ा हो जायगा जो भारत माता के शिर को ऊँचा करने मे अपना सर्वस्व बलिदान करने को तयार होगा। वास्तव मे सिखों ने पिछली सदियों में वे कारनामे करके दिखाए हैं जो गुरुओं से पिछले एक हजार के वर्ष के हिन्दू इतिहास में खोजने पर भी नहीं मिलते। तुर्क ईरानी और पठान जो भारत को भेड़ बकरियों का मुल्क समझते थे। शौर्य्यवान सिखों ने उनका भारत आगमन ही नहीं रोका किन्तु स्वदेश मे भी वे इन रण-सिंहों के दर्प से भयभीत रहने लगे।

सिखों की वीरता और रणनैपुण्य भारत ही नहीं उससे बाहर के देशों मे भी आज इतिहास के महत्व को बढ़ाता है। प्रत्येक व्यक्ति जो सिखों की बहादुराना लड़ाइयों और कभी न झुकने वाले स्वभाव की कहानियों को पढ़ता है तो अनायास ही उसके हृदय मे सवाल होता है। "आखिर ये महावीर है कौन? एक शब्द मे—और सबसे अच्छा—उत्तर तो यही है कि गुरूनानक से गुरू तेग बहादुर लों ले—एकेश्वरवाद की भक्ति में अनुप्राणित कि ये हुए और गुरू गोविन्दसिंह जी द्वारा कायाकल्प का अमृत पिलाये हुए शिष्यों का समूह ही सिख है। परन्तु इतिहास प्रेमी इससे भी कुछ ज्यादा जानना चाहते हैं। इसी हेतु से कनिंघम जैसे प्रसिद्ध इतिहासवेत्ता को सिख-इतिहास में "पंजाब के अधिवासी गण और उनके सम्प्रदाय एवं मतों पर एक स्वतन्त्र अध्याय लिखना पड़ा। पृष्ठ पेषण के भय से हम केवल उन्हीं पंजाबी—अधिवासियों का परिचय देना चाहते हैं जो गुरूओं के सतज्ञान और एकेश्वरवाद की भक्ति से प्रभावित होकर उनके शिष्य-समाज मे दाखिल हुए और जिन्होंने दसवे पातशाह गुरू गोविंद सिंह की इस घोषणा को पूरा किया कि "जो मैं गुरू गोविन्द कहाऊँ, तो बाजों से चिड़ी लड़ाऊँ॥

खत्री, वेदी, सोडी आदि

दसों पातशाह जिस समूह मे पैदा हुए थे वह खत्री के नाम से अभिहित होता है। नस्ल के लिहाज से खत्री आर्य्य हैं। संसार में रूपरंग चेहरे की बनावट और प्रकृति जन्य स्वभाव के अनुसार

पांच नस्लें मानी जाती हैं। आर्य, द्रविड़, मंगोलियन, हवशी और सेमी। सबसे पहले सभ्यता प्राप्त करने और ऊँचा एवं आदर्श जीवन-बिताने के कारण आर्य नस्ल ही संसार में श्रेष्ठ नस्ल मानी जाती है। राम, कृष्ण शिवि, दधीच, हरिश्चन्द्र, महावीर, बुद्ध, महात्मा जरदुश्त और युधिष्ठिर जैसे महा-पुरुषों को जन्म देने का सौभाग्य आर्य नस्ल को ही प्राप्त हुआ है। भारत अनन्त काल से आर्यों का है। वह उनके नाम पर आर्य्यावर्त कहलाता है। इसलिए इस देश के प्रत्येक समुदाय और जाति के सबसे पहला गौरव इस बात में प्राप्त होता है कि वह आर्य्य नस्ल से हैं। आर्य्य नस्ल के सिवा अन्य जाति के लिए तो यह मुलक एक प्रकार से वैसा ही है जैसा एक बंगाली के लिए पंजाब। भारतीय आर्यों की सभ्यता पंजाब में ही फूली फूली थी। आज भी यह कहा जाता है कि आर्यों के वास्तविक उत्तराधिकारी पंजाब में ही मिलते हैं। आर्य्य नस्ल में पैदा होने का गौरव इसलिए भी एक महत्व की चीज है कि भगवान राम और कृष्ण इसी नस्ल के थे। भारत के अनेकों क्षत्रिय खान्दान गौरव के साथ अपने को भगवान राम या कृष्ण के वंशज बताते हैं। बात है भी गौरव की। इससे भी अधिक गौरव इस बात का है कि वे राम और कृष्ण आर्य्य थे और अपने आर्य्य होने पर उन्हें अभिमान था। राम ने कहा था—

अहम् भवति आर्य्य ज्ञानिनामान्तर्गत रघुकुलेन।"

इसी प्रकार भगवान कृष्ण ने भी अर्जुन को सम्बोधित करते हुए कहा—"कुतस्त्वा-कश्मल-मिदं विषमे समुपस्थितम्। अनार्य्य जुष्टम स्वर्ग्यम कीर्तिकर-मर्जुन॥' अर्थात हे अर्जुन इस विषम परिस्थिति में तुझे यह क्या अनार्यों की जैसी बात सूझी है। गुरु गोविन्द सिंह जी ने भी बड़े गौरव से 'विचित्रनाटक' में लिखा है कि हम उस सोढ़ी वंश के हैं जो सूरजवंशी हैं और जिनका सिलसिला राम की संतान में से है। विचित्र नाटक का वह स्थल इस प्रकार है.—

"ताते सूरज रूप कउ धरा। जाते वंश प्रचुर रवि करा॥
जो तिनके कहि नाम सुनाऊ। कथा बढ़न ते अधिक डराऊ॥१६॥
तिनके वंश विखै रघु भयो। रघुवंसहि जिह जगहि चलयो॥
ताते पुत्र होत भये अज वर। महारथी और महा धनुर्धर॥२०॥
जब तिन भेष जोग को लयो। राजपाट दसरथ को दयो॥
होन भयो वहि महां धनुर धर। तीन त्रिप्रान ब राजहि सचकर॥२१॥
प्रथम भयो तेहि राम कुमारा। भरत लछमन शत्रु बिदारा।
बहुत काल तिन राज कमायो। काल पाय सुरपरहि सिधायो॥२२॥
सीय सुत बहुरि भये दोउ राजा। राज पाट उन ही को छाजा॥
मद्र देस न रजा बरी जब। भांति भांति के जग कीये तब॥२३॥
तिहीं तिनें बांधे दुइ पुरवा। एक कसूर दुतीय लहुरवा॥
अधकपुरी ते दोऊ बिराजी। निरख लंक अमरावति लाजी॥२४॥
बहुत काल तिन राज कमायो। जाल काल ते अंत फंसाओ।
तिनते पुत्र पौत्र जो भये। राज करत इहि जग को भये॥२५॥
कहां लगे ते बरन सुनाऊं। तिनके नाम न संख्या पाऊं॥
होत चहुं जुग में जो आये। तिनके नाम न जात गनाए॥२६॥

जो अब तो किरपा बल पाऊं । नाम जथा मत भाख सुनाऊं ॥
काल केत भये बली अपारा । काल राय जिन नगर निकारा ॥२७॥
भाज सनोढ देश ते गये । तही भूप जा विपदरत भये ॥
तिहते पुत्र भयो जोह धामा । सोढीराय परा तेहि नामा ॥२८॥
वश सनोढ ता दिन ते खीआ । परम पवित्र पुरुष जो कीया ॥
ताते पुत्र पौत्र हुइ आए । ते सोढी सम जगत कहाये ।२६॥

"विचित्र नाटक' के इस पद का भाव यही है जो हमने ऊपर लिख दिया है । कुछ विदेशी इतिहासकारों ने खत्रियों के आर्य नस्ल से होने मे सन्देह किया था किन्तु जब सूरत शक्ल और चेहरे की बनावट को देखकर नस्लों की परीक्षा का विज्ञान सामने आया तो उन्हे स्पष्ट शब्दो मे मानना पड़ा कि खत्री आर्य, नस्ल से है। मिस्टर ई० बी० हेवल ने "हिस्ट्री आफ आर्य्यन रूल इन इंडिया" मे लिखा है —"Enthonographic investigations show thet Indo Aryan type described in the Hindu epic-a tale, fair complexioned, long needed race, with narrow prominent noses, broad shoulders, long arms, thin waists like a lion and thin legs like a deer is how (as it was in the earliest times) most confined to Kashmere, the Punjab & Rajputana & represented by the khatris, Jats & Rajputs

अर्थात्—"मानवतत्व विज्ञान की खोज बतलाती है कि भारतीय आर्य जाति जिसको कि हिन्दू-युद्ध ग्रन्थों मे लंबे कद, सुन्दर चेहरा पतली लंबी नाक, चौडे कन्धे लबी भुजाएं, शेर की सी कमर और हिरन की सी पतली टांगों वाली जाति बतलाया है । जैसी कि वह प्राचीन समय में थी । आधुनिक समय मे पजाब, राजपूताना, और काश्मीर मे, खत्री, जाट और राजपूत जातियों के नाम से पुकारी जाती है।" आगे यही महाशय फिर लिखते हैं—"The Indo Aryan type, occupying the Punjab, Rajputana & Kashmere & having its characteristic members the Rajput Khatris & Jats This type approaches most closely to that ascribed to the traditional Aryan colonists of India. The statore is mostly tell, complexian fair, eyes dark, hair on face plentiful, head long, nose narrow and prominent, but not especially long"

अर्थात्, भारतीय आर्य जाति जिसके कि वंशधर आज राजपूत, खत्री और जाट हैं, पजाब, राजपूताना और काश्मीर मे बसी हुइ है । यह जाति उस प्राचीन आर्य जाति से बहुत मिलती जुलती है जो भारत मे आकर बसी थी । इसकी शारीरिक बनावट अधिकतर लबी, सुन्दर चेहरा, चेहरे पर पर्याप्त बाल । लम्बा सिर और ऊची पतली नाक जो अधिक लम्बी नहीं होती है ।

भारतीय इतिहास की रूप रेखा के लेखक और इतिहास पर मंगलाप्रसाद पुरस्कार के विजेता जयचन्द्र विद्यालंकार ने लिखा है.—"आर्यवर्तीय आर्यों का सबसे अच्छा निर्विवाद नमूना पंजाब के अरोड़े, खत्री, ब्राह्मण, जाट, अराईं आदि हैं । औसत से अधिक डील, गोरा या गेहुँआ रङ्ग, काली आँखें दीर्घ कपाल ऊँचा माथा, लंबा नुकीला सम चेहरा, सीधी नुकीली और समुचित लंबी नाक उनके मुख्य लक्षण हैं ।

नस्ल निर्णय के पश्चात हमें यह देखना है कि खत्री प्रचलित वर्णों में से किस वर्ण के हैं। पौराणिक लोग उन्हें क्षत्रिय स्वीकार करने के लिए तय्यार नहीं हैं किन्तु यह भी सही है कि पौराणिक वर्ण व्यवस्था जोकि जैन बौद्धों के पश्चात् भारत में ईस्वी पूर्व ३०० वर्ष से ईस्वी सन् ११०० तक कायम हुई है खत्री उनमे से किसी भी वर्ण मे दीक्षित नहीं हुए हैं। जाट, अरोड़ों और मराठों के लिए भी यही बात कही जा सकती है। हॉ वे प्राचीन वैदिक वर्ण व्यवस्था के अनुसार क्षत्रिय हैं। ईस्वी सन् की आरम्भिक सदियों मे भी उनके पास राज सत्ता थी। सिकन्दर के भारत में आने पर उनके कई कुलों ने उनका सामना किया था। ईसा की छठी सदी से अठारहवीं सदी तक भारत मे इतने जोर का अज्ञानाधकार रहा कि जातियॉ खुद अपने पूर्वजों के इतिहास और पते से अनभिज्ञ होगई यही कारण है कि खत्री स्वयम् भी अपने-पूर्व इतिहास के सम्बन्ध मे कोई सही जानकारी नहीं रखते हैं। यदि उनसे कहा जाय कि जिन खत्रियों ने मिश्र, अरमीनिया तक जाकर अपने राज्य और उपनिवेश स्थापित किए थे उन्हीं का अवशेष भाग आप हैं तो उन्हे अनायास ही विश्वास न होगा।

हमारी अपनी मति में खत्री उन क्षत्रियों का एक अवशिष्ट समूह है जो समय-समय शासक जातियों में वनने वाले किसी भी जत्थे में शामिल नहीं हुए। महाभारत के समय से हम देखते हैं कि शासन पद्धतियों एवं अन्य राजनैतिक भेदों के कारण भारत में अनेक समुदाय क्षत्रियों के वने हैं। हैहय ताल जघों के अलग होने के वाद एक समूह सजात तन्त्र के उद्देश्यों के अपनाने के कारण जात अथवा जाटों का वन जाता है। दूसरा दक्षिण पश्चिम भारत में, महाराज्य (महाराष्ट्र) प्रणाली को अगीकार करके महाराष्ट्रों अथवा मराठों का वन जाता है। तीसरा समूह सिन्ध और पजाव मे अराष्ट्रों (प्लीनी के शब्दों में अरट्टों)—शासन में राजा के अस्तित्व को अस्वीकृत करने वालों—का वन जाता है जो अराट, अराड और फिर अरोडा कहलाने लगता है। सवसे अतिम समूह वनता है राजपूतों का। इसी प्रकार क्षत्रियों में और भी समूह वने। अन्त मे जो शेष रहे वे ही क्षत्रिय हैं। यह वात हमने इसलिए भी कही है कि वहुतेरे लोग कहा करते हैं कि जव राजपूत,जाट,मराठा आदि भी क्षत्रिय हैं तो केवल वे ही खत्री क्यों कहलाते रहे। ऊपर के वर्णन से इस प्रश्न का हल हो जाता है। कहना न होगा कि इन अवशिष्ट क्षत्रियों में जो पीछे से भाषा भेद के कारण खत्रिय भी कहलाने लगे हैं किसी एक ही वश के लोग शामिल नहीं है इनमें। चन्द्रवशी, सूर्य वंशी और नागवंशी तीनों ही वंशों के कुल शामिल हैं। उदाहरण के लिए कुक्करों को लीजिए, "यादवा कुकुरा भोजा सर्वे चान्धक कृष्णाय" के अनुसार चन्द्रवशी यादव हैं। सोढी और वेदी उन सूर्यवशियों मे से हैं। जो क्षुद्रक कहलाते थे और अन्तर्वेद एव सनाढ्य देश में रहने के कारण इन नामों से प्रसिद्ध हुए। हमारे ऐसा कहने से सोढी और वेदियों की वशावली रामचन्द्र जी से मिलने में भी रुकावट नहीं डालती है क्योंकि पुराणों में जो वशावली सूर्यवशियों की दी हुई है उनमे राजा क्षुद्रक का नाम रामचन्द्र जी से ५७ वीं पीढ़ी पर आता है। क्षत्रिय से खत्री नाम क्यों पड़ गया? इस प्रश्न का हल भी लोगों ने अनेक अटकलों से किया है। किसी ने कहा है पंजाव मे नागा (नाग लोगों की) भाषा का जव प्रचार था तव क्ष के स्थान पर ख होगया क्योंकि उनकी उच्चारण शैली इसी प्रकार की थी किन्तु यह खयाल हमे जॅचता नहीं है। क्ष के स्थान पर नाग लोग स तो वोल सकते थे क्योंकि उनके पड़ोसी सत्रप कहते थे। और नागों की भाषा में क्षुद्रक का सुद्रक और सोद या सोदी तो हो सकता है यूनानियों ने भी क्षुद्रकों को OXYDRAKA एव OXYDRAKAI (ओक्सेडरा) लिखा है। ((ई 1) का प्रयोग करने की तो आदत जान पडती है क्यों शिवि को भी उन्होंने शिवोई लिखा है।) कुछ का कहना है कि खात नाम के

राजपूतों ने वनियानी से शादी करली थी। इसलिए ये खत्री कहलाए और तभी से व्यापार करने लग गये हैं। एक कल्पना यह थी कि बावर के समय मे और आगे के मुगल शासन मे अनेक अच्छे ओहदों पर काम करने के कारण राज्य से सम्पर्क होने पर रजिस्टरों में खत्री लिखे गये क्योंकि अरबी या फारसी वर्णमाला में क्ष नहीं होता। यह कल्पना कुछ जॅचती भी है किन्तु हमारा अपना खयाल इस सम्बन्ध मे यह है कि बौद्ध काल मे चारों ओर प्राकृतिक मागधी का प्रचार होने से ये क्षत्रिय की बजाय खत्तिय कहलाए और जरा अधिक शुद्ध बोलने वाले खत्री कहने लगे। बौद्ध साहित्य मे महात्मा बुद्ध के लिए भी कई जगह खत्तिय-पुत्र शब्द आता है जिसके कि माने क्षत्रिय पुत्र के होते हैं।

परशुराम की आतंककारी कथा का प्रयोग इतना भारी होने लगा है कि प्रत्येक ऐसी जात के लिए जो राजपूत नहीं है यही कल्पना फैलाई गई कि वे निःक्षत्री किये हुये लोगों मे से हैं। खत्रियों की वशावली रखने वाले लोग भी यही कहते हैं। यह तो एक वाहियात और आत्म सम्मान को ठेस पहुँचाने वाली कल्पना है और जब कि जो लोग अपने को रामचन्द्र या लवकुश का वंशज होने का खयाल करते हों तो उनके सम्बन्ध मे तो यह कतई गलत है कारण कि रामचन्द्र के वश के लोगों से परशुराम की कभी भी कोई लड़ाई नहीं हुई। उल्टा परशुराम ही रामचन्द्र को अपने से श्रेष्ठ मानकर मिथिलापुरी से चले गये थे। जहाँ कि वह शिव धनुप के ऊपर झगड़ा करने आये थे।

अरोडे लोग खत्रियों से भिन्न नहीं हैं और पंजाव के बाहर के लोग भी भेद नहीं समझते। धन्धा अरोड़ों ने भी प्राय व्यापारिक ही ले लिया है हालाकि उतराधे अरोड़े देहातों में खेती भी करते हैं। हमारी धारणा के अनुसार इनमे भी नाग, तक्षक चन्द्र और सूरजवंशी लोग शामिल हैं। विवाह सस्कार के समय जो परिचय इनके पुरोहित देते हैं उसके अनुसार यह कश्यप गोत्र के हैं। ऋषि कश्यप सूर्य के पिता थे अत यह सूर्यवंशी सिद्ध होते हैं। अरोडों के जो अब तक के इतिहास निकले हैं उनके अनुसार इनका ख्याल है कि परशुराम से अभयदान पाये हुए उरट अथवा अरट नाम के राजा ने सिंध मे अडोर (अलोर) नगर वसाया। उरट के वंशज एव साथी ही अरोड़ा हैं। भविष्य पुराण के जिस श्लोक के अनुसार अरोड़ों ने अपने को अरुट का वंशज होने की धारणा बनाई वह इस प्रकार है:—"नाग वशोद्भवा दिव्या। क्षत्रियास्म मुदाहृता। ब्रह्म वंशोद्भवाश्चान्ये तथा उरूट वंश सभवाः॥" किन्तु यह आश्चर्य की बात है कि उरट के वंशज आपस में ही शादी भी करते हैं। यदि वे एक ही पुरुष की सन्तान हैं तो मनु के विधान के विरुद्ध ऐसा क्यों करते हैं। वास्तव में वात यह है कि पंजाब और सिन्ध में ईस्वी सन् पूर्व की सदियों में अनेकों ऐसे खान्दान थे जो अरट अर्थात् विना राजा की प्रजा कहलाते थे। सारा न्याय नीति और शासन का काम पंचायत द्वारा इन कुल राज्यों में सम्पन्न होता था। सिकन्दर को भी ऐसे लोगों से लड़ना पडा था। आगे की सदियों में इनमें से कुछ लोग सजात तन्त्री हो गये और वे जाटों मे शामिल हो गए। जाटों मे अरोड़ा एक गोत्र भी है। और भी अनेक गोत्र अरोडों के जाटों में मिलते हैं कुछ अराट (अराष्ट्र) अन्य जातियों में भी चले गये। सिकन्दर के साथी और यूनान के महान् इतिहास लेखक प्लिनी ने अरोडों को अपने इतिहास मे अरोटुरी ओरेट्टरी लिखा है। यह केवल भाषान्तर है। प्लिनी के कथनानुसार इन लोगों से सिकन्दर का वास्ता रावी नदी के किनारे पड़ा था। कहा जाता है कि उस समय-लड़ाई के मैदान में १० हाथी और सैंकड़ों घोडे और रथों की सेना लेकर ये मैदान में उतरे थे।

अब से ४०-४५ वर्ष पहिले अरोड़ों में नाता (पुनर्विवाह) की रिवाज न थी किन्तु इनकी जातीय सभा के प्रयत्न से अब यह रिवाज चल निकली है। ऐसा ही खत्री लोगों में भी एक समय था। इस जाति

के बनने के सम्बन्ध में भारतेन्दु बाबू हरिश्चन्द्र ने एक पुस्तक का जिक्र किया है जिसमें लिखा था कि "लव के वंश में किसी राजा के दो स्त्रियाँ थीं। दोनों के पुत्र हुए। छोटी ने राजा पर दबाव डाल कर बड़ी के पुत्र की बजाय अपने पुत्र को राज्य दिला दिया। राज्य का मालिक होने पर छोटे भाई ने बड़े को निकाल दिया जो अपने साथियों सहित राज छोड़ कर बाहर चला गया। मुलतान की तरफ जाकर उसने अपने साथियों तथा आस पास के अन्य लोगों को बुलाकर कहा कि हम सब एक जाति बनाते हैं। उसका नाम अरुट होगा अर्थात् क्रोध न करने वाली। बस जात बन गई।

कनिंघम ने अरोड़ों के सम्बन्ध में इस प्रकार लिखा है—"अरोड़ा जाति ऐसा दावा करती है कि उसने क्षत्रिय के औरस से बनियानी से जन्म लिया है। जब दिल्ली से क्षत्रियों ने वितरित होकर टाडा और सिन्ध देश के अन्यान्य हिस्सों व मुल्तान में आश्रय लिया तो उस समय अरोड़ा लोग भी उनके पड़ोसी थे। किसी युद्ध में अरोड़ा लोगों ने खत्रियों को मदद नहीं दी तब खत्रियों ने इनको बहिष्कृत कर दिया। एक लम्बे अर्से के बाद दीपालपुर के सिद्धभोजा और सिद्धन्यावा लोगों ने बहिष्कार को उठा दिया। शिकारपुर के कोठी वाले और बुखारा और खुरासान के व्यवसायी भी संभवत अरोड़ा हैं।" सभव है जनरल कनिंघम के समय कुछ अरोड़े ऐसा ही मानते हों कि वह क्षत्रिय के औरस से बनियानी के पेट से पैदा हुए हैं किन्तु यह धारणा है गलत। हाँ आगे के शब्दों से यह जरूर जान पड़ता है कि खत्रियों की आपत्ति में अरोड़ा शामिल नहीं हुए और उनका दंड अरोड़ा लोगों को भी यह मिला कि जिन आक्रमणकारियों ने खत्रियों से दीपालपुर राज्य छीन लिया था उन्होंने ही थोड़े दिनों बाद अरोड़ों से अरोड़ कोट (अलोर) छीन लिया। और उसका फल यह हुआ कि फिर इन लोगों को व्यवसाय करके अपना जीवन निर्वाह करना पड़ा। सिखों में अरोड़ों की संख्या खत्रियों से कम नहीं है। और गुरु नानक के सिद्धान्तों में अरोड़ों का एक बड़ा हिस्सा भक्ति रखता है।

खत्री लोगों ने एक लम्बे अर्से से व्यापार, व्यवसाय करना आरम्भ कर दिया था। चूंकि हम देखते हैं कि गुरु नानकदेव जी के पिता भी व्यापार में रुचि रखते थे। यह ठीक तौर से तो अभी तक पता नहीं चल रहा है कि खत्रियों के हाथ से अंतिम तौर से—कब राज सत्ता चली गई और किन कारणों से, किन्तु यह अवश्य जान पड़ता है कि बौद्ध और जैन धर्मों के पतन के दिनों में ही—इनको भी जीवन निर्वाहार्थ व्यापार करने के लिए बाध्य होना पड़ा हो। यह भी संभव है कि जैन धर्म के प्रभाव में आकर ही खत्री लोगों ने खेती और तलवार को नमस्कार कर दिया हो क्योंकि जैन लोग तलवार के साथ ही कृषि-कर्म में भी तो हिंसा मानते हैं: ऐसा अन्य क्षत्रिय कुलों ने भी किया था। एक समय क्षत्रिय अग्रवाल भी जैनधर्म के प्रभाव से ही वैश्य बन गये थे।

कुछ भी हो खत्री जाति को एक बार फिर दसवें पातशाह गुरु गोविन्दसिंह, उनके पिता साहिबजादों और बन्दों ने संसार की महान क्षत्रिय जातियों की कतार में खड़ा कर दिया। भले ही खत्री आज वैश्य के पद आसीन हो गये हों किन्तु उनके एक बड़े भाग को शिष्य बनाकर गुरु लोग उसे बहुत ऊँचा दर्जा दिला गये हैं। हकीकतराय और हरीसिंह नलुआ ने संसार को क्रमश प्रण और शूरता के हिसाब से बता दिया कि हमने जिन खत्रानियों का दूध पिया है वे कितनी ऊँची सिंह प्रसूता क्षत्राणी हैं।

जाट लोग

इस सचाई से कोई भी आदमी इनकार नहीं कर सकता है कि गुरु गोविन्दसिंहजी के मिशन को पंजाब मे जाट लोगों से बढ़कर किसी दूसरी जाति ने पूरा नहीं किया। प्रथम गुरु नानकदेव से लेकर दसवे गुरुदेव तक गुरुओं की सेवा करने शिक्षाओं का पालन करने और अपने को सच्चा खालसा सिद्ध करने मे वे किसी से पीछे नहीं रहे है। सिख समुदाय मे संख्या भी उन्हीं की ज्यादा है। उनके धर्म प्रेम और शौर्य का पता इससे भी चल जाता है कि बारह मिसलों मे सात मिसले जाटों ने खड़ी की थी। रणजीतसिंह के समय मे तो उन्होंने बहुत बड़ा उरुज हासिल किया था। रियासत पटियाला, नाभा, जीन्द और कलसिया उनके प्रबल प्रताप की साक्षी देती है जो उन्होंने पिछली सदियों मे कर दिखाया था। भाई बालाजी का नाम गुरु नानकदेव जी के नाम के साथ उसी प्रकार अमर है जिस प्रकार कि भगवान राम के साथ उनके अनन्य भक्त हनुमान का। भाई मनीसिंह, तारुसिह, शहबेगसिंह और शहबाजसिंह जी की शहीदियाँ आज सिख-जाटों ही नहीं हिन्दू जाटों के हृदयों को भी अभिमान से फुला देती है। विदेशी और विधर्मी शासकों के विरुद्ध सत्रहवीं और अठाहवीं सदी मे सारे देश मे जाटों ने विद्रोह का झंडा खड़ा किया था। पंजाब मे यदि वे केसरिया झण्डे के नीचे खड़े होकर लड़े थे तो राजपूताना और युक्त प्रान्त मे बसन्ती झडे को उन्होंने फहराया था। वीर गोकुला राजाराम और महाराजा सूर्यमल जी की शहीदी ने उन्हे एक समय प्रवल वेग से अनुप्राणित किया था जिसके फलस्वरूप भरतपुर, धौलपुर, मुरसान और वल्लभगढ जैसे राज्यों की नींव पड़ी। जाटों के स्वभाव और धीरता-वीरता की देशी, विदेशी सभी लोगों ने प्रशंसा की है। महमूद जैसे लुटेरे को लूटकर और तैमूर पर हमला करके भारत के उन गये बीते दिनों भी भारतीय वीरता का परिचय दिया। डाक्टर विरटेन साहब ने उनके सम्बन्ध में कहा है—"वे साहसी होते हैं अपनी रीति रस्मों का दृढ़ता से पालन करते हैं। उनका शरीर स्फूर्तिवान और सुगठित होता है।" हिस्ट्री आफ जाटस् के लेखक प्रोफेसर कालिकारंजन जी कानूनगो ने उनके प्रकृत-स्वभाव का परिचय इन शब्दों मे दिया है—"वे खेती करने और तलवार चलाने मे एक बराबर दिलचस्पी रखते हैं। और इस ओर यहाँ तक उन्नति की है कि मेहनत और हिम्मत मे हिन्दुस्तान की कोई अन्य कौम इनके बराबर नहीं है। डीलडौल मे वे राजपूतों और खत्रियों से समानता रखते हैं और भारत के पुराने आर्यों से बहुत मिलते जुलते हैं। ' पंजाब की तमाम कौमों से यह कौम बहुत उतावल और व्यक्तिगत स्वतत्रता चाहने वाली है ' एक जाट करता वही है जिसे वह ठीक समझता है वह स्वतंत्र और खुद पसद है।'

सुल्तान महमूद गजनवी या नादिरशाह या अहमदशाह अब्दाली किसी के साथ उनके किए गए सघर्ष की ओर नजर डालिये, हरेक से और हर जमाने मे उनके जातीय चरित्र का पता चलता है बड़े से बड़े विजेता की दिल दहला देनेवाली तारीफ सुनकर उससे न डरना और बाद मे हो जाने वाले नुकसान का खयाल न करके भागते हुए दुश्मन को खदेड़ते चले जाना लड़ाई में शत्रु से भिड़ जाने पर पूर्ण धैर्य धारण करना और अद्वितीय गम्भीर साहस का परिचय देना युद्ध क्षेत्र मे तथा हार जाने पर आने वाली आपत्तियों का तनक भी खयाल न करना और अपने दुश्मन की निर्दय तलवार के सिखाये हुए सबकों को बहुत जल्दी भूल जाना आदि बातें जाटों के चरित्र का मुख्य अग है।" 'मुगल साम्राज्य के क्षय और उसके कारण' नामक इतिहास में प० इन्द्र विद्यावाचस्पति ने जाटों के इसी जन्मजात स्वभाव का चित्रण इन शब्दों मे किया है—"जाटों मे आज भी एक अल्हड़पन से युक्त वीरता और भोलेपन से मिश्रित उद्दण्डता

विद्यमान है। उन्हें प्रेम से वश में लाना जितना सरल है आँख दिखलाकर दबाना उतना ही कठिन है। धार्मिक तथा सामाजिक दृष्टि से वे अन्य हिन्दुओं की अपेक्षा अधिक स्वाधीन हैं और रहे हैं। लड़ना उनका पेशा है। मनमानी करने में और अपनी आन की खातिर में अपना घर बिगाड़ देना या जान को खतरे में डाल देना जाट की विशेषता है। जाटों की इन्हीं विशेषताओं से प्रभावित होकर 'तारीख पंजाब' में भाई परमानन्द जी को लिखना पड़ा—'पंजाब में खालसा राज्य को स्थापित करके सीमाप्रान्त की तमाम पठान जातियों को काबू में करना और अफगानिस्तान के पठानों को कई दफे हरा देना जो कि हिन्दू जाति के इतिहास में एक अचम्भा समझा जाता है—जाट जाति के वीरों ही का काम था। मैं यह कहना चाहता हूँ कि इस देश में क्षत्रिय के कर्तव्य को जाटों ने यदि राजपूतों से बढ़कर नहीं तो कम भी पालन नहीं किया है।'

हम यह कह सकते हैं कि इस प्रकार के स्वभाव और चरित्र वाली जाट जाति ने सिख धर्म में दीक्षित होकर अपने प्रकृति जन्य क्षात्र तेज में उसी प्रकार उन्नति की जिस प्रकार कि गिलोय नीम वृक्ष पर फल उसके रस को पान करके अपने को और भी अधिक गुणकारी बना लेती है। लेकिन यह सखेद कहना पड़ता है कि भारत की इस जाति के उद्भव और उसके अति प्राचीन कारनामों के सम्बन्ध में बहुत ही कम लोगों को जानकारी है। अधिकांश जाट भी इस सम्बन्ध में बहुत कम जानकारी रखते हैं। हमने इस ओर जो ऊहापोह की है उसके आधार पर हम कह सकते हैं कि जाट कोई एक वंश या कुल नहीं किन्तु वंशों और कुलों का एक जत्था है। अन्य अनेकों विद्वानों ने भी यही बात स्वीकार की है। जैसे कि वर्तमान में सिखों की एक स्वतंत्र जाति बनती जा रही है उसी भाँति किसी समय में जाट जाति के संगठन की भी नींव पड़ी थी। अन्तर केवल इतना है कि सिख लोगों के संगठन का आधार आरंभ में धार्मिकता थी और आगे चलकर वही राजनीति मय हो गया। जाट संगठन का आरम्भ ही राजनैतिक कारणों से हुआ था। जिसे बौद्ध, जैन, और नवीन हिन्दू धर्म ने काफी ढीला भी कर दिया। एक दूसरा अन्तर जाट संगठन और सिख संगठन में यह भी रहा कि जाट संगठन में केवल उन क्षत्रिय खान्दानों का ही समावेश हो सका जो उन सिद्धान्तों के मानने को तैयार हुए जिनकी नींव पर कि जाट संगठन खड़ा हुआ था और सिख संगठन में क्षत्रियेतर जातियों को भी खूब स्थान मिला जैसा कि प्रायः धार्मिक संगठनों में होता है। गुरु गोविन्दसिंह जी द्वारा अनुप्राणित सिख धर्म पूर्णतः जाटों की रुचि के अनुकूल था। अतः इसमें दीक्षित होकर उन्होंने एक बार पुनः अपने को दुनियाँ के प्रकाश में ला दिया। और इसमें तनिक भी सन्देह नहीं कि गुरु गोविंदसिंह यदि बीस वर्ष और भी संसार में रहते तो इन वीर खालसाओं का समस्त उत्तरी हिन्दुस्तान और अफगानिस्तान बिलोचिस्तान तक प्रभाव छा जाता। क्योंकि उनसे एक लंबे अर्से तक धर्म-प्रचार और एक सूत्र में पिरोये जाने का कार्य बन्द रहा था। जिन बारह मिसलों ने अलग-अलग कार्य किये थे गुरुजी के सामने सबकी एक ही तो शक्ति होती और वह एक शक्ति उस समय सारे संसार को हिला देने के लिए काफी थी।

जाट शब्द के उद्भव और जाट जाति के निर्माण के संबंध में हमारी स्थापना यह है कि भगवान् कृष्ण के समय में उस समय की स्थिति के अनुसार क्षत्रियों के दो दल होगये थे। एक दल चाहता था कि देश में जो छोटे २ कुल (कबीलों) के राज्य हैं। इन्हें खतम करके बड़े २ राज्य कायम किए जांय। जरासंध, शिशुपाल, गोनर्द और कंस इसी खयाल के थे। इस खयाल के अनुसार पूर्व में मगध और उसके निकटवर्ती प्रदेशों के छोटे २ राज्यों को जरासंध ने, ब्रज में कंस ने और मध्यभारत में शिशुपाल ने

मिटाना आरम्भ कर दिया। कंस ने अपने बहनोई वासुदेव को इसी कारण से जेल मे डाल दिया चूंकि वे उसके इस कार्य का विरोध करते थे। कृष्ण जब समर्थ हुए तो उन्होने गोप, वृष और नंद लोगों की मदद से कंस को मार डाला और उन्होंने इन कुल राज्यों को जाति राज्यों के रूप मे बदल डालने की बुनियाद डाली। अनेक कुलो के मिलने से जाति-राज्य बनता था इन जाति राज्यों का कोई एक ही राजा नहीं होता किन्तु यह मिलकर एक राज सभा बनाते थे। जिसमें प्रत्येक कुल के प्रतिनिधि शामिल होते थे। महाभारत के एक सदर्भ मे कृष्ण द्वारा ऐसा संघ राज्य बनाने की चर्चा है।

'भेदाद विनाश सघा मा सघ मुख्योशि केशव । यथा त्वा प्राय नोत्सीदे देय सघा तथा कुरु ।।"

इस श्लोक मे नारद ने कृष्ण से कहा है कि हे कृष्ण, सघ राज्य भेद नीति से नष्ट हो जाते है। तुम सघो के मुख्य नेता हो, अथवा सघ ने तुम्हे इस समय प्रधान के रूप में प्राप्त किया है अत तुम इस प्रकार वर्तो जिसमे यह सघ नष्ट न हो सके। आगे के एक श्लोक से यह भी बात साफ जाहिर हो जाती है कि यह सब राज्य अनेकों कुलों के सघ से बना था जो जाति प्रधान था यथा —

"ज्ञातिनाम् विनाश स्याद्यथा कृष्ण तथा कुरू।"

अर्थात् हे कृष्ण ऐसा करो जिससे ज्ञाति जाति को) नुकसान न पहुँचे। कृष्ण का जाति-राज्य आरम्भ मे "यादवा कुकुरा भोजा सर्वे चान्धक वृष्णाय ।" कुलों के सगठन से बना था। आगे चलकर भारत मे अनेको ऐसे जाति राज्य अथवा सजात तत्र कायम हुए। पजाब मे वाह्लीक और शिवि जाति के मद्र, सिन्धु, जर्त आदि कबीले (कुल या वश) थे इन सबने गण स्थापित कर लिए। इसी प्रकार मगध मे वज्जियन जाति का एक जाति-राष्ट्र कायम होगया। सिन्ध राजपूताने मे यौधेय, शाल्व आदि के जाति-राष्ट्र कायम होगए। सिक्खी को धारण करने पर जैसे सिख कहलाते है उसी प्रकार जाति-राष्ट्र के अनुयायी जात कहलाते थे। अरबी और फारसी ग्रन्थों मे जाट को जात और जत ही लिखा गया है कि नागलोगों की भाषा में जिसमे हम उत्तरी पजाबी या प्राकृति भाषा कह सकते है जात का ज्याट या जट मशहूर हुआ। भाषा विज्ञान के पंडित इस बात को जानते है कि सस्कृत त प्राकृत मे ट हो जाता है उदाहरण के लिये संस्कृत भक्त प्राकृत में भट्ट है जो पश्छिमी हिन्दी मे भात और सिन्धी मे भट है। इसी प्रकार संस्कृति का जात प्राकृत मे जट्ट पच्छिमी हिन्दी मे जात और सिन्धी मे जट्ठ उच्चारण होगा। पडितों की सस्कृत मे जाति को ज्ञाति बोलते है बंगाल मे ज्ञातर अथवा जातर और मालवी (सी० आई०) मे न्यात बोलते हैं। इस प्रकार बंगाल के पडोसी सजाततंत्री ज्ञात् (भगवान महावीर भी ज्ञात थे) बोलते थे। मालवा के जैन लोग महावीर के वंश को न्यात (नात) वंशी केवल उच्चारण भेद से बोलते है। रोम की तरफ बढ़ने वाले यह ज्ञाति तत्री ज्ञात अथवा जात की बजाय गाथ पुकारे गये। इन लोगों का भी खत्तियों की भाति एक बडा समूह कृष्ण काल के बाद विदेशों को चला गया था। कहा जाता है जटलेंड भारतीय जाटों का ही बसाया हुआ है। शब्द जात से जाट शब्द बनने की बात कई विद्वानों ने स्वीकार की है। रिसाला जगत के लेखक धर्मवीर पं० लेखराम जी ने लिखा है। "अन्य देशों और भारत की भाषाओं के अन्दर अदल बदल होता है और फार्सी में भी सस्कृति की जाति का जाद, जात बन जाता है। बस बाज सरहदी मुलकों मे जातो से जाटो (अर्थात् जात से जाट 'ले०') बन जाता है अरबी साहित्य जिसमे २७ मशहूर गजवाता (लड़ाइयाँ) होने का वर्णन है। उनमे से एक गजवा (लड़ाई) जात (जाट) लोगों से भी हुई थी जो गजवा जातुर्किा के नाम से मशहूर है। यह वे जात थे जो अरब के पडोस मे अपना प्रभाव जमा चुके थे।

जाटों का इतिहास तो बताता है कि वे अरब और ईरान से भी बहुत आगे गए थे। कर्नल टाड लिखता है कि :—"प्रात. ही बिस्तरे पर उठ खडे होना और स्नान करना शीत प्रधान जर्मनी के लोगों की आदतें बतलाती हैं कि उनके पुरखे भारत से आये थे और गुमान होता है कि वे जाट थे।" स्कन्डेनेविया की धर्म पुस्तक में लिखा है कि यहाँ के आदि निवासी जटेस व जिटस पहले आर्य्य कहे जाते थे। तथा वे असीगढ़ के निवासी थे।"

ईस्वी सन् से ३-४ सदी पूर्व भारत में भी जाटों ने बड़ा गौरव प्राप्त किया था। प्रसिद्ध य्यूची शासक कनिष्क भारत के उन जाटों का उत्तराधिकारी था जो काश्मीर के शिवियों का एक समुदाय तिब्बत को पार करके चीन में जा बसा था और शिवि के बजाय य्यूची कहलाने लग गया था। गुप्त लोगों का भी कारस्कर जाट होने के प्रमाण अभी-अभी खोज से प्राप्त हुआ है।[1] 'अजय जर्टो हूणान्' चन्द्र के व्याकरण का यह शब्द मन्दसौर के राजा यशोधर्मा को जाट बतलाता है। यशोधर्मा वरिक गोत के (जोकि जाटों मे मिलता है) थे इसका प्रमाण ब्याना के विजय स्तम्भ पर खुदी हुई लिपि में है। सिकन्दर से भिडने वाले जिन शिवोई लोगों का यूनानी लेखकों ने जिक्र किया है। उनके सम्बन्ध मे कर्नल टाड ने टसीटस, टालेमी और पिङ्कर्टन के हवालों से इस प्रकार वर्णन किया है। "उनमें सुएवी, हेमेन्द्री और कट्टी भी शामिलथीं।" इससे भी ज्यादा साफ बात मि० डवल्यू कुर्क साहब ने 'ट्राइब्स एन्ड कास्टस आफ दी नार्थ वेस्टर्न प्रावेन्सेज एएड अवध' नामक पुस्तक मे लिखी है उन्होंने अकित किया है :—

"दक्षिणी पूर्वी प्रान्तों के जाट अपने को दो भागों मे विभक्त करते हैं। शिवि गोत्री या शिव के वंशज और कश्यप गोत्री।" मद्र लोगों का भी भारतीय इतिहास मे बड़ा स्थान है वे पुराणों के अनुसार शिवियों की ही एक शाखा हैं। शिवि के दो पुत्र थे एक मद्र और दूसरे केकय। यह पुराणों का हवाला है। बगला विश्व कोप की सातवीं जिल्द में नगेन्द्रनाथ वसु ने लिखा है कि प्रोफेसर लासेन के मतानुसार जाट मद्रों के वंशज हैं। वे शब्द इस प्रकार हैं :—अध्यापक लासेन पडित बोलेन कि महा भारते जे मद्र उ जाति गणे उल्लेख अस्विच जाट जाति ताह दीगं अन्तर्भुक्त।" हमारा इन शब्दों से केवल इतना मतभेद है कि जाट मद्रों के अन्तर्भुक्त नहीं किन्तु मद्र जाटों के अन्तर्भुक्त हैं। कारण कि मद्र तो कबीला (वंश, या कुल) है और जाट है जाति, जिसमें अनेकों कबीले (वंश) शामिल हैं।

इनके अलावा तक्षक, गांधार, नव, कृमि, यौधेय, वृष्णि, भोज, दशार्ण, कुन्तल, सिन्धु, कुशान आदि अनेकों प्राचीन क्षत्रिय खान्दानों का जाटों में निशान मिलता है जाटों का कहना है कि एक समय सारे भाटी जाट थे किन्तु जब राजपूतों का एक नया संगठन खड़ा हुआ तो उनमें से बहुत सारे अपने पुराने स्टाक को छोड़कर राजपूत हो गए। जनरल कनिंघम ने भी लगभग ऐसा ही मत जाहिर किया है। उन्होंने भी सिख हिस्ट्री में लिखा है कि :—"एक समय की महान् पराक्रमी जाट जाति ही रणजीतसिंह के

१. गुप्त राजा कारस्कर जाट थे और उनका गोत्र धारण था। प्रभावती गुप्ता को पूना वाले ताम्र लेखों में धारण गोत का वर्णन है। धारणीय जाट बीकानेर राज्य की सगरिया हनुमागढ़ सूरतगढ़ और दूसरी तहसीलों में पंजाब के किनारे २ पाये जाते हैं। ये लोग कदाचित पजाब के फीरोजपुर और भटिंडा जिलों में भी पाये जाते हैं। अन्य जाटों के समान वे भी गोरे ऊंचे और हृष्ट पुष्ट होते हैं। नागरी प्रचारणी पत्रिका, (भाग १६ अक १—४ पृष्ठ २३१) विहार उड़ीसा रिसर्च जनरल जून सन् १९३४।

समय में समस्त पंजाब की अधिकारिणी थी। .. यह जाति बहुत बड़ी संख्या में थी।.....जाट लोग एक ओर राजपूतों के साथ और दूसरी ओर अफगानों के साथ मिल गए हैं किन्तु यह छोटी २ जाट जाति की शाखा सम्प्रदाय पूर्व अंचल के 'राजपूत' और पच्छिम अंचल के 'अफगान और बलोची' के नाम से अभिहित हैं।" कनिंघम साहब के इस कथन का अर्थ है कि एक समय जाटों की संख्या बहुत थी किन्तु उनमे से कुछ तो राजपूत होगये और कुछ इस्लाम के कारण बिलोच और अफगान कहाने लग गए किन्तु पटियाला आदि रियासतों के जगा और भाटों ने उन्हें इस बात को उलटे प्रकार समझाया कि आप पहले राजपूत थे किन्तु आपके किसी बुजर्ग ने जाटिनी से शादी करली तब से आप जाट होगए। एक समय था कि इस प्रकार की वाहियात बातों पर भी लोग विश्वास करते थे।

जाट और राजपूतों में जो अन्तर है उसका खुलासा मि० आर्जीलेथम ने 'एथोनोलोजी आफ इण्डिया' में इस प्रकार किया है :—

"रक्त मे जाट, परिवर्तन किए हुए राजपूत से न अधिक है और न कम, किन्तु अदल बदल है राजपूत अगर प्राचीन धर्म का पालन करे तो जाट हो सकता है।" इस कथन का सार है कि जाट प्राचीन धर्म (वैदिक) का पालक है और राजपूत अर्वाचीन (पौराणिक) धर्म का पालक। यही दोनों मे अन्तर है वरना दोनों एक हैं। जस्टिस कैम्पबैल ने इसी बात को इस प्रकार कहा है :—

"यह संभव हो सकता है कि राजपूत जाटों मे से है जोकि भारत मे आगे बढ़ गए हैं। और वहाँ हिन्दू जातियों से परस्पर मिल गए हैं तथा ऊचे और कट्टर हिन्दू हो गये हैं। उन्होंने अपने प्राचीन बल वैभव को प्राप्त कर लिया है लेकिन यह सिद्धान्त कि जाट राजपूतों में से हैं और ऊचे दर्जे से घट गए हैं। यह एक ऐसा सिद्धान्त है जिसके लिए बिल्कुल सबूत नहीं है और जो आज वर्तमान उन्नत-शील जाटों के बाहरी वर्तमान आचरण से स्पष्ट तौर से प्रकट होता है। जाट जाति के प्राचीनता और महत्व के ऊपर भारतीय जाति-शास्त्र के एक अद्वितीय ज्ञाता मि० नेस फील्ड ने लिखा है :—

" जाट जदू के वर्तमान हिन्दी उच्चारण के सिवा कोई दूसरा शब्द नहीं है, यह वही जाति है जिसमे श्री कृष्ण पैदा हुए थे।"

किन्तु बौद्ध जैन काल के बाद जो नया हिन्दू धर्म भारत में फैला उसने सभी उन पुराने क्षत्रिय समुदायों के प्रति इसी प्रकार के भाव फैलाए जो शीघ्र ही उनके धर्म में दीक्षित नहीं हुए और राजपूत शब्द को ग्रहण नहीं किया। जाट, अहीर, गूजर, खत्री, अरोड़ों और मराठों सभी के सम्बन्ध मे इसी प्रकार की भ्रांति-मूलक बाते फैली हुई हैं। यही कारण था कि इन युद्ध-प्रिय जातियों को गिरा देने के बाद हिन्दुओं ने सकट भी बहुत झेले। मि० चिन्तामणि विनायक वैद्य ने 'हिस्ट्री आफ हिन्दू मिडिवल इन्डिया' में बड़े खेद के साथ लिखा है:—

"जाट और लुहानों ने अपनी लड़ाकू प्रवृति को अब तक कायम रक्खा है हालांकि कट्टर हिन्दुत्व ने उन्हें गिराने की भरपूर कोशिश की।"

ऊपर के उदाहरणों से यह भली प्रकार सिद्ध हो चुका है कि जाट भी उसी प्रकार आर्य नस्ल से हैं जिस भांति खत्री अरोड़ी और राजपूत। फिर भी हम कुछ प्रमाण यहाँ और उद्धृत करते हैं। 'कार-नामा राजपूत' के लेखक की नजीमुलगनी रामपुरी ने लिखा है —"जाट कौम की रवायतों से उसका मसकन मगरब दरियाये सिन्ध पाया जाता है और यादवों मे से इनका निकास साबित होता है।...इस

कौम को कृष्ण से पैदा होने का गुमान रक्खे होता है।" इसी प्रकार श्री सुख सम्पतराय जी भडारी ने 'भारत के देशी राज्य' नामक महाग्रन्थ में लिखा है — "जाट आर्य वश के हैं और प्राचीन काल में भारत मे उनकी वस्ती होने के एतिहासिक उल्लेख मिलते हैं। यह भी पता चलता है कि उस समय ये (अन्य) क्षत्रियों की भाति उच्च वशीय माने जाते थे किन्तु सामाजिक मामलों में अधिक उदार होने के कारण ये (पिछले जमाने के) ब्राह्मणों की आँखों मे खटकने लगे और उन्होंने इनका जातीय पद गिराने का प्रयत्न किया।" मिस्टर ई० बी० हेवल ने 'हिस्ट्री आफ आर्यन रूल इन इंडिया' मे राजपूत और जाटों को आर्य्य बताते हुए लिखा है कि 'इन दोनों की शारीरिक बनावट में अन्तर इतना है कि जाट कुछ मोटे और राजपूत पतले होते हैं।'

भाषा विज्ञान के ज्ञाता सर हेनरी एम० इलियट के० सी० बी० ने 'डिस्ट्रीब्यूशन आफ दी रेसेज आफ दी नार्थ वेस्टर्न प्राविन्शेज आफ इण्डिया मे लिखा है —

"बहुत समय हुआ मैंने कराची से पेशावर तक यात्रा करके देख लिया है कि जाट लोग कुछ खास परिस्थितियों के सिवा अन्य शेष जातियों से कुछ अधिक पृथक नहीं हैं। भाषा से जो कारण निकाला गया है वह जाटों के शुद्ध आर्यवश में होने के जारदार पक्ष मे है। यदि वे सिथियन विजेता थे तो उनकी सिथियन भाषा कहाँ चली गई ? और ऐसा कैसे हो सकता है कि वे अब आर्य भाषा को-जो हिन्दी की एक शाखा है—बोलते हैं। तथा शताब्दियों से बोलते चले आते हैं। गोंडवाना में यह भाषा हिन्द—की या जाट—की नाम से प्रसिद्ध है। जाटों के आर्यवंश में होने के सिद्धान्त को यदि कतई एक ओर फेंक दिया जावे तो इसके विरुद्ध बहुत ही जोरदार प्रमाण दिये जावेंगे जैसे कि अब तक कहीं नहीं दिये गये। शारीरिक गठन और भाषा ऐसी चीज हैं जो कि केवल क्रियात्मक समानता के आधार पर एक तरफ नहीं रक्खे जा सकते। खास कर जबकि वे शब्द जिनपर कि समानता अवलवित है हमारे सामने आते हैं तो जाट यूनानी या चीनियों से भिन्न पाये जाते हैं।" इलियट साहब के इस कथन से यह भी साफ हो जाता है कि जाटों के शब्दों मे उनके हूण या सिथियन होने की कल्पनाये भी निर्मूल हैं।" इस बात को मिस्टर नेस्फील्ड ने तो यहाँ तक जोर देकर कहा है —

"सूरत शकल कोई समझे जाने वाली चीजे हैं तो जाट सिवा आर्यों के कुछ और हो नहीं सकते।"

इन सब उद्धरणों के अलावा भी जाटों का रहन सहन रस्म और रिवाज सभी वैदिक आर्यों से मिलती जुलती हैं। वे वास्तव में ही पुरातन आर्यों के उतराधिकारी हैं अत इस प्रसग को लवा करना हम अनावश्यक समझते हैं।

खत्री, अरोडों और जाटों की तरह पंजाब की अन्य जातियों ने भी अमृत चख कर अपने को अमर समुदाय मे शामिल किया था। सिखों को अमर समुदाय कहना उस समय तक तनिक भी अतिशयोक्ति नहीं जब तक कि वे इसी भाति अपने सिद्धान्तों के पक्के रहेंगे जैसे कि इस समय हैं। कुछ लोग कहने लगे हैं कि सिखों में अन्धविश्वास है तो हम कहेंगे यह सिख जाति के लिए शाप नहीं प्रसाद है, पतन नहीं अभ्युदय है और त्याज्य हरगिज नहीं किन्तु श्रेय और ग्राह्य है। दसम गुरू के पाच प्यारों मे कई जातियों के रत्न थे। इसी तरह आज के सिख माज मे भी कलाल, दर्जी, मोच, ब्राह्मण, खानी आदि अनेकों जातियों है।

आज भी सिख समाज का वह तेज और शौर्य है कि दलित जातियों में से भी लोग अमृत चखते

ही यह खयाल करने लग जाते हैं कि मैं निस्सहाय नहीं, कमजोर नहीं, और न दबने वाला हूँ। फिर उन लोगों का तो कहना ही क्या? जिनकी पीढ़ी दर पीढ़ी अमृत पान करती आ रही हैं। वे धर्म की रक्षा के लिये हर समय सिर पर कफन बांधे रहते हैं। उनका उत्साह अदम्य है। साहस अपार है और धर्म का प्रेम कल्पना से बहुत गहरा है। इतना गहरा जिसका कोई उदाहरण नहीं दिया जा सकता। इन्हीं सब बातों को देखकर तो एक अंग्रेज ने लिखा था कि उत्तर भारत को मुस्लिम इंडिया बनाने मे मुसलमानों के लिए सिख एक अजेय दीवार साबित हो रहे हैं। दूसरी ओर हिन्दू भी अब पूर्ण विश्वास के साथ समझने लग गये हैं कि भारत के स्वतन्त्र होने पर कोई भी उत्तरी शक्ति तब तक पंजाब को पार नहीं कर सकती है जब तक कि सिख समाज जिन्दा रहेगा।

लेकिन यह सब श्री नानक देव प्रभृति गुरुओं के तप का ही फल है।

तीसरा अध्याय

गुरु नानकदेव जी का जीवन और शिक्षाएं

जन्म और वंश

आज सारा पंजाब और पंजाब से बाहर के सभी पठित एवं इतिहास से जानकारी रखने वाले हिन्दू जिन महापुरुष का नाम आदर और श्रद्धा की दृष्टि से याद करते हैं उन गुरु श्री नानक देव जी महाराज का जन्म सम्वत् १५२६ विक्रमी मे कार्तिक सुदी १५ को वेदी वंश के एक पटवारी कल्यानरायजी के घर माता तृप्ता देवी जी के उदर से हुआ था। कल्यान राय जी तलवंडी गांव मे जो कि लाहौर से कोई ४० मील दक्षिण-पश्चिम है राय बुलारकी जमीदारी मे रहते थे। यह समय लोदियों की हुकूमत का था और दिल्ली के तख्त पर इस समय वहलोल खा लोदी आसीन था।

वेदी लोग खत्री जाति के अग हैं और खत्रियों के अनेक गोतों (कुलों) मे से वेदी एक मशहूर गोत है। वेदी और सोढ़ी गोतों की वजह तस्मीया सिख लेखकों ने इस प्रकार वर्णन की है.—"राम के दोनों पुत्रों ने लाहोर और कसूर दो नगर वसाए। कई पीढ़ियों वाद लव के कालाराय और कुश के कालकेतु हुये। कालकेतु ने कालाराय को देश से निकाल दिया। उस ने सनोढ़ देश मे पहुँच कर वहा के राजा की लड़की से शादी की। तव से उनकी संतान सोढ़ी कहलाने लगी। सनोढ़ देश को मथुरा आगरा से अमरकोट तक फैला हुआ माना गया है। जिस राजा ने अपनी लड़की की शादी कालराय के साथ की थी वह अमरकोट का राजा था।

सोढ़ी राव की पाँचवी पीढ़ी मे विजय राव हुए। उन्होंने अपने पूर्वजों का वदला लेने और अपने राज्य को पुन. प्राप्त करने के लिए कसूर पर चढ़ाई करके कालकेतु के वंशज धीर राय को वहां से हटा दिया। धीरराय भाग कर अवध की ओर चला गया और वहां धीरे-धीरे अपनी एक जमीदारी वनाली। उनकी संतान उधर की ओर ठाकुर कहलाती है। इनके वंश मे एक महात्मा अमृतराय हुए, उन्होंने काशी जाकर वेद पढ़े तव से यह लव वंशी क्षत्रिय वेदी कहलाने लगे। वेद पढ़ कर अमृतराय जो अव वेदीराय कहाने लग गये थे। शास्त्रार्थ के लिये निकले। अनेकों पंडितों को हराते हुए पजाव मे पहुंचे यहां पर अव मुल्क राय राज्य करता था। यह विजय की चौदहवीं पीढ़ी में था। इसने वेदीराय से वेदों का उपदेश सुना और ऐसा प्रभावित हुआ कि अपने राज्य को वेदीराय को देकर आप गंगा किनारे तप करने के लिये चला गया। वेदीराय की संतान मे अंभोज, नरोतम, सल्व, तीन पुत्र हुए। इनमें सल्व सव से वड़ा

था[1] समय के हेर फेर से सल्व के पास केवल २० गांव रह गये।

अंमोज की संतान में नाथ जी, संनू जी, प्रजापति, नारायण और सम्मपाल थे जिनमें नारायण पहिले से ही खेतीबारी और व्यापार करने लग गया था।

संवत् १४५१ में पिंडी भट्टियां के भट्टी राजपूत मुसलमान होगये उन्हें इस उपलक्ष में दस गांव मिले और साथ ही राय की पदवी भी। १४८३ विक्रम में उन्होंने तलवंडी गांव बसाया। और गौंडे से नारायण के बेटे शिवराम बेदी को भी तलवंडी में ही बुला लिया। इसी शिवराम बेदी के घर संवत् १४९० में कालू और संवत् १४९१ विक्रमी में लालू का जन्म हुआ।

संवत् १५१८ विक्रम में राय भोये मर गया। उनका बेटा रायबुलार मालिक हुआ। उसने कालू अथवा कल्याणराय[3] को अपनी जागीर का पटवारी बनाया। इन्हीं कालू के घर माता तृप्ता के उदर से महान् गुरु नानक देव जी ने जन्म लिया।

क्षत्रियों के सम्बन्ध में दूसरे अध्याय में हम बहुत कुछ लिख चुके हैं इसलिए उसे दुबारा दुहराना व्यर्थ होगा। यहां केवल इतना कहना है कि सिख इतिहासकार बेदियों की शृंखला बद्ध वंशावली अभी तक खोज करने में सफल नहीं हुए हैं। यह काम है भी कठिन क्योंकि श्री रामचन्द्र जी से लेकर सुमित्र तक की वंशावली तो पुराणों ने भी दी है किन्तु आगे के लिए उन्होंने भी कोई पता नहीं दिया किन्तु उलटा यह और कह दिया है कि 'इक्ष्वाकूणामयं वंशः सुमित्रान्तो भविष्यति।' अर्थात् भविष्य में इक्ष्वाकु का वंश सुमित्र पर अंत हो जायगा। पुराणों के इस कथन के होते हुए भी लोगों ने आगे वंशावली तयार करने की कोशिश की है। उन्होंने रास्ते निकाले हैं कोई कहता है सुमित्र ने अमुक को गोद ले लिया था कोई कहता है सुमित्र के भाई का लड़का गद्दी का मालिक हुआ किन्तु हम कहते हैं। पुराणों का ऐसा कथन करने का अर्थ दूसरा है बात यह है कि सुमित्र की संतान के लोग एक दम से कट्टर बौद्ध अथवा जैन हो गए। पुराणों के कर्ताओं के लिए तो यह अन्त सही था। किन्तु यह नहीं कह सकते कि जिन लोगों ने सुमित्र से नीचे की वंशावली तयार की है वे सही भी हैं। बेदियों की पीढ़ियों की कुर्सीनामा वली तयार करना तो और भी कठिन है क्योंकि वे लव वंशी हैं और लव वंशियों की तो पुराणों ने भी कोई वंशावली तयार नहीं की है। फिर भी जितना भी इस सम्बन्ध में हम खोज कर सके हैं उसके आधार पर सूरज वंश का एक कुर्सीनामा आगे दे रहे हैं।

नानकदेव जी के जन्म से कल्याणराय के घर में निहायत खुशी हुई क्योंकि आप उनके इकलौते और अंतिम पुत्र थे। पुत्र के लिए मातायें कितनी लालायित रहती हैं और वह भी देर से पैदा हो तो और भी खुशी का ठिकाना नहीं रहता है। कल्याणराय ने इस अवसर पर खूब

जन्मोत्सव

उत्सव मनवाया, मंगलाचार हुए। बधावे गाये गये। कुल पुरोहित हरदयाल पंडित ने आकर जन्म पत्र बनाने की तैयारी की। पंडित के पूछने पर दौलता दाई ने

१. कुछ लेखकों ने एक बात बड़े मज़े की लिखी है कि यह सल्व पांडवों का समकालीन था। पांडव तो अब से पाच हजार वर्ष पहिले पैदा हुए थे जब कि यह सल्व अब से आठ सौ वर्ष से भी ज्यादा पहिले नहीं पैदा हुआ।

२. पंजाबी में गांव को पिंड कहते हैं।

३ इनके कल्याणचन्द कल्याण और कालू कई नाम लिये जाते थे।

बताया लड़का बड़े शुभ मुहूर्त मे हुआ। पैदा होते ही विहँसा है। उसके पैदा होने के समय घर मे दैवी प्रकाश और सुगन्धि फैल गये थे। दाई ने लाकर पुरोहित जी को भी बच्चा दिखा दिया। ठीक समय पर पंडित ने जन्मपत्र तैयार करके कल्यानराव को दिया और सुनाया कि लड़का बड़ा प्रतापी होगा। इसके

इतिहास गुरु खालसा से

प्राण संगली से
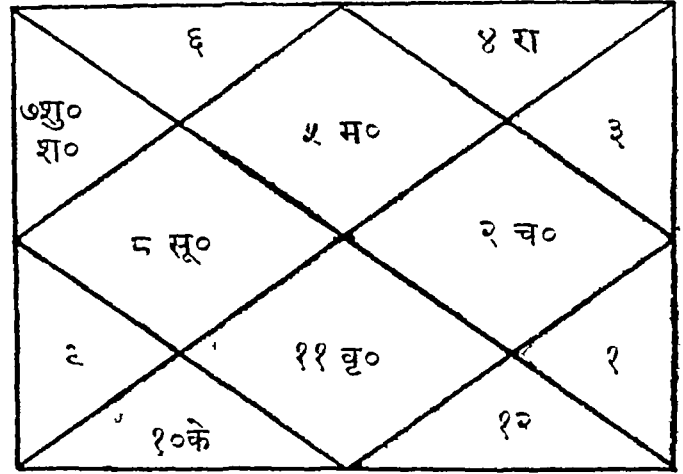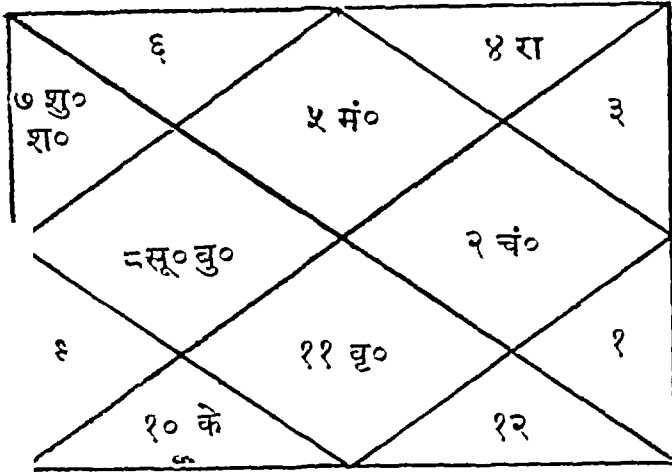
लक्षण तो चक्रवर्तियों जैसे है। तुम्हारे कुल को उजागर कर देगा। नाम इसका नानक होगा, कल्यानराय जी अपने पुत्र के ऐसे शुभ लक्षण और उज्वल भविष्य को सुनकर बड़े प्रसन्न हुए। पुरोहित जी को खूब दान दक्षिणा दी गई।

नाम पर वहस

नानक जी के नाम पर वहुत वहस होती है। कुछ लेखकों ने लिखा है कि शायद गुरु जी अपनी ननसाल मे पैदा हुए थे—पंजाब मे ऐसा रिवाज भी है कि प्राय: स्त्रियाँ प्रसव के समय मायके चली जाती हैं—अत' उनका नाम नानक रक्खा गया। कुछ इतिहासकारों ने लिखा है कि चूं कि उनकी वड़ी वहिन का नाम नानकी था। इसलिए नानक नाम रक्खा गया। कुछ लोग यह भी लिखते है कि पुरोहित ने नानक नाम इसलिए रक्खा कि यह बच्चा हिन्दू, मुसलमान दोनों के लिए प्रिय और हितकारी सिद्ध होगा। अपने-अपने दृष्टिकोण से यह सभी कथन सही हो सकते है किन्तु हमें जो ठीक कारण नानक नाम रखने का जान पड़ता है वह यह है। गुरु जी का जन्म जिस घड़ी और नक्षत्र में हुआ था उसके अनुसार उनके नाम का पहला अक्षर 'ना' होना चाहिये। ज्योतिष शास्त्र के अनुसार बारह राशियाँ हैं सत्ताईस नक्षत्र हैं। यह बारहों राशियाँ बारह महीनों पर बर्तती हैं उदाहरणार्थ बृख राशि जेठ महीने और मकर राशि माघ महीने पर बरतती है। गुरुजी का जन्म कार्तिक की पूर्णिमा को हुआ था अत उस समय वृश्चिक राशि थी। इसी प्रकार सत्ताईसौ नक्षत्र वारी-वारी से इन बारहों राशियों पर वरतते है। उनका बरतने का क्रम यह है कि सालभर मे उन्हे बारह रापियों पर घूम लेना होता है। गुरुजी के जन्म समय वृषिक राशि पर अनुराधानक्षत्र था नाम रखने की प्रणाली में—ज्योतिप ग्रन्थों में—कुछ अक्षर मुकर्रिर हैं। अत: उसके अनुसार तो बच्चे के नाम में प्रथम अक्षर 'न' होना चाहिए था। इस अक्षर पर नारायण, नागपाल, नाथ, नानक आदि नाम रक्खे जा सकते हैं चूंकि नारायण और नाथ कालू जी के दादे पड्दादों के नाम थे। अत. पंडित ने नानक नाम ही उचित समझा। नानकी नाम पहिले से ही उनकी बहिन का था भी। इसलिए पंडित को और भी सहूलियत होगई। हम समझते हैं कि वहिन नानकी का नाम भी शायद घड़ी मुहूर्त और राशियों के

विचार से ही रक्खा गया होगा। इस धारणा में कुछ सार भी दिखाई देता है। क्योंकि हम देखते हैं। दोनों बहिन भाइयों के स्वभाव में बहुत कुछ समानता भी है घर के अन्य सभी कुटुम्बी नानकदेव जी के भक्ति भाव और मनोवृत्ति के विरोधी हैं किन्तु नानकी जी ने कभी एक शब्द भी अपने भाई के विचारों के खिलाफ नहीं कहा, धर्म परायणता, दयालुता, पवित्रता सभी गुण नानकी में मिलते हैं। परिवार के लोगों मे नानकी ही पहिला व्यक्ति था। जिन्होंने नानकदेवजी की अलौकिक शक्ति को पहचाना।

"पूत के पॉव पालने मे ही दीख जाते है।" यह एक लोकोक्ति है जिससे बच्चों के सम्बन्ध मे यह खयाल कर लिया जाता है कि वह बडा होने पर कैसा होगा। बचपन वास्तव मे नींव है। गुरु नानक जी की यह नींव भी भक्ति और दयालुता पर ही खडी हुई थी। बच्चों में

बालकपन

खेलते समय वे उनके साथ प्रेम का व्यवहार करते उन्हे ईश्वर सम्बन्धी भजन सुनाते। घर की चीजों को उठाकर गरीब बालकों को देते-देते या पड़ौसी गरीब घरों मे दे आते। मॉ बडा लाड़ करती थीं। बडे प्रेम से रखती थीं और उन प्यार के साथ इस कार्य के लिए डपटती भी कि वह घर की चीजों को बाहर क्यों दे आता है। मॉ ने एक दिन स्वप्न में देखा एक सिंहासन पर बालक नानक बैठा है और ऋषि मुनि एवं देवता आकर उसकी स्तुति कर रहे है। उस दिन उनका प्यार और भी बढ़ गया।

एक दिन नानकदेव जी की मौसी अपनी बहिन से मिलने आई। उसने देखा बालक नानक अच्छी चीज का सग्रह अपने लिए नहीं करता किन्तु अड़ोस-पड़ौस के गरीब बालकों को दे देता है या फकीरों को बॉट देता है। उसने कहा बहिन तेरा नानक तो पागल लड़का है। नानकजी हॅसकर बोले किन्तु मौसी तेरे घर मे मेरा जैसा ही एक पागल होगा (आगे चलकर हुआ भी ऐसा-उनकी मौसी का लडका रामरत्न घर-बार छोडकर सत हो गया। जिसका कसूर में स्थान भी है) कहा जाता है उनके बैठने, खेलने, कूदने और हॅसने के सभी ढग निराले और मोहक थे।

सवत १५३२ विक्रमी मे जब नानकदेव जी की अवस्था सात वर्ष की हुई तो कल्यानराय जी ने उन्हे लेजाकर गोपाल पडित की पाठशाला मे हिन्दी पढ़ने के लिए बिठाया। जो आगे चलकर ससार को पढावेगा और पढावेगा वह चीज जो मुरदा जगत को जीवन ज्योति प्रदान करेगी। प्रेमवश पिता ने उसी पुत्र को पडित के सुपुर्द किया।

शिक्षा दीक्षा

आदि गुरु ग्रन्थ साहब महला १ मे एक श्रीराग इस प्रकार है—"जालि मोहु घसि मसु करि मति कागदु करि सारु। करि चितु लिखा री गुरु पुछि लिखु विचारु॥ लिखि नाम सालाह लिख, लिखि अन्तु न पारावार॥१॥ बाबा इहु लेखा लिखि जाणु, जित्थै लेखा मागियै तियै होइ सचा निसाणु॥ अर्थात्—हे चित्त रूपी लेखक मोह को जलाकर त्याग रूपी स्याही बना और बुद्धि रूपी कागज पर प्रेम रूपी कलम मे सत्यासत्य का विचार लिख और लिख परमात्मा का नाम जिसका पार ही न आ सके। बाबा अगर ऐसा लिखना जान गया तो जहॉ भी लेखा (हिसाब) मांगा जायगा वहीं सचाई सिद्व (निशान) होगा।" इसके लिये श्रद्धालु सिखों का कथन है कि गुरुदेव ने यह वाक्य गोपाल पडित के प्रति कहे थे। गुरुजी का चित्त आठो पहर भक्ति मे डूबा रहता था, चलने-फिरने उठते बैठते ध्यान उनका परम पिता परमात्मा की ओर ही रहता था। पाधे के बार-बार यह कहने पर कि लिखो गुरु जी ने उसके हृदय कपाट को खोलने के लिये अवश्य ही ऐसा कह दिया होगा क्योंकि जिस लिखने की अत्यन्त आवश्यकता है वैसे लेखे की ओर तो ध्यान तक नहीं है और उस लेख के लिए इतनी सिर पच्ची करता है। गुरुदेवजी के

लिये पढ़ना गौण था ध्येय नहीं। ध्येय तो भक्ति थी और पाडे गोपाल जी का ध्येय (मकसद) ही पढ़ना, पढ़ाना था। गुरुजी के इस पद मे यही उपदेश है कि ध्येय तो इस प्रकार का लिखना नहीं किन्तु "लिखना सालाह का है, जिसका कि अंत न पारावार। कारण कि (बाबा) 'इहु लेखा लिख जाणु' तो "जित्थै लेखा मांगि ऐ तित्थै होइ सचा निसाणु" परन्तु ऐसा लिखना उस समय तक नहीं आ सकता जब तक कि "जालि मोहघसि मसु करि मति का गदु करि सारु" कृत्य न किया जायगा और "काट चितु खिलारी गुरु पुछि लिखु विचारु" की वृत्ति न बनाई जायगी।

इस हृदय स्पर्शी शब्द का गोपाल पाडे पर जो भी असर पड़ा हो किन्तु इसका यह मतलब नहीं है कि गुरु जो पढ़ने से वंचित रह गये हों किन्तु यह सही है कि पढ़ने के पीछे उन्होंने अपनी लौ को परम पिता परमात्मा की ओर से न हटने दिया।

उस जमाने मे हिन्दी की शिक्षा ऐसी कोई लंबी चौड़ी न होती थी आज की तरह भूगोल, भौमितिक, ड्राइंग, तवारीख और बीज गणित के इतने सारे मजमून न थे। अक्षरज्ञान के अलावा [ब]ही खातों का हिसाब और बस हिन्दी की पढ़ाई खतम। पढ़ने लिखने मे दत्तचित न होते हुए भी गुरु [न]ानक देव जी जैसे मेधावी महापुरुष के लिये इन बातों को सीख लेने मे देर ही क्या थी। पंडित तो [ग]ुरु जी की बुद्धि से चकित ही रहता था।

इसके बाद ३ वर्ष बाद पिता ने अपने प्यारे पुत्र को संवत १५३५ विक्रम मे प० ब्रजनाथ जी [श]र्मा के पास संस्कृत सीखने के लिये बिठाया। "ॐम नम सिद्धम" पंडित ने लिख कर गुरु जी को दिया और कहा इसे याद करलो। भला गुरु जी को इसमे याद करने को क्या था। उन्होंने कहा पंडित जी इसका अर्थ भी समझा दीजिए किन्तु पंडित ने प्रचलित प्रणाली के अनुसार केवल रट लेने पर ही जोर दिया। संस्कृत के पुराने ढंग के शिक्षक अब भी रटाते ही है। अर्थ साथ ही साथ नहीं बताते हैं। गुरु जी के दुबारा अर्थ बताने के लिए जोर देने पर पंडित ने कहा अभी आपको इस प्रकार अनेकों ग्रन्थ कण्ठस्थ करने होंगे। गुरु जी ने इस पर उत्तर दिया भला उन ग्रन्थों को कण्ठ करने से क्या लाभ जिनका अर्थ ही मालूम न हो। पंडित ने ओंकार का अर्थ अपनी धारणा के अनुसार गुरु जी को बताया किन्तु गुरु जी उससे संतुष्ट नहीं हुए और उन्होंने स्वयम ही ओंकार का ऐसा विवेचना युक्त अर्थ किया कि पंडित विस्मत रह गया। पंडित पर गुरु जी की योग्यता की वह छाप लगी कि वह स्वयम गुरु जी की ओर आकर्षित होने लगा और उनकी मानव जीवन को ऊँचा उठाने वाली और कल्याण प्रद बाते बड़े चाव से सुनता।

सं० १५३७ विक्रमी मे कल्याणराय जी ने नानक देव जी को मौलाना कुतुबुद्दीन के पास फारसी पढ़ने के लिये बिठाया। सिख तवारीखों मे लिखा है कि यहाँ भी नानक जी ने अपने चातुर्य से मौलवी साहिब को चकित कर दिया। अलिफ बे, पे आदि परमात्मा सम्बन्धी ऐसे सुन्दर अर्थ कि कि मौलवी कुतुब आनन्द विभोर हो गया और उसने गुरुजी को मन ही मन कोई वली अन्दाज कर लिया। और जब तक गुरु जी उसके मकतब मे गये वह उन्हे सम्मान की दृष्टि से देखता रहा।

इसी बीच नानक देव जी ग्यारह वर्ष के हो चुके थे हिन्दू धर्म शास्त्रों की मर्यादा के अनुसार क्षत्रिय के बालक का जनेऊ इस उम्र मे हो जाना चाहिये। इसलिये कल्यानराय जी ने भी यज्ञोपवीत संस्कार कराने का आयोजन किया। घर मे और बिरादरी मे बड़ी खुशी मनाई जा रही थी। साफ सुथरे और सजे हुए घर के बीच यज्ञ मंडप मे पंडित लोग स्वस्ति वाचन और मंगलाचारण पढ़

रहे थे। स्त्रियों गीत गा रही थीं वेद मत्रों की ध्वनि से वायुमंडल गूंज रहा था। पुरोहित हरिदयाल ने ठीक मुहुर्त मे कहा बच्चे को लाओ। नानक देव ने यज्ञस्थल मे पहुंचकर पंडित से कहा—"मुझे ऐसा जनेऊ पहनाओ जो न तो कभी टूटे और न बदला जावे। जो ईश्वरीय हो। जिसमें दया का कपास हो, संतोष के सूत से जिसकी जत बनाई गई हो। ऐसे जनेऊ को पहन कर ही कोई सभ्य हो सकता है।

ग्रन्थ साहब मे इस भाव को इस प्रकार व्यक्त किया गया है —

दया कपाह सतोष सूत जतु गंढी सतु वट्टु।
ऐह जनेऊ जीय का हई त पाडे घतु॥
ना एहु तुट्टे न मल लगे न एहु जले न जाइ।
धन्न सु माणस नानका जो गलि चल्ले पाइ॥ श्लोक महिला १

हिन्दू धर्म मे जनेऊ केवल हिन्दुत्व और खास करके द्विजत्व का परिचायक है। स्वच्छता और स्वस्थता के लिये जनेऊ प्रेरक है किन्तु नानक देव जी के समय में जनेऊ धारण करने के माने ही उलटे थे। लोग अशुद्ध भी रहते थे। झूठ भी बोलते थे पाप भी करते थे। मूर्ख और निरक्षर भी बने रहते थे किन्तु केवल जनेऊ धारण कर लेने ही के कारण वे अपने को द्विज, ब्राह्मण या श्रेष्ठ समझने लग जाते थे। एक तरह से उन दिनों जनेऊ ढोंग का आधार बना हुआ था। व्यर्थ की अहमन्यता जनेऊ धारण से पैदा हो रही थी। ऐसी हालत का गुरुदेव ने विरोध किया यह हिन्दूधर्म के भले ही की बात थी। यह विरोध जनेऊ का नहीं किन्तु नाशकारी और गलत भावना का था जो जनेऊ पहनते ही उस समय पैदा हो जाती थी।

यज्ञोपवीत सस्कार के इस उत्सव पर हुई बहस का यह नतीजा हुआ कि लोग गुरु जी के सम्बन्ध में अनेक प्रकार की बातें कहने लग गये कोई कहता इसका दिमाग ठीक नहीं है, कोई कहता यह तो कुराह पर चलने लगा है। कुछ लोग सचाई के साथ भी उनकी बातों को विचारने लगे।

कहा जाता है कल्यान राय जी को पैसे से बड़ा मोह था वे अधिक से अधिक कमा लेने और संग्रह करने की रुचि के लोक व्यवहारी आदमी थे। यद्यपि नानक देव उनके एक ही पुत्र थे किन्तु वह यह नहीं बर्दास्त कर सकते थे कि यह एक लड़का भी बैठा ठाला रह सके इसलिये

घर के धंधों में

उन्होंने देखा कि जब इसका पढ़ने लिखने में चित नहीं लगता है तो उन्होंने अपने पुत्र को गायें चराने के लिए जंगल भेजना आरंभ कर दिया। उस समय क्षत्रियों में आज की तरह लालापन नहीं आया था वे खेती और पशु पालन के काम को बुरा नहीं समझते थे। भगवान् कृष्ण ने बालक पन में गायें चराईं थीं। हजरत मुहम्मद भी बकरी चराते थे। काम और धंधों को हेठा समझने की रवाज तो अब चली है। नानक जी भी गायें चराने जाने लगे। साथ के बालकों में अपना प्रचार भी करने लगे। जंगल में संगति बैठती और हरि चर्चा आरंभ होती। नानक जी उपदेश करते और दूसरे बच्चे ध्यान से सुनते। गायों के लिये छुट्टी थी जहाँ तक भी तबीयत आये चरें। कुछ लोगों ने कल्यानराय जी को उलाहना दिया कि आपका पुत्र जब से गायों को चराने जाने लगा है। हमारा नुकसान होता है क्योंकि दूसरे लड़के भी उसकी हरि कथा सुना करते हैं। पशुओं की रखवाली नहीं करते। इस तरह का श्री नानक देव का ढंग देखकर कल्यानराम बड़े घबराये क्योंकि वह तो लोक व्यवहारी आदमी थे। सोचने लगे इस तरह से तो घर बरबाद हो जायगा और लड़का जब न तो पढ़ता है और न घर का काम करता है तब काम कैसे चलेगा। साथ ही घर के माल को फकीर फुकरों को बाँट

कर बर्बाद और करता है। उन्हे तो बड़ी-बड़ी आशायें थी बड़े-बड़े उनके मनसूबे थे वे सोचते थे मैं लड़के को ज्यादा से ज्यादा पढ़ाऊंगा अगर वह मेरे मन की माफिक पढ़ गया तो किसी बड़े नवाब के यहाँ दीवान बनवा दूंगा और अगर दुकानदारी का काम सीख गया तो एक बड़ा सौदागर बना दूंगा किन्तु जब इन दोनों ही ओर से कल्यान राय निराश हुए तो हरिदयाल पाडे[1] से जाकर कहा महाराज खूब जन्म पत्र बनाया।[2] तुम तो कहते थे यह लड़का बड़ा प्रतिभावान और वैभव सम्पन्न होगा। क्या घर की बर्बादी का ही नाम वैभव सम्पन्नता है? पंडित के पास से आकर घर अपनी गृहणी से कहा, लड़का तो किसी भी काम का नहीं।

इधर श्री नानक देव जी का भी यह हाल था कि वे बहुत उदास रहते थे। घर से जंगलों को निकल जाते, भूख प्यास की कोई चिन्ता नहीं करते। वक्त बे वक्त घर आते। तबीयत मे आता तो कुछ खाते पीते। माता तृप्ता जी अपने बच्चे की यह हालत देख कर घबरा गई कल्यानराय जी से उन्होंने समझा कर कहा कि हो, न हो, बच्चे को कोई तकलीफ है। कल्यानराय जी नानक जी से वैसे खिन्न थे किन्तु आखिर थे तो पिता, घबरा गये और वैद को बुलाकर लाये। वैद क्या इलाज करता और नानक देव जी क्या इलाज कराते उन्हे कोई शारीरिक रोग थोड़े ही था इसलिये जब वैद्य उनकी नाड़ी टटोलने लगा तो उन्होंने कहा.—"वैद बुलाइया वैदगी पकड ढढोले बाँह। भोला वैद न जानई करक कलेजे माहि ॥१॥ वैदा वैद सु वैद तू पहला रोग पछाण। ऐसा दारू लोड लहि जित बर्जं रोगा घाण ॥२॥ जित दारू रोग उठि अहि तन सुख बसै आइ। रोग गवायहि आपणता नानक वैद सराय ॥३॥" (श्लोक महला १) इन शब्दों का वैद हरिदास पर ऐसा असर पड़ा कि उसने नानक देव को नमस्कार करके अपनी श्रद्धा अर्पित की और कल्यानराय जी से कहा कि आप कहीं भी न भटकिये तुम्हारा पुत्र रोगी नहीं किन्तु वह इस दुखी देश के रोग को दूर करने के लिए ईश्वर का भेजा हुआ वैद्य है।

रायबुलार का आकर्षित होना

तलवंडी का जागीरदार रायबुलार एक खुदा परस्त औ भली प्रकृति का आदमी था। वह फकीर लोगों की पीरी और करामातों मे खूब विश्वास रखता था। नानक देव जी का भी वह शनैः शनैः भक्त होता जा रहा था। उसके आकर्षित होने की शुरूआत एक किसान की शिकायत के झूठे होने वाले दिन से होती है। श्रद्धालु सिख उस घटना का वर्णन इस प्रकार करते है कि जब नानकजी अपनी गायों को चराया करते थे तो एक किसान का सारा खेत गायों ने उजाड़ दिया। किसान श्री नानक देव जी समेत सभी चरवाहों को राय बुलार के पास पकड़ कर ले गया और कहा कि इन लोगों ने अपने पशुओं से मेरे खेत को चरवा दिया है। राय बुलार के पूछने पर नानक जी ने कहा इसका खेत तो हरा भरा खडा है यह कैसे कहता है कि चरवा दिया। राय बुलार ने अपने आदमी को उस किसान के साथ खेतों की

१. पजाब में पाडे को पाधे कहते है।

२. प० हरिदयाल ने जन्म पत्र के अनुसार बताया था यह बालक लोक प्रसिद्ध होगा। इसके ग्रह बहुतऊचे है। दरअसल बात यह है कि जिस अनुराधा नक्षत्र में वे पैदा हुये थे वह नक्षत्र देवता वर्ग में है। और वह वृश्चिक राशि ब्राह्मण वर्ण है। इस प्रकार के योग से नानकदेव जी के सम्बन्ध में पडित ने जो कुछ कहा था वह अपने उस विश्वास के माफिक ठीक कहा था जो उसने ज्योतिष शास्त्र के पढ़ने से बनाया था।

जाच करने भेजा, किसान ने लौटकर कहा में नहीं जानता यह क्या जादू होगया है। अब तो खेत हरे खडे हैं। वस इसी दिन से राय बुलार यह खयाल करने लगा कि कल्यानराय का लड़का "यों ही साधारण आदमी नहीं है।"

इसके बाद उसने एक दिन जबकि वह अपने आदमियों समेत शिकार खेलकर लौट रहा था देखा कि बालक नानक एक पेड़ के नीचे सो रहा है और एक नाग फन को फैलाकर उनके चेहरे की छाया कर कर रहा है क्योंकि ऊपर से पेड की पत्तियों में छन छन कर धूप आ रही थी। बुलार ने मन ही मन में गुरुदेव की वन्दगी की तथा अपने साथियों को भी यह कौतुक दिखलाया। इन घटनाओं को देखने के बाद राय बुलार पूरी तरह से गुरुजी की ओर आकर्षित हो गया। उसने कल्यानराय जी से कहा कि कालू तेरे घर में जो लड़का पैदा हुआ है। वह कोई मामूली आदमी नहीं है। अवश्य ही वह कोई वली है।

जहाँ तक भी हमें ससार के धार्मिक महापुरुषो के इतिहास का पता है वहाँ तक हम कह सकते हैं कि उनके उन महान कार्यों के साथ जो उन्होंने लोक उद्धार के लिए किये थे करामातो का भी एक बडा सिल-सिला है। भगवान कृष्ण ने गोवर्द्धन पहाड को अगुली पर उठा लिया, हजरत मुहम्मद ने चाद के दो टुकड़े कर दिये। भगवान वुद्ध ने मुरदे को जिया दिया। हजरत मूसा ने दरियाव को फाट दिया। आदि आदि। ऐसा सिलसिला गुरु नानक देव जी के उन महान सुधार-कार्यों के साथ भी लगा दिया गया है जो उन्होंने हिन्दू जाति को अमर करने के लिये किये। इस तरह के कथन से हमारा यह मतलब नहीं कि उपरोक्त महा पुरुष करामाते स्वत दिखाते थे या भक्तजन उनके सामर्थ्य पूर्ण कार्यों को ही अपनी सामर्थ्य से वाहर होने के कारण करामात समझ लेते थे। हमारा तो खयाल है महापुरुष संसार के लिए ईश्वरीय देन होते हैं और उनके अनेकों कार्य भी दैवोत्तर होते हैं। रायबुलार पर भी ऐसे ही दैवोत्तर कार्यों का प्रभाव पडा था और वह उत्तरोत्तर वढता ही गया।

शेख फरीद

पाक पट्टन मे शेख फरीद की समधि पर उन दिनों वड़े भारी मेले [1] लगते थे। कल्यान राय जीके मीरासी मरदाना ने नानक देव को मेला देखने के लिये उत्साहित किया। नानक तो स्वत ऐसी वातों के लिये तयार रहते थे। राजी हो गये और दोनों पाक पट्टन पहुँचे। क्या हिन्दू क्या मुसलमान हजारों ही आदमी वावा शेख फरीद की समाधि पर श्रद्धा के फूल चढा रहे थे। गुरु देव ने यह सब कुछ देखा किन्तु वह इस पाखड को देखने थोडे ही आये थे वे तो फकीरों से ज्ञान चर्चा करना चाहते थे। उन दिनों वहाँ का महंत शेख इब्राहीम था। गुरुजी ने उसके साथ सत्संग का प्रस्ताव रक्खा पहिले तो इब्राहीम ने सोचा यह कमसिन वालक उनके साथ क्या ज्ञान चर्चा करेगा किन्तु जव वाते हुई तो इब्राहीम पर गुरुनानक का वडा असर पडा। यहाँ गुरुजी ने जो उपदेश दिया वह गुरु ग्रन्थ साहव में मारू राग की वार मे लिखा हुआ है। यह घटना संवत १५४१ विक्रमी जेष्ट की पूर्णमासी की है। वरावर तीन दिन तक साधु संतो और फकीरों से सतसंग करके जव गुरुजी घर लौटे तो कल्यान राय जी ने उन्हें एकान्त मे विठाकर सिर पर हाथ फेरते हुए समझाया कि वेटे इस तरह विना काम काज के इधर उधर घूमने से हमारा काम कैसे चलेगा। कुछ तो तुम्हें करना ही चाहिए। रात को माँ ने भी वड़े प्यार से उन्हें समझाया। माँ तो दुखी भी हुई कि वेटे तुम मुझे इस तरह छोड़कर

१. इस घटना को डा० गुरुदासिंह जी और दूसरे कई लेखक सुल्तानपुरा के वाद की मानते हैं।

बिना ही कहे सुने घर से चल देते हो किन्तु माँ बिचारी को क्या पता था कि तेरा पुत्र आगे चलकर सैकड़ों माताओं के पुत्रों को सन्मार्ग पर लाने का देवोपम कार्य करेगा।

- कल्यानराय ने यही उचित समझा कि लड़के को व्यापार में लगा दें इससे उसका चित भी बँटा रहेगा और ठाली न होने की वजह से फकीर फुकरों और वैरागियों के झंझट से भी दूर रहेगा, अत. उन्होंने श्री नानक देव को रुपये देकर कहा कि ये रुपये लेकर शहर जाओ और वहां से कुछ ऐसा सौदा लाना जो खरा हो और साथ ही मुनाफे का हो। क्योंकि अभी तक उन्होंने अपने पुत्र को अकेला कहीं भेजा था नहीं। इसलिए भाई बाला जी को साथ कर दिया। भाई बाला सिन्धू गोत के जाट जमीदार के लड़के थे। दोनो चूहड़काने की ओर चले। देखा साधुओं का एक दल पड़ा हुआ है। बस उधर को मुड़ पड़े। इन साधुओं को कोई कबीर पंथी बतलाते हैं कोई गोरखपंथी और कोई निर्वाने। इनके महन्त संत रेन के साथ नानक जी ने ज्ञान चर्चा की। इसी बीच उन्हे मालूम हुआ कि यह साधु तीन दिन से भूखे हैं। इस बात को सुनकर नानकजी को बड़ा दुःख हुआ और उन्होंने उसी समय भाई बाला जी को चूहड़काना गांव में भेज कर दाल चावल और आटा घृत मंगा दिया। कहा जाता है कि भाई बाला ने नानक जी को इस बात का भी ध्यान दिलाया था कि हमें तो आपके पिता जी ने सौदा खरीदने भेजा है किन्तु वह नानक की आज्ञा को टाल नहीं सका। अब आगे किसलिये जाना था। अतः लौट कर गांव आ गये किन्तु नानक ने पिता जी की नाराजगी को धीरे-धीरे खतम करने के उद्देश्य से घर जाना ठीक नहीं समझा वहीं एक पेड़ पर ठहर गए। यह स्थान आजकल तम्बू साहब के नाम से मशहूर है। भाई बाला भी सीधे कल्यानराय के पास न पहुँचे घोड़ों को तो कल्यानराय के यहां भिजवा दिया और खुद अपने घर को चले गए। कल्यानराय समझ गये – मेरे मन कछु और है करता के मन कछु और।" किन्तु वे बिलकुल कर्ता के भरोसे पर रहने वाले आदमी न थे। और कोई ही संसारी आदमी ऐसा होता है। बाला जी से सारा हाल दर्याफ्त करके कल्यानराय जंगल में पहुँचे और श्री नानक देव जी को फटकारते हुए घर ले गए। तृप्ता देवी से कहा, ले देखले अपने बेटे की करतूत। माता ने बीच में पड़ कर मार पीट को रोक दिया। हम देखते हैं माता यशोदा ने भगवान कृष्ण को ठीक करने के इरादे से ऊखल से बांध दिया था। वह बेचारी क्या जानती थी कि भविष्य में कृष्ण अवतारों में गिना जायगा। यही बात कल्यानराय के भी सम्बन्ध में है। नानक देव जिन सिद्धान्तों को लेकर संसार में हमदर्दी, प्रेम और भक्ति फैलाना चाहते हैं कल्यानराय जी के लिए वे ही बातें और कार्य नाकाबिले बर्दाश्त जान पड़ रही थीं।

रायबुलार ने जब यह समाचार सुना तो कल्यानराय को अपने पास बुलाया और कहा नानक देव ठीक कहते हैं कि पिता जी मैंने सच्चा ही सौदा किया है। इस सौदे में कोई घाटा नहीं है। बिलकुल खरा और धोखे धड़ी से खाली है। आगे बुलार ने फिर कहा ऐसे पुत्र सब किसी के घर नहीं पैदा हुआ करते हैं। बली होकर भी वे तेरी डांट डपट सब स्वीकार करते हैं। एक दिन सारी दुनियाँ जिसकी पूजा करेगी उसे तुम दस बीस रुपये के लिये तंग करते हो यह लो बीस रुपये। उनके खर्च किया हुआ रुपया मुझसे लेते रहना। तुम उनसे कुछ भी न कहना। कल्यानराय शर्मिन्दा होकर घर को चले आये।

रियासत कपूरथला में सुलतानपुर एक शहर है उन दिनों यहां पर दौलतखान नाम का मुस्लिम सूबेदार था। एक प्रकार से वही मालिक था। गुरु जी की बहिन नानकी का विवाह दौलतखाँ के कारिन्दे

सच्चा सौदा

जयराम के साथ हुआ था। जयराम बहुत ही नेक और सहृदय व्यक्ति थे। संवत १५४१ वि. के फागुन में वह तलवंडी गए। वहां उन्होंने नानकदेव के प्रति पिता द्वारा किये जानेवाले कठोर बर्ताव की बातें सुनीं और सांकेतिक तौर पर राय बुलार ने भी कहा अत. वह नानकदेव जी को सुलतानपुर ले गये। कहा जाता है रायबुलार ने कल्यानराय जी को भी सलाह दी थी कि नानक देव को जयराम जी के साथ सुलतानपुर भेज दिया जाय।

सुलतानपुर जाना

बहिनोई के साथ सुलतानपुर को विदा होते समय नानक देव जी राय बुलार से मिलने के लिए गये थे। चलते समय कल्यान राय ने एकान्त में श्री नानक देव जी को कारबारी आदमी बनने के लिये बहुत समझाया। माता तृप्ता की आँखों में आँसू डबडबा आए, माँ का हृदय होता ही कोमल है। पुत्र विछोह उनके लिए मुश्किल से बर्दाश्त करने की चीज होती है किन्तु नानक देव ने माता जी को धीरज दिया और वे सुलतानपुर चले गये।

गोकि नानकदेव जी के बहन बहनोई बड़े ही उदार और ऊंचे ख्याल के आदमी थे। कल्यानराय की तरह जैराम को पैसे इकट्ठा करने की कोई भारी ख्वाहिश नहीं थी। वे दोनों ही नानकदेवजी को प्यार से रखते थे और चाहते थे कि यह मजे से नहाये धोयें और आराम के साथ निश्चिन्त होकर हरि का भजन करें किन्तु नानकदेव ने यह उचित नहीं समझा कि वे बहन बहनोई के धान को इस तरह ठाली रहकर खावें। अत. उन्होंने जयरामजी से कुछ कारबार जुटा देने की इच्छा जाहिर की। आंतरिक इच्छा जयराम की भी यह थी कि नानकजी किसी काम से लग जायं तो इनकी तबियत लगी रहे वरना किसी दिन मन में आगई तो उठ निकलेंगे। किन्तु बीबी नानकी उन्हें किसी झंझट में डालना नहीं चाहती थीं इसलिये उन्होंने बड़े प्रेम से कहा. भैया तुम आनन्द से ईश्वर का भजन करो. अपने यहाँ सब कुछ है तुम क्यों कर इस झंझट में पड़ते हो।

मोदी खाना

आखिरकार वह धंधे में लग ही गये नवाब दौलतखाँ ने उन्हें अपना मोदी[१] बना दिया गुरु जी की भूखे लोगों और साधु संतों को खिलाने पिलाने की वही प्रथा जो तलवंडी में थी यहाँ भी चलने लगी किन्तु कहना य चाहिये कि और भी तेजी से क्योंकि यहाँ कोई रोकटोक करने वाला तो था ही नहीं जो भी मांगने जाता दिल खोलकर देते। 'तेरा ही है तेरा ही है।' देने में यही उनका शब्द होता।

दुनियाँ में भले बुरे सभी प्रकार के आदमी होते हैं कुछ लोगों को नानकजी का यह शुभ काम भी अखरा उन्होंने नवाब से शिकायत की अच्छा मोदी बनाया. सारे माल को यह तो भिखमंगों को चन्द दिन में ही लुटा देगा।

इस समय तक भाई बाला जी भी सुल्तानपुर आ चुके थे जब उन्होंने देखा कि नानकजी तो दुकान के काम में लग गये हैं तो उन्होंने भी अपने घर जाकर खेती क्यारी का काम संभालने की आज्ञा मांगी. हँसते हुए गुरुजी ने कहा भाई यह काम तो थोड़े दिन का है। हमें जो काम करना है वह तो अभी बाकी पड़ा है।

गुरदासपुर जिले में रंधावे की पक्खो एक गाँव है। वहाँ के मूलचन्द नामक चोना खत्री की लड़की के साथ गुरुजी का टीका होगया। बहिन नानकी ने तलवंडी में अपने माँ बाप के पास विवाह के

१. उस समय की शासन प्रथा में वेतन सम्बन्धी दो कायदे थे। नकद वेतन देने का और सामग्री देने का। सामग्री देने के लिए ही उस समय मोदी रक्खे जाते थे।

महान् गुरु

श्री नानक देव जी

उदासी सम्प्रदाय संस्थापक

बाबा श्रीचन्द जी

गृहस्थ प्रवेश

दिन की खवर पहुँचा दी। वरात पक्खो पहुँची व्याह हुआ। इस समय जेठ की २४ वो तिथि और सवत १५४५ विक्रम था। संवत १५५१ विक्रम मे माई सुलक्खनी जो उदर से एक पुत्र का जन्म हुआ जिसका नाम श्रीचन्द रक्खा गया।[1] इसके बाद संवत् १५५३ वि० १९ फाल्गुण मे दूसरा पुत्र रत्न हुआ जो लक्ष्मीचंद के नाम से मशहूर हुआ।

यह सब कुछ हुआ किन्तु जैसे कमल जल मे रहकर भी जल से अछूता ही रहता है वैसे ही गुरु जी भी गृहस्थ मे रहकर भी गृहस्थ यानी बन्धन से अलिप्त रहे। वे प्रातः चार बजे उठकर शौच स्नान से निवृत्त होते थे और फिर परमात्म-चिन्तन मे लग जाते थे दिनभर मोदीखान का काम करते कराते, भूखे नंगों की खवर लेते। शाम को साधु सन्तों की संगति करते। यही उनकी जीवनचर्य्या थी।

गुरुजी के दान पुण्य और परोपकारी स्वभाव की चर्चा चारों और बराबर फैलती जा रही थी और आस-पास के अनेकों लोग उनकेपास संगत को आया करते थे एक दिन भैजीसीहाँ गाँव का भगीरथ नामक ब्राह्मण भी आया यह काली का उपासक था। नानकदेव से काफी देर तक ज्ञानचर्चा की और अन्त मे वह उनका शिष्य हो गया।

जब सारी ही दुनियाँ गुरुजी से मांगती है मरदाना क्यों चुप रहे आखिर तो वह उनका मीरासी है। बचपनसे सेवा करता रहा है वह गुरुजी के पास सुल्तानपुर पहुँचा और कहा महाराज मेरी लड़की का व्याह है यह आपको ही करना होगा। क्या-क्या चाहिए ? यह सब मरदाना से पूछकर गुरुजी ने फहरिस्त तय्यार की और भागीरथ को लाहौर भेजा कि यह सब चीजे तय्यार तो वहाँ मिल सकती है। भगीरथ ने वे सब चीजे मनसुख नाम के साहूकार के यहाँ से खरीदीं। मनसुख ने भागीरथ से गुरुजी की प्रशंसा सुनी, वह भी भागीरथ के साथ सुल्तानपुर आया और दर्शन एवं ज्ञानचर्चा से इतना प्रभावित हुआ कि गुरुजी का शिष्य बन गया। मरदाना अपनी लड़की के व्याह का सामान लेकर अपने घर चला गया।

यह हम ऊपर कह चुके हैं कि गुरुजी की कीर्ति बराबर इधर-उधर फैलती जा रही थी और दूर-दूर से ज्ञानचर्चा के लिये लोग उनके पास आने भी लगे थे। इस तरह से अब मोदीखाने के काम की बजाय ज्ञानचर्चा और सतसग का काम बराबर बढ़ता जा रहा था। उधर घर मे माई सुलक्खनी भी अधिक असंतुष्ट रहने लगी थीं क्योंकि अब उन्हे धन संग्रह करने की और भी अधिक जरूरत महसूस होने लगी थी। कारण कि दो बालकों के पैदा होने से उनके भविष्य की चिन्ता भी उन्हे लगरही थी। इसलिये वे अधिक धन देने और सब झंझटों को छोड़कर केवल दुकान और ग्रहस्थ की ओर ध्यान देने के लिये बराबर गुरुजी के ऊपर जोर दे रही थीं। इस समय गुरुजी को अनुभव हुआ कि यहि घर और वहि घर दोनो मे अब एक को ही चुनना पड़ेगा। अत उन्होंने स्पष्ट सोचा —

"बाबा जे घरि करते कीरति होइ। सो घरु राखि वडाई तोइ॥ (महला १)

भगवान बुद्ध राजा के पुत्र थे। जन्म से ही वे आत्म-चिन्तन मे लगे रहते थे वे एकान्त मे बैठकर अकेले ही बड़ी चिन्ता के साथ कुछ सोच करते थे। महाराज शुद्धोधन ने इस विचार से कि शायद ग्रहस्थ

गृहस्थ का त्याग

में फँसकर राज कुमार गौतम (बुद्ध) प्रसन्न रह सके इसलिये उनका विवाह कर दिया। विवाह के बाद एक उनके पुत्र भी हुआ। राज-सुख, गृहणी सुख और पुत्र-लाभ सब कुछ होते हुए भी एक दिन अचानक भगवान् बुद्ध इन सबको छोडकर

१ उदासीन सम्प्रदाय में यह एक अवतार माने जाते हैं।

फकीर होगये। वहिन नानकी ने वडे चाव से अपने भाई का व्याह किया था। वह भी समझती थी कि अव उनका भाई ग्रहस्थ मे वँधकर सदा के लिये हमारे वीच रह सकेगा। दो पुत्र भी हुए किन्तु नानकदेव जी को मां, वाप, स्त्री और पुत्र किसी का मोह न वाध सका एक दिन वहिन नानकी और सारी दुनियाँ ने सुना कि नानक तो सव झंझट को छोडकर फकीर होगया है।

इस्लामिक धर्म ग्रन्थों मे यह वात वड़े गौरव के साथ व्यक्त की गई है कि —"फरिश्ता जब्राइल हजरत मुहम्मद को सातवे आसमान पर खुदा के पास लेगया था और वहाँ पर्दे मे से खुदावन्द करीम ने हजरत मुहम्मद से कहा अय मुहम्मद मैंने तुझे ससार से कुफ्र को मिटाने के लिये दुनियाँ मे भेजा है।" उसी उत्साह के साथ हमे सिख-साहित्य मे भी यह पढ़ने को मिलता है कि वेईं नदी में स्नान करते समय वरुण देवता गुरुदेव को सच खड में परमात्मा-देव के पास ले गया। वहाँ उन्होंने राम, कृष्ण, मूसा, मुहम्मद और जरदुस्त आदि सभी उन महापुरुषों को देखा जो उनसे पहले संसार में ईश्वर का सन्देश देने के लिये आये थे। आगे अनुपम प्रकाश मे से गुरुदेव के प्रति वाणी होती है ले तेरे नाम का प्याला है तू इसे पी और संसार के मनुष्यों को गलत रास्ते से हटाकर एकेश्वरवाद की ओर प्रेरित कर मनुष्य समाज के लिये अपने २ महापुरुषो के प्रति उत्कट सन्मान और भक्ति प्रदर्शित करने की यह सवसे वडी श्रद्धाजलि है कि वह दृढता के साथ यह खयाल करे कि उनका आराध्य देव परम-पिता परमात्मा के प्यारों में था। इसमे कोई सन्देह भी नहीं कि लोक के हित के लिए अपने को कुर्वान करने के लिए परमात्मा के प्यारे ही तय्यार होते हैं। साधारण जनो का यह काम नहीं होता।

इधर गुरुजी के तीन दिन तक लापता रहने के कारण चारोंओर भाति २ की अफवाहें उड़ने लगी थीं कुछ लोग कहते थे कि मोदीखाने मे वडी हानि हुई है जयराम चिन्ता में पड़े किन्तु वीवी नानकी को यह विश्वास था कि भैया अवश्य आवेगे वे वहीं किसी संत से मिलने जुलने गये होगे। तीन दिन के वाद नानकदेव जी जव शहर मे लोटे तो उन्होंने घोषणा की —

"हिन्दू मुसलमान सभी उस परमपिता परमात्मा के पुत्र हैं। यह भेद तो यहाँ खड़े करलिये हैं और इस समय दोनोंही धर्म गलती पर है वास्तव मे न तो कोई हिन्दू है और न मुसलमान। गुरुजी को दुवारा वुलने के लिये नवाव ने आदमी भेजा। नवाव ने गुरुजी के पहुँचते ही पूछा आप पहिलीवार के वुलानेसे क्यों नहीं आए थे। "चू कि अव मैं आपका नौकर नहीं रहा खुदाकी नौकरी करली है।" गुरुजीने गभीरता के साथ उत्तर दिया। नवाव ने गुस्से को दवाते हुये फिर पूछा—"इस समय तुम कर क्या रहे हो ?" गुरुजी ने जवाव दिया "चूंकि इस समय हिन्दू और मुसलमान दोनों सतपथ से हट गये हैं, इसलिये मैं दोनों को सत्य का रास्ता दिखाने की तय्यारी कर रहा हूँ।" वैसे मैं दोनों धर्मों को एक दृष्टि से देखता हूँ। काजी ने वीच ही में कहा यदि आप दोनों धर्मों को एक निगाह से देखते हैं तो हमारे साथ नमाज पढने चलें। नवाव भी इसी वात पर अड गया। यह वात विजली की भाति शहर मे फैल गई। हिन्दू वडे चिन्तित हुए। जयराम जी ने जव यह समाचार सुना तो वे वडे घवराये किन्तु वीवी नानकीने कहा—"आप चिन्ता न करें। भैयाजी को कोई भी ताकत मुसलमान नहीं वना सकती है।

पहली घोषणा

मस्जिद में भीतर और वाहर भारी भीड़ होगई। मुल्ला और क़ाज़ी नमाज पढ़ने के लिये सफ मे खड़े हुए। गुरुजी को भी खड़ा कर लिया गया। किन्तु गुरुजी खड़े ही रहे। जव नमाज खतम होगई तो नवाव वोला, तुमने नमाज क्यों नहीं पढ़ी, गुरुजी ने हँसकर उत्तर दिया भला, मैं किसके साथ

नमाज पढ़ता आपतो कन्धार मे घोड़े खरीद रहे थे और आपका काजी देख भाल कर रहा था अपने उस बछेड़े की जोकि आज ही उनकी घाड़ी ने दिया है।" वास्तव मे नवाज के समय नवाव का चित्त कंधार मे और काजी जी का घोड़ी के पास था। नवाव बड़ी हैरत मे हुआ। अब तक के जीवन मे गुरुजी का यह काम एक विशेष महत्त्व का था। क्योकि आज धर्म पर संकट था इस संकट से सुल्तानपुर के सारे हिन्दू घबराये हुए थे। जब उन्होंने गुरुजी की इस विजय को सुना तो वड़े प्रसन्न हुये।

घर की दासी ने दौड़कर बीबी नानकी को खबर दी कि तुम्हारे भैया जी आरहे है। उनकी करामात और सच्चे उपदेशों का नवाव पर भी वडा असर पडा है। बीबी नानकी को वडा ही आनन्द हुआ। उन्होने द्वार पर जाकर भाई का स्वागत किया।

कहा जाता है कि तलवंडी मे गुरूजी के घर वार त्याग देने की खबर देर से पहुँची। खबर के पहुँचने पर भी उनके माता-पिता वहुत दु खी हुये और अपने मीरासी मरदाना को भेजा कि वह जाकर नानकदेव की खबर लावे। मरदाना सीधा बीबी नानकी के घर पहुँचा और फिर वहाँ से खबर पाकर श्मशान मे पहुँचा गुरुजी की वर्तमान दशा को देखकर उसे दु.ख हुआ।

मरदाना का आना

मरदाना रवाव वजाना खूब जानता था। गुरुजी ने उसे बीबी नानकी से रुपये लेकर रबाब लाने को भेजा। जब मरदाना रवाव लेकर आया तो गुरुजी ने सर्व प्रथम उस पर अपने इस पद को सुना :—
"तूही निरकार तूही निरंकार नानक बन्दा तेरा ॥" यह पद इतनी मधुर ध्वनि मे और स्वर के साथ मरदाना ने गाया कि गुरूजी लोकोत्तर आनन्द मे विभोर होगये।" इसी तरह से गुरुजी अवसर के समय मरदाने के भजन सुनते और उसको सिखाते। कभी-कभी गुरुजी समाधि वड़ी लंबी लगाते थे।

संवत् १५५६ विक्रमी मे गुरुजी ने अपनी आरम्भ की। इस समय तक सुल्तानपुर मे रहते हुये उन्हे १३—१४ वर्ष व्यतीत हो चुके थे और अब उनकी अवस्था ठीक ३० वर्ष की थी।

यात्रा पर

गुरु जी कई छोटे-मोटे गाँवों और कस्बों को पार करते हुए लाहौर मे पहुँचे जहाँ अपने भगत जवाहिरमलजी के घर ठहरे। यहाँ अनेकों मुसलमान फकीरों और हिन्दू सन्तों से सत्सग किया। एक दिन सैयद अहमदशाह जो सिकन्दर लोदी बादशाह का गुलाम था। अनेकों मुल्ला मौलवियों को लेकर गुरु जी के साथ धर्म चर्चा करने के लिए आया। मंत्र मुग्ध की भाति गुरु जी की वाते सुनता रहा। वह उनके सामने कोई भी दलील पेश नहीं कर सका और गुरुजी का शुक्रिया अदा करके चला गया। इस वात का आम लोगों पर वडा असर पडा सैकडों लोग गुरुजी के पास आ आकर उनके शिष्य हो गए।[१]

लाहौर में

लाहौर से चलकर गुरु जी एमनावाद पहुँचे। यहाँ लालू नाम का खाती रहता था उसी के घर जाकर ठहरे। यहाँ खाती के घर कच्चा भोजन कर लेने से लोगों मे वडी सनसनी फैली, मूढ़ लोग कहने लगे यह कुराही तो अब शूद्रों के घर का भोजन भी खाने लग गया।

एमनावाद में

यहाँ का दीवान था खत्री जाति का मलिक भागो। इसके अत्याचार से सारा एमनावाद दुःखी

१. लाहौर में रहने की यादगार में उनके नाम का मकान बना हुआ है।

था। एक दिन मालिक भागो के यहाँ ब्रह्म भोज हुआ उसने गुरुजी को भी निमत्रण आया किन्तु वे शामिल नहीं हुये। इससे मलिक भागो वडा विगडा उसने गुरुजी को वुलवाकर पूछा तुम एक शूद्र के घर का तो भोजन किया करते हो किन्तु एक खत्री के घर पर तुम भोज मे शामिल नहीं हुए। इस पर गुरु जी ने कहा, भोजन का क्या शूद्र और क्या क्षत्री हम तो नेक कमाई वाला अन्न खाते हैं। गुरु जी ने शाति के साथ कहा, नाराज होने की कोई वात नहीं है। तुम अपने यहा का वना हुआ भोजन भी मँगालो और इधर लालो के घर का भोजन भी मंगाए लेते है मलिक के यहाँ से एक आदमी जाकर—ले आया। इधर लालो वेचारे के घर सूख रोटी का टुकडा पड़ा हुआ था वह उसे ही ले आया। गुरु जी ने दोनों को अलग-हाथों मे लेकर दवाते हुये कहा लालो की रोटी का टुकडा पसीने की कमाई से पैदा किया हुआ है इसमे से मुझे दूध और तुम्हारे पकवान मे से उस खून की धार वहती नजर आती है जो कि गरीवों को चूस करके ब्रह्म भोज पर लगाया गया है।

कहते हैं कि मरदाना एक दिन एक मुसलमान रईस के यहाँ शादी से खाना मागने के लिये चला गया। खाना तो उसे खिला दिया किन्तु उसकी पिटाई खूब की और कहा तू 'काफिर' के साथ रहकर कुफ्र का प्रचार करता है। इस पर मर्दाना रोता हुआ गुरुजी के पास आया। गुरुजी ने सव हाल सुनकर लालो को सम्बोधित करते हुए कहा कि हम तो वही कहते और करते हैं जो हमारा मालिक हम से कहाना और कराना चाहता है किन्तु होना यह है कि यहाँ के लोग अपने कुकर्मों का वहुत कड़वा फल भोगेंगे।' आगे हुआ भी यही, वावर और नादिरशाह के हमलों में एमनावाद को वहुत दुख उठाने पड़े।

जव गुरु जी स्यालकोट पहुँचे। शहर के वाहर एक वेर वृक्ष के नीचे अपना आसन जमाया। शहर से वहुत से लोग दर्शन और ज्ञान चर्चा के लिये आने लगे। लोगों ने "हमजा गौस" नाम के फकीर का हाल सुनाते हुए कहा वावा वह इस नगर को नष्ट करने के लिए अनुष्ठान कर रहा है। गुरु जी ने उस फकीर को वुलाकर उसके ऐसा करने का कारण पूछा तो उसने वताया। इस शहर के लोग झूठे हैं मेरे से एक आदमी ने वायदा किया था कि मेरे अगर लड़का होगा तो आपको दे दूगा। मैंने खुदावन्द से दिन रात उसके घर लड़का होने की मिन्नतें कीं। अव वह उसे मुझे नहीं देना चाहता है। तव मैं सोचता हूँ ऐसे झूठे लोगों की वस्ती खुदा की खलकत मे न रहे तो अच्छा ही है गुरु जी ने कहा साईं जी, सभी आदमी एक से नहीं होते हैं और इस वात की सचाई जानने के लिए मैं अपना आदमी शहर में भेजता हूँ। यह कहकर गुरुजी ने मरदाना को दो पैसे देकर—एक पैसे का सच और एक पैसे का झूठ खरीदलाने को—शहर भेजा। सैकड़ों दुकानों पर फिरने के वाद मूला खत्री दुकानदार ने एक कागज पर लिख दिया 'जीना झूठ और मरना सत्य' है। मरदाना का लाया हुआ वह कागज गुरुजी ने उस फकीर को दिखाया। फकीर ने कहा कि मैं कैसे जानूं यह आदमी जो लिखता है उसे मानता भी है। तव गुरु जी ने मरदाना को दुवारा भेजकर मूला को वुलवाया और उससे कहा, तुम सचमुच ही अपने लिखे उसूल को सही मानते हो तो फिर भी भी क्यों माया में फँसे हुए हो, मूला ने उसी समय सवको त्याग दिया और गुरु जी का शिष्य हो गया। फकीर को भी यकीन हो गया कि किसी भी स्थान के सभी आदमी यकसा नहीं होते। यहां जिस स्थान पर गुरूजी ठहरे थे वहाँ पक्का मकान वन गया है और वह स्थान अव "वेर वावा नानक' के नाम से मशहूर है।

स्यालकोट में

१. यह वेदान्त से मिलता-जुलता उसूल है।

भाई वाला को घर के लोगों ने और राय बुलार ने गुरुदेव को एक बार तलवंडी लाने के लिये भेजा राय ने कहलवाया था मेरा दिल उनके दर्शनो को बहुत इच्छुक है। यदि शरीर बुड्ढा न हो गया होता तो मैं खुद उनकी खिदमत मे हाजिर होता। भाई वाला श्री गुरु जी का पता लगाते-लगाते स्यालकोट पहुँच गये और उन्होंने रायबुलार का सन्देश दिया। गुरु जी भी राय बुलार के प्रति काफी स्नेह रखते थे इसलिए वे बुलार के सदेश को टाल न सके और भाई वाला और मरदाना के साथ तलवडी की ओर चल पड़े।[1]

तलवंडी

तलवंडी मे जाकर गुरु जी खूह पर ठहरे। वहां पर माता, पिता और चाचा सब मिलने आये। उनको फकीरी भेप मे देखकर वे बहुत ही दु खी हुए और उनसे कहने लगे तुम घर चलो हमेशा परमात्मा का भजन करो किन्तु इस फकीरी भेप को उतार दो किन्तु गुरु जी अपने इरादा से कब डिगने वाले थे। राय बुलार ने दर्शनार्थ निमंत्रित किया। गुरु जी जब राय बुलार के मकान पर पहुचे तो राय बुलार ने आगे बढ़ कर उनका स्वागत किया और बडी श्रद्धा और प्रेम से ले जाकर उन्हे सुन्दर आसन पर बिठाया। कहा जाता है राय बुलार ने कई दिन गुरु जी को रक्खा। नित प्रति सत्संग होता और राय ज्ञानचर्चा सुनता। उसने गुरुजी से इच्छा प्रकट की कि आप सदा यहीं रहे कोई स्थान बनवा लें। आपके खर्चे के लिये मैं उससे जमीन लगा दूंगा किन्तु गुरु जी ने अस्वीकार कर दिया। माता और पिता ने भी राय बुलार की मार्फत और खुद गुरुदेव से वहां रहने को कहलवाया किन्तु सब व्यर्थ साबित हुआ। कहा जाता है जब यह चलने लगे तो राय बुलार ने कहा मेरे लायक कोई खिदमत फरमाइये। इसके जवाब मे गुरु जी ने उससे तलवडी मे एक तालाब बनवा देने के लिए कहा, राय ने इस बात को स्वीकार कर लिया और तालाब बनवा दिया जो अब नानकसर के नाम से मशहूर है।

तलवंडी से चलकर आप छांगा, मांगा के जगल मे पहुँचे। यहाँ पर जिस स्थान पर रहे थे वह आजकल छोटा ननकाना कहलाता है। यहां पर जो संत साधू रहते थे उनमे से अनेकों ने गुरुजी के दर्शन और उपदेशों से लाभ उठाया। वहां से शहर चूनिया मे आये, जहां शेख दाऊद सैयद, हामिद गजबखा आदि से सत्संग किया। कहा जाता है ये दोनों फकीर अपनी करामातों और योग्यता के लिये बड़े प्रसिद्ध थे किन्तु गुरु जी से मिलकर उन्होंने भी अपने को धन्य माना।

दिल्ली की ओर

इस प्रकार मांझ की यात्रा पूरी करके सतलज पार की और मालवा[2] मे उतरे मालवे के अनेक स्थानों को पवित्र करते हुए सरस्वती नदी के किनारे पहाये नामक स्थान पर पहुँचे। यहाँ उन्होंने लोगों को पिंड भरते देखा तो ब्राह्मणों से कहा कि इस समय जैसे तुम पोल चलाकर मुफ्त का माल खा रहे हो यह मनुष्योचित नहीं। यहा से चलकर सूर्य ग्रहण के अवसर पर गुरु जी कुरुक्षेत्र पहुँचे। यहां स्नान के लिए मेला लगा हुआ था। समस्त हिन्दू अपनी भावना के अनुसार स्नान करके दान पुण्य कर रहे थे। गुरु जी ने मांस रांधना आरंभ किया। लोगों ने पूछा यह क्या करते हो तो आपने कहा—"मैं

१. कुछ इतिहासकारों का खयाल है कि तलवंडी सीधे एमनाबाद से ही गए थे। स्यालकोट तो तलवंडी के बाद गये हैं किन्तु कई स्थानों पर स्यालकोट से ही तलवडी जाना लिखा है। और यदि यह सही है तो यह भी सही है कि मरदाना बीच में तलवडी नहीं गया किन्तु भाई बाला ही उन्हें ढूंढ़ता-ढूंढता स्यालकोट पहुँच गया।

२. यह मध्य भारत का मालवा नहीं किन्तु पंजाब का मालवा है।

समझता हूँ कि न तो आज के इस किंचितमात्र दान पुण्य से आपको स्वर्ग मिलेगा और न मेरे इस मांसाहार से मेरा स्वर्ग नष्ट होगा। अब तक जो भी भले बुरे कर्म किये हैं उनका तो फल भुगतना ही पड़ेगा। कुछ लोग तो इस माकूल जवाब को सुन कर चुप हो गए किन्तु नानू नाम का पंडित विवाद करता रहा।

सम्वत् १५६२ विक्रमी की वैसाखी के दिन गुरु जी हरद्वार पहुँचे। जहाँ हरद्वार में ठहरे थे वहाँ आज नानक वाडा के नाम से एक स्थान मशहूर है। यहाँ गुरुजी के पास गढवाल का राजा विजय प्रकाश आया। उसने आते ही पूछा, तुम कौन हो ? क्यों साधु बने हो ? और किस सम्प्रदाय के साधु हो ? गुरुजी ने "देवतिआं के दरसन ताईं" वाला शब्द सुनाया जिसे सुनकर राजा निरुत्तर हो गया।

यहाँ से गुरुजी दिल्ली पहुंचे और मजनूं के टीले पर ठहरे। उन दिनों दिल्ली का बादशाह सिकन्दर लोदी था। वह साधू सन्तों या फकीरों का बड़ा विरोधी था। वास्तव मे उन दिनों साधू बनने की धींगा गर्दी भी मची हुई थी जिसका जी चाहता वही साधू हो जाता। सिकन्दर लोधी ने खरे खोटे की पहचान के लिये साधू फकीरों को पकड-पकड कर जेल खाने में बन्द कर देना शुरू कर दिया। वहाँ उनसे चक्किया पिसवाई जाती थीं। गुरु नानक जी का भी नम्बर आ गया उन्हें भी जेल में बन्द कर दिया गया। मरदाना ने कहा लीजिए गुरुजी फकीर बनने का कैसा मजा चखना पड रहा है। गुरुजी ने उसे धीरज दिया। अन्य लोगों से भ गुरुजी ने चक्कियाँ चलाने मे मना कर दिया। और मरदाने से कहा लो भाई रबाब उठाओ। मरदाना स्वर और लय के साथ गाने लगा "कुलहू चर्खा चक्की चक। थल निरोले बहुत अनत लाटो मधानिया अनगाह। पखी भौंदिया लैन न साह।। सूचे चार भवाए जन्त। नानक भौंदिया अन्त न अन्त।" कहते हैं चक्किया अपने आप चलने लगीं[१] जेलर ने यह समाचार बादशाह को सुनाया। वह दौडा हुआ गुरुजी के पास आया और अपने अपराध की क्षमा मागी तथा गुरुजी की आज्ञा के अनुसार सब कैदियों को छोड दिया बादशाह की विनती पर गुरुजी ने उसे उपदेश दिया.—

यक अरज गुफतम पेश तू दर गोश कुन कर्तार ।।
हक्का कबीर करीम तू बे एब परवरदिगार ।।१।।
दुनिया मुकामें फानी तहकीक दिल दानी ।
मम सर मूइ अजराइल ग्रिफतह दिल हेचि न दानी ।।१।।
जन पिसर पिदर बिरादर्गं कस नेस दस्तंगीर ।
आखिर व्यफ्तम कस न दारद चूं सबद तकबीर ।।२।।
सब रोज गश्तम दर हवा कर देम बदी खयाल ।
गाहेन नेकी कार करदम मम ईं चिना अहवाल ।।३।।
बदबखत हम चूं बखील गाफिल बेनजर बेबाक ।
नानक बगोयद जन तुरा तेरे चाकरां पाखाक ।।४।।

देहली मे एक मिया मारूफ थे। उनकी करामातों और औलियापने की दिल्ली में खूब चरचा थी। गुरुजी ने उससे भी बातचीत की और उसे ईश्वर जीव सम्बन्धी अनेकों बाते सुनाकर अपनी ओर आकर्षित किया।

१　सगीत साहित्य में दीपक राग की भी इसी प्रकार की महिमा बताई गई है।

दिल्ली मे काफी दिनों रहकर गुरुजी अपने मर्दाना साथी समेत काशी देखने के इरादा से वहां चल पडे। रास्ते मे अलीगढ मे दो चार दिन विश्राम किया। अलीगढ़ से मथुरा वृन्दावन होते हुए और वहाँ साधु सतो से सत्संग करते हुए आगरा आये। आगरा मे जिस धर्मशाला मे आप ठहरे थे वह गुरुजी की धर्मशाला के नाम से पुकारी जाती है। यहाँ अनेकों लोगों को आपने अपने उपदेश सुनाये और फिर कानपुर, लखनऊ होते हुए सूरजवशियो की पुरानी राजधानी अयोध्या पहुँचे। सिख इतिहासकार मानते है कि गुरुजी का बेदी कुल भी भगवान रामचन्द्र जी के वंशजों का कुल है। अयोध्या से चलकर संवत् १५६३ विक्रमी मे गुरुजी काशी मे जा पहुचे। वह स्थान जहाँ पर गुरुजी ठहरे थे 'गुरु का बाग' नाम से प्रसिद्ध है।

काशी की ओर

थोडे ही दिनो मे सारे काशी शहर मे य ह चर्चा फैल गई कि नानकदेव नाम का एक पंजाबी साधु आया हुआ है और वह बडी मीठी भाषा मे किन्तु सारयुक्त ढंग से हिन्दू और मुसलमानों की धार्मिक कमजोरियों की आलोचना करता है। फिर क्या था सैकडों मनुष्य नितप्रति गुरुजी के पास आकर तर्क-वितर्क के साथ ज्ञानचर्चा करने लगे। गुरुजी की आलोचनाओं से जहाँ हिन्दू और मुसलमान तिलमिलाते थे वहाँ सब कोई उन्हे यह भी समझते थे कि यह तो हमारे ही सम्प्रदाय का है। वैष्णव उन्हे वैष्णव और शैव उन्हे शैव समझने थे। इसी प्रकार कबीर पंथी नामदेव पंथी सभी उनके सम्बन्ध मे यही ख्याल करते थे कि गुरुनानक जी हमारे पंथ के हैं। यहाँ तक कि मुसलमान भी उन्हे अपना उपदेष्टा खयाल करते थे। वास्तव मे गुरुजी के सिद्धान्त भारत के विभिन्न सम्प्रदायों के मौलिक सिद्धान्तों का समन्वय जान पडते थे। उनकी वाणियों के सार को वे लोग अपने २ पंथी संशोधित संस्करण समझते थे। ऐसा समझना उनका उचित भी था। गुरुजी भारतीय संस्कृति का परिमार्जन ही तो कर रहे थे। वह उसे अपने ज्ञान और तप की अग्नि मे तपाकर खरा सोना ही तो बना रहे थे।

सभी धर्मों और सम्प्रदायों के विद्वान आकर उनसे शंका समाधान भी करते थे। काशी के उस समय के प्रसिद्ध पंडित वासुदेव शास्त्री ने भी आकर उनसे ज्ञानचर्चा की थी।

नामदेव और श्री रविदास (रैदास) जी काशी के उस समय के प्रसिद्ध महात्माओं मे से थे। उनके साथ गुरुजी का बहुत मेल जोल रहा। आपस मे ज्ञान गोष्ठी और हरिचर्चा भी खूब रही। कबीर जी जो उस समय बाहर गये थे। गुरुजी का आना सुनकर वे भी काशी जी गये। कहना यही होगा कि भारत के सन्तों मे दार्शनिकता और बुद्धि प्रखरता की दृष्टि से कबीर जी का स्थान बहुत ऊंचा है। उनके बहुत सारे सिद्धान्त गुरु नानक जी से मिलते-जुलते हैं।[1]

काशी से चलकर जौनपुर, बक्सर छपरा आदि स्थानों मे होते हुए गुरुजी पटना शहर में जो कि बहुत प्राचीन नगर है पहुंचे। उनकी स्मृति में पटना मे एक धर्मशाला अब तक बनी हुई है। यहां भी गुरु।

१ कुछ इतिहासकार कबीर जी को भी नानकदेव जी का समकालीन नहीं मानते किन्तु कबीर जी के चेलें धर्मदास जी ने कबीर सबंधी कुछ घटनाएं अपने ग्रथ में इस प्रकार दी है।

जन्म-संवत् १४५५ विक्रमी। दीक्षा रामानन्द जी से—संतत् १४६२ वि०, विवाह संवत् १४७१ वि०, यज्ञ अनुष्ठान सवत् १४९२ विक्रमी, सिकन्दर लोधी से बिगाड संवत्-१४९२ विक्रमी।

मृत्यु, सवत् १५७१ विक्रमी। इसी तरह से कबीर जी ११६ वर्ष जिन्दा रहे और जब नानक जी से मिले थे १०८ वर्ष के थे।

जी के उपदेशों को सुनने के लिए हिन्दू मुसलमान सभी प्रकार के लोग आते थे कई दिन गुरु जी ने 'मानव जीवन' पर उपदेश दिया। पटना से चलकर गुरुजी गया पहुंचे। वहाँ आपको पंडों ने घेर लिया और कहा कि अपने पितरों का पिंड दान कराइये। गुरुजी ने पंडों को दीपदान और पिंडदान के सम्बन्ध में अपने ख्यालात इस प्रकार प्रकट किये:—

पटना और गया की ओर

> "दीवा मेरा एकु नामु दुख विच पाइया तेलु।
> उनि चाननु ओहु सोखिया चूका जम सिउ मेलु॥
> पिंड पतल मेरी केसो किया सच्च नाम करतार।
> इत्थे उत्थे आगे पीछे एह मेरा उद्धार॥

अर्थात्—मेरा दीप (दान) तो ईश्वर का नाम है। उसमें लोगों के दुखों का तेल पड़ा हुआ है। जिसके प्रकाश से मृत्यु का भय भी नष्ट हो गया है। मरे हुए को पिंड या पत्तल देना तो मूर्खता है वास्तविक कर्म तो ईश्वर का सत्य नाम है। जो हर जगह मेरा उद्धारक है। पंडे लोगों ने अपने जीवन में इस प्रकार के श्राद्ध-कर्म के विरुद्ध पहली ही बार आलोचना सुनी थी इसलिये वे भौचक्के से होकर गुरु जी की तरफ देखते रहे।

यहाँ से चलकर गुरु जी बुद्ध गया पहुंचे, जहा पर गोस्वामी देवगिरि एक प्रतिष्ठित जागीरदार रहता था। उसके साथ भी गुरु जी ने सत-संग किया और अपने मौलिक विचारों को प्रकट किया। महत गुरु जी के दर्शनों और धार्मिक विवेचनों से बड़ा प्रसन्न हुआ। कहा जाता है कि देवगिरि का पोता शिष्य गुरु हरिराय जी का शिष्य हो गया था।

बुद्ध गया से चलकर वैद्यनाथ धाम की यात्रा करते हुए, मुंगेर, भागलपुर, राजमहल आदि स्थानों का भ्रमण करते हुए ७ वीं हाड़ संवत् १५६४ वि॰ में मालदा (मालदेव) में पहुंचे। यहाँ जिस स्थान पर बैठकर आपने उपदेश किया था वह गुरु के बाग के नाम से मशहूर है। यहाँ कई दिन विश्राम करके गुरु जी ने आसाम की ओर कूच किया। मुर्शिदाबाद, बर्दवान, हुगली आदि अनेकों स्थानों पर ठहरते हुए तथा उपदेश करते हुए संवत् १५६४ के ६ को ढाके में पहुंचे यहां नारायणदास शामलनाथ, चन्द्रनाथ और शेख अहमद गुलामअली आदि कई साधु और फकीरों ने आपके पास आकर सतसंग करके लाभ उठाया। इस देश में जादू टोने का बड़ा प्रचार है। कई लोगों ने गुरुजी के सामने अपने २ जादू की विशेषता दिखानी चाही किन्तु सभी निष्फल हुए तब उन्होंने पूछा कि आपके आगे हमारा मंत्र और देवता क्यों नहीं काम देता है। इसके उत्तर में गुरु जी ने कहा तुम्हारे मत के देवताओं और मंत्रों से हमारा देवता और मंत्र बड़ा है इसीलिए वे हम पर असर नहीं करते हैं। उन लोगों ने बड़े कौतुहल से पूछा तो फिर महाराज उस मंत्र और देवता का ज्ञान हमें भी बताइये न। गुरुजी ने बताया हमारा देवता निरंकार अकाल पुरुष है और '१ ओं सतिनाम करता पुरख निरभउ अकाल मूरति अजूनी सै भं गुरु प्रसादि।" मूल मंत्र है। अनेकों लोगों ने गुरु जी के मंत्रों को अपनाया।

बंगाल व आसाम में

ढाका से चलकर तीन कोस के फासले पर गुरुजी ने मुकाम किया। यहाँ एक कौतुहल वर्द्धक घटना यह बताई जाती है कि गुरुजी के सेवक मरदाना को यहाँ की जादूगर स्त्रियां पकड़ ले गईं। इन स्त्रियों में नूरशाह नामक स्त्री बड़ी चतुर और सब जादूगरनियों की सरदार थी।" घटना इस प्रकार

वर्णन की जाती है कि मरदाने ने उस गॉव में जाकर घूमने और अपनी भूख शात करने की गुरुजी से आज्ञा चाही। गुरु जी ने पहले तो मरदाने को मना किया किन्तु उसकी हठ देखकर इजाजत दे दी। मरदाना वहीं स्त्रियों ने कैद कर लिया[1] काफी देर तक भी जब मरदाना नहीं आया तो गुरु जी उसे खोजने के लिये गाँव मे घुसे। और घूम फिर कर उसी घर के सामने पहुँचे तथा मरदाना को उस कैद से रिहाई दिलाई। गुरु जी ने स्त्रियों को उपदेश भी दिया कि केवल बोल चाल मे ही अच्छे होने से काम नहीं चलता है आचरण भी ऐसे होने चाहिएं जो प्रभु को अच्छे लगे।

इस स्थान पर जहॉ कि गुरु जी ठहरे थे बरछा साहिब के नाम से एक स्थान है। इस नाम के पड़ने की घटना सिख लेखकों ने इस प्रकार वर्णन की है। इस देश मे पानी प्राय खारा ही निकलता था। लोगों ने गुरु जी के सामने अपने कष्ट का वर्णन किया। दयालु गुरु जी ने एक स्थान पर बरछा गाड़कर कहा यहॉ का पानी मीठा है। सचमुच ही वहा का पानी मीठा निकला, तभी से यह स्थान बरछा साहिब के नाम से मशहूर है।

यहा से गुरु जी कामाक्षा देवी के स्थान को देखने के लिए गये यहां उन दिनों बाममार्ग का प्रचार था। कामाक्षा देवी के मन्दिर मे हर महीने लाल रंग डाल कर लोग उसे माथे पर लगाते थे मूर्ति के बजाय देवी के गुप्तांग की पूजा करते थे। गुरुजी ने लोगों के इस गर्हित खयाल के विरुद्ध मन्दिर के पास बैठकर लोगों को उपदेश दिया किन्तु वर्षों और सदियो के कुसंस्कार शीघ्र थोड़े ही नष्ट होते हैं। फिर भी कुछ लोगों पर असर पड़ा ही।

इसी वर्ष के फागुन की १३ वीं तिथि को गुरु जी गौरीपुर धौविया बन्दर मे पहुचे। यह यात्रा समुद्र के किनारे की गई थी। फल फूल और कन्द पर कई दिन तक गुजारा करना पड़ा था। यहॉ पर गुरुजी की यादगार मे जो स्थान बना हुआ है वह मरदाना साहिब के नाम से मशहूर है। इस स्थान को गुरु तेगबहादुर जी ने जब कि वे राजा जयसिंह के शाही लश्कर के साथ राजा के आग्रह पर उधर की तरफ गये हुए थे। ऊँचा करा दिया था। जो बहुत दूर से दिखाई देता है। इस स्थान पर रहकर गुरु नानक देव जी ने अपने साथियों समेत कई दिन तक आराम किया था तथा लोगों को हरि चर्चा सुनाई थी। इस स्थान के पुजारी लोग उदासीन साधु कहलाते रहे हैं। यहां के राजा की रानी ने भी गुरु जी के पास आकर उपदेश सुने और उसने उसी समय से पत्थर पूजा को तिलांजलि दे दी। इसी रानी का पपौत्र नवे गुरु श्री तेग बहादुर जी का शिष्य हो गया था और उसके पुत्र रतनदेव ने पातशाह श्री गुरु गोविन्दसिंह की सेवा मे आनन्दपुर हाजिर होकर प्रसादी नाम का हाथी और अनेक वस्तुऐ भेंट की थीं।

कुछ दिन यहा रह कर गुरु जी संवत् १५६५ विक्रमी मे ब्रह्मपुत्र को पार करके आसाम देश के करीमगज, अजमेरी गज और सिलहट आदि नगरों को देखते हुए सरिता नाम की नदी को पार करके कछार देश मे पहुचे। यहां नाग लोगों की आबादी है। ये सब देवी के उपासक थे। गुरु जी ने इन लोगों मे भी एकेश्वरवाद और प्रेम धर्म का प्रचार किया। इस देश मे मनीपुर और रोसम फल आदि प्रसिद्ध शहर हैं पास ही मे लोशाई नगर है उन दिनों यहा का राजा देवलोत था। वह परदेशियों को अपने राज्य में नहीं घुसने देता था। निपेध में दण्ड की सजा नियत कर रक्खी थी जब गुरु जी उसके देश मे

१. भेड़ा बना लिया।

पहुच गये तो उसने पूछा आप मेरी आज्ञा के विरुद्ध मेरे देश में कैसे आ गये हैं तो गुरु जी ने जवाब दिया —

जिस ही की सरकार है तिस ही का सभु कोई ।
गुरमुखी कार कमावणी सचु घटि परगट होई ।

अर्थात्—सर्वत्र उसी परम ब्रह्म परमात्मा का राज्य और सब कोई उसी के हैं किन्तु यह सत्य परमात्मा की ओर झुकाव होने पर ही हृदय मे प्रगट होता है । राजा गुरु जी के इस सत्योपदेश से बडा प्रभावित हुआ। इसी राजा के सीमा प्रदेश पर सगरसैन नाम का राजा राज करता था, राजधानी उसकी 'घरगाउ' थी । आजकल यह जगह शिवसागर जिले में नाजरा नाम से मशहूर है । एक दिन गुरु नानक देव जी ने वहां जाकर भी लोगों को उपदेश दिया । कहा जाता है सैंकडों नर नारी यहा उनकी सेवा मे हाजिर हुए और उनके उपदेशों को बडे प्रेम से सुना । राजा स्वयम् भी अपने परिवार सहित उपदेश मे शामिल हुआ था । ऐकेश्वरवाद के विचार इस देश मे खूब पसंद किये गये । लोशाई के पड़ोस मनीपुर के पहाड़ी प्रदेश मे राजा सुधर सैन राज करता था । उसके शहर मे झडा नाम का एक हरिभक्त था । राजा के भानजे इन्द्रसैन से उसकी मैत्री थी । गुरुजी के यह दोनों ही भक्त हो गए । अब तक मरदाना का रबाब पुराना हो चुका था । इसीलिए इन्हीं दोनों महानुभावों ने नया रबाब भी लिवा दिया । कहा जाता है इस देश के लगभग १२ पहाडी राजाओं को जो कि अधिकाश में नामवंश के थे गुरु जी ने अपना उपदेश सुनाया । और यहा से फिर सिंहल द्वीप की ओर प्रस्थान किया ।

सिंहल द्वीप की राजधानी ब्रहमपुर थी । गरु जी मरदाना समेत संवत् १६६२ के सावन की ५ वीं को ब्रह्मपुर पहुँच गए । एक बाग में डेरे जमा दिये किन्तु यहा अधिक दिन न ठहरे आगे चल कर चाम्पपुर, स्वर्णपुर के राजा कमल सैन के बाग में पहुंचे । मरदाना भूख से व्याकुल होकर शहर की ओर चला गया, जहा धर्मसिंह नाम के हरि भक्त ने उसको खूब मिठाई खिलाई और यह जान कर कि उसके एक साथी समेत गुरुजी राजा के बाग में ठहरे हुए हैं । धर्म सिंह उनके लिए भी मिठाई लाया । उसके साथ गुरुजी ने धर्म चर्चा भी की । जिससे वह गुरुजी की ओर और भी आकर्षित हो गया और उसने जाकर अपने देश के राजा कमल सैन से भी गुरुजी के दर्शन करने और ज्ञान चर्चा अर्जन करने के लिए उत्साहित किया । राजा भी अच्छे साधु संतों की सगत करता था उसने भी धर्मसिंह के साथ आकर गुरु जी के उपदेश से लाभ उठाया । इस देश मे पद्मा नाम की नदी बहती है । शायद अब तक सिंहल द्वीप ही कहलाता है नदियों से घिरे रहने के कारण आसाम का यह हिस्सा इस समय इस नाम से मशहूर रहा है ।

इस देश से चल कर गुरुजी अनेक छोटे छोटे नगर और गाँवों को पार करते हुए । कालीघाट मे आये जो अब कलकत्ता कहलाता है । यहा के लोग इसी देवी को पूजा करते थे । इनमें गुरु जी ने केवल एक ईश्वर ही पूजने योग्य है अपने इस सत्य सिद्धान्त का प्रचार किया ।

आसामी बंगाली प्रदेशों की यात्रा करके गुरु जी लौट पड़े । अनेकों ही स्थानों पर उपदेश करते हुए जिनमें काचीपुरी और साखी गोपाल के नाम विशेष उल्लेखनीय हैं जगन्नाथ पुरी में पहुचे ।

जगन्नाथ में

सवत् १५६५ का इस समय चैत्र मास था । यहां गुरुजी जिस स्थान पर ठहरे वह मगुमठ के नाम से मशहूर है । जगन्नाथ के मन्दिर मे जाकर भी साधु संतों से समागम करते रहे । एक दिन पडों ने कहा बाबा आप हमारी आरती मे क्यों शामिल नहीं होते

हैं। गुरुजी ने कहा हमारे देवता की जैसी आरती होती है वैसे आपके देवता की नहीं होती यह कह कर मरदाना की ओर इशारा किया जिसने रवाव पर गाया.—

"गगन में थाल रवि चन्द्र दीपक वने, तारका मडला जनक मोती।
धूप मलिग्रानलो पवन चैवरो करे, सगल वनराय फूलन्त जोती॥
कैसी आरती होय भव खडना तेरी, आरती अनहवा शब्द वाजन्त भेरी।
सहस तव नैन नन नैन हहि तोहे को, सहस मूरत नैन एक तोही।
सहस पद विमलनन एक पद गध बिनु, सहस तब गध इव चलत मोही।
सब महि जोति जोति है सोई, तिसदे चानन सब मह चानन होई॥
गुरु साखी जोति परगटु हे, जो तिसु भावैसु आरती होई।
हर चरन कोमल मकरन्द लोभित मनो अनदिनो मोही आही प्यासा।
कृपा जल देह नानक सारग कठ, होय जाते तेरे नाय वासा॥

अर्थात्—सर्व व्यापक परमात्मा की आरती के लिये अनन्त दूर तक फैला हुआ आकाश मानो थाल है और सूर्य, चन्द्र दीपक है, सुन्दर तारागण मोती है। मलयागिर चन्दन धूप का काम दे रहा है। पवन देवता चॅवर ढल रहा है। समस्त वानस्पतिक जगत उस थाल के फूल पत्ती हैं। अनहद शब्द का घोर रव शंख, घडियाल का काम दे रहा है।

हे भव भयहारी परमात्म देव यह कितनी सुन्दर तुम्हारी आरती हो रही है। तुम एक भी नेत्र न रखते हुए भी सहस नेत्र हो। किसी भी प्रकार का रूप न रखते हुए भी महाकाय हो। तुम एक भी पैर न रखते हुए भी सहस्त्रों पद वालों से ज्यादा द्रुतिगामी हो। जिस ज्योति से सारा संसार प्रकाशित है वही जोति तो तुम हो। वह कौनसा स्थान है जहॉ आपका प्रकाश नहीं है। हे जगतपते मेरा मन तुम्हारे कमल चरणों मे पहुॅचने के लिए भॅवर की तरह लालायित है भगवान अपने कृपा रूपी जल से मेरी प्यास को बुझाइये।

आरती के समय मे इस राग का ऐसा समॉ बॅधा कि पंडे पुजारी उसी प्रकार मुग्ध होकर सुनते रहे जिस प्रकार हिरनी वीणा की आवाज को मस्त होकर सुनती है। पंडे पुजारियों ने गुरु जी को भक्ति के साथ कई दिन तक वहॉ रक्खा। फिर यहॉ से कुछ थोडी दूर चलकर शोण नदी के किनारे डेरे जमाये। जहॉ यादगार में बनीं हुई "बाबा साहिब की बावड़ी" अब तक मौजूद है। यह स्थान जगन्नाथपुरी से सटा हुआ ही है। पास की बस्ती मे जो पुरी का एक मुहल्ला था कलियुग नाम का एक पंडा रहता था। उसने गुरु जी की बडे प्रेम से सेवा की, इस सेवा के अन्तर मे उसका दिल एक पुत्र की कामना से प्लावित था। परमात्मा की कृपा से उसके पुत्र हुआ।

यहा से प्रस्थान करके गुरु देव जी खुर्दहा दानापुर आदि नगरों में होते हुए सुनारत गढ़ के पास से महानदी पार हुए और सुहागपुर मे आकर ठहरे। यहॉ शनिश्चर देव की पूजा आम रिवाज था। गुरु जी ने लोगों को अपने उपदेशों द्वारा समझाया कि परमात्मा ही सब देवों का देव है उसी की पूजा क्यों नहीं करते हो ?

विन्ध्याचल पर्वत की एक शाखा का नाम कंटक गिरि है। गुरु जी सुहागपुर से चलकर वहाँ पहुँचे और वहॉ पर साधु सन्तों को उपदेश दिया। यह लोग वरुण की भावना से पानी की पूजा करते थे।

बिहार में

विन्ध्याचल के आगे के हिस्से मे कौल किरात और गोंड लोग रहते हैं। उन दिनो वहॉ का राजा कोड़ा नाम का था यह लोग देवी पर नर वलि दिया करते थे। राजा

के आदमियों ने मरदाना को पकड़ लिया और उसे राजा के पास ले गए। गुरुजी ने राजा को उपदेश दिया कि परमात्मा तो सवका पालन कर्त्ता है उसने मनुष्यों को पालने के लिए ससार में कैसे कैसे उत्तम पदार्थ पैदा किए हैं। तुम कैसा उलटा काम करते हो कि ईश्वर के पुत्रों का वध करते हो। इसके सिवा ईश्वर सम्बन्धी और भी उपदेश गुरु जी ने राजा को दिया। जिसमे राजा वड़ा सतुष्ट हुआ और उसने मरदाना को छोडने की इजाजत दे दी।

आगे चलने पर एक घोर जगल दिखाई दिया जिसमें कोसों तक वांस, साल, शीशम, देवदारु आदि-आदि पहाड़ी वृक्ष खड़े हैं। दूर-दूर तक वस्ती का नाम नहीं है। मरदाना ऐसे अवसर पर घवरा गया। उसने कहा गुरु जी कहॉ ले आये मैंने तो सोचा गुरु जी के साथ रह कर खूव मौज उड़ावेंगे जैसा कि वैरागी लोगों के संग पड़कर लोग माल उड़ाते हैं किन्तु जान पड़ता है आपके साथ तो प्राण और देने पड़ेंगे। गुरुजी ने मरदाना को धैर्य्य वधाया और काफी दूर चलने के वाद एक ऐसी जगह पहुँचे जहाँ पानी का भी सुपास था, अनेक स्वादिष्ट फलों से वृक्ष लदे हुये थे। पास ही में अनेक संतों के आश्रम भी थे। यहां कई दिन विश्रान्ति पाकर और ज्ञान चर्चा करके आगे वढ़े और नर्मदा नदी को पार करके जवलपुर पहुँचे। यहॉ नदी किनारे पर फूल नाम का फकीर रहता था इसने आसपास के इलाके पर अपने करामाती होने का सिक्का विठा रक्खा था। गुरु जी ने इसके साथ ज्ञान चर्चा की और उसे वताया करामातें लोगों को वहकाने के काम में आ सकती हैं किन्तु ईश्वर तो प्रेम से ही प्राप्त किया जा सकता है। इस सही वात का फकीर के दिल पर वड़ा असर पड़ा और उसने गुरु जी के प्रति कृतज्ञता प्रकट की। यहां से चलकर गुरु जी ने चित्रकूट, महीरकी आदि स्थानों को देखा भाला और इस तरह फरीद-वाड़ा में पहुँचे।

विहार की यात्रा विंध्याचल के आरम्भिक सिरे पर ही खतम हो गई थी। अव तो मध्यप्रांत में आ पहुँचे थे। फरीदवाड़ा में प्रसिद्ध फकीर फरीद वावा का एक कूप है कहा जाता है वावा उसी में लटके रहते थे। उनके मांस को जव चील कौवे खाते तो वे कहते थे. 'कागा सव तन खाइयो चुन-चुन खइयो मांस। दो नैना मत खाइयो, पिया मिलन की आस।" वे ईश्वर का साक्षात्कार करना चाहते थे इसीलिये इस प्रकार का कठोर तप किया करते थे। फरीदवाड़ा से चलकर, भूपाल, सत्य महल, चन्देरी, झांसी, गवालियर, आगरा धौलपुर, भरतपुर, मथुरा, गुड़गांवा, रिवाड़ी में धर्मोपदेश किया और थोड़े-थोड़े समय विश्राम भी किया, रिवाड़ी से नारनौल आये जहाँ कि एक गुरु स्थान भी वना हुआ है।

मध्यप्रान्त राजपूताना

नारनौल पर राजपूताना खतम हो जाता है यहाँ से गुरु जी झझर और दुजाना आदि अनेक नगरों को पार करते हुये कर्नाल में पहूँचे। यहां उन दिनों शेख शरफुद्दीन का शिष्य शेख शमसुद्दीन प्रसिद्ध फकीर समझा जाता था उसने गुरुजी की पहले से ही प्रशंसा सुन रक्खी थी जव उसने सुना कि यहाँ गुरु नानकजी आये हुये हैं तो वह अनेक प्रतिष्ठित मुसलमानों के साथ गुरु जी से मिलने के लिये आया। वे सभी लोग गुरु जी की सूफीयाना वातचीत से प्रसन्न हुए। कर्नाल में उनकी यादगार में एक गुरुद्वारा भी वना हुआ है। कर्नाल के पास थानेसर और कुरुक्षेत्र हैं।

पंजाव में

यहां से विदा होकर गुरु जी मालेरकोटला तथा जगरांव के रास्ते हरि के पत्तन पर सतलज को

पार करके सुल्तानपुर अपनी बीबी नानकी के घर पहुँचे जहाँ उन्हे देखकर उनके बहिन बहनोई हरे हो गये। यह दिन संवत १५६६ के पौष का ११ वां था।

इस तरह यह प्रथम यात्रा गुरु जी के पूरे दस साल मे समाप्त हुई। इस यात्रा मे हमे कामरु देश से आगे समुद्र के किनारे चलकर गुरु जी के संगलाद्वीप मे पहुँचने का वर्णन मिला है।[1] वहाँ के सम्बन्ध मे उदासी सतों ने इस प्रकार लिखा है कि यहाँ का राजा शिवनाभ वर्षो से गुरुजी के आगमन की बाट देख रहा था क्योंकि लाहौर के मनसुख सेठ ने इसी देश मे जाकर व्यापार किया था और उसने गुरु जी के सम्बन्ध मे राजा को बहुत कुछ सुनाया था।

गुरु जी के यहाँ पहुँचने पर जब राजा को खबर लगी तो उसने गुरु जी का बडा आदर सत्कार किया। किन्तु वह परीक्षा भी करना चाहता था अत. गुरु जी को और उनके साथियों को अलग मकानों मे ठहराया और रात्रिको परीक्षार्थ गुरुजी के पास एक सुन्दर स्त्री को भेजा। उसने और उसकी दासियो ने अपनी सब चेष्टाए गुरुजी के डिगाने के लिए कीं किन्तु वे असफल रहीं और राजा से जाकर हाल कहा तो राजा बड़ा प्रसन्न हुआ। उदासी ग्रन्थकारों का कथन है कि जो ज्ञान गुरु जी ने राजा नाभ को दिया था वही प्राणसंगली नामक ग्रन्थ मे हैं। इस प्रसंग को केवल सूचना के तौर पर हमने भी जोड़ दिया है क्योंकि यह उनकी प्रथमबार की महान धर्मयात्रा से सबन्ध रखता है।

दूसरी उदासी

सुल्तानपुर मे केवल चार महीने रहकर गुरु जी पुन. यात्रा पर चल निकले किन्तु चूंकि मरदाना अपने घर जाने को उत्सुक था वह घर चला गया। वहाँ उसने गुरु जी के पिता से सब हाल जाकर कहा। इस खबर को सुनकर वे सुल्तानपुर आये और उन्हे तलवंडी लिवा ले गये क्योंकि रायबुलार का भी निमंत्रण था अत. गुरु जी तलवंडी पहुँचे, सभी लोग बड़े खुश हुए। यहाँ बहुत ही थोड़े दिन रहे फिर यहा से यही होकर कसूर मे कई मुसलमान फकीरों से मुलाकात की। और उनके साथ हरि चर्चा भी हुई। यहा से सतलज को पार करके धर्म कोट और भटिंडा होते हुये इसी संवत के आषाढ़ मे सिरसा पहुँचे। यहाँ कुछ दिन रहकर बीकानेर पहुँचे। बीकानेर मे जैन साधुओं के साथ धर्म चर्चा हुई। जैन साधुओं ने गुरु जी से पूछा "आपका धर्म क्या है?" गुरुजी ने कहा "भूले भटकों को रास्ते पर लाना", मेरा धर्म है। साधुओं ने कहा आप किस रास्ते पर डालते है?" "जो रास्ता परम पिता परमेश्वर से मिला देता है" गुरुजी ने उत्तर दिया। साधुओं ने फिर पूछा अगर ईश्वर के पचड़े मे न पड़ा जाय तो क्या हर्ज है। "इससे बढ़कर फिर कौनसी कृतघ्नता होगी" जवाब मे गुरु जी ने कहा। इसके अलावा गुरु जी ने ईश्वर के अस्तित्व और गुण स्वभाव एवं स्वरूप के सम्बन्ध में जैन साधुओं को बहुत उपदेश दिया किन्तु उन्होंने हठ वश एक भी बात को स्वीकार नहीं किया।

यहा से चलकर गुरुजी जयसलमेर पहुँचे। जोधपुर होते हुए अजमेर पहुँचे। वहाँ उन्होंने ढाई दिन के झोंपड़े को देखा। वहां उनके पास वहाँ के कई फकीर आकर मिले और कहने लगे आप तो हिन्दू और मुसलमान सभी को प्यार करते है। चलिए आज हमारे साथ चलकर नमाज पढ़िये। उनकी इस बात को सुनकर गुरु जी ने कहा—

अपने नजदीक तो शुभ कर्म काबा हैं सत्य भाषण कलमा है कर्तव्य की पूर्ति निवाज है" इसे हम

१. कई एक लेखको के कथनानुसार यह सगलाद्वीप का सफर गुरुजी के करतारपुर स्थापन कर चुकने के बाद हुआ है।

निवही करते हैं आप लोगों में से भी कोई इसी तरह वरता हो तो उसका और हमारा साथ है। इस सत्य उपदेशों को सुनकर वे लोग चुप हो रहे और गुरुजी के ख्यालात की प्रशंसा करने लगे। अजमेर से सात मील के फासले पर पुष्कर तीर्थ है। यहाँ कार्तिक पूर्णमासी पर कई दिन तक भारी मेला रहता है। गुरु जी ने वहाँ पहुँचकर भी अपने सिद्धान्तों का प्रचार किया। वहाँ से नसीराबाद, देवगढ़, लोदीपुर होते हुए आबू पहाड़ पर पहुँचे। यहां भी जैनी साधुओं का बड़ा जमघट रहता है। जैन साधुओं से गुरु जी ने यहाँ भी काफी लोहा लिया और उन्हें अपने तत्वज्ञान की ओर आकर्षित करने की चेष्टा की। उनके दिलों पर तो गुरु जी के उपदेशों का असर पड़ा किन्तु सहज ही वे आनन्दों को छोड़ने वाले थोड़े ही थे। वहाँ से चलकर झालरा पाटन, ईडर, डूंगरपुर, बांसवाडा आदि नगरों से होते हुए मही नदी को पार किया। जावरा के रास्ता से गुजरकर धारानगरी होते हुये चम्बल को पार करके उज्जैन पहुँचे। उज्जैन वही नगर है जिसमें राजा विक्रमाजीत और भर्तृहरि जैसे विद्वान आदमी हो चुके थे यहाँ गुसाईं लोगों और शैव मत के अनुयाइयों को गुरु जी ने उपदेश दिया। कई दिन तक यहाँ रहे भी। यह देश नदियों और वृक्षों करके बड़ा सुहावना मालूम देता है। पैदावार भी यहाँ अच्छी होती है।

उज्जेन से ओंकार पहुँचे यहाँ महादेव की मूर्ति पर गंगा जल की शीशियाँ चढ़ाई जाती हैं। आरती के समय सब अन्य साधु संत तो खड़े हो गए किन्तु गुरु जी बैठे ही रहे पुजारियों ने पूछा बाबा ओंकार की प्रार्थना में क्यों शामिल नहीं हुए? गुरु जी ने फर्माया।

ओअंकार ब्रह्मा उतपति। ओ अंकार किया जिनि चिति।
ओ अंकार सैल जुग भये। ओ अंकार वेद निरमये।
ओअंकार सबदि उधरे। ओ अंकारि गुरमुखि तरे।
ओनम अखर सुणहु विचारु। ओनम अखर त्रिभवण सारु॥

गुरु जी वहां से चल कर, होशिंगाबाद, नरसिंहपुर बालाघाट इत्यादि गाडरदेशीय शहरों और जंगलों को पार करते हुए महादेव गिरि नाम की पहाड़ी को लांघ कर शहर सोनी के पास रामटेक पर पहुंचे। कहा जाता है अति प्राचीन काल मे यहाँ पर राजा अम्बरीष ने यज्ञ किये थे। यहां पहाड़ी पर एक तालाब तथा प्राकृतिक किला यहाँ बना हुआ है। यहां से कामठी नागपुर होकर आवडा नामक स्थान में पहुंचे। नाम देव भक्त भी यहीं पैदा हुए बताये जाते हैं। वे जाति के छीपे थे किन्तु परमात्मा के दरबार में तो "जाति पांति पूछै नहिं कोई। हरि भजे सो हरि का होइ।" का सिद्धान्त है। नामदेव जी के साथ में गुरु जी की खूब ज्ञान गोष्ठी रही। नामदेव जी भी गुरु जी के अनन्य प्यारों में से थे क्योंकि इनकी भी साखियां श्री ग्रन्थ साहब में मिलती हैं। हमने दूसरे स्थानों पर भी नामदेव जी की जो वाणियाँ पढ़ी हैं उनसे भी हम इसी नतीजे पर पहुंचे हैं कि नामदेव जी भी गुरु जी के सम-विचारक थे।

यहाँ से कड़वा होते हुए स्रहून नगर में पहुँचे जहाँ प्राय: सभी लोग गणेश जी की मूर्ति की पूजा करते थे। इन लोगों को उपदेश देकर गुरु जी ने इतना तो करा दिया कि लोगों ने मूर्तियों को गले में लटकाना बन्द कर दिया? यहाँ से आगे विदर देश में पहुँचने पर गुरु जी ने देखा कि यहाँ का समाज कनफटे जोगियों के हाथ में है जो सेली टोपी बांध कर फिरते हैं। यहाँ इनके इस पाखंड की भी पोल खोली। विदर के इलाके को पार करके बलदाना और मलकापुर से गुजरते हुए, गुरु जी ने गोदावरी नदी को पार कर हैदराबाद जिले में प्रवेश किया और फतिहाबाद में रहकर कुछ दिन प्रचार किया।

विदर और हैदरावाद के कई स्थानो पर अपने उपदेशो की वर्षा करके गुरुजी पागल प्रात मे दाखिल हुए और जंगलों से घिरे हुये एक पहाड़ पर जा विराजे। यहाँ भी कनफटे जोगियों के डेरे थे। इन लोगों ने सुन रक्खा था कि गुरु नानक के पास लोग जो सौगात या भेट ले जाते है वे उसे उसी समय बंटवा देते हैं। अतः वे जोगी केवल एक तिल लेकर गुरु जी की सेवा मे हाजिर हुए। वे सोच रहे थे देखे इस छोटे से तिल को इतने आदमियों मे कैसे वाट दे। गुरु जी ने तिल को लेकर मरदाना को आज्ञा दी कि इस तिल को पानी मे पीस कर सव को आचमन करादो। जोगी लोग गुरु जी की इस अपरिग्रही बात से वड़े प्रसन्न हुए। इस स्थान पर तिलगज नाम का एक गुरु स्थान है। यहाँ से गुरु जी केरल प्रांत मे पहुँचे तारीख खालसा के लेखक सतसिंह ने वहाँ उस समय स्त्रियों का राज बताया है। शायद किसी समय रहा हो। अति प्राचीन समय मे तो यह सूर्पनखा के अधिकार मे था। इस देश के कदली बन को लांघते हुए और कृष्णा नदी को पार करके घूमते घामते पालम कोट पहुँचे। कहा जाता है इस यात्रा मे मनसुख भी मिला था। पालम कोट मे गुरु जी की स्मृति मे एक मकान वना हुआ बताया जाता है। यहाँ से गुरु जी ने उन स्थानों को देखा जहाँ वानर लोग रहते थे। कंपकपी नगर को भी देखा। वह पहाड़ भी देखा जहाँ शिव पार्वती कुछ अनमन हो जाने के कारण अलग रहे थे। पालम कोट से कुछ ही दूर पर पाप नाशिनी गंगा नामक छोटी सी नदी है उसे पार करके आगे बढ़े। यहाँ लोग विष्णु की मूर्ति को तेल से स्नान करा कर अपनी भक्ति प्रकट करते थे। आगे वे अरकाट, पांडेचरी आदि को देखते हुए रामेश्वर पहुँचे। यहाँ पंडों के साथ ज्ञान चर्चा की किन्तु उन पर कोई स्थायी असर नहीं हुआ।

यहां से गुरु जी सीलोन अथवा लंका मे पहुँचे। वहाँ के राजा रानी ने गुरु जी का खूब आदर सत्कार किया। तथा वड़ी श्रद्धा से नित प्रति उपदेश भी सुनते रहे। कहते हैं एक दिन रानी ने गुरु जी से कहा महाराज पति को वश मे रखने का कोई मंत्र वताइये न। गुरु जी ने कहा :—

"प्रिय लगने वाले वचन बोलना, पति के क्रोध होने पर सहनशीलता से काम लेना, और पति से कोई कपट न करके प्रेमी स्वभाव रखना यही पति को वश मे करने का मत्र है। रानी इस बात को सुनकर वड़ी प्रसन्न हुई और उसने गुरु जी के इस मत्र को गाँठ वांध लिया।"

लंका से लौटकर गुरु जी दक्षिण भारत मे मैसूर राज्य के राजा से मिले। वहाँ से शृंगेरीमठ आये। जो कि स्वामी शंकराचार्य जी के मठों मे से है। यहाँ के महंत ने गुरु जी का अच्छा सत्कार किया तथा उपदेश भी सुने। यहाँ से अनेक नगरों को देखते हुए कालीकट से आगे मैसूर राज्य के वंगलोर आदि गावों व नगरों को देखते भालते वम्बई प्रांत से गुजरते हुए गोदावरी के तीर पर पंचवटी को देखा जहाँ भगवान वनवास के समय रहे थे। वहाँ से अम्बकेश्वर शिवजी का मंदिर देखते हुए और ताप्ती नदी को पार करके भड़ौच, वरोदा, अहमदावाद के रास्ते से भावनगर और पालीताना को देखते हुए जूनागढ़ पहुँचे। यहां गुजरात के प्रसिद्ध संत नरसी भगत[1] से भेट की। नरसी भगत ने कई दिन तक गुरुजी को वहीं रख लिया। नित ज्ञान चर्चा होती रही। यहाँ एक फकीर फैजवख्श भी वडा नेक आदमी था। वह भी गुरु जी का आना सुनकर उपस्थित हुआ और ज्ञान चर्चा मे भाग लिया। वह गुरु जी की तरफ इतना आकर्षित हुआ कि जव गुरु जी वहां से चले तो उसने गुरु जी की खड़ाऊँ स्मृति के रूप मे रख ली। यह खड़ाऊँ अव भी एक धर्मशाला मे रक्खी हुई वताई जाती है।

१. कहा जाता है नरसी का शरीरांत माघ ५ सवत् १५८२ को हुआ था।

यहाँ से गुरु जी गिरनार पर्वत पर पहुँचे क्योंकि वहाँ पर अनेकों साधु महात्मा तप करते थे। कई दिन तक उनके साथ सतसंग करके सुदामापुरी का अवलोकन करते हुए द्वारिका पहुंचे। सुदामापुरी तक गिरनार से पहुँचने मे रास्ते में गुरु जी ने सोमनाथ के मन्दिर और यादवों की रण भूमि प्रभास क्षेत्र को भी देखा था। द्वारिका में गुरु जी उस स्थान पर भी गये जहाँ के लिये कहा जाता है कि कृष्ण काल में यही द्वारिकापुरी थी अब समुद्र में डूब गई है। यहाँ से गुरु जी मुड़कर कच्छ के मैदान में जा पहुँचे। वहाँ के लोग वाम मार्गी थे और उसी ढंग से देवी की पूजा किया करते थे। गुरु जी ने वहाँ ठहर कर इस प्रकार के अनेकों लोगों को परमपिता परमेश्वर की शरण में आने के लिए उपदेश दिया।

यहां से लौटते हुए लखपत शहर और भुज को देखते हुए रास्ते में आशापूर्णा देवी के मन्दिर पर ठहरे और फिर नारायण सरोवर में जाकर लोगों को उपदेश दिया। यहाँ से धरनीधर की झाड़ी मे होकर गुजरते हुए अमरकोट पहुँचे। यहाँ भी देवी पूजा का प्रचार था। आपने एकेश्वर पूजा के लिए लोगों को सलाह दी। यहाँ से अलदियार के टांडे से होकर फीरोजपुर में आ गये और फिर अहमदपुर, खानपुर इलाका बहावलपुर, आदि अनेकों स्थानों पर होते हुए शहर उच्च मे जा पहुंचे। यह बस्ती निरी फकीरों की थी। आपने गाँव के बाहर डेरे डाल दिये। अनेक बार फकीरों से वार्तालाप हुई, फिर मुलतान मे पहुंचे। जब यहां के फकीरों को पता चला तो उन्होंने दूध से लबालब भरा हुआ एक कटोरा गुरु जी की सेवा में भेजा। जिसका अर्थ था कि यहां तो पीर फकीरों से यह शहर पहिले से ही पूरा भरा हुआ है अब आप कहाँ समावेंगे। गुरु जी ने उस दूध में दो बताशे डालकर और ऊपर से एक फूल रखकर उसे वापस कर दिया। यह फकीरों के लिए एक जवाब था अर्थात् हम तो आप लोगों के वैसे ही सहकारी हैं जैसा मीठा, दूध का सहकारी है और भरे कटोरे पर भी जैसे फूल रह सकता है साथ ही उसे सुगन्धित भी बना सकता है वैसे हमारे रहने से आप लोगों की हानि तो नहीं होगी अपितु आपके खयालात और अच्छे हो जायेंगे। पीर और फकीर इस सांकेतिक उत्तर से बड़े प्रसन्न हुए और हकशाह, शरीफसानी, कोकलदीन और सदा सुहागन आदि जो जो माने हुए पीर थे गुरु जी की सेवा में भेट पूजा ले हाजिर हुए। यहाँ से विदा होकर तलम्बा नामक ग्राम में जाकर ठहरे। यहाँ सज्जन नामक ठग रहता था। उसने रास्तागीरों के ठहरने के लिये स्थान भी बनवा रक्खे थे पर मुसलमानों के लिये मस्जिद और हिन्दुओं को मंदिर। रात्रि को मुसाफिरों को सुलाने के लिए कहकर भीतर ले जाता और कुँए में पटक देता। जब गुरु जी और मरदाना उनके यहाँ पहुंचे और सोने का समय हुआ तो उसने इसी प्रकार इनसे भी कहा. चलिये बाबा सोइये क्योंकि गुरु जी के चमकते चेहरे को देखकर उसने इन्हें भी मालदार ही जाना था। गुरु जी ने उनसे कहा "सज्जन परमात्मा की बंदगी करके सोवेंगे। उसने कहा हां, हां, बाबा करिए बंदगी करिए। मैंने तो सोने का समय जानकर अर्ज की थी। गुरु के संकेत पर मरदाना ने गाना आरम्भ किया —

"उजलू कहिया चिलकना घोटम कालडी मसु।
धोतिया जूठि न उतरै जो सउ धोवा तिसु।
सजन सेई नालि मैं चलदिया नालि चलन्नि।
जिथै लेखा मंगीऐ तिथै खड़े दिसन्नि। रहाउ।
कोठे मंडप माड़िया पासहु चितवीआहा।

कुठीआ कमिन आवनी विचहु सखणी आहा ।
बगा बगे कपडे तीरथि मझि वसनि ।
घुटि-घुटि जीआ खावणे बगे ना कहीं अनि ।
सिम्मल रुखु शरीर मै जनि देखि भुलनि ।।
सो फल काम न आवही ते गुण मै तनि हनि ।।
अधुलै भार उठाइआ डूगर बाट बहुतु ।
अखीं लोडी नालहा हउ चढि लधा कितु ।
चाकरिया चगिआइया अवर सियाणपु कितु ।
नानक नाम सम्भाल तू बधा छूटहि जितु ।।

इन शब्दों को सुनते ही सजना के अतर कपाट खुल गए और उसे प्रतीत हुआ मानो अपने ही ऊपर यह पद घटित होता है वह गुरु जी के चरणों मे पड़ कर अपने अपराधों की माफी मांगने लगा। गुरु जी ने कहा जो पापों का माल इकट्ठा किया है उससे तो मोह छोड़ो और परमात्मा मे चित लगाओ इसी मे तुम्हारा कल्याण है।

सजना उसी समय से सुमार्गी हो गया। कहा जाता है गुरुजी ने पहली धर्मशाला इसी गॉव मे वनवाई थी। यहॉ से गुरुजी अपनी जन्म भूमि तलवंडी में पहुँचे इस समय संवत् १५७२ का भादवा महीना था। माता पिता सभी लोग आपके आने से वड़े प्रसन्न हुये। यहॉ आपने सुना कि रायबुलार बीमार है तो आप उसके घर पहुँचे। आपको देखकर बुलार बड़ा प्रसन्न हुआ और उसने प्रार्थना की कि आप अब यहा से न जावें क्योंकि मैं थोड़े दिन का मेहमान हूँ। आपके रहने से मुझे आनन्द मिलेगा गुरुजी ने उसकी बात को मान लिया। इस तरह तेरह दिन उन्हे तलवंडी में ठहरना पड़ा।[1]

रायबुलार के देहान्त के बाद गुरुजी तलवंडी से प्रस्थान करके सुल्तानपुर मे अपनी बहिन के घर आये। मरदाना गुरुजी से आज्ञा लेकर तलवंडी ही रह गया था। यहां नवाब दौलतखां ने गुरुजी को सदैव के लिये ठहरने को कहा किन्तु आपने उत्तर दिया कि भविष्य का क्या पता है?[2] क्या होना है? हम क्या निश्चय कर सकते हैं क्योंकि होना तो वही है जो ईश्वर के वश मे है। नवाब चुप हो रहा, कुछ दिन यहां ठहरने के बाद फिर गुरुजी लाहौर पहुँचे। आपका इरादा यहा कुछ दिन स्थिर रूप से रहने का था किन्तु वहॉ के गौवध को देखकर आपको दुख हुआ और यह कहते हुये वहॉ से चल दिये "लाहौर शहर जहर कहर सवा पहर" और गुरुदासपुर जिले के कलानौर ग्राम में पहुँचे। यहॉ दोदह गोत्र के जाट रहते थे उन्होंने गुरुजी से वहीं स्थान बना लेने के लिये आग्रह किया। अत आपने परमात्मा के नाम पर करतारपुर[3] आबाद किया। करोड़ीमल खत्री ने वहॉ की कुल भूमि आपके स्थान से लगवा दी। मकान और धर्मशाला के बन जाने पर आप अपने बच्चों को भी यहीं ले आये। इस तरह पन्द्रह वर्ष के बाद सुलखणी माई को पुन अपने आराध्य देव की सेवा करने का मौका मिला।

१ पुरातन जन्म साखी के अनुसार गुरुजी अपनी बाकायदा यात्रा पर जाने से पहले ही इस स्थान पर आये थे।
२. कुछ लेखकों ने लिखा है करतारपुर की नींव १५६६ में रक्खी गई और तीसरी यात्रा १५७० में आरम्भ हुई।
३ यहां चार ठडे-कुण्ड भी है जो राम-कुण्ड, लक्ष्मण कुण्ड, सीता कुण्ड और हनुमान कुण्ड के नाम से मशहूर हैं।

तीसरी उदासी

सिख तवारीखों में लिखा है कि करतारपुर की नींव संवत् १५७२ वि के माघ की १३वीं को रक्खी गई थी। धर्मशाला मकान कुएँ वन जाने तथा काफी जमीन हो जाने पर गुरुजी ने खेती कराना भी आरम्भ कर दिया क्योंकि वे भेंट चढ़ावे पर अपना जीवन निर्वाह का आधार नहीं बनाना चाहते थे इसीलिये यह रकम उसी समय लंगर में डाल देते और अपने परिवार के खर्चे के लिये खेती करना उन्होंने जरूरी समझा।

तीन वर्ष के करीव वहाँ रह कर गुरुजी फिर यात्रा के लिये निकले। मरदाना भी आ पहुँचा था। यह यात्रा उन्होंने संवत् १५७५ के अनू की २५ वीं को आरम्भ की। कलानोर, गुरदासपुर, दसूहे, त्रिलोकनाथ, पालमपुर, और कोट कांगड़े होते हुये ज्वालामुखी पहुँचे। यहाँ अरजुन नाग को उपदेश दिया। गुरुजी की यादगार में यहाँ एक धर्मशाला भी है। वहाँ से ननीपुर होते हुए, रवालसर पहुँचे। यहाँ देखा कि पत्थर के छोटे-छोटे टीले तालाब में तैर रहे हैं और उन पर हरे-हरे वृक्ष उगे हुए हैं। पंडा लोग इन्हें दिखा-दिखा कर अपना रोजगार चलाते हैं। मरदाने के पूछने पर गुरुजी ने बताया झावाँ नामक पत्थर परमात्मा ने पानी में न डूबने वाला ही बनाया है यह सब उसी की कुदरत है। इस देश में मनीकर्ण में एक गर्म पानी का चश्मा है जिसमें चावल डालते-डालते पक जाते हैं। यहाँ से नादौन सुकेत मंडी को देखते हुए कुल्लू राज्य में पहुँचे। वहाँ पर गद्दी जाति के लोगों को उपदेश दिया। चम्पा राज्य में जाकर जहाँ कि एक शीतला का मंदिर था लोगों को ईश्वर पूजा की ओर खींचने के लिये उपदेश दिया। आगे कीर्तिपुर में बुड्ढनशाह फकीर से भेंट की। यह फकीर बकरियां भी पालता था उसने मटकी दूध गुरुजी के पास भेजा किन्तु गुरुजी ने यह कह कर लौटा दिया कि कभी फिर लेंगे हमारी अमानत जमा रहे। तत्पश्चात पंजोर गये वहाँ वैसाख सुदी ३ को प्रति वर्ष बड़ा मेला लगता है, यहाँ से आगे जोहड़ साहब में पहुँचे वहाँ गुरुजी की यादगार में एक बड़ा मकान भी बना हुआ है और प्रति वर्ष जेठ के महीने में मेला लगता है। यहाँ से तीन कोस की दूरी पर एक बहुत ऊँची पर्वत की चोटी है उस पर भी गुरुजी पहुँचे और लोगों का पानी का दुख मिटाने के लिये पर्वत शिला को हटा दिया जहाँ पानी निकल आया। इससे लोग बड़े कृतज्ञ हुए। उस स्रोत के आस पास घेरा बांध कर अब उसे तालाब का रूप दे दिया गया है जो माहीसर कहलाता है। यह नाम पड़ने का कारण यह है कि माही नाम के व्यक्ति ने ही गुरुजी से सर्व प्रथम जल कष्ट की कहानी कही थी। चलते समय भी गुरुजी ने उसको ही यहाँ का प्रबन्धक बनाया था उसने गुरुजी के सिद्धान्तों का बड़ा प्रचार किया यहाँ तक कि अब भी इस पर्वत के वासी नानकशाही नाम से ही संबोधित होते हैं यहाँ से चलकर गढ़वाल, मसूरी और चकराता होते हुये उत्तरकाशी में पहुँचे, जहाँ अनेक अग्नि व जल के उपासकों को सन्मार्ग बताया। यहाँ से गंगोतरी और जमनोतरी स्थानों को देखा जहाँ से कि गङ्गा, यमुना निकलती हैं। श्री नगर में पहुँच कर वहाँ के राजा अजर शाह को उपदेश दिया और फिर अनेक स्थानों को देखते हुए बद्रीनारायण में पहुँचे। यहाँ का महंत द्राविड़ ब्राह्मण था। उनके पंडों ने गुरुजी के पास आकर बद्रीनारायण जी का इतिहास इस प्रकार सुनाया कि यह नारायण की मूर्ति सतयुग की है। जैनी लोगों ने इसे गंगा में फेंक दिया था पुन: श्री शंकराचार्य जी ने इसे स्थापित किया है "जल थल महीअल पूरिआ स्वामी सिरजन हार, अनिक भांति होइ पसरिआ नानक ओंकार।" अर्थात् जल, थल सभी स्थानों पर फैले हुए, परमेश्वर ही का मैं तो उपासक हूँ। इससे पंडे समझ गये कि यह साधू मूर्ति पूजक नहीं है। यहा से

चलकर गुरुजी वसुधारा होते हुए हिमालय को पार करके हेम कूट से आगे सप्त श्रृंग पहाड़ पर पहुँचे। यहां पर लोकनाथ नाम का एक तीर्थ था वहाँ अनेक साधु सन्तो के साथ सतसग किया। यह स्थान वद्रीनाथ से आगे १० कोस के फासले पर धरातल से १७६७ फीट की ऊंचाई पर बताया जाता है। यहाँ प्रातः सूर्य्योदय के समय सारी पर्वत सिखरें सुनहरी हो जाती है, इसलिये इसे हेम कूद व सुमेर पर्वत भी कहते है। कहा जाता है राजा पांडु भी यहां आकर रहे थे।

यहां से उतर कर और कई मजिले पार करके रानी खेत, अलमोड़े आदि से गुजरते हुए नैनीताल के इलाके मे पहुँचे। इस जगल मे कनफटे जोगियों के कई डेरे थे। यह जोगी लोग अपने को सिद्ध माना करते थे इनके साथ गुरु जी का काफी विवाद हुआ और अंत मे जोगियों को हार खानी पड़ी। उसी समय से उस स्थान का नाम गोरख मते के वजाय नानक मता हो गया। यहा से तीन कोस के फासले पर गुरु जी ने कनफटे साधुओं को उनकी वार वार की इस जिद से कि कोई करामात दिखाओ रीठे को मीठा करके वताया। यहा से गोरख पुर पधारे। यहाँ भूत प्रेत की पूजा का भारी प्रचार था गुरु जी ने उपदेश करके वताया और कहा क्यों तुम जन्म को व्यर्थ गमाते हो परम पिता परमात्मा की शरण मे आओ। यहाँ से मानसरोवर कृष्ण ताल और धौलागढ़ के मार्ग से नैपाल देश की राजधानी काठमाडू मे पशुपति नाथ के शिवालय के पास जाकर डेरा लगाया। यहाँ अपने सिद्धान्तों का प्रचार करने के वाद ललता पट्टी और पोरस्ट पहाड़ को देखते हुये शिक्म की भूमि मे पहुँचे और एक टीले पर जाकर डेरे लगाये। यहाँ रवाव पर गाकर लोगों को गुरु जी के शव्द मरदाना ने सुनाए। इसके आगे कंचनचंगा, और देश की राजधानी तासी सूदन मे धर्मोपदेश किया। वहां से तिव्वत का देश भी मिला हुआ है गुरु जी ने तिव्वती लामाओं से भी सत संग किया। एक लामा ने तो गुरु जी कं वाणियों का अपनी भाषा मे संग्रह भी किया। यहां से गुरु जी भारत की ओर लौट पड़े और, लखीम, ब्रह्मकुंड डेरहगढ़, शिवपुर, रानीगंज होते हुये मिथिला प्रान्त के जनकपुर मे आये। यहाँ भी कई लोगों को अपना शिष्य वनाया इसके वाद गन्डकी नदी को पार करके सीतामढ़ी, गोरखपुर वलिरामपुर, काशीपुर, सीतापुर और वल्लभ शहरों मे होते हुए लुधियाने से गुजर कर जालंधर मे आये और फिर शीघ्र ही सुल्तान पुर मे अपनी वहिन नानकी के घर पहुँचे। कुछ दिन वहिन के घर रह कर फिर अपने बसाये हुए ग्राम करतार पुर मे पधारे। तहाँ आपको आया सुनकर आस पास के इलाकों के लोग दर्शनों के लिये उमड़ पड़े और दर्शन करके तथा विविधि देश और नगरों का गुरु जी के मुंह से हाल सुनकर सवने आनन्द लाभ किया। इस तरह यह तीसरी उदासी समाप्त हुई।

चौथी उदासी

तीसरी उदासी लगभग दो वर्ष में समाप्त हुई थी। फिर भी गुरु जी ने करतार पुर मे दस पाच वर्ष भी विश्राम नहीं किया। यात्रा पर चल पड़े[1] यह चौथी यात्रा भाई मरदाना के आग्रह पर उन्होंने भारत से बाहर के पच्छिमी देशों को देखने के लिये आरभ की। लालो को दर्शन देने की इच्छा से पहिले एमनावाद पहुँचे। फिर वजीराबाद से आगे रोहितास पहाड़ के पास पहुँचे। यहाँ मरदाना की प्यास

१. यहा यह भी बता देना उचित होगा कि गुरु जी तलवडी भी गये थे और अपने परिवार वालों को देश विदेश की चर्चा और सदुपदेशो से सतुष्ट किया था।

बुझाने के लिये एक पत्थर को हटाकर श्रोत खोला। कहा जाता है कि जब संवत १५६६ वि० में बादशाह ने यहां किला बनवाया था तो उसने इस चश्मे को किले के भीतर लेने का निष्फल प्रयत्न किया था। आगे टिल्ले वाल गढाई के पास कनफटे जोगियों के साथ धर्म चर्चा की। फिर आगे चलकर पिंडदादन खां, डेरा इसमाइल खां और डेरा गाजी खा आदि शहरों मे अनेक मुसलमान साधुओं के साथ विचार-विनमय और ज्ञान चर्चा करते हुये जमानपुर, राजनपुर और कोट मिट्ठन मे होकर शहर सक्खर में पहुँचे। तथा प्रचार किया. इसके अलावा सिन्ध प्रान्त के शिकारपुर, लरकाना और हैदराबाद तथा किराची आदि रास्ते के सभी बड़े और छोटे नगरों मे गुरु जी ने धर्म प्रचार किया। यहां के सभी लोग जल देवता, इन्द्र देवता आदि की मिट्टी की मूर्तिया बनाकर अपनी धार्मिक भावनाओं की पूर्ति करते थे किन्तु गुरु जी के उपदेशों से हजारों आदमी एक ओंकार के उपासक बन गये। और अब तक भी सिन्ध में गुरु नानक के मतानुयाइयों की भारी संख्या पाई जाती है। यहां प्रत्येक नगर मे धर्मशालायें हैं जिनमे उदासी संत रहते हैं। और गुरु ग्रन्थ साहब का पाठ करते हैं।

शहर करांची के मार्ग से गुरु जी भारत से बाहर हो गए और बिलोचिस्तान मे पहुँच गये। इसी देश मे हिंगलाज की देवी का मन्दिर है जिसे बहुत पहिले जाटों ने शक्ति की पूजा के लिये बनवाया। इस्लाम के प्रवाह से यहा के पुराने वाशिन्दे जिनमें अधिकांश जाट ही थे कुछ मुसलमान हो गये कुछ भारत की ओर चले आये थे। गुरु जी ने कलात को देखते हुये इस तरह बिलोचिस्तान को भी पार किया और अनेकों स्थान को देखते भालते मक्का पहुँचे।

बिलोचिस्तान में

मक्का पहुँच कर लोगों के वेश भूषा रहन सहन और चाल चलन को देखकर गुरु जी ने मरदाना से रबाब पर यह पद गवाया :—

अरब में

"नौं सत चौदह तीन चार करि, महलति चारि बहाली।
चारे दीवे चहु हथि दीये एका एका वारी॥
मिहर मान मधु सूदन माधौ ऐसी सकति तुमारी। १ रहाउ॥
घरि घरि लसकरु पावकु तेरा धरमु करे सिकदारी।
धरती देग मिले इक वेरा भागु तेरा भडारी॥ २॥
ना साबरु होवै फिरि मगे नारदु करे खुआरी।
लब अधेरा बन्दीखाना औगुण पैरि लुहारी॥ ३॥
पूंजी मार पवै नित मुदगर पाप करे कोटवारी।
भावै चगा भावे मदा जैसी नदरि तुम्हारी॥ ४॥
आदि पुरुष को अलहु कहीए सेखा आई वारी।
देवल देवतिया करु लागा एसी कीरति चाली॥ ५॥
कूजा बांग निवाज मुसला नील रूप बनवारी।
घर घर मीयाँ सभना जीआं बोली अवर तुम्हारी॥ ३॥
जे तू मीर महीपति साहिब कुदरति कौण हमारी।
चारे कूंट सलाम करहिगे घरि घरि सिफत तुम्हारी॥ ७॥
तीरथ सिमित पुनि दान किछ लाहा मिलै दिहाडी।
नानक नामु मिले वडिआई मेका घडी सभाली॥ ८॥

इसका भावार्थ यह है कि हे परमात्मन् आपने सात द्वीप, नौ खंड, चौदह भुवन वाला जो संसार बनाया है। हे भगवन यह आप ही की ताक़त का काम है अर्थात् दूसरा कौन है जो ऐसी रचना कर सके। इस ससार मे तूने भोगने को सब चीजों के भंडार दिये किन्तु तृष्णा पापिन ख्वार करती है। अज्ञान अंधकार के बन्दीखाने मे लोग यम की मोगरी की मार खा रहे है। विचित्रताओं के इस ससार मे (यहाँ अरब के) लोग आदि पुरुप को तो अलहि 'अप्राप्त' कहते है। हे बनवारी यहां तो कूजा बांग वालों मे आपका नील (भद्दा) रूप माना जाता है। जिअन (जीवित लोगों) को मीआ (मुये हुये) कहते है। यहा आपकी भापा ही दूसरी हो गई है। यह सब तेरी ही कुदरत है इसलिये हमे चारों खूंट तुम्हारी सलामी देनी होगी। चाहे तू मीर कहला और चाहे महीपति। तीर्थ, दान पुण्य और स्मृति पाठ से यदि कुछ भी लाभ होता हो तो मुझे केवल आप अपने नाम की बड़ाई (गुणगान का प्रेम) ही दीजिये।

कई दिन के सफर के कारण रात्रि के समय गुरु जी और मर्दाना गहरी नींद मे सो गये इससे प्रात ही जल्दी न जग सके। मुल्ला ने देखा कि गुरु नानक जी के पांव काबा की ओर है तब कहने लगे आप खुदा के घर (काबा) की ओर पैर करके सो रहे हैं। गुरु जी ने कहा भाई हमारे पैर उधर कर दो जिधर खुदा का घर न हो। इस यथोक्त बात को सुनकर मुल्लाओं के ज्ञान चक्षु खुल गये।[1] मुल्ला गुरु जी को काजी के पास ले गया और सब हाल सुनाया। काजी ने पूछा साईं जी आप कौन हैं? "मैं मनुष्य हूँ" गुरु जी ने जवाब दिया। मनुष्यों मे भी हिन्दू और मुसलमान मे से आप कौन है? काजी ने दूसरा प्रश्न किया। गुरु जी ने जवाब दिया "पच तत्व का पुतला तो न हिन्दू है न मुसलमान" मनुष्य जाति मे विभेद पैदा करने की पद्धति ईश्वरीय काम तो नहीं। काजी ने प्रश्न को बदल कर गुरुजी से पूछा आपकी बगल मे जो पुस्तक है किस मतलब की है? इस पर गुरुजी ने कहा मतलब तो जो जैसी प्रकृति का होता है वैसा ही निकाल लेता है। तब फिर आपके किस काम आती है? काजी ने पूछा। मेरी यह खुराक है गुरु जी ने उत्तर दिया। काजी इस उत्तर पर बड़ा हैरान हुआ और पूछने लगा, साईं जी भला किताब मे से कोई क्या खायेगा? गुरु जी ने कहा हां खाते है, सुनो जो लोग बहस मुबाहिसा करने के शौकीन होते हैं वे किताब के हाड़ भाग को खाते हैं और जो महान् लोगों की कृति समझ कर पुस्तकों का अध्ययन करते हैं वे उसके मास भाग को खाते हैं। और जो पुस्तकों को पढ़कर अपने और परमात्मा के रूप का साक्षात्कार करता है, वह पुस्तक का प्राणभाग खाता है। इस तरह के विवेचन को सुनकर काजी का आत्मज्ञान जाग्रत हो उठा और उसने गुरु जी का हाथ पकड़ कर अपने से ऊँचे आसन पर बिठाया तथा कई दिन तक सत्संग का लाभ लिया।

मक्का से चल कर गुरु जी मदीना पहुँचे। वहां उनके साथ आरम्भ में कुछ लोग इस कारण कटुता से पेश आये कि वे चाहते थे कि सगीत के द्वारा गुरु जी कोई प्रचार न करे। आखिर गुरुजी के न मानने पर बात इमाम तक पहुंची। इमाम ने भी मना किया और कहा शहर मे सगीत वर्जित है। गुरु जी ने कहा कि मन को विचलित करने वाला, आचरणभ्रष्ट लोगों द्वारा गाया जाने वाला सगीत शराह मे निषेध होगा। परमात्मा की भक्ति को पैदा करने वाला संगीत निषिद्ध नहीं हो सकता है। इमाम

१. साखियो में लिखा है कि जब गुरु जी के पैर पकड कर घुमाये गये तो जिधर को पैर घुमाये गये ऐसा प्रतीत हुआ कि जिधर उनके पाव घुमाये जाते है उधर ही काबा भी दिखाई देता है।

की समझ में यह बात आ गई। उसने कुछ शब्द उसी समय मरदाना के रबाब पर सुने। जिनसे वह इतना प्रभावित हुआ कि उसने गुरु जी का बड़ा आदर सत्कार किया। यहां गुरु जी सब इमामों से मिले तथा उनके साथ ज्ञान चर्चा की। साखियों में अरब देश में गुरु जी के सतसग और धर्म प्रचार सम्बन्धी बहुत बातें हैं और पढ़ने सुनने लायक हैं किन्तु हमने तो संक्षिप्त ही वर्णन किया है।

मदीने से चलकर अनेक ग्राम और शहरों को पार करते हुए बगदाद में पहुँचे। यहा एक दिन आप शहर के बाहर खड़े होकर अल्ला हो अकबर का नारा लगाने लगे। इस बेवक्त के नारे को सुनकर हजारों आदमी उनके इर्द गिर्द इकट्ठे हो गये और उनसे अनेक प्रश्न करने लगे। गुरुजी ने उनके साथ उस दिन जो बातचीत की उनसे उन लोगों पर ऐसा प्रभाव पड़ा कि नित ही लोग उनके स्थान पर आकर ज्ञान चर्चा करने लगे।

बगदाद

गुरु नानक जी जब बगदाद से चले तो खलीफा ने उनको एक जामा व चोला भेंट किया जिस पर कई भाषाओं में कुरान की आयतें लिखी हुई हैं। डेरा बाबा नानक में मेले के अवसर पर यह चोला दिखाया जाता है। आगे चलकर गुरुजी रोम की राजधानी अलैपो में जो हल्ब नाम से भी मशहूर थी पहुंचे। गाने बजाने की यहाँ के अधिपति ने भी आरम्भ में मनाही की किन्तु गुरु जी की तर्कों के आगे वह कायल हो गया और रबाब पर भजन सुनकर उसके दिल में भी गुरु जी के प्रति श्रद्धा के भाव पैदा हुए।

रोम

कुछ साखियों में लिखा है कि बगदाद और हल्ब जाने से पहले गुरुजी मिश्र भी गये थे और जलाल नामी पीर और हमीद कारू बादशाह के सामने भी उन्होंने अपने ख्यालात का प्रकाशन किया था। यह भी संभव हो सकता है। अत मे वे हल्ब से लौटकर दरियाये दजला और फरात को पार करके ईरान देश के तेहरान नगर में पहुँचे वहां के बादशाह के साथ गुरु जी ने धर्मचर्चा की। ईरान के प्रदेश से गुरुजी अफ़गानिस्तान उतरे और हिरात में आये। हिरात के खान ने गुरु जी की बातें सुनीं और बड़ा प्रसन्न हुआ। हिरात से रवाना होकर गुरुजी अफगानिस्तान के उत्तरी हिस्से की ओर बढ़ गये और बुखारा में पहुँचे। काबुल, कन्धार से गुजरते हुए जलालाबाद से पेशावर में आ पहुँचे।

ईरान, अफ़गानिस्तान, बलख बुखारे में

पेशावर से आगे बढ़कर हसन अब्दाल की पहाड़ी तले गुरुजी ने डेरा लगाया। यहां पहाड़ी पर वली कधारी नाम का एक फकीर रहता था। उसके पास पानी का एक स्रोत था जब मरदाना पानी लेने गया तो उसने मरदाना से यह जानकर कि वह नानक का शिष्य है कहा, तू काफिर का शिष्य हो गया, तुझे लाज नहीं। मरदाना ने कहा साई जी आप क्या कहते हैं गुरु जी तो इस जमाने के महापुरुष हैं। इस पर उसने कहा तो फिर यहा पानी लेने तुझे क्यों भेजा। वह वहीं पानी क्यों नहीं निकाल लेते। मरदाना ने लौटकर यह बातें गुरुजी से कहीं। गुरुजी ने एक दो दफा फिर उसके पास भेजा किन्तु जब उस ने पानी नहीं ही लेने दिया तो पहाड़ी में उसी स्थान पर एक स्रोत निकाल दिया। जब वली कंधारी को मालूम हुआ कि दूसरा स्रोत, निकाल लिया तो चिढ़कर ऊपर से एक चट्टान ढकेल दी। यह चट्टान पंजा साहिब के नाम से मशहूर है क्यों कि गुरुजी ने अपने ऊपर गिरने से हाथ लगाकर रोका था। इसे पंजे से रोकने के कारण यह अब पजा साहिब के नाम से मशहूर है। अब भी वहाँ पंजे की निशान वाली शिला दर्शकों को दिखाई जाती है।

स्वदेश में

इस स्थान से चलकर गुरुजी कश्मीर प्रदेश में पहुँचे। जहा के अनेकों शहरों और गांवों में

अपना संदेश सुनाया और फिर एमनाबाद की ओर लौट पड़े। रास्ते में स्यालकोट पड़ा, इसलिये इच्छा की कि मूला से मिलते चलें। किन्तु चूंकि मूला को घर वालों ने इस डर से कि वह साधु संतों के साथ न भाग जाय, छिपा लिया और गुरुजी से भी यही कहा कि यहाँ मूला कहाँ है। दैवात हुआ भी यही कि मूला इस लोक में नहीं रहा। उसे छिपने वाले स्थानों मे सर्प डस चुका था। इस बार स्यालकोट मे जहाँ गुरुजी ठहरे थे उस स्थान का नाम बावली साहब के नाम से प्रसिद्ध है।

गुरुजी यहाँ ऐमनाबाद मे ठहरे ही हुए थे कि बाबर बादशाह ने एमनाबाद की लूट कराली। यहां से लूट के माल को उठवाने के लिये जो अनेकों आदमी पकड़े गये उनमें गुरु नानक भी थे। किन्तु मालूम होने पर बादशाह ने उन्हें छोड़ दिया।

बादशाह के पास से आकर गुरुजी ने परमात्मा को संबोधित करते हुये कहा:—

खुरासान खसमाना कीता हिन्दुस्तान डराइआ।
आपै दोसु न देई करता जमु करि मुगलु चढ़ाइआ॥
एती मार पई करलाणे तैं की दरदु न आइआ।
करता तू सभना का सोई।
जो सकता सकते कउ मारे ता मनि रोस न होई। रहाउ
सकता सीहु मारे पै वगै खसमै सा पुरसाई।
रतन बिगाडि विगोए कुती मुइआ सार न काई॥

यवनों द्वारा हिन्दू ललनाओं की जो बेइज्जती हो रही थी उस हालत का गुरुजी ने इन दर्द भरे शब्दों मे स्मरण किया है:—

जिन सिरि सोहनि पटीआ मागी पाइ संधूरू।
सो सिर काती मुंनीअनि गल विचि आवै धूडि।
महला अंदरि होदीआ हुणि बहणि न मिलनि हदूरि॥१
आदेसु बाबा आदेसु।
आदि पुरख तेरा अंतु न पाइआ करि करि देखहि वेस। रहाउ
जदहु सी आवी आहीआ लाडे सोहनि पासि।
हीडोली चढि आइआ दंद खंड कीते रासि।
उपरहु पाणी वारिऐ झले झिमकनि पासि॥
इक लखु लहनि बहिठीआ लखु लहनि खडीआ।
गरी छुहारे खादी आ माणनि सेजडिआ॥
धनु जोबनु दुइ बैरी होए जिनी रखे रंगु लाइ।
दूतानो फुरमाइआ लै चले पति गवाइ।
जे तिस भावै दे वडिआई जे भावै देइ सजाइ॥
अगहु देजो चेतिऐता काइतु मिलै सजाइ।
साहा सुरति गवाइआ रगंति मासै चाइ।
बाबर वाणी फिरि गई कुइरू रोटी न खाय।

यहां से गुरुजी करतारपुर आ गये। और अपने प्यारे शिष्यों को उपदेश दिया।

कुछ इतिहासकारों का कहना है कि गुरुजी ने पांचवीं यात्रा फिर की और कन्धार से बलख बुखारा और ख्वारिज्म पहुँचे जहाँ मरदाना का शरीरांत हुआ। किन्तु कुछ लोग केवल चार ही यात्रा मानते हैं।

शेष जीवन

लगभग ३० वर्ष गुरु जी की आयु के देशाटन में व्यतीत हुये। उन्होंने भारत ही नहीं भारत से बाहर तिब्बत, अरब, ईरान और रूम तक यात्रा की और अपने सिद्धान्तों को फैलाया। उसके बाद निश्चित रूप से वे करतारपुर में रहने लगे। यहाँ उनके पास दूर-दूर से लोग दर्शन करने के लिये आते थे। शिष्यों की संख्या भी लगातार बढ़ती जा रही थी।

करतारपुर मे रहते हुए वे सब काम नियम से करते थे। उनके समय का एक मिनट भी व्यर्थ नहीं जाता था। उन्होंने अपनी दिनचर्या भी इतनी सुन्दर बना रक्खी थी कि अन्य साधु संत जब गुरुजी के रहन. सहन और दिनचर्या को देखते तो उन्हें अपने जीवन में भी परिवर्तन का भाव आता जान पड़ता। गुरुजी सदैव तारागणों की छाया में उठते थे। सूर्योदय तक शौच और स्नान से निवृत्त होजाते थे। पश्चात एक प्रहर दिन चढ़े तक एकान्त में ईश्वर प्रार्थना करते थे। ईश्वर प्रार्थना से निवृत्त होने पर आये हुये भक्त लोगों को दर्शन देते और उनका कुशल मंगल पूछते। इसके बाद लंगर मे जाकर भोजन की व्यवस्था देखते।

गुरजी के आश्रम में सभी लोग बिना किसी भेद-भाव के एक पंक्ति मे बैठकर भोजन पाते थे। सब के लिये एक सा भोजन दिया जाता था। दोपहर की समाप्ति तक यह कार्य हो जाता था। कभी-कभी स्वयं गुरु जी अतिथियों के भोजन के समय उपस्थित रहते। पंक्ति में बैठकर ही भोजन भी करते। सायं काल को सभा लगाते। मरदाना के पुत्रों शाहजादा और रजादा को रबाब पर भजन गवाते। पश्चात् आप उपदेश करते। इसके बाद शौच आदि से निवृत्त होकर फिर हरि कीर्तन होता। पुन भोजन आदि से निवृत्त होकर एकान्त में ईश्वर के गुणानुवाद करते। यह थी गुरु जी की अष्ट पहर की चर्य्या।

गुरु जी की धर्मशाला पर आते ही दर्शकों का चित्त आनन्द से भर जाता था। शिष्य लोग और धर्मशाला पर आठ पहर रहने वाले कार्यकर्त्ता आगन्तुकों का बड़े ही प्रेम से सत्कार करते। गुरु जी के दर्शनों से किसी की तृप्ति न हो यह असम्भव बात थी। गोरा सुन्दर स्वर्ण जैसा चमकता हुआ चेहरा और उस पर चाँदी जैसे उजले केश। प्रथम झांकी में ही दर्शनार्थी के चित्त को मोह लेते थे। चेहरे पर सचाई और देवत्व का नूर बरसता था. और जिस समय गुरु जी उपदेश करते थे सचमुच अमृत बरसता था। यद्यपि गुरु जी पंजाब में पैदा हुये थे, किन्तु उनकी वाणी में ब्रज भाषा की जैसी मधुरता और गुजराती की जैसी कमनीयता थी। ऐसे बहुत ही कम उदाहरण मिलते हैं जब कोई गुरुजी के मधुर उपदेशों से प्रभावित न हुआ हो।

यहां हिन्दू मुसलमान. ब्राह्मण, शूद्र और क्षत्री. वैश्य का कोई भेद न था। सभी आकर समान रूप से आत्म-भोज प्राप्त करते थे। आत्मा और पेट दोनों की ज्वालाओं को यहा शांत किया जाता था। ऐसी थी गुरु जी की यह धर्मशाला, लोग करतारपुर का रास्ता पूछ कर यहां आते थे किन्तु यहां से ऐसा ज्ञान प्राप्त करके ले जाते कि फिर उन्हें किसी दूसरे से "करतारपुर" का रास्ता पूछने की आवश्यकता नहीं रहती थी।

अपने जीवन के अंतिम १५, १६ वर्षों में इस धर्मशाला में बैठकर खुले दिल से लोगों को धर्म का दान दिया और करतार के नगर का सच्चा रास्ता बताया। इसी बीच मे, लहना जैसे मूर्ति पूजकों और बुड्ढा, लालू से साधारण जनों को ऐसे ऊंचे स्थान पर लाकर खड़ा कर दिया जिसे बिना गुरु कृपा के पाना एक दम असंभव है।

इसी समय संवत् १५९० विक्रमी मे गुरु जी के माता पिता का स्वर्गवास हो गया था। अब तलवंडी मे केवल चाचा (लालू) अवशिष्ट रह गये थे।

एक दिन वह भी आया जब गुरु देव ने भी अपनी लीला समेट ली और संवत् १५९६ वि० मे आश्वन सुदी १० को परमधाम सिधार गये।

गुरु नानकदेव जी के जीवन, कार्य और मन्तव्यों पर एक सरसरी नज़र

पीछे के पृष्ठों मे गुरु जी के सम्बन्ध मे जो प्रकाश डाला है, उससे केवल उनकी लम्बी यात्राओं और सहज सिद्ध करामातों का ही पता चलता है। आरंभिक पृष्ठों मे उनके घर, गांव, जाति, कारबार, और उनके निज के थोड़े से हालात भी मालूम हो जाते हैं किन्तु गुरु नानक देव जितने महान् थे उतना ज्ञातव्य मैटर एक साधारण बुद्धि के आदमी के लिये बिना अधिक विवेचन के हाथ नहीं लग सकता है इसीलिये यहाँ हम उनके जीवन पर कुछ विवेचना करना जरूरी समझते हैं।

जिस घर मे गुरु जी ने जन्म लिया था न तो वह बड़ा अमीर घर था और न गरीब। कालूराय मध्य श्रेणी का आदमी था। अत. हम यह नहीं कह सकते कि गरीबी की चपेटों ने गुरु जी के आत्मिक ज्ञान को जागृत किया। जैसा कि हज़रत मुहम्मद और हज़रत ईसा के लिये खयाल किया जा सकता है। न यह कह सकते है कि माया के जजाल ने उन्हे वीतराग बनाया था। जैसा कि भगवान बुद्ध के ऊपर मुर्दे को देखकर यह असर पड़ा कि ओह! एक दिन क्या राजा और क्या भिखारी सभी को मरना पड़ता है। अधिक गौर से देखें तो हमे ऐसा जान पड़ता है वे प्रकृत रूप से ही वैरागी थे। जन्म से ही उदासी थे। आरंभ से ही साधु स्वभाव थे। आगे के जीवन में हम उन्हे महात्मा बुद्ध की तरह घर छोड़ते देखते हैं। हज़रत ईसा की तरह प्रेम और ईश्वर-आस्था की शिक्षा देते देखते है। और देखते हैं स्वामी शकराचार्य की तरह पर्यटक के रूप मे।

प्रकृति

बालपन में उन्हे फारसी, सस्कृत और हिन्दी की प्रचलित सभी पाठशालाओं मे बिठाया गया। कह नहीं सकते कि उन्होंने वहाँ क्या और कितना पढ़ा? किन्तु यह अवश्य कह सकते हैं कि आत्मा की तुष्टि और विकास के लिये मौलवी पडित और पाधा से उन्हे कुछ भी नहीं पढ़ना पड़ा। हम 'दबिस्तान' के लेखक मोहन की इस धारणा से कतई सहमत नहीं हैं कि एक दरवेश (मुसलमान फकीर) से शिक्षा पाकर नानक का आत्मा प्रकाशवान हुआ था[1]। गोकि मैलकम साहब को भी कुछ मुसलमानों ने यही बताया था कि "भविष्यतवक्ता इलियास से नानक ने सब तरह का नैसर्गिक विज्ञान सीखा था"[2] अपितु वे जन्म से ही ऐसे लक्षणों को लेकर आये थे

शिक्षा

१ Dabisthan, 11. 247
२. Siketeh. P. 14 By Melecome

जिन्हे ईश्वर-प्रदत्त-देन ही कह सकते हैं। यह संभव हो सकता है कि जिन लोगों का मुसलमान इतिहास-कर जिक्र करते हैं उनके खयालात भी गुरु नानक देव जी से मिलते जुलते हों जैसे कि कबीर, नामदेव और धन्ना जाट के मिलते थे। परन्तु "आदि गुरु ग्रन्थ साहब" को जब हम पढ़ते हैं तो हमे मालूम होता है कि मुस्लिम इतिहासकार जिन लोगों को गुरु नानक देव के आध्यात्मिक शिक्षक होने का नाम लेते हैं, उनसे या तो गुरु जी का कतई ससर्ग नहीं रहा या उनके खयालात भी गुरु जी से नहीं मिलते थे वरना अवश्य ही शेख फरीद और कबीर जी की तरह उनकी भी एक दो वाणियों का ग्रन्थ साहब मे समावेश होता है। ना ही इन व्यक्तियों के होने का पता किसी इतिहास मे ही मिलता है।

लौकिक काम चलाऊ शिक्षा गुरु जी ने कितनी पाई थी इसके लिये हम इतना ही जानते हैं कि सुल्तानपुर की मोदीगिरी का वे हिसाब रखते ही थे। अरब के काजी मुल्लाओं को जो उपदेश दिया था वह अवश्य ही अरबी भापा में रहा होगा। द्रविड़ देश में सस्कृत भापा के सिवा वहाँ के लोग अन्य प्रातिक भापाओं को नहीं समझ सकते थे। हां इतना और हमें भासता है कि न तो मौलवियों के ज्ञान को उन्होंने सीखा और न पडितों के आडम्बरों को अपनाया। संसार को जो कुछ उपदेश उन्होंने दिया था वह उनका अपना निज का और अन्तरात्मा का था।

गृहस्थ

गुरु जी ने गृहस्थ में भी प्रवेश किया था। हमें तो इसमें गुरु जी की महानता के दर्शन होते हैं। संसार के सारे सुखों में मुक्ति के बाद गृह जीवन ही प्रधान है। लोक कल्याण के लिये गुरुजी ने गृहजीवन को भी छोडकर ससार के सामने एक आदर्श रख दिया।

गीता में इस बात पर जोर दिया गया है कि "निष्काम कर्म करो" निष्काम के अर्थ हैं जैसे कमल पानी में रहते हुए भी पानी से अलग रहता है वैसे ही निर्लिप्त रहो। भारत के सारे धार्मिक इतिहास में राजा जनक के सिवा इतने लंबे समय में हम गुरु नानक देव को ही जल में कमल की भांति संसार से निर्लिप्त देखते हैं।

अतिम दिनों में उनकी स्त्री और बच्चे भी उनके पास आ गये थे। जैसे अन्य शिष्य रहते थे पुत्र पास में हैं विद्वान भी हैं और सेवा भी करते हैं, गुरु जी भी उनसे प्रेम करते हैं किन्तु इसलिये नहीं कि वे उनके पुत्र हैं किन्तु इसलिए कि वे ससार को प्रेम करते थे। यदि ऐसा न होता, तो कैसे कहा जा सकता है कि गुरु जी ने कभी मोह को पास तक नहीं फटकने दिया। यदि जरा भी उनके हृदय में मोह होता तो गुरु गद्दी अंगद जी के बजाय श्रीचद जी या लक्ष्मीचन्द जी को देते क्योंकि हजारों शिष्य भी आग्रह करते थे। लेकिन जिस सत्य और न्याय से वे प्रेम करते थे उसके खिलाफ नहीं गये और न जा सकते थे। यही तो उनकी महानता थी। गृहस्थ मे रह कर भी कोई ईश्वर को कैसे पा सकता है यह सिद्धान्त गुरु जी ने केवल कह कर नहीं किन्तु करके बताया था।

मोदीखाने (सुलतानपुर) में ईश्वर की कृपा से खूब बरकत थी। दोनों हाथों से भूखों नंगों को देते थे किन्तु खुद क्या खाते थे "केवल सूखी रोटी।"

'नारि मरे घर सम्पत्ति नाश' पर तो हजारों साधु हो जाते हैं और वृद्धावस्था में तो सभी उपदेश देते हैं कि स्त्रियों से दूर ही रहना चाहिये किन्तु एक गुरु नानक देव हैं जो स्त्री के होते हुए जवानी में वैराग लेते हैं। इसलिए नहीं कि स्त्री जाति से इन्हें कोई घृणा थी, किन्तु ससार जिस बात को अनादि काल से कठिन कहता आ रहा है उसे ही उन्होंने सरल करके दिखा दिया। जब वह समय निकल गया जिसमे कि ऐसा त्याग कठिन समझा जाता है तब फिर उन्होंने गृहणी को पास रख लिया। यह था

ग्रहस्थ का कठोर तप, जो उनकी महानता को प्रकाशित करता है।

एक पुराण ने गुरु नानक जी के सम्बन्ध मे इस प्रकार भविष्य वाणी की थी.—

"एवं वैधर्म्य प्राचुर्य्य भविष्यति यदा कलौ।
तदा वै लोकरक्षार्थं म्लेच्छाना नाशहेतवे ॥
पश्चिमे ते शुभे देशे वेदिवशे च नानक.।
नाम्ना च भुवि राजर्षि ब्रह्मज्ञानैक मानसः।
भविष्यति कलौ स्कन्द तत्व वित्कल्या हरेः।
स श्रीमद्राज शार्दूलानुपदिशा च पुन· पून ।
म्लेच्छान् हनिष्यति स्कन्द धर्म तत्वोपदेशकृत् ॥
तेनोपदिष्ट मार्ग वै ये ग्रीह-ष्यति भूमिपा ।
ते वै राज्य करिष्यन्ति तस्य शिक्षानुसारत ॥ भविष्य पुराण

अर्थात्—कलियुग मे जब धर्म के स्थान पर अधर्म बढ़ जायगा। तब जनता की रक्षा के लिए और म्लेच्छों के नाश के वास्ते अति उत्तम पच्छिम देश मे बेदी कुल में नानक नाम का एक राजर्षि जिस का मन एक ब्रह्मज्ञान मे ही लगा है और तत्वज्ञान से पूर्ण भी है अवतार लेगा। इसे कलियुग मे हरि का (निष्कलंक) अवतार समझिये। सो वह नानक राज सिंहों (जाट, खत्री आदि खालसा लोगों) को अपने—पुन उपदेश से जगा देगा। ये ही सिंह म्लेच्छों का विनाश करेंगे।

उस नानकदेव के उपदेशों और नाम की महिमा वाली भक्ति के ऊपर चलकर वे ही (सिंह) अपना राज्य कायम करेंगे।[1]

गुरुजी ने भारत के लिए क्या किया और वे कितने महान् थे? पुराण के इस श्लोक से भली भाति मालूम हो जाता है। गुरु जी को जितना आज हम जानते है तथा उनके प्रति जितनी श्रद्धा रखते हैं उससे कई गुना जानकारी और श्रद्धा भविष्य पुराण की रचना के समय में गुरु जी के प्रति थी।

दया, क्षमा, शील, परोपकार, प्रेम और धैर्य आदि गुणों का महापुरुषों से बड़ा सम्बन्ध है। गुरु-नानकदेव जी दया-क्षमा परोपकार और धैर्य की साक्षात मूर्ति थे यह कहने मे कोई भी अतियुक्ति नहीं।

धैर्य

सुल्तानपुर मे नवाब दौलतखां ने कहा आप मेरे प्रथम बार के बुलाने से क्यों नहीं आये थे। आपने बिना लाग लपेट के सीधा सा जवाब दिया "अब आपका नौकर थोड़े ही हूँ।" अब तो मैंने परमात्मा की सेवा अख्तियार कर ली है। सत्ताधारी मदाध होते हैं यह प्रकृति का नियम है। नवाब साहब गुस्से हो गया और उसने गुरुजी को मुसलमान बना लेने की ठान ली। आपको मस्जिद मे ले जाया गया और कहा गया हमारे साथ नमाज पढ़ो। नवाब ने नमाज शुरू कर दी, आप शान्ति से बैठ गये। क्रोध के साथ नमाज के खात्मे पर नवाब ने कहा आपने मेरे साथ नमाज नहीं पढ़ी। गुरु जी ने बडी निर्भयता के साथ जवाब दिया। मैं तुम्हारे साथ नमाज क्या पढ़ता जब कि तुम और तुम्हारे काजी जैसे श्रद्धालु मोमिनों का चित्त ही नमाज मे नहीं था।

दूसरा प्रसंग और लीजिये। अभिमानी मलिक भागू जो वड़ा क्रोधी और निर्दयी था गुरु जी से धमकी के साथ पूछता है—तुम शूद्र के घर का भोजन कर लेते हो किन्तु मेरे ब्रह्मभोज में नहीं आये। मैं

१. 'भविष्य पुराण पूर्वार्द्ध त्वाष्ट कल्प अध्याय १२६। स्कध ब्रह्मा सवाद

इस अपमान को भला बर्दाश्त कर सकता हूँ। गुरुजी ने बिना किसी संकोच के तुरन्त कहा, तुम्हरा अन्न गरीबों के खून से सना हुआ है मैं उसी अन्न को खाता हूँ जो नेक कमाई का हो। इस खरे उत्तर ने भागू को लाल कर दिया किन्तु गुरु जी ने उसकी राई रत्ती भर भी परवाह नहीं की।

विंध्याचल के गहन वन में प्यास और भूख से दम लबों पर आ रहा है। मरदाना घबरा कर कहता है गुरुजी यहा क्या मारने के लिये लाये हैं। रीछ, तेंदुए, सिंह इधर-उधर दहाड़ रहे हैं किन्तु बिना किसी घबराहट और चिन्ता के आगे बढ़ रहे हैं। मक्के में मुल्ला तड़के ही जगाकर लाल पीला होकर कहता है इतना बड़ा गुनाह ओहो काबे की ओर पैर करके सो रहे हैं। आप बड़ी निश्चिन्तता से कहते हैं। अच्छा तो लो मेरे पैरों को उधर कर जिधर खुदा का घर न हो।

परोपकार मे तो उनका सारा जीवन ही व्यतीत हुआ। बालकपन से ही दूसरों के हित के लिए अग्रसर थे। घर की चीजों को गॉव के गरीबों के घर डाल आया करते थे। सच्चे सौदे के रुपये भूखे साधुओं को ही खिला दिये। यात्रा के दिनों मे जो भी मिलता उसे उसी समय बाँट देते थे। अपना शरीर भी देकर वे दूसरों का भला करने को सदैव तय्यार रहते थे वह कौनसी घड़ी और मिनट था जिसमें वे परोपकार न करते रहे हों। तन, मन से वाणी से कभी परोपकार बिना खाली नहीं रहे। अन्तिम दिनों में यद्यपि उनके पास अतुल धन और वस्त्र भेट में आते थे किन्तु अपने लिये उन्होंने कुछ भी नहीं रखा, किन्तु अपने खाने-पीने के लिये खेती करते थे।

परोपकार

संसार में अनेकों ऐसे महापुरुष हैं जिन्होंने शक्ति बढ़ जाने पर या तो अपने को ईश्वर का पुत्र कहा है या उसका पैगम्बर, कुछ ऐसे भी हुए हैं जिन्होंने उन लोगों को दुष्ट, नीच, मलेच्छ और काफिर आदि कह कर सताने में कोई कसर नहीं छोड़ी है। जिन्होंने कि उनके उसूलों को मानने से इन्कार किया था। गुरु नानकदेव जी में यह बात कतई नहीं पाई जाती है। वे जहा भी गये वहा के विद्वानों, ज्ञानियों और पीर फकीरों को निरुत्तर किया। सभी जगह सत्कार पाया। लाखों ही मनुष्य उनके शिष्य हो गये थे किन्तु कभी भी उनके मुँह से ऐसी बात नहीं निकली जो किसी के प्रति कड़वी हो या अभिमान भरी हो। बल्कि जब उनसे कहा गया कि आप नीच लोगों को पास बिठा लेते हो, उनसे कोई परहेज नहीं करते तो आपने कहा—

नम्रता

नीचा अन्दरि नीच जो नीची हू अति नीच। नानक तिनके संग साथ बिडिया सो क्या रीस ॥

बाबा में कर्महीन कुड़िया नामन पाया तेरा, अन्धकार भूला मन मेरा।

उपदेशों की गति भी आपकी कठोर नहीं होती थी। जिन सिद्धान्तों का आप खंडन करते थे उनके तरीकों में भी मिठास होती थी। हरिद्वार में जब आप हरि की पौड़ी पर गये तो वहा देखा लोग पूर्व को सूर्य की ओर जल फेंक रहे हैं। आप पच्छिम की ओर जल फेकने लग गये। लोगों ने पूछा आप यह क्या करते हैं ? आपने कहा करतारपुर में मेरे खेत हैं कहीं सूख न जायें इसलिये पानी दे रहा हूँ। लोग बोले भला करतारपुर तक यह पानी कैसे चला जायगा ? तो आपने कहा, सूर्य से करतारपुर कुछ न कुछ पास ही है। इसी तरह बगदाद के बादशाह को बिना ही कड़वे शब्दों का प्रयोग किये उसके दुर्गुण को जता दिया। कहा जाता है वह रुपया पैसा वसूल करने मे प्रजा को बहुत सताता था। गुरु जी से जब वह मिलने आया तो उसे कुछ ककड़ियां अमानत में रखने को दीं। बादशाह ने पूछा आप इन्हे लेने कब लौटेंगे। गुरु जी ने कहा कयामत के दिन तो मिलोगे ही वहीं लेंगे। बादशाह बोला गुरु जी वहा तो

कुछ भी नहीं जाता। आपने कहा जहाँ आपका धन जायगा इतना एकत्रित किया हुआ उसके साथ ही मेरी कंकड़ियाँ भी ले जाइयेगा। बादशाह की इस प्रकार के मीठे खंडन से आँखे खुल गई। यही कारण था कि हिन्दू और मुसलमान दोनो ही धर्मों के हजारो लोग गुरु जी के चेले बने और दोनों ही यह खयाल करते थे कि गुरुनानक जी तो हमारे है। कहा जाता है उनके स्वर्गवास के दिन भी दोनों ही जातियों ने उनकी ल्हास को प्राप्त करने की कोशिश की।[1]

यह कहने मे हमे कोई अत्युक्ति नहीं जान पडती ज्ञात इतिहास काल से गुरु जी जैसा कोई यात्री नहीं हुआ। महात्माबुद्ध के लिए कहा जाता है कि उन्होंने समस्त भारत मे घूम २ कर प्रचार किया था और तिब्बत तकभी पहुँचे थे किन्तु ईरान, अरब और रूम तक वे नहीगये। इस तरह हम उन्हे भारत ही नहीं ससार का सबसे बडा अथवा महान धर्म प्रचारक या महा यात्री कह सकते है वास्तव मे उनकी यह धर्म यात्रा 'दिग्विजय' कही जानी चाहिए क्योंकि उन्होंने भारत के बाहर भी समस्त ससार मे प्रत्येक मजहब और सम्प्रदाय के पंडितों, महन्तों और पीर योद्धाओं को परास्त किया था।

महान यात्री

उस जमाने में यात्रा आजकी जैसी सरल न थी कहीं २ तो बारह-बारह कोस तक पानी का सुपास न मिलता था। अराजकता भी सारे देश मे छाई हुई थी। इसके अलावा भी एक खतरा था उन धर्मान्धों से जो आदमियों की बलि अपने देवताओं पर चढाकर प्रसन्न होते थे गोंड लोगों ने बेचारे मरदाने को इस काम के लिये पकड भी लिया था। प्रत्येक प्रात की भिन्न भाषा और आचार-विचार भी यात्रा के लिये कम कठिनाई पहुँचाने वाले न थे। ऐसी हालत मे भी एक नहीं गुरु जी ने चार यात्राये कीं जिनमे भारत के कोने २ को छान डाला। यहीं नहीं लंका, अरब, ईरान और मिश्र तक धावा किया और भारत मां के गौरव को उन देशों मे फैलाया। कहा जाता है आजभी ईराक और ईरान मे गुरुनानक की नानक पीर के नाम से मान्यता होती है और मेला लगता है।

हम अपने देश मे अरबी, चीनी और मिश्री यात्रियों के यात्रा वर्णनों का जब हवाला पढ़ते हैं तो उनके साहस और परिश्रम की सराहना करते नहीं थकते किन्तु गुरुनानक जी की यात्राये उन यात्रा विवरणों से सैकडों गुणा आनन्द और कौतुहल बढ़ाने वाली हैं साथ ही गौरव से हमारे सिर को भी ऊँचा करती है कि जिन अरबों, तूरानी और ईरानियों ने तलवार के बल से हमारा देश मे अपने धर्म का प्रचार किया था तथा हमारे देश को जीता था उन्हीं देशों के बडे २ आलिम फाजिलों और पीर पिरानों को हमारे गुरु ने अपने अतुल ज्ञान से और महान उसूलों से अकेले ही जाकर परास्त किया था।

अत मे हम कहना चाहते है कि गुरुनानकदेव जी उससे कहीं बहुत ज्यादा महान् थे जितना कि हमलोग अब तक उन्हे समझ पाये है। अपने धर्म का सन्देश देने के लिये भूले भटकों को राह पर लाने के लिये, ससार से ढोंग के ढकोसले को फिकवाने के लिये और एक ओंकार परमात्मा की भक्ति का प्रचार करने के लिये अपने जीवन मे ससार के शायद ही किसे दूसरे बली, अवतार या धर्माचर्या ने इतनी बी यात्रा की हो।

प्रत्येक सुधारक के कार्यों के दो ही अग होंते है एक विनाशात्मक दूसरा रचनात्मक। विनाशात्मक कार्य वे होते हैं जिन्हे हटाया, मिटाया और बदला जाता है और रचनात्मक कार्य वे होते हैं जिनके

१ सिख साखियों में लिखा है जब चादरा उठाकर देखा गया तो शव के स्थान पर चन्द फूल अवशेष थे।

अनुसार खुद अपना जीवन ढाला जाता है और दूसरों को वैसा बनने और करने के लिये कहा जाता है। मूर्ति पूजा छोड़ो, तीरथ और चेत्रों में मत भ्रमो। बहुदेव पूजा मत करो। आदि २ उपदेश गुरु जी के कार्य्यों का पहला अंग था। जिस पर कि हमने पिछले पृष्ठों मे काफी प्रकाश डाला है अव उनके कार्य के दूसरे अग पर संक्षिप्त सा विचार करते हैं। जिसके संम्वन्ध मे पिछले पृष्ठों में भी जिक्र आगया है फिर भी यह पंक्तियां भी काम की ही होंगी।

उनके रचनात्मक कार्य

सत्य को वे मनुष्यता का अग मानते थे और यह है भी सही जिसके हृदय मे जितना ही सत्य का अंश होगा उतना ही वह उदार, सहृदय दयालु और ईश्वर परस्त होगा। गुरुजी के समय में तो सत्य के दर्शन और भी दुर्लभ हो रहे थे। उस समय तो झूठे देवता, झूठे शास्त्र और झूठे खयालातों का साम्राज्य था यह तो नहीं कहा जा सकता कि उस समय सत्य का एक दम अभाव था किन्तु यह विल्कुल सही है कि सत्य की हत्या आज की अपेक्षा उस समय यह हिन्दू जाति अधिक कर रही थी। ऐसी हालत मे भक्ति के वाद गुरु जी ने सत्य पर ही अधिक से अधिक कहा है। उनकी सत्य सम्वन्धी सैकड़ों वाणियों से कुछ इस प्रकार हैं —

सत्य

"सच्चता पर जाणिये जे रवि। सच्चा होय।
कूड की मल उतरै तन करै हिच्छा धोय।"

अर्थात्—सच्च पर चलने से हृदय स्वच्छ हो जाता है और आत्मा पर से झूठ का मैल धुल जाता है।

"मन झूठे तन झूठे जीवा झूठे होय।
मुख झूठे झूठ बोलना क्योंकर सोचा होय॥"

(अर्थ) जिनका तन, मन, आत्मा और वाणी सभी झूठ में लिप्त हैं। वह कैसे शुद्ध (पवित्र) होवेंगे। और :—

सच्च विन दर सजै न कोई।" विना सचाई के परमात्मा के द्वार तक नहीं पहुँचा जा सकता।

हिन्दू समाज का सवसे वडा रोग आपस में नीच ऊँच के भावों का होना भी है। दुर्भाग्य से रामानुज और वल्लभाचार्य्य के अनुयाइयों ने इसे और भी वढ़ाया। गुरु देव ने इस विष-वृक्ष को काट देने के लिये उपदेश ही नहीं किन्तु करके भी दिखाया हजारों हिन्दू तो उनसे केवल उसी लिये नाराज रहते थे कि वे ऊँच-नीच व जात-पात का अन्तर नहीं मानते हैं। मलिक भागो इसी वात से काफी चिढ़ गया था। एमनावाद लक्ष मे वे खाती लोगों के घर ही ठहरे थे। दक्षिण में नामदेव (छीपा) लोगों के घर रहकर आराम किया था।

ऊँच नीच

गुरु ग्रन्थ मे जिन नामदेव, रविदास और सहना भगत को वाणियाँ हैं' वे गुरुजी के प्यारे संतों में से थे। जव भी गुरुजी उनके देशों मे गये उन्हीं के घर ठहरे। अभागे हिन्दू इन महान संतों के सम्वन्ध में अव तक यही खयाल रखते हैं कि रविदास और सहना ऊँच जातियों के नहीं थे। इस सम्वन्ध मे गुरु नानक देव की यह वाणी कितनी अच्छी है।

"ऊँचे तो ऊँचा वडा सभ सगि वरनेह।
दास दास को दासरा नानक करि लेह॥"

जव मनुष्य सचाई के मार्ग को छोड़ देता है तो उससे "माया ममता छोडी न जाय"। वल्कि और उसके दिल मे माया का मोह वढ़ता है, तव माया का मोह वढ़ जाने पर मनुष्य न्याय और अन्याय की

परवाह करना छोड़ देता है और जब यह खयाल नहीं रहता कि न्याय क्या है? तब

न्याय

'वह दूसरे के हक और अधिकारों को नष्ट करने में कुछ भी हिचक नहीं करता। साधारण आदमी की तो बात क्या?

"काजी होके भनें अन्याय। विड्ड लेके हक गवाय।"

काजी भी अन्याय करने लगता है और रिश्वत लेकर हकों का हनन करता है। यही क्यों:—

"कलि काती राजे कसाई धर्म पख उडाया।" अर्थात सतयुग के दुश्मन इस कलियुग में राजा भी प्रजा रूपी गाय के लिये कसाई हो गये है। धर्म को पखहीन अथवा लुप्त बना रहे है। अत. अपने और दूसरों के हित की भावना से सभी को सत्याचरण करना चाहिये क्योंकि'—

"साची कीरत साची वानी। होर न देसी वेद पुरानी"

अर्थात वेद और पुरानो ने भी सत्य की के सिवा कोई और उत्तम रास्ता नहीं बताया है।

संतोष

सुखी और पवित्र जीवन बिताने के लिये यह भी आवश्यक है कि संतोष की वृति को धारण किया जाय। कारण —

नाम बीज संतोष सोहागा रख गरीबी वेल।
भाव करम जे मयी घर भागड देख॥

अर्थात—यदि ईश्वर के नाम का बीज संतोष रूपी भूमि में शुद्ध भाव के साथ बोया जायगा तो ऐसी खेती हरी होगी कि घर और बाहर मालामाल हो जायगा।

सत्य के बाद उन्होंने संतोष पर भी जोर दिया है और ठीक भी है क्योंकि इच्छाओं और आवश्यकताओं को तो जितना भी बढ़ाया जाय उतनी ही वे बढ़ जाती हैं और फिर उनकी पूर्ति के लिये अन्याय पर ही मनुष्य को कमर बांधनी पड़ती है।

पंजाब में क्या सारे भारत में ही लंगर की प्रथा पहले पहल गुरु नानकदेव ने ही डाली थी। जो भ्रातृभाव को पैदा करने में लाखों लेक्चरों से अधिक फलदायक सिद्ध हुई। और जो आज भी सिख समाज के संगठन की कडी को मजबूत बनाने में काम दे रही है। सक्षेप में हम गुरु नानक देव जी के रचनात्मक कार्यों का इस प्रकार उल्लेख कर सकते है

(१) अनेकों शताब्दियों के बाद हिन्दू धर्म का उन्होंने परिमार्जन किया और भ्रांतियों में जकडे हुये हिन्दू समाज को सोचने, विचारने और मनन करने की स्फूर्ति प्रदान की।

(२) बहुदेव और कंकड़ पत्थर की पूजा से हटाकर एक परमेश्वर की मान्यता की ओर हिन्दू जाति को आकर्षित किया।

(३) परमात्मा जन्म मरण के बन्धन से परे है इस सचाई को जोरदार शब्दों में पेश किया।

(४) समस्त कर्म कांड, संस्कारों, तीर्थ व्रतों से बढ़कर परमात्मा की भक्ति है गुरु नानकदेव जी ने इस सचाई को भी हिन्दुओं के गले उतारा।

(५) परमात्मा की भक्ति सत्याचरण, हृदय की स्वच्छता और सतगुरु के ज्ञान से प्राप्त होती है उसके लिये ब्रह्म भोज, गोदान, और हज, तीर्थ की कोई जरूरत नहीं, गुरुजी ने इस बात को भी समझाया।

(६) उन्होंने बड़ी दृढ़ता के साथ कहा, पुजारी पंडे, काजी मुल्ले, सत्यमार्ग के प्रदर्शक नहीं है इन्होंने तो धर्म को अपनी जीविका का धन्धा बना रक्खा है।

(७) किसी के अनुयायी या मुरीद बनने के लिये यह देखो वह सतगुरु है या यों ही ढोंगी ढागी है।

(८) हिन्दू और मुसलमान जन्म से कोई नहीं होता जन्म से सब मनुष्य और भाई-भाई हैं यह भेद तो यहाँ स्वार्थी लोगों का चलाया हुआ है।

(९) नशा तो सभी कुराह पर ले जाने वाले हैं। केवल सच्चिदानन्दस्वरूप परमात्मा की भक्ति का रस ही सच्चा लाभकारी नशा है।

(१०) अपने लिये तो सभी जीते हैं जीना तो उसका सार्थक है जो दूसरों के उपकार के लिये सुख की परवाह न करे।

(११) यदि एक दिन संसार के सभी सुख और वैभवों को छोड़ना ही है तो उनमें लिप्त क्यों हुआ जाय। दुनिया में जल के बीच कमल की नाई क्यों न रहा जाय।

(१२) जब यह निश्चय है कि एक दिन मरना होगा तो फिर मृत्यु से डरा क्यों जाय, परमात्म-भक्ति से उस पर विजय क्यों न प्राप्त की जाय।

(१३) केवल मौज से रहने और मुफ्त का खाने की इच्छा के लिये जो घर छोड़ बैठते हैं ऐसे लोगों की भी गुरुदेव ने निन्दा की है।

(१४) नेक कमाई की रूखी सूखी रोटी पाप कर्म से पैदा किये हुए हलुवे मांडे से बेहतर है। हम समझते हैं इतनी सतर्कता उनसे पहले कई शताब्दियों तक किसी सुधारक द्वारा पेश नहीं की गई थी।

गुरु नानकदेव जी के उन महान कार्यों और उपकारों की यह तो एक छोटी सी सूची है जो उन्होंने भारत देश के निवासियों के लिए किये थे। वास्तव में तो जो जितना ही गुरु नानकदेव जी के जीवन पर गंभीरता से अध्ययन करेगा उसे उतने ही गुरुजी महान पुरुष और ईश्वरीय आज्ञाओं के प्रसारक नजर आयेंगे। वे सचमुच ही इतने महान थे जिसे आज संसारी आदमी सहज ही नहीं समझ सकते। एक विद्वान इतिहास लेखक ने गुरुजी के सम्बन्ध में लिखा है "उनके व्यक्तित्व की आकर्षण शक्ति इतनी बढ़ी हुई थी कि वे सहस्रों ही मनुष्य जो उनके साक्षात सम्पर्क में आये, उनके भक्त तथा अनुयायी बन गये।"[1] कर्नल कनिंघम ने अपने लिखे हुये 'सिख इतिहास' में श्री गुरु नानकदेव जी के प्रति अपनी श्रद्धांजलि इन शब्दों में प्रकट की है—उनके सद्व्यवहार, एकाग्र ईश्वर निष्ठा और प्रवृत्ति एवं सद्वक्तृता सभी प्रशंसा की बातें हैं। उन्होंने बहुसंख्यक लोगों को अपने उपदेश से उत्साही, कर्मठ और दृढ़ विश्वासी शिष्य बनाया।"[2] आगे फिर इन्होंने लिखा है—"नानकदेव ने सर्ववादि सम्मत सत्य धर्म को ही अपने दौत्य कार्य का एक मात्र अस्त्र स्वरूप ग्रहण किया था। उनके ग्रन्थ विवेक और आत्मोत्सर्ग विषयक उपदेशों से भरे हैं।' उन्होंने कभी अपने धर्म के प्रचार करने में अलौकिक कार्य की सहायता नहीं ली और न यह कहा कि अलौकिक कार्यकलाप से ही उनके फैलाए धर्म की सत्यता बढेगी।'

कर्नल मैलकम साहब ने Sketch[3] में गुरु नानकजी के सम्बन्ध में लिखा है—"वे कहते थे—

१ डा० गोकुलचन्द नारंग द्वारा लिखित सिखों का परिवर्तन नामक पुस्तक।

२ दूसरा अध्याय सिखों का परिवर्तन।

३ स्केच पृष्ठ २०, २१, १६५।

"एक ईश्वर के'वाक्य के सिवा दूसरे किसी अस्त्र का प्रयोग (धर्म प्रचार मे) मत करो धर्मनीति की पवित्रता के सिवा निष्ठावान धर्म गुरु जैसा कोई उपाय या शास्त्र नहीं है।" 'दविस्तान' के प्रसिद्ध मुसलमान लेखक मोसन फानी ने उनके सम्बन्ध मे लिखा है—"वे आदम जाति को रास्ता दिखाने वालों मे से थे उन्होंने कभी नशा नहीं किया और न ऐसी शिक्षा दी।" कनिंघम ने एक दूसरे स्थान पर गुरु नानक जी के महान कार्यों के सम्बन्ध मे इस प्रकार लिखा है "उन्होंने दीर्घकाल से चले आये एवं पूंजीकृत कुसंस्कार और कुरीतियों से मुक्त करके लोंगो को अपना शिष्य बनाया, उन्होंने शिष्यों को स्वतन्त्रता से सोचने वाला और साहसी आदमी बनाया।"

इसी तरह से अनेकों देशी विदेशी विद्वानों ने गुरु नानकदेव जी के धर्म के प्रति अपनी श्रद्धाजलिया अर्पित की है। सबने उन्हे मुक्त कंठ से भारत का उद्धारक और महान पुरुष माना है।

वही गुरु नानकदेव जी जिन्होंने मृत हिन्दू समाज को जीवन प्रदान किया था लगभग ७० वर्ष की अवस्था मे संवत् १५९६ के क्वार महीने की १० वीं को इहि संसार से अपनी जीवन लीला समाप्त कर गये।

उनके परिवार मे उस समय चाचा लालू और उनकी धर्मपत्नी और दो पुत्र थे। परिवार के तथा रिश्तेदारियों के सभी लोग यह चाहते थे कि वे अपनी गद्दी का अधिकारी अपने पुत्रों मे से ही बनावें किन्तु उन्होंने इस बात को अपनी अन्तरात्मा की आवाज के विरुद्ध समझा और अपने एक शिष्य लहना को उनके खयाल के अनुसार अपने संचालित मिशन को जारी रखने के लिये अपना उत्तराधिकारी बनाया।

गुरु नानकदेव जी की रचनाऐं

गुरु नानकदेव जी अपने उपदेशों को बहुधा पद्य भाषा मे लोगों तक पहुँचाते थे। जो शब्द व वाणियों के नाम से अभिहित होते है। ऐसी सब रचनायें 'आदि गुरु ग्रन्थ साहब' मे संग्रहीत हैं। ग्रन्थ साहब के सम्बन्ध मे विस्तार से तो किसी अगले अध्याय मे चर्चा करेगे। क्योंकि उसमे छ. गुरुओं की वाणियाँ है यहाँ केवल गुरु नानकदेव जी की रचनाओं का ही वर्णन करना है।

जहाँ तक हम समझते है गुरुजी ने जो कुछ रचा था वह भी आदि ग्रन्थ मे सब का सब मौजूद है।

ग्रन्थ साहब मे ३१ राग रागिनियाँ हैं और इनके सिवा दोहे, श्लोक, और चौबेले आदि अलग हैं। उनमें महला १ के अन्तर्गत जो कुछ है वह श्री गुरु नानकदेव जी की रचना है। दूसरे महलों मे दूसरे गुरुओं की रचना हैं।

गुरु जी की कई रचनाओं के लिये कई अंग्रेज लेखकों तक ने पढ़ने के लिए जोर दिया है कनिंघम साहब ने 'आशाराग' का अंतिम भाग, सूही और रामकली अंश, श्रीराग माझ एव माझवार के पढ़ने के लिये काफी जोर दिया है। हमारी समझ मे तो संस्कृत मे सामवेद का जैसे प्रत्येक हिस्सा सस्वर पढ़जाने से अमृत वर्षा करता है उसी प्रकार 'लौकिक भाषा मे आदि ग्रन्थ के प्रत्येक राग और रागिनी अपने-अपने समय पर सस्वर पढ़े जाने पर आत्मा को आनंद से विभोर करने वाले हैं। साखियों में लिखा है कि जिस समय मरदाना रबाब पर रागिनी छेड़ता था जगल के पशु चरना छोड़ देते थे। वास्तव मे आदि ग्रन्थ की भाषा बहुत ही मीठी और प्रेम भरी है। और कहीं-कहीं तो उसमे इतना

विरह भरा पड़ा है कि आनन्द से आसुओं की वर्षा होने लगती है। गुरुदेव नानक जी अपने प्रियतम से मिलने को कितने छटपटा उठते थे। उसके यहाँ कुछ नमूने देते हैं।

राग धनाश्री—

गगन मैं थालु रविचन्दु दीपक बनेतारिका मंडल जनक मोती।
धूप मलियानलो पवणु चवरो सलग बनराइ फूलन्त जोती ॥१॥
कैसी आरती होई। भवन खण्डना तेरी आरती ॥ अनहता सबद वाजत भेरी।
सहस तव नैन नन नैन हहि तोहि कउ सहस मूरतिनना एक तोही।
सहस पद विमल नन एक पद गध बिनु सहस तव गध इव चलत मोही ॥
सभ महि जोति जोति है सोई। तिसदै चाणन सभमहि चानणु होइ।
गुर साखी जोति परगटु होई। जोति सुभावै सुआरती होई ॥३॥
हरि चरण कमल मकरन्द लोभित मनो अनदिनो मोहि आही प्यासा।
कृपाजल देहि नानक सारिंग कउ होइ जाते तेरे नाइवासा ॥४॥

सिरीराग—

तनु जलि बलि माटी भया, मन माया मोहिमनूर।
अवगुण फिरि लागू भए कुरि वजावै तूर ॥
बिनु सबदै भरमाइए दुविधा होवे पूर।
मनरे सबदि तरह चितलाइ। जिन गुरमुखि नामुन
बूझिआ मरि जनमै आदै जाहि ॥ रहाउ
तनु सूचासो आखिये जिसु महि साचानाउ।
भैस चिराती देहुरी जिह्वा सचु सुआउ ॥
सची नदरि निहालीये बहुडि पावै ताउ।
साचे ते पवना भया पवनै ते जल होइ।
जलते त्रिभवणु साजिआ घटि घटि जोति समोइ।
निरमलु मैला नायिए सबदिरते पति होइ।
इहि मनु साचि सतोखिया नदरि करै तिसुमाहि
पच भूत सचि मैरते जोति सची मन माहि।
नानक अवगुण वीसरे गुरि राखै पति ताहि।

राग गुजरी—

हरि की तुम सेवा करहु दूजी सेवा करहु न कोई जी।
हरि मेरी प्रीति रीति है हरि मेरी हरि मेरी कथा कहानी जी।
गुर परसादि मेरा मन भीजै एहा सेव बनी जीउ। रहाउ
हरि मेरा सिम्रिति हरि मेरा सासतर हरि मेरा बधु हरि मेरा भाई
हरि की मैं भूख लागै हरिनामु मेरा मनु त्रिपतै हरि मेरा साकु अति होइ सखाई।
हरि बिनु होर रासि कूडी है चल दिया नालि न जाई।
हरि मेरा धनु मेरे साथ चालै जहा हउ जाउ तह जाई ॥
सो झूठा जो झूठे लागै झूठे करम कमाई।
कहै नानकुहरि का भाणा होआ कहणा कछू न जाई।

राग सोरठा—

हउ पापी पतितु परम तू निरमलु निरंकारी।

अम्रितु चाखि परम रसि राते ठाकुर सरणि तुमारी ।
करता तू मैं माणु निभाणे । माणु महतु नामु धनु—
पलै साचे सबदि समाणे । रहाउ
तू पूरा हम ऊरे ओछे तू गहिरा हम हउरे ।
तुझही मन राते अहिनिसि परभाते हरिरसना जपि मनरे ।
तुम साचे हम तुमही राचे सबदि भेद पुनि साचे ।
अहिनिस नाम रते से सूचे मरि जनमे से काचे ।
अवरु न दीसै किसु साला ही तिसहि सरीकु न कोई ।
प्रणवति नानकु दासनिदासा गुरमति जान्या सोई ।

राग बिलग—

जिन कीआ तिनि देखा कीआ कही रे भाई ।
आपै जाणै करै आपि जिनि वावी है लाई ।
राइसा प्यारे का राइसा जितु सदा सुख होई । रहाउ
जिनि रगि कतु न रावि आसा पछोरे ताणी ।
हाथु पछोडै सिरू धुनै जब रैणि विहाणी ।
पछौता वाना मिलै जब चूकैगी सारी ।
ता फरि पिया रावीये जब आवेगी वारी ।
कतु लीया सुहागणी मै ते बधवी एह ।
से गुण मुझै न आव नीकै जी दोसु धरेह ॥
जिनी सखी सहुराविया तिनि पूछउगी जाए ।
पाइ लगउ विनती करउ लेउगी पथ बताए ॥
हुकमु पछाणै नानका बहु चन्दनु लावै ।
गुण कामणी कामणि करै तो पिआरे कउ पावै ॥

राग सूही—

अतरि वसै न बाहरि जाइ । अम्रितु छोडि कहा बिसु खाइ ॥
ऐसा ज्ञान जपहु मन मेरे । होवहु चाकर साचे केरे ॥ रहाउ
गिआनु धिआनु सभ कोई रवै । बाधिन बाधिआ सभुजगु भवै ।
सेवा करै सु चाकर होइ । जलि थलि महि अल रवि रहिआसोइ ।
हम नहीं चगे बुरा नहीं कोइ । प्रणवति नानकु तारै सोइ ।

राग रामकली—

सरब जोति तेरि पसरि रही । जह जह देखा तह नर हरी ॥
जीवन तल बनि वारि सुआभी ॥ ॥ रहाउ ॥
जह भीतर घट भीतर बसिआ बाहिर काहे नाहीं ।
तिन की सार करै नितु साहिबु सवा चित मन साई ॥
आपे नेडे आपे दूरि आपे सरब रहया भरपूरि ।
सत गुरु मिलै अधेरा जाइ । जह देखा तह रहा समाइ ॥
अतरि सहसा बाहरि माया नैणी लागि सिवाणी ।
प्रणवति नानक दासनि दासा परतापहिगा प्राणी ॥

राग गौरी—

जै घरि कीरति आखिये करते का होइ विचारो ।
तित घरि गावहु सोहिला सिवरहु सिरजन हारो ?
तुम गावहु मेरे निरभउ का सोहिला ।
हउ वारी जितु सोहिले सदा सुख होइ ॥ रहाउ ॥
नितनित जीग्रड़े समाली ग्रनि देखेगा देवण हारु ।
तेरे दाने कीमति न पवै तिसु दाने कवण सुमारु ॥
संवति साहा लिखिग्रा मिलि करि पावहु तेल ।
देहु सजन ग्रसीसड़ीग्रा जिउ होवै साहिब सिउ मेलु ॥
घरि घरि एहो पाहुँचा सदडे नित पवनि ।
सदन हमारा सिमरीए नानक से दिह ग्रावनि ।

राग आसा—

छिग्र घर छिग्र गुरु छिग्र उपदेस गुरु-गुरु एको वेश ग्रनेक ।
बाबा जे कीरति होइ । सो घरु राखि वडाई तोइ ॥ रहाउ ॥
विसुए चसिग्रा घडीग्रा पहरा थिती वारी माहु होग्रा ।
सूरज एको रुति ग्रनेक । नानक करते के केते वेन ॥

राग बिलावलु—

गुर बचनी मनु सहज धिग्राने । हरि के रग रता मनु माने ॥
मन मुख भस्म भुलेवउ राने । हरि बिन किउ रहिग्रै गुर सवदि पछानै ।
बिन दरसन कैसे जीवउ मेरी माई। हरि बिनु जियरा रहि न सकै खिनु सतिगुरि
बूझ बुझाई ॥ रहाउ ॥
मेरा प्रभु बिसरै हउ मरउ दुखाली । सासि गिरा सिज पउ अपने हरि भाली ।
सद बैरागिन हरि नामु निहाली । अब जानै गुर मुखि हरनाली ॥
अकथ कथा कहीग्रै गुर भाइ । प्रभु अगम अगोचर देइ दिखाइ ॥
बिनु गुर करणी किग्रा कार कमाइ । हउ मैं बाटि चलै गुर सवदि समाइ ।
मन मुखि बिछुड़ै खोटी रासि । गुर मुखि नाम मिलै साबास ।
हरि किरपा धारी दासनि दासि । जन नानक हरिनाम धनु रासि ॥

राग सारंग—

हरि बिनु किउ जीवा मेरी माई ।
जै जगदीन तेरा जसु जाचउ मैं हरि बिनु रहनव जाई ॥ रहाउ ॥
हरि की पिग्रास पिग्रासी कामिनि देखउ रैनि सवाई ।
श्रीधर नाथ मेरा मनु लीना प्रभु जानै पीर पराई ॥
गणत सरीरि पीर है हरि बिनु गुर सवदी हरि पाई ।
होउ दइग्राल किरपा करि हरि जीउ हरि सिउ रहां समाई ॥
ग्रै सी रव तर वहु मन मेरे हरि चरणी चित लाई ॥
बिसम भये गुण गाइ मनोहर निरभउ सहजि समाई ॥
हिरदै नामु सदा धुनि निहचल घटै न कीमत पाई ।
बिनु नावै सभु कोई निरधनु सति गुरि बूझ बुझाई ।
प्रीतम प्रान भये सुनि सजनी दूत मुए बिखु खाई ॥

जब कि उपजी तब की तैसी रगत भई मन भाई ।
सहज समाधि सदा लिव हरि सिउ जीवा हरि गुन गाई
गुर कै सबदि रता बैरागी निज घरि ताडी लाई ।।
सुध रस नामु महा रसु मीठा निज घरि ततु गुसाई ।।
तह ही मनुजह ही तै राखिया ऐसी गुरमति पाई ।
सनक सनादि ब्रह्मादि इन्द्रादिक भगति रते बनि आई ।।
नानक हरि बिनु घरी न जीवा हरि का नामु बडाई ।।

राग मलार—

साची सुरति नामि नहीं त्रिपतै हउ मै करत गवाइआ ।
पर धन पर नारी रतु निंदा बिखु खाई दुखु पाइआ ।।
सबदु चीन मै कपटु न छूटे मन मुखि माइआ माइआ ।।
अजगरि भार लदे अति भारी मरि जन्मे जनमु गवाइआ ।
मनि भावै सबदु सुहाइआ ।। भ्रमि भ्रमि जोनि भेख बहु—
कीने गुरि राखे सचु पाइआ ।। रहाउ ।।
तीरथि तेज निवारिन नाते हरि का नामुन भाइआ ।
रतन पदारथु परिहरि तिआग आज तको तत ही आइआ ।।
बिसटा कीट भये उतहीते उतही माहि समाइआ ।।
अधिक सुआद रोग अधिकाई बिनु गुर सहज न पाइआ ।।
सेवा सुरति रहसि गुणगावा गुरि मुख ज्ञानु बीचारा ।।
खोजी उपजै बादी बिनसै हउ बलि बलि गुर करतारा ।।
हम नीच हुते हीण मति झूठे तूं सबदि सवारण हारा ।।
आतम चीनि तहां तू तारण सचु तारे तारणहारा ।।
बैसि सुथान कहां गुण तेरे क्या क्या कथउ अपारा ।।
अलखु न लखिजै अगमु अजौनी तू नाथां नाथण हारा ।
किसु पहि देखि कहउ तू कैसा सभि जाचक तू दाताए ।।
भगति हीण नानकु दरि देखहु इकु नामु मिलै उरिधारा ।।"

स्थानाभाव से इतने ही राग देकर इस प्रसंग को हम समाप्त करते हैं। जिन्हें अधिक आनन्द लेना हो वे श्री गुरु ग्रन्थ का अनुशीलन करें और भक्ति रस के छलछलाते सरोवर में गोते लगाकर जीवन को सफल बनावें।

चौथा अध्याय

गुरु अंगददेव जी की जीवन कथा

गुरु अगददेव जी का जन्म जिला फीरोजपुर मे इलाका मुक्तसर के मतेकीसराय नामक गाव मे फेरूमल जी तिहुन गोती खत्री के घर संवत १५६१ विक्रमी की वैसाख सुदी १ को हुआ था। आपकी माता का नाम सुभराई देवी था जो कि निहाल कौर नाम से भी प्रसिद्ध हुई। उस समय माता पिता ने आपका नाम लहणा रक्खा था। इस नाम से जहाँ तक हम समझते है आप अपने माँ, वाप की सम्पूर्ण आकांक्षाओं के वाद पैदा हुए अथवा एकलौते पुत्र थे, क्योंकि चालू भाषा मे लहणा के अर्थ भाग्य का या लाभप्रद होते है। अंगद नाम तो आपको महान गुरु नानक देव जी द्वारा दिया गया था जिसका कि विस्तारपूर्वक वर्णन अगले पृष्ठों मे किया गया है।

आरम्भिक परिचय

आपका स्वभाव वचपन से ही उदार, दयालु और धैर्य्यवान था। सव किसी के दु:ख सुख मे शामिल होना, सहानुभूति दिखाना और भरसक सेवा करना यह गुण आपको परमात्मा की ओर से धरोहर रूप मे मिले थे। १५ वर्ष की अवस्था मे संवत १५७६ वि० मे खडूर के देवीचन्द्र खत्री की पुत्री बीवी खीवी से, जो कि वडे अच्छे स्वभाव की थीं आपका विवाह हुआ। इनसे दो पुत्र और दो पुत्रियों ने जन्म लिया। वडे पुत्र दासू जी सवत १५८१ विक्रमी की भादवा ६ को पैदा हुए थे और १५८६ वि० के पूष मे बीवी अमर कौर तथा जेठ की २६ वीं संवत १५६१ मे बीवी अनोखी पैदा हुई थीं। दातू अपने बहिन भाइयों मे सवसे छोटे थे जो सवत १५६४ के वैसाख मे पैदा हुए थे।

गुरु अगद देव जी का जन्म मत्ते की सराय का अवश्य था किन्तु किसी कारण से वहां के चौधरी तख्तमल ने उनके पिता को वन्दीघर मे डाल दिया। तख्तमल वडी कठोर तबियत का आदमी था और किसी की भी नहीं सुनता था, इसलिये लहना जी खडूर पहुँचे ताकि उसकी लडकी के जरिये पिता की रिहाई के लिये यत्न करे। खडूर पहुँच कर जव आप तख्तमल की लडकी बीवी सभराई से मिले तो वह उस समय गुरु नानक देवजी के दर्शन और उन्हे भोजन कराने के लिये गांव से बाहर उनके ठहरने के स्थान पर जाने की तैयारी मे थी। आप भी उसके साथ ही हो लिये। सभराई जी उन्हे कुछ पीछे छोड़कर गुरुजी के पास पहुँची। कहते है गुरुनानक देव जी ने बीवी सभराई से पूछा जिसे साथ लाई हो उसे पीछे क्यो छोड़ आई'। इस पर जव लहना ने सेवा में उपस्थित होकर वन्दना की तो गुरुजी ने कुशल

नेम पूछने के बाद उनका नाम पूछा। जब उसने अपना नाम लहणा बतलाया तो आपने मुसकराते हुये कहा "तुम्हारा लहणा(पावना) तो हमारे पास है। हमें तुम्हारा देना है। तदनन्तर लहनाजी बीबी सभराई को साथ लेकर मते की सराय में गये और अपने पिता को जेल से छुडाया।

कुछ समय बाद लहणा जी अपना जन्म स्थान छोड कर खडूरिया के खंडूर ही आ बसे।

गुरु नानकदेव जी से भेंट

यहा पर जोधा नामक एक जमीदार था वह गुरु नानकदेव जी का शिष्य भी हो चुका था उसका नित्यनेम था कि प्रात तारों की छाया मे उठकर स्नान करना और आसा की वार को गा-गाकर ईश्वर वन्दना करना। उसके इस काम में कुछ दूसरे लोग भी शामिल होते थे। लहणा जी का भी उससे प्रेम हो गया। वह उन्हें गुरु वाणिया सुनाया करता था। वैसे तो पहले ही वे बीबी सभराई जी के साथ गुरु जी के दर्शन कर चुके थे अत अब और भी उनकी उत्कठा गुरु जी से पुन. मिलने की हुई। वैशनो देवी के वार्षिक मेले को दल बल सहित वे गए क्योंकि वे अब तक वैशनो देवी के पुजारी थे। अपने साथियों समेत कर्तारपूर पहुँचे और गुरु नानक देव की सेवा में हाजिर हुये तो लहणाजी को इस बात से बड़ा आश्चर्य हुआ कि यह महापुरुष तो वे ही हैं जो अभी थोड़ी दूर तक हमारे साथ पैदल चलकर आये थे। लहणा जी ने हाथ जोड़कर इस बात के लिये गुरु नानक देव जी से क्षमा मागी कि महाराज आप मेरे साथ पैदल चले और मैं घोडी पर सवार रहा। हालाकि यह अपराध अनजान में हुआ था फिर भी लहणा जी ने क्षमा चाही यह बात उनके बडप्पन और शिष्टता की द्योतक है। गुरु नानक देव ने बड़े प्यार से कहा लहणा तुम्हारे अपराध तो परमात्मा की ओर से क्षमा हो चुके हैं। अब तुम्हे परमात्मा की ही शरण में आ जाना चाहिए यह बीच के देवी देवते तो व्यर्थ की चीज हैं। यह उपदेश लहणा जी के हृदय को भा गया।

सिख साहित्य के पढ़ने से पता चलता है कि लहणा जी ने जिस प्रकार गुरु जी की सेवायें की थीं वह सर्वसाधारण का काम नहीं। उस समयके गुरुजी के शिष्य बाला और बुड्ढा आदि भी लहणाजी की सेवाओं के मुकाबिले मे बहुत पीछे थे। बडे से बडा कष्ट सहकर और प्राणों की भी बाजी लगाकर वे गुरु जी की सेवा में तत्पर रहते थे।

सेवाए

(१) एक समय बड़े जोर की वर्षा हुई। धर्मशाला के उस छप्पर वाले हिस्से का एक स्तंभ ढह गया जहा गुरु नानक देव जी सोते थे। लहना तुरन्त वहां गये और शहतीर को थामे रात भर खड़े रहे। किन्तु सोते से गुरु जी को जगाना उचित नहीं समझा।

(२) एक बार ठंडी रात्रि में गुरु जी ने पहले पुत्रों से फिर अन्य शिष्यों से कहा भाई मेरे कपडे धोकर लाओ मैं वस्त्र बदलूगा। देखो दिन निकल आया है। सभी ने बहाने कर दिये किन्तु लहणा जी उसी वक्त गये और कपड़े धो लाए। किन्तु उन्होंने यहातक भी कहा महाराज सूरज तो जहा तक आपने चढाया है वहीं तक चढा हुआ है। हालाकि जिस समय वह कपड़े धोकर लाए थे आधी रात थी।[1]

(३) एक बार गुरु जी ने एक कीच के गड्ढे में कटोरा फेंक दिया। गुरु जी ने सबसे कहा

१ सिख साहित्य में लिखा मिलता है कि कपडे धोने के समय सूरज निकल आया या फिर रात हो गई थी।

किन्तु कोई भी उस गंदी और खराब कीच मे घुसने को राजी नहीं हुआ। लहणा जी ने हुकम पाते ही कटोरा निकाल कर और साफ करके गुरु जी के हवाले किया और खुद कपड़े साफ करने को चले गये।

(४) एक बार गुरु नानक देव जी ने परीक्षा के लिये जगल मे जाकर अपना विक्षिप्तों का जैसा भेष बनाया और धर्मशालापर आकर सिखोंपे सोटे लगाने लगे। बहुतसे इधर-उधर भाग गये। फिर गुरु जी जंगल की ओर चल दिये। कुछ शिष्य उनके साथ जंगलमे गये वहा एक जगह उन सबने देखा आग जल रही है। गुरु जी ने उनकी ओर देखकर कहा इस आग पर से होकर गुजरो सब चुप हो रहे लहणा जी चल पड़े किन्तु देखा वह आग नहीं किन्तु जगली बूटी है, जो रात में प्रकाश दे रही है।

इसी तरह की और भी अनेक कथाये है जिनसे मालूम होता है कि कठिन से कठिन आज्ञा को पालन करने के लिये लहणा जी तैयार रहते थे। उन्होंने कभी भी किसी काम के करने मे हिचकिचाहट और आलस नहीं दिखाया। वास्तव मे गुरु जी के प्रति लहणा जी के हृदय मे आगध भक्ति थी। भक्ति की इसी सचाई और सेवा भाव की गहराई की परीक्षा के लिये ही गुरु जी ने उन्हे तथा अपने अन्य सिखों को परखा। उनमे लहणा अव्वल नम्बर रहे।

इन कठिन से कठिन सेवा सम्बन्धी और प्रेम एवं श्रद्धापूर्ण परीक्षाओं के बाद ही गुरु जी ने घोषणा कर दी कि लहणा मेरा "अंग" है। उसी दिन से लहणा जी का नाम अंगद जी हो गया।

अब चूंकि गुरु नानक देव जी की की आयु ७० साल की हो चुकी थी। अत उन्होंने एक दिन संगत के सामने यह एलान कर दिया कि आज मैं अंगद जी को गुरुआई देना चाहता हूँ। मुझे पूर्ण यकीन हो गया कि एक यही है जो मेरे बाद मेरे चलाये हुये धर्म-मिशन को जारी रख सकेगे। इतना कह कर उन्होंने अंगद जी के सामने एक नारियल और पाच पैसे रखकर मत्था नवाया और सभी को अपने स्थान पर अंगदजी को गुरु मान लेने की आज्ञा दी। यह शुभ दिन संवत १५९६ वि० के कार की ५ का था।

गुरुआई मिलना

इसके कुछ ही दिन बाद गुरु नानकदेव जी के देहावसान हो जाने और करतारपुर मे गुरु पुत्रो द्वारा विरोध होने के कारण अगददेव जी खंडूर चले आये गुरु नानकदेव जी ने भी उन्हे अपने बाद खंडूर चले जाने का आदेश दे दिया था। खडूर के लोग इस खबर को सुनकर बडे प्रसन्न हुए और गुरु अंगददेव जी के लिये सब प्रकार का प्रबन्ध करने लगे. किन्तु गुरु अंगददेव जी ने कोई अधिक सुविधा नहीं चाही। वे कंकड बिछाकर एक कोठरी मे तप करते रहे और इसी तरह बराबर आठ महीने तक ईश्वराधना और गुरु जी का स्मरण किया।

खंडूर लौटना

गुरु नानकदेव जी के परम धाम के बाद

कुछ समय से इधर लक्ष्मीचन्द जी ने कोशिश की कि सिख उन्हे ही अपना गुरु माने किन्तु उनकी कोशिश सफल नहीं हुई। भाई बुड्ढा, वाला, माणक आदि सभी प्रसिद्ध सिख गुरु अंगददेव जी के पक्ष का समर्थन करने लगे और उन्होंने कह दिया कि गुरु नानकदेव जी ने जिसको अपना उत्तराधिकारी बनाया है वही सिखो का गुरु हो सकता है।

गुरु अंगददेव जी मे प्राय. सभी बाते गुरु नानकदेव ही जैसी थीं। उन्हीं जैसी हरिभक्ति. उन्हीं जैसा त्याग और तप। उन्हीं जैसा वैराग्य। उन्होंने अपने घर वालों से स्पष्ट शब्दों मे कह दिया था कि अपने खाने पीने के लिये परिश्रम करो। चढावे मे जो आता है वह धर्म के लिये है। उसको हम अपने

लिए खर्च नहीं कर सकते। उनके दोनों पुत्र दुकान करके अपने घर का काम चलाते थे।

उपदेश और सत्संग का काम भी पहले ही की भाति अब चलने लगा था। गुरु अगद देव जी ने अपने दिन भर के कामों का वैसा ही सिलसिला बना लिया जैसा गुरु नानकदेव जी का था।

लंगर का काम इनके यहाँ और भी बढ़ गया था। खंडूर ग्राम के जाट सिखों मे इतनी श्रद्धा थी कि प्रत्येक घर से आठवे दिन इनके लंगर के लिए दूध आ जाता था। गुरुजी का उपदेश सुनने के लिये दूर दूर से लोग आते थे।

बादशाह हुमायूं की भेंट

शेरशाह सूरी से परास्त होकर बादशाह हुमायू जब पंजाब में आया तो उसने गुरु अगद देवजी की कीर्ति सुनी और वह दर्शनों के लिये खंडूर पहुँचा। उस समय गुरुजी समाधि पर थे। हुमायू इस बात से बड़ा नाराज हुआ कि यह संत मेरे सम्मान के लिये उठा तक नहीं। अतः तलवार निकाल कर उसने गुरु जी पर वार करना चाहा, दैवात उसी समय गुरुजी की समाधि समाप्त होने का भी समय आ गया। उन्होंने बादशाह को तलवार ताने देखकर हंसते हुए कहा, बादशाह यह तलवार शेरशाह के आगे भोथरी हो गई थी क्या ? संतों पर वार करना कहाँ की बहादुरी है। इस बात को सुनकर बादशाह हुमायूं बड़ा लज्जित हुआ और उसने कहा, संत जी मैं आप से अपने लिए शुभ आशीर्वाद चाहता हूँ।

कुछ चमत्कारिक प्रसंग

यहाँ कुछ ऐसी घटनाये दे देना भी उचित होगा जिन्हें चमत्कार के नाम से याद किया जाता है। वैसे "सूर्य प्रकाश" मे इस सम्बन्ध का काफी वर्णन है।

गुरुजी के लंगर मे माना नाम का एक शिष्य रहता था। कडाह प्रसाद खा खाकर वह खूब तगड़ा हो गया। काम धंधे की तरफ से भी लापरवाह रहने लगा। गुरुजी ने उसे समझाया कि सेवा करने से कभी भी मुँह नहीं छिपाना चाहिए। उसने कहा हमे तो स्वर्ग जाने वाली बातें बताओ। गुरु जी ने सहज स्वभाव से कह दिया कि स्वर्ग चाहता है तो आग मे जल मर। उसने ऐसा ही करने की तैयारी कर दी। जंगल मे जाकर लकड़ियों के ढेर मे आग लगा दी और उसमे कूदने को तैयार हुआ। इतने मे एक चोर ने आ कर उससे ऐसा करने का कारण पूछा। सारी बातें सुनकर चोर ने सोचा मैंने इतने पाप किए हैं मुझे स्वर्ग मिलना मुश्किल है फिर आज इस तरह ही क्यों न प्राप्त करलूं। उसने माणा को चोरी के माल का जवाहरात से भरा डिब्बा देकर उसे तो वापिस कर दिया और खुद उसमें जलने को तैयार हो गया। इतने में एक राजा आ गया। उसने चोर से सब हाल सुना तो वह बडा खुश हुआ और उसे जलने से रोक लिया। कहा जाता है ये दोनों ही चोर और राजा गुरु जी के पास जाकर उनके शिष्य हो गये। उधर माणा बादशाही लश्कर द्वारा डिब्बा उसके पास मिलने के कारण—चोरी के अपराध में पकड़ लिया गया और एक लबे अर्से तक सजा भुगतता रहा। सजा से छूट कर आया तो उसने गुरु जी के सामने हाजिर होकर अपनी भूल के लिये क्षमा मांगी।

जीव नाम का गुरु जी का एक भक्त था। उसके यहां से गुरु जी के लिये खिचड़ी आया करती थी। कभी जीवा और कभी उनकी पुत्री लाते थे। पुत्री का नाम जीवाई था। इस तरह से लगभग १० साल गुजर गये। एक दिन आँधी चलने लग गई। जीवाई ने कहा कि अगर आँधी रुक

जाय तो मैं गुरु जी के पास खिचडी पहुँचा आऊँ। आँधी रुक गई और वह खिचड़ी लेकर गुरु जी के पास पहुंची किन्तु, गुरु जी ने खिचड़ी खाने से इन्कार कर दिया। इस पर जीवाई रोने लग पड़ी। तब गुरु जी ने कहा कि तेने केवल मेरी वजह से आँधी को क्यों बन्द कराया। इतनी देर मे आँधी से जो लाभ ससार को व जहाजवालो को होता उससे वे वंचित रहे न। इस बात को सुनकर उपस्थित सिखों पर बडा प्रभाव पड़ा और जीवाई ने भी अपनी भूल स्वीकार करके भविष्य मे ऐसा न करने का वायदा किया।

खडूर मे एक शिवनाथ नाम का जोगी रहता था। यह अपने लिये बडा चमत्कारी बताया करता था और इन्हीं चमत्कारों की माया से वह खूब धन लूटता था। एक वर्ष उस इलाके मे अकाल पड़ गया। भादो तक पानी नहीं बरसा। लोग त्राहि-त्राहि करने लगे। शिवनाथ ने मौका समझ कर लोगों से कहा अगर यहां से अगद को हटा दिया जाय तो वर्षा हो सकती है। वह गुरु जी से भारी ईर्ष्या रखता था। लोग जब हिचकिचाने लगे तो उसने कहा अगर तुम अगद को करामाती और सिद्ध पुरुष समझते हो तो उसी से कहो। वह करामात रखता होगा तो मेह बरसा देगा। कुछ लोगों ने यही बात गुरु जी के सामने रक्खी। बुड्ढा जी तो इस बात को सुनकर नाराज हुए किन्तु गुरु जी ने कहा हमारे हट जाने से मेह बरसता हो, तो हमे यहा से हटने मे क्या हर्ज है। हम तो परोपकार के लिए ही तो इस दुनिया मे आये हैं। कहा जाता है गुरु जी अपनी संगति के साथ 'खान रजादा' नामक गांव मे अपने शिष्य भाई प्रेमा के यहा जा विराजे। गुरुजी चले गये। रुपये शिवनाथ ने उनसे ऐंठ लिये वह अलग। पर पानी न बरसा दूसरे दिन लोग अमरदास जी के पास पहुँचे। उन्होंने हँसते हँसते लोगों से कहा मेह तो बरस सकता है किन्तु इस तरह नहीं। जिस तरह कि तपा ने कहा है। मेह बरस जायगा बल्कि इस तरह कि जिस-जिस खेत पर तपा को ले जाओगे वहीं-वहीं वर्षा हो जायगी। अमरदास जी ने यह बात यों ही सहज स्वभाव से कह दी थी किन्तु जाट लोग शिवनाथ को खेतों मे ले जाने के लिए चिपट गये। कभी कोई और कभी कोई उसे अपने खेतों मे ले जाता किसी का खेत बाकी न रह जाय इसलिये उसकी खिंचातानी भी शुरु हो गई। इसी खेचातानी मे शिवनाथ मर गया। दैव माया कि मेह भी खूब बरसा। इसके बाद जाट लोग गुरु जी के पास पहुँचे और उन्हे वहीं लिवा लाये। यहाँ आपने मलूका नाम के चौधरी को उपदेश करके शराब पीने की आदत से भी मुक्त किया।

एक समय गुरु जी अमरदास जी से मिलने जा रहे थे। रास्ते मे उन्होंने देखा कि बहुत से मनुष्य इकट्ठे हो रहे है और बकरे भेड़ों को पकडे हुए हैं। पूछने पर सींहा नाम के खत्री ने बताया कि मेरे लड़के का मुण्डन सस्कार होने वाला है इस समय जो मेहमान इकट्ठे होंगे उनके वास्ते यह बकरे खरीदे है। गुरु जी ने कहा, इस हिंसा का ऐसा बदला तुम्हे भी चुकाना पड़ेगा। इस बात को सुनकर सींहा घबरा गया। बोला तब हमे क्या करना चाहिए जिससे हम इस हत्या से भी बच जाये और बिरादरी के लोगों की नाराजगी से भी बच जाये। गुरु जी ने कहा तुम्हे कडाह प्रसाद करना चाहिये। सींहा ने गुरु जी को भी रोक लिया और कडाह प्रसाद से आने वाले बिरादरी के लोगों का सत्कार किया। कहते है गुरु जी ने कहा था कि हमे इस केश मुण्डन की प्रथा को भी हटाना पड़ेगा। इस समय से सींहा पक्का सिख हो गया और प्यारे सींहा के नाम से वह आज तक याद किया जाता है।

एक बार देव गिरि गुसाई गुरु जी के पास जमात समेत आया। वहां रहकर उसने गुरु जी के लगर को देखा तो सोचने लगा यहा जिस प्रकार का बढ़िया प्रसाद बनता है। इसमे तो खर्च बहुत पड़ता होगा और गुरु जी के पास कोई स्थायी अमदनी है नहीं। इसलिये उसने गुरु जी से कहा महाराज मै

रसायन बनाना जानता हूँ और रसायन विद्या के कारण तावे को सोना बनाया जा सकता है। उसने कुछ पैसों को सोना बना कर दिखाया भी और कहा आप मुझ से धातु मारने की इस विद्या को सीख लें। गुरु जी ने कहा हमें माया का क्या करना है ! हम तो मन को मार रहे हैं। जिसके मर जाने पर सोना और मिट्टी सभी बराबर जान पडते हैं। इस मार्मिक उपदेश से देवगिरि पर बडा प्रभाव पडा और उसने कहा वास्तव मे जैसा कि लोग कहते हैं आप ऋषि और सत गुरु हो।

एक दिन गूजर नाम के एक लुहार ने गुरु जी की सेवा मे निवेदन किया. महाराज मेरे जैसे गृहस्थ के कल्याण का कोई मार्ग बताइये जिसे अपने पेट पालन के धंधे मे कभी भी सतगुरु की सेवा करने का और उपदेश ग्रहण करने का अवसर ही नहीं मिलता है। गुरु जी ने कहा प्यारे बन्धु, नित प्रति जपु जी का पाठ, अतिथियों का सत्कार, गरीबों के प्रति सहृदयता और कर्तव्यपालन के लिए तत्परता के भाव अपने हृदय मे रक्खा करो। परमात्मा अवश्य ही तुम्हारा कल्याण करेंगे।

इसी प्रकार एक समय मलूशाह नाम के शिष्य ने आकर विनती की। गुरु जी मुझे मुगलों की नौकरी मे रहते हुए, आपकी सेवा करने का सौभाग्य तो प्राप्त है नहीं, फिर किस तरह से अपने भविष्य को सुधारू ? गुरु जी ने कहा, देखो किसी के साथ कटुता का व्यवहार मत करना. मीठी वाणी बोलना कभी किसी का दिल न दुखाना और वाहि गुरु का जाप यही बाते ऐसी हैं जो तुम्हारे जीवन की गति को ठीक ओर ले जायेगी। मलूशाह बड़ा प्रसन्न हुआ और गुरु जी के चरणों मे अपना मत्था टेक कर विदा हुआ।

भाई केदारी देवी का बडा भगत था। एक बार उसने गुरु जी की सेवा मे हाजिर होकर कहा, महाराज मैं बडी भक्ति के साथ देवी की उपासना करता हूँ। फिर भी मेरा जीवन अशांत है। काम क्रोध मोह लोभ भी चिपटे हुए हैं। गुरु जी ने कहा वन मे लगी हुई दावानल से छलाग मारने वाले हिरन ही अपने प्राण बचाते हैं और फिर वही नदी किनारे की हरियाली मे रह कर निर्भयता और शांति का जीवन बिताते हैं। इसी प्रकार काम क्रोध, मोह आदि की भट्टी में से वही निकल सकते है। जो साहस रखते हैं इनसे मुक्त होने के बाद सत्संग रूपी सरोवर मे आकर वे ही अपना जीवन सुफल बनाते हैं। सत वचन महाराज कह कर केदारी ने भक्तिपूर्वक गुरु जी के चरणों पर अपना माथा टेका और सच्चा शिष्य बन गया।

औरंगाबाद का रहने वाला धींगा नाई गुरु जी की सेवा मे बड़ा अनुरक्त रहता था। वह उनके पैरों को दबाया करता था। एक समय उसके यजमान के घर शादी थी। रात को उसे वहा पहुँचना था किन्तु सेवा में से जाना उसने उचित नहीं समझा। दूसरे दिन जब वहां पहुँचा तो उसे यह जानकर ताज्जुब हुआ कि लोग उससे कहने लगे रात तो तुमने बड़ी लगन से काम किया धींगा ने सोचा यह तो सैन भगत के कार्य की तरह भगवान ही मेरी ड्यूटी बजा गये हैं। बस उसी दिन से उसने संसार से बिल्कुल वैराग ले लिया और रात दिन गुरु की सेवा मे रत रहने लगा।

पारे जुलका नाम का एक भगत गुरु जी की सेवा मे आया और कहने लगा गुरुजी। प्राणायाम और ध्यान बराबर करता हूँ किन्तु फिर भी मन को पूर्ण शांति प्राप्त नहीं होती है। इसका क्या कारण है ? गुरु जी ने फर्माया शाति तो बिना आत्मज्ञान प्राप्त किये नहीं मिल सकती अत. सतगुरु की सेवा में रह कर पहिले आत्मा को चीन्हों फिर शाति अवश्य ही मिल जायेगी। जुलका के हृदय में गुरु जी का यह वचन घर कर गया।

एक बार भाई दीपा, नारायनदास और बूला ने पूछा, महाराज ! जीव, जीवन-मरण के फन्दे से किस प्रकार छूट सकता है ? गुरु देव ने उत्तर दिया भक्ति से। वैसे ज्ञान, वैराग्य, जोग और भक्ति ये सभी ईश्वर से मिलाने वाले और जीवन को मुक्त बनाने वाले साधन हैं किन्तु ज्ञान, वैराग्य और जोग को माया भरमा लेती है। बडे-बडे ज्ञानी, वेद और शास्त्रों की चर्चा करने वाले भी कभी-कभी माया के चक्कर मे बुरी तरह से फंसते देखे गये है। समाधियों के लगाने वाले जोगी भी माया के आगे डिगते हुए पाये गये है। वैरागियों को राग-जाल मे फँसते देखा गया है किन्तु भक्ति डूबती हुई कभी नहीं देखी गई। भक्ति तो परमात्मा की पतिव्रता नारी सदृश है।

यात्रा

गुरु अंगददेव जी ने लम्बी यात्राये नहीं की थी। शायद वे पंजाब से बाहर कभी नहीं गये। गुरु नानकदेव जी जिस काम को इतना विस्तृत रूप दे गये थे उसे संभालना आसान न था, जिसके कारण गुरु अंगददेव जी लम्बी यात्रा नहीं कर सकते थे। गुरु नानकदेव जी के समय मे तो उन्होंने अपना सारा समय गुरुसेवा मे लगाया और उनके पीछे घोर तपस्या मे। इस तरह उनका यात्राओं के लिये निकलना दुसह कार्य ही था। हमे उनके मालवे की ओर जाने वाली यात्रा के कुछ समाचार मिलते हैं। मालवे के अनेकों गावों मे प्रचार करते हुए वे अपनी जन्म-भूमि मते-की-सराय मे भी पहुँचे थे।

इस यात्रा मे गुरुजी के साथ ५० शिष्य और चार ऊंट सामान लादने के थे। रास्ते मे सभी लोगों ने उनका आदर सत्कार किया और उपदेश सुने।

मते-की-सराय के पास जब पिंड (गाव) मे पहुचे तो वहा कई दिन तक लोगो ने आपको रक्खा और बड़ा आदर सत्कार किया किन्तु एक दिन चौधरी बक्ता जो इस समय ७२ गांव का कारवाहक (मालगुजार) था, मंजी पर गुरु जी के सिरहाने बैठ गया। इस पर शिष्य लोग नाराज होने लगे। गुरुजी ने शिष्यों को शात किया। उन्होंने कहा हमे किसी के प्रति कड़वे शब्द नहीं कहने हैं किन्तु बख्ता चौधरी ने कहा, क्या हो गया, जो आपके सिरहाने बैठ गया, यहा मेरी जाति में मेरे बराबर किस की इज्जत है। गुरुजी ने कहा ठीक है यहां तो जाति वाले आपकी इज्जत करते हैं किन्तु आगे (परमात्मा के यहा) तो कोई जाति पाति नहीं है वहां के लिए क्या सोचा है ? इस वचन को सुनकर चौधरी की आंखे खुल गईं और उसने श्रद्धापूर्वक गुरु जी के चरणों मे माथा टेक दिया।

यह यात्रा गुरुजी ने संवत् १६०४ विक्रमी मे आरम्भ की थी और शायद उसी वर्ष के चन्द महीनों मे समाप्त की थी। भाई बुड्ढा इस यात्रा मे साथ था। मते की सराय के पास एक दूसरे स्थान पर जहां गुरुजी ठहरे थे, वहां दीवान हुकमचन्द ने एक मन्दिर बनवा दिया था जहां कि पास ही मे आगे चलकर नागे की सराय नाम की बस्ती बस गई थी।

सचखण्ड प्रस्थान

हम लोग जिसको स्वर्ग, बैकुण्ठ और परम धाम कहते हैं सिख लोग उसे सचखण्ड अथवा जोत में समा जाना कहते हैं। गुरु अंगददेव जी ने जब यह जान लिया कि अब परमधाम पधारने का हमारा समय आ गया है तो उन्होंने अपने सभी प्यारे और मुख्य शिष्यों को यह खबर दे दी। दासू, दातू और बुड्ढा, बाला दोनों उस समय गुरु जी की सेवा मे हाजिर हो गये। दूर दूर से अनेकों संगत आ गई और जो भी जहा सुन लेता था वह इस अन्तिम

समय पर इनके दर्शन की लालसा से खडूर की ओर चल पड़ा । सबद कीर्तनों का आनन्द दायक समारोह होने लगा ।

और एक दिन दरबार लगाकर अपने साथियों को सम्बोधित करते हुए उन्होंने कहा यद्यपि मेरे शिष्यों मे कई आदमी बड़े योग्य हैं । मेरे पुत्र भी नेक और आज्ञाकारी हैं किन्तु गुरुआई के योग्य मैं अमरदास ही को समझता हूं । इस सम्बन्ध मे मैंने अपने गुरु जी से जो ग्रहण किया था । उसी के अनुसार मैं यह कहने को तैयार हूं । अमरदास जी को अपना उत्तराधिकारी बनाकर न्याय और अपने ही कर्तव्य का पालन कर रहा हूँ क्योंकि वही मेरे बाद इस कार्य को संभाल और चला सकते हैं । इतना कहकर गुरु अंगददेव जी उठे और पांच पैसे और नारियल आगे रखकर अमरदास जी के लिए माथा झुकाया । इसके बाद अपने पुत्रों और शिष्यों से भी माथा टिकाया । इस प्रकार अमरदासजी को गुरु अंगददेव जी ने गुरुआई समर्पण कर दी अब से वे सिखों के गुरु हो गए ।

निदान वह अन्तिम दिन आ गया और सं० १६०६ चैत की चतुर्थी को गुरुजी शरीर को छोड़ कर सचखण्ड को पधार गये ।

गुरु अंगददेव जी के जीवन और कार्यों पर दृष्टिपात

गुरुनानकदेव जी ने श्री अङ्गददेव जी को गुरुआई देते समय कहा था कि यह मेरे ही "अङ्गद" अर्थात् मेरे ही शरीर का अङ्ग है । मुझ में और इनमें कोई अन्तर न समझना । इसमें कोई भी सन्देह नहीं कि गुरु अङ्गदजी स्वभाव प्रकृति, सरलता और दयालुता सब बातोंमें दूसरे नानकदेव ही सिद्ध हुए । यद्यपि उनके लंगर मे कडाह प्रसाद भी बनता और इधर-उधर के आने जाने वाले तक उस प्रसाद को पाते थे किन्तु स्वयम् गुरुजी के पुत्रों को यह अधिकार न था वे उसे अपने पिता की चीज समझकर उपयोग करें । उन्होंने अपने परिवार वालों से स्पष्ट कह दिया था कि यह दान का धान तुम्हारे खाने और बरतने के लिये नहीं है । तुम अपने हाथ पैरों से कमाओ और उसे खाओ बरतो । स्वयम् गुरुजी के लिये कभी घर से और कभी भगतों के यहा से रोटी या खिचड़ी बन कर आती थी । खिचडी भी किस की, बाजरे और मूंग, मोठ की दाल की ।

व्यक्तित्व

आप भी अपने पूर्ववर्ती गुरुदेव की नाई तारों की छाया मे ही उठकर स्नान-ध्यान से निवृत्त होकर उसी भांति उपदेश और संकीर्तन कराते तथा दरबार लगाते थे । तप करने के आपके भी ढंग बड़े कठोर थे । खडूर में लगातार आठ महीनों तक कंकडों पर बैठकर आपने तप किया था । समाधि भी कई २ दिन के लिये लगा जाते थे ।

निरभिमान आप प्रथम श्रेणी के थे । करतारपुर में आते ही घास खोदने, पशुओं को चराने और खेत बोने जोतने के काम मे लग गये । हालांकि बचपन में उन्होंने यह काम नहीं किये थे, आपके पिता दुकान और लेनदेन से काफी रुपया कमाने वाले शख्सों में से थे । आपके घर पर किसी भी प्रकार का घाटा न था ।

यह हम सुनते और पढ़ते हैं कि गुरु नानकदेव जी से आपको गुरुआई मिली थी, किन्तु उस गुरुआई के साथ क्या मिला था । कोई जागीर ? कोई जवाहरातों का खजाना ? कोई वैभव ? कुछ भी नहीं । यहाँ तक कि करतारपुर की वह धर्मशाला भी नहीं । सांसारिक वस्तुओं में तो उन्हें एक पाई का भी गुरुआई में नहीं मिला था । यह हम इसलिये कह रहे हैं कि लोग इस गुरुआई को कहीं आजकल के या

उस समय के मठाधीशों और महतों की जैसी गुरुआई न समझलें। हॉ, मिली थी एक चीज किन्तु वह सब किसी को मिल भी नहीं सकती है वह चीज थी आत्मज्योति। गुरु अङ्गद जी को यही चीज गुरु-नानकदेव जी से मिली थी और यही चीज थी जो उन्हे दूसरी जगह से नहीं मिल सकती थी। यही गुरुआई थी, गुरु नानकदेव जी की सासारिक चीजे शायद दूसरों ने ले ली हों। उनके खेत, धर्मशाला, पशु, कुछ पूंजी और वस्त्र चाहे दूसरों के हाथ लग गये हों किन्तु गुरुत्व जो था वह मिला था केवल गुरु-अङ्गदेव जी को ही। या यों कहिये उसे कोई दूसरा ले ही नहीं सका था। उसे अङ्गददेव जी ने प्राप्त किया था। और सच बात यह है कि गुरु नानकदेव जी मे पंचभूतों के सिवा जो कुछ और था वह अङ्गददेवजी ने पूर्णरूपेण पा लिया था। इसलिये वास्तविक नानकदेव अङ्गददेव मे समा गया था। इस प्रकार का गुरुत्व संसार में कितने लोगों ने पाया है। इस रहस्य को जानते भी बहुत ही कम लोग होगे कि इस प्रकार नानकदेव अंगददेव मे समा गये थे और अङ्गद ही अब नानकदेव थे।

यह समीकरण ससार के इतिहास मे एकदम निराला और शायद ही कभी होने वाला समीकरण है। "आत्मा वै जायते पुत्र" का समीकरण तो बहुत समय से सुनते आये है किन्तु "आत्मा वै मथीयते शिष्य :" का उदाहरण गुरु अङ्गददेव ही थे।

अब हम उनकी पातशाही के दिनों मे हिन्दू समाज और भारत देश के हित के लिये होने वाले कार्यों का जिक्र करना चाहते हैं। क्योंकि प्रत्येक मनुष्य के जीवन के—चाहे वह साधारण हो चाहे महापुरुष—दो हिस्से होते हैं एक व्यक्तिगत, दूसरा सार्वजनिक। जिसके जीवन के दोनों पहलू उच्च होते है उसे ससार बहुत याद करता है। मध्यकालीन भारत मे और गुरुओं के समय मे भी ऐसे कई महापुरुष थे जिनका व्यक्तिगत जीवन और योग्यता बहुत ऊँची थी, किन्तु ससार के प्रति उदासीन रहने यानी लोकसेवा के झझट से दूर रहने के कारण ही वे लोगों की स्मृति पर चढ़े हुए नहीं हैं। गुरु अङ्गददेव के समय ही मे और उनके ही प्रतिद्वन्द्वी महात्मा श्रीचन्द उस समय के गिने चुने विद्वानों और संतों मे से थे। उनकी अपनी भावनाओं के अनुसार उनका तप भी बहुत ऊँचा था। सस्कृत के धारावाही विद्वान् थे किन्तु जनसम्पर्क से दूर रहने और सार्वजनिक क्षेत्र से उदासीन रहने के कारण अपने पिता के बहुसख्यक शिष्य समाज को वह गुरु अङ्गददेव की शरण मे जाने से न रोक सके। इस तरह हम कह सकते हैं कि गुरु अङ्गददेव जी का जहॉ व्यक्तिगत जीवन बहुत ऊँचा था वहॉ सार्वजनिक जीवन भी अत्यन्त श्रेष्ठ था। अथवा जहॉ उनका व्यक्तित्व हिमालयकी उच्चतम शिखर की भाति जनता की दृष्टि से अगम अगोचर था वहॉ छोटे बडे गरीब, अमीर, अंधे, लूले सबकी चिन्ता करने और अपने समाजको ऊँचा उठानेवाले अथक प्रयत्नोंका सिलसिला भी मामूली दर्जेका न था।

कार्य

गुरु नानकदेव ने जिस ऊसर भूमि को उपजाऊ बनाकर अंकुरित किया था उस भूमि के उपजाऊ पन को स्थिर बनाये रखने और उगे हुए अंकुर को विकसित करने के लिये जो कार्य और प्रयत्न गुरु अङ्गद देव जी ने किये थे वे महान् दर्जे के कार्य थे। उन अनेकों कार्यों मे से यहॉ हम केवल तीन कार्यों का विवेचन करना चाहते हैं।

पहिला और सर्वोपरि कार्य था गुरमुखी लिपि का प्रचार करना।[1] कहाजाता है संसार की

१ आज कल की की जाने वाली खोज में सिदध हुआ है कि गरुमुखी लिपि गुरु नानकदेव जी के समय में निर्माण हो चुकी थी।

लिपियों में पहली लिपि देवनागरी है और देवनागरी ही पूर्ण लिपि है। पूर्णलिपि वह समझी जाती है जिसमे प्रत्येक ध्वनि को अंकित करने के लिये स्वतंत्र अक्षरों का प्रयोग हो सके। कोई दो अक्षर किसी भी ध्वनि के अकित करने के लिये मिलाने न पड़ें। गुरु अङ्गददेव जी के समय में भारत में और खास तौर से पजाव और सिन्ध में चार लिपियाँ थीं। नागरी जिसे सस्कृत और शास्त्रीय भाषा भी कहते थे।[१] दूसरी फारसी जिसे प्रत्येक मुसलमान और वह हिन्दू सीखता था जो उस समय के मुसलमान हाकिमों के सम्पर्क में रहता था। तीसरी मुण्डा या महाजनी जिसमें वैश्य लोग अपना हिसाव रखते थे। चौथी सिन्धी, यह महाजनी से मिलती जुलती थी। इनके भी कुछ आन्तरिक भेद थे। जिनमे एक जाटकी या पच्छिमी हिन्दकी नाम से अभिहित होती थी।

किसी भी जन समुदाय को समाज का रूप देने के लिये यह जरूरी होता है कि उसकी भाषा और लिपि एक हो। प्रचलित भाषाओं मे से फारसी और मुडा को तो पजाव वाले अपना नहीं सकते थे और खास कर उस सूरत में जबकि धर्म ग्रन्थ और प्रार्थनाए भी लिखी जाने वाली हों। महाजनी तो एक निहायत भद्दी और अपूर्ण लिपि है उसमे "अजमेर गये" और "आज मर गये" में कोई भी अन्तर नहीं होता। फिर एक देवनागरी ही ऐसी थी जिसे गुरुजी और उनका समस्त सिख समुदाय अपनाता किन्तु देवनागरी पढ़ाने का काम उस समय पूर्ण रूप से उन पौराणिक ब्राह्मणों के हाथ मे था जिन्होंने शूद्र और स्त्रियों को पढ़ाना निषेध कर रक्खा था और उनकी पाठशाला में बैठते ही सबसे पहले सिद्ध गणेशाय' का एक लबा पाठ रटना होता था। गुरु नानकदेव के मत मे एक ओंकार को छोडकर किसी भी दूसरे देवता को स्थान नहीं था। यही कारण था कि गुरु नानक जी ने एक नई लिपि का निर्माण किया जो आजकल गुरुमुखी के नाम से मशहूर है। गुरु अगद देव जी ने भी देवनागरी को नहीं अपनाया और गुरु नानक द्वारा निर्मित लिपि का प्रचार किया। इन गुरुमुखी अक्षरों मे गुरुनानक देव जी की वाणियों के अलावा जो भी कुछ लिखा गया, वह पजाव प्रात की बोली मे लिखा गया अत यह गुरुमुखी अक्षर पजावी भाषा के नाम से मशहूर होगये।

गुरुमुखी लिपि देवनागरी की भाति ही पूर्ण लिपि है उसमे प्रत्येक ध्वनि को अकित करने के स्वतन्त्र सकेत अथवा अक्षर हैं। देवनागरी से उसका घनिष्ट सामजस्य है। जो गुरुमुखी वर्णमाला जानता है वह तीन चार दिन मे ही देवनागरी और देवनागरी जानता है वह इतने ही समय मे गुरुमुखी वर्णमाला को सीख सकता है।

इस वर्णमाला का प्रचार करके समस्त शिष्य समाज को गुरु अगददेव ने एक सूत्र मे वाध दिया। इसे प्रत्येक शिष्य चाहे वह किसी भी जाति का हो पढ सकता था। इस तरह से समस्त शिष्य समाज के लिए शिक्षित बनने का रास्ता भी साफ होगया और कट्टर पथी ब्राह्मणों के सघर्ष मे न आना पडा। यदि उनकी देवनागरी को सभी लोगों को पढ़ने की इजाजत दे दी जाती तो वे शोर मचाते कि अक्षर अपवित्र हो गये और इस कुराह को हम पसद नहीं करते। व्यर्थ का झगडा होता।

गुरुमुखी लिपि के आविष्कार से जहाँ प्रत्येक जाति को पढने की स्वतन्त्रता हासिल होगई वहाँ एक वडा काम अपने उद्देश्यों को पूरा करने के लिये गुरुजी के लिये यह और होगया कि उनके शिष्यों का सम्पर्क ब्राह्मण पुरहितों और आचार्य्यो से कम होगया। और इस तरह उनके शिष्यों के विचारों को ढीला

[१] पजाव के हजारों आदमी अब नागरी अक्षरो को शास्त्री जवान कहते है कारण कि हिन्दू शास्त्र इन्हीं अक्षरों में लिखे हुये हैं।

करने वाले ब्राह्मण निरन्तर सिख समाज से दूर होते गये।

गुरुमुखी लिपि मे ही गुरु नानक देव जी की वाणियों के लिखे जाने से समस्त शिष्य सम्प्रदाय के लिये यह भी जरूरी होगया कि वे गुरुमुखी लिखना पढ़ना सीखें। प्रत्येक सिख इस बात मे अपना गौरव समझता था कि अपने गुरुओं की वाणी और जीवन कथाऐं उसे अधिक से अधिक याद होनी चाहिये। इस तरह से पंजाब मे अन्य हिन्दुओं की अपेक्षा शिष्य समुदाय मे पठितों की संख्या अधिक होगई और भविष्य मे भी यही क्रम जारी रहा और आज भी है।

गुरु अंगददेवजी ने जीवन वृतान्त और वाणियों को सग्रह करनेके समय भाई वाला जोकि गुरुनानक देव जी का बालापन का साथी तथा उनके ही गॉव मे पैदा भी हुआ था और अतिम समय तक गुरुजी के साथ भी रहा था। भाई बुढ्ढा जो कि एक समझदार योग्य शिष्य था औरगुरुजी के पिछले दिनों के जीवन मे साथी भी था। किन्तु इसे गुरुजी की वाणियों के सिवा उनके समस्त जीवन चरित्र के सम्बन्ध मे बहुत कम जानकारी थी अपने पास रखा। यह लोग तब तक अगद जी के पास रहे जबतक कि जीवन वृतान्त और वाणियां संग्रह न हो गईं।

वाणियों के संग्रह और जीवन चरित्र के लिख जाने से शिष्य समूह को उन विशिष्ट खयालातों का पावन्द वनाने मे बड़ी मदद मिली जो गुरु नानक देव जी ने स्थिर किये थे। नये शिष्य भी इस ग्रन्थ की सहायता से बहुत बने। साथ ही गुरुनानक का संदेश देने मे अन्य ऐसे लोगों का सहयोग भी काम देने लगा जो पढ़े लिखे थे। अथवा अपने घर और गॉव मे उन वाणियों को जो सग्रह की जा चुकीं थीं पढ़-कर सुनाते होंगे। हम समझते है आगे गुरु अमरदास जी ने जो २२ मांझिया स्थापित की थीं। उन मजिओं के प्रमुखों ने अवश्य ही जन्मसाखी की प्रतिलिपि ली होंगी और गुरु नानक देवजी के धर्म का प्रचार किया होगा। मालूम होता है कि पीछे से इस जन्मसाखी मे बहुत क्षेपक मिला दिये गये जो अस-गत से भी हैं। जैसे गुरु नानक देव जी के पूर्व जन्मों की कथायें।

यह बात विल्कुल सही जान पड़ती है कि पंजाब मे गुरु नानकदेव ही ऐसे पहले कवि थे जिन्होंने लोकव्यवहृत भाषा मे काव्य रचना की थी और अंगददेव ही पहले लेखक थे, जिन्होंने लोकभाषा मे पद्य ग्रंथ लिखा था। हिन्दुओं के समस्त ग्रथ संस्कृत मे थे। तुलसीकृत रामायण अभी बनी नहीं थी बल्कि यों कहना चाहिए कि कवि तुलसीदास का अभी जन्म ही नहीं हुआ था। इससे हिन्दुओं के पास ऐसा कोई भी धर्म ग्रथ नहीं था। जिसे वे खुद पढ़ कर समझ सकते हों। सस्कृत के धर्मग्रंथों को चन्द पण्डित लोग ही पढ़ सकते थे। सो वे मुफ्त मे और जातियों को पढ़कर सुनाते नहीं थे। चन्द श्रीमान ही उन धर्मग्रथों के उपदेशो को सुन सकते थे, जिस के लिए कि उन्हे भारी दक्षिणा (कीमत) देनी पड़ती थी। गुरु अंगददेव जी का लिखा हुआ ग्रंथ ही ऐसा था जिसको सब कोई पढ़ सकता था और इसके मानने वाले स्वत. ही लोगों को सुनाते थे। जिसे समझने मे कोई कठिनाई नहीं होती थी। इसका नतीजा यह हुआ कि एक समय सारा पंजाब और उससे सटा हुआ सिन्ध का हिन्दू समाज तो पूर्णत गुरु नानकदेव जी का अनुयायी और भक्त हो गया। पंजाब और सिन्ध के सर्वसाधारण मे आज भी नानकदेव जी की निष्ठा सभी देवी देवताओं से ज्यादा होने का सबसे बड़ा कारण गुरु अगददेव जी द्वारा गुरु नानकदेव जी की जीवन लीला के वृत्तांत और वाणियों का संग्रह हो जाना ही है।

इस सग्रह ग्रंथ के बन जने के बाद सिखों की सख्या निरन्तर बढ़ने लगी और कुछ मनुष्यों ने

इस ग्रथ की सहायता से गुरु नानकदेव जी के मिशन को पूरा करने का अपना जीवन उद्देश्य ही बना लिया। वह जहा जाते, जहा किसी समारोह मे शामिल होते गुरु जी के जीवन चरित और वाणियों को को सुनाकर लोगों को आत्मशाति देते।

इस तरह जहां गुरुमुखी लिपि के प्रचार से शिष्यों में शिक्षितों की संख्या बढ़ने लगी थी वहा इस सग्रह के हो जाने से शिक्षित शिष्यों में भी नानकदेव के सिद्धातो के जानकार एव पण्डितों की संख्या बढ़ने लगी। इस तरह से गुरु अगददेव जी के इन दोनों महान कार्यों मे शिक्षा और धर्म प्रचार दोनों मे वृद्धि हुई।

मनुष्य जन्म पाने का सब से बडा लाभ यही समझा जाता है कि अज्ञान, अन्धकार से निकल कर जीव ज्ञान के प्रकाश मे आवे और यदि ज्ञान से धर्म की प्राप्ति भी हो जाय तो फिर कहना ही क्या। अत समझना चाहिए कि गुरु अगददेव जी के इन दोनों कार्यों मे शिष्य लोगों को मानसिक और आत्मिक दोनों ही प्रकार का भोज्य मिला।

तीसरा कार्य जो गुरु अगददेव जी ने किया। उसका आरम्भ यद्यपि नानकदेव ही कर गये थे किन्तु उसे गुरु अगददेव जी ने और भी उन्नत किया. वह कार्य था लगर को जारी रखने का। साथ ही ऐसे लोगों को जो शीत और धूप से अपने शरीर की रक्षा वस्त्रों के अभाव से नहीं कर सकते थे उनको वस्त्र भी देना। गुरु अंगददेव जी का लगर बराबर चलता रहता था। इस लगर मे राजा भी आकर उसी पगति मे बैठता था[1] जिसमे एक गरीब। पगति मे ऊच नीच का भी कोई भेद न होता था। लगर की विशेषता थी कडाह प्रसाद। अब तक सर्व साधारण को पण्डित लोग यह उपदेश देते आ रहे थे कि मोटा झोटा खाकर जीवन निर्वाह करना चाहिए। इसका फल यह हो रहा था कि लोग जर्जर तन और तेजहीन होते जा रहे थे। लगर के इस कडाह प्रसाद के आयोजन ने शिष्यों के घरों में भी जाकर अपना पैर जमाया। इस तरह से खाने पीने मे गुरु जी के इस कार्य ने लोगों के धरातल (स्टैन्डर्ड) को ऊचा किया। उसका फल आज भी हम प्रत्यक्ष देखते हैं। औसतन एक सिख शारीरिक बल और स्वास्थ्य मे चाहे वह देहाती हो या शहराती, तगडा होता है। इस बात से गुरु का शिष्य समाज शारीरिक उन्नति भी करने लगा। शारीरिक, मानसिक और आत्मिक तीनों ही उन्नति गुरु जी के इन तीनों आयोजनों से सिख समाज मे दिखाई देने लगी। जितना भी गम्भीरता से गुरु अंगददेव जी के इन कार्यों को ओर हम देखते हैं उतने ही हमें यह तीनों कार्य महान् तथा शिष्य समाज मे चेतना और शक्ति एव सगठन पैदा करने वाले दिखाई देते हैं।

लगर की प्रथा ने शिष्य समाज मे और भी गुण पैदा किये। उनमे से एक बड़ा गुण था पैसे का सदुपयोग करना सीखना, दान देने की हिन्दुओ और प्राय. सभी जातियों मे स्वाभाविक प्रवृत्ति होती है। अब तक जहा वे अपने पैसे को देवी देवताओं के मेलों मे जाकर तथा शराब और भंग आदि नशों में खर्च करते थे अब वे गुरुद्वारे में देने और अच्छा खाने पर खर्च करने लग गये।

गुरुद्वारे में दिया हुआ उनका दान उसी प्रकार उनके काम आता था जिस प्रकार कि सूर्य पृथ्वी के जल को अपनी किरणों द्वारा खींच कर उसे निर्मल करके फिर पृथ्वी पर ही वर्षा देता है। उस

१ गुरु अमरदास के समय में आने वाले राजा हरीपुर और बादशाह अकबर भी उस ही पंक्ति में बैठे थे जिसमें सर्वसाधारण।

गन से इन्हें कडाह प्रसाद तो मिलता ही था सत्संग का लाभ और भ्रातृ भाव की जैसी अच्छी और आवश्यक भावनाऐं भी मिलती थीं। दान की यह प्रणाली सिख समाज की शारीरिक, आत्मिक, बौद्धिक और सामाजिक शक्ति के बढाने मे दिनों दिन अग्रसर हुई।

इन कार्य्यों के अलावा गुरु अंगद देव जी के अनेकों ही छोटे बडे ऐसे कार्य हैं जिनसे सिख समाज का विस्तार हुआ। उपदेश करने का ढग भी आपका बड़ा ही सरल था। कोई आकर आपसे अपने कल्याण की बात पूछता, सरल सा मार्ग बता देते। एक ज्ञानी ने आपसे आकर पूछा मैंने अनेकों धर्म ग्रन्थ पढ़े हैं मुझे शाति नहीं हुई, आपने कहा आपने आत्मा के सम्बन्ध मे कभी कुछ सोचा है बिना आपे को पहचाने शाति कहां। एक बार अपने अनेकों शिष्यों के प्रश्न के उत्तर मे बतलाया ज्ञान, योग और वैराग इन तीनों से भी परमात्मा की प्राप्ति होती है। आत्मानंद भी मिलता है किन्तु माया के आकर्षण मे ज्ञानी, वैरागी और योगी भी घिर जाते हैं। हा, भक्ति को माया नहीं डिगा सकती भक्ति तो परमात्मा की पतिव्रता नारी है। ज्ञान बाहर से मिलने वाला और वैराग संसार से नफरत होने के बाद हृदय मे आने वाली चीजे हैं। भक्ति पैदा होती है हृदय मे और सिर्फ आत्मा की छटपटाहट से. अत भक्ति ही इन सब मे श्रेष्ठ है।

इसी तरह न जाने उन्होने कितने प्रकार से और किन २ कार्य्यों द्वारा मनुष्य जाति का कल्याण किया। सभी कार्य्यों के सम्बन्ध मे जानना तो मुश्किल है। परन्तु हां हम यह खूब जानते हैं कि उन्होंने मनुष्य जाति का कल्याण करने मे उन सिद्धान्तों के द्वारा जो उनके गुरु नानक देव जी ने स्थिर किये थे कोई कसर नहीं उठा रक्खी।

आपके समय में जो मुख्य २ शिष्य थे उनमे से कई तो काफी योग्य और प्रभावशाली थे।

गुरु अंगददेव की कुछ वाणियां

(सलोकम)

सेही पूरे साहजिनी पूरा पाइआ।
अठी वे परवाह रहनि इकतै रगि।
दरस निरूपि अथाह विरले पाई आई।
करमि पूरै पूरा गुरू पूरा जाका बोलु।
नानक पूरा जे करे घटै नाही तोलु ॥२॥ पउडी
जा तू ताकिआ होरि मैस चुरणाईअै ॥
मुठी धधै चोरि महलुन पाइअै ॥
एने चित कठोरि से बगवाईअै।
जितु घटि सचुन पाइ सुभनि घडाइअै।
किउ करि पूरे वटि तोलि तुलाईअै ॥
सउदाइ कतु हटि पूरै गुरि पाइअै ॥

× × × ×

(श्लोक)

मत्री होइ अठूहिआ नागी लगं जाइ।
आमण हथी आपणं दे कूचा आपे लाइ ॥
हुकम पाआ धुरि खसम का अतीहू चका खाइ ॥

गुर मुख सिउ मन मुख अउ डूवेह किन आइ ।
दुहा गिणिआ आपे खसमु वेखे करि विउ पाइ ॥
नानक एवं जाणीऐ सभ किछु तिसहि रजाइ ॥

× × × ×

आपे साजि करे आपि जाईभि रखे आपि ।
तिसु विचि जतउ पाइकै देखे यापिउ यापि ॥
किसनो कहिऐ नानका सभु किछु आपे आपि ॥ पउडी
वडे कीआ वडिआईआ किछु कहणा कहणु न जाइ ।
सो करता कादर करीम दे जीआ रिजक संवाहि ॥
माई कार कमावणी धुरि छोडी तिनै पाइ ॥
नानक एकी वाहरी होर दूजी नाही जाइ ।
सो करे जिति सैर जाइ ॥[1]

[1] इनमें गुरु नानकदेव का नाम आने से यह खयाल न करना चाहिए कि यह गुरु अगद जी के नहीं है । महला दो की वाणियां दूसरे गुरु अगद जी की ही हैं ।

बसादे तो मैं आपका कृतज्ञ हूगा। गुरु अंगददेव जी ने अमरदास जी को वहाँ रहने और गॉव को आबाद करने की आज्ञा दी। अमरदास जी साहिब बडी खुशी के साथ वहाॅ चले गये और निर्भयता के साथ रहने लगे। डरे हुए लोगो को भी अभयदान दिया। इस तरह थोड़े दिनों में गोइन्दवाल आबाद हो गया। यह घटना संवत् १६०३ विक्रमी की है।[1]

पीछे गुरु अंगददेव जी की आज्ञा होने पर अमरदास जी साहब वासरके से अपने पुत्र-पुत्रियों घर वालों और सबधियों को भी गोइंदवाल ही ले आये।

श्रद्धापूर्वक कठोर सेवा करते हुए लगभग बारह वर्ष हो चुके थे। अमरदास जी महाराज का शरीर भी अब बहुत बुड्ढा हो चुका था। या यों कहिए कि बुढापे मे ही तो उन्होंने शिष्यत्व ग्रहण किया था किन्तु बल और पौरुष उनका क्षीण नहीं हुआ था। नित प्रति

गुरुआई मिलना

ब्यासा मे पानी लाकर गुरु अंगददेव जी को स्नान कराने की बात हम पहले लिख चुके हैं किन्तु यही सेवा उस समय को भी लाई। जाड़े के दिन थे और रात भर वर्षा होती रही। महावट बन्द न हुई किन्तु अमरदास जी वर्षा और शीत की कुछ भी परवाह न करके नित प्रति की तरह तीन कोस दूर ब्यासा नदी गये और वहां से गुरुजी के स्नान के लिये जल का घडा लाए। घोर अन्धकार और कीच होने के कारण ठोकर खाकर गिर पड़े थे। जिस घर के सामने गिरे वह जौलाहे का था। उसने धमकी सुनकर कहा कौन गिरा? जुलाहिन बोली इस भयंकर समय और कौन बाहर निकलने की हिम्मत कर सकता है वही निथामा अमरू होगा। गुरु अंगददेव जी ने पड़ौसी जुलाहिन की यह बात सुनली। देखा तो अमरदास साहब कीच में से उठकर आ रहे हैं किन्तु उन्होंने घड़े को नहीं गिरने दिया। उस समय गुरु अंगददेव जी ने कुछ नहीं कहा। इस तरह रहे मानों उन्हें कुछ भी मालूम नहीं है। किन्तु जब यथा समय नित की भाति दीवान लगा तो गुरु अंगददेव ने उस जौलाहिन को बुलाकर सबके सामने पूछा। आज तडके ही तुमने अमरदास जी के लिये जो शब्द कहे थे उन्हे दुहरा दो। पहले तो जौलाहिन डरी किन्तु धीरज दिलाने पर उसने कहा गुरुदेव उस भयॅकर समय में जबकि सनसनाती ठंडी महावट पड रही थी और अंधियारी झुक रही थी धमाके की आवाज को सुनकर मैंने यही कहा था कि गिरने वाला निथामा अमरू ही हो सकता है वही गुरुजी के नहाने को इस भयंकर समय मे भी ब्यासा से जल लाया होगा।" जुलाहिन की इस बात के पूरी होते ही अंगददेव जी ने झपटकर अमरदास जी को हृदय से लगा लिया और कहा यह निथामों का थाम है।

उसी दिन गुरु अगददेव जी ने विधि पूर्वक समारोह के साथ अमरदास जी को गुरुआई की रस्म अदा कर दी। सभी लोगों ने अमरदास जी के सामने मत्था टेक कर उन्हे अपना गुरु स्वीकार किया यह पुण्य दिन संवत् १६०६ विक्रमी चैत्र की शुक्ल प्रतिपदा का था।

इसके बाद अमरदास जी गुरु अंगददेव जी की आज्ञा से कतई रूप से गोइंदवाल में जारहे और वहीं १ ओंकार और सतगुरु का ध्यान करते हुए तप करने लगे।

गुरुगद्दी मिलने के बाद के कार्य

अब तक हमने उनके उस समय तक के जीवन पर प्रकाश डाला है, जिसे ग्राहस्थिक और शिष्य काल का जीवन कह सकते हैं। अब उनके गुरु हो जाने के बाद के कार्य्यों, उपदेशों और विशेष प्रसंगों का वर्णन करना चाहते हैं।

१. लिखा है कि एक देव को गुरुजी ने उसके नटखटपने के कारण मना कर दिया था जो भटिंडे जा पहुँचा। वहा से उसे गुरु गोविन्दसिंह जो महाराज ने भगाया।

एक दिन शिष्य लोगों ने कहा गुरुदेव आपके दर्शनों को नितप्रति सैंकड़ों आदमी आते हैं किन्तु कोई अच्छा मकान न होने से बड़ी तकलीफ है। यह सुनकर गुरुजी ने अपने भतीजे सावनमल को एक रूमाल देकर हरीपुरा के जगलों से लकड़ी लाने के लिये भेजा। सावणमल अपने साथ कुछ शिष्यों को लेकर हरिपुरा पहुँचा तो उसी दिन वहाँ के राजा के आदमी सावणमल को गिरफ्तार करके ले गये। अपराध यह बताया गया कि आज एकादशी के दिन तुमने खुद अन्न पकाया और और दूसरे लोगों को खिलाया। हमारे यहाँ एकादशी के दिन अन्न नहीं पकाते हैं। सावणमल ने कहा है सब दिन ईश्वर ने एक से बनाये हैं। अन्न खाने को पैदा किया है। उसके संबन्ध में ऐसे नियम व्यर्थ हैं। जब राजा को मालूम हुआ कि यह गुरुजी के आदमी हैं तो उसने अच्छी से अच्छी लकड़ी काट लेने की आज्ञा देदी, सावणमल के उपदेश से राजा इतना प्रभावित हुआ कि वह भी सावणमल के लौटने के समय उसके साथ ही गुरु अमरदास जी साहिब के दर्शनों को गोइंदवाल पहुँचा। लंगर में एक ही पंक्ति में बैठकर सब लोगों के साथ प्रसाद पाया और गुरु जी के दर्शन किये तथा उपदेश सुनकर अपने को कृतार्थ किया।

द्वारिका से लौटते हुये संत माईदास ने सुना कि गुरु अमरदास जी ही इस समय के सब सतों में शिरोमणि हैं। निर्भिमान हो जाने पर उनके यहाँ कोई दर्शन को जाता है तो पहले गुरु लंगर में सब जाति के लोगों के साथ एक पंक्ति में बैठकर उसे भोजन करना पड़ता है, उसके बाद उसे दर्शन का अधिकारी समझा जाता है इस महिमा को सुनकर सन्त माईदास गोइंदवाल पहुँचा और वहाँ के नियमानुसार लंगर में भोजन खा के गुरु जी की सेवा में हाजिर हुआ। गुरुजी के दर्शनों और उपदेशों से प्रभावित होकर उनका शिष्य बन गया।

गुरु जी ने इसे भी एक मंजी बखशी और सिख धर्म-प्रचार का अधिकार प्रदान किया। इस प्रकार से गुरु अमरदास जी साहिब ने बाईस मंजिया कायम कीं, जिनके द्वारा नानक-धर्म का प्रचार उत्तरोत्तर बढ़ने लगा।

गुरु अमरदास जी साहिब के बढ़ते हुए प्रभाव को देखकर दातू जोकि गुरु अगददेव जी का पुत्र था। मन ही मन कुढ़ने लगा। कहा जाता है एक दिन उसने क्रोधवश होकर ऐसी हरकत की कि गुरु अमरदास जी महाराज के जाकर लात जमा दी। गुरु जी ने सहज भाव मे दातू जी के पैर को पकड़ कर कहा कहीं आपके लग तो नहीं गई। हमें यहाँ एक कथा याद आती है विष्णु भगवान के पास भृगुऋषि पहुँचे और उन्होंने सोते हुए विष्णु जी की छाती पर लात जमाई। विष्णु भगवान् ने हँसते हुए कहा मैं समझता हूँ मेरे कठोर शरीर पर पदाघात करने से अवश्य ही आपके पैर में चोट पहुँची होगी। लाओ दबा दूँ। इन दोनों कथाओं मे पूरा सामंजस्य है। इस घटना से हमें तो पता चलता है कि गुरु अगद्देव जी की तरह गुरु अमरदास जी को भी काफी विरोध और झगड़ों का सामना करना पड़ा किन्तु उनके तप और सहनशीलता ने सबको ठंडा कर दिया। फिर भी उन्हें एक बार गोइंदवाल छोड़ जाना पड़ा था।

आप एक दिन सगत को बिना सूचना दिये चुपचाप निकलकर बासरके पहुंच गये और एक कोठी में बैठकर परमात्मा का जाप करने लगे। दरबार के समय भी जब गुरु जी के दर्शन नहीं हुए तो सगत बड़ी घबड़ाई। आखिर बाबा बुड्ढे को लेकर सब लोग बासरके पहुचे। वहाँ कोठी के बाहर उन्होंने लिखा देखा 'जो कोई इस दर्वाजे को खोलेगा उसके लोक परलोक दोनों बिगड जावेंगे'। अब क्या करें बड़ी देर तक सभी लोग यही बात सोचते रहे। सोचते सोचते बाबा ने कहा गुरु जी ने दरवाजा खोलने की मनाही की है न यों तो नहीं कहा है कि कहीं होकर भीतर मत आओ। आओ संधि (छेद)

करके भीतर चलें। ऐसा ही किया गया जब भीतर बाबा बुड्ढा पहुँचे तो गुरु अमरदास जी अपने शिष्यों के इस प्रकार के प्रेम को देखकर बड़े प्रसन्न हुए और उनके कहने से फिर गोइंदवाल आ गये।

गुरु जी सहनशील तो बहुत ही ज्यादा थे। उनके साथ कोई झगड़ा करो। कोई नुकसान पहुँचाओ। वे अपनी ओर से उसका कभी भी बुरा नहीं चीतते थे। उनकी सहनशीलता की एक कहानी दातू के व्यवहार की लिख चुके है। एक दूसरी कथा इस प्रकार है। मरवाहे के खत्री और शेख गुरु जी के प्रताप से काफी जलते थे और उस जलन को इस तरह शात करते थे कि जब सिख लोग पानी भरने जाते तो उनके घड़ों को फोड़ देते। शिष्य लोगों ने गुरु जी से शिकायत की, आप बोले भाई उनके साथ झगड़ा तो करना नहीं है? तुम मश्कों मे पानी भर लाया करो। जब शिष्य मश्कों मे पानी लाने जाने लगे तो उन्हे वे तीर मार कर फोड़ने लगे। अत मे गुरु जी ने पीतल के बर्तन बनवा लेने की आज्ञा दी। तब उन्होंने गुलेलों से पीतल के घड़ों को भी तोड़ना शुरू कर दिया। इस पर भी गुरु जी ने उन लोगों के साथ झगड़ा करना नहीं चाहा। शिष्यों द्वारा इस बार शिकायत करने पर कहा, उन लोगों को शीघ्र ही ईश्वर दण्ड देगा। हुआ भी ऐसा ही उधर से गुजरने वाले सैनिक दल और एक शाही खजाने के रक्षकों ने इन लोगों को खूब ही मारा पीटा और इनके घरों को भी लूट ले गये।

संवत् १६१७ वि० मे गोइन्दे के पुत्रों ने शाही अदालत मे गुरु जी पर इस आशय का दावा कर दिया। चूंकि जमीन हमारे पिता के नाम थी, उन्होंने ही गोइन्दवाल को बसाया गुरु औरउस के शिष्यों ने उस पर जबरदस्ती कब्जा कर रक्खा है। अदालत मे जाकर बाबा बुड्ढे, भाई बुल्ला और केदारी आदि ने सब बातें रख दीं कि किस प्रकार यह गॉव उजड़ा पड़ा था और किस प्रकार गोइन्दे ने गुरुजी से उसे बसाने के लिये सहायता प्राप्त की। हाकिम ने आकर जांच की उसने गुरु जी के जीवन से प्रभावित होकर उनके मुकदमे को खारिज कर दिया। और कहा कि जो नित प्रति भेट में आई हुई वस्तुओं को अपने काम में नहीं लेते, उनके लिये यह ख्याल करना गलती होगा कि वे किसी की ज़मीन पर बलात कब्ज़ा कर लें।

गुरु जी ने इन्हीं दिनों एक यात्रा भी की थी। गोइन्दवाल से चलकर शहर नूरमहल होते हुए कुरुक्षेत्र में पहुँचे और वहॉ साधु सन्तो और पण्डितों के साथ ज्ञान चर्चा की। कई दिन वहॉ रह कर जब जमुना किनारे इमली नामक गॉव मे पहुँचे तो घाट पर आपको रोक लिया गया और

यात्रा

(१।) प्रति आदमी के हिसाब से ठेकेदार ने टैक्स मागा किन्तु आपने कहा हम सतों के पास देने को क्या धरा है। ठेकेदार ने सारी सगति को रोक लिया और बादशाह के यहॉ शिकायत भेजी। दीवान टोडरमल गुरुजी का भक्त था उसने बादशाह से कह कर लिखवा दिया कि गुरु अमरदास जी साहब और उनके साथियों से कोई टैक्स नहीं लिया जाय।

इस यात्रा से लौटने के कई वर्ष बाद आपने एक बावड़ी तैयार कराई जो अति पवित्र करार दी गई और सिखों का एक प्रकार का तीर्थ सा बन गई।

इस बावड़ी के बन जाने पर मरवाहे खत्रियों का पुरोहित जो कि शिवनाथ का शिष्य था कुछ लोगों को लेकर लाहौर के सूबेदार के पास पहुँचा और शिकायत की कि सिख लोग न तो गायत्री मन्त्र मे विश्वास रखते हैं और न तीर्थों मे जाते हैं, उन्होंने तो बावड़ी को एक नया तीर्थ बना लिया है। सूबेदार ने गुरु जी के पास खबर भेज कर सफाई देने के लिये कुछ सिखो को बुलाया। वहॉ बाबा बुड्ढे और एक दो अन्य शिष्यों ने बताया कि हम एक परमात्मा को मानते हैं? एक ओंकार उसका नाम है

परमात्मा के मिलने के लिये जो हमारे गुरु देवों ने हमें शिक्षा दी हैं उन पर चलते हैं। लंगर में बिना किसी पक्षपात के सब को प्रसाद मिलता है। हम कभी भी किसी के नुकसान करने की बात नहीं सोचते। यह अवश्य है कि ब्राह्मण और पुरोहितों ने जो पाखंड फैला रक्खा है उसमें हम विश्वास नहीं करते। सूबेदार गुरु जी से पहिले से ही परिचित था अत उसने मारवाहे, खत्री और ब्राह्मणों की पुकार अनुचित करार दे दी।

एक बार बादशाह अकबर गोइंदवाल में गुरु जी से मिलने आया। जब उसने और उसके साथियों ने कडाह प्रसाद पाया तो कहने लगा, शायद गुरु जी बुड्ढे आदमी हैं। इसीलिये हलुआ खाते हैं। बाबा बुड्ढा ने कहा यह सिख लोगों का प्रसाद है जो सभी आगुन्तकों को दिया जाता है। सवेरे जब बादशाह सेवा पर हाजिर हुआ तो कई गांव जागीर में देने लगा। गुरु जी ने कहा बादशाह हम फकीरों को बन्धन में नहीं पड़ना है। बादशाह गुरु जी के दर्शनों से निहायत ही खुश हुआ।

गुरु अमरदास जी साहिब का जस दूर दूर तक फैल रहा था। राजा रईसों के अलावा साधू सन्त और पीर फकीर भी बड़ी सख्या में उनके दर्शनों को आते थे। भाई फिराया और विगारा दोनों गोरखनाथ के पंथ के थे, वे एक दिन गुरु जी के दर्शनों के लिये आये और बहुत कुछ ज्ञान चर्चा गुरु जी से की और उसी दिन से जंतर मंतरों के सारे पाखंड छोड दिये और सच्चे परमेश्वर का ध्यान करने लगे।

एक कथा हमें ऐसी मिलती है कि तलवडी में एक लंगडा सिख था उसे एक दिन एक आदमी ने कहा तू गुरु अमरदास साहिब की सेवा में क्यों नहीं हाजिर होता। जब उन्होंने मुरदे जिला दिये हैं, तो तेरा पांव उनसे ठीक नहीं किया जायगा। वह सिख गोइन्दवाल में गुरु जी की सेवा में हाजिर हुआ और लगडा से ठीक चलता फिरता पाँव वाला हो गया। भगवान कृष्ण ने कुबरी को बिल्कुल सुन्दर कटिवाली बना दिया था। यह कथा आम हिन्दुओं में प्रचलित है। महापुरुषों के जीवन के सग सभी पंथों और समाजों में ऐसी चमत्कार पूर्ण गाथाओं की बाहुल्यता प्राय मिलती हैं। इसी प्रकार प्रेमा नामक खत्री का गुरु जी ने अपनी सत्कृपा से कोढ दूर करके उनका उद्धार किया। वास्तव में महान् पुरुष जग के कल्याण के लिये ही आते हैं और उनकी निगाह में न कोई छोटा होता है और न बड़ा, इसलिये समान रूप से सब का कल्याण करने में अपने को लगा देते हैं। उनकी यही उदारता तात्कालिक समाज को अखरती है इसलिये वह रूढ़ियों से बधा हुआ उन महापुरुषों की सराहना करने के बजाय निन्दा और सेवा करने के बजाय डाह करता है। गुरु अमरदास जी को भी आरभ से लेकर रूढिवादी और अज्ञान लोगों के कोप का भाजन न बनाना पड़ा हो ऐसी बात नहीं है वास्तव में महापुरुषों को एक समय क्या अनेक समय विरोधों का सामना करना ही पड़ता है।

गुरु अमरदास जी के आशीर्वादों से जहाँ दुखी बीमार अच्छे होने की कथायें हमें पढने को मिलती हैं, वहाँ लोगों ने उनकी सेवायें करके धनवान होने और अपने खोये हुए वैभव को प्राप्त करने के भी आशीर्वाद प्राप्त किये, गगूशाह नामक एक व्यक्ति ने बहुत दिनों इसी आशय से सेवा की। गुरुजी ने उसे दिल्ली मे व्यापार करके धनी होने का आशीर्वाद दिया। गंगू का व्यापार रात दिन अबाध गति

से बढ़ा और एक दिन वह इतना बडा धनी हो गया कि एक एक लाख की हुंडियों का भुगतान करने लग गया।

मनुष्य कितना कृतघ्न हो सकता है यह बात गंगू के उस आचरण से ज्ञात हो जाती है जो उसने गुरु जी की चिट्ठी पर एक गरीब ब्राह्मण की लड़की के व्याह के लिये ५०० रु० देने से इनकार करके प्रकट किय ।

गुरु जी के आशीर्वादों और महज उदारताओं की अनेक कथाये हैं जो सिख साहित्य मे विस्तार के साथ पढ़ने को मिल सकती हैं। हमने तो केवल उनका आभास मात्र इन पृष्ठों मे कराया है। हिन्दु कथा पुस्तकों मे भगवान् शिव की उदारता और दयालुता की बहुत चर्चा है। लोग उनकी जरा सी सेवा करके बडे २ वरदान प्राप्त कर लेते थे। वही बात हमे गुरु अमरदास जी के स्वभाव मे दिखाई देती है। जिसने जो मांगा और चाहा उसे वही दिया।

गुरु अमरदास जी के स्वभाव और कार्यों का सिंहावलोकन

गुरु अमरदास जी साहब का स्वभाव अत्यन्त ही कोमल और दयालु था। उनके स्वभाव में बदले की भावना तनिक भी न थी वे आततायी को भी ईश्वर के न्याय पर छोड़ने वाली प्रकृति रखते थे। स्वत: दंड देने की उन्होंने कभी भी नहीं सोची। सहनशीलता जिस पराकाष्ठा की उनमें थी उसका जिक्र हम पिछले पृष्ठों में कर आये हैं कि दातू जी के पदाघात के जवाब मे उन्होंने उसके पैर पकड़ कर कहा था आपके कोमल चरण में चोट तो नहीं लग गई। उपस्थित सिखों को यह बात बहुत बुरी लगी और लगनी भी थी क्योंकि मनुष्य स्वाभाव ही ऐसा है किन्तु गुरु अमरदास जी तो बहुत ऊँचे थे। वह तो साधारण मनुष्य स्वभाव को पार करके बहुत आगे बढ़ गये थे। जहाँ क्रोध का नाम भी न था केवल शांति विराजती थी।

स्वभाव आचरण

उत्पाती शेख और खत्रियों की विरोधता को तो अंत तक उन्होंने बरदाश्त किया हालांकि जरा भी वे शिष्यों को आज्ञा दे दें तो वे उन उत्पातियों का मिजाज ठीक कर देते किन्तु आपने सदैव शिष्यों से यही कहा हमे किसी से लड़ना नहीं है। उनके कामों का फल अवश्य ही उन्हे मिलेगा।

आपने एक नियम बना रखा था कि जो मुझसे मिलने को आये पहिले वह पंगति में बैठकर प्रसाद पावे। इस नियम का पालन खूब कडाई के साथ होता था यहाँ तक कि बादशाह अकबर को भी पहले पंगति मे बैठकर इस नियम का पालन करना पड़ा था। तब गुरु के दर्शन हुए। वास्तव मे महापुरुषों और संस्थाओं के जीवन मे नियमों के पालने की कड़ाई भी उनके महत्व की द्योतक होती है। स्वयम गुरुजी भी उन नियमों का जो उन्होंने अपने नित के लिए बना रक्खे थे पालन बड़ी तत्परता से करते थे। घोर बुढापे में भी आप तारों की छाया में उठते, स्नान करते और जपुजी साहब का पाठ करते, लंगर को देखते, दरबार लगाते, सारांश यह कि एक क्षण भी व्यर्थ न गंवाते। आपके इस प्रकार के जीवन को देखकर एक बार बाहर से आये हुए साधुओं ने आपसे कहा भी था कि गुरु जी इस वृद्धावस्था मे तो आप इतना परिश्रम नहीं किया करे, किन्तु उन्होंने जवाब दिया। किसी को खाक छानते हीरा मिला था उस हीरे से साहूकार बन जाने पर भी उसने खाक छानना केवल इसलिए नहीं छोड़ा कि उसकी यह ऊँची हालत खाक छानने ही से तो हुई है, फिर जब यह पद मुझे सेवा और कठोर तप करने से प्राप्त हुआ है, तब उस काम को मैं कैसे छोड़ दूँ।

गरीबी के दुखों को देखकर तो गुरु अमरदास जी साहब का दिल उमड़ आता था। वे उनका दुख दूर करने में अपनी ओर से कोई कसर नहीं छोड़ते थे। एक बार गोइन्दवाल में ताप तिजारी का बड़ा जोर हुआ लोग उससे बड़ा कष्ट पाने लगे। गुरु जी से लोगों का यह दुख न देखा गया और तिजारी ताप का स्थिर इलाज अपने हाथ मे ले लिया।[1]

यह ससार दुखियों और पीड़ितों से भरा पड़ा है, इसमें कोई सहानुभूति करने वाला चाहिये फिर उसके लिये फुरसत नहीं मिल सकती, लगडे, लूले, बहरे और गूगे भी उनकी सेवा में आने लगे और अपने दुखों को दूर कराने लगे। चारों तरफ शोहरत यह हो रही थी कि गुरु जी मुरदों को जिला देते हैं फिर उनके लिये साधारण बीमारियों और कष्टों को दूर कर देना क्या बड़ी बात है। इसी विश्वास से लोग भगे चले आते थे और गुरु जी भी बड़े प्रेम से उनके कष्टों का निवारण करते थे।

गुरु जी के लंगर में भारी खर्च था। धन संग्रह करने की उनकी प्रवृति न थी, फिर भी उनके पास ऐसे लोग भी पहुँच जाते जो केवल पैसे के ही स्वार्थी होते थे। गुरु जी बिना भेद भाव के उन्हे भी या तो युक्ति बताते या परम पिता परमात्मा की महान् कृपा से प्राप्त हुए अपने चमत्कार से उनको धन देकर सहायता करते। एक ब्राह्मण की कन्या के विवाह के लिये जब कहीं से कुछ नहीं मिला तो आपने ही ५००) दिये।

हमने गुरु अंगदेव जी महाराज के प्रसग मे यह बता दिया है कि उन्होंने गुरुमुखी वर्णमाला का प्रचार करके तथा गुरु नानक देव जी की वाणियों और उनके जीवन चरित को लेखबद्ध कराके शिष्य धर्म की एक सुन्दर संगठन प्रणाली खड़ी कर दी थी। गुरु अमरदास जी साहब ने भी प्रचलित गुरुओं के काम आगे बढ़ाने के लिये अपने समय में तीन ऐसे महान् कार्य किये, जिससे संगठन की जंजीर और भी मजबूत हुई। साथ ही उन्होंने पिछले कार्यों को भी आगे बढ़ाया, एक बार उपदेश देते हुए उन्होंने कहा था, जो समझता है कि गुरुओं का बताया हुआ रास्ता मनुष्य जीवन के लिये कल्याणकारी है, उसका कर्त्तव्य है कि गुरुमुखी पढ़े और जो पढ़े हुए हैं वह दूसरों को पढ़ावें। गुरु वाणियों को स्वयम पाठ करें और दूसरों को करावें। उनके तीन कार्य्यों में पहिला कार्य्य था—मजियों की स्थापना। मंजी के अर्थ साधारणत छोटी खाट के होते हैं।[2] जिन्हे नानक धर्म मे दृढ़ तथा बुद्धि चतुर देखते थे, गुरुजी उन्हीं को उपदेश का अधिकार दे देते थे। इस तरह उन्होंने बाईस श्रेष्ठ शिष्यों को उपदेश का अधिकार दिया। मजीधर अपने स्थान और क्षेत्र में सिखी का प्रचार करता था।

उनके कार्य

सिख साहित्य में गुरुओं को पातशाह या सच्चे पातशाह के नाम से याद किया है भक्तों की अन्तरात्मा ने कहा सच्चे बादशाह तो यही हैं। यह प्रेम की, तप की और मानव जीवन के कल्याण की भावनाओं से ओत प्रोत हैं और वह बादशाही तो खून, खच्चर, दंगा, फरेब और आतंक की बादशाही है तब इसमे राई रत्ती भर भी सन्देह नहीं कि गुरु सच्चे बादशाह हैं।

किन्तु अब तक गुरुओं के लिये प्रयोग होने वाली यह बादशाही केवल भावनाओं और शब्दों पर

१ लिखा है कि गुरुजी ने तिजारी ताप को पिजडे में बन्द कर दिया था।

२ चूँकि प्रचार के समय इन लोगों को बैठने के लिये मंजिया दी जाती थीं। अत उन प्रचारकों का ही नाम मझी पड गया।

ही निर्भर थी लेकिन गुरु अमरदास जी साहिब ने मंजियॉ कायम करके इस बादशाहत को क्रियात्मक रूप दे दिया। इन मंजियो की स्थापना से गुरुमुखी शिक्षा और शिष्य धर्म का खूब ही प्रचार हुआ। रात दिन शिष्यों की तादाद बढने लगी।

एक बार मे गुरुजी ने कुरुक्षेत्र की ओर तीर्थ यात्रा की थी। वहॉ उन्होंने जो कुछ देखा उससे संतोष नहीं हुआ। धर्म के नाम पर यात्रियों को पंडे किस प्रकार लूटते हैं और केवल स्नान से ही अपने को पवित्र हुआ मानने की लालसा मे लोग यहॉ आकर कितना कष्ट उठाते है। यह सब उनके ध्यान मे आया। इस यात्रा मे उन्होंने यह भी देखा था कि घाटों पर किस प्रकार भारी टैक्स गरीब लोगों को देना पड़ता है। लौटकर एक अर्से तक उन्होंने इस बात को दिमाग मे रक्खा।

सम्वत् १६१५ वि० मे उन्होंने एक सुविशाल बावड़ी जो अति पवित्र नीर से भरी रहती थी तैयार कराई। थोडे दिन मे ही यह बावडी गया जैसा तीर्थ हो गया। इसमे ८४ सीढ़ियों पर चौरासी बार जपुजी का पाठ करने मे चौरासी लाख योनियों से छूटने का आभास शिष्य लोगों को होने लगा। इस तरह से लाहौर और अमृतसर आदि प्रदेशों से सुदूर कुरुक्षेत्र अथवा हरिद्वार की ओर से मुड़कर इस बावडी की ओर ही लोगों का प्रवाह केन्द्रीभूत होने लगा। इसका अन्तरीय प्रवाह जो हुआ वह यही कि शिष्यों की भावनाये अधिकाधिक पौराणिक धर्म की ओर से मुड़कर नानक धर्म की ओर सीमाबद्ध होने लगीं। और अपने धर्म मे दृढ होने का शिष्य लोगों के लिये यह एक और साधन हो गया। पुराणों में हम एक निषेधात्मक उपदेश पढते हैं और वह यह कि यदि मस्त हाथी दौडता हुआ चला आ रहा हो तो बजाय इसके कि पास के जैन मंदिर में घुसने से प्राण बचते हों—हाथी के पैर के नीचे दब कर मर जाना लाख दर्जे अच्छा है। इसका नतीजा यह हो रहा है कि आज भी पुराने खयाल के हजारों हिन्दू जैन मन्दिरों में नहीं जाते हैं। हम समझते हैं कि पुराणों मे यह कडुवा उपदेश इसीलिये दिया गया होगा कि हिन्दू जैनियों के जाल से बचे रहे। हम कहते हैं कि पौराणिक जाल से शिष्यों को एक हद तक रोकने मे और शिष्यत्व को अडोल बनाने मे इस बावड़ी ने बड़ा काम किया। इस बावडी के प्रभाव को उस समय के पौराणिक लोग न समझे हों ऐसी बात नहीं है। मरवाहे खत्रियों के पुरोहित ने ब्राह्मणों का एक दल ले जाकर सूबेदार के यहॉ शिकायत भी की थी।

इस बावडी के बनने के समय के साथ जो इतिहास लगा हुआ है उसका वर्णन हम पहले ही कर चुके है। सभी श्रद्धालु सिखों ने इस बावड़ी को बड़े चाव और उत्साह से तैयार किया था गुरु रामदास जी ने स्वयम इसमे काम किया था। इन सब बातों ने सिखों के हृदय मे इस बावडी के प्रति स्वभावत प्रेम और श्रद्धा पैदा कर दी थी जो कि उनके वर्तमान मे धारण किये धार्मिक खयालात को और भी पुष्ट करने मे सहायक हुई। इस तरह मंजियों की तरह ही गुरु अमरदास जी का यह कार्य भी शिष्यों की वृद्धि करने और उन्हे शिष्य धर्म मे दृढ़ बनाने के लिये अत्यधिक उपयोगी साबित हुआ।

सिख संगठन के लिये तीसरा काम जो गुरु अमरदास जी साहिब ने किया, वह था मेला भरने का। सिख इतिहासों मे लिखा है कि बाबा बुड्ढा, बाला आदि ने एक चित होकर गुरु जी से प्रार्थना की कि सच्चे पातशाह कोई ऐसा ढग निकालिये जिस से एक दिन सब शिष्य आपस मे मिलजुल लिया करें और सतसंग हो जाया करे। इससे हमारे दिमाग मे दो बाते पैदा होती हैं, एक तो यह कि इस समय तक स्थिति इतनी हो चुकी थी कि शिष्य लोग गैर शिष्यों की अपेक्षा शिष्यो को परस्पर अधिक चाहने लग गये थे और दूसरी यह कि प्रत्येक समझदार शिष्य यह चाहने लग गया था कि हमारा समाज बढ़े और

उसमें भ्रातृ भाव की वृद्धि हो, इसीलिये बुड्ढा आदि ने गुरु जी के सामने शिष्यों के परस्पर मिलने जुलने के लिये साधन निकालने को कहा। गुरु जी स्वत ही इस ओर विचार कर रहे थे। अत उन्होंने एक मेले की नींव डाली। पहले पहल यह मेला सवत् १६२८ वि० में जुडा। इसे जोडने के लिये सभी मजियों और सगतों के पास चिट्ठियाँ जारी कर दी गई थीं। बडी भारी सख्या मे शिष्य लोग इकट्ठे हुए जो लोग शिष्य नहीं थे, वे भी बडी सख्या मे आये। बावली मे स्नान के बाद लोगों ने जपु जी का पाठ किया। संगतों ने आपस में ज्ञानचर्चा की, कीर्तन हुआ और दरबार लगा। इस तरह इस मेले का आरम्भ हो गया।

यह मेला वास्तव मे एक धार्मिक समारोह और वार्षिक अधिवेशन था। जिससे शिष्यों को प्रति पर्व एक नई स्फूर्ति मिलती थी। किसी समय हिन्दू तीर्थों का भी यही उद्देश्य था। जैन और बौद्ध मतों को परास्त करके जो हिन्दू धर्म बनाया गया उसे जीवित और सचेतन बनाये रखने के लिये ही तीर्थों की स्थापना की गई थी और इसी उद्देश्य से पर्व नियत किए गये थे किन्तु आगे चलकर यह तीर्थ और पर्व चन्द लोगों की जीविका का साधन बन गये और मेलों मे जाने वाले भी सही उद्देश्य को भूल गये थे। वे भी जन्म भर के पापों को केवल एक दिन मे उतारने की भावना से इन मेलों मे जाते थे। उनके सामने सगठन और समाज स्वच्छता की रक्षा का कोई खयाल और सवाल न था।

वैसाखी के मेले से शिष्यों के अन्दर सौहार्द, जान पहचान और मेल बढाने मे काफी सहायता मिली। और इस तरह से दूर २ फैले हुए सिख एक सूत्र में आबद्ध होने लने।

मिलने जुलने का स्वाभाविक परिणाम यह होता है कि एक मनुष्य दूसरे मनुष्य से कुछ सीखता है और अपनी कमीबेशी का अनुभव करता है। साथ ही मेले जैसे मिलन मे मे मनुष्य भविष्य के लिए कुछ इरादे बनाकर लाता है किन्तु उसके इरादे उस मेले की स्थिति और प्रभाव के अनुसार बनते हैं। वैसाखी के इस मेले से प्रत्येक सिख यह भावनाएँ लेकर लौटता था कि मुझे अगले साल तक इतनी वाणियाँ याद कर लेनी हैं। इतना पढ लेना है और शिष्य-शिष्य उसी प्रकार भाई हैं जिस प्रकार एक पिता की सतानें। प्रत्येक शिष्य मेले से लौटकर अपने गाँव मे, साथियों मे गुरु की महानता और मेले मे होने वाली मत वार्ताओं की चर्चा करता। इससे सहज ही सिख धर्म का प्रचार वृद्धि को प्राप्त होने लगा। इस तरह गुरु अमरदास जी साहिब के तीनों काम शिष्यों की सख्या बढाने और उनमें दृढ़ता पैदा करने मे खूब ही उपयोगी सिद्ध हो रहे थे।

गुरु अमरदास जी साहिब जैसे स्वभाव के सरल और मीठे थे वैसे ही उनके उपदेश भी सरल और मीठे होते थे। उदाहरण के तौर पर एक घटना पेश करते हैं —एक दिन कई शिष्यों ने पूछा सच्चे पातशाह। सिक्खी के लक्षण बताने की कृपा कीजिये। गुरु जी ने कहा, "प्रात उठकर स्नान करना, परम पिता परमात्मा का नाम लेना, यथा शक्ति सुपात्र को दान देना। मीठा बोलना, दभ छोडना, परधन और परदारा से बचना, अपने सिद्धान्तों और कर्त्तव्यों पर दृढ रहना, नित प्रति सत्सग करना, गुरुवाणी में श्रद्धा रखना, किसी का दिल न दुखाना, किसी की निन्दा न करना, झूठ और फरेब से बचना, विश्वासघात न करना, आगत जनों का सत्कार करना, धर्म कीर्तन करना, सगत की टहल करना, किसी के साथ रागद्वेष न करना, गुरु महिमा को समझना, स्वयम विद्वान हो तो दूसरों को पढाना, गुरुमुखी सीखना, किसी का बुरा न चितना, भूखे को भोजन कराना, नगे को वस्त्र देना, परोपकार मे मन लगाना, किसी के दोषों को न देखना, भूत

उनके उपदेश

प्रेत, देवी देवता की पूजा से दूर रहना और गुरु के बताये मार्ग पर चलना यह सिखी के लक्षण हैं।"

हम समझते है अत्याचार न सहना, यह एक बात और इस उपदेश में जोड़ दी जाती तो फिर क्या शेष रह जाता। जिसकी मनुष्य जीवन को सफल बनाने और इहि संसार में सन्मान पूर्वक जीने तथा परलोक प्राप्त करने के लिये अत्यंत जरूरत होती है। हमारी समझमें तो कुछ भी शेष नहीं रह जाता। इस एक बात को दसवे पात शाह गुरू गोविन्दजी ने सिख धर्म मे जोड दिया था। इस तरह से यह पूर्ण मानव धर्म बन गया। इससे अन्दाज लगाया जा सकता है कि गुरू अमरदास जी के उपदेश मनुष्य समाज की भलाई के लिए कितने ऊँचे होते थे और कितनी सरल और मीठी भाषा में। हम तो समझते हैं। महात्मा बुद्ध के बाद इतने लंबे अर्से मे इस मिठासके साथ पहले पहल सिख गुरुओं ने ही उपदेश देना शुरू किया था। इस प्रकार के सरल और मधुर उपदेशों से सहज ही हजारों मनुष्य सिख धर्म मे अनुप्राणित हुए थे। और इसमे कुछ भी सन्देह नहीं कि इन तीसरे पातशाह के उपायों द्वारा सिख सम्प्रदाय की नींव भी बहुत कुछ पक्की होगई थी।

कहा जाता है गुरु अमरदास जी साहिब ६२ वर्ष की अवस्था मे गुरु अंगद देव जी के शिष्य हुए थे और १२ वर्ष के कठोर तप से उन्होंने गुरु गादी प्राप्त की थी इसके बाद २२ वर्ष तक उन्होंने पातशाही की और संवत १६३१ विक्रमी में मंगल के दिन भाद्रपद शुक्ल पूर्णमासी के दिन दो घड़ी रात्रि शेष रहे परमधाम को सिधार गये।

गुरुधाम की यात्रा

इस दिन गोइंदवाल मे हजारों ही शिष्य मौजूद थे। दिन भर शब्द कीर्तन और जपुजी का पाठ तथा सतसंग हुआ। लोगों ने उनके बार २ दर्शन किए। इस समय सभी सेवक, मंझियों के आचार्य और सगे सम्बन्धी उपस्थित थे। गुरु जी ने दरबार मे सब को संबोधित करते हुए कहा, कि आप लोग यह सुनकर प्रसन्न होंगे कि मैं गुरुआई रामदास जी को सौंपता हूँ। जो सब तरह से इसके योग्य हैं। यह कह कर उन्होंने रामदास जी की परिक्रमा की और गुरुआई की रस्म पूरी करके माथा टेका। सब लोगों ने मत्था टेका और गुरु रामदास जी को अपना गुरु स्वीकार किया[1] किन्तु गुरु अमरदास जी के पुत्र मोहन जी और उनके दूसरे भाई रामे ने मत्था नहीं टेका और इस कार्य का विरोध भी किया। गुरु जी के दूसरे लड़के मोहरी ने बड़ी श्रद्धा के साथ रामदास जी को गुरु मान लिया और कहा जिस तरह मेरी अब तक के तीन गुरुओं मे श्रद्धा रही है उसी तरह इनमें भी रहेगी। कहा जाता है पीछे गुरु अमरदास जी के समझाने बुझाने से मोहन जी और रामे जी भी मान गये।

यहां यह बता देना भी जरूरी है कि गुरु रामदास जी गुरु अमरदास जी के जमाई थे और बीबी भानी जी की शादी इनके साथ हुई थी।

जब गुरु अमरदास जी ने इस संसार से विदा होने का समय जाना तो अपने पुत्र मोहरी को बुलाकर कहा कि हमारे पीछे कोई मनमत न करना गुरुबाणी का उच्चार और शब्द कीर्तन करना कराना। शोक नहीं मनाना, चूंकि परमात्मा की आज्ञा हो चुकी है इसलिये मुझे जाना है। मेरे बाद गरुड पुराण बचवाने की भी गलती न करना न पिंड दान भरना।

इस प्रकार का उपदेश करके गुरु जी विदा हो गये। उनकी आज्ञा के अनुसार कोई शोक नहीं मनाया गया और विधिवत जैसा भी उन्होंने कहा वैसा ही कर दिया गया।[2]

१. संवत १६२१ भादवा सुदी १३।

२. सवत १६३१ वि की भादो सुदी १५ को देहवसान हुआ।

कनिंघम ने गुरु अमरदास जी के सम्बन्ध में अपने विचार इस प्रकार प्रकट किये हैं:—

"अमरदास जी गुरु नानक देव की तरह गर्व के साथ कहते थे—"अग्नि में जिनका विनाश नहीं किन्तु अनुताप की ज्वाला से जो जले जा रहे हैं वही सच्चे सत हैं। अनुतप्त दीन मनुष्य ही ईश्वर उपासना का आत्म प्रसाद पाता है। अमरदास जी ने धीरे-धीरे कुप्रथाओं का विनाश किया। कठोर विधि-विधान न फैलाकर प्राणों के भीतर विश्वास का बीज बो दिया। लोगों को सद्व्यवहार से वशीभूत कर उन्हें दोष सशोधन की राह दिखा दी · · ऐसा कहा जाता है कि उनकी पुत्री (भानी बीबी) ने अपनी अनुपम भक्ति से उनसे यह वरदान भी प्राप्त कर लिया था कि उसकी सतति ही गुरुगादी की उतराधिकारिणी होगी।"

मि० फोरिस्टर, मि० मैलकम आदि और भी कई इतिहासकारों ने उनके सम्बन्ध में जनरल कनिंघम से मिलते जुलते ही विचार प्रकट किये हैं।

गुरु अमरदास जी की वाणियाँ

अपने पूर्ववर्ती गुरुओं की तरह गुरु अमरदास जी ने भी कई राग रागनियों में अपने उद्गार प्रकट किये हैं जो श्री गुरु आदि ग्रन्थ साहब में महला तीन के शीर्षकों में दर्ज हैं। हम भी यहा पर कुछ वाणियाँ उद्धृत करके उनके प्रसग को समाप्त करते हैं:—

श्रीराग— सुख सागरु हरि नामु है गुरमुखि पाइआ जाहि।
अन दिनु नामु धिआईऐ सहज नामि समाइ॥
अन्दरु रचै हरि सच सिउ रसना हरि गुण गाइ।
भाई रे जगु दुखिया दूजै भाइ।
गुरु सरिणाई सुख लहहि अनदिनुनामुधिआइ। (रहाउ)
साचे मैलु न लागही मनु निरमल हरि धिआइ॥
गुर मुखि सबदु पछाणिऐ हरि अम्रित नामि समाइ।
गुर गिआनु प्रचडु बलाइआ अगिआणु अंधेरा जाइ॥
मन मुख मैले मलु भरेहउ मै त्रिसना विकारु।
बिनु सबदै मैलु न उतरै मरि जमहि होइ खुआरु॥
धातु रबाजी पल चिर है नाउर वास न पास।
गुर मुखि जप तप संजमी हरि कै नामु पिआस॥
गुर मुखि सदा धिआइऐ एक नामु करतार।
नानक नामु धिआईऐ सभ जीआ का आधारु॥

माझ राग— मेरा प्रभु निरमलु अगम अपारा।
बिनु तकडी तोलै ससारा॥
गुर मुखि होवै सोई बूझै गुण कहि गुणी समावणिआ॥
हउ वारी जीउ वारी हरि का नामु मनि वसावणिआ।
जो सचि लागे से अन दिनु जागै दरि सचै सोभा पावणिआ॥
आपि सुणै ते आपै वेखै।
जिसनो नदरि करै सोई जन लेखे॥

आपे लाइलए सो लागै गुर मुखि सचु कमावणिआ ॥२॥
जिसु आपि भुलाए सु किथै हथु पाए ।
पूरब लिखिआ सो मेटणा न जाए ।
जिन सति गुरु मिलिआ से बड भागी पूरै करमि मिलावणिआ ॥३॥
पेई अउै धन अन दिनु सुती । कंति बिसारी अवगणि मुती ॥
अनदिनु सदा फिरै बिल लादी बिनु पिर नीदन न पावणिआ ॥४॥

राग गउडी गुआरेरी—मनुमारे धातु मरि जाइ । बिनु मूए कैसे हरि पाइ ॥
मनु मरै दास जाणै कोई । मनु सबदि मरै बूझै जनु सोइ ॥१॥
जिस नो बखसे दे वडिआई । गुरपरसादि बसै हरि मन आई ॥ रहाउ
गुर मुखि करणी काह कमावै । ताइसु मनकी सोझीपावै ।
मनु मै मतु मैगल सिक हारा । गुरु अकुस मारि जीवालणहारा ॥२॥
मनु असाधु साधै जनु कोइ । अचरू चरंता निरमलु होइ ॥
गुर मुखि इहु मनु लइआ सवारि । हउमै विचहुत जे विकार ॥३॥
जो धुरि राखि अनु मेलि मिलाइ । कदेन बिछुडहि सबदि समाइ ॥
अपणी कला आपही जाणै । नानक गुर मुखि नामु पछाणै ॥४॥

राग आसा— हरि दरसनु पावै वडभागि । गुर कै सबदि सचै वैरागि ।
खटु दरसन बरतै बरतारा । गुर का दरसनु अगम अपारा ॥
गुर कै दरसनि मुकति गति होइ । साचा आपि बसै मनि सोइ ॥ रहाउ
गुर दरसनि उधरै ससारा । जे को लाए भाउ पिआरा ॥
भाउ पिआरा लाए विरला कोइ । गुर कै दरसनि सदा सुखु होइ ।
गुर कै दरसनि मोख दुआर । सति गुरु सेवै परवार साधारू ॥
निगुरे कउ गति काई नाही । अव गुणी मुठे चोटाखाई ।
गुर कै सबदि सुखु साति सरीर । गुर मुखि ताकउ लगै न पीर ॥
जम कालु तिसु नेडिन आवै । नानक गुर मुखि साचि समावै ॥

राग विलावलु— जग कऊआ मुख चु चि गिआनु । अतरि लोभु झूठु अभिमानु ।
विनु नावै पाज लगुहनिदान सति गुर सेवि नामु वसै मनि चीति ।
गुरु भेटे हरि नामु चेतावै विनु नावै होर झूठु परीति । रहाउ
गुरि कहि आसा कार कमावहु । सवद चीति सहज घरिआवहु ॥
साचे नाइ वडाई पावहु । आपनि वूझै लोक वुझावै ।
मन का अधा अधु कमावै । दरू घरू महलु ठौर कैसे पावै ।
हरिजीउ सेवीअै अतरिजामी । घट घट अतरि जिसकी जोति समानी
तिसु नालि किआ चलै पहनामी । साचा नामु साचै सबदि जानै ।

आपं आपि मिलै चूकै अभिमानै । गुर मुखि नामु सदा सदा वखानै ।
सत गुरि सेवऐ दूजी दूर मति जाई । अउगुण काटि पापा मति खाई ।
कचन काया जोती जोति समाई । सतिगुर मिलिये वडी वडिआई ॥
दुखु काटै हिरदै नामु वसाई । नामु रते सदा सुख पाई ।
गुर मति मानिआ करणी सारू । गुर मति मानिआ मोख दुआरू ॥
नानक गुर मति मानि आ परवारे साधारू ॥

छठा अध्याय

गुरु रामदास जी के जीवन की झाँकी

गुरु रामदास जी साहिब का जन्म कार्तिक वदी २ संवत् १५८१ वि० मे रविवार के दिन चार घड़ी दिन चढे हरिदास जी सोढी खत्री के घर माई दया कुँवरि जी के उदर से लाहौर की चूना मडी मे हुआ था। उन दिनो शेरशाह सूरी की अमलदारी थी और हुमायूँ मुगल बादशाह भागता फिर रहा था। कहा जाता है गुरु रामदास जी की माता बहुत ही छोटी उम्र का गुरु जी को छोड़ कर चल बसीं थी। पिता भी जब कि उनकी उम्र केवल सात वर्ष की थी, उन्हे छोड कर स्वर्ग सिधार गये। इसलिये उनकी नानी उन्हे बासरके मे ले गई और वहीं आपका लालन पालन हुआ। जब आप बारह वर्ष के हुए तो अपने कुछ साथियों के साथ गुरु अमरदास के दर्शन करने के लिये गोइन्दवाल आये और तभी से वहीं रह गये धर्मशाला की सफाई रखना और गुरु जी की सेवा करना, आपने अपना उद्देश्य बना लिया। आप चेहरे मुहरे और रंग रूप की दृष्टि से बहुत ही खूबसूरत थे। जो भी आपको देख लेता आपकी ओर आकर्षित हो जाता। ऊँचा ललाट और चौडे कधे आपके पुष्ट शरीर की साक्षी देते थे।

जन्म और पहिली अवस्था

गरु अमरदास जी साहिब ने अपनी बड़ी पुत्री बीबी भानी के लिये जो बहुत ही योग्य और समझदार थीं, रामदासजी को सर्वथा योग्य समझा और सवत् १६१२ वि० में उनके ही साथ शादी कर दी।

बीबी मभानी जी के तीन संतानें हुईं (१) पृथ्वीचन्द (२) महादेव (३) अर्जुनदेव।

गरु रामदास जी साहिब के बचपन और उस समय मे उनके द्वारा गरु सेवा और जन सेवा सम्बन्धी किये गये कार्यों का वर्णन हम कर चुके हैं। अब गुरु होने के बाद उनके समय मे जो कुछ हुआ उस पर प्रकाश डालते हैं। गुरु रामदास जी साहिब ने भी कुछ लोगों को उपदेश देने का अधिकार दिया था, भाई हंदाल उन उपदेशकों मे से ही था। पहिले यह लंगर मे काम करता था किन्तु गुरु जी ने जब इसकी सच्ची भक्ति का परिचय ले लिया तो इसे संगतों को उपदेश देने के लिये मुकर्रिर कर दिया। इसने जिंदगी भर बड़े प्रेम से अपने कर्त्तव्य को निभाया किन्तु इसकी सतान के लोगों ने गुरुओं की जो जन्म साखियां लिखीं उनमें सिद्धान्त विरोधी श्लोक रख दिये। अत उन लोगों की सिख समाज के अन्दर से कदर उठ गई।

गुरुआई मिलने के बाद

गुरु अमरदास जी की भाँति आप सच्चे भक्तों और दीन दुखियों को आशीर्वाद और धन देकर सुखी करने मे भी पीछे नहीं रहते थे। हम भाई भगतू को एक प्रसिद्ध सिख सरदार के रूप में देखते हैं। कैथल राज घराने की नींव इन्हीं की सतान ने डलवाई थी और यह भी गौरव इस घराने को है कि सूरज प्रकाश जैसा महान् सिख ग्रथ इन्हीं की सतान की दानवृत्ति और उदारता से उत्साहित होकर सिख कवियों ने वनाया था। इन भाई भगतू के पिता भाई उदयविराड एक लम्बे अर्से तक गुरु रामदास जी की सेवा मे रहे थे। विराड जाटों का वह खान्दान है जिनकी एक वडी रियासत पंजाव में फरीदकोट के नाम से मशहूर है। इसी तरह की अनेको कथा हैं किन्तु स्थानाभाव से हम सव को नहीं दे रहे हैं।

परमधाम को जाने से पहले गुरु अमरदास जी ने रामदास जी साहिव के जिम्मे एक काम सौंपा था। और वह काम यह था कि तुंग, सुल्तान और गुमटाला गाँवों के वीच में जो जगल है उसके वीच मे एक सरोवर वनानी चाहिए।

इस सुन्दर जगल की भूमि किसी एक की न थी आस पास के अनेकों जाट जमींदार उसके मालिक थे। किन्तु जव उन्होंने गुरुजी की इस इच्छा को सुना तो वह जगल उन्होंने उनके लिये वता दिया। भूमि मिलते ही गुरु रामदास जी ने वहाँ अपने कुछ शिष्यो को लेकर एक छोटा सा गाँव वसाया। जो रामदास पुर के नाम से प्रसिद्ध हुआ। इस दिन सवत् १६२६ वि० के अषाढ़ महीने की ५ वीं थी।[1] यहाँ पर जो गुरु साहिव ने एक सरोवर वनवाया वह अमरसर व अमृतसर के नाम से प्रसिद्ध हुआ। अमृतसर का सिख लोगों मे उतना ही सत्कार है जितना ईसाइयों का यरूसलम और मुसलमानों का मक्के-शरीफ में है। इस समय समस्त सिख तीर्थों में अमृतसर का दर्जा वहुत ऊँचा है।

इस सुन्दर और पवित्र सरोवर के वनने के आरम्भ में ही सवत् १६३३ मे वादशाह अकवर ने यहीं आकर गुरु जी के दर्शन किये वह देहली से लाहौर को जा रहा था। रास्ते मे उसने सुना कि गुरु अमरदास जी साहिव की गद्दी पर इस समय गुरु रामदास जी साहिव हैं उसे इस नये गुरु के दर्शनों की वड़ी उत्कठा हुई और गुरुजी की सेवा में हाजिर हुआ। धर्म विपयक चर्चाओं के वाद अकवर ने माफी में कुछ गाँव गुरु जी को देने चाहे किन्तु किसी प्रकार की जागीर या माफी लेने से उन्होंने इन्कार कर दिया। फिर भी वादशाह ने कुछ भूमि आपकी सरोवर के लिये दे ही दी। अमृतसर के चारों ओर रामदासपुर थोड़े ही दिनों में वढ़कर एक अच्छा खासा नगर हो गया और उसमें प्राय. सभी जातियों के लोग आकर वस गये।

अमृतसर के सम्वन्ध में कई चमत्कारिक कथाओं का वर्णन है। दुनीचद नामी किसी विशिष्ट पुरुप की स्पष्टवक्ता एक पुत्री अपने पगु पति को यहा लेकर आई थी। इसमें स्नान करते ही उसका शरीर विल्कुल ठीक राजकुमारों जैसा हो गया। एक काक जो पानी पीने के लिये आया उसका शरीर भी श्वेत हो गया।

एक वार वावा श्रीचन्द जी आपसे मिलने के लिए आये। आपने और सिखों के साथ आकर वावा जी का सत्कार किया। श्रीचंद जी भी गुरु अमरदास जी की भक्ति और लोक सेवा के कामों में वहुत प्रसन्न हुए और कहा मुझे तो यकीन होता है कि आपका परिवार फूलेगा फलेगा।

इसी प्रकार उनका यश सुनकर एक वार सिद्ध लोगों की भी जमात उनके दर्शन करने और ज्ञान

१ कहीं कहीं सवत् १६२७ अषाढ १३ लिखा।
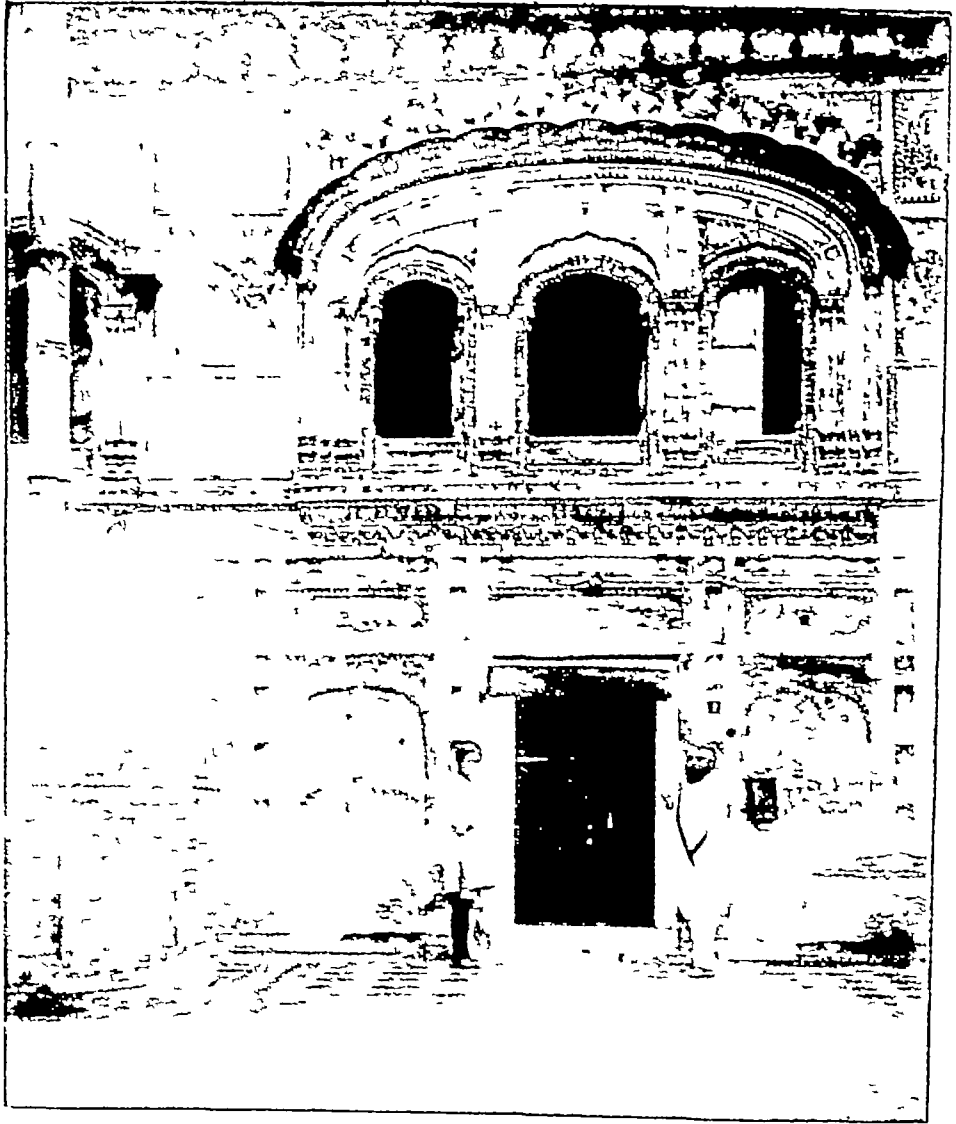
जन्म स्थान गुरु रामदास साहिब
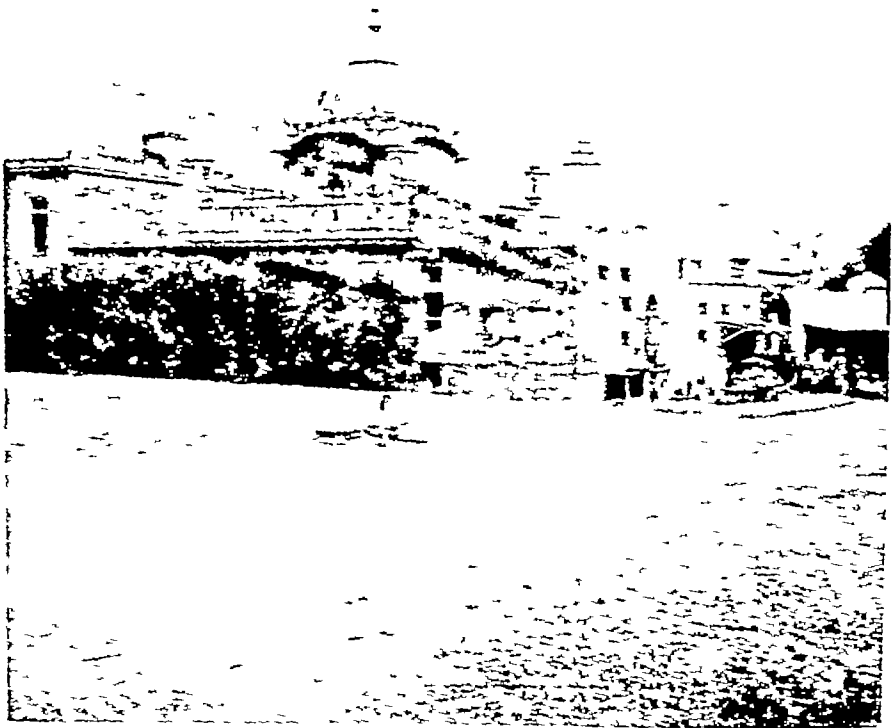
डेहरा गुरु अर्जुनदेव जी लाहौर

चर्चा करने के लिये आई। गुरुजी के लंगर को देखकर सिद्ध बडे खुश हुए, उनमे से एक ने कहा, आपके यहाँ हमे एक ही कमी दिखाई देती है और वह यह कि आप अपने शिष्यों को योग नहीं सिखाते हैं। गुरु जी ने कहा आप लोग तो योग करते है न, बतावें परमात्मा को आप मे से किसने पहचाना है ? योग के नाम पर पाखंड फैला रक्खा है आप लोगों ने। हमारे सिखों को ऐसे योग की आवश्यकता नहीं है।

होथि कर तत बजावे जोगी थोथा बाजे बेन।
गुर मत हरि गुन बोलहु जोगी एह मनुआ हरिरग भेन ॥
जोगी हरि वेहुमती—उपदेश
जुग जुग हरि हरि हरि एको वरतै तिसु आगे हम आदेश।

एक बार आप अपनी जन्मभूमि लाहौर भी गये। आपके खानदान के सोढ़ी लोग जब भी आपसे मिलते यही प्रार्थना करते कि सच्चे बादशाह एक दिन आकर ता आप अपनी जन्मभूमि को पवित्र कीजिये। एक बार लाहौर से शिष्य लोगों की संगति आई उसने भी यही प्रार्थना की। शिष्य लोगों की प्रार्थना को गुरुजी न टाल सके और लाहौर गये। वहाँ आपने अपनी जन्मभूमि के स्थान पर एक मकान बनवाया। कई दिन रहकर शिष्य लोगों को उपदेश दिया। लाहौर के हाकिम और अन्य रईस लोग भी गुरु के दर्शनों को आये और उपदेश ग्रहण किया। वहाँ से लौटकर आपने कोई यात्रा नहीं की। चक्र मे ही रह कर लोगों को उपदेश देते रहे।

इस तरह करीब ७ वर्ष तक आपने गुरुआई की और अपना समय समाप्त हुआ समझ कर अपने सबसे छोटे पुत्र अर्जुनदेव जी को गुरुआई सौंप दी। अर्जुनदेव जी से दो बडे पुत्र और थे किन्तु बीच वाले महादेव जी तो निर इच्छित थे। वे प्राय. उदास रहा करते थे। उनका किसी भी काम मे जी नहीं लगता था। पृथ्वीचन्द अवश्य गुरुआई चाहते थे किन्तु वे अनेक परीक्षाओं मे जॅचे नहीं अत गुरु रामदास जी ने उनको गुरुआई नहीं दी।

एक बार गुरुजी ने पृथ्वीचन्द से कहा कि लाहौर के अपने कुनवे के लोगों के यहाँ विवाह है। वहाँ तुम चले जाओ। पृथ्वीचंद साफ इनकारी होगये। उन्होंने समझा कि इस तरह से मुझे यहाँ से हटा रहे हैं। और अर्जुनदेव को गद्दी देना चाहते हैं किन्तु अर्जुनदेव जी से जब कहा गया तो वे तुरन्त तैयार होगए। चलते समय गुरुजी ने उनसे कहा देखो जब तक हम बुलावे नहीं तब तक नहीं आना। इसे भी उन्होंने स्वीकार कर लिया। लाहौर मे ही जहाँ वह गये थे, दिन बिताने लगे किन्तु पिता एव गुरु के चरणों मे बैठने मे जिस आनन्द का अनुभव उन्हे होता था। उसके लिये रातदिन छटपटाने लगे। उन्होंने अंत मे एक पत्र लिखा। एक लबे अर्से तक भी उसका कोई जवाब न आने पर दूसरा लिखा। जब उसका भी जवाब नहीं आया तो एक पत्रके विश्वासी आदमी को भेजा। उसने वह पत्र गुरु जी के ही हाथ मे जाकर दिया। गुरु जी को जब यह मालूम हुआ कि उन्हे दो पत्र नहीं मिले हैं तो वे समझ गये कि यह सब कारस्तानी पृथ्वीचंद की है। पूछने पर पृथ्वीचन्द ने कह दिया मै अर्जुनदेव के पत्रों के सम्बन्ध मे कुछ नहीं जानता किन्तु वे दोनों पत्र पृथ्वीचंद के अगरखे की जेब मे से प्राप्त होगये। इससे पृथ्वीचंद लज्जित हुआ। गुरुजी ने बाबा बुड्ढा को भेजकर लाहौर से अर्जुनदेव जी को बुला लिया और घोषणा करदी कि अर्जुनदेव ही गद्दी का अधिकारी है। वे पत्र जो अर्जुनदेव जी ने लिखे थे श्रद्धा और प्रेम से लबा-लब थे। तीनों पत्रों के कुछ अंश यहाँ देते है।

"मेरा मन लोचे गुरु दर्शन ताई। बिलप करे चातक की नाई।

तिरखा न उतरै सान्ति न आवै। बिन दरसन संत पिआरे जीउ ॥
हउ घोली जिउ घोलि घुमाई गुर दर्शन संत पिआरे जीउ।"

दूसरी चिट्ठी —

"तेरा मुखु सुहावा जीउ सहज धुनि बाणी।
चिर होआ देखे सारिंग पाणी ॥
धन्न सुदेस जहा तूं वसिआ मेरे सजण मीत मुरारे जीउ।
हउ घोली हउ घोलि घुमाई गुरु सजण मीत मुरारे जीउ ॥"

तीसरी चिट्ठी के अंश —

"इक घड़ी न मिलते ता कलिजुगु होता।
हुण कद मिलिअ प्रिय तुधु भगवन्ता ॥
मोहि रैण न विहावै नींद न आवै।
बिनु देखे गुरु दरसन जीउ ॥
हउ घोली जीउ घोलि घुमाई।
तिसु सचे गुरु दरबारे जीउ ॥"

गुरु अर्जुनदेव की उन दिलकश चिट्ठियों का यह कविता भाग है, जो उनकी गुरुभक्ति और ईश्वर भक्ति का प्रबल प्रमाण देता है।

गुरु रामदास साहब के जीवन कार्य्यों पर एक विहंगम दृष्टि

गुरु रामदास जी ने केवल ७ वर्ष गुरुआई की। यह समय बहुत थोड़ा है किन्तु इतने थोड़े समय मे भी पहले से काफी बढे हुये सिख समाज के लिये बहुत कुछ कर गये। दिनचर्य्या बिल्कुल उनकी भी अपने पूर्ववर्ती गुरुओं जैसी थी, उसी प्रकार तारों की छांया में उठते, स्नान करते, एकान्त चिन्तन करते, दरबार लगाते और उपदेश देते। वैसा ही सीधा सरल और आकर्षक स्वभाव भी था। उदारता तो यहाँ तक थी कि एक कोसने वाले भिखमंगे को आपने अपने कंकण तक दान मे दे दिये। पूर्ववर्ती गुरुओं की प्रत्येक मर्यादा का ज्यों का त्यों पालन हो सके इस बात का आप बड़ा ध्यान रखते थे।

आपके समय में सिख समाज को और भी अधिक मजबूत बनाने का जो काम हुआ वह था अमृतसर की स्थापना। यह पवित्र तड़ाग और नगर ऐसे स्थान पर बसाये गये जो पंजाब का मध्य था। मांझ और मालवे में अधिकतर जाट वीरों की आबादी थी, जो उस स्थूल पर कृषि से जीवन निर्वाह करते थे और आज भी वे उत्तम खेतिहर समझे जाते हैं। वैसे तो अब तक जितने भी शिष्य बने थे उनमे भी जाट ही ज्यादा थे। उनमे से कई तो बालाजी, बुड्ढाजी और भगतू जैसे विद्वान और ऊंचे दर्जे के गुरमुख थे किन्तु अमृतसर की स्थापना से जाटों के इस प्रान्त में सिख-धर्म का बड़ी उन्नति मिली। यह कह देने में कोई भी अत्युक्ति नहीं होगी कि जाट लोगों के लिये सिख-धर्म कोई दूर की और भयावनी चीज नहीं थी। वह उस समय भी आजाद प्रकृति के और रूढ़िवाद से स्वतंत्र थे। पौराणिक धर्म की छाया उन पर नाम-मात्र को ही पड़ी थी। वे उन वैदिक आर्यों के अभी भी सच्चे उत्तराधिकारी थे जो केवल एक ईश्वर के उपासक और तत्वज्ञानी थे। सिख-धर्म ने उन्हें जो कुछ दिया वह उनकी रुचि के अनुसार था। ब्राह्मण धर्म की छूत-छात और सामाजिक असमानता की रिवाजों से वे पहले से ही घबराते थे। अतः वे अधिक

से अधिक संख्या मे सिख-धर्म मे दीक्षित हो गए। यह बताने मे भी कोई हर्ज नहीं होगा कि करतारपुर और खंडूर तथा गोविन्दवाल के लगरो को चलाने मे जाट-शिष्यों की उत्कट श्रद्धा भी शामिल थी।

अपनी प्रकृति के अनुकूल धर्म मे वे बड़े उत्साह और श्रद्धा से शामिल हुए।

वावली साहव के निर्माण से जिस प्रकार सुदूर तीर्थो की ओर से शिष्य लोगों की अनुरक्ति कम हुई थी, उसी प्रकार अमृतसर की स्थापना से और भी कम हुई। और अब उनके लिए वावली साहब और अमृतसर ही सच्चे तीर्थ होगये। इसीलिये हम गुरु रामदास जी के जीवन के सार्वजनिक कार्यो मे सव से अधिक प्रमुखता अमृतसर की स्थापना को ही देते है।

कुछ 'सिख तारीखों' के पढ़ने से पता चलता है गुरु रामदास जी ने सामाजिक नियमों मे भी तवदीली की थी। एक वार सिखो का समूह उनकी सेवा मे हाजिर हुआ और उसने पूछा कि हमे विवाह शादियों के सम्वन्ध मे कोई उपदेश दीजिये तव उन्होंने नीचे लिखी वाणी कही—

"हरि पहलडी लाव पर विरती करम द्रिडाइआ बलिराम जीउ।
वाणी ब्रहमा वेदु धर्म द्रिडहु पाप तजाइआ बलिराम जीउ ॥
धरम द्रिडहु हरि नामु धिआवहु सिम्रिति नामु द्रिडाईआ।
सतिगुरू गुरू पूरा आराधहु सभ किलवेख पाप गवाइआ ॥
सहज अनदू होया वड भागी मनि हर हर मीठा लाइआ।
जन कहै नानक लाव पहिली आरम्भ काज रचाइआ ॥ १ ॥
हरि दूसरी लाव सत गुरु पुरष मिलाइआ बलिराम जीउ।
निर भउ तै मनु होए हउमै मैल गवाइआ बलिराम जीउ ॥
निरमलु भउ पाये आ हर गुण गाइआ हर वेखै राम हदूरे।
हरि आतम राम पसारिआ सुआमी सरबरहिआ भर पूरे ॥
अतरि बाहरि रहि प्रभु एके मिलि हरिजन मगल गाये।
जन नानक दूजी लाव चलाई अनहद सवद वजाये ॥ २ ॥
हरि तीजडी लाव मति चाउ भइआ बैरागीआ बलिराम जीउ।
सत जना हरि मेलु पाइआ बड़ भागीआ बलिराम जीउ ॥
निर मलु हरि पाइआ हरि गुण गाइआ मुखि बोली हरि वाणी।
सत जना वड भागी पाइआ हरि कथिऐ आकथ कहाखी।
हिरदै हरि हरि धुनि उपजी हरि जपिऐ मसताकि भाग जीउ।
जन नानक बलै तीजी लावै हरि उपजै मन वैराग जीउ ॥ ६ ॥
हरि चउथडी लाव मनु सहजि भइआ हरि पाइआ बलिराम जीउ।
गुर मुख मिलिआ सुभाइ हरि मान तनि मीठा लाइआ बलिराम जीउ।
हरि मीठी लाइआ मेरे प्रभु भाइआ अन दिनु हरि लिव लाई।
मन चिन्दिआ फल पाइआ सुआमी हरि नाम वजी वधाई ॥
हरि प्रभि ठाकुर काजु रचाइआ धनि हिरदै नामु विगासी।
जनु नानक बोलै चउथी लावै हरि पाइआ प्रभु अविनासी ॥"

आज तक तभी से सिखों मे इन लावा को पढ़कर शादी की रस्म पूरी की जाते

इस तरह शिष्य समूह का आम लोगों से पृथक समाज स्थापन करने में गुरु रामदास जी साहब ने भिन्न सामाजिक प्रथा डालने की ओर कदम उठाया। हम देखते हैं गुरु नानकदेव जी ने अपने खयालातों का जो विरवा रोपा था। उसे उनका प्रत्येक अनुवर्ती गुरु अपने कर्तव्य और तप का जल देकर पुष्ट करता रहा। गुरु नानक जी के सिद्धान्तों को ज्यों-ज्यों अमल मे लाया जा रहा था, त्यों ही त्यों शिष्य वर्ग एक समाज का रूप पकड़ता गया।[1] गुरु अगददेव जी ने नामकरण सस्कार के समय कड़ाह प्रसाद की प्रथा डालकर उस विधि में कुछ संशोधन किया था। गुरु रामदास जी ने वैवाहिक क्रिया में संशोधन कर दिया और तीर्थ स्थल स्वतन्त्र गुरु अमरदास जी महाराज ने बना ही दिये थे। धर्म ग्रन्थों का स्थान गुरु वाणिया ले रही थीं। कथा भागवत के स्थान पर गुरुओं की जन्म साखियाँ अवस्थिति हो रही थीं। इन सब बातों को जब हम बारीकी से पढ़ते हैं तो पता चलता है कि शिष्यों का समूह शनैः शनै एक पृथक सम्प्रदाय के रूप मे परिणित होता जा रहा था और प्रत्येक गुरु उसे बराबर आगे बढ़ाने में अपनी सामर्थ्य को प्रदर्शित कर रहे थे। सात वर्ष के छोटे से अर्से मे गुरु रामदासजी भी सिख समाज को काफी आगे बढ़ा गये और अपनी अनोखी प्रतिभा से एक नवीन बल और संगठन का अमृत घूंट इस समुदाय को पिला गये।

गुरु रामदास जी के अन्य कार्यों में अपने शिष्यों पर गुरु नानकदेव जी द्वारा प्रचारित धर्म को शक्ति के साथ पालन करने की ओर बार-बार ध्यान दिलाना और तीर्थों की ओर से उनका ध्यान मोड कर अपनी वैयक्तिक उन्नति करने की ओर लगाना आदि अनेकों महत्वपूर्ण कार्य हैं।

उपदेश देते समय बहुधा समयों पर गुरु रामदास जी वाणियों में अपने भावों को प्रकट किया करते थे। जो सहज ही श्रोता के दिल पर अपना असर डालती थीं। यहाँ हम उनकी अनेकों सुमधुर वाणियों मे से कुछ नमूने के तौर पर पेश करते हैं :—

माझ— आवहु भैणे तुसी सिलहु पिआरी आ।
जो मेरा प्रीतमु दसे ति सकै हउवारिआ॥
मिलि सत संगति लधा हरि सजणु हउ सतगुरि विटहु घुमाइयाजीउ।
जह तह देखा तह तह स्वामी। तू घटि घटि रविआ अतर जामी।
गुरि पूरै हरि नालि दिखालिआ हउ सतिगुर विटहु सदवारिआजीउ॥२॥
एको पवणु माटी सम एकाजोति सबाइआ।
सभ इका जोति वरतै भिन भिन नर लई किसै दी रलाइआ॥
गुर परसादी इकु न दरीआइआ हउ सति गुर विटहु वताइआ जीउ॥३॥
जनु नानकु बोलै अम्रितु वाणी।
गुर सिखां कै मनि पिआरी भाणी॥
उपदेसु करे गुरु सति गुरु पूरा गुरु सतिगुरु पर उपकारि आजीउ॥४॥

सलोक— गुर सतगुर का जो सिख अखाये सो भलके उठि हरि नामु धिआवै।
उदम करे भल के पर भाती इसनान करे अमृतसर नावै॥

[1] गुरु के लगर ने समाज में देर से चला आ रहा जाति भेद मिटाने और सिख समाज को सगठित करने में बड़ा काम किया था।

उपदेस गुरू हरि हरि जप जापै सभ किलविख पाप दोष लहिजावै ।
फिर चढ़े दिवस गुरुवाणी गावै बहदिग्रा उठदिग्रा हरिनाम धिजावै ।
जो सास गिरास धिग्रावै मेरा हरि हरि गर सिख गुरु मन भावै ।
जन नानक धूड मगे तिस गुर सिख की जो ग्राप जपै ग्रवरह नाम जपावै ॥

गौरी वैरागिन— कचन नारी माई जीउ लुमतु है मोहु मीठा माइग्रा ॥
घर मदर घोड़े खुसी मनु ग्रन रसि लाइग्रा ॥
हरि प्रभु चितिन ग्रावही किउ छूटा मेरे हरि राइग्रा ॥
मेरे राम इहि नीच करम हरि मेरे
गुणवता हरि हरि दइग्रालु करि किरपा बखसि ग्रवगण सभि मेरे ।
(रहाउ) किछु रूप नहीं किछु जाति नाहीं किछु ढगुन मेरा ।
किग्रा मुहुलै बोलह गुण विहून नाम जपिग्रा तेरा ।
हम पापी संग गुर उवरे पुनु सति गुर केरा ।
समजीउ पिंड मुखु नकुदी ग्रावरतण कउपाणी
ग्रंनु खाणा कपडु पैनणु दीग्रा रस ग्राने भोगाणी
जिन दीग्रे सुचितन ग्राव ही रसू हउ करि जाणी ।
सभु कीता तेरा वरतदा तूं ग्रतरजामी
हम जंत विचारे किग्रा करेह सभु खेलु तुम सुग्रामी ।
जन नानकु हाटि विहा भिग्रा हरि गुलम गुलामी ।"

गुरु रामदास जी साहब की इन वाणियों मे यद्यपि पंजाबी भाषा का पुट है फिर भी कितनी मधुर और सरल हैं। इसी प्रकार उनकी अनेकों वाणियां है जिनका रसास्वादन आदि ग्रन्थ साहब के पाठ से प्राप्त हो सकता है।

अमृतसर के संस्थापक गुरु रामदास जी साहब अंतिम दिनों में गोविन्दवाल ही चले गये थे। और वही इस शरीर को छोड़कर मुक्तिधाम का मार्ग लिया। वह दिन संवत १६३८ विक्रमी के श्रावण महीने का ३ शुक्रवार था। उस समय वहाँ संगत आई हुई थी। आपने देह त्यागते समय कहा था कि मेरी समाधि पर कोई स्थान न वनाना किन्तु प्रेम और श्रद्धा के वशी भूत होकर शिष्यों ने गुरु अमरदास जी के देहरे से थोड़ी दूरी पर आपका भी देहरा बना दिया। जिसे व्यास नदी गुरु जी की इच्छापूर्ति करने के लिये वहां ले गई।

परमधाम

सातवाँ अध्याय

गुरु अर्जुनदेव जी की जीवन गाथा

गुरु अर्जुनदेव जी साहब का जन्म वैसाख शुक्ला सप्तमी मंगलवार संवत १६२० विक्रमी में हुआ था यहाँ यह बताने की तो आवश्यकता रही नहीं है कि उनके मा बाप का क्या नाम था, तथा वे किस हैसियत के आदमी थे। गुरु रामदास जी साहब जैसा महापुरुष जिसका पिता हो और बीबी भानी जैसी महत्वाकांक्षाणी जिस की मा हो वह बचपन से ही कितना सुयोग्य और महान हो सकता है इसकी सहज ही कल्पना की जा सकती है। हां, कभी अपवाद भी हो जाता है जैसाकि हम पृथ्वीचन्द जी के लिये कह सकते हैं किन्तु अपवाद अपवाद ही है। आम उसूल तो यही है कि हंस के बच्चे हंस और सिंह के सिंह ही होते हैं।

आरम्भिक परिचय

गुरु अर्जुनदेव जी के दो विवाह हुये थे। पहला संवत १६३२ वि. मे चन्दनदास खत्री की लडकी रामदेवी जी से और दूसरा इनके मरने पर १६४६ वि मे कृष्णचन्द्र की लडकी गंगा से कृष्णचन्द्र मिलौर के पास मऊ में रहते थे।

गुरु अर्जुनदेव जी ने अपने गुरु रामदास जी साहब की सेवा केवल पिता जानकर ही नहीं की थी किन्तु साक्षात नानकदेव जी का स्वरूप जानकर की थी। कोई भी शिष्य जितना प्यार और आदर अपने गुरु के प्रति प्रदर्शित कर सकता है उसमें आपने तनक भी कसर न रक्खी थी। सेवा के अलावा गुरु वाणियों के पढने और उनके रहस्य को पूर्ण रूप जान लेने मे आपने खूब मन लगाया था। गुरु गादी मिलने से पहिले से ही आपकी विलक्षण बुद्धि थी। आपको जब आपके पिता जी ने लाहौर एक शादी में भेज दिया और एक लंबे अर्से तक नहीं बुलाया तब आपने जो पत्र अपने पिता जी को लिखा उन के मार्फत आपने जो वाणियां लिखी थीं, वह प्रेम में सराबोर कर देने और मन को मोह लेनी वाली हैं।

आपके बालकपन की कई मनोहर कथायें हैं उनमें एक यहाँ देना उचित समझते हैं। अपने दादा गुरु अमरदास जी के समय में हंसते खेलते और किलकते हुये गुरुजी की गद्दी पर जाकर बैठ गये और उसी प्रकार पद्मासन लगा लिया जैसे गुरु जी लगाते थे। गुरु अमरदास जी ने उस समय उनकी सूरत की ओर देखा तो चेहरे पर शान्ति और नूर की वर्षा सी होती देख पडी उन्होंने बडे प्रेम और आह्लाद से कहा ' बेटे यह स्थान तुम्हें तुम्हारे पिता के बाद प्राप्त होगा।"

संवत १६३८ मे आपको गुरुआई मिल गई थी किन्तु पिता जी के परमधाम के बाद पृथ्वीचन्द

शहीद गुरु

श्री अर्जुनदेव जी

श्री गुरु रामदास जी

आप से मिलकर नहीं रह सके। महादेव ने तो कोई आश्चर्यजनक विरोध किया नहीं था।

इतिहास से यह तो पता नहीं चलता कि आपको शिक्षा दिलाने का क्या प्रबंध किया गया था? किन्तु इसमे सन्देह नहीं कि आप अपने समय के एक उद्भट विद्वान् थे। होंनहार तो आप बालकपन से ही थे। आपकी बुद्धिमता को देखकर गुरु अमरदास जी ने कहा था—"दोइया वाणी दा बोहया।" अर्थात् मेरा यह दौहित्र (धेवता) वाणी का प्रकाशक होगा। आगे चलकर हुआ भी यही। उन्होंने अत्यधिक वाणी की रचना की और साथ ही पिछले गुरुओं की वाणी का भी सग्रह किया। इस पर उन्होंने अपने नाना गुरु अमरदास जी के भविष्य कथन को पूरा करके दिखा दिया।

यों तो देश की हालत पिछले हजार बारह सौ साल से खराब होती चली आ रही थी किन्तु आपके समय तक और भी खराब हो चुकी थी। उस समय का सबसे बड़ा शासक मुगलसम्राट् बादशाह जहागीर था। वह पहले दर्जे का शराबी और आराम पसंद आदमी था। हुकूमत का काम उसकी परम सुन्दरी ईरानी बीबी नूरजहाँ करती थी। ऐसे समय में उन लोगों की तक लग रही थी जो शासकों के कान भरा करते हैं और दूसरों से अपने निजी वैर-भाव का बदला लेने के लिये शासकों को उभारा करते हैं।

ऐसे विकट समय में भी आपने वह काम किये जिससे सिख धर्म का पौधा पुष्ट होकर लहर-लहर लहराने लगा। श्री गुरु ग्रंथ साहब की रचना उनके महान् कामों में से एक सर्वोपरि काम है।

ग्रन्थ साहब के देखने से दो बातों का पता और चलता है। एक तो यह कि आपके पास देश के अच्छे-अच्छे कवियो का आवागमन और जमघट रहता था। दूसरे यह कि आपने उस समय के भारत में प्रचलित अनेकों धर्मों का गहरा अध्ययन किया था, अथवा उन धर्मों के प्रतिनिधियों का आपके पास काफी आना-जाना होता था।

आपने हिन्दू शास्त्रों और पुराणों का भी पूरा अध्ययन किया था ऐसा आपकी वाणियों से जान पड़ता है क्योंकि आपके शब्दों मे वलि, वामन, हरिनाकुश, मान्धता और ध्रुव, प्रह्लाद की कथाओं के अनेकों हवालों पर प्रकाश पडता है। हरिभजन की ओर लोगों को आकर्षित करने के लिये आपने अनेकों हरिभगतों के उद्धार का हवाला दिया है और कहा है कि जब गज, गीध, अजामिल जैसे पापी हरिभजन से तर गये तब क्या कारण है हे मनुष्य तू न तरेगा। सारांश यह है कि भक्ति कीओर प्रवृत्ति करने के लिये आपने भरसक प्रयत्न किये थे। भक्ति सम्बन्धी आपकी रचनाये हैं भी बड़ी ही मनोहर। वाणी रचना की आपकी प्रवृत्ति वालापन से ही थी। "वालपन का रचा आपका यह पद सिखों मे बड़ी श्रद्धा से पढ़ा जाता है।

"मेरा मन लोचे गुरु दरशन ताई।"

विधि की गति को पुराने ऋषि मुनियों ने वड़ा विचित्र बताया है। अपने कथन की साक्षी मे उन्होंने कहा है। जिस जल में कमल पैदा होते हैं उसमें कीच भी होती है। अग्नि मे से प्रकाश के साथ धुँआ भी होता है। समुद्र मे जहाँ मोती हैं वहाँ शंख भी हैं। गुलाब मे फूलों के साथ काँटे भी हैं। यही गति गुरु अर्जुनदेव जी के यहाँ भी चरितार्थ थी। गुरु रामदास जी ने जहाँ गुरु अर्जुनदेव जैसे विद्वान, महामना और निस्पृह पुत्र को जन्म दिया था वहाँ उन्हीं के घर में पृथ्वीचन्द जी जैसे मनमुख, स्वार्थ-प्रिय और गृह-कलह को पसंद करने वाले पुत्र को भी जन्म मिला था। इसे चाहे पूर्व संस्कारों का योग कहें चाहे परिस्थितियों का समावेश माने।

पृथ्वीचन्द जी शांत नहीं रहे। उन्होंने इनका विरोध करना आरम्भ कर दिया। संपत्ति के नाम पर तो उसने इनके लिये कुछ भी न छोड़ा था। किन्तु फिर भी उसे संतोष नहीं हुआ। लंगर के समय बाहर से आये हुये और परसाद चखने वालों से भेंट भी वही वसूल करता रहा। इसके बाद उसने अलग अपने शिष्य बनाने आरम्भ किये और कुछ तालाब भी खुदवाये। यह सब होता रहा किन्तु गुरु अर्जुनदेव जी अपनी ओर से चुप रहे। उन्होंने कोई प्रतिशोध नहीं किया।

पातशाही मिलने पर

कुछ समय के बाद गुरु अमरदास जी साहब के भतीजे बाबा गुरदास जी गुरु अर्जुनदेव जी के दर्शनार्थ आगरा से वापिस आये। वे लंगर के प्रसाद को देखकर बड़े हैरान हुये। उन्होंने पूछा भी जिस लंगर में खीर, हलुआ और बढ़िया से बढ़िया पदार्थ बनते थे उसमें सूखी रोटी आज क्यों बनती है। गुरु अर्जुनदेव जी ने तो कोई जवाब नहीं दिया किन्तु भाई भानी जी ने बता दिया कि यह हालत पृथ्वीचन्द के विद्रोह से हो रही है। इस बात को सुनकर भाई गुरदास जी ने पहले गुरु अर्जुनदेव को ही इस बात के लिये तैयार करना चाहा कि वे पृथ्वीचन्द के इस विरोध का प्रबन्ध करें किन्तु उनके यह कहने पर कि गुरु नानकदेव जी का परम प्रताप आप ही कोई मार्ग निकाल देगा भाई गुरदास जी ने लंगर का चार्ज खुद सभाला और उन्होंने सिखों से भी कह दिया कि भेंट में आने वाला रुपया सदैव लंगर पर खर्च हुआ है। किसी के घर में जमा करने के लिये नहीं। इस तरह थोड़े ही समय मे गुरदासजी ने बाबा बुड्ढा की सहायता से लंगर के काम को फिर वही उन्नति दे दी क्योंकि सिखों ने भी गुरदासजी की बात को गाँठ बाँध लिया था।

इस तरह एक ओर से थोड़ी सी फुरसत मिलने पर गुरु जी ने हरिमन्दिर बनाने का कार्य प्रारंभ किया। भाई गुरदास, बुल्ला, माणा, आदि सभी प्रसिद्ध शिष्यों ने खुद अपने हाथ से काम करना आरम्भ किया। जब हरि मन्दिर बनने की चर्चा फैली तो बाहर से आकर सिख उस कार्य में सहयोग देने लगे। इतिहास साक्षी है कि मन्दिर के बनाने में सिखों ने इतना उत्साह प्रकट किया कि काबुल, कंधार और सिंध तक से शिष्य लोग आये और मन्दिर बनाने में सहायता दी। मन्दिर की सुन्दर पौड़ियों का नाम भी हरि की पैड़ी रक्खा गया। अमृतसर का यह हरि मन्दिर सिखों ने उसी रूप में अपनाया—जिस रूप में उत्तर भारत के समस्त हिन्दू हरिद्वार को अपनाते हैं। श्री गंगा जी को महात्म्य हजारों वर्ष से दिया जा चुका था उसका स्थान अब अमृतसर (तड़ाग) ने और हरिद्वार का स्थान हरि मन्दिर ने तथा हरिद्वार के सुन्दर गङ्गा घाट के स्थान पर उसी नाम से अभिहित होने वाली यह हरि की पैड़ी थी! यह कहना न होगा कि अमृतसर के तीर्थ ने उत्तर भारत में वही स्थान प्राप्त कर लिया जो हरिद्वार को प्राप्त था और यह महान् तीर्थ सिखों ही नहीं किन्तु पजाब के समस्त हिन्दुओं की श्रद्धा का केन्द्र बन गया।

हरि मन्दिर

सिख लेखकों ने लिखा है कि इस मन्दिर के बन जाने के बाद उद्घाटनोत्सव पर गुरुजी ने इस प्रकार अपने हृदयोद्गार प्रकट किये थे।

> "अबिचलु नगरु गोविन्द गुरु[1] का नाम जपत सुख पाइआ राम।
> मन इछे सेई फल पाइ करतै आप वसाइआ राम॥
> करतै आप बसाइया सरब सुख पाइआ पुतभाई सिख बिगासे।

१. यहाँ गोविन्द गुरु से अभिप्राय परमात्मा से है।—लेखक

"गुण गावहि पूरण परमेसुर कारजु आइआ रासे ।
प्रभु आप सुआमी आपे राखा आपि पिता आप माइआ ।
कहु नानक सतगुरु बलिहारी जिनि यहि थान सुहाइआ ॥"

इसी प्रकार की और भी सुन्दर वाणियां हैं। जो श्री ग्रन्थ साहब मे दर्ज हैं।

इस मन्दिर के सम्बन्ध मे हम यह और कहना चाहते है कि सिख संगठन के लिये हरि मन्दिर की रचना का आयोजन गुरु अर्जुनदेव जी साहब के कामों में उतना ही ऊँचा स्थान रखता है। जितना गुरु अमरदास जी साहब द्वारा वावली साहब और गुरु रामदास जी साहब द्वारा अमृतसर (सरोवर) की स्थापना के कार्य। इस पवित्र मन्दिर की रक्षा के लिये आगे की सदियों मे सिखों ने जो आत्मोत्सर्ग किया था उसका वर्णन आगे के पृष्ठों में प्रसगानुसार किया जायगा।

इस समय गुरु अर्जुनदेव का यश चारों ओर फैल रहा था। सभी श्रेणियों के लोग उनके चरणों मे आकर मत्था टेकते थे।

सिखों की संख्या इस समय बाढ़ के पानी की तरह बढ़ रही थी किन्तु गुरु अर्जुनदेव जी उन्हे पक्का सिख बनाने की ओर से भी लापरवाह नहीं थे। किसी को सच्चा सिख और प्रचारक बनाने से पहले उसकी परीक्षा भी खूब लेते थे। इस प्रकार के परीक्षित सिखों मे से भाई मंझा का नाम विशेष उल्लेखनीय है। जब उसने गुरु जी से सिक्खी का सार्टीफिकेट (कोई कागज नहीं किन्तु आशीर्वाद) चाहा तो गुरु जी ने कहा सिक्खी प्राप्त करना कोई योंही खेल नहीं है। वह कुछ दिन रह करके अपने गॉव चला गया। उधर लोगों मे सिखधर्म की महिमा सुना कर गुरु सेवा के इरादे से फिर लौटा और कठिन से कठिन काम को खुद करने लगा। एक दिन मझा जब लकड़ी लेकर आ रहा था तो आंधी आगई और वह एक अधकूप मे गिर पड़ा। किन्तु पानी कम होने की वजह से डूबा नहीं। सिर पर लकड़ी थीं बोझ से मझा दबा जा रहा था किन्तु उसने गट्ठर को नहीं पटका और उस समय तक बोझ मरता रहा जब तक कि खबर मिलने पर गुरुजी और दूसरे सिखों ने उसे निकाल न लिया। निकलने से पहले उसने कहा, मेरे सिर पर लकड़ी है मैंने इन्हें इसलिये नहीं भीगने दिया है कि लंगर की चीज़ है। गुरु जी उसके इस प्रकार के प्रेम से बड़े खुश हुये और उसे सच्चा भक्त समझ कर सिक्खी बख्शी।

कनिघम ने गुरु अर्जुनदेव जी के लिए लिखा है कि गुरु नानक के अभिमत को ज्यों का त्यों पालन करने-कराने पर उन्हाने बड़ा जोर दिया"। बात है भी ऐसी ही। एक दिन उनसे कुछ सिखों ने पूछा कि गुरु जी ग्रहों के सम्बन्ध में आप हमे क्या नसीहत देते हैं। इन्हे मानना चाहिये या नहीं। गुरु अर्जुनदेव जी ने बिल्कुल गुरु नानकदेव जी की भॉति जवाब दिया —

"सूख सहज आनन्द घणा हरि कीरतम गुण गाउ।
ग्रह निवारे सति गुरु दे आपण नाउ ॥१॥
बलिहारी गुरु आपणे सदसद बलि जाउ।
गुरु विटहुँ हउँ वारिआ जिस मिल सच सुआइ ॥२॥
सगुन अप सगुन तिस कउ लगहि जिस चीतन आवै।
तिस जम नेडे न आवई जेहरि प्रभु भावै ॥३॥
पुन्न दान जप तप जिते सब ऊपर नाम।
हरि हरि रसना जो जपै तिस पूरन काम ॥४॥"

कुछ दिन के बाद गुरु अर्जुनदेव जी ने एक दूसरा सरोवर बनवाया। जो सतोपसर के नाम स मशहूर है। सतोख नाम का एक अरोडा गुरुओं का भक्त था उसने सौ मुहरें इस सरवर के बनवाने के लिये दी थीं। इसलिये उसी के नाम पर इसका नाम रखा गया। इस सतोप-सर पर भी मेला लगना आरम्भ हो गया और उस इलाके की श्रद्धा को बढ़ाने मे सहायक हुआ।

संतोषसर

सुयोग्य सिखों ने गुरु अर्जुनदेव जी की कीर्ति को दूर दूर और छोटे से छोटे आदमी से लेकर राजा और रईसों तक पहुँचाया। मडी के राजा हरिसैन ने भाई कल्याण से ही प्रथम बार गुरुजी का प्रताप सुना था इसलिये गुरुजी के दर्शन करने की उसकी इच्छा हुई और वह गुरुजी के दर्शन करने के लिये अमृतसर हाजिर हुआ।

जिस समय मडी नरेश हरिसैन गुरुजी के दर्शनों को पहुँचा उस समय वहाँ "ओंकार" का पाठ हो रहा था। पाठ समाप्त होने पर राजा गुरुजी से मिला। उसने भाग्य सम्बन्धी कुछ प्रश्न किये। जिनका गुरुजी ने संतोषजनक उत्तर दिया।

अमृतसर और सतोखमर के सरोवरों के बाद गुरुजी ने तरनतारन स्थान पर एक सरोवर और खुदाया तथा एक नगर भी बसाया। पहले उस स्थान पर कोई नगर न था। हाँ ग्राम पास थे। वहाँ पर जल कष्ट भी बहुत था। लोगों ने कई बार उनकी सेवा में हाजिर होकर अर्ज की थी। अत सवत् १६४७ के वैसाख मे बस्ती आबाद की गई और सवत् १६४८ में तालाव को पक्का करने के लिये इटें पकाई गई किन्तु उन्हे यहाँ का एक सरगना मुसल-मान अमीरुद्दीन अपने मकानों के वास्ते उठवा ले गया। सिखों ने जब यह शिकायत गुरुजी से की तो उन्होंने कहा आप चिन्ता नहीं करें वह समय आरहा है जब आपके ही आदमियों से ऐसे लोगों के प्राण जायेंगे। वह दिन पजाब मे आया भी और तालाब की इटें भी वापिस हुई। सवत् १८३०में सरदार बुध-सिंह जाट फैजुलपुरिया ने उस महल को ढहवा दिया और सारी ईटें तरनतारन के तालाब को पक्का करने के लिये भिजवा दीं।

तरनतारन

इस पवित्र तीर्थ के लिये महाराज रणजीतसिंह और नौनिहालसिंह जी ने भी पूरी सहायता दी। यहाँ पर हर महीने बड़ा भारी मेला लगता है। यह तीर्थ एक प्रकार से सिखों का वृन्दावन है। जैसे वृन्दा-वन में यात्री और भक्त लोग बने ही रहते हैं तथा हर महीने की पूर्णमासी को परिक्रमा देते हैं। वैसे यहाँ भी सिखों का आवागमन बना ही रहता है।

जब से पृथ्वीचद के मोहन या मेहरबान नाम का लड़का हुआ था। तब से पृथ्वीचंद इस आशा से चुप रहा कि मुझे न सही तो मेरे पुत्र को तो गुरुगद्दी मिल ही जायगी। सवत् १६४६ तक इस प्रकार गृह कलह बन्द सा रहा, सवत् १६४६ मे गुरु अर्जुनदेव जी की धर्मपत्नी रामदेवी जी का स्वर्गवास हो गया। वे नि सतान ही परलोक सिधारी थीं। अब पृथ्वीचद को और भी संतोष हुआ किन्तु जब उन्होंने माता भानी जी के आग्रह से संवत् १६४७ में दूसरा व्याह[१] कर लिया तो शनै शनै फिर गृह कलह बढी। पृथ्वीचद ने स्त्री को शात करने के लिये कहा कि अर्जुनदेव के सतान नहीं होगी और किसी दिन हमारे ही पुत्र को तो यह गुरुगद्दी मिल जायगी, किन्तु पृथ्वीचंद की यह आशा अधिक टिकाऊ न

१ गुरु अर्जुनदेव जी की शादी एक या दो हुई ? इस सम्बन्ध में इतिहासकारों में मतभेद है।

रही और कुछ ही दिन बाद उसकी स्त्री ने गुरुपत्नी गंगादेवी जी के गर्भवती होने के समाचार अपने पति को सुना दिये।[1] उसी घड़ी से गृह-कलह बढ़ने लगी और उसने यहाँ तक भयकर रूप धारण किया कि गुरु अर्जुनदेव जी को अमृतसर छोडने के लिये उनकी माता भानी जी ने जोरदार सलाह दी। और उन्होंने अमृतसर को छोड कर कुछ दिन के लिये तरनतारन में आवास किया।

वहाँ संवत् १६५२ के आषाढ़ महीने में उनके घर एक पुत्र रत्न हुआ जिसका शुभ नाम हरिगोविंद रक्खा गया। इस खुशी के साथ ही दूसरा खुशी का समाचार यह मिला कि वजीरखा की अदालत मे जायदाद बँटवारे का जो दावा पृथ्वीचंद ने किया था वह खारिज हो गया है।

पृथ्वीचद अपने दूषित इरादों से अभी तक बाज नहीं आ रहा था। उसने शोभा दाई को तैयार किया कि वह गुरु के साहबजादे को विष दे दे। लोभ मे आकर दाई ने स्तनों से विष लगा लिया और साहबजादे को पिलाने का मौका देखने लगी किन्तु सूक्ष्म छिद्रों मे होकर विप दाई के शरीर मे रम गया। उसके हाथ पैर लडखडाने लगे और थोडे समय मे ही मर गई। किन्तु उसके मरते मरते पृथ्वीचद की इस करतूत का पता चल गया। यहां यह ध्यान रहे कि इन दिनों गुरु अर्जुनदेव जी अमृतसर ही रहते थे क्योंकि सिख लोग उन्हे वापिस ले आये थे।

इस प्रकार के कृत्यों से शिष्य लोग बहुत बिगड़े और पृथ्वीचद को बहुत बुरा भला कहने लगे। परिस्थिति को एकदम अपने विरुद्ध जानकर पृथ्वीचंद अमृतसर को छोड़ गया और उसने अपनी ससुराल होहर मे जाकर अपने रहने के लिये मकान बना लिये। वहाँ उसने अमृतसर के ढग का एक तालाव भी बनाने की कोशिश की और अपना पथ भी चलाना चाहा किन्तु सफलता नहीं मिली।

यात्रा

संवत् १६५६ मे गुरुजी ने लाहौर की यात्रा की। वहाँ के सतसगी बहुत प्रार्थना कर रहे थे लाहौर पहुँचकर अपने उपदेशोंसे आपने हजारों आदमियों को सतुष्ट किया। उनके उपदेशसे पठान भी संतुष्ट हुए। यहाँ पर गुरुजी ने अपने एक शिष्य के रुपये से डब्बी बाजार मे एक बावली बनवाई और एक धर्म स्थान भी। आठ महीने तक बराबर गुरुजी लाहौर मे रहे, इन दिनों मे अनेकों लोगों को अपना शिष्य बनाया।

लाहौर से चलकर गुरुजी गुरु नाननकदेव की जन्मभूमि ननकाना साहब पहुँचे। वहाँ लोगो को उपदेश और दर्शन देकर रावी किनारे के मन्नर नामक गाँव मे जा पहुँचे जहाँ भाई गुन्दारा नामक संत ने उनकी खूब सेवा की। यहा से चलकर भँवर गाँव में जाकर विराजे। यहाँ एक खत्री साहूकार कुष्ठी था उसकी प्रार्थना पर उसे आपने बताया कि लाल चन्दन शहद मिलाकर खाने से तेरा रोग चला जायगा। दो महीने मे उसका रोग चला गया। यहा से चलकर गुरुजी चूनिया मे चौधरी चूहड़मल के यहाँ जाकर ठहरे। यह जाट जमींदार उस समय कई गाँवो का मालगुजार था, गुरुजी की इसने खूब आवभगत की। यहां भी अनेको लोगों को आपने रोग निवारक उपाय बतलाये और इसी प्रकार अनेक गाँवों मे उपदेश देते हुये तथा दुखियों के कष्ट दूर करते हुये सवत् १६५५ वि० वैसाख महीने मे अमृतमर वापस आ गये।

कभी-कभी गुरु के शिष्यो से अन्य सम्प्रदायो के लोगों की मुठभेड़ भी हो जाती थी। किन्त वाद-

१. बाबा बुड्ढा का आशीर्वाद था कि गंगादेवी सतानवती होंगी।

विवाद में वे पूरे उतरते थे। ऐसीही एक घटना इस प्रकार है। "महेशनाथ नाम का योगी अमृतसर के इलाके में आ निकला और गरुडशकर नामक गॉव में ढिंढोरा पिटवा दिया कि मुझे महादेवजी ने स्वप्न में कहा है कि जो कोई तेरा भक्त बनेगा उसे एक वर्ष का कैलाशवास मिलेगा। सैंकड़ों लोग उसके चरनों में सिर झुकाने और भेंट चढ़ाने लगे किन्तु भाई तिलका उसके पास तक नहीं गये। और उलटा यह किया कि जब जोगी खुद ही उनके घर पर आया तो भाई जी घर मे घुस गये और किवाड़ लगा लीं। जोगी ने पूछा तू हमारे दर्शन क्यों नहीं करता है तो तिलका ने जवाब दिया तुम्हारे दर्शन मे घाटा है, लाभ नहीं। मैं वह काम कर रहा हूँ, जिससे सीधा मुक्ति धाम को चला जाऊँ और मेरे गुरु ने जो मुझे रास्ता बताया है उस पर मुझे विश्वास है। मेरा मनोरथ पूरा होगा। तुम्हारे दर्शन करने से एक वर्ष मुझे व्यर्थ ही कैलाश में भटकना पडेगा, जोगी तिलका की इस प्रकार की तर्क-युक्त वार्ता सुनकर बडा स्तम्भित हुआ। उसने कहा अच्छा चल तू अपने उस गुरु के पास मुझे ले चल, जिसका तू चेला है। कहा जाता है कि गुरु अर्जुनदेव जी के पास जाकर और उनकी शिक्षाओं को सुनकर —जो उन्होंने अहकार को छोड़ कर ईश-भक्ति में लीन हो जाने के सम्बन्ध में दी थीं—जोगी बडा प्रभावित हुआ और शिष्य बन गया।"

अमृतसर की महिमा बराबर फैलती जा रही थी और इसके यश ने बडे-बडे साधु महात्माओं तक को अपनी ओर आकर्षित किया था। बाबा श्रीचंद जी भी जो उदासी वृत्ति के सत थे, सवत् १६५७ वि० में अमृतसर को देखने के लिये आये। गुरु साहब ने उनका खूब स्वागत सत्कार किया। महात्मा श्रीचद जी अमृतसर को और वहाँ की व्यवस्था को देख कर बडे प्रसन्न हुए।

श्रीचदजी का प्रसग

सहस्र गॉव में सगतों का एक बड़ा जमघट हुआ गुरु अर्जुनदेव जी भी उसे देखते हुए बारठ गॉव में जहा कि श्री श्रीचद जी रहते थे पहुँचे। इन दिनों गुरु अर्जुनदेव जी ने एक बहुत सुन्दर और अद्भुत रचना की थी, जो सुखमनी साहब के नाम से मशहूर है। वह आपने श्रीचद जी को भी सुनाई जिसे सुनकर श्रीचद जी बहुत प्रसन्न हुए।

सुखमनी सा० की रचना

गुरुजी के इन प्रवास के दिनों में पीछे पृथ्वीचंद ने एक और ऊधम किया और वह यह कि अपने दोस्त सुलाही खा मनसबदार को अमृतसर पर चढ़ा लाया। माता गगाजी ने जब यह हाल देखा तो वे रथ पर सवार हो गुरु जी के पास रवाना हो गईं। इससे कोई झगड़ा नहीं हुआ।

गुरु जी के यात्रा से अमृतसर में वापस पहुँचने पर लाहौर का नायब वजीरखा उनकी सेवा में हाज़िर हुआ। वह बड़ा धर्मप्रिय आदमी था, कहा जाता है कि लाहौर के दिल्ली दरवाजे के अन्दर जो मस्जिद है, वह इसी की बनवाई हुई है। यह गुरु रामदास जी साहब के समय से ही गुरु घराने का प्रेमी था। इस समय इसके जलोदर का रोग था। हजारों रुपये खर्च करने पर भी चंगा न हो सका तो बड़ी आशाओं के साथ बेचारा गुरु जी की सेवा में हाज़िर हुआ। गुरु अर्जुनदेव जी उस समय दु ख भजनी नामक बेरी के पास थडे साहिब के ऊपर बैठे हुए थे। उन्होंने वज़ीरखा के प्रेम और दु ख से प्रभावित होकर बाबा बुड्ढे को बुलाया। कहा जाता है बाबा बुड्ढा ने उसकी पीठ पर गारे की भरी हुई टोकरी ज़ोर से पटक दी। उसी से उसका मल छूट निकला और वह चगा हो गया। मिट्टी से जलोदर के इलाज मे विश्वास रखने वाले लोग अवश्य ही बाबा बुड्ढा के इस चमत्कार को पढ़कर प्रसन्न होंगे। वजीरखाँ इस प्राणनाशक रोग से मुक्त होकर कई दिन अमृतसर

वजीरखाँ का प्रसग

रहा और गुरु जी के उपदेशों से लाभ उठाता रहा। 'सुखमनी' की प्रार्थना सुनते हुए वह आनन्द विभोर हो जाता था। अत. जब विदा हुआ तो गुरु जी से प्रार्थना की कि महाराज मुझे ऐसा एक शिष्य दीजिये जो मेरे पास रह कर नित मुझे 'सुखमनी जी साहब' का पाठ सुनावे और कड़ाह प्रसाद बना लिया करे। गुरुजी ने उसकी इस प्रार्थनापर भागू नामक शिष्य को वजीरखॉ के साथ भेज दिया, कहा जाता है जीवन पर्यन्त वजीरखॉ सुखमनी साहब का नित प्रात पाठ सुनता रहा।

एक ओर जहॉ गुरुओं के प्रति इस प्रकार की गाढ़ी श्रद्धा लोगों में पैदा हो रही थी, दूसरी ओर कुछ लोग जलते भी थे। एक दिन एक ब्राह्मण ने कहा था देखो कलजुग मे खत्री तो पूज्य बन गया है और ब्राह्मण जो सदा से वन्दनीय चले आये हैं, उनके सामने कोई सिर भी नहीं झुकाता है। इस पर गुरु जी ने हंसते हुए कहा था, तो क्या दम्भ के आगे भी सिर झुकाना चाहिये ?

राज्य का आधार, कानून और धर्म का आधार, धर्म ग्रन्थ होता है। गुरु नानकदेव जी की वाणियां गुरु अगददेव जी संग्रह करा गये थे किन्तु अन्य गुरुओं की वाणियां अभी तक सग्रह नहीं हुई थीं और गुरु नानक जी की भी जो वाणियां संग्रह थीं। वह उनकी जीवन घटनाओं के साथ-साथ थीं। अत सभी गुरुओं की वाणियों को एक ही स्थान पर संग्रह करने और ग्रन्थाकार बना देने की बड़ी जरूरत थी। गुरु अर्जुनदेव जी ने अपनी विलक्षण बुद्धि से इसी महान् कार्य को जरा सा अवकाश झगड़ों से मिलते ही आरम्भ कर दिया।

गुरु ग्रन्थ साहब की रचना

उन्होंने देश देशान्तरों के परिचित और योग्य सिखों के नाम आज्ञा पत्र जारी किये कि तुम लोगों के पास स्मृति मे अथवा लेख रूप मे जो भी गुरु शब्द हों वह या तो लिखकर भेज दो या यहॉ आकर लिखा जाओ। इस आज्ञा पत्र के जारी होने के बाद सैंकड़ों सिख गुरु जी की सेवा में हाज़िर हुए कुछ लोग लिखी हुई वाणियॉ साथ भी लाये।

इस तरह से इस आरम्भिक कार्य्य को पूरा करके गुरु अर्जुनदेव जी ने ग्रन्थ बनाना आरम्भ किया। इस पवित्र काम के लिये उन्होंने अमृतसर तीर्थ से पूर्व दिशा में एक मील के फासले पर बेरियों के उद्यान में तम्बू तनाये।[1]

सिख समाज के लिये धार्मिक ग्रन्थ की आवश्यकता से प्रेरित होकर ही तो गुरु अर्जुनदेव जी ने ग्रन्थ साहब की रचना की थी किन्तु इसके भी सिवा एक दूसरा कारण ऐसा था कि गुरु वाणियों का संग्रह शीघ्र ही करना आवश्यक हो गया। बात यह थी कि पृथ्वीचन्द ने समानान्तर अपना समाज खड़ा कर लिया था और उसके पुत्र तथा अनुयाई अलग से वाणियों की रचना भी कर रहे थे। जिनमे नानक नाम का ही कर्त्ता लगाते थे। गुरु अर्जुनदेव जी के लिये यह आवश्यक हो गया कि वे अब तक के गुरुओं की वाणियों का एक ग्रन्थ में संग्रह करदे ताकि उनके सिद्धान्तों के विरुद्ध पृथ्वीचन्द जी या अन्य किसी की वाणियों से लोग सावधान हो जावें। (पृथ्वीचन्द जी की कुछ वाणियों का सग्रह सरदार गडासिंह जी के पास मौजूद है।)

इस प्रकार ग्रन्थ साहब की रचना करके गुरु अर्जुनदेव जी ने न केवल एक कमी को पूरा किया बल्कि गुरु सिद्धान्तों में जो खिचड़ी पृथ्वीचन्द की रचनाओं से हो जाने की आशंका थी, उससे भी सदा के लिये दूर कर दिया।

१. श्री सुखमनी साहब जी की रचना भी यहीं हुई थी।

गुरु अर्जुनदेव ने इन दिनों एक काम यह और किया कि अपने शिष्यो पर नियमित रूप मे भेट बांध दी। परमार्थ के काम ज्यों ज्यों वढ़ते हैं। त्यों त्यों धन की भी आवश्यकता होती है। अत यह आवश्यक ही था कि शिष्यों पर उनकी सामर्थ्य के अनुसार कुछ भेट मुकर्रिर की जाय। भेंट की वसूली का काम मजियों के अधिकारियों और मसन्दों के सुपुर्द किया यह भेंट कोई कर न होकर सिखों द्वारा स्वत निर्धारित की गई थी। और जिसे कि कोई भी मंजीधर या मसन्द अपने लिये इस्तेमाल नहीं करके गुरु जी का माल समझ कर उनके पास पहुँचा देता था। इन दिनों गुरु जी का एक नया दुश्मन चन्दू और खडा हो गया जिसकी लड़की का सिक्का लेकर ब्राह्मण नाई लड़का ढूंढ़ते २ अमृतसर आ पहुँचे, उन्होंने गुरु जी के भी घर वार को देखा, जव दिल्ली लौट कर गये तो उन्होंने सलाह दी कि गुरु अर्जुनदेव जी के शाहजादे श्री हरिगोविन्द सव प्रकार से आपकी लडकी के योग्य हैं। अभिमानी चन्दूशाह ने कहा "वैसे तो तुम मोरी की ईंट को चौवारे पर लगा रहे हो।" क्योंकि कहाँ में दिल्लीश्वर का कृपापात्र चन्दूशाह और कहाँ भीख पर गुजर करने वाला अर्जुनदेव। किन्तु खैर जाओ उसके यहाँ ही कर आओ। यह खवर दिल्ली के शिष्यों ने गुरु जी के पास भी पहुँचा दी और लिख भेजा, ऐसे अभिमानी की लड़की की शादी को गुरु जी हरगिज स्वीकार न करें। स्वाभिमानी गुरु अर्जुनदेव जी साहव ने नाई ब्राह्मणों को वापिस कर दिया।

फिर कलह

एक समय जव कि ग्रन्थ साहव की रचना हो रही थी वादशाह अकवर के पास कुछ लोगों ने शिकायत की कि अर्जुनदेव एक ऐसा ग्रन्थ रच रहे हैं जिसमें इस्लाम और हिन्दू धर्म की तौहीन है। वादशाह ने इस वात की जाँच के लिये गुरु अर्जुनदेव जी के पास आदमी भेजा कि वे ग्रन्थ साहव समेत मेरे पास पधारे। गुरु जी स्वयम तो नहीं गये किन्तु वावा वुड्ढा और भाई गुरुदास जी को ग्रन्थ साहव लेकर भेज दिया। वादशाह ने वड़ी इज्जत के साथ उन लागों को अपने पास विठाया और कहा आप मुझे इसे पढ़कर सुनावें। वावा वुड्ढे ने खोल कर पढना शुरू किया —

ग्रन्थ साहव की शिकायत

"खाक नूर करदन आलम दुनियां।
आसमान जिमीं दस्त आव पैदायश खुदा॥
वन्दा चश्म दीव न फना।
दुनियां मुरदार खुरदनी गाफिल हुवा॥
गयवान हयवान हराम कशतनी मुरदार वखारोहि
दिल कवज कवजा कादरो दोजख सजाइ॥
दिली नियामत विरादरा दरवार मिलक खानाइ।
जव अजराईल, वसतनी तव चिकारे विदाइ॥
हवाल मालूम करद पाक अलाह।
वगो नामक अरदासि पेसि दरवेश वन्दाह॥"

इस पर वादशाह ने ग्रन्थ साहव के कुछ पन्ने खुद पलट कर एक जगह उंगली रखकर कहा अच्छा यहाँ से पढिये। वावा वुड्ढे ने फिर पढ़ा —

"अलह अगम खुदाई वन्दे, छोड खयाल दुनिया के धधे।
होइपै खाक फकीर मुसाफर, इहु दरवेसु कवूल दरा॥ १॥

"सचु निवाज यकीन मुसला, मन मा मारि निवारिहु आसा।
देह मसीत मनु मौलाणा कलम खुदाई पाकु खरा ॥२॥"

चुगलों को इतने पर संतोष नहीं आया और कहा हम चाहते है किसी आदमी से पढ़वाया जाय जो शिष्य न हो, हमारा तो अनुमान है कि इसमें इस्लाम और हिंदू धर्म की अवज्ञा के साथ ही बुत परस्ती भी है। बादशाह की आज्ञा से मुन्शी सर्वदियाल ने दो स्थलों पर पढ़ा। एक स्थल पर लिखा मिला —

"कोई बोलै राम राम कोई खुदाइ।
कोई सेवै गुसाइआ कोई अलाहि ॥
कारन करन करीम, किरिपा धारि रहीम ॥

दूसरे स्थल पर पढ़ा —

"घर में ठाकुर नजर न आवै, गलमें पाहन लै लटकावै।
भरमें भूला सकित फिरता, बीर विरलो खप खप मरता ॥
जिस पाहन को ठाकुर कहता, सो पाहन ले उसको डूबता।
गुनहगार वा लून हरामी, पाहन नाव न पार गरामी ॥
गुरु मिलि नानक ठाकुर जाता, जल थल पूरन पुरुष विधाता ॥

इन शब्दों को सुनकर बादशाद को दृढ़ निश्चय हो गया कि शिकायत करने वाले बिल्कुल झूठे हैं और यह ग्रंथ सतग्रन्थ है, अत उसने ५१ अशर्फी ग्रन्थ साहब पर भेंट कीं। भाई बुड्ढे और गुरुदास को विदा किया। पजाब से लौटते वक्त बादशाह गुरु साहब के दर्शनों को स्वयम गोइन्दवाल पहुँचा। और गुरुजी के स्वभाव और उपदेशों का उस पर ऐसा असर पड़ा कि उसने गुरुजी से साग्रह कहा कि महाराज मेरे लायक कोई खिदमत जरूर फरमाइये। इस पर गुरु जी ने कहा —हम अपने लिये तो कुछ नहीं चाहते किन्तु यहीं शाही फौजों के पड़ाव के समय वस्तुओं की अधिक खपत से लोगों की आमदनी अच्छी हो गई थी इसलिये उस पर टैक्स बढ़ा दिये गये थे। अब चूंकि शाही सेना यहाँ से जा चुकी है इसलिये उनकी आमदनी कम हो जाने के कारण बढ़ाये हुए टैक्सों को अदा कर सकने मे असमर्थ हैं और जिसके कारण उन्हे दु खों का सामना करना पड़ रहा है। यदि उन बढ़े हुए टैक्सों को हटा दिया जाय तो लोगों का दुख दूर हो सकता है। बादशाह ने उनकी दयनीय आज्ञा को स्वीकार करके आमिलों को हुक्म कर दिया कि बढ़े हुए टैक्स हटा दिये जॉय।

बादशाह अकबर के बाद उसका लड़का सलीम जहॉगीर नाम धारण करके गद्दी पर बैठा। खुसरो कई अनिवार्य कारणों से अपने बाप जहॉगीर से नाराज़ हो कर विद्रोही हो गया।[1] बादशाह जहॉगीर को

राजद्रोह

जब उसकी खबर लगी तो उसने एक ओर तो पंजाब के हाकिमों और जागीरदारों को उसके विद्रोह की सूचना दी दूसरी ओर खुद भी उसका पीछा करने की तैयारी की। "तुज़क जहॉगीरी" में खुद जहॉगीर ने बताया है कि मैंने अमुक तारीख को आगरा से कूच किया। अमुक तारीख को अमुक मुकाम पर पहुँचा। सन् १०१५ हिजरी की १७ वीं जीउल हजा को वह कर्नाल आ पहुँचा था। यह सन् जहांगीर सन् का पहला वर्ष था। इसी सन् की २४ वीं

१. अपने लिए बादशाही का एलान किया।

फर्वरी को बादशाह के पास सूचना आई कि खुसरो लाहौर की ओर धावा करने की गर्ज से बढ़ रहा है। अत. जहांगीर ने अपने कुछ सरदार लाहौर भेज दिये। लाहौर में खुसरो ने हलकी सी लडाई की किन्तु उसे पता चला कि जहांगीर भी यहीं आ रहा है। तब वह मय अपनी फौज के वहां से चल दिया किन्तु बाद में वह जहाँगीर के लश्कर द्वारा पकड लिया गया।

लाहौर में आकर जहाँगीर ने उसके साथियो को बुरी तरह से मरवा डाला।

जब वह लाहौर से चल रहा था उसके पास शिकायत हुई कि खुसरो को मदद देने वालों में एक अर्जुनदेव भी हैं। जो गोइन्दवाल मे रहते हैं।[1]

गुरुजी गिरफ्तार किये गये और बादशाह ने यातनायें देकर मारने का हुक्म दिया। इसके बाद वह लाहौर से चला गया। गुरुजी को जो कष्ट दिये वे बड़े रोमाचकारी हैं उनके शरीर पर उबलते हुये पानी को डाला गया। गर्म तवों पर बिठाया गया। पर उन्होंने अपने धर्म की रक्षा के लिने सब कुछ विना आह किये बर्दाश्त किया। उनके सारे शरीर मे फफोले पड़ गये। यातनायें देने वाले इतने से ही संतुष्ट न हुए वे उन्हे और भी दुख देना चाहते थे अत. रावी के किनारे ले जाकर उन्हें पानी में डुबकियाँ दी गई। जहाँ गुरु अर्जुन देव के प्राण इस शरीर को छोड़ गये।[2]

रावी के किनारे हजारों सिखों और हिन्दुओं ने गुरुजी की इस शहीदी को देखा। सबके हृदय दहल गये। गुरुजी का शव सिख लोगों ने लेकर किले के सामने संस्कार कर दिया। जहाँ उस स्मृति में आज एक विशाल गुरुद्वारा देहरासाहब के नाम से बना हुआ है।

यह समाचार बिजली की भाँति सारे पंजाब में व्याप्त हो गया। सिख तिलमिला उठे।[3]

गुरु अर्जुनदेव जी के कार्यों पर प्रकाश

सिख समाज का निर्माण बराबर होता जा रहा था और गुरु नानकदेव जी का प्रत्येक अनुवर्ती गुरु उसमें कुछ न कुछ ऐसे कार्य और साधन जोड़ देता था जो सिख समाज को पूर्णता का रूप देने में सहायक हो सकें किन्तु अधिकाश इतिहासकारों का मत यही है कि सिख समाज का पहला निर्माता गुरु अर्जुनदेव ही था। कहने मे अशत सचाई है और वह यह कि गुरु अर्जुनदेव जी ने जो सविधान सिख समाज की रचना के लिये बनाया, उसमें कुछ कार्य तो बहुत ही विशिष्ट श्रेणी के हैं इन पृष्ठों में हम उन्हीं कार्यों का वर्णन करना चाहते हैं।

ग्रंथ साहब की रचना

उनका एक अत्यन्त ही आवश्यक कार्य था ग्रंथ साहब की रचना का। भला जिस सम्प्रदाय के पास उसका धर्म ग्रन्थ न हो, वह कैसा धर्म और कैसी सम्प्रदाय। वैसे संसार में ऐसे भी धर्म पंथ हैं जिनके पास कोई भी धर्म पुस्तक नहीं है किन्तु उनका कोई समान आचरण भी तो नहीं है।

१. कुछ सिख इतिहासकार लिखते हैं कि गोइदवाल के मुकाम से गुजरता हुआ खुसरो गुरु जी से मिला था, और हरि मन्दिर पर कुछ रुपये भी चढ़ाये थे।

२. संवत् १६६३ जेष्ठ सुदी ४।

३ मैकालिफ ने यद्यपि उसे महकमा रेवेन्यू का अफसर बताया है किन्तु निश्चित नहीं कहा जाता कि वह किस पद पर था।

अब तक सिख समाज गुरु नानकदेव जी महाराज की जन्म साखी पर अवलंबित था किन्तु उसमे कथा भाग और उपदेश भाग दोनों सम्मिलित थे। वैसे संसार मे ऐसे भी मजहब है जिनमे कथा भाग और उपदेश भाग दोनों ही होते हैं। बाइबिल, और कुरान ऐसे ही धर्म ग्रन्थों मे से हैं। जिनमे उपदेश के साथ ही उन महापुरुषों के जीवन सम्बन्धी तथा अन्य एतिहासिक कथाये भी जुड़ी हुई है। अपने देश मे पुराण भी इसी प्रकार के है। किन्तु भारत के प्राचीन धर्म पुस्तकों मे प्रत्यक्ष रूप मे कथा भाग कुछ भी नहीं है। और जो है भी वह उदाहरण और प्रमाण स्वरूप है। वेद और उपनिषदे ऐसे ही धार्मिक ग्रन्थ हैं। गुरु अर्जुनदेव साहब भी जहाँ तक हम समझते है—धर्म ग्रन्थ को केवल उपदेश भाग ही रहने देना चाहते थे—और यही उचित भी था। अत उन्होंने "गुरु ग्रन्थ साहव" की रचना की। रचना की वजाय यदि हम सम्पादन करना कहे तो और भी उपयुक्त होगा। उन्होंने अपने पूर्ववर्ती समस्त गुरुओ की वाणियों[1] को सग्रह किया और अपनी रची हुई वाणियों को भी उसमे शामिल कर दिया।

उनके इस कार्य से सिख समाज के सामने एक निश्चित रूप मे उनका धार्मिक ग्रन्थ उपस्थित हो गया। पहले से प्रचलित प्राय. सभी पौराणिक ग्रंथों से खिंच कर उनका दृष्टि बिन्दु इसी पवित्र ग्रंथ पर केन्द्रित होने लगा।

साथ ही समाज की पूर्णता के लिये कथावाचकों की जो आवश्यकता होती है। ग्रंथ साहव के वनने से वह 'ग्रन्थी' के रूप मे प्रकट होने लगे। और आगे चलकर कुछ कम वेश उन्होंने पुरोहितों का स्थान ले लिया। दूसरा काम था उनका अमृतसर (तड़ाग) का निर्माण करना। यद्यपि इससे पहले बावली साहव का निर्माण हो चुका था किन्तु अमृतसर मे कुछ और भी विशेषताये थी। यदि वावली साहव को हम कुरुक्षेत्र और अमृतसर जी का हरिद्वार का प्रतिस्पर्धी कहे तो कोई भी हर्ज नहीं होगा।

अमृतसर के बाद तरनतारन और सतारवसर के सरोवर हैं। जिन्होंने सिख समुदाय मे स्वधर्म भावना को पुष्ट करने मे मदद पहुँचाई।

प्रत्येक धर्म के अनुयायी अपने २ धर्म की कोई नींव या आधार शिला बनाया करते है। जो उसे बढ़ाने मे भी सहायता देती है। इस्लाम धर्म का यदि रणबाके अरबों और पठानों की तलवार ने फैलने मे मदद दी थी और बौद्ध व ईसाई धर्म को उसके आचार्यों की वेमिसाल सहनशीलता ने वढ़ाया था और ब्राह्मण धर्म को तरक्की उनकी विलक्षण बुद्धि के कारण हुई थी तो हम कहेंगे आरम्भिक काल मे सिख-धर्म परोपकार की उत्कट भावना की भित्ति पर और उत्तर काल मे महान बलिदानों के आधार पर फलाफूला था। गुरु अर्जुनदेव जी के समय तक गुरुओं की परोपकार वृति ने उसे उत्तेजन दिया। प्राय जो कुछ उनके पास आता, उसे लंगर में गरीबो की सहायता मे खर्च करना और खुद खेती कराके उससे गुजर करना तथा जगह-जगह धर्मशाला वावली और सरोवर बनवाना, उनके महान कार्यों से लोग वलात उनकी ओर आकर्षित होते थे।

गुरु अर्जुनदेव जी ने एक तीसरा काम हरि मन्दिर और अमृतसर तथा तरनतारन आदि नगर वनवाकर किया। अब तक गुरु लोग जो स्थान वनवाते थे वह धर्मशाला कहलाते थे। जिनके एक भाग मे गुरु और उनका परिवार, एक भाग मे लंगर और एक भाग मे प्रमुख शिष्यों का वासगृह होता था, जो एक हद तक पूर्ण सुविधाजनक स्थान नहीं कहा जा सकता था और जहाँ एक स्थान से उठकर गुरु लोग

१ कुछ लोगो का कहना है कि समस्त वाणियो का नहीं किन्तु खास-खास वाणियो का ही सग्रह किया गया।

दूसरे स्थान पर चले जाते थे। वहीं उनकी संगति भी चल निकलती थी। पहले स्थान का कोई विशेष महत्व न रहता था। हरि मन्दिर के बनाने से गुरुओं का अमृतसर ही सबसे बड़ा गुरुद्वारा और स्थिर महास्थान बन गया। पूजा पाठ के लिये गुरुद्वारा गृहस्थ घर से अलग स्थान हो गया।

गुरु अर्जुनदेव जी का बनवाया हुआ यह हरि मंदिर अथवा स्वर्ण मंदिर आज भारत और भारत से बाहर देशों में भी अद्भुत स्थानों में गिना जाता है।

उस समय के रामदासपुर, अमृतसर और हरि मन्दिर के वृतान्तों को पढते हुए हमें प्रजातान्त्रिक लोगों की राजधानी वैशाली की याद आ जाती है। वहाँ के सात हजार, सात सौ, सात गृहपति राजा कहलाते थे। उस नगरी में कोई भी भूखा नंगा और असमान हालत में न था। उनका एक विशाल संस्थागार था। जिसमें वे इकट्ठे होकर अपने राज्य और समाज के लिये नियम बनाते थे। उनके हास्यप्रमोद और आमोद के लिये नगर के बाहर उपवन और उद्यान थे। उस नगर में सभी लोग समृद्धिशाली सभी शिष्ट और सभी प्रसन्न चित्त वाले थे। यही सब कुछ, कुछ ही उलट फेर के बाद गुरु के चक अथवा रामदासपुरमें था। इससे सिखोंके बौद्धिक, आत्मिक और आर्थिक सभी प्रकारके विकासोंको प्रोत्साहन मिला।

इनके अलावा दो काम और भी थे जो गुरु अर्जुनदेव जी द्वारा ही प्रचारित हुये और जिन्होंने सिख समाज को पुष्ट और संगठित होने मे काफी मदद दी। शिष्य लोगों पर कोई नियमित लाग न थी। गुरु अर्जुनदेव जी ने आमदनी का कुछ अंश दान पुण्य मे देने के लिये सिखों को उत्साहित किया जिसे उन्होंने बड़े प्रेम से स्वीकार कर लिया। यह काम मझियों के प्रधानों एवं मसन्दों एव विशिष्ट शिष्यों को सौंपा गया है।

इस प्रकार की सारी आमदनी उन्होंने परोपकार और दीन दुखियों की सेवा मे ही खर्च की। इस तरह इस साधन से भी सिख समाज की रचना मे कुछ कम सहायता नहीं मिली।

गुरु अर्जुनदेव जी ने शिष्यों को एक और प्रोत्साहन दिया, वह था घोड़ों आदि के व्यापार का। शिष्यों के गिरोह काबुल-कंधार तक जाकर घोड़े और दूसरी चीज खरीदते और उन्हे पंजाब दिल्ली और पटना तक बेचते। इस आयोजन से सिखों मे व्यापार करके सम्पन्न होने की तो प्रवृत्ति आई ही इसके अलावा अनेकों लाभ हुए, उनमें से कुछ प्रत्यक्ष लाभ तो हमे यह जान पड़ते हैं (१) इन लोगों ने जहाँ भी गये अपने धर्म और गुरुओं की कीर्ति को फैलाया (२) देश विदेश की यात्रा-करने से राजनैतिक और सामाजिक स्थितियों से परिचित हुए (३) घोड़ों का व्यापार करने से अच्छे घोड़ों की परख आई और सवारी करना सीखे तथा घोडे की सवारी का शौक पैदा हुआ। (४) रास्ते में डाकू और लुटेरों के भय से बचने के लिये अच्छे २ हथियार साथ रखने के कारण हथियारों के प्रति रुचि बढ़ी।

यद्यपि यह बातें गुरु अर्जुनदेव जी के समय में काम न आ सकीं किन्तु बीज तो जम ही गया। जिसने एक शताब्दी में वह रूप धारण किया कि अटक से कटक तक सिखों की बहादुरी से सारा देश पूरित होगया।

यह कार्य थे जिनके कारण इतिहासकार कहते हैं कि गुरु अर्जुनदेव ने सिख समाज के निर्माण की नींव डाली। हम कहेंगे गुरु अर्जुनदेवजी ने सिख समाज की नींव नहीं डाली किन्तु उसकी शनैः शनैः बनती आ रही इमारत को मजबूत करने के लिये सीमेंट का आविष्कार किया।

आठवाँ अध्याय

गुरु हरिगोविन्द जी की जीवन-चर्या

गुरु हरिगोविन्द साहब का जन्म अमृतसर के नजदीक पच्छिम की ओर बडाली गॉव मे संवत १६५२ विक्रम असाढ सुदी ३ आदित्यवार को आधी रात के ढलने पर गुरु अर्जुनदेव जी के घर गंगा जी के उदर से हुआ था। बालकपन मे ही उन्होंने अपने पिता श्री गुरु अर्जुनदेव जी की शहीदी देखी। घर पर चढ़ाई करते हुये राज्य के आदमियों को भी देखा। इसी बालक पन में उन्होंने अपने कानों से यह भी सुना कि उनके पिता और सिख सम्प्रदाय के महान् गुरु अर्जुनदेव जी को नृशंसता पूर्वक मार डाला गया है। इसी उम्र में उन्होंने अनुभव किया यह जीवन संघर्षमय है। गुरुगादी के समय जब उन्हें सिख तिलक देने लगे तो वे कमर मे दो तलवारें लटका कर आये दूसरी वस्तुऐं जब आपको अर्पण की गई तो आपने उन्हे तोफाखाना मे भेज देने की आज्ञा दी और तलवारे बाधे रहे सिखों ने पूछा गुरुदेव यह क्या? आपने कहा मैं 'फकीरी और मीरी' एक साथ चलाना चाहता हूँ। इसलिये ये दोनों कृपाण धारण की है।

बाल, किशोर और तरुणावस्था

वे प्रात. शीघ्र ही उठकर स्नान ध्यान से निवृत्त होकर अखाडे मे व्यायाम करने लगे। मुग्दर फिराते और कुस्ती लड़ते दूध, मक्खन और दही खूब खाते। पांच छः वर्ष में ही वह बहुत तगडे हो गये। छोटी आयु में गुरु अर्जुनदेव जी ने शिक्षा के लिये हरिगोविन्द जी को बाबा बुड्ढा जी के हवाले कर दिया था। जिन्होंने उन्हे कुस्ती लड़ना, सवारी करना, तीरन्दाजी और तलवार आदि चलाने मे जल्दी ही निपुण कर दिया।

विवाह उन्होंने तीन किये, एक विवाह उनका गुरु अर्जुन देव जी के ही सामने कपूरथला इलाके के डला गांव के खत्री नारायणदास की सुपुत्री दामोदरी जी से संवत १६६१ वि० मे हो चुका था। उसके बाद आपके दो विवाह हुये। यह विवाह उन्होंने स्वयम् किए।

श्री दामोदरी जी की कोख से ७ बैसाख संवत १६६८ वि० मे बीबी वीरो जी अमृतसर मे पैदा हुई और इन्हीं से गुरदिता का जन्म संवत १६७० के कातिक की ८वीं को डरोली गांव में हुआ। संवत १६७५ के माघ की १६वीं को अणीराय जी भी इन्हीं से पैदा हुये। इस तरह से माता दामोदरी से गुरु जी के तीन सतानें हुई।

सताने

माता महादेवी जी से अकेले सूरजमल जी ही पैदा हुए जिनका जन्म संवत १६७४ के कातिक की २३ वीं को हुआ।

माता नानकी जी से दो पुत्र पैदा हुये। अटलराय जी कार्तिक सुदी पूर्णमासी संवत १६७६ वि मे और श्री तेगवहादुर जी माघ सुदी २ सवत १६७८ विक्रम मे।

इन सतानों में से अटलरायजी और अणीरायजी का वालकपन ही मे परमधाम प्रस्थान होगया। गुरदिता जी की औलाद करतारपुरिये और सूरजमल की सतान आनदपुरिये सोढी के नाम से मशहूर हुई।

सवत १६६५ वि मे गुरु जी ने अमृतसर दरवार के सामने एक वहुत ऊंचा चवूतरा वनवाया जिसका नाम तख्त श्री अकाल वुंगा रक्खा। इस पर वैठकर आप दोनों समय दरवार लगाते थे।

गुरु जी की इस योद्धापन की प्रकृति को देखकर मसन्दो को घवराहट हुई। उन्होंने माता श्री गगा जी के पास आकर विनती की कि गुरु जी को केवल साधु वेश मे ही रहना चाहिए। मुगल वादशाह जहाँगीर जव सुनेगा कि गुरु हरिगोविन्द जी साहव पीरी की वजाय मीरी की ओर वढ़ रहे हैं तो अवश्य ही सिख समाज और गुरु जी पर आपति आयगी। माता जी ने मसन्दो को यह कह कर सतुष्ट कर दिया कि जिनके ऊपर गुरु नानक देव जी का वरद हस्त है, उसका कोई कुछ नहीं विगाड़ सकता।

शस्त्रों का अभ्यास और सग्रह करने के अलावा गुरु जी ने शिकार खेलना भी आरम्भ कर दिया। निशानेवाजी मे सिद्ध हस्त होने और शरीर को स्फूर्तिवान वनाये रखने के लिये शिकार प्रत्येक क्षत्रिय के लिये परमावश्यक है। जव गुरु हरिगोविन्द जी साहव तपेश्वर के साथ ही राजेश्वर होने की प्रतिज्ञा कर चुके थे तो उनके लिये वे सभी काम करने ही चाहिये थे जो एक राजेश्वर के लिये आवश्यक है अत. शिकार खेलना उस उद्देश्य की पूर्ति के लिये किये जाने वाले प्रयत्नों में से ही एक प्रयत्न था किन्तु भोले भाले लोग इन वातों पर आश्चर्य प्रकट करते थे, एक दिन एक हिन्दू साधु ने उन्हे शिकार खेलते देखकर नाक भौं चढाते हुए टोका भी और कहा आप सत होकर जीव हत्या करते हैं, गुरु जी ने अपनी ओर से कुछ न कहते हुए गुरु नानक देव जी के इन शब्दों को पढ़ा:—

आखेट कर्म

"देही अन्दरि नामु निवासी। आपे करता है अविनासी॥
ना जीउ मरै न मारिआ जाई करि वेखै सवदि रजाई है॥"

गुरु जी स्वयम तो भक्ति रस की भाति ही वीर रस मे ओत प्रोत हो ही चुके थे किन्तु वे प्रत्येक सिख के हृदय मे भी वीर रस का प्रवाह जारी कर देना चाहते थे। इसलिये सांय प्रात. होने वाले हरि कीर्तन के वाद मीरासी लोगों से वीर राग भी गवाया करते थे। जिन्हे सुनकर सिखों के हृदय निर्भय, धैर्यवान और तेजपुंज होते जा रहे थे। इसके अलावा उन्होंने प्रत्येक सिख से कह दिया था कि वे अस्त्र शस्त्रों का संग्रह वरावर करते रहे।

वीर रस का प्रवाह

वैसे तो गुरु अर्जुन देव जी के समय से ही विरोधी काफी शिकायत करते चले आ रहे थे। इस समय गुरु हरिगोविन्द की वढ़ती हुई जीवन प्रणाली को देखकर जहागीर के कान भरे जाने लगे। उससे कहा गया गुरु वदला लेगा। वह रात दिन शक्ति वढ़ा रहा है। हजारों शस्त्र वन्द आदमी उसने इकट्ठे कर लिये हैं। अपने लिये उसने सच्चा वादशाह घोषित कर दिया है और अव पलग को वजाय तख्त पर राजसी ठाठ से वैठकर अपना दरवार लगाता है यदि उसके दमन में देर हुई तो मुगल सल्तनत के लिये धक्का पहुँचाने वाले दल का एक सुदृढ़ संगठन हो जावेगा। इन शिकायतों को सुनकर वादशाह ने अचानक एक वडा दल भेज कर उन्हे गिरफ्तार करा लिया और—गवालियर के किले में भेज दिया।

गुरु जी के एक लंबे अर्से तक पंजाब न पहुँचने से सिख लोगों में बेचैनी फैलने लग गई। संगते आ आकर उनके समाचार पूछने लगीं। माता गंगाजी भी घबरा उठीं, इसलिये बाबा बुड्ढा को उन्होंने गुरु जी के समाचार लेने के लिए देहली भेजा, जहाँ से वे आगरा होते हुये गवालियर पहुँचे। गुरु जी ने उनसे कहा कि महान कार्य्य की पूर्ति के लिये महान तप की आवश्यकता होती है। इस एकान्त स्थान में बड़े ध्यान के साथ परमात्मा का चिन्तन करता हूँ। बाबा तुम वापिस लौट जाओ वहाँ माता जी तथा सिख लोगों से कहना कि मैं वहाँ बड़ी प्रसन्नता से रहता हूँ। साथ ही गुरु जी ने संगतों और माता जी के पास बाबा के हाथ एक पत्र भी भेजा, जिसमें लिखा था, आप लोग कोई भी चिन्ता न करें। वह समय शीघ्र ही आने वाला है जब हम तुम्हारे पास आवेगे।

पंजाब में बेचैनी

दबिस्तान के लेखक ने सगतों का गुरु जी से प्रेम प्रकट करते हुये लिखा है कि बहुत से सिख गवालियर जाते और अगर्चे वह गुरु जी से न मिल पाते तो भी वह बाहर से नमस्कार कर के देश को लौट आते। कुछ दिन बाद भाई जेठा जी भी दिल्ली पहुँचे। उन दिनों बादशाह जहाँगीर की तबियत कुछ खराब सी रहती थी। काफी समय के बाद वजीरखाँ ने बादशाह को समझाया कि आपने व्यर्थ ही एक ईश्वर के प्यारे को गवालियर में बन्द कर रक्खा है। इससे आपका कोई भला नहीं होना है। बादशाह ने कुछ सोच विचार के साथ गुरु जी का छोड़ना स्वीकार कर लिया और वजीरखाँ गवालियर पहुँचा, बादशाह की आज्ञा जब वजीरखाँ ने सुनाई तो गुरु जी ने कहा, जिस बन्दी घर में हमें तप करने के लिये बादशाह ने भेजा था। अब वह बन्दी घर तो नहीं रहना चाहिये। हमारा यहाँ से छूटना तभी शुभ है जब यहाँ के इन बन्दी राजाओं को भी छोड़ दिया जावे। कहा जाता है कि जहाँगीर पहले तो चकराया किन्तु उन बन्दीजनों के हितैषियों द्वारा वह विश्वास दिलाये जाने पर कि वे अब कभी भी आपके प्रति बगावत नहीं करेंगे, बादशाह ने उनके छोड़ने का भी हुक्म दे दिया। गुरु जी पर अहसान यह कर लिया कि मैं तो आपके ही आश्वासन पर इन्हे छोड़ रहा हूँ।

नमस्कार

इस घटना के बाद से उधर के लोग गुरु जी को 'बन्दी छोड़ बाबा' नाम से पुकारने लग गये।

सिख इतिहासकारों और साथ ही मि० मैकालिफ ने लिखा है कि "बादशाह ने चन्दू को उचित सजा देने के लिए उसे मय परिवार के गुरु जी के ही हवाले कर दिया था।" गुरु जी के साथ ही बादशाह भी पंजाब को आया। उसे काश्मीर में स्वास्थ्य सुधार के लिये जाना था। गुरु जी ने बादशाह को गोविन्दवाल का स्थान दिखाया। जिसे देख कर बादशाह बहुत खुश हुआ और उसकी इच्छा अमृतसर को देखने की भी हुई, इसलिये वह गुरु जी के साथ अमृतसर भी आया।

बादशाह का रुख परिवर्तन

बाबा जेठा ने अमृतसर पहुँच कर गुरु जी के आने का शुभ समाचार सुनाया। जिसे सुनकर सिखों में आनन्द की लहर दौड गई। बाबा बुड्ढा ने आगे बढ कर गुरु जी का स्वागत किया। बादशाह भी कड़ाह प्रसाद में शामिल हुआ। उसने हरि मन्दिर के बनवाने में सहायता देने की भी चर्चा की, किन्तु गुरु जी ने स्वीकार नहीं किया। दरबार के समय बादशाह ने पूछा आप जैसे सुन्दर नौजवान के लिये इस तरुणाई में काम पर विजय कैसे संभव है, इसको मुझे बताइये। गुरु जी ने एक प्राचीन कथा का हवाला देकर बताया था कि राजा

अमृतसर में

ने विषय वासना को केवल इस डर से छोड़ दिया था कि उसे एक महात्माने कहा था कि तेरी जिन्दगी के केवल आठ दिन और शेष हैं। भला जिसे आठ दिन तक ता जीने का आश्वासन है, वह डर कर कुकर्म को छोड देता है और जो यह मानते हों कि काल का पता नहीं कब मौत आ धमके, वे क्यों न सचेत रहेंगे।

सीस्तान मे सन् १५५० में मुहम्मदगीर नाम का एक मुसलमान बालक पैदा हुआ था। युवावस्था में वह फकीर हो गया और मियां मीर के नाम से मशहूर हो गया। वह लाहौर के पास आकर एक जगल रहने लग गया। फकीर अच्छा और ईश्वर-भक्त था। उसकी प्रशसा चारों ओर फैल गई। बादशाह जहाँगीर भी उनके दर्शन करके बहुत खुश हुआ और उसने अपनी डायरी में लिखा—"मियां साहब एक बहुत अच्छे फकीर हैं, लोभ उनके पास होकर भी नहीं निकला है। पूर्ण त्यागी और तपस्वी हैं।" गुरु हरिगोविन्द जी का भी उनसे प्रेम था जब गुरुजी एक बार उनसे मिलने गये, मियामीर ने उनका आगे बढ़कर स्वागत किया और उनके पधारने पर बहुत प्रसन्नता प्रकट की। देर तक धर्म-चर्चा भी की, यह खबर जहाँगीर के पास भी पहुँची एक दिन उसने पूछा "मिया साहब हम तो आपको सर्वोपरि फकीर मानते हैं किन्तु मैंने सुना है आपने गुरु हरिगोविन्द के प्रति श्रद्धा और भक्ति प्रकट की थी। मियां मीर ने कहा-बादशाह! गुरु हरिगोविन्द वास्तव मे श्रद्धा की चीज हैं। वे ईश्वर के प्यारे, सत्य धर्म पर चलने वाले हैं। बादशाह चुप हो गया। गुरु हरि गोविन्द जी ने अपने मसन्दों और शिष्यों को आज्ञा दे रखी थी कि भेट के साथ-साथ यथा संभव लोग अस्त्र-शस्त्र और घोड़े भी लाया करें।

मियामीर

ननकाना यात्रा

गुरु जी ने इन दिनों ही नानकाना साहब की यात्रा की जहाँ बाबा श्री चन्द जी के दर्शन किये। इस यात्रा मे माता गंगादेवी जी भी साथ थीं।

इसके बाद गुरु जी फिरोजपुर जिले के डरोली गावमें लाला साईंदास जी के पास पहुँचे। साईंदास के घर गुरु जी की भार्य्या दामोदरी जी की बहिन रामो व्याही हुई थीं। साईंदास गुरु जी का बड़ा भक्त था उसने पहले मे ही उनके ठहरने के लिये एक भव्य मकान बनवा रखा था। वहाँ से गुरु जी पीलीभीत जिले के नानकमता स्थान को गये। वहाँ पर अलमस्त नाम का एक भक्त रहता था। इस तरह से इस यात्रा को पूरा करके लौटे।

जाते समय करतारपुर के पास उन्हें तीन पठान मिले जो नौकरी के लिये उनके पास हाजिर हुए थे। उनमें से उन्होंने पैंदे खान नामक के एक गिलजई पठान युवक को नौकर रख लिया। नानकमता स्थान पर गुरु जी का कनफटे जोगियों के साथ वादविवाद भी हुआ किन्तु वे उनके सामने ठहर न सके।

उनके अमृतसर आ जाने पर लोग बडे प्रसन्न हुए और चारों ओर से लोग ज्ञान-चर्चा और कथा उपदेश सुनने के लिए आने लगे।

इससे पहले बादशाह के साथ काशमीर की की गई यात्रा का वर्णन इस प्रकार है कि श्री नगर में माईदास नाम का एक ब्राह्मण रहता था। वह सिख हो गया, उसकी संगत और ज्ञान-चर्चा सुनकर उनकी माँ भागभरी भी गुरु जी की भक्त हो गई। उसने गुरुजी की भेट के लिये एक सुन्दर चोला बनाया। उसके सौभाग्य से गुरु जी श्रीनगर पहुँचे और साईंदास के घर पर ही ठहरे। माई भागभरी ने भी अपने भाग्य को सराहा। वहाँ पर अनेकों काश्मीरी स्त्री पुरुषों ने गुरु जी के उपदेश सुने और सिख धर्म को ग्रहण किया। गुरु जी के श्रीनगर मे रहने के

कश्मीर यात्रा

समय ही भागभरी स्वर्गवासिनी हो गई। गुरु जी ने वहा एक गुरुद्वारा बनवाया जिसका प्रबन्धक साईंदास को ही नियुक्त किया।

श्रीनगर से वारामूला के रास्ते गुरु जी पंजाब की ओर रास्ते मे उपदेश करते हुए आये। गुजरात शहर में शाह दौला नाम के फकीर से मिले। वहाँ से वजीराबाद होते हुए हाफिजाबाद मे आये। जहाँ पर कि करमचन्द नाम का एक सिख भाई रहता था। उसको गुरु जी ने जपुजी साहब के अर्थ समझाये जिन्हे सुनकर वह कृत्य कृत्य हुआ।

मंडियाली गाव मे भाई लंगाहा नाम के सिख ने जो लाहौर का रहने वाला था। गुरु जी के पास आकर फर्याद की, सच्चे बादशाह! तुम्हारे पिता और दादा जी ने लाहौर मे एक गुरुद्वारा और कुछ पवित्र स्थान बनवाये थे, जहां पर आजकल सिख लोग मिलकर कथा-कीर्तन करते हैं। उस स्थान पर लाहौर का काजी मस्जिद बनवाने की फिक्र मे है। वह नित प्रति बादशाह के कान भरा करता है किन्तु आपका मित्र वजीरखॉ अवश्य सहायक का काम देता है। गुरु जी ने उत्तर दिया भाई तुम अपने धर्म पर दृढ़ रहो, निर्भयता के साथ अकाल पुरुष का चिन्तन करो। धर्मशाला और गुरुद्वारे परमात्मा के स्थान है। उन्हे नष्ट करने की इच्छा रखने वाले आप ही नष्ट हो जाते है। लंगाहा इन बचनों को सुनकर प्रसन्न होता हुआ लाहौर को चला गया।

यहा से चलकर गुरु जी गुरु नानकदेव जी की जन्मभूमि तलवंडी-ननकाना साहब पहुँचे। वहा उन सब स्थानों के दर्शन किये जो गुरु नानकदेव जी की लीलाओं की स्मृति में बने हुए थे। यहा से मदर गॉव होते हुये लाहौर जिले को पार करते हुये अमृतसर वापिस आ गए। इसके बाद बहुत दिनों तक कोई यात्रा नहीं की।

माता गंगा का देहावसान

सवत १६७८ के जेठ की प्रथमा को माता गगा जी ने गुरु लोक को प्रस्थान किया आपने देहावसान से पहले ही गुरु जी से कहा था। पुत्र अब हमारे चलने का समय आ गया। मेरी देह को व्यास नदी के किनारे अपने पिता की भाति ही वहा देना किसी तरह का और कोई क्रिया कर्म न करना।

बाबा बुड्ढा ने गुरु जी से विनती की। अब मैं बहुत बुड्ढा हो गया हूँ। मैं चाहता हूँ कि एकान्त मे जाकर हरि-भजन करू।" गुरु जी ने उन्हे आज्ञा दे दी। आप जहा भी उचित समझे वहा ही भजन करें।

संवत १६८३ वि मे बादशाह जहांगीर इस ससार से चल बसा। उसके स्थान पर शाहजादा शाहजहा बादशाह हुआ।

एक समय बादशाह शाहजहा और गुरु हरिगोविन्द जी साहब शिकार के लिये एक ही जगल मे पहुँच गये। बादशाह के पास ईरान की सौगात का एक सुन्दर बाज था। वह उड़ता हुआ सिख डेरों मे आ गया और सिखो ने उसे पकड लिया। इतने में उस बाज को ढूंढने वाले शाही शिकारी भी आ गये। सिखो ने उनको बाज नहीं लौटाया और शिकारियों के यह कहने पर कि इसे तुम्हारे पीर भी नहीं रख सकते। यह बाज बादशाह का है। सिखों ने उन्हे पीट भी दिया। बादशाह इस समय लाहौर लौट चुका था अत. शिकारी लाहौर पहुँचे और उन्होंने सब वृतान्त सुना दिया। सुनकर नौजवान बादशाह आग बबूला हो गया और उसने मुखलिस खान नाम के

लडाई का सूत्रपात

एक तुरक अफसर को जिसकी मातहती में सात हजार फौज रहती थी। हुक्म दे दिया कि वाज के साथ ही सिखों के गुरु को भी पकड लाओ। वस लड़ाई का आयोजन हो गया।

लाहौर के सिखों को इस वात का पता चलते ही तुरन्त ही उन्होंने यह खवर अमृतसर मे गुरु जी के पास पहुँचा दी। अव इसके सिवा हो क्या सकता था कि सिख लड़ाई के लिये तैयार होते। लाहौर और अमृतसर के वीच मे अमृतसर में लोहगढ़ नाम का एक युद्ध लायक और वचाव का स्थान था। गुरु जी ने कुछ सिखों को वहाँ शाही सेना को रोकने के लिये भेज दिया। इधर वाल वच्चों को रामसर भेज दिया। भाई मानू को इस युद्ध का सेनापति वनाया गया। जिस समय गुरु जी अमृतसर से वाहर झुवाल जाने के लिये निकले तो पता चला कि वीवी वीरो भूल से घर मे ही रह गई हैं। उन्हे दुवारा जाकर वावक वड़ी कठिनता से मुगल सिपाहियों के वीच से गुजर कर ले आये। रामसर से गुरु जी ने उन्हें झुवाल गाँव मे भेज दिया। वर पक्ष का भी खवर कर दी कि वरात अमृतसर न लाकर झुवाल में लाओ। परिवार वालों से यह भी कह दिया। कि विवाह के वाद तुम सव गोविन्दवाल चले जाना।

लोह गढ के केवल पांच सिखों ने ही वह वीरता दिखाई कि मुगल सेना चकित हो गई। ऊपर से पत्थर और ईंटों की वर्षा से उन्होंने सैकडा मुगलों को धराशायी कर दिया। अंत में वे पाचों भी वलिदान हो गये।

मुगल सेना ने अमृतसर में घुसकर सवसे पहले गुरुजी के घर को घेरा सिपाहियों ने वीरो जी के व्याह के लिये वनी हुई मिठाई पर हाथ साफ किया। फिर दिन भर शहर में घूमते रहे।

सिखो ने रात को वार करने का मौका ठीक समझकर उन पर आक्रमण कर दिया। वन्दूकों से गोलियाँ दगने लगीं। मुगल सैनिक घवरा गये और भाग निकले। अनेकों गोलियों की वोछार से जमीन पर विछने लगे। जो सवार थे वे अपने घोड़ों की सुधि भूल कर प्राण वचाने के लोभ से घर दौड़े। मुखलिस खा ने इस गड़वड़ को देखा तो ललकार कर कहा, चन्द सिखों के डर से तुम हजारों आदमियों को भागने में शर्म नहीं आती है। उनके गुरु को या तो जिन्दा पकड़ लो या मार दो। एक दूसरे अफसर शमसखा ने भी इसी प्रकार मुगल सैनिकों को धिक्कारा। जिससे भागने के वजाय वे मैदान में डट गये और भाई मानू को ही गुरु हरिगोविन्द जी समझकर उन पर टूट पड़े। भाई मानू ने लड़ाई में वह रौद्र रूप धारण किया कि अनवर और शमसखां नाम के दो मुगल सेनापतिओं के साथ ही सैकड़ों मुगलों को जमीन पर विछा दिया। इसके वाद मुहम्मदअली सैयद ने लड़ाई की कमान सभाली। सिख लड़ते २ हैरान हो चुके थे मुगल सिपाहियों के इस धावे के सामने वह टिक न सके। भाई भानू लड़ते लड़ते शहीद हो गये। सिखों को हटते देखकर सिख योद्धा भाई सिंघा ने धर्म पर शहीद हो जाने के लिये ललकारा सिख फिर अड गये निहालू, तोता, अनंता आदि सिख वड़ी वीरता से लड़े। वीर सिंघा मुहम्मद अली को मुल्क अदम पहुचा कर खुद भी शहीद हो गया। तव गुरु जी ने पैंदेखा को युद्ध का सेनानी वनाकर भेजा। और गुरु जी स्वयम भी मैदान मे आकर सनासन तीरों की वर्षा करने लगे। यह देखकर मुखलिस खान ने तमाम फौज को हमला करने की आज्ञा देदी और कहा आज इस गुरु को मैदान से वाकी नही छोडना है। दोनों ओर से घमासान लडाई होने लगी। गुरु जी ने तीरों की वर्षा कालो वदलिया की सरसर और पड़पड़ वूदों की भाति इस जोर से की कि धावे मारने वाले गिरोह वीच ही मे सनके पौनों की भाति गिरने लगे। पैंदेखा ने भी तुरकों की फौज का दिल भर कर नाश किया। भाई नन्दा, भीखा, विराना और भीमा घोडों पर चढ़कर घमासान मचाने लगे।

घमासान लड़ाई और अनेकों मुसलमान सरदारों के मारे जाने पर जब मुखलिस खां ने देखा कि हमारी जीत होना असम्भव है तो उसने गुरु जी के पास सुलह का पैगाम भेजा। गुरु जी यह भली भांति जानते थे कि सुलह करने मे भी शाति नहीं है अतः उन्होंने कह दिया। बादशाह के डर से हम नहीं झुक सकते हमारा रक्षक तो वह गुरु है। वे शहनशाह के भी शहनशाह है। इस उत्तर को सुनकर मुखलिस खां ने फिर बडे जोर से हमला कराया। किन्तु एक एक करके उसके सारे नायक खतम हो गये तब वह खुद मैदान मे आया और गुरु जी से कहा, बस सारी लड़ाई बन्द करो, हमारी तुम्हारी होगी। उसने गुरु जी पर वार करना शुरू कर दिया किन्तु अन्त मे गुरु जी की तलवार के एक ही वार मे समाप्त हो गया। रहे सहे मुगल सैनिक भाग गये।

लड़ाई के अत मे गुरु जी ने अपने प्यारे सिखों की लाशों को इकट्ठा कराया और अपने ही हाथों से उनका दाह कर्म किया। लड़ाई के स्थान पर स्मृतिस्वरूप एक गुरुद्वारा बना हुआ है। जहां प्रत्येक वैसाख की पूर्णिमा पर मेला लगता है।

लड़ाई से निवृत होकर झुवाल मे जाकर गुरुदेव ने अपनी पुत्री बीबी वीरो का विवाह कराया। यहा से फिर गुरु जी गोविन्दवाल चले गये। जहाँ अपने सगे सम्बन्धियों को बुलाकर उनके साथ भेंट की।

गोविन्दवाल मे ही गुरु जी को समाचार मिला कि कौला बीमार है। अत वे अमृतसर चले आए, इस समय तक कौला की हालत ज्यादा खराब हो गई थी, वह बोल न सकती थी, गुरु जी को देखकर हर्ष से उसकी आंखों से आंसू टपक पड़े। गुरु जी ने उसे बताया तू धर्मात्मा है। तैंने अकाल पुरुष की शरण ली है। इस समय तू वाहिगुरु का सुमरन कर। इसके बाद आठवे पहर मे कौला का जीवात्मा इस संसार से चल बसा।[1]

कौला का देहान्त

इस युद्ध का जब यह समाचार शाहजहाँ को मिला कि मुखलिस खा अपने समस्त नायकों के साथ लडाई मे मारा गया है, तो बादशाह को बडा क्रोध हुआ किन्तु वजीर खा ने बादशाह को समझाया कि इस प्रकार अगर दूसरी गलती की गई तो सारे पंजाब मे सीधे साधे सिखों का एक लड़ाकू समूह बन जायगा। अभी तक गुरु जी के दिल मे भी आपके प्रति बुरे भाव नहीं है। आप यदि उन्हे राजद्रोही या बागी करार दे देंगे तो सिखों मे भी फिर आपके राज्य को नष्ट करने के लिये खामख्वाह तयार हो जावेगे।

शाहजहाँ की चुप्पी

हम देखते है कि बादशाह को इस समय देश की राजनैतिक हालत संभालने की भी चिन्ता लगी हुई थी। इसलिये उसने इस अप्रिय घटना को कोई अधिक महत्व न देना ही ठीक समझा।

इस अवसर मे सब से पहले उस क्षति को पूरा किया जो लड़ाई मे हुई थी। जितने भी अच्छे २ योद्धा काम आये थे। वैसे ही और नये भर्ती किये सैनिको की संख्या भी बढ़ाई। बाहर से धन, हथियार, घोडे और बारूद भी अब अधिक मात्रा मे आने लगी। सिख लोग नित प्रति हथियार चलाने और घोड़ो पर चढ़ने का अभ्यास करने लगे। वे स्वत प्राय. जंगलों मे जाकर शिकार खेलते और भयंकर से भयंकर जगली जानवर का शिकार करते।

इस शाति के समय में

खेरड़ चौधरी के लड़के का नाम रतनचन्द था। वह जालंधर के सूबेदार अबदुल्ला खा से दोस्ती

१ कहा जाता है कौला लाहौर के एक काजी की लडकी थी और मियामीर की मार्फत सिख धर्म में दीक्षित होकर यहां रहती थी।

रखता था। चन्दू का पुत्र करमचद भी उन दिनों जालंधर मे ही था अत रतनचंद जालन्धर को चल पड़ा। दूसरे दिन दोनों ने सूबेदार के कान भरे कि व्यासा के इस किनारे आकर वह एक किला बना रहे है, अगर बन गया तो अवश्य ही आपके इलाके पर कब्जा करने की कोशिश करेगे। सूबेदार यह सुनकर आग बबूला होगया और उसने लड़ाई की तैयारी कर दी। पाच हजार सैनिकों को तीन टुकडियों मे लेकर सूबेदार ने हरि गोविन्दपुर की ओर कू च किया। उसके लड़के करीम बख्श और नबी बख्श और वह खुद इन टोलियों के नायक बने।

विरोधियों का दल

गुरु जी ने इस दल का मुकाबिला करने के लिये अपने वीरों को आदेश दिया, और अपने सैनिकों को भाई जट्टू, भाई कलियाणा, भाई माना, भाई पिराना आदि के नेतृत्व में कई जत्थों मे बाट दिया।

हरि गोविन्दपुर के निकट पहुँच कर अबदुल्ला खॉ सूबेदार ने गुरुजी के पास सन्देश भेजा कि यदि आप इस नगर का बनाना बन्द करदे तो हमारी फौज लौट जायगी। गुरुजी ने इस बात को मानने से इन्कार कर दिया।

दोनों ओर के वीर अड़ गये। लड़ाई शुरू हो गई। तीरों की सनन-सनन और गोलियों की दनादन के साथ ही तलवारों की खचाखच और भालों की छप छप से दोनों ओर से लोथ पर लोथ गिरने लगी। भाई जट्टू ने मुहम्मदखा का मुकाबिला किया। मुहम्मदखॉ धराशायी हुआ। उसकी मदद को बैराम खॉ आया। इधर भाई जट्टू की मदद को भाई मथुरा आगया। सिख ललकार कर पडे। भाई मथुरा ने एक ही वार मे बैराम खॉ को गिरा दिया। बैराम के मरते ही बलबड खॉ सामने आया और अली बख्श उसकी मदद को आया। यह देखकर भाई कलियाना ने बलबड को एक तीर से धरती पर सुला दिया। यह देखकर पठानों के एक गोल ने भाई कल्याना पर हमला बोल दिया और वे शहीद गति को वाहि गुरुजी की फतह बोलते हुये प्राप्त हो गये।

इतने मे अलीबख्श अपने जत्थे को लेकर गुरुजी की ओर झपटा, किन्तु भाई मानों ने बीच में अडकर उसके हमले को बेकार कर दिया। इतने मे और भी सिख आगये। अली बख्श ने क्रोध से भुनकर भाई मानों पर तलवार का वार किया। भाई मानो ने पैंतरा बदल कर उस वार को चुका दिया और ऐसे जोर से तीर छोडा कि अलीबख्श मुल्के अदम को रवाना होगया। हमाम बख्स जो पास ही देख रहा था, अपने दल के साथ भाई मानो पर झपटा। भाई मानो ने तलवार निकाल कर उसके एक हाथ को काट डाला किन्तु उसने दूसरे हाथ से ऐसा वार किया कि भाई मानो शहीद होगया। मानो के बाद भाई प्रागा आगे बढ़ा। भाई जगना और कृष्णा आदि सरदार भाई प्रागा की सहायता के लिये उसके दाये बाये हुए, किन्तु मुगल सेनानियो के जोर के धावों के मुकाबिले मे वे दोनो ही शहीद होगए। तब गुरुजी की आज्ञा लेकर भाई बिधीचद प्रागा की मदद को आगे बढा और उनके नेतृत्व मे जो सिख लोग आगे बढे उन्होंने ऐसे जोर का हमला किया कि मुगल सेना के पैर उखड गये। यह देखकर एक ओर तो अब्दुल्ला ने भागते हुए लोगों को रोका, दूसरी ओर कर्मचद और रतनचन्द से कहा कि अब तुम मोर्चे पर जाकर लडो। अपने पुत्र नबीबख्श को भी आगे किया।

इस समय गुरुजी ने भी हथियार सभाल लिये, उनका तेजस्वी घोडा हिनहिना उठा और बिजली की भाति नगी तलवारे कौंध उठीं। उनके तीरों की बौछार को देखकर मुगल पठान घबरा उठे। इस बीच बिधीचद से कर्मचद भिडा जिसे बिधीचद गुरुजी के सामने पकड लाया किन्तु गुरुजी ने उसे मारने न दिया और छुडा दिया। उसने छूटकर अब्दुल्ला को सलाह दी कि

बिना जोर का हमला किये सफलता मिलनी मुश्किल है। इस सलाह को मानकर अब्दुल्ला ने सभी सैनिकों को एक साथ हमला करने की आज्ञा दे दी जिससे घमासान युद्ध मच गया। इसमें थोड़ी ही देर मे भाई धरमराय और सकतू ने नवीबख्श को मार डाला और खुद भी शहीद होगये। नवीबख्श के मारे जाने से तुरक सेना मे बड़ा जोश पैदा हुआ क्योंकि नवीबख्श अब्दुल्ला का बेटा था, अतः उन्होंने सम्पूर्ण वेग के साथ हमला किया। करीमबख्श ने गुरुजी पर हमला किया, किन्तु गुरुजी ने बिधीचंद को उससे अटका दिया और आप तुरकों की भीड़ पर बाण वर्षा करने लगे। बिधीचंद और करीम दोनों तलवारे लेकर एक दूसरे पर भूखे सिंह की तरह टूट पडे किन्तु अनेक वारो को बचा कर भाई बिधीचद ने करीमबख्श को मार डाला। अपने दूसरे पुत्र को भी लड़ाई मे मरा देखकर अब्दुल्ला घबरा उठा और उसने रतनचद और कर्मचंद को आगे करके फौजो को ललकारना शुरू किया। रतनचन्द कर्मचन्द दोनो ही गुरु जी पर टूट पड़े। कर्मचन्द के नेजे की मार से गुरुजी का वही काबुली घोड़ा मारा गया जिसे उन्होंने काजी से छीन लिया था। इससे उन्हे बड़ा दुख हुआ 'किन्तु उन्होंने पैदल ही उतर उन्होंने बाणों की वर्षा शुरू कर दी जिससे कर्मचन्द और रतनचद के भी घोड़े मारे गये वे भी पैदल लड़ने को विवश हुए। दोनों ही ने गुरुजी पर आक्रमण किया किन्तु गुरुजी ने दोनो ही को जमीन पर सुला दिया। यह देखकर अब्दुल्ला आपे मे न रहा और गुरुजी पर झपटा। किन्तु वह भी मारा गया। इस तरह जालन्धर के सूबेदार का और गुरुजी के द्वेपियों का खात्मा होगया।

इसके बाद हरिगोविंदपुर की शांति और अमन के साथ रचना हुई। उसे सुन्दर से सुन्दर बनाया गया, चार दरवाजे रक्खे गये। संगतों को ठहरने के लिये धर्मशाला बनाई गई सिखों के लिये गुरुद्वारा और मुसलमानों के लिये मस्जिद बनवाई गई।

घोड़े, धन और आदमियों की जो हानि इस लडाई मे हुई थी उसकी पूर्ति की जाने लगी। जिन सैनिकों के पास घोड़े नहीं रहे थे उन्हे खरीद कर घोड़े दिये गये।

हरि गोविन्दपुर को देखने के लिये चारों ओर से लोग आते थे। भाई सुभागा के साथ भी एक सगत आई। उसको गुरु जी ने आज्ञा दी कि समस्त गुरु स्थानों के दर्शन करने के लिये जाओ तो अच्छा होगा। सगत गोविन्दवाल खडूर आदि स्थानों के दर्शन करती हुई गुरु जी की बीड मे पहुँची जहाँ बाबा बुड्ढा और गुरुदास जी रहते थे। जब उन्होंने तुरको के साथ गुरु जी की लड़ाई और हरिगोविन्दपुर की रचना का हाल सुना तो दोनों ही अमृतसर होते हुए गुरु जी के पास पहुँचे और दर्शन किये। गुरु जी भी इन दोनों को देखकर बडे प्रसन्न हुए। बाबा बुड्ढा तो गुरु जी से आज्ञा लेकर शेष जीवन रामदासपुर मे बिताने के लिये चले गये और गुरुदास जी वहीं रह गये।

दर्शनार्थियों की भीड

सिख और हिन्दुओं के अलावा अनेकों मुसलमान भी गुरु जी के पास आकर आत्म ज्ञान की प्राप्ति करने लगे। जानी नाम का फकीर जो बहुत समय से सच्चे खुदापरस्त की तलाश मे था, वह भी गुरु जी की शरण मे आया और गुरु जी ने उसे उपदेश देने से पहले जिन-जिन कड़ी से कड़ी परीक्षाओ मे कसा वह पास हुआ। उससे कहा गया जो तू गुरु जी मे सच्ची भक्ति रखता है तो नदी मे कूद पड़ वह सुनते ही नदी की ओर चल पड़ा, कहा जाता है कि जानी का अटूट प्रेम गुरुजी मे ख्वाजा नाम के एक मुसलमान की सलाह से हुआ था—जिसे कि गुरु जी कश्मीर से अपना सेवक बना कर लाये थे और जो बड़ी श्रद्धा से गुरु जी की सेवा करता था।

एक दिन नित्यानन्द नाम का एक ब्राह्मण गुरु जी के पास ज्ञान-चर्चा करने आया और गरुड़-पुराण को पढ़ कर कहने लगा कि मृत्यु के बाद स्वर्ग तक पहुँचने मे जीव को एक वर्ष लगता है। इस बात को सुनकर सिखों मे से कई बोल उठे किसीने कहा, मैं तो छ ही महीने मे पहुँच सकता हूँ। किसी ने कहा चार और किसी ने तीन महीने में ही पहुँचने की बात कही। ब्राह्मण ने यह देख कर कि यह सिख लोग उसकी बात की मजाक उडाते हैं, गुरु जी से कहा कि देखिए आपके यह शिष्य क्या कहते हैं। गुरु जी ने कहा ठीक ही तो कहते हैं, पापी लोगों के लिये ही तो इस प्रकार घिसटे और दुर्गम स्थानों से जाना होता होगा। जो जितना ही धर्मात्मा होगा उसे ही उतना ही कम समय लगेगा और विशुद्ध आत्मा तो निमिष मात्र में स्वर्ग मे पहुँच सकती है। जो यहा सन्मार्ग पर चलता है उसके लिये वहा का मार्ग कुछ भी कठिन नहीं है। जो प्रकाश में है वह ऊबड खाबड़ और भले रास्ते को पहचान सकता है और जो अन्धकार मे है उसे भटकना पड़ता है। प्रकाश मिलता है सत गुरु की शरण में आने से। गुरुजी की इन बातों को सुनकर ब्राह्मण के हृदय-कपाट खुल गये और वह गुरु जी का भक्त हो गया। इसी तरह गुरु जी सत उपदेशों द्वारा लोगों को रास्ते पर लाते और उनकी आत्मा को शांति प्रदान करते।

बाबा ने भी समझ लिया कि अब गुरु लोक चलना ही है अत. अपने एक मित्र के द्वारा गुरु हरिगोविन्द साहब के पास सन्देश भेजा कि अब मेरा अन्त समय है, मुझे आकर दर्शन देने की कृपा कीजिये। आपने वायदा भी किया था कि जब भी याद करोगे मैं तुम्हे दर्शन दूगा। गुरु जी के पास सन्देश पहुँचा तो वे भाई गुरुदास जी आदि प्रसिद्ध सिखों को लेकर रामदासपुर पधारे। गुरु जी के दर्शन करके बाबा बुड्ढा बडे प्रसन्न हुए। दूसरे दिन प्रात. वाहि गुरु का जप करते हुए इस लोक से विदा हो गये गुरु जीने अपने हाथों से बाबा का अन्त्येष्टि संस्कार किया और उनके भाग्य की सराहना की।

भाई माना की प्रार्थना पर गुरु जी ने अपनी सेना रामदासपुर ही छोड़ दी। कुछ सिखों को साथ लेकर सिख-तीर्थों के दर्शन को प्रस्थान किया। पहिले करतारपुर पहुँचे जहाँ कि गुरु अगददेव जी को गुरिआई मिली थी। वहा से नदी को पार करके डेरा बाबा नानक के दर्शन किये। दूसरे दिन गुरु जी उस एकान्त वन में गये जहाँ बाबा श्रीचन्द जी तप करते थे गुरु जी ने उनके दर्शन किये। बाबा श्रीचन्द जी ने गुरु जी की युद्ध सम्बन्धी वीरता पर उन्हे बधाई दी।

प्रस्थान

अब चूंकि दीवाली नजदीक आ रही थी और दीवाली पर अमृतसर में सिखों का मेला लगता है अत वहाँ से सिखों की प्रार्थना पर अमृतसर को विदा हुये। अमृतसर पहुँच कर गोइन्दवाल से अपने बाल बच्चों को बुला लिया और करतारपुर खबर भेज कर पेदेखान को भी बुला लिया। उसने गुरु जी से अर्ज की कि महाराज इस युद्ध में मुझे याद क्यों नहीं किया किन्तु अब उसका यह गर्व जाता रहा था कि मेरे बिना सिख किसी लड़ाई को जीत नहीं सकते हैं।

एक प्रसंग के समय गुरु जी को ऐसा आभास हुआ कि भाई गुरुदास जितने विद्वान हैं, उतने ही नम्र नहीं हैं। अत. उन्होंने सोचा किसी प्रकार इनमें नम्रता भी आनी चाहिए। गुरुजी ने उन्हे काबुल से घोड़े खरीदने को मोहरों की थैली देकर भेज दिया। वहा से उन्होंने पांच-पाच हजार के घोड़े खरीद कर गुरु जी के पास भेजे किन्तु जब तम्बू में थैली टटोली तो उनमे कंकड दिखाई दिये। भाई जी इस पर इतने घबराये कि जांच पड़ताल किये बगैर ही तम्बू को फाड़ कर दूसरे रास्ते से निकल गये। शर्म के मारे अमृतसर भी नहीं आये। काशी पहुँच गये। बाद मे सिखों ने उन्हीं थैलियों में से रुपया चुरा

दिया। जिसमें भाई गुरुदास जी को कंकड़ी दिखाई दी थीं।

बनारस पहुँचने पर वहां के सिखों ने गुरुदास जी की खूब आवभगत की। काशी के पंडितो और सन्यासियों से बराबर उनका विवाद चलता रहा। कुछ दिन के बाद भाई जेठा गुरु जी के हुक्म से भाई गुरुदास जी को अमृतसर ले आया। जहा भाई जी ने क्षमा मागी और फिर गुरु सेवा मे नम्रता से रहकर सेवा करने लगा।

जालंधर के सूबेदार के वारिसों मे उनका एक पुत्र वलीखाँ और शेष रह गया था। वह रात दिन चिन्ता मे रहता था कि अपने पिता का बदला किस प्रकार लिया जाय। जब उसने सुना कि बादशाह शाहजहाँ दिल्ली से लाहौर आ रहे है तो वह उनकी सेवा मे हाजिर हुआ और घोडे भी भेंट किये। बादशाह ने जब उसके बाप और भाइयों का हाल पूछा तो उसने बादशाह से गुरु हरिगोविन्द जी की बहुत शिकायतें कीं।

जलधर की जन्ती

इन शिकायतो को सुनकर बादशाह को बड़ा क्रोध हुआ और उसने अपने सरदारों की ओर देखते हुए कहा, आप मे से कौन उस गुरु को पकड़ने के लिये तय्यार होता है ? वजीरखाँ ने खडे होकर कहा, बादशाह सलामत जिसे भी आप हुक्म देगे, वही तय्यार हो जायगा। किन्तु वलीखाँ की शिकायतें सही नहीं हैं। गुरु जी किसी भी मजहब से द्वेष नहीं रखते, उन्होंने उस नगर मे मस्जिद भी बनवाई है। यह कोई बुरा काम नहीं किया है। वह राज्य को मिटाना चाहता तो उधर के इलाके से भू-कर वसूल करता, टैक्स बाँधता। यह तो कुछ नहीं कर रहा। सूबेदार ने जो भी कुछ किया नासमझी से किया उसने अभिमान मे आकर आपसे आज्ञा लेना तक उचित नहीं समझा लड़ाई छेड दी। यह उसका कसूर नहीं है क्या ? बादशाह को वजीरखाँ की बातें जँच गई, अत उसने वली खाँ को बहुत डाँटा।

इसके बाद गुरु जी धर्मोपदेश के लिये निकले और देवराना होते हुये डरोली पहुँचे। यहाँ बहुत दिन रहे एक दिन गुरु जी ने डरोली गाँव से चलकर भगत रूपचन्द के गाँव मे पहुँचे। इसने गुरु जी के ठहरने के लिये पहले से ही एक सुन्दर मकान बनवा लिया था। वहाँ रहकर गुरु जी ने लोगों को उपदेश दिया और रूपचन्द को वर दिया कि तुम्हारी लोगों मे मान्यता होगी। यहाँ भादों और क्वार दो महीने रहकर गुरु जी मय जमात के आगे बढे और कागड़ गाँव मे जो रायजोधा का था पहुँचे। रायजोधा के घर मे जो स्त्री थी। उसको अपने पिता के यहाँ सिख धर्म की शिक्षा मिली थी। उसने अपने पति जोधा जी को गुरु जी के पास भेजा और पीछे से वह दर्शनोंको आगई। दोनों स्त्री पुरुषो ने गुरुजी से उपदेश सुने,रायजोधा तभीसे गुरुजीका शिष्य होगया।

धर्म प्रचार पर

रुहेले (श्री हरिगोविन्दपुर) के युद्ध मे बिधीचन्दने जो सफाई दिखाई थी,उससे सिख बिधीचन्दको एक बहादुर शूरमा के रूप मे देखते हैं किन्तु जब हम उसके उस कौशल का हाल पढ़ते हैं जो उसने लाहौरके किले मे से दो घोड़ों को लाने मे दिखाया था तो उसकी बुद्धि और चतुरता पर अचम्भित होना पड़ता है। वह घटना इस प्रकार है .—

भाई बिधीचद का कौशल

बखतमल और भागचन्द नामक दो मसन्द काबुल से अन्य सामान के साथ दो अमोलक घोडे गुरु जी की भेट के लिये लेकर चले। इनके साथ और भी कुछ श्रद्धालु सिख थे। चूंकि इन लोगों को यह भान था कि गुरु जी लाहौर मिलेंगे, अत यह लोग लाहौर की ही ओर चले। रास्ते मे बादशाह शाहजहाँ के अफसरों ने इनसे दोनों घोड़े छीन लिये। ये लोग लाहौर पहुँचे जहाँ स्थानीय सिखों ने इनका खूब स्वागत सत्कार किया।

लाहौर से अमृतसर और वहाँ से रूपचंद के पिंड डरोली आकर इन्होंने सारी दास्तान गुरुजी और गुरु जी के सामन्तों को सुनाई। एक बार नहीं अनेक बार और बड़ी करुणा के साथ उनके मुँह से इस बात को सुनकर बिधीचन्द जी ने प्रण किया कि जैसे भी होगा उन घोड़ों को मैं लाहौर से लाकर गुरु जी को भेंट करूँगा।

काबुल के अन्य सिख तो अपने देश को लौट गये किन्तु वे दोनों मसन्द वहीं गुरु जी की सेवा में रह गये और जब भी मौका पाते अपने उन्हीं घोड़ों की चर्चा करते रहते जिनके नाम भी गुलबाग और दिलबाग थे।

बिधीचन्द घोड़ों संबन्धी अपने कार्य को पूरा करने के लिये लाहौर पहुँचे। किन्तु किले से घुसकर द्वारपालों, सईसों और हजारी सैनिकों की मौजूदगी मे घोड़े कैसे प्राप्त किये जाँय। इसी चिंता में घुलने लगे किन्तु 'जिन खोजा तिन पाइयाँ' की लोकोक्ति के अनुसार उन्हे आखिर रास्ता मिल ही गया। लाहौर में उनका पूर्व परिचित एक तिरखान सिख जीवन रहता था। उसके घर जाकर ठहरे और उनने कहा एक बढ़िया सा खुरपा घास छीलने के लिये लाओ. उसे यह भी बता दिया कि मैं यहाँ गुरु जी का काम करने को आया हुआ हूँ। दूसरे दिन प्रात. जीवन ने खुरपे का प्रबन्ध कर दिया और भाई बिधीचन्द ने रावी के किनारे जाकर बढ़िया से बढ़िया घास छीला। जिसका गट्ठा बाँधकर चौक बाजार होते हुये तथा खरीददारों को अधिक कीमत बताकर टरकाते हुए किले के द्वार पर आगया। दैवयोग से वह समय घोड़ों के दरोगे का बाहर जाकर टहलने का समय था। उस ने वह घास खरीद ली और बिधीचन्द को वहाँ ले गया, जहाँ वे दोनों काबुली तुरंग बधे हुये थे। भाई बिधीचन्द ने मन ही मन ईश्वर को धन्यवाद दिया क्योंकि उसे इतनी जल्दी घोड़ों तक पहुँचने की आशा न थी।

घास लेने का यह क्रम सात दिन बराबर चलता रहा। दरोगा भाई बिधीचन्द जी की उमदा और स्वच्छ घास को देखकर बहुत खुश होता था और वे घोड़े भी बड़ी प्रसन्नता से खाते थे। अत. दरोगा ने भाई बिधीचन्द जी से स्थिर नौकर हो जाने के लिये कहा. भाई जी ने बड़ी प्रसन्नता से स्वीकार कर लिया। धीरे २ बिधीचन्द जी घास लाने वाले की बजाय उन घोड़ों की हिफाजत सफाई और ढंग से रखने के इंचार्ज ही हो गए। वे उनपर खुरहरा करते उन्हे साफ रखने, हाथ फेरते, पुचकारते इस प्रकार बड़े अच्छे ढग मे रखने लगे। कहा जाता है बादशाह शाहजहाँ ने घोड़ों का मुआयने करने वक्त बिधीचन्द की तुरग-सेवा से खुश होकर उसे इनाम दिया।

बिधीचन्द ने मीठी वाणी हँस मुख मिजाज और अपनी नम्रता से अस्तबल और उनके लोग अनेकों नौकरों को मोहित कर लिया था। बड़ी मीठी २ और हँसने हँसाने वाली बातें बनाकर उसने उन जीनों को भी देख लिया था.जो इन घोड़ों के लिये सवा सवा लाख रु० से बनवाये थे। स्टोरकी ताली कुंजी कहाँ रहती है यह सब कुछ भी पता लगा लिया था। इन सबसे बढ़कर चतुराई का काम उसने यह किया रात के समय किले से लगी हुई रावी मे पत्थर फैंक कर लोगों को यह समझने का आदी बना दिया कि यह धमाके यों ही होते रहते हैं यातो मच्छ-कच्छ लार लेते हैं,या किले की दीवारसे पानीकी टक्कर होने से पत्थर गिरते हैं। इसका फल यह हुआ कि जिस दिन बिधीचंद घोड़ों को रावी मे कुदा कर ले गया किसी ने बाहर निकल कर देखने की चेष्टा तक न की।

उनके इरादे को पूरा करने में एक मदद यह भी मिली कि अस्तबल स्टोर और दरवाजे के सब नोकर उससे दावत का तकाजा करने लगे थे। उसने एक दिन उन सबको दावत दी और सर्वोत्कृष्ट शराब

छका कर पिलादी। यह रात उसके उद्देश्य की पूर्ति के लिये उपयोगी हुई और स्टोर से जीन निकाल गुलवाग घोड़े को लेकर भाई विधीचन्द रफू चक्कर होगये। किले से रावी मे घोड़े के कूदने का घार धमाका हुआ किन्तु नित्य प्रति ऐसे धमाके सुनने के आदी होने के कारण किसी ने देखने का कष्ट नही किया। घोड़ा रातो रात लाहौर के इलाके को पार करके गुरु स्थान पर पहुँच गया। जहाँ उसे देखकर सभी-लोग वाह वाह कर उठे। कावुल के मसन्द भी खूब ही खुश हुए। भाई विधीचंद ने लाहौर के किलों मे अपना नाम केसरा रक्खा था। इस कार्य को करके उन्होंने वास्तव मे केसरीपन जता दिया था।

प्रात जव दरोगा ने एक घोड़ा अस्तवल मे नहीं देखा तो वह पछाड़ खाकर गिर पडा। अन्य नौकर चाकर और दरवान घवरा गये। वादशाह तक भी यह खवर पहुँची। वह भी गुस्से से आग वबूला हो गया। लाहौर के चारो ओर देख भाल की गई किन्तु वहा घाडा कहाँ रक्खा था।

भाई विधीचन्द के कौतुक की यहा पर समाप्ति नहा हुई। घोर आश्चर्य तो यह है कि उन्हे दूसरे घोड़े को लाने के लिये भी लाहौर जाने के लिये तैयार हाना पड़ा क्योंकि यह अकेला घोड़ा अपने साथी वगैर चारे दाने को भी छोड़ बैठा था।

भाई विधीचन्द दुवारा लाहौर पहुँचे। अपने उपजाऊ दिमाग से दूसरी तरकीव सोची। उन्होने नजूमियों (ज्योतिषियों) के जैसे कपड़े पहिन लिये। अजीव ढंग से ज्यातिषी वनकर वाजारों से गुजरते हुए और कौतुहल पूर्ण वाते करते हुए किले के द्वार पर पहुँच गये। जहाँ उनके पास शहरके लोगों की काफी भीड़ इकट्ठी होगई। किले के लोगों ने यह वात शाहजहाँ तक पहुँचाई कि एक प्रसिद्ध ज्योतिषी यहाँ आया हुआ है जो यह कहता है की इस धरती का तो क्या मैं तीनों लोक की वाते वता सकता हूँ।

यह आश्चर्य की वात है कि जिस दरोगा के पास भाई विधीचद महीनों रहे। वह भी उन्हे उनके इस वेश मे तनक भी नहीं पहचान सका और नजूमी समझ कर ही वादशाह के पास ले गया।

भाई विधीचन्द जी ने वादशाह के सामने वडे अच्छे और कौशल पूर्ण ढंग से वाते की, कहा मेरे दुनियाँ मे मित्र कम और दुश्मन ज्यादा है। मैं चोरियों और डाकों का जो हाल वताता हूँ इससे वे सव मेरे दुश्मन वन जाते है। दुश्मनो के डर से ही मैं अपने प्रात से इधर आया हुआ हुँ। यहाँ भी पूछने वालों ने मेरा पीछा नहीं छोड़ा है। आपके खोये हुए घाड़े का पता मैं जरूर वता दूँगा। चार का नाम भी वता दूंगा किस रास्ते से और कहाँ ले गया है। यह सव वता दूंगा किन्तु मुझे क्या दक्षिणा मिलेगी यह भी लिखित हुक्म मिलना चहिये। वादशाह ने कहा अगर तुम विल्कुल सही वता दोगे तो वहुत रुपया इनाम दूंगा। आगे फिर भाई विधीचन्द (जो कि इस समय गणक वने हुए थे) ने कहा, वादशाह सलामत मैं घोड़े का पता देने तक का जिम्मेवार हूँ। लाने की मेरी सामर्थ्य नहीं है। ला तो वही सकता है जो समर्थ हो। और हां आप चलकर मुझे वह स्थान दिखाइये जहाँ से घोडा खुल कर गया है। दरोगा ने 'गणक' जी को लेजाकर उस स्थान पर खड़ा कर दिया जहाँ गुलवाग खडा था। गणक ने कहा, विना ही काठी जीन के घोड़े पर ले जाने वाला कैसे चढा होगा? और अगर जीन भी ले गया तो वह कैसा था? वादशाह के हुक्म से दरोगा ने उस तरह का दूसरा जीन भी लाकर गणक के सामने रख दिया। गणक ने कहा ठीक मैं अब सव वता दूंगा किन्तु चूंकि अव दिन छिप चुका है, इस घोड़े पर जीन तो कस दो पर वताऊगा उसी मुहूर्त मे जिस मे दूसरा घोडा चोरी गया है। जीन कस दिया गया। कहा मुझे एकान्त कोठरी वता दीजिये जिसमे वैठकर दो चार घड़ी मे सभी वाते सोच लाऊ।

'गणक' जी एक कोठरी मे घुस गये और दो चार घड़ी के वाद घोड़े के पास पहुँचे उस पर

सवारी की और फिर वादशाह के महल के पास आकर आवाज दी। वादशाह, जिसने तुम्हारा पहला घोडा चुराया था। वही तुम्हारे इस दूसरे घोडे को लिये जा रहा है। चोर का पता वता रहा हूँ। इसलिये इनामात तुम्हें देने होंगे। मेरा नाम विधीचन्द है और गुरु हरिगोविन्द जी का सेवक हूँ। घोडों के लिये कोई रंज न करना आपके यहाँ भी तो ये कीमत देकर नहीं आये थे। हम तो अपनी ही चीज को ले जा रहे है। ये घोड़े तो कावुल से गुरु जी के लिये आये थे। उनकी चीज उन्हीं के पास पहुँचाई जा रही है। इतना कह कर विधीचन्द जी ने घोडे को किले पर से कुदाया और नीचे घोडा हवा हो गया।

सभी सिख सैनिकों ने भाई विधीचन्द जी की तारीफ की। वास्तव में यह काम ही तारीफ का था। प्राणों की जोखिम की कोई भी चिन्ता न करके भाई विधीचन्द जी ने इस काम को पूरा किया था। गुरु भक्ति और धार्मिक श्रद्धा इसे ही तो कहते हैं।

भाई विधीचन्द द्वारा इस प्रकार घोड़ों का अपहरण किये जाने से वादशाह विक्षुब्ध हो उठा उसने दरवार करके लल्लावेग पठान को घोड़ा वापिस लाने और गुरु जी को पकड लाने का काम सौंपा।

फिर युद्ध

लल्ला वेग के साथ उसका भाई कमर वेग तथा दोनों पुत्र कासम वेग और शम्स वेग और भतीजा कावलीवेग भी लड़ाई के लिये तयार हो गये।

चूंकि इधर गुरु जी को खवर लग चुकी थी कि शाही सेनाये इधर चढ़ाई करने की तैयारी कर रही हैं, तो उन्होंने रायजोध की सलाह से एक ऐसे घने जंगल में जहाँ वीसियों कोस तक कहीं पानी का ठिकाना नहीं था सिर्फ एक तालाव ही था। अपने डेरे जा जमाये।

शाही फौज पहिले तो रूपचन्द के पिंड पहुँची वहाँ जव गुरु जी न मिले तो पता लगा कर उनके नये स्थान को चली। लल्लावेग ने गुरु जी के दल का सही पता लगाने के लिये हसनवेग पठान को भेजा। उसने सिखों के दल में गुरु जी के दर्शनार्थी के वहाने से सव हाल जानना चाहा किन्तु सिख उसे ताड़ गये। चूंकि वातचीत के सिलसिले मे उसके मुँह से निकल गया 'हमारी सेना वहुत ज्यादा है।' इस पर सिखों ने उसे पीटना शुरू किया। गुरु जी ने उसे छुडा दिया और प्यार से अपने पास विठाकर शाही लश्कर की सारी वातें पूछ लीं। जव लल्लावेग को यह पता चला कि इससे गुरु जी ने इधर का भेद ले लिया है तो उसने क्रोध के मारे हसनखा को निकाल दिया।

जगल के निकट पहुँच कर लल्लावेग की आज्ञा से कमरवेग सात हजार का गिरोह लेकर गुरु जी को पकडने के लिये आगे वढ़ा। उसके मुकाविले के लिये एक हजार सैनिकों के साथ रायजोध मैदान मे आये। हसनखा ने कमरवेग और उसके साथियों के वलावल का सव व्यौरा गुरु जी और रायजोध को जता दिया। उस समय दिन छिप चुका था। तुरक सेना मसाले लेकर जगल में घुम रही थी, रायजोध ने अपने साथियों से कहा तुम दूर दूर तक फैल जाओ और दाये वायें और सन्मुख तीनों ओर से गोलियों की वर्षा करो। पहले ही फायरों मे मसालची मारे गये अधेरा होते ही मुगल सिपाही इधर उधर भागने लगे किन्तु जिधर भी जाते उधर से ही गोलियों की वर्षा होती विचारे दिन भर के थके हुए रास्ते से अजान और भूख प्यास से त्रस्त घवरा गये और यहाँ तक घवराये कि दुश्मन के धोखे मे आपस मे भी लड़ वैठे। ऐसे अवसर पर रायजोध ने लपक कर कमरवेग का सामना किया और नेजे से छेद कर मार डाला। इस तरह पहला खेत सिखों के हाथ रहा। गुरु जी ने रायजोध की भूरि २ प्रशसा की।

सवेरे जव लल्लावेग ने अपने आदमियों की लोथ पर लोथ पडी देखी तो वह गुस्से मे लाल

पीला हो गया और आज के मोरचे पर शम्सवेग को भेजा। गुरु जी ने विधीचन्द को आज्ञा दी। भाई-विधीचन्द डेढ़ हजार सैनिक लेकर शम्सवेग की सेना के मुकाविले मे आये। दोनों ओर की सेनाये दिल भर कर लडीं, अनेको सिख सैनिक धाराशायी हुए किन्तु ज्यादा आदमी मुगलों के ही मारे गये। अत मे शम्सअली और विधीचन्द दोनो भिड गये, पहले तलवार और नेजों से और अंत मे द्वन्द युद्ध करने लग पड़े। विधीचन्द जी ने शम्स वेग को पछाड दिया और उसे वीच से चीर कर दो वना दिये।

शम्सवेग को मैदान मे काम आया देखकर लल्लावेग क्रोध से कापने लगा और उसने ललकार कर कहा क्या मेरी फौज मे ऐसा कोई नहीं है जो इनका वदला लेने का दम रखता हो, कासिम आगे बढ़ा और उसने कहा आप चिन्ता न करे मैं सव देख लूगा। इसके मुकाविले के लिये गुरु जी की आज्ञा से भाई जेठा पाच सौ सवारों के साथ सामने आया। दोनो ओर से एक जोर की भिड़न्त हुई, जिसमे कासिम जेठा जी द्वारा मारा गया।

वस अव इसके सिवा कोई चारा न था कि खुद लल्लावेग ही मैदान मे आये। इसलिये उसने समस्त शेप सेना को साथ लेकर हमला किया। भाई जेठा जी का घेरा देकर चारों ओर से तीर बर्छे और गोलियों की वर्षा होने लगी। भाई जेठा वडी वहादुरी से वार वचाते हुए, शत्रुओं का नाश करने लगे, यह देखकर लल्लावेग ने खुद आगे वढ़कर भाई जेठा पर वार किया और दूसरे वार मे उन्हे धरती पर सुला दिया। जेठा जी को मारने के वाद लल्लावेग का हौसला वढ़ गया, इसलिये छटे हुए तीन हजार आदमियों के साथ उसने गुरु जी की ओर धावा करना चाहा किन्तु सिंघे के वेटे जीतमल ने बीच मे ही आकर उसका रास्ता रोक लिया, पर जीतमल अधिक देर तक लल्लावेग के आक्रमण को न सहार सका। अत वह चोट खाकर वेहोश हो गया। यह देखकर गुरु जी आगे वढ़े और लल्लावेग से कहा आओ, हम तुम दोनों ही निपट ले किन्तु लल्लावेग दूर से ही तीर चलाता रहा, पास नहीं आया, अंत मे गुरु जी ने एक तीर छोडकर उसके घोड़े को मार डाला और आप भी घोड़े से कूद कर उसके पास जा पहुँचे। दोनों ओर से तलवार चलने लगीं। लल्लावेग के वार खाली गये। गुरु जी ने उसके सिर के दो टुकड़े कर दिये।

अव केवल कावुलीवेग वाकी था। वह वड़े गुस्से के साथ आगे वढ़ा। इधर जीतमल भी होश मे आ गया था अत वह भी तुरक सेना मे घुस पडा। रायजोध और भाई विधीचन्द भी जौहर करने लगे। अपने आदमियों का इस तरह का विनाश होते देखकर कावुलीवेग ने ऐसी तीरों की वर्षा की। जिससे ये तीनों सिख शूरमा जख्मी हो गए। यह देखकर गुरु जी फिर आगे वढ़े। कावुली वेग ने गुरु जी पर भी तीरों की ऐसी वौछार की कि उनका दिलवाग घोडा जख्मी होकर गिर पडा। घोडे के मरते ही गुरु जी ने तुरन्त कावुलीवेग के घोड़े को जमीन पर पटक दिया। फिर दोनों ही तलवारे लेकर लडने लगे। वहुत देर तक गुरु जी वचाव करते रहे और कावुलीवेग वार। जव वहुत हो चुका तो गुरु जी ने एक ही हाथ ऐसा मारा कि कावुलीवेग का सिर धड से दूर जा गिरा।

समस्त सेना नायकों के मारे जाने पर मुगल सेना के रहे सहे सिपाही मैदान छोडकर भाग निकले, इधर गुरु जी ने अपने प्यारो को ढूंढ़ा और उनका अग्नि संस्कार कराया।

रायजोध ने गुरु जी को सदैव अपने यहाँ रहने की प्रार्थना की किन्तु गुरु जी ने उससे कहा जव भी तुम चाहोगे तभी हम दर्शन दे जाया करेंगे।

अमृतसर के दो सिख एक दिन गुरु जी की सेवा मे हाजिर हुए, वे दोनो पिता पुत्र थे। पिता ने

कहा गुरु जी महाराज ! मेरे लड़के ने चित्रकला सीखी है, हमारे लायक कोई सेवा बताइये। विधीचन्द ने इशारा किया कि गुरु जी का ही चित्र बनाओ, लड़के ने हूबहू अथवा बहुत ही भव्य चित्र बनाया, जिसे गुरु जी ने विधीचंदजी को दे दिया किन्तु वह चित्र दुर्भाग्य से इस समय अप्राप्त है।

चित्र

इसमे कोई सन्देह नहीं गुरु जी इस पठान को बहुत चाहते थे, छोटे से को अपने पास रक्खा था। दूध पीने के लिये इसको भैंस खरीद दी थी। खाने और पहरने की जो बढ़िया चीज आती, इसे देते। ब्याह शादी भी इसके अपने ही खर्च से किये। इसके खाने पहरने पर सब सिखों से अपेक्षाकृत ज्यादा खर्च होता था। एक दिन चित्रसैन नाम का एक शिष्य एक घोडा एक बाज एक पौशाक और कुछ हथियार गुरु जी की भेंट के लिये लाया। उनमे से सिवा बाज के सब चीजें गुरुजी ने पेंदेखॉ को देदीं। और उसे आज्ञा दी हमारे दरबार मे इसी पोशाक मे तुम हाजिर हुआ करो, घोडे समेत पेंदे खॉ घर आया। उसके जमाई ने वस्त्र, शस्त्र और घोड़े को देखकर सवाल किया कि ये चीजें मुझे दे दो। पेंदे खॉ ने पहले तो मना कर दिया किन्तु उसके यह धमकी देने पर कि अगर मुझे यह चीजे नहीं मिली तो मैं तुम्हारी लड़की को छोड़ दूँगा। पेंदे खॉ की स्त्री ने सब चीजे जमाई अस्मान खॉ को देदीं। दूसरे दिन अस्मान शिकार खेलने गया, वहा उसे वह बाज भी मिल गया जो चित्रसेन ने गुरु जी को भेंट किया था और जिसे गुरुदिता उड़ाने के लिये ले गये थे। शाम को अस्मान खॉ बाज को घर लेकर आ गया। पेंदेखॉ ने उससे बहुत कहा कि इस बाज को लौटा देना है किन्तु अस्मानखॉ राजी नहीं हुआ।

पेंदे खॉ से बिगाड

गुरु जी को इन बातों का पता लग गया। उन्होंने पेंदेखॉ को दरबार मे बुलाया, गुरु जी चाहते थे कि पेंदेखॉ उनके सामने सही बात पेश करे किन्तु पेंदेखॉ ने सरासर झूठ बोला, उसने कहा आपकी दी हुई चीजें मैंने किसी को नही दीं। आपका बाज भी मेरे यहॉ नहीं है। गुरुजी के इशारे से विधीचंद जी पेंदे के घर जाकर सब चीजों को ले आये थे। गुरु जी ने विधीचंद जी से वह चीजे पेश कराई और कहा, इस झूठ की यही सजा है कि इसे यहॉ से निकाल दिया जाय।

पेंदेखॉ ने घर लौट कर अस्मानखॉ को सारा किस्सा सुनाया और दोनों ने बदला लेने की प्रतिज्ञा की। आसपास के मुसलमानों को भड़का कर उसने पॉच सौ आदमियों का गिरोह इकट्ठा कर लिया। फिर जलधर के हाकिम कुतुबुद्दीन के पास पहुँचा और उससे सहायता मागी। वह पहले ही जलाभुना बैठा था पेंदेखॉ की सहायता करना स्वीकार कर लिया।

कहते हैं पेशावर का हाकिम कालेखॉ भी गुरु जी से लड़ने को तैयार हो गया।[1] अनवरखॉ का दोस्त अब्दुल्लाखॉ भी दो हजार सिपाहियों के साथ कालेखॉ के साथ हो लिया। यह लश्कर करतारपुर की ओर बढ़ा।

गुरु जी से भाई जीतमल ने कहा, महाराज ! तुर्क दल टिड्डी की नाई चला आ रहा है। हमे तत्परता से सामना करने के लिये तैयार होना चाहिये। गुरु जी ने कहा, चिन्ता करने की कोई बात नहीं है, तुम पॉच सौ सैनिक ले जा कर नाके को घेर लो। अमीचंद, मिहरचंद और भाई लब्बू जीतमल के साथ हुए। अंधेरी के फैलते ही तुर्कों का एक बीस हजार का दल करतारपुर पर हमला करने का आगे बढ़

१ सिख इतिहास मेकालफ कृत।

किन्तु सिख सिपाहियो ने झाड़ियो मे से तीर और गोलियों की वर्षा आरम्भ कर दी। कुछ सिख सिपाही मुगलो के लश्कर मे भी घुस गये। रात का समय कौन किसे पहचानता है ? ऐसी गड़बड़ी हुई कि मुगल सैनिक आपस मे भी लड़ने लगे और इस तरह यह दल अपना ही नुकसान करने लगा। कुतुबखाँ ने चारों ओर से अपना ही दल खतम होते देखकर कालेखाँ से कहा, रात मे लड़ाई छेड़ कर हमने सब से बड़ी गलती की है। इस घोर अँधेरे मे कौन किसे पहचानता है। आँधी की धूल ने और भी गोलमाल कर दिया है। फौज का पिछला हिस्सा आगे बढ़ने से घबरा रहा है, हमारे आदमियों की लोथ पर लोथ बिछ गई हैं। पेंदेखाँ ने कहा, आप सारी फौज को आज्ञा दीजिये कि करतारपुर पर चारों ओर से हमला करे, सिखों मे हम लोगों के मुकाबले का है ही कौन ? इस बात को सुन कर कालेखाँ कुढ़ गया और कहने लगा अगर सिख गाजर मूली ही हैं, वे लडना भिडना नहीं जानते और तुम्हारे मुकाबिले के नहीं हैं तो इतने दिन से लाहौर क्यो पड़े रहे और क्यो इतनी बड़ी फौज लाये हो और तुम खुद ही आगे क्यों नहीं बढ़ते हो। कालेखाँ के इस उलाहने से तिलमिला कर पेंदेखाँ और उनका जमाई मसाले हाथ मे लेकर अगुआ बने। कुतुबखाँ, कालेखाँ, और अनवरखाँ भी अलग-अलग जत्थे लेकर तीर की भाति करतारपुर की ओर बढ़े। भाई बिधीचद, जीतमल, रायजोध और लब्बू ने उनका रास्ता रोका। तीरों और गोलियों की इस कदर वर्षा की कि तुरक दल को आगे बढ़ना मुश्किल हो गया। जो भी आगे बढे वही जमीन पर पटक दिया जाय। अनवरखाँ गुरु जी से बदला लेने को बहुत उतावला हो रहा था उसके बिधीचंद ने ऐसे जोर का तीर मारा कि कलामुण्डी खा गया।

पठान, मुगल और सैयद अल्लाहो अकबर के नारे लगा कर आगे को बढ़ते थे किन्तु सिखों के व्यूह को तोड़ना उनके लिये मुश्किल हो रहा था। लड़ते २ सूरज निकल आया। मुसलमान अफसरों ने देखा सेना आधे से भी कम रह गई है और सारा मैदान लोथों से भर गया तो वे बड़े चिढ़े और पेंदेखाँ से कहने लगे तू तो डींगे मारता था कि सिख लड़ना क्या जानते हैं। अब तक उनकी जीतें मेरे ही सबब हुई हैं और जाते ही गुरुजी को पकड़ लाऊँगा, इन छ घंटों की लड़ाई मे तो तू कुछ भी नहीं कर सका। पेंदेखा ने कहा, मैं आगे चलता हूँ और बराबर आगे ही बढ़ता जाऊँगा, तुम पीछे से तो मेरी मदद करो। यह कहकर दोनों ससुर जमाई चल पड़े। मुगल सेना भी द्रुत गति से आगे बढी। दोनों ओर के वीर भिड़ गये। सिखों मे क्या अब बालक और क्या बुड्ढा सभी शक्ति से अधिक जौहर दिखाने लगे। उस समय माता नानकी महल के ऊपर से युद्ध देख रही थीं। अपने अल्प वर्षीय पुत्र श्री तेग बहादुर जी के रण कौशल को देखकर चकित रह गई। सब सिख इसी प्रकार जौहर दिखा रहे थे। कुतुबखाँ गुरु जी पर तीर छोड़ने लगा किन्तु वे उसके तीरों को काट काट कर बेकार करने लगे। गुरुजी भी इस समय तीरों की मेह की भाति वर्षा कर रहे थे। कुतुबखाँ ने यह देखकर गुरुजी की ओर धावा किया किन्तु भाई लब्बू ने उसे बीच मे ही अटका लिया और एक सनसनाता हुआ तीर मार कर जमीन पर लिटा दिया। यह देखकर मुसलमानों के एक गिरोह ने भाई लब्बू को घेर लिया। पौने घटे तक भाई जी अकेले ही हजारों के गोल मे लड़ते रहे और इस प्रकार दोनों हाथों मे तलवारे घुमाने लगे कि किसी का वार उनके शरीर तक नहीं पहुँचे और जो उनकी चपेट मे आ जाय, उसके टुकडे २ हो जावें। इतने मे कुतुबखाँ को होश आ चुका था। उसने लेटे हुए ही भाई जी के पैरों मे एक तीर मारा, जिससे वे गिर पड़े। फिर क्या था। कुतुबखाँ ने गिरे हुए भाई लब्बू का सिर काट लिया।

लब्बू के मारे जाने से मुसलमान अफसरों को साहस हुआ और कालेखाँ, कुतुबखाँ,

और अस्मानखॉ को साथ लेकर गुरुजी की ओर झपटा किन्तु विधिचद जी ने काले खॉ को और वावा गुरदिता जी ने अस्मानखॉ को आगे वढने से रोक दिया। पेंदेखॉ गुरुजी तक जा पहुँचा और कहने लगा, तुमने मेरा जो अपमान किया है आज उसका वदला ले लूगा। गुरुजी ने कहा, पेंदेखॉ, वहादुर लोग वहुत सी वातें नहीं वनाते, जव रणभूमि मे आडटा है तो अपना वही काम कर जो इस समय करना चाहिये। यह सुनकर पेंदेखॉ भूखे वाघ की भाति गुरुजी पर टूटा किन्तु उसका वार खाली गया। फिर दूसरा वार किया। गुरु जी ने कहा पेंदेखॉ तू दिल भरकर वार कर ले। जिससे पीछे यू न कह सके कि मैं इस हथियार से और इस प्रकार वार न कर सका। पेंदेखॉ वार करता रहा और गुरुजी वचाते रहे। अत में गुरुजी ने कहा पेंदेखा मुझे तेरे लिये मारना न पडे और शायद तुझे सुवुद्धि आजावे इसलिये अव तक छोडा किन्तु अव सॅभल जा। और देख वार ऐसे किया जाता है, यह कहते हुये खडे का ऐसा हाथ जमाया कि पेंदेखॉ जख्मी होकर जमीन पर गिर पडा। उसे जमीन पर गिरता देखकर गुरुजी को तरस आगया और उसके मुॅह पर ढाल रख दी कि इसे धूप न लगे।[1]

वावा गुरुदिता जी का एक तीर इधर पेंदे के जमाई अस्मान खा की ऑख में लगा। जिससे वह पेंदे का साथी ही होगया। सामने से कुतुवखा तीरों की वर्षा कर रहा था, इसलिये गुरु जी ने एक तीर मारकर उसके घोडे को वेकार कर दिया। तव कुतुवखॉ तलवार लेकर गुरुजी से आ भिडा। लगभग एक घंटे तक लडता रहा अत मे गुरुजी ने उसका भी खात्मा कर दिया। अव मुसलमान सेनापतियों मे अकेला कालेखॉ ही रह गया था। वह भी गुरुजी के सामने आया और वीरता के साथ कितनी देर तक लडता रहा। गुरुजी को जख्मी भी किया किन्तु उनसे वेचारा फतह क्या पा सकता था। दुधारे खण्डे की वह भी भेट होगया। रहे सहे सैनिक भाग गये कुछ अपने घरों को चले गये और कुछ लाहौर जा पहुँचे।

कहते हैं उस युद्ध मे मुसलमानों के तो हजारों ही आदमी मारे गये थे किन्तु सिख केवल सात सौ ही काम आये थे। यह घटना १६६१ विक्रमी के असाढ महीने की है।

वुड्ढनशाह पहुँचे हुए फकीर थे। उनकी उम्र सौ से उपर पहुँच चुकी थी। उनके पास गुरु नानकदेव जी की दूध की अमानत थी। पहली मुलाकात मे उन्होंने वह गुरदित्ता जी को सौंप दी थी। इस समय उनका शरीर किनारे पर आ पहुँचा था, अत इस युद्ध से निवृत होते ही जल्दी ही गुरुजी मय लश्कर और परिवार के वावा वुड्ढनशाह के पास पहुँचे उन्हे दर्शन से सतुष्ट करके कीरतपुर पधारे जहॉ अपने घावों की मरहमपट्टी की। उनका दिलवाग घोडा भी लडाई में काफी जख्मी होगया था अत. उसने अपने प्राण दे दिये। समस्त सिख वावा वुड्ढनशाह के पास ही ठहरे हुए थे अत उन्होंने अपने प्राण त्याग के लिये यह शुभ अवसर समझा, दूसरे दिन गुरु जी भी कीरतपुर से वुड्ढनशाहजी के पास आगये। वुड्ढनशाह ने उनके चरण पकड कर प्रार्थना की सच्चे वादशाह मैं तुम्हारा दास हूँ।

वुड्ढन शाह

सव लोग तो गुरुजी के साथ कीरतपुर गये थे किन्तु धीरमल जी अपनी माता जी समेत करतार पुर ही रह गये थे, वे चाहते थे कि भाई विधीचद जो उन दिनों ग्रन्थ साहव जी का उतारा कर रहे थे अपना काम पूरा करने के लिये ग्रन्थ साहव जी को साथ ले जॉय किन्तु धीरमल ने न मिलने का वहाना करके उन्हे टाल दिया।

धीरमल के अकृत्य

१ शत्रु पर भी इस प्रकार के उदारतापूर्ण व्यवहार करने की चर्चा सिख गुरुओं और उनके अनुयाइयों के इतिहास में काफी मिलती है।

बन्दी छोड़ गुरु

श्री हरिगोविन्द जी

बाल गुरु

श्री हरिकृष्ण जी

संवत् १६६५ मे बाबा गुरुदित्ता जी भी इस संसार से प्रस्थान कर गये। उनके स्वर्गवास की घटना सिख इतिहासकारो ने इस प्रकार लिखी है कि एक बार उन्होंने एक मृतक को उसके अभिभावुकों के अति क्रन्दन करने के कारण दयावश होकर जिला दिया। जब गुरु जी को पता चला तो उन्होंने गुरुदित्ता जी को ताड़ना की और कहा, "करामात दिखाने के अभिप्राय. से तुमने ईश्वर की रजा के विरुद्ध कार्य किया है अत. तुम संसार मे रहने के योग्य नहीं।" अपने गुरु के इस वचन को पूरा करने के लिये गुरुदित्ता जी उस समय चल दिये और बुड्ढनशाह के स्थान पर जाकर वह सदैव के लिये समाधि लगा गये। इधर उनकी ढूंढ खोज हुई। खोजते २ गुरु जी बुड्ढन शाह के स्थान पर पहुँचे तो यहाँ केवल गुरुदित्ता जी का मृतक शरीर मिला।

बाबा गुरुदित्ता स्वर्ग लोक

गुरुदित्ता जी के परलोक वास के पीछे उन्होंने धीरमल जी को जोकि बाबा गुरदित्ता जी के जेठे पुत्र थे। कीरतपुर बुलाने को आदमी भेजा, साथ ही कहला भेजा कि ग्रन्थ साहब जी को भी लेते आवे। पत्र वाहक जब धीरमल के पास पहुँचा तो उन्होंने आने से साफ इन्कार कर दिया और न ग्रन्थ साहब भेजे। कह दिया पगड़ी मेरे छोटे भाई हरिराय को बधा देवे। मै अपने धन माल को सूना नहीं छोड़ सकता। धीरमल ने सोचा था कि गुरु ग्रन्थ साहब जब मेरे ही पास है तो गुरु हरिगोविन्द जी के बाद सिख मुझे ही तो अपना गुरु मानेंगे।

धीरमल का अनौचित

भावी गुरु हरिराय जी

विधीचंद जी ने ग्रन्थ साहब का जितना उतारा कर लिया था उतने ही का पाठ किया गया। इस समय तक तक गुरुजी ने बाबा बुड्ढे के सुपुत्र भाना जी को भी बुला लिया था। परिवारिक जन और सम्बन्धी सभी इकट्ठे होगये थे। संगते भी आरही थीं। जब लोग रंज करने लगे तो गुरुजी ने आध्यात्मिक उपदेश देकर सब को शात किया। अंत मे गुरुजी ने सबको सूचित किया कि धीरमल बुलाने पर नहीं आया है और न उसने ग्रन्थ साहब को भेजा है। वह माया मे लिप्त होगया है, अत. पगड़ी उसके छोटे भाई हरिराय जी के बांधी जानी चाहिये।

अनूपशहर से दयाराम नाम का एक सिख अपने परिवार समेत उत्तर की सगत के साथ गुरुजी के दर्शन के लिये आया था। उसने अपनी लड़की का विवाह हरिराय जी के साथ करने की प्रार्थना की। गुरुजी ने दयाराम के इस प्रस्ताव को स्वीकार कर लिया और १० हाड संवत १६६७ मे यह शुभ विवाह होगया।

इन दिनों गुरु जी उदास रहते थे। वह कभी अपने उद्यान मे निकल जाते। कभी एकान्त मे बैठ कर चिन्तन करते। उपदेश भी इन्हीं बातों पर करते कि जो इस संसार मे आता है। उसे एक दिन जाना पडता है। इसलिये मनुष्य को जीवन भर सतर्क रहना चाहिये। कोई भी धब्बा अपने ऊपर नहीं लगने देना चाहिये।

एक दिन उनसे गुरु अमरदास जी के पड़पोते मनोहर जी के पुत्र अनंदराय जी गोविन्दवाल से चल कर मिलने आये तो आप उन्हे देख कर इतने प्रसन्न हुए कि उनकी पालकी के नीचे लग गये। उनका अपने महलों मे ठहरने का प्रबन्ध किया।

धीरमल के लिये गुरु जी ने बुलाने को फिर भी आदमी भेजे किन्तु वह नहीं आया। कहते हैं उसने यह भी कहला भेजा था, हरिराय को गुरु बना कर आप मेरे साथ अन्याय कर रहे हैं। जब उसकी माता जी ने उसे ऊँच नीच और हिताहित की बातें कह कर बहुत समझाया तो वह गुरु जी के पास गया। गुरु जी ने उसे प्यार के साथ अपने पास बिठाया। वह वहाँ रहने लगा। एक दिन आप ही ने घोषणा करदी, मैं सिखों का गुरु हूँ। इनसे गुरु जी उससे बहुत नाराज हुए, तो वह यह कहता हुआ वापिस लौट गया। मैं तो अपने बल पर गुरु बनूंगा।

अपने अन्त समय को निकट जानकर उन्होंने सब संगतों के पास कीरतपुर आने के निमत्रण पत्र भेज दिये। कीरतपुर में उन दिनों होली का उत्सव मनाया जा रहा था, गुरु जी सिखों को मादक चीजों के त्याग पर उपदेश दे रहे थे। बाहर से आने वाली संगतों ने भी इन उपदेशों का लाभ उठाया। इस होलकोत्सव के बाद नियत किए हुए दिन एक विशाल दीवान हुआ और उसी अवसर पर हरिराय जी को गुरुआई बख्शी गई। गुरु जी ने नये गुरु जी को पिछले गुरुओं का आदर्श निभाहने के लिये उपदेश भी दिया और फिर रबाबियों ने कीर्तन किया।

सचखंड प्रस्थान

इसके बाद गुरु जी सतलज के किनारे चले गये। जहाँ पहले से ही पतालपुरी नाम की एक सुन्दर कुटी बना रक्खी थी। इस एकान्त स्थान में वाहि गुरु का स्मरण करने लगे।

एक दिन बीबी वीरों ने पतालपुरी पहुँच कर रोते हुए कहा मेरी माता मुझे छोड़ कर पहले चल बसी हैं। अब आप भी जाने की तयारी कर रहे हैं। पिता और माता जिसके कोई नहीं हो उसका जीवन कितने दुःख का होता है। मेरा तो इस बात की कल्पना से ही हृदय फटता है। गुरु जी ने बीबी को धीरज देते हुए कहा, बेटी यह तो ससार का खेल है पैदा होता है वह विनष्ट भी होता है मेरे लिये कोई शोक न करना, परमात्मा का स्मरण करना।

गुरुहरि गोविन्द जी के जीवन पर एक दृष्टिपात

गुरु हरिगोविन्द जी का जमाना मुस्लिम शासकों की बदहवासी का जमाना था। जिसमें न्याय और विचार को बहुत कम स्थान था। किसी को सताने के लिये मुस्लिम शासकों को कारण जानने और ढूंढ़ने की आवश्यक्ता शायद महसूस न थी। वे चाहे जिस पर अत्याचार करने में कुछ भी आगा पीछा नहीं सोचते थे। पंजाब तो ऐसे अत्याचारों का केन्द्र बना हुआ था। गुरु हरिगोविन्द जी ने यह दशा देखी तो इसके प्रतिकार के लिये उन्होंने तलवार धारण की अर्थात् भक्ति के साथ ही वीरता का उपदेश देने का भी उन्होंने काम अपने हाथ मे लिया और फल यह हुआ, उनका समुदाय धर्मप्रिय के साथ ही अन्यायों और अत्याचारों का मुकाबिला करने वाला भी बन गया।

गुरु जी के सारे जीवन पर जब हम दृष्टि डालते हैं तो ऐसा मालूम होता है कि उनका सारा जीवन सघर्ष मे बीता। उन्हे शाति से बैठने और आराम करने का कभी ही अवसर मिला हो किन्तु फिर भी वे इस बात से पूरी तरह सतर्क रहते थे कि सिखों में कोई त्रुटि तो पैदा नहीं हो रही। भाई गुरुदास जी जैसे पुराने सिख को भी उन्होंने नम्र बनने के लिये ताड़ना दी। नशेबाजी को बन्द करने के लिये कड़े शब्दों मे उपदेश दिया। जरा सा भी समय मिलते ही भक्तों और शिष्यों के पास पहुँचते. पेंदे खाँ की लडाई के दूसरे ही दिन बुड्ढन शाह की खबर लेने पहुँचे।

उन्होंने अपने जीवन में अच्छी से अच्छी और प्यारी से प्यारी चीज से मोह नहीं किया।

नवाँ अध्याय

गुरु हरिराय जी की जीवन यात्रा

गुरु हरिराय जी साहब का जन्म बाबा गुरुदित्ता जी के घर माता निहालकौर जी के उदर से माघ सुदी २ संवत् १६८६ वि० में हुआ था। इनके पिता जी का सचखंडवास इनकी बाल्य-अवस्था में ही होगया। यह गुरु हरिगोविन्द जी महाराज के पोते थे।

आपका स्वभाव बड़ा दयालु था। अत आप शिकार करने भी नहीं जाते थे। वैसे आपके यहाँ कई हजार सैनिक तैयार रहते थे किन्तु युद्ध का मौका ही नहीं आया।

सभी यात्री

संवत् १७०६ वि० मे रूम के बादशाह का वकील भारत के मुगल सम्राट् के दरबार मे आया। पंजाब मे उसने सिख गुरुओं की प्रशंसा सुनी। इसलिये वह दर्शन के लिये गुरु हरिराय जी के दरबार मे भी पधारा। यहाँ उसने दीवान, कड़ाह प्रसाद, सिखों की धार्मिकता, गुरु जी के स्वभाव और रहन सहन सबको देखा, इससे उसके दिल पर बड़ा असर पड़ा। उसने एक प्रश्न भी किया कि महाराज —"सासारिक कष्टों से छुड़ाने मे कौनसा पैगम्बर (अवतार) मदद दे सकता है?" गुरु जी ने कहा संकटों से तो अपने शुभ कर्म ही छुड़ा सकते है। अवतार और पैगम्बर भी तो अपने कर्मो के ही फल से कोई बनते है। इस यथार्थ उत्तर को सुनकर राजदूत बहुत प्रसन्न हुआ और गुरु जी की भूरि २ प्रशंसा करने लगा।

दाराशिकोह का इलाज

बादशाह शाहजहाँ के चार पुत्र थे। चारो ही इस दाव पेच मे थे कि बादशाह के मरने पर गद्दी हमे मिले। कहते हैं इसी उद्देश्य से औरंगजेब ने कोई जहरीली चीज दारा को खिलादी। अनेक लोगों ने उसका इलाज किया। किन्तु अच्छा ही न हो सका। वैद्य हकीमों ने आखिर मे कहा यदि दस तोले वजन की हरड़ और एक मासे की लौंग आवे तो दारा चंगा हो सकता है। इस पर पीरहसन अली ने बादशाह से कहा, संभवतया ये चीजे गुरु हरिराय जी के औषधालय मे प्राप्त हो सकती है। बादशाह ने अपने आदमी गुरु जी के पास भेजे गुरु जी ने यह चीजे दे दीं, जिनके खाने से दाराशिकोह अच्छा होगया। इस अहसान से प्रेरित होकर संवत् १७०७ मे दारा गुरु जी के दर्शनों के लिये आया।

बिलासपुर का राजा गुरु जी के दर्शनों के लिये आया। उसने रास्ते में ही सोचा था कि यदि जाते ही कड़ाह प्रसाद मिल जाय तो मैं गुरु जी की महान् कृपा समझूंगा। उसे जाते ही कड़ाह प्रसाद

राजा विलासपुर मिला। उसने समझ लिया गुरु जी अन्तर्यामी हैं। यहाँ पर उनके उपदेशों ने उनके दिल पर इतना असर डाला कि वह गुरु जी का प्रेमी बन गया।

इसी तरह कुठाह का राना भी गुरु जी के दर्शनों के लिये आया। वह बहुत दिन से बीमार था सो थोड़े ही दिनों मे चंगा हो गया।

राजा बाजबहादुर ने गुरु जी के दर्शन और उपदेशों से संतुष्ट होकर उन्हें एक हाथी भेंट किया। इसी तरह अनेकों राजे रईस गुरु जी के दर्शनों को आने लगे।

राजे रईसों की तरह ही अनेकों गरीब भी गुरु जी के दर्शनों की प्यास से आते थे। वे भी आकर अपनी श्रद्धानुसार भेंट देते थे और आत्म सतोष प्राप्त करते थे। एक दिन एक माई श्रद्धा से प्रेरित होकर रोटी घी और चीनी में तर करके लाई और सभा में बैठ गई। सभा के खतम होते ही गुरु जी ने आवाज लगाई. ला. माई रोटी मेरे लिये तो भूख लग रही है। माई श्रद्धा से गद्गद् हो गई उसने अपने जीवन को सफल समझा। राजा महाराजा भी जो उस समय आए थे गुरु जी की इस दयालुता को देखकर चकित रह गये।

गृहस्थियों की भांति ही साधुसंत भी उनके दर्शनों को आते थे और उनमें से अनेक तो सिख धर्म को भी धारण कर लेते थे। संवत् १७०७ मे ऐसा ही एक गिरोह गिर गुसाई का बौध गया से आया। उसने पंजाब में ज्वालामुखी देवी के मेले मे गुरु जी के सम्बन्ध में सुना था गुसाई सब अपने साथियों के गुरु जी के पास हाजिर हुआ उसने दर्शनों और उपदेशों से भी लाभ उठाया।

कुछ दिन के बाद गुरु जी यात्रा पर निकले। यह यात्रा उन्होंने संवत् १७०८ में आरम्भ की। सबसे पहले अमृतसर पहुँचे। रास्ते में करतारपुर मे अपने भाई धीरमल से भी मिले। वहाँ दीवाली के मेले तक रहे। उस समय में दूर २ से अनेकों संगतें दर्शन के लिये आईं जिन्हें आपने *यात्रा* अपने मनोहर उपदेशों और दर्शनों से संतुष्ट किया। यहाँ से फिर करतारपुर आगये और लगातार १० महीने रहे। वैसाखी करतारपुर में ही हुई। यहाँ पर भी दूर दूर से सिख लोग दर्शनों को आते रहे। करतारपुर से नूरमहल आये जहाँ का दीवान गुरु जी के याद करने पर भी उनके पास नहीं गया। अपने नौकर द्वारा कहलवा दिया कि दीवान जी तो सो रहे हैं. दैवात उसकी छत गिर पड़ा और सदा के लिये सोता ही रह गया। यहाँ नूरमहल में भी बहुत सी संगतें गुरु जी से मिलने आईं। फतहशाह औलिया भी गुड़ की भेली और रुपयों की थैली लेकर हाजिर हुआ। गुरु जी ने उपदेश देकर उसे निहाल किया। यहां के चौधरी मूढ़ के घर पुत्र नहीं पैदा होता था। गुरु जी के प्रसाद से जब उसका पुत्र पैदा हो गया तो वह बड़ा प्रसन्न हुआ। गुरु जी ने उससे इस खुशी में वहा पर पानी का कुआँ बनवाने के लिये आज्ञा दी। उसने कुआँ बनवा दिया।

नूरमहल से चलकर गावों में प्रचार करते हुए गुरु जी डलोरी गाव में पहुँचे जहाँ पर कि गुरु हरिगोविन्द जी के नाम का एक कुआं था। उसकी मरम्मत करवाई।

मालवे की संगतें भी गुरु जी से उधर चलने के लिये आग्रह कर रही थीं। अत गुरु जी सतलज को पार करके मालवे देश में पहुचे। वहां पर धारीवाल, भूलर, कौड़े और गिल के जाट जमींदारों ने गुरु जी और उनके दल की खूब सेवा की।

भाई दाल्लू ने एक दिन गुरु जी को प्रसन्न देख कर अपने भतीजों को उनकी सेवा में हाजिर किया। वहां बच्चों ने पहुँच कर अपने पेट को बजाया गुरु जी के पूछने पर उनके चाचा ने कहा कि महा-

राज यह अपनी भूख मिटाने के लिये आपकी सेवा मे हाजिर हुये है, जिस पर गुरु जी ने वर दिया कि इनके घोड़े जमुना नदी मे पानी पियेगे। और इनके पास बहुत से हाथी होंगे।

जब कालू जी की चौधराइन ने यह बात सुनी तो उसने अपने बेटे को भी गुरु जी की सेवा मे भेजा। उसे भी गुरु जी ने वर दिया कि तुम्हारे संतान के हाथ मे जागीरे होंगी। जिससे आनन्द का जीवन बिताने से कोई कठिनाई नही होगी। पटियाला, नाभा, जीन्द तीनों राज्य उसी कुल के राज्य है और कालू जी की संतान के हाथ मे लोहगढ और गुमटी की जागीरे हैं।

मालवा देश का भाई भगतू गुरु अर्जुनदेव जी के समय से मसन्द था। जब उसका अन्तकाल हो गया तो उसकी जगह उसके पुत्र जीवन और गोरे को दे दी गई। गुरु हरिराय जिस समय मालवे मे विचर रहे थे। उस समय भाई भगतू का पुत्र गोरा अपने बाहुबल से भटिंडे का अधिपति बन चुका था। उनने गुरु जी को एक सुन्दर घोड़ा और ५००) भेट किये। गुरु जी जब यहा से करतारपुर के लिये रवाना हुए तो सरदार गोरा उन्हे पहुँचाने के लिने मय अपने बहादुर वैराड जाटों के करतारपुर तक गया। रास्ते मे एक पठान हाकिम ने अपने दस हजार आदमियों के साथ हमला करके गुरु जी के माल असबाव और हाथी, घोड़ों को लूटना चाहा। किन्तु गोरा के बहादुर सैनिकों ने लड़ाई मे वह हाथ दिखाये कि पठानों को भाग कर अपनी जान बचानी पडी। गुरु जी गोरा से बहुत प्रसन्न हुए और उसे आशीर्वाद दिया कि तेरी संतान राजपाट वाली हो। रियासत अरनौली, सिंधूवाल, भव्वा आदि की जागीरें उन्हीं के वंशजों की है।

करतारपुर मे धीरमल के पुत्र का विवाह था। गुरु जी उसी मे शामिल होने के लिये आये थे। यह घटना संवत १७११ की है। उस समय वहाँ बड़ी भीड़ हुई। यहाँ एक ब्राह्मण का एकलौता पुत्र मर गया। ब्राह्मण उसे गुरु जी के पास जिन्दा कराने के लिये लाया और कहने लगा कि अगर उसे जिन्दा नहीं किया गया तो मैं भी मर जाऊंगा। गुरु जी ने जवाब दिया यह तो जिन्दा हो जायगा किन्तु पहले किसी को मरना पड़ेगा जो ब्राह्मण अब तक प्राण देने की धमकी दे रहा था। वह चुप हो रहा, तब भाई भगतू के पुत्र जीवन ने अपने प्राण उस लड़के की जिन्दगी के लिये विसर्जित किये और लड़का जी उठा। जीवन की विधवा को जो कि गर्भवती थी गुरु जी ने वर दिया कि तेरे पुत्र होगा और उसकी संतान इतनी वृद्धि को प्राप्त होगी कि उसके गाव बसेंगे।

करतारपुर से गुरु जी माझे प्रदेश की यात्रा के लिये निकले और गाम-गाम मे उपदेश देते हुये तथा भक्तजनों को संतुष्ट करते हुए गाइंदवाल पहुँचे। वहा सवत १७१३ मे दाराशिकोह गुरु जी की शरण मे आया। वह अपने भाई औरंगजेब से लड़ाई हार चुका था। गुरु जी ने उसे वैराग्य का उपदेश दिया। इससे उस पर इतना असर पड़ा कि वह आया तो था सिख सैनिक मांगने और कहने लगा महाराज मैं तो एकान्त में जाकर ईश्वर भक्ति करना चाहता हूँ, इसलिये ऐसी कृपा कीजिये कि औरंगजेब का आया हुआ लश्कर जो मेरा पीछा कर रहा है, मुझे पकड़ न सके। दारा मुल्तान की ओर बढ़ गया और गुरु जी ने अपनी सेना को शाही सेना के आगे अड़ा दिया। इस तरह दारा को आगे निकल जाने का मौका मिल गया।

बादशाह औरंगजेब के बार २ आग्रह के कारण गुरु जी ने रामराय जी को जो कि उनके पुत्र थे देहली भेज दिया। रामराय ने देहली पहुँचकर अपने ज्ञान, बल और करामातों से बादशाह औरंगजेब को खुश कर लिया था किन्तु उनसे एक गलती भी हो गई जिसके कारण गुरु जी ने

रामराय से नाराजी रामराय जी को त्याग दिया और फिर कभी न अपनाया। बात यह थी कि एक दिन बादशाह औरंगजेब ने पूछा, गुरु नानक देव जी ने अपनी वाणियों में "मिट्टी मुसलमान की पेडे पई घुमिआर। घड भाडे इटा कीआ जलती करे पुकार।" शब्द भी लिखा है क्या? रामराय जी ने उत्तर दिया। गुरु नानकदेव जी ने तो बेईमान की लिखा है। 'मुसलमान' की नहीं। यों ही यह बात ज्यों की त्यों गुरु जी के पास पहुँची। इस गुरुवाणी भग को एक भारी धार्मिक अपराध जाना और सिखों को रामराय से कोई सम्बन्ध न रखने की आज्ञा जारी कर दी। रामराय इसके बाद इस पर कुछ अर्सा देहली ही स्थित रहे और कुछ समय बाद अपना अलहदा डेरा स्थापित कर लिया जो अब देहरादून के नाम से मशहूर है।

दया और प्रेम का श्रोत बहाते हुए गुरु जी के लिये वह समय भी आ पहुँचा जब उन्होंने अपने पूर्व-वर्ती गुरुओं की नाई सिख संगतों के पास यह परवाने भेजे कि अब हमारे विदा होने का समय आ गया है।

गरीब, अमीर, बालक, युवा और वृद्ध सभी तरह के हजारों सिख गुरु जी के स्थान पर इकट्ठे हो गये। गुरु जी ने सबसे पहले नये गुरु की नियुक्ति की रसम को पूरा किया। नये गुरु उन्होंने अपने छोटे पुत्र श्री हरिकिशन जी को बनाया और सिखों से कहा। आप इन्हें वैसे ही मानिये जिस तरह मुझे मानते आये हो।

सवत १७१८ वि के कार्तिक वदि नौमी को आपने स्नान ध्यान से निवृत हो श्वेतवस्त्र धारण करके दीवान किया और जपुजी का पाठ करते हुए सब के सामने अतरध्यान हो गये।

गुरु हरिराय जी के जीवन पर एक नजर

गुरु हरिराय जी बहुत दयालु और कोमल स्वभाव के महापुरुष थे। उनकी दयालुता की अनेकों कथाये हैं। उनका यह प्रेम किसी एक ही जाति और मजहब के लिये न होकर सभी लोगों के लिये था। यहा तक उन्होंने अपने बुजुर्गों के घातक और विरोधी की सतान दारा को भी उस हालत में, जब कि उसके पीछे औरगजेब की सेनाये आ रही थीं सहायता की। उसे काफी दूर भाग जाने देने के लिये उन्होंने अपनी सेनायें औरगजेब की सेनाओं के आगे अड़ा दीं। इस प्रकार उसे काफी दूर निकल जाने का अवसर दिया। वे मनुष्यों पर ही दया करते हों। सोही बात नहीं है प्रत्येक जीव पर दया करते थे, यहा तक कि फूल पत्ते और वृक्षों के प्रति भी उनके कोमल हृदय मे दया मौजूद थी। एक दिन जब कि गुरु हरिगोविन्द साहब अपने बाग मे बैठे हुए प्रकृति की छटा देख रहे थे आप भी बाग मे पहुँच गये किन्तु आपके वस्त्रों से कुछ फूल टूट पड़े। इससे आपको बड़ा रंज हुआ।

दीन दुखियों के करुण क्रन्दन को तो आप बर्दास्त कर ही नहीं सकते थे। इसलिये आपने एक औषधालय भी स्थापित किया था। उसमें अलभ्य से अलभ्य ओषधियों का सग्रह रहता था। दारा शिकोह के प्राण आपके ही औषधालय की हरड से बचे थे।

आपके समय में धन बहुत इकट्ठा हुआ था। पहाडी प्रदेश के कई राजा, महाराजा और जागीरदार आपके शिष्य हो गये थे। इसलिये हाथी घोड़े और जवाहरात सभी प्रकार की बहुमूल्य चीजे भेंट में आती थीं।

देहाती जनता की भलाई का खयाल भी आप खूब ही रखते थे। जहाँ कहीं देखते पानी का कष्ट

है, तो वहाँ अपने शिष्य और मरीजो को संतुष्ट करके उनसे कहते यहाँ कूप बनवा दो।

आशीर्वाद आपके जीवन की विशेषता थी। जिसने जो मांगा उसे वही दिया। जिसने आपकी सेवा की उसे ही वर दे दिया। मालवे के जाट जमीदारों की सेवा से ऐसे प्रसन्न हुए कि उनमे से कई को उनकी संतान के राजा होने के आशीर्वाद दे दिये। गुरु वाणियों की महत्ता का आप कितना आदर करते थे। उसका पता इस बात से चल जाता है कि आपने अपने पुत्र तक को भी उसमे जरा सा परिवर्तन करने पर जन्म भर के लिये त्याग दिया। और गुरुआई से वंचित कर दिया।

दसवाँ अध्याय

गुरु हरिकिशन जी की जीवन-लीला

श्री गुरु हरिकिशन जी साहब गुरु हरिराय जी के द्वितीय पुत्र थे। जो माता किशनकौर जी से संवत १७१३ वि: की सावन वदी दशमी बुधवार को कीरतपुर मे पैदा हुये थे। जिस समय आपको गुरु आई मिली थी। उस समय आपकी अवस्था लगभग ६ वर्ष की थी।

इनके स्वभाव के सम्बन्ध मे एक सिख इतिहासकार ने इस प्रकार लिखा है —"यद्यपि यह गुरुजी अवस्था मे छोटे थे किन्तु धैर्य्य, संतोष, दयालुता, उदारता और अन्तरज्ञान मे परिपूर्ण थे। इनका प्रताप भी पहिले गुरुओं की तरह स्थिर रहा। इनके समय मे भी राजे रईस दर्शनों को आते रहे और सिख धर्म का प्रचार होता रहा। आप प्रात. काल उठकर स्नान करते थे। भेंट और चढ़ावे को अनाथों मे बाट देते थे।"

दीन-दुखियों के दुख और बीमारी दूर करने का काम भी आपके समय मे बराबर चलता रहा। एक बार जबकि आप पालकी मे बैठे हुए जा रहे थे। एक कोढ़ी आपकी पालकी को पकड कर रोने लगा। आपने पालकी ठहरवाली और उससे उतर कर उसकी हालत देखी। उसको एक रूमाल देते हुए कहा, इसे कुष्ट के स्थानों पर लगाते रहो। लिखा है कि उस कोढ़ी का दुख शीघ्र ही दूर हो गया।

आपके दर्शनों के करने से ही अनेकों लोगों के मन को शांति मिलती थी। दूर दूर से लोग आपके दर्शनों को आते थे। और छोटी अवस्था मे ही आप जो मनोहर उपदेश देते उन्हे सुनकर सभी आपकी प्रशंसा करते थे।

रामराय का विरोध

पिता द्वारा विताड़ित किये हुए रामराय जी ने जब देखा कि हरिकिशन जी का प्रभाव सिखो पर बराबर बढ़ रहा है और सिख उनके प्रति पूरी श्रद्धा रखते हैं, तो रामराय जी के हृदय का क्रोध जाग उठा और वे अपने ही छोटे भाई की कीर्ति एंव महानता को न सहार सके। और उन्होंने अपने को गुरु प्रसिद्ध करके सिखों को भी जाल मे लेने की कोशिश की। दूर दूर की संगतों को चिट्ठियां लिखीं। धीरमल के साथ मिल कर देश देशान्तरों मे अपने प्रचारक भी भेजे किन्तु सभी ओर से सिखों का जवाब आया कि हम तो उसे ही अपना गुरु मानेंगे, जिनको गुरु हरिराय जी ने गुरुआई बख्शकर नियत किया है। इन प्रयत्नों मे जब रामराय पूरी तरह से विफल होगया तो उसने औरंगजेब के सामने अपना सब हाल कहा। उसने सब बातें गौर के साथ

सुनीं। पहले तो औरंगजेब ने यह भी कहा कि तुम बिना बात के झगडे में क्यों पड़ते हो, तुम्हें धन दौलत चाहिये तो मैं दे सकता हूँ। किन्तु रामराय ने अधिक आग्रह किया तो बादशाह ने गुरु हरिकिशन को बुलाने के लिये अपने आदमी भेज दिये।

गुरु जी दिल्ली जाने के लिये तयार हो गये। उस समय वहाँ जितने भी सिख हाजिर थे। सबने गुरुजी के साथ चलने की इच्छा प्रकट की किन्तु उन्होंने सबको मना कर दिया। थोड़े से सेवकों को साथ ले जाना ही उचित समझा तो भी बहुत से आदमी उनके साथ हो लिये। वे अपने प्राणों से ज्यादा प्यारे गुरुजी को दिल्ली चले जाने देने में घबराते थे। उन्हें ऐसा मालूम होता था कि हम यहाँ अकेले कैसे जिन्दा रहेंगे। इसलिये गुरुजी के बार बार मना करने पर भी नहीं माने तो गुरुजी ने एक रेखा खींचदी और कड़े शब्दों में कहा, जो कोई इस रेखा को पार करेगा उसे हम सिखी से खारिज कर देंगे। जो तुम हमसे सच्चा प्रेम करते हो तो वापिस लौट जाओ। इस बात को सुनकर अनिच्छा रहते हुए भी सभी सिख लौट गये।

दिल्ली यात्रा

पंजाब को पार करके सबसे पहले गुरुजी कुरुक्षेत्र पहुँचे। यहाँ पर आपने डेरे लगाकर विश्राम किया। सिख इतिहासकारों यहाँ एक चमत्कारिक कथा का उल्लेख किया है वह इस प्रकार लिखी गई है:—

"गुरुजी के राजसी ठाठबाट को देखकर लालजी नाम का एक पंडित कुढ़ कर कहने लगा, भगवान कृष्ण ने तो गीता बनाई थी। हम तो जब तुम्हारे गुरु को हरिकृष्ण समझे जब गीता के श्लोकों का अर्थ कर दे। गुरुजी ने जब यह बात सुनी तो उस पंडित को अपने पास बुलाया और कहा हम तो क्या। एक गँवार से अर्थ कराये देते हैं। चुनाचे आपने बल जी नाम के देहाती लड़के से गीता के श्लोकों का अर्थ करा दिया। इस करामात को देख कर लालजी उसी समय गुरुजी का भक्त हो गया।"

कुरुक्षेत्र में और लोगों ने भी आकर गुरुजी के दर्शन किये और अपने को कृत्य कृत्य किया।

कुरुक्षेत्र से चल कर दिल्ली पहुँचने पर गुरु राजा जयसिंह जैपुर वाले की हवेली में ठहरे। दिल्ली की संगतों ने जब यह समाचार सुना तो उत्साह और प्रेम का उनमें दरिया उमड पड़ा। दल के दल गुरु जी के दर्शनों को आने लगे। गुरु जी के साथियों और गुरु जी के खान पान और रहने का सारा प्रबन्ध बादशाह की ओर से कर दिया गया।

राजा जैसिंह की रानी ने राजा से कहा कि हम गुरु जी के दर्शन करना चाहती हैं अत उन्हें भीतर लाइये। राजा ने रानियों की यह अभिलाषा गुरु जी के सामने अर्ज की। गुरु जी राजी हो गये। उधर बड़ी रानी ने छोटी रानियों को भी खबर देदी। वह भी सजधज कर आगईं किन्तु पटरानी ने अपने कपड़े तो एक गोली (दासी) को पहना दिये और खुद दासी के कपडे पहन लिये किन्तु जब गुरु जी महल में पहुँचे तो अपनी छडी से एक-एक को छूकर कहते, यह भी नहीं, यह भी नहीं, इस तरह सादा वेश वाली पटरानी की गोद में ही जा बैठे। रानी खुशी से प्रफुलित हो गई। और गुरु जी के चरण चूमने लगी। सब रानी और दासियाँ कहने लगी आखिर तो गुरु जी सर्वज्ञ हैं। कहते हैं राजा जैसिंह के कोई संतान नहीं होती थी गुरु जी की कृपा से पटरानी के संतान हुई और उसे सेवा करने का फल मिला।

राजा जैसिंह गुरु जी की सर्वज्ञता और विद्वता तथा सरल स्वभाव की बादशाह से खूब तारीफ

किया करता था। अत बादशाह ने अपने लड़के मुअज्जमशाह को कुछ मुसाहिबों के साथ गुरु जी के पास भेजा। शाहजादा बादशाह की दी हुई कुछ चीजे गुरु जी की भेट को भी लाया। किन्तु गुरु जी ने उनमे से एक सेली के सिवाय किसी भी चीज से हाथ नहीं लगाया। औरंगजेब ने भी वह सेली गुरु जी की परीक्षा के लिये ही भेजी थी, फिर सब लोग बाग की सैर करने गये वहाँ गुरु जी ने कुछ मेवे शहजादे को दिये। जिन्हे खाकर शाहजादा बड़ा प्रसन्न हुआ और आश्चर्य करने लगा कि उसने ऐसे मेवे तो अज तक नहीं खाये थे। बादशाह ने जब यह बाते सुनी तो उसे यकीन होगया कि गुरु जी करामाती हैं।

गुरु जी के दिल्ली मे रहने से नगर वासी बडे प्रसन्न थे, उनको गुरु जी के आर्शीवादों से लाभ भी होता था।

होली का त्योहार गुरु जी का दिल्ली मे ही मना था। चैत भी आनन्द से बीत रहा था कि शुल्क पक्ष की नौमी को उन्हे अचानक बुखार चढ आया। बुखार सादा न था। चेचक का बुखार था। माता जी घबरा गईं। गुरु जी ने कहा घबराने की आवश्यकता नहीं है। वह तो होकर ही रहेगा, जो होना है। डेरे तम्बू जमुना किनारे ले चलने चाहिये।

दिल्ली के अच्छे से अच्छे वैद्य और हकीमो ने गुरु जी का इलाज किया गया किन्तु सफलता कुछ नहीं मिली। उन्होंने सब से स्पष्ट कहा, आप कोई इलाज न करे और न कराये वाहि गुरु जी की यही मर्जी है, संसार का हमारा काम खतम हो गया है। अब हमे निश्चित रूप से सचखड मे जाना है।

त्रियोदशी के दिन गुरु जी ने पाँच पैसे और नारियल मंगा कर भाई बुड्ढे के पोते को सौंपते हुए कहा "बाबा बकाले" जिससे आपका भाव स्पष्टतया यह था कि आपके बाद होने वाले गुरु आपके पिता के चचा अर्थात् आपके बाबा (तेगबहादुर) बकाला नामी गाव मे है।

माता किशनकौर वगैरह बहुत अधीर हो रही थीं। इसलिये गुरु जी ने उन्हे समझाया—"एक दिन सभी को वहा जाना होता है किसी को आगे किसी को पीछे। यहा तो मनुष्य अपनी उस ड्यूटी को पूरा करने आता है, जो उसके जिम्मे ईश्वर सौंपता है। काम पूरा हो चुका है। तुम वाहि गुरु मे अपना मन लगाओ। वही सबका सच्चा हितू है। सच्चा नाता तो उससे ही है। ये नाते तो सासारिक होने के कारण थोडे दिन तक ही निभते हैं" इस तरह के मनोहर और आध्यात्मिक उपदेशों को सुनकर माता किशनकौर को कुछ सतोष हुआ। रात भर कीर्तन होता रहा। रात के पिछले पहर मे गुरु जी ने 'वाहि गुरु का जप करते हुए, ससार छोड़ दिया।

दूसरे दिन सगतों ने बड़ी धूमधाम के साथ गुरु जी के पवित्र देह का संस्कार किया। माता जी जमात समेत कीरतपुर को चली आईं।[1]

गुरु हरिकिशन जी ने २ वर्ष तक गुरआई की और कुल ७ वर्ष ८ महीने १८ दिन इस ससार मे रहे।[2]

दिल्ली मे आपका देहरा जमुना जी के किनारे बाला जी के नाम से मशहूर है।

संसार के महापुरुषों—अवतार और पैगम्बरों के इतिहास मे हम कहीं भी ऐसा नहीं पढ़ते कि

१. राजा जयसिंह ने गुरु जी की समाधि भी बनवाई थी।

२. सवत् १७१८ के चैत महीने की १४ शुक्ला को ससार छोड गये।

इतनी अल्प आयु में किसी ने धार्मिक नेता के पद को ग्रहण किया हो। और अपने उपदेशों और चमत्कारों से लोगों को चकित किया हो।

सिख धर्म ऐसी ही अनेकों विचित्रताओं से परिपूर्ण है। अनुशासन और नियंत्रण की जो नींव आरम्भ से ही सिखों के लिये गुरुओं डाली थी वह निरन्तर मजबूत होती गई। गुरुओं ने जो भी कुछ कह दिया सिखों ने उसे निभाया। फिर संसार में चाहे कोई भी उनके खिलाफ रहा हो। बकाले का बाबा बालक गुरु ने निश्चय कर दिया। अब भावी गुरु जी वही होंगे। यही बातसा रे सिख समाज ने मान ली। किसी ने कोई दलील न दी। सुनने और पढ़ने में यह मामूली सी बातें हैं किन्तु जितना ही हम गौर से इन बातों पर विचार करेंगे उतना ही गुरुओं के महान प्रताप और उस तेज का पता चलेगा जो हर खास व आम को अपनी ओर आकर्षित कर लेता था।

केवल ७ वर्ष का गुरु देहली में जाय और राजा जैसिंह जैसे सफल संसारी लोग उसकी पूजा करें। औरंगजेब जैसा तास्सुबी बादशाह उनके प्रति प्रभावित हो, यह कम आश्चर्य की और मामूली बात नहीं है। तभी तो सिख लेखकों ने लिखा है :—

"वह अत्यन्त सुन्दर, उदार, शांत स्वरूप और तेजस्वी थे और जो कोई भी उनसे मिलने जाता था, वह प्रभावित हुये बिना नहीं रहता।

एकादश अध्याय

गुरु तेगबहादुर जी और उनकी यश गाथा

गुरु हरिगोविन्दजी के पाच पुत्र हुये थे। गुरु दित्ता, अणीराय, अटलराय, सूरजमल और तेगवहादुर। तेगवहादुरजी का जन्म सम्वत् १६७८ वि० माघ सुदी २ को हुआ था। गुरु हरिकिशनजी के सचखड पयान के बाद यह समस्या खड़ी हुई कि गुरु कौनहो ? सिख धर्म मे जो रिवाजथा उनके अनुसार भावी गुरु का चुनाव वर्तमान गुरु करता था। अमृतसर से दिल्ली आज अवश्य ही २५–२६ घंटे का रास्ता है। पर उस समय सहज ही १५–१६ दिन लगते थे। इसलिये भावी गुरु को दिल्ली बुलाना तो एकदम मुश्किल था। क्योकि गुरु हरिकिशन जी कुल पांच दिन तो बीमार ही रहे थे। उन्होंने भावी गुरु की गैरहाजिरी मे ही घोषणा कर दी (गुरु तेगबहादुर जी रिस्ते मे गुरु हरिकिशन जी के पिता के चाचा होते थे) उन्होंने शिष्टाचार के अनुसार उनका नाम न लेकर 'बाबा बकाले' हैं। यह वाक्य कहे। बकाले मे उस समय गुरु वेश मे से सिवा श्री तेगवहादुर जी के दूसरा कोई रहता भी न था। अत उनके सिवा किसी दूसरे के लिये यह 'बकाले के बाबा' शब्द लागू भी नहीं होता था किन्तु लालच बुरी वला है। करतारपुर से उठकर धीरमल भी बकाले जा बैठे और घोषित कर दिया कि गुरु मैं ही हूँ।'

जन्म और बालकाल

गुरु तेगवहादुर जी एकान्तवास को पसन्द करते थे। वह कोठरी मे बैठे जप मे लगे रहते। बहुत करते तो जगल मे निकल जाते, परमात्मा की भक्ति मे इतने तल्लीन रहते कि कभी २ तो प्रेम मग्न होकर रोने लग जाते और आखों से आसुओं की झड़ी लग जाती। दान-पुण्य मे उनकी रुचि ऐसी थी कि दीन दुखिया को कीमती से कीमती चीज देने मे भी कोई सकोच नहीं करते थे।

वकाले में कई गुरुओं के पैदा होजाने से सिख बड़े असमजस मे पड़े।

किन्तु न तो काठ की हाडी सदा काम देती है और न लाल कथरी मे छिपाने से छिपते हैं। आखिर एक चतुर सिख ने सच्चे गुरु को पहचान ही लिया। कहा जाता है कि लुकमान को यह पता चल गया कि अब मौत आने ही वाली है। उसने अपने जैसे एक दर्जन लुकमान बनाकर खड़े कर दिये। मौत बड़े असमंजस मे पड़ी कि असली लुकमान इनमे कौनसा है। आखिर उसने भी बुद्धिमानी से काम लिया और बोली "जिस उस्ताद ने इन सबको बनाया है" उसकी जितनी भी प्रशसा कीजाय थोड़ी है किन्तु इनमे एक कसर रह ही गई। लुकमान बोल उठा वह क्या ? झट मौत ने उसका हाथ पकड़ लिया। ठीक इसी

प्रकार सिख व्यापारी मक्खनशाह ने बकाले में से असली गुरु को खोज निकाला। वह पांच सौ मुहर लेकर अपने देश से गुरु भेंट के लिये चला था। जब बकाले में आया तो उसे बाईस गुरु दिखाई दिये। बड़ा चकराया। वह किसके प्रति अपना मत्था नवावे किसको इतनी भारी भेंट दे और किससे मनोवांछित फल पावे। मोहरें उसे भेंट अवश्य करनी थीं क्योंकि कठिन सकट के समय-जबकि उसका जहाज़ डूबते जल में अड़ गया था उसने यह मानता की थी कि यदि मेरा जहाज यहां से निकल गया तो अपने माल का चौथाई अंश गुरुजी को भेंट करूंगा। दैव योग से ऐसे जोर की हवा चली जिससे वह जहाज पानी की हिलोरों के वेग से चल निकला। उसे दो हजार का मुनाफा हुआ। उसमें से चौथाई पाच सौ मोहरें वह अपने घर नहीं रख सकता था। आखिर उसने अपनी बुद्धि का इस्तेमाल किया। सिख गुरु अन्तर की जानने वाले और सर्वदर्शी होते हैं। यह उसका पक्का विश्वास था। इसलिये उसने इन गुरुओं में से प्रत्येक को दो दो मुहरें देना शुरू किया क्योंकि वह समझता था कि इनमें जो असली गुरु होगा, वह मुझे पूछ ही बैठेगा कि जब वहाँ से तू पाच सौ देने के लिये लाया है। तो यहाँ दो क्यों देता है? किन्तु इन बाईस में से किसी ने भी उससे यह बात नहीं कही.तब उसे पूरा रूप से निश्चय हो गया कि इनमें तो कोई सिखों का असली गुरु नहीं है। तब उसने बकाले के लोगों से पूछा कि क्या सोढवंश का यहां और आदमी रहता है। एक बुढ़िया ने जवाब दिया। गुरु हरगोविंद जी का पुत्र तेगबहादुर यहीं रहता है परन्तु वह किसी छल पपच में नहीं एकान्त में बैठकर हरि भजन करता है। मक्खनशाह तुरन्त गुरु तेगबहादुर जी के घर में घुस गया। जहाँ देखा कि शात स्वरूप गुरु जी हरिनाम का जप कर रहे हैं। समाधि खुली तो मक्खनशाह ने दो मुहरें निकाल कर उनके सामने रक्खीं। गुरु जी ने कहा, भाई वैसे हमें कोई लोभ नहीं है किन्तु तैने संकल्प तो पांच सौ मुहरें भेंट करने का किया था। बाकी वापिस क्यों लेजाना चाहता है। इस बातको सुनते ही मक्खनशाह पैरों में गिर पड़ा। और कोठे पर चढ़कर ऊँची आवज से पुकारना शुरू कर दिया 'गुरु लाधोरे' अर्थात् मैंने गुरु को ढूंढ पाया है। श्रद्धालु सिख दर्शनों के लिये उमड पडे। इतने में दिल्ली से माता किशनकौर भी आगयीं, जिन्होंने गुरुआई के पाच पैसे और नारियल तेगबहादुर को भेंट कर दिया।

अब बाईस गुरु किस विरते पर ठहरते. सभी अपने बिस्तर बांध कर बकाले से टरक गये। किन्तु धीरमल के एक सलाहकार ने कहा, हमारे पास आदमी हैं और हम उस सब माल को गुरु तेगबहादुर से लूट लेना ठीक समझते है, जो इन्हे इन दिनों में सिखों ने भेंट और चढावे में दिया है। धीरमल भी राजी हो गया। अत उसके आदमियों ने गुरु जी के पास से सब माया लूट ली और गुरु जी पर बन्दूक का फायर भी किया किन्तु गोली गुरु जी के मस्तक से छूती हुई खाली गई। जब सिख लोगों ने सुना तो मक्खनशाह के नेतृत्व में धीरमल के घर पर धावा कर दिया और लूटे हुए समस्त माल को वापिस ले आये। साथ ही ग्रन्थ साहब को भी ले आये। धीरमल ने ग्रंथ साहब गुरु हरिगोविन्द जी के बार-बार मांगने पर भी नहीं दिया था। जब यह सब चीजें गुरु तेगबहादुर जी के पास आई तो उन्होंने सबकी सब फिर से धीरमल के ही पास यह कह कर पहुँचवा दीं कि हमें इनसे कोई मोह नहीं है।

सेठ मक्खनशाह ने एक दिन गुरु जी के सामने प्रार्थना की महाराज, मैं अमृतसर जाने की सोच रहा हूँ। गुरु जी ने कहा एक अच्छे से घोड़े का प्रबन्ध हो जाय तो साथ ही साथ चलें। मक्खनशाह को इससे ज्यादा क्या चाहिए था। गुरु जी के साथ यात्रा होगी। उसने एक घोड़े का प्रबन्ध करा दिया।

अमृतसर की यात्रा

जिस अमृतसर को गुरु अमरदासजी और रामदासजी से लेकर गुरु अर्जुनदेवजी ने इतना महत्व पूर्ण और वैकुण्ठपुरी जैसा स्थान बनाया था। जो हरि मन्दिर सभी लोगों के पूजा पाठ और दर्शनों के लिये स्थापित किया था। जहां गुरु हरिगोविन्द ने अकाल तख्त स्थापित किया था। यह कितने आश्चर्य की बात है कि उन्हीं गुरुओं के स्थानापन्न गुरु तेगबहादुर जी के लिये उसके द्वार बन्द कर दिये गये। मानो उनका कोई अधिकार नहीं है। पुजारी और मुल्ला थोड़े ही दिनों के अधिकार के बाद धर्म स्थानों को अपनी बपौती समझने लग जाते हैं। यही बात अमृतसर हरि मन्दिर के पुजारियों ने भी की। उन्होंने गुरु जी को आता देख मन्दिर के ताले लगा दिये वे समझते थे कि यदि गुरु जी को स्थान दिया गया तो हमारी स्वच्छन्दता और एकाधिकार मे अवश्य बाधा पड़ेगी। गुरु जी इस बात को पी गये और अमृतसर को छोड़ कर वल्ला नामक गॉव मे चले गये। यहां उनकी स्मृति मे गुरुद्वारा स्थापित है।

गुरु जी का जाना सुनकर पुजारी लोग मन्दिर मे आ गये। स्नान-ध्यान से निवृत्त होकर मक्खन शाह जब मन्दिर मे प्रसाद चढ़ाने गया तो उसने पुजारियों को खूब डाटा और उनसे कहा मूर्खो, जिन गुरुओं के लिये रईसों के सिर झुकते है। जो संसार के परोपकार के लिये ईश्वर ने पैदा किये है। उन्हे देखकर तुम मन्दिर के ताले लगाते हो, उनके पास घाटा क्या है, जो वे तुम्हारे अधिकारों को छीनेंगे। हा अगर तुम्हारी यही गति रही तो एक दिन तुम लोगों को अपने किये का फल भुगतना पड़ेगा।

मक्खनशाह के गुरु जी के पास आ जाने पर रातभर तो गुरु जी वहीं रहे सवेरे दोनों साथ ही साथ बकाले लौट आये।

बकाले मे कुछ दिन रहने के बाद मक्खनशाह ने गुरुजी से विदा होने की इजाजत मांगी। गुरुजी ने कहा अच्छा हमारी भी इच्छा है कि कुछ समय के लिये यात्रा को बाहर चले।

दूसरी यात्रा

सिख इतिहास ग्रन्थ मे इस स्थान पर गुरुजी के एक चमत्कार का वर्णन है और वह यह कि जब व्यास को पार हुए तो उन्होंने एक सिख के सिर पर ग्रंथ देखा, उन्होंने उससे पूछा यह क्या है। उस सिख ने बताया कि महाराज यह ग्रंथ साहब है। धीरमल के मकान की लूट के समय ग्रंथ साहब भी आगये थे। आपकी आज्ञा से बाकी चीजे तो लौटा दी गई किन्तु ग्रंथ साहब अपने पास ही रख लिये। गुरुजी ने कहा धीरमल तो बड़ा दुखी होगा। उसने तो अपने पितामह के कहने से भी ग्रथ साहब को नहीं दिया था। उसके संतोष और प्रसन्नता के लिए यह जरूरी है कि आप में से कोई जाकर ग्रथ साहब को उसी को दे आओ किन्तु कोई भी सिख धीरमल के पास नहीं जाना चाहता था। अत. एक ऐसे आदमी के हाथ जो करतारपुर को जा रहा था गुरुजी ने धीरमल के पास यह संदेश भेजा कि हम ग्रंथ साहब को व्यास नदी के सुपुर्द किये जाते है। तुम आकर यहां से ले जाना। सुन्दर वस्त्रो में लपेट कर गुरुजी ग्रथ साहब को व्यास के किनारे एक स्थान पर रख आगे बढ़ गये। सन्देश वाहक ने जब यह सन्देश धीरमल को सुनाया तो वह दरिया पर आने को तैयार होने लगा किन्तु उसके एक मुंह लगे मसन्द मीहाँ ने यह कह कर उसे रोक दिया। तेगबहादुर ने तुम्हारे साथ एक मजाक किया है और तुम उसे सच मानते हो धीरमल रुक गया और इसी तरह कई दिन इरादा करके रुकता रहा, एक दिन नदिया किनारे आ ही गया। और तलाश करने पर उसे गुरु जी के बताये स्थान मे ग्रन्थ साहब मिल गये।

व्यासा को पार करके गुरुजी कीरतपुर पहुंचे। जहां माता किशनकौर जो सूरजमल जी के पास रहती थीं। माता किशनकौर ने गुरुओं के वस्त्र और शस्त्र जो उनके पास थे गुरु जी की भेंट कर दिये। यहा कुछ दिन गुरु जी रहे तो सही किन्तु उनकी तबीयत नहीं लगी।

अतः उन्होंने कीरतपुर से छः मील के फासले पर नैनादेवी पहाड़ी के पास राजा बिलासपुर से जमीन खरीदी और वहीं पर एक नगर आनन्दपुर के नाम से बसाया।

जब सिखों ने सुना कि गुरु तेगबहादुर जी ने आनन्दपुर नाम का एक भव्य नगर बसा लिया है और अब स्थिर रूप से वहीं रहते हैं तो देश के चारों कोनों से संगतें उनके दर्शन करने और उपदेश सुनने के लिये आने लगीं।

किन्तु अन्य सोढ़ियों को यह बात बहुत बुरी लगती थी। धीरमल और सूरजमल सभी उनके खिलाफ थे। अपनी कोई भी पेश न चलती देखकर इन्होंने दिल्ली में रामराय से बादशाह के पास शिकायत कराने की योजना की।

इसके बाद गुरुजी ने उपदेशार्थ यात्रा आरम्भ की। पहिला मुकाम उन्हें आनन्दपुर से केवल दो कोस के ही फासिले पर करना पड़ा। क्योंकि दिल्ली की ओर से दो संगतें आई थीं। वे करतारपुर होकर गुरुजी के दर्शनों को आ रही थीं। संगतों के आने पर गुरुजी ने उन्हे उपदेश दिया। संगत ने भी भेंट पूजा में बहुत सी माया गुरुजी के अर्पण की। यहाँ से आप मालवे देश में उतरे। मालवा के धनोली गाँव में उतर कर वहाँ के लोगों को उपदेश दिया और दर्शनार्थी लोगों को कृतार्थ किया। यहा से अनेकों गाँवों और नगरों को पार करते हुए, मूलेवाल में पहुँचे जहां गोंदे ने उनको रसद का सामान देकर अपनी भक्ति प्रकट की किन्तु पानी का प्रबन्ध पूछा तो उसने कहा गुरुजी पानी तो बहुत दूर से आता है। यह सुनकर उन्होंने पास ही के खारे कुएँ के लिये कहा, जाओ इसमें से लाओ मीठा है। वास्तव में पानी मीठा निकला यहां पर सन् १८८७ में पटियाला के महाराज कर्मसिंह जी ने एक गुरुद्वारा बनवा दिया था। लिखा हुआ है कि शेखा गाँव में मलूका चौधरी ने गुरुजी की आवभगत नहीं की वह लोगों को कष्ट भी देता था। सारे गाँव ने गुरु जी के आगे उसकी फरियाद की। बुरे लोग अपनी करनी का फल पाते हैं गुरु जी का यह वचन आगे जाकर सत्य ही हुआ।

जब हठिआल गाँव में पहुँचे तो पता चला यहां बड़े जोर का एक विशेष प्रकार का बुखार फैला हुआ है। गुरुजी ने देखा एक आदमी बुखार से पीडित जमीन पर पड़ा हुआ है कभी चिल्लाता है कभी उठ बैठता है। गुरुजी ने कहा अगर इस मनुष्य को इस पास वाले गड्हे में स्नान कराया जाय तो चंगा हो सकता है। वह मनुष्य स्नान करते ही ठीक हो गया. और दूसरे लोगों को भी गुरुजी ने इजाजत दे दी. जो भी बुखार का मारा चाहे इसमें नहाकर चंगा होले। अनेकों मनुष्य ठीक हो गये। उस गड्हे के स्थान पर आजकल वहा तालाब बना हुआ है। यहां से भूपाली, खीवा. आदि गाँवों से होते भिक्की गाँव में पहुँचे। वहां पर चहल गोत का देशराज नाम का एक जाट जमींदार था। वह एक मुसलमान फकीर का भक्त था। जब वह गुरुजी की सेवा में हाजिर हुआ तो गुरुजी उसे उपदेश देकर ठीक रास्ते पर ले आये और उसे पांच तीर इसलिये दिये कि इससे तेरी दूर-दूर तक प्रभुता फैल जायगी। जितने दिन भी गुरुजी वहां रहे देशराज ने उनका स्वागत सत्कार किया। यहां से विदा होकर कुछ दिन खनाले गांव में रहकर एक ब्राह्मण को उपदेश दिया और उसी के घर निवास भी किया।

दमदमा पिंड में जाकर एक बाड़े के अन्दर गुरुजी एक जांटी के पेड़ के नीचे ठहरे। गाँव के लोगों का विश्वास था कि इस पेड़ पर पिशाच रहता है इसलिये उन्होंने गुरुजी को रोका भी किन्तु उन्होंने कहा—आप चिन्ता न करें अब यहाँ से पिशाच भाग जायगा। दूसरे दिन लोगों ने देखा पिशाच

तो गुरु जी का कुछ भी नहीं विगाड़ सका तो लोग उनसे प्रभावित हुये। दमदमे से एक दो गॉव मे घूम फिर कर फिर गुरु जी उस गांव मे पहुँचे जो सूलीसर कहलाता है। सिख इतिहासों मे लिखा है कि एक चोर ने जो गुरु जी के घोड़े को चुरा कर चल दिया था और आधी दूर जाकर ही अंधा हो जाने के कारण पकड़ा गया था। यहां समीप वृक्ष पर से कूद कर मर गया उसने अपने अपराध का प्रायश्चित्त इसी मे समझा था। तभी से इस गांव का नाम सूलीसर हो गया है।

चतुर्मास गुरु जी ने बडे गाव मे जाकर व्यतीत किया। यहां दूर-दूर से आकर सिख लोग आपके दर्शन करके लाभ उठाते रहे। यह गांव निचान जमीन मे था जहा बरसात मे पानी भर जाता था अत उन लोगों को गुरु जी ने ऐसे स्थान पर मकान बनाने की आज्ञा दी जो ऊँचे पर हो। जहा से पानी बह जाया करे। लोगों ने उनकी आज्ञा को सिर माथे रक्खा। इससे पता चलता है कि गुरु जी लोगो के स्वास्थ्य और सफाई की ओर भी काफी अधिक ध्यान रखते थे।

कई छोटे मोटे गांवों मे उपदेश करते हुए गुरुजी धमधान नगर मे पहुचे। गुरुजी के साथ मीहा नाम का एक महेत लड़का था। लंगर का वही इंतजाम करता था। बड़ा परिश्रमी था। एक दफा उसका सिर गागर से छिल गया। जिसमे जख्म हो गया। किन्तु वह बराबर पानी लाता रहा, अपने कष्ट की किसी से चर्चा तक नहीं की। एक दिन माता जी ने उसको इस कष्ट मे देख लिया उन्हे मीहां पर बड़ी दया आई। और कहने लगी तुझे अवश्य ही इस कठिन सेवा का फल मिलेगा। माता जी ने गुरु को सब हाल सुनाया। मीहा की इस हालत मे सेवा करने की लगन से गुरु जी बहुत खुश हुए और उसे अपने पास का दक्षिणी बैल एक नगाड़ा और एक झडा देकर धर्म प्रचार का काम सौंप दिया। मीहां इस बात से बड़ा प्रसन्न हुआ और वह देश देशान्तर मे सिख धर्म का प्रचार करने लगा।

धमधान से चलकर गुरु जी सरस्वती को पार करके कुरुक्षेत्र मे पहुंचे। यहां एक बढ़ई सिख था उसी के घर पर गुरुजी ठहरे। दूसरे दिन यहा से उस सिख को साथ लेकर कैथल मे पहुचे। उसके रिश्ते-दार सिख के घर पर ठहरे। वहा दो सिख और थे उन्होंने दर्शन करके अपने भाग्य को सराहा आर जो रुपया धर्मादे मे इकट्ठा कर रक्खा था गुरुजी की भेंट कर दिया। कैथल गुरुद्वारा उसी बढ़ई के स्थान पर है। जहाँ गुरु जी ठहरे थे। कैथल से चलकर बारने गाव में एक जाट सिख के घर ठहरे। चलते समय गुरु जी ने उस जाट को तमाकू पीना छोड़ने का भी उपदेश दिया।

इन्हीं दिनों सूर्य्य ग्रहण का मेला आ पड़ा, इसलिये गुरुजी फिर कुरुक्षेत्र मे आये। यहां पर अनेकों साधु सतों से आपकी ज्ञान चर्चा हुई और मेले मे आये हुए सैंकड़ों सिखों ने आपके दर्शन किये। आपने भी गरीब लोगों को द्रव्य देकर संतुष्ट किया।

कुरुक्षेत्र से गुरु जी अपने दल बल समेत बदरपुर पहुँचे। यहा पर भी बहुत से श्रद्धालु लोग आपके दर्शनों के लिये आये और उन्होंने बहुत सा धन भेंट मे दिया। गुरु जी ने यह सब वहा के एक जमींदार को बदरपुर मे एक कुआँ और बाग लगवा देने के लिये दे दिया। आगे चलकर यहा गुरुद्वारा भी बन गया।

गुरु जी के साथ कुरुक्षेत्र से सत लोगों की भीड़ बढ गई थी। इसलिये अब वे शिष्यों के घरों पर ठहरने की बजाय गाव के बाहर ठहरते। बदरपुर से पानीपत करनाल के जिलों से गुजरते हुए और बीच मे अनेकों गावों में प्रचार करते हुए मथुरा में पहुचे। आज जहा गुरुद्वारा बना हुआ है। उस स्थान पर ठहरे। यहॉ जमुना में स्नान किया और उन स्थानों को देखा जहां कृष्ण जी ने बाल-लीलाये की

थीं। मथुरा से पूर्व देश के लिये रास्ता आगरा होकर ही ठीक रहता है अत गुरु जी आगरे में पहुचे और माईथान में ठहरे जहा कि आज गुरुद्वारा बना हुआ है। किसी समय यहाँ गुरु नानक देव जी भी ठहरे थे। वहां से जमुना पार करके गुरु जी पूर्व देश की ओर मुड़ पड़े। पूर्व में गुरु नानकदेव जी के बहुत से लोग भक्त थे किन्तु वे सुदूर पजाब मे अपने गुरुओं के दर्शन के लिये नहीं जा सकते थे। अत' गुरु जी को यहाँ गाँव २ में लोग ठहराने लगे। उस देश में गुरु जी के आगमन की चर्चा फैल जाने से पहिले से ही लोग उनके स्वागत की तैयारी में लग पड़ते। नगरों को सजाते थे अपने मकानों को साफ सुथरे करते थे। इस तरह से सब को सतुष्ट करते हुए गुरु जी प्रयाग में पहुचे। वहाँ अपने ब्राह्मण भक्तों के प्रेम से उनके मुहल्ले अहियापुर में जाकर ठहरे। अब आगे के लोगों ने उनके आगमन की चर्चा सुनी तो गरीब अमीर और राजा रईस सभी उनके दर्शनों को आये।

यहाँ के गुरुद्वारों में निर्मले सत सेवा करते हैं। प्रयाग से गुरु जी मिरजापुर देखते हुए चुनार में पहुचे जहाँ कि गुरु नानकदेव जी का एक स्थान बना हुआ है। अररोहा पहुच कर गुरु जी ने भेंट और चढ़ावे आये हुए रुपयों से एक बाग लगवा दिया। यहा से चलकर काशी पहुँचे। वहाँ उस स्थान पर निवास किया जो कचौड़ी गली के नाम से मशहूर है। जहाँ पर कि गुरुद्वारा भी बना हुआ है यहाँ पर काशी के बड़े २ विद्वान पडित और सन्यासी गुरु जी से ज्ञान चर्चा करने के लिये आये। जिन सब को ही गुरु जी ने अपने मनोहर सभाषण और आध्यात्मिक अमृत चर्चा से सतुष्ट किया। भाई गुरुदास जी यहाँ काशी में रह रहे थे और उन्होंने रामनगर के राजा को भी धर्म शिक्षा दी थी। वह गुरु जी के दर्शनों को आया और बहुत सा धन भेंट किया तथा अपनी आत्मा को गुरु उपदेश से लभान्वित किया। जौनपुर वालों को जब पता चला तो वहाँ से भी भाई गुरुबख्शजी के नेतृत्व में सिख संगत आई। गुरुजी ने गुरुबख्श को आशीर्वाद दिया कि तुम्हारे घर में एक भक्त पुत्र होगा।

काशी से प्रस्थान करके गुरु जी मुकाम करते हुए सहसराम में पहुचे। यहा पर चाचा फग्गू नाम का अगहरी सिख निवास करता था। उसके दिल में गुरु दर्शन की प्रबल इच्छा थी किन्तु स्कूल कार्य होने के कारण कहीं आ जा नहीं सकता था। वह गुरु दर्शन के लिये यहा तक उत्सुक था कि अपने छोटे से घर का ऊँचा दरवाजा केवल इस उद्देश्य से बनवाया था कि गुरु जी उसमें घोड़े समेत घुस जावें। उन्हें बाहर उतरने का कष्ट न हो। गुरु जी फग्गू के घर राजसी वेश मे गये थे। अत. उनको अस्त्र शस्त्र से सज्जित देखकर पहचान न सका। जब गुरु जी ने कहा कि फग्गू मैं वही तो हूँ जिसे अपने घर बुलाने के लिये दृढ़ प्रतिज्ञा ली थी। गुरु जी का आना देखकर फग्गू हर्ष के मारे फूलने लगा। नगर में जब वह समाचार फैला तो प्रेमी लोग दल के दल बाधकर गुरु जी के परम उपदेश सुनने के लिये आने लगे।

स्त्रियों के दल माता नानकी जीं, गुरु पत्नी गूजरी के चरनों को छूकर और उनसे उपदेश ग्रहण करके अपने भाग्य को सराहने लगीं।

यहाँ से सब लगों से विदा लेकर विहार की ओर चल दिये। विहार में उन्हें सबसे पहिले गया का तीर्थ देखना था। अत उधर ही को प्रस्थान किया। जब गया में पहुँचे तो वहाँ कई दिन उन्होंने सत्य-धर्म के उपदेश किये।

गया से चल कर गुरु जी पटने पहुँचे और भाई तेजा के घर ठहरे। यह हलवाई था और गुरु नानकदेव जी का अनुयायी था। इसके सम्बन्ध में कहा जाता है कि वह कभी भी गंगा पर स्नान करने नहीं जाता था। इससे लोग समझने लगे थे कि तेजा कभी स्नान करता ही नहीं है। एक दूसरे सिख ने

एक दिन जेता से पूछा, क्या तुम सचमुच ही स्नान नहीं करते हो ? जेता ने उत्तर दिया मेरे घर पर ठहर कर देखो मैं क्या करता हूँ। उस सिख ने देखा जेता बहुत तड़के उठता है। शौच से निवृत होकर दातुन करता है और फिर स्नान करता है और गुरु नानकदेव जी की वाणियों का पाठ करता है। वह सिख जेता की इस प्रकार की धार्मिक निष्ठा को देखकर चकित रह गया।

जेता ने जब सुना कि उसको दर्शन देने के लिये गुरु तेगबहादुर जी आ रहे है तो दूकान के काम को छोड़कर उनकी अगवानी के लिये दौड़ा गया और पास पहुँच कर पैरों से लिपट गया।

सत्सगियों की भीड़ यहां गुरु जी के दर्शनों को आने लगी इसलिये गुरु जी ने गायघाट के जेता के मकान मे डेरा लगाये किन्तु दिन पर दिन दर्शनार्थियों की सख्या बढ़ती ही जाती थी अत. उनके एक भक्त ने बेगमपुर का विशाल मकान रहने को दे दिया गुरु जी मय परिवार के उसी मे रहने लगे।

यहां से आगे बढ़ने का खयाल कर रहे थे कि जयपुर के राजा विशनसिंह का आदमी गुरु जी की सेवा मे हाजिर होकर कहने लगा, हमारे महाराज कामरूप देश पर चढ़ाई करने जा रहे हैं। किन्तु वे इधर ही से आपके दर्शन करते हुए जावेगे। उन्हे आपके दर्शनों की बड़ी ही लालसा है। गुरु जी ने अपना जाना राजा के आने तक के लिये स्थिगत कर दिया।

ग्यारहवे दिन राजा विशनसिंह पटना मे पहुँचा और अपने लश्कर के डेरे तम्बू शहर से बाहर लगवा कर शाम को गुरु जी की सेवा मे हाजिर हुआ। दर्शन करके गुरु जी के चरणों मे पड गया। गुरु जी ने उसे हाथ पकड़ के उठाते हुए आशीर्वाद दिया कि वाहि गुरु तेरी कामना सिद्ध करेंगे।

गुरु जी चू कि यात्रा पर जाने ही वाले थे अत. राजा के साथ हो लिये।

माता जी और अपनी धर्मपत्नी जी को अपने लौटने के समठ तक के लिये वहीं रहने दिया।

गुरु जी शाही लश्कर के साथ अवश्य चल रहे थे—किन्तु रास्ते मे ठहरते थे सिख[1] लोगों के घर पर ही। रास्ते मे मुँगेर के सिखों से मिले और उन्हे उपदेश दिया। राजमहल के सिख उनके दर्शनो से वंचित रह गये क्योकि वे भेट पूजा के लिये इकठ्ठा करने में ही लगे रहे, तब तक गुरु जी आगे निकल गये। मालदह पहुँचने पर वहा सिखों की बनाई हुई धर्मशाला मे ठहरे किन्तु उस दिन मालदह से दूर कहीं मेला था। सारे सिख भी वहीं गये थे। गुरु जी ने वह समाचार सुना तो उन्होंने कहा, वे लोग काहे के सिख है जो व्यर्थ के मेले तमाशो मे अपना समय वर्बाद करते है। एक हलवाई मेले जाने से रह गया था वह गुरु जी की सेवा मे हाजिर हुआ।

वह्मपुत्र के तट पर पहुचने पर गुरु जी ने राजा विशनसिंह से कहा आपका लश्कर तो इसी किनारे पर चलेगा किन्तु हम उस पर जाकर अपने कुछ प्रेमियों को मिल आवे। ब्रह्मपुत्र को पार करके गुरु जी ढाके मे पहुँचे। यहां पर बुलाकीदास नाम का उनका एक मसन्द रहता था। उसकी बूढी मा भी वड़ी भगतिन थी। उसे यकीन था कि एक दिन गुरु जी अवश्य ही यहां आ कर मुझे दर्शन देंगे, इसलिये उसने स्वयम् कात कर बढिया पोशाक गुरु जी के लिये तैयार कर रक्खी थी। जब गुरु जी उसके घर पहुँचे तो वह वडी प्रसन्न हुई, बुलाकीदास कहीं बाहर था, जब उसे गुरु जी आने का समाचार मिला तो सगत इकट्ठी कर के वह गुरु जी की सेवा से हाजिर हुआ। गुरु जी ने सब लोगो को उपदेश देते हुए कहा, भाई हमारी इच्छा है कि यहा पर तुम एक धर्मशाला बनाओ और उसमे इकट्ठे होकर

१ उस समय सिख के मानी केवल गुरु नानक जी के उपदेशो में श्रद्धा रखने वाला ही के थे।

धर्म चर्चा करते रहा करे'। गुरु-पर्वों पर खासतौर पर एकत्र होकर हरि-कीर्तन और धर्म-प्रचार किया करो।

ढाके मे नव्वा नाम का एक उदासी सत रहता था। वह बात बात में सिखों को गाली देता था सगत ने गुरु जी से उसकी शिकायत की। गुरु जी ने नव्वा को बुलवाया। वह नमस्कार करके गुरु जी के पास बैठ गया, गुरु जी ने उससे पूछा भाई नव्वा तुम इन लोगों को गाली क्यों दिया करते हो। नव्वा ने कहा "महाराज ये लोग तो भूंठा है मैंने तो इन्हे कभी गाली नहीं दी। सगत ने कहा देखिये महाराज सरासर तो हमे भूठा कह रहा है फिर कहता है गाली नहीं दी। गुरु जी ने कहा भाई यह तुम्हे ईर्षा द्वेष से गाली नहीं देता। इसकी तो आदत ही ऐसी वन गई है तुम इसे प्रेम से जीतो और सहज-सहज आदत भी छुडादो। इस तरह से गुरु जी सब को उचित सलाह और उपदेश कर सतुष्ट करते रहे। कई दिन के बाद आगे को चल पडे। यहा जिस स्थान पर गुरु जी ठहरे थे वह स्थान सगत टीला के नाम से मशहूर है।

ढाके से चल कर गुरु जी नारायनगज आये और वहा से जहाज पर सवार होकर चटगाव में पहुँचे जहा गुरु नानकदेव जी का स्थान बना हुआ था। वहा पर ठहरे। यहा सिख लोगों ने गुरु जी को श्रद्धानुसार भेंटे दी और कई दिन तक आदेश सुना। चटगाव जिले मे ही वडवा कुण्ड और सीता कुण्ड नाम के दो तीर्थ हैं। गुरु जी ने उनको भी देखा। और वहीं से जहाज मे सवार होकर कलकत्ते को रवाना हो गये।

कलकत्ता उस समय इतना वडा शहर न था एक मामूली गाव था और कालीकूट कहलाता था। यहा पर गुरु नानकदेव जी भी अपनी यात्रा के समय आये थे, यहा अब वह स्थान जहा पर गुरु लोग ठहरे थे हरिसनरोड के गुरुद्वारे के नाम से मशहूर है।

शाही सेना इस समय तक धोवडी में आपहुची थी, इसलिये गुरु जी कलकत्ते से]; रवाना घाट होते हुये धोवडी मे पहुचे। गुरु जी के प्रयत्न से जव राजा बिशनसिंह को इस जग में काफी सफलता हुई और दोनों मे संधि होगई। तो उसने गुरु जी से विनती की कि महाराज इस समय मुझे कोई सेवा फर्माइये। आपने और तो कुछ न कहा किन्तु गुरु नानक जी के पुरातन स्थान पर के थडे को जरा ऊँचा कर देने की इच्छा प्रकट की। इसपर राजा के सिपाहियों ने मिट्टी की ढालें भर भर कर उस स्थान पर डालीं। जिससे वह थड़ा स्वत ही काफी ऊँचा होगया और अवतक गुरु जी की याद में कायम है।

दोनों राजाओं मे सुलह हो जाने पर कामरूप के राजा ने गुरु जी को अपने महलों मे आमत्रित किया। राजा ने गुरु जी को वहुमूल्य चीजें भेट कीं।

विदा करते समय कामरूप के राजा ने गुरु जी से प्रार्थना की, महाराज अपनी स्मृति के लिए हमें कोई चिह्न दे जाने की कृपा कीजिए। गुरु जी ने कमान पर चढ़ाकर एक तीर सामने के वृक्ष मे मारा जिसका एक सिरा उधर पार हो गया एक इधर रह गया। गुरु जी ने कहा यही हमारा चिह्न है।

आसाम मे गौरीपुर एक छोटी सी रियासत और थी। उस समय वहा पर राजाराम नाम का राजा राज करता था, जव उसने सुना कि इस देश मे गुरु नानकदेव जी के उतराधिकारी गुरु तेगवहादुर जी पधारे हुए हैं तो वह सय रानी के गुरु जी के दर्शनों के लिये आया। उस राजा के कोई पुत्र न था राजा की इच्छा तो थी कि गुरु जी से आशीर्वाद प्राप्त करें किन्तु वह कुछ कहने मे सकुचाता था। गुरु जी ने उसके हाव भाव से उसकी मनोइच्छा को जान लिया और उन्होंने कहा जो तुम लोगों के दिलों में

गुरु नानकदेव जी के प्रति श्रद्धा है और जो तुम्हारी इच्छा है अवश्य ही पूर्ण होगी। राजा रानी इस आशीर्वाद से बहुत प्रसन्न हुए और उन्होंने गुरु जी से प्रार्थना की, आप हमारे भी घर को चलकर पवित्र करें किन्तु गुरु जी ने उससे कहा, हमें इस समय पश्चिम की ओर जाना है।

गुरु जी पटना को वापिस होने की तैयारी कर रहे थे कि समाचार मिला आपके घर साहबजादे उत्पन्न हुए है। इस समाचार को सुनकर राजा भी बहुत प्रसन्न हुआ। बोवडी से चलकर राजा और गुरु जी पटने मे आये। रात को शहर के बाहर ही राजा बिशनसिंह के डेरो मे ही गुरु जी ठहर रहे। दूसरे दिन गुरु जी मय राजा साहब के अपने घर पहुँचे। सिख लोग उन्हे देखते ही चरनों मे लोट गये, गुरु जी ने सब को आशीर्वाद दिया।

आनन्द की रेखा

इसी समय साहबजादे गोविन्दराय (सिह नाम पीछे पडा) का मामा उन्हे गोद मे लेकर आ गया और गुरु जी के चरनो मे सुला दिया। गुरु जी ने गोद मे लेकर प्यार किया, राजा साहब ने भी गोद मे लिया और सोने के कडे उनकी भेट किये।

इसके बाद राजा साहब ने गुरु जी से विदा मागी क्योंकि दिल्ली से निकले हुए उसे भी बहुत दिन हो चुके थे। गुरु जी ने उचित उपदेश और सिरोपाव देकर राजा साहब को विदा किया और आप कुछ दिन पटना मे ही रहकर शिष्य लोगों को उपदेशामृत पान कराते रहे।

देहातों मे जब यह पता लगा कि गुरु जी लौट कर पटना आ गये हैं, तो देहातो की सगते भी दर्शन और उपदेशो का आनन्द लेने के लिए उमड पड़ीं।

कितने ही महीने पटने मे रह कर गुरु जी ने पंजाब आने का इरादा किया। और दस बीस सेवकों के साथ पंजाब को चल पडे। रास्ते मे काशी वगैरह जो भी शहर और गाव पडे उनमे उपदेश देते हुए कीरतपुर पहुँचे। वहाँ सूरजमल जी ने आपका सत्कार किया और अनेक दिनों के बाद मिलने पर हर्ष प्रकट किया। अपने यहाँ गोविन्दराय जी के जन्म का सवाद भी सुनाया। जिसे सुनकर सूरजमल जी ने गुरु जी को बधाई दी।

वापिसी

कीरतपुर मे थोड़ा ही वास करके आनन्दपुर पहुँचे। वहाँ आपको देखकर लोग प्रसन्नता से हरे हो गये। जिसे देखो वही श्रद्धा के साथ गुरु जी के चरणों मे लौटने लगा।

आठ वर्ष की उम्र तक गुरु तेगबहादुर जी के साहबजादे पटने मे ही रहे। वहाँ उन्होंने हिन्दी और सस्कृत विद्या का खूब अध्ययन इस छोटी सी उम्र मे ही कर लिया था। गुरु तेगबहादुर जी पटना से चल कर धीरे २ ही पजाब मे आये थे। यहां भी उन्होंने बहुत दिनों तक वातावरण को देखा और तब गोविन्दराय जी और परिवार के लोगों को बुलाया। उस समय तक गोविन्दराय जी जो आगे चलकर गुरु गोविन्दसिह जी के नाम से मशहूर हुए, आठ वर्ष के हो चुके थे। जब वे आनन्दपुर गये तो वहा गुरु जी ने उन्हे घोड़े पर चढ़ना शस्त्र चलाना आदि युद्ध विद्या की सब बातें सिखा दीं।

आरम्भ मे तो औरगजेब घरेलू झगडों मे फँसा रहा अपने भाइयों का दमन किया। पिता को जेल मे डाला। कुछ देशों को को फतह कराया। इन कामों से फुरसत पाते ही वह अपने इस्लाम को फैलाने की ओर अग्रसर हुआ। उसने अपने मुसलमान सूबेदारों को इस आशय की सूचना दी "मैं चाहता हू कि सारा हिन्दुस्तान उसी मजहब के झडे के नीचे आ जावे, जो अरब की पवित्र भूमि में पैदा हुआ है और जिसने अपने जाहोजलालसे ससारको चकाचौंध कर रक्खा है। हिन्दुओंको मुसलमान बनाने के लिये साम, दाम, भय और दंड जितने भी तरीके हैं काम मे लाना चाहिए। मैं इसे महान पवित्र काम समझता हूँ।"

जब बादशाह ही ऐसा करने को तैयार था तो उसके सूबेदार, नाजिमों की तो बात ही क्या थी। सारे देश में जोर जुलम का राज्य कायम हो गया। चारों ओर मजहब की विषम ज्वाला धधक उठी। हिन्दुओं में हा-हा-कार मच गया। चोटी और जनेऊ की रक्षा में लाखों सिर धड़ से अलग होने लगे। स्त्री और बच्चे भी इस प्रचंड दावानल से न बचे। उन्हें भी मौत और इस्लाम का निमंत्रण दिया जाने लगा। कन्याकुमारी से कश्मीर और गुजरात से आसाम तक यही गति हो गई।

काश्मीर के हाकिम ने भी अपने प्रांत में हिन्दुओं के साथ मुसलमान बनाने के लिये जोर जुलम जारी कर दिया। आरम्भ में उसने छोटे २ देहातों में हाथ साफ किया और फिर श्रीनगर में वही अत्याचार शुरू किया, जो देहातों को मुसलमान बनाने में अमल में लाया गया था। श्रीनगर प्राय ब्राह्मणों की बस्ती थी। वे सभी घबरा गये। जब आग घर में लग जाती है, तब उससे बचना मुश्किल हो जाता है। उन्हें भी चांद तारे दिखाई देने लगे। बहुत कुछ सोचने पर उन्हें एक आशा की कोर आनंदपुर की ओर दिखाई दी। सारे उत्तरी भारत में गुरु तेगबहादुर ही ऐसे धन्य पुरुष थे, जिनके प्रभाव में ज्यादा से ज्यादा समूह था। ब्राह्मणों ने काश्मीर के हाकिम से तो छः महीने का अवकाश मांगा और उनका एक प्रतिनिधि मंडल आनंदपुर की ओर चला।

कश्मीरी ब्राह्मणों की पुकार

आनंदपुर में उस स्वर्ग तुल्य नगरी में आज भी सुख शांति की वर्षा हो रही थी। आज जहां सारा भारत भय और आंतक की लपट से झुलसा जा रहा था। वहां आनंदपुर में निर्भयता और प्रेम का राज्य हो रहा था। दरबार लग रहा था, हजारों सिख शांति के साथ बैठे हुए थे और एक सुन्दर तख्त पर बैठे हुए तत्कालीन भारत के राजऋषि श्री तेगबहादुर जी प्रवचन कर रहे थे। "अपनी आत्माओं को बलवान बनाओ। पापों से बचो। निर्भय बनो। एक परमपिता में विश्वास रक्खो। संसार में रहते हुए संसार की वस्तुओं से इतना मोह मत करो कि उनके लिये स्वाभिमान की भी रक्षा न करो। आपस में कभी भी ईर्षा और द्वेष मत करो।" इसी समय काश्मीर के ब्राह्मणों का दल आया। सभा में चुपचाप बैठ गये उन्हें अनुभव हुआ। हम उस जगह पर आ गए हैं, जहां भय और शोक को कोई स्थान नहीं है। उपदेश की समाप्ति पर ब्राह्मणों ने खड़े होकर कहा, हिन्दुओं के रक्षक और हम अनाथों के नाथ हे सत-गुरु हम काश्मीर के उन पीड़ित ब्राह्मणों के प्रतिनिधि हैं, जिन्हें राज का सूबेदार "मौत या इस्लाम" का निमंत्रण दे चुका है। हमने खूब आंख फाड़कर भारत के प्रत्येक कोने की ओर देखा है आज हमारा, हमारे धर्म का कोई भी रक्षक नहीं है। भगवन् हम आपकी शरण हैं, हमारी रक्षा कीजिये। हमें केवल छः महीने की मोहलत मिली है। सभा में सन्नाटा हो गया। सब एक दूसरे के मुँह की ओर देखने लगे सब चुप थे। इतने में बाहर से खेलते २ बालक श्री गोविन्दराय जी भी आ गये, उन्होंने गुरु जी को विचार मग्न देखकर पूछा, महाराज आप किस विचार में हैं? बड़ी शांति और दृढ़ता से गुरु जी ने कहा पुत्र! इस समय इन पीड़ित हिन्दुओं के धर्म को बचाने के लिए किसी महापुरुष के बलिदान की आवश्यकता है, जो अपने पवित्र खून से इस धधकती हुई आग को शांत कर सके। गुरु बालक ने झट से कहा तो महाराज आपसे बड़ा और कौनसा महापुरुष है? बालक गोविन्दराय जी की इस ओजपूर्ण बात को सुनकर सभा के सभी मनुष्य स्तब्ध रह गए। गुरु तेगबहादुर जी ने अपने प्यारे बच्चे को छाती से चिपटा लिया और बोले "ऐसा ही होगा अवश्य ही ऐसा होगा"। मैं ही अपने प्राणों की बलि इस हिन्दू जाति की रक्षा के लिए दूंगा। ब्राह्मणो, जाओ बादशाह से कह दो, कि हमारे देश और प्रांत के महापुरुष

निरंकारी नानकदेव ही आराध्य देव है यदि उनके उतराधिकारी गुरु तेगवहादुर इस्लाम को कवूल करले तो हम सव मुसलमान हो जावेगे।"

"चारों ओर से आवाज आई "गुरु नानकदेवजी की जय" और गुरु तेगवहादुर की कीर्ति अमर हो।

वहुत वर्ष वीत चुके थे, सैकड़ो नहीं, हजार और अनेको हजारों वर्ष पहले की वात है। दैत्यों ने भारत को जीत लिया था, देवता परास्त कर दिये गये थे। वे गिरि और कन्दराओ मे छिप कर प्राण वचा रहे थे। इन्द्र को वताया गया, यदि राजर्षि दधीच की जघा की हड्डी का शस्त्र वनाकर युद्ध किया जाय तो दैत्यराज वृषपर्वा को मारा जा सकता है। देवता आशा और निराशा के भाव लेकर दधीचि की सेवा मे हाजिर हुये और कहा हमारी रक्षा आपकी दया पर निर्भर है। आप हमे अपनी जघा की हड्डी दीजिये। दधीचि ने अपनी जंघा को अपने ही हाथो से काट कर देवताओं को दे दिया।

वह समय तो दूर पड़ गया था, लोग कहने लग गये थे। ऐसा सतयुग मे ही होता था, यह तो कलियुग है किन्तु विक्रम की अठाहरवीं शताब्दी मे इतिहास ने फिर उस घटना को दुहराया और सारे भारत देश ने सुना कि केवल परोपकार से प्रेरित होकर हिन्दू धर्म की रक्षा के लिये, गुरु तेगवहादुर ने अपना वलिदान देने को स्वत अपने लिये अर्पित कर दिया है। कवियों की भाषा मे कहा जा सकता है कि "परमात्मा का आसन हिल गया और भारत माँ के वन्धन की एक कड़ी कड़ाक से खुल गई और उसका अभिमान से मस्तक ऊँचा हो गया।"

ब्राह्मण लोग दिल्ली पहुँचे और वही वात उन्होने शाह के सामने पेश करदी। औरंगजेव ने भी स्वीकार कर लिया। वह स्वीकार भी क्यों न कर लेता उसका हर्ज ही क्या था। जिस शिकार को जाल मे फांसने के लिये वड़े २ प्रयत्न करने पड़ते, दिमाग लड़ाने पड़ते और कुछ आगा पीछा भी सोचना पड़ता, जव वही शिकार खुद ही जाल मे आजाना चाहता है तो वह स्वीकार क्यो नहीं करता।

वर्तमान की आंधी मे भविष्य का स्वरूप किसी को भी दिखाई नहीं दिया करता है। औरंगजेव को भी नहीं दिखाई दिया। उसने गुरुजी को देहली वुलाया। उन्होंने औरगजेव के उत्तर मे कहलवा भेजा कि हम वर्षा के समाप्त होने पर आयेगे।

आनन्दपुर से चल कर गुरु जी सैफावाद[१] मे वहां के मुसलमान रईस सेफुद्दीन केघर ठहरे थे। सेफुद्दीन वड़ा नेक और श्रद्धालु पठान था। वह गुरु घराने का वड़ा प्रेमी था। इसलिये गुरुजी को उसने सारी वर्षा विदा नहीं होने दिया। अपने वाग और मकान मे गुरुजी के उपदेश कराता रहा, जहा २ उसके दूर के रिस्तेदार और दोस्त थे वह भी उपदेश सुनने आये।

मार्ग मे

वर्षा वीत जाने पर गुरुजी सैफावाद से चल दिये। जव सगाने के वरावर पहुँचे तो रास्ते मे एक पठान मिला और उसने गुरुजी को अपने यहा ठहरने का आग्रह किया। क्योंकि यह पठान सैफावाद मे गुरुजी के उपदेश सुन चुका था। गुरुजी को अचानक इधर आया जानकर अपनी खुश किस्मती समझी। गांव के वाहर उसने उन्हें ठहरा दिया। जहा कुछ दिन रहकर गुरुजी दिल्ली चले गये।

जव वादशाह का दरवार भरा हुआ था। पठान मुगल और ईरानी मुसलमान दरवार में डटे हुए थे। भारत मे क्षत्रियों का स्थान लेने वाले और अपने को सूर्य्यवंशी और चन्द्रवंशी कहलाने वाले राजपूत भी वैठे हुये थे। गुरु तेगवहादुर जी को दरवार मे लाया गया। सव लोग एक दूसरे के मुंह की ओर

१. यह सैफावाद आज के पटियाला के स्थान पर बताया जाता है।

देखने लगे, पूरी स्तब्धता थी, बादशाह भी चुप बैठा था। वह काजियों की ओर देख रहा था और काजी आपस में कानाफूसी कर रहे थे, अत गुरुजी ने ही स्तब्धता को भंग करते हुए कहा, बादशाह हमें क्यों याद किया है?

बादशाह ने इस आशय के शब्दों में कहना शुरू किया —"मैंने खूब सोच समझ लिया है कि जो लोग एकेश्वरवादी नहीं हैं, अनेकों देवी देवताओं की उपासना करते हैं। तथा ईश्वर की मूर्तियां बनाते हैं वे अवश्य ही गलत रास्ते पर हैं और ऐसे लोगों के लिये दीन इस्लाम की पवित्र किताबों ने काफिर कहा है। कुफ्र को मिटाना प्रत्येक दीनदार का काम है।' इसने आगे फिर कहा—

"सारा हिन्दुस्तान इसी कुफ्र में फंसा हुआ है। हिन्दू जब तक इस काफिरपने से बाहर नहीं होंगे—तब तक वे इन्सान नहीं बन सकते हैं। अत मैं हिन्दुओं की भलाई की दृष्टि से और कुरान शरीफ की आज्ञाओं के लिये इस काम को पूरा करने का प्रण ले चुका हूं। सारे हिन्दुस्तान के हिन्दुओं को मुझे मुसलमान बनाना है। चाहे कोई प्रेम से बने चाहें जबर से। काश्मीर के ब्राह्मणों ने मुझे विश्वास दिलाया है कि अगर गुरु तेगबहादुर मुसलमान हो जाते हैं तो हम सब हो जावेंगे। अत मैं चाहता हूं कि आप दीन इस्लाम को कबूल करके मेरे पवित्र उद्देश्य में सहायता दें।'

गुरुजी ने कहा कि "कहने को तो तुम्हारी बात भली मालूम होती है किन्तु हिन्दू और मुसलमान सभी उसी ईश्वर के पुत्र हैं और इनको किसी खास रास्ते पर चलाने के लिये जब्र करना और किसी के धर्म को जोर से मिटाने का यत्न अन्याय है। जोर जुल्म के सामने झुकना ईश्वर की इच्छा के विरुद्ध है। मैं एकेश्वरवादी होता हुआ इस अन्याय को न तो सहन कर सकता हूं और न किसी जब्र के सामने झुकने को तयार हूं। और जुल्म से पीडित लोगों के सकट हरण करने के लिये अपना जीवन अर्पण करने तक को तयार हूं।

कहते हैं कि बादशाह और गुरुजी के दरमियान इसी प्रकार की बाते होती रहीं किन्तु जब उसने गुरु जी को अपनी इच्छा के सामने झुकते न देखा तो उन्हें बन्दीखाने में डाल देने का हुक्म दे दिया।

गुरु जी को बन्दी खाने मे डाल दिया गया। उनके साथी पहले तो बाहर रखे गये किन्तु आखिर में वे भी जेल में बन्द कर दिये। कई दिन तो गुरुजी को कुछ भी खाने को नहीं दिया गया। कुछ दिन दिल्ली के सिखों ने गुरु जी के खाने पीने का प्रबन्ध किया किन्तु वह भी बन्द कर दिया गया। इतिहास साक्षी है कि गुरु जी को जेल में घोर यंत्रणायें दी गईं। और उन्हें बादशाह की बात मनवा कर इस्लाम कबूल करने के लिये मजबूर किया गया परन्तु वह इस जुल्म के सामने कब झुकने वाले थे।

बन्दी जीवन

गुरु जी के साथी भाई मतीदास जी सम्बन्धी बादशाह के पास बहुत सी शिकायतें इस भाव की गई कि उसने बादशाहत और राज्य को नष्ट करने तक की बातें कही हैं। इससे बादशाह आगबबूला हो गया और मतीदास को आरे से चीर कर दो टुकड़े कर देने का हुक्म दिया।

परन्तु धर्म पर दृढ रहने वाले भाई ने बड़ी दृढ़ता से इस कष्ट को सहन किया। और सदा के लिये धर्म पर बलिदान होने वालों में अपना नाम अमर कर गये।

इसके बाद बादशाह ने स्वयं गुरु तेगबहादुर को लोहे के पिंजरे में बन्द कर दिया। संसार का धार्मिक इतिहास बताता है कि जो संसार से अन्याय को उठाने की कोशिश करता है, उसे सबसे पहिले उस अन्याय का शिकार होना पड़ता है। गुरु नानकदेव जी ने संसार के बन्धनरूपी पिंजड़े से छुडाने के लिये जिस मिशन की स्थापना की थी, उसी मिशन के नौवें

पिंजड़े में

परम सन्त शहीद

श्री गुरु तेगबहादुर जी

श्री गुरु गोविन्दसिंह जी

अधिकारी गुरु तेगबहादुर जी को संसारी बन्धनों को अपने ढंग से चालू रखने के इच्छुक औरंगजेब ने लोहे के पिंजरे मे बन्द करा दिया। जिनका आत्मा जीवन्मुक्त हो चुका है, उनके शरीर को चाहे जिससे बांधो चाहे जहां रक्खो। क्या उन्हे इसकी परवाह होती है? किन्तु माया और मोह तथा सत्ता के मद मे चूर हुये प्राणी इस रहस्य को समझ भी कब सकते है। औरंगजेब भी क्यों समझता जो कि राज मद मे अपने को भूले हुए था।

काफी दिन के बाद बादशाह औरंगजेब ने गुरु जी के सामने तीन प्रस्ताव पेश करने को अपने दो आदमियों को भेजा। वह प्रस्ताव इस प्रकार थे (१) चाहे किसी भी वायदे और महत्वकांक्षा पर मुसलमान बनना स्वीकार कर लो (२) या कोई करामात दिखाओ नहीं तो (३) कतल होना स्वीकार करो। गुरु जी ने जवाब दिया। बादशाह से कहो कि वे किसी भी अन्याय और जब्र के सामने झुकने को तैयार नहीं। इस पर बादशाह ने उनके कत्ल करने का हुक्म दे दिया।

तीन प्रस्ताव

सारे दिल्ली शहर मे खलबली मच गई थी। सबके मुँह पर एक ही बात थी। कल गुरु तेगबहादुर को धर्म के नाम पर कत्ल कर दिया जावेगा। समय आने पर चांदनीचौक वाला कत्ल का मैदान भर गया। हजारों आदमी इकट्ठे हो गये। आदमशाह गुरु जी को लेकर उपस्थित हुआ। हाथ मे चम-चमाती हुई तलवार, यमराज जैसा वेश।

बलिदान

जिस समय गुरु जी का बलिदान होने को था दैवात से आंधी आ गई और जब जल्लाद की तलवार ने गुरु जी पर वार किया तो पहले से उपस्थित भाई जीवनसिंह उस अंधेरी मे गुरु जी का शीश लेकर वहाँ से निकल गया। उनके धड़ की बाबत कहा जाता है कि दो सिख बड़ी सावधानी से उठा ले गये। जिसका वर्णन कई इतिहासकारो ने इस प्रकार किया है।

"दो बनजारे पिता और पुत्र रात्रि मे घटनास्थल पर पहुँचे। बैलों पर रुई लदी हुई थी। उन्हे एक किनारे खडा कर दिया। पुत्र आगे बढा। आंधी अब भी चल रही थी। और भी जोर का झोंका आया। पहरेदार आँखे मूँद कर बैठ गये। बजारा बढ़ा और धड़ को उठा लाया और रूई मे लपेट बैल पर लाद कर चलता बना। अपने घर पहुँचा। और शाही आदमियों के संदेह से बचने के लिये अपने घर मे उस शरीर को रख क. समस्त घर को आग लगा दी। यही स्थान रकाबगंज का गुरुद्वारा है।

हमने गुरु महानुभावों की जीवनचर्या की समाप्ति पर अपनी दृष्टि से कुछ न कुछ विचार अवश्य प्रकट किये है। गुरु तेगबहादुर जी के सम्बन्ध मे हम इससे ज्यादा कहने की शक्ति नहीं रखते है कि ईसाइयों के दिलों मे प्रभु ईसा के लिये जितनी महान श्रद्धा है, वैसी ही श्रद्धा गुरु तेगबहादुर जी के लिये हमारे हृदय मे है। संसार मे वही धर्म ऊँचा स्थान पासकता है। जिसमे परोपकार के लिये बलिदान करने वाले महापुरुष पैदा हुए हों। गुरु तेगबहादुर जी ने सिख धर्म को बलिदानों का धर्म बनाने की ओर अग्रसर किया। और बलिदानो का ही फल हुआ कि मृत प्राय. हिन्दू जाति मे से ही पैदा होने वाले मनुष्यों का गुरु प्रताप से एक ऐसा दल तैयार हो गया, जिसने वास्तव मे अनीत पर विजय प्राप्त कर ली थी।

श्रद्धा के फूल

गुरु तेगबहादुर जी की रचनायें

यहाँ हम गुरु तेगबहादुरजी द्वारा रचित कुछ रागनिओं और वाणियों को उद्धृत करते हैं, जिनके पढ़ने और पाठ करने से धर्म प्रिय जनों को अवश्य ही आनन्द प्राप्त होगा।

राग देव गांधारी— ये मन नैक न कह्यो करै।
सीख सिखाय रह्यो अपनी सी, दुर्मति ते न टरै। रहाउ
मद माया कै भयो बावरो, हरिजस नहि उचरै॥
करि प्रपंच जगत को डहकै, अपनो उदर भरै॥१॥
स्वान पूँछ ज्यों होइ न सूधो, कह्यो न कान धरै।
कहु नानक भज राम नाम नित जातें काज सरै॥२॥

राग धनाश्री— काहे रे बन खोजन जाई।
सर्व निवासी सदा अलेपा, तोही संग समाई ।१॥ रहाउ
पुहुप मध्य ज्यों बासु बसत है, मुकर माहि जैसे छाई।
तैसे ही हरि बसै निरंतरि, घट ही खोजहु भाई।
बाहर भीतर एको जानहु, इह गुरु ज्ञान बताई।
जन नानक बिनु आपा चीनै, मिटै न भ्रम की काई।
चेतना है तो चेतले, निसि दिन में प्राणी।

राग तिलंग (काफी)— छिण छिण अवधि बिहात है, फूटे घट ज्यों पाणी॥१॥रहाउ
हरि गुण काहे न गावही मूर्ख अज्ञाना।
झूठे लालच लाग कै, नहि मरन पछाना॥१
अजहूँ कछु बिगरयो नहीं जो प्रभु गुण गावे।
कहु नानक तिह भजनते निर्भय पद पावै।

राग सारंग— हरि बिनु तेरो कौन सहाई।
काकी मातु पिता सुत बनिता, को काहू को भाई॥रहाउ
धन धरनी अरु संपति सगरी जो मान्यो अपनाई।
तन छूटै कछु संग न चालै कहाँ ताहि लपटाई।
दीनदयाल सदा दुख भंजन ता स्यों रुचि न बढ़ाई।
नानक कहत जगत सभ मिथ्या ज्यों सुपना रैनाई॥

बारहवाँ अध्याय

गुरु गोविन्दसिंह जी की जीवन गाथा

दशम पातशाह जी का जन्म १७ पौष संवत् १७२३ वि० मे शनि और रवि के मध्य की रात्रि मे डेढ़ पहर (रात्रि) शेष मे हुआ था। यह पिछले पृष्ठों मे बता चुके है कि उस समय आपकी माता अपने भाई कृपालचन्द और सासु, माता नानकी के साथ पटना मे रहती थीं। पिता आपके उस समय आसाम की ओर गये हुए थे।

जन्म और बालकाल

जब गुरु जी पाँच वर्ष के हुए तो इसी अवस्था मे उनका भविष्य झलकने लग गया था। 'होन हार बिरवान के होत चीकने पात' की तरह इनके खेल मे, बातचीत और रङ्ग ढङ्ग सभी मे संत-सिपाही का प्रकाश प्रकट दिखाई देने लग पड़ा था। बालकों को इकट्ठा करके चाँदमारी के उपक्रम, सेनाओं की उत्क्रीड़ा और स्वयम सेना संचालक बनना भविष्य निर्माण की छटाये सहज ही मनोवैज्ञानिकों को आकृष्ट करने वाली थीं।

इसके अलावा बोलचाल,बर्ताव सभी ऐसी बाते थीं, जो सहज ही मन को आकर्षित कर लेती थीं। प० शिवदत्त, शेख भीखनशाह आदि जैसे खुदापरस्तों को भी आपने बाल चमत्कार से मोहित कर लिया था। पटना के राजा फतहचन्द की रानी आपको देखकर जीती थी। उस बेचारी के कोई पुत्र न था। एक दिन अचानक उसकी गोद मे बैठ गये और प्यार भरे स्वर मे बोले 'ओ' रानी इस कर्ण मधुर शब्द को सुनकर प्रेम मे विह्वल होगई और उस दिन से उन्हे बहुत प्यार करने लग पड़ी। उसके प्रेम के कारण वे 'बाला प्रीतम' की उपाधि से पटने मे मशहूर हो गये थे।

बचपन मे ही उन्होंने शस्त्र चलाने, घोड़े पर चढ़ने और नाव खेने जैसे भी कार्य अपनी युद्धप्रिय स्वभाव से सहज ही मे सीख लिये थे।

पंजाब के बखेड़ों के कारण आपके पिता गुरु तेगबहादुर जी आपको परिवार के साथ ही पटना मे ही छोड़ गये थे। इसलिये हिन्दी संस्कृत की शिक्षा आपने वहीं प्राप्त करली थी।

जिस समय पिता जी के बुलाने पर पंजाब को विदा हुये। बालक,वृद्ध,नरनारी सभी आपके वियोग से दुखी हुए। राजा फतहचन्द और रानी तो प्रेम मे सिसकी भरकर रोने लग पडे। जिनको याददास्त के लिये आपने अपनी एक कटार,तलवार और पोशाक देकर सतुष्ट किया। राजा ने आपके विदा होने पर अपने घर को ही गुरुद्वारा बना दिया, जहाँ पर कि आज तक आपकी दी हुई चीजे धरी हैं और वह स्थान मैणी सगत कहलाता है।

पटना से विदा होकर दानापुर छपरा, मिर्जापुर काशी सहारनपुर, अम्बाला आदि स्थानों पर विश्राम करते हुये लखनौर में भंडू नाम मसंद के घर पर ठहरे। आपने जंगल में जाकर शिकार का अभ्यास किया। यहाँ पर पीर आरफदीन ने आपके दर्शन किये और अपनी श्रद्धा प्रकट की।

जब गोविन्दराय जी आनन्दपुर आगये तो लोगों में बड़ा उत्साह फैला। उनके बाल कौतुकों को देखकर सभी सिख नरनारी प्रसन्न होते थे। एक बार लाहौर की संगत में 'हरियश' नामके खत्रिय ने जब उनको देखा तो वह बहुत ही प्रसन्न हुआ और गुरु तेगबहादुर जी के सामने अपनी सुपुत्री जीतो जी की शादी गोविन्दराय के साथ कर देने का प्रस्ताव पेश किया। जिसे गुरु तेगबहादुर जी ने मान लिया।

वैसे दिल्ली की ओर विदा होते समय ही श्री गुरु तेगबहादुर जी बालक गोविन्दराय को भावी गुरु बनाने की आज्ञा दे गये थे किन्तु जब वे देहली की जेल में बन्द कर दिये गये और उन्हें आनन्दपुर लौटने की आशा न रही तो विधि को पूरी करने के लिये पांच पैसे और नारियल भी भेज दिये थे। अत वे अपनी ९ वर्ष की अल्पावस्था में गुरु बन गये। कहते हैं कि गुरु तेगबहादुर जी ने भावी गुरु बालक गोविन्दराय जी की परीक्षा के लिये देहली की जेल से एक श्लोक लिखकर भेजा जो यह था।

बल छुटि गयो बन्धन परे कछू न होत उपाय।
कहु नानक अब ओट हरि गज ज्यों होय सहाय॥

इसके उत्तर में जो पद गोविन्दराय जी ने गुरु तेगबहादुर जी को देहली में भेजा वह इस प्रकार था—

बल होआ बन्धन छुटे सब कछु होत उपाय।
नानक सब किछु तुम्हरे हाथ में तुम्ही होत सहाय॥

गुरु अर्जुनदेव जी के बलिदान ने गुरु बालक गुरु हरिगोविन्द जी के हृदय में एक तेज पैदा किया था और उसी से प्रेरित होकर उन्होंने पीरी के साथ ही मीरी अख्तियार की थी। वही स्थिति आज हमारे दशम पातशाह के सामने थी। बादशाह के दुर्गम अत्याचारों और महामना पिता की उसके द्वारा की जाने वाली कुर्बानी ने उनके हृदय को अपने धार्मिक मिशन के लिये उत्तेजित कर दिया आप ने अपने पिता की शहादत के बाद कुछ समय अध्ययन और अपने भावी महान कार्य्य के लिये आत्मिक तैयारी में बिताया और फिर अपने शिष्यों में एक स्पिरिट पैदा करने के लिये एलान कर दिया कि आयन्दा से सिख भेंट में उमदा उमदा हथियार और घोड़े लाया करें। इसका कुछ कारण वह घटना भी थी, जब कि एक समय बाहर से आती हुई संगतें रास्ते में लूट ली गई थीं।

साथ ही दरबार में ओजस्वनी रचनाओं के पढ़ने वाले कवि और बहादुराना गाथायें सुनाने वाले विद्वान् भी इकट्ठे किये, कुछ अपने आदमी भी काशी संस्कृत पढ़ने को भेजे।

अब यह नियम सा हो गया था कि बरछी कटार और तलवार के बिना कोई ही खाली नहीं आता था। व्यापार करने वाले तो सभी सिख घोड़े बछेड़े और हथियार ही भेंट करते थे। इस तरह से शस्त्रागार हथियारों और घुड़साल घोड़ों से भर गई।

दूसरी ओर १८ और ४० वर्ष की उमर के बीच का जो भी आदमी गुरु जी की सेवा में हाजिर होता उसे फौजी तालीम देने के लिये अपने पास रख लेते. आनन्दपुर के पास का जंगल अब चांदमारी के काम में आरहा था और रात दिन सैनिकों की संख्या बढ़ रही थी।

जन्म-स्थान श्री गुरु गोविन्दसिंह जी

पटना साहिब

गुरुद्वारा
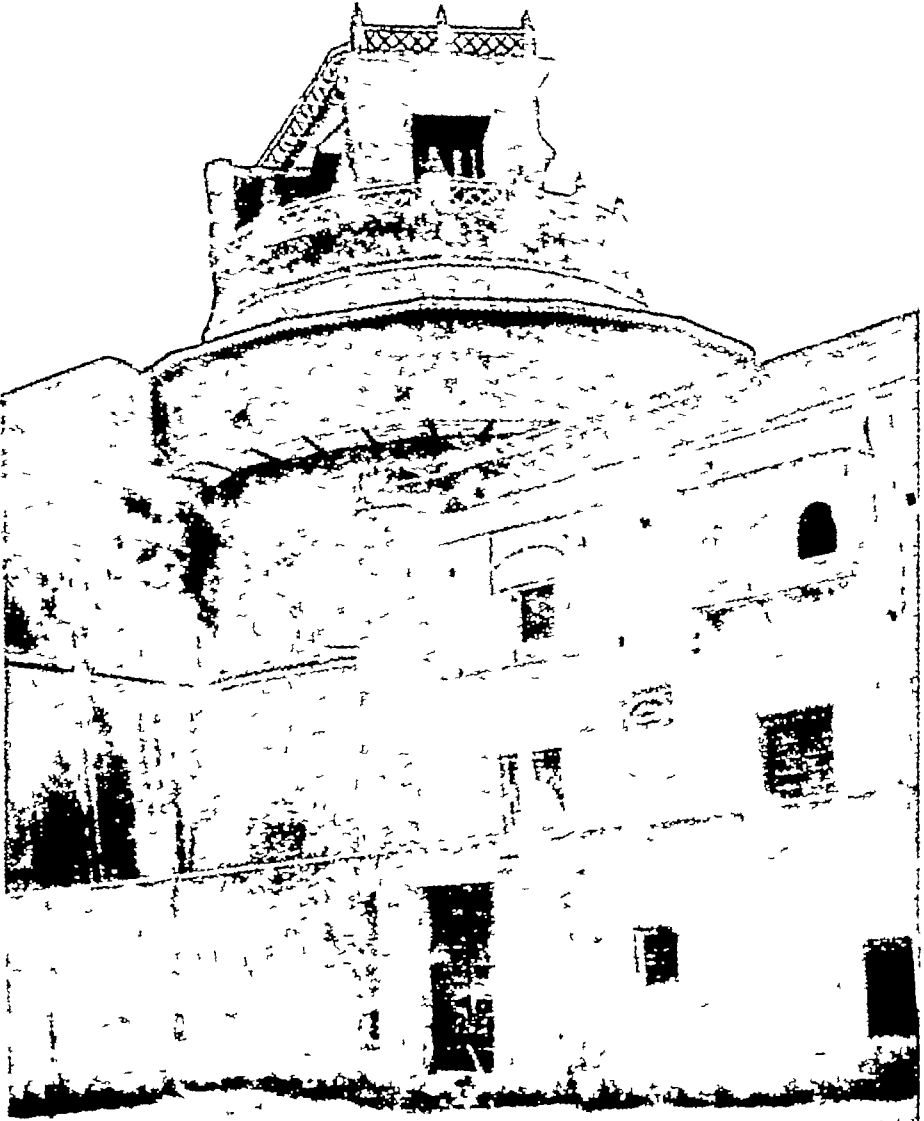
सरोपा साहिब नाभा

आसाम देश से राजकुमार रत्नराय जो कि राजाराम का पुत्र था। गुरु जी के दर्शनो के लिये आनन्दपुर मे हाजिर हुआ। उसने गुरु जी को सामान भेट मे दिया। उसमे एक सफेद हाथी एक पंचकला शस्त्र, पाच बढिया बन्दूके थीं। इनके अलावा एक कटोरी, एक चौकी, एक कलगी, एक हार और अनेकों ढाके की मलमल के बढ़िया वस्त्र थे। हाथी बड़ा चतुर और सिखाया हुआ था। वह हथियार उठा कर अपने सवार को दे सकता था। पानी से नहला सकता था। वस्त्र से शरीर पोंछ सकता था। रात्रि के समय सूंड मे मसाले लेकर रास्ता दिखा सकता था। पंचकला हथियार भी विचित्र था वह भी पाच हथियारो का काम देने वाला था।

राजकुमार रत्नराय अपने मंत्री और माता समेत आया था। पांच महीने गुरु जी की सेवा मे रहा।

गुरु जी ने एक बढिया नगारा भी बनवाया। जिसकी आवाज बहुत दूर तक जाती थी और इसका नाम रणजीत नगारा रक्खा।

ऐसी ही एक बेशकीमती भेट काबुल के सिख व्यापारी लाला दुनीचन्द जी ने भेजी थी। वह था एक तम्बू। कहा जाता है कि वह ढाई लाख रुपये की कीमत का था। उस सिख ने अपने गहरे मुनाफे मे से धर्मादा निकाले हुये दस हजार रुपये भी भेट किये।

इसी तरह संपति, शस्त्र और घोड़ों की भेट से आपके पास लाखों रुपये, सैकड़ों घोड़े और हजारों हथियार इकट्ठे हो गये। और उनका यह वैभव छोटे मोटे राजाओं के वैभव को मात देने वाला बन गया।

कहा जाता है कि जब घटाये उठती है तो वर्षा होना भी निश्चित सा हो जाता है और आसमान में गर्द छाने लगते ही आंधी की अगवाई जरूरी हो जाती है। जब गुरु जी के यहाँ यह युद्ध का सामान इकट्ठा हो रहा था और हजारों सिखों को युद्धकला सिखाई जारही थी तो यह तो निश्चित था कि एक दिन लड़ाई अवश्य होगी, हालाकि चाहे यह उपादान आत्मरक्षा के लिये ही हो रहे थे। तोभी लड़ाई अवश्य ही जान पड़ रही थी। किन्तु जो तयारियाँ भारत के शासकों के अत्याचारों के रोकने के लिये की जारही थीं, उनका सामना राजा बिलासपुर कर बैठा।

युद्ध के उपक्रम

आनन्दपुर, बिलासपुर रियासत मे अवस्थित था। एक दिन जब रणजीत नगारा बजा तो राजा भीमचन्द ने समझा कि कोई शत्रु चढ़ आया है, किन्तु उसके मंत्री ने बताया कि यह नगारा तो आनन्दपुर मे बजा है। प्रतापी गुरु गोविन्दसिंह जी के आजकल बहुत ठाठ हो गये है।

गुरुओं का ऐसा वैभव देखने की अपनी उत्सुकता को राजा भीमचन्द संवरण न कर सका और वह आनन्दपुर आया। गुरु जी ने उसे उसी काबुली तम्बू मे ठहराया और उसने प्रसादी हाथी तथा पंचकला शस्त्रादि सब को ही देखा। उस वैभव से जब अपनी तुलना करने लगा तो अपने को उसने बहुत हल्का पाया। अतः बिलासपुर पहुँचते ही उसने गुरु जी के पास एक आदमी भेजा, जिसे कहला भेजा, मेरे यहा शादी है, अतः शोभा बढ़ाने के लिये परसादी हाथी, रणजीत नगाड़ा, काबुली तम्बू और पंचकला शस्त्र को भेज दे।

गुरु जी भीमचन्द के इरादे को ताड़ गये। वह इस बहाने से इन चीजों को झॉपना चाहता है। अतः नर्म शब्दों मे कहला भेजा, सिखों की ओर से श्रद्धा-पूर्वक कीगई भेट बाहर नहीं भेजी जा सकती। इसके बाद भीमचन्द ने अपने सम्बन्धी राजा केसरीचन्द जसवालिये और ब्राह्मण पुरोहित को पुनः इसी मतलब के लिये भेजा परन्तु इस बार भी वे अपने इस कार्य मे सफल न हुये। इन्हीं दिनो नाहन

के राजा मेदिनी ने गुरु जी को अपनी रियासत मे आने का निमंत्रण दिया। जिसके आकस्मिक कारण यह थे। एक तो वह श्रीनगर के राजा फतेहशाह से लड़ाई होने से डरता था। दूसरी यह बात कि राजा फतेहशाह के इलाके मे रामराय ने डेरा बना लिया था। जिससे यह भय प्रतीत हो रहा था कि रामराय और फतेहशाह की मैत्री के कारण उसके पडोसी फतेहशाह की हरकत बहुत ज्यादा न बढ़ जाय। गुरु जी ने कुछ सिखों की सलाह से यह निमत्रण स्वीकार कर लिया। और यह नाहन चले गये। वहां राजा फतेहशाह भी गुरु जी के पास आ गया। गुरु जी ने उन दोनों मे मेल करा दिया। इस मेल के होने पर जीता हुआ नाहन का हिस्सा भी फतेहशाह ने वापिस कर दिया। इससे नाहन का राजा बड़ा खुश हुआ। उसने गुरुजी को राजी करके यमुना किनारे एक रमणीक स्थान पर एक गॉव बसवा दिया और एक दुर्गाकार स्थान गुरु जी और उनके दल के लिये बनवा दिया। गुरु जी ने इस स्थान का नाम पाऊँटा रक्खा। और गुरु जी सब परिवार के यहीं रहने लगे। दूर २ से सिख संगतें भी यहीं आकर दर्शन करने लगीं।

यहॉ गुरु जी जगलों में शिकार के लिये जाते तो दोनों राजाओं को साथ ले जाते थे। जिससे उन्हे गुरु जी के बल तप और स्फूर्ति का अनुभव पूरी तरह से हो गया।

यहॉ पर गुरु जी को सढोरे का प्रसिद्ध साईं मियॉ बुद्धशाह भी मिला और ज्ञानचर्चा करके उसने अपनी आत्मा को शात किया।

गुरु जी पाउंटे आ गये थे। उनका एक हल्का किला भी बन गया था, अपनी ताकत को भी बढ़ा रहे थे। किन्तु उधर राजा भीमचन्द संतुष्ट न था। उसने फतेहशाह की लड़की के साथ अपने पुत्र के विवाह के बाद ही गुरु जी से लड़ने की तैयारी कर दी। श्रीनगर पहुँचकर भीमचन्द ने राजा-फतेहचन्द को मजबूर किया कि वह गुरु गोविन्दसिंह जी के विरुद्ध भीमचन्द की मदद करे। और गुरु गोविन्दसिंह जी द्वारा दीवान नन्दचंद की मार्फत आये हुए उपहारों को वापिस करदे। फतेहशाह मजबूर होगया और जब दीवान नन्दचद श्रीनगर से लौट रहा था भीमचन्द ने उसपर हमला बोल दिया।

दोनों ओर से युद्ध की तयारियॉ होगईं और पाउंटा से ६ मील के फासले पर भंगाणी नाम के स्थान पर दोनों दल आ डटे। भीमचंद के साथ एक बड़ी भारी सेना थी जिसमें कटोच के राजा कृपाल गुलेर के गोपाल, हंडूर के हरिचन्द, श्रीनगर का फतेशाह और डसपाल के राजा शामिल थे इस पहाड़ी युद्ध का हाल स्वयम गुरु जी ने "विचित्र नाटक" मे इस प्रकार लिखा है :—

"हरीचंद कोपे कमाणं सँभारं, प्रथम बाजिय ताण बाणं प्रहारं।
द्वितीय ताक कै तीर मोको चलाय, रख्यो दैव मै कान छ्वै कै सिधायं॥
तृतीय बाण मार्‌यो सु पेटी मझार, बिधि अं चिलति अ ढाल पार पधारं।
चुभि चिच चर्म कछू घाइन आयं, कलं केवल जान दास बचाये॥
जबै बाण लागिओ, तबै रोस जागिनो।
करं लै कमाणं, हन बाण ताण॥
सबै बीर धाए, सरोघं चलाए।
तबै ताकि बाणं, हन्यो एक जुआण॥
हरीचद मारे, सुजोधा लतारे।
सुकारोड रायं, वहै काल घाय॥
रण त्याग भागे, सबै त्रास पागे।

भई जीत मेरी, कृपा काल केरी ॥
रण जीत आये, जयं गीत गाये ।
घन धार बरखे, सबै सूर हरखे ॥

इस युद्ध के बाद गुरु जी के साथियों को पाउंटा रहना रुचा नहीं, अतः संवत १७४३ वि० जेठ मास मे फिर आनंदपुर आ गये और "जो जो नर तह न भिरे दीन्हे नगर निकाल । जो तिह थोढ भले भिरे तिन्हे करी प्रतिपाला ।" ऐसे कायरों के निष्कासन के बाद प्रतिदिन लोगों को धार्मिक उपदेशो के बाद सैनिक शिक्षा का काम और भी उग्र कर दिया गया। इसके अलावा लोहगढ़, आनंदगढ़, होलगढ़ और फतहगढ़ आदि स्थानों मे किले बनवाने भी प्रारम्भ कर दिये। थोड़े ही से दिनों मे ऐसी शक्ति प्राप्त करली कि पहाड़ी राजाओं की हिम्मत उनसे लड़ने की जाती रही।

युद्ध पुत्रोत्सव

इन्हीं दिनो माघ सुदी ४ संवत १७४३ वि. मे सुन्दरी[1] जी के उदर से गुरु जी के घर एक साहबजादे उत्पन्न हुए जिनका शुभ नाम अजीतसिंह रक्खा गया और बहुत कुछ इस अवसर पर दान पुण्य हुआ।

गुरु जी की शक्ति को बढ़ते हुए देखकर राजा घबराये लेकिन अब लड़ने की भी हिम्मत नहीं रखते थे अत. उन्होंने गुरु जी की सेवा मे हाजिर होकर संधि कर ली। गुरु जी ने तलवार अत्याचारी मुगल शासन को ढीला करने के लिये ग्रहण की थी। राजपूत राजा तो मूर्खतावश उनसे भिड़ पड़े थे। इसलिये उनके सुलह करते ही गुरु जी उनके हितू हो गये। और इसी हित से प्रेरित होकर उन्होंने उनकी मदद भी की।

राजाओं की सहायता

चूंकि औरंगजेब की शक्तियाँ दक्षिण में बीजापुर गोलकुंडा के पठान राज्यों और महाराष्ट्र के मराठो के दमन में लग रही थीं। अतः पंजाब के पहाड़ी राजाओं की ओर से लापरवाह सा हो गया। इधर इन विलासी राजाओं ने खिराज का रुपया भी न चुकाया। अत उधर से निपटते ही औरंगजेब ने खिराज बसूल करने के लिये इन पहाड़ी राजाओं की खबर लेनी चाही। उसने अलिफखां को सेना देकर इन राजाओं से खिराज बसूल करने और दंड देने के लिये भेजा। नदोण के मैदान मे जमकर लड़ाई हुई ये राजपूत राजा अवश्य ही हार जाते किन्तु गुरु जी ने सहायता देकर मुगल सेना को परास्त कर दिया। इस युद्ध का वर्णन गुरु जी ने विचित्र नाटक मे भी किया है।

युद्ध की समाप्ति पर गुरु जी फिर आलसौन ग्राम के पठानों को ढीला करते हुए आनन्दपुर आये।

सवत १७४७ विक्रमी के चैत्र मास की सुदि सप्तमी को गुरु जी के घर मे सुन्दरी जी से दूसरे पुत्र ने जन्म लिया। जिनका नाम साहबजादा जोरावरसिंह रक्खा गया। और बहुत कुछ दान पुण्य भी किया गया।

अलिफखाँ की हार से झगडा मिट नहीं गया था। यह खबर जब लाहौर पहुँची तो वहाँ के सूबेदार ने दिलावरखाँ, रूस्तमखाँ का सेना देकर गुरु जी के दमन के लिये भेजा। क्योंकि वह समझ गया था कि यदि गुरु जी भीमचन्द की मदद नहीं करते तो अलिफखां हराया न जाता। सिख लोगों ने जब यह खबर सुनी तो गुरु जी के पास तुरन्त ही सूचना दी। गुरु जी ने रातों रात अपनी सेना सजा-

[1] जीतो जी का ही नाम सुन्दरी रख लिया गया था।

कर रुस्तमखा पर धावा बोल दिया। वह सिखों के पहले हमले को भी बर्दास्त न कर सका और मैदान छोड़कर भाग गया।

रुस्तमखां के भाग आने पर लाहौर से हुसैनखा के नेतृत्व में सेना भेजी गई। हुसैनखा ने सीधी गुरु जी पर चढ़ाई न कर। राजाओं को तोड़ा फोड़ा और भयभीत किया और उनसे कहा कि यदि तुम सहज ही सीधे रास्ते पर न आओगे तो बादशाह औरंगजेब तुम्हारी रियासतों को जब्त कर लेगा। कई राजा लोग उसके वश मे हो गये। जिनमें काहलगढ़ और मंडी के नाम मुख्य है। किन्तु गुलेर के राजा गोपालसिंह ने तुरन्त ही गुरु जी को अपनी मदद के लिये बुला लिया। यद्यपि कृपालु चन्द, हरिसिंह और हिम्मतसिंह पहाड़ी राजा मुगलों की ओर हो गये तो भी गुरु जी के प्यारे सिख और गोपालसिंह के सैनिक ऐसी वीरता से लड़े कि हुसैन मारा गया। उसके मारे जाते ही रुस्तम खां की हिम्मत टूट गई और वह भी भाग गया। इस विजय पर राजा गोपालसिंह ने गुरु जी को धन्यवाद दिया।

लाहौर के सूबेदार ने रुस्तमखॉ को इस तरह भाग आने पर बहुत लज्जित किया और मफ़र जग की मातहती मे एक बड़ी सेना गुरु जी से भिड़ने के लिये फिर भेजी। रुस्तमखा भी साथ गया। बहलान नामक स्थान पर दोनों ओर के लोग भिड़ गये। डट कर लड़ाई हुई। मैदान खून से रग गया। किन्तु रुस्तमखां को फिर भागना पड़ा क्योंकि उसके कई बहादुर अफसर और जुझारसिंह और गजसिंह नाम के राजपूत राजे भी लड़ाई में मारे गए।

इसके बाद बादशाह औरंगजेब ने अपने लड़के मुअज्जम को भेजा किन्तु वह खुद तो काश्मीर की ओर चला गया और अपने एक मनसबदार को आनन्दपुर की ओर रवाना कर गया। मनसब-दार ने बजाय लड़ाई करने के श्रद्धा के साथ गुरु जी के दर्शन किये।

इसके बाद ६—७ वर्ष तक गुरु जी अपने धर्म प्रचार और सगठन के काम मे लगे रहे। और अनेक लोगों को उपदेश देकर सत पर खड़ा किया। तथा अनेकों को आत्म शांति दी।

संवत १७५३ वि० के माघ मास के शुक्लपक्ष की प्रतिपदा को वाहि गुरु जी की कृपा से घर में तीसरे पुत्र रत्न का जन्म हुआ और उनका शुभ नाम जुझारसिंह रक्खा गया। इसके दो वर्ष बाद संवत १७५५ के फागुन की एकादशी को चौथे पुत्र श्री फतहसिंह जी हुए।

गुरु जी भारत की सामान्य जातियों की अधम दशा को देखकर मालूम होता है, दिल ही दिल में विचारते थे कि किस प्रकार वह अपने अनुयायी सिखों को एक ऐसी जमात में बांध दे जो कि अपने जीवन में जहॉ धर्म भावों से प्रेरित होते हुए सतों का जैसा जीवन व्यतीत करे, वहॉ वह देश और जाति की रक्षा के लिये अपने आपको निछावर करने के लिए भी तैयार रहे। अब तक जितने भी धर्म-प्रचारक देश में हो गुजरे थे। वह मनुष्य की केवल मानसिकोन्नति पर ही जोर देते थे और वह भी निज की। जिसका नतीजा यह हो रहा था कि धार्मिक लोग एकान्तवासी से हो गये थे और देश और जाति के दुःखों से न तो प्रभावित ही होते थे और न उन सवालों से सम्बन्ध ही रखते थे। चूंकि सर्वसाधारण में धार्मिक वृत्ति ज्यादा न होती थी, अत वह दूसरों के दुख को अपना दुख समझने तथा उसमें हाथ बटाने में कोई साहस न दिखाते थे। आहिस्ता आहिस्ता देश की अधोगति यहा तक हो गई थी कि विदेशी आक्रान्ता यहां के लोगों को भेड और बकरी की तरह हाक ले जाते थे। परन्तु बहू बेटियों की इज्जत बचाने के लिये निस्सहाय लोगों से कुछ न बन पड रहा था। जाति पांति के भिन्न भेदों ने लोगों को इतना दूर कर रक्खा था कि आम जनता को देश मे हो रहे राज्यान्दोलनों के कारण व अत्याचारों को देखने तक का

एक दूसरे से कोई हमदर्दी न थी, और होती भी कैसे ? जबकि अपने आपको उच्च जातिय मानने वाले प्रचारकों और राजपूत राज्यों मे धार्मिक और राज्य के कारणो से किये जा रहे दुखों से दिनोंदिन दलित किये जा रहे थे। किसी से हमदर्दी उस समय, होती है जब कि वह एक दूसरे से अपने सम्बन्धो को अनुभव करें जब कि उनको एकत्र होकर एक ही उद्देश्य के लिए कार्य करने की शिक्षा दी गई हो।

जाति पांति और धर्म विवाद के कारण विखरे हुए लोगों को एक जाति की शृंखला मे तभी आबद्ध किया जा सकता था, जब कि एक ही धर्म एक ही जाति और एक ही गुरु के अनुयायी बनाकर एक बिरादरी न बना दी जाती। इस आशा को लेकर गुरु गोविन्दसिंह के अपने सिख अनुयाइयों की एक जीवित बिरादरी बनाना चाहते थे। जो कि संत सिपाही और सिपाही संतों की एक जमात हो, इस समय तक सिख पूर्व गुरुओं की शिक्षा द्वारा एक धर्म के अनुयायी हो चुके थे। उनके खयालात मे एक परिवर्तन आ चुका था और हरिगोविन्द के समय से लेकर अब तक उनमे कुछ सैनिकता भी पैदा हो चुकी थी। अब उन्हे एक नये सांचे में ढालकर सर्व प्रकार से पूर्ण मनुष्य और मनुष्यों की एक पूर्ण जाति बनाने का काम गुरु गोविन्दसिंह ने किया।

संवत १७५६ के चैत्र मास मे आपने तमाम सिख संगतों के नाम सूचनाऐ जारी कर दीं कि वह चैत्र के अंत में आने वाली वैसाखी को मनाने के लिये आनन्द पुर मे एकत्रित हों। चुनाचे सिख संगते दूर और निकट के देशों से आनंदपुर मे आ एकत्र हुई। वैसाख की पहली तिथि को एक बड़ा भारी दीवान सजा। और प्रात: से ही आशा की वार का गायन होने लगा। दिन चढ़ते ही जब कि उपस्थित संगतों मे गुरु दर्शन का इन्तजार हो रहा था और पलपल मे उत्कंठा बढ़ रही थी तो क्या देखते हैं कि यकायक गुरु गोविन्दसिह हाथ मे नंगी तलवार लिए हुए आ उपस्थित हुए। चेहरा गजब से भरा हुआ था। और उनके मुख पर एक प्रकार की विभीषिका टपकती नजर आती थी। नंगी चमकती हुई कृपाण को हिलाते हुए आपने गर्जती हुई आवाज मे ललकार कर कहा, जालिम के ;अत्याचार की भड़क रही अग्नि को बुझाने और धर्म रक्षा की वेदी पर बलिदान करने के लिए मुझे एक सिर की जरूरत है। है कोई शूरवीर, जिसे अपना सिर इस कृपाण की धार पर कुर्बान करना स्वीकार हो। गुरुजी के इस असाधारण प्रश्न को सुनकर दीवान मे एक सन्नाटा छा गया। कोई उनकी इस बात की गहराई को न समझ सका। सब हैरान थे कि इस बात का अन्तरीय अभिप्राय क्या है? धीमे धीमे कानाफूसियां हो रही थीं परन्तु किसी को साहस न पड़ा कि वे गुरु जी के तेज के सामने उनसे इस सम्बन्ध मे कुछ प्रश्न करे। जब किसी ओर से उत्तर मिलता प्रतीत न हुआ तो गुरु जी ने फिर से वैसी ही गर्ज से दुहराया। इतने मे एक सिंह हृदय पूर्ण-सिख भाई दयाराम खत्री अपना सीस गुरु जी की चमकती हुई कृपाण के हवाले करने के लिये उठा और हाथ जोड़कर प्रार्थना की कि सतगुरु इस दास का शीश आपके चरणों मे हाजिर है। आप कृपा-पूर्वक इस भेट को स्वीकार करे। गुरुजी झुंझलाये हुए मनुष्य की तरह आगे बढ़े और दयाराम का हाथ पकड़ कर साथ के तम्बू मे ले गये। भाई दयाराम जी का अन्दर जाना ही था कि धम से गिरती हुई तलवार की आवाज सुनाई दी और अन्दर से बहता हुआ खून एक धारा मे प्रवाहित होने लगा। इसमे बाहर बैठे हुए सिख और ज्यादा हैरान हो गये। इतने मे टपकते हुए खून से सनी हुई तलवार हाथ मे लिये गुरु जी फिर बाहर आ गये और फिर ललकार कहने लगे मुझे एक और सिर की जरूरत है। इस होरही घटना को देखकर लोग कुछ दहल से गये परन्तु जब गुरु जी ने दूसरी दफे फिर वही सवाल किया तो, सिक्खी सिदक के पुतले और धर्म के परवाने भाई धर्मा जाट हस्तिनापुर निवासी ने नम्र विनती

की कि सच्चे पादशाह दास हाजिर है। गुरु जी ने कहा क्या तुम्हे मृत्यु का भय नहीं तो भाई धर्मा ने उत्तर दिया। सतगुरु जव से हमने आपकी शरण मे सिख धर्म धारण किया है। तव से ही यह शीश आपके चरणों में अर्पण हो चुका है। फिर आपकी ही वस्तु आपको भेंट करने मे हमे क्या ऐतराज हो सकता है। मृत्यु को तो अवश्य एक दिन आना ही है उससे फिर भय कैसा? यदि यह शीश धर्म की वेदी पर कुर्वान हो जाय तो इससे अच्छी और कौन सी वात हो सकती है।

अव की वार गुरु जी ज्यादा झुंझलाहट के साथ उनको पकड कर तवू मे ले गये। पहली वार की तरह ही अवके भी तलवार की झटक सुनाई दी और भी ज्यादा खून वहना हुआ निकला। जिससे वाहर के लोगों को यह निश्चय सा हो गया कि गुरु जी शिष्यों को तम्वू में लेजाकर कत्ल करते जा रहे है। गुरु जी रक्त से भीगी हुई तलवार लेकर फिर वाहर आगये और कहने लगे अव मुझे तीसरे सर की जरूरत है। यह सुनकर द्वारिका निवासी भाई मुहकम छीपा ने अपना शीश गुरु के चरनों पर जा रक्खा।

यह परीक्षा का एक ढग था और हरवार एक सिख को अन्दर लेजाना और फिर तलवार की झटक सुनाई देने के साथ ही तम्वू के वाहर रक्त की धारा का वह निकलना सिखों को भयभीत करके उनके सिदक को जाचना और ससार के सामने उनके इस आदर्श को रखना था कि सिख गुरु आज्ञा के ऊपर कहाँ तक कुर्वानी कर सकते हैं। आखिर वह भी गुरु नानक और गुरु गोविन्दसिंह के सिख थे। जिनके सामने गुरु अर्जुन व गुरु तेगवहादुर की कुर्वानियाँ पथ प्रदर्शक का काम दे रही थीं। इसी तरह गुरु जी ने दो वार और दीवान में सिर के लिये सवाल किया। जिसके उत्तर में विदर निवासी भाई साहवचंद नाई और जगन्नाथ निवासी भाई हिम्मत कहार ने गुरु के सामने अपने शीस भेंट किये।

कुछ समय के लिये खामोसी सी हो गई। गुरु जी ने उन पाँचों को स्नान कराया और नये वस्त्र पहनाये और शस्त्र धारण करवाकर पाचों सिदक वान शस्त्र धारी धर्मात्माओं को साथ लेकर तम्वू से वाहर निकले।

उन पाचों को जीवित देखकर दीवान में उपस्थिति संगतें हैरान हो गई और गुरु जी के इस निराले कौतुक को देखकर सव ओर से धन्य गुरु गोविन्दसिंह की आवाजें आने लगीं। तत्पश्चात् गुरु जी ने सर्व लोह के वाटे (पात्र) में जल मगवाया और वीरासन लगाकर गुरु ग्रन्थ साहव के सामने वैठगये। और यह 'पाच पियारे' हाथ जोडकर पास खडे थे। गुरु जी जप, जापु सवैये आदि वाणियों को पढ़ते और साथ जप से दो धारा खड फेरते जाते। इसी समय गुरु पत्नी माता साहवकौर वतासे लेकर पहुँची। यह वतासे उस जल मे डाल दिये गये और गुरु जी गुरुवाणी पढ़ते और खड हिलाते रहे। जव यह अमृत तैयार हो गया तो विना किसी भेद के पाचों को एक ही वाटे में पिलाया गया। और उसके नामों के आगे सिंह लगाकर उनके नाम भाई दयासिंह, धर्मसिंह, मुहकमसिह, साहवसिंह हिम्मतसिंह रख दिये। इसके वाद गुरु जी ने उनको कहा कि अव से आप भाई भाई हो गये हैं। पिछली कुल जाति और कृत आपकी एक होगई है। अवसे आपका नया जन्म हुआ है और सव गुरुभाई एक समझे जायेगे और सतान एक ही धार्मिक माता-पिता गुरु गोविन्दसिंह और साहवकौर की। अव आप सिह वनगये हैं और वाहि गुरु जी का खालसा है, आपका अवसे सदैव पाच धार्मिक चिह्न धारण करने होंगे १) केश (२) कंघा (३) कपाण (४) कड़ा और (५) कच्छ। अवसे किसी अन्य धर्म के देवी देवताओं तथा पीरों व फकीरों की मान्यता न करनी होगी और केवल स्वायम्भुव निराकार और अयोनि परमात्मा को ही मानना होगा।

परन्तु सबसे आश्चर्यजनक बात उस समय हुई जब कि गुरु गोविन्दसिंह जी हाथ जोड़कर उन पाच प्यारो की ओर बढे और बड़ी अधीनता से प्रार्थना की खालसा जी, चूंकि अबसे हरेक सिख को खालसा बनने के लिये अमृतपान करके खालसा-रहत धारण करना अत्यन्त आवश्यक है। इसलिये मेरी विनती है कि आप मुझे इस पवित्र अमृत का दान बख्शे। पांचो प्यारे इस कौतुक को देख और गुरु गोविन्दसिंह की यह बाते सुनकर हैरान होगये। आजतक संसार के किसी भी धर्म-नेता ने अपने हाथो से बनाये हुये शिष्यों का अपने आपको शिष्य बनाने के लिये पेश नहीं किया था। अत. यह प्यारे विचित्र दशा में यह सोच रहे थे कि वह महापुरुष गुरु गोविन्दसिंह जिसकी चरण धूलि को सर पर रखना हम अपना सौभाग्य समझते है, किस दीनता से हाथ बांधे हमारे सामने "अमृत" की याचना कर रहा है। किसी को उत्तर देने का साहस न पड़ता था आखिर भाई दयासिंह ने प्रार्थना की सच्चे पातशाह आप हमारे पूजनीय हैं। हमने तो आपके हाथो से अमृत लिया है और आपकी कृपा से खालसा पदवी पाई है फिर हम कैसे आपको 'अमृत' और उपदेश दे सकते है। यह सुनकर गुरु जी ने उत्तर मे कहा "आप पाच प्यारे खालसा पंथ के शिरोमणी और पंथ का स्वरूप है। मैं पंथ को वाहिगुरु और गुरु का स्वरूप जानकर अपने आपको आपका दास समझता हूँ।"

तत्पश्चात् उन पांच प्यारो ने अमृत तैयार करके गुरु जी को चखाया और नियमानुसार खालसा बनाया। और उनके गोविन्दराय नाम को गोविन्दसिंह रक्खा। इसी घटना को सामने रखकर एक लेखक ने कहा है .—

> तीसर पथ चलायन 'बड़शूर' गहेला।
> वाह वाह गुरु गोविन्दसिंह आपे गरु चेला॥

इसके बाद गुरु गोविन्दसिंह ने पांच प्यारों को साथ लेकर उपस्थिति संगतों को अमृत चखाना आरम्भ किया और बाद से अमृत चखकर तैयार हुये सिखों के पांच पांच मे जत्थे बनाकर बाहर देश मे सिख संगतो को अमृत चखाने के लिये भेज दिया।

पंथ खालसा की स्थापना के बाद से दकियानूस हिन्दू समझ बैठे थे कि गुरु गोविन्दसिंह ने तो एक ऐसा पंथ खड़ा कर दिया है जो हिन्दू धर्म से भिन्न है। यह ठीक भी है खालसा पंथ उस हिन्दू धर्म से बिलकुल ही भिन्न है जो रूढ़ियों का गुलाम और भेद भावों से जर्जरित एव ढकोसलों से भरा हुआ था किन्तु देश की रक्षा के लिये उनके दिल मे कितना दर्द था। उसकी दुर्दशा से कितनी टीस थी, यह पता चलता है उनकी उस वार्तालाप से जो उन्होंने शिवालक पहाड़ी प्रदेश के राजाओं से की थी।

राजाओं को उपदेश

जब नव आदर्शों और नव उत्साह से मंडित खालसा दल बढ़ने लगा और उनकी चाल, चितवन और तेजस्विता से भारत मही सुरभित होने लगी तो पहाड़ी प्रान्त के बाईधार के राजा घबराये। उनको यह निश्चय होने लगा कि यह दल सब से पहले हमारे राज्यों को हड़प करेगा। इसलिये उनका एक डेपूटेशन राजा अजमेरचन्द जी अध्यक्षता मे गुरु जी की सेवा मे हाजिर हुआ।

जिस समय दरबार लगा और गुरु जी धार्मिक कृत्य से निवृत्त हो लिये, तो राजा अजमेरचन्द ने कहा—"महाराज आपने यह क्या खालसा, नाम का पंथ चलाया है। जिसमे न शिखा सूत्र है और न जाति पांति का विचार। खानदान का भी परहेज नहीं रहने दिया। सब एक ही रसोड़े का बना और चाहे जिसके हाथ का खा लेते हैं।" जब अजमेरचन्द कह चुका तो गुरु जी ने इस भाव का भाषण

किया—"हे राजा, जिसे तुम धर्म कहते हो, वह तो धर्म नहीं है। जिस धर्म में मनुष्य, मनुष्य को नीच ऊंच समझता हो, वह सब का धर्म नहीं हो सकता मैंने तो यह प्रयत्न किया है कि धर्म का ऐसा संस्कार हो जाय, जिसमे कोई किसी को ऊंच नीच न समझे, मिथ्या गौरव के अभिमान से कोई किसी के साथ अमानुषी व्यवहार न करे। तुम अपने सम्बन्ध मे विचारो, किसी समय राजपूत जाति का भी तो संस्कार हुआ था। मैं भी एक ऐसे पंथ की स्थापना कर रहा हूँ, जिसमे मंजे हुए और भय, रागद्वेश से खालिस वीर इकट्ठे हो जाय जो धर्म की और देश की इस गाढ़े समय में रक्षा कर सकें।

राजा! तुम देखते नहीं हो, इस समय देश में क्या हो रहा है? तुम्हारे धर्म भाइयों पर क्या गुजर रही है और स्वयम् तुम लोग ही अपनी शान को किस प्रकार गंवा बैठे हो। आज तुम्हारे धन, दौलत और बहू बेटी सब पर तुर्क अपना अबाध अधिकार समझते हैं। क्या तुम्हारे अन्दर क्षात्रत्व शेष रह गया है? राजपूत आज अपनी बेटियों का डोला लेकर नवाब और बादशाहों की सेवा मे हाजिर होते हैं। इस तरह देश और धर्म पर घोर अन्याय और जुल्म हो रहा है परन्तु शोक की बात है कि देशवासी अपने मिथ्या धर्म भावों में लम्पट हुये हुए हैं और किसी की रग मे देश प्रेम का खून दौडता नजर नहीं आता। क्या यही धर्म है।

इस भाषण का भी राजाओं पर कोई खास असर नहीं पड़ा। जब कि उनकी आत्मा मर चुकी थी और जात्याभिमान कूच कर चुका था।

इस डेपूटेशन के राजाओं ने बिलासपुर पहुँच कर अन्य राजाओं को बुलाया और सबने मिलकर एक कमेटी की। और गुरुजी को लिख भेजा कि—"मुसलमान बादशाह इस देश में सैकड़ों वर्ष से राज्य कर रहे हैं। अत हमे यह बात असंभव दिखाई देती है कि हम उनकी सल्तनत को उखाड़ सकेंगे। बलशाली मुगल हकूमत का विरोध करने से हम कोई भी लाभ नहीं देखते है।"

ऐसे उत्तर को पाकर गुरुजी ने यही कहा कि सदियों से गुलामी मे पड़े रहने से इनका पुरुषत्व नष्ट होगया है। हम तो चाहते थे कि इनमे एक नया जीवन पैदा हो जाय, परन्तु यह उसी अधम गढे में पड़ा रहना चाहते ज्ञात होते हैं।

इसके बाद उन्होंने सिखों को सम्बोधित करते हुये कहा "खालसाओ! आपकी आत्माये वाहि गुरु के ध्यान और गुरु नानकदेव जी के उपदेशों से शुद्धहो चुकी हैं। मैंने आपको अपना परिवार मान लिया है। मेरे तुम सब ही पुत्र हो। तुम्हारे हाथ मे तलवार देकर मैंने तुम्हारी कुछ जिम्मेदारिया भी बढा दी हैं। देश और धर्म की सेवा काभार तुम्हारे कंधों पर है।"

गुरुजी का प्रभाव तप और वीरता दोनों ही तरह का था। उनके पास आकर लोग दर्शन करने औ उपदेश सुनने में अहोभाग्य ही समझते थे। अनेकों के तो दिल मे रोशनी उनके उपदेशों से ही हो जाती थी।

शाही अत्याचारों से दुखित हुए लोगों की निगाह गुरु जी पर ही पडती थी और वे अपने प्राण बचाने के लिये आनन्दपुर की ही शरण लेते थे। ऐसे शरणागतों मे राघोबा पेशवा की धर्म पत्नी अन्नपूर्णा बाई और भाई नंदलाल मुख्य हैं।

भाई नन्दलाल जी अरबी फारसी के भारी विद्वान थे। उनकी विद्वता पर मोहित होकर औरंगजेब ने उन्हे मुसलमान बनाना चाहा था, इसलिये अपने मित्र गयासुद्दीन के साथ वे भाग कर गुरुजी की शरण में आगये। उन्होंने गुरुजी की प्रशंसा मे एक बन्दगी नामा फारसी मे बनाया था जिसका नाम गुरु

जी ने बदल कर जिन्दगी "नामा कर दिया। इसके सिवा नन्दलाल ने और बहुत सारी शायरी की थी।[1]

वास्तव में मसन्दों का काम सिखों की ओर से स्वत प्रदत्त भेंटों को गुरुजी तक पहुँचाना था इसको अपने इस्तेमाल में लाना अनुचित था। परन्तु शनै शनै उनमें से कुछ लोग कर्तव्य विमुख होगये। सिखों की गुरुओं के लिये दी हुई प्रेम भेंट को अपने लिये वर्तने लगे। एक दिन गुरुजी की सभा में भॉड लोगों ने एक प्रहसन किया। जिसमें एक मसंद को धर्म कार्य के लिये उगाहे हुये रुपये को दुष्कृत्य में खर्च करते दिखाया। अत: गुरुजी ने सब मसदों को बुलाया और उनमें से कई को तो कठोर दंड दिया। साथ ही इस पद को भी उडा दिया।

मसंदों को दंड

गुरुजी के सभी किले पहाड़ी राजाओं की रियासतों में ही थे। आनन्दपुर मे अब उनका समाज भी बहुत बढ़ गया था। इस बढते हुये समाज से राजा लोग उतरोत्तर चिढ़ते जा रहे थे। वे अपने आदमियो द्वारा सिखों को जगल में से घास और लकड़ी लाने से भी रोकते। गर्ज सब प्रकार उन्हे तग कराते। एक समय अजमेरचंद और वलियाचंद नाम के राजपूत जागीरदारो ने कुछ सिखो को उस समय घेर लिया जबकि वे खाने पीने का सामान एक शहर से लेकर आनन्दपुर को आरहे थे। दोनों ओर से लड़ाई छिड़ गई। बन्दूकें और तलवारें भी चलीं, कई सिख जखमी हुए किन्तु वलियाचन्द जान से मारा गया।

पहाड़ी राजाओं से युद्ध

अजमेरचन्द ने वलियाचन्द के मारे जाने के बाद बाइसों राजाओं को इकट्ठा किया और उनके सामने सब हालात बताते हुए कहा कि इस संत का बढ़ना हमारे लिरे खतरा होगा, यदि हम सब मिलकर इसे अभी निकाल दे तो ठीक है वरना फिर निकालना भी कठिन हो जायगा। सर्व सम्मति से गुरुजी के पास उन लोगों ने एक नोटिस आनन्दपुर को राजी-राजी से छोड़ देने के लिये लिखा। गुरुजी ने उस नोटिस के जवाब में लिख भेजा कि भूमि तो परमात्मा की है। वह सभी लोगों को वर्तने के लिये है और आनन्दपुर तो हमारे पूर्व गुरु व मेरे पिता ने नकद दाम देकर खरीदा था। इस उत्तर को पढ़कर राजाओं ने फिर नोटिस दिया कि या तो राजी से खाली कर जाओ वरना हम नगर को लूट लेंगे। गुरुजी ने फिर वैसा ही सीधा किन्तु नम्र उत्तर भिजवा दिया। इस उत्तर को सुनकर राजा लोग चिढ़ गये और उन्होंने अपनी सेनाओं को तैयार होने का हुक्म दिया, साथ ही सरहिंद के हाकिम को भी मदद के लिये लिखा। सरहिंद से दीनाबेग और पैंदेखा कई हजार सैनिकों के साथ राजपूतों की मदद के लिये आगये।

उस समय गुरुजी के पास आठ हजार सिख थे। दोनों ओर से युद्ध छिड़ गया। दिन भर तो सिख लोग किले के भीतर से शत्रुओं पर वार करते और रात्रि को झाड़ियों की आड़ में से गोलियाँ बरसाते। पैंदेखां ने अपनी फौज का इस प्रकार विनाश होते देख कर गुरु जी के पास सन्देश भेजा कि सेनाओं के कटाने से क्या लाभ? आइये हम और आप अकेले २ लड़कर तय करले। गुरुजी ने उसकी बात को मान लिया। उसने गुरुजी पर दो वार तीर चलाये किन्तु खाली गये। अपने वारों को खाली जाते देखकर उसने अपने घोडे को भगा दिया किन्तु गुरुजी ने ऐसा तीर मारा कि धडाम से जमीन पर गिर पड़ा। पैंदेखा को इस प्रकार गिरते देखकर मुगल सेना ने गुरुजी पर आक्रमण किया किन्तु सिख भी तो सावधान खड़े थे। उन्होंने भी ऐसी मारामार मचाई कि सैकड़ों को जमीन पर बिछा दिया। दीनाबेग भी घायल होगया। इस हालत में दीनाबेग और अजमेर चन्द भाग गये। जीत सिखों की रही।

१ उनकी रचनाओं में 'फारसी नज्म' 'दीवाने गोया' 'जोति बिगास' 'तोसी फो सना' और गजनामा आदि है।

किन्तु कुछ ही दिन के बाद जगतुल्ला गूजर की मदद लेकर राजाओं ने फिर आनन्दपुर पर चढ़ाई करदी। राजपूत कसर नहीं रखना चाहते थे। किन्तु उनके दुर्भाग्य से जगतुल्ला गूजर भी तीर का निशाना बन गया और उसके साथी भाग निकले। यह देखकर राजपूत बहुत घबराये। राजा केसरीचंद की सलाह से एक मस्त हाथी को दरवाजे पर हूलने का आयोजन किया। यह खबर जब गुरु जी को लगी तो उन्होंने विचित्रसिंह को और उदयसिंह हाथी को रोकने के लिये भेजा। विचित्रसिंह ने हाथी के मस्तक में ऐसे जोर का भाला मारा कि हाथी पीछे को भाग निकला। उसके भागने से पहाड़ी फौज के सैकड़ों आदमी कुचल गये। हण्डूर का राजा भी इस चपेट में आकर जख्मी होगया। उधर सिख लोगों ने हल्ला किया। इससे केसरीचन्द मैदान छोड़ कर भागने लगा किन्तु उदयसिंह ने दौड़ कर केसरी-चन्द का सिर काट लिया और बर्छे की नोंक पर टांग कर ले आया।

यह घटना संवत १७५८ वि: की है।

गुरु जी कवि लोगों की भी बड़ी कदर करते थे। उनके दरबार में अनेकों बड़े २ कवि थे। जिनकी वीर रस की कवितायें सुनकर सिखों की भुजायें फड़क उठती थीं। कविता का लोगों को यहाँ तक शौक हुआ कि उनके रिसाले में भी कई आदमी अच्छे कवि हो गये।

कवि लोगों की कद्र

कहा जाता है कि चन्दननाथ जोगी धनुष विद्या में भी निपुण था. उसने गुरु जी के भारी भरकम धनुष को देखकर कहा, महाराज यह कभी काम भी आता है, या यों ही प्रदर्शन के लिये है। यह काम आता हो तो चला कर दिखाओ गुरुजी ने धनुष को संधान कर ऐसे जोर से चलाया कि उससे छूटा हुआ तीर तीन कोस के फासले पर जाकर गिरा। चन्दननाथ ने भी तीर छोड़े किन्तु उसके तीर कोस सवा कोस से आगे नहीं गये। इस समय दरबार में कुछ राजपूत सरदार भी बैठे थे। उन्होंने भी अपने बल की परीक्षा दी किन्तु गुरुजी के बल और कौशल को भला बेचारे कहाँ पा सकते थे?

शस्त्र कौशल परीक्षा

हिन्दू धर्म और देश जाति की रक्षा के लिये तो उन्होंने अपना सब कुछ कुरबान कर ही रक्खा था। भला वे स्त्रियों की रक्षा के लिये कौनसा संकट अपने ऊपर नहीं ले सकते थे। एक दिन जबकि वे बैठे हुए थे उनके कानों में 'दुहाई है। गुरुजी की दोहाई है।' शब्द पड़े। जब जाच की गई तो पता चला कि एक ब्राह्मण जिसकी कि औरत को यवन छीन ले गये हैं। चिल्ला रहा है। उसकी मदद किसी ने भी नहीं की। गुरुजी ने उसी समय ब्राह्मण स्त्री की वापिसी के लिये अपने पुत्र अजीतसिंह को बुलाकर आज्ञा दे दी कि पुत्र अभी 'बसी' के पठान जाबरखां पर चढ़ाई करो और उसके यहाँ से इस दीन की स्त्री को वापिस लाओ।

स्त्रियों की रक्षा

अजीतसिंह जी ने सौ सवासौ आदमियों को साथ ले जाकर सूर्योदय से पहले ही बसी पर धावा बोल दिया। नगर का फाटक तोड़कर सिख पठान के महलों में घुस गये और उसे घायल कर तथा ब्राह्मणी को लेकर आनन्दपुर आये। कुछ पठान मारे भी गये। ब्राह्मणी उनके मालिक के हवाले करदी गई।

एक दिन भयंकर युद्ध मुगल बादशाह की सेनाओं से होना है। इस बात को गुरुजी खूब जानते थे और वह यह भी जानते थे कि घोर संकट भी आने वाला है। अत: समय समय अपने साथियों की परीक्षा अवश्य लेते थे। खालसा पंथ स्थापित होने के बाद इस ओर से वे खूब सतर्क रहे कि कोई ऐसा आदमी हमारे दल में शामिल न हो जाय जो समय पड़ने पर कच्चा निकले या दगा दे जाय। धर्म के मामले में भी वे उन्हीं लोगों को पंथ खालसा में

परीक्षा

शामिल करते थे। जो पूर्णतया सिख सिद्धान्तों के पालन के योग्य दिखाई देते थे। हँसा नाम के एक प्रसिद्ध कलाकार को जिसने कपड़े पर दूसरा सूर्य्य बनाने की योग्यता प्रदर्शित की थी उस समय सिख बनाया जिस समय कि उसे अपनी जैन मनोवृति भूल के रूप में मालूम हो गई।

एक बार रवालसर के मेले से होते हुए गुरु जी मंडी आए। जहाँ राजा ने बहुत आवभगत की। गुरु जी ने भी उसको एक पुस्तक दी।[१]

मंडी से आनंदपुर की ओर आते हुए कलमोठ के राजा को भी उचित दंड दिया उसने सिख लोगों से वह भेंट लूट ली थी, जिसे सिख-जन गुरु जी के पास लेजा रहे थे। गुरु जी ने पहले साहबजादे अजीतसिंह जी को कलमोठ पर फौजे देकर भेजा किन्तु ज्वालामुखी का विजय भारती कलमोठ की मदद को ५०० नागा लेकर आ गया। गुरु जो इस समाचार को सुनकर स्वयम भी कलमोठ पहुंचे। राजा तो लड़ाई मे हार ही गया किन्तु लौटते हुये गुरु जी ने ज्वालामुखी के विजय भारती को भी सवक दिया।

शाही सेना से युद्ध

भड़ैत भाट और कवियों ने राजपूतों को भले ही सिर पर चढ़ा दिया हो, उनकी प्रशंसा के पुल वांध दिये हों किन्तु हमे तो मुगल काल मे एक उदयपुर के राणाओ को छोड़ कर उनके कारनामे भारत की आजादी विरुद्ध ही दिखाई देते है। अपनी रियास्ते भी जो आज दिखाई देती हैं, इन्होंने कोई शूरता के साथ नहीं बचाई थीं। कुछ ने तो अपनी लड़कियाँ देकर अपने राज्यों को बचाया कुछ ने गुलामी बजाकर कुछ रियासते प्राप्त कीं। पंजाब ही नहीं सारे भारत मे ही इनकी ऐसी ही मनोवृति रही। दक्षिण मे मराठों के दवाने के लिये मुगलों ने इनका उपयोग किया। आसाम की स्वतंत्र रियासतों की स्वाधीनता अपहरण कराने ये गये। ब्रज के भरतपुरिये जाटों को जो मुगलराज्य की नींव खोद रहे थे कमजोर करने यही राजपूत पहुँचे थे। गुरु गोविन्दसिंह जी जैसे धर्म-रक्षक और देश सेवक के विरोध पर भी इन्हीं ने कमर बांधी। हालाकि गुरु जी सदैव इनके दुख मे इनकी मदद करते थे और सहायता भी देते थे।

शिवालक के राजपूतों से अपने ही देश मे पैदा होने वाले और अपने ही धर्म के रक्षक गुरु गोविन्दसिंह का प्रताप नहीं देखा गया और अब उन्होंने अंतिम रूप से गुरु जी को मिटवाना तय कर लिया। इसलिए उन्होंने औरंगजेब के नाम एक पत्र इस आशय का लिखा :—

मांडलिको की हैसियत से हमारा यह फर्ज है कि हम आपको उस खतरे से आगाह कर दे जो मुगल सल्तनत को वर्वाद करने के इरादे से गुरु तेगबहादुर के बागी लड़के गोविन्दसिंह ने पैदा किया है। पंथ खालसा के नाम से उसने एक ऐसा दल तयार किया है। जो आचरणों और वेशभूषा मे हिन्दू और मुसलमान दोनों से नहीं मिलता है। गुरु गोविन्दसिंह मुसलमानी हुकूमत के विरुद्ध जोरों से प्रचार करता है। यहाँ तक कि उसकी ओर से हम भी आपको विद्रोही वनाने का प्रयत्न किया गया है।"

कहा जाता है इस पत्र का जब कोई शीघ्र ही फल नहीं निकला तो अजमेरचन्द सब राजाओं का प्रतिनिधि होकर वादशाह औरगजेव के पास पहुँचा और जितना भी उससे हो सका वादशाह के कान भरे। वादशाह ने इस समय कहा कि वह उस ओर से असावधान न था।

वादशाह ने अमीरखाँ, सैय्यदखाँ और दीनाबेग आदि को आनदपुर पर चढ़ाई करने और

१ मंडी में जहां ठहरे थे वहाँ एक सुन्दर स्थान यादगार में वना हुआ है।

गुरु जी को जिन्दा पकड़ लाने के लिये हुक्म दे दिया और साथ ही सरहिन्द के हाकिम को सहायता देने की सूचना दे दी।

राजाओं का यह षडयन्त्र गुरु जी से भी छिपा नहीं रहा और उन्हें यह भी मालूम हो गया कि औरंगजेब ने फौज रवाना कर दी है। अत गुरु जी ने भी बड़े धैर्य्य के साथ सेना इकट्ठा करना शुरु किया गाँवों मे पत्र भेज दिये गये।

कहा जाता है जाट चौधरियों ने जो अब खालसा जी बन गये थे। अपने गाँवों के नौजवान लड़कों को ही नहीं भेजा किन्तु युद्ध की सामिग्री भी भेजी। हजारों सिख शूरमा, आनन्दपुर मे आ एकत्र हुये। उधर मुगल सेना भी सरहिन्द और राजपूतों की सेना समेत एक लाख के करीब हो चुकी थी।

आनन्दपुर के ऊपर केसरिया और मुगल सेना मे नीला झंडा लहराने लगे। नगाड़ों पर चोट पड़ी। सिखों के रणजीत नगाडे की धुनि से कलरव मच गया। मुसलमान सेनाओं ने अल्लाहो अकबर के बुलंद नारों से रणघोष किया। इधर सिख वीरों ने "जो बोले सो निहाल, सत श्री अकाल" के गगन भेदी नारे से रिपु दल को जवाब दिया।[1]

वीर सिंहनियों ने किले के कगूरों पर चढ़कर मुगलों के टिड्डी दल को देखा तो उन्हे मौत के मुँह पर आया जानकर खूब हँसी। पाच दिन तक घमासान युद्ध हुआ जो पहले के तमाम युद्धों से भयकर था। दोनों ओर के हजारों आदमी धराशायी हो गये, किन्तु सिख मुगलों की अपेक्षा बहुत कम मारे गये इस घमासान को देखकर गुरु जी ने एक जत्थे के साथ मुगल सेना पर आक्रमण किया। शाही सेना के एक फौजदार अजीमखाँ ने गुरु जी का मुकाबिला किया किन्तु गुरु जी ने तलवार से उसके दो टुकडे कर दिये। अजीमखाँ को गिरता देखकर पैदेखाँ नामी सेनानायक आगे बढ़ा, उसे भी गुरु जी ने मुल्के-अदम पहुँचा दिया।

गुरु जी की सेना मे सैयदबेग और मामूखाँ नामक दो मुसलमान सेनापति भी थे जो गुरु जी की ओर से मुगल सेना से प्राणपण से लड़ रहे थे। उनमे सैयदबेग ने जसवालिये हरीचद को मार गिराया। दीनाबेग शाही सेनापति को मामूखाँ ने पछाड़ दिया। किन्तु खुद भी मैदान मे काम आ गया।

इस दिन की लडाई मे अजमेरचद का दीवान मारा गया और खुद अजमेरचद जख्मी हो गया। इससे मुगल और पर्वतो लोगों में बड़ी बेचैनी फैली और दोनों सेनायें भाग खडी हुईं। मैदान सिखों के हाथ रहा।

इस युद्ध के बीच मे कुछ विचित्र बाते हुईं जिन्हे यहाँ देना जरूरी है। सिखों मे एक भाई कन्हैयाजी थे वह युद्धक्षेत्र मे पानी पिलाने का काम करता था। सिखों ने गुरु जी से उनकी शिकायत की कि महाराज कन्हैया जी तो तुरक लोगों को भी पानी पिलाते हैं हम उन्हे जमीन पर गिराते हैं और ये उन्हें पानी पिलाकर फिर हमारे मुकाबिले को सावधान कर देते हैं। कन्हैया जी ने कहा "मेरा काम तो पानी पिलाना है। मैं इसमे मित्र और शत्रु सब तुर्क और अतुर्क का भेद नहीं जानता। गुरु जी कन्हैया जी की इस बात से बडे प्रसन्न हुए और उन्होंने भाई जी को मरहम पट्टी का भी काम सौंप दिया।

मुगल सेना में सैदखाँ एक प्रसिद्ध सेनानायक था। उसने गुरु जी की बहुत भारी प्रशसा सुनी थी। खुद भी सत-प्रकृति का आदमी था। युद्ध मे भी उसने गुरु जी को देखा था। उसने बार भी कि

१. यह लडाई फागुन सवत १७५८ वि० में हुई।

थे किन्तु उसके वार खाली गये यह भी उसे आश्चर्य था। उसकी आत्मा बोल उठी, एक धर्म वीर के साथ लड़ाई ? और साथ ही उनके दर्शन के लिये उसकी आत्मा तड़प उठी।

एक दिन गुरु जी निर्भयता के साथ उसके डेरे में पहुँच गये। और कहा भाई जिसका तुम सिर काटना चाहते हो वह तो हाजिर है। सैदखाँ गुरु जी के पैरो मे पड़ गया बहुत देर तक धार्मिक मसलों पर बात चीत हुई। गुरु जी जब लौटे तो मुगल सैनिकों ने उन्हे घेरना भी चाहा किन्तु वे सफल नहीं हुए। दूसरे दिन सैद खां लापता था और सदा के लिये गुरु जी की शिक्षा से प्रभावित होकर शत्रु के दल से अलग हो गया।

बादशाह औरङ्गजेब को लड़ाई के फीके समाचार मिले तो उसने लाहौर और काश्मीर के सूबों को भी लिखा कि तुम लोग आनंदपुर और गुरु को मटियामेट कर दो।

इस संयुक्त सेना ने आनंदपुर को फिर घेर लिया। सिख शूरमाओं मे से सरदार शेरसिंह और नाहरसिंह ने रात के समय इस अतुल सेना मे जब कि वह निश्चिंत सो रही थी। घुसकर खलबली मचा दी और फिर साफ निकल कर अपने किले मे आ गये। हड़बड़ाहट मे पहाड़ी लोग और तुरक आपस मे ही एक दूसरे को दुश्मन समझकर मारने लगे और इस मारकाट मे मुगल सेनापति दिलगीरखाँ मारा गया।

रात्रि मे होने वाले इस नुकसान को देखकर सरहिन्द के नवाब ने राजा अजमेरचंद और भूपचंद को बहुत डांटा। जिसका प्रभाव यह हुआ कि पर्वतीय और तुरकों ने आज पूरे जोरों से आनंदपुर पर धावा किया। गुरु जी बुर्ज पर से शाही सेनाओं के दलों को देख रहे थे। जब सेनाये काफी नजदीक आ गई तो गुरु जी ने तोपों मे बत्ती लगवादी। तोपे एक साथ धुआँ उगलने लगीं। इससे शाही सेना की अपार क्षति हुई। लाचार मुगल सैनिकों को भी अपने तोपखाने के पीछे जाना पड़ा।

इस प्रकार का युद्ध कई दिन रहा। तोपो के धुओं से आकाश भर जाता था। चारों ओर अंधेरा छा जाता था। ऐसे समय साहबजादे अजीतसिंह जी ने अपने छटे हुए सिहों को साथ लेकर मुगल सेना के पीछे से धावा मारा। तोपखाना पहले से ही मुगलों ने आगे कर लिया था। पीछे से आक्रमण हुआ। एक दम मुगल सेनाये घबरा गई और मैदान छोड़कर भाग गई। हजारों आदमी खेत रह गये।

कहा जाता है सरहिन्द और लाहौर के नवाबों ने बादशाह को लिख भेजा कि गुरु के साथी बड़े कट्टर और जान पर खेलने वाले हैं, हमारी सेनाये उन्हे परास्त नहीं कर सकतीं। वे तो लड़ाई मे मरने के ही उद्देश्य से शामिल हुए है। कोई वेतन भोगी तो है नहीं। "साधना या मौत" उनका यही उद्देश्य है। इसलिये उनका जैसा उत्साह हमारी सेना मे नहीं है।

हाँ आप अपार सेना समूह भेजे तो मुमकिन है कि इन लोगों को परास्त किया जा सके। इनके परास्त करने के मानी भगाने के नहीं है। ये भागे तो कभी नहीं। हाँ, दम रहने तक लड़ते हैं।

औरंगजेब का कोई जवाब आ नहीं पाया था कि पंजाब के समस्त मुस्लिम हाकिम और पर्वतदेश के हिन्दू राजा सयुक्त बल के साथ सवत् १७६१ वि० के चैत मास मे आनंदपुर पर फिर चढ़ आये। और आनदपुर को उसी भाति घेर लिया। जिस भाति कि जल को काई घेर लेती है।

भीषण युद्ध

जिस समय संयुक्तदलने आनदपुरको घेरा, लड़ाई शुरू होगई। दुश्मनों ने तोपोंके मुँह आनन्दपुर की ओर कर दिये। सिखों ने भी तोपों का मोरचा लगाया।[1] और बड़ी बुद्धिमानी से ऐसी गोलदाजी

१. उस समय तोपो का कोई अच्छा विकास नहीं हुआ था।

की जिससे शाही तोपखाने का काम निकम्मा साबित हो गया और उसे पीछे हटाना पड़ा।

तीरंदाजी में गुरु जी और उनके साथी बहुत ही सिद्धहस्त थे। इसलिये मीलों तक वे किले पर से तीर फेंकते थे। इस तरह हजारों ही मनुष्यों का नित खातमा करते किन्तु तुरक सेना लाखों की सख्या में थी। लड़ाई चलते २ दो सप्ताह हो गये। अब तुरक सेना ने भी लडने की अपेक्षा घेरा डाले रहना ही अधिक उपयोगी समझा और बाहर का प्रबन्ध इतना जबर्दस्त किया कि परिन्दा भी आनन्दपुर से न बाहर जा सके और न बाहर से भीतर ही आ सके। इसका फल यह हुआ कि सिख लोग किले में रसद के खतम हो जाने के कारण भूखों मरने लगे। इसलिये उन्होंने गुरु जी से कहा कि हमें इजाजत दीजिये कि हम एक साथ हमला करें और वश चल जाय तो बाहर निकल जॉय और शक्ति सग्रह करके फिर धावा करें। किन्तु गुरु जी चाहते थे कि कुछ समय धीरज धरे। इस तरह की जल्दी ठीक नहीं। दूसरी ओर जब शाही फौजी अफसरों और राजाओं ने गुरु जी को युद्ध में परास्त कर सकना मुमकिन न देखा तो उन्होंने चालाकी और धोखे से काम लेना चाहा, उन्हे बादशाह औरङ्गजेब का डर दिल ही दिल में खा रहा था। और वे डरते थे कि यदि इस समय भी गुरु जी के विरुद्ध सफलता प्राप्त न कर सके तो बादशाह के कोप का मुकाबिला करना मुश्किल हो जायगा और विपत्ति का मुँह देखना पडेगा। इसलिये उन्होंने गुरु जी को कुरान और गौ की सौगन्ध खाकर यह यह सन्देश भेजा कि यदि गुरु जी आनन्दपुर को छोड़कर कुछ दिनों के लिये और स्थान पर चले जावे तो शाही सेना और पहाड़ी राजे अपनी २ सेनायें लेकर चुपके से लौट जावेंगे और इस तरह वह बादशाह के सामने भी सुर्खरू हो सकेंगे। साथ ही उन्होंने यह भी विश्वास दिलाया कि गुरु जी के आनन्दपुर से निकलने पर वह किसी किस्म का उनको और उनकी सेना को कष्ट नहीं पहुँचायेंगे।

सिखों ने गुरुजी से कहा यह मौका अच्छा है। किन्तु वे स्पष्ट देख रहे थे कि दुश्मनों के दिल में दगा है। इसलिये उन्होंने अपने सिखों को धैर्य रखने के लिये कहा, परन्तु किसी ओरसे खाने पीनेका सामान न पहुँचने के कारण आनन्दपुर के अन्दर भूख से कष्ट बढ़ रहा था। जिससे एक प्रकार की घबराहट सी हो गई और कुछ कच्चे दिल वाले आदमियों ने गुरु जी से प्रार्थना की कि जब ये लोग कुरान और गौ की कसमें खा रहे हैं तो इन पर विश्वास कर ही लेना चाहिये। गुरु जी के धैर्य देने पर भी जब कई एक ने जिद की तो उन्होंने कहा, मैं इसको स्वीकार करने के विरुद्ध हूँ, परन्तु जो इस समय मेरी आज्ञा का उलंघन करके चला जाना चाहते हैं, वे मुझे एक पत्र पर यह लिख दे जॉय कि वे मेरे सिख नहीं। कहते हैं कि इस समय चालीस के करीब आदमियों ने इस प्रकार का बेदावा लिखा और आनन्दपुर को छोड़ गये।

कुछ समय घेरा और पड़ा रहा। सिखों ने कष्ट बढ़ता देखकर आपसे फिर कहा इस पर उन्होंने आनन्दपुर को छोड़ने का इरादा कर लिया।

आधी रात गुजर जाने के बाद गुरु जी अपने परिवार और साथियों सहित किले से निकले। बीच में स्त्रियॉ थी, गुरु जी ने एक व्यूह बना लिया। जिसके आगे के रक्षक आप और पीछे के साहबजादे अजीतसिंह जी थे। दाये बांये भाई मनीसिंह और उदयसिंह जी थे। तुरक और राजपूत सेना ने गुरु जी के किले से निकलने की खबर सुनते ही अपनी तमाम कसमों और वायदों को तत्क्षण ही भुला दिया और धावा बोल दिया। साहब अजीतसिंह पीछे से बैरी दल को रोकते हुये शनैः शनैः पीछे की ओर अपने आदमियों को बढ़ाते रहे। इस प्रकार शत्रु का मुकाबिला करते हुये और पीछे को हटते हुये सरसा नदी तक अपने साथियों को ले पहुँचे। उस समय सरसा नदी बड़े जोरों पर थी। दूसरी ओर

तख़त केसगढ़ साहिब आनन्दपुर
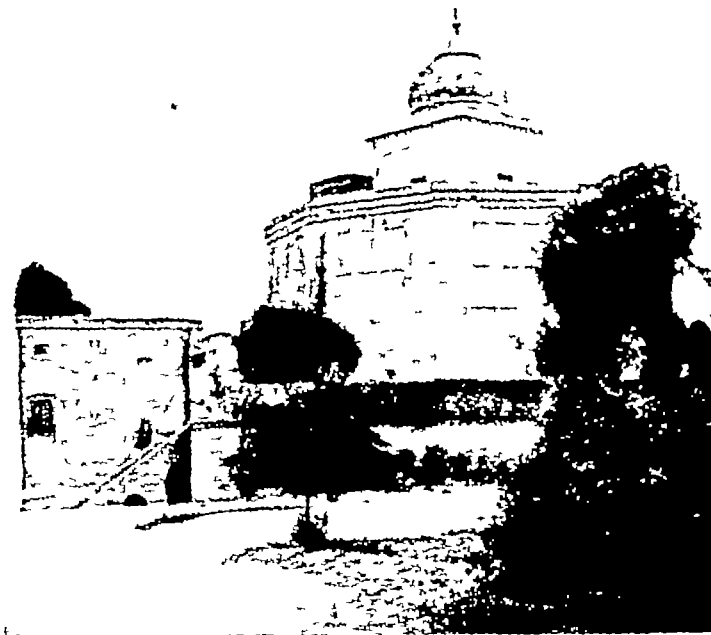
दमदमा साहिब साबो की तलवंडी

शत्रुगण गुरु जी और उनके साथियों को पकड़ने के लिये हल्ले पर हल्ला बोल रहे थे, नदी के दूसरे किनारे पर रोपड़ आदि ग्रामों के मुसलमान राजपूत और राघड़ गुरु जी को घेरने के लिये मौजूद थे। इस गड़बड़ की हालत मे गुरु जी ने अपनी धर्म पत्नियो को भाई मनीसिंह जी के साथ देहली की ओर चले जाने की आज्ञा कर दी। और जब सरसा के पार उतरे तो दोनों ओर से हो रहे शत्रु के हल्लों के कारण सब एक स्थान पर इकट्ठे न रह सके। गुरु जी कुछ सिखों और दो बड़े साहबजादों के साथ एक ओर को पड़ गये और गुरु जी की माता और छोटे साहबजादे उनसे अलग हो गये। किनके साथ क्या बीती यह हृदय द्रावक वर्णन आगे के पृष्ठों मे दिया जायगा। यह घटना सम्वत १७६१ वि० की है। मय साथियों के गुरु जी उसी दिशा मे चमकौर नाम के एक ग्राम मे पहुँचे। जहाँ के एक जागीरदार ने आपको अपनी हवेली मे रहने के लिये स्थान दिया।

चमकौर युद्ध

चमकौर का युद्ध संसार के युद्धों मे एक विचित्र युद्ध है। शाही सेना और इर्दगिर्द के ग्रामीण जिनका कोई पार नहीं और जो गुरु जी के पीछे पड़े आ रहे थे ने लाखों की तादाद मे एक छोटे से गाँव को घेर लिया, और उधर गुरु जी के साथ केवल चालीस सिख थे। किन्तु कोई घबराहट नहीं, कोई चिन्ता नहीं। सभी हथेली पर सिर लिये तैयार खड़े हैं। गुरु जी ने ८ सिखों को हवेली के पार्श्व की रक्षा के लिये नियत किया जिससे कोई ऊपर न चढ़ आये। भाई कोठासिंह और मदनसिंह को दरवाजे और आत्मासिह और मानसिंह को पहरे पर। गुरु जी स्वयम दोनों साहबजादों और भाई दयासिंह और संतसिंह समेत हवेली पर से तीर बरसाने लगे।

मुगलों का एक दस्ता हवेली पर हल्ला करने के लिये बढ़ा, किन्तु हवेली पर से वह सनसनाते तीर आये कि बीच मे ही मुगल सन के पौने से बिछ गये। दूसरा आया, तीसरा आया, और फिर दिन भर यही हालत लाश पर लाश पड़ गईं।

जब कि दोपहर ढलने को था, मुगल नायकों ने मीटिंग की और तय किया कि अब की बार चुने हुए शूरमाओं का दस्ता हवेली पर आक्रमण करे इसलिये खिजाखाँ, गुलेरखाँ और नाहरखाँ आदि वीर आगे बढ़े। नाहरखाँ जो पौड़ी लगाकर हवेली पर चढ़ जाना चाहता था। उसके माथे मे गुरु जी ने हवेली पर से ऐसा तीर मारा कि वहीं छटपटा कर प्राण दे बैठा। यही गति उसके अनुयायी गैरतखाँ की हुई। ख्वाजा मरहूद दीवार की आड़ मे छिप गया।

गाकि बाहर हजारों लाशे मुगलों की पड़ी थीं किन्तु सिख भी पूरे चालीस ही बचे रहे हों सो बात नहीं, अब तो उनमे से भी केवल बीस ही बाकी रह गये थे। सिख हवेली पर से ही वार करते थे। यह बात नहीं है वे चार चार और पाच पाच के दल बनाकर नीचे उतरते और शत्रुओं के गोल पर इस प्रकार झपटते, जिस प्रकार बाज चिड़ियों पर झपटता है। अकेले भाई मुहकमसिंह ने हजारों मुगलों को धराशायी कर दिया था, यही हालत प्रत्येक योद्धा करता था। जिस समय हवेली मे से वाहि गुरु जी की फतह कहकर और चमचमाती तलवार लेकर सिख मुगल सेना में तैरता था। एक हड़बड़ी सी मच जाती थी। प्रत्येक सिख के ऊपर तीर बर्छे और तलवारों के वार होते थे, किन्तु वह वीर तब तक लड़ता था जब तक उसके शरीर की चिट्टी चिट्टी न उड़ जाती थी।

इस प्रकार की भयंकर और अनुपम मार काट मचाकर जब गुरुजी के बीस सिख शहीद हो गये।[1]

१. इनमे भाई कोठासिंह, मदनसिंह पहले जत्थे को लेकर बाहर गये थे। इनके पीछे खजानसिंह, दानसिंह, ध्यानसिंह

तब बड़े साहबजादे अजीतसिंह जी ने अपने पिता से नीचे उतरने की आज्ञा मांगी। गुरु जी ने अपने पुत्र को अपने ही हाथों से अस्त्र शस्त्र से उसी प्रकार सज्जित किया जैसे कोई पिता ब्याह के अवसर पर अपने पुत्र को सजाता है। इस पर अजीतसिंह जी ने कहा मेरा नाम अजीतसिंह है। आपकी कृपा से किसी से जीता न जाऊँगा और यदि जीता गया तो फिर लौट जीता न आऊँगा।

पांच सिखों आलमसिंह, जवाहरसिंह, ध्यानसिंह, सुक्खपालसिंह, और वीरसिंह के साथ अजीतसिंह जी हवेली के बाहर आये। और वहीं से आते ही मेघों की घटा मे जैसे बिजली चमकती है उसी प्रकार सनसनाते तीरों से शत्रुओं पर उन्होंने वार किया। फिर तीरों के निपटने पर और शत्रु के निकट पहुँचने पर कराल काल की जिह्वा की तरह से लपलपाती हुई उनकी तलवार शत्रुओं का रक्त पीने लगी। शत्रु संभलने भी न पाता था कि उसका सिर गेंद की तरह जमीन पर दिखाई देता था। दोनों हाथों से दो तलवारें इस फुर्ती से चला रहे थे कि शत्रुओं को यह देखने का भी मौका नहीं लगता कि हम किस स्थान पर वार करें। नीले बादलों में जिस प्रकार बिजली की चमक की लहर दिखाई देती है। वही हालत अजीतसिंह जी की तलवारें कर रही थीं। देखने वालों को ऐसा मालूम होता था मानो अनेकों तलवारें घूम रही हैं। जिधर-जिधर भी उनपर मुगल दल पिल कर पड़ता उधर ही मैदान साफ हो जाता था।

भारत के इतिहास मे जो जौहर अभिमन्यु ने कौरव दल मे दिखाये थे। वही जौहर तुर्क दल में आज अजीतसिंह दिखा रहे थे। एक ही घंटे मे जब हजारों लाशें बिछ गईं तो मुगलों के चुने हुए सरदारों ने घोड़ों का व्यूह बना कर साहबजादे को घेर लिया। और एक ही साथ तीरों और बर्छों की इतनी वर्षा की जिससे अठारह वर्ष का वह बहादुर नौजवान ढँक गया। फिर भी उसने जोरों का एक अट्टहास करके नारा लगाया "वाहि गुरु जी का खालसा और वाहि गुरु जी की फतह।

हवेली के ऊपर अपने वीर भाई के जौहरों को देख कर साहबजादे जुझारसिंह जी का भी खून उबल रहा था और छाती फूल रही थी। भाई को शहीद होते देखकर वे भी तुरन्त ही बोले, गुरु मुझे भी आज्ञा दीजिए ताकि मैं भी भाई की भांति शहीद बनूं। गुरु जी ने अपने हाथों से उन्हे सजाकर सामने दिखाई देनेवाली साक्षात मृत्यु के मुकाबिले भेज दिया। बालक जुझार हवेली से खटखट उतर गया। साथ मे केवल पांच सिख, अपार शत्रु समूह मे फूल सा साहबजादा। पीठ पर तरकश कमर में तलवारें और हाथों मे धनुष। शत्रु उसे तमाशे के रूप मे देख ही रहे थे कि उनपर तीरों की वर्षा होने लगी। अनेक लोथें मिनटों मे ही बिछ गईं। मुगलों के कई दस्ते जुझारसिंह पर टूटे। झट-पट दोनों तलवारें निकाल लीं। देखते ही देखते कितनों के धड़ सिर से अलग करता हुआ वह वीर सिंह-शावक की तरह झपट्टे मारता हुआ आगे बढ़ने लगा।

अकेला जुझार और हजारों मुगल आगे बढ़े। घेरा डालकर बीच मे दे लिया और चारों ओर से पकड़ लो पकड़ लो की ललकार सुनाई देने लगी। शत्रु चाहते थे, किसी प्रकार यह बालक जिन्दा उनके हाथ पड जाय परन्तु शहादत के लिये मैदान में आया जुझारसिंह हर तरफ लपक-लपक कर पडता था। जिससे शत्रु का बहुत नुकसान होने लगा। यह देख चारों ओर से एक साथ बर्छे, तीर, तलवारों की उन पर

और मुहनसिंह थे। दूसरे जत्थे में जिसका कि नायकत्व हिम्मतसिंह करते थे। ईश्वरसिंह और देवसिंह आदि थे। मुहरसिंह, करतारसिंह, आनन्दसिंह, लालसिंह, केसरसिंह और अमोलकसिंह के जत्थे ने मुगलों के उस हमले का सामना करते हुए शहीदी पाई थी। जो एक भारी वेग से हुआ था।

झड़ी लग गई। कंधे, मस्तक, जंघा और सीने पर खचाखच वार हुए। इधर पुत्र के तलवार और बर्छी के नीचे टुकड़े-टुकड़े हो रहे थे। उधर पिता गुरु गोविन्दसिंह हवेली पर से उसे धर्म के लिये शहीद होते देख कर वाहि गुरु का धन्यवाद कह रहे थे। पुत्रों ने रणभूमि मे खिडे माथे जान दी। इतने मे संध्या हो चुकी थी, अंधेरा होने से लड़ाई न चल सकी। मुगल नायक अगले दिन के लिये जोशीला प्रोग्राम बनाने की फिकर मे काफी रात तक जागते रहे किन्तु ठंडी-ठंडी हवा के झोंके लगने से सेना सारी सो गई। इधर सिख लोगों ने जो तादाद मे केवल पॉच ही बचे थे। गुरुजी से कहा, हम अपने लिये नहीं और आपके लिये भी नही। किन्तु अपने देश और धर्म के नाम पर प्रार्थना करते है कि इसी रात मे आप यहॉ से निकल जाये। आप जिन्दा रहे तो हमारा कुछ भी नहीं बिगड़ा है और यदि आप काम आ गये तो आपके कार्य को पूर्ण सफलता तक पहुँचाना मुश्किल हो जायेगा। भाई संतसिंह जी ने कहा महाराज मैं आपके कपड़े पहन कर यहॉ रहता हूँ। आपसे बहुत कुछ मेरे चेहरे के मिलने की वजह से तुर्क सेनापति यह जान भी न सकेंगे कि गुरु चला गया।

चूँकि यह सर्व सम्मत प्रार्थना थी। इसलिये गुरु जी मान गये और भाई दयासिंह, धर्मसिंह और मानसिंह के साथ हवेली के पिछले भाग से उतर कर निकल गये। 'जाको राखे साइयां बाल न बाका होइ' के अनुसार किसी ने उन्हे टोका भी नहीं। किन्तु चूँकि गुरु जी इस प्रकार चुपके से निकल जाना मुनासिब नहीं समझते थे। अत: लश्कर के उस पार जाकर गुरु जी के साथियों ने ही आवाज लगाई कि सिखों का गुरु निकला जा रहा है। इस आवाज को सुनकर मुगल सेना मे खलबली मच गई किन्तु गुरु जी सहज ही वहॉ से निकल गये। इधर हवेली में जो भाई संगतसिंह और संतसिंह नाम के सिख बाकी रह गये थे। उन्होंने धौंसा बजा दिया, इससे मुगल सेना मे हल्ला मच गया कि बाहर से सिख दल आ गये है। फौजों मे जब हड़बड़ी मचती है तो रात मे वह आपस मे ही लड़ मरती है। कमबख्ती के मारे मुगल सैनिक भी आपस मे ही लडने लगे। जरा प्रकाश होने पर पता चला कि अपने आदमी आपस ही मे लड़ मरे हैं। कुछ ही दिन चढे, मुगलों ने हवेली पर फिर धावा किया। बाकी के दोनों खालसे कटारें लेकर बाहर निकल पड़े और मुगलों के छक्के छुडा कर शहीद हो गये। इनमे भाई संतसिंह को देखकर मुगलों को यह समझ कर बडी खुशी हुई कि हम अपने उद्योग में सफल हुए उनका सिर काटकर चाव से वे अपनी छावनी मे भी ले गये किन्तु जब पहाडी राजाओं ने यह कहा कि यह तो कोई दूसरा सिख है तो बड़े निराश हुए और कुछ सैनिक इधर उधर दौड़ाये। लेकिन गुरु जी का कुछ भी पता नहीं चला कि कहा चले गये। निराश होकर मुगल अफसरों ने सेना को वहा से आगे बढ़ने की इजाजत दी।

कहते है चमकौर में एक बहादुर जाट की नौ जवान लड़की बीबी सरनकौर थी। उसने समस्त सिखों की लाशों को रात मे इकट्ठा करके और उन्हे एक चिता मे रख कर आग लगा दी। आग का प्रकाश देख कर मुगल सैनिकों ने वहॉ आकर देखा तो उस लड़की पर इतने क्रोधित हुए कि दुष्टों ने उसे भालों की नोकों पर उठा कर जलती आग मे पटक दिया।

उधर चमकौर की हवेली से निकल कर जब गुरु जी फौजों को पार कर चुके थे और जब पीछे से कुछ मुगलो ने हल्ला किया था उस समय उनके तीनों साथी भी पिछड़ गये। चमकौर से निकलते समय जूते भी भूल आये थे। नंगे ही पैरों मीलों उन्हे चलना पड़ रहा था।

यह हम पहले लिख चुके हैं कि आनन्दपुर से निकलने के बाद गुरु जी का सारा परिवार तितर-बितर हो गया था। माता गूजरी को उनका ब्राह्मण रसोइया अपने गाव सहेड़ी मे ले गया। गुरु जी

के दो छोटे पुत्र जोरावरसिंह और फतेहसिंह जी भी माता जी के ही साथ थे।

महान बलिदान

कभी कभी ऐसा होता है कि जिन लोगों के साथ हम काफी उपकार करते हैं स्वार्थवश वही हमारे प्राणों के गाहक हो जाते हैं। यही बात गंगाराम रसोइये ने भी की। उसने देखा माता जी के पास जवाहरात की एक पोटली है। झट रात के समय गायब कर दी और चोर चोर चिल्लाने लगा। चोर इस समय कहां से आये बताओ? पहिले कहीं रख कर भूल तो नहीं गये। परन्तु उसकी नीयत ही खराब थी इस पर नाराज होकर कहने लगा मैंने ही तो आपको अपने घर शरण दी और मुझी पर यह इल्जाम लगाती हो, माता जी उसके बदले हुए रुख को ताड गई, इसलिये उन्होंने कहा, भाई गगू मैंने तुम से यह सहज ही कहा था।

यह भी एक स्वत. सिद्ध नियम है कि मनुष्य को एक पाप को छिपाने के लिये अनेक पाप करने पड़ते हैं। दुष्ट गगू ने सोचा अब मेरी इन लोगों से बिगड़ तो गई है, इससे क्यों न ऐसा करूं कि सरहिन्द के नवाब के पास जाकर इनके अपने यहा ठहरने की इतला कर दूं ताकि एक तरफ तो यह कांटे मेरी राह से निकल जायगे दूसरी ओर इनके पकड़वाने की एवज में इनाम भी मिलेगा।

हृदयहीन गगू ने अपने गांव के नजदीक मोरडा मे जाकर पठानों को इतला कर दी कि गोविन्द-सिंह की मा मय अपने दो पोतों के भाग कर मेरे यहाँ चली आई हैं।

मोरडा के हाकिम जानीखा और मानीखा दोनों साहबजादों को माता जी समेत पकड़ कर सरहिन्द ले गये और कड़ाकेदार शीत के दिनों मे ठंडे बुरज में उन्हे कैद कर दिया।

माता गूजरी ने वीर सिंहनी का हृदय पाया था। उन्होंने अपनी उमर मे बड़े उतार चढाव देखे थे। अपने पति (श्री तेगबहादुर जी) के कत्ल का दुख उन्होंने सहा था। अपने पुत्र गुरु गोविन्द-सिंह के भी वैभव और पराभव के दिन देखे थे। वह आपतियों से कभी घबराती न थीं किन्तु उनसे अपने नन्हे और सुकुमार पौत्रों का ठण्ड में सिसकना न सहा गया, आँखों से आसु टपक पडे किन्तु कड़ा हृदय कर के दोनों बच्चों को चादर ओढ़ा कर अपने आगे बिठा लिया। और परम पिता परमात्मा से इस सकट को दूर कर देने की रात भर प्रार्थना करती रहीं।

सुबह होते ही एक पठान आया और उसने माता जी से कहा, माई इन बच्चों को मेरे साथ भेज दो दरबार मे नवाब साहब याद करते हैं। माता जी सब हाल समझ गई। उनका दिल उमड आया किन्तु आसुओं को रोकते हुए उन्होंने दोनों बच्चों को छाती से लगाया, चूमा और सिर पर हाथ फेर कर कहा, मेरे बेटे जाओ, वाहि गुरु की मरजी को पूरा करो, देखो कहीं धर्म को लाज न लग जाय।

दोनों भोले भाले बच्चे जिनकी उम्र केवल ६ और ६ वर्ष की थी। दरबार की ओर चल दिये। वजीरखां दरबार मे बैठा था। और भी अनेकों हिन्दू मुसलमान बैठे थे। बच्चों के अपूर्व कान्तिमान चेहरों को देखकर सब सहम गये। जिनके हृदय में तनक भी इन्सानियत थी उनका हृदय भीतर ही भीतर रोने लगा। किन्तु वे बच्चे दोनों—राम लक्ष्मण की जोड़ी—शात औरचुप चाप खड़े थे। दीवान सुच्चानन्द ने जो एक खत्री ही था कहा, बच्चो ये सामने नवाब साहब बैठे हैं, इन्हें सलाम करो।

जोरावरसिंह ने कहा, गुरु घराना केवल अकाल पुरुष के सामने सिर झुकाता है। इस उत्तर से वजीरखां मन मे बड़ा नाराज हुआ, कहने लगा गुरु गोविन्दसिंह तो लडाई में काम आ गये। तुम्हारा अब कोई वारिस नहीं है, अतः तुम मुसलमान हो जाओ मुसलमान होने पर तुम्हे सब प्रकार के सुख मिलेगे। नवाब कहता रहा किन्तु बच्चे कुछ न बोले। उसने फिर कहना आरम्भ किया, यदि तुम

मुसलमान वनना स्वीकार नहीं करोगे तो नाहक तुम्हारी जान जायगी। संसार मे जो वहुत सारे सुख हैं, तुम कुछ भी न भोग सकोगे। वच्चे फिर भी चुप रहे। नवाव ने फिर पूछा वोलो तुम्हे मुसलमान वनना मंजूर है।

जोरावरसिंह ने जवाव दिया। हमे अपने धर्म से प्रेम करना जन्मघुट्टी के साथ पिलाया गया है। धर्म के ऊपर हमारे दादा ने सर कटाया। धर्म की खातिर हमारे पिता तमाम कष्ट झेल रहे हैं। जुल्म और अन्याय से डर कर हम अपने धर्म को हर्गिज नहीं छोड़ सकते है। सारा दरवार एक छोटे से वच्चे के मुँह से इस प्रकार की निर्भयता पूर्ण वाते सुनकर स्तंभित रह गया। वजीरखां ने उन्हे फिर ठण्डे वुर्ज भेज दिया क्योंकि उसका खयाल था। डराने धमकाने और कष्ट देने और फुसलाने मेरी वात को कवूल कर लेगे किन्तु दूसरे दिन जव उन्हे पुन दरवारमे वुलाकर पूछा गया तो वही जवाव मिला।

शेर मुहम्मदखॉ मालेर कोटले के सरदार की ओर मुखातिव होकर नवाव ने कहा, खान साहव आपके पिता को इन लड़कों के पिता ने लड़ाई मे मारा था और चमकौर मे तुम्हारा भाई नाहरखॉ भी मार दिया है। अव इनसे सम्वन्धियोंका वदला लेना चाहो तो ले लो। मुहम्मदखॉ वोला, मेरे वाप और भाई गोविन्दसिंह के हाथ मरे है। मैं उनका वदला गुरु गोविन्दसिंह से लड़ाई मे लूँगा। वाप के कर्तव्यों का वदला उनके दुध मुँह वच्चो से नहीं लेना चाहता यह वात इस्लाम धर्म के भी विरुद्ध है। अत. मै यह काम नहीं कर सकता। यह कह कर शेर मुहम्मदखॉ ने ठंडा सॉस और एक गहरी आह भरी। साथ ही मासूम वच्चों पर होरहे इस अत्याचार को न देखता हुआ दरवार से उठ गया। यह देख सुनकर वजीरखाँ का दिल कुछ नर्म होने लगा। किन्तु इसी समय दीवान सुच्चानंद ने जो पास ही वैठा था कहा, "अफईरा कुस्तन वा वच्चाश रा निगाह दास्तन् कारे खिरद मन्दानीस्त।" चिरा के अकवत गुर्ग-जादा गुर्ग शवद अर्थात्—सॉप को मारना और उसके वच्चों को पालना वुद्धिमानों का काम नहीं क्योंकि अन्त भेड़िये के वच्चे भेड़िये ही होते है। यह वात सुनकर वजीरखॉ गुस्से से लाल पीला हो गया और उसने आज्ञा दी कि इन वच्चो को जिन्दा चिनवा दिया जाय। उसी समय ईटें और गारा मंगवा लिया गया और सामने के सहन मे वच्चों को खड़ा करके उनके इर्दगिर्द मीनार चुनना आरम्भ करा दिया। ज्यों २ रद्देया रदा चढ़ाता उन्हे फिर २ कर इस्लाम कवूल करने को कहा जाता परन्तु उनकी तरफ से केवल एक ही उत्तर मिलता। हम किसी भी हालत मे धर्म को त्याग नहीं सकते जव चढ़ता जा रहा यह मीनार गर्दनों तक पहुँचा तो साहव जादे जरा वेहोश से हो गये। और दैवात् तव ही वह मीनार धड़धड़ाता हुआ फट पड़ा और वेहोश साहवजादे जमीनपर गिर गये। उस समय तमाम उपस्थित आदमी कांप उठे। वजीरखॉ की आज्ञा से वच्चों को उठाकर फिर ठंडे वुर्ज मे भेज दिया गया। जहॉ उन्हे मिठाई और दूध आदि देकर होश मे लाया गया[१]।

वजीरखॉ ने दूसरे दिन उन पर कुछ आदमियो को इस खयाल से नियत किया कि शायद इस प्रकार के डराने धमकाने से वह उनकी वात मान जांय किन्तु वे अपने धर्म पर अटल थे और कोई भी दहशत और लालच उन्हे सिख धर्म से न डिगा सका। एक इतिहासकार ने लिखा है कि साहवजादों को कष्टों से डराकर इस्लाम कवूल करने के वास्ते मनाने के लिये उनकी अंगुलियों मे पलीते रखकर आग लगादी गई।

१. यह मत डाक्टर गंडासिंह का है आम धारणा यह है कि वच्चे दीवारो में चुन दिये गये।

अन्त में १३ पौष का खूनी दिवस आगया इस दिन बच्चों को दरबार में बुलाकर और बातों के साथ वजीरखाँ ने पूछा बच्चो तुम्हें छोड़ दिया जाय तो तुम क्या करोगे ? जारावरसिंह ने जवाब दिया कि हम खालसा की फौजे एकत्रित करके तुम्हारे साथ लड़ेंगे। तुम्हें मारेंगे या खुद मर जायेंगे। वजीरखाँ ने फिर पूछा भला यदि युद्ध हार जाओ तो फिर क्या करोगे साहबजादे ने फिर जवाब दिया। वही फौजें इकट्ठी करना, तुमसे लड़ना। यह बात सुनकर दीवान सुच्चानन्द बोल उठा हजूर मैंने तो पहले ही अर्ज की थी कि भेड़ियों के बच्चे आखिर भेड़िये ही होते हैं। अभी तो यह दूध पीते बच्चे हैं। इस तरह जवाब देते हैं। जब बड़े होंगे तो राज्य की ईंट से ईंट बजा देंगे। जल भुन तो वजीरखाँ जोरावर सिंह के उत्तरों से ही रहा था। परन्तु सुच्चानन्द के इन शब्दों ने जलती आग पर आहुति का काम किया। उसको रोष चढ़ गया और गुस्से में पुकारा, है कोई जो इन की गर्दन उड़ादे। यह सुनकर सबकी गर्दनें झुकगईं और जब किसी ओर से कोई उत्तर न मिला तो नौकरी से हटाये हुये दो जल्लादों ने अर्ज की अगर हमारे अपराध क्षमा कर दिये जाय तो हम यह कार्य करने को तैयार हैं वजीरखाँ ने यह बात कबूल करली। बस फिर क्या देर थी। जल्लादों ने उन मासूम बच्चों को जमीन पर गिराकर घुटनों के नीचे दबा लिया और बडी बेरहमी से तलवार से जिबह कर डाला।

माता गूजरी को जब यह समाचार मिले तो बुर्ज से गिर कर प्राण त्याग दिये। देहात में टोडा-मल नामक एक प्रेमी सिख था, उसने आकर तीनों की लाशे प्राप्त कीं और उनका विधि पूर्वक सत्कार करा दिया।

रात भर चलने के बाद जब गुरु जी माछीवाडे के इलाके में पहुँचे तो एक बाग में कुएं पर पानी पिया और वहीं एक ईंट का सिरहाना लगाकर सो रहे। कई दिन के थके हुए थे, दिन भर सोये। शाम को नित्य नेम करके फिर सो गये। सवेरे देखा तो बिछड़े हुए तीनों सिख भी आ रहे हैं। बाग का मालिक भी एक सिख ही था उसे पता चला तो वह सबको घर लेगया और वहाँ उसने उनका खूब सत्कार किया। यहाँ उन्हे गनीखाँ और नबीखाँ नामके दो पठान मिले जो गुरु जी से काफी परिचित थे और उन मे श्रद्धा भी रखते थे। उन्होंने खबर दी कि आपकी खोज चारों तरफ हो रही है। इसलिये अच्छा हो कि आप फकीरों का जैसा बाना पहर लें। हम आपको यहाँ से ऐसी सूरत मे अपना "उच्च का पीर" कह कर निकाल ले चलेंगे। गुरु जी ने इस बात को स्वीकार कर लिया। उस समय की प्रचलित प्रथा के अनु-सार वे पठान और गुरु जी के साथी सिख जिन्होंने कि फकीरी वेश ही बना लिया था। वहाँ से गुरु जी को पलग पर बिठाकर निकाल ले गये। जहाँ भी कोई पूछता गनीखाँ और नबीखाँ कह देते, ये उच्च के पीर हैं। किन्तु लाल नानक गाव के दिलेरखाँ ने उन्हे रोक लिया और कहा कि मैं कैसे विश्वास करूँ कि ये उच्च के पीर हैं। हां, हमारे साथ खाना खालें तो यकीन कर सकते है। साथी सिखों ने कहा पीर जी तो एक ही बार जो का दलिया खाते हैं। किन्तु हम तुम्हारे साथ जो कि उनके मुरीद है। खाना खालेंगे भला भाई भाई के साथ क्यों न खाना खायेगा ? इस पर दिलेरखाँ को भी यकीन हो गया और उन्हें चले जाने दिया। इस तरह चलते चलते जगराम नामक गाव मे पहुँचे। यहा का चौधरी राय कल्ला मुसलमान होते हुये भी गुरु जी में बडी श्रद्धा रखता था। वह उनका आना जानकर बडा प्रसन्न हुआ और गुरु जी की बडी खातिरदारी की। दोनों खान भाई हेहर गाव से ही वापिस अपने गाव को लौट गये। क्योंकि रास्ते में गुरु जी हेहर में उदासी मन कृपाल के यहा कई दिन तक ठहरे थे।

यहाँ जगराम में एक दिन गुरु जी बगीचे में बैठे हुए मन बहलाव के लिये कृपाण की नोंक से

घास के एक बूटे की जड़ खोद रहे थे। जड़ खुद ही चुकी थी कि उनको सरहिन्द में साहबजादों की शहीदी का हाल सुनाया गया। राव कल्लहा सुनते ही रो पड़ा और लोगों की आंखे भी झड़ने लगीं। गुरु जी ने नेत्र बन्द करके एक घड़ी परमात्मा का चिन्तन किया और फिर—"उस समय वहां पर जो अनेकों जन उपस्थित थे, उन्हे सम्बोधित करते हुये कहा "ईश्वर की अमानत अदा हो गई मेरे लिये वही चार पुत्र न थे किन्तु यह सब मेरे ही पुत्र है।" "इन पुत्रन के शीश पर वारि दिये सुत चार चार गये तो क्या हुआ यह जीयत कई हजार।"

जगराम से बिदा होकर गुरु जी दीनागाव मे पहुँचे। यहाँ एक सिख ने उन्हे एक बढ़िया घोड़ा भेट किया। यहाँ पर शमीरे, लखमीरे के घर गुरु जी ने अपने डेरे लगाये थे। यहीं पर उनके पास औरङ्गजेब का एक पत्र भी आया था, इसके उत्तर मे गुरु जी ने जो पत्र लिखा था वह जफरनामे के नाम से मशहूर है। यह पत्र सिख साहित्य मे बड़े महत्व की चीज समझा जाता है।

यह पत्र गुरु जी ने भाई दयासिंह और और धर्मसिंह के हाथ भेजा था। उस समय औरङ्गजेब दक्षिण मे था। यह पत्र उसे अहमदनगर मे मिला।

सरहिन्द के नवाब बजीरखाँ को किसी से पता लगा कि गुरु जी 'दीना' मे शमीरे के घर ठहरे हुए है तो, उसने शमीरा को पत्र लिखा कि गुरु को गिरफ्तार करके हमारे पास भेज दो। उसके बदले मे तुम्हारी भलाई का भी ख्याल किया जायगा किन्तु शमीरे ने लिखा हमने जिस महापुरुष को ठहरा रक्खा है वह हमारा हादी है किसी का कुछ बिगाड़ता नहीं है। हम और तुम उनकी सेवा के लिये हर प्रकार से तत्पर है। शमीरे ने तो ऐसा बहादुरी का जवाब दे दिया किन्तु गुरु जी ने उस गाँव को कोई हानि न पहुँच जाय इस इरादे से वहाँ से प्रस्थान कर दिया और एक दूसरे गाव 'डिलवा', मे पहुँचे जो जगलों मे था। इतने समय मे कुछ सिख भी गुरु जी के पास आ एकत्र हुए थे। जिनकी बढ़ती हुई तादाद की रिपोर्ट जिस समय वजीरखाँ को पहुँची तो उसने एक बडी भारी सेना गुरु जी के विरुद्ध भेज दी।

मुक्त सर की कथा

अब तक गुरु जी खिरटाने पहुँच गये थे। और वहा पर अपना डेरा लगा दिया वह स्थान अब मुक्तसर के नाम से प्रसिद्ध है। जब शाही फौजे गुरु जी को ढूँढ़ती फिर रही थीं तो इनकी मुठभेड़ माझे से वापिस आय हुये उन सिखों से हो गई जो कि गुरु जी को आनंदपुर मे बेदावा लिखकर दे गये थे। यहा इस तरह हुआ कि जब यह लोग बेदावा लिखने के बाद आनन्दपुर छोड़ कर अपने २ नगरों मे पहुँचे तो वहा उनकी मां, बहिन और स्त्रियों ने इन्हे मुँह लगाने से इनकार कर दिया तथा गुरु जी को पीठ दे आने पर बहुत शर्मिन्दा किया। यहा तक कि चभाल नगर की एक वीर सिख स्त्री माई भागो ने गुरु जी के नाम का झडा उठाकर स्वयम मैदान मे जाने की तैयारी करली। जिस पर यह लोग फिर एकत्र होकर माई भागो के साथ गुरु जी की सेवा मे पहुँचने के लिये तलाश मे निकले कि खिदराने के निकट ही शाही सेना को देख कर उन्होने इसे रोकने के लिए उस पर तीन ओर से गोलियों की वर्षा करनी शुरू कर दी। परन्तु शाही सेना का बहुत देर तक मुकाबिला करना थोडे से आदमियों के लिये संभव न था। इससे तमाम के तमाम रणभूमि मे घायल हो गिरे और अपने प्राण गुरु जी की सेवा मे लगा दिये।

जग खत्म हो जाने और शाही सेना के वहाँ से चले जाने पर जब गुरु जी घटनास्थल पर पहुँचे ता आपने सिसकते हुओं मे महासिंह जी को देखा गुरु जी ने उसके जख्मों को धोया और जब उसे कुछ होश आया तो उससे कहा तुमने अपना मुख उज्ज्वल कर लिया है। क्या इस समय

तुम्हारी कोई इच्छा है? भाई महासिंह जी ने बड़ी नम्रता से विनती की कि सतगुरु मेरी केवल एक ही इच्छा है और वह यह कि आप हमारा लिखा हुआ बेदावा फाड़ दें। गुरुजी इस मांग पर बहुत प्रसन्न हुए और उन्होंने वह पत्र अपनी जेब से निकाल कर उसकी इच्छा को पूर्ण करने के लिये टुकड़े २ कर दिया।

मुक्तसर से चलकर देहातों में प्रचार व उपदेश करते हुये गुरु जी लक्खी जंगल में पहुँचे। जंगल में पहुंचने से पहिले वैराडों के गांव छतियाना में उन्हें उपदेश दिया। वे लोग गुरु जी को देखकर बड़े खुश हुए। गुरु जी के निवास करने से लक्खी जंगल में मंगल होने लग गया। उनके पास शिष्यों और प्रेमियों के दल आने लगे। कथा कीर्तन होने लग गया।

लक्खी जंगल में

इस जंगल में सैयद इब्राहीम नाम का एक मुसलमान फकीर रहता था। जब उसने सुना कि इसी जंगल में गोविन्दसिंह जी भी ठहर रहे हैं तो, वह गुरुजी की सेवा में हाजिर हुआ और कई दिन तक ज्ञान चर्चा करता रहा। अंत में उसके दिल पर ऐसा असर पड़ा कि वह सिख धर्म में दीक्षित हो गया, और सैयद इब्राहीम की जगह बाबा अजमेरासिंह कहलाने लगा।

लक्खी जंगल को पार करने के बाद गुरु जी ने साबों की तलवंडी में जो कि एक गहन जंगल से घिरा हुआ गाँव था डेरे डाले।[1] इस स्थान से गुरु जी बड़े प्रसन्न हुए और उसे आनंदपुर के दमदमे से मिसाल दी बस तभी से वह स्थान दमदमा के नाम से मशहूर हो गया।

तलवंडी में डल्ला नाम का जाट जमींदार था एक प्रकार से वह २०-२० कोस तक राजा था। उसके यहां भी हथियार बन्दों का बड़ा गिरोह रहता था। वह गुरु जी की सेवा में बराबर आता रहता था। कभी २ वह यह भी कहता महाराज हमें जंग के समय याद करते तो मैं भी अपने आदमियों को लेकर कुछ सेवा करता। गुरु जी ने कहा अच्छा डल्ला, आगे समय आने पर देखा जायगा।

एक दिन की बात है कि गुरु जी के पास एक सिख बन्दूक लेकर आया। उन्होंने उस बन्दूक को भर कर कहा, डल्ला तुम अपने किसी आदमी को कहो कि वह मरने के लिये सामने खड़ा हो। जब उसका कोई भी आदमी तैयार होता नजर न आया तो आपने कहा सिखों के पास कोई आदमी भेजो जो उन्हें निशाना बनने को बुला लाये। नजदीक ही सामने दो सिख खड़े पगड़ियाँ बांध रहे थे। जब उन्होंने गुरु जी की इच्छा को सुना तो वह उसी तरह आधी पगड़ियां लटकाये गुरु जी की ओर भागे और हरेक यह कहने लगा कि पहले मैं मरूंगा। मुझ पर निशाना अजमाइये। यह देखकर डल्ला चकित रह गया।

यहाँ गुरु जी ने गुरु ग्रन्थ साहब में गुरु तेगबहादुर जी की वाणियों को जोड़ देने के इरादे से धीरमल जी करतारपुर से ग्रन्थ साहब को लाने के लिये आदमी भेजा। किन्तु धीरमल नट गया और कहला भेजा. वह तो स्वयं महान गुरु हैं। अपने आप ही बिना देखे-क्यों नहीं ग्रन्थ साहब तैयार कर लेते।

जिस प्रकार गुरु अर्जुन देव जी ने भाई गुरुदास जी को बोल २ कर ग्रन्थ साहब लिखाया था उसी प्रकार आपने एक सुन्दर खेमे के अन्दर बैठकर भाई मनीसिंह जी को सम्पूर्ण ग्रन्थ साहब लिखा दिये। यह ग्रन्थ साहब दमदमा वाली बीड़ कहलाते हैं।

चूंकि जफरनामा लेकर देहली गये अब तक भाई दयासिंह जी को बहुत लंबा समय बीत चुका था। न तो भाई दयासिंह ही वापिस आये थे और न औरङ्गजेब की ओर से उनके जफरनामे का कोई उत्तर आया था। यह भी पता न चल सका था कि आया भाई दयासिंह औरङ्गजेब तक पहुँच भी सके हैं

१ यह गाँव पटियाला राज्य में भटिंडा से पूर्वोत्तर ११ मील के फासले पर है।

या नहीं। इस समय औरङ्गजेब बीमारी मे भी ग्रस्त था। इसलिये गुरु जी ने दक्षिण जाकर बादशाह से भेट करने का इरादा किया और उधर की ओर चल पड़े। अभी आप राजपूताने मे बघोर के स्थान पर ही पहुँचे थे कि आपको दक्षिण मे बादशाह औरङ्गजेब के मरने के समाचार मिल गया। चूंकि दक्षिण जाने मे और तो कोई आपका मतलब था नहीं इसलिये आप वहीं से पंजाब की ओर लौट पड़े। शाहजहांनाबाद के नजदीक आये थे कि औरङ्गजेब के बड़े पुत्र शाहजादा मुअज्जम की ओर से भाई नंदलाल जी पैगाम लेकर पहुँचे।

इस समय उसके छोटे भाई आजम ने दक्षिण मे खुद बादशाह बनने की घोषणा कर दी थी। और वह बादशाही तख्त को संभालने के लिये राजधानी की ओर बढ़ रहा था। मुअज्जम उसके मुकाबिले की तैयारी कर रहा था और युद्ध मे सहायता के लिये गुरु जी से, उसने याचना की थी। गुरु गोविन्दसिह जाती दुश्मनियों से बहुत ऊँचे पहुचे हुए थे। हालाकि औरङ्गजेब ही दादा गुरु अर्जुन देव के प्राणों का गाहक हुआ था। उसके शाहजहादे की फौजों ने गुरु हरिगोविन्द जी को कष्ट देने के काफी यत्न किये थे। स्वयम औरङ्गजेब ने गुरु गोविदसिंह जी के पिता को शहीद किया था। उसके हुक्म से सरहिंद आदि सूबों और पहाड़ी राजाओं ने गुरु गोविदसिह पर आक्रमण किये थे। उसके एक सूबेदार ने गुरु गोविंद सिंह के बच्चों को जिबह करवा डाला था परन्तु अब जबकि उसका पुत्र अपने हक की रक्षा के लिये सहायता चाहता है तो गुरु गोविन्दसिंह ने अपने पास कोई बड़ी सेना न होते हुये भी उसके पिता पितामह की पुरानी सब बातों को भुलाकर हकदार का हक दिलाने के लिये सहायता करना स्वीकार कर लिया और अपने कुछ आदमी जाजऊ की रण भूमि मे उसकी सहायता के लिये भेज दिये। इस युद्ध मे आजम मारा गया और मुअज्जम को विजय प्राप्त हुई।

इस युद्ध के बाद मुअज्जम बहादुरशाह के लकब से बादशाह बनकर आगरे को चला गया।

जौलाई सन १७०७ ई० के अंत मे गुरु गोविन्दसिंह जबकि आगरे के नजदीक विचर रहे थे शाही खान्दान से भेट हुई। बहादुरशाह ने गुरुजी को दर्शन देने के लिये आमंत्रित किया ४ जमादी-उल अव्वल १११८ हिजरी २ अगस्त सन १७०७ को गुरु गोविन्दसिंह बादशाह से मिले उस समय उसने गुरुजी की सेवा मे एक जडाऊ दुहट्टा एक थुक थुकी एक जिगा जिन का मूल्य साठ हजार रुपया था अपनी कृतज्ञता प्रकट करने के लिये भेट किये। प्रथम कार्तिक १७६४ विक्रमी को गुरु गोविन्दसिंह जी के धौलकी सिख संगत के नाम लिखे गये पत्र से प्रतीत होता है कि वह कार्य्य जो कि गुरुजी को पंजाब से इस तरफ लाये थे। उनके पूरे होने के आसार दिखाई न दे रहे थे और गुरु जी शीघ्र ही पंजाब को लौटने की आशा रखते थे। साथ ही इस पत्र मे उन्होंने यह भी लिखा था कि जब वह कहलूर पहुँचे तो सर्वत्र खालसा हथियार बाध कर उनके पास पहुँचे।

इस पत्र के होते हुए उन इतिहासकारों की कल्पनाये स्वत कट जाती हैं जिन्होंने यह लिखा है कि गुरुजी पंजाब के सिखों से निराश होकर दक्षिण की ओर आये थे ताकि यहाँ राजपूतों और मराठों को अपने साथ मिलाकर अपने मिशन की सफलता के लिये यत्न करे। हमने ऊपर देखा है कि जिस समय औरगजेब की मृत्यु हुई तो उस समय आप राजपूताने के मध्य मे मौजूद थे इस समय पुराना बादशाह मर चुका था। और नया बादशाह अभी तक बना नहीं था राजगद्दी के लिये भाइयों मे लडाई की तैयारिया हो रही थीं अगर गुरु गोविन्दसिंह जी का मिशन राजपूतों व मराठों को अपने साथ मिलाकर कुछ करने का था तो इससे अच्छा मौका उन्हे और कौनसा मिलता परन्तु राजपूताने के देश मे विचरते हुये

भी वे किसी राजपूत नरेश से मिलते दिखाई नहीं देते और ज्योंही बादशाह की मृत्यु की सूचना उनके पास पहुँचती है वे इस ओर अपना और कोई मन्तव्य न देखते हुए वापिस पंजाब की ओर लौट पड़ते हैं।

प्रतीत होता है कि वह कार्य्य जो कि देश मे अमन कायम करने के यत्नों के सिवा—बादशाह के साथ—और कुछ नहीं हो सकता सिरे नहीं चढ़ा था और आपके पजाब की ओर लौटने का समय नहीं बन सका था कि बहादुरशाह को जयपुर की ओर बढ़ना पड़ा। जिसका कारण यह था कि बादशाह का खजाना खाली हो चुकने के कारण वह अपने उन सहायकों को इनामें और जागीरें देकर प्रसन्न नहीं कर सकता था। जिन्होंने कि उसे राज्य प्राप्ति मे सहायता दी थी। इस समय खानेखान ने तजवीज की की कि जयपुर पर धावा बोलकर कछवाहों के इलाके को जप्त कर लिया जाय। इस तरह से एक तो वह कछवाहों के काटे को सदैव के लिये राज्य की कुर्सी से निकाल सकेगा और दूसरे अपने सहायकों को उस इलाके को जागीरों के तौर पर बांट कर सतुष्ट कर सकेगा। परन्तु बादशाह जयपुर में जाकर इस कार्य्य को अपनी इच्छानुसार पूर्ण न कर सका था कि दक्षिण से समाचार आने लगे कि वहाँ कामबख्श ने बगावत खड़ी कर दी है। इसलिये तत्क्षण बादशाह को वहा से दक्षिण की ओर चला जाना पड़ा।

गुरु जी अपनी बातचीत के सम्बन्ध मे इस समय बादशाह के साथ २ ही आ रहे थे और इधर से दक्षिण की ओर साथ ही चल पड़े। रास्ते मे वह हर समय बादशाही कैम्प के साथ नहीं रहते थे किन्तु कई २ दिन के लिये संगतों को उपदेश करने और शिकार आदि के लिये अलग हो जाते थे और कभी फिर कैम्प के साथ आ मिलते थे। इस समय उनकी बादशाह से बातचीत कोई खास फल न ला सकी। बुरहानपुर से आगे चलकर जब बादशाह हैदराबाद की ओर जाने के लिये नदेड़ की तरफ बढ़ा तो ऐसा प्रतीत होता है कि गुरुजी को बादशाह से होती चली आ रही बातचीत के मनोइच्छित फल लाती नजर न आई, इसलिये नदेड के मुकाम पर पहुँच कर गुरु जी ने अपने कैम्प को सदा के लिये बादशाही कैम्प से अलहदा कर लिया और अपने तरीके से अपने कार्य को पूर्ण करने के लिये साधन जुटाने का आयोजन करने लगे।

जिस समय गुरुजी जयपुर राज्य में से गुजर रहे थे तो आपको नारायन के नजदीक दादू-द्वारे मे जाने का अवसर प्राप्त हुआ था। वहां के महंत जेतराम (चेतराम) ने आपका बहुत आदर सत्कार किया था और वहा से चलते समय आपको यह चेतावनी दी थी कि महाराज आप दक्षिण की ओर जा रहे हैं यदि कहीं आपको नदेड़ के स्थान पर जाना हो जाय तो आप वहां के वैरागी साधु के स्थान पर न जाय चूंकि वह नाटकी चेटकी साधु अपनी अदृष्ट शक्तियों से दूसरे साधु संतों का अपमान करके प्रसन्न होता है और इसमे अपनी बड़ाई समझता है।

अब जबकि गुरुजी नन्देड़ आ पहुँचे तो उन्हे माधवदास वैरागी का खयाल आया। वह किसी के नाटक चेटक से घबराने वाले तो थे ही नहीं। वे तो उन गुरु नानकदेव के धर्मावलम्बी और उत्तराधिकारी थे जो सज्जन जैसे ठगों और कोड़ा जैसे राक्षसों और नूरशाजी जैसी जादूगरनी आदि को सीधे रास्ते पर लाने के लिये दूर से पहुँच पड़ते थे। गुरुजी दूसरे दिन प्रात ही (दिसम्बर सन १७०८ के अंतिम सप्ताह मे) माधव वैरागी के स्थान पर पहुँचे। वह उस समय वहां पर मौजूद न था। गुरुजी उसका इन्तजार करने के लिये उसके स्थान पर (एक ही) पड़े पलंग पर विराजमान हो गये और उनके सिख लंगर

तैयार करने मे लग पड़े। जिसमे कि उन्होंने मांस के देग भी चढ़ा दिये। वैरागी के निरामिष भोजी वैष्णव चेले घबरा उठे और अपने महंत को इस अजीब मेहमान के आने की सूचना देने के लिये उठ भागे। वैरागी चेलों की बातचीत सुनकर गुस्से से लाल-पीला होगया। शायद उसने इस अभ्यागत के हाथों अपनी महंती की महत्ता मे हस्तक्षेप समझा हो या अपने वैष्णव स्थान मे मास-पकाने को अधार्मिक कृत्य, उसने अपनी अदृष्ट शक्तियों अथवा तंत्र जत्र की पूर्ण तान लगा दी, गुरुजी को पलंग से गिराने के व्यर्थ प्रयत्न मे। किन्तु गुरुजी की मन. शक्ति उससे कहीं अधिक थी इससे उसके तमाम प्रयत्न व्यर्थ रहे।

इस तरह भौंचका एवं स्तम्भित वैरागी अभ्यागत पर अपना गुस्सा निकालने और उससे बदला लेने के लिये अपने स्थान की ओर उठ दौड़ा। किन्तु जिसे वह जीतने आया था। उसके दर्शन करते ही स्वयं द्रवित हो गया। गुरु जी के सामने पहुँचा। उस समय का वार्तालाप अहमदशाह कटालिये की पुस्तक "जिकिर गुरुआं वा इब्तिदाये सिंहा व मजहबे ऐशा" मे इस प्रकार दर्ज है—

माधवदास—आप कौन है ?

गुरु गोविन्दसिंह—वह जिसे तुम जानते हो।

माधवदास—मैं क्या जानता हूँ।

गुरु गोविन्दसिंह—अपने मन मे जरा गौर से ध्यान करो।

माधवदास—(थोडा ठहर कर) तो आप गुरु गोविन्दसिंह है।

गुरु गोविन्दसिंह—'हाँ'

माधवदास—तो आप यहां किस आशा से आये है ?

गुरु गोविन्दसिंह—मैं आया हूँ तुम्हे अपने धर्म में दीक्षित करके अपना सिख बनाने के लिये।

माधव—महाराज मुझे स्वीकार है, मैं आपका बन्दा हूँ।

इस समय तक का बडा अभिमानी और अजित वैरागी माधवदास बड़ी नम्रता से गुरु जी के चरणों मे गिर पड़ा और एक भी शब्द बहस किये बगैर गुरु जी के पंथ में दीक्षित होकर गुरु जी का सेवक बनना स्वीकार कर लिया।

वास्तव मे तो वह गुरु जी के भव्य दर्शनों को करते ही वह उनका हो गया था परन्तु अब उनके चरण स्पर्श ने पारस का काम किया और वैरागी की कच्ची धातु से गुरु जी ने वैरागी के गर्म लोहे पर चोट लगा कर उस एक शस्त्र के काम मे ढालने के लिये सिख धर्म की भट्टी मे ढाल दिया। उन्होंने उसे फौरन एक शस्त्र धारी सिख का वेश धारण करा दिया और खालसा धर्म का अमृत चखा कर उसे पूर्ण रीति से नियमानुसार सिख धर्म मे प्रविष्ट कर लिया तथा उसके अपने लिये वर्ते हुए उसी के शब्द अनुसार उसका नाम बन्दासिंह रख दिया। मुसलमानी इतिहासों और उनके आधार पर लिखे गये अन्य इतिहासों मे जिस प्रकार गुरु गोविन्दसिंह को गुरु गोविन्द या केवल गोविन्द करके लिखा है बन्दासिंह के नाम को मे प्राय बन्दा करके लिखा है।

गुरु जी का देहावसान

बन्दासिंह के सिखधर्म मे दीक्षित होने के दिनों मे ही नदेड़ के मुकाम पर दो पठानों के कातिलाना वार से गुरु जी सख्त घायल हो गये। आगरा के स्थान पर गुरु गोविन्दसिंह जी की बादशाह बहादुरशाह से मुलाकात और बादशाह को ओर से उनको एक बड़ी कीमत भेंट दिये जाने के

समाचार सरहिन्द मे पहुँचे तो वहां का हाकिम वजीरखॉ दिल ही दिल मे डरा कि बादशाह और गुरु जी के बीच जारी हो रही बातचीत की सफलता पर उसे गुरु के बच्चों का कातिल होने की वजह से सब से ज्यादा नुकसान पहुँचेगा इसलिये उसने गुरु जी को किसी तरकीब से खतम कर देने की विधि सोची और उनको कत्ल कर देने के लिये दो पठानों को नियत करके उनके पीछे भेज दिया। 'चतुर्युगी' ग्रन्थ से पता चलता है कि यह पठान पहले दिल्ली में पहुँचे और वहा से गुरु पत्नी माता सुन्दरी से पता लगा कर दक्षिण को चल दिये। वह पहले से ही गुरुजी और उनके परिवार के जानकार प्रतीत होते है। इसीलिए ही उन पर न तो कोई शक माता सुन्दरी जी ने किया और नाहीं नदेड़ के स्थान पर गुरु जी के कैम्प मे पहुँचने पर वहॉ उन पर कोई शक हुआ। वह लगातार दो-चार दिन गुरु जी के पास आते जाते रहे परन्तु उनका दाव न लग सका। एक दिन शाम को जब कि गुरुजी के पास कोई ज्यादा सिख उपस्थित न थे और एक ही सेवादार जो वहा था ऊँघने लगा और स्वयं गुरु जी की भी जरा झपकी लग गई तो, उनमे से एक पठान ने जमधर के वार से गुरु जी को घायल कर दिया। असल मे उसका निशाना गुरु जी का दिल था ताकि एक ही वार मे उनका काम तमाम हो जाय। परन्तु जमधर का निशाने पर न बैठने के कारण उसकी इच्छा तत्क्षण ही पूरी न हो सकी। इससे पेश्तर कि वह दूसरा वार करता गुरुजी ने पास ही पड़ी हुई कृपाण से उसको वहीं रख दिया। गुरु जी के आवाज देने पर जब सिख भागे हुए आये तो उसका दूसरा साथी भागता हुआ, सिखों की कृपाण का शिकार हुआ। जल्दी ही आपके घाव धोने और सोने का प्रबन्ध किया गया। दो ही चार दिन में जख्म बाहर से पुरता हुआ सा प्रतीत होने लगा किन्तु इन दिनों बाहर से आई हुई एक मजबूत कमान किसी ने गुरु जी को दिखलाई और कहा कि इस पर चिल्ला मुश्किल से भी नहीं चढ़ाया जा सकता। जब गुरु जी ने कमान को जोर से खींच कर चिल्ला चढ़ाया तो जोर अधिक लग जाने के कारण उनके घाव के टांके खुल गये और अंतत. कातिक सुदी ५ की रात्रि को इस असार ससार से प्रस्थान कर गये।

इन थोड़े से दिनों मे ही बन्दासिंह ने सिख गुरुओं की शहीदियों और सरहिन्द में गुरु जी के मासूम बच्चों के कत्ल और मुगलों के अनर्थ और सिखों को मिले हुये कष्टो के हाल गुरुजी से सुन लिये थे इससे उसका खून खोलने लग गया था।

परन्तु अब सरहिन्द की ओर से आये हुये पठानों के हाथों जब गुरु जी पर कातिलाना वार होता हुआ उसने खुद अपनी आंखों से देखा तो उससे खामोश रहा न गया। उसने गुरु जी से पजाब मे जाकर जालिम हाकिमों के अत्याचारों को जमीन के साथ मिला देने और उनको सजा देने के लिये आज्ञा चाही। यहॉ यह कह देना भी प्रसंग से बाहर न होगा कि अगर गुरुजी घाव लगने के कारण शारीरिक तौर पर अस्वस्थ न होते तो वे अवश्य ही स्वयम पंजाब को चल पड़ते। जैसा कि उन्होंने अपने प्रथम कार्तिक संवत १७६४ वि के हुक्मनामे में लोगों को लिखा था। बिलाशक अगर बहादुरशाह से हो रही बातचीत उनको दक्षिण की ओर न ले आती तो उन्हे आगरे से ही लौट पड़ना था। इसलिए अब मौजूदा हालत मे उन्होंने बन्दासिंह की विनती को स्वीकार कर लिया और सिखों की फौजी कमान भी उसके हवाले कर दी।

केवल संत और महात्मा ही नहीं हैं जिनसे कि मनुष्य को इस ससार में वास्ता पड़ता है यहा वे लोग भी हैं जो धार्मिक तौर पर खुश्क, खुद पसन्द और जालिम होते हैं। उनका मन जुल्म और अन्याय के कार्यों को अबाधगति से करते रहने के कारण मलिन हो जाता है। स्वार्थपरता और पक्षपात से उनके

तखत श्री अविचल नगर हजूर साहिब
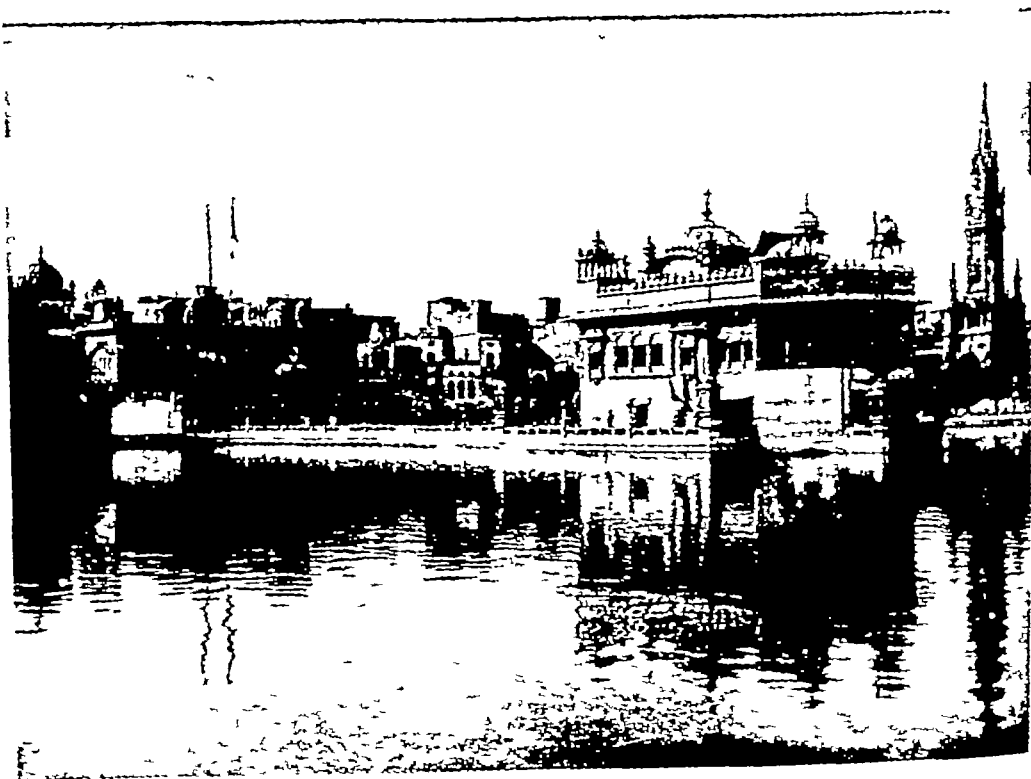
श्री हरिमन्दिर अमृतसर

ज्ञानचक्षु धुंधले हो जाते हैं जिसके कारण किसी शिक्षा ज्ञान, और शांति के संदेशों का उन पर कोई असर नहीं होता केवल कृपाण ही इस तमाम मल को दूर कर सकती है यही हालत १७वीं और १८वीं सदी के हाकिमों की थी। यही कारण था जिससे मुगलों और सिखों के सम्बन्ध मे गुरु जी की ओर से अख्तयार किए हुये तमाम धार्मिक तरीके और अमन के लिये बात चीत के प्रयत्न व्यर्थ सिद्ध हुए। अब केवल तलवार ही अंतिम साधन शेष था जिसको वर्तने का काम बन्दासिह के नायकत्व मे खालसों को करना पड़ा।

गुरु गोविन्दसिह जी के जीवन और सिद्धान्तों की झांकी

समय की जिस आवश्यकता ने गुरु गोविन्द सिह जी को भेजा था। स्वयम गुरु जी ने ही अपने शब्दों मे और अपनी कृति विचित्र नाटक मे उस पर इस प्रकार प्रकाश डाला है।

"मै अपना सुत तोहि निवाजो, पंथ प्रचुर करवे को साजो ॥
जहां तहा तुम धर्म वियारो। दुष्ट दोखियन पकड पछाडो ॥
यांही काज धरा हम जनमं। समझ लेहु साधु सब मनमं ॥
धर्म चलावन सत उवारन। दुष्ट सबन को मूल उपारन ॥
मै हो परम पुरख को दासा, देखन आयो जगत तमाशा ॥
जो मोको परमेसर उचर है। ते सब नरक कुण्ड मे पर है ॥
मोको दास तवन का जानो। या मे भेद न रच पछानो ॥"

यह कहने मे कोई अत्युक्ति नहीं कि राष्ट्रीयता की दृष्टि से सिख गुरु नानकदेव और गोविन्द-सिह के पहले पिछले दो हजार वर्ष मे तो समिष्ट रूप से कोई भी प्रयत्न नहीं हुआ था। धार्मिक दृष्टि से ईसवी सन् से ३००-४०० वर्ष पहिले जैन, बौद्धों ने सघ बनाये थे किन्तु फिर अठारहवीं सदी तक समाज की काया पलटने के लिये कोई भी संघ नहीं बने। गुरु तेगबहादुरजी के बलिदान के बाद गुरु गोविन्दसिंहजी ने ही खालसासंघ की स्थापना की। आज हम ऐसे बहुत से संघ संसार मे देखते है। जिनके सदस्य कम्यूनिस्ट, नाजी, फासिस्ट, खुदाई खिदमतगार आदि कहलाते हैं। हम देखते है कि इन सबके कोई चिह्न (निशान) भी होते है। एक निश्चित वेश भूषा भी होती है। जैसे लाल पोशाक कम्यूनिस्टों की और सफेद टोपी कांग्रेसियों की है। यह बात इस युग में ही होती है सो नहीं। प्राचीन समय मे भी ऐसा होता था। अनार्य्यो से अपने को पृथक रखने के लिये आर्य्यो ने जनेऊ का विधान रक्खा था। दक्षिण के राक्षस काली पोशाक पहनते थे। और वानर लोग कमर मे एक लूम (रस्सा जैसा) बाधे रहते थे।

राष्ट्रीयता

गुरु जी ने भी जो भारतीय राष्ट्र की स्वतंत्रता के लिए सेना खड़ी की उसकी भी एक यूनीफार्म और डिस्पिलन (वेशभूषा और रहन सहन) निश्चित की।

वेशभूषा का शरीर पर बड़ा असर पड़ता है। इससे कोई इनकार नहीं कर सकता। देश के ढीले ढाले पहनावे मे सैनिकता की बू भी शेष नहीं रह गई थी। मुगल और पठानों की विदेशी हुकूमत मे अनेकों वर्ष से रहने के कारण एक तो लोग वैसे ही निर्वीर्य हो रहे थे। दूसरे उन्होंने अपना पहनावा ऐसे ढग का बना रक्खा था जिसमे रहने वाला आदमी युद्ध के तो किसी काम का हो ही नहीं सकता था। अत गुरु जी ने कच्छ धारण करने का हुक्म दिया।

पंजाब के आम लोग उस समय हाथों और पैरों मे चांदी के कडे पहनाते थे। पजाब से लगे हुए राजपूताने को कई रियासतों मे अब भी लोग हाथ पैरों मे कड़े पहनते हैं किन्तु इनको रक्षा का कोई भी

साधन इनके पास न था अत. गुरु जी ने लोह का कड़ा अपने खालसा लोगों के हाथ में डलवा दिया। जिससे वे सदैव यह याद रक्खें कि अन्याय और अत्याचारों से लोहा लेने में ही खैरियत है। प्रत्येक पराजित देश को शत्रुओं की ओर निरस्त्र किया जाता है। हारे हुए लोगों से सबसे पहिले हथियार रखवाये जाते हैं। अत. गुरु जी ने अपने खालसाओं को विजयीभाव बनाये रखने के लिए एक कृपाण सदैव पास रखने का आदेश दिया।

ये उपरोक्त तीन चीजें क्षात्र धर्म से सम्बन्ध रखने वाली हैं किन्तु चूंकि उनका संघ धर्मप्रधान संघ था, अत. केश रखने की भी इजाजत दी। चूंकि आरम्भ से ही गुरु लोग अपने केशों को रखाते चले आ रहे थे। प्राचीन भारत के तो प्राय. सभी ऋषि मुनि केश रखाते थे अत केशों को निर्मल रखने वाले कंघे को भी खालसा चिह्नों मे शामिल कर दिया। केश, जहाँ धर्म प्रधान चिह्न था, वहाँ उससे राजनैतिक सफलता भी प्राप्त हुई। काबुल कंधार से जो पठान आते थे। वह लंबी डाढ़ियों से कुछ तगडे से मालूम देते थे। उनका सही जवाब दाढ़ी और सिर दोनों ही जटाधारी अर्थात सेर का जवाब सवा सेर यह सिखों के केश सावित हुए। आज कच्छ सिलवार और पाजामे के नीचे, कृपाण कोट की जेब मे तथा कड़ा लवी आस्तीन मे छुप जाता है किन्तु केश ही हैं जो साक्षी देते हैं कि यह सज्जन खालसा जी हैं।

यह तो हुई उनकी राष्ट्रीय वेशभूषा की वात। इसके सिवा उन्होंने इस सेना के हृदय में एक महान भाव पैदा करने की जो वात कही थी वह उनसे पहिले शायद ही किसी राष्ट्र-विधाता ने कही हो, उन्होंने कहा था, खालसाओ! अब तुम सब भाई भाई हो, तुम्हारे ऊपर मेरा सर्वाधिकार है। और मैं वह हूँ जिसे करतार ने अपने देश की सेवा करने, मर्यादायें स्थापित करने और दुष्टता को मार भगाने के लिए भेजा है।[1] अब तुम मेरी संतान हो और मैं तुम्हारा पिता हूँ। उनके इन शब्दों के ठीक माने यही हैं कि अब तुम राष्ट्र की सम्पति हो और समाज के हित के कामों मे मैं तुम्हारा उपयोग उसी अधिकार के साथ कर सकता हूँ जिसके साथ कि पिता।

किसी राष्ट्र का पतन तभी होता है जब उसके व्यक्ति चरित्रभ्रष्ट, स्वार्थी और निर्वीर्य हो जाते हैं। और जब पतन हो जाता है तो वह राष्ट्र पराधीन और परामुखापेक्षी हो जाता है। गुरु गोविन्दसिंह जी महाराज ने जिन दिनों जन्म धारण किया था। उस समय देश राजनैतिक और धार्मिक दोनों प्रकार की सत्ताओं द्वारा पीसा और चूसा जा रहा था। उन्होंने जहाँ राजनैतिक दासता से मुक्त करने के लिए खालसा संघ को कृपाण और कच्छ से सुसज्जित किया। वहाँ उन्होंने यह भी कोशिश की कि देश के निवासी धार्मिक अन्ध विश्वासों से भी मुक्त हो जावे। इसीलिए उन्होंने अपने शिष्यों पर कुछ पाबन्दियां भी लगाईं। हम यह कह रहे थे कि राष्ट्र व्यक्तियों के बिगडने से ही बिगडता है, और व्यक्तियों के ही बनने से बनता है। गुरु जी ने राष्ट्र निर्माण को दृष्टि मे रखकर व्यक्ति निर्माण पर भी जोर दिया। उन्होंने मनुष्य के आचरण को एक नये साँचे मे ढालने की कोशिश की। उन्होंने बन्दासिंह से कहा था कि "लूट के माल को सब मे बांट देना और लंगोट का पक्का रहना। राज खालसा का स्थापन करना" इसी प्रकार जब लड़ाई में सिख एक डोले को उठा लाए तो आपने पूछा आप लोगों ने इसमें बैठने वाली को पर्दा उठाकर तो नहीं देखा है। यदि ऐसा किसी ने किया होगा तो उस खालसा ने

1 धर्म चलावन संत उबारन। दुष्ट सबन को मूल उपारन। (विचित्र नाटक)

खारिज कर दिया जायगा। सब ने विश्वास दिलाया हमें यह भी पता नहीं कि इसमे कौन है ? गुरु जी ने उसी समय उस डोले को मुस्लिम सेना मे भिजवा दिया।

उनकी शिक्षाओं का खालसा वीरों पर ऐसा असर पड़ा था और वे इतने ऊँचे आचरण के व्यक्ति हो गये थे कि उनके विरोधियों को भी उनके आचरण की प्रशंसा करनी पड़ती थी। मुसलमान इतिहासकार नासिरुद्दीन बिल्लोच ने लिखा है। "सिखों मे पर-त्रिया गमन का दोष नहीं है, वे झूठ नहीं बोलते, गरीब, बुड्ढे और स्त्री पर शस्त्र नहीं चलाते।"

वे देश की काया बदलने की उत्कट इच्छा रखते थे। पहाडी राजाओं से उन्होंने कहा था। आप लोग यदि गौरवपूर्ण पद प्राप्त करना चाहते हैं तो नूतनता अपनानी ही पड़ेगी, उन विचारों और खयालातों को हटा ही देना पड़ेगा। जिनके कारण हमारे देश का ह्रास हुआ है। इस सम्पूर्ण देश पर तुम्हारे ही बापदादे राज्य करते थे। आज तुम दूसरों के सहारे जीते हो। यदि अब भी आप संभल जाय और खालसा पथ मे शामिल होजाय तो यहा से अन्याय और अत्याचार सहज ही मे मिटाये जा सकते हैं।

यद्यपि वे एक धर्माचार्य्य थे और स्वभावत धर्माचारी एक नत्र के समर्थक होते हैं किन्तु वे अपने देश मे प्रजातन्त्रीय भावनाओं को जागृत करना चाहते थे। अपने पाच प्यारों को खालसा संघ मे दाखिल करने के बाद आप स्वयम भी उसके सामने हाथ जोड़कर खड़े हो गए कि अब आप मुझे भी इस पंथ (संघ) मे शामिल करिये।

प्रजातन्त्र

आनंदपुर मे जिस समय मुगल सेनाओं ने आपको घेरे में दे लिया तो सिखों ने आप पर वहाँ से निकल चलने के लिये जोर डाला चूंकि आप समझते थे कि एक तो निरापद भाग चलना मुश्किल है दूसरे भागकर कोई लाभ नहीं होना है। फिर भी जब आपने देखा कि बहुमत निकलने के पक्ष मे है और वह अनुशासन को भी मानने को तयार नहीं है तो आप वहाँ से चल दिये। अगरचे इसका फल यह हुआ कि उनके चारों पुत्रों और मां को भी इस ससार से सदा के लिए विदा होना पडा किन्तु इतने पर भी उन्होंने इसी बात पर जोर दिया कि खालसा पथ जो करे वही मान्य है। बाबा बन्दासिह को अन्य आदेशों के साथ एक यह भी आदेश आपने दिया था कि जो भी कार्य करे उसमे खालसाओं की राय अवश्य ले लेना। उनकी मर्जी के विरुद्ध कुछ भी कार्य्य न करना।

वे इस प्रजातान्त्रिक खालसा सघ (पथ) मे विश्वास भी अपूर्व रखते ने उन्होंने औरंगजेब को जो पत्र लिखा था उसमे लिखा है —

"चिह मर्दी कि अखगर खामोशा कुनी।
कि आतश दमीरा फिरोजा कुनी॥"

अर्थात "मेरे पुत्रों और अनेकों सिखों के मारे जाने से तू अपनी बहादुरी पर फूलता होगा किन्तु वे तो चिनगारियाँ थीं। बुझ गई तो क्या हुआ आग की भट्टी तो अभी धधक ही रही है।" कहने का साराश यह है कि खालसा (सघ) पथ तो नहीं मिट गया। जिसमे अजीतसिंह, जुझारसिंह आदि जैसे खालसे ढाले गये हैं।

धार्मिक इतिहास मे यह भी आश्चर्य की बात है कि गुरु जी ने इस सघ को ही गुरु का पद भी दे दिया। ऐसा किसी भी देश के इतिहास मे हमारे पढ़ने मे नहीं आया किसी पीर पैगम्बर व धर्माचार्य्य ने अपने ही बनाये हुये शिष्यों के आधीन अपने को कर दिया हो और उनके संघ को गुरु पद भी बख्श दिया हो।

उनके भक्तों ने पूछा था, हे ! गुरु देव । जब आप किसी भी व्यक्ति को गुरु स्थापित नहीं कर रहे हैं तो हम गुरु-दर्शन कहाँ से कर सकेंगे । आपने कहा, "जो चाहे कि दर्शन करें तो वह जहाँ पर खालसा लोग इकट्ठे हो रहे हों अर्थात पंचायत जुड़ रही हो वहाँ जाकर अदब के साथ उनके दर्शन करें. उन्हीं में गुरु को व्यापक मानें ।

"खालसा मेरो रूप है खास ।
खालसे मांहि हौं करों निवास ।
खालसा मेरो मुख से अग ।
खालसे के हौं सदा सद् संग ॥
खालसा मेरा इष्ट सुहृद ।
खालसा मेरी कहियत विर्द ॥
खालसा मेरी जात और पत ।
खालसा सों मेरी उत्पत ।
खालसा मेरो पिंढ प्राण ।
खालसा मेरी जान की जान ॥
खालसा मेरा कई निर्वाह ।
खालसा मेरो देह और साह ॥
खालसा मेरो धर्म और कर्म ।
खालसा मेरा भेद निज वर्म ॥
खालसा मेरो सत् गुर तूरा ।
खालसा मेरो सज्जन शूरा ॥
खालसा मेरी बुद्धि अरु ज्ञान ।
खालसा का हौं धरों ध्यान ॥
उपमा खालसे जात न कही ।
जिह्वा एक पार न लही ॥

× × × ×

या में रच न मिथ्या भाखी ।
पार ब्रह्म गुरु नानक साखी ॥

(सर्वलोह)

इतना महत्व देते थे, वे अपने खालसा संघ को । इस खालसा में जिसकी वे इतनी इज्जत करते थे और जिसकी वजह से मुगल हुकूमत चकनाचूर हो गई थी । जिनके खालसा सदस्यों ने रणजीतसिंह जैसा बड़ा साम्राज्य स्थापित किया था, आखिर वे कौन थे । स्वर्ग में से बुलाये हुए देव, दानव नहीं किन्तु यहीं की भूमि में से और उन्हीं लोगों में छाँटे हुये लोग थे । जिन्हें पुराणवादियों ने अध पतन के गर्त में व्रात्य, शूद्र आदि कह कर गिरा दिया था । और जोकि खालसा बनने के पूर्व अपने घर बार और स्त्री बच्चों की हिफाजत करने के काबिल भी न थे ।

ऊपर के शीर्षकों में हमने जो कुछ लिखा है, उससे यह खयाल नहीं लगाया जा सकता कि वे

केवल राष्ट्र विधाता और राजनीतिज्ञ ही थे। वे समाज संशोधक और धर्माचार्य भी उतने ही थे, जितने कि पिछले गुरु साहिवान उन्होंने अमृतवेला में उठकर नित्यकर्म करने, दरबार लगाने और कथा कीर्तन करने कराने के कार्य को महान से महान अपत्ति मे घिरे रहते हुए भी निभाया। आनन्दपुर से निकलकर सरसा नदी के किनारे पहुँचे और यह पता चल गया कि अव अमृत वेला का समय है तो वहीं नित्य नियम करने लग पड़े। हालांकि शत्रु हजारो की संख्या मे आपके पीछे चले आरहे थे।

धार्मिकता

इतनी लडाई हुई। झगड़े रहे फिर भी आपने 'अकाल स्तुति' 'शव्द हजारे' और 'जापु जी' जैसी मनोहर और आत्मतुष्टि करने वाली रचनायें करलीं। यह काम उनके उत्कट ईश्वर-प्रेम का परिचायक है।

गुरु जी ने लड़ाइयो मे अपने पैने वाणो खंगों से हजारों अन्याइयो को ही इस संसार से विदा किया। योद्धा लोग प्राय' सभी निठुर होते है किन्तु गुरु जी महान् योद्धा होते हुए भी अपूर्व दयालु भी थे। आनन्दपुर की लड़ाई मे भाई कन्हैया जी अपनी सेना मे पानी पिलाने की ड्यूटी पर थे, किन्तु वे उन शत्रुओं के पास भी पाणी पिलाने पहुँच जाते थे जिन्हे सिख परेशान करके अथवा जख्मी करके जमीन पर पटक देते थे। इस तरह स्वस्थ होते ही वे फिर सिखों से लड़ने लग जाते। इसकी शिकायत सिखों ने गुरु जी से की। कन्हैया जी ने जवाव दिया गुरुदेव सेवा धर्म में अपने पराये को स्थान नहीं है। गुरु जी वड़े प्रसन्न हुए और कन्हैया जी को हुक्म दिया कि घायल शत्रुओं की मरहम पट्टी भी कर दिया करो। दुनियाँ के इतिहास मे वड़े २ योद्धाओं और धार्मिक नेताओं मे ऐसे कितने मिलेंगे, जिन्होंने अपने शत्रुओं के साथ इस प्रकार की उदारता की हो।

त्याग और कुर्वानी की कहानी तो गुरु गोविन्दसिह जी महाराज की लासानी कहानी है। दो पुत्रों को अपने हाथ से सजा २ कर रणभूमि मे विदा कर दिया और दो जल्लादों के छुरे से जिवह हो गये। जव माता सुन्दरी ने दमदमे मे आकर रोते हुए पूछा नाथ! मेरे लाल कहाँ हैं तो आपने सगति के ओर इशारा करके कहा था।

"इन पुत्रनके शीश पर वारि दिये सुत चार।
चार गये तो क्या हुआ जीवत कई हजार॥"

किसी भी धर्म और समाज को कठिनाइयों से ऊपर उठा ले जाने मे सबसे जरूरी चीज जो होती है, वह अनुशासन है जहाँ अनुशासन नहीं। नियमों की पावन्दी सख्ती के साथ नहीं, वहा धर्म और समाज जीवित अवस्था मे भी मरे के समान होते हैं। हमने ऐसे अनेकों धर्मों का इतिहास पढ़ा है जिसमे मुरीदों ने पीरों की आज्ञाओं को आख मूंद कर माना है और पीर-पादरियों अथवा आचार्यों की आज्ञा से वे आग मे जलकर, पहाड़ से कूद कर मर भी गये हैं। यह वात भी उन धर्मों के लिये कम गौरव की वात नहीं है किन्तु संसार के इतिहास मे यह कहीं भी नहीं दीख पड़ता, जिस भाँति चेलों और मुरीदों से नियमों का कठोरता के साथ पालन कराया जाता था वैसा ही पीर और पैगम्वरो ने भी किया। यह वात हमने सिख गुरु गोविन्दसिंह जी मे ही देखी। उन्होंने अपने शिष्यों को आदेश दे रक्खा था कि किसी भी पीर, पैगम्वर और देवता की समाधि व मूर्ति की पूजा मत करो। एक दिन गुरु जी ने केवल परीक्षा के लिये महात्मा दादू जी की समाधि के आगे तीर झुका दिया। सिखों ने फौरन जवाव तलव किया। कहा जाता है कि उन पर इसवात के लिये पंथ की ओर से जो दड लगाया गया वह उन्होंने खिडे माथ स्वीकार करते हुये कहा कि "आपकी

अनुशासन

आज्ञा मुझे परवान है। मैंने यह जो कुछ किया था केवल अपने पंथ की परीक्षा के लिये किया था।"

संसार का इतिहास युद्धों की कहानियों से भरा पड़ा है। जिसमे वहुधा युद्ध केवल जर, जोरु और जमीन के लिये किये गये हैं और युद्धों के अन्त पर वैरी के देश को रौंध डाला गया और उनकी द्रव्य सम्पति लूटी गई तथा स्त्री वच्चों को तवाह कर दिया गया, उन्हें गुलाम वना लिया गया। परन्तु जव हम गुरु गोविन्दसिंह के युद्धों पर नजर डालते है तो हमे इनमें से कोई भी वात नजर नहीं आती। उनके तमाम के तमाम युद्ध दीनों और दुखियों की रक्षा और आत्मरक्षा के लिये किये गये हैं। यही नहीं किन्तु आज जिससे उन्हें किसी कारण से लड़ना पड़ा है कल को उसकी रक्षा के लिये अपनी जान तक कुर्वान करने को तैयार हो जाते हैं। जैसा कि हम पहाड़ी राजाओं के विरुद्ध और उनकी सहायता के लिये किये गये युद्धों मे देखते हैं। यहीं नहीं वल्कि उस औरङ्गजेव के पुत्र वहादुरशाह के हक की रक्षा के लिये जाजऊ के मैदान मे अपने सैनिक भेज देते हैं। जिसकी आज्ञा और कारण से स्वयम गुरु गोविन्दसिंह जी के पिता माता और चारो वच्चे और हजारों श्रद्धालु सिख शहीद हो चुके थे। आपने कोई चौदह लडाइयॉ लडीं और वहुधा आप विजयी हुए परन्तु इन लड़ाइयों के अत पर क्या मजाल कि आपने पहाड़ी राजाओं, मुगलशासकों और सूवेदारों की जमीन के एक इच पर भी दखल जमाया हो अथवा किसी का घर घाट उजाड़ा हो। या किसी को कैद किया हो वा गुलाम वनाया हो।

भारत के सम्राट उसके सूवेदारों की फौजें और पडौसी राजाओं की सेनायें और उनके हितैषी लाखों की संख्या मे उन पर टूट पडते हैं और घेरा डालकर महीनों तक सव खाना दाना उनके पास पहुँचना वन्द कर देते हैं और आपके अनगणित सिख तथा चारों पुत्र और माता कुर्वान हो जाते हैं परिवार विखर जाता है परन्तु आपका मन फिर भी अडोल तथा ईश्वर की इच्छा मे प्रसन्न दिखाई देता है और किसी किस्म की उदासीनता आपके किसी कर्तव्य से प्रतीत नहीं होती। सैनिक दृष्टिकोण से भी जव हम देखते हैं तो भी आप वहुत ऊचे दिखाई देते हैं। भगाणी, निर्मोह, नदोण, आनन्दपुर आदि की लडाइया हम देखते हैं कि उनके विरोधियों की सेना एक प्रकार टिड्डीदल की भॉति असख्य हुआ करती थी। परन्तु आप अल्प संख्यक सेना के साथ भी उनको परास्त कर मैदान छोड़ने को मजवूर कर देते थे। यद्यपि इतिहास में आपके युद्ध सम्वन्धी ढंगों का कोई वैज्ञानिक दृष्टिकोण से सविस्तार वर्णन नहीं मिलता फिर भी हम यह कह सकते हैं कि उनका युद्ध सम्वन्धी ढंग अपने समय मे वडा निराला, अच्छा और वैज्ञानिक था। तभी तो आप मुगल सूवेदारों फौजदारों और वाईसधार के राजाओं तथा इर्दगिर्द मे इकट्ठे हुये देशवासियों की सम्मिलित सेनाओं को समय समय पर नीचा दिखा सके।

जितनी रुचि उनकी शस्त्र विद्या सीखने सिखाने मे थी उतनी ही विद्या पढने और पढाने में भी थी। स्वयम् तो संस्कृत, हिन्दी और फारसी के विद्वान थे ही किन्तु सिखों में विद्या का प्रचार करने के उद्देश्य से उन्होंने चार विद्यार्थी काशी मे सस्कृत पढ़ने के लिये, कुछ विद्यार्थी ईरान में फारसी पढ़ने के लिये भी भेजे थे। आप स्वयम् नित महाभारत, गीता और पुराणादि तथा फारसी साहित्य की कथाये सुना करते थे। उनमें जो त्रुटिया होती थी उनका भी अनुभव करते थे।

विद्या प्रेम

किसी भी देश की समुन्नित में कला कौशल का वड़ा हाथ होता है, गुरुजी भी कला कौशल को उन्नत करने के हार्दिक इच्छुक थे। ऐसे लोगों को भी आपने अपने यहाँ रक्खा था जो चित्रकारी करने और सुन्दर वस्तुऐं निर्माण करने में होशियार थे। हँसा नाम का चित्रकार तो उस समय

कला कौशल का एक प्रसिद्ध कलाकार (आर्टिस्ट) था जिसने कपड़े पर चमकते सूर्य्य की तस्वीर वनाकर अपनी कला का परिचय दिया था।

यद्यपि राष्ट्र के किसी हिस्से पर उन्हे शासन करने का अवसर प्राप्त नहीं हुआ। किन्तु आनन्दपुर और सिख समाज मे उनके शासन की व्यवस्था वड़ी ही सुन्दर थी। आमदनी का हिसाव किताव ठीक रखने के लिये उन्होंने एक दीवान रख छोड़ा था। नगर और समाज के अस्वस्थ लोगों को वीमारी मे सहायता पहुँचाने के लिये भी प्रवन्ध था। सिखों के आपसी झगड़ों को मिटाने के लिये यह नियम वना दिया था कि पाच खालसा इकठ्ठे होकर निर्णय कर दिया करें।

अपराधियों को दड देने की भी व्यवस्था थी। वह अपने समाज मे कोई भी खरावी नहीं पैदा होने देना चाहते थे। एक वार जव एक मसंद की शिकायत सुनी तो उसे गदहे पर चढ़ाकर नगर मे घुमाया। और फिर वाद मे मसंद प्रथा को ही तोड़ दिया।

गुरु गोविंदसिह जी कवि और साहित्यिक भी वहुत ऊँचे दर्जे के थे। उनके दरवार मे अनेकों कवि और लेखक रहते थे। वे स्वयम् भी कविता करते थे और खूव करते थे। कहा जाता है कि राजा भोज के राज्य मे गड़रिये भी संस्कृत जानते थे। यह वात हम गुरु जी के सम्वन्ध मे इस *काव्य व साहित्य-प्रेम* प्रकार कह सकते हैं कि उनके घोड़ों के तवेले के लोग भी कविता करना जानते थे। उन्होंने अपने संघर्ष के जीवन मे भी अनेकों किताव लिखी थीं। इतिहास मे लिखा है कि आपने जिस समय आनन्दपुर छोड़ा तो वह साहित्य जिसे आपने स्वयम् या आपके दरवारी कवियो लेखकों ने तैयार किया था और जिसका कि वजन नौ मन के करीव था सरसा नदी में नष्ट होगया। उसमे से जो लूट खसोट और तितर वितर होने से वच रहा अपने साथ लाए। किन्तु वह आपकी निज की रचनाये ये हैं।

१—'जापजी' इसमे ईश्वर के गुणवाचक नामों की महिमा वर्णन की गई है। सिख लोग प्रात उठकर इसका पाठ करते हैं।

२—"अकाल स्तुति" इसमे अकाल पुरुष की महानता और उसे ढूंढ़ने वाले की भूलों का वर्णन है।

३—'विचित्र नाटक' इस ग्रन्थ मे गुरु जी ने अपना पूर्व जन्म का परिचय देते हुये अपने जीवन की प्रमुख घटनाओं का वर्णन किया है।

४-५—'चन्डी चरित्र' और 'चन्डी की वार' यह वीर रस की कविता मे चडी का कथानक है।

६—'ज्ञान प्रवोध' ईश्वरीय ज्ञान का भंडार है।

७—'अवतार' इसमे हिन्दुओं के २४ अवतारों का विवेचनात्मक वर्णन है।

८—'शव्द हजारे' सहस्रनामों की भांति का ग्रन्थ है।

९—'३३ सवैये'—इसमे वेद, पुराण और कुरान की शिक्षाओं की आलोचना है।

१०—'शस्त्रनाम माला' धनुर्वेद के ढंग की पुस्तक है।

११—'पख्याने त्रिया चरित्र' सहस्र रजनी चरित्र से भी वढ़कर और चित्ताकर्षक ४०५ स्त्रियों के चरित्रो की पुस्तक है।

१२—'जफर नामा' वह पत्र जो ओरंगजेव को उसके विश्वासघातों की याद दिलाने के लिये लिखा गया था फारसी नज्म में है।

१३—'हिकायत नामा' यह भी फारसी नज्म में है।

१४—'सर्व लोह प्रकाश' यह विशाल ग्रन्थ है किन्तु अभी तक छपा नहीं।

एक से १३ तक के ग्रन्थ एक स्थान पर संग्रह करके छाप दिये गये हैं जो गुरुमुखी लिपि मे हैं। और दशम पातशाही के रचे होने से वे 'दशम ग्रन्थ' के नाम से मशहूर है।

यह सग्रह गुरुजी के चालस वर्ष वाद भाई मनीसिंह जी आदि के उद्योग से सवत १८०४ वि. में हुआ था।

अव हम यहाँ उनके प्रत्येक ग्रन्थ के काव्य की कुछ रचनाये देते है—

जापुसाहब

इसे चरपट आदि अनेको छंदों मे गुरु जी ने पूर्ण किया है और प्रत्येक छद मे काव्य सौष्ठव कूट-कूट कर भर दिया है यथा—

भुजंगप्रयात छंद—
नमस्त अकाले। नमस्त कृपाले॥
नमस्त अरूपे। नमस्त अनूपे॥

× × × × ×

नमो सर्व सोख। नमो सर्व पोख
नमो सर्व करता। नमो सर्व हरता।

चाचरी छंद—
अरूप हैं। अनूप है॥
अजू है। अभू है॥
अलेख हैं। अमेख है॥
अनाम है। अमान है॥

मधुमार छद—
गुन गन उदार। महिमा अपार॥
आसन अभंग। उपमा अनग॥
अनभउ प्रकाश। निस दिन अनास॥
आजानु वाहु। साहन साहु।

छप्पय छंद—
चक्र चिह्न अरु वरन जाति अरु पात नहिन जिह।
रूप रग अरु रेख भेख कोऊ कहि न सकति किह॥
अचल मूरति अनभउ प्रकाश अमितोज कहिज्जै।
कोटि इन्द्र इन्द्राणि साहि साहाणि गणिज्जै॥
त्रिभवण महीप सुर नर असुर नेत नेत वन त्रिण कहत।
त्व सर्व नाम कथै कवन करम नाम वरणत सुमत॥

अकाल स्तुति

इस ग्रन्थ मे भी चौपाई सवैये और कवित्त आदि अनेकों छन्द हैं। जो सबके सब मन मोहने और अन्तरात्मा को झंकृत करने वाले हैं। भक्तिरस इनमें से प्रस्फुटित होता है।

चौपई छन्द—
सभ को काल सभन को करता।
रोग सोग दोखन को हरता॥

एक चित्त जिह इक छिन ध्यायो ।
काल फास के बीच न श्रायो ॥

कवित्त— कहूँ जच्छ गन्धर्व उरग कहूँ विद्याधर
कहूँ भये किन्नर पिशाच कहूँ प्रेत हो ।
कहूँ हुइकै हिन्दुश्रा गायत्री को गुप्त जप्यो,
कहूँ हुइकै तुरका पुकारे बाग देते हो ॥
कहूँ कोक काव के पुरान को पढत मत,
कतहूँ कुरान को निदान जान लेत हो ।
कहूँ वेद रीत कहूँ तासिउ विपरीत,
कहूँ त्रिगुन श्रतीत कहूँ सुर गन समेत हो ।

तोमर छंद— हरि जन्म मरण विहीन । दस चार चार प्रबीन ॥
श्रकलक रूप श्रपार । श्रन छिज्ज तेज उदार ॥

नाराच छन्द— जिमी जमान के विखै समस्त एक जोत है ।
न घाट है न बाढ है न घाट वाढ होत है ॥
न हान है न बान है समान रूप जानिऐ ।
मकीन श्रौ मकान प्रमान तेज मानिऐ ॥

चडी चरित्र

मारकण्डेय पुराण की दुर्गा सप्तशती मे शंभु निशंभु के साथ जिस युद्ध का वर्णन आया है गुरु गोविन्दसिंह जी ने चंडी चरित्र मे उसी का भावानुवाद किया है । इस काव्य ग्रन्थ की प्रत्येक पंक्ति मे भुजदडों को फड़काने वाला वीर रस भरा हुआ है यथा:—

कवित्त— दौर सभै इक बार ही दैत्य,
श्राये है चण्डिके सामुहे कारे ।
लै कर वान कमानन तान
घने श्ररि कोप सो सिंह प्रहारे ।
चडि सम्भार तवै कर बार,
पचार के शत्रु समूह निवारे ।
खाडव जारन को श्रगनि तिहि,
पारथ ने मनु मेघ बिडारे ॥
बीर वली सरदार दईत सु,
क्रोध के म्यान ते खग्ग निकार्‌यो ।
एक दयो तन चडि प्रचड कै,
दूसर केहर के सिर झार्‌यो ॥
चडि सम्भार तवै वलधार,
लयो गहि नारि धरा पर मार्‌यो ।

ज्यो धुविश्रा सरिता तट जाइकै,
ले पट को पट साथ पछार्यो।

× × × ×

दौर दई अरिके मुख में
कट ओठ दये जिम लोह की छैनी।
दांत गगा, जमुना तन श्याम,
सु लोहू वह्यो तिह मांहि त्रिवेनी।
वाजत डक परी धुनि कान,
सु सक पुरन्वर मूं दंत पौरे।
सूर में नांहि रही दुति देखकै,
युद्ध को दैत्य भये इक ठौरे।
कांप समुद्र उठे सिगरे
वहु वार भई धरनी गति औरे।
मेरू हल्यौ दहल्यो सुर लोक,
जवै दल सुम्भ निसुम्भ के दौरे॥
भूमि को भार उतारन को,
जगदीश विचार कै युद्ध ठटा।
गर्जे मद मत करी बदरा,
बग पन्ति लसै जनु दन्ति गटा॥
पहिरे तनत्रान फिरै तहि वीर,
लिये कर बिज्जु छटा।
दल दैत्यन को अरि देवन पै,
उमड्यौ मनु घोर घुमंड घटा॥
बान लगे लख सुम्भ दईत,
धसे रन ले करवारन को।
रण-भूमि में शत्रु गिराय दये,
वहु श्रोण बह्यो असुरानन को॥
प्रगटे गन जम्बुक गिद्ध पिशाच
सु यों रन भाति पुकारन को।
सु मनो भट सार सुतो तट नात हैं,
पूरब पाप उतारन को॥
बार सिवार भये तहि ठौर।
सु फेन ज्यों छत्र फिरे तरता।
कर अंगुल का सफरी तलफे।
भुज काट भुयंग करे करता।

इय नक्र ध्वजा द्रुम श्रोणत नीर में।
चक्र ज्यों चक्र फिरै गरता।
तब सुम्भ निसुम्भ दोऊ मिलि दानव,
मार करी रण में सरता।

चंडी की वार

चंडी चरित्र की भांति ही चण्डी की वार है और यह सारी की सारी एक ही प्रकार के छंद में है यह छंद शिखंडी छंद है और इसकी भाषा पंजाबी है। नमूना इस प्रकार है:—

"चोट पई दमामे दलां मुकाबला।
देवी दसत नचाई सीहणि सार दी।
पेट मलंदे लाई महखे देत नूं।
गुर्दे आंदां खाई नाले रुकड़े।
जेही दिल विच आई कही सुणाय के,
चोटी जाण दिखाई तारे धूमकेत।

अर्थात्—लडाई के धोंसे बजे, दोनों दलों का मुकाबला हुआ, दुर्गे ने लौह-सिंहनी अर्थात तलवार हाथों में सम्भाली और महिषासुर दैत्य के पेट पर जमा दी, जिससे उसकी आते इस प्रकार निकल पड़ीं जिस प्रकार कि आकाश से धूम्रकेतु तारा टूटता है।

'दुहीं कधारां मुंहि जुडे अणीं आरां चोईआं।
धूह किरपाण तिखियां नाल लोहू धोईआं ॥
हूरां स्रणवंत बीज नू घंत घेर खलोइआं।
लाडा वेखण लाडियां चो गिरदे होईआं ॥

अर्थात्—दोनों दलों की भिड़न्त हुई तीरों की तीक्षण नोकों और म्यान से निकाली हुई तलवारो की धारों से योद्धाओं के शरीरों से रक्त वहने लगा, जिसे देख कर अपसरायें, उन्हे ऐसे घेर कर खड़ी हो गई जिस प्रकार दूल्हे को नवयुवतियाँ घेर लेती हैं।

× × × × × ×

लै के बरछी दुर्ग साह बहु दानें मारे।
चढ़ें रथ गज घोड़ईं मार भुईं ते डारे।
जाण हलवाई सीख नाल विन्ह बड़े उतारे ॥

अर्थात्—दुर्गा ने वर्छी से अनेकों दैत्यों को जो हाथी घोड़े आदि पर सवार थे। छेद कर इस प्रकार भूमि पर पटक दिये। जिस प्रकार चतुर हलवाई लौह कील से कढ़ाही में से बड़े उतारता है।

ज्ञान प्रबोध

इसमें सस्कृत पुस्तकों के आधार पर कुछ मनोरंजक और ज्ञानवर्द्धक सामिग्री है। इसकी बानगी इस प्रकार है—

छत्र धारी छत्रीपति छैल रूप छित नाथ
छोणी कर छायावर छत्रीपति गाइये।

विसुनाथ विश्वम्भर वेदनाथ वाला कर,
बाजीगर बान धारी बंधन बताइये।
न्योली कर्म दूधाधारी विद्याधर ब्रह्मचारी,
ध्यान को लगावै नेक ध्यान हूं न पाइये।
राजन के राजा महाराजन के महाराजा,
ऐसो राज छोड़ और दूजो कौन ध्याइये ।।
युद्ध के जितैया रंग भूमि के भवइया।
भार भूमि के मिटइया नाथ तीन लोक गाइए।
काहू के तनय्या है न मैया जाके भैया कोऊ,
छौनीहू के छंय्या छोड़ कासो प्रीत लाइए।
साधना सिधइया धूवधानी के धुजइया,
धोम धार के धनैया ध्यान ताको सदा लाइए।
आठ के बढइया, एक नाम के जपइया।
और काम के करइया छोड और कौन ध्या ए ।।

चौबीस अवतार

गुरु जी महाराज ने अपनी मधुर कविता मे चौबीस अवतारों का बड़ा सुन्दर वर्णन किया है किन्तु इसके माने केवल चरित्र चित्रण से हैं नकि यह कि गुरु जी अवतारवाद को मानने वाले थे।

रामावतार की कथा में से यहां हम लंका युद्ध की कुछ पंक्तियां देते हैं—जोकि, विजया छन्द में हैं।

जुट्टे वीरं। छुट्टे तीर ।। ढुक्की ढालं। क्रोहे काल ।।
ढके ढोल। बके बोल ।। कच्छे शस्त्र। अच्छे अस्त्र ।।
क्रोधं गलित। बोधं दलित ।। गज्जे वीर। तज्जे तीर ।।
रत्ते नैण। मत्ते बैण ।। लुज्झे सूरं। जुज्झे हूरं ।।
लग्गे तीर। भग्गे वीर ।। रोस रुज्झे। अस्त्र जुज्झे ।।
झुम्मे सूर। घुम्मे हूरं ।। चक्के चारं। बक्के मार ।।

लंका प्रवेश

अलका छन्द—
चटपट सैण खटपट भाजे, झटपट जुझ्यो लख रण राजे।
सटपट भाजे अटपट सूर, झटपट बिसरी घट पट हूर ।।
चटपट पैठे खट पट लर्क, रण तज सूर मर घर वर्क।
झलहल वार नरवर बैण, धकधक उचरे भकभक बैण ।।
नरवर राम बरनर मारो, झटपट वाह फट फट डारो।
तब सभ भाजे रख रख प्राण, खटपट मारे झटपट बाण ।।
चटपट रानी सटपट धाई, रटपट रोवन अटपट आई।
चटपट लागी अटपट पाय, नरवर निरखे रघुवर राय ।।
चटपट लोटें अटपट धरनी, कसि कसि रोवें बरना बरणी।

पटपट डारें अटपट केस, बटहर सूकै बटहर वेम ॥
चटपट चीर अटपट पारें, घर कर घूर सरवर डारें।
सटपट लोटे खटपट भूम। झटपट झूरें घर हर घूमं ॥"

'अवतार चरित्र' मे गुरु जी ने कृष्णावतार की रास लीला, युद्धों आदि का भागवत के दसम स्कंध के आधार पर वर्णन किया है उन्होने कृष्ण की वासुरी के सम्बन्ध मे बडी श्लेषपूर्ण कविता की है यथा:—

"वाजत वसत अरु भैरव हिंडोल राग,
वाजत है ललिता के साथ ह्वै धनासरी।
मालवा कल्यान अरु मालकौंस मारू राग,
वन में बजावै कान्ह मगल निवासरी ॥
सुरी अरु आसुरी अउ पन्नगी जे हुती तहाँ,
धुनि के सुनत पै न रही सुधिजासरी।
कहै इयो दासरी सु एसी वाजी वासुरी,
सु मेरे जाने यामें सब राग को निवासरी ॥
करुण निधान वेद कहत वख्यान याकी,
वीच तीन नोक फैल रही है सुवासरी।
देवन की कन्या ताकी सुनि धुनि श्रोनन में,
धाई धाई आवें तजि के सुरगवासरी ॥
है करि प्रसन्न रूप राग को निहार कह्यो,
रच्यौ है विधाता यामें रागन को बासरी।
रीझे सभगन उडगन भे मगन,
जब वन उपवन में बजाई कान्ह बासुरी ॥"

× × × ×

चन्द्रावलि के प्रति अधिक स्नेह को देख कर राधा जी कृष्ण से नाराज हो गई थीं और जब वे राधा के पास पहुँचे तो—

"रासहिं क्यों तज चन्द्र भगा, चलकै हमरे यह क्यों कह्यो आयो।
क्यो यह ग्वारिन की सिख मानिके, आपन हि उठि कै सखि धायो ॥
जानति थी कि बडो ठग है, इह बातन ते अब ही लखि पायो।
क्यो हमरे पाहि आयो कह्यो, हम तो तुमको नहिं बोल पठायो ॥"

इसका उत्तर —

"यो सुनि उत्तर देत भयो, नहिरी तुहि ग्वारिन बोलि पठायो।
नैनन के करि भाव घने, सरसो हमरो मनुआ मृग घायो ॥
ता विरहागनि सो सुनिए वलि, अग जर्यो सु गयो न वचायो।
तेरो बुलायो न आयो होरी, तिह ठौर कहु सेकन आयो ॥"

जब राधे मन गई तब:—

"दोऊ जो हँसि बातन मंग ढरे, तु हुलास विलास बढे सगरे।
हँसि कठ लगाइ लई ललना, गहि गाढे अनग ते अक भरे।।
तरको हैं तनी दरकी अगिया, गर मालते टूटि के लाल परे।
पिय के मिलिए त्रिय के हिय के, अगरा विरहागिन के निकरे।।"

दत्तात्रेयावतार के विषय में:—

"देश विदेश नरेसन जीत, अनेस बढ़े अवनेस सहारे।
आठोई सिद्ध सबै नव निद्ध, समृद्धन सरब भरे ठह सारे।।
चन्द्रमुखी वनिता बहुतै घरि, माल भरे नहि जात सभारे।
नाम विहीन अधीन भये जय, अत को नागेहि पाइ सिधारे।।
रावन के महि रावन के, मनु के नल के चलते न चली गउ।
भोज दिलीपत कौरवि कै, नहीं साथ दियो रघुनाथ बली कउँ।।
सग चली अबलों नहि काहु कै, साचक हों अघ अउघ दली सउँ।
चेतरे चेत अचेत महा पसु काउके संग चली न टली हुउँ।।"

विचित्र नाटक

इस ग्रन्थ को हम गुरु जी का आत्म-चरित कह सकते हैं। इसमें उन्होंने अपने पूर्व जन्म से लेकर इस जन्म तक की मुख्य २ घटनाओं का काव्य-मय वर्णन किया है। उदाहरणार्थ:—

"अब मैं अपनी कथा बखानों, तप साध तजिह विधि मुहि आनों।
हैम कूट परवत है जहाँ, सपत शृङ्ग सोभत है तहाँ।।१।।
सपत शृङ्ग तह नाम कहावा, पंडराज जिह जोग कमावा।
ताहि हम अधिक तपसि आ साधी। महाँ कालु कालका आराधी।।२।।
इह विधि करत तपसिआ भयो। द्वैते एक रूप होय गयो।।
तात मात सुर अलख अराधा। बहु विधि जोग साधना साधा।।३।।
नित जो करी अलख की सेवा। ताते भये प्रसन्न गुरुदेवा।।
तिन प्रभु जब आइस मुहि दीआ। तब हम जनम कलू महि लीआ।।४।।
चितन भयो हमरो आवन कहि। चुभी रही स्रति प्रभ चरनन महि।।
जिउ तिउ प्रभु हम कउ समझायो। इम कहिके इहलोक पठायो।।५।।

अकाल पुरुषवाच

"जब पहिले हम स्त्रिसट बनाई। दैत सुरचे दुसट दुख दाई।।
ते भुजबल बवरे ह्वै गये। पूज तप रम पुरख कहि गये।।६।।
तेह मत भकि तनक मो खापे। तिनकी ठवर देवता थापे।।
तेभी बल पूजा उरझाये। आपन ही परमेसर कहाये।।७।।
महादेव अच्चुत कहवायो। बिसन आप ही कउ ठहिरायो।।
ब्रह्म आप पारब्रह्म बखाना। प्रभ को प्रभू न किनहूँ जाना।।८।।"

तब साखी प्रभ असट बनाए। साख नमित देवेद ठहराए।
ते कहं करो हमारी पूजा। हम बिन ठाकुर अवर न दूजा ॥९॥
परम तत को जिन न पछाना। तिन ईसर तिनही कउ माना ॥
केते सूर चन्द कउ मानै। अगनहोत्र कई पवन प्रमानै ॥१०॥
किनहूं प्रभ पाहन पहिचाना। न्रात किते जल करत बिधाना ॥
केतक करम करत तरिपाना। धरम को धरम पछाना ॥११॥
जे प्रभ साख नमित ठहराये। तेहो आइ प्रभू कहिवाये ॥
ताकी बाति बिसरि जाती भी। अपुनी अपुनी परत सोभ भी ॥१२॥
जब प्रभ को न तिनै पहिचाना। तब हरि इन मनु छठ हिराना ॥
ते भी सभ ममता हुइ गए। परमेसर पाहन ठहराए ॥१३॥
तब हरि सिध साधनह राए। तिन भी परम पुरुष नहिं पाए ॥
जे कोई होत भयो जग सिआना। तिन तिन अपनो पथ चलाना ॥१४॥
परम पुरुष किनहू नहिं धायो। बैरु बाह्दु अहकारु बढायो ॥
पेट पाद आपन तेज लै। प्रभ कै पथ न कोऊ चलै ॥१५॥
जिन जिन तनक सिधि को पायो, तिन तिन अपनो राह चलायो ॥
परमेसर नहिं किनहू पछाना, मम उचार ते भये दिवाना ॥१६।
परम तत किन्हू न पछाना। आप आप भीतर उरझाना ॥
तब जे जे रिखराज बनाये। तिन पुन आपन सिम्रित चलाये ॥१७॥
जे सिम्रित के भये अनुरागी। तिन तिन क्रिया ब्रह्म की त्यागी ॥
जिन मन हरि चरनन ठहिरायो। सो सिम्रित के राहन आयो ॥१८॥
ब्रह्मे चार ही वेद बनाये। सरब लोक तिह करम चलाये ॥
जिनकी लिव हरि चरनन लागी। ते वेदन ते भये त्यागी ॥१९॥
जिन मत वेद कतेब न त्यागी। पार ब्रह्म के भये अनुरागी ॥
जिनके गूढ मत जे चल ही। भाति अनेक दूखन सो दल ही ॥२०॥

× × × ×

इह कारण प्रभ मोहि पठायो। तब मैं जगत जगम धरि आयो ॥
जिम तिन कही इनै तिम कहिहो, और किसू ते बैर न गहिहो ॥३१॥
मैं हो परम पुरख को दासा। देखन आयो जगत तमासा ॥
जो प्रभ जगत कहा सो कहिहों म्रित लोक ते मौन गहिहो ॥३२॥

हजारे के शब्द

हजारे के शब्दों की रचना गुरु जी ने कई रागों में की है। मसलन रामकली, राग सोरठ, राग कल्याण, राग तिलंग, राग काफी और राग विलावल आदि। यहाँ हम उनके हजारे के शब्दोंमें से राग सोरठ का नमूना पेश करते हैं—

"प्रभु जू तो कह लाज हमारी।
नील कठ नरहरि नारायण नील वसन वनवारी ॥ रहाउ

परम पुरख परमेश्वर स्वामी पावन पउन अहारी ॥
माधव महा जोति मधु मरदन मान मुकन्द मुरारी ॥१॥
निर्विकार निरजुर निन्द्रा बिन निर्विख नरक निवारी ॥
कृपासिंधु काल त्रै दरसी कुकृत प्रनासन कारी ॥२॥
धनुर पान धृत मान धराधर अनिविकार असिधारी ॥
हौं मति मन्द चरन शरनागति कर गहि लेहु उवारी ॥३॥

३३ सवैये

उनके ३३ सवैयों में से भी एक दो सवैया यहां इतिहास के रसिकों के लिये देना उचित समझते हैं—

"जागति जोति जपै निसवासर, एक विना मन नैंक न आनै ।
पूरन प्रेम प्रतीत सजै व्रत, गोर मड़ी मट भूल न मानै ।
तीरथ दान दया तप संजम, एक विना नहिं एक पछानै ॥
पूरन जोति जगै घट में तब खालस ताहि निखालस जानै ॥

× × × ×

आदि अभेख अछेद सदा प्रभु, वेद कतेबनि भेद न पायो ।
दीनदयालु कृपाल कृपानिधि, सत्त सदैव सर्व घट छायो ।
सेस सुरेस गणेस महेसुर, गाहि फिरैं श्रुति थाह न पायो ॥
रे मन मूढ़ अगूढ़ इसो प्रभु, तैं किहि काज कहो बिसरायो ।

× × × ×

काहू लै टोक धर्यो उर ठाकुर, काहू महेस को एस बखान्यो ।
काहू कह्यो हरि मन्दिर में, हरि काहू मसीत के बीच प्रमान्यो ।
काहू ने राम कह्यो कृष्ण काहु, काहू मनै अवतारन मान्यो ।
फोकट धर्म विसार सबै, करतार ही कउ करता जिय जान्यो ।

यह हम पिछले पृष्ठों में लिख चुके हैं कि गुरु गोविन्दसिंह जी दशम बादशाह के दरबार में अनेकों विद्वान रहते थे उनमें ५२ तो कवि ही थे । यह कवि सब ही रसों में और प्रत्येक विषय पर कविता किया करते थे इन सब कविताओं का संग्रह गुरु जी ने करा दिया था । उस ग्रन्थ का नाम "विद्याधर" रक्खा था । वह कितना बड़ा होगा, उसका अन्दाज इसी से लगाया जासकता है कि पुराने जमाने के कागज पर उसमें ६ मन बोझ था । आनन्दपुर युद्ध में अन्य सामान के साथ यह भी लुट और सरसा नदी के डूबने से जो बचा कहा जाता है उसके ६७ पृष्ठ कवि संतोषसिंह के हाथ लग गये थे उनमें से कुछ नमूने इस प्रकार हैं—

दरबारी कवि

"पूरन परख अवतार आन लीन आप,
जाके दरबार मन चित्तबै सो पाइयै ।
घटि घटि वासी अविनासी नाम जाको जग,
करता करनहार सोई दिखराइयै ॥
नौमे गुरु नन्द जग वन्द तेग त्याग पूरो,
'मंगल' सु कवि कहि मगल सुयाइयै ॥

आनन्द को दाता गुरु साहिब गोबिन्दराइ,
चाहे जो आनन्द तौ आनन्दपुर आइयें।

यह छन्द कवि मंगल जी का है वे जैसी कविता ब्रजभाषा मे करते थे वैसी ही पंजाबी मे भी कर लेते थे। उन्होंने महाभारत के शल्य पर्व का भाषानुवाद भी किया था। जो सवत १७५३ वैसाख त्र्योदशी मंगलवार को समाप्त हुआ।

कवि आलमशाह जी ने जो कि एक मुसलमान कवि थे। किन्तु कविता प्राय. हिन्दी जबान मे ही करते थे गुरु जी के सम्बन्ध मे अपनी काव्य धारा को इस प्रकार वहाया है—

"शोभा हूँ के सागर नवल नेह नागर है,
बल भीम सम सील कहालों गिनाइयें।
भूमि के बिभूखन जू. दुखन के दूखन,
समूह सुख हूँ के मुख देखे ते अघाइयें॥
हिम्मत निधान आन दान को बखाने ?
जानें 'आलम' तमाम जाम आठो गुन गाइयें।
प्रबल प्रतापी पातशाह गुरु गोविन्दसिंह जी,
भोज की सी मौज तेरे रोज रोज आइयें।

कवि हँसराम ने महाभारत के कर्ण पर्व को संस्कृत से भाषा मे किया था। अनुवाद इतना सुन्दर था। कि गुरुजी ने प्रसन्न होकर इन काम के उपहार मे उसे साठ हजार टके इनाम मे दिये थे। गुरुजी की प्रशंसा मे उसने लिखा था।

"चारो चक्क सेवे गुरु गोविन्द तिहारे पाइ,
मेरे जाने आज तूही दूजौ करतार है॥
प्रबल प्रचड खड खंड महि मडल में।
साचो पातसाहु जाको साचो सिर भार है।
कामना के दान बान जाकी हसराम कहैं,
परम धरम देखैं विवध विचार है।
परम उदार पर पीर को हरनहार,
कौन जानें कौन भांति लीनों तवतार है।

कविवर सेनापति जी भी गुरु गोविन्दसिंह जी के दरवारी कवि थे। उन्होंने चाणक्य नीति का अनुवाद किया था। गुरु जी ने उसे इतना पसन्द किया कि प्रत्येक छंद पर पांच-पांच अशर्फी सेनापति जी को इनाम मे दीं। 'गुरु शोभा' नामक पुस्तक मे सेनापति ने गुरुजी के सम्वन्ध मे लिखा था—

काहू कै मात पिता सुत है अरु
काहू कै भ्रात महा बलकारी।
काहू के मीत सखा हित साजन,
काहू के गेह विराजत नारी॥
काहू के धाम माहि निधि राजत
आपस मों करि है हित भारी।

होहु दयाल दया करि के प्रभु,
गोविन्द जी मोहि टेक तिहारी।

कवि 'हीर' ने गुरुजी के दरबार मे स्थान पाने और कुछ तत्काल धन प्राप्त करने के लिये निम्न छद कहा था:—

पास ठाडो भगरत भुकति दरेरे मोहि,
बातन फरन पाऊ महा बली बीरसों।
ऐसो अरि विकट निकट बसं निसदिन,
निपट निशक सच घेरें फेरि मीर सौं।
दारिद कपूत तेरो मरन बन्यो है आज।
करके सलाम विदा हूजे कवि "हीर' सौं।
नातरु गोविन्दसिह विकल करैगो तोहि,
टूक टूक ह्वै है गाढे दाननि के तीर सौं॥

कहा जाता है गुरुजी ने हीर के इस छद को सुनकर उसके दरिद्र को दूर कर दिया और दरबार मे भरती कर लिया।

एक और प्रसिद्ध कवि सुन्दर जी भी उनके दरबारी थे। उन्होंने गुरुजी के सम्बन्ध में इस प्रकार अपनी श्रद्धाजलि अर्पित की है।

"वेदन महि श्याम सुनो, सिन्धु मरजादा
मेरु मडल मही में गुरुआई गुन गाये हो।
सरम के सागर सपूतन के शिरमौर,
'सुन्दर' सुधाधर से सुन्दर गनाये हो।
रचन नें दान बानि बानी हरिचन्द की सी।
विदत बिनय बडे बस चलि आये हो।
तेज को तरनि तरवार को परसराम,
गुरन महि ऐसे गुरु गोविन्द कहाए हो।

इसी कवि की दूसरी चासनी —

"चढत ही वाजी, चढयो गाढे गढ चाहिवे को,
दाहिने को दुख रीझै वर ज्यो भवानी को,
आवत ही दाढी, छाती दाढी छितपालन की,
रज्ज को करैया उन्हीं को रजधानी को।
महाबाहु गुरुजी गोविन्दसिह पारथ ज्यों।
मारन को जीत लेत वसुधा बिरानी को।
पागहू को बाधिवो कछुक दिन पाछै सीख्यो,
पहिले ही सुसीख्यो सिह बाधवो कृपानी को॥

वे अपने कवियों का उत्साह बढाने के लिये खूब ही दान देते थे, इसी से तो खुश होकर एक कवि ने कहा था —

"जोलो धरन अकाश गिर, चन्द सूर सुर इन्द ।
तौलो चिर जीवै जगत, साहिब गुरु गोविन्द ।।

गुरुजी के दरबारी कवियों के नाम एक सिख लेखक ने इस प्रकार गिनाये हैं—

१ अणीराय २ अमृतराय ३ अचलदास ४ अलीहुसेन ५ अल्लू ६ आलमशाह ७ आसासिंह ८ ईश्वरदास ९ उदयराय १० कलुआ ११ कुवरेश १२ खान चंद १३ गुणिया १४ गुरुदास १५ गोपाल १६ चन्द १७ चन्दन १८ जमाल १९ टहकन २० दयासिंह २१ धर्मचन्द २२ धर्मसिंह २३ धन्नासिंह २४ ध्यान-सिंह २५ नन्दलाल २६ नन्दसिंह २७ नानू २८ निश्चलदास २९ निहालचद ३० पिंडीमल ३१ बल्लभदास ३२ बल्लू ३३ बिधीचंद ३४ बृषा ३५ ब्रजलाल ३६ बुलॅद ३७ मथुरादास ३८ मदनगिरि ३९ मदनसिंह ४० हीर ४१ हंसराम ४२ मानचंद ४३ मानदास ४४ मालासिंह ४५ मङ्गल ४६ रामचंद ४७ रावल ४८ रोशन-सिंह ४९ लक्खासिंह ५० सुक्खासिंह ५१ सुन्दर और ५२ सेनापति ।

एक प्रश्न होता है कि आखिर इतनी कुर्बानी और जाति की सेवा करने वाले गुरु गोविन्दसिंह जी को हिन्दुओं ने उतना ही ऊंचा स्थान क्यों नहीं दिया जितना कि सिख देते हैं। हम जहां तक इस सम्बन्ध मे जानते हैं। इसमे आम हिन्दुओं का कोई दोष नहीं, दोष है हिन्दुओं के पुरोहित समाज का और सिख विद्वानों का।

हिन्दुओं की बागडोर पिछली कई सदियों से ब्राह्मण पुरोहितों के हाथों मे थी और इस वर्ग ने खुद अज्ञानांधकार मे लिप्त रहने के कारण अपने स्वार्थ साधन के निमित समस्त हिन्दू जाति को वाहियात रस्म रिवाज और धर्म ढकोसलों मे फॅसा रक्खा था। गुरु गोविन्दसिंह जी ने राष्ट्र के हित की दृष्टि से और सत्य स्थापना की भावना से ब्राह्मणों के इन ढकोसलों का बहिष्कार कर दिया। उन्होंने स्पष्ट कह दिया कि ईश्वर न तो मूर्तियों मे है और न उसे तर्पण श्राद्ध करके पाया जा सकता है। अपने कर्मों को सुधारो। इस जाल से बचो। गुरु जी के इन उपदेशों से पुरोहित वर्ग को धक्का लगा। अत उन्होंने गुरु जी और उनके सजीवन सिद्धान्तों का सदैव विरोध किया। जिससे आम हिन्दुओं मे गुरु गोविन्दसिंह जी के तप त्याग और बलिदानों की स्मृति बराबर धुंधली होती गई।

सिख विद्वानो का खोट इस ओर हम इसलिए मानते हैं कि उन्होंने कभी भी उस भाषा मे जो हिन्दुओं की आम भाषा है और देवनागरी के नाम से मशहूर है। गुरु लोगों के पवित्र जीवनों और सिद्धान्तों को हिन्दू जनता के सामने पेश ही नहीं किया। जितना भी इस समय हिन्दू सिख-धर्म और गुरुओ के सम्बन्ध मे जानते है, वह उनके निज के प्रयत्नों का फल है। उन्होंने गुरुमुखी और अंग्रेजी ग्रन्थो की सहायता से अपनी मातृभाषा मे गुरुओं के जीवन उद्धृत किये हैं और ज्यों-ज्यों हिन्दी मे सिख धर्म और गुरुओं के जीवन की खूबिया छपती जाती हैं। हिन्दुओ मे उनके प्रति प्रेम और श्रद्धा बढ़ती जा रही है।

अभी थोड़े दिनों पहले (सन् १९२९ मे) महात्मा गांधी जी ने लिखा था —

"जेल मे अवकाश मिलने पर मैंने अंग्रेजी में अनुवादित गुरु ग्रन्थ साहब और गुरुओं के इतिहास का भली प्रकार अध्ययन किया। गुरुओं के देश और धर्म के हित किये गये बलिदानों को पढ़कर मैं मंत्र मुग्ध सा हो गया। अपने वर्तमान राजनैतिक आन्दोलन का कार्यक्रम मैंने अधिकतर गुरुओं के उस त्यागमय जीवन से सीखा है। और मेरा दृढ़ विश्वास है कि तलवार उठाने के बिना उस समय देश और धर्म की रक्षा हो ही नहीं सकती थी। (यंग इंडिया २८ दि० १९२९)

इससे बहुत पहिले आर्य्य समाज के प्रवर्तक ऋषि दयानंद ने भी अपने एक लेक्चर में कहा था—"आर्य समाज के प्रचार मे जितनी सफलता मुझे पंजाब में हुई है उतनी अन्य किसी प्रांत में नहीं हुई। इसका कारण यह है कि इस देश में पहले से ही सिख गुरुओं की कृपा से अनेकों भ्रम जनता मे से उड़ चुके हैं।

एक अंग्रेज इतिहासकार जनरल कनिंघम ने अपने सिख इतिहास मे उनकी महानता के प्रति सम्मान प्रकट करने वाले यह शब्द कहे थे—"उन्होंने हिन्दू जाति में पुनर्जीवन का संचार करके उसे अभेद्य रक्षा का कवच पहनाया और उसके कुसंस्कार को दूर करके उसे परमार्जित करने मे भी कोई कमी नहीं छोड़ी। वास्तव मे वे उन महापुरुषों में से थे। जिन्हें पाकर किसी भी देश की जातियाँ गहरे गर्त से निकल कर समुन्नत हो जाती हैं।"

चूंकि गुरु जी का वंश सूर्य्यवंश से मिलता है और इस बात को गुरु जी ने विचित्र नाटक में लिखा भी है। इसलिये हम उस वंश का कुर्सीनामा जितना कि हमें प्राप्त हो सका है। यहां देना उचित समझते हैं।

१ मनु	२ इक्ष्वाकु	३ विकुक्षि
४ पुरंजय	५ अनयना	६. पृथु
७ विश्वगव	८. चन्द्र	९. युवनाश्व
१०. श्रावस्त	११. बृहदश्व	१२. कुवलयाश्व
१३ दृढाश्व	१४. हर्यश्व	१५. निकुम्भ
१६ संहिताश्व	१७. कृशाश्व	१८. प्रसेनजित
१९. युवनाश्व	२०. मान्धाता	२१. पुरुकुत्स
२२. त्रसदस्यु	२३. संभूति	२४ अनरण्य
२५. हर्यश्व	२५. वसुमना	२७ त्रिधन्वा
२८ त्रियारुण	२९. सत्यव्रत	३० हरिचन्द्र
३१. रोहित	३२ हरिताश्व	३३. हरित
३४ चन्चु	३५. विजय	३६. रुरुक
३७. वृक	३८ वाहुक	३९. सगर
४०. असमंजस	४१. अंशुमान	४२. दिलीप
४३. भागीरथ	४४. सुश्रुत	४५. नाभाग
४६ अम्बरीष	४७ सिंधुद्वीप	४८. अयुताश्व
४९. ऋतुपर्ण	५०. सर्वकाम	५१. सुदास
५२ मित्रसह	५३. अश्मक	५४. मूलक
५५. दशरथ (१)	५६. इल्विल	५७ विश्वसह
५८ खटवांग	५९. दीर्घवाहु	६० रघु
६१. अज	६२. दशरथ	६३. राम
६४ लव कुश	६५. अतिथ	६६. निषध
६७ नल	६८. नभ	६९. पुण्डरीक

७०. क्षेमधन्वा	७१ देवानीक	७२. अहिनर
७३. रूरू	७४ पारियात्र	७५. दल
७६ शिच्छल	७७ उक्थ	
७८. वज्रनाम	७९. शंखनाभ	८०. व्यत्थताश्व
८१. विश्वसह	८२. हिरण्यनाभ	८३. पुष्य
८४. ध्रुवसंधि	८५. सुदर्शन	८६. अग्निवर्मा
८७. शीघ्र	८८. मरु	८९. प्रसुश्रुत
९०. सुगपि	९१. अमर्ष	९२. महस्वान
९३. विहतवान	९४. वहद्वल	९५. वृहत्क्षण
९६. गुरुक्षेप	९७. वत्स	९८. वत्सव्यूह
९९. प्रतिव्योम	१००. दिवाकर	१०१. सहदेव
१०२. वृहद्स्य	१०३ भानुरथ	१०४. सुप्रतीक
१०५. मरुदेव	१०६. सुनक्षत्र	१०७. किन्नर
१०८. अंतरिक्ष	१०९. सुवर्ण	११०. अभिवर्जित
१११. वृहद्राज	११२. धर्मी	११३. कृतंजय
११४. रणंजय	११५. संजय	११६. शाक्य
११७. शुद्धोधन	११८. गौतम	११९. राहुल
१२०. प्रसेनजित	१२१. क्षुद्रक	१२२. कुण्डक
१२३. सुरथ	१२४. सुमित्र	

नोट—पुराणों में सुमित्र से आगे कुछ पता नहीं चलता किन्तु उदयपुर में एक प्रशस्ति में कुछ पीढ़ियों का और पता चल जाता है। वैसे राजपूताने के भाटों की बनाई हुई और भी वंशावलियाँ हैं किन्तु उन्हे हम प्रामाणिक नहीं मानते।

विचित्र नाटक में गुरु जी ने लव को लाहौर का राजा और कुश को कुशावती का राजा बताया है। इनका समर्थन पुराण भी करते हैं। गुरु गोविन्दसिंह जी ने जिस प्रकार अपने वंश का वर्णन किया है वह हम पिछले अध्याय२ में दे चुके हैं। न तो लवकुश से आगे क्रमबद्ध रूप मे कालकेतु और कालराय जी की पीढ़ियों तक का पता चलता है और न सोढ़ीराय से आगे गुरु रामदासजीके पिता तक की पीढ़ियों का, गुरु रामदास जी से गुरु गोविन्दसिंह जी के साहबजादों तक का वर्णन इस ग्रंथ मे है ही।

तेरहवाँ अध्यय

बलिदान-कथा

यह ठीक है कि संसार के अन्य वड़े २ धर्मों की अपेक्षा सिख धर्म को स्थापित हुये अभी लगभग साढ़े चार सौ वर्ष का ही समय हुआ है किन्तु इतने ही अल्प समय मे भारत और भारत के बाहर भी उसने जो स्थान प्राप्त कर लिया है। उसे देखते हुये यह बात कम गौरव की नहीं है।

किन्तु सिख धर्म को यह गौरव और इतना ऊंचा स्थान कुछ यो ही नहीं मिल गया है, इसके पीछे एक इतिहास है और उस इतिहास का प्रत्येक पृष्ठ भरा पड़ा है उन हुतात्माओं की करुण और हृदय हिला देने वाली कथाओं से जिन्होंने अपने प्यारे धर्म का माथा ऊंचा करने के लिये हॅसते २ अपने को वलिदान कर दिया था।

सिख धर्म मे वलिदान का यह सिलसिला पाचवे पातशाह गुरु अर्जुनदेव जी से आरम्भ होता है।

अर्जुनदेव जी का वलिदान

इसी इतिहास के सातवे अध्याय मे हम गुरु अर्जुनदेव जी के विशद जीवन और पवित्र वलिदान पर काफी प्रकाश डाल चुके है। इसलिये यहॉ अधिक लिखने की आवश्यकता नहीं समझते।

वादशाह जहॉगीर आपसे वहुत चिढ़ता था उसने अपने आत्म-चरित (तुजक जहॉगीरी) मे लिखा है कि वहुत दिनों से मेरे मन मे प्रवल आकाक्षा थी कि या तो सिख गुरु के काम (धर्म प्रचार) को वन्द करदूं या उसे इस्लाम धर्म मे दाखिल करूं।

पंजाव मे पैदा हुये इस सिख धर्म के विरोधियों की कमी न थी। जिनमे हिन्दू और मुसलमान दोनो शामिल थे। जिन्होंने एक से अधिक वार, गुरु जी के धर्म प्रचार के विरुद्ध शिकायते की थीं। इनके साथ ही चन्दूशाह भी शामिल हो गया। जिसकी लड़की की सगाई गुरुजी ने अपने पुत्र से नहीं की थी। और वह वदला लेने का मौका देख रहा था।

खुशरो की वगावत के समय शिकायत का वहाना मिल जाने पर चन्दूशाह ने वादशाह को खूब ही भड़काया। जिससे चिढ़ कर वादशाह ने गुरुजी को लाहौर मे बुलाकर वन्दीगृह मे डाल दिया। जहा उन्हे असह्य यंत्रणायें दी गईं। जिनका कि विस्तार वर्णन पीछे के पृष्ठो मे किया जा चुका है।

काफी कष्ट देने के वाद हाकिमों को सतोष नहीं हुआ तो तजवीज यह की कि 'अव इस गुरु को रावी के पानी मे डुवकी दी जाय. जिससे शायद जख्मों पर पानी लगने की पीड़ा से तड़फ कर अपने पन

से डिग जाय और इसके बाद भी अडिग रहे तो गाय की कच्ची खाल मे मढ़वा दिया जाय।"

रावी मे डुबकी देने पर उनका प्राण इस नश्वर शरीर को छोड़ गया।

उन दिनों रावी लाहौर के किले से टक्कर लेती थी। अब तो दूर चली गई है। सिखो ने रावी के किनारे पर गुरु जी की स्मृति मे एक देहरा बनवा दिया, जो देहरा साहब के नाम से मशहूर है। यह स्थान बडा सुन्दर है। प्रति वर्ष जेठ सुदी ४ को बड़ा भारी मेला लगता है। जिसमे लाखों सिख इकट्ठे होते हैं।

वहीं महाराजा रणजीतसिंह जी की समाधि भी बनी हुई है। इस पवित्र स्थान की मैंने भी यात्रा की है। खेद है कि अब यह स्थान पाकिस्तान मे चला गया है।

नवे पातशाह श्री गुरु तेगबहादुर जी के साथ पॉच सिख देहली गये थे और वे पॉचों भी गुरु जी के साथ ही जेल मे डाल दिये गये। दीवान मतिराम और भाई दयालदास उन्हीं पॉचों सिखों मे थे।

दीवान मतिराम

जेल मे भूख प्यास और अनेक यन्त्रणाओं के कारण सिख बहुत दुखी थे। किन्तु जब यह देखते कि गुरु तेगबहादुर जी भी तो उन्हीं की भॉति कष्ट पा रहे है। जो कल तक राजा महाराजाओं के जैसे आनन्द मे थे। यह सोचकर विचारे अपने कष्टों को भी भूल जाते थे, किन्तु प्रसुप्त ज्वालामुखी भी एक न एक दिन तो भड़क उठता ही है, सहनशीलता की भी हद होती है। आखिर एक दिन दीवान मतिराम ने गुरु जी से कहा, मुझे ऐसा आता है कि दिल्ली का पाट से पाट मिला दू। मुगल सल्तनत का नाम निशान तक न रहने दू। सिख वीर का हृदय जो था। सदैव से स्वाभिमानी वायुमडल मे रहा था। भावुकता मे जो भी मन मे आया मतिराम ने कहा।

जब यह बातें काजी तक पहुँची तो उसने फिर उनपर रंगत चढ़ाकर बादशाह औरगजेब के पास जाकर कह दीं। बादशाह सुनते ही लाल-पीला होगया और उसने पॉचों बन्दियों को मय गुरु जी के, दरबार मे बुलाया।

दरबार मे बादशाह ने मतिराम को संबोधित करते हुए कहा कि मैं तुम्हे मुसलमान बनाना चाहता हूँ और तुम मुसलमान नहीं बनते हो तो फिर देखता हूँ। तुम जो शेखी जेल मे मुगल सल्तनत को तहस-नहस करने और मुझे मजा चखाने की मार रहे थे, उसे पूरी करते हो या नहीं।

भाई मतिराम ने इस आशय का जवाब दिया, मैं मुसलमान प्राण रहते कभी भी नहीं बन सकता हूँ। जो दवाव और लोभ लालच से मुसलमान बनता है उसे क्या ईमानदार कहा जा सकेगा? यदि इस प्रकार का कोई मुसलमान है तो, मैं कहूँगा वह बेईमान है।

रही शेखी मारने की बात, वह शेखी नहीं है जिनके हृदय में बल है और जो सचाई पर आरूढ है, वे एक मुगल सल्तनत क्या हजारों सल्तनत का उलटफेर कर सकते हैं। इस समय मुगल शासन अत्याचारी शासन है। इसे नष्ट करने के लिये सबको जिसके कि दिल में दीन और दुखियों के प्रति प्रेम है। यही वाक्य कहने चाहिये।

वह बादशाह भाई मतिराम जी के इन शब्दों को भला कब बर्दास्त कर सकता था? जिसका राज्य केवल आतंक पर ही निर्भर था और चूंकि इन शब्दों मे आतंक को उड़ा देने की शक्ति थी। अत उसने तुरन्त दिया कि इसी समय जल्लादों को बुलाकर आरे से चीरकर इसके दो टुकड़े कर दिये जाँय। यह काम हुक्म अवाम के सामने हो और यहीं हो जिससे यहां बैठे हुये लोग देखले कि औरङ्गजेब के सामने जवान न सभालकर बोलने वाले की क्या दशा होती है।

मनुष्य वैसे राक्षस और शैतान हो सकता है किन्तु इतिहास साक्षी देता है कि यह मनुष्य ही शैतान और राक्षस है। भाई मतिराम के सिर पर आरा चलने लगा। वहाँ जो शैतान थे वह खुश हो रहे थे और जिनमे इन्सानियत थी वे मुँह फेर कर आँखो से आँसू बहा रहे थे।

आरा चलने लगा। लहू की धारा बहने लगी। किन्तु भाई मतिराम अचल और गंभीर किन्तु प्रसन्न मनसे जप रहे थे--हे अकाल पुरुष मै तो क्या हूँ, सब कुछ तो तूही है।"

जिस समय दीवान मतिराम जी को आरे से चीरा जारहा था। भाई दयालदास जी से नहीं रहा गया और उन्होंने ओजस्वी शब्दों मे बादशाह को संबोधित करते हुए कहा, "इस समय औरङ्गजेब तेरा यह आरा भाई मतिराम के सिर पर नहीं किन्तु तैमूरिया खान्दान की सल्तनत के सिर पर चल रहा है। तू इस तरह के जुल्म से अपना ही नहीं अपनी भावी संतान का अहित कर रहा है।

भाई दयालसिंह

अपने आतंक को इस प्रकार भंग होते देखकर औरङ्गजेब ने कहा, इसे तेल के गर्म कड़ाहो मे पटक देने की इजाजत देता हूँ। जल्लादों ने दौड़ कर भाई दयालसिंह जी की भी मुश्कें कसलीं।

लाल भट्टी को जिस पर खौलते हुए कढ़ाहों से उड़ने वाली लपटे दस दस कदम तक मनुष्यो के शरीर को झुलसाती थीं, देखकर भाई जी ने अकाल पुरुष की अस्तुति आरंभ की। इसके बीच मे ही उन्हे जल्लादों ने कड़ाह मे फेंक दिया।

गुरु तेगबहादुर जी के साथ जो अन्य सिख थे। वह अपने साथियों की नृशंस मृत्यु देखकर निहायत रन्जीदा हुये किन्तु फिर उन्होंने यह कहकर अपने को सभाला कि वाहि गुरु जी की मर्जी के सामने आनन्दित रहनेवालों के मन सदा अटल और अडोल रहते हैं।

गुरु तेगबहादुर

बन्दी दशा मे भी गुरु तेगबहादुर जी जेल के लोगों को उपदेश दिया करते थे। उनका साराश इस प्रकार है .—

(१) मनुष्यों का ईश्वर ही सबसे बडा हितू और सहायक है अत उसी के चरणों मे हर समय मन लगाये रखना चाहिये।

(२) मनुष्य की स्वाभाविक प्रवृत्तियाँ पाप की ओर जाती हैं। अत महात्मा लोगों के सत्सग द्वारा इन्हे उस पथ से मोड़ने का प्रयत्न करना चाहिए।

(३) अपने विश्वास पर से विचलित होनेसे तो मरजाना कहीं अधिक अच्छा है। आपके बलिदान की पूरी कथा पिछले पृष्ठों (ग्यारहवें अध्याय) मे दी हुई है।

इनका भी विस्तृत वर्णन पिछले अध्याय मे कर चुके है। यहाँ तो केवल उनके उन वाक्यों के आशय को रख रहे हैं, जो पंजाबी भाषा के एक लेखक ने लिखे है। जब वजीरखाँ ने उनके सामने मुसलमान होने का प्रस्ताव रक्खा तो बच्चों ने कहा —

जोरावरसिंह, फतहसिंह

"मौत तों उह्य डरे जो सिरजनहार थो बिहडिया होय।
जिन्हन दे हिरदै बिच परमेश्वर दा प्यार है॥
उन्नान लई मौत सच्चा जन्म है।"

अर्थात्—जिसने सिरजनहार परमात्मा को छोड़ दिया है मरने से उसे ही डरना चाहिए। जिसके हृदय मे ईश्वर का प्रेम है। उसके लिये तो मरना नया जन्म है।

नवाब ने इन दोनों सुकुमारों को अमानुषी यन्त्रणायें देने के बाद जल्लादों से जिबह करा दिया था।

स बीबी को पठानों ने बरछों पर टागकर जलती हुई अग्नि शिखा में पटक दिया था। इनका कसूर केवल इतना था कि चमकौर मे जो सिख लड़ाई मे मारे गये थे। उन सबकी लाशों के इकट्ठा करके और उनपर अपने घर से काठ लगाकर सस्कारार्थ अग्नि लगा दी थी। अपने सहधर्मियों के साथ इतनी हमदर्दी तो हर किसी के दिल में होनी ही चाहिए। किन्तु आततायी पठान इसे भी वर्दाश्त न कर सके और एक अवला पर बीसियो बर्छियां एक साथ झुक गई और उन्हे वर्छों पर टागकर उसी जलती हुई चिता मे फेंक दिया।

बीबी सरनकौर

यह बीबी सरनकोर वहीं के एक जमींदार की लड़की थीं।

महावीर बन्दासिंह जी की वीरता तथा बलिदान

महावीर बन्दासिंह जी का जन्म काश्मीर के अन्तर्गत पूछ रियासत के राजौडी नामक गॉव मे हुआ था। आप राजपूत थे। आपकी जन्म तिथि कार्तिक शुक्ला त्रियोदशी सवत १७२७ विक्रमी बताई जाती है। बालकपन का नाम आपका लक्ष्मणदेव था और पिता का नाम रामदेव था।

पिता ने आपको कुलाचार के अनुसार बाल अवस्था से ही शस्त्र सचालन, घोडे की सवारी और मृगया आदि क्षत्रियोचित गुणों मे पूरी तरह शिक्षित व दीक्षित कर दिया था।

ऐसा बहुत बार देखा गया है कि मनुष्य के जीवन मे आकस्मिक घटनाओं से एकदम ऐसा परिवर्तन हुआ है कि जिसकी पहले से कोई भी कल्पना नहीं की जा सकती थी। ऐसी ही एक घटना ने लक्ष्मणदेव को वैरागी बना दिया। उन्होंने जब कि वे शिकार खेल रहे थे, एक हिरणी को जख्मी किया वह हिरनी गर्भवती थी, उसके पेट से बच्चे निकल पडे और लक्ष्मणदेव ने उन्हे तड़प तडप कर मरते देखा तो बस उसी समय उनमे परिवर्तन होगया और संसार से घृणा हो गई। उन्होंने अपने हथियार खूटी पर टांग दिये। जब कि वह रात दिन उसी दिन की घटना को लेकर चिन्ता किया करते थे। उन्हे जानकी-प्रसाद नामी एक साधु मिला और उसके उपदेश से १६ वर्ष की उम्र में वह घर छोडकर निकल पडे। राजौडी की बजाय कसूर के पास रामथम्मन गाव के एक डेरे[1] मे रहने लगे।

एक बार साधुओं की मडली ने नासिक की यात्रा करने का विचार किया। माधवदास भी उनके साथ गये। नासिक से जब वह मंडली उस स्थान पर आई जो पचवटी कहलाता है तो माधवदास ने उस सुन्दर वन में ही रह कर तप करना निश्चय किया और वह अपनी मडली के साथ न लौट कर वहीं तप करने लगे। कहा जाता है कि यहॉ पर आपने १४-१५ वर्ष तक घोर तप किया। यहॉ एक औघड-नाथ जोगी था, बीमारी के समय में माधवदास ने उनकी बहुत सेवा की। औघड़ अच्छा तो न होसका किन्तु अपनी जत्र मंत्र और योग सम्बन्धी सारी विद्या और पुस्तकें संत माधवदास को दे गया।

एक स्थान पर इतने दिनों रहने के कारण सत माधवदास जी के मन मे दूसरी जगह चलने की आई और वह गोदावरी के किनारे नदेड़ नामक स्थान के पास एक जगल मे रहने लगे। यहॉ उनकी इतनी प्रसिद्ध हुई कि हजारों ही मनुष्य उनके शिष्य हो गये और उनसे ज्ञान चर्चा सुनने लगे। उनके जादू टोने के कारण लोग उन्हे जबर्दस्त चमत्कारी भी मानने लगे थे।

१ पजाब में सतलोगों के रहने के स्थान को प्राय डेरा कहते है। यहां रामदास नामी वैरागी के चेला होगये और अब नाम बजाय लक्ष्मणदेव के माधवदास होगया।

यह हम अध्याय बारह मे बता चुके है कि बादशाह बहादुरशाह का साथ छोड़ कर गुरु गोविन्द-सिंह जब नदेड़ मे पहुँचे तो वहा संत माधवदास जी से मिले थे, गुरुजी के उपदेश ने उनके जीवन प्रवाह को एक दम फेर दिया और वह गुरु जी से पाहिल लेकर वन्दासिंह बन गये।

श्री राधामोहन गोकुल जी ने उनका यही नाम लिखा है हालांकि दूसरे लेखक उन्हे बन्दा बहादुर और गुरुबख्रासिंह लिखते आ रहे हैं। हम भी उनका सिख बनने के बाद का नाम बन्दासिंह[1] ही ठीक मानते हैं। राधामोहन गोकुलजी ने "गुरु गोविन्दसिंह जी" नामक पुस्तक मे जो आज से पैंतीस वर्ष पहले सन् १९१८ ई० मे छपी है। बन्दा की जगह बन्दासिंह लिखा है।

बन्दासिंह जिस समय दक्षिण से रवाना हुआ तो गुरु जी ने उसे एक नगारा एक निशान और पांच तीर दिये। साथ मे उन्होंने अपने पाच प्यारे बाबा विनोदसिंह, काहनसिंह, बाजसिंह, दयासिंह और रामसिंह जी को भी कर दिया। इसके अलावा २० आदमी और दिये इस प्रकार वह खालसा के एक कमान्डर के रूप मे पंजाब को रवाना हुआ। साथ उस हुक्मनामे के जो गुरु जी ने उसे सिखों के नाम लिखकर दिया था।

कुछ ही महीनों मे बन्दासिंह अब अपने साथियों के साथ देहली प्रान्त की सीमा पर पहुँच गये। यहाँ उन्होने अपनी कूच करने की रफ्तार को जरा ढीला कर दिया। क्योंकि अपने उद्देश्य की पूर्ति के लिये उसे धन की आवश्यकता थी। अत वह कुछ समय के लिये सेहड़ी और खोदा गावों के निकट ठहर गया जो कि परगना खरखोदा मे है। वहाँ बैठ कर उसने गुरु जी के दिये हुये पत्र की नकल आस पास के सिखों के पास भेजी। जिसके द्वारा उसने सिखों से अपील की थी कि वे मुगल हुकूमत और वजीर खॉ फौजदार सरहिन्द तथा सुच्चानन्द जैसे लोगों के अत्याचार को मिटाने मे उसे सहयोग दे और आकर उसके पास संगठित हों। उसने उन पत्रों मे गुरुओं साहबजादो की नृशंसता पूर्वक की गई कुर्बानी और हजारों सिखों पर किये जाने वाले अमानुषी जुल्मों की ओर भी संकेत किया था।

बन्दासिंह के इन पत्रों को पाकर हजारों ही सिख और अनेकों सरदार उसके पास इकट्ठे हो गये। भगतू खान्दान के भाई फतहसिंह, भाई रूपा के वंशज कर्मसिंह और धर्मसिंह तथा निधासिंह और चूहरसिंह सब से पहले प्रमुख सरदार थे, जो बन्दासिंह से आकर मिले, धन और जन दोनों चीजे जुटाई। इनके अलावा आलीसिंह और मालीसिंह आदि भी अनेकों वीर सिख आ शामिल हुए। यद्यपि स्वयम् न आ सके परन्तु फूल के वंशज चौधरी रामसिंह और तिलोकसिंह ने खुले दिल से जन और धन की सहायता की।

इस प्रकार कुछ महीने तक बन्दासिंह अपनी शक्ति को बढाने मे लगा रहा। जब काफी शक्ति हो गई तो समाना पर चढ़ाई करने के लिये कूच कर दिया। यहाँ का हाकिम सैयद जलालुद्दीन था। उसने गुरु तेगबहादुर को कत्ल कराने मे खूब कोशिश की थी। और गुरु बालकों के पीड़क खासलबेग और बासलबेग यहीं के थे।

सन् १७०९ ई० की २६ नौम्बर के प्रात काल ही बन्दासिंह और उसके साथियों ने समाना पर धावा किया। और जाते ही कामयाबी हासिल की। इस मैदान मे दस हजार जाने गई और यहाँ

१. सुरेन्द्र शर्मा के 'गुरु गोविन्दसिंह' नामक पुस्तक में भी वन्दासिंह ही नाम लिखा है। पथ प्रकाश पाचवां सस्करण पृ० ८५, ८६

पर सरकारी खजाने में से बहुत सा माल सिखों के हाथ लगा। शाही इमारतें तोड़ फोड़ डाली गई। सैकड़ों पठान मारे गये। सैकड़ों प्राण लेकर भाग गये।

समाना से सीधे घुड़ाम, ठसका, तासका, शहाबाद और मुस्तफाबाद को लूटता हुआ बन्दासिंह का दल कपूरी पहुँचा। यह स्थान उसे बिना दिक्कत के विजय हो गये थे कपूरी में कदमुद्दीन नाम का फौजदार था, जो बड़ा कठोर और तासुबी था। उसने अनेकों हिन्दू-स्त्रियों के सतीत्व को नष्ट किया था। शायद ही कोई नवविवाहित उससे बचती थी और उसके घुड़सवार हिन्दू बरात में हिन्दू स्त्री को घूरने और दुलहिनों को छीन लेजाने के लिये इधर उधर चक्कर लगाते रहते थे और कदमुद्दीन इस प्रकार इलाके गैर मुस्लिमों के लिये आतंकवादी बन रहा था। बन्दासिंह के पास उसकी शिकायत पहुँच चुकी थी। इस तरह की हालत को एक सिख कब तक बर्दाश्त कर सकता था। अत बन्दासिंह ने उस समय तक कुछ और न करने का फैसला कर लिया जब तक कि वह कदमुद्दीन को पूरी सजा न देले। उसने कपूरी पर हमला किया। कदमुद्दीन के दुराचार के केन्द्र महलों में आग लगा दी गई और उसके अत्याचार से संग्रह किये हुये धन को लूट लिया गया।

इसके बाद साढोरा पर हमला किया गया। यहाँ उस्मानखां हाकिम था। यह बड़ा अत्याचार कर रहा था। यहाँ तक कि हिन्दुओं को अपने मुर्दे जलाने की भी आज्ञा न थी। मुस्लिम संत सैयद बदरुद्दीनशाह को केवल इस कारण मरवा डाला था कि उसने भंगानी की लड़ाई में गुरु गोविन्दसिंह की सहायता की थी। अभी तक के उसके किये का फल चखाने के बाद बन्दासिंह की फौज दुआबे और माझा की तरफ बढ़ी।

इस समय बन्दासिंह एक टेढ़ा रास्ता अख्तयार कर रहा था ताकि माझा और दुआबा के सिख जिनका कि रास्ता सतलज पर शेर मुहम्मद मलेर कोटले ने रोक रक्खा था उसकी फौज में मिलकर सरहिन्द के हमले में शामिल हो सकें। जब उसने छत पर अपना कब्जा किया तो उधर से आ रहे सिख मलेर कोटलियों को रोपड़ के नजदीक शिकस्त देकर खरड़ और बनूर के दरम्यान उसकी सेना से आ मिले।

"इसी संवत १७६७ के फागुन में सरहिन्द पर चढ़ाई कर देनी है। आप अपने मेलजोल के और परिचित लोगों के पास खबर भेजकर बहुत सारे आदमी बुला लीजिये। इस पवित्र काम में सभी का फर्ज है कि हमारा साथ दें।" बन्दासिंह जी की यह आज्ञा बिजली की भांति सारे इलाके में फैल गई। सिख सज सज कर और हथियारों से लैस होकर उनके पास आने लगे। इधर नवाब वजीरखां को भी पता लग गया था। उसने भी तैयारी करनी शुरू कर दी थी। पेशकार सुच्चानंद का भतीजा सरहिन्द अन्दर किन्हीं कारणों से रुष्ट होकर दस हजार आदमियों के साथ बन्दासिंह के पास उनकी ओर से लड़ने के लिये हाजिर हुआ। जिसे बन्दासिंह ने रख लिया। हालांकि उसका मतलब सिखों को धोखा देने वाला खेल खेलना था।

२२ मई सन् १७१० ई० में सिख फौजों ने सरहिन्द की ओर कूच किया। सरहिन्द केवल एक ही मंजिल रह गया था कि नवाब भी अपनी सेनायें लेकर सामना करने को किले से निकल आया। सरहिन्द से दो कोस के फासले पर चप्पड़चिड़ी के पास लड़ाई हुई। बहुत दिनों से आम रिवाज यही हो रहा था कि मुसलमान लोग ही आक्रमण किया करते थे। यह पहला मौका था। जब बन्दासिंह उनके ऊपर चढ़कर आ रहा था। इससे पठानों के दिल दहल गये थे। दूसरे उन्होंने यह भी सुन रक्खा था कि मुसलमानों के हार जाने पर भी उनकी खैर नहीं होगी। बन्दासिंह उन्हें बुरी तरह से लुटवा लेगा। इन सब बातों को सोच कर वे बड़े डट कर लड़े। दोपहर तक बड़े जोरों की लड़ाई हुई। खून से जमीन तर हो गई। लाशों के ढेर

लग गये। सिख लोग जल्दी ही मामला साफ करने के इरादे से बड़े वेग के साथ लड़ रहे थे। इसलिये लड़ते-लड़ते उनके हाथ फूलने लगे। बावा विनोदसिह ने देखा कि सरहिन्द से आये हिन्दू सैनिकों के भागने से सिखो के पैर कच्चे पड़ जाने का डर है उन्होंने कहा, आप भागने के लिये नही आये। हमारे सामने गुरु गोविन्दसिंह के छोटे २ बच्चों की चिताये जलती दिखाई दे रही है। हमारे लिये यह धर्म है। इतने मे पीछे के हिस्से से बन्दासिंह आगे आये और उन्होंने ललकार कर कहा आओ वीरो आगे बढ़ो। तुमने सिंहिनियों का दूध पिया है, इन कायरों पर एक साथ हल्ला क्यों नहीं बोल देते ? सिख एक हुंकारा भर कर पिल पड़े। बन्दासिंह जी ने भी उन पठान सेनापतियों पर बाणों की वर्षा आरम्भ कर दी जो फौज का संचालन कर रहे थे। एक दो तीन इस तरह सैकड़ों को जमीन पर बिछा दिया। अब क्या था पठान सेना भाग निकली। भाई फतहसिह ने वजीरखा को अपनी तलवार के घाट उतार दिया। वजीरखां के गिरते ही सारी पठान सेना भाग गई। सत श्री अकाल के नारों से आसमान गूंज उठा और सिखों ने शहर मे प्रवेश किया। यह घटना सन् १७१० की २४ मई की है।

पठान सैनिक लड़ाई से तो भागे ही थे सरहिन्द नगर से भी भागने लगे। बन्दासिंह जी का आतंक ही ऐसा था।

सिख सेनाऐ सरहिन्द मे घुसीं। लूट आरम्भ हो गई। बराबर तीन दिन तक लूट होती रही। जिन घरों के अड़ियल दरवाजे थे। उनमे सिखों ने आग लगा दी।

गुड़ानी के रामराय मसन्द को भी दंड दिया गया क्योंकि उसने गुरु गोविन्दसिह जी के रागी बुलाकासिंह की तौहीन की थी।

सन् १७०४ ई० मे शेरमुहम्मद हाकिम मालेर कोटला बीवी अनूपकौर नाम की एक हिन्दू स्त्री को सिरसा नदी की गडबड़ मे अपहरण कर लाया था किन्तु उसने अपने सतीत्वकी रक्षा करने के लिये अपने जिगर मे कटार घोंपली थी। शेर मुहम्मद ने उसे कब्र में दफनवा दिया था। बन्दासिंह के बहादुर सिखों ने उस कब्र को खोद कर बीवी अनूपकौर का संस्कार कर दिया। उन्होंने मालेर कोटला के नवाब को तो इसलिये दंड देने से छोड़ दिया कि उसने सरहिन्द मे गुरु बालको के वध के समय इन्सानियत प्रकट करते हुये, उन्हे खुद मारने से इनकार कर दिया था और 'हाय' का नारा मारते हुये उस अत्याचारी दरबार से उठ आया था। इसी कृतज्ञता के प्रकाशन के लिये सिखों ने मालेर कोटला को छोड़ दिया।

यहाँ से एक मंजिल पर जगराँव नाम का नगर था। यहाँ कल्यानराय नाम का खत्री हाकिम था। वह डरके मारे अपने आप ही महावीर बन्दासिंह जी की सेवा मे हाजिर हुआ और पाच हजार रुपये भेट मे दिये।

रायकोट और दूसरे कई शहरों ने मुकाबिला कर सकने की ताकत न होने के कारण बन्दासिह जी की अधीनता स्वीकार कर ली। इस तरह सरहिन्द का कुल इलाका बन्दासिंह के हाथ मे आ गया।

चूंकि अब तक काफी मुल्क महावीर बन्दासिह के कब्जे मे आ चुका था। अत उसने उस विजित प्रदेश का मजबूत प्रबन्ध भी किया। बाजसिंह को जो कि नदेड़ से ही उसके साथ आया था। सरहिन्द का सूबेदार मुकर्रिर किया। अलीसिंह को उसका नायक बनाया। फतहसिह को समाना मे नियुक्त कर दिया। रामसिह और विनोदसिंह को थानेश्वर और उससे सम्बन्धित इलाके का संयुक्त चार्ज दिया।

इन समस्त परगनों पर सिखों का एकाधिकार हो गया था। जो सिखों के पंथ द्वारा शासित समझा जाता था।

हस्तलिखित पुस्तकों के आधार पर विनायक अर्विन अपनी पुस्तक 'लैटर मुगल' में लिखता है—"सिखों के अधिकार में आये हुये परगनों में देर से चली आ रही, पुरानी रस्मों को बिल्कुल ही उलट दिया। एक नीच जाति के भंगी या चमार को जिसे कि हिन्दू लोग बहुत ही अधम समझते हैं। केवल घर छोड़कर गुरु की शरण में आकर सिख धर्म मे दीक्षित ही होना होता था कि वन्दासिंह की ओर से उसे अपने ही इलाके का हाकिम बनाकर वापिस भेज दिया जाता था। जब वह अपने इलाके की हद मे दाखिल होता तो बड़े २ अमीर और अच्छे घरानों मे उत्पन्न हुये कुलीन उसकी आवभगत करने के लिये और हाथ जोडकर उससे हुक्म चाहते थे। किसी को हौंसला न पड़ता था कि उसकी आज्ञा का उलंघन कर सके और वह लोग जो रणभूमि मे शत्रु के मुकाबिले पर डट जाने के लिये तैयार हो जाते थे। इतने साहसहीन हो गये कि वह जवान हिलाने से भी डरने लगे।

इस तरह अनेकों स्थानों की विजय और शासन व्यवस्था के साथ ही वन्दासिंह ने सिख समाज को वढाने का कार्य्य भी जारी रक्खा। वह हिन्दू और मुसलमान दोनों को ही सिख वनाता था। हिन्दू तो धडा धड़ सिख वन रहे थे। किन्तु उसने अनेकों मुसलमानों को भी सिख धर्म की दीक्षा दी। सिख होने वाले लोगों के नामान्त मे वह सिंह लगाता। दीनदारखा को सिख वनाकर उसका नाम दीनदारसिंह रक्खा इसी प्रकार सरहिन्द के खवरनवीस नासिरुद्दीन के सिख वनाने पर उसका नाम मीर नासिरसिंह रख दिया। उसके समय मे अनेकों मुसलमानों ने सिख धर्म को स्वीकार किया। (दस्तार-उल-इन्शा ६ठी और रुकात-ई अमीनुद्दौला ५वीं जिल्द)।

इस समय वन्दासिंह की शक्ति काफी वढ़ गई थी और इलाका भी वहुतेरा उसके हाथ आ चुका था जिससे अच्छा खासा राज्य वन गया था।

उसने मुखलिस के पुराने किले को जो कि साढोरा के पास है। नये सिरे से मरम्मत कराया और उसका नाम लोहगढ़ रक्खा और इसे अपनी राजधानी का रूप दिया। यहीं से समस्त प्रदेश का प्रवन्ध वन्दासिंह करने लगा। यहाॅ पर एक वड़ी सेना और साथ ही युद्ध की सामग्री भी रक्खे जाने लगी।

इस प्रकार राजधानी के कायम हो जाने पर वन्दासिंह ने गुरु नानक और गोविन्दसिंह के नाम का सिक्का भी चलाया। जिस पर पारसी भाषा मे "सिक्का जद वर हर दो आलम तेगे नानक वाहिव अस्त। फतह गोविन्द सिंह शाह शाहान फजल सच्चा साहव अस्त।"

इसमे तमाम धन सम्पति का दाता गुरु नानक। ईश्वर कृपा से और सर्व विजय का प्रदानकर्ता गुरु गोविन्दसिंह जी को वताया गया है।

इसी तरह उसने अपने हुक्मनामों या फर्मानों पर मुहर आदि लगाने के लिये एक मुहर भी जारी की थी। उस मुहर पर यह शब्द लिखे रहते थे।

"देग तेग व फ़तह व नसरत वेद रग।
यापत अज नानक गुरु गोविन्दसिंह।"

अर्थात—गरीव लोगों के लिये देग और निवलों की रक्षा के लिये तेग और सर्व प्रकार की विजय और कामयावी सदैव चिरजीव रहे। जोकि गुरु नानकदेव और गुरु गोविन्दसिंह से प्राप्त हुई है।

इसके सिवा वन्दासिंह ने मुगल साम्राज्य के उन क्षीण दिनों में एक सवत का प्रचलन किया जो कि सरहिन्द की विजय के दिन से आरम्भ होता था।

इन दिनों सिख वन्दासिंह में अटूट स्नेह करने लग गये थे। वे उसे गुरु गोविन्दसिंह की एक

बड़ी देन समझने लग गये थे। बन्दासिंह के जारी किये हुये सिक्के और मुहरे गुरु नानक और गुरु गोविन्दसिंह के लिये उसके दिल मे भरी हुई अटल श्रद्धा की जीती जागती यादगारे है। जिनको कि वह देग तेग और बेखटक फतह का भंडार समझता था।

विजय और धर्म प्रचार के इरादे से महावीर बन्दासिंह और उसके साथियो ने जमुना पार करके सहारनपुर पर धावा किया था।

दल के साथ जब सहारनपुर मे आए तो इधर के एक प्रतिष्ठित मुसलमान रईस पीरजादा मुहम्मद खां ने आसपास और सुदूर के मुसलमानो को इकट्ठाकर लिया। महावीर बन्दा के पास इस समय थोड़े आदमी बताए जाते है और मुसलमान इकट्ठे हो चुके थे कई हजार। इस पूरी सेना का सचालक था अमीनाबेग। वैसे मुसलमानों ने सहारनपुर के रईस को ही हाकिम बनाना चाहा था किन्तु वह परिवार समेत दिल्ली को खिसक गया था।

पहले गालिबखा ने एक बड़े जत्थे के साथ महावीर बन्दा के छटे हुए जवानो पर हमला किया, परन्तु महावीर बन्दासिंह जी के तीरो की मार से वह भाग खड़ा हुआ, इससे सिखों की और भी हिम्मत बढ़ गई और उन्होंने फौज के उस हिस्से पर हमला किया जो निश्चिंतता से खड़ा था। अचानक के हमले और बहादुर बन्दासिह के तीरो की होश भुला देने वाली वर्षा से सारा ही कटक भाग खड़ा हुआ। सहारनपुर की विजय सन् १७१० ई जौलाई मे हुई।

इसके बाद इस दल ने नानौता की ओर कूच किया। यहाँ के नानक पथी गूजरो ने सिखों की सेना मे शामिल होकर शेखजादों से अपने पुराने बदले निकाले। कहते है कि मुहम्मद के आगन मे ३०० शेखजादे उनके हाथ से मारे गये। उस समय से इस स्थान का नाम ही फूटाशहर पड़ गया। जिसे आज भी फूटाशहर ही कहते है।

यहां से जलालाबाद पर हमला किया गया जहाँ कि जलालखां नाम का फौजदार था। जमाल खा और पीर खाँ उसके सहयोगी थे। परन्तु बन्दासिंह उत्तर की ओर बहुत जल्द लौट जाना था अत वह यहाँ से सुल्तानपुर और जालंधर के परगनों का संशोधन करने चल पड़ा।

इन लड़ाइयों और विजयो के बाद बन्दासिह का दल पंजाब की ओर मुड़ा।

चंद दिन के विराम के बाद ही बन्दासिह के विजयी सैनिक माझा के रहे-सहे इलाकों की विजय के लिये निकले। अमृतसर जाकर उन्होंने अपने धार्मिक कृत्य किये और यहाँ गुरमता करके पंजाब के विभिन्न हिस्सों को जीतने के लिये तैयार हुए। कारण कि इस समय तक खालसा की शक्ति बहुत बढ़ गई थी अत और भी अधिक प्रदेशों पर विजय करने के इरादे से उतरोत्तर बढ़ रहे थे। कलानौर और बराला को लेने के बाद वह एक ओर लाहौर की दीवारों तक पहुँच गये। दूसरी ओर सियाला और बुलाने के एक जत्थे ने पठानकोट के परगना और शहर पर कब्जा कर लिया।

लाहौर मे उस समय अस्लाम खाँ सूबेदार था। खुद तो उसमे सिखों से मुकाबिला करने की हिम्मत थी नहीं अत. उसने मुल्लाओं को इस बात के लिये तैयार किया कि वे मुसलमानो को हैदरी झडे के नीचे एकत्र होकर सिखों से जिहाद करने के लिये अपील करे।

इस समय सिख किला भगवंत राय और कोटला बेगम से पीछे रिपाड़की की ओर हट गये। जहां उन्होंने भीलोंवाल के मुकाम पर जहादी गाजियों को ऐसी शिकस्त दी कि वह जान बचाकर भाग निकले और माझा और रिपाड़की का कुल इलाका सिखों के हाथ आगया।

सरहिन्द के इलाके के निकट ही जालंधर का दुआबा होने के कारण उस इलाके के लोगों में आजादी की एक लहर दौड़ गई थी। दक्षिण में अपने भाइयों की सफलता को देखकर इस इलाके के सिखों ने भी मुगल अफसरों को निकाल बाहर किया और उन स्थानों पर अपने थानेदार बिठा दिये।

अपनी कामयाबियों से अब उनका दिल बढ़ गया था। इसलिये उन्होंने फौजदार शम्सखा के नाम एक परवाना इस आशय का जारी किया कि वह अधीनता स्वीकार करे। किन्तु शम्स एक बडी भारी सेना जिसमें मुसलमान जहादियों के एक बडे दल के साथ अधिकतया जुलाहे शामिल हुये थे सिखों का मुकाबिला करने के लिये निकला। सिख राहून के किले में दाखिल हो गये। जिस पर उन्होंने पहले से कब्जा जमा लिया था। किले का कई दिनों तक जहादियों ने घेरा डाले रक्खा। चूंकि जहादियों की संख्या बहुत ज्यादा थी और सिखों के अन्दर से किये गये धावों से उन्हें भगाया नहीं जा सका था। इसलिये उन्होंने किले से बाहर निकल कर धावा करने का विचार किया और रात के अन्धेरे में किले से निकल गये। दूसरे दिन प्रात. जबकि शम्स खान किले में अपने आदमी छोड़कर राहून को जा रहा था एक हजार सिखों ने अचानक शम्सखा के आदमियों पर धावा आ बोला और उनको बाहर निकाल कर स्वयम् काबिज होगये। यह बात १२ अक्तूबर सन १७१० ई० की है।

इन दिनों तक सिख दल की शक्ति इतनी बढ़ गई थी कि जमना के पूर्व और सतलज के उपर उनका अधिकार हो चुका था। सन १७१० के सितम्बर के मध्य में माछीवाड़ा से करनाल तक सिख पता का फहरा चुकी थी। और इरादतखा की लिखत के अनुसार देहली में कोई ऐसा अमीर न था जो कि सिखों के विरुद्ध आने का हौसला करे। मालकम ने लिखा है कि यदि कुछ दिन भी बादशाह बहादुरशाह दक्षिण में और रह जाता तो उत्तरी हिन्द में सिखों की हकूमत होती।

बहादुरशाह ने पंजाब में सिखों की इस प्रकार की बढ़ती हुई शक्ति के समाचार सुनकर फौरन तैयारी की और देहली और अवध के सूबेदारों, मुरादाबाद और इलाहाबाद के फौजदारों और नाजिमों, बारहा के सैयदों को मय सेनाओं के पंजाब की ओर कूच करने के लिये बुलाया। ४ दिसम्बर सन १७१० को बादशाह अपने बेटे और शाही और सूबी सेनाओं समेत साढोरे के मुकाम पर पहुँचा।

इस टिड्डी दल ने लोहगढ़ को इस प्रकार घेर लिया कि बाहर से खाने पीने की कोई भी सामग्री भीतर न जा सकती थी। जब तक भीतर खाद्य पदार्थ रहे। सिख डट कर लडे किन्तु कई दिन जब भूखे हो गये तो उन्होंने मरना या विजय पाने का इरादा करके शाही सेना पर टूट पड़ना ही निश्चय किया।

गुलाबसिंह नाम के एक हिन्दू सैनिक ने जो कि बन्दासिंह से सूरत शक्ल में मिलता-जुलता था उसके कपड़े खुद पहन लिये और बन्दासिंह को सुरक्षित निकल जाने की सलाह दी।

१०-११ दिसम्बर की मध्य की रात को बन्दासिंह मुगल सेना को चीरता अपने साथियों समेत नाहन को पहाड़ियों में चला गया। गुलाबसिंह और उसके कुछ साथी गिरफ्तार हुये।

किले में से निकलने के बाद तीन जत्थे बनाये थे। एक बाबा दीपसिंह जी के नेतृत्व में। एक बाज-सिंह के और एक भाई जोधसिंह के नेतृत्व थे। किले के किवाड खोल कर यह जत्थे 'वाहि गुरु की फतह' कहकर मुसलमानी दल पर टूट पडे और सारे दल को तीन धाराओं में चीरते हुए साफ निकल गये। किन्तु इस साफ के मानी यह नहीं है कि सिखों का इसमें कोई नुक्सान नहीं हुआ। आधे से अधिक आदमी मैदान में काम आगये। बन्दासिंह जी का एक लडका अजीतसिंह भी मारा गया और दूसरा जोरावरसिंह पकडा गया। बचे हुए लोग भागकर पहाडों में चले गये।

बादशाही फौज लौट गई और प्रसिद्ध सिखों के सिरों को भी उठा ले गई। बादशाह बहादुरशाह बड़ा प्रसन्न हुआ और इनाम भी बांटा। कहा जाता है कि मुसलमान सेनापतियों ने बादशाह को विश्वास दिलाया था कि-बन्दासिंह भी इसी लड़ाई मे काम आगया है किन्तु उसके सिर को मालूम होता है, भागे हुए सिख उड़ा ले गये है।

बन्दासिंह ने जब अपने पुत्रों की इस प्रकार की दुर्गति का समाचार सुना तो कहा, जो लड़ाई मे काम आगया है। उसने वाहि गुरु की मर्जी को पूरा कर दिया।

बादशाह बन्दासिंह को इस तरह अपने हाथ से निकला हुआ देखकर बहुत घबराया और लोहे के उस पिंजरे मे जोकि बन्दासिंह को बंद करने के लिये लाया गया था। उसमे नाहन के राजा भूपप्रकाश और बख्शी गुलाबसिंह को गिरफ्तार करके देहली भेज दिया और खुद लाहौर की ओर चल दिया। अफसोस कि वहीं पर दिसम्बर १७१२ ई० को मर गया।

बादशाह बहादुरशाह की मरने की वजह से राज्य के सम्बन्ध मे काफी गड़बड़ी मची हुई थी। इधर बन्दासिंह फिर अपने संगठन मे लग पडे और उनके बहादुर सिख फिर अपनी वही शक्ति बढ़ाने लगे। और इस गड़बड़ घोटाले के समय मे उन्होंने फिर से अपनी पुरानी ताकत हासिल करली और कई एक दूसरे इलाकों पर भी अपना कब्जा जमा लिया।

बन्दासिंह ने गुरदासपुर से आगे बढ़कर पठानकोट के परगने मे रामपुर और बहरामपुर के नजदीक एक युद्ध मे शम्स खान को मार गिराया और उसके भतीजे बायजीदखा को घायल कर दिया।

इसी समय उन्होंने पहाड़ी राज्यों को अपना मांडालिक बना लिया और अपना शासन अच्छी प्रकार जमा लिया। खंडोरा और लोहगढ़ फिर से उसके हाथ आगये परन्तु खेद है कि यह कुछ बहुत देर के लिये स्थायत्व न पा सके।

२२ फरवरी सन् १७१३ ई० को अब्दुल समदखॉ दिलेरजंग लाहौर का सूबेदार नियत हो चुका था। परन्तु वह अपने दो साल के शासन मे सिखों की बढ़ती हुई ताकत को रोकने मे सफल न हो सका।

२० मार्च सन् १७१५ को बादशाह फरूखसियर ने उसको एक ताड़ना की चिट्ठी लिखी और कमरुद्दीनखा, बेटा मुहम्मद अमीनखॉ, अफरासियाबखा, मुनब्बरखा, राजा गोपालसिंह भदौरिया, उदितसिंह बुन्देला और कई एक हिन्दू और मुसलमान सरदारों और जमीदारो को उसकी सहायता के लिये भेजा।

देहली की शाही सेना पंजाब सूबे की अपनी सेना तथा जमीदारों और फौजदारो की सेना और अपनी सहायता के लिए इकट्ठे हुए सहायकों को लेकर दिलेरजग ने बन्दासिंह और उसके सिख साथियों को गुरदासपुर के नजदीक गुरदासनंगल गाव मे घेर लिया यहॉ कोई बड़ा अच्छा किला तो था नहीं। इसलिए गुरदासपुर के सिखों को भाई दुनीचन्द की हवेली के अहाते मे पनाह लेनी पड़ी। यह घेरा अप्रैल सन् १७१५ मे शुरू हुआ और कई महीने तक जारी रहा। इस अर्से मे गांव के अन्दर तमाम खाना दाना खतम हो गया और सिखों को भारी मुश्किल का सामना करना पडा। सिख कई दफा हल्ला करके शाही सेना की पंक्तियों पर टूट पडते और उसके बाजार से सीरनी और दूसरी खाने पीने की चीजे लूट ले जाते सिखों की इस दिलेरी पर शाही सैनिक बहुत हैरान होते और उन्हे गिरफ्तार करने के तमाम प्रयत्न विफल होते। शाही सैनिकों को हर समय यह खतरा लगा रहता था कि सिख किसी भी समय इकट्ठे हमले करके यहा से निकल जायेंगे। साथ ही उनको यह भी भ्रम हो गया कि बन्दासिंह मे कोई जादू की शक्ति

है जिससे कि वह कुत्ते और बिल्लियों आदि की शक्लें धारण कर सकता है। इसलिए जब कभी भी वे किसी जानवर को अन्दर से बाहर आता देखते तो वह उसी पर टूट पड़ते और उसे मारे बिना दम न लेते।

आहिस्ता-आहिस्ता शाही सेना ने घेरा तंग करना आरम्भ कर दिया। यहां तक कि कोई परन्द-चरन्द भी बाहर न फटकने पाता था। और अभी तक बहादुर सिखों ने भी मुसलिम सैनिकों को अन्दर दाखिल होने के लिये किये जाने वाले प्रत्येक यत्न को बेकार किया हुआ था। किन्तु चूँकि घेरा पड़े हुए आठ महीने गुजर चुके थे और अन्दर खाने पीने की वस्तुएं एकदम खतम हो चुकी थीं इस प्रकार सिख भूख और प्यास से तड़पने लगे।

इस समय बन्दासिंह और विनोदसिंह के दर्मियान थोड़ा सा मतभेद हो गया। बाबा विनोदसिंह चाहता था कि एक जोरदार हल्ला करके किले से निकल जाना चाहिए। दूसरी ओर बन्दासिंह का खयाल कुछ दिन और अन्दर बैठकर मुकाबिला करने का था, शायद इस खयाल से कि जाड़े की वर्षा से शत्रु-दल निस्साहस सा हो जायेगा। बात ही बात मे दोनों मे विरोध बढ़ गया और उनके हाथ तलवारों तक पहुँच गये लेकिन विनोदसिंह के पुत्र कानसिंह ने बीच मे पड़ कर झगड़ा रोक दिया और यह फैसला हुआ कि यदि विनोदसिंह निकल जाना चाहे तो निकल जाय। इस पर विनोदसिंह अपने हाथ में तलवार लेकर घोड़े पर सवार हो हवेली से बाहर निकला और शत्रु दल को चीरता हुआ निकल गया।

खाने पीने की दिक्कत ने सिखों को इस हद तक तंग कर दिया कि उन्हें हवेली के अन्दर के जानवर आदि खाने पर मजबूर होना पड़ा। बाद मे उन्होंने घास और दरख्तों की छाल और सूखी हुई टहनियों को कूट-कूट कर आटे की जगह फाकना शुरू किया। कुछ लेखक यह भी कहते हैं कि उन्होंने उनको अपनी-अपनी जांघों के गोश्त को काट कर भूनते और खाते देखा है।

कम्वरखॉं कहता है कि इन तमाम विपत्तियों के होते हुए भी वह सिख सरदार और उनके साथी आठ महीने के लम्बे अर्से तक उस तमाम फौजी ताकत का मुकाबिला करते रहे जो कि मुस्लिम शक्ति उनके विरुद्ध इकट्ठी कर सकी थी।' परन्तु यह कब तक हो सकता था। कभी न खतम होने वाली भूख के कारण अभक्ष्य वस्तुओं के खाने ने उनके शरीरों को जर्जर कर दिया। इस जोर से उनको पेचिश लगी कि खून के दस्त जारी हो गये जिससे वह सैंकड़ों और हजारों की गिनती में मरने लगे इसके सिवा मुर्दों के सड़ रहे जिस्मों से पैदा हो रही बदबू ने उस स्थान को रहने के नाकबिल बना दिया। जो बच रहे थे वह नीम हड्डियां और इतने अशक्त हो गये कि बन्दूकें भी न चला सक्ते थे। जिनसे अधिक देर तक मुकाबिला कर सकना उनके लिये असंभव हो गया।

आखिर १७ दिसम्बर सन् १७१५ ई० को गुरदास नंगल का अहाता जिसे कई इतिहासकारों ने गुरदास नंगल का किला लिखा है खाली करने को सिखों को विवश होना पड़ा। हालांकि सिख जिस्मानी तौर पर हिलने तक के नाकाबिल थे परन्तु उनका शत्रु के दिल पर इतना डर बैठा हुआ था कि कोई भी अहाते के अन्दर दाखिल होने का हौसला न करता था। अब्दुलसमद खां ने इनके लिये बादशाह से माफी दिला देने का वायदा किया लेकिन जब दरवाजे खोले गये तो बन्दासिंह और उनके साथियों को पकड़ कर कैदी बना लिया गया और शाही सैनिक भूखे भेड़ियों की तरह नीम मुर्दा सिखों पर टूट पड़े। अब्दुलसमद खॉं ने उनमें से दो तीन सौ को हाथ पाव बांध कर मुगल और पठान सिपाहियों के हवाले कर दिया। जिन्होंने उन्हें तलवार के घाट उतार दिया और एक बड़ा खुला मैदान एक तस्तरी की तरह खून

शहीद बन्दा बहादुर

गुरु-कालीन चित्र-कला का एक आकर्षक दृश्य

से भर गया। मुर्दा सिखों के पेट यह देखने के लिये फाड़ डाले गये कि शायद उन्होंने सोने की मुहरें निगल लीं है। और उनके सिर काट कर तथा भूसा भर कर नेजों पर टांग दिये गये। गुरदासनंगल गांव तोपो के गोलो से उड़ा कर मिट्टी मे मिला दिया गया। जिसके कि निशान अबतक मौजूदा नये बसे गुरदास नंगल गांव से एक मील पच्छिम की बन्देवालीथेह के नाम से मशहूर है।

यह खबर २२ दिसम्बर सन् १७१५ ई० ,को उस समय देहली पहुँची जब कि बादशाह फरूखशियर जहाँ पर अपनी फतह का उत्सव मना रहा था।

गुरदासनंगल से वन्दासिंह और उनके साथियों को लाहौर ले जाया गया। अगर्चे उनको बांध कर कैदी बना लिया गया था फिर भी अदृष्ट शक्तियों से भागजाने का भय शत्रुओ पर इस कदर बैठा हुआ था कि हर समय उन्हे यह आशंका थी कि वह रास्ते मे भाग न जाय। इसके लिये एक मुगल अफसर ने अपनी सेवा पेश करते हुए कहा कि मुझे इसके साथ बाध दिया जाय। यदि यह उड़ने की कोशिश करेगा तो मैं अपना खजर इसके पेट मे भोंक दूँगा। पाव मे बेडियां गले मे जजीर डालकर उन्हे सकड़ी की हतौडियों से कस रक्खा था। इस प्रकार वन्दासिंह को जकड़ कर एक लोहे के पिंजरे मे चार स्थानों पर बांध कर डाला हुआ था। दो मुगल अफसर उसके एक-एक तरफ उसी हाथी पर साथ थे। जिससे कि यह भाग न जाय।

बंदा के अफसरो और खास-खास आदमियों को जजीर से जकड़ कर लगड़े लूले गधों और ऊँटों पर चढ़ाया हुआ था और उनके सिरों पर कागज की टोपियां डाली हुई थीं।

इस तरह उनका जुलूस बनाकर ढोल और बैंड बजाने वाले उनके आगे २ चल रहे थे और उनके साथ मुगल सिपाही सिखों के कटे हुए सिर नेजों पर उठाए जा रहे थे। कैदियों के पीछे शाही अफसर नवाब और राजा अपनी २ फौजे लिये हुये मार्च कर रहे थे। इस प्रकार का जुलूस बनाकर अबदुलसमदखा लाहौर मे दाखिल हुआ।

वहाँ से इन सिखों को अपने बेटे जकरियाखान के साथ देहली भेज दिया। रास्ते मे तरह २ की विपत्तियां सहता हुआ यह जुलूस २५ फर्वरी सन् १७१६ ई० को अगराबाद पहुँचा और २७ फर्वरी को उन्हे देहली शहर मे दाखिल किया गया। इस समय सिख कैदियों को उसी तरीके से जुलूस बनाकर देहली शहर मे से गुजारा गया। जिस तरह कि मराठा सरदार शंभाजी को। सबसे पहले बासों पर टगे हुये सिखों के कटे हुये और धूल से भरे हुये सिर थे जिनके कि लबे केश हवा मे झूल रहे थे। उनके साथ २ एक बांस पर एक मरी हुई बिल्ली टंगी हुई थी जिससे उनका यह जाहिर करने का अभिप्राय था कि गुरदास नगल मे अब कुत्ते और बिल्ली भी जिन्दा नहीं रहने दिये है। इसके आगे हाथी पर वन्दासिंह का पिंजरा था। जिसमे वह कसूमे रंग की बनात का कपड़ा और सिर पर एक लालसुनहरी जडाऊ पगड़ी पहने हुये था। उसके पीछे हाथी पर नंगी तलवारे लिए हुए एक तूरानी मुगल अफसर खड़ा था। हाथी के पीछे ७४० सिख कैदी दोदो करके वे पलान ऊंटों पर कसे हुए थे। उनके सिरों पर लंबी तिर्कोनी भेडों की खाल की टोपिया थीं जिन पर कि शीशे लटकाये हुये थे उनका एक हाथ दो लकड़ियो के दरम्यान उनके गले के साथ कसा हुआ था।

कुछ खास २ सिख बन्दासिह के हाथी के साथ घोड़ों पर सवार चल रहे थे जिनको कि भेड़ों की खालें पहनाई हुई थीं। जिनकी कि बालों वाली तरफ बाहर होने के कारण वह दर्शकों को रीछों के मानिद जान पड़ते थे। जुलूस के अंत मे तीन शाही अमीर नवाब मुहम्मदखा चीन बहादुर, उसका बेटा

कमरुद्दीन खानबहादुर और उसका दामाद जकरिया खान बहादुर (बेटा अबुसमदखा) आ रहे थे।

अगराबाद से लोहारी दरवाजे तक सडक पर मीलों दूर तक फौजे और असख्य दर्शक खडे थे। जो कि बन्दासिंह और उनके सिखों की सूरतों को देखकर मजाक उड़ा रहे थे। मिर्जा मुहम्मद हारिसी जो इस समय सिखों का तमाशा देखने के लिए गया हुआ था। और नमक मडी से लेकर बादशाही किले तक इस जुलूस के साथ २ था कहता है—"शायद ही शहर मे कोई होगा जो इस समय यह तमाशा देखने बाहर न गया हो। इतना बडा लोगों का जमघट शायद ही कभी देखने मे आया हो, मुसलमान खुशी से फूले न समाते थे परन्तु वह अभागे सिख जिनको कि इस दुर्दशा को पहुँचाया गया था बिल्कुल प्रसन्न मुख और अपनी किस्मत पर शाकिर थे। उनके चेहरों से घबराहट या निराशा के कोई निशान नजर नहीं आते थे। असल बात यह है कि जब वह ऊटों पर गुजर रहे थे तो वह प्रसन्न प्रतीत होते थे। क्योंकि वह आनन्द में आये हुये अपनी धर्म मे पुस्तक के शब्द गा रहे थे। बाजार या कूचों मे से जब किसी ने उनको इस दशा पर कुछ कहा तो वह फौरन उत्तर देते यह जो कुछ हो रहा है। वह सब ईश्वर की इच्छा से हो रहा है। मगर कोई कहता कि तुम्हे कत्ल कर दिया जायगा तो वे कहते हमें बेशक कत्ल कर दो। हम मरने से क्या डरते हैं। अगर हम डरते होते तो तुम्हारे साथ इतनी लड़ाइया कैसे करते। पर केवल भूख के कारण से यह हुआ है कि हम तुम्हारे हाथों पड़ गये है। वरना तुम स्वयम् ही जानते हो कि हम क्या कुछ करके दिखा सकते हैं।

'तब्सिरतुन्नाजरीन' का कर्ता सैयदमुहम्मद भी इस समय वहां उपस्थित था। वह कहता है कि मैंने उनमें से एक को इशारे से कहा कि यह तुम्हारी करतूतों का नतीजा है तो उसने अपना हाथ माथे पर रखते हुये जाहिर किया कि यह सब कुछ ईश्वरेच्छा से हो रहा है। वह तमाम अपमान और उपहास आदि की बातें गुरु गोविन्दसिंह के बहादुर सिखों को अपनी दृढ़ता से विचलित न कर सकीं वे बिना किसी तरह की घबराहट के शहीदी पाने के लिये आगे बढ़ते चले गये।

जब जुलूस किले के पास पहुँचा तो फर्रूख सियर के हुक्म से बन्दासिंह, बाजसिंह भाई फतहसिंह और दूसरे कुछ सरदार त्रिपोलिया जेल मे डाल देने के लिये इब्राहीम कोतवाल के हवाले कर दिये गये, बन्दासिंह की स्त्री और उसका चार वर्षीय पुत्र अजयसिंह तथा उसकी दाया को हरम के नाजिर दरबारखा के हवाले कर दिया और बाकी सिखों को सरबराखांन के हाथ कत्ल कर देने के लिये सौंप दिया।

बादशाह के हुक्म से ५ मार्च सन १७१६ को चादनी चौक मे चबूतरा कोतवाली के सामने सिखों का कत्ल आरम्भ हुआ। प्रतिदिन एक सौ सिखों को जेल से निकाल कर कत्लगाह मे कतारे लगाकर बिठा दिया जाता और सिकलीगर जल्लादों की तलवारों को तेज करने के लिये भी उनके पास खडे कर दिये जाते। वहाँ हरेक को यह कहा जाता कि यदि वह सिख धर्म को छोडकर इस्लाम कबूल करले तो छोड़ दिया जायगा। परन्तु स्टीफिन्सन की लिखत के अनुसार आखिर दम तक कोई भी ऐसा सिख न देखा गया था। जिसने कि अपने धर्म को त्यागना कबूल किया हो, वे खिडे माथे मृत्यु को आ देते और वाहि गुरु-वाहि गुरु कहते हुये अपनी गर्दनें जल्लादों के सामने झुका देते। कई दफा वे एक दूसरे से पहले कत्ल होने के लिये आग्रह करते। पूरा सप्ताह यह कत्ल जारी रहा और इस तरह वह तमाम के तमाम सिख मार दिये गये। कत्ल के बाद उनके धड एक ढेर में फेंक दिये जाते और रात को गाडियों पर लादकर सड़कों पर लेजाकर दरख्तों पर टाग दिये जाते। मिर्जा मुहम्मद हारिसी लिखता है कि "जब मैं कत्ल आरम्भ होने के दूसरे दिन यह तमाशा देखने गया तो क्या देखता हूँ कि उस दिन के

कटे हुये धड़ काफी दिन चढ़े तक खून और धूल मे लथपथ धूप मे वाहर पडे थे।"

खाफी खान कहता है.—"कि इस समय सिखों के खुशी से कत्ल होने की वे शुमार कहानियां दिल्ली मे सुनी जाती थीं परन्तु उसने अपनी आँखों देखी एक घटना का वर्णन इस प्रकार किया है। इन सिखो मे एक छोटी उम्र का सिख नौजवान था, जो कि एक विधवा का एकलौता पुत्र था तथा जिसकी शादी हुये कुछ ही दिन हुये थे। दीवान रतनचंद के कथनानुसार उस माता ने वादशाह के हुजूर मे अर्ज की कि उसका पुत्र सिख नहीं है। अत. उसे छोड़ दिया जाय। सैयद अब्दुल्ला खा आदि के कहने पर वादशाह ने उसकी रिहाई का हुक्म दे दिया उसकी मां परवाना लेकर कत्ल गाह मे पहुँची। उस समय दैंगात उसके वच्चे की गर्दन पर तलवार चलने वाली थी जव शाही परवाना कोतवाल को पहुँचा तो उसने उस युवक को वाहर निकालकर कहा तुम्हे छोड़ दिया गया है परन्तु उस वच्चे ने जाने से इन्कार कर दिया और जोर २ से रोना शुरू कर दिया और कहने लगा मेरी माँ झूठ वोलती है। मैं दिल और जान से अपने गुरु के श्रद्धालुओ और सेवकों मे से हूँ। मुझे जल्दी ही वहाँ पहुँचाया जाय जहाँ मेरे गुरुभाई गये हैं। वूढ़ी माँ के चीख और पुकार सरकारी अफसरो के समझाने वुझाने का उस सिख वच्चे पर कोई असर नहीं हुआ और वह अपने धर्म पर अटल रहा। दर्शकों की हैरानी उस समय और भी वढ़ गई। जवकि वह वहादुर वच्चा जल्लाद कत्लगाह की ओर वढा और शहादत पाने के लिये वड़े धैर्य्य के साथ अपनी गर्दन जल्लाद के सामने झुकादी। एक ही क्षण मे जल्लाद की तलवार उठी और उस वच्चे की पतली सी गर्दन पर गिरती हुई उसे सिख धर्म के पैदा किये हुये शहीदों मे अमर कर गई।"

जिस समय यह कत्ल हो रहे थे। उस समय ईस्ट इडिया कम्पनी का एक डेपूटेशन फरुखसियर की कचहरी मे आया हुआ था। उसने यह खूनी नजारे अपनी आँखों देखे और अपनी १७ मार्च की चिठ्ठी मे फोर्ट विलियम के गवर्नर को इसका हाल लिखा था —

इस पत्र के अंतिम फिकरे मे उसने लिखा था "यह वात कोई कम ध्यान करने वाली नहीं है कि सिख किस सब्र और हिम्मत के साथ ईश्वर-इच्छा को कवूल करते है और आखिर तक यह नहीं देखा गया कि इन कत्ल होने वालो मे से किसी एक ने भी अपने धर्म को त्यागा हो।"

इन कत्लों के वाद तीन महीने तक उन तमाम लोगों के पता निकालने की कोशिश की गई जिन्होंने वन्दासिंह को उसके युद्धों और अन्य कार्य्यों मे सहायता दी थी। आखिर १९ जून १७१६ इतवार-जवकि आस्मान पर तीन नीजे सूर्य्य चढ़ा था वन्दासिंह व उसके पुत्र अजयसिंह, सरदार वाजसिंह रामसिंह, भाई फतहसिंह, आलीसिंह, वख्शी गुलावसिंह और दूसरे कुछ साथियों को जो कि देहली के किले मे कैद थे किले से निकाला गया और जजीरों में जकड़े हुये उसे हाथी पर चढ़ा कर शहर के वाजारों मे से फिराते हुये ख्वाजा कुतुवुद्दीन वख्तियार काफी के मजार पर जो कि कुतुवमीनार के पास है, ले गये। यहाँ उसे वहादुरशाह की कब्र के इर्द गिर्द परिक्रमा कराई गई।

जव वन्दासिंह को हाथी से उतारा गया तो उसे इस्लाम कवूल करने के लिये कहा गया। परन्तु गुरु गोविन्दसिंह का यह अनन्य भक्त धर्म को छोड़ने को कैसे तयार हो सकता था? इस पर उसका चार साला मासूम वच्चा उसके सामने लाया गया और उसे कहा गया कि वह उस वच्चे को छुरी से कत्ल करे। परन्तु क्या कभी कोई पिता भी अपने वच्चे को कत्ल करने के लिये तैयार हो सकता है। जल्लाद ने एक लंवे छुरे से वच्चे के टुकड़े टुकडे कर दिये और उसका तडपता हुआ दिल निकाल कर वन्दासिंह के

मुँह में ठूंस दिया परन्तु वह ईश्वरेच्छा में मग्न अडोल उसी तरह खड़ा रहा।

शीयरनुल-मुताखरीन में लिखा है कि इस समय एतमादुद्दौला मुहम्मद अमीनखाँ मौका पाकर आगे बढ़ा और बन्दा के चेहरे से टपक रही महानता देखकर उसने कहा यह हैरानी की बात है कि वह आदमी जिसके चेहरे से इस तरहकी उच्चता और महानता प्रतीत होती है। उसने लोगों पर इस तरह की सख्ती की हो। बड़े धैर्य के साथ बन्दासिंह ने उत्तर दिया मैं आपको बतलाता हूँ जब भी कभी मनुष्य शुभ कर्मों के रास्ते से हटकर शैतानी तरीके अख्तियार करने और तरह तरह के अत्याचार करने लग पड़ते हैं तो ईश्वर मेरे जैसों को इस किस्म के लोगों को सजा देने के लिये नियत करता है। परन्तु जब दंड का पैमाना पूरा हो जाता है तो वह तुम जैसों को खड़ा कर देता है ताकि उसकी सजा उसे मिल जाय।

इसके बाद उसकी अपनी बारी आई सबसे पहले उसकी दाईं आँख निकाली गई और फिर बाईं, उसके बाद उसका दायाँ पैर काटा गया और उसके दोनों हाथ शरीर से जुदा कर दिये। इसके बाद लाल २ गर्म लोहे की चिमटियों से उसकी बोटियाँ नोंची गईं और फिर उसका सिर काट कर उसके टुकड़े-टुकड़े कर दिये गये। बन्दासिंह इन तमाम कष्टों मे शांति रहा और भगवान से कहता रहा, प्रभु ऐसा न हो कि आपका यह दास इस कठिन परीक्षा मे फेल हो जाय।

इसके बाद दूसरे सिखों को भी कत्ल कर दिय गया। बाजसिंह सम्बन्धी इस समय की एक घटना इस प्रकार वर्णन की गई है कहते हैं इस समय बादशाह के मार्ड खदियर ने शेष सिखों को अपने सामने बुलाकर कहा, मैंने सुना है कि एक सिख बाजसिंह नामी बहुत बड़ा बहादुर है और गुरु की उसपर बड़ी रहमत है। बाजसिंह ने इसपर आगे बढ़कर कहा मैं हूँ गुरु जी का सेवक बाजसिंह। बादशाह ने कहा, ओह तुमतो बड़े बहादुर आदमी थे। परन्तु अब कुछ नहीं कर सकते। बाजसिंह ने कहा, अगर तुम मेरी बेडियाँ उतार दो तो मैं अब भी तुम्हें कुछ तमाशा दिखा सकता हूँ। बादशाह ने उसकी बेड़ियाँ निकाल देने का हुक्म दे दिया और जब बाजसिंह जरा आजाद हुआ तो वह बाज की तरह बादशाह के आदमियों पर झपट पड़ा और दो तीन को अपने हाथों में पड़ी हुई हथकड़ियों से मार गिराया। इसके बाद वह एक अमीर की तरफ लपका परन्तु बादशाह के नौकरों ने उसे झपट कर पकड़ लिया और कत्ल कर दिया।

बन्दासिह और उसके साथियों को देहली में कत्ल कर देने के बाद मुगलों ने उनकी राजसी ताकत को तोड़ने के लिये ही नहीं किन्तु तमाम की तमाम सिख कौम को मिटा देने के यत्न आरम्भ कर दिये। मुंशी दानेश्वर ने लिखा है कि "एक शाही हुक्म जारी किया गया कि सिख जाति के लोग जहाँ कहीं भी मिलें उनको बिना पूछ ताछ के ही कत्ल कर दिया जाय।" मैलकम साहब कहते हैं—इस हुक्म को असली जामा पहनाने के लिये हरेक सिख के सिर की कीमत लगा दी गई।

डाक्टर ग्रेजर की लिखत से पता चलता है कि सिखों के लिये यह एक बड़ी कठिनाई का समय था। सिखों से दूसरे लोगों को पहचान सकने के लिये पंजाब के सब हिन्दुओं के नाम आदेश जारी किये गये कि वह अपनी दाढ़ियाँ और बाल मुड़वा डालें नहीं तो उन्हें मौत की सजा दी जायगी। जो कोई आदमी दाढ़ी और केश रखते हुये कहीं मिलता उसे फौरन कत्ल कर दिया जाता। इस समय अब्दुसमदखान ने शाही हुक्म की पालना मे सिखों को मिटा देने के लिये फौजी दस्ते जिन्हें कि गश्ती फौज के नाम से पुकारा जाता था, सिखों को ढूंढ़ कर नेस्तनाबूद कर देने के लिये चारों ओर भेज दिये। जोकि सिखों का जंगली जानवरों की तरह शिकार करते। जले भुने बैठे मुसलमानों और निरंजन

हिन्दुओं की ओर से उनको सहायता तो क्या मिलती थी। उलटे वह उनकी जान के गाहक हो गये। इस तरह एक बड़ी भारी गिनती सिखो की पकड़ पकड़ कर कत्ल कर दी गई। कुछ सिख तो शिवालिक पहाड़ियों मे जा घुसे और कुछ उत्तर पच्छिमी पहाड़ी देश पडौल और कठुए की ओर, कुछ सुदूर जंगलो मे जा छिपे।

सन् १७१८ ई० मे अब्दुलसमदखां का ध्यान दूसरे राजसी विद्रोहने खींच लिया और उसने शाहदाद खा खेसगी को ईसाखान मंझ की बगावत को दबाने के लिये भेजा। इस तरह ढील के समय कुछ सिख आहिस्ता-आहिस्ता जगलों और पहाडो से निकल कर अपने घरों मे आ, आबाद होने लगे। अब तक अब्दुलसमदखान का जोश भी कुछ ठंडा हो चुका था। और उसकी सख्ती केवल उन आदमियों तक ही रहने लगी। जिन पर कि बन्दासिंह के नेतृत्व मे सिखों की सहायता करने का शक होता था। सिखों के घरों की ओर वापिस आ जाने पर कुदरती तौर पर गुरुद्वारों की आमदनी भी बढ़ने लगी और खास कर दरबार अमृतसर मे संगतों को आवाजाई काफी हो गई, दिसम्बर सन १७०४ मे लूटे खसोटे जाने के बाद आनन्दपुर कभो अपनी पुरानो महानता को हासिल नहीं कर सका। इसके तबाह हो जाने के साथ ही यह पंजाब मे सिख आबादीवाले इलाकों से बहुत दूर था। दूसरी ओर दरबार साहब अमृतसर पजाब मे होने के कारण ज्यादा निकट था। इसलिये आनन्दपुर का स्थान भी उसी ने ले लिया। दरबार साहब की बढ़ रही पूजा के धन ने कुछ लालचियों की आंखों को चुंधियाना आरम्भ कर दिया और उन्होंने आमदनी को बाटने के लिये झगड़ा करना आरम्भ कर दिया। खालसा गुरु के नाम पर अर्पण की हुई संपति को अपने निज के कामों मे प्रयोग करने के पक्ष मे न था वह इसे धर्म-विरोध समझता था। इस खींचातानी मे दो पार्टिया सी बन गई। इन पार्टियों मे एक ओर बाबा विनोदसिंह थे जो कि गुरदासनगल के घेरे मे से बन्दासिंह के साथ मतभेद के कारण निकल आये थे, उनके साथियों ने कुछ दूसरे आदमियों को बन्दई-बन्दई पुकारना आरम्भ कर दिया और स्वयम् को 'तत खालसा' दोनों या कहे जा रहे बन्दई भी चाहते थे कि उनको भी दरबार साहब की आमदनी मे से आधा हिस्सा मिलना चाहिए। जिनको कि तत खालसा एक फूटी कौड़ी भी नहीं देना चाहते थे। गुरुओं के जीते जी यह आमदनी गुरु की सेवा मे भेज दी जाती थी। परन्तु दशमेशजी के बाद माता सुन्दरी जी ने यह आज्ञा की थी कि यह सब वहीं गुरु के लगर मे खर्च कर दी जाय। और माता सुन्दरी ने संवत् १७७८ के आरम्भ मे भाई मनीसिंह जी को देहली से अमृतसर दरबार साहब का प्रबंध करने के लिये भेज दिया। वैसाखी आने वाली थी उसको मनाने के लिये बड़े जोरों से तैयारियाँ हो रही थीं। दोनों पार्टिया जरूरत पड़ने पर अपनी ताकत को आजमाने के लिये बहुसख्या मे एकत्र होने लगीं ततखालसों ने अकाल बुङ्गा मे अपने डेरे जमा लिये और बन्दई खालसों ने मौजूदा झंडा बुङ्गा के स्थान पर दर्शनी ड्योढ़ी के नजदीक। मेला बडे जोरों से भरा और चढ़ावा भी खूब आया। खतरा था कि चढ़ाये की बाट पर तलवार न चल जाय इसलिये भाई मनीसिंह ने पर्चिया डाल कर इसका फैसला कर लेने की सलाह दी और जब पर्चियां डाली गई तो बन्दई खालसों की पर्ची डूब गई। जिससे कि फैसला ततखालसों के हक मे हो गया। बहुत से बन्दई खालसों ने तो इस फैसले को मान लिया परन्तु उनके लीडर खेमकरन निवासी महन्तसिंह ने मानने से इनकार कर दिया। और बात ही बात मे झगड़ा बढ़ जाने पर ततखालसे बन्दईयों पर टूट पडे और उनको ज्यादा गिनती के सामने कोई सफलता प्राप्त नहीं हुई। महन्तसिंह सम्बंधी आगे कुछ पता नहीं चलता कि क्या हुआ। इसके बाद

तत्तखालसों का जोर बढ़ गया। और आहिस्ता-आहिस्ता बन्दई खालसों की गिनती कम होती गई। आजकल बन्दासिंह की स्मृति में स्थापित हुआ एक गुरुद्वारा डेरे बन्दासिंह के नाम से रियासत जम्मू के परगना रियासी में भम्भर ग्राम के नजदीक दरियाये चिनाब के किनारे पर है।

इस बीच में दिल्ली के तख्त पर मुहम्मदशाह आ चुका था और जल्दी ही वहां उसे घरेलू झगड़े की आशंका न थी अतः उसने पंजाब में इस आग को सुलगते देख कर तुरन्त ही उपाय करना चाहा।

फिर दमन मुल्तान के हाकिम को लाहौर में लाहौर के हाकिम को मुल्तान में बदल कर लाहौर के नये हाकिम जकरियाखां को आज्ञा दी कि शीघ्र ही इन सिर उठाने वाले सिक्खों का इलाज करो।

बड़े मियां सो बड़े मियां छोटे मियां सुभानअल्लाह के अनुसार जकरियाखां स्वभाव से ही पिशाच था उसने लाहौर का चार्ज लेते ही गांवों में फौज भेज दी और सिक्खों को नेस्तनाबूद करने का हुक्म दे दिया। यह फौज गांव-गांव घूमकर सिक्खों को दण्ड देने लगी। जहां भी जाती सिक्ख को लूटती और उन्हें कत्ल करती। इसका फल यह हुआ कि सिक्खों का एक स्थान पर बसना मुश्किल हो गया, वे जब सुनते कि फौज आरही है तो जंगलों को भाग जाते किन्तु घरों में जो बूढ़े बच्चे रह जाते। यह लश्कर उनकी भी खूब दुर्गति करता। इसके साथ ही गांवों के चौधरियों के नाम हुक्मनामे जारी किये गये कि जिस किसी भी गांव में सिक्खों को शरण दी जायगी। उस गांव को दंड दिया जायगा। इस तरह सिक्खों को विवश होकर खानाबदोश होना पड़ा। कैसा होगा वह विषम समय जब सिक्ख परिवार जंगलों में, खारों और पहाड़ों में भटकते फिरते होंगे और उनकी तलाश में फिरते होंगे फौजी दस्ते। इस समय तो उस आपत्ति की कल्पना करते ही रोंगटे खड़े हो जाते हैं। जो लोग पकड़े जाते उनका नाजिम के हाथों वध होता और जो भाग जाते वह भूखे प्यासे भटकते।

राजपूताने के इतिहास में हम राना प्रताप को और उनके बच्चों को घास की रोटी खाते पढ़कर रो उठते हैं किन्तु पंजाब में हजारों सिक्ख परिवार घास और पत्तियों पर गुजर कर रहे थे। उन दिन पंजाब में आज का जैसा पानी का भी सुपास न था। कहीं कहीं तो दस-दस पन्द्रह-पन्द्रह कोस तक पानी प्राप्त न होता था। नदियों के किनारे दबाये हुए थे, नहरें थी नहीं। किन्तु बेचारे इन सब कष्टों को बर्दाश्त कर रहे थे। केवल धर्म की रक्षा के लिये।

धर्म के लिये उनके दिलों में कैसा प्रेम था। वह इस बात से प्रकाश में आजाता है कि जो घर किसी प्रकार देहातों में ही पड़े थे। वह अपनी कमाई को कौम के काम में लगाते थे। बहुत सारी रोटियाँ उनके घरों में बनाई जातीं और अपने पास के जंगलों में अपने सहधर्मियों के खाने के लिये भेजते किन्तु यह प्रयत्न थे, ऐसे ही जैसे आटे में नमक। जंगलों में फैले हुए लोगों को प्रायः भूखा और अधभूखा ही रहना पड़ता और वे जंगली फलों और पत्तियों पर कई २ दिन तक गुजर करते रहते।

इस प्रकार का प्रयत्न करने वालों में एक भाई तारासिंह जी थे। जिनका लंगर हर समय चलता रहता था। अपनी कमाई तो वे उसमें लगाते ही थे किन्तु कई एक बार उनको दूसरे भाई भी इस काम में मदद दे देते थे। उनके इस काम से सिक्खों में उनके प्रति बड़ी श्रद्धा थी। यहाँ तक कि नुसहिरा गाँव के चौधरियों के घोड़ों को चुराकर बेचने से दो सिक्ख डाकुओं को जो रकम मिली वह उन्होंने भाई तारासिंह जी के लंगर में ही भेज दी। बात यह थी कि नौशहरे का चौधरी साहिबराय वहाँ के सिक्खों के खेतों में नित अपने घोड़े छोड़ दिया करता था। जब वह समझाने से भी न माना तो वहाँ के सिक्खों ने बघेल-

सिंह और अमरसिंह नामी सिखों से अपनी कठिनाई कही। वे उस रात उस चौधरी के घोड़ों को चुरा ले गये और सरदार आसासिंह जी के हाथ वेच आये। जो मूल्य मिला वह सव भाई तारासिंह जी के लगर को दे दिया।

अमृतसर जिले के वाहिग्राम मे भाई तारासिंह जी रहते थे। उन्होंने रहने के लिये एक छोटी सी कच्ची गढ़ी वना रक्खी थी। वे एक शात स्वभाव और धर्म प्रिय सिख थे। उनका लंगर हर समय चलता रहता था। अपनी कमाई का सारा हिस्सा दान पुण्य मे ही खतम करते थे। घर की हालत भी चंगी थी। गाये भैंसें और घोडे सभी कुछ उनके था किन्तु वे एक धर्मात्मा पुरुप की तरह अपना जीवन विताते। नेक कमाई करते और हरि का नाम जपते। अपने भाइयों की अन्न, धन और रुपये-पैसे से मदद करते। यही उनका स्वभाव था।

भाई तारासिंह की शहीदी

एक दिन जव कि भाई तारासिंह के यहाँ धर्म चर्चा होरही थी। साहिवराय थानेदार को लेकर पहुँचा और भाई जी से कहा कि आपके यहाँ हमारी घोड़ियाँ आई हैं, तलाशी लेंगे। भाई जी ने सहज स्वभाव से उत्तर दिया। तलाशी चोरों की ली जाती है, मैं कहता हूँ तुम्हारे घोड़े यहां नहीं आये। इस पर साहिवराय ने कटु शब्द कहना शुरू कर दिया। वातों से वढ़कर मामला मार पीट पर आ गया। थानेदार मारा गया और साहिवराय की जूतों से पिटाई हुई।

साहिवराय ने जाकर पट्टी के हाकिम जफरवेग से शिकायत की और यह भी वता दिया कि थानेदार को उन लोगों ने मुल्केअदम पहुँचा दिया है। जफरवेग ने उसी समय ५०० आदमी तारासिंह जी की गिरफ्तारी के लिये तैयार किये और गढ़ी पर चढ़ाई करदी। उस समय वहा लगभग १०० सिख मौजूद थे। ५०० आदमियों को इन रण वाकुरों ने ऐसा परेशान किया कि वह अपने अनेकों साथियों की वलि देकर भाग निकले जफरवेग भी भाग गया। किन्तु उसका भाई मारा गया।

जफरवेग ने तारासिंह द्वारा सिखों की सेवा और पन्थ की सहायता आदि सव बातों पर प्रकाश डालते हुए सूवा लाहौर को वताया कि मैं उसे दंड देने के लिये ५०० आदमियों के साथ गया, किन्तु निष्फल रहा अत एक भारी सेना तारासिंह को पकड़ने के लिये भेजी जानी चाहिये। इसलिये उसने एक वड़ी सेना तारासिंह जी की गिरफ्तारी के लिये रवाना करदी।

उस समय भी गढ़ी मे जो सिख मौजूद थे। भाई जी ने उन्हे उत्साहित किया और वे अल्प संख्या मे होते हुए भी इस भारी सेना से भिड़ गये। सिखों ने खूब हाथ दिखाये। सैकड़ों नहीं हजारों को जमीन पर विछा दिया।

इतने वहुसंख्यक सैनिकों के साथ चन्द सिखों का भिड़जाना उनकी दिलेरी का ही द्योतक है। भाई तारासिंह जी यद्यपि वृद्ध थे, किन्तु जवानों की तरह लड़े और लड़ते हुए उन्होंने सिखों को शूरताई की वाते कहकर उत्साहित भी किया। लड़ते-लड़ते शत्रुओं के तीर और वर्छों से उनका शरीर छलनी हो गया था। किन्तु जव तक भी वह अपने शरीर को सभाल सके डटकर लड़े और अन्त में 'वाहि गुरु जी की फतह' का नारा लगाते हुए। अपने धर्म की आन पर शहीद हो गए।

वालक हकीकतसिंह की कुर्वानी भी एक खास स्थान सिख शहीदियों में रखती है। हकीकतराय का जन्म वाघमल खत्री के घर माता कौरा के उदर से स्यालकोट में हुआ था। ७ वर्ष की उम्र मे वह पढ़ने विठा दिया गया, दस वर्ष की उम्र मे उसकी शादी वटाले के सिख खत्रियों में

हकीकतसिंह धर्मी हुई। तुलसिंह, मलसिंह और कृपालसिंह बटाले में तीन भाई थे। हकीकतराय की शादी इन्हीं के यहां हुई थी।

शादी के बाद भी हकीकत का पढ़ना जारी रहा। एक दिन जब कि मुल्ला मकतब में नहीं था। तुरक लड़के हकीकत से लड़ पड़े। गाली गलौज और ईंट पत्थर भी दोनों ओर से फेंके गये। जब मुल्ला वापिस आया तो मुसलमान लड़कों ने उससे शिकायत की इस हकीकत ने पैगम्बर साहब की साहबजादी को गालियां बकी हैं। हकीकत से मुल्ला ने जब पूछा तो हकीकत ने सच सच बात कह दी। उसने कहा इन्होंने मुझे चिढ़ाने की गर्ज से उस देवी की निन्दा की जिसको सारे हिन्दू मानते हैं और पहाड़ों में है तथा जिसने महिषासुर जैसे राक्षसों को मारा है। गाली गलौज और मारपीट की पहल इन लड़कों ने ही की है। मैंने जो कुछ कहा है वह बाद में कहा है। तास्सुब में पले हुए मुल्ला ने हकीकत की इस सचाई को सहन नहीं किया और वह उसे पकड़ कर काजी के पास ले गया। काजियों ने शरह की रू से हकीकत का अपराध अक्षम्य बताया। मकतब के लड़के आ गये और वे उसे सोटों से पीटने लगे। कोई उसके कान मरोड़ने लगा, कोई लात घूंसे लगाने लगा। जब शोर मचा तो शहर के आदमी इकट्ठे होगये और किसी ने हकीकत के मां बाप के पास भी खबर भेजी।

मामला अमीनबेग के पास गया। वह न्याय पसंद आदमी था, किन्तु काजी और मुल्लाओं ने इस अपराध को अक्षम्य बताया। अतः उसने यह मामला किसी और तरह निबटता न देखकर लाहौर के सूबेदार के पास भेज देना उचित समझा क्योंकि वह इस बात पर राजी था कि बालक हकीकत को क्षमा किया जाय।

हकीकत के घर में शोक के बादल छा गये। मा कौरा बाप बाघमल और उनकी नववधू सभी विलाप करने लगे। उन्होंने काजी को बहुत कुछ द्रव्य देकर भी राजी करना चाहा किन्तु काजी न माना हकीकत को बहली में डालकर काजी लाहौर को चल दिया। पुत्र विछोह से दुखी हुये मात-पिता और पारवारिक आदमी भी उनके साथ चले। उस समय रूपचंद चौधरी एमनाबाद व दीवान जगतराम ने भी काजी से बहुत कुछ कहा किन्तु वह अपने शरह हुक्म की दुहाई देकर हकीकत को छोड़ने पर राजी नहीं हुआ। आखिर मंजिल हकीकत को लेकर काजी लाहौर में पहुँचा।

लाहौर में दीवान लखपतराय और जगतसिंह दोनों ने काजी को समझाया किन्तु उसने हकीकत को छोड़ना मंजूर नहीं किया। पाँच दिन के बाद खान बहादुर (जकरियाखाँ) ने कचहरी में हकीकत और काजी को बुलाया उस समय दरबार में लखपतराय सूरतसिंह और जगतसिंह भी बुला लिये गये थे। काजियों और मुल्लों ने सर्व सम्मत से हकीकत के कत्ल या मुसलमान होने का फैसला दिया। उस दिन नवाब ने कचहरी बर्खास्त करदी दूसरे दिन हकीकत से उसने कहा, बच्चे तू मुसलमान होजा मैं तुम्हें हाथी घोड़े और जागीर दूंगा। अपने बेटे का जैसा व्यवहार करूंगा। तैंने बीबी फातिमाका अपमान करके बड़ा भारी गुनाह किया है किन्तु मुसलमान होने पर तुझे क्षमा तो कर ही दिया जायगा, और नमत दुख भी तुम्हें मिलेंगे, लेकिन बालक हकीकत ने हर बार स्पष्ट शब्दों में अपना धर्म छोड़ने से इन्कार कर दिया।

अंत में माता उसके गले से लिपटी और फूट फूटकर रोती हुई कहने लगी। मेरे बेटे तुम मुसलमान हो जाओ मैं तुम्हारा यह मुखड़ा तो देखती रहूँगी। हकीकत ने मां से भी कह दिया, चन्द दिन की जिन्दगी के लिये मां, मैं अपने प्यारे धर्म को नहीं छोड़ सकता हूँ।

जगतसिंह शाही दीवान ने एक बार फिर सिफारिस की किन्तु काजी की जिद के आगे सफल न

चली। अन्त मे माता कौरा ने हिम्मत बांध कर कह दिया। अच्छा बेटे जाओ। हो जाओ धर्मपर बलिदान। नवाब के हुक्म से जल्लाद हकीकत को दरवाजे के बाहर पूर्व ओर नरवास बाजार की कत्लगाह मे ले आये जो कि अब गुरुद्वारा शहीदगज के नाम से मशहूर है।' सारा शहर हकीकत के दर्शनो को उमड पड़ा। हजारों नरनारियों के आंखों से आसू वह रहे थे। जल्लाद ने तलवार निकाली। हकीकत ने सत-गुरु, सतगुरु कहकर अपनी गर्दन झुकादी।

'अगर' नाम के एक कवि जिसने कि हकीकत से केवल ४६ वर्ष बाद उसका काव्य-मय जीवन लिखा है, लिखता है कि उस दिन सारे लाहौर मे हड़ताल हुई और सब ने रावी के किनारे हकीकत के शव का सस्कार किया जिसमे जगतसिंह, सूरतसिंह और लखपतराय जैसे शाही दीवान भी थे।

मुसलमान हाकिमों ने जितना ही सिखों को दमन करना चाहा उतने ही वे भी प्राणों पर खेलने लगे, कहावत है कि अति रगड़ से चन्दन मे भी अग्नि उत्पन्न हो जाती है। वे भी यत्रतत्र और सर्वत्र

चन्दन से आग

जहाँ भी मौका देखते जा धावा करते और फिर पहाड़ियों मे निकल जाते, गस्ती सेना का भी अब प्रभाव धीरे धीरे कम होने लगा। कभी २ वह मैदान मे सामने आकर भी मुकाबिला कर जाते वरना दुश्मन को हैरान करने के लिये छापा उनका एक अमोघ साधन था।

जब पंजाब के मुसलमान हाकिमों ने देखा कि हम इस प्रकार भी सिखों को नहीं दबा सके है तो उन्होंने एक हृदय हिला देने वाली घोषणा को वह इस प्रकार थी.—"जो कोई सिखों की प्रगतियों की

रोमाचकारी घोषणा

मुखविरी करेगा उसे १०) और जो किसी सिख को पकड़ेगा उसे २५) गिरफ्तार करके थाने मे पहुँचाने वाले को ५०) और सिर काट कर लाने वाले को सौ रुपये दिये जावेगे सिखों की बर्बादी में पूरी सहायता देने वालों को जागोरे दी जावेगी।" यह एक सम्मिलित घोषणा थी जो जालधर लाहौर और सरहिंद के मुसलमान हाकिमों ने की थी।

लोभ बहुत बुरी बला है, इस कुकृत्य मे चद हिन्दुओं ने भी कलंक कालिमा का टीका अपने माथे लगाया और मुसलमानों ने तो इसे रोजगार समझ लिया। नि सिखों की हत्याये, गिरफ्तारिया और मुखबरी होने लगीं।

खजाने की ट

यह छापे केवल मुसलमानी रईसों और परगना अफसर पर ही मारे जाते थे एक बार उन्होंने उस शाही खजाने को भी तरनतारन मे लूट लिया। जिसे दो हजार आदमी लाहौर से दिल्ली ले जारहे थे।

इस संघर्ष के समय में जो कुछ लोग मुसलमान हो जाते थे उन्हे अमृत पिलाकर अपने धर्म और समुदाय में मिलाने से भी सिख नहीं चूकते थे। जब दिल्ली से ३८ हजार सैनिक सिखों को बर्बाद करने के

धम संस्कार

लिये भेजे गये तो लड़ाकू और छापा मारने वाले सभी सिख पहाड़ों मे चले गये किन्तु उन फौजियों ने गाँवों में रहे-सहे लोगों को बहुत तंग किया। तगी यहा तक की गई कि सिर के लबे बाल और डाढ़ी वाले हिन्दुओं तक को मारा पीटा और कत्ल किया गया। पहाड़ो मे जब यह खबर पहुँची तो सिखों ने गुरमता किया और तय कर लिया कि उनमे से जो भी सिख बनना चाहे शुद्ध कर लिया जावे। इस प्रकार अनेकों लोगों को मुसलमानी धर्म से वापिस करके सिख बना लिया गया।

सिखों को बल से न दबते देखकर मुल्क मे अपनी हुकूमत को कामयाब बनाने के लिये उन्हें जागीरें आदि देकर शांत करना चाहा। इस मतलब के लिये लाहौर के हाकिम ने भाई सुबेगसिंह को नवाबी खिल्लत देकर अमृतसर भेजा जहाँ कि सिख एकत्रित हुए थे। पहले तो सिखों ने नवाब से किसी भी प्रकार का सम्बन्ध रखने से इन्कार कर दिया परन्तु जब सुबेगसिंह जी ने कहा कि इस प्रकार एक तरफ तो वह सूबेदार की तरफ से बेखटके हो जावेगे दूसरी ओर वह आहिस्ता २ अमन के समय मे अपनी ताकत बढ़ा सकेंगे और यह समय तो खिल्लत परवान करलेने का है,यह खयाल पास होगया परन्तु इसे लेने के लिये कोई भी सरदार तैयार न होता था जिस किसी को कहते वही इनकार कर देता अन्त मे सबने इसे भाई कपूरसिंह जी को जो कि उस समय संगत मे पखा झलने की सेवा कर रहे थे देने का फैसला कर दिया। कपूरसिंह जी ने यह कहकर स्वीकार कर लिया कि मैं आपकी आज्ञा का पालन करता हूँ। इस शांति के समय मे सिखों ने आपस मे मेल मिलाप से रहने और सिख धर्म के प्रसार के लिये प्रयत्न करना शुरू कर दिया। आपसी झगडों को निपटाने के लिये, भाई मनीसिंह, सरदार कपूरसिंह, बाबा विनोद, हरीसिंह, जस्सासिंह और रामसिंह जी आदि को नियत किया गया।

पंथ के प्रमुखों ने इस समय जत्थे बनाकर गाँवों मे प्रचार के लिये भी भेजे हुए थे जो सिख धर्म का प्रचार भी करते थे और भेट पूजा भी लाते थे।

लेकिन यह सिलसिला थोडे ही दिन चालू रहा, मुस्लिम शासक समझ गये कि जागीरों और इनामों की आमदनी से तो सिख अपनी ताकत बढ़ाते हैं। इसलिये उन्होंने जागीर व इनामों की जब्ती शुरू कर दी।

जागीर वाले सिख अपनी आमदनी का एक बड़ा हिस्सा पंथ को देते थे और अमृतसर में चढ़ावे और पूजा में भी अच्छा धन आजाता था।

जागीरों के इस प्रकार जब्त किये जाने पर सिखों ने समझ लिया कि मुस्लिम शासकों ने अपने सुलहनामे को खुद ही तोड़ दिया है अत. वे भी अब स्वतन्त्रता से उसी रास्ते पर चल निकले जो महावीर

फिर वही बातें

बन्दासिंह ने प्रशस्त किया था और कांटेदार होते हुए भी शक्ति वर्द्धक था और जो उत्थान की ओर लेजाने वाला था। जत्थे बनाने और छापे मारने का काम फिर से चालू होगया इस बीच मे जो भी मुसलमान इनामदार, जागीरदार और रईस सिर चढ़े होगये थे उनकी अच्छी तरह से शोध की।

अपने २ जत्थे लेकर सिख लोग समस्त पजाब में फैल गये। नवाब कपूरसिंह जी भी माल्वा देश को चले गए। वहां उन्होंने अपना अच्छा सगठन किया। उनके देश मे पहुँचते ही चारों ओर से सिख उनके पास हाजिर हुए और उन्हें सम्मान मे उन्हें काफी भेटें दीं। भारी सग्रह किया।

लोग कपूरसिंह जी से इतने प्रभावित थे कि उनके वहाँ पहुँचते ही हजारों जाट जमींदार सिख बन गये। यही क्यों पटियाला के राजा श्री आलासिंह जी ने भी सब अपने परिवार के सिखी धारण करली।

सिखों के इस प्रकार के दर्रे पर उतर आने के कारण नवाब लाहौर ने अमृतसर पर कब्जा करने की सोची। कई हजार सैनिक अमृतसर की ओर रवाना किये और वहाँ पर जो सिख थे। उन्हें मार दिया।

अमृतसर पर कब्जा

सिखों का एक और जत्था अमृतसर के दर्शन के लिए आ रहा था। उसके साथ भी मुस्लिम सेना की भिड़न्त हुई और उस सिख जत्थे को लौटना पड़ा।

मुसलमान अफसरों ने अमृतसर के सरोवर को देखकर विचार किया कि यथा संभव इस तालाब के पानी को पीकर ही सिखों में इतना जोश आ जाता है। अतः अच्छा हो इनका यहाँ आना जाना ही बन्द कर दिया जाय। बस ऐसा ही किया गया जो भी सिख वहाँ आ जाता उसके साथ बुरा सलूक किया जाता। अमृतसर मे से सब सिखों को हटा दिया गया। सिर्फ एक भाई मनीसिंह जी ही ऐसे आदमी थे जिन्होंने अमृतसर को नहीं छोड़ा वास्तव मे वे इस प्रकार के मीठे स्वभाव के थे कि उनसे हिन्दू मुसलमान सब ही खुश रहते थे।

भाई मनीसिंह जी एक शांत पुरुष और देवता स्वभाव के आदमी थे। आपका जन्म मालवा प्रदेश के कियोवाल नामक गाँव में जाट जमीदार चौधरी भीकाजी के घर हुआ था। आप पांच भाई थे। जिनमे सबसे बड़े आप ही थे। एक बार चौधरी भीकाजी गुरु गोविन्दसिंह जी के दर्शनों के लिए गए। बालक मनीसिंह भी उनके साथ थे। कई दिन तक दोनों बाप बेटों ने उपदेश सुने। उस समय आपकी अवस्था केवल दस वर्ष की थी। गुरु जी मनीसिंह जी की चेष्टाओं और हाव भावों को देखकर खुश थे। अतः उन्होंने भीकाजी से मनीसिंह को वहीं छोड़ जाने के लिये कहा।

भाई मनीसिंह की शहीदी

पिता का खयाल था कि कुछ दिनों के बाद उनका पुत्र घर पहुँच जायगा किन्तु ऐसा हुआ नहीं वह तो गुरुचरणों मे ही रम गये। अपनी प्रतिभाशाली बुद्धि से उन्होंने सिख धर्म को पूरी तरह से हृदयगम किया था। शिक्षा भी ऊंचे दर्जे की प्राप्त कर ली थी। गुरु जी उनसे प्रसन्न थे। अतः उन्हे योग्य बनने मे कोई कठिनाई नहीं पड़ी।

सबसे अधिक महत्व का काम आपका यह था कि आप जन्म भर ब्रह्मचारी रहे। शादी नहीं की। सिख लोगों पर आपका बड़ा असर था। हजारों ही लोगों ने उनसे सिख धर्म की दीक्षा ली थी।

आप जितने विद्वान थे। उतने ही धैर्यवान भी थे। आनन्दपुर से निकलने पर गुरु पत्नियों को सुरक्षा के साथ दिल्ली मे आपने ही पहुँचाया था।

दमदमा में बैठकर जिस समय गुरु ग्रन्थसाहब की दशम पातशाह ने नई बीड़ तैयार की तो उनके लेखक आपही बने थे। हमारे सामने जो दशम ग्रन्थ है उसका संकलन भी आप ही ने अनेक सिख विद्वानों के साथ मिलकर किया था।

यह भी कहा जाता है कि 'श्री आदि गुरु ग्रन्थसाहब' जिस रूप मे आज कल है। वह रूप आपने तैयार किया था। पहिले ग्रन्थ साहब का रचना क्रम गुरु क्रम से था किन्तु आपने राग क्रम से कर दिया। इस प्रकार यह कठिनाई अवश्य हो गई कि प्रत्येक गुरु की वाणियों को सहज ही नहीं ढूढ़ा जा सकता किन्तु फिर भी आपने यह सहूलियत रक्खी कि रागनियों और वाणियों मे पहचान करने के लिये कि वह अमुक गुरु जी की हैं महला नम्बर दे दिये हैं। उदाहरणार्थ जहाँ २ जिन जिन वाणियों के आदि मे महला १ लिखा हो। वह सब प्रथम गुरु श्री नानकदेव जी महाराज की हैं। यह भी कहा जाता है कि सिख लोग आपके इस कार्य से असतुष्ट हुये थे किन्तु आपने क्षमा मागली।

पथ के प्रमुख लोगों मे आपकी गिनती होती थी। इसके सिवा अनेकों मुसलमान भी आपकी विद्वता और बोलचाल की मिठास और सद्व्यवहार पर मुग्ध थे। आपके चारों ओर धर्म जिज्ञासुओं की भीड़ लगी रहती थी। आप सबके प्रश्नों का उतर देते और सब ही का समाधान करते।

अमृतसर के दर्शन के लिये आने जाने वाले सिखों को तग किया जाता था और वे निराश लौट

जाते थे। इससे भाई मनीसिंह जी के हृदय पर बड़ी चोट पहुंचती। वे यह भी अनुभव करते थे कि जह चन्द दिनों पहले हजारों सिख बने रहते थे। और साथ २ हरि मन्दिर में भजन पाठ करते थे। आ यह पवित्र स्थान सुनसान हो गया है।

इन्हीं सब बातों के ख्याल करके वे बहुत दुखी भी होते थे। अंत में उन्होंने अमृतसर में रहने वा अफसर से प्रार्थना की कि कम से कम एक साल मे तो सभी सिखों को यहाँ दर्शन, कर लेने के लिये आ दिया जाया करे। अमृतसर के अफसर ने उनसे कहा हम तो ऐसी इजाजत नहीं दे सकते, हां आप लाही से इजाजत हासिल करलें तो हमे कोई एतराज नहीं होगा।

भाई मनीसिंह जी ने आखिर लाहौर के हाकिम के पास ही दिवाली पर मेला भरने की इजाजत के लिये लिखा।

लाहौर के हाकिम ने अपने सलाहकारों से मंत्रणा करके भाई जी के पास उत्तर भेजा कि अमृतसर मे दिवाली पर पूर्ववत मेला भरने की इजाजत यों ही नहीं दी जा सकती। यदि पाच हजार रुपया महसूल के देना मंजूर करो तो मेला भरने की इजाजत दी जा सकती है।

भाई मनीसिंह जी ने सोचा कि मेले मे बे शुमार सिख आयेंगे। अत पांच हजार रुपया दे देना कोई भी कठिन न होगा और इस मेले से जो लाभ होंगे वे खालसा के लिये बहुत काम के साबित होंगे। क्योंकि वह मिलकर भविष्य का प्रोग्राम बना सकेंगे। इसलिये उन्होंने स्वीकार कर लिया और मेले का आयोजन करने लगे। प्रत्येक गाम और नगर मे खबर कर दी गई कि दिवाली पर सिख लोग आकर अपने पवित्र मेले को भरें और हरि मन्दिर जी के दर्शन करें।

इधर नवाब लाहौर ने सोचा कि यह मौका भी खूब हाथ आया है। इस समय अपनी फौजें भी अमृतसर भेज देनी चाहिए, जो मेले मे आये हुये सिखों का एक ही बार में खातमा करदें।

फौजों के अमृतसर पहुँचते ही भाई मनीसिंह जी घबरा गये। वे समझ गये कि नवाब की नीयत में फर्क है।

यह देखकर भाई मनीसिंह जी ने सिखों की ओर आदमी दौड़ा दिये। ताकि इस बिछ रहे जाल से उन्हे सूचित कर दिया जावे। इससे सिख मेले की ओर आते हुये जहा भी थे वहीं रुक गये और जिससे नवाब की सिखों को तबाह करने की तजवीज सफल न हो सकी। इससे जकरियाखान बहुत भुनभुनाया और भाई मनीसिंह जी को गिरफ्तार कराके लाहौर बुला लिया।

रुपये का सवाल नवाब की तरफ से होने पर भाई मनीसिंह ने कहा, मेला लगता। चढ़ावा आता। तो मैं अवश्य रुपये देता। परन्तु आपकी फौजों के अमृतसर के निकट पहुच जाने के कारण मेला नहीं लग सका। इसलिये मेला न लग सकने का कारण आप हैं। इसलिये अपने ही कारण से मेला रुक जाने से और कुछ भी रकम न आने के कारण आपका रुपया मागना उचित नहीं और ना ही मेरे पास रुपया है कि मैं दे सकूं।

परन्तु वहाँ सचाई और न्याय की तो बात ही नहीं थी। अपनी चाल न चल सकने के कारण गुस्से से नवाब ने भाई मनीसिंह के अग प्रत्यंग जुदा कर देने का हुक्म दिया।

काजियों ने उनके सामने यह प्रस्ताव भी रखा कि यदि आप इस्लाम कबूल करलें तो आपकी जान बख्शी जा सकती है।

भाई मनीसिंह जी ने जवाब दिया। मैं देखता हूँ कि मौत सबके लिये आती है। यदि आज मैं

मौत के डर से इस्लाम कबूल करलूँ तब भी मौत तो आयेगी ही। इसलिये जब मौत रुक नहीं सकती तो मुझे अपने ही पवित्र धर्म में रहते हुए मरने में ही आनन्द मालूम होता है।

रहा यह सवाल कि मेरे शरीर का अंग प्रत्यंग काटा जायगा सो इसके लिये तो इतना ही कहना काफी है कि जो गर्दन कटाने को राजी हो जायगा। वह पैरों के टुकड़े कटाने से ही क्यों हिचकेगा।

लाहौर शहर में यह खबर बिजली की भांति फैल गई। शहर में जो सिख रहते थे। वह तिलमिला गये और घरों के बासन, बर्तन, स्त्रियों के गहने पाते बेचकर भी उन्होंने पांच हजार रुपये इकट्ठे किये और भाई जी को छुडाने चले।

किन्तु भाई मनीसिंह जी को जब इस बात का पता चला तो उन्होने उन सिखों से कहा—मैं रुपया देकर अपने आपको छुड़ाना नहीं चाहता।

जल्लादों ने भाई जी को वध स्थल पर ले जाकर जो कि आज शहीदगज के नाम से काफी मशहूर हो गया है। उनके अंग के प्रत्येक हिस्से को जुदा कर दिया। यह घटना माघ सुदी ५ सवत् १७६४ की है।

भाई मनीसिहजी की शहीदी ने सिखों में आग सी लगा दी। जिसको बुझाने के लिए जकरियाखान ने फिर से अपनी गस्ती सेनाये इलाके में भेज दीं ताकि सिख किसी जगह एकत्र न हो सके।

इसी समय नादिरशाह दुर्रानी हिन्दुस्तान को लूट खसूट कर अपने देश को वापिस जा रहा था। अपने घर वार से निकाल दिये जाने के कारण सिख भूख प्यास से दिन गुजार रहे थे। शहरों में उनको बसेरा न था। ग्रामों में से गस्ती फौजे ने उन्हे जंगलों को निकल जाने के लिए मजबूर कर रखा था और जब वे जगलों में पहुँचते तो वहां आग लगा दी जाती थी। ऐसी विपत्ति के समय में सिखों के लिये जीवन निर्वाह कर सकना अति कठिन हो रहा था। इसलिये उनके पास इसके सिवा कोई चारा ही न था कि जिन लोगों ने उन्हे बेघर बार का किया था। उन पर आक्रमण करके उनसे अपनी अपहृत वस्तुओं को वापिस कर ले या अत्याचारी शासको पर छापा मार के अपने निर्वाह का वसीला बना सके। लौटता हुआ नादिरशाह जब शिवालक की पहाडियों में से गुजर रहा था। तो सिखों ने उस पर छापा मारने आरम्भ कर दिये और भारत की लूट से लदे हुए माल का बहुत सा बोझ हल्का कर दिया।

ईरान, अफगानिस्तान और हिन्दुस्तान का विजयी नादिर घर घाट से निर्वासित किये हुए अध नंगे सिखों की मार से घवरा उठा। और जब लाहौर का हाकिम जकरियाखान उससे मिलने आया, नादिरशाह ने पहला सवाल जो उससे किया था यह था-यह कौन और किस प्रकार के लोग हैं कि जिन्होंने देहली की लूट से लदी हुई मेरी फौज के पीछे के हिस्से को लूट मारा है और जिनके भय से कूच के समय मेरी फौज की तरतीब टूटी जा रही है। इनका सरदार और मुल्क कहां है? इनका पता बताओ ताकि उसे खाक में मिला कर इनका नामो-निशान मिटा दू। जकरियाखॉ ने उत्तर में कहा यह एक हिन्दू और मुसलमानों से निराले ही सक (सिख) धर्म के अनुयायी हैं। नंगल इनका देश है और घोड़ों की पीठ इनके घर। यह खडे-खड़े ही सोते हैं। और चलते जा रहे ही खाते हैं। घी और नमक का स्वाद नहीं जानते। न असाढ़ में पानी ढूंढते हैं और न सरदी में सेंकने को आग। हम इनको मार-मार कर थक गये हैं किन्तु वह उसमे ही सुख मानते हैं और बड़े फूले जा रहे हैं। पीसा हुआ अनाज नहीं खाते और भूखे-प्यासे मरते जाते हुए भी बड़ी सख्त लड़ाई करते हैं। अकेला-अकेला सैकड़ों से लड़ने को तैयार हो जाता है और मृत्यु से भय नहीं खाता। नादिरशाह ने यह बात सुनकर पूछा कि यह उम्मत किस पीर की है। जकरियाखान ने सिखों की उत्पति का हाल बताते हुए कहा कि इनका मुर्शिद बाबा नानक है जो कि एक

करामाती फकीर हुआ है। इनके पाचवे और नौवे गुरुओं को मुगल बादशाहों ने धार्मिक और राजसी शरारतों से मरवा दिया था। इनके दसवें पीर, गुरु गोविन्दसिंह के दो पुत्र तो लड़ाई मे मारे गये और दोसूवा सरहिन्द ने जिवह करवा दिये थे। इनके एक वड़े सरदार को देहली में फरुखसियर ने मरवा दिया था और अनेकों को हमने मारा है। किन्तु यह वढ़ते ही चले जा रहे है। यह सुन कर नादिरशाह मुस्करा पडा और कहने लगा, "तो फिर इनसे डरना चाहिये वह समय नजदीक ही है कि जव यह सिर निकालेंगे और इस देश के वालिये वन जायेंगे।"

जकरियाखान मित्र तो सिखों का पहले से ही न था परन्तु नादिरशाह के कहने से उसे वहुत नामोशी आई और चिढ़ गया। अत. उसने एक सिरे से ही सिखों का कत्ल आम करने का हुक्म दिया। यह दूसरा कत्लेआम था जो सवत १७९६ से १८०२ विक्रम तक रहा।

इस प्रकार के कत्लेआम के वाद हाकिमों ने यह रिपोर्ट कर दी कि अव कोई सिख शेष नहीं रहा और सव खत्म कर दिये गये हैं। इन्हीं दिनों में भाई वोतासिंह और उनके एक और सिख साथी को जो तरनतारन के निकट जगल में रहा करते थे। एक दिन दो जमींदारों ने उन्हे देखा। उनमे से एक ने अपने दूसरे साथी से पूछा क्या यह कोई सिंह जा रहा है, उत्तर में दूसरे साथी ने कहा नहीं, सिंह कहा हो सकता है? यह कोई गीदड़ होगा जो छिप कर फिर रहा है। सिंह तो खतम कर दिये गये। यह वात भाई वोतासिंह को लग गई और उन्होंने दिल में सोचा कि हमें अव जाहिर करना होगा कि सिंह अभी तक मौजूद हैं खत्म नहीं हुए। इसलिये यह उसी वक्त वहा से निकल कर शाही सड़क पर सराय नूरुद्दीन के निकट वैठ गया और आते-जाते मुसाफिरों से फी छकड़ा एक आना और फी गधा एक पैसा वसूल करना आरम्भ कर दिया कुछ समय ऐसे ही चलता रहा और किसी ने उससे पूछा ताछ न की। परन्तु केवल कर वसूल कर लेना तो भाई वोतासिंह का लक्ष्य न था वह तो शाही शासकों को यह वात जता देना चाहता था कि सिख समाप्त नहीं हुए किन्तु जिन्दा हैं। इसलिये उसने जकरियाखान को इस प्रकार चिट्ठी लिखा था—

चिट्ठी लिक्खै सिंह वोता। हथ्थ है सोटा।
आना लाया गडे नू। तै पैसा लाया खोता॥
आखो भाभी खानों नू। यों आखें सिंह वोता॥

वोतासिंह का इस प्रकार का पत्र जव लाहौर के सूवेदार जकरियाखान पर पहुँचा तो उसने जलाउद्दीन नामी एक फौजी अफसर को सेना देकर वोतासिंह को गिरफ्तार करने के लिये भेजा भाई वोतासिंह अपने साथी समेत लड़ने को तैयार हो गये। एक तरफ हाथों में केवल सोटा लिये दो सिख, और दूसरी तरफ सूवेदार लाहौर का एक सौ सैनिकों का फौजी दस्ता। इन दोनों ने हथेली पर सर रक्खे हुए अपनी पीठें जोड़ लीं और घूम-घूम कर सैनिकों के वारों को रोकने लगे। जव तक उनमे जान रही किसी को अपने शरीर से हाथ लगाने का मौका नहीं दिया। आखिर दो आदमी सौ सैनिकों का कहा तक मुकावला कर सकते थे। उनके वहुत से आदमियों को जख्मी कर के अन्तत शहीद हो गये।

मस्साखान ने हरिमन्दिर में अपनी चारपाई डाल ली थी और उस पर वैठा हुआ हुक्का गुड गुड़ाया करता था। और दरवार साहव को विविधि दुराचारों का स्थान वना दिया था।

वुलाकासिंह नामी एक सिख ने जव यह हाल अपनी आँखों से देखा तो वह अपने साथियों को सूचना देने के लिये निकल पड़ा। वह उसी समय वीकानेर की ओर चल पड़ा, क्योंकि सिख उधर ही

चले गये थे। एक तो उधर बालू के टीवे और दूसरे पानी का अभाव इसलिये मुसलमान सेनाये उधर बहुत ही कम पहुँची थीं।

यह जिस समय सिखों के उस टोल मे पहुँचा जो बीकानेर राज्य मे रहता था उस समय वहॉ पर उनका दीवान लग रहा था। इसने दरबार की बेइज्जती और मस्साखां के दुराचारों का किस्सा कह सुनाया, जिसे सुन कर क्रोध से सिखों की मुट्ठियां बॅध गईं। उनमे से कई ने तो कहा बुलाकासिंह तू उस हालत को बर्दास्त कर सका, हमे तो यही आश्चर्य है। अपने धर्म स्थान की रक्षा के लिये तैने अपना सीस क्यों नहीं दिया। बुलाकासिंह लज्जित हो गया।

उन सिखो मे बुड्ढासिंह जी नामी एक बूढ़े और उत्साही सिख ने उपस्थिति सिखो को संबोधित करते हुए कहा—"सिंहो! आप मे है कोई ऐसा शेर नर जो अमृतसर जाकर मस्सेखॉ रंघड का सिर उतार लावे। इन जोशीले वाक्यों को सुन कर भाई महताबसिंह मंडीकबो वाले और सुक्खासिह जी मीरांकोटये नाम के दो सिंह खड़े हुए और तलवार को उठाते हुए कहा, यह सेवा हमें बख्सी जानी चाहिए। चारों ओर से 'वाहि गुरु जी का खालसा' की ध्वनि हुई।

आप दोनों ही मीराकोट के जाट जमीदार थे और इनके बाप गुरु गोविन्दसिंह जी से पाहिल लेकर सिख धर्म मे दीक्षित हुए थे।

जब यह दोनों वीर अमृतसर के निकट पहुँचे तो मुसलमानों का वेश धारण किया और एक थैले मे पैसे भरे।

अमृतसर पहुँचकर पहरेदारों से कहा कि हम अपने इलाके का लगान अदा करने के लिये आये है और जल्दी ही लौट जाना है। घोड़ों को वृक्षों से बांध कर भीतर हरि मन्दिर में घुस गये। दोपहरी का का समय और अंधड़ का चलना। ढाटा बॉधे हुये दो नौजवानों के प्रवेश से मस्ते खॉ चौंका नहीं क्योंकि अंधड़ के समय मे पंजाब मे सभी लोग ढाटा बांध लेते हैं।[1] वह पूछना ही चाहता था कि आप लोग किसकी इजाजत से भीतर आये हैं कि उन्होंने पैसों का थैला उसके सामने रख दिया। ज्योंही वह नीचे गर्दन करके थैले को देखने लगा। भाई महताबसिंह ने तलवार के एक ही हाथ मे उसका सिर धड़ से अलग कर दिया। भाई महताबसिंह जितनी देर मे मस्से खां के सिर को थैले मे रक्खे उतनी देर में सुखानसिंह ने अपनी तलवार से उन लोगों का सफाया कर दिया जो वहॉ नाच रंग के मजे मे शामिल हो रहे थे। दोनों वीर तुरन्त ही बाहर आये और घोड़ों पर सवार होकर यह गये वह गये।

मस्से खां के साथियों को जब तक पता चले और वह पकड़ने के लिये तैयार हों, तबतक तो वे कई कोस निकल गये। और पीछा करने वाले शत्रुओं के काफी जोर लगा लेने पर भी हाथ नहीं आये। उत्साह से उनका दिल उमंगे ले रहा था और हवा से उनके घोड़े बात कर रहे थे।

हमारा अनुभव ऐसा है कि जिन कौमों का निर्माण शांति के समय मे होता है, उन मे तात्विक लोग भले ही पैदा हो ले किन्तु शूरमाओं की बेहद कमी होती है और जिन कौमों का निर्माण सघर्ष के समय मे होता है। उनमे शूरमाओं का घाटा नहीं रहता। शाति के समय की बनी कौमे तूफान मे मिट भी शीघ्र ही जाती हैं। बौद्ध लोगों का उदाहरण हमारे सामने शांति के समय की बनी कौमों मे से

१ मुंह को ढकते हुए जो कपडा ठोडी के नीचे होते हुये कानों के पास से सिर पर बांधा जाता है, उसे ढाटा कहते है।

हैं। अफगानिस्तान से लेकर बंगाल तक जहाँ एक दिन सारा ही देश बौद्ध था। आज दस या नौ भी बौद्ध दिखाई नहीं देते। ज्योंही ब्राह्मणों ने उन्हें नष्ट कर देने के लिये राजपूतों को जन्म दिया। त्योंही उनका अन्त हो गया। खालसा जाति का निर्माण हुआ था तलवारों की चमक में। अतः तलवार से मिटाना उन्हें एक दम ही असम्भव होगया। जहाँगीर के समय से उन्हें मिटाने का कार्य आरम्भ हुआ था और अब दिल्ली में छठी बादशाहत चल रही थी किन्तु वे नहीं मिट सके। मिटते भी कैसे जबकि वे संघर्ष के मध्य पैदा हुए थे और संघर्षशील जातियों में जो योग्यता और गुण होते हैं वे सब उनमें पूरी मात्रा में थे।

जिस समय गश्ती फौजें उनकी टोह में होती थीं। उस समय वे लापता होते थे। भूख और प्यास को बर्दाश्त करते थे। उस समय उनकी स्त्रियाँ चर्खे कातकर और पशु पाल कर अपना और अपने बच्चों का गुजारा करती थीं किन्तु जंगलों में भटकने वालों की सहायता के लिये भी रकम इकट्ठी करती थीं। और जरूरत होने पर वे तलवारें लेकर निकल पड़ती थीं।

और जो भाई देहातों में रह जाते थे वे भी अपनी कमाई को खुद ही खाकर सन्तुष्ट नहीं होते थे, लंगर खोलकर, पंथ में देकर अनेक प्रकार से वह अपने धन को अपने भाइयों की मदद में लगाते थे। इसके बदले में कभी-कभी एक नहीं ऐसे अनेकों ही भाइयों को प्राण दंड की वह भी नृशंसता के साथ दी गई सजा भी भुगतनी पड़ती थी।

माझा देश के पूला नामक गाँव में रहने वाले भाई तारूसिंह जी भी ऐसे ही सत पुरुषों में से थे। जिन्हें अपने भाइयों की सेवा के उपलक्ष में प्राणों से हाथ धोने पड़े और उन्होंने इस भयंकर दंड को बड़ी प्रसन्नता से स्वीकार किया। आप जाट सिख थे और अपनी विधवा माँ,

भाई तारूसिंह

तथा फुफेरी बहिन के साथ खेती का काम करके अपना जीवन निर्वाह करते थे। जिन दिनों की हम बात कह रहे हैं। उन दिनों आपकी अवस्था कुल पच्चीस वर्ष की थी। यद्यपि वे मालदार आदमी नहीं थे किन्तु धार्मिक श्रद्धा और कौमी मुहब्बत उनके हृदय में कूट कूट कर भरी हुई थी। खेती और श्रम से जो भी,वह पैदा करते अपनी सिख बिरादरी के परोपकारी कामों में लगा देते थे।

धार्मिक श्रद्धा उनके हृदय में इतनी थी कि चाहे वह खाये बगैर रह सकते थे किन्तु धार्मिक वाणियों का पाठ किये बगैर नहीं रह सकते थे। जिस दिन उनके घर पर कोई खालसा भाई नहीं आता था उस दिन को वह मनहूस दिन समझते थे।

उनका हृदय पवित्र, स्वभाव सरल और चेहरा सौन्दर्य पूर्ण था। चरित्र के वह पूर्णिमा की चाँदनी की भांति निर्मल थे। उनके ऐसे चरित्र और स्वभाव की सभी लोगों पर छाप थी और सिख भाई उन्हें प्रेम की निगाह से देखते थे।

ऐसे तरुण देवता को मुसलमानी हाकिमों की क्रूर आँखें भला कब बर्दाश्त कर सकती थीं। लाहौर सूबेदार के पास उनकी शिकायत पहुँची कि तारूसिंह पंथ की मदद करता है। त्योंही और तुरन्त ही बिना किसी हिचकिचाहट के हुक्म हुआ तारूसिंह को पकड़ लाओ और हमारे सामने पेश करो।

सूबेदार ने कुछ आदमियों का एक जत्था भाई तारूसिंह जी को गिरफ्तार करने के लिये रवाना कर दिया। जब वह लोग भाई तारूसिंह जी के घर पर पहुँचे तो तारूसिंह जी ने बड़ी शान्ति के साथ अपने को गिरफ्तार करा दिया।

रास्ते में वे जब जा रहे थे तो कुछ सिख आ गये क्योंकि वह इस बात को बर्दाश्त नहीं कर

चाहते थे कि उनके आगे तारूसिंह जैसे पवित्र आदमी को कोई गिरफ्तार करके ले जाय। भाई तारूसिंह जी उनका अभिप्राय समझ गये और उन्होंने उनसे कहा, आप ऐसा काम मुझे बचाने के लिये करना चाहते हैं। किन्तु आपने यह खयाल नहीं किया कि फिर मुझे कब अपने धर्म पर बलिदान होने का मौका मिलेगा।

दूसरे दिन शाम को लाहौर पहुचे। रात भर हवालात मे रखने के बाद सूबेदार के सामने भाई जी को पेश किया गया, उन पर सूबेदार ने चार्ज लगाया। "तुम भागे हुए सिखों की मदद करते हो, खाना खिलाकर रुपये पैसे देकर अपने घर ठहरा कर। तुम्हारा यह कार्य बादशाह के दुश्मनों को मदद पहुँचाने वाले जुर्म मे शामिल होता है। और इस जुर्म की सजा भी निहायत कठोर होती है।" भाई तारूसिह जी ने उत्तर दिया मैं जिन्हे खाना खिलाता हूॅ। या मदद देता हूॅ वे खालसा हैं। मैं भी खालसा हूॅ। इस तरह वे मेरे भाई है। भाइयों को मदद देने मे मैं अपना कोई अपराध नहीं समझता।

बादशाह के दुश्मन नहीं है वे तो उन अन्यायों और अत्याचारों के दुश्मन है। जो शाही आदमियों द्वारा निरपराधो पर किये जाते हैं।

सूबेदार भाई तारूसिंह जी की इस प्रकार की खरी और निर्भयता पूर्वक कही हुई बाता से खुश नहीं हुआ। उसने कहा तारूसिह हमारी निगाह मे यह कृत्य अपराध है। इसलिए मैं तुम्हे चर्खी पर चढ़ाकर हड्डिया तोड़ने की सजा देता हूॅ। चुनांचे भाई तारूसिह जी को तीन दफा चर्खी पर चढ़ाकर उनको तरह-तरह की तकलीफे दीं। परन्तु उनके मुॅह से हर बार अकाल-अकाल ही निकलता रहा। तीसरी दफा चर्खी से उतरवा कर नवाब ने कहा कि तुम अपने केशों को कटवाकर इस्लाम स्वीकार करलो। भाई तारूसिह जी ने कहा केश मेरे प्राणों के साथ जायेगे और अपने धर्म को किसी भी जब्र और भय से नहीं त्याग सकता हूॅ।

सूबेदार इस बात को सुनकर आग बबूला हो गया और उसने कहा अच्छा मैं देखता हूॅ। तुम्हारे केश प्राणों के साथ कैसे जाते हैं। यह कहते हुए उसने जल्लादों को हुक्म दिया कि लोहे की रापी से इसकी खोपड़ी छील दो और इसके बाल उतार लो।

भाई तारूसिंह जी को जल्लादों ने पकड़ लिया और रापी से उनके सर को छील दिया। इस प्रकार दी हुई तकलीफों से शारीरिक तौर पर मुर्दा प्राय. हो गये थे। इस पर उनको उठाकर फेंक दिया गया। जहा से वे एक धर्मशाला मे ले जाए गए और पहली श्रावण सवत १८०२ विक्रमी १ जौलाई सन् १७४५ को अपने धर्म पर जान कुर्बान कर गए। भाई तारूसिह जी के पाच सात घंटे बाद ही नवाब जकरियाखान भी मर गया। इसके बाद उसका पुत्र याहियाखान हाकिम हुआ।

धर्म के लिए कुर्बानी का सिलसिला सिखों मे भाई तारूसिंह जी पर ही समाप्त नहीं हो जाता। भला जिनकी शहीदी के कारण शहीदगंज बन गया हो। उस गंज मे तो अनेकों भाईयों के सिरों के ढेर होंगे।

भाई सुबेगसिंह और शाहबाजसिह

भाई सुबेगसिंह और शाहबाजसिंह जी भी उन शहीदों मे अपना नाम अमर कर गए हैं। इतिहासकारों ने लिखा है कि भाई सुबेगसिह जी लाहौर जिले के जम्बर गाव के जाट घराने मे पैदा हुए थे। सिखधर्म उनके दादा ने ग्रहण किया था। आपका घराना ऐसा था, जिसमे पढ़ने लिखने का शौक था। इससे कई पीढ़ियों से आपके यहाँ राज की नौकरी का भी रिवाज सा ही पड़ गया था। आप भी लाहौर के सूबे मे मुलाजिम थे। शिक्षा आपने फारसी मे पाई थी किन्तु धार्मिक ग्रन्थों के अध्ययन के लिए आपने गुरुमुखी

भी सीख ली थी। अपने धर्म के आप कट्टर थे किन्तु दूसरे धर्मों के प्रति भी आपके सहनशीलता के भाव थे। अपनी ड्यूटी पूरी करने मे आप कुशल थे।

भाई सुवेगसिंह जी के एक पुत्र था उसका नाम था शाहवाजसिंह। शाहवाजसिंह ने भी अरबी फारसी की ऊँची शिक्षा प्राप्त की थी। गुरुमुखी के अलावा इन भाषाओं का पढ़ना उसकी महत्वाकांक्षाओं का प्रतीक है। वह भी अपनी योग्यता से अपने वाप का जैसा ओहदा प्राप्त करना चाहता था। किन्तु "करता के मन कछु और है और मेरे मन कछु और" की कहावत उनके ऊपर आयद हो गई।

दुर्भाग्य से एक दिन शाहवाजसिंह की एक मौलवी से धार्मिक चर्चा चल पड़ी। जिसमें शावाहज-सिंह ने कहा—"ईश्वरीय आज्ञाओं और नियमों के अधिक नजदीक सिख धर्म है। यह ऐसा धर्म है जिसका पालन सर्व साधारण कर सकता है।' मौलवी को यह वात चाट गई और उसने काजियों को साथ ले जाकर नवाव से शाहवाजसिंह की इस गुस्ताखी की शिकायत की। वैसे काजी लोग तो इस नये नवाव के अभिषिक्त होने के समय से शाहवाजसिंह और उनके पिता सुवेगसिंह के खिलाफ कान भरा करते थे।

नवाव ने दोनों वाप बेटों को गिरफ्तार करने का हुक्म दे दिया। जिस समय दोनों पिता पुत्र वन्दी की हालत मे दरवार मे लाये गये तो काजी ने सूवेदार की ओर से कहा—"भाई सुवेगसिंह जी तुम्हारे पुत्र ने इस्लाम की तौहीन की है। तुम्हारी हरकतों को भी हम लोग वरावर देखते रहते हैं कि तुम सिखों को छिपे-छिपे मदद देते हो। इस्लाम की तौहीन का प्रायश्चित इसी प्रकार हो सकता है कि तुम दोनों वाप वेटे इस्लाम को कबूल करलो। वरना शरह के हुक्म के अनुसार तुम्हें चर्खी पर चढाकर अजाव से मार दिया जावेगा।

इसके उत्तर मे भाई सुवेगसिंह ने कहा कि हम किसी भी हालत में धर्म छोड़ने के लिए तैयार नहीं और यदि ईश्वरेच्छा यही है कि हमारा तुच्छ शरीर धर्म पर कुर्वान होना है तो इससे अधिक क्या सौभाग्य होगा। मृत्यु को तो एक दिन आना ही है तो आज क्या और दस दिन पीछे क्या ? अत: आप जो भी चाहें करलें। हमें सव कुछ परवाण है।

चुनाचे वाप बेटे को अलहदा-अलहदा, चर्खियों पर चढ़ाकर अजाव देने शुरू किए परन्तु यह सव कुछ उन्होंने अपने ऊपर सहन किया। अंत में वाप वेटे ने चर्खी पर समस्त तकलीफें झेलने के वाद अपने आपको कुर्वान कर दिया।

इस जागृति को दवाने मे कोई कसर की जा रही हो, ऐसी वात नहीं है। चारों ओर फौजी दस्ते गस्त लगाते थे और गावों में मुखविर नियुक्त कर रक्खे थे। फौजियों से अधिक मुखविर थे। क्योंकि जिन भाई महतावसिंह जी को फौजी दस्ते ढूँढ़ते ढूँढ़ते हैरान हो रहे थे। उन्हें जंडियाले के एक खत्री मुखविर ने ही पकड़ा दिया। भाई महतावसिंह जी की वहादुरी का थोड़ा सा हाल हम पिछले पृष्ठों में लिख आये हैं। अमृतसर के हरि मन्दिर में जाकर मस्से का सिर इन्होंने ही काटा था। पठानी सैनिकों के कई जत्थे आपकी तलास मे फिरते थे। आपकी गिरफ्तारी के लिये मोटे इनाम का एलान हो चुका था। अत मे जंडियाले मे आप पकड़े गये और गिरफ्तार करके लाहौर लाये गये। नवाव इनकी सूरत को देखते ही जल गया और उसने इनके वध का तुरन्त ही हुक्म दे दिया।

महतावसिंह जी की शहीदी

उसी चर्खी पर चढ़ाकर आपको जिवह कर दिया गया।

इन सिख शहीदों के लिये किसी ने सच ही कहा है—

"डरदे सी न तेग तीर तो न बरछीं हो सूरे।
करदे उहो जो मुहो कहिंदे जती मत सन पूरे।
मारन बढन टुकन शत्रु करदे चूरा चूरे।
लुटन पुटन तुर्रों का ताईं हिम्मत कर कर मूरे।
सहिंदे कष्ट धरम दे कारन बली होन बलकारी।
होन शहीद उह नाल हौसले करदे जुध तिआरी।
जिडदे कधा दे विच पैंवन हठीऐं द्रिडी सुभारी।
उनां जही न कोकी हिम्मत दग रहित नरनारी।
पलविच धरनी सूही करदें नाल लहू दे प्यारे।
इक इक सिख सौ शत्रु ताईं पल विच जाने मारे।
जितकर जुध पलक विच मारन सति अकाली नारे।
आज मर मर ताइब। सीते लखा जग उपकारे।

इन दिनों लाहौर का सूबेदार याहियाखॉ था। लखपतराय के उभाड़ने से वह सिखों का जानी दुश्मन बना हुआ था। इसके समय मे कई हजार सिख लाहौर मे लाकर कत्ल किये गये। तारीख'मखजन' के लेखक ने एक घटना का इस प्रकार वर्णन किया है —

"संवत १८०३ मे दीवान लखपतराय फौज लेकर सिखों के सिर पर पहुॅच गया, किन्तु वे भागकर जम्मू की ओर निकल गये थे। वहॉ भी उनका पीछा किया गया। इस लड़ाई में से वह दो हजार सिखों को कैद करके लाया और उन सबको नखास चौक मे कत्ल करा दिया।"

हमे अफसोस होता है कि दीवान लखपतराय जैसे हिन्दू भी सिखों के इस प्रकार के दुश्मन बने हुए थे। उसे सोचना तो यों चाहिये था कि खत्री कुल में पैदा होने के कारण मुझे गुरुओं के पंथ की मदद करनी चाहिए किन्तु जितने भी चाकर पन्थी खत्री अरोड़े और ब्राह्मणादि थे, उन्होंने कभी भी इन भारत सपूतों की ओर सहानुभूति के साथ नहीं देखा।

नवम्बर सन् १७४६ को जकरियाखान का दूसरा बेटा मिर्जा हयातउल्ला (फिलौरीखान) जिसने नादिरशाह की ओर से शाहनवाजखां का खिताब हासिल किया था। अपने भाई याहियाखान से अपने पिता की जायदाद का हिस्सा मांगने के लिये लाहौर आ पहुॅचा। बातचीत मे ही झगड़ा बढ गया और लडाई तक की नौबत पहुॅच गई, किन्तु याहियाखां ही लाहौर का हाकिम रहा। शाहनवाजके जमाने मे ही अहमदशाह अब्दाली हिन्दुस्थान पर आक्रमण करने के लिये आ पहुॅचा। शाहनवाजखां के भाग निकलने पर अहमदशाह ने लाहौर पर कब्जा कर लिया और देहली की ओर बढ़ा। लुधियाने जिले मे सं० १८०३ मे माणपुर के स्थान पर मुहम्मदशाह बादशाह के बेटे अहमदशाह मिर्जा से दुर्रानी की मुठभेड़ हो पड़ी परन्तु उसे परास्त होकर वापिस अपने देश को लौट जाना पड़ा। इस समम मिर्जा अहमद ने वजीर कमरुद्दीन के बेटे मुईनउल्मुक को जो मीरमन्नू के नाम से इतिहास में प्रसिद्ध है लाहौर का हाकिम बना दिया।

सिखों के ऊपर होने वाले जुल्मों मे मीरमन्नू के जुल्म एक खास स्थान रखते हैं। उसने उनके सिरों को इकट्ठा करने के लिये ही खास तौर से एक जगह मुकर्रिर करदी और हुक्म जारी कर दिये कि उनके जितने भी सिर लाये जासके। लाए जॉय। सैय्यद मुहम्मद लतीफ ने अपनी लिखी "तारीख पंजाब"

मे इसके जुल्मो की कहानी इस प्रकार लिखी है :—

"मीरमन्नू ने सिखों की गोशमाली और सरकोबी के लिये हिम्मत से कमर बांधी। हजारों सिखों को कत्ल किया। अपना रौब व हैबत सिखों के सिर पर ऐसी बिठाई कि वे उसके नाम से घबराने लगे। मीरमन्नू ने हुक्म दिया कि जो सिख मिले उसके सिर और दाढ़ी के बाल मुँड़वा दो। इससे सिख घबरा कर पहाड़ों मे जा छिपे। मीरमन्नू ने यहां भी उनका पीछा नहीं छोड़ा। सैकड़ों सिखों को पहाडों में से जंजीरों मे बंधवा कर मगा लिया और नखास खान में उनकी गर्दनें उतरवा दीं।

तहकीकात चिश्ती के लेखक मौलवी नूरमुहम्मद ने मीरमन्नू के अत्याचारो को इस प्रकार लेखबद्ध किया है :—

"नवाब मीरमन्नू की साहिबी मे सिखों की मुसीबत बहुत बढ़ गई थी। इस शख्स ने हजारों सिखों को कत्ल कराया था। हुक्म था कि मुलाजिम सरकारी को जहां भी कोई सिख मिले उसका सिर उतार ले। चुनाचे जिस कदर, सिख आते थे. तुरन्त कत्ल किये जाते थे।"

इसी लेखक ने अपनी पुस्तक में एक दूसरा जगह लिखा है। "शहीद गंज की समाधि के बनने का कारण यह है कि मीरमन्नू के समय मे जोकि सिखों का कातिल था। एक ईद पर ग्यारह सौ सिखों को कत्ल किया गया और सबके सब एक ही जगह इस मुकाम पर दफना दिये गये।'

हम समझते हैं कि सिखों की शहीदी की गाथा बहुत बड़ी है और बड़ी ही करुणाजनक भी है। किन्तु आश्चर्य यह है कि एक की शहीदी के बाद दूसरा घबराता नहीं किन्तु. उत्साहित होता है। यह बात पुरुषों ने ही की हो सो बात नहीं किन्तु सिखों की वहिन और गृहणिया भी जब परीक्षा का समय आया, पीछे नहीं रहीं। सरदार करतारसिंह जी ज्ञानी ने 'जौहर-खालसा' मे जो लिखा है, उसका सार यह है :—

सिख बहनों की शहीदी

"मीरमन्नू के समय मे जब सिखों पर जुल्म हो रहे थे तो वे घरों को छोड़कर जगलों में निकल जाते थे। मीरमन्नू ने चिढ़कर यूसफखां की कमान मे सिख स्त्रियों और बच्चों को पकड़ लाने के लिये फौज भेजी। उसने लगभग २०० स्त्री और बच्चों को गिरफ्तार करके लाहौर पहुँचा दिया। कड़ाके की गर्मी के दिन थे फिर भी उन बेचारियों को मय बाल बच्चों के बजार नखास की काल कोठरी मे बन्द कर दिया और सवा सवा मन उन्हें पीसने को दिया गया। खाने के लिये आधी रोटी और पीने के लिये भरपेट पानी भी नहीं। दो ही दिन मे सुकुमार बच्चे कुम्हला गये. वे भूख प्यास से तड़पने लगे। उन्हें मीरमन्नू की ओर से मुसलमानी धर्म स्वीकार करने के लिये कहा गया किन्तु सभी सिंहनियों ने फटकार कर कह दिया कि हम भी उन्हीं धर्मवीरों की वहिन वेटी तो हैं जो हजारों की तादाद मे बिना सी सिसकारा किये धर्म पर कुर्बान हो गये हैं। इस पर जल्लादों ने उनकी गोदों से छोटे २ बच्चों को लेकर उन्हीं के आगे टुकड़े २ कर दिया। और फिर पूछा क्या अब भी तुम मुसलमान नहीं बनोगी। इसपर भी उन्होंने गर्जकर कहा कि अरे दुष्टो यह तो इतने सौभाग्य शाली निकले कि इतनी छोटी उम्र में ही इन्हें धर्म पर कुर्बान होने का मौका मिल गया। दूसरे दिन फिर जल्लाद आये और उन्होंने उन सिंहिनियों के बच्चों की आंतें इकट्ठी करके माला की तरह उन बेचारियों के गले में डाल दी किन्तु वे किसी भी कष्ट से डरकर धर्म छोड़ने पर राजी नहीं हुई।

इन्हीं दिनों मे मन्नू को किसी ने खबर दी कि सिखों का एक दल मलांपुर के ईख के खेतों मे छिपा हुआ है। इस खबर को सुनते ही मीर अपना एक दल लेकर मलांपुर पहुँच गया और उन खेत

सन्त-समागम

तपस्वी बाबा श्रीचन्द और विनय मूर्ति गुरु हरिगोविन्द जी

शहीद वीर

बाबा दीपसिंह जी

को चारों ओर से घेर लिया। जिसमे सिखों का एक समूह बैठा था। प्राणों पर बनती देख कर उन्होंने भी अपनी बन्दूके संभाल लीं। दोनों ओर से गोलिया चलने लगीं दैवात मन्नू का घोड़ा बिदक गया और दो पैरों से सीधा खड़ा हो गया। मन्नू घोड़े की पीठ पर से खिसक पड़ा किन्तु उसका एक पाव रकाव मे उलझ गया। घोड़ा लाहौर की ओर भाग खड़ा हुआ। मीरमन्नू घिसटता हुआ मर गया। उसके साथी भी भाग खड़े हुये। उधर शहर मे जाकर सेना ने मीरमन्नू की लाश कब्जे मे करली। वह चाहती थी कि जब तक हमारा कई महीनों का वेतन न चुका दिया जायगा। हम मन्नू की लाश को दफनाने न देगे। सिख जिन्हे कि इस गडबड़ मे मौका मिल गया नखास बाजार पहुँच कर कालकोठरी से समस्त सिहिनियों को छुड़ा लाये।

एक लेखक ने उन तकलीफों की तालिका दी है। जो शहीदों को दी जाती थीं। वास्तव मे वह तालिका ही रोमांच पैदा कर देने वाली है। धन्य और हजार बार धन्य उन वीरो को है जिन्होंने इन तकलीफो को बर्दास्त किया किन्तु अपने धर्म को नहीं छोड़ा।

(१) चरखी पर चढ़ा कर हड्डियों को तोड़ना मरोड़ना।
(२) सूली जिसमे मलद्वार से लेकर सिर तक लंबी कील पार करदी जाती है।
(३) संगमार—पेड़ से बाध कर ईंटों मे सर फोड़ना व हाथ पाव तोड़ना।
(४) तसमेकसी—चमडे मे बांध कर रस्सी कस्सी की तरह इधर उधर से खींचकर हड्डी पसलियों को तोड देना।
(५) जम्बूरा से (चिमटा) के मास नोंचनी।
(६) मोगरी से मूज की तरह कूटना।
(७) जमीन मे गाड कर चांदमारी करना।
(८) खोपडी उतारना। (९) बन्द खोलना।

अहमदशाह दुर्रानी के एक हमले के समय वालहीजहान खां अमृतसर में सिखो के धर्म मन्दिर का अपमान करने की इच्छा से आ पहुचा। जब इधर के यह समाचार मालवे और मांझे मे पहुचे तो सिक्खों को बडा क्रोध आया। तलवडी (दमदमा) मे बाबा दीपसिंह जी नामक एक प्रसिद्ध सिख थे। उनकी छोटी सी गढी मे हर समय सैकडों सिंह इकट्ठे रहते थे। उन्होंने प्रतिज्ञा की कि मै अपना यह सिर दरबार साहब के ही भेट करता हूँ—भाई हीरासिंह, नत्थासिंह और गुरुबख्शसिंह जी आदि अनेकों सिख उनके साथ हो लिये।

अमृतसर से बाहर तुरक फौजों से उनका मुकाबिला हुआ। बड़ा घमासान युद्ध हुआ। सिखों ने इस जोर से तलवार चलाई कि जहानखा की सेना घबराहट मे पड गई। बड़े जोरों के साथ पठानों ने हल्ला बोला—जिसमे बाबा दीपसिंह जी का सिर एक पठान की तलवार से कट गया। पास से लड़ते हुए एक सिंह ने कहा, बाबा आप तो यह प्रतिज्ञा करके आए थे कि यह सिर श्री दरबार साहब के चरणों में ही समर्पण करना है। इस बात को सुनते ही बाबा दीपसिंह जी ने सिर को उठाकर हथेली पर रख लिया और एक हाथ से तलवार चलाते हुए आगे बढ़े। जहानखां यह कौतुक देख रहा था। उनको भी बाबा को रोकना मुश्किल हो गया और हरि मन्दिर मे पहुँच कर अपना शीश भेंट कर दिया।

जहां इन धर्मवीरों के सिर रक्खे गये थे वह स्थान भी शहीदगंज कहलाता है। और हरिमन्दिर के साथ गुरु के बाग में है।

चौदहवाँ अध्याय

मिसल राज्यों की स्थापना

गुरु गोविन्दसिंह जी महाराज ने खालसा संघ की स्थापना से वास्तव मे एक पंचायती राज्य की नींव डाल दी थी। सिखों का राज्य तो भारत मे कायम हुआ। किन्तु वह पंचायती राज्य कायम नहीं हुआ। व्यक्तियो का हुआ। और यही कारण है कि रणजीतसिंह जी का जैसा विशाल राज्य भी व्यक्ति राज्य होने के कारण उनके मरने के बाद सहज ही नष्ट हो गया।

फिर भी गुरुजी ने जो मार्ग प्रशस्त किया था, उस पर चलकर सिखों ने एक दिन प्रभुता स्थापित कर ही ली। इस प्रभुता की नींव मे कष्टों और कठिनाइयों की बड़ी दर्द भरी कहानी है। बीसियों हजारों सिखों की कुर्बानी हो चुकने पर यह प्रभुता हासिल हुई थी। उन्हीं हजारों बलिदानों मे से कुछ एक का वर्णन हमने पिछले अध्याय मे किया है। जो बहुत ही संक्षिप्त और सादी भाषा मे है। वरना उन बलिदानों की कहानी तो वहुत वड़ी और हृदय हिला देने वाली है।

मुसलमान शासकों के अत्याचारों ने जहाँ उन्हे बर्बाद किया, वहा उनमे शक्ति और आत्मबल पैदा करने का माद्दा भी दिया। अत्याचारों ने ही उनके सगठन को मजबूत किया। इन संगठनों का नतीजा ही सिखों की बारह मिसल है।

उन भयानक दिनों मे सौ-सौ, दो-दो सौ की टोलियों मे जो वीर सिख जंगलों और पहाड़ियों मे अपने बुरे दिनों का सामना करने के लिये फिरा करते थे। वे जत्थे कहलाते थे और जिस शख्श के अनुशासन मे जत्था रहता था। वह जत्थेदार कहलाता था।

खान बहादुर जकरियाखान के समय मे जवकि सिख शहरों और गांवों को छोड़कर जंगलों और पहाड़ो मे निकले हुये थे। प्राय- कभी लक्खी जंगलों मे, कभी शिवालक आदि पहाड़ियों मे दिन काटते थे। उस समय एक वड़ी सख्या का एक ही स्थान पर रह सकना और उन सबके लिये जीविका का प्रवन्ध करना दुश्वार हो रहा था। इसलिये नवाब कपूरसिंह जी के विचारानुसार खालसा ने अपने आपको दो दलों मे बाट लिया। कुछ पुराने और वृद्धसिंह तो नवाब कपूरसिंह जी के साथ रहे। वह 'बुड्ढा दल' के नाम से प्रसिद्ध हुये। दूसरे नवयुवक जो वड़ी तेजी से एक स्थान से दूसरे स्थान तक चल निकलते थे। उनके दल का नाम 'तरुण दल' पड़ गया। कुछ समय वाद इन दलों की वृद्धि के कारण इनके और भी विभाग होगये और आरंभ मे पांच जत्थे वन गये।

मीरमन्नू की मृत्यु के बाद सिख फिर बाहर से आ-आकर (पंजाब मे) अपने-अपने गाँवों में आ बसे। किन्तु उन्होंने अपने शत्रुओं को शोधन करने के लिये फिर तैयारी की और जत्थेदारों ने अपने २ गॉवों के निकट अपना अपना इलाका बनाना शुरू कर दिया। इस समय जो सरदार ज्यादा रसूख रखने वाले थे, उन्होंने अपने साथियों को मिलाकर अपने २ जत्थे मजबूत कर लिये और यह जत्थे बाद में मिसलों के नाम से प्रसिद्ध हुये।

मिसल शब्द जैसे प्रयोग में आया वह इस तरह है कि जब खालसा जत्थेदार दीवाली और वैसाखी के समय पर एकत्रित होते तो सब दलों के जत्थेदार सरदार जस्सासिंह अहलूवालिया के पास आकर अपने किये हुये कब्जे के इलाकों का पता देते। वह अलहदा-अलहदा सरदारों के पतरे अर्थात मिसलें बनाकर उन पर उनके कब्जे में आये हुये इलाकों के नाम दर्ज करते जाते, ताकि बाद मे कोई झगड़ा न हो। परन्तु कई बार ऐसा भी हो जाता कि किसी गॉव को पहले एक अपनी मिसल में लिखवा गया है, उसी गॉव को बाद मे दूसरे सरदार ने अपने इलाके मे शामिल किया हुआ बताया है, उस समय सरदार जस्सासिंह अहलूवालिये जो कि अपनी आयु के लगभग १२ वर्ष अपनी माँ के साथ देहली मे माता सुन्दरी की सेवा में रहने के कारण प्राय उर्दू भाषा बोलते थे—कह देते यह गाँव तो पहले अमुक सरदार की मिसल मे दर्ज हो चुके हैं। इस तरह यह शब्द आरम्भ मे सरदारों के जत्थों के लिये प्रयोग मे आना आरम्भ हो गया और बाद मे जत्थों और इलाकों दोनों के लिये बर्ता जाने लगा।

सिखों में भंगी मिसल एक प्रसिद्ध मिसल हुई है। चूंकि इसके सरदार भंग का प्रयोग अधिक करते थे। इसलिये यह मिसल भंगी मिसल के नाम से पुकारी जाती थी। वैसे यह जाट सिखों की मिसल थी किन्तु इससे यह भी न समझना चाहिए कि और दूसरे लोग इसमें शामिल न थे।

भगी मिसल

चौधरी छज्जासिंह[१] और भीमासिंह ने इस मिसल को खड़ा किया। चौधरी भीमासिंहजी के बाद उसका पुत्र हरीसिंह इस मिसल का मालिक बना। जो होना गाव जोकि मालवे परगना बधनी मे है का रहने वाला था किन्तु मुसलमानी अत्याचारों का मुकाबिला करने के लायक उस स्थान को न समझ कर झग के जिले में नत्थू गाव में आ बसा था।

सिख धर्म की दीक्षा तो चौधरी भीमासिंह जी ही गुरु गोविन्दसिंह जी से ले चुके थे। अत आप जन्म से ही सिख थे और अमृत आपने बाबा दीपसिंह के हाथ से चखा था।

सरदार हरीसिंह जी खुद जमामर्द और बहादुर आदमी थे इससे उनकी मिसल बहादुरी और दया के लिहाज से सब मिसलों मे अग्रणी समझी जाती थी। सख्या भी इस मिसल की पन्द्रह हजार थी।

आरम्भ में यह जत्थे अथवा मिसलें केवल आत्म-रक्षा का काम करती थीं। जहा भी कहीं अपने भाइयों पर अत्याचार होता वहीं ये जत्थे पहुँच कर उनकी मदद करते। किन्तु चूँकि वे शहर और गाँवों से निकाले जाने के कारण कष्ट की जिन्दगी व्यतीत कर रहे थे। जहाँ कि खाने-पीने का गुजारा मुश्किल

१. अनेक इतिसहाकारो ने इस मिसल का सस्थापक अमृतसर के पास के पजवार गांव के चौधरी छज्जासिह (जाट) को बताया है और लिखा है कि भोमासिह या भीमासिह भगई को जो कि उसका रिस्तेदार था, अपना उत्तराधिकारी बनाया। भीमसिंह को कसूर का रहने वाला बताया गया है। साथ ही यह भी लिखा है कि उसने नि:सतान होने के कारण अपने भाई भूपसिह जो कि बधनी के परगने में पटोह नामक गांव में रहता था के लडके हरीसिह को 'गोद' ले लिया था।

था। अत वे मुगल शासकों पर छापा मारते थे। ज्यों-ज्यों इनकी शक्ति बढ़ने लगी और मुसलमान हुकूमत की ताकत घटने लगी, इनकी भावनाये भी प्रबल हुई और छोटे-मोटे नये बने मुसलमान हाकिमो को मार भगा कर उनके अधीनस्थ प्रदेशों को अपने कब्जे मे करना शुरू कर दिया। यही उपक्रम राज्य कायम करने मे भी आगे के दिनों में काम आया।

तंग आये हुए लोग इन जत्थेदारों के पास आकर शिकायते करते और यह भी अर्ज करते कि हमारे इलाके की स्थायी तौर से रक्षा करने की आपका दल गारंटी ले ले। हम उस रकम को जो लगान और मालगुजारी के नाम पर मुसलमान हाकिमों को देते हैं आप ही को देने लगेगे। सरदार हरीसिंह ने ऐसे मौको से खूब लाभ उठाया। जहाँ भी और जब भी कोई आप से सहायता चाहता, आप तुरंत सहायता देते और अपना राज्य कायम करने के लिये भी कोशिश करते।

सरदार हरीसिंह के साथियों मे जस्सासिंह, मींहासिंह, नत्थासिंह, जगतसिंह, गुलाबसिंह, गुरु बख्शसिंह[1] अग्घड़सिंह, शामलसिंह, ठाकुरसिंह, गूजरसिंह और लहनासिंह आदि अनेक प्रसिद्ध लड़ाके वीर थे। इन लोगों के साथ हरीसिंह ने सारे पूर्वी पजाब और राजपूताने के एक भाग को रौंद डाला था। शाही सैनिकों का मुकाबिला करने मे यह लोग सब से आगे रहते थे।

जब खालसा (संघ) ने सारे पंजाब को बारह मिसलों मे बाँट दिया तो सरदार हरीसिंह जी ने गुजरात, चानोर, झंग, अमृतसर और लाहौर के नजदीकी इलाके पर कब्जा कर लिया और अमृतसर को अपनी राजधानी बनाया।

सरदार हरीसिंह जहाँ उत्कट योद्धा था। वहा उदात्त अक्लमंद भी था। संवत १८०३ में इसने अमृतसर मे अपने नाम पर एक कटड़ा भी आबाद किया था। जत्थे में आदमी भी प्राय जवान और सूरत शक्ल के अच्छे और स्फूर्तिवान रखता था। उन जवानों के बल पर सौ-सौ मील के धावे मारने की हिम्मत वह रखता था। घोड़े भी जहां तक रखता, छटे हुए ही संग्रह करता था। लाहौर के हाकिमों के दिलों मे यह सदा खटका। क्योंकि उनके अच्छे २ योद्धाओं के इसने छक्के छुड़ाये थे। अब्दुलसमदखां जैसे चुस्त चालाक सूबेदार से भी इस वीर ने मैगजीन छीन ली थी। जिस अब्दुलसमदखां ने महावीर बन्दासिंह जी जैसे योद्धा को अपनी कूटनीति से गिरफ्तार कर लिया था। वही समदखा और उसका बेटा जकरियाखां हरीसिंह का कुछ भी न विगाड़ सके।

मुल्तान में भी लाहौर की भांति एक सूबा रहता था। सरदार हरीसिंह ने मुल्तान पर चढ़ाई करके उसे अपने राज्य मे मिला लिया। स्यालकोट वटियाला, मैंसेवाल और झग आदि के मालिये से इसकी आमदनी काफी बढ़गई थी।

सरदार हीरासिंह जी ने कसूर को विजय कर लिया। यह पहला ही मौका था। जब एक बड़े अर्से के बाद कसूर फतह हुआ और सिखों की आधीनता मे आया।

१ गुरुबख्शसिंह ने लहनासिंह को गोद ले लिया। लहनासिंह का पितामह, सडावला का गरीब जाट था। इसलिये उसका लडका दरगाहसिंह करतारपुर के पास मातीपुर में एक बढई के पास रहा। यहीं लहनासिंह का जन्म हुआ। सयाना होने पर लहनासिंह अटारी के पास रोरानवाला गांव में गुरुबख्शसिंह के पास पहुँचा। गुरु बख्शसिंह के धेवते का नाम गूजरसिंह था। आगे चल कर गूजरसिंह और लहनासिंह ने भी एक अलग जत्था बना लिया। सवत १७६५ वि० में इन्होंने लाहौर पर भी कब्जा कर लिया था।

कहा जाता है शोध और लूट करने के लिये इन्होंने दिल्ली, सहारनपुर,च न्दौसी, खुरजा और उत्तर मे डेराजात तक हमला किये थे।

वास्तव मे राज्य कायम करने का श्रीगणेश इसी भगी मिसल ने किया था और इसके सरदार हरीसिंह ने सदैव बुद्धिमानी से काम लिया। महाराजा जवाहरसिंह जी भरतपुर ने जब अपने पिता का बदला लेने के लिये दिल्ली पर चढ़ाई की थी तो यह पेतीस हजार सिखों का दल लेकर उनकी सहायता को पहुँचा था।

सरदार हरीसिंह जी ने दो विवाह किये थे। पहली सरदारनी पंजवड की थीं। जिनसे गडासिंह और झडासिंह नाम के दो पुत्र पैदा हुए थे और दूसरी सिंहनी से चरतसिंह, दीवानसिंह और देसूसिंह नामक लडके पैदा हुये थे। इसमे झडासिंह जी बडे योग्य और होनहार थे। अपने पिता की मृत्यु के बाद यही मिसल के सरदार बने क्योंकि सभी लोग इन्हें चाहते थे।

जिस समय अहमदशाह अब्दाली के हमले के वक्त महाराजा आलासिंह जाकर उसके साथ मिल गये और उस की दी हुई राजगी की पदवी प्रदान करली तो सिख सरदार दल लेकर आलासिंह को एक मुसलमान शत्रु के सामने झुक जाने का दड देने के लिये पहुँचे। इस समय 'लाग चलायले' ग्रामों के नजदीक दोनों फौजों की लडाई के आरम्भ मे गोली लग जाने के कारण सरदार हरीसिंह चल बसे। इस लड़ाई को जस्सासिंह अहलूवालिये ने महाराज आलासिंह के क्षमा माग लेने पर बन्द कर दिया।

नवयुवक झडासिंह जी भी अपने पिता की भाति ही महत्वाकाक्षी था। उसने अपने व्यवहार और बुद्धिमानी से अपने दल के सभी लोगों को मोहित कर लिया था। आक्रमण करने और युद्ध में जौहर दिखाने में इसे भी खूब आनन्द आता था। इसी महत्वाकाक्षा के कारण झडासिंह ने अनेकों बडे २ शहरों पर चढ़ाई की तथा उन्हे लूटा।

मुल्तान पर सरदार हरीसिंह चढ़ाई कर चुके थे और काजी नूरमुहम्मद के जगनामे के अनुसार भंगी सरदार सन् १७६४ में डेरों के इलाके तक सिंध को पार करके जा पहुँचे थे।

झडासिंह ने भी अनेको चुने हुए सिख योद्धाओं को लेकर मुल्तान पर चढ़ाई की। मुल्तान का सूबेदार डर गया और वह पचास हजार रुपया लेकर सुलह के लिये हाजिर हुआ किन्तु झडासिंह तो मुल्तान को कतई रूप से अपने राज्य मे मिलाने के इरादे से आया था। दूसरे वहा की प्रजा की भी हाकिम के खिलाफ काफी शिकायतें थीं। इसलिये झडासिंह ने हाकिम को कैद करने का हुक्म दे दिया और मुल्तान के खजाने पर धावा बोल दिया। जब उस हाकिम ने बहुत ज्यादा मिन्नत की तो उसे उत्तर ओर के इलाके में कुछ हिस्सा देकर रिहा कर दिया और वहा का प्रबध सरदार जमीअतसिंह और दीवानसिंह के सुपुर्द कर दिया।

कहा जाता है कि अहमदाबाद के नवाब अहमदखा ने भी सरदार झडासिंह को बीस हजार रुपये भेट दिये थे।

हिंदुओं को जब पता चला कि झंडासिंह भी अपने पिता हरीसिह की तरह ही पीडितों की आवाज सुनता है और दुष्टों के दंड देने के लिये हर समय तैयार रहता है तो अनेकों मुसलमान हाकिमों की प्रजा के हिन्दू उसके पास आकर शिकायत करने लगे। डेराजात की ओर भी उसे इसी हेतु जाना पडा और भावलपुर के प्रजाजनों की शिकायत बहुत दिनों से आने के कारण झंडासिह ने बीस हजार जवानों के साथ भावलपुर पर भी चढ़ाई की। नवाब झंडासिंह का आना सुनकर घबरा गया और उसने संधि का

प्रस्ताव आगे बढ़कर किया। नजराना लेकर उसकी प्रार्थना पर झंडासिंह ने नवाव से संधि करली।

इन मुहिमों को फतह करके जब झंडासिह अमृतसर लौटा तो हरिमंदिर पर बहुत सा धन चढ़ाया और दीवाली मेले की शोभा को दुचंद किया।

अहमदशाह के उत्तराधिकारी अमीर तैमूरशाह ने जब सुना कि मुल्तान को सिखों ने अपने राज्य मे मिला लिया है तो उसने मुल्तान पर चढ़ाई कर दी और सहज मे ही उस पर कब्जा भी कर लिया, क्योंकि उस समय यहाँ सिखों की कोई तगड़ी सेना न थी। मुजफ्फरखा को वहा का हाकिम बनाकर तैमूरशाह अफगानिस्तान को लौट गया।

मुल्तान से फिरे हुए सिखों ने जब यह समाचार झंडासिंह को सुनाया तो वह तुरन्त मुल्तान पर चढ़ाई करने को तैयार होगया। मुल्तान फिर जीत लिया और गंडासिह को जोकि झंडासिंह का छोटा भाई था, यहा का हाकिम मुकर्रिर करके यह विजयी दल रास्ते मे छापा मारता हुआ, वापिस अमृतसर आगया।

लगभग एक साल झंडासिंह चुप रहा और फिर दल को लेकर काश्मीर की ओर प्रस्थान किया। उस समय जम्मू का राजा रंजीत था। उसने इन दोनों सिख सेनाओं का मुकाबिला किया। किन्तु उसे जीत के कोई लक्षण दिखाई नहीं दिये। इसलिये एक लाख रुपया सालाना नजराना देने के वायदे पर संधि कर ली और अपने प्राण बचाये।

हमीदखां की सराय मे जहानखां नामी पठान हाकिम रहता था। जमजमा नाम की एक तोप और इसके अलावा बहुत कुछ शस्त्रास्त्र उसके पास थे। झंडासिंह ने उस पर भी हमला किया और कुल सामान उससे अपने कब्जे मे कर लिया।

लगातार के आक्रमण और फतहयावियों से झंडासिंह के पास काफी धन हो गया था। इसलियें उसने अमृतसर में एक गढ़ बनाने की नींव डाली। शस्त्र और खजाना अब इसी गढ़ मे जमा होने लगा। अब तक कई लाख रुपये उसके पास जमा हो गये थे।

किले के बनजाने के बाद झंडासिंह ने सब सेना के कसूर पर पुन चढ़ाई की और उसे विजय करके बहुत सा धन हासिल किया और फिर उस इलाके मे जितने भी छोटे मोटे मुसलमान हाकिम थे। सभी को अधीन किया और उन पर टैक्स बांधा।

जम्मू के राजा रणजीतदेव और उसके पुत्र व्रजराजदेव मे जब झगड़ा हो गया। रणजीतदेव ने झंडासिंह को सहायता के लिये बुलाया और व्रजराज ने सुकरचकिया मिसल से सहायता ली। खूब डटकर लड़ाई हुई। सुकरचकियों का सरदार चडतसिंह मारा गया।

अपने जीवन भर युद्ध और आक्रमण मे लगे रहने वाले इस वीर बहादुर झंडासिंह का समय भी एक दिन आ गया। जब कि वह जंगल मे शिकार खेल रहा था किसी दुश्मन ने अचानक उस पर वार करके घायल कर दिया और वही वार उसकी मौत का कारण हुआ। लड़ाई अभी चालू थी, जम्मू राज्य के दोनों बाप बेटे लड़ रहे थे।

भंगियों ने झंडासिंह के बाद उसके भाई गंडासिह को अपना सरदार चुना और वे फिर उसी उत्साह से अपने कर्त्तव्य मे जुट पड़े।

इस लड़ाई में वास्तव में सिखों की शक्ति कम हो रही थी। इसलिये कुछ समझदार सिखों ने दोनों ओर सुलह की कोशिश की। किन्तु गंडासिह भाई का बदला लेना चाहता था। उसका अनुमान था कि

कन्हैया ने झंडासिंह को मारा है। जस्सासिंह के साथ मिलकर उसने कन्हैया वालों पर चढ़ाई की और उसके इलाके के बहुत से भाग को दोनों ने अपने कब्जे में कर लिया।

पठानकोट के मैदान मे कन्हैया और भंगी दोनों भिड़ गये। लगभग १४ दिन तक लड़ाई होती रही। इसमें दोनों ओर से सिखों को ही नुकसान हुआ। गंडासिंह इस युद्ध मे मारा गया और इस समय से भंगी मिसल की शक्ति क्षीण होने लग पड़ी।

इन्हीं दिनों सुकरचकिया मिसल के सरदार महासिंह और चड़तसिंह भगी में युद्ध होगया। महासिंह ने चड़तसिंह को लड़ाई मे खतम कर दिया और भंगियों के बहुत से इलाके को अपने कब्जे में कर लिया।

चड़तसिंह के बाद भंगियों की सरदारी देसूसिंह के हाथ में आई। किन्तु यह उतना योग्य नहीं था जितने योग आदमी की रहनुमाई की इस समय भंगी मिसल वालों को आवश्यकता थी। इसके समय में उस इलाकों में से बहुत सा भाग निकल गया जो पिछले दिनों प्राप्त किया था।

केवल स्यालकोट और चैन्योट के इलाके रह गये। जिनसे पचास हजार के लगभग बड़ी मुश्किल से वसूल होता था और खर्च भी करीब २ इतना ही हर साल का था। सरदार महासिंह बराबर भंगी मिसल के पीछे पड़ा हुआ था। हर वर्ष कोई न कोई झगड़ा हो जाता था। आखिर देसूसिंह भी मारा गया।

सरदार कर्मसिंह भंगियों मे एक सर्वप्रिय आदमी था। उसे लोग प्यार से दूला सरदार कहते थे। देसूसिह के बाद भंगियों का भाग्य उसी के हाथ में आया। इसने अपने नाम से अमृतसर में एक कटड़ा बसाया। इसकी बुद्धिमानी और अग्रसोची स्वभाव की प्रशंसा सभी सिख करते थे। किन्तु जितना वह बुद्धिमान था। उतना योग्य सैनिक न था और यही कारण था कि यह भी महासिंह सुकरचकिया के युद्ध मे मारा गया। दूला सरदार का लड़का जस्सासिंह इस समय चान्योट में था। अतः पास में होने के कारण देसूसिंह का लड़का गुलाबसिंह इस मिसल की गद्दी पर बैठ गया। परन्तु यह योग्य आदमी न था इस समय तो एक अद्भुत वीर और बुद्धिमान आदमी की भंगी मिसल को जरूरत थी। वह गुलाबसिंह से पूरी नहीं हो सकी। इसलिये सियालकोट का इलाका भी हाथ से निकल गया और अमृतसर शहर और उसके पास के कस्बों व गांवों के सिवा कुछ भी शेष नहीं रहा। जहां जो सरदार मुकर्रिर था। इसकी कमजोरी से लाभ उठाकर वहाँ का वहीं मालिक बन बैठा।

अब महासिंह का लड़का रणजीत सिंह सुकरचकियों का मालिक हो चुका था। यह वह रणजीतसिंह थे। जो आगे पंजाब केसरी की उपाधि से प्रसिद्ध हुए।

रणजीतसिंह जी ने जब लाहौर पर कब्जा कर लिया तो गुलाबसिंह को यह बात अखरी इसलिये उसने संवत १८५६ विक्रमी में महाराजा रणजीतसिंह पर चढ़ाई करदी। भसीन के मुकाम पर दोनों ओर से पड़ाव पड़ गये। गुलाबसिंह सदैव के लिये इस युद्ध में सो गया। उसकी सेना भाग गई।

गुलाबसिंह ने एक दस वर्ष का लड़का गुरदित्तसिंह नाम का अपना वारिस छोड़ा था। उसे नाबालिग समझकर उसी के नौकरों ने कोहाती इलाके पर कब्जा कर लिया और कहला भेजा कि यह हमारी तनख्वाहों में गया समझिये।

अब केवल शहर अमृतसर भंगी मिसल के उत्तराधिकारी के पास रह गया किन्तु गुरदित्तसिंह की माँ सुखां जरा होशियार थीं। इसलिये उसी की आमदनी से अपना कारबार चलाती रहीं।

महाराजा रणजीतसिंह ने सुखां के पास कहला भेजा कि जमजमा तोप तुम्हारे किस काम की है उसे मुझे दे दो किन्तु सुखां राजी नहीं हुई और लड़ने को तयार हो गई। महाराजा रणजीतसिंह के सामने वेचारी का क्या वश चलता। चार घंटे की लड़ाई के बाद रणजीतसिंह ने अमृतसर के किले पर अधिकार कर लिया और सरदारनी जी अमृतसर से रामगढ़ के किले मे जोकि रामगढ़िया के हाथों मे था चली गई।

इस समय रामगढ़िया मिसल का सरदार जोधसिंह था। उसने सुखां और उसके लड़के गुरदित्त-सिंह को अपने यहाँ बड़े सनमान से रक्खा क्योंकि इन दोनो मिसलों मे मुद्दत से मेल-मिलाप चला आता था। जब गुरदित्तसिंह सयाना होगया तो जोधसिंह और अन्य कई प्रमुख सिख सरदारों ने महाराजा रण-जीतसिंह जी से सिफारिश करके गुरदित्तसिंह को सहीवाल का इलाका जागीर मे दिला दिया। किन्तु गुरदित्तसिंह का मन जागीर के संभालने मे न लगा। इसलिये उसकी कीमत लेकर अपनी ससुराल मे आगया और वहीं चल वसा। इसके बाद इसके दोनो लड़के अजीतसिंह (अंधा) और मूलसिंह अपने पुराने खेड़े पंजवड़ मे आगये।

अजीतसिंह के दो पुत्र एक ठाकुरसिंह दूसरे हुक्मसिंह हुए। अंग्रेज सरकार का जब जमाना आया तो इन्हे थोड़ी सी माफी जमीन मिल गई। इस तरह यह दो हजार वीघे जमीन से अपना कारोबार चलाते रहे।

सरदार झंडासिंह जी के बनाये हुये इनके पास अति सुन्दर और मजबूत मकान हैं।

इस प्रकार भंगी मिसल का खातमा होगया और उसका प्रभुत्व सुकरचकिया मे लीन होगया।

इसमे कोई सन्देह कि नहीं सरदार हीरासिंह और उसका बेटा झंडासिंह जैसे ही बहादुर शूरमे और बुद्धिमान नेता इस मिसल को मिलते रहते तो यह सहज ही सारे पंजाब की मालिक होजाती किन्तु सितारा तो महाराजा रणजीतसिंह का चमकना था।

रामगढ़िया मिसल इस मिस्ल के वानी सरदार नदसिंह मौजा सागणिया के जाट जमीदार थे। एक समय जबकि सिख सेनांये बाहर जंग-युद्धों के लिये गई हुई थीं तो सरदार नदसिंह अमृतसर मे रामगढ़ नामी किले की रक्षा लिये के यहाँ छोडे गये थे। तब से सरदार नंदसिंह रामगढ़ वाले अथवा रामगढ़िया नाम से प्रसिद्ध होगये। नंदसिंह की मृत्यु के बाद सरदार जस्सासिंह जो कि उनके अनुयायी थे। इस मिसल के सरदार हुये। इनके बुजुर्ग बढ़ई या तिरखाना का काम करते थे जिसके कारण कई एक इतिहासकारों ने इन्हे जस्सासिंह तिरखान या ठोकर के नाम से याद किया है। इनके पिता भगवानसिंह गुरदासपुर के जिले में ईचोगिल नामीग्राम मे रहा करते थे जिस समय सिख सरदारों ने जत्थे बनाकर मुल्कगीरी आरम्भ की तो यह बहुत हद तक मशहूर हो चुके थे और सरदार नंदसिंह की सिसल मे शामिल होकर उनके कृपापात्र बन चुके थे।

भगवानसिंह के चार लड़के थे। जस्सासिंह, मालीसिंह, खुशहालसिंह और तारासिंह।

जस्सासिंह एक चतुर आदमी था और उसने जालंधर के सूबे के हाकिम अदीनाबेग की नौकरी मे काफी इज्जत पैदा करली थी और जब १७४८ ई० के अंत मे मीरमन्नू की आज्ञा पर अदीनाबेग ने अमृतसर मे नव स्थापित रामरौनी नामी गढ़ी पर हमला किया तो जस्सासिंह अपने सिख साथियों के साथ उसकी सेना मे उपस्थित था। रामरौनी का घेरा बहुत दिनों तक पड़ा रहने के कारण जब अन्दर के सिखों ने शहीदियाँ प्राप्त करने का अरदासा सोध कर बाहर निकलने की तैयारी के लिये अन्दर से सत

श्री अकाल के जयकारे लगाये। जस्सासिंह से उसके साथियों ने कहा कि अन्दर तो खालसा अत समय शहीदियाँ प्राप्त करने के लिए कमर कस्से कर रहा है। अब हम वैरियों के साथ मिलकर अपने भाइयों पर गोलियां नहीं चला सकते। इससे जस्सासिंह का दिल पसीज गया और उसने कहा, मैं कब खालसे से टूटना चाहता हूँ। खालसा टूटी गाँठनेवाला है मैं भी खालसे के साथ ही मिलूँगा। तब जस्सासिंह ने एक तीर के साथ अपना विनय पत्र बाधकर रामरौनी के अन्दर फेका कि यदि खालसा मुझ पर मेरे गृह मे लड़की मारे जाने के लगे हुये अपराध को क्षमा करदे तो मैं आपकी शरण में आने को तयार हूँ। खालसा ने उसको क्षमा करके तीर के रास्ते पत्र बाहर भेज दिया। जिस पर वह अदीनाबेग से अलग होकर खालसे से जा मिला। थोड़े ही दिनों मे अहमदशाह अब्दाली की दूसरे आक्रमण की खबरें पाकर और मुल्तान में शाहनवाज का कत्ल हो जाने पर दीवान कोडामल को तजवीज के अनुसार रामरौनी का घेरा उठा लिया गया।

अहमदशाह के साथ जितनी भिड़न्त सिखों ने की. जस्सासिंह प्राय. सभी मे शामिल रहा और भंगी मिसल के सरदारों के साथ मिलकर तो इसने उनकी बहुत सी लड़ाइयो मे मदद भी की। इसकी कमान मे एक समय लगभग तीस हजार पैदल और सवार सैनिक हो गये थे। जिन्हे लेकर इसने पजाब के विभिन्न स्थानों पर छापा मारा और बहुत सारा धन इकट्ठा किया।

अहमदशाह दुर्रानी के मरने के बाद इसने बटाला, कलानौर और श्री हरिगोविन्दपुर के बीच के कुल इलाके पर कब्जा कर लिया। इस इलाके से सात लाख प्रति वर्ष की आमदनी इसको होती थी।

सरहिन्द की मुस्लिम शक्ति के बर्बाद हो जाने पर सरदार जस्सासिंह ने द्वाबे मे जालधर के आगे पीछे उस कुल इलाके पर अपना कब्जा कर लिया जिसकी कि आमदनी दस लाख होती बताई जाती है।

इस समय तक जस्सासिंह के अधिकार मे बहुत परगने आ चुके थे। पहाडी इलाकों को फतह करते समय इसे दो लाख रुपया लूट मे भी मिल गया था।

रावी के किनारे जस्सासिंह ने हलवारा नामक गाँव मे एक छोटा सा किला बनवाया और अपने भाई मालीसिंह को उधर का हाकिम बनाकर वहाँ छोड़ दिया। इसी तरह दूसरे स्थानों पर जागीर देकर अपने शेष दो छोटे भाइयों को भी बिठा दिया।

थोड़े ही दिनों मे जस्सासिंह ने अपनी राम गढिया मिसल को खूब तरक्की दी।

चूंकि आप रामरौनी के युद्ध के बाद फिर अदीनाबेग से जा मिले थे और १८४७ मे उन्होंने आनन्दपुर मे सिखों के एक धार्मिक मेले के होला महला के समय अदीनाबेग को फौज के साथ हल्ला कर दिया था और जिससे समस्त सिखों को बहुत दुख प्रतीत हुआ। इसके कुछ देर बाद उसके भाइयों ने जस्सासिंह अहलूवालिये को गिरफ्तार कर लिया था। जब कि वह अचल के मेले की तरफ जा रहे थे। इन बातों ने कन्हैया, सुकरचकिया और अहलूवालिया मिसलदारों के दिल मे उसके विरुद्ध एक प्रकार का गुस्सा सा पैदा कर दिया था। जिसके कारण आपस मे एक दो बार लड़ाई तक नौबत पहुँच गई। और जस्सासिंह को अपने इलाके से निकल जाने पर मजबूर होना पड़ा और आप मालवा के इलाके म महाराजा अमरसिंह पटियाला वाले के देश में जा रहे। यहाँ आपने कई एक समय पर पटियाला की सहायता की और अपनी विजय से अपने लिये थोड़ा सा इलाका भी प्राप्त कर लिया था। इसके अतिरिक्त आप सरदार बघेलसिंह और दूसरे सरदारों से मिलकर नवाब अवध के इलाके तक हमलों मे शामिल होते रहे।

जब सरदार महासिंह की जयसिंह कन्हैया से कुछ अनबन हो गई तो उसने जस्सासिंह रामगढ़िया को वापिस पंजाब मे बुला लिया और एक लड़ाई के बाद उसका इलाका उसे वापिस दिला दिया।

आपने बड़ी आयु पाई और महाराजा रणजीतसिंह जी के जमाने तक जिन्दा रहे। आपके बाद आपका लड़का जोधसिंह मिसल का सरदार बना।

जोधसिंह भी अपने बाप की तरह ही बुद्धिमान और शूरमा था। इसने राजा संसारचन्द से मित्रता निवाहने मे कोई कसर नहीं रक्खी। यह भी किसी से नहीं डरता था। इसलिए ऐसे कुल मनुष्यों को जगह देता था। जिन्हें कहीं से खतरनाक बताकर निकाल दिया जाता था।

मोहरसिंह, हजारासिंह और ठाकुरसिंह को फतहसिंह अहलूवालिये ने अपने यहाँ से निकाल दिया और इसने उन्हें रख लिया। फगवाड़ा की रानी लक्ष्मी जो कि महाराजा रणजीतसिंह जी से लड़ाई से परास्त हो गई थी। उसे भी इसने शरण मे रख लिया।

जब महाराजा रणजीतसिंह अमृतसर आये तो उन्होंने जोधसिंह को बुलाया। जोधसिंह ने अब के महाराजा से प्रतिज्ञा करली कि मैं अब सदैव आपकी मदद किया करूँगा और कभी भी आपके दुश्मनों को शरण न दूँगा।

आगे दोनों की यह मित्रता वफादारी के साथ निभी भी। जोधसिंह ने मुल्तान, कसूर और अन्य सभी स्थानों पर रणजीतसिंह जी का साथ दिया और बड़ी बहादुरी के साथ दुश्मनों से लड़ा। इन वफादारियों से खुश होकर रणजीतसिंह जी ने भी इसको लगभग चालीस हजार का इलाका दो बार मे पुरस्कार स्वरूप दिया।

सवत १८७३ में जोधसिंह का भी इतकाल हो गया। किन्तु इसके मरने के बाद इसके भाइयो मे जागीर और जायदाद के लिये बखेड़ा खड़ा हो गया। महाराजा रणजीतसिंह ने इन्हे तलब किया और उन्होंने एक फैसला भी किया। जिसे इन लोगों ने नहीं माना, अत. तीनों भाई दीवानसिंह, वीरसिंह और महताबसिंह को बन्द कर दिया। अंत मे चन्दासिंह सरदार की सिफारिस पर महाराजा ने इन्हे छोड़ दिया और पैंतीस हजार की जागीर भी देनी चाही। किन्तु दीवानसिंह ने अस्वीकार कर दिया और सारा मामला खटाई मे पड़ गया। दीवानसिंह पटियाले जाकर रहने लगा। महाराजा रणजीतसिह को यह बात बुरी लगी, अत उन्होंने देसासिंह मजीठिया के द्वारा दीवानसिंह को बुलवा लिया और अपनी फौज का एक बड़ा अफसर बना दिया। इससे दीवानसिंह खुश हो गया।

बारामूला (काशमीर) पर चढ़ाई करने के लिये जो सेना भेजी गई, उसका सेनापति भी दीवान सिंह बना था। जो बड़ी बहादुरी के साथ लड़ता हुआ संवत १८६१ वि० मे स्वर्गवास कर गया। महाराज ने उसके लड़के मगलसिंह को जो कि फौज मे एक अफसरी का दर्जा पा चुका था और बड़ी उमदगी से काम करता था। उसको ६००० की जागीर बख्शी।

पेशावर कोहिस्तान आदि की अनेकों लड़ाइयों मे इसने महाराजा रणजीतसिंह की ओर से खूब बहादुरी दिखाई।

महाराजा रणजीतसिह जी के स्वर्गवासी होने पर यह अंग्रेजों का मददगार हो गया और इसने अंग्रेजों की कई मोर्चों पर अच्छी मदद की। इससे अंग्रेजों ने भी इसे कुछ जागीर दी।

सवत १६३३ विक्रमी मे इसका देहांत हो गया। इसी वर्ष अंग्रेज सरकार की ओर से इसे सितारे हिन्द का खिताब भी मिला था।

इसने अपने पीछे तीन लड़के छोड़े थे। एक गुरदत्तसिंह जिसने अवध और दूसरे जिलों में हवलदार तथा पुलिस इन्सपेक्टर के ओहदों पर काम करके अंग्रेज सरकार की सेवा की और वृद्धावस्था में १२००) सालाना की पेन्शन मजूर कराकर शेष दिन आराम से गुजारे।

दूसरा सुचेतसिंह। यह भी अंग्रेजी सरकार की सेवा में ही नियुक्त हुआ और मुनसिफी के ओहदे पर काम करता हुआ अल्पायु मे ही सवत १६३६ वि० मे चल बसा। इसके लड़के का नाम बिशनसिंह था।

तीसरा लड़का शेरसिंह अंग्रेजो पुलिस मे नौकर हो गया था और संवत १६४५ में मर गया। इसके दो लड़के सतसिंह और सुन्दरसिंह हुए जिनमें संतसिंह ने बी० ए० तक की तालीम पाई थी। किन्तु बाप के कुछ ही दिन बाद मर गया। दूसरा सुन्दरसिंह आनरेरी मजिस्ट्रेट बन गया।

अंग्रेज सरकार की ओर से तीन हजार सालाना की आमदनी की भूमि इन्हें माफी मे मिली हुई थी जो बराबर इनके पास है।

इस मिसल का सस्थापक सरदार जयसिंह था, जोकि जिला लाहौर के कान्हगाव का रहने वाला सिन्धू जाट जमीदार था। कान्ह के निवासी होने से यह कन्हैया नाम से मशहूर हुए और इसलिये मिसल का नाम भी कन्हैयामिसल हो गया। चौधरी खुशहालसिंहजी साधारण स्थिति के जमीदार थे वे दुनिया

कन्हैया मिसल

के झगड़ों को पसंद भी बहुत कम करते थे। अपने काम से मतलब रखने मे ही उन्हें आनद आता था किन्तु उनका बेटा जयसिंह एक उद्दस्त प्रकृति का वीर आदमी था उसने सरदार कपूरसिंह जी के पास जाकर सिखी धारणा की। और बहुत से अपने भाई बान्धवों को सिख बनवा कर अपना एक जत्था खड़ा किया। जिसमें हकीकतसिंह, महताबसिंह और तारासिंह के नाम उल्लेखनीय हैं। तुर्कों को दंड देने और वीरता पूर्ण कार्य करने के कारण धीरे-धीरे इसके पास ४०० आदमी एक से एक बढ़ कर वीर स्वभाव के इकट्ठे हो गये थे।

अमृतसर से नौ कोस के फासले पर सोहियां गांव मे इसका विवाह हुआ था। वहीं इसने अपना मुकाम भी बना लिया।

इसका भाई झंडासिंह भी बड़ा बहादुर था। उसने कई लड़ाइयों में नाम पाया था और कई गावों पर जिनके कि नाम नागमुकेटियाँ, हाजीपुर, दातारपुर आदि हैं। कब्जा कर लिया था। वह स्यालकोट की लड़ाई मे निधानसिंह रंधावा के साथ लड़ता हुआ मारा गया। सरदार जयसिह ने अपनी भाभी के साथ नाता कर लिया। जिससे उसके पास यह गाव भी आ गये। इससे भी इसकी शक्ति बढ़ी। कुछ दिन बाद इसके एक लड़का पैदा हुआ जिसका नाम गुरबख्शसिंह रक्खा गया। सदाकौर इसी लड़के के साथ ब्याही गई थी जो आगे चल कर पंजाब के शेर रणजीतसिंह की सासु बनी थीं।

जयसिंह ने धीरे-धीरे अपने बाहुबल से पठानकोट, हाजीपुर, सुजानपुर और दीनानगर आदि बहुत से इलाकों को अपने कब्जे मे कर लिया।

सरहिन्द की लड़ाइयों मे सदैव ही इसने अपनी कौम का ही साथ दिया।

एक समय इसने जम्मू के राजकुमार ब्रजराजदेव की मदद की। उस लड़ाई मे कुछ सिख मिसलें रंजीतदेव के साथ थीं अत. यहाँ से इनका भी भंगी मिसल से मनमुटाव सा हो गया। रामगढ़िया मिसल वालों के साथ पहले तो मित्रता थी, किन्तु आनन्दपुर पर आक्रमण करने के कारण कसूर की लड़ाई में जस्सासिंह का शत्रुओं की मदद करने की बात इन्हें नहीं रुची और इसी पर गहरी शत्रुता हो गई। इन्होंने भी एक बार तो जस्सासिंह को पंजाब से निकाल कर ही दम लिया था।

जयसिंह के साथियों मे हकीकतसिंह भी बड़ा मरद था। पहाडी राजाओं की निगरानी के लिये जयसिंह ने इसी को नियत कर रक्खा था। वह उनसे खिराज भी वसूल करता था।

जब जम्मू का राजा राणा व्रजराज गद्दी पर बैठा। व्रजराज ने चाहा कि मेरे राज्य का जो हिस्सा भंगी मिसल वालो ने पिछली लड़ाइयों के एवज मे मेरे पिता से ले लिया है, वह वापिस मिल जाय। इसलिये उसने हकीकतसिह से मदद चाही। हकीकतसिह ने कोशिश करके चौतीस हजार रुपये मे उसका इलाका वापिस करा दिया। किन्तु वाद मे व्रजराज अपने वायदे से फिसल गया। इसलिये गूजरसिह भंगी और भागसिह अहलूवालिया को साथ लेकर हकीकतसिह ने पहले तो उसके कड़ीआले वाले इलाके पर कब्जा किया और फिर जम्मू पर भी चढ़ाई कर दी। इस दल को देख कर व्रजराज ने हकीकतसिह के सामने आकर सुलह कर ली और थोड़े ही दिनो मे तीस हजार रुपया पहुँचा देने का वायदा किया किन्तु व्रजराज फिर भी वायदे का पक्का न निकला। अत हकीकतसिंह ने अव की वार सुकरचकिया की मदद लेकर जम्मू पर चढाई कर दी। इस वार राजा ने जम्मू छोड़ देने की होशियारी की इसलिये सिखों को विवश होकर नगर मे घुसना पड़ा और नगरवासियो के अशिष्ट व्यवहार पर उन्होंने नगर निवासियों को दड भी दिया।

इसके थोड़े ही दिनों वाद हकीकतसिह मर गया। जयसिंह ने उनके पुत्र जैमलसिंह को अपने पास वुला कर धैर्य दिया और उसे सव प्रकार की सहायता देने का भी आश्वासन दिया।

जयसिह योद्धा था। समझदार भी था किन्तु वह कभी-कभी साथियों के कहने मे आकर गलती भी कर वैठता था। राजा व्रजराज ने भी ऐसे ही उसे चग पर चढ़ाया और वह महासिंह सुकरचकिया का विरोधी होगया। वहुत सारी फौज लेकर महासिंह के इलाके मे घुस गया और मडियाला और रसूलपुरा आदि गावों पर हाथ साफ करते हुए नकईसिह के इलाके मे जो कि महासिंह का ही एक रिस्तेदार और मिसलपति था, जा पहुँचा।

महासिह ने इन वातों को जानकर भी धैर्य से काम लिया और उसने दीपावलि के मेले पर जयसिह को वहुत समझाया कि हमे आपस मे ही नहीं लडना चाहिये किन्तु जयसिंह की समझ मे कुछ न आया।

इस पर महासिह ने भी जयसिंह को पाठ पढ़ाना निश्चय कर लिया और जस्सासिह रामगढ़िया को जो कि जैसिह का पक्का विरोधी था। पजाव मे वापिस वुला भेजा। कटोच राजा ससारचद भी महासिह ने अपनी ओर मिला लिया और लड़ाई की तैयारी कर दी।

वटाले के पास लड़ाई हुई। जयसिंह का लड़का गुरुवक्शसिंह इस लड़ाई मे मारा गया। जयसिह को उसने सुलह का रास्ता निकाला। वड़ी सोच विचार के साथ अपनी पौत्री (गुरुवख्शसिह की पुत्री) महतावकौर की शादी महासिह के लड़के रणजीतसिह के साथ करके इस विरोध को मिटाया।

यह विरोध अवश्य मिट गया किन्तु दिन प्रति दिन इस मिसल की अवनति ही होती गई।

इस विवाह को करा देने के थोडे ही समय वाद संवत १८५७ विक्रमी मे जयसिह इस ससार से प्रस्थान कर गया। इसके निधानसिह और भागसिंह दो पुत्र और थे। किन्तु मिसल का नेतृत्व गुरु वख्शसिह की वेवा सदाकौर ने ही संभाला। उधर महासिह जी के मर जाने के वाद रणजीतसिह की गार्जियन शिप भी सदाकौर ने ही की। सरदारनी सदाकौर वड़ी ही हिम्मत की स्त्री थीं। बुद्धिमानी मे वहुत वढ़ी चढ़ी थीं। दोनों मिसलों की फौजों की सयुक्त शक्ति से उन्होंने वहुत लाभ उठाया। कई नये इलाके जीत कर अपने आधीन किये।

अपने पति का बदला लेने के लिये इस वहादुर सिंहनी ने दोनों मिसलों की फौज को लेकर जस्सासिंह रामगढ़िया पर चढ़ाई कर दी और उसे किले में घेर लिया किन्तु वर्षा के दिन होने के कारण व्यास नदी में बाढ़ आ गई। इससे इसे वापिस लौटना पड़ा। लेकिन दूसरे ही साल फिर जस्सासिंह पर चढ़ाई कर दी। उसकी शक्ति को कम करके उसके राज्य के बटाला कलानौर और कादिआं आदि स्थानों को अपने आधीन कर लिया।

चूँकि अब महाराजा रणजीतसिंह अपनी सास से स्वतन्त्र हो चुके थे और उन्होंने दूसरी शादियाँ करना भी शुरू कर दिया था। इसलिये सदाकौर ने अपने दौहित्र शेरसिंह और तारासिंह को अटलगढ़ का किला और परगना अपनी रियासत में से प्रदान कर दिये।

कुछ दिनों बाद यह बहादुर सिंहनी इस संसार से कूच कर गई।

अपनी सास सदाकौर के स्वर्गवास के बाद महाराजा रणजीतसिंह जी ने कन्हैया मिसल का कुल इलाका अपने राज्य में शामिल कर लिया। हाँ, हेमसिंह को जो कि जयसिंह का भतीजा था। चालीस हजार का इलाका अवश्य दे दिया। इसके बाद जब महाराज ने कसूर को फतह किया तो हेमसिंह को दस हजार का इलाका और दे दिया।

हेमसिंह भी थोड़े ही वर्षों बाद चल बसा। अतः उसका लड़का अमरसिंह उस जागीर का मालिक हुआ था। महाराजा रणजीतसिंह जी की आज्ञा से यह मुलतान और काश्मीर की लड़ाइयों में भी शामिल हुआ। अमरसिंह भी मर गया।

अमरसिंह के तीन लड़के थे। सरूपसिंह, अनूपसिंह और अतरसिंह। इनको अपने बाप के बाद तीस हजार की जागीर मिली।

सवत १८६१ में सरूपसिंह मर गया। उसके मरने के बाद लाहौर की सरकार ने उसकी जागीर जब्त करली उसकी औलाद के पास केवल एक गाँव रूलांवाला रह गया।

अंग्रेजी राज्य के पंजाब में आने पर यह सब लोग उसकी बड़ी २ नौकरियों में लगने की कोशिश करने लगे।

अतरसिंह के लड़के मेघसिंह ने अंग्रेजी फौज में नौकरी करके जो वफादारी दिखाई उसके बदले में उसकी औलाद को दो गाँव ६००) सालाना आमदनी के माफी में मिले।

इस खानदान में पिछले दिनों जगतसिंह जी के पास ११२५ एकड़ जमीन का इलाका था। और वह बड़ी खुशहाली से अपना जीवन बिताते थे।

लाहौर सूबे के बहड़वाल गाँव परगना चूनिया में जाट चौधरी हेमराज रहते थे। उन्हीं के लड़के हीरासिंह ने इस मिसल की स्थापना की थी। चूंकि इस इलाके को नक्का का इलाका कहते थे। इसलिये

नक्कई मिसल

सरदार हीरासिंह नक्कई करके मशहूर हुये और इनके साथ ही उनके जत्थे तथा मिसल के लिये भी यही नाम मशहूर हो गया। सरदार हीरासिंह का जन्म सवत १७६३ विक्रमी में हुआ था। युवा होने पर सिख धर्म ग्रहण करके कौम और देश की सेवा में जुट गये। उस समय देश व जाति की सेवा का प्रमुख अर्थ सैनिक दल में भर्ती होना था। आप भी एक जत्थे में शामिल होकर धावे और अत्याचारियों को दंड देने के काम में शामिल हो गए। नरसिंह और कसूर की लड़ाइयों के बीच आपने बड़ी बहादुरी दिखाई। इससे सैकड़ों जवान सिख रूपासिंह नत्थासिंह, कमरसिंह लालसिंह और सदासिंह आदि जो कि बड़े तगड़े जवान थे, आपकी ओर आ मिले।

आरम्भ में हीरासिंह नकई ने आस पास के छोटे मोटे मुसलमान रईसों को वश मे किया तब फिर आगे को पैर फैलाए।

शनैः शनैः इतनी शक्ति बढ़ाली कि आठ हजार जवान हीरासिंह की सेना मे भर्ती हो गये।

थोड़े ही समय में मांगा, जमेरमंदर, फरीदाबाद, देवसाल, शेरगढ़, मुस्तफाबाद, खुड़िआं, जेठपुरा, कंगनपुर, दीपालपुर और चूनियां, के इलाके कब्जे मे कर लिये। जिनकी सालाना आमदनी दसियों लाख रुपये थी। किसी २ ने तो ४५ लाख तक लिखी है।

उन दिनों पाकपट्टन मे शेख सुभानखां हुकूमत करता था। वह बड़ा तास्सुबी मुसलमान था। गौ-हत्या के लिये मुसलमानों को खासतौर से उकसाया करता था। वहा की हिन्दू प्रजा उससे बहुत दुखित थी। इसलिये कई बार सरदार हीरासिंह नकई के पास पुकार लेकर गई। हीरासिंह ने शेख को कई बार चेतावनी भी दी किन्तु उसने एक न सुनी।

जब उसने हीरासिंह की बात की कतई परवाह न की तो हीरासिंह को उस पर आखिर चढ़ाई ही करनी पड़ी। उधर शेख ने भी बहुत सारे मुसलमान इकट्ठे कर लिये थे। हीरासिंह अपनी सेना की नाके बन्दी करा रहा था कि उधर किले की ओर से अचानक एक गोली हीरसिंह के माथे मे लगी। जिससे वह चल बसा। फौज भी बिना सरदार के कब लड़ती है। इसलिये वह भी लौट आई।

हीरासिंह का लड़का दसूसिंह उन दिनों छोटा था। अत उसका भाई नाहरसिह गद्दी का मालिक बना। नाहरसिंह तपैदिक की बीमारी मे ग्रस्त था। कुछ ही महीनों मे मर गया। अत. उसका छोटा भाई रनसिंह मिसल का अधिपति बनाया गया। रनसिंह चतुर और मिलनसार आदमी था इसके समय मे मिसल की काफी तरक्की हुई। इलाके के बड़े बड़े स्वस्थ और सुन्दर नौजवान इसने भर्ती कर लिये और इस तरह सैनिकों की संख्या भी बढ़ाकर बीस हजार के लगभग करली। अच्छे-अच्छे शस्त्रों का संग्रह भी किया।

चद दिनों मे ही कोटकमालिया, खरल, और कुछ भाग सरकपुर का भी इसने अपने अधीन कर लिया। इसके सिवा सैयदवाले के कपूरसिंह से भी उसका इलाका छीन लिया।

बहादुर रनसिंह वास्तव मे रनसिंह निकला और लगभग बारह वर्ष अपनी बहादुरी के चमत्कार दिखाकर इस ससार से कूच कर गया।

इसके तीन लड़के भगवानसिंह, खजानसिंह और ज्ञानसिंह थे। भगवानसिंह अपने बाप का उत्तराधिकारी बना। किन्तु इतनी बड़ी जायदाद को संभालने की इसमे योग्यता न थी। अतः कवरसिह के भाई वजीरसिह ने इसके बहुत से इलाके को अपने कब्जे मे कर लिया। इस समय भगवानसिह की बुद्धिमानी भी इसी मे थी कि वह किसी जबर्दस्त सरदार की आड़ लेकर अपने इलाका की रक्षा करता। उसने किया भी यही अपनी बहिन की शादी महासिंह सुकरचकिया के लड़के रणजीतसिंह जी के साथ करदी। शादी के बाद महाराजा रणजीतसिंह ने उसका वह सारा इलाका वापिस दिलवा दिया जो वजीर-सिंह ने दबा लिया था।

इन महासिंह पर भी एक आपत्ति आ रही थी। और वह यह कि जैसिंह कन्हैया विरोधी बन गया था और वह ब्रजराजदेव जम्मू के बहकावे मे आकर महासिंह के इलाकों पर छापा मारने लग गया था। अतः महासिह ने अमृतसर आकर भगवानसिंह और वजीरसिंह को समझा बुझाकर मित्र बना दिया और दोनों ही को जयसिंह कन्हैया के खिलाफ खड़ा कर दिया।

पाच छ महीने तो वजीरसिंह और भगवानसिंह में मेल रहा किन्तु फिर झगडा हो गया और आपसी लडाई मे भगवानसिंह मारा गया।

भगवानसिंह के वाद उसका छोटा भाई ज्ञानसिंह मिस्ल का सरदार वना।

इन्हीं दिनों वजीरसिंह के नौकरों ने मिसल के सस्थापक हीरासिंह के लडके दलसिह को मार डाला। इस प्रकार हीरासिह का वंश कतई समाप्त हो गया।

ज्ञानसिंह भी मर गया। तब उसके लड़के काहनसिंह को महाराजा रणजीतसिंह ने १५ गाँवों का जिसमे भड़वाल भी शामिल था। जागीरदार वना दिया। शेष इलाका पहले ही रणजीतसिह जी ने अपने राज्य में मिला लिया था। ज्ञानसिह के भाई खजानसिह को नानकोट का इलाका मिला।

काहनसिह के अतरसिह नाम का एक लड़का था। वह मुलतान की लड़ाई के समय दुश्मनों से जा मिला। अत उसकी सव जागीर जव्त करली गई किन्तु काहनसिह के बुढ़ापे का खयाल करके वारह हजार की जागीर इस शर्त पर रहने दी गई, कि उसके मरते ही यह जव्त करली जायगी।

चतरसिह जो कि काहनसिह का दूसरा लड़का था। कुछ दिन वाद मर गया और वूढा काहन सिह भी उससे कुछ वर्ष वाद में मर गया। मोंटगोमरी मे रहने वाले रणजोधसिह ने विरासत का अपने को हकदार घोषित किया किन्तु वाद मुकदमे के तत्कालीन सरकार ने रणजोधसिह को दो हजार की जायदाद और सरसिह को वारह सौ रुपये की। इसी तरह अतरसिंह, तथा वेवाओं को भी वाकी जायदाद वाट दी।

अतरसिंह के एक लड़के का नाम लाभसिंह था और अपने वाप के वाद अपने पास दो हजार वीघा जमीन उसने करली थी। सरकार ने भी उसे जेलदार वना दिया था।

इस खानदान के दो आदमी ईसरसिंह और लहणासिंह के वावत लिखा गया है कि उन्होंने मुसलमानी धर्म ग्रहण कर लिया सभव है ऐसा हो गया हो किन्तु हमने इस ओर जाच पडताल नहीं की।

इस मिसल का सस्थापक गुलावसिंह खत्री था। जो सुल्तानपुर के पास डल्लेवाली गाँव के सुधा राम खत्री दूकानदार का लड़का था। गुलावसिंह ने वहुत पहले सिख धर्म ग्रहण किया था। लडाकू सिख जत्थों में शामिल होकर गुलावसिंह ने अपने को भी इस योग्य वना लिया कि वह भी एक स्वतन्त्र जत्थेदार वन गया।

डल्ले वाली मिसल

जवान में मिठास और कार्य्य मे स्फूर्ति इसके ऐसे गुण थे। जिससे प्राय सभी साथी इससे खुश रहते थे। हिम्मत वाला भी ऊचे दर्जे का था। एक समय केवल डेढ़ सौ आदमियों को लेकर जालधर पर चढ़ दौड़ा और शहर में घुसकर धावा करता हुआ करतारपुर की ओर निकला जहां कि और भी सिख जत्थे पड़े हुए थे।

इसकी वीरता और उन्नति के समाचार सुनकर इसके दूसरे विरादरी भाई जिनमे हरदयालसिंह, जैपालसिंह और गुरदयालसिह के नाम विशेप उल्लेखनीय हैं, सिख धर्म मे दीक्षित होगए।

एमनावाद पर जो छापा मारा गया और जिससे जसपतराय दीवान नाराज होगया था उन छापे का मारने वाला यही गुलावसिंह था। रोड़ी साहव के मुकाम पर जव जसपतराय ने आकर सिखों का घेरा था तो उसे गोली से इसी गुलावसिंह ने इस ससार से उठा दिया था।

सरदार करोडासिंह चक्के के साथ दोस्ती करके गुलावसिंह ने अपनी शक्ति को और भी वढा लिया था। दोनों मे पूरा मेल था और उस मेल से अपनी मातृभूमि की सेवा करने का लाभ उठाते थे।

दोनों ने मिलकर हरद्वार की ओर कूच किया। वहा से आगे चलकर नजीबाबाद पर चढ़ाई करदी। नवाव नजीबखां लड़ा तो हिम्मत के साथ किन्तु, उसे आखीर मे भागकर अपने प्राण बचाने पड़े। फिर मेरठ मुजफ्फरनगर, देवबन्द, मीरपुर के मुसलमान हाकिमों को शोधते हुए सहारनपुर पहुँचे और यहां से अपने देश पंजाब को लौट आये।

जबकि अहमदशाह युक्तप्रांत के धावे करके वापिस हो रहा था और हजारों हिन्दू स्त्रियों को भी दासी बनाने के लिये ले जा रहा था। तब चिनाव के किनारे सिखों ने उस पर जबर्दस्त हमला किया था। और उन सभी स्त्रियों को उनसे छिना लिया था। उस हमले मे भी वे दोनो वीर शामिल थे। और बड़ी बहादुरी के अपने फर्ज को इन्होंने पूरा किया था।

इसी साल सिखो ने उस शाही खजाने पर भी हमला किया था। जो रावलपिन्डी और रोहतास के इलाके से वसूल होकर लाहौर आरहा था। उस हमले मे इन दोनों ने बड़ी बहादुरी दिखाई थी। यह उस समय डेरा बाव नानक मे थे किन्तु इस खबर सुनते ही बिजली की तरह दौड़कर जेहलम के किनारे पहुँच गये और शाही खजाने पर धावा किया। यह खजाना सभी सिख जत्थों मे बाट दिया जो कि उस समय मौजूद थे।

धीरे-धीरे इसके पास छ हजार सैनिक इकट्ठे होगये और पंथ मे इसकी अच्छी खासी इज्जत होने लग पड़ी।

जब कलानौर की लड़ाई चली यह बहादुर उसमे लड़ता हुआ, खतम होगया और चूकि इसके दोनों लड़के जैपालसिंह और हरदयालसिंह पहले ही बसौली की लड़ाई मे खत्म हो चुके थे अत. इसके एक अच्छे साथी हरदयालसिंह को मिसल का सरदार बनाया गया।

किन्तु हरदयालसिंह दूसरे ही वर्ष दुआवे की एक लड़ाई मे काम आगया। इसलिये तारासिह[१] को मिसलपति चुना गया।

तारासिंह आरम्भ मे एक साधारण सिख था और तार्डोवाली में रहा करता था। लड़कपन में अपने पशुओं को चराता और मौज करता। जब जवान हुआ तो सिखों के दलों मे शामिल होगया। और गुलाबसिंह का साथी बन गया। चू कि इसने लड़ाइयों मे बड़ी २ बहादुरी दिखाई थी और साथियों के साथ बड़े प्रेम का बर्ताव था। इन सब अच्छाइयों ने इसे डल्ले वाली मिसल का ही अधिपति बना दिया।[१]

मिसल पति होने के बाद इसने अपनी बुद्धिमानी और बहादुरी से अपने सैनिकों और इलाके सब की तरक्की करली। भंगी सरदार हरीसिंह को इसने कसूर के जीतने मे भी मदद दी थी और वहाँ के रईस अदीनाबेग के दीवान विश्वम्भर को इसने अपने कब्जे मे कर लिया।

इसने अपने दल को बढ़ाने के लिये अपनी बिरादरी के सैकड़ों लोगों को सिख बनाया।

इसकी कौमी सेवाओं और सच्ची धर्मप्रियता को देखकर गाँव के सारे ही चौधरी मय अपने मुखिया चौधरी गौहरदास के सिख बन गये थे। और उस गाँव के सभी तरुण इसके जत्थे मे शामिल होगये थे। तारासिंह की इस प्रकार की सरगर्मियों का नतीजा यह हुआ कि उसके पास लगभग दस हजार सैनिक होगये।

सरहिन्द की लड़ाई से लौटकर इसने घुँगराला, वंदोवाल, दखनी आदि स्थानों पर कब्जा कर

१ अधिकाश इतिहासकारो का मत यह है कि डल्लेवाली मिसल के सस्थापक तारासिंह गैवा ही थे।

लिया और कस्बा राहू को अपना सदर मुकाम बनाया। इस तरह लगभग आठ लाख का इलाका इसके कब्जे मे होगया।

थानेसर, रोपड़ सिआलिवा खेड़ी और खमानों के रईसों ने इसकी अधीनता स्वीकार करली। इससे भी तारासिंह की ताकत खूब बढने लगी। तारासिंह खुद इस स्वभाव का आदमी न था कि सिख आपस मे भी लडें किन्तु एक बार इसे भी जोधसिंह रामगढ़िया के साथ लडना पड़ा। बात यह हुई कि राजा संसारचन्द ने जोधसिंह के कान तारासिंह के खिलाफ भर दिये और जोधसिंह ने दखनी किले पर हमला कर दिया। लगातार दोनों ओर से २० दिन तक लड़ाई हुई। दोनों ओर का काफी नुकसान हुआ। आखिर जोधसिंह को निराश होकर लौटना पडा। तारासिंह से विजय नहीं हुआ।

तारासिंह जैसा बहादुर था वैसा ही दानी और उदार भी था। अपनी रियासत के कई बडे २ गॉवों मे इसने लंगर भी जारी करा दिये थे। जिनसे गरीब लोग लाभ उठाते थे।

प्रजा से कभी भी तंग करके मालगुजारी नहीं ली। जितना भी राजी से लोग दे देते उतने ही पर सतोष कर लेता। इससे प्रजा के लोग भी इससे खुश थे और सकट पड़ने पर मदद भी कर देते थे।

एक बार तारासिंह ने अचानक ही थोड़े से आदमियों के साथ दारापुर पर हमला कर दिया। और वहॉ के हाकिमों को सदैव के लिये रणखेत में सुला दिया।

तारासिंह के तीन लडके थे। गूजरसिंह, दसौधासिंह और झंडासिंह। बाप ने मरने से पहिले ही तीनों ही को अलग २ किले और इलाके बाट दिये। गूजरसिंह ने दुगराला और धरमकोट पर कब्जा किया। दसौधासिंह के हाथ दखनी और बडोवाल के इलाके आये और झंडासिंह को नकोदर, माम्पुर और बल्लोकी मिले, जोकि जालधर के इलाके में हैं। यह तीनों इलाके तीस-तीस हजार की आमदनी के थे और बाकी रियासत अपने पास रक्खी। जिसे करीब पाच लाख को बताया जाता है।

सरदार तारासिंह इस ससार से प्रस्थान कर गया। उसका शोक मनाने के लिये महाराजा रणजीत-सिंह भी आये। बेवा सरदारनी ने उन्हे बहुत सारी कीमती चीजे भेट दी जिसमे पांच बढ़िया घोडे हाथी की जजीर और छ लाख रुपये भी थे। कुछ दिन बाद महारजा रणजीतसिंह ने सरदारनी को दो गाँव गुजारे के लिये दिये और सात गॉव मालपुरा, निकोदर, आदि झंडासिंह को देकर बाकी इलाका अपने राज्य मे मिला लिया।

तारासिंह के पुत्रों के पास जो इलाके थे। वे भी महाराजा रणजीतसिंह जी ने उस दौरे में जब्त कर लिये जो कि मालवे की शोध के लिये किया था।

गूजरसिंह को महाराज ने उन गावों मे से आधे दिला दिये जो उन्होंने गुरदत्तसिंह डल्लेवाले को दे दिये थे। और यह गॉव भी वह थे, जो तारासिंह ने उदासियों को बता रक्खे थे।

बाद मे महाराजा रणजीतसिंह जी ने रतनकौर को दो हजार रुपये सालाना की पेन्शन करदी जो उसे आजन्म मिली। उसके बाद में २००) मासिक नारलसिंह को मिलते रहे। बिलोकी और सरकपुर मे लगभग २८०) सालाना की माफी नारलसिंह और बख्तावरसिंह को दे दी गई थी।

अंग्रेजी हकूमत आने पर नारलसिंह सेना में सूबेदार होगया और उसे ४८५) सालाना की पेन्शन भी मिल गई। नारलसिंह का पुत्र अपने बाप का वारिस हुआ।

कुछ भी हो मिस्ल तो तारासिंह के बाद ही टूट गई थी और वहीं तक उसका गौरव पूर्ण इतिहास है।

इस मिसल के वास्तविक जन्मदाता तो शामसिंह और करमसिंह पंजगढ़ वाले जाट चौधरी थे। पीछे किरोड़ासिंह वरकिआवाले के नेतृत्व मे आने के कारण इसका नाम भी उसी के नाम पर मशहूर हो गया। क्योंकि वह आदमी था भी मशहूर होने लायक। उसने अपनी वहादुरी और चतुराई से लगभग दस लाख का तो इलाका इस मिसल के कब्जे मे कर लिया और वारह हजार वीर सदैव उसके पास तैयार रहते थे।

किरोडियॉ मिसल

जिस समय नादिरशाह दुर्रानी लूट का माल लेकर पंजाब से गुजर रहा था। शामसिंह ने अपने साथियो को लेकर उस पर हमला कर दिया और उसी लड़ाई मे मारा गया। करमसिंह ने भी अपने समय मे बड़ी बड़ी वहादुरी के काम किये। जिस समय जालधर के अदीनावेग पर सिखो ने चढाई की तो उसके सेनापति खैरसाह का सिर इसी सरदार ने काटा था और इस प्रकार का घनघोर और बुद्धिमता पूर्ण रण कौशल दिखाया कि मुसलमानो के छक्के छूट गये। सबसे पहले किले मे इसी का जत्था गया था।

करमसिंह के वाद ही किरोड़ासिंह इस मिसल का सरदार वना जो इतना भाग्यशाली था कि इसके समय मे मिसल की अपूर्व उन्नति हुई।

सबसे अधिक महत्वपूर्ण वात यह है कि भरतपुर के महाराजा सूरजमल जी के साथ इसने कितने ही युद्धों मे सहयोग दिया। फरूखावाद तक के इलाके उनके साथ मिलकर इसने शोधे।

एक वार इसने समस्त हरियाने का दौरा किया और जहॉ जहॉ भी मुसलमान रईसों को देखा उनको वर्वाद कर दिया।

वटाले मे जव कि वुलंदखॉ से सिखों का युद्ध हुआ उसमे भी किरोड़ासिंह शामिल हुआ और उन्हे इतना खदेड़ा कि वे वेचारे अपना खजाना तक न लेजा सके। सव इसी के हाथ आगया। साम चौरखी के सारे इलाके पर भी इसने कब्जा कर लिया था।

अत मे नवाव गुलामकादिरखा से तरावड़ी के मैदान मे लडता हुआ वीरगति को प्राप्त हो गया। इसके वाद सरदार वघेलसिंह जी धारीवाल जाट इस मिसल के अधिपति हुए। इन्होंने भी अपने समय मे मिसल की काफी तरक्की की। वुरदीन, केवरी, छलोदी, जमीअतगढ़ आदि स्थानों पर कब्जा करके इन्होंने अपनी आमदनी मे कई लाख की वृद्धि करली और छलोदी मे जोकि जिला कर्नाल मे है। अपना केन्द्र कायम किया।

दुआवा मे जालधर और होशियारपुर के जिलों मे बहुतसा भूभाग अपने अधीन इन्होंने कर लिया हालांकि कुछ पहले भी हो चुका था।

एक वार इसने एक वड़ा सैन्यदल इकट्ठा करके पूर्व की ओर कूच कर दिया। पहले जलालावाद पर धावा किया। यहॉ का हाकिम मुहम्मदहसन था। जिसने जवरन एक ब्राह्मणी को घर मे डाल लिया था। जलालावाद से खुरजा, चदौसी, अलीगढ़ और हाथरस पहुँच कर इन शहरों के मुसलमानों को परास्त किया। इसके वाद फरूखावाद पहुँचे जहॉ का हाकिम ईसाखा वडी वहादुरी के साथ मैदान मे आया। तीन दिन तक डटकर लड़ाई हुई किन्तु अन्त मे ईसाखा भाग गया। उधर से मुड़कर, मुरादावाद अनूपशहर विजनौर, वुलदशहर आदि शहरों को लूटते हुए पजाव मे वापिस लौटे। इस विजय यात्रा मे हजारों सिख मारे गये।

तलवन गांव जालधर के इलाके मे मिया मुहम्मदखा नामक एक मुसलमान रईस था। यह किरोडासिंह के समय मे ही मातहत होगया था, किन्तु इसने खिराज देना वन्द कर दिया था। अत.

पूर्व से वापिस आने पर इस पर चढ़ाई की और इलाके को जब्त करके यहा अपना एक छोटा सा किला बनवाया। इसी तरह नूरमहल के दीवानसिह का इलाका भी जब्त कर लिया।

एक वार सरदार वघेलसिह को पटियाला पर भी चढ़ाई करनी पड़ी क्योंकि महाराज अमरसिह जी पटियाला नरेश इस इलाके पर हाथ साफ करने लग पड़े थे।

घडाम के मुकाम पर दोनों ओर से सामना हुआ किन्तु विना ही रक्तपात किये दोनों ओर से सोच समझ कर आपस में सुलह होगई। महाराज ने अपने राजकुमार साहवसिह जी को वघेलसिह से अमृतपान कराकर सदैव के लिये पक्की मित्रता कायम करली। इससे वघेलसिह ने सदैव पटियाला नरेश को मदद दी।

दिल्ली के वजीर आजम नवाव अवदुलअहमदखा शाहजादा फरखदावख्त के साथ अनगिनती सेना पजाव मे इस आशय से लेकर आया कि सिख लोगों से उन इलाकों को वापिस लेलें। जो उन्होंने अव तक की अराजकता के समय मे दवा लिये हैं।

यह सेना दल सव से पहले वघेलसिंह के ही इलाके से होकर गुजरा क्योंकि वही प्रथम रास्ते में पड़ता था। वघेल वडा दूरन्देश आदमी था। उसने विना किसी उत्पात के इस दल को आगे वढ जाने दिया और जव यह दल पटियाला पहुचा तो पीछे अपना सारा दल लेकर कूच कर दिया। उधर महाराजा पटियाला के पास खवर भेज दी कि आप मजवूत रहे। और मिख मिसलों को भी वुलावा भेज दिया। प्राय सभी सिख मिसलें भी अपनी-अपनी सेनायें लेकर उमड़ पड़ीं। फरखदावख्त चारों ओर से सेनाओं के वीच घिर गया। अव तो वह घवराने लगा। उसने सुलह की वातचीत भी वघेलसिंह द्वारा ही चलाई। वघेलसिंह ने कहा—इस समय लगभग पचास हजार सिख इकट्ठे हो रहे हैं। वह तो उसी हालत में आपको सुरक्षित जाने दे सकते हैं। जव कि आप इनके हर्जे का रुपया दे सकें। शहजादा अपनी जान वचाना चाहता था। अत. उसने सिखों से सुलह की और फिर कभी भी सिखों के दमन का इरादा नहीं किया।

एक वार इसी प्रकार मराठों की फौज लूट मार करने के इरादे से पजाव मे घुस आई। वघेलसिंह ने उसे भी अपने इलाके मे से मजे से गुजर जाने दिया किन्तु ज्योंही मराठे वीच पजाव में पहुच गये। उन्हे भी सिखों से घिरवा दिया। जिससे वह वड़े चक्कर मे पडे, आये थे लूटने किन्तु खुद लुट चले।

वघेलसिह जहाँ वुद्धिमान दूरन्देश और वहादुर आदमी था। वहाँ महत्वाकाक्षी भी था। वह देख रहा था कि दिल्ली की मुगल हुकूमत रात दिन कमजोर होती जारही है। नाम मात्र की वादशाही रह गई है। दिल्ली से चारों ओर हर तीसवें कोस पर लोग वागी हो रहे हैं। अच्छा हो ऐसे समय में सिख लोग मिलकर दिल्ली पर धावा करें और अपना आधिपत्य कायम कर ले।

इसी ऊँचे उद्देश्य से उसने पजाव के तमाम मिसलपतियों अथवा जत्थादारों को पत्र लिखे और उन्हे वताया यह अवसर वहुत ही अनुकूल है।

सिखों की चालीस हजार सेना ने दिल्ली को घेर लिया। मजनू के टीले पर समस्त सिख मिसलपति इकट्ठे हो गए। अजमेरी दरवाजे से घुसकर मुगलपुरा तक के सारे हिस्से पर सिख शूरमाओं के पहरे लगा दिये और वढ़ते हुए किले तक पहुच गये।

इस वीच मिरजा अलीगौहरशाह ने वजीर आजम से सलाह मशविरा करके मामले को वढ़ने

से और मुगल सल्तनत को नष्ट होने से बचा लिया। सिमरू बेगम को बीच में डालकर सिखों के साथ निम्न शर्तों पर सुलह हो गई।

(१) खालसा सेनाओं को तीन लाख रुपया हर्जाने के दिये जावेंगे।

(२) शहर की कोतवाली और चुंगी का अफसर सरदार बघेलसिंह को बनाया जायगा।

(३) जब तक सिखों द्वारा मनोनीत गुरुद्वारे न बन जावेंगे। तब तक बघेलसिंह अपने साथ ४००० सिख सैनिक रख सकेंगे।

इस सुलह के बाद सिख सेनाये अपने मुल्क को लौट गई।

सरदार बघेलसिंह जी ने गुरुद्वारों का निर्माण आरम्भ कर दिया। सब से पहले तेलीवाड़े मे जहां कि माता सुन्दरी जी और साहब देवजी रही थीं। उस स्थान पर एक गुरुद्वारा बनाया गया। इसके बाद जैपुरे महल्ले मे गुरूद्वारा बंगला साहब का निर्माण कराया गया। गुरु हरिकिशन जी साहब इसी स्थान पर ठहरे थे। जमना किनारे भी गुरु हरिकिशन और माता सुन्दरी जी व साहब देवे जी की स्मृति मे स्थान निर्माण कराया। जहां कि उनके अतिम सस्कार हुये। रकाबगंज मे जहां किसी गुरु तेग बहादुर जी के शरीर का भस्मात संस्कार लक्खो नाम के सिख ने किया था। वहां गुरुद्वारा रकाबगंज बनवाया गया।

इसके बाद उस स्थान पर जहा कि गुरु तेगबहादुर जी साहब का शीश उतारा गया था गुरुद्वारा शीसगज बनवाया किन्तु इस गुरुद्वारे के बनने के समय मुसलमान और सिखों में तलवारें खिंच गई कारण कि उस स्थान के पास मस्जिद बन चुकी थी। बघेलसिंह जी ने उसी से सटा कर गुरुद्वारा बनवाना आरम्भ कर दिया।

इस प्रकार गुरुद्वारों का निर्माण करा कर सरदार बघेलसिंह अपने मुल्क को रवाना हो गये। रवानगी के समय वजीरआजम ने आपको पॉच घोडे, हाथी की जजीर और सिरोपाव भेट किया। साथ ही सिखों की वीरता की प्रशसा भी की। आजम ने हॅसते हुए यह भी पूछा सरदार जी, सिखों की वीरता तो मशहूर है। हिन्दुस्तान की सारी रियाया उनका जौहर मानती है। ये आपस मे जत्था बनाकर भी रहते हैं। पथ की आज्ञाओं का पालन भी करते है किन्तु फिर यह कभी-कभी आपस मे भी क्यों लड़ पड़ते हैं? सरदार बघेलसिह ने जवाब दिया। इन्होंने अमृत पिया है। इसलिये यह अपमान को बर्दास्त नहीं कर सकते हैं। वह चाहे अपनों की ओर से हो और चाहे दूसरों की ओर से। बस स्वाभिमान की रक्षा के हेतु ही यह आपस मे लड़ पड़ते हैं किन्तु यह याद रखनेकी बात है कि यह दूसरोंके लिये हमेशा एक हैं।

सिख इतिहासकारों ने लिखा है कि—"बादशाह ने बघेलसिंह को कड़ाह प्रसाद के लिये ५०००) नकद दिया और दिल्ली की चुंगी का चौथा हिस्सा उस समय तक बघेलसिंह के पास छालोदी भेजता रहा जब तक कि बघेलसिंह जिन्दा रहा।"

इसके बहुत दिन बाद बघेलसिंह ने अमृतसर की यात्रा की और सर में स्नान किया तथा हरि मन्दिर के दर्शन किये। वहीं सरदार गुलाबसिंह की मृत्यु का समाचार सुना और उसके ठिकाने में जाकर उसकी जागीर का प्रबन्ध किया।

आखिर इस दूरदेश और बहादुर सिख का देहान्त हो गया। इसकी स्मृति मे हरियाना जिला होशियारपुर मे एक समाधि बनी हुई है। इसके पीछे इसकी दो पत्नियॉ थीं। एक रामकौर दूसरी रतनकौर। दोनों ने दो इलाकों पर कब्जा कर लिया।

रामकौर ने जिला होशियारपुर में दो लाख के इलाके पर कब्जा कर लिया। और रतनकौर ने छलोदी वाले इलाके पर अपना तहत जमा लिया।

चार पाँच वर्ष तक दोनों सरदारनिया अपने-अपने इलाके का काम भली प्रकार चलाती रहीं।

आगे महाराजा रणजीतसिंह जी ने दोनों के इलाके छीन कर अपने सहयोगियों को दे दिये। रतनकौर वाला इलाका—खुरदीन वाला हिस्सा—कलसिया के सरदार जोधसिंह को और—वहलेपुर वाला हिस्सा—वीरभान को दे दिया।

इस मिसल के सस्थापक प्रसिद्ध धर्मवीर वावा दीपसिंह जी थे। जिनका संक्षिप्त वर्णन हम वलिदान-कथा में कर चुके हैं। आपके प्रसिद्ध साथियों में भाई गुरु वख्शसिंह, सुधासिंह, वुद्धासिंह, प्रेमसिंह शेरसिंह और हीरासिंह आदि के नाम विशेष उल्लेखनीय हैं।

शहीदोंवाली मिसल गुरु गोविन्दसिंह जी के दक्षिण की ओर चले जाने के बाद वावा दीपसिंह जी दमदमा मे रहने लग गये थे। और वहीं पर अपना जत्था खडा किया था। दमदमे मे आपका वनाया हुआ कूप और वुद्धा (वुड्ढा) सिंह जी के लगाये हुये वेर वृक्ष अव तक मौजूद हैं।

१७६५ विक्रमी मे गुरु गोविन्दसिंह द्वारा भेजे हुए महावीर वन्दासिंह जी का साथ वावा दीपसिंह जी के जत्थे ने आदि से अत तक दिया। युद्धों के समय यही दल अग्रणी रहता था और हर समय धर्म के लिये शहीदी तक प्राप्त करने की इच्छा से ओत-प्रोत रहने के कारण लोग इन्हें शहीद के नाम से पुकारते थे।

यह गौरव इसी मिसल को प्राप्त है कि इसके संस्थापक वावा दीपसिंह जी ने श्री ग्रन्थ साहवजी के चार उतारे करवाये थे। और वे चारों तख्तों पर भेजे गये थे।

जालंधर के हाकिम अदीनावेग के मरणोपरान्त वावा दीपसिंह जी ने सिख जत्थों की सहायता से जालधर को अपने कब्जे मे किया और फिर उसे अपने साथी दयालसिंह और नत्थासिंह जी शहीद को जागीर के रूप मे दे दिया। ये सरदार सालाना उस इलाके से भेट स्वरूप मिसल को दिया करते थे। किन्तु गुलावसिंह ने जो कि इनके वंशजों का उत्तराधिकारी था। मिसल को भेट देना वन्द कर दिया इससे मिसल पति ने नाराज होकर गुलावसिंह से यह जागीर छीन ली और 'दरवार वेर वावा नानक साहव' से लगा दी।

वावा दीपसिंह जी जहाँ उत्कट योद्धा थे। ये वहा ऊँचे दर्जे के विद्वान और धार्मिक पुरुष भी थे।

यह हम पहले लिख आये हैं कि जहानखा दुर्रानी ने अमृतसर में वैठकर दरवार साहव का अपमान करना शुरू कर दिया था। इस खवर को सुनकर वावा दीपसिंहजी ने पाच हजार शहीदी के इच्छुक सिखों को लेकर गिलजई पठानों पर अमृतसर मे चढाई की थी। आपने प्रतिज्ञा की थी कि अपना सिर दरवार साहव की सेवा मे ही चढ़ेगा किन्तु मुसलमानी सेना अमृतसर मे ६ कोस के फासले पर आ गई। इस तरह वावा और इनके साथियों को इतने जोर का युद्ध करना पडा जिससे अमृतसर तक लाश पर लाश पट गई। इनकी इस मार काट से गिलजई पठान विलमिला उठे और शाह जमाल नाम के पठान सेनापति ने वावा दीपसिंह जी पर हमला किया। वावा ने शाह जमाल को तो मार गिराया किन्तु सिर इनका भी कट गया। फिर भी वे सिर को हथेली पर रखकर वरावर उस समय तक लडे जब तक कि दरवार साहव के पास न पहुंच गये।

वावा दीपसिंह के साथ लडाई मे सरदार रामसिंह, सज्जनसिंह, वहादुरसिंह [illegible]

और हीरासिंह भी थे, जो हजारों गिलजइयों को दोजख पहुँचा कर शहीद होगये। इन सब महावीरों के स्मृति स्थान अमृतसर मे बने हुए है।

जिस समय बाबा दीपसिंह जी इस पवित्र शहीदी के लिये चले थे। सरदार नत्थासिंह जी को मिसल का अधिपति घोषित कर गये थे।

जिस समय बाबा दीपसिंह जी और उनके उपरोक्त साथी शहीद हुए थे। उस समय भाई गुरुबख्शसिह और दुर्गासिंह आनन्दपुर मे थे। इस खबर को सुनते ही मय दो हजार सिख सैनिकों के आ पहुचे। उधर तैमूरशाह ने भी काबुल से कुछ सेना अमृतसर के गिलजइयों की मदद के वास्ते भेज दी थी। इन काबुली पठानों के साथ-साथ मुलतान और रोहतास आदि के भी पठान मिल गये। इस तरह मुसलमानों का दल बीस हजार सैनिकों से भी ज्यादा हो गया। इस दल के आने के पूर्व ही भाई गुरुबख्श-सिंह ने अपने सैनिकों को खालसा दलों के साथ मिलकर दुर्रानियों के मुकाबिले पर भेज दिया और खुद ३० आदमियों के साथ अकाल बुङ्गा मे ठहर गये। जब यह पता लगा कि दुर्रानी दल अमृतसर की ओर बढ़ा चला आ रहा है तो आपने अपने धर्म स्थानों की रक्षा के लिये अपने आपको शहीद होने का अरदासा सोधा और तैयार हो बैठे। ज्योंही दुर्रानी दरबार साहब के नजदीक पहुँचे। भाई गुरुबख्श-सिंह और उनके तीस साथियों ने दुर्रानियों पर हल्ला कर दिया। काजी नूरमुहम्मद ने जो इस समय दुर्रानी दल के साथ था। अपनी पुस्तक "जंगनामा" मे लिखा है कि, "यह तीस सिख गुरु पर कुर्बान होने के लिये बिना किसी खोफ और खतरे के दुर्रानियों पर आ टूटे और अपनी जाने कुरबान कर गये।"

भाई गुरुबख्शसिंह की यादगार मे बना हुआ शहीदगंज अमृतसर मे गुरुद्वारा अकाल बुंगा की पिछली ओर है।

शहीदों की मिसल के इन बहादुरों के बाद सुधसिंह, सूबासिंह और प्रेमसिंह ने क्रमश बाबा दीपसिंह, गुरुबख्शसिंह और बसन्तसिंह के रिक्त स्थानों की पूर्ति की।

चूकि सुधसिंह ने बाबा दीपसिंह जी का स्थान ग्रहण किया था। इसलिये यह बिल्कुल सम्भव था कि वे उनके पद चिह्नों का अनुकरण करते। हुआ भी यही वे भी पठानों से युद्ध करते हुए शहीद हो गए। इनकी जगह मर्दानागॉव जिला लाहौर के जाट चौधरी वीरसिंह के पुत्र करमसिंह ने ग्रहण की।

करमसिंह एक होनहार और योग्य सरदार था। वह समस्त शहीदी जत्थों का सरदार बन गया और प्राय. मिसल पति भी वही बन गया। अपनी बहादुरी से उसने शाहजादपुर, माजरी और केसरी के इलाके अपने कब्जे मे कर लिये। केसरी को अपना निवास स्थान बनाया और शाहजादपुर अपने भाई धर्मसिंह के सुपुर्द कर दिया। कुछ वर्ष के बाद जब धर्मसिंह गुजर गया तो कर्मसिंह शाहजादपुर मे आ गया और अपने भाई की बेवा माई देसा को बड़ा गॉव रहने को बता दिया। चन्द दिन के बाद देसा भी चल बसी। इस तरह कुल इलाका कर्मसिंह के ही अधिकार मे अविच्छिन्न रूप से आ गया और इस तरह से उसकी एक लाख प्रति वर्ष की आमदनी हो गई।

दमदमा साहब के पास रानिया मे एक नौ मुस्लिम राजपूत जाबताखां नामी हाकिम था। सिखों के साथ सदैव ही उसकी खटपट रहती थी। सरदार कर्मसिंह के नेतृत्व मे सिखों ने उस पर चढ़ाई कर दी। जाबिता खा घबरा गया और उसने बारह गांव[1] दादू, धर्मपुरा, रामपुरा, तिलोकेवाला, केवल

[1] यह गांव कालावाली स्टेशन के इर्दगिर्द थे।

देहुला, पक्का आदि कंवर गुरुद्वारे के लिये इन शर्त पर दे दिये कि आपके सिख उसकी हुकूमत के गाँवों में कोई हमला न करेंगे। इन गाँवों में से सात गाँव अब तक गुरुद्वारे से माफी में लगे हुए हैं। जिनकी आमदनी, छत्तीस सौ रुपया सालाना के करीब थी।

जलालाबाद लुहारी का नवाब बड़ा दुष्ट आदमी था उसने एक ब्राह्मण स्त्री को जबरन अपने घर में डाल लिया था। सिखों के पास जब ब्राह्मण पुकारा तो उनके दल के दल जलालाबाद पर चढ़ दौड़े। इन आक्रांताओं ने सरदार कर्मसिंह को ही अपना नेता चुना। इस लड़ाई में कर्मसिंह ने अपनी वह वीरता दिखाई कि जलालाबाद पर विजय प्राप्त हो गई।

इसने अपनी बहादुरी और चतुराई से रनखंडी और बड़वा जमई के इलाके पर भी जो कि सहारनपुर के जिले में थे, कब्जा कर लिया था। इन इलाकों से करीब एक लाख सालाना की आमदनी होती थी और यह इलाके लगभग ३० वर्ष तक इसके अधीन रहे।

जितने भी दिनों यह बहादुर सरदार जिया, योग्यता और बहादुरी से अपनी जाति की तरक्की की और धर्म स्थानों को उन्नत किया। उनसे जागीरें लगवाईं इस प्रकार एक लंबे अर्से तक देश और धर्म की सेवा करके यह सरदार इस संसार से प्रस्थान कर गया।

सरदार कर्मसिंह के बाद उनका बेटा गुलाबसिंह मिसल का अधिपति बना किन्तु गुलाबसिंह बड़ा अयोग्य आदमी निकला। वह आलस पूर्ण जीवन बिताता रहा। इसका फल यह हुआ कि जब अंग्रेजों ने मालवे की ओर अपनी भूमि का बन्दोबस्त कराया तो बिना ही खून खराबी के इसके इलाके को भी अपने राज्य में मिला लिया। और इसे चन्द गाँवों का जागीरदार मान लिया।

संवत १९०१ वि० में गुलाबसिंह का देहांत हो गया और उसका लड़का शिवरूपालसिंह जागीर का मालिक बना। इसने पूरी वफादारी के साथ हर समय अंग्रेजों का साथ दिया। संवत १९०३ की सतलज की लड़ाई और संवत १९१४ के गदर सबमें अंग्रेजों का पक्ष लेकर इसने वफादारी का तमगा हासिल किया।

संवत् १९२८ में शिवरूपालसिंह मर गया और उसका लड़का जीवनसिंह वारिस बना। जीवनसिंह भाग्य का बली था। उसकी शादी पटियाले के महाराज महेन्द्रसिंह जी की लड़की चित्र कौर के साथ हो गई, जिससे उसे बीस लाख के करीब का माल मिला।

अंग्रेजी हुकूमत के आने पर भी इनके अधिकृत इलाके का एक बड़ा भाग इनके पास रहा जो जागीर के नाम से प्रसिद्ध हुआ।

इस मिसल के संस्थापक सरदार कपूरसिंह जी जाट जमींदार थे जोकि फैजुल्लापुर के रहने वाले थे। जिस समय कपूरसिंह जी ने उन्नतावस्था प्राप्त की, उस समय आपने अपने नगर के नाम को बदल कर सिंहपुर रख दिया। इसी कारण से यह मिसल फैजुल्लापुरिया और सिंहपुरिया

सिंहपुरिया मिसल दोनों नामों से मशहूर है।

सरदार कपूरसिंह ने अपने भाई दीवानसिंह समेत अमृतसर जाकर सिख धर्म की दीक्षा ली थी। इस दीक्षा में और भी अनेकों जाट जमींदार शामिल हुए थे।

आपने सिख धर्म में दीक्षित होकर दीवान दरबारासिंह के साथ मिलकर एक मिसल की स्थापना की और फिर मुसलमानों का प्रतिशोध करने पर कमर कस ली। सरदार कपूरसिंह की बहादुरी के लिये कहा जाता है कि वह रणक्षेत्र में मस्त हाथी की तरह विचरते थे। तलवार और तीरों के चलने

उनका सारा शरीर छलनी होगया था। उन्हे इस वात पर गोरव भी था। उनकी बरावर और किसी के शरीर पर इतने घाव नहीं आये थे। न तो उन्होंने कभी अपनी जान की परवाह ही की और न कभी रण से कदम ही हटाया।

धर्म-प्रेम और धर्म-प्रचार की भी उनके अन्दर भारी मात्रा और लगन थी। हजारो ही आदमियों को विना किसी भेद भाव के उन्होंने अपने हाथ से अमृत चखा के सिख बनाया।

इस प्रकार की धर्म लगन और वीरता के कारण सिखों के हृदय पर उनकी गहरी छाप लगी थी। उनके जमाने के सभी सिख उन्हे इज्जत की निगाह से देखते थे। वे यह निस्संकोच स्वीकार करते थे कि वल, पौरुप और धर्मशीलता मे कपूरसिंह सर्व सिखों के अग्रणी है। और यही कारण था कि लाहौर के नवाव ने सन्धि स्वरूप सिखो के सर्व सम्मत नेता को एक लाख की जागीर और नवाव का खिताव देना मंजूर किया तो सर्व सिखो ने कपूरसिंह को ही वह खिताव और जागीर दिलाई।

जागीर और खिताव के मिलने के वाद नवाव कपूरसिंह जी की इज्जत और भी वुलद हुई। पटियाला के सस्थापक राजा आलासिंह जैसे प्रतिष्ठित लोगों ने भी कपूरसिंह से ही सिख धर्म की दीक्षा ली।

पिड ठीकरी मे जहा पर कि नवाव कपूरसिंह ने अपना निवास स्थान बनाया था। राजा आलासिह जी ने कपूर-कूप की स्थापना की थी।

यद्यपि कपूरसिंह जी अपने पास केवल तीन ही हजार सवार सैनिक रखते थे और यह सैनिक कई सिख मिसलो के सैनिकों से वहुत कम थे किन्तु फिर भी वहादुरी और शूरता मे कभी भी वे पीछे नहीं रहे।

सतलज के चढ़ाव के ओर से इतने इलाके पर कपूरसिंह जी ने कब्जा कर लिया था जिसकी आमदनी छ लाख प्रति वर्प होती थी। उन्होंने दिल्ली और सतलज के बीच के अनेकों मुसलमान हाकिमो को उनके अत्याचारों के कारण दड दिया था।

शूरवीर की अपेक्षा नवाव कपूरसिंह धार्मिक पुरुष अधिक थे। इसी कारण वे अपना अमूल्य समय यों ही न विताकर अधिकतर सिख धर्म के प्रचार मे खर्च करते थे। यह सही है कि इस प्रकार की वृत्ति रखने के कारण धन दौलत और रियासत कई वातों मे आपकी मिसल कई मिसलों से छोटी थी किन्तु आपकी इज्जत फिर भी प्रत्येक मिसलपति से अधिक थी। यह बात नही कि केवल साधारण सिख आपको अपना अग्रणी समझते हों किन्तु जत्थेदार और मिसलों के अधिपति भी आपको वुजुर्ग समझते थे।

एक मुसलमान लेखक[1] ने नवाव कपूरसिह के सम्बन्ध मे अपने खयालात इस प्रकार जाहिर किये हैं—"नवाव कपूरसिंह ऊचे कद, चौडी छाती वाला, स्वस्थ, सुन्दर और तेजस्वी सिख है। दानी भी प्रथम श्रेणी का है, उसका अखड लगर चलता है। जिसमे गरीवों को हर समय प्रसाद मिलता है। रण मे सदैव ही उसे विजय प्राप्त हुई हैं।"

इस तरह से लगभग ३४ साल वहादुरी और धार्मिकता का जीवन व्यतीत करके नवाब कपूरसिंह ससार से प्रस्थान कर गये। उन्होंने अपनी मृत्यु से पहले अपनी सरदारनी और इलाके को अपने छोटे भाई खुशालसिंह को जिसे कि उन्होंने दत्तक पुत्र मान लिया था। सुपुर्द किया और धार्मिक नेतागिरी अपने शागिर्द सरदार जस्सासिंह अहलूवालिया को प्रदान की।

१. मौलवी बूड्ढनशाह।

कपूरथले के महाराजा रणजीतसिंह जी ने समयान्तर में नवाब कपूरसिंह जी की एक समाधि भी बाग अटल के पास निर्माण करा दी थी। जो कि अकाली आन्दोलन में वहाँ से उठा दी गई।

नवाब कपूरसिंह के बाद उनके भाई खुशहालसिंह ने भी अपनी शक्ति भर गरीबों के हित, धर्म प्रचार में कोई बात उठा नहीं रक्खी। अत्याचारियों को सजा देने में भी खुशहालसिंह कभी पीछे नहीं रहे। अनेकों लोगों को सिक्ख धर्म की दीक्षा भी दी।

अपना इलाका बढ़ाने के मौकों से भी खुशहालसिंह ने बराबर लाभ उठाया। एक बार हमला कर सिक्खों ने सरहिन्द के हाकिम जैनखां को मार डाला और उसके ५२ लाख के इलाके पर कब्जा कर बैठे तो खुशहालसिंह ने भी उसमें से, कंडोला, घनोली और भरतगढ़ आदि डेढ़ लाख के इलाके पर कब्जा कर लिया।

इसी प्रकार सरदार खुशहालसिंह ने जालंधर के नवाब शेख निजामुद्दीन को हराकर जालंधर पर कब्जा कर लिया और इसी को अपनी राजधानी बनाया। बलंदगढ़, हैबतपुर, पट्टी और बहरामपुर आदि इलाके उस समय जालंधर से संबंधित थे। जिनकी सालाना आमदनी लगभग तीन लाख रुपये थी। इन सभी पर खुशहालसिंह का अधिकार होगया।

इसके बाद महाराजा पटियाला की मदद से भी बनूड़ और जरत आदि नगरों पर भी कब्जा कर लिया इन नगरों पर उस समय रायकोट का रईस काबिज था।

सारांश यह है कि खुशहालसिंह ने अपने भाई से पाये हुये वैभव को कम नहीं होने दिया अपितु बढ़ाया ही। इस प्रकार राज्य और धन का संग्रह तथा धर्म का प्रचार करते हुये खुशहालसिंह इस संसार से प्रस्थान कर गये।

कहा जाता है उनका देहावसान किला लमड़े के भीतर हुआ था।

खुशहालसिंह के बाद उनका लड़का बुधसिंह उनका उत्तराधिकारी हुआ।

गुरु अर्जुनदेव जी के जीवन चरित्र में हम इस बात का जिक्र कर चुके हैं कि तरनतारन के बनवाने के लिये गुरु जी ने जो ईंटें तैयार कराई थीं। वे नूरदीन नाम के मुसलमान हाकिम ने उठवा कर अपनी हवेली में लगवा ली थीं। सरदार बुधसिंह ने अपने हाथ में शक्ति आते ही नूरदीन के मकान को गिरवा कर उसकी सभी ईंटें तरनतारन के निर्माण के लिये उठवा लीं।

उसने महाराजा रणजीतसिंह जी की उन सभी लड़ाइयों में सहायता की जो उन्होंने मुल्तान और कसूर को अपने राज्य में मिलाने के लिये लड़ी थीं। किन्तु खेद है कि कुछ बातों को लेकर महाराजा रणजीतसिंह और सरदार बुधसिंह में मतभेद खड़ा होगया। जिसके कारण वह लाहौर को सदैव के लिये नमस्कार करके सतलुज के इस पार आगये।

अपने पिता के बाद उन्हीं के पद चिह्नों पर चलते हुये [illegible] वर्ष के पश्चात सरदार बुधसिंह जी भी इस संसार से विदा होगये।

सरदार बुधसिंह जी के सात बेटे थे, वे सभी आपस में मुहब्बत रखनेवाले और समझदार थे। महाराजा रणजीतसिंह जी ने केवल डेढ़ लाख का इलाका उनके लिये रहने दिया था बाकी कब्जा कर लिया था। उसे उन सबने प्रेम पूर्वक बांट लिया। ताकि परस्पर कोई झगड़ा न हो। जालंधर का इलाका सब से बड़े लड़के अमरसिंह ने अपने पास रक्खा और बनोली भूपालसिंह को ननोली [illegible] को बंगा लालसिंह को बेला हरदयालसिंह को अटलगढ़ गुरदियालसिंह को कन्डोला [illegible] को

दे दिया। इस प्रकार परगनों के बट जाने से सब अपनी-अपनी जागीर मे रहने लगे।

कुछ साल बाद अमरसिंह भी सवत १८०४ विक्रमी मे मानेश्वर के पास इस दुनिया से विदा हो गये। अंतिम समय मे अमरसिंह बहुत सुस्त रहने लग गये थे। उन्हे दुनिया बिल्कुल नीरस जान पडने लगी थी। कारण कि उनके एकलौते पुत्र कृपालसिंह का उनके ही आगे देहान्त हो गया था।

अमरसिह के संतान हीन मरने के कारण उनकी जागीर पर आपस मे झगड़ा हुआ। सरदारी मनोली के अधिपति जयसिंह जी को मिल गई और आगे के लिये तय हुआ कि यदि इस खान्दान का कोई रईस लावलद मरे तो एक हजार सालाना तो उसकी बेवा को उस जागीर मे से खर्च दिया जाय। बाकी मे से आधा उत्तराधिकारी को, आधा शेष हिस्सेदारों को बांट दिया जावे।

आगे चल कर इनकी अटलगढ़, बंगा और वेला की रियासतो का भी इसी नियम के अनुसार बटवारा हो गया।

सवत १६३४ वि० मे मनोली के सरदार जयसिंह जी का भी स्वर्गवास हो गया। उनके बाद उनका अन्धपुत्र अवतारसिंह अपनी रियासत का मालिक बना और लगभग १६ वर्ष तक इस ससार मे दिन गुजरान करके संवत् १६५३ मे वह भी चलाना कर गया।

अवतारसिह के लड़के के पास बाग-बगीचे जमीन और व्याज आदि से लगभग अस्सी हजार सालाना की आमदनी थी।

धनोली मे जो वारिस बनाया गया था। उसके उत्तराधिकारी सरदार उत्तमसिंह प्रतापसिंह के पास भी १७–१८ हजार की आमदनी की जागीर शेष रह गई थी। कदोले के सरदारों फूलासिह, हरवंशसिह और शमसेरसिंह के पास छ-छ. हजार की जागीरे रह गई थीं।

मनसूर नामक गॉव मे चौधरी साहबराय जी रहते थे। उनके दसौंदासिंह और सगतसिंह[1] नाम के दो पुत्र थे। जब वे दोनों जवान हुए और उन्होंने देखा कि मुसलमान हाकिमों के अन्याय और अत्याचार से चारों ओर हाहाकार मचा हुआ है और अन्याय का शोध सिखों के जत्थे कर रहे हैं तो दोनों भाइयों के हृदय में सिख जाति और सिख धर्म के प्रति श्रद्धा उत्पन्न हुई। और दोनों ही भाई दीवान दरबारासिह से अमृतपान करके सिख बन गये। इनके साथ ही कैरों गॉव का जयसिंह और ढडकसेल (परगना तरनतारन) के कौरसिंह मानसिंह भी सिख धर्म में दीक्षित हो गये थे। यह सब सम्बन्धी तथा मित्र थे, और देशभक्ति की लगन हृदय मे रखते थे।

निशानवाली मिसल

दसौंदासिह और संगतसिह ने आरम्भ में अपना एक छोटा-सा जत्था बनाया था किन्तु धीरे-धीरे इनकी शक्ति बढ़ती ही गई।

जहॉ कहीं सिख सेनाये आक्रमण करने जाती थीं। वहां इनका दल झडा लेकर चलता था। उर्दू भाषा मे झडे को निशान कहते हैं, अत. पंजाब मे निशान वाले के नाम से इनकी मिसल निशानवालिया के नाम से मशहूर हुई।

सैनिकों की संख्या बढ़ाने मे इन्होंने सब से ज्यादा ध्यान दिया और यहॉ तक बढ़ाई कि इनके अंतिम दिनों में इस मिसल मे बारह हजार के लगभग सैनिक हो गये थे।

जहॉ भी सिख मिसले इन्हे मदद को बुलातीं, वहींप हुँचते। यहां तक सरहिन्द, मेरठ और कसूर

१. सगतसिह का गांव जिला अम्बाले में है ऐसा नारग ने लिखा है।

के मुहासरों में भी इन्होंने भाग लिया और अपनी ताकत् के जौहर दिखाये। इन्हे बुलाया भी प्राय सभी मुहासरों में जाता था। अपनी योग्यता और बहादुरी से इन्होंने अपनी एक अच्छी रियासत भी कायम करली थी। जिसमें सिंघावाला, साहनेवाल, सरायलश्करीखाँ, दोराहा, सौटी, अलमोह, जीरा, लिद्धड, अम्बाला और शहाबाद आदि इलाके शामिल थे। इस रियासत की राजधानी इन्होंने अम्बाला में रक्खी थी।

जाबित खा से लड़ते हुए इस मिसल का अधिपति सरदार दसौंगसिंह मारा गया। इसलिये मिसल का अधिपति उसका छोटा भाई संगतसिंह हुआ।

संगतसिंह ने अपनी राजधानी अम्बाला शहर के चारों ओर कोट बनवाना शुरू किया क्योंकि संगतसिंह जानता था कि यदि मजबूत गढ़ बन गया तो राज भी मजबूत हो जायगा। किन्तु अम्बाला मे रहने से इसका स्वास्थ्य बिगड़ गया। वहां की आवहवा अनुकूल न पड़ी। इसलिये संगतसिंह को अम्बाला छोड़ कर अपने लिये जीरे के पास सिन्घावाला में जगह बनवानी पड़ी किन्तु राज के प्रबंध के लिये भी आवश्यक था कि अम्बाले में कुछ फौज और कोई विश्वस्त सरदार रहता इसलिये संगतसिंह ने अपने सम्बन्धी गुरुबख्शसिंह और लालसिंह को बुला कर अम्बाला का प्रबन्ध उनके सुपुर्द कर दिया।

संगतसिंह का स्वास्थ्य सिन्घावाले में भी कुछ अधिक न सुधरा और इसका फल यह हुआ कि वह भी अपने भाई के केवल ६ वर्ष ही बाद इस संसार से विदा हो गया।

गोकि संगतसिंह के तीन लड़के थे किन्तु तीनों ही नाबालिग थे। इसलिये संगतसिंह के ससुर निधानसिंह ने आकर रियासतका प्रबंध संभाला। निधानसिंह खुसरपुरा का रहनेवाला प्रतिष्ठित सिख था।

संगतसिंह के तीनों लड़कों के नाम कपूरसिंह, मेहरसिंह और अनूपसिंह थे। उनके नाना निधानसिंह के आने से वे अपनी रियासत के छिन जाने के भय से भी मुक्त हो गये थे। निधानसिंह भी चतुर आदमी था। वह सिंघावाले की बजाय अम्बाले मे ही रह कर कुल रियासत का प्रबंध करने लगा। गुरुबख्शसिंह को ध्यानसिंह के हाथ में रियासत रहने से कोई प्रसन्नता न थी। वह संगतसिंह के लड़कों से भी प्रसन्न नहीं रहता था। सिंहावाले मे लडकों की देख रेख और माल जायदाद की निगरानी के लिये जयसिंह को मुकर्रिर कर दिया गया था।

ध्यानसिंह ने मेहरसिंह को रियासत के कुल अधिकार सौंप दिये। क्योंकि इस समय वह बालिग हो चुका था। अधिकार प्राप्त होने पर मेहरसिंह भी अम्बाले में रहने लगा और ध्यानसिंह सिंघावाले में आ गया।

राज्य का लोभ बुरा होता है। सगे भाइयों में इसके ऊपर तलवारें चल जाती हैं। फिर गुरुबख्शसिंह तो केवल रिश्तेदार ही था। संगतसिंह ने उसे बढाया था और निधानसिंह ने उसे बढ़ाया। अब मेहरसिंह के अधिकारी हो जाने पर तो एक बडे नौकर से ज्यादा उसकी हैसियत नहीं थी।

मेहरसिंह मार डाला गया। जब यह समाचार निधानसिंह के पास पहुँचे तो वह आगबबूला हो गया और सिक्खों का एक बडा दल लेकर गुरुबख्शसिंह को दण्ड देने के लिये अम्बाले पर चढाई कर दी। किन्तु चूंकि उधर भी तो सिख ही थे और अम्बाला का परकोटा भी खडा था। इसलिये निधानसिंह गुरुबख्शसिंह को हरा नहीं सका और उसे निराश होकर सिंघावाले को लौटना पडा। गुरुबख्शसिंह अम्बाले के इर्द-गिर्द के इलाके का स्वतन्त्र मालिक बन बैठा।

संगतसिंह का दूसरा लड़का कपूरसिंह मय अपने लड़के फतेसिंह व दयालसिंह के साथ लड़ता हुआ मारा जा चुका था। तीसरा लड़का सराय लश्करीखाँ के इलाके पर कब्जा किये बैठा था और वह उसे ही अपने लिये बहुत समझता था। इसलिये गुरुबख्शसिंह को उससे भी कोई खटका नहीं था।

अनूपसिंह के पास सराय लश्करवाली ग्यारह हजार सालाना आमदनी की रियासत थी। वह आगे उसकी स्त्री दयाकौर के हाथ मे आ गई क्योंकि अनूपसिंह ने मरते समय कोई संतान नहीं छोड़ी थी। दयाकौर आठ नौ वर्ष तक अपने इलाके का प्रबन्ध भली प्रकार चलाती रही। किन्तु आगे महाराजा रणजीतसिंह जी ने उसके गुजारे का प्रबन्ध करके कुल इलाके को अपने राज्य में मिला लिया।

इस समय तक गुरुबख्शसिंह मर चुका था और दयाकौर ही उस के इलाके पर काबिज थी। इसलिये अम्बाले का इलाका भी महाराजा ने अपनी सल्तनत मे मिला लिया और वहां का प्रबन्ध दीवान मुहकमचंद के द्वारा होने लगा।

यह वही भाग्यशाली मिसल है। जिसमे आगे चलकर पंजाब केसरी महाराजा रणजीतसिंह जी का जन्म हुआ था।

सुकरचकिया मिसल

इस मिसल का संस्थापक चौधरी भागू का लड़का बुद्धा (बुड्ढा) सिंह था। युवावस्था मे गुरु गोविन्दसिंह से अमृतपान करके इसने सिख धर्म की दीक्षा ली थी। बुड्ढासिंह ने शस्त्र सचालन भी गुरु गोविन्दसिंह जी से ही सीखा था। जिन दिनों महावीर बन्दासिंह पंजाब मे आये तो यह भी उनके दल मे शामिल हो गया।

बुड्ढासिंह के पास बढ़िया घोड़ी थी। जिसका नाम ढेसी या ढेसू था। यह घोड़ी दिन मे सौ सवा सौ कोस की मजिल बड़ी आसानी से तय कर सकती थी। इस प्रकार के तुरंग के मालिक सरदार बुड्ढासिंह को भी लोग 'बुड्ढासिंह ढेसी वाला' कहने लग गये थे।

सरदार बुड्ढासिंह के दो पुत्र थे। नौधसिंह और चन्दासिंह। दोनों बहादुरी और अक्लमन्दी मे अपने पिता से कम नहीं थे। ऐसा मालूम होता था कि एक ही सिंहनी ने दो शेर पैदा किये है।

वहाँ जाकर इन्होंने अपने पुराने गाँव को जो अब तक बरबाद हो चुका था। नये सिरे से बसाया और उसका नाम सुकरचक रक्खा कि आगे इसी कारण इनकी मिसल का नाम भी सुकरचकिया होगया।

धीरे धीरे इन लोगों ने सुकरचक के आसपास के इलाके पर अपना कब्जा कर लिया।

आगे सरदार बुद्धासिह मजीठे गाँव के निकट पठानों से लड़ता हुआ मारा गया। साथ मे बड़ा लड़का नौधसिंह भी इसी लडाई मे शहीद होगया।

नौधसिंह के एक लड़का था। नौधसिंह के मरने के समय उसकी उम्र २३ साल की थी। नाम था उसका चड़तसिंह।

चड़तसिंह बचपन से ही योद्धा प्रकृति का पुरुष था। उसने सोलह वर्ष की उम्र से ही लड़ाइयों मे अपने जौहर दिखाना शुरू कर दिया था।

जवानी मे पिता के स्वर्गवास के बाद अपने चाचा के साथ मिलकर इसने अपना दल बढ़ाया और थोड़े ही समय मे ३०० सैनिक अपने जत्थे मे भरती कर लिये।

सरदार चड़तसिह ने गुजरांवाला के मुसलमान हाकिम पर चढ़ाई कर दी और उसे निकालकर पर अपना अधिकार जमा लिया।

चड़तसिह ने गुजरांवाला मे एक किले का भी निर्माण कराया। क्योंकि अब वह सदैव के

लिये इस स्थान को वह अपने कब्जे मे रखना चाहता था। मातृभूमि का मोह ही ऐसा होता है।

इन्हीं दिनों चड़तसिंह ने अन्य सिख मिसलों से सहायता लेकर लाहौर पर चढ़ाई की। उस समय लाहौर में उबेदुल्लखॉ सूवेदारी करता था। वह सिखों की मार न सह सका और हार गया।

लाहौर की शोध करके चड़तसिंह ने स्यालकोट की ओर मुॅह फेरा। यहॉ नूरुद्दीन नाम का मुसलमान हाकिम था। चड़तसिंह की चढ़ाई की खबर सुनते ही वह स्यालकोट को छोड़ कर जम्मू की ओर भाग गया। यहॉ की शोध करके चड़तसिंह ने यहॉ का प्रवंध सरदार दलसिंह के सुपुर्द कर दिया और आप गुजरांवाला लौट आया। अव उसके पास एक हजार सवारों का रिसाला होगया था।

नूरुद्दीन पंजाव से भागकर कावुल मे तैमूरशाह के पास पहुँचा था। अमीर तैमूर ने उसे वीस हजार सेना और १२ तोपें देकर गुजरान वाले पर कब्जा कर लेने के लिये भेजा। नूरुद्दीन ने इस विशाल सेना के साथ गुजरावाला को चारों ओर से घेर लिया।

सरदार चडतसिंह ने कई महीने तक किले के भीतर वैठकर शत्रुओं का मुकाविला किया, किन्तु जव शत्रु के हटने के कोई आसार नहीं दीखे तो सरदार झडासिंह भगी और जस्सासिंह अहलूवालिया के पास सहायता का संदेश भेजकर उन्हे वुला लिया। जव वे सिख सेनायें आगई तो दुश्मन को वीच म घेर कर ऐसा किया कि दुश्मन भागते ही वना और उसका लड़ाई का वहुत सारा सामान सिखों के हाथ लग गया। कहा जाता है। इस लड़ लड़ाई में तीन हजार मुसलमान मारे गये। और कई तोप हाथी और घोडे वह छोड़ भागे जो महासिंह के कब्जे मे आ गये।

इस विजय के वाद सरदार चडतसिंह का साहस दुगणित हो गया और थोडे दिन ही पश्चात् उसने वजीरावाद को फतह करके अपने सोहरा सरदार गुरुवख्शसिंह के सुपुर्द कर दिया। दूसरे वर्ष रोहतास पर चढ़ाई की। यहॉ इन दिनों सर वुलदखॉ सूवेदार था। विजय चडतसिंह की हुई। वुलदखॉ किला छोड़कर भाग गया।

यह किला वड़ा विस्तृत और मजवूत था। इसे शेरशाह ने हुमायूं को भगा देने के वाद वनवाया था। तीन वर्ग मील मे इसका पक्का परकोटा था।

इसके वाद सरदार चड़तसिंह मे धर्नी चकवाल, जलालपुर, पिंड दाननखा, और कोट राया आदि स्थानों पर कब्जा कर लिया। इसी समय लूण, मियाणी अलीपुर का इलाका जीतकर अपने जातीय भाई दलसिंह को दे दिया। पिंड दादनखॉं मे एक किला वलवाने की आज्ञा देकर निधानसिंह और कपूरसिंह को वहॉ का प्रवन्धक नियत कर दिया।

वुधसिंह और गोरसिंह नामके दो सरदारों को भी पिंड दादनखॉं में ही किला वनाने के काम में मदद देने के लिये छोड़ दिया।

लूण मियानी की खानों से लून निकलता था। उसे खपाने के लिये सरदार चड़तसिंह ने रामनगर मे एक मडी की स्थापना की।

इस प्रकार से चड़तसिंह का प्रभाव दिनों दिन वढ़ता जाता था। और अपने वढते हुये प्रभाव से चड़तसिंह भी लाभ उठाने मे कभी नहीं चूकता था। उसने देखा कि ऐमनावाद के नवाव को भी इस समय जीत लेना अच्छा ही होगा। इसलिये उस पर भी चढ़ाई करदी और हाकिम को हराकर उसे भी अपने राज्य मे मिला लिया।

उन दिनों जम्मू में रनजीतदेव राज्य करता था, किन्तु उसके घर में कलह थी। वह अपने ह

लड़के दलेलचन्द को राज देना चाहता था। वड़ा लड़का व्रजराजदेव इसे अपने प्रति अन्याय समझता था। इसीलिये सरदार चड़तसिंह और सरदार हकीकतसिंह, जयसिंह कन्हैया से मदद मांगी। सरदार चड़तसिंह उनकी मदद के मय कन्हैया सरदारों के जम्मू पर चढ़ दौड़े। रणजीतदेव ने अपने को इस प्रकार आफत मे फंसा देखकर भंगी सरदार झंडासिंह को अपनी मदद के लिये वुला भेजा। जफरवाल के पास चक ऊदो के मैदान मे घनघोर युद्ध हुआ। लड़ाई चल रही थी कि गर्म होजाने के कारण सरदार चड़तसिंह की वन्दूक फट गई। जिससे वह सख्त घायल हुए और इस ससार से चल वसे।

सरदार चड़तसिंह के मारे जाने पर भी लड़ाई वरावर चालू रही। सरदार झंडासिंह भी किसी की गोली से मारा गया। राजा रजीतदेव झंडासिंह के मारे जाने से घवरा गया और उसने वेटे व्रजराज को राजी कर लिया। वापवेटे दोनों ने अपने २ सहायकों को हर्जाने का रुपया देना स्वीकार करके वापिस लौटा दिया।

सरदार चड़तसिंह के दो लड़के और एक लड़की थी। जिनके नाम महासिंह, सहजसिंह और राजकौर थे। राजकौर की शादी भगी सरदार गूजरसिंह के साथ और महासिंह की शादी जीन्द नरेश गजपतिसिंह की पुत्री के साथ हुई थी। पिता की मृत्यु के समय महासिंह की उम्र केवल १२ वर्ष की थी। इसलिये उनकी रियासत की सरपरस्ती सरदार जयसिह कन्हैया ने की, जोकि चड़तसिंह का पक्का दोस्त था।

महासिंह अपने पिता की भाँति ही वहादुर आदमी था। उसने समर्थ होते ही भंगी मिसल के साथ मुल्तान पर चढ़ाई की और वहाँ से लौटकर रास्ते मे अहमदावाद के निकट धारापिंड में अहमदखाँ से युद्ध किया। अहमदखाँ के पास एक वढ़िया तोप थी, जो अहमदशाह की तोप के नाम से मशहूर थी। उससे छीन लिया।

इसके वाद सरदार महासिंह ने भट्टियों की पिंडी, साहीवाल, ईसाखेल और मूसाखेल नामक स्थानों पर कब्जा कर लिया।

यह हम पहले लिख चुके है कि महासिह की वहिन बीवी राजकौर का विवाह गूजरसिंह के साथ हुआ था। यह विवाह महासिंह ने अपने ही हाथों से किया था। इस विवाह के वाद महासिंह की शक्ति और वढ़ गई। गूजरसिंह के इलाके लाहौर के ऊचाई का तीसरा हिस्सा और गुजरात का पूरा इलाका था।

महासिंह की शक्ति से यथासंभव लाभ उठाया। रोहतास लोहारा की कोटली और रामदासपुर आदि के रईसों को जीतकर उनसे भेंट हासिल की। जिसने अधीनता स्वीकार नहीं की उसीके इलाके को अपने अधीन कर लिया। इस तरह कई महीने तक का धावा रहा।

रसूलनगर मे पीर मुहम्मद नाम का एक मुसलमान हाकिम था। वह दिखावटी तौर पर महासिंह से मेल रखता था किन्तु था मुसलमानों का पक्षपाती। महासिंह उस पर विश्वास रखता था। इसी विश्वास के आधार पर अहमदावाद से जीती हुई तोप भी उसने पीर मुहम्मद के यहाँ अमानत के तौर पर रख दी थी किन्तु जव तोप की आवश्यकता हुई तो पीरमुहम्मद तोप देने से नट गया। महासिह को उस पर वड़ा गुस्सा आया और उसने उस पर चढ़ाई करके तोप ही नहीं हासिल की किन्तु रसूल-नगर को भी कावू मे कर लिया।

रसूलनगर की इस लड़ाई मे महासिंह को तीन महीने लग गये थे। यहीं पर उसे अपने घर पुत्र होने का समाचार मिला। यही पुत्र आगे रणजीतसिंह के नाम से जगद् विख्यात हुआ। रणजीतसिंह के जन्म की तिथि सवत १८३७ के माघ मास की वताई जाती है।

पीर मुहम्मद को उसकी रियासत से महासिंह ने क्तई खारिज कर दिया और रसूलनगर का नाम भी बदल कर राम-नगर रख दिया। उसके दूसरे नगर अलीपुर का नाम अकालगढ़ रख कर इस कुल इलाके को अपने राज्य मे मिला लिया और यहाँ का प्रबन्धक दलसिंह को मुकर्रिर किया।

आगे के दिनों में सरदार महासिंह ने जम्मू को भी फतह कर लिया था। यह लड़ाई सरदार हकीकतसिंह कन्हैया के बुलाने पर महासिंह को लड़नी पड़ी थी। कारण यह था कि जब ब्रजराज जम्मू की गद्दी पर बैठा था तो उसने हकीकतसिंह से वायदा किया था कि मैं तीस हजार सलाना कर स्वरूप तुम्हे देता रहूँगा किन्तु उसने दो वर्ष तक एक पाई भी नहीं दी। मागने पर साफ इनकार कर दिया। हकीकतसिंह को ब्रजराज की इस वायदा खिलाफी पर गुस्सा आया और उसने महासिंह को लिख भेजा कि मैं जम्मू पर चढ़ाई कर रहा हूँ। तुम आकर मेरी मदद करो। जब ब्रजराज ने देखा कि महासिंह भी चढ़ कर आया है तो वह जम्मू से भाग गया। इधर शहर के लोगों ने महासिंह की फौज के साथ गुस्ताखी की। इससे बिगड़ कर महासिंह ने नगर पर हमला कर दिया। साथ ही उसे अपने कब्जे में भी ले लिया और अपने एक सरदार को वहाँ छोड़ दिया।

महासिंह लौट कर गुजरांवाला आ गया किन्तु उसे इस बात पर रंज हुआ कि जयसिंह तु जम्मू पर चढ़ाई करते समय नहीं गया।

इस रंज की माया यहाँ तक बनी कि एक बार दिवाली पर अमृतसर के मेले में दोनों ओर से कहा सुनी हो गई और मजीठे गाँव के पास एक हल्की सी झड़प भी हो गई।

महासिंह ने जस्सासिंह रामगढ़िया को पंजाब में बुला लिया और बटाले के पास एक युद्ध में जब जयसिंह का पुत्र गुरुबख्शसिंह मारा गया तो उसने निराश होकर हथियार डाल दिये।

इन दिनों के बीच मे ब्रजराज देव पुनः जम्मू आ गया था और वहाँ से सिख सवारों को निकाल कर शहर को रौनक दे रहा था। जब यह खबर महासिंह को मिली तो उसने फिर जम्मू पर चढ़ाई की। और बहुत सारा सामान राजा का अपने कब्जे मे किया।

सरदार गूजरसिंह के मर जाने के बाद महासिंह ने उसके इलाके को अपने कब्जे में करने के लिये उसके किले पर चढ़ाई कर दी। उस समय गूजरसिंह का लड़का साहबसिंह लाहौर गया हुआ था। किले के अन्दर की फौज काफी हिम्मत के साथ लड़ रही थी। अत सहज ही फतह नहीं हुई। इसी बीच में महासिंह बीमार हो गया और गुजरानवाले को लौट पड़ा किन्तु रणजीतसिंह और दलसिंह किले पर घेरा डाले ही पड़े रहे। इधर जस्सासिंह रामगढ़िया ने मौका पाकर रणजीतसिंह की फौज पर हमला करने की तैयारी कर दी। रणजीतसिंह बालकपन मे भी कितना समझदार था। यह इस बात से पता चल जाता है कि इस खबर को सुनते ही उसने तुरन्त घेरा उठा लिया और रास्ते में पहुँच कर अचानक जस्सासिंह की फौज पर ऐसा हमला किया कि वह भाग खड़ी हुई।

इन्हीं दिनों रणजीतसिंह जी को खबर मिली कि तुम्हारे पिता का देहान्त हो गया है। इस खबर को सुनते ही वह वापिस गुजरांवाला आ गये और अपने पिता का संस्कार किया।

महासिंह के बाद रणजीतसिंह जी अपने पिता के उत्तराधिकारी हुए।

रणजीतसिंह जी ने अपने समय मे जो भी कुछ किया, वह एक स्वतंत्र गाथा है। इसलिये हम उनका हाल आगे दूसरे अध्याय में लिखेंगे। वे नराधिपति नहीं उत्तर भारत के राष्ट्रपति बन गये थे। इसलिये सुकरचकिया मिसल का हाल मिसल के रूप में यहीं समाप्त हो जाता है।

पिता की मृत्यु के समय रणजीतसिंह जी की अवस्था छोटी थी। इसलिये उनकी परिवारिश उनकी सासु सदाकौर की सरपरस्ती मे हुई थी। जब तक कि वह बालिग होकर स्वतत्र नही हो गये थे। तब तक सुकरचकिया मिसल का भी प्राय (एक प्रकार से) उनकी सासु के हाथ मे ही नेतृत्व रहा था और उसने बडी बुद्धिमानी के साथ कन्हैया और सुकरचकिया दोनों मिसलों की सयुक्त शक्ति से अपने वैभव को बढ़ा लिया था।

यह वह मिसल है जिसके उत्तराधिकारियों के पास सन् १६४८ तक पटियाला, नाभा और जीन्द जैसे गौरवशाली राज्य मौजूद रहे है। इन रियासतों के अधीश्वर अपने को यादव के वशज मानते है और यह भी कहते है कि एक समय जैसलमेर के भाटी और हमारे बुजुर्ग एक ही थे। इस विषय मे तो पूरा प्रकाश आगे के अध्यायों मे डालेगे यहा तो केवल मिसल फूल का ही वर्णन करना चाहते है।

फुलकिया मिसल

इस मिसल के संस्थापकों के पूर्वज चौधरी फूल मोहन के बेटे रूपा के सुपुत्र थे। पजाब के जाटों मे सिद्ध एक प्रसिद्ध गोत्र है आप उसी गात्र मे संवत् १६८८ वि० मे पैदा हुए थे। आपकी माता जी का नाम शिवी था जो कि जटियाना गोत्र की थीं।

चौधरी फूल के पिता मेहराज नामक प्रसिद्ध बस्ती मे रहते थे। पिता के मर जाने के बाद उनके चाचा कालू ने उनकी सरपरस्ती की। यह जमाना गुरु हरिराय जी का था। जब गुरु जी मालवा मे पधारे थे तो जिस समय वे मेहराज मे ठहरे हुए थे। गुरु जी ने फूल और उनके छोटे भाई को वरदान दिया था कि तुम्हारी संतान राजपाट वाली बनेगी।

फूल बचपन से ही सियाने और होनहार थे। वे साधु संतों मे अच्छी श्रद्धा रखते थे।

ऐसे होनहार बालक को उनका चाचा कालू भी खूब प्यार करता था। जब उसने एक वस्ती मेहराज से अलग आबाद की तो उसका नास भी अपने भजीजे के ही नाम पर रक्खा। पिंड फूल आबादी का नाम था। इस समय तक फूल की अवस्था पन्द्रह वर्ष की हो चुकी थी। अब वे अपने घर के धधों मे खूब दिल चस्पी लेने लगे थे। अपने गाव के चौधरी और करवाहक वे खुद ही थे सूबेदार ने उन्हे अपना कार्य वाहक स्वीकार कर लिया था इससे चौधरी फूल की आर्थिक हालत खूब ही अच्छी हो गई।

चौधरी फूल ने दो शादिया की थीं। एक ढिलवा के गॉव के चौधरी जीते का लड़की बाली और दूसरी साधना जाटों की लड़की राजो थी। बाली के उदर से तिलोका, रामा, रघु, नाम के तीन लडके उत्पन्न हुए थे। राजी से केवल तीन पुत्र हुए जिनके नाम चेते, झडा और तख्तमल थे।

राजो की सतान के लोग गुमटी मे रहते है और लोड़घरिया नाम से याद किये जाते है।

बड़ी चौधराइन बाली के पुत्रो मे से तिलोका के वशज रियासत नाभा और जीन्द के धनी है। रामा की सतान के हाथ मे पटियाला का राज्य है और कुछ वडोर, मलोद, रामपुर और कोटरुनी आदि मे आबाद है। रघु की संतान जीवक मे वास करती है।

चौधरी फूल ने अपनी सपत्ति से पचासों घोडे और सैकड़ों हथियार खरीद कर सौ सवा सौ आदमियो की एक सैनिक टुकड़ी वना ली थी। उसी से उसने मुक्तसर के पास के फखरसर थोडी के,रईस हयातखॉ नौमुस्लिम भट्टी राजपूत को शिकस्त दी, वह भटनेर की ओर भाग गया जो उसका सदर मुकाम था।

कोट ईसा के रईस ईसाखॉ ने जब यह ससाचार सुना तो वह चौधरी फूल के गॉव पर एक बड़े गिरोह के साथ चढ़ आया। चौधरी फूल को अपना गॉव छोड़ना पडा। गॉव के छूट जाने के कारण कई

महीने तक चौधरी फूल को इधर-उधर भटकना पड़ा किन्तु अन्त में जाट लोगों का एक वडा गिरोह वना कर उसने अपने गाँव को पुन. अपने अधिकार में कर लिया। और एक वर्ष तक चुप रह कर दूसरे वर्ष फिर फखरसर थोडी पर हमला किया। इस वार जम कर लड़ाई हुई। जिसमें हयातखॉ के दो लडके मुहब्बत खॉ और महवूव खॉ मारे गये। हयातखॉ भटनेर को भाग गया। ईसाखाँ भी चुप रहा।

इस विजय से चौधरी फूल की कीर्ति चारों ओर फैल गई और चौधरी ने भी उस सारे इलाके पर अपना अधिकार जमा लिया और साथ ही सैनिकों की सख्या भी वढ़ानी शुरू कर दी।

जव कुछ अच्छी शक्ति वढ़ गई तो मालगुजारी देने से भी उन्होंने इनकार कर दिया। इन इलाकों का हाकिम जगराव का रईस था।

चौधरी फूल की इस प्रकार की उत्तरोत्तर शक्ति के वढ़ाव को मुसलमान हाकिम भला कैसे वर्दाश्त कर सकते थे। जगराव के हाकिम ने पिंड फूल पर आक्रमण किया किन्तु वह इस आक्रमण में विफल हुआ और चौधरी फूल ने उसे कैद कर लिया।

यह समाचार विद्युत वेग की तरह चारों ओर फैल गया। सरहिन्द के नवाव को चौधरी फूल का यह हौसला वर्दाश्त नहीं हुआ उसने चलाकी से काम लिया और चौधरी फूल को धोखे से सरहिन्द बुला लिया और फिर कैद में डाल दिया। उसने चौधरी फूल को धोखा देने के लिये खवर भेजी थी।

"उधर के परगनों का ताल्लुकेदार आपको वनाना चाहता हूँ। इसलिये यहॉ आकर सनद ले जाओ।"

नवाव सरहिन्द ने चौधरी फूल को अपने जेल मे डालकर उन्हे नहीं छोड़ा। हालाकि वे पिछला वकाया देने पर भी राजी हो गये थे। अत मे जेल में ही यह मर गये।

उनके शरीर त्याग के सम्वन्ध मे एक कौतुहल वर्द्धक यह गाथा प्रसिद्ध है कि वे मरे नहीं थे किन्तु चूंकि उन्होंने वचपन मे एक योगी से प्राण विद्या सीख ली थी। इसलिये उन्होंने प्राणों को ब्रह्माड मे चढ़ा लिया। नवाव ने उन्हें मृतक समझ कर परिवार वालों के हाथ सौंप दिया। परिवार वालों ने उन्हें समाधिस्थ कर दिया।"

यह भी कहा जाता है कि उनकी वड़ी चौधराइन होती तो वह उन्हें समाधिस्थ नहीं करने देती क्योंकि वह तो उनके योग सम्वन्धी कौतुकों से परिचित थी। किन्तु वह उस समय अपने मायके में थी और उसे उस समय पता चला, जव उनकी समाधि पर स्थान का निर्माण भी हो चुका था। जव छोटी को यह सारा भेद मालूम हुआ तो उसे वडी लज्जा आई और वह फूल गॉव का ही छोडकर अपने एक रिश्तेदार सुक्खा वैराड के गॉव चली गई।

चौधरी फूल के वाद उनका वड़ा लड़का तिलोका अपने गॉवों का चौधरी और मालगुजार मुकर्रिर हुआ।

अपने दादा रूपा के गॉव को फिर से आवाद किया। यह गॉव गुरुगोविन्दसिंह साहब के समय मे और उन्हीं के आदेश के अनुसार वसाया गया था। किन्तु चौधरी फूल के पिंड फूल में आजाने के कारण रूपे गाँव की आवादी भी इधर उधर हो गई थी। तिलोका और भाई रामा दोनों ही अपने पिता की तरह वहादुर आदमी थे। इनकी वहादुरी से गुरु गोविन्दसिंह जी भी वडे प्रसन्न थे और इन्हें गुरु गोविन्दसिंह जी ने अजमेरचन्द के साथ होने वाली लडाई मे अपनी तरफ से लडने के लिये वुलाया भी था। उस निमन्त्रण पत्र की नकल इस प्रकार है—"सत गुरु सहाय। भाई तिलोका भाई रामा. सगत गुरु

रक्खेगा। तुसी असवार लैकर आउण हजूर साडे जरूर जमीअत लैंके आउणा तुसां ऊपर साडी खुशी महरवानगी है। इक जोड़ा भेजा है रखावना, तुसां आवनां। २ भादवे सवत १७५३ वि०"

कहा जाता है आगे चल करके किसी कारण वश तिलोका और रामा दोनों भाइयों मे अनवन हो गई। इससे रामा चन्द सवार अपने साथ लेकर पिंड रूपा से दूसरी जगह चले गये।

अपने भाई से अलग होने के वाद सब से पहले उन्होंने हसनखां भाटी मुसलमान को दंड दिया। यह अपने गिरोह के साथ घूम कर हिन्दुओं को लूटा करता था। जब कि वह समाज के इलाके को लूटकर लौट रहा था, चौधरी रामा ने उसे झंडू गॉव के पास घेर लिया और इस प्रकार झपट हुई कि हसनखां और उसके साथी लूट के तमाम माल असवाव और पशुओं को छोड़कर भाग गये। भाई रामा ने पशु तो उन लोगो को वापिस कर दिये जिनके वे थे और धन दौलत अपने पास रक्खी तथा साथियों को वॉट दी। इसके वाद और भी आदमी भर्ती किये और अच्छा खासा दल हो जाने पर ईसाकोट पर हमला किया। ईसा खां भी मुकाविले पर आकर खूब लड़ा खूब ही हाथ दिखाये किन्तु ईसा खा की हार हुई और उसे कोट से वाहर भाग जाना पड़ा। चोधरी रामा ने कोट की लूट कराली और वहॉ भी जो पशु मवेशी डाके मे लाये हुये थे। सब को खुलवाकर देहातों मे भिजवा दिया।

चौधरी रामा की इन वहादुरियों और गरीब परस्ती से लोगों के दिलों मे उसकी इज्जत वैठ गई और सैकड़ों नौजवान उसके हो गये।

इसके वाद चौधरी रामा ने अपनी ससुराल ढिआली को अपना निवास स्थान वनाया। उनका ससुर नानूसिंह भी एक प्रतिष्ठित और हिम्मत का आदमी था। वह पहले तो घनस नामक गॉव मे रहता था। ढिआली पर तो उसने कब्जा किया था। उसकी एक लड़की साहवकौर थी। यही चौधरी रामा को व्याही थी।

ससुराल मे रहकर चौधरी रामा ने आरम्भिक दिनों मे यही काम किया कि जो भी डाकू लोग कहीं से भी किसी का माल चुराकर लाते। रामा उन पर हमला करता और फिर उनसे लूटे हुये माल को असल मालिकों को वापिस कर देता। उसके इस काम से रात दिन उसकी कीर्ति और शक्ति दोनों वढ़ रही थी।

चौधरी रामा के छ लड़के थे। दुनासिंह, सम्भासिंह, आलासिह, वख्तावरसिंह, लद्धासिह और बुड्ढासिह उनके नाम थे।

इनमे आलासिंह वड़े प्रतापी और ऐश्वर्य्यवान हुये। इनका जन्म संवत् १७४८ विक्रमी मे हुआ था और २३ साल की अवस्था मे इन्होंने अपने पिता के जत्थे का स्वामित्व ग्रहण कर लिया। भगतू खान्दान के सरदारों की मित्रता से आलासिंह जी ने खूब लाभ उठाया। उन्हे अनेकों लड़ाइयों में भी साथ रक्खा।

सवत् १७८६ मे जब कि पंथ खालसा मालवे मे दौरा कर रहा था तो नवाब कपूरसिंह से जो कि एक सजातीय प्रसिद्ध सिख थे आलासिंहजी ने सिख धर्म की दीक्षा ली और अमृत चखकर सिंह वन गये।

सरदार आलासिह जी ने एक लंगर भी जारी कर दिया और उन समस्त गॉवों को फिर से आवाद करना शुरू कर दिया, जो मुसलमान भाटियों के जुल्म से वर्वाद हो गये थे।

सरदार आलासिंह ने अपने पिता का वदला भी चैनसिंह के लड़कों से लेने में ढिलाई नहीं की। गुमटी गॉव मे जहॉ कि वे व्याह मे आये थे। हमला कर दिया इसमें चैनसिंह के दो लड़के वीरू और

कमला मारे गये। उग्रसैन पहाड़ों की ओर भाग गया। इनके गाँव को भी आलासिंह ने उजाड़ दिया।

इसके बाद सरदार आलासिंह ने संघेड़ा को अपने अधीन किया। वहाँ का हाकिम नया-नया मुसलमान था। वह चाहता था कि मेरे इलाके के सारे हिन्दू मुसलमान हो जावें। थोड़े ही दिन में उसने अपने इलाके मे त्राहि-त्राहि मचा दी। हिन्दू भागकर सरदार आलासिंह के पास आये। सरदार आलासिंह ने पचास सवारों को भेजकर उस हाकिम को तो निकाल दिया और निगाहीसिंह को वहाँ का थानेदार बना दिया। रायकोट के हाकिम राय कल्हा को यह बात बुरी लगी। उसने एक तगड़ा सैनिक दल लेकर आलासिंह द्वारा नियुक्त थाने पर हमला किया किन्तु इस बीच सरदार आलासिंह भी एक सैनिक जत्था लेकर आ पहुँचे। दोनों ओर से तीन चार घंटे डटकर लड़ाई हुई। इस लड़ाई में राय कल्हा का सेनापति गोसमुहम्मद मारा गया और संघेड़ा आलासिंह के ही कब्जे में रहा।

पथौड़ नाम का कस्बा भी जो कि एक पुरानी आबादी था। आलासिंह ने जीत लिया और अपने बड़े भाई दुनासिंह को सौंप दिया।

बरनाला पंजाब की एक पुरानी बस्ती है। वह आलासिंह के समय में उजाड़ पड़ी थी। सन् १७७५ मे आलासिंह ने उसे आबाद किया और अपनी राजधानी भी वहीं स्थापित करली। इसके पास के लोगोंवाल, उभयवाल और नमेल आदि गाँवों को भी अपनी रियासत मे मिला लिया। इस प्रकार आलासिंह के पास अब एक छोटी सी और स्वतन्त्र रियासत बन गई थी। जिसकी आमदनी लगभग एक लाख रुपये की थी।

इस प्रकार एक दिन वह आया। जिसमें उसे भारत विजेता अहमदशाह और मुगल सम्राट मुहम्मदशाह दोनों की ही ओर से किन्तु अलग २ इरादों से राजा का खिताब मिल गया और इसी भांति उधर जीन्द और नाभे की भूमि पर भी चौधरी फूल के दूसरे वंशज रियासतें स्थापित करने में समर्थ हो रहे थे। इस प्रकार फुलकियाँ अब मिसल से आगे रियासतों के रूप में बदल रही थीं। अत यहीं पर इस मिसल का वर्णन समाप्त करते हैं और आगे के अध्यायों मे फुलकियन स्टेट्स पर प्रकाश डालेंगे।

इस खानदान का वह सरदार जो सिख उरूज के समय चमका सरदार जस्सासिंह अहलूवालिया था। आरम्भ मे सरदार जस्सासिंह ने सिंहपुरिया मिसल के जाट सिखों के साथ मिलकर अपने को विकसित किया था। नवाब कपूरसिंह की सेवा मे रहकर जस्सासिंह एक बुद्धिमान और योद्धा सरदार बन गया था। नवाब कपूरसिंह ने अंतिम समय मे पथ की धार्मिक बागडोर जस्सासिंह को सौंपी। सरदार जस्सासिंह अपने मामा बागसिंह के उस गिरोह के भी अधिपति हो गये। जो उसने हल्लोवालिया सिखों का बना लिया था और अपने स्वतन्त्र जत्थे को भी उसमें मिला दिया। इस प्रकार यह मिसल अहलूवालिया कहलाने लगी।[१]

अहलूवालिया

नवाब कपूरसिंह जस्सासिंह पर भर पूर स्नेह करते थे। उन्होंने अस्त्र शस्त्र विद्या मे जस्सासिंह को खूब निपुण किया था। जस्सासिंह भी कपूरसिंह जी की बड़ी श्रद्धा से सेवा करता था। एक बार नवाब ने रात मे जब नवाब कपूरसिंह ने पूछा कि पहरे पर कौन है ? यही उत्तर मिला "जस्सासिंह। इस प्रकार

१ सरदार जस्सासिंह के पूर्वज आहलू गांव के रहने वाले थे। इसलिये आहलू-वाले या अहलूवालिये कहलाये हों इनके बुजुर्ग पेशा से कलाल थे। किन्तु अब तमाम कलाल अहलूवालिया शब्द की प्रसिद्ध के कारण अपने आपको अहलूवालिया कहलाते हैं।

की कर्तव्यनिष्ठा देख कर नवाब कपूरसिंह जस्सासिंह से बड़े प्रसन्न हुए। नवाब कपूरसिंह ने जस्सासिंह को घोड़ों का दाना बॉटने पर नियत कर रक्खा था, चूंकि बचपन से जस्सासिंह लगभग १२ वर्ष देहली मे माता सुन्दरी जी के पास रहे थे और यहीं पढे लिखे थे। अत उनकी बोली ही उर्दू हो गई थी। और इस कारण से आपको आदमी 'हमको' 'तुमको' को सुन कर बहुत चिढ़ाया करते थे। एक दिन इस तरह से तंग किये जाने पर आप नवाब कपूरसिंह के पास रोते-रोते आये और कहने लगे महाराज मुझसे इन लोगों के घोड़ों को दाना-वाट नहीं हो सकता। इस पर नवाब साहब ने मुस्करा कर कहा। गुरु गोविन्दसिंह के पथ मे तो सेवा से ही मेवा मिलता है। मुझे तो इन्होंने पंखा झलने की सेवा करते-करते उठाकर नवाब बना दिया है। आपको शायद बादशाह ही बना दे।

मिसलपति बनने के बाद थोड़े ही समय मे जस्सासिंह ने अपनी बहादुरी, कौमी प्यार और भले स्वभाव के कारण समस्त प्रतिष्ठित सिखों मे ऊचा दर्जा प्राप्त कर लिया। नवाब कपूरसिंह के बाद मे जस्सासिह का पद गिना जाने लगा।

शरीर की लम्बाई चौड़ाई और खुराक मे जस्सासिंह शायद सब से आगे थे। सिख इतिहासकारो ने लिखा है कि आधे बकरे के मास को अकेला ही खा जाता था। जैसी उसकी खुराक थी। पौरुष भी वैसा ही था। लड़ाई के समय मे उसका घोडा दुश्मनों के गोल मे ही दिखाई देता था। जब नादिरशाह दिल्ली मथुरा और वृन्दावन आदि को लूट कर वापिस जा रहा था। इसी जस्सासिंह ने सिख दलों को आवाहन किया और उस पर हमला करके उसका बहुत सा बोझ हल्का कर दिया। इस प्रकार भारत की संपत्ति को भारत मे ही रखा।

रोडी साहब के मुकाम पर सिख दलों पर हमला करनेवाले जसपतराय के सिखों द्वारा मारे जाने के बाद नवाब अदीनाबेग, दीवान लखपतराय और लाहौर के सूबेदार मीर मन्नू ने सिखो को बर्बाद करने पर कमर बॉध ली थी। उस समय भी सरदार जस्सासिंह ने बुद्धिमानी और बहादुरी के काम किये। अदीना-बेग से काफी टक्करे लेने के सिवा अमृतसर के सारे इलाके पर अधिकार कर लिया। उसने दीवान कोड़ामल को भी मदद दी।

सरदार जस्सासिह ने फतिहाबाद मे अपनी दूसरी शादी की। फिर जीन्द और पटियाला के राजाओं की अनुमति लेकर झज्जर, रोहतक, बेरी, नारनौल को कब्जे मे कर लिया। कुछ इलाका मालेर कोटला के पठानों से भी छीन लिया।

इसके बाद जस्सासिंह ने फिर पूरब की ओर धावा के लिये मुंह फेरा और जलालाबाद, मेरठ, चदौसी, अलीगढ़ आदि से बहुत सा धन लूटमार कर लाए।

कन्हैयालाल ने 'तारीख पजाब' मे लिखा है कि जब मथुरा वृन्दावन के मन्दिरो को ढाने और कत्ले आम के बाद अहमदशाह अब्दाली वहॉ से २२ हजार स्त्री बच्चों को गुलाम बनाने के लिये काबुल की ओर ले जा रहा था और किसी को उससे मुकाबिला करके इन बन्दियों को छुडाने का साहस न हुआ और जब उनके वारिसों ने अमृतसर अकाल तख्त के सामने खालसा जी के एक दीवान में पुकार की तो जस्सासिंह ने उनको छुड़ाने के लिये एक दल के साथ दुर्रानियों पर धावा बोला और उन स्त्री बच्चों को छुड़ा कर और अपने खर्च पर उनके घरों को भिजवा दिया।

करतारपुर के गुरुद्वारे को नासिरअलीखॉ नाम के मुसलमान अफसर ने ढाह दिया था। सरदार जस्सासिंह ने जब कि अदीनाबेग हार, झक मार कर उनका दोस्त बन गया था। करतारपुर गुरुद्वारे की

मरम्मत कराढी और कुछ जागीर भी अदीनावेग के इलाके मे से ही लगवादी।

जव कि अहमदशाह ने हिन्दुस्तान पर हमला किया था और अलीगढ़, हाथरस वगैरह को लूटकर कावुल को जारहा था। उस पर सरदार जस्सासिंह ने सिख जत्थों की मदद से हमला किया था।

सन १७५३ में नवाव कपूरसिंह का स्वर्गवास होगया। अमृतसर मे सभी जत्थेदार इकट्ठे हुए और उन सभी ने पथ की जत्थेदारी का दस्तार सरदार जस्सासिंह को ही सौंपा, इससे भी उसकी काफी इज्जत वढ़ी।

इसके वाद फीरोजपुर जिले के डोगरा और भट्टियों के इलाके मुलावाला और मुक्खो पर कब्जा करके उन स्थानों पर किले वनवा दिये। कोट ईसाखॉ को भी जोकि इसी इलाके मे है, फतह किया। नारायणगढ़ की ओर प्रस्थान करके उसे भी जीता और पश्चात् कपूरथला के जागीरदार इब्राहीम से खिराज वसूल किया और फिर इसी साल दुर्रानियों को अमृतसर से निकालने में सिख दलों की अगुवाई की।

जिस समय अहमदशाह दुर्रानी देहली से फिरता हुआ लाहौर में अपने पुत्र तैमूरशाह को छोड़ गया और वख्शी जहानखान को सहायक वना गया तो उसका और अदीनावेग हाकिम जालधर का वैमनस्य होगया। तैमूरशाह ने अदीनावेग के इलाके को अपने मातहतों के अधीन करने के लिये एक सेना दुआवे में भेजदी। अदीनावेग इस समय भागकर शिवालक की पहाड़ियों मे पहुँचा और वहाँ सोडी वडभागसिंह द्वारा सिखों से सहायता की याचना की। जस्सासिंह अहलूवालिया ने खालसा दलो को शामिल होकर तैमूरशाह के हाकिम को जालधर के नजदीक परास्त करके भगा दिया। इसी समय अदीनावेग ने मराठों को भी अपनी सहायता के लिये वुला लिया था।

जव लाहौर पर सिखों ने कब्जा कर लिया तो जस्सासिंह को "सुल्तानउलकौम" व वादशाह के लकव से पुकारने लगे। इसपर यहाँ के कुछ मौलवियोंने अहमदशाह के गुस्से को सिखों के विरुद्ध भडकाने के लिये कुछ ऐसे सिक्के ढ़लवाये। जिन पर फारसी में यह शब्द लिखे थे।

"सिक्कजद दर जहाँ व फजले अकाल।
मुल्के अहमद गिरफत जस्सा कलाल॥"

सन १७६१ में दुर्रानी पजाव पर चढ़ आया और पानीपत की लडाई मे मराठों को परास्त करके उत्तरी भारत से निकाल दिया। इस समय अब्दाली ने सिखों को कुछ न कहा, किन्तु अगले साल वह फिर पजाव की ओर चढ़ आया। इस समय सिख अपने स्थायी शत्रुओं को शोधने के प्रयत्नों में सलग्न थे और जंदियाले को घेर रक्खा था। दुर्रानी ने लाहौर पहुँचकर एक वड़ा लवा चक्र लगाया। ताकि जंदियाले पर घेरा डाले हुये सिखों को घेर सके। परन्तु जव सिखों को उसका पता लगा तो उन्होंने यह समझ कर कि दुर्रानी उसके वाल वच्चों और वृद्धों की टोह पाकर लक्खी जगल की ओर वढ रहा है जंदियाला का घेरा उठा लिया और लक्खी जगल की ओर इस आशा से चल दिये कि यहा से अपने स्त्री वच्चों और वृद्धों को निकाल कर आनन्दपुर की पहाडियों मे पहुंचा आये। और फिर निश्चिन्त होकर दुर्रानियों का मुकाविला करें। परन्तु लक्खी जगल से स्त्री वच्चों को निकालकर कुप और कहीडा नामी ग्रामों के पास से गुजर रहे थे तो खवर पाकर दुर्रानियों ने इन पर धावा वोल दिया। सिख सैनिकों की गिनती केवल दो अढ़ाई हजार थी। और वाकी वीस वाईस हजार की सख्या मे सिख-स्त्रिया और वालक वच्चे थे।

सैनिकों ने इनकी रक्षा के लिये व्यूह बना लिया। परन्तु इन बीस बाईस हजार स्त्री, बच्चों और वृद्धों के इर्द गिर्द दो ढाई हजार सैनिक कोई दृढ़ घेरा न बना सके थे। इससे यह इनकी रक्षा न कर सके। शत्रुओं की तीस बत्तीस हजार से ज्यादा सेना व मुलखइयों ने जब इन पर हमला किया तो सिखों का यह नाम मात्र का व्यूह स्वत. ही टूट गया और शत्रुओं ने स्त्री बच्चों और वृद्धों का कत्ले आम शुरू कर दिया। जिसमे कि कोई बीस हजार से ज्यादा जानें गाईं और सिखों की खून की नदियाँ वह निकलीं। सिख कौम के लिये यह इतना बड़ा भीषण घमासान था कि इतिहास मे यह घलुघारे के नाम मे प्रसिद्ध है।

सिख सैनिकों के अधिपति इस समय सरदार जस्सासिंह ही थे। लड़ते २ जब दोनों ओर से सैनिक थक गये गये दोनों ही एक जोहड़ पर पानी पीने के लिये ठहर गये। इस समय सरदार सुकरचकिया सरदार जस्सासिंह अहलूवालिया के पास पहुँचा और कहने लगा जिनकी रक्षा के लिये हम यत्न कर रहे थे। वह तो अब चल बसे, अब हमें पीछे हटने से क्या फायदा है। इस पर जस्सासिंह ने एकदम शत्रु पर हमला करने का आदेश दे दिया। झुंझलाये हुये सिखों ने शत्रुओं पर इस प्रकार हमला किया कि वे सिखों को मार न सके और उनके पाँव उखड़ गये। अहमदशाह ने अपने दल को पीछे हटा लिया और शीघ्र चेत होजाने के कारण अपने दल को बचा ले गया। बावजूद इसके कि इस घलुघारे मे सिखों की बीस हजार से ज्यादा जानें गईं और कई खानदान तबाह होगये। परन्तु सिखों पर इसका निराशा जनक असर न पड़ा और उन्होंने जल्दी ही शक्ति संचय करके इसका प्रतिशोध करने के लिये सरहिन्द के हाकिम जैनखाँ पर धावा बोल दिया। क्योंकि घलुघार की बहुत कुछ जिम्मेदारी इसी के सिर पर थी। जिसने कि दुर्रानियों के साथ होकर सिखों पर हमला कराया था। जैनखाँ इस लड़ाई मे मारा गया। उसकी सेना मैदान छोड़कर भाग गईं। समस्त सूबा सिखों के हाथ लग गया। जिसे कि उन्होंने परस्पर बाँट लिया। कहते हैं कि जिस समय सिख सरहिन्द मे दाखिल हुये तो किसी ने कह दिया कि सरहिन्द सम्बन्धी गुरु जी का यह भविष्य है कि यहाँ गधों के हल चलाये जायेंगे, चुनाचे सिख सरदारों और गुस्से से भरे हुये सैनिक सिखों ने गुरु गोविन्दसिंह के मासूम बच्चों के कत्ल भूमि सरहिन्द को उजाड़ दिया और सिख सरदारों ने हलों मे गधे जोड़कर उस कथित भविष्यवाणी को पूरा किया।

सरदार बघेलसिंह आदि ने जिस समय देहली के कुछ हिस्सों पर कब्जा कर लिया था तो आप ही उनके लीडर थे।

इस समय तक जस्सासिंह की राजधानी कपूरथले में जा चुकी थी क्योंकि पिछले वर्षों मे कपूरथला पठानों से छीन कर अपने राज्य मे शामिल कर चुके थे। कपूरथला मे राजधानी ले जाने से उसकी शक्ति मे और भी वृद्धि हुई थी, क्योंकि कपूरथला पहले से ही मशहूर शहर और सुदृढ़ गढ़ था।

सवत् १८४० में पेट के दर्द से वह चल बसा। चल बसा जरूर किन्तु अपने पीछे वह अपनी उदारता, वीरता और दानशीलता की कहानी भी छोड़ गया। जिसके कारण उसे आज तक याद किया जाता है और बराबर उस समय तक उसका नाम अमर रहेगा। जब तक कपूरथला जैसा प्रसिद्ध नगर मौजूद है।

सर्दार जस्सासिंह के कोई पुत्र न था। एक पुत्र संपत हुआ था किन्तु वह छ महीने का होकर ही मर गया था। दो लड़कियाँ थीं। जिनमे से एक तो फतहाबाद के मोहनसिंह के साथ ब्याही गई थी। और दूसरी का तुंग के अमरसिंह के साथ विवाह हुआ था। इस समय उसके सम्बन्धियों मे सरदार

भागसिंह ही ऐसा योग्य आदमी था। जो रियासत के काम को संभाल सकता था। वैसे वह हकदार भी था, क्योंकि रिश्ते में जस्सासिंह का भतीजा होता था। इसलिये जस्सासिंह ने उसे अपने जीवन में ही अपना उत्तराधिकारी घोषित कर दिया था।

भागसिंह ने भी उत्तराधिकार पाकर अपनी रियासत को तरक्की ही दी और सैन्य दल को भी बढ़ाया। राज्य के सुप्रबन्ध के लिये उसने दो दीवान भी मुकर्रिर किये। जिनमें एक हिन्दू—बुद्धामल—और दूसरा मुसलमान—करीमदीन—था।

भागसिंह ने आरम्भ में कुछ गलतियाँ भी कीं। फगवाडा और नूरमहल के इलाकेदारों ने भेंट लेकर उसने गुरुबख्शसिंह को बेदखल किया और उसके बाद निकाई मिसल के सरदारों से मरकपुर का इलाका दबा लिया। बाद में डल्लेवाली मिस्ल के हाथ से चमकौर को निकलवा कर बेदी खत्रियों को दिला दिया। इसके बाद ही गुलाबसिंह भंगी से केवल इस बहाने पर कि उसके आदमियों ने हमारे नौकर को मार डाला है। तरनतारन और जडियाले को हथिया लिया।

सवत् १८५६ और १८५७ में एक बार भागसिंह ने मय अपने बेटे फतहसिंह के सतलज की दक्षिणी पूर्वी पार आकर रामकोट, सहेड, खानपुर, हसनपुर, मजहेली, अलीपुर रुड़की, दरहाली और खोजापुरी आदि की विजय की। जिससे बहुत सा सामान और धन प्राप्त किया।

यद्यपि पहले दो बार रामगढ़ियों से लड़ाई लड़ी जा चुकी थी। फिर भी संवत् १८५८ में उन पर चढ़ाई करदी। किन्तु कहा जाता है इस बार खोट रामगढ़ियों का ही था। उन्होंने इसके दुआबे वाले इलाके पर लूट पाट मचा दी थी। भागसिंह ने फगवाड़ा के समीप रामगढ़ियों को घेर लिया किन्तु दैव उसके विपरीत रहा। पैर में एक ऐसी गोली लगी, जिससे उसे वापिस कपूरथले आना पडा और चन्द दिन में ही उसका देहान्त हो गया। इसके पीछे उसका लड़का फतहसिंह गद्दी का मालिक हुआ।

अपने पिता भागसिंह की मृत्यु के समय फतहसिंह की आयु केवल १६ वर्ष की थी। इसलिये रामगढ़ियों ने यह सोचकर कि यह हमारा बिगाड़ ही क्या सकेगा। उसके राज्य के जमींदारों को भडका दिया। सठाला, बेताला के जमींदारों ने बगावत आरम्भ कर दी। किन्तु फतहसिंह कोई सुस्त लडका न था इसलिये उसने अपनी सेना लेकर पहले तो रामगढ़ियों के ही एक थाने चकदिता पर कब्जा किया फिर उन बागी जमींदारों को दंड दिया।

इसके बाद तो फतहसिंह के भाग्य ने ऐसा जोर मारा कि वह हमेशा के लिये, दुश्मनों से सुरक्षित होगया। महाराजा रणजीतसिंह जी सरदार भागसिंह का शोक मनाने के लिये इसकी रियासत में आये इसने उनके ठहरने का प्रबन्ध फतहाबाद में कर दिया। इसकी आवभगत से महाराज बडे प्रसन्न हुए और इसे पगड़ी पलटा दोस्त बना लिया।

महाराजा रणजीतसिंह का दोस्त बन जाने के बाद प्राय. उनके साथ प्रत्येक लड़ाई में शामिल रहा। उनकी मदद से सरहाली और चीमां के जमींदारों को भी दबाया।

जब महाराजा रणजीतसिंह ने कसूर पर चढ़ाई की थी तो वहाँ भी फतहसिंह था।

कसूर के इलाके को फतह करके महाराजा ने अमरसिंह मजीठिया को वहाँ का थानेदार मुकर्रिर किया था। यहीं से फतहसिंह ने चलकर झंग पर कब्जा किया और फगवाड़े के हाकिम से फगवाड़े को छीन लिया।

इस प्रकार कुछ ही दिनों में पंज लासा और नारायण गढ़ पर भी कब्जा कर लिया और अपना

इलाका बढ़ाया। इसी बीच रामगढ़ियों ने राजा संसारचंद के साथ मिलकर फतहसिंह पर हमला किया किन्तु वे हार खाकर भाग गये।

होलकर और लार्ड लेक के बीच महाराजा रणजीतसिंह जी ने जो सुलह कराई थी। उसमे भी आपने सहयोग दिया। जिससे प्रसन्न होकर लार्ड लेक ने इकरार किया था। कि हम आप के राज्य मे कोई दखल न देंगे।

संवत् १८७५ मे आपके एक सुपुत्र पैदा हुये—जिनका नाम निहालसिंह रक्खा गया। यही कपूरथला के पहले सरदार थे। जिन्हे राजा का खिताब अंग्रेजों की ओर से मिला था। और तब से जत्थेदार और मिसल पति के बजाय यह खानदान राजवंश मे परिणित हो गया।

चूंकि आगे के किसी स्वतन्त्र अध्याय मे हमे रियासत कपूरथला का विस्तृत वर्णन करना है। अत. मिसल अहलूवालिया का वर्णन यहीं समाप्त करते है।

मिसलों के इतिहास का कुछ विवेचन

मिसले वास्तव मे मुस्लिम शासकों के उन रोमांचकारी अत्याचारों की प्रतिक्रियाये थीं। जो उन्होंने बन्दासिंह के मारे जाने के बाद सिखों पर किये थे। बन्दासिंह के साथ देने मे हजारों सिख अपने धर्म पर बलिदान हो चुके थे। इस समय उनका सैनिक दल नष्ट हो चुका था। फिर भी उन पर इतने भयानक अत्याचार हुए, जिनके याद आने मात्र से रोंगटे खड़े हो जाते है। मालूम ऐसा होता था कि मुसलमान हाकिमों ने उनका बीज-नाश करने की कसम खाली थी।[1] जैसा उन्हे गिरफ्तार करने, बर्बाद करने और सिर काट लेने के आम हुक्म जारी किये जा चुके थे। संसार के इतिहास मे एक भी मिसाल नहीं मिलती कि सिखों की तरह किसी तमाम कौम को कत्लेआम के हुक्म जारी हुये हों। और लगातार ४० साल से भी अधिक उसे इन मुसीबतों का सामना करना पड़ा हो। परन्तु यह आश्चर्यजनक बात है कि इतने लम्बे अर्से तलवारों के नीचे रहते हुये भी वह जीवित रहे। और तमाम सिख इतिहास मे एक भी ऐसा उदाहरण नहीं जब किसी एक सिख ने भी लालच और दबाव से अपनी जान बचाने के लिये धर्म त्यागना स्वीकार किया हो। हालांकि—आम लोगों को यह हुक्म दे दिया गया था कि उनका सिर काटने, उन्हे गिरफ्तार करने वाले से हकूमत प्रसन्न होगी और उसे इनाम भी देगी। इससे भी संतोष न होने पर फौजों के दस्ते उन्हे मिटा देने के लिये गाँवों मे भेज दिये गये। इन परिस्थितियों ने उन्हे गाँव छोड़कर जगलों और पहाड़ों मे भागे फिरने और जान बचाने के लिये मजबूर कर दिया किन्तु जंगलो और पहाड़ों मे भी अकेले-अकेले छिपने से काम नहीं चलता था। वरना इस प्रकार हर कोई उनका सिर काट लेता। अत. छिपने के लिये उन्हे जत्थे बना कर रहना पड़ा। दूसरे जगलों और पहाड़ों मे कोई खाने का तो प्रबन्ध था नहीं। खाने का सामान लेने के लिये भी उन्हे गाँवों मे ही आना पड़ता था। और उसे प्राप्त करने के लिये मजबूरन प्राय छापे ही मारने पड़ते थे। इसलिये भी उन्हे जत्थे बनाने पड़े।

और प्राण तो उनके सुरक्षित रहे ही नहीं थे। इसलिये उन्हे यह भी निश्चय करना पड़ा कि जब प्राण तो एक दिन इन मुगल पठानों के हाथ जाने ही हैं। तब इनसे डरा भी क्यों जाय? जहाँ तक बने इनका शोध क्यों नहीं किया जाय। अत वे कई २ जत्थे मिलकर आरम्भ मे छोटे २ पुन बड़े-बड़े भी मुसलमान रईसों और हाकिमों पर छापा मारने लगे और लूट के उस माल से अपने जत्थों को बढ़ाने लगे।

[1] जैसा कि उन्होंने कई बार इस भाव की रिपोर्टें भी कर दी थीं कि पंजाब से सब सिख खत्म कर दिये गये हैं।

बस मुसलमानी अत्याचारों का यह परिणाम हुआ कि सिखों में जत्थे बन्दी की और बाद में आक्रमण की स्पिट पैदा हो गई। और इसी स्पिट ने बलवती होने पर पंजाब से अत्याचारी मुसलमान राज्य को उखाड़ कर फेंक दिया।

आरम्भ में अनेकों छोटे २ जत्थे बने। किन्तु ज्यों २ वे संगठन के महत्व को समझते गये। त्यों ही त्यों कई-कई जत्थे मिलते गये और एक समय आया कि इनकी संख्या १२ रह गई।

सिखों पर होने वाले अत्याचारों ने जहाँ पंजाब के सिखों की आत्मा मे विलमिलाहट पैदा की थी। वहाँ जत्थों की स्थापना और उनके द्वारा लिये जाने वाले प्रतिशोध ने पंजाबी हिन्दू नौजवानों की आत्मा मे एक जागृति और सिख धर्म के प्रति एक आकर्षक श्रद्धा पैदा कर दी, जिसका फल यह हुआ कि हजारों हिन्दू नौजवान खास तौर से जाट बड़े वेग से सिख धर्म में दीक्षित होने लगे और थोड़े ही समय मे उतने से कई गुनी संख्या सिखों की हो गई। जितनी कि बन्दासिंह के पंजाब में आने से पहले थी।

भय और अपमान सहन की जो आदत कई सदियों से हिन्दुओं में घर किये हुए थी। वह इन अत्याचारों की लपट में स्वाहा हो गई और आत्मविश्वास और निर्भयता इस जत्थे बन्दी की भावना से आरोहण होने लग गई।

ज्यों ही अत्याचार दबने लगा और कार्य में कुछ सफलता प्राप्त होने लगी, इन जत्थों के सरदारों और सदस्यों के हृदय में स्व-सत्ता स्थापना की भावना प्रदीप्त होने लगी और जातीय स्वाधीनता पाने की उत्कट अभिलाषा से वह लोग उन्मत्त हो उठे। पहले जहाँ उनके मन में अनिश्चित भाव का डेरा था। इस समय वह दृढ़ निश्चय और अदम्य उत्साह में बदल गया।

मुगल और पठान शासकों के जुल्मों से जहाँ यह प्रतिक्रिया हुई। वहाँ वह स्वप्न भी उन्हें आने लग गये थे। इस समय संसार का सबसे बड़ा साम्राज्य मुगल साम्राज्य अन्त:कलह और अनियंत्रण से अध:पतन की ओर बराबर जा रहा था। अविश्वासी मंत्री और धर्मान्ध काजी उसे और भी खोखला कर रहे थे। मुगल साम्राज्य का यह अन्तर्दाह उन भग्न प्राण सिखों के लिये बहुत ही उपयोगी सिद्ध हुआ जिनकी शांत आत्मा एक दम विद्रोही हो उठी थी।

इस जत्थे बन्दी की भावना ने उन्हें इतना दुस्साहसिक बना दिया था कि दिल्ली को हिला देने वाले नादिरशाह और मराठा शक्ति को पानीपत में भस्मसात करने वाले अहमदशाह से भी इन्होंने नाक चने चबा दिये थे। जो सीधे सादे और शांत जाट कल तक खेती करते थे। आज वही आगे बने हुये सिखों से अमृत पान करके और जत्थों में शामिल होकर चिड़ी द्वारा बाज को तोड़ने की गुरु गोविन्दसिंह जी की उक्ति को पूरा कर रहे थे। यह गुरु नानक आदि से गुरु गोविन्दसिंह तक प्रचारित सिख धर्म का चमत्कार था।

अमृतसर में बार-बार नया प्रबंध मुसलमान शासक करते थे किन्तु ये जत्थे बार-बार हमला आरम्भ करते और प्रबंधक को मार कर या भगा कर ही दम लेते। जब भी जी में आता दस बीस और पचास के गिरोह में आते और हरि मन्दिर में पूजा करने लग जाते। तालाब में स्नान करते। इनके बदले में कुछ कैद होते, कुछ मारे जाते। किन्तु सबक क्या लेते यह नहीं कि वहाँ जाने में मौत का खतरा है बल्कि यह कि वहाँ मरने से शहादत प्राप्त होगी।

शहीदी तो एक बाजी की चीज बन गई थी। कौन आगे रहे शहीदों के लिये इन जत्थों में यह होड़-सी रहती थी। बाबा दीपसिंह के तो दल का ही नाम शहीदों की मिसल पड़ गया था।

था यह अद्भुत धर्म-प्रेम ? और कैसा था विचित्र जौहर ? यदि गुरु के बाग और जैतो की घटनाये हमारे सामने नहीं होती तो शायद इस प्रकार की सीमा से बाहर की शहादत की अद्भुत गाथाओं पर लोग विश्वास भी नहीं करते किन्तु ऐसा होता है और भविष्य मे हो सकेगा बशर्ते कि किसी कौम मे सिखों जैसा ही धर्म प्रेम और वैसा ही दुस्साहस हो। साथ ही वैसी ही जत्थे बन्दी।

जत्थे बन्दी और आक्रान्ता ढंग की जत्थे बन्दी ने उन्हे योग्य सैनिक और शौर्यवान योद्धा भी बना दिया। भाग कर दुश्मनों पर बाज की तरह टूटने और सिंह की तरह छलांग मार कर उनके दलों से पार होजाने के लिये उनके हृदयों मे अच्छे घुड़सवार बनने की धुनि पैदा हुई। एक समय आया कि एक-एक जत्थे मे दो हजार से लेकर दस हजार तक घोड़े हो गये।

छापे मे धन हाथ आने और अच्छे घोड़ों के जमघट ने उन जत्थों के जत्थेदारों के हृदय में जो कि आरम्भ मे केवल प्रतिशोध के लिये ही खड़े हुये थे। राज्य स्थापन की भावनाये भी पैदा करदीं। यह स्वाभाविक बात है। मध्यकाल के ऐसे हजारों लुटेरे दल ही आज के भारत के अनेकों देशी राज्यों के अधिपतियों के पूर्वज थे।

बाद में स्थापित हुए रणजीतसिंह जी के विशाल साम्राज्य और अन्य सिख राज्यों का आदि रूप यह मिसले ही थीं।

सब से ज्यादा मजे की बात यह है कि यह मिसले अंतिम समय मे राजनैतिक मामलों मे स्वतन्त्र थीं, वहाॅ धार्मिक मामलों मे पंथ के आधीन थीं। पंथ उनके आपसी झगड़े मिटाने की भी कोशिश करता था।

वैसाखी के मेलों पर प्राय. सभी मिसले एकत्रित होती थीं और धार्मिक उन्नति के लिये मिसल पति पथ के आदेशों को सुनते थे।

जत्थों मे प्रायः जत्थेदार की जाति के ही लोग अधिक होते थे। फिर भी कोई भी और किसी भी जाति का आदमी उनमे शामिल हो सकता था।

यद्यपि जमीन और संपति के लिये अथवा मानपमान के मामलों मे कहीं वे आपस मे लड़ भी पड़ते थे किन्तु जिस समय दिवाली और वैसाखी के मौकों पर अकालतख्त के सामने गुरु ग्रन्थ साहब की हुजूरी मे एकत्र होते, तो तमाम झगड़े उनके दिलों से निकल जाते और केवल धर्म-प्रेम मे रंगे हुए पथ के सांझे काम के लिये सम्मिलित होकर अपना खून तक बहाने के लिये तैयार हो जाते। और एक जत्थेदार की जत्थेदारी की परवा न करके उसकी कमान मे हर प्रकार उसकी आज्ञाओं को शिरोधार्य करते।

महान अच्छाइयो के साथ मिसलों में कई अन्दरूनी कमजोरियाॅ भी थीं। और वे कमजोरियाॅ ज्यों-ज्यों मिसलों की शक्ति बढ़ती गई त्यों ही त्यों बढती गईं। आरम्भ मे मिसल के जत्थेदार के मरने पर किसी भी योग्य आदमी को जत्थेदार और मिसलपति बना लिया जाता था। किन्तु जब कुछ गाॅव और धन दौलत मिसलों के अधिकार मे आने लगी तो जत्थेदार की गद्दी मौरूसी अथवा वंशानुगत हो गई। इसका नतीजा यह हुआ कि कोई-कोई मिसल तो केवल अयोग्य जत्थेदार मिलने के कारण ही नष्ट हो गई।

जत्थेदारों की राजनीति के बारे मे यह सहज ही कहा जा सकता है कि जितना उन्हे नये इलाके जीतने का शोक था। उतने जीते हुए इलाकों को स्थायी तौर से अपने कब्जे मे बनाये रखने की चिन्ता

नहीं थी। उन्होंने सहारनपुर, मेरठ और अलीगढ़ तक विजय की। किन्तु उन्हें अपने अधिकार में बनाये रखने के लिये कोई अधिक प्रयत्न नहीं किया।

पंथ खालसा को जिस भांति धार्मिक महत्ता प्राप्त थी, यदि उसी प्रकार उसे राजनैतिक महत्ता भी दे दी जाती और मिसलों के जत्थेदारों के प्रतिनिधियों से निर्माण किये हुये एक सम्मेलन की स्थापना कर दी जाती तो संसार की कोई भी ताकत सिख साम्राज्य को ध्वंस न कर सकती थी।

फिर भी यह हम कह सकते हैं कि मिसलों के संगठन से देश और धर्म सभी को भारी लाभ हुआ। पंजाब में से मुसलिम आतंक सदैव के लिये उठ गया। और फुलकियन स्टेटस तथा रणजीतसिंह जी का जैसा बड़ा साम्राज्य इन्हीं मिसलों के विकसित रूप थे।

जत्थेदारी की वह प्रथा पंजाब के सिखों में अब भी मौजूद है। जिसका जन्म कि मिसलों के समय में हुआ था। आज भी गाँवों में जत्थेदार और उनके जत्थे हैं। जो धार्मिक स्थानों की रक्षा के लिये हर समय तैयार रहते हैं। गुरु के बाग और जैतो के जैसे लोक प्रसिद्ध आन्दोलन इन जत्थों के बल पर ही हुये थे। और इन्हीं के बल पर सिख संगठन और सिख शक्ति का अभी पिछले वर्षों में संसार को बोध हुआ है।

सिखों की यह स्वयम् सेवक प्रथा मुसलिम काल मे जहाँ अत्याचारी राज्य को नष्ट करने और नये आक्रान्ताओं को रोकने मे सफल हुई थी। वहाँ अब सिखों के जीवित कौम घोषित और साबित करने में काम आती है। अतः कुछ त्रुटियों का दर्शन कराते हुये भी हम मिसलों की महान सफलता के लिये उनके प्रशंसक हैं।

दीपसिंह, गुरुबख्शसिंह, चड़तसिंह, जयसिंह, नवाब कपूरसिंह, हरीसिंह, हीरासिंह जस्सासिंह अहलूवालिया और फिर राजा आलासिंह तथा महाराजा रणजीतसिंह जैसे योद्धाओं और शूरवीरों को इन मिसलों ने ही तो पैदा किया था। जिनकी बहादुरी की गाथाओं से भारत का सिर आज भी ऊंचा है।

बाल शहीद
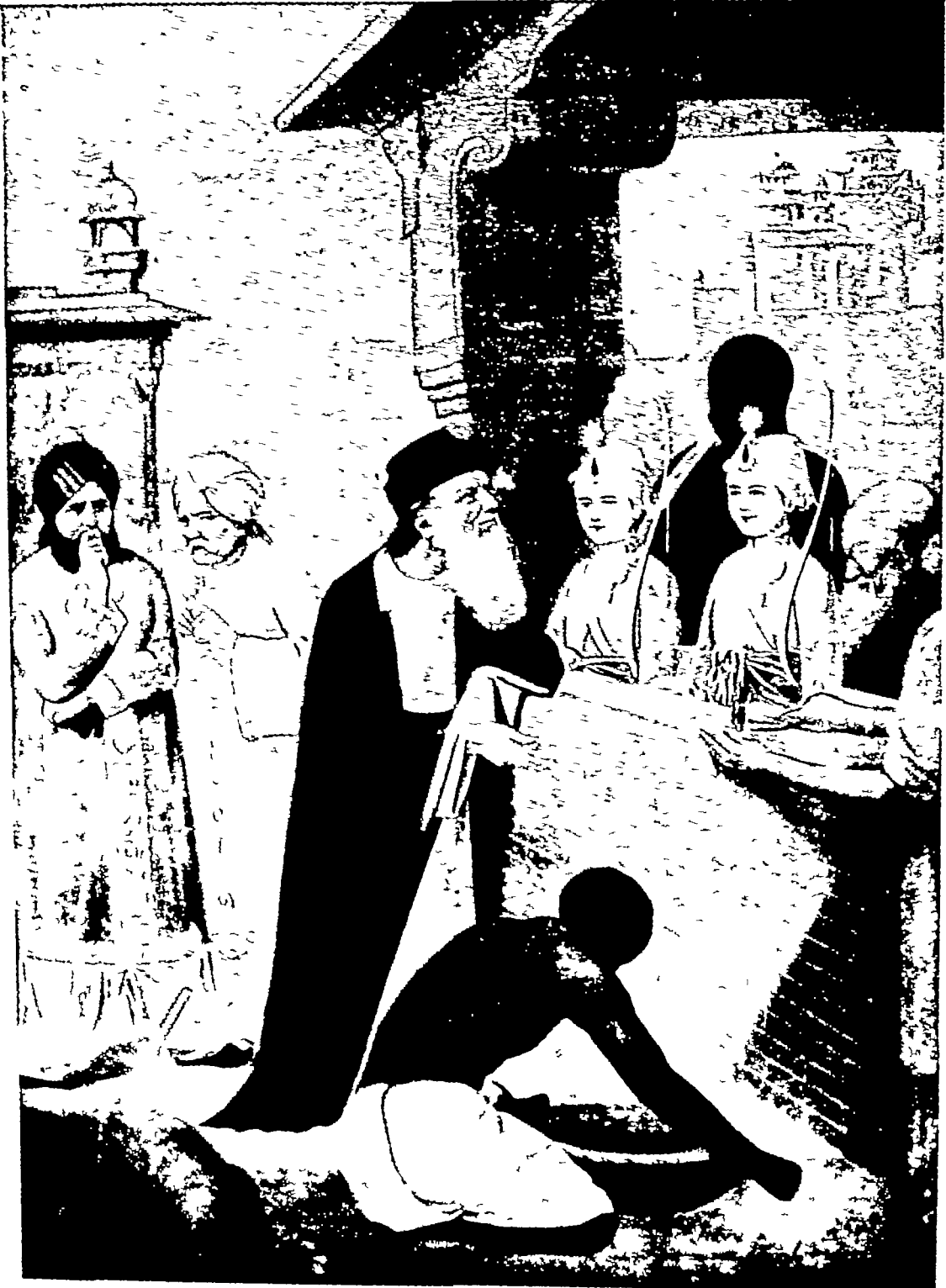
जोरावरसिंह फतेहसिंह

पंजाब केसरी

महाराजा रणजीतसिंह जी

पन्द्रहवाँ अध्याय

महाराजा रणजीतसिंह और उनका

हूण देशस्य मध्ये वै गिरस्थं पुरुष शुभम् ।
ददर्श वलवान राजा गोराग श्वेत वस्त्रकम् ॥२२॥
को भवानी तित प्राहस हो वाच मदान्वित ।
ईश पुत्रच मा विद्ध कुमारी गर्भ संभवम् ॥२३॥
(भविष्य पुराण प्र० सर्ग ३ खड ३)

अर्थात—एक वार शक पति शालिवाहन हिमालय के पार हूण देश के मध्य मे पहुँचे। वहाँ उन्होंने श्वेत वस्त्राधारी सुन्दर पुरुप को देखा। पूछने पर उसने वताया मैं कुंवारी कन्या से ईश पुत्र हूँ। इस श्लोक से ईसा और शालिवाहन शाके समकालीन हो जाते हैं। साथ ही इससे यह भी सिद्ध हो जाता है। कि शाका सवत का चलानेवाला और उत्तर का विजेता एक ही पुरुप था।

विक्रम संवत से शाका सवत १३५ वर्ष पीछे चलता है।[1] इतिहास ऐसा कहते हैं। कि विक्रम ने शक लोगों को हराने के वाद अपना संवत चलाया था। उस समय अवश्य ही विक्रम की अवस्था लगभग २५ वर्ष की रही होगी और जिस समय शाका सवत विजय उत्सव मनाने ने की खुशी में शालिवाहन ने चलाया। उस समय वे (२५+१३५) एक सौ साठ वर्ष के रहे होंगे।

अव देखना यह है कि क्या सचमुच ही वे अपना (विक्रम) सवत चलाने के वाद इतनी लम्बी उम्र तक जिन्दा रहे। इसके लिये हमे एक प्रमाण फारसी तारीख पज हजार रिसाला में मिलता है। जिस समय विक्रम संवत चला था। उस समय युधिष्ठिरी सवत ३०४४ था।[2] और देहली के राजा महानपाल को विक्रमादित्य ने युधिष्ठिरी संवत् ३१०५ में जीता था और फिर ९३ वर्ष तक दिल्ली पर उनका अधिकार रहा। इस प्रकार दिल्ली उन्होंने अपने सवत् चलाने के ६१ वर्ष वाद विजय की और विजय के वाद भी ९३ वर्ष और जिन्दा रहे।[3]

इन उदाहरणों से यह सिद्ध है कि विक्रमादित्य को के वाद अपने शाका सवत का प्रचारक शालिवाहन ही था और वह शाक कहलाता था।

संवत चलाने का उनका मौका क्यों पड़ा? और उससे पहले वे कहाँ रहते थे? पजाव में ही या पैठन में? इसका उत्तर यह है। विक्रमादित्य ने जिस भांति शकों को मालवे से निकाल दिया था। उसी भाति शालिवाहन को भी किसी आक्रान्ता से लड़ना पड़ा होगा। दूसरे यह कि वे पजाव के थे या पैठन के। तो हम कहेंगे वे पजाव के ही थे हालाकि इन्हीं दिनों पैठन मे भी एक शातवाहन या शालिवाहन अथवा शातिकर्ण नाम का राजा था। इन दोनों शालवाहनों मे उनकी आगे की वश परपरा विभेद कर देती थी। आन्ध्रों के शालिवाहन के आगे के उत्तराधिकारियों के वही नाम नहीं हैं जो पजाव के शालिवाहन के उत्तराधिकारी हैं। विक्रमादित्य से भी युद्ध उज्जैन मे नहीं किन्तु दिल्ली और पजाव के वीच कहीं हुआ था और विक्रमादित्य ने भी जिस शक नृपति को हराया था। वह भी कुमायूं गढवाल के आस पास ही हराया था और सभवतय वह शुकवत था। यह नहीं कह सकते कि शुकवन्त मे शालिवाहन का क्या सम्वन्ध था।

१ अव विक्रम २०१० और शाका १८७५ है।
२ आजकल युधिष्ठिर सवत ५०३८ है और ई० १९५३ है।
३ देखो हरिश्चन्द्रिका और मोहन चन्द्रिका (नाथद्वारा मेवाड़ द्वारा प्रकाशित)

प्रश्न यह उठता है कि क्या संवत् प्रवर्तक शालिवाहन शक थे? मनुस्मृति के अनुसार शक वे आर्य क्षत्रिय थे। जो ब्राह्मणों की शिक्षाओं से वंचित रह कर जनेऊ आदि से खाली रह गये थे। कुछ विदेशी इतिहासकारों ने शकों को ईरान का आदि निवासी मानकर उन्हे इंडोसिथियन के नाम से याद किया है। उनके खयाल से शकों की मातृभूमि ईरान थी। किन्तु वात यह नहीं ईरान तो उनका उपनिवेश (कौलोनी) था हिन्दुस्तानी इतिहास लेखकों ने भी अग्रेज लेखकों की तरह गलती खाई है। महाराजा कनिष्क और महाराजा शालिवाहन जैसे लोगों को उन्होने सिथियन माना है। वास्तव मे वे नस्ल से आर्य थे। और एक समय महाभारत और प्रभास क्षेत्र के युद्धों के वाद उनके पूर्वज ईरान (सिदिया) तुर्किस्तान आदि सुदूर देशों मे फैल गये थे। महाराजा कनिष्क शिवि लोगों की उस शाखा मे से थे। जो काश्मीर को पार करके तिव्वत मे पहुँच गई और शिवि की वजाय तिव्वती भाषा मे श्यूची पुकारे जाने लगी और उधर से मुड़कर ईरान मे आने पर श्यूची या केवल यूची के नाम से मशहूर हुई। फारसी भाषा मे स का अभाव है। अत श्यूची से यूची कहलाई। यूची लोगों का ईरान से भारत को मुड़ने मे काफी विस्तार हो गया था। राज्य भी उनका एक समय समस्त उत्तरी भारत जिसमे आज के यू० पी०, सी० पी० मध्य भारत, राजपूताना, पंजाव, सिंध और काश्मीर शामिल थे, हो गया था। इसके सिवा अफगानिस्तान और विलोचिस्तान सभी उनके अधिकार मे थे। शिवि लोग जिनकी शाखा श्यूची व यूची थे कौन थे? इसके लिये पुराणों ने उत्तर दिया है कि वैदिक ऋचाओं के द्रष्टा राजा उशीनर के पाच पुत्रों में शिवि एक थे। शिवि राजा के दान की वड़ी महिमा आज तक प्रचलित है। इन्हीं शिवियों की उस शाखा मे से जो तिव्वत ईरान आदि में घूमती हुई कई पीढ़ियों के वाद श्यूची और यूची नाम लेकर लौटी महाराज कनिष्क थे। और कनिष्क के वाद उनका साम्राज्य छिन्न भिन्न हो गया।

राजा शालिवाहन के लिये हम कह सकते हैं कि वे भी महाराज कनिष्क के ही खानदान मे से रहे होंगे। प्रो० कालिकारजन कानूनगो ने "हिस्ट्री आफ जाट्स" मे महाराजा कनिष्क को जाट ही लिखा है। क्योंकि स्यालकोट मे भी एक समय कनिष्क का आधिपत्य था। और कनिष्क और शालिवाहन मुश्किल से २००-१५० वर्ष का अतर है। महाराज कनिष्क वौद्ध थे और राजा विक्रमादित्य शैव था। इसलिये वौद्ध विरोधी हिन्दू धर्माचार्यों ने उसे कनिष्क के उत्तराधिकारियों के नष्ट करने के लिये भड़काया होगा और केवल देहली मालवा से शकों को विताड़ित कर देने के कारण उसे शकारि भी कहा होगा शायद शालिवाहन ने इसका वदला ले लिया और अपना उत्तर मे संवत भी चला दिया।

हमने पिछले पृष्ठों मे लिखा है कि भाटी लोगों से और इस राजा शालिवाहन से कोई सम्वन्ध नहीं है। भाटियों का शालिवाहन दूसरा है। इस वात की सचाई के प्रमाण मे हमे एक दूसरा उदाहरण भी मिलता है। वह यह कि शालिवाहन के लड़के साल की लड़की के साथ मे अटक के भट्टी राजा होड़ी का विवाह हुआ था।

इस तरह से यह तय हो गया कि सालवाहन जिसके वंश मे कई शताब्दियो वाद रणजीतसिंह जैसा प्रसिद्ध महाराजा हुआ। भट्टी सालिवाहन नहीं किन्तु शाके सालिवाहन थे और वे महाराजा कनिष्क के ही वंशजों मे से थे। और राजा कनिष्क शिवि थे। भागवत मे शिवि लोगों की वंशावली इस प्रकार दी गई हैं।

चन्द्र के पुरुरवा, पुरुरवा के आयु, आयु के नहुप, नहुप के ययाति, ययाति के पांच पुत्र यदु, पुरु, अनु, तुर्वसु और द्रुह्यु हुये। अनु के सभानर, सभानर के कालनर, कालनर के सृञ्जय, सृञ्जय के

जन्मेजय, जन्मेजय के महाशील, महाशील के महामना, महामना के दो पुत्र—तितक्ष और उशीनर हुए। उशीनर के राजा शिवि हुए।

स्यालकोट जिसमे कि राजा शालिवाहन ने अपनी राजधानी स्थापित की थी। वहुत प्राचीन नगर है। महाभारत मे इसे शाकल्य नगर के नाम से याद किया गया है। कुछ लोग इसे शल्य का वसाया हुआ भी मानते हैं। राजा शल्य मद्र थे और पाण्डु के साले थे किन्तु महाभारत के समय यहाँ पर जरत् लोग राज्य करते थे। वौद्धकाल में इस प्रदेश पर अराट्ट लोगों का कब्जा हो गया था।

महाराज शालिवाहन के समय मे इसका नाम सालिवाहनपुर हो गया था। उनके वंश के वाद मे यह हूण लोगों के हाथ मे चला गया और इसके वाद स्याल लोगों के अधिकार में चला गया और स्यालकोट के नाम से मशहूर हो गया।[1] इस प्रकार स्यालकोट भी पजाव का एक ऐतिहासिक नगर है।

राजा शालिवाहन के कई लड़के वताये जाते हैं किन्तु पूरन, रसाल और युगन्धर वहुत प्रसिद्ध हुये हैं। इस के दो रानियां थीं, एक इन्दुमती जिसके पेट से पूर्ण और दूसरी कुसम से रसाल और युगन्धर आदि पैदा हुए थे। युगन्धर जिसे कि सिख तारीखों मे जौनधर कहा गया है—के वंश मे ही महाराजा रणजीतसिंह हुए थे।

गद्दी पर तो रसालू वैठे थे किन्तु वे परोपकारी होने के कारण वहुत ही कम राजधानी में रहते थे। अत. सारा काम युगन्धर को ही संभालना पड़ता था। यह भी कहा जाता है कि युगन्धर ने भातियाना पर भी कब्जा कर लिया था। यह समय ईसा की तीसरी सदी का था। इसके वाद दो सदियों के इतिहास का सिलसिला नहीं मिलता। सन् ५०० के आस पास तोरमान हूण ने पजाव पर चढाई का और उसके लड़के मिहिरकुल ने स्यालकोट पर कब्जा कर लिया और सोहान्द को जोकि युगन्धर का वंशज था स्यालकोट से निकाल दिया। हूणों के सम्वन्ध में कहा जाता है वे वड़े निर्दयी थे। मनुष्यों के साथ वह जानवरों का जैसा व्यवहार करते थे। सोहांद की रानी भी भाग निकलीं, और पजाव से एक दम वाहर चली गई। कहा जाता है कि उन्होंने एक सॉसी की शरण ली और वहीं उनके एक वच्चा पैदा हुआ। सोहान्द भी मारे-मारे फिरते रहे।

सन् ५२८ ई० में फिर इनका भाग्य फिरा और मन्दसौर के प्रसिद्ध जाट नरेश यशोधर्मा ने गुप्त राजाओं की मदद से कहरूर के मुकाम पर हूणों को परास्त कर दिया। इस तरह पंजाव मे फिर कुछ शॉति हो गई और सोहान्द ने भी अपनी रानी को लेकर रामसर (वर्तमान अमृतसर) के पास एक नगर वसाया। सासी के घर पालित होने के कारण उन्होंने अपने लड़के का नाम भी सासीराय रक्खा और गाँव का नाम राजा सासी रक्खा।

यह मत सिख इतिहासकारों का है किन्तु हम यह मानते हैं कि रानी भाग कर सिन्ध में पहुँची थी और वहॉ जो प्रथम साहसीराय मौर्य जाट राज्य करता था[2] उसके यहॉ लड़के का पालन पोषण हुआ और सोहद भी वहीं पहुँच गया। पंजाव मे शाति होने पर यह लोग लौट आये और अपने पुत्र का नाम भी साहसीराय रक्खा। आगे कई पीढ़ियों तक यह साहसी के नाम से ही मशहूर रहे। वैसे अपने गॉव भी आवाद किये किन्तु कहा नहीं जा सकता कव और कौनसा गाँव आवाद किया? समय

१. हीर जो रांझे जाट की प्रेमिका थी इसी स्यालकोट की थी।

२. चच ने द्वितीय साहसीराय से राज्य छीना था।

अराजकता का आगया था। मुसलमान बराबर पंजाब मे बढ़ रहे थे। अतः पूरे एक हजार वर्ष का इतिहास इस वंश का अंधकार मे पड़ गया और सत्रहवीं शताब्दी से पुन. इन्होंने जोर पकड़ा।

एक इतिहास मे साहसीराय के बाद की पीढ़िया इस प्रकार दी हैं।

१ साहसी, २ लखनपाल, ३ धर, ४. उदयरथ, ५ जत्रि, ६ पातु, ७. उगर, ८ कीर्ति, ९. बीरू, १०. बाघ, ११. भागमल, १२ कालू, १३ जोंधोमन, १४. जालिब, १५ बीतू, १६ राजदेव, १७. बाप्ता, १८. प्यारा, १९. बूढ़ासिंह, २०. चड़तसिंह, २१. महासिह, २२. रणजीतसिंह,

संवत् १०११ मे कीर्तिसेन उर्फ किरतू ने अपने पूर्वज साहसी के नाम पर बसाये गये गॉव साहसी का पुनरुद्धार किया। किन्तु चूंकि पजाब मे मुसलमान बड़ी भारी तादाद मे आ चुके थे। अत. उसे साहसी गॉव को छोड़ देना पड़ा और बेईन पेईन नाम के गॉव अपने लड़के वीरसैन उर्फ बीरू और प्रवर सैन उर्फ पेमू के नाम से आबाद किये। यहॉ पर यह लोग अपने गॉवो के खुद ही मालिक थे। क्योंकि इन जंगलो और रेट के टीलों से परिवेष्टित भूमि की ओर अभी तक मुसलमानों का मुंह नहीं उठा था।

आगे भागमल ने शाहजहॉ बादशाह के पास जाकर तरनतारन के इलाके मे यूसुफपुर आदि कई गॉवों का पट्टा अपने नाम करा लिया और उन गॉवों पर बतौर तहसीलदार के नियुक्त हुआ।

इन दिनों गुरु हरिगोविन्दसिंह जी के यश की सुगंधि चारो ओर फैल रही थी। भागमल ने भी गुरु जी की सेवा मे कई बार जाकर उपदेश ग्रहण किये और अपनी आत्मा को आनन्द प्राप्त किया।

समयान्तर मे इसी खानदान मे बुड्ढासिंह नाम का एक भाग्यशाली शख्श पैदा हुआ। इसने बन्दासिंह के साथ रह कर उन बहादुरियों मे भाग लिया। जो मुसलमानों के जुल्म खतम करने के लिये और उनके राज्य की जड़ को उखाड़ फेकने के लिये, महावीर बन्दासिंह ने लड़ाइयों और आक्रमणों द्वारा दिखाई थीं।

बन्दासिह के बध किये जाने के बाद इसने एक स्वतन्त्र जत्था सिखों का बना लिया। यही जत्था आगे चलकर सुकरचकिया मिसल के नाम से मशहूर हुआ। क्योंकि इस मिसल के संस्थापक सुकरचकिया गॉव मे रहते थे।

सक्षेप रूप मे महाराजा रणजीतसिह जी से पूर्व का यही संक्षिप्त हाल है। मिसल का वर्णन हम पीछे कर ही चुके है। इसलिये उसे दुहराना यहॉ व्यर्थ है।

याददास्त के लिये इस बात को फिर दुहरा देना चाहते है कि महाराजा रणजीतसिंह जी चन्द्रवंश की शिवि शाखा के उन क्षत्रियों मे से थे। जो तिब्बत और ईरान मे रहने के कारण श्यूची, यूची और शकों के नाम से पुकारी जाने लगी थी और जिसमे कि कनिष्क, हविष्क तथा शालिवाहन जैसे प्रतापी सम्राट हुए थे।

कनिंघम ने सांकेतिक तौर पर हमारे ही कथन की पुष्टि अपने सिख इतिहास मे की है और वह सही भी है।

अब हम महाराजा रणजीतसिंह जी के जीवन पर प्रकाश डालना चाहते है। जहॉ पर सुकरचकिया मिसल का इतिहास दिया है। वहॉ पर उनके पिता तक का इतिहास तो दे दिया गया है। अत. यहॉ उन्हीं से आगे का वर्णन आरम्भ करते हैं। जिस समय उनके पिता महासिंह की मृत्यु हुई थी। रणजीतसिंह की उम्र केवल १० साल की थी। इनकी मा ने दीवान लखपति राय को इनके सलाहकार के तौर पर नियुक्त किया और इनकी सासु रानी

महाराजा रणजीतसिंह

सदाकौर इन्हें हर कार्य मे मदद देती थीं। सदाकौर दिलेर और बुद्धिमान स्त्री थीं। जो कि कन्हैया मिसल की अधिपति थीं। रानी सदाकौर ने दोनों सेनाओं के बल पर पहले तो उन लोगों को ठीक किया। जो इन दोनों मिसलों के दुश्मन थे। उसने रामगढ़ियों पर भी चढ़ाई की थी। रणजीतसिंह जी प्रत्येक लडाई मे अपनी सास के साथ रहते थे। युद्ध विद्या मे तो वे बड़े प्रवीण बालकपन से ही हो गये थे। किन्तु उनकी पढ़ाई-लिखाई के प्रबन्ध का सिलसिला टूट गया।[१]

जब कि वे १५ वर्ष के होंगे नकई मिसल के सरदार रामसिंह ने भी अपनी लडकी की शादी रणजीतसिंह जी के साथ करदी। इस प्रकार बचपन मे ही उनकी दो शादियाँ हो गईं। १७ वर्ष के होने पर उन्होंने अपने इलाकों का प्रबन्ध और सेना का सचालन स्वयं करना आरम्भ कर दिया।

इन दिनों काबुल में शाहजमान राज्य करता था। उसने हिन्दुस्तान पर लगातार तीन आक्रमण किये। सन् १७९७ मे तो लाहौर मे आकर बैठ गया। इधर उसने रणजीतसिंह की बहादुरी की बडी प्रशसा सुनी। जब वह अपने देश को ईरानियों से बचाने के लिये जिन्होंने कि उसके गैरहाजिर होने के कारण काबुल पर चढ़ाई कर दी थी। गया तो झेलम में उसकी १२ तोपें रह गईं। कारण कि उस समय बड़े जोरों की बाढ़ आई हुई थी। शाहजमान ने काबुल पहुँचकर रणजीतसिंह जी को लिखा कि अगर तुम मेरी तोपे झेलम में से निकाल कर मेरे पास भिजवा दो तो मैं लाहौर शहर और उसके आस पास का इलाका तुम्हें दे दूंगा। साथ ही राजा का खिताब भी तुम्हें दूंगा। रणजीतसिंह जी ने ८ तोपें निकलवा कर उसके पास भेज दीं। शाहजमान ने भी अपने वचन को पूरा करने के लिये लाहौर के परगने और शहर की सनद तथा राजा का खिताब रणजीतसिंह जी के पास भेज दिया।

महाराजा रणजीतसिंह जी जब कि झेलम से अपने इलाके को लौट रहे थे तो, छत्ता रईस हशमत खा ने एक दिन शिकार मे उन्हें अकेले मे घेर लिया और यकायक हमला कर दिया। वह पहला वार कर गया। जिससे घोड़ी की लगाम के दो टुकड़े हो गये। वह दूसरा वार करना ही चाहता था कि महाराजा रणजीतसिंह जी ने उसका सिर उतार लिया। हशमत खा के मारे जाने के बाद उसके इलाके को भी अपने कब्जे में कर लिया। इस तरह से बिना ही अधिक दिक्कत उठाये और खून खराबी किये छत्ते का इलाका उनके हाथ मे आ गया।

पट्टे के रूप में तो रणजीतसिंह जी को लाहौर की सूबेदारी मिल गई किन्तु दखल उन्हें अपनी तलवार से ही करना पड़ा। उस समय वहाँ पर चेतसिंह, जौहरसिंह और साहबसिंह तीन शासक बने हुए थे। यह वैसे सिख ही थे किन्तु महत्वाकाक्षी न थे। इनमें साहबसिंह तो कुछ अच्छा था। बाकी दोनों परले सिरे के लम्पट और शराबी, व्यभिचारी थे। दिन भर शराब पीकर औंधे मुँह पडे रहते थे। चेतसिंह ने शहर के प्रमुख मुसलमानों को नाराज कर लिया था। लाहौर में मुसलमानों के आशिक मुहम्मद

१ आरम्भ में उनके पिता ने उन्हें गुजरावाले के भाई भागसिंह धर्मशालिया के पास पढने बिठाया। परन्तु उन्हें जल्दी ही दूसरी ओर प्रवृत्त होना पडा। यह दिवस फौजी चढाइयों के थे और हर नवयुवक को अपने घरबार की हिफाजत के लिये बन्दूक कन्धे पर उठानी पडती थी। इसलिये रणजीतसिंह जी ज्यादा देर तक अक्षरों की शिक्षा में न लग सके। उन्हें बन्दूक आदि की शिक्षा के लिये अमीरसिंह के पास भेजा गया। और इन दिनों वह सरदार महासिंह के साथ युद्धों पर भी जाया करते थे। जिनकी निगरानी में उन्होंने ऊँचे दर्जे की युद्ध सम्बन्धी योग्यता हासिल करली थी।

और मुहकमदीन जो दो बड़े चौधरी थे। उनके दामाद बदरुद्दीन को चेतसिंह ने खत्रियों की शिकायत पर गिरफ्तार करा लिया और अनेकों मुसलमानों की मांग पर भी न छोड़ा। तब लाहौर के मुसलमानों ने महाराजा रणजीतसिंह जी के पास आदमी भेजा कि आप लाहौर के राजा बने यथा सम्भव हम आपकी मदद करेंगे। महाराजा रणजीतसिंह जी तो मौके की तलाश मे थे। अपना आदमी लाहौर भेजकर उन्होंने सारे समाचार जॉच पाये और फिर सन् १७९९ मे लाहौर पर चढाई कर दी। किलेदार भी चेतसिंह से नाराज था। अत. उसने दरवाजा खोल दिया। इस प्रकार महाराजा का लाहौर पर कब्जा हो गया। चेतसिंह गिरफ्तार कर लिया गया। उसके शेप दो साथी भाग गये। किले पर कब्जा करते ही महाराजा ने शहर मे डुग्गी पिटवा दी कि नागरिक जन कोई चिन्ता न करे। शहर मे कोई उपद्रव न होगा न किसी प्रकार की लूट पाट होगी। अब से लाहौर के हम राजा हो गये है। सभी लोग हमे सहयोग दे हम भी तुम्हारी रक्षा करेंगे।

इस घोषणा से नगरवासी महाराज के प्रति आदर से गद्गद् हो गये। क्योंकि प्रत्येक नये शासक के आते ही उनको लुटना पड़ता था। इस बार उनकी रक्षा का भी भार नये शासक रणजीतसिंह जी ने ले लिया।

महाराजा रणजीतसिंह जी जिस समय लाहौर के शासक हुए उनकी अवस्था सिर्फ २० वर्ष की थी। इतनी सी छोटी उम्र मे उनकी बढ़ती हुई रियासत, होती हुई विजय और चमकती हुई तकदीर ने यों तो पहले ही पंजाब के सिख, हिन्दू और मुसलमान रईसों के कान खड़े कर दिये थे। किन्तु लाहौर के उनके हाथ मे आने और राजा की उपाधि मिलने के दिन से तो इन लोगों के पेट मे चूहे ही कूदने लगे। वास्तव मे लाहौर पंजाब की राजधानी थी। हर कोई राजा रईस यही चाहता था कि लाहौर पर हमारा झडा फहराये। इसीलिये वे मन ही मन महाराजा रणजीतसिंह जी से ईर्षाद्वेष भी रखने लगे। कुछ दिन बाद जस्सासिंह रामगढ़िया और निजामुद्दीन कसूर वाले ने गुलाबसिंह भंगई अमृतसर, साहबसिंह भंगई गुजरात और जोधासिंह वजीराबाद को अमृतसर में बुलाकर षडयंत्र रचा और १८०० ई० के आरम्भ मे ही सबने मिलकर लाहौर विजय के लिये कूच कर दिया। महाराजा रणजीतसिंह जी भी अपनी सेनाये लेकर किले से बाहर निकल पड़े और भसइन के मुकाम पर दोनों ओर से फौजे डट गईं। बराबर दो महीने तक लश्कर एक दूसरे के सामने पड़े रहे। अत मे उन लोगों ने एक चाल चलना चाहा। रणजीत सिंह जी के पास खबर भेजी कि अगर वे हम से भेट कर जावे तो आपस की सफाई हो जाय और हम वापिस अपने २ इलाके को चले जावे। महाराजा रणजीतसिंह जी चाल को तो समझ गये। फिर भी मिलने के लिये गये किन्तु सारी फौज को तैयार कर गये। उधर बहुत सारे छटे हुये सैनिक लेकर उनसे मिलने के लिये चले गये। जिस खेमे मे बातचीत होनी थी। उसके चारों ओर उनके सैनिक छा गये। इस प्रकार वे कोई भी दगा न कर सके और बाद मुलाकात के अपने वायदे को पूरा करने की गर्ज से सब अपने २ इलाके को वापिस लौट गये। दूसरे यह कि गुलाबसिंह का शराब के नशे मे देहान्त हो गया।

महाराजा रणजीतसिंह जी को यह बखूबी मालूम हो गया था कि कसूर का नवाब और रामगढ़ियों ने यह सगठन किया था। अत इसी वर्ष उन्होंने कसूर पर चढ़ाई करदी। किन्तु निजामुद्दीन एक झटके को भी न झेल सका और तुरन्त पैरों पर आ गिरा और अपने को लाहौर का खिराजगुजार स्वीकार कर लिया। साथ ही नजराना भी अदा किया। इसके बाद ही उन्होंने नारूवाली, भेरोंवाल और जस्सरवाल होते हुये जम्मू राज्य को जा दबाया। अभी वे जम्मू से चार कोस इधर ही डेरे डाले पड़े थे कि जम्मू का राजा २०

हजार नकद और एक हाथी लेकर सेवा मे हाजिर हुआ और प्रतिवर्ष नजराना पहुँचाने का वायदा किया। इसके बाद महाराज स्यालकोट की ओर लौटे जहाँ पर कि, एक मुसलमान रईस का अधिकार था। वह एक चपेट भी बर्दाश्त न कर सका। स्यालकोट जीत लिया गया। उन दिनों दिलावरगढ़ में सोढी केसरसिंह राज्य करता था। रास्ते मे होने के कारण उसे भी विजय किया और फिर वहाँ से सीधे लाहौर आ गये।

लाहौर में सन् १८०१ ई० में उन्होंने एक बड़ा भारी दरबार किया और 'महाराजा' की उपाधि धारण की। इस दरबार में पंजाब के प्राय. सभी सिख सरदार शामिल हुये थे। पुरोहित ने राजतिलक किया। कवियों ने प्रशसा सूचक कवितायें पढ़ीं। बुजुर्गों ने अशीर्वाद और सैनिकों ने सलामी दी। महाराज की ओर से यह भी घोषणा हुई कि लाहौर राज्य को लाहौर सरकार लिखा जाया करे और अब से उनके नाम का सिक्का चालू होगा। टकसाल कायम की जा रही है। न्याय विभाग स्थापित किया जा रहा है। जिसके सचिव फकरुद्दीन होंगे। शहर के प्रबंधके लिये इमामबख्श को शहर कोतवाल बनाया जाता है किले की मरम्मत के लिये एक लाख रुपया मंजूर किया जाता है। इस घोषणा से प्रजा बड़ी प्रसन्न हुई और महाराज ने सिंह की तरह अपने को महाराजा और सरकार घोषित किया।

इन्हीं दिनों महाराजा को पता चला कि साहबसिंह के इशारे पर अकालगढ़ का रईस दिलसिंह फौजें इकट्ठी कर रहा है। महाराजा ने उसको मित्रतापूर्ण खत लिखकर लाहौर बुला लिया। उसे समझाया भी किन्तु जब उसकी नीयत में अन्तर देखा तो उसे तो नजरबन्द करा दिया और उसके अकालगढ पर कब्जा करने के लिये थोड़ी सी सेना लेकर रवाना होगये किन्तु वहा पर दिलसिंह की सरदारनी तेजो लड़ाई पर आमदा हो गई। इसलिये महाराज वहाँ से आगे बढ़ गये ताकि पहले उन लोगों को सजा दी जा सके जो दिलसिंह को उभाड़ रहे थे। उन्होंने पहले तो वजीराबाद के जोधासिंह को अपने काबू में किया और उसे मित्र बनाकर साहबसिंह पर चढ़ाई की किन्तु उसने अधीनता स्वीकार करली। अत. लाहौर लौटकर दिलसिंह को भी छोड़ दिया। जहाँ जाकर वह कुछ ही दिनों बाद मर गया। महाराज यह जानते थे कि एक मजबूत राज्य बनाने के लिये यह छोटे २ राज्य मिटाने ही पड़ेगे। अत. उन्होंने दिलसिंह के मरने पर अकालगढ़ का अपने कब्जे मे ले लिया और तेजो को दो गाँव उसके गुजारे के लिये दे दिये।

महाराज यह चाहते थे कि इन छोटे २ सरदारों को कुचलने का उद्योग जोर से होना चाहिये। अत उन्होंने सन् १८०२ ई० में जब तरनतारन की यात्रा को तो कपूरथला के रईस फतहसिंह अहलूवालिया को अपना पगड़ी पलटा दोस्त बना लिया। जिसने प्रत्येक लड़ाई में अपने जीवन भर महाराजा रणजीतसिंह जी के उद्देश्य को पूरा करने के लिये लड़ाइयों मे जाकर अपने फर्ज को अदा किया।

सबसे पहले महाराजा ने अमृतसर पर जमजमा तोप के लिये चढाई की भगी सरदारों की बेवा रानी सुकवा ने बड़ी बहादुरी से मुकाबिला किया। किन्तु दो पुरुष सिंहों-रणजीत और फतहसिंह का कहाँ तक मुकाबिला करती। आखिर रानी भागकर रामगढ़ियों के पास चली गई।

अमृतसर को अपने राज्य मे मिलाने की खुशी में महाराजा हरिमंदिर में गये और वहाँ खूब दान-पुण्य किया।

अमृतसर से महाराजा ने राजा संसारचन्द के इलाके पर हमला किया। राजा हार गया और उसकी चार तोपें और लाहौर की ओर का कुछ इलाका महाराजा के हाथ आ गया। वापिस होते हुए लाहौर से ४०० घोड़े प्राप्त किये।

अगले साल उन्हें सूचना मिली कि खत्री चूहड़मल को विधवा फगवड़े मे अपना स्वतंत्र राज्य

कायम कराना चाहती है। महाराज ने फगवाड़ा पर हमला करके उसे भी जीत लिया और विधवा को हरिद्वार मे भेज दिया जहाँ जनम भर उसे खर्च मिलता रहा। इस बीच मे संसारचन्द ने हुशियारपुर और वैजवाड़े को अपने अधिकार मे लेने के लिये चढ़ाई कर दी थी। अत. महाराज उसका मुकाबिले करने के लिये उधर पहुँचे किन्तु संसारचन्द कागड़े की ओर भाग गया। अत' महाराज अपने इलाकों मे लौट पडे। दूसरे वर्ष जव कि संसारचन्द पूरी तैयारी के साथ महाराज का सामना करने के लिये इधर को आ रहा था। उसके राज्य पर गोरखों ने हमला कर दिया। अत उसे वापिस लौट जाना पड़ा।

सन १८०६ ई० मे महाराज पटियाला और नाभा की ओर उनके आपसी झगड़ों को मिटाने के लिये गये। क्योंकि दोनों ने आपही को पच मुकर्रिर किया था। कुछ मुठभेड़ के वाद उनमे सन्धि करा दी और जंडियाला रायकोट, जगराम और तलवडी पर अपना अधिकार करके वहाँ अपने विश्वस्त आदमियों को जागीरदार के रूप मे मुकर्रिर कर दिया। लुधियाना इस समय रायकोट के मरहूम रईस इलियासखाँ की दो विधवाओं के अधिकार मे था। महाराजा ने उन्हे वेदखल करके उस पर भी अपना अधिकार कर लिया। इसी समय राजा ससारचन्द की ओर से महाराज के पास खवर आई कि सारे मत-भेद भुलाकर गोरखो से मेरी रक्षा करो।

महाराज ने कागड़ा पहुँचकर गोरखों के विरुद्ध राजा संसारचन्द की मदद की। गोरखों के सरदार अमरसिंह ने महाराज के पास यह खवर भिजवाई कि आप अगर चुप हो जांय तो हम आपको उससे दुगुनी रकम दे सकेंगे जितनी कि राजा संसारचन्द भेट करेगा। महाराज ने गोरखों के इस संदेशे को अस्वीकार कर दिया और संसारचन्द को मदद दी। चूंकि महाराज के साथ फतहसिंह अहलूवालिये भी थे। इसलिये इस लडाई का हम पूरा वर्णन फतहसिह के हाल मे दे चुके हैं।

कसूर को विजय करके जव महाराज वहाँ से विदा हो आये थे तो उसके कुछ ही समय वाद निजामुद्दीन के साले कुतुवुद्दीन ने उसे कत्ल कर दिया और कसूर पर अपना अधिकार जमा लिया। इसलिये महाराज को पुन. कसूर पर चढ़ाई करनी पड़ी किन्तु कुतुवुद्दीन ने भी तग आकर उनकी अधीनता स्वीकार करली। वहुत सा नजराना भी पेश किया।

संसारचन्द की सहायता करने के वदले मे कांगड़ा उन्हे मिल गया था। अत. महाराज ने सन् १८०२ ई० में कागड़ा मे देसासिंह मजीठिया को कमान्डर और सारी पहाड़ी रियासतों का नाजिम वनाकर मुकर्रिर कर दिया। ज्वालामुखी के दर्शन करके महाराज ने दान पुण्य भी किये और उससे भी अधिक उन्होंने सुकेत, कुलू आदि के राजाओं से नजराने वसूल किये। उसी समय रास्ते मे उन्होंने सरदार वघेलसिंह की विधवाओं से उन्होंने हरियाने के इलाकों को भी जव्त कर लिया। इसी दौरे मे वे फैजलपुरिया धूपसिंह को भी—उसके इलाके को जव्त करके गिरफ्तार कर लाये। यह याद रहे कागड़े के किले पर पूर्णाधिकार राजा संसारचन्द की वेईमानी को देखकर ही किया गया था और यह घटना २४ अगस्त सन् १८०२ ई० की है जव कि वे कुतुवुद्दीन को दवा कर इधर लौटे थे।

कुतुवुद्दीन की आन्तरिक इच्छा थी कि वह महाराजा रणजीतसिंह जी के आधीन नहीं रहे। इसीलिये उसने उनके पीठ फेरते ही ताकत वढ़ाना आरम्भ कर दिया था। महाराज को जव उसकी करतूतों की खवर मिली तो वे पुन कसूर पर चढ़कर आये और फिर उससे किसी भी शर्त पर समझौता नहीं किया। सिखों ने किले में घुसकर अपना झडा उस पर गाड़ दिया।

महाराजा रणजीतसिंह जी की नीयत स्पष्ट थी। वे एक मजवूत और सुसंगठित राज्य कायम करना

चाहते थे और ये छोटे नवाब या सरदार उनके इस उद्देश्य में बाधक होते थे। अत. उन्होंने सन् १८०८ तक पंजाब के अनेकों छोटे २ मुसलमान रईसों और सिख सरदारों को अपने काबू मे कर लिया। कुछ उनमे से भागकर सतलज के उस पार हो गये। जो सहज ही उनकी बात को मान लेता था। उसे वह गुजारे लायक जमीन, जायदाद या जागीर दे भी देते थे। वह अपने सच्चे दोस्तों को भी जागीर, जायदाद देते थे। सन् १८०८ मे जब वे पटियाला और नाभा के झगडों को निबटा कर लौटे थे तो उन्होंने नारायण को जीत कर अपने दोस्त फतहसिंह अहलूवालिया को दे दिया था।

महराजा रणजीतसिंह जी ने अपनी सेना के अधिक मजबूत हो जाने पर कुछ अलग जत्थे बना दिये थे। जिसमे एक जत्थे को लेकर दीवान मुहकमचंद सतलज उतर कर लाहौर राज्य के लिये परगनों को जीतने और सरदारों से नजराने वसूल करता फिरता था। बादनी इलाके को दीवान मुहकमचंद ने ही जीत कर लाहौर राज्य मे मिलाया था।

सन् १८०८ ई० में महाराज के घर खुशी की यह बात हुई कि रानी महताबकौर जी से शेरसिंह और तारासिंह नाम के दो जुड़वाँ लड़के पैदा हुए।

सतलज पार की फूल और भगतू रियासतों के कुछ इलाके महाराज ने अपने अधीन कर लिये थे, तथा कुछ इलाके उनके अपने सरदारों को भी जागीर में दे दिये थे। नाभा-पटियाला झगडा, और पटियाला के राजा-रानी का झगड़ा इन दोनों को निपटाने के लिये उन्हे दो बार इन राज्यों में जाना पड़ा था। दोनों बार में उन्होंने सतलज पार की समस्त रियासतों से जबर्दस्ती और मन चाहा नजराना वसूल किया। इससे वे रियासतें डर गईं और उनके रईसों ने समाना में इकट्ठे होकर यही तय किया कि यदि रणजीतसिंह जो से बचना चाहते हो तो अंग्रेजों की शरण लो। इस पर १८०८ में उन्होंने यही किया। वे दिल्ली मे जाकर गर्वनर जनरल के सामने अपना कच्चा चिट्ठा पेश कर आये किन्तु चूकि उस समय अंग्रेजों ने अपनी संकटापन्न हालत के कारण उनकी रक्षा सम्बन्धी कोई गारन्टी न दी थी। इसलिये ऊपरी तौर से महाराजा रणजीतसिंह की भी आवभगत करते रहे और यह बताते रहे कि हम तो आपके अपने ही आदमी हैं।

अंग्रेजों को इस समय नेपोलियन बोनापार्ट, रूस और अफगानिस्तान सभी का डर लगा हुआ था। वे परमात्मा से यही दुआ करते थे कि किसी भी प्रकार यह स्वर्णभूमि भारत हमारे ही लिये सुरक्षित रहे, इसलिये वे चाहते थे कि किसी भी प्रकार हमारी महाराजा रणजीतसिंह जी से सन्धि हो जाय। इसी हेतु से उन्होंने महाराज के पीछे कपूरथला और नाभा के रईसों को इस बात के लिये लगा रक्खा था कि वे अपनी दोस्ती और नातेदारी का प्रभाव काम में लाकर महाराजा रणजीतसिंह को अंग्रेजों से सन्धि करने के लिये तैयार करें। इनके अलावा कुछ और लोग भी इसी काम के लिये अंग्रेजों ने रणजीतसिंह के पीछे लगा रक्खे थे।

महाराजा रणजीतसिंह जी के कुछ साथी ऐसे भी थे। जो यह चाहते थे कि अंग्रेजों से कोई दोस्ती न हो किन्तु कुछ तो महाराज ने अंग्रेजी सेना के युद्ध कौशल की चर्चा सुनी थी कुछ ऐसे मौके आ गये जिससे उन्हें यह भान हो गया कि लड़ाई के हुनरों मे अंग्रेजी सेनायें हमारी सेनाओं से बहुत ज्यादा तेज और होशियार हैं। मुहर्रम के दिनों की बात है मि० मेटकाफ अमृतसर में ठहरे हुए थे। उनके मुसलमान सिपाहियों ने ताजिया निकाला। जब वह अकालियों के मुहल्ले में होकर निकले तो फूलासिंह अकाली ने उन पर हमला कर दिया। उनसे अकालियों को मुठभेड़ लेने मे कठिनाई पड़ी। महाराज उसी

समय गोविन्दगढ़ से वहाँ आ पहुँचे। उन्होंने झगड़े को तो शांत कर दिया किन्तु असर उनके दिल पर यही पड़ा कि फूलासिंह जैसे बहादुर के आगे यह अंग्रेज सैनिक जम गये। यह अवश्य ही कवायद और परेट की हुशियारी से ऐसा हुआ है। उनके दिल पर इस घटना का ऐसा असर पड़ा कि उसी समय उन्होंने अंगेजों से और उन्हीं के प्रस्तावानुसार संधि करली। हालांकि इनकी आत्मा इस सधि से खुश न थी। क्योंकि इससे पहले उन्होंने बड़ी शीघ्रता के साथ इलाका बढाना शुरू कर दिया था। इस घटना से पहले मेटकाफ पहुँचा था तो महाराज उसे वहीं छोड़ कर कसूर चले गये थे। इससे मेटकाफ के दिल पर यही असर पडा था कि महाराज की इच्छा अग्रेजो से सन्धि करने की है नहीं। इससे पहले ही दीवान मुहकमचन्द ने महाराज से कहा था। इस सन्धि मे यह तय कराना चाहते है कि इस समय तक जिसका जहाँ तक राज्य है। वह वहीं पर रुक जाय। और सन्धि करने से पहले २ आप बाहर रहकर सतलज पार के सारे पंजाव को जहाँ तक भी संभव हो अपने राज्य मे मिलाले। अगेज तो बड़े चालाक होते हैं। मेटकाफ ने भी लाहौर मे महाराज के वापिस आने की बाट नहीं देखी। वह भी लाहौर से कसूर को चल दिया वह अपने हाथ मे महाराज को भेट करने के लिये घोड़ों की जोड़ी एक अग्रेजी गाड़ी और तीन हाथी मय सुनहरी हौदे के लिये फिरता था। महाराज ने मेटकाफ के साथ अजीजुद्दीन को करके वापिस लाहौर भेज दिया और आपने मालेर कोटला पहुंच कर एक लाख नजराना वसूल किया। उनके एक सरदार करमचंद ने फरीदकोट पर अपना कब्जा कर लिया। मेटकाफ ने महाराज को पत्र लिख कर इस कार्य को अन्यायपूर्ण कहा, इस पर महाराज ने आश्चर्य प्रकट करते हुए कहा था जहाँ तक सिख आबाद है। वहाँ तक हमे अधिकार होना चाहिये। हम उनके साथ जाहे जैसा व्यवहार करें। इसके बाद मेटकाफ तो फतेहवाद ठहरा रहा और महाराज अम्बाला जा पहुँचे। गुरुबख्शसिंह की विधवा दयाकौर से उसका इलाका नाभा, कैथल लेकर गडासिंह को अम्बाले मे हाकिम मुकर्रिर किया। साहनीवा, चाँदपुर, झदा, धारी और वहरामपुर आदि पर कब्जा करके वहाँ पर दीवान मुहकमचंद को नियुक्त किया। रहीमावाद कानातरी कोट वगैरह मे अपने दूसरे सरदारों को मुकर्रिर किया। शहाबाद और थानेसर के सरदारों से कर वसूल किया। पटियाला के राजा साहबसिंह को पगड़ी पलटा दोस्त बनाकर २ दिसम्बर को फतेहाबाद आ गये और मेटकाफ से वार्तालाप आरम्भ किया। मेटकाफ ने स्पष्ट तौर से कहा कि महाराज इस वीच मे आपने जितने भी इलाके जीते हैं उन्हे वापिस करिये और अपने राज्य को सरहद सतलज नियत कीजिये। उधर के लोगों को इस वात पर छोड़िये कि वे मरजो चाहे लाहौर दरबार से सम्बन्ध रक्खे और चाहे अग्रेज सरकार से। महाराज इस वात पर राजी नहीं हुए ओर अन्दर ही अन्दर मौके का मुकविला करने की भी तैयारी करने लगे। किन्तु अमृतसर मे फूलासिंह अकाली जैसे प्रचंड वीर को जव चद अङ्गरेजी सैनिकों के वारों से पीछे हटते सुना तो उनके दिल मे यह बात पूरी तौर से बैठ गई कि हमारी सेना अङ्गरेजों से भिड़ने मे शायद ही जीतेगी। दूसरे उन्हे यह खवर लगी कि अङ्गरेजी फौज के एक दस्ते ने अम्वाला से गडासिंह को हटा कर फिर से रानी दयाकौर का प्रवन्ध करा दिया है। और अन्दरुनी तौर से पटियाला, जीन्द, फरीदकोट और कपूरथला अङ्गरेजों की ओर झुकाव रखते हैं तो उन्होंने मेटकाफ की पेश की हुई शर्तों पर ही १८०६ ई० को २५ अप्रैल को दस्तखत कर दिये। जिसके अनुसार सतलज पार की सव रियासतों पर से उन्हे अपना अधिकार हटा लेना पड़ा। इसके बाद महाराज ने आजन्म इस शर्त को निभाया। ६ मई १८०६ को इस सन्धिपत्र पर अङ्गरेज सरकार के भारत-स्थित प्रतिनिधि (गवर्नर-जनरल) की भी सही हो गई। अङ्गरेज सेना ने इस सन्धि से पहले ही लुधियाने मे छावनी वना ली थी।

महाराज की ओर से वटाले के वख्शी नंदनसिंह को और अङ्गरेजों की ओर से खुशवख्तराय को एक दूसरे के कैम्पों में रखने के लिये मुकर्रिर किया। जोकि प्राय वकील या एजन्ट का काम करते थे।

काबुल मे जाकर मि० एल फिस्टन ने वहॉ के अमीर से इस प्रकार सन्धि कर ली कि रूस और नेपोलियन के आक्रमण के समय एक दूसरे के दोस्त रहेंगे। वह सन्धि शाहशुजा से हुई थी किन्तु कुछ दिन वाद महमूदशाह ने जो कि शाहशुजा का भाई था कैद से भाग कर वरकजई पठानों की मदद से शाहशुजा को गद्दी से हटा दिया। इस प्रकार सन् १८१० ई० में अफगान अङ्गरेज सन्धि का खात्मा हो गया। महमूदशाह जव काश्मीर के अपने सूवेदार को दंड देने के लिए भारत आया तो महाराज ने उससे दोस्ती कर ली।

सन् १८११ ई० मे शाहशुजा भी महाराज के पास आया। उसको उम्मेद थी कि कावुल की गद्दी दिलाने में अंग्रेज मेरी मदद करेंगे किन्तु उसे निराशा रही। इसलिये वह महाराज के पास पहुँचा। महाराज ने उसे वड़ी इज्जत के साथ ठहराया। उसके खाने-पीने और खर्चने का कुल प्रवन्ध अपनी ओर से कर दिया। कुछ दिन के वाद महाराज शाहशुजा से कोहनूर मांग वैठे। शाहशुजा और उसकी स्त्री ने वहाने वना कर इस मांग को खटाई मे डालना चाहा। महाराज इस वात से नाराज हो गये। अत. उन्होंने उसके साथ सख्ती करना आरम्भ कर दिया। जव उसने देखा कि कोहनूर दिये वगैर काम नहीं चलेगा तो उसने उसे महाराज को सौंप दिया। इसके वाद महाराज ने उसके गुजारे के लिये एक जागीर मुकर्रिर कर दी और विश्वास दिलाया कि हम कावुल वापिस दिलाने मे उसकी भरपूर मदद करेंगे किन्तु वह ऐसा घवरा गया कि एक रात को चुपके ही दोनों स्त्री पुरुष लाहौर से निकल गये। वर्षों इधर-उधर भटकने के वाद सन् १८१६ में उसने पुनः अपने को अंग्रेजों के हाथ सौंप दिया।

वजीरावाद के सरदार जोवसिंह के मरने पर उसके वेटे गंगासिंह ने सन् १८०६ में ही अधीनता स्वीकार कर ली थी और एक लाख रुपया भी नजराना में दे दिया था। सन् १८११ के आरम्भ में ही गुजरात पर उसके एक सेनापति अजीजनुद्दीन ने कब्जा कर लिया था। अत. महाराज ने खुश होकर वहाँ का सूवेदार उसके वेटे नूरुद्दीन को वना दिया था। वहां का असली मालिक साहवसिंह मारा-मारा फिर रहा था। इसी वर्ष यानी सन १८११ में महाराज ने दीनानगर पहुँच कर पहाड़ी राजाओं से कर वसूल किये। नूरपुर के राजा ने चालीस हजार महाराज की भेंट किये। सुकेत, मण्डी और कुल्लू से उनके सेनापति मुहकमचंद ने नजराने वसूल किये। नूरपुर को तो कुछ समय वाद महाराज ने अपने राज्य में ही मिला लिया। वहाँ का राजा वीरसिंह भागकर अंग्रेजों के पास जा पहुँचा किन्तु वे उसको कोई मदद न दे सके। इस अपराध में महाराज ने उसके ससुर ज्वालासिंह की जागीर भी जव्त कर ली। वास्तव में पहाड़ी राजा व्यर्थ की चीज थे। न तो यह धर्म के लिये कोई कुर्वानी कर सकते थे और न अपनी प्रजा की लुटेरों से रक्षा। इसलिये महाराज इन सवको ही जव्त करने की फिक्र मे थे। ज्वालासिंह भी भाग कर अंग्रेजों के पास ही चला गया।

इस वर्ष महाराज ने माधौपुर आकर दशहरा मनाया। उस दशहरे की शान का सही वर्णन वही कर सकता है। जिसने किसी स्वतंत्र राजा को धार्मिक उत्सव मनाते देखा होगा। इस दशहरे में महाराज ने अपनी ओर से सेनापतियों को इनाम और जागीरें भी दीं। दीवान मुहकमचंद को उसकी उन सेवाओं के वदले में जो उसने पिछले वर्ष यानी १८१० में भम्भे के इलाके को विजय करके लाहौर राज्य मे मिलाने और इसके सिवा जालन्धर, हेतपुर, फुलोर पर भी महाराज का दखल विठाने मे की थीं। महाराज ने

वड़ी खुशी के साथ मुहकमचन्द को दीवान का दर्जा और सुनहरी हौदे वाला एक हाथी और एक सुनहरी मूठ की तलवार पुरस्कार मे दिये। इस प्रकार अन्य सरदारों को भी उनकी सेवाओं के अनुपात से बहुत कुछ दिया।

उन्होंने अपनी सासु के सामने वटाला जाकर प्रस्ताव रक्खा था कि क्योंकि वह लावल्द है। इस लिये अपनी जागीर के मालिक अपने नवासों शेरसिह तारासिंह को बनाये किन्तु वह राजी नहीं होती थीं और छिपे-छिपे अंग्रेजों से भी पत्र व्यवहार रखती थीं—इसलिये अपने दीवान को इजाजत देकर उसे तो नजरवन्द कराया और जागीर अपने दोनो लडकों—शेरसिंह, तारासिंह—के नाम करदी।

जब से महाराजा रणजीतसिंह ने अमृतसर पर कब्जा कर लिया था। तब से अब तक उनकी ताकत बहुत बढ़ गई थी। हर समय उनकी इच्छा खजाने मे अतुल धन राशि सचय करने की रहती थी। जहा भी जिधर भी कोई खिराज भेजने मे ढिलाई करता। उसे ही जा दबाते थे। स्यालकोट के रईस अहमद खॉ को इसी अपराध मे जा दबाया। विचारे ने ६० हजार साल वक्त के वक्त पहुँचाने का वायदा किया। करता भी क्यों न जब कि उसकी फौज केवल दो ही दिन की लड़ाई मे तिड़ूविड़ू हो गई। उसके सामान और सचित कोष को तो महाराज ने लूट ही लिया। इसके सिवा इसी चक्कर मे ऊच, शाहीवाल और गढ़ के मुसलमान रईसों से भी तगड़े नजराने वसूल किये। शाहीवाल के रईस फतहखॉ को तो उन्होंने जजीरो से बंधवा दिया था क्योंकि उसने अपने वायदे के अनुसार खिराज अदा नहीं किया था। मुल्तान का मुजफ्फरखॉ भी काबू से बाहर होता जारहा था। उसका भी दमन किया, और उसके दमन का फल यह हुआ कि लैमा और भक्खर के मुसलमान सरदारों ने उन्हे एक लाख बीस हजार रुपया नजराना देकर अपने प्राण बचाये। भावलपुर के रईस सद्दीक मुहम्मद से एक लाख से भी ऊपर वसूल किया।

यहॉ यह वताने मे कोई हर्ज नहीं होगा कि मुल्तान पर महाराज का कब्जा नहीं हो पाया था उधर दीवान मुहकमचन्द शुजावाद में असफल रहा था। इन घटनाओं का महाराज के दिल पर ऐसा असर पड़ा कि उन्होंने लाहौर लौटते ही फौजों को यूरोपियन ढग से शिक्षा दिलाना शुरू किया। कई फ्रांसीसी और जर्मनों को सैनिक शिक्षा के लिये भरती किया। इसका फल भी यह हुआ कि अगले, साल उन्हीं सैनिकों ने पहिले की अपेक्षा लड़ाई में कहीं अधिक चमत्कार दिखलाये।

दूसरे वर्ष महाराज ने मुल्तान पर फिर चढ़ाई की। इस वक्त तक मुजफ्फरअहमद अंग्रेजों के पास अपनी रक्षा के लिये फिर चुका था। जब वहॉ भी उसे कोई आश्वासन नहीं मिला, तो उसने बेगमों के दिल्ली मे जेवर बेचे और मुल्तान आकर महाराजा रणजीतसिंह जी को पचास हजार नजराना पेश करके अपने प्राण बचाए। दिलसिंह ने इन दिनों तक कोट कमालिया पर अधिकार कर लिया था। महाराज लाहौर लौट आये।

सन १८१४ ई० में राजकुमार खड्गसिंह जी की शादी कन्हैया सरदार जेहलसिंह की पुत्री चन्दकौर के साथ की। जिसमें नाभा, जीन्द आदि के सब रईस शामिल हुए। महाराज ने आक्टरलोनी को भी निमंत्रण दिया था। हालाकि दीवान मुहकमचन्द इस बात के खिलाफ था। क्योंकि वह समझता था कि आखिर अंग्रेज यहॉ आकर हमारी बहुत सी बातों का भेद ले ही जायगा।

सन १८१५ ई० मे महाराज ने फिर विजय यात्रा आरम्भ की। पाकपट्टन होते हुये भावलपुर के नवाब से ८० हजार नजराना वसूल किया और ४० हजार सालाना खिराज देना स्वीकार करा

लिया। वहाँ से महाराज हड़प्पा पहुँचे और मिश्र दीवानचन्द के तोपखाने की मदद से अहमदाबाद को फतह किया।

मुल्तान से महाराज को खिराज मिल रहा था किन्तु फिर भी वे इस बात से सतुष्ट होना चाहते थे कि मुल्तान कतई रूप से उनके राज्य मे मिल जाय। उधर मुजफ्फर अहमद भी जानता था कि एक न एक दिन घोर युद्ध होना है। इसलिये वह पूरी तरह से सावधान रहता था। महाराजा रणजीतसिंह ने सन् १८१७ ई० में दीवान मोतीराम, भवानीदास, हरीसिंह नलुआ और दीवानचन्द को मुल्तान विजय के लिये भेजा। खूब डट कर लड़ाई हुई किन्तु सिख काफी जोर लगाकर भी किले मे प्रवेश न पा सके। उधर रसद भी बीत चुकी थी। इसलिये वापिस लौट आये।

इस पराजय से महाराज बडे नाराज हुये और उन्होंने सभी सरदारों को बहुत ही लताड़ा। जब सबने ही भवानीदास पर कसूर थोप दिया,तो महाराज ने भवानीदास को कैद कर लिया। अगले साल २५ हजार सिखों की सेना मिश्र दीवानचन्द के नेतृत्व में मुल्तान को जीतने के लिये भेजी। रसद बराबर पहुँचती रहे इसका इन्तजाम चुनाव के जलमार्ग से कर दिया। सेनाओं के चले जाने के बाद ख्याल आया कि कहीं धर्मयुद्ध के नामपर मुजफ्फरअहमद सारे मुसलमान सरदारों को न इकट्ठा करले। इसलिये महाराज ने अहमदखाँ स्याल को जेल से रिहा कर दिया और उसे एक जागीर भी देदी। ताकि मुसलमानों में कुछ सतोप फैले। महाराज ने जो सोचा था वही हुआ। मुजफ्फर अहमद ने समस्त मुसलान रईसों और जागीरदारों को दीन के नाम पर भड़काया। उसकी अपील को सुनकर बहुत से मुसलमान मुल्तान के किले मे इकट्ठे भी होगये। दीवान मोतीराम ने किले का चारों ओर से घेरा डलवा दिया और बाहर से जाने वालों को रोक दिया गया। किले की दीवारों को तोड़ने के लिये जमजमा तोप का भी प्रयोग किया। बराबर तोप के गोलों की बौछार से किले की दीवार में छेद होगया। मुजफ्फर यद्यपि बडे उत्साह और बहादुरी से लड़ रहा था किन्तु उसके साथियों का बराबर साहस छूटता जाता था। दो हजार आदमियों में से जब केवल दो सौ ही रह गये तो कुछ लोग हथियार भी डालने लगे। इसी समय साधू सिंह नाम का एक सिख अफसर अपने साथियों समेत किले में दाखिल होगया। दाखिल होते ही बिजली की तरह वह मुजफ्फरखाँ के आदमियों पर टूटे। मुजफ्फरअहमद और उसके बेटों ने भी हथेली पर प्राण रखकर मुकाबिला किया। खिजरी दरवाजे से मकबरे तक बराबर वह मुकाबिला किया और उस समय तक लड़े जब तक कि सिखों की लपलपाती तलवारों ने उनके सिर धड से अलग कर दिये। नवाब अपने पाँचों बेटों समेत मारा गया।

विजयोन्माद में सिख सैनिकों ने किले के भीतर के लगभग पाँच सौ मकानों को ध्वस कर दिया। मुसलमान स्त्रियों पर ऐसी दहशत गालिब हुई कि कुछ तो पानी के हौजों में कूद पड़ीं। नवाब का सारा सामान जिसमें जवाहिरात, हीरे, पन्ने और मोती भी शामिल थे। सिखों के हाथ आया।खजाना भी लूट लिया गया। सैनिकों ने शहर को भी लूटना चाहा किन्तु उन्हें रोक दिया गया। मुल्तान विजय के बाद सैनिकों ने लौटते हुये शुजाबाद को भी लूट लिया।

मुल्तान विजय के समाचार जब लाहौर पहुँचे तो महाराज बडे खुश हुए और उन्होंने विजयोत्सव मनाने की आज्ञा देदी। अमृतसर और लाहौर दोनों जगह बराबर आठ दिन तक रोशनी की गई। लाहौर की गलियों में घूम-घूम कर महाराजा ने रुपये बाँटे। इस विजय मे करीब पांच लाख का माल महाराज के हाथ लगा था और सिख, हिन्दू और मुसलमान सभी पर उनका रोब गालिब होगया। सुखदयाल को

महाराज ने मुल्तान का सूबेदार नियुक्त किया।

इन्हीं दिनों काबुल में एक गृह कलह फैल गया। बात यह हुई कि काबुल के अमीर ने वजीर फतहखॉ को उनकी ईरान विजय पर दावत दी। दावत के मौके पर ही अमीर (शाहमहमूद) के बेटे फतहखा को मारडाला। इससे फतहखा का कबीला बिगड़ गया और काबुल में आन्तरिक कलह बढ़ गया। महाराजा रणजीतसिंह जी ने पेशावर को जीतने का यह स्वर्ण अवसर समझा और उन्होंने लगातार १५ दिन तक अपनी फौज की कवायद परेट देखकर फूलासिंह अकाली और दूसरे सरदारों के साथ पेशावर विजय के लिये फौजे रवाना कर दीं, पीछे से आप भी चल दिये। इन फौजो ने रास्ते में खटक पठानो को परास्त करते हुए खैराबाद और नौशहरा पर भी कब्जा कर लिया। पेशावर मे उन दिनों यार-मुहम्मदखां सूबेदार था। उसने मुल्तान की कहानी सुनी थी। इसलिये सिख दल को देखकर उसने भागना ही उचित समझा। जहॉदादखॉ महाराज को सेवा में हाजिर हुआ और उसने पच्चीस हजार नजराना और चौदह तोपे भेंट करके अधीनता स्वीकार करली। महाराज ने उसे सूबेदार नियुक्त कर दिया और लाहौर की ओर लौट पड़े। जब कि वे अटक के पास थे। दोस्तमुहम्मदखा के एजेन्ट दामोदरमल और हाफिज उल्ला महाराज के पास पहुँचे। उन्होने महाराज के सामने एक लाख रुपया इसलिये पेश करने की बात कही कि पेशावर दोस्तमुहम्मद को दे दिया जाय। महाराज राजी होगये। एजेट लोग रुपया लेने के लिये काबुल की ओर चले गये किन्तु इसी बीच बरकजई लोगों ने जहांदादखां को पेशावर से निकाल दिया। महाराज ने तुरन्त ही दिलसिंह की मातहती मे बारह हजार सवार फिर पेशावर की ओर भेजे किन्तु इधर काबुल से पचास हजार नकद और कुछ बढ़िया घोड़े आ जाने के कारण अपनी सेना को वापस बुला लिया। कटक का स्नान करते हुए महाराज लाहौर को लौट आए। उधर दिलसिंह को शाहशुजा से भी एक भिड़न्त लेनी पड़ी क्योंकि वह पेशावर पर अपना कब्जा करने जा रहा था। अन्त मे वह निराश होकर खैबर की ओर भाग गया।

इसके बाद महाराज ने अपने राजकुमार शेरसिंह और तारासिंह को फौजे देकर देश जात और हजारे के इलाके को विजय करने के लिये भेजा। यहॉ के इलाकेदार मुहम्मदखान की अपील पर हजारों मुसलमान उसके इलाके की रक्षा के लिये इकट्ठे हो गये। किन्तु लड़ाई मे मुहम्मदखां मारा गया। उसके बेटे ने निराश होकर पिचहत्तर हजार रुपया नजराने के देकर सन्धि कर ली और अपने को लाहौर दरबार का खिराज गुजार स्वीकार कर लिया। दोनों राजकुमार मय सेना के लाहौर लौट आये।

मुलतान की कर वसूली का ठेका महाराज ने श्यामसिंह पेशावरिया को साढ़े छ लाख सालाना पर दे रक्खा था। फौजी प्रबन्ध महाराज के सेनापति ही करते थे। पेशावरिया ने लोगों को एक ही बार की उगाही मे इतना तग किया कि वहॉ की प्रजा त्राहि-त्राहि कर उठी। सन् १८१७ मे जब महाराज मुलतान पधारे हुये थे, तो उनके सामने शिकायते आईं। महाराज ने पेशावरिया को तो कैद कर लिया और भाई बदनहजारी को वहॉ का सूबेदार नियुक्त करके खत्री सावनमल को माल अफसर बना दिया। इसी साल जमादार रामदयालसिंह ने डेरागाजीखां को भी जो कि अमीर काबुल की मातहती में था। विजय कर लिया।

मुलतान में ही महाराज को खबर मिली कि उनकी दो रानियों से दो बच्चे पैदा हुये है। उनके नाम मुलतानसिंह और काश्मीरासिंह रखे गये। क्योंकि मुलतान और काश्मीर की विजय के उन दिनो कार्य चल रहे थे। मुलतान विजय हो चुका था। काश्मीर करना था। यहॉ यह भी खबर मिली कि

हजारा, तिलखी, घतूड़ा और तिखला के मुसलमानों ने भाई मक्खनसिंह को विद्रोह करके कत्ल कर दिया है। महाराज ने इस विद्रोह को दवाने के लिये दीवान रामदयाल और श्यामसिंह अटारीवाले को राजकुमार शेरसिंह को साथ देकर भेजा। इनके सिवा अहलूवालिया सरदार फतेसिंह और रानी सदाकौर भी साथ थे। रानी सदाकौर ने उद्दंडता को देखकर कवीले वालों को एक-दम तवाह करने का हुक्म सिख सैनिकों को दिया। इस हुक्म के मिलते ही कत्लेआम आरम्भ हुआ जिसमे हजारों मुसलमान काम आये। आखिर तिखला और यूसफजई आदि अनेकों कवीलेवाले इकट्ठे हो गये। दीवान रामदयाल ने उन्हें खदेड़ना चाहा। सारे दिन लड़ाई हुई जिसमें दोनों तरफ के काफी आदमी मारे गये। दीवान रामदयाल वड़ी वहादुरी से लडाई की शाम को लडाई स्थगित हो जाने पर फौजों के लौटते समय हजारों मुसलमान दीवान रामदयाल पर टूट पड़े। जिन सवसे जूझता हुआ वह काम आ गया।

रामदयाल के मारे जाने से महाराज को वड़ा रन्ज हुआ और उसके पिता दीवान मोतीराम को तो इतना रन्ज हुआ कि वह काश्मीर की सूवेदारी को छोड़कर काशी को चला गया। उधर रामदियाल के मारे जाने पर सिख सेनाओं ने भी इतना कोप किया और इतने पठानों को जमीं दोज किया जिसके भय से उन्होंने खिराज देना स्वीकार कर लिया।

सन् १८२० ई० मे महाराज ने झेलम पार करके रावलपिंडी को जा दवाया और वहाँ के सरदार नन्दसिंह को खारिज करके दफ्तरी नानकचन्द को वहा का अफसर नियुक्त किया।

सन् १८२१ ई० के फरवरी महीने में महाराज के युवराज खडगसिह जी के पुत्र जन्म हुआ। जिनका नाम नौनिहालसिंह रक्खा गया। इससे वड़ी खुशियाँ मनाई गईं। इसी वर्ष कस्तवाड़ और फतहकोट को विजय करके अपने राज्य में मिलाया। सरदार हरीसिंह नलुआ, मिश्र दीवानचन्द को महाराज ने भक्खर विजय के लिये भेजा। सरदार दिलसिंह और जमादार खुशालसिंह डेराइस्माईलखा की ओर गये। वहाँ के अफसर नानकराय को गिरफ्तार करके खान गिरान, लैया, पजगढ़, पर कब्जा करते हुए मुनकेरा पर घेरा डाला। नवाव हाफिजरहमत २४ दिन तक लड़ा हालाकि उसके यहाँ पानी का वड़ा कष्ट था। ऊटों पर लादकर दूर से उसके यहाँ पानी लाया जाता था। इस लड़ाई में महाराज भी पहुँच गये थे। नवाव ने हार मान कर सधि कर ली। इस लड़ाई से २४ तोप और दस लाख का इलाका महाराज के हाथ आया। डेराइस्माईलखाँ नवाव रहमत खा के ही हाथ रहा।

कावुल के मुहम्मद नजीम की कार्यवाहियों को महाराज वड़ी सतर्कता से देख रहे थे। इसलिये उन्होंने उसे दड देने के लिये यही निश्चय किया कि भारत में उसका जितना हिस्सा है। उसे जीत लिया जाय। सन् १८२३ ई० में रोहतास मे उन्होंने अपनी सारी फौजे इकट्ठी कीं। आपने तो रावलपिन्डी की ओर कूच किया और फकीर अजीजुद्दीन को पेशावर यारमुहम्मदखां से खिराज वसूल करने के लिये भेजा। मुहम्मदयारखा ने नजराना दे दिया। अजीम को यह वात वहुत वुरी लगी और उसने अपने भाई से पेशावर छीन लेने के लिये इधर को भारी सेना के साथ कदम वढ़ाया। महाराज भी उससे निपट लेना चाहते थे। इसलिये उन्होंने शेरसिंह, हरीसिंह नलुआ और दीवान कृपाराम की मातहती मे एक वड़ा लश्कर पेशावर को ओर भेजा। इस सेना दल ने रास्ते मे जहाँगीरावाद को सवसे पहले कब्जे मे किया। मुहम्मद अजीन ने पठानों को धर्म युद्ध के नाम पर भड़काया। सीमात के सभी प्रसिद्ध कवीले लडाई के लिये मैदान मे आ गये और नौशहरा में इकट्ठे हो गये। महाराज ने दूसरी फौज खडगसिंह और दीवान चन्द की मातहती मे पहली फोज को मदद के लिये रवाना की। फिर खुद भी चल पडे। मुहम्मद अजीम

खां, दोस्तमुहम्मद, जबरखां भी नौशहरा मे आ पहुँचे। १२ मार्च को १५ हजार सवारों के साथ महाराज ने दरियाये अटक को पार किया। उस समय अटक बड़े जोरों पर थी। आप यह कह कर अपने घोड़े को पानी में घुसा ले गये "सबै भूमि गोपाल की यामे अटक कहाँ" बस आपके साहस करते ही सारे सवार घुस पड़े और वह लश्कर पार हो गया। नदी मे इतना जोर था कि कई आदमी बह भी गये। तोपें हाथियों पर रखकर पार की गईं। उधर पठान भी बीस हजार से ज्यादा इकट्ठे हो चुके थे। दोनों ओर से जमकर युद्ध हुआ।

युद्ध आरम्भ हुआ। पठानों ने सिख जनरल सतगुरसहाय और महासिंह को गोली का निशाना वना दिया। सिख पठानों की मार से पहाड़ी के नीचे उतरने लगे। इस पर फूलासिंह अकाली ने अपने साथियों को ललकारा और वह भूखे भेड़ियों की भांति पठानों के गोल मे घुस गया। उसने अपने दोनों ही हाथों से काम लिया किन्तु गाजियों के दल मे चारों ओर से घिर जाने के कारण वह मारा गया। फूलासिंह के मारे जाने के वाद महाराज ने खुद युद्ध का सचालन किया। मिश्र दीवानचन्द ने तोपखाने को सभाला शाम तक वरावर रक्तपात होता रहा। आधे से अधिक गाजी मारे गये किन्तु वे अपने स्थान से तिल भर भी न हटे। इसके वाद गोरखों की पलटन को महाराज ने आगे वढ़ाया और उनके पीछे सिखों का एक रिसाला खड़ा कर दिया। ताकि वे पीछे न हटे। पठान इस प्रकार की मार को न सह सके और वे भाग निकले। मुहम्मद अजीम इससे पहले ही गायब हो गया था। महाराज ने सेनाओं को आगे वढ़ाकर हस्तनगर पर कब्जा कर लिया और १७ मार्च को पेशावर पर अधिकार जमा लिया। पठान इस युद्ध मे बुरी तरह बर्वाद हो गये थे। इससे सिखों ने अलग २ सैनिक दल बनाकर पेशावर के चारों ओर लूट खसोट आरम्भ कर दी। वे मारते पीटते खैबर तक पहुँचे।

पेशावर को विजय करने के बाद महाराज ने नीतमता पूर्वक यारमुहम्मद और दोस्तमुहम्मद को ही सवा लाख सालाना के नजराने पर दे दिया। उन्होंने उस समय महाराज को दो जोड़ी बढ़िया घोड़े नजर किये। जिन्हे पाकर महाराज बड़े खुश हुए।

२६ अप्रैल को महाराज वापिस लाहौर आ गये और इस विजय की खुशियाँ मनाईं। लाहौर और अमृतसर में खूब रोशनी की गई। इन्हीं दिनों तैमूरशाह का लड़का इब्राहीम लाहौर आया। जिसे महाराज ने वडे सत्कार के साथ रक्खा।

सदा की आदत के अनुसार इसी वर्ष मे पिलखी और धमतूर के कवीले विगड़ गये। हरीसिंह नलवा ने जाकर उसका दमन किया और दमन भी भयकर। उसने इनके गाँव के गाँव जला दिये। जिससे आज तक भी अफगान उसे नहीं भूले है। इसके दूसरे ही वर्ष सन् १८२४ मे हजारा के जमीदार भी वागी हो गये और महाराज के किलेदार अव्वासखाँ खटक को उन्होंने कैद कर लिया। हरीसिंह ने उनके मिजाज को भी दुरस्त किया और अव्वासखाँ को जेल से छुडा कर उसकी जगह पर वहाल किया। इसी वर्ष वहावलपुर और मुनकेरा के नवाव मर गये। इसलिये महाराज ने २५-२५ हजार के नजराने लेकर उनके लड़कों को वारिस वना दिया।

काश्मीर की विजय मुल्तान और पेशावर से भी कहीं अधिक महत्व रखती है। उसके लिये लगातार बारह वर्ष तक उद्योग होते रहे तव कहीं काश्मीर जीता गया। इसलिये हम उसका स्वतन्त्र रूप से और एक स्थान पर यहाँ वर्णन करते हैं। इसीलिये वीच में उसके लिये होने वाले प्रयत्नों और युद्धों का वर्णन नहीं किया है। जिस तरह से काश्मीर महाराज के हाथ मे आया और उसे प्राप्त करने के लिये जितनी लड़ाइयाँ

लड़नी पड़ीं पाठकों की सुविधा के लिये उनका संग्रह हमने इस स्थल पर कर दिया है।

जिन दिनों काश्मीर कावुल के अधीन था। उस समय वहाँ अतामुहम्मद सूवेदार था। अतामुहम्मद ने सन् १८१० ई० मे शुजा की मदद करके उसके विरोधी भाई मुहम्मदशाह को हराया था। उसी साल दीवान मुहकमचद ने भम्मर और राजौर पर हमला किया। भम्मर के सुल्तानखाँ ने हारने पर लाहौर दरवार की अधीनता स्वीकार कर ली और ४० हजार नजराना दे कर मुहकमचद से पीछा छुडाया। दूसरी ओर महाराज ने कैटाल मे गगा का किला जीत लिया। उधर चूँकि मुहम्मदशाह फौज लेकर काश्मीर की ओर आ रहा था। इसलिये महाराज ने काश्मीर से अपनी फौजे हटा लीं और मुहम्मदशाह से दोस्ती कर ली।

भम्मर मे मुहकमचद ने सुल्तानखाँ की वजाय इस्माईल को नियुक्त किया था। किन्तु मुहकमचद के पीठ फेरते ही उसने इस्माईल को निकाल दिया। महाराज को जब यह समाचार प्राप्त हुए तो उन्होंने कुँवर खड़गसिंह और भाई रामसिंह के साथ एक सेना भम्मर की ओर भेजी। पीछे से मुहकमचद को भी रवाना किया। सुल्तान खाँ ने सिखों के पहले दल से तो ऐसी टक्कर ली कि उसे पीछे लौटना पड़ा किन्तु मुहकमचद के आने का समाचार सुनकर उसकी हिम्मत टूट गई और उसने सन्धि का प्रस्ताव पेश किया। मुहकमचद उसे लाहौर ले आया जहाँ उसे कैद करके भम्मर के इलाके को लाहौर दरवार के आधीन कर लिया गया।

सन् १८१२ ई० मे इस्माईलखाँ ने राजौरी के हाकिम अजीजखाँ के साथ मिल कर वगावत खडी कर दी। जिसे दवाने के लिये महाराज को खुद वहाँ जाना पड़ा। महाराज का इरादा था कि इस चक्कर मे काश्मीर को विजय कर लें किन्तु उन्हे खवर मिली कि लाहौर मे शाहशुजा आया हुआ है। इसलिये वे लाहौर वापिस आ गये।

इसी वर्ष कावुल का वजीर फतहखाँ अतामुहम्मद और उसके भाई जहाँदाद को सजा देने के लिये काश्मीर जा रहा था। उसे यह खयाल आया कि शायद महाराजा रणजीतसिंह की फौज काश्मीर के पहाडी रास्ता से भली प्रकार परिचित होगी। इसलिये लाहौर पहुँच कर उसने महाराज से फौज मांगी महाराज उसके साथ फौज भेजने के लिये इस शर्त पर तैयार हो गये कि लूट का तीसरा हिस्सा वह सिखों को देगा। दीवान मुहकमचद के साथ वारह हजार सैनिक देकर उसके साथ मदद के लिए भेज दिया। दोनों फौजे पृथक्-पृथक रास्तों से काश्मीर पहुँची। अतामुहम्मद भाग गया वजीर फतहखाँ ने शाहमहमूद के नाम पर काश्मीर पर कब्जा कर लिया और सिखों को एक कौड़ी भी न दी। दीवान मुहकमचंद खाली हाथ लौट गया।

महाराज फतहखाँ की इस धोखेवाजी से इतने नाराज हुये कि उन्होंने उसी समय अटक के हाकिम जहाँदाद को एक पत्र लिखा कि राजी से किला खाली कर जाओगे तो सुरक्षित वाल वच्चों और अपने सामान के साथ जा सकोगे। वरना विना राजी के भी अटक पर तो कब्जा किया ही जायगा। फकीर अजीजुद्दीन और दीवान देवीदास अटक का चार्ज लेने के लिये गये। वेचारा जहाँदाद घवरा गया और उसने किला खाली कर दिया। इतने ही समय में वजीर फतहखाँ काश्मीर का चार्ज अपने भाई अजीज खाँ के सुपुर्द करके अटक की ओर आ पहुँचा। अटक के पास ही खुजूर के मुकाम पर दोनों ओर से लड़ाई हुई किन्तु तव तक मुहकमचन्द भी मदद के लिये आ पहुँचा था। वजीर और उसका भाई दोस्तमुहम्मद दोनो वडी वहादुरी के साथ लडे किन्तु मुहकमचन्द के आगे उनकी पेश न गई। पठान सेनायें भाग निकलीं। पठानों पर सिखों की यह प्रथम शानदार विजय थी। यह घटना सन १८१३

के जौलाई मास की है। इस जीत का उत्सव लाहौर मे मनाया गया। महीने भर बराबर प्रमोद जारी रहे।

इसी साल के अक्टूबर मे महाराज ने फिर काश्मीर पर चढाई की तैयारी की। पहाड़ी राजाओं से खिराज वसूल करते हुये गुजरात के रास्ते से उनकी सेनाये काश्मीर मे घुसीं। जब सेनाये भम्मर और राजौरी से गुजरती हुई ठढा मे पहुँची तो पता चला बहरामगिला का पुल मुसलमानों ने तोड़ दिया है और वर्षा की वजह से बिना पुल के पार होना एक दम असंभव था। क्योंकि नदी की सतह समतल थोड़े ही थी। उन्होने राजौरी के सरदार से पूछकर दूसरे रास्ते से बहराम के किले पर तो कब्जा कर लिया किन्तु वर्षा की अधिकता से आगे नहीं बढ़े और वापिस लाहौर चले आये।

सन् १८१४ ई० मे महाराज ने फिर काश्मीर पर विजय पाने की इच्छा से तैयारी की और स्यालकोट मे सारी सेनाओं को इकट्ठा किया। दीवान मुहकमचन्द की राय यह थी कि पहले राजौरी मे रसद का काफी सामान इकट्ठा कर लिया जाय। तब काश्मीर पर हमला किया जाय। किन्तु उसकी राय पर ध्यान नहीं दिया गया। वह उस समय बीमार था। इसलिये उसने अपने लड़के रामदयाल को भेज दिया। राजौरी के हाकिम अगरखॉं ने महाराज को पूछ के गलत रास्ते पर डाल दिया। सेना का दूसरा भाग रामदयाल और दूसरे सरदारों के अधीन था। जिनमे हरीसिंह नलवा और श्यामसिंह अटारीवाले भी थे, आगे भी रवाना हुआ। पीरपचाल को पार करते हुये यह दल महापुर जा पहुँचा। यहॉं अजीमखॉं ने सामना किया किन्तु वह हार कर लौट गया। और अगले मुकाम शोपाम में सिख फौज को आगे बढने से रोक दिया। रामदयाल ने श्रीनगर के पास हट कर एक गॉंव मे महाराज के आने की प्रतीक्षा मे डेरा डाल दिये। उधर महाराज की फौज श्रीनगर की बजाय पूंछ जा पहुँची। वर्षा भी आ चुकी थी और रास्ता भी न मिला, अत महाराज फिर लाहौर लौट आये। लाहौर लौट कर कुछ फौज भाई रामसिंह को देकर रामदयाल की सहायता को भेजा किन्तु वह भी बहरामगिल मे चक्कर खाता रहा। उसे रास्ता मिला ही नहीं।

रामदयाल को जब यकीन हो गया कि बिना महाराज के आये ही अब तो लड़ना पड़ेगा तो वह और उसके साथी इस प्रकार बहादुरी के साथ लड़े कि दो हजार पठानों को ठिकाने लगा दिया। रहीमखॉं को लाचार होकर सुलह करनी पड़ी और उसने महाराज की भेट के लिये बहुत सा सामान दिया, जिसे लेकर रामदयाल वापिस लाहौर लौट आया। अब महाराज को दीवान मुहकमचंद की बात को न मानने पर पछताना पड़ा। यदि राजौरी मे रसद का सामान इकट्ठा किया हुआ होता तो इसी वर्ष मे काश्मीर पर कब्जा हो जाता। इसके कुछ दिनों बाद खबर मिली कि राजौरी और भम्मर के इलाकेदार भी बगावत पर उतर आये है। महाराज ने खुद अपने साथियों के साथ उस ओर का कूच किया। दीवान रामदयाल और सरदार दिलसिंह ने तुरन्त ही उन इलाकों में पहुँच कर विद्रोह को दबाया और राजोरी और कोटली पर अपना कब्जा कर लिया। उसके पास लगने वाला रामगढ़ियों का सारा इलाका भी इन सरदारों ने अपने कब्जे में कर लिया। यह समाचार काबुल पहुँच चुका था कि महाराजा रणजीतसिंह काश्मीर को विजय करने के लिये चल पड़े है। अत वजीर फतहखॉं अजीमखॉं की मदद के लिये एक भारी सेना लेकर हिन्दुस्तान में आ गया। महाराज ने उसे अटकाये रखने के लिये दीवान रामदयाल को आज्ञा दी कि वह सराय काला पर अपना डेरा जमा दे और फतहखॉं को इधर न बढ़ने दे। महाराज इस आशंका से लाहौर लौट आये कि कहीं पठान इधर विजित प्रदेशों मे उपद्रव न कर दें।

इधर महाराज लाहौर से पच्छिम के प्रदेशों को जीतने और जीते हुए लोगों से नजराना वसूल

करने मे अपनी शक्ति लगाते रहे। खजाने में भी इन दिनों मे वीसियों लाख रुपया इकट्ठा किया।

अग्रेज महाराज के वढ़ते हुए प्रभाव को वडी सतर्कता के देख रहे थे किन्तु वे उनके मार्ग में कोई रुकावट पैदा नहीं कर सकते थे। उन्हें भी अपनी स्थिति का आखिर खयाल था।

सन् १८१८ ई० में लाहौर के नये सूवेदार जवरखा और उसके हिन्दू वजीर वीरधर में झगडा हो गया। वीरधर उसी वर्ष लाहौर मे महाराजा साहव के पास आगया और उसने महाराज को काश्मीर विजय के तमाम तरीके वता दिये। महाराज ने इस वार अपने सैन्य दल को तीन भागों में विभक्त किया। मिश्र दीवान, कुँवर खडगसिंह और महाराज खुद एक-एक भाग के सेनापति वने। दीवानचन्द ने सव से पहले राजौरी किले को अपने हाथ मे लेना उचित समझा। क्योंकि काश्मीर की राजधानी पर कब्जा करने से पहले वह राजधानी के पास ही मजवूत स्थान को अपने वश में करना उचित समझता था। राजौरी का हाकिम अजीतखां तो भाग गया। उसके लड़के रहीमखॉ ने सन् १८१६ के मार्च में किले की चावी दीवान चन्द के सुपुर्द कर दी।

राजौरी पर कब्जा करने के वाद दीवानचन्द ने पूछ पर हमला किया। यहॉ के हाकिम जवर्दस्तखा ने आधीनता स्वीकार करली। यहा से पीर पचाल होते हुए दीवानचद ने श्रीनगर की ओर प्रस्थान किया। तारीख १६ जून को सरायअली मे वारह हजार सिख इकट्ठे होगये। तारीख ५ जौलाई को शोपिन के मुकाम पर जवरखॉ ने आकर सिखों का मुकाविला किया। डटकर लडाई हुई। इतने मे कुँवर खडगसिंह और महाराजा रणजीतसिंह दोनों के दल आगये। पठान इन्हे देखकर मैदान छोड़कर भाग गये। जवरखॉ खुद भी वहुत जख्मी हुआ। सिख सेनाओं ने वढकर राजधानी पर कब्जा कर लिया। सिपाही चाहते थे कि कि शहर को लूट ले किन्तु सेनापतियों ने इजाजत नहीं दी।

काश्मीर विजय के उपलक्ष मे लाहौर लौटकर महाराज ने विजयोत्सव मनाया। तीन दिन तक लाहौर और अमृतसर में खूव समारोह रहा। इसी अवसर पर काश्मीर प्रवन्ध के लिये महाराज ने दीवान मुहकमचन्द के लड़के मोतीराम को काश्मीर का सूवेदार नियुक्त किया और प० वीरधर को ५३ लाख रुपया सालाना में लगान उगाही का ठेका दे दिया। जवाहरमल को दस लाख रुपये सालाना पर शाल वनाने का भी इसी समय ठेका दिया। मोतीराम ने काश्मीर की सूवेदारी अधिक समय तक नहीं की। वह काशी जी को चला गया। अत महाराज ने सरदार हरीसिंह नलुआ को जिन्होंने कि पिछले ही वर्ष दुर्वन्ध को फतह किया था। काश्मीर के प्रवन्ध के लिये मुकर्रिर किया। सरदार हरीसिंह जितने वहादुर थे। उतने योग्य शासक नहीं थे। दीवान मोतीराम भी काशी से लौट आया था। अत महाराज ने फिर मोतीराम को ही काश्मीर भेजा जिसने कि सन् १८२६ तक वहॉ का इन्तजाम खूवसूरती के साथ किया।

दीवान मोतीराम का सारा ही परिवार खालसा राज में अच्छे ओहदों पर मुकर्रिर था। उनका वड़ा लड़का जालन्धर पर और छोटा गुजरात पर गर्वनरी करता था। ध्यानसिंह इनसे जलता था। इसलिये उतने इन तीनों ही के खिलाफ महाराज के कान भरे और इन्हें नुकसान भी पहुँचवाया।

काश्मीर में महाराजा रणजीतसिंह जी के स्वर्गवास तक नौ हाकिमों ने हाकिमी की। विजय के वाद ही मिश्र दीवानचन्द के हाथ ही प्रवन्ध रहा था। जो कुछ ही महीने वाद वदल दिया गया। दीवान मोतीराम ने दोनों वार मिलाकर तीन साल तक प्रवन्ध किया। हरीसिंह नलवा ने दो वर्ष, दीवान चुन्नीलाल ने तीन वर्ष दस माह, भीमासिंह ने एक साल, कुँवर शेरसिंह ने दो साल दो माह और कर्नल मिहासिंह ने सात साल चार दिन काश्मीर की हाकिमी की। इस २७ साला सिखों की काश्मीरी हकूमत के लिये मुहम्मद

दीन फौक ने अनेक मुसलमान तारीख लेखकों के आधार इस पकार वर्णन किया है :—

"सिख सिपाहियों ने काश्मीर मे ऊधम मचाना शुरू कर दिया था। दीवान देवीदास ने महाराज के पास शिकायत भेजी कि काश्मीर का इंतजाम निहायत खराब है। झगड़े-फिसाद जारी हैं और सिख परेशान हैं। महाराजा रणजीतसिंह जी ने हुक्म दिया कि दीवानचन्द लाहौर आ जाय और दीवान मोतीराम काश्मीर जाकर प्रबन्ध करे। दीवानचन्द महाराज को खुश करने के लिये काश्मीर से पचास लाख रुपया नकद सैकड़ों घोड़े ले गया। जो उसने जमीदारों से लिये थे। महाराजा रणजीतसिंह समझते थे कि दीवानचन्द एक बहादुर आदमी है शासक नहीं" इसलिये उन्होंने इतनी भेट के बाद भी दीवानचन्द को काश्मीर की हाकिमी तो न दी किन्तु उसे 'जफरजग बहादुर' का खिताब अवश्य दिया।

दीवान मोतीराम ने काश्मीर का चार्ज सभाला। वह एक मिलनसार और मेल पसन्द आदमी था किन्तु वीरधर उसके किए कराए पर पानी फेरता रहता था। 'फौक' लिखता है। "वीरधर ने मुसलमानो को बहुत तंग किया। वह पठानो से भी कठोर साबित हुआ। उसने मस्जिदों के दरवाजे बन्द करा दिये। अजा देना और गौकशी करना उसने कतई बन्द कर दिया। बहुत सी मस्जिदे खालसा मे शामिल होगईं। एक सग दिल सिख फौलादसिंह नाम खानकाह मुहल्ला के अनहदाम पर भी आमादा होगया। किन्तु वीरधर ने झगड़े की आशका से उसे रोक दिया। ''जामा मसजिद के दरवाजे भी वीरधर के हुक्म से बन्द करा दिये गये। इन्हीं हालात की मौजूदगी मे दीवान देवदास कश्मीर से लाहौर आया और वहा की कैफियत बयान की। " ''''महाराज ने मोतीराम को वहा से बुलवा लिया और सरदार हरीसिंह को प्रबन्ध के लिये काश्मीर भेजा।"

प० वीरधर के सम्बन्ध की यह शिकायत कहा तक झूठी है इस पर तो हमें कुछ नहीं कहना किन्तु वह मालियाना वसूल करने मे बड़ा होशियार था। यह हम अवश्य जानते हैं। इसीसे खुश होकर महाराज ने उसे सन् १८२२ ई० मे दशहरा के अवसर पर एक खिलअत—चोगा, कलगी, माला, कमखाब का दुशाला और सोने का कड़ा देकर सम्मानित भी किया था।

सरदार हरीसिंह ने काश्मीर पहुँचकर सबसे पहले तो सिर फिरे लोगों को ठीक किया। इसके साथ इर्दगिर्द के इलाकों पर भी अधिकार जमाया। बारामूला के मुसलमान जमीदारों के साथ उसे लड़ाई भी लडनी पड़ी। क्योंकि वे मालियाना देने से कतई बरी रहना चाहते थे। उसने खल्ला और बीमा के गुलामअली को भी काबू मे कर लिया जोकि एक बड़ा उद्दड मुसलमान जागीरदार था। इसके बाद हरीसिंह ने पखली और धमतोर के इलाके भी कब्जे मे कर लिये पूंछ और राजौरी के हाकिम खिराज नहीं देते थे। उन्हे भी हरीसिंह ने खालसा राज्य मे मिला लिया। इन खबरों को सुनकर महाराजा रणजीतसिंह बड़े खुश हुये।

'वीरधर' की फिर भी शिकायते जारी थीं। इसलिये महाराज ने उसे हिसाब दिखाने के लिये लाहौर बुलाया। उसका हिसाब निहायत साफ निकला। इससे महाराज बड़े खुश हुये और वीरधर को उन्होंने एक हाथी मय जजीर के और बहुत सा इनाम दिया। उसका ओहदा भी बढ़ाने का इरादा जाहिर किया किन्तु कुछ ही दिनों मे उसके ऐसे पत्र पकडे गये जो वह पहाड़ी राजाओं को उभारने के लिये लिखा करता था। अत महाराज ने उसे उस स्थान से अलग कर दिया। सरदार हरीसिंह से काश्मीर के मुसलमान एक दम से नाराज हो गये और उन्होंने कुछ हिन्दुओं को भी अपने साथ मिलाकर सरदार हरीसिंह की शिकायत कराई। इसलिये महाराज ने फिर उस जगह मोतीराम को ही भेज दिया और हरीसिंह को वापिस बुला

लिया। मोतीराम का कुछ ही समय बाद लड़कामर गया। अतः वह काश्मीर से वापिस आगया।

मोतीराम की वापिसी पर महाराज ने कश्मीरी की सूबेदारी दीवान चुन्नीलाल को सौंपी और किलेदारी और तहसीलदारी सरदार गुरमुखसिंह को बख्शी। लेकिन थोड़े ही दिनों बाद यह आपस में ही तनातनी में लग पड़े। इससे इतजाम और वसूली दोनों को हानि पहुँची। इनके दो वर्ष के प्रवन्ध में खराबी ही खराबी पैदा हुई। इसलिये महाराज ने इन दोनों को मौकूफ कर दिया और लाहौर बुला लिया।

दीवान चुन्नीलाल के बाद महाराज ने कृपाराम को जोकि मोतीराम का ही लड़का था। काश्मीर में प्रबंध के लिये मुकर्रिर किया। कृपाराम ने वहाँ के मुसलमानों को भी बना लिया। वसूलयाबी में गुलामउद्दीन नाम के एक शख्श से मदद लेता। इससे मुसलमान नाराज नहीं हुए। कृपाराम ने श्रीनगर को तरक्की देने के काम भी किये। भूकम्प के समय उसने मालगुजारी माफ कराई। गरीबों को मदद पहुँचाई। कई बाग और बगीचे लगवाये जिनमें रामबाग काफी मशहूर है।

राजा ध्यानसिंह की साजिशें कृपाराम के खिलाफ बराबर चल रही थीं। महाराज ध्यानसिंह की बातों पर ध्यान भी देते थे। कुछ कृपाराम से भी गलतियाँ हुई। इसलिये उन्होंने कृपाराम को काश्मीर से हटा लिया और भीमासिंह को मुकर्रिर किया।

सरदार भीमासिंह जिन दिनों काश्मीर पहुँचे। वहाँ काफी उपद्रव उठ खड़े हुए थे। जबरदस्तखाँ ने कई जागीरदारों को भड़का रक्खा था। भीमासिंह ने महाराज को लिख कर सहायता मगाई और पहले तो ऐसे लोगों को ठीक किया। फिर बाद मे शाति स्थापना के कार्य किये किन्तु मुसलमान जमींदार उससे राजी न रह सके। उन्होंने काफी शिकायतें भीमासिंह की महाराज के पास भेजीं। समय पर रुपया भी लाहौर नहीं पहुँचा। इसलिये महाराज ने भीमासिंह को विवश होकर काश्मीर से हटा लिया और कुंवर शेरसिंह को वहाँ भेजना पड़ा।

कुंवर शेरसिंह के लिये 'फौक' ने लिखा है। "कुंवर शेरसिंह चाहे कितने ही अच्छे और बहादुर हों पर आखिर राजकुमार थे और वह काश्मीर की मस्ती में भूल गये'। उन्होंने अपने अधिकार विशाखासिंह को सौंप दिये और आप रंगरेलियों में डूब गये। विशाखासिंह ने मालगुजारी वसूल करने में सख्ती से काम लिया। लोगों को लगान न देने की आदत तो काफी थी। विशाखासिंह की सख्तियों ने वह एक दम उसके दुश्मन हो गये। वीरधर के भाई गनेश पडित ने भी मुसलमान जमींदारों की तरह सरदार विशाखासिंह की महाराज से बुराइयां की। इससे महाराज ने नाराज होकर विशाखासिंह को हटा दिया और जमादार खुशालसिंह को शेरसिंह का सहयोग देने के लिये मुकर्रिर कर दिया और आप भी कुछ दिन राजौरी आदि इलाकों का दौरा करते रहे।

अंत में काश्मीर का कुल प्रवन्ध मिहासिंह कुमेदान को सौंपा गया। जिसने बड़ी खूबी से लगातार सात साल तक प्रवन्ध किया। उसने बड़ी-बड़ी रकमें मालिकाने और खिराज की वसूल करके ठीक समय महाराज के पास भेजीं। मिहासिंह जी के अच्छे शासन के सम्बन्ध मे वहाँ पर अनेकों कहावतें और दंत कथायें अब तक सुनी जाती हैं। उनमें से दिलचस्प होने के कारण दो कथाये हम यहाँ देते हैं। (१) बढ़ई लोगों ने एक पेड़ का काटना शुरू किया। उस पर कौवे का घोंसला था। कौवा कांव-कांव करता हुआ सरदार मिहासिंह के महल के पास पहुँच गया। उसकी कांव-कांव की तरज से सरदार मिहासिंह ने अनुभव किया कि इसको किसी ने सताया है। उन्होंने एक सरदार को हुक्म दिया कि जाओ इन कौवे के पीछे-पीछे जाकर जंगल मे देखो, इसे किसने सताया है। कौवा उड गया। सवार भी उसे देखता हुआ जगल में

पहुँचा। वहा जाकर देखा कि कौवा एक पेड़ पर बैठ कर चिल्लाने लगा जिसे कि बढ़ई काट रहे थे। सवार ने पेड़ काटना बन्द कर दिया। (२) दो रईस थे पड़ौसी-पड़ौसी। दोनों के एक-एक घोड़ी थी। एक की घोड़ी ने बछेड़ा दिया। वह दोनों घोड़ियों के नीचे जाकर उनके स्तन चूसता रहता। प्रकृति के नियमानुसार दूसरी घोडी के भी दूध उतरने लगा। बछेड़ा अच्छा था। अब तो उस रईस की नियत बिगड़ गई। यह कहने लगा बछेड़ा मेरी ही घोड़ी का है। मामला बढ़ते-बढ़ते सरदार मिंहासिंह के पास पहुँचा। दोनों ने कहा मेरी घोड़ी इसे पिलाती है और इसीलिये पिलाती है कि मेरी घोड़ी ने इसे जन्म दिया है। सरदार मिंहासिंह उन्हे नदी किनारे ले गये। घोड़ियों को तो किनारे पर खड़ा कर दिया और बछेड़े को नाव मे चढ़ा दिया। बछेड़ा नदी के बीच मे पहुँच कर घबराहट से हिनाहिनाया। किनारे पर खड़ी हुई घोडियों मे से एक तो किनारे पर ही हिनहिनाती रह गई और एक पानी को चीरती हुई बछेड़े के पास पहुँच गई। फैसला हो गया। सभी लोगों ने सरदार मिंहासिंह के इन्साफ की प्रशसा की।

गर्ज यह कि जनरल मिंहासिंह जी का बहुत ही अच्छा प्रबन्ध रहा। जैसा पिछली कई सदियों से काश्मीर निवासियों को देखने मे नहीं आया था।

काबुल का अमीर दोस्तमुहम्मद इस बात के लिये प्राणपण से चेष्टा कर रहा था कि शाहशुजा की हुकूमत फिर से काबुल मे न जमने पाये। एक ओर उसका यह प्रयत्न था। तो दूसरी ओर वह यह भी चाहता था कि पेशावर सिख साम्राज्य मे न रह कर काबुल के नीचे आ जाय। अपने उद्देश्य की पूर्ति के लिये वह सरहद के मुसलमान रईसों मे सिखों के खिलाफ प्रचार भी करा रहा था। इसका फल यह हुआ कि सन् १८३४ ई० मे दिलासाखां ने वन्नू के इलाके मे उपद्रव खड़ा कर दिया। दिलासाखा को उम्मीद भी थी कि दोस्तमुहम्मद उसकी मदद करेगा और वह खड़ा भी दोस्तमुहम्मद के संकेत पर ही हुआ था। उसके विद्रोह को दबाने के लिये सरदार शामसिह और बख्शी तारासिंह ने तैयारी की और गढ़ी नामक स्थान पर उसे जा दबाया। दिन के मुहासरे के बाद रात के समय जब कि सिख सेना सो रही थी। पठानों ने हमला कर दिया। जिसमे कई सौ आदमी मारे गये। इस नुकसान के कारण शामसिंह और तारासिंह ने हट जाने की तैयारी की किन्तु इसी समय मे राजा सुचेतसिंह सिख सेनाओं को लेकर पहुँच गये। दिलासाखा के हौसले पस्त होगये और उसने अपने अपराध की माफी माग ली।

पेशावर

अब तक पेशावर और उसके आस पास के इलाके महाराजा रणजीतसिंह जी के माडलिक थे। वहीं के पठान वहाँ के स्थानीय हाकिम थे किन्तु इस घटना के बाद महाराजा साहब ने पेशावर और उसके पास के उन समस्त इलाकों पर कब्जा कर लेना निश्चय कर लिया जो कि भारत के अन्दर और अफगानिस्तान की सीमा से इधर की ओर थे। ऐसा किये बिना इस बात का अन्देशा हर समय रहता था कि न जाने कब इन प्रदेशों के हाकिम काबुल से अपना सम्बन्ध जोड़ लें।

इन दिनों सरदार हरीसिंह नलवा यूसफजई इलाके मे थे। उन्हे महाराज ने आज्ञा पत्र भेजा कि कुँवर नौनिहालसिंह के साथ मिलकर पेशावर पर कतई कब्जा कर लो। अप्रैल के महीने मे यह सेनाये पेशावर पहुँच गई। इतने सिख दल को देखकर पेशावर का हाकिम घबरा गया। वह अब तक के बाकी खिराज का बहुत सा अश और अनेक प्रकार के तोहफे लेकर कुवर नौनिहालसिंह की सेवा मे हाजिर हुआ। कुवर नौनिहालसिंह ने खिराज की रकम तो रख ली किन्तु भेंट मे आये हुये घोडे और सारा सामान वापिस कर दिया। इस रवैये को देखकर सुलतान महमूद हाकिम पेशावर और अन्य पठान सरदार

घबरा गये। उन्होंने समझ लिया कि हमारा भुलावा अब अधिक काम नहीं दे सकता है। अत. उन्होंने अपने स्त्री बच्चों को मय जरूरी और कीमती सामानों के काबुल की ओर रवाना कर दिया।

सरदार हरीसिंह ने भी पठानों की तरह ही एक चाल चली उन्होंने महमूद के पास खबर भेजी कि कुंवर नौनिहालसिंह कल सवेरे भीतर घुस कर सैर करना चाहते हैं। हाकिम वास्तविक बात को पहले ही समझ गया था। अत' रात को ही अपने प्राण लेकर पहाड़ों मे भाग गया। प्रात सिख सेनाओं ने किले पर अपना अधिकार कर लिया।

पेशावर पर सिखों का कब्जा हो गया किन्तु महाराजा रणजीतसिंह जी निश्चित नहीं हुये। वे बराबर पेशावर की ओर फौजे भेजते रहे क्योंकि वे खूब जानते थे। जब भी और किसी भी तरह पठानों का मौका लगेगा, पेशावर पर आक्रमण करेंगे। पेशावर तब तक सुरक्षित नहीं है। जब तक कि पठानों की शक्ति क्षीण न हो जाय और उन्हे लड़ाई में एक भारी जन-धन का घाटा न उठा लेना पडे। बहुत कुछ सैनिक दल भेजने के बाद उन्होंने कुछ ही दिनों बाद खुद भी पेशावर की ओर कूच कर दिया।

उधर दोस्तमुहम्मद रईस काबुल को जब यह खबर लगी तो बडा चिन्तित हुआ। उसने अंग्रेजों को लिखा कि आप अपना प्रभाव डालकर महाराजा रणजीतसिंह जी से पेशावर उसके हाकिम सुलतान महमूद को वापिस करा दीजिये। अंग्रेज दिल में तो यह नहीं चाहते थे। कि महाराजा रणजीतसिंह जी का प्रभाव बढ़ जाय किन्तु उस समय इतनी शक्ति भी नहीं रखते थे कि उस सन्धि के वे खिलाफ कुछ कर सके। जो महाराज को उत्तर पच्छिम मे राज्य बढ़ाने की इजाजत देती थी। अंग्रेजों के यहाँ से सहायता देने में असमर्थता के जवाब से दोस्तमुहम्मद को दुख अवश्य हुआ किन्तु वह निराश नहीं हुआ। उसने जबरखा को ईरान के बादशाह के पास भेजा कि वहाँ से एक बड़ी सेना लाओ। इधर उसने अपनी सेनाओं को तैयार किया और जलालाबाद आ पहुँचा। जलालाबाद से फौजे लेकर उसने पेशावर की ओर कूच किया। इस समय ईद आ चुकी थी। इसलिये 'अली बागान' मुकाम पर उसने ईद मनाई और घुटने टेक कर खुदा से दुआ की "ऐ परविरदगार मुझ मक्खी की इस सिख हाथी से रक्षा कर।" रास्ते मे उसने मजहब के नाम पर पठानों को उभाड कर और भी लोग बढा लिये। खैबर को पार करके उसने सिखरान नामक स्थान पर डेरा डाले और अपनी सेनाओं का निरीक्षण किया तथा उचित हिदायते भी दीं।

उधर महाराजा रणजीतसिंह जी भी पेशावर आ पहुँचे थे किन्तु न तो वे अभी तक अपनी सेना के मोरचे बाध सके थे और न उचित हिदायतें ही दे सके थे। इसलिये दोस्तमुहम्मद को इन पाच दिन अटकाये रखने के लिये उसके साथ महाराज ने सुलह के पैगाम भेजना और जवाबों पर विचार करना शुरू कर दिया।

दोस्तमुहम्मद चकमे मे आ गया और वह अपने बल पर अभिमान भी करने लगा। इस प्रकार वह असावधान रहा और जो लडाई के लिये उसे करना चाहिये था। उससे लापरवाह हो गया।

महाराज ने अपनी सेनाओं का अर्द्ध व्यूह बनाया। उन्हे पाच भागों मे विभाजित करके इस प्रकार से लगाया कि सेनाओं का अर्द्ध चन्द्र बन गया। दोनो बाजुओं पर सामने रिसाला इनके पीछे पैदल और फिर रिसाला। बाजुओं से शत्रु पर सवार आक्रमण करें और उनके स्थान पर पैदल [illegible] तैयार रहें। सामने के सवार उसे आगे बढ़ने से रोकें। दाये बाये बाजुओं के सेनापति सरदार [illegible] और मि० हारमेन को मुकर्रर किया।

जब दोस्तमुहम्मद ने इस प्रकार अपने को घिरा देखा तो वह घबरा गया। उसे [illegible]

हो गया कि मेरी जीत असंभव है। अतः उसने भी एक चाल चली। अपने भाई सुलतान महमूद के जरिये फकीर अजीजुद्दीन और हारमैन को सन्धि सम्बन्धी कुछ ऐसी बाते तय करने के बहाने से बुला लिया। जिनसे कि पेशावर पर बिना ही रक्तपात के सर्वतन्त्र महाराजा रणजीतसिंह जी का मान लिया जाता। ये दोनों ही सेनापति उसकी चाल मे आकर उसके डेरे में चले गये जहाँ उन्हे कैद कर लिया। दोस्तमुहम्मद उन्हें अपने भाई सुलतान महमूद के हवाले करके खुद भाग गया। उसने चलते समय फकीर अजीजुद्दीन से कहा था काफिर के साथ दगा करना मैं धर्म समझता हूँ। तुम एक गैर मुस्लिम की मदद करते हो, इसलिये काफिर ही हो।

सिख सेना ने जब देखा कि यह दगा हुई तो वह बाज की तरह झपट कर अमीर के डेरों पर पड़ी। पठानों की लाश पर लाश बिछाकर सेनाओं ने अपने नायकों को छुड़ा लिया।

काबुल में जब यह खबर दोस्तमुहम्मद को लगी कि वे दोनों सेनापति उसके भाई से छुड़ा लिये गये हैं तो उसे बड़ा रन्ज हुआ और हाथ मल कर रह गया। किन्तु बेचारा अब कर क्या सकता था।

दोस्तमुहम्मद के भाग जाने पर महाराज ने पेशावर किले की मरम्मत कराई और वहाँ का प्रबंध सरदार हरीसिंह नलुआ के हाथ छोड़कर आप लाहौर चले आये।

कहा जाता है कि महाराजा रणजीतसिंह जी के एक सेनापति सरदार जोरावरसिंह ने सन् १८३४ के मध्य मे लद्दाख और तिब्बत के प्रदेशों तक धावा किया था। जोरावरसिंह ने महाराजा साहब को यह भी कहा था कि यदि आप आज्ञा दे तो मैं चीन तक धावा मार सकता हूँ किन्तु महाराज ने उसे हँसकर ऐसा करने से रोक दिया।

पेशावर मे रहते हुये सन् १८३७ ई० की सर्दियों मे सरदार हरीसिंह जी ने जमरूद को भी जीत लिया और वहाँ पर अपने पोषक पुत्र महासिंह को मुकर्रिर कर दिया। जमरुद के सिखराज्य मे मिल जाने से पठानों को बड़ा दुख हुआ। दोस्तमुहम्मदखाँ तो इतना दुखी हुआ कि उसने इश्तहार निकलवा दिया कि हमारा दीन सिखों की वजह से खतरे मे है। हमे इनका संयुक्त मोर्चे से मुकाबला करना चाहिये। हाजी अब्दुलरजाक दस हजार मुलखे पठान लेकर जमरूद पर चढ़ आया। दोनों ओर से काफी लड़ाई हुई। जिसमे सिख भी काफी काम आये क्योंकि रात के समय उन पर पठानो ने अचानक छापा मारा। फिर भी वे लोग हरीसिंह के सामने ठहर न सके और भाग गये। सरदार हरीसिंह पेशावर लौट आये। जमरूद में उनके लड़के की कमान में ही एक सेना उसके प्रबन्ध के लिये छोड़ दी गई थी।

सरदार हरीसिंह तो लौट कर पेशावर चले गये किन्तु इतने ही समय मे दोस्तमुहम्मद खैबर दर्रे को पार करके आगया और उसने जमरूद का घेरा दे लिया। महासिंह भी हिम्मत के साथ लड़ता रहा। उसने अपने पिता के पास पेशावर भी इस अमर की सूचना देदी। अमीर काबुल ने महासिंह से किला खाली करने को बहुत कहा किन्तु महासिंह ने किला हर्गिज खाली नहीं किया। हालाकि रसद का सामान किले मे बीत चुका था। पानी का भी बड़ा घाटा था किन्तु वह घबराया नहीं। आखिर दोस्त मुहम्मद ने अपनी अपनी सारी शक्ति लगा कर किले की एक दीवार को तोड़ दिया। पठान फिर भी किले में घुसने से हिचकने लगे। महासिंह ने भी अपनी सारी ताकत उधर ही लगा दी। ज्योंही पठान उधर से आगे बढ़े। महासिंह के सैनिकों ने बन्दूकों और तोपों से उनके सीनों पर गोले गोलियों की ऐसी वर्षा की कि पठानों का दल वापिस लौट पड़ा। उन्हे भारी हानि उठानी पड़ी। दोस्तमुहम्मदखाँ इस बात से भी खुश था कि चलो किले की दीवार तोड़ तो दी गई है। प्रवेश आज न सही कल हो जायगा।

किन्तु इतने में ही सरदार हरीसिंह अपने दल वल सहित आ गया। अब दोनों ओर से जान हथेली पर रख कर युद्ध हुआ। आखिर पठानों के पाँव उखड़ गये। सरदार शेरसिंह ने उनका पीछा किया और अली मस्जिद तक उन्हें खदेड़ा। पठानों की १४ तोपे और बहुत सारा सामान उनके हाथ लगा। इस लड़ाई में सरदार हरीसिंह सख्त जख्मी हुये। उनके साथी उन्हे हाथी पर विठा कर जमरूद ले आये।

उनके वेटे महासिंह ने इस समय भी वड़ी चतुराई से कार्य लिया। उसने लाहौर तो खवर भिजवा दी कि सरदार हरीसिंह का अत्यधिक गहरे घावों के कारण देहान्त हो गया किन्तु अपने सैनिकों को इस वात का उस समय तक पता नहीं चलने दिया जव तक कि लाहौर से सेना और सेनापति न आ गये। क्योंकि वह समझता था सैनिकों का साहस टूट जायगा और इलाके मे यह खवर फैल गई तो पठान टिड्डी दल की भाँति जमरूद को घेर लेंगे।

महाराजा रणजीतसिंह जी ने जव वह समाचार सुना तो वे स्तब्ध रह गये और एक दम उनकी आँखों से आँसू निकल पडे। वास्तव में सरदार हरीसिंह एक अनुपम वीर थे और साथ ही स्वामि भक्त भी वे पूरे थे।

सरदार हरीसिंह का वड़ा धूमधाम से अत्येष्टि सस्कार किया गया। जिसमें सिख दरवार के सभी सरदार शामिल हुए। इसके वाद महाराज के हुक्म से राजा दयालसिंह की देख रेख में जमरुद के इलाके मे एक और किला वनाया गया। इस किले के वनाने मे समस्त सिख सेना और सरदारों ने अपने हाथ से मिहनत की। इस किले का नाम फतहगढ़ रक्खा गया।

जमरूद का प्रवंध राजा गुलावसिंह और जनरल टटेवल साहव को सौंपकर महाराज लाहौर वापिस आ गये। जहाँ उन्होंने नैपाल दरवार से आये हुये तोहफे स्वीकार किये।

इसी साल भादों के महीने मे खवर मिली कि मुल्तान में पठान विद्रोह करने की तैयारी कर रहे हैं। रजियाला नाम के गाँव में विद्रोही इकट्ठे हो रहे हैं। वैरामखां मजारी इनका नेता वना हुआ है। महाराज ने सावनमल को लिखा कि यह विद्रोह तुम्हारी ही लापरवाही से होगा। अत इसे इसी समय न दवाया गया तो इसके जिम्मेवार तुम होगे। सावनमल इस हुक्म के पहुँचते ही सेनायें लेकर संदिग्ध इलाके में पहुंचा। और विद्रोह को दवा दिया। इस उपलक्ष मे महाराज ने उसे वहादुर का खिताव दिया। सावनमल ने मजारियों के रोजान और कान नामक स्थानों पर भी कब्जा कर लिया। यह घटना सन् १८३६ ई० की है।

सन् १८३७ ई० में ईरान का वादशाह मर गया। कावुल के अमीर दोस्तमुहम्मद को उससे हर समय मदद की आशा रहती थी। उसने देखा कि अब विना रूस से दोस्ती किये काम नहीं चलेगा। आखिर कोई भी तो मददगार चाहिये ही। उसका ऐसा भी खयाल था कि रूस से दोस्ती जोड़ कर सिखों को दवाया भी जा सकेगा। अत उसने रूस के साथ पत्र व्यवहार करना आरम्भ कर दिया। अंग्रेज इस वात को कतई पसंद नहीं करते थे कि हमारे सिवा अन्य किसी भी यूरोपियन शक्ति का प्रभाव भारत की ओर वढे। इसलिये वे यह भी पसद नहीं करते थे कि भारत का पड़ोसी अफगानिस्तान रूस से दोस्ती पैदा करे।

शाहशुजा को सहायता

पहले तो उन्होंने दोस्तमुहम्मद को समझाया किन्तु मामला वनता न देखकर उन्होंने दोस्तमुहम्मद को कावुल की गद्दी से हटा देना ही मुनासिव समझा किन्तु अकेले उन्हे यह काम कठिन दिखाई देता था अत महाराजा रणजीतसिंह जी के पास मि० मैकनाटन वारनिस को इस सम्वन्ध मे वातचीत करने के

लिये भेजा। जिसने महाराजा के सामने काबुल की गद्दी से दोस्तमुहम्मद को हराकर शाहशुजा को बिठाने का प्रस्ताव रक्खा। राजा ध्यानसिंह इस पक्ष मे नहीं था कि काबुल पर चढ़ाई करने में हम लोग अंग्रेजों का साथ दें किन्तु महाराज राजी हो गये। सिख सरदारों ने महाराज के सामने यह बात रक्खी कि कावुल पर चढ़ाई तो की जाय किन्तु अंग्रेजों की कोई मदद न ली जाय। लेकिन बात महाराज की रही।

इधर महाराज ने शाहशुजा के साथ बातचीत करना शुरू किया। उसने लिखा कि मैं दो लाख रुपया और पचास घोड़े[1] सालाना महाराज को इस एहसान के एवज मे अपनी जिन्दगी भर देता रहूँगा। यह बात अंग्रेजों की मर्जी के विरुद्ध थी क्योंकि वे सिर्फ जलालाबाद महाराज को दिलाना चाहते थे। किन्तु अब इस तरह समझौता हो जाने पर वे कर भी क्या सकते थे। नवम्बर मे अंग्रेजी सेनायें फीरोजपुर मे इकट्ठी हुईं। महाराजा रणजीतसिंह और जनरल आकलेण्ड की यहीं मुलाकात हुई।

शाहशुजा, अंग्रेज और सिखो की लगभग अठारह हजार संयुक्त सेना ने अफगानिस्तान की भूमि पर ज्यों ही कदम रक्खा। दोस्तमुहम्मद काबुल को छोड़कर भाग गया। दुर्दान्त पठानों के मुल्क में इस प्रकार सिखों का सहज ही दबदबा बैठ गया। कहा जाता है शाहशुजा बराबर महाराज के पास निश्चित भेंट भेजता रहा।

सन् १८३६ ई० मे महाराजा रणजीतसिंहजी का अंतिम समय आगया। लकवे से उनका शरीर सुन्न होगया। हालत यह हुई कि उन्हें बोलने चालने मे भी कठिनाई होने लगी। इशारों से राज्य कार्य में सहायता देने लगे। बहुत इलाज कराया गया किन्तु जब आराम होने की कोई सूरत दिखाई नहीं दी तो उन्होंने अंतिम समय जान कर बड़ा दान पुण्य करना आरम्भ कर दिया। हजारों रुपये प्रति दिन कंगालों को बांटे जाने लगे। पच्चीस लाख रुपये की सम्पति और बाईस लाख नकद साधु, फकीरों, धर्मशालाओं, गुरुद्वारों और अन्य धार्मिक संस्थाओं को दिये गये। कहा जाता है। इस प्रकार एक करोड़ रुपये का दान पुण्य हुआ। महाराज की इच्छा थी कि कोहनूर हीरे को भी अमृतसर के हरिमंदिर जी के लिये दान कर दें किन्तु तोशाखाने के अधिकारी बेलीराम ने अड़ंगा डाल कर इस इच्छा को पूरा नहीं होने दिया।

अंतिम समय

१८३६ ई० की २७ वीं जून को महाराज इस ससार से प्रस्थान कर गये। उनके शव को पलग से उतारने के लिये दस हजार रुपयों का एक चबूतरा बनाया और दस हजार के शाल उन रुपयों पर बिछाये गये। उन पर महाराज के शव को रख कर जनता को उनके अंतिम दर्शन कराये गये। सारा लाहौर उनके शव-दर्शन को उमड़ पड़ा। शोक और मातम की घटाये छा गईं।

किले के बाहर रावी के तट पर[2] उनका संस्कार किया गया। उनके साथ उनकी कई रानिया सती भी हुईं।

आज कल वह समाधि जो महाराजा साहब की भस्मी के फूल चुन कर बनाई गई थी महाराजा रणजीतसिंह जी की समाधि के नाम से मशहूर है। जो विशाल गुरुद्वारे की चहार दीवारी के भीतर है। जहाँ अनेकों दर्शनार्थी प्रति वर्ष पहुँच कर उस समाधि पर अपनी श्रद्धाजलि चढ़ाते हैं।

१ इसके अलावा सात फार्सी टट्टू, ग्यारह फारसी तलवार, पच्चीस अच्छे खच्चर, एक सौ एक फारसी कालीन फल, मेवा, साटन के थान आदि भी उसने प्रतिवर्ष देना स्वीकार किया था।

२ उन दिनों रावी वहाँ तक हिलोरें लेती थी।

महाराजा रणजीतसिंह पर एक सरसरी दृष्टि

महाराजा रणजीतसिंह जी एक अनवरत योद्धा थे। बालकपन से ही उन्हें लड़ाइयों मे उतरना पडा और जीवन के अन्तिम वर्ष तक उन्हे लड़ना पडा। भारत मे उनका वही स्थान है जो यूरोप में नैपोलियन और सिकन्दर महान का है। एक साधारण स्थिति के सरदार के घर मे जन्म लेकर वे राजा ही नहीं महाराजा बन गये। उनके प्रताप की धाक भारत से बाहर फ्रास, रूस और इंगलैंड तक पहुँच चुकी थी। उनके नेतृत्व मे सिखों ने वह बात करके दिखाई थी, जो पिछले एक हजार वर्ष के बाद किसी ने नहीं दिखाई थी। काबुल तक दुर्दान्त पठानों को उनके ही समय मे खदेडने की भारत देश ने शक्ति प्राप्त की थी। एक दिन था कि काबुल का ताज उनके हाथ में था जिसे वे चाहते, बादशाह बनाते। महाराजा कनिष्क के बाद भारत के इतने बडे भू-भाग पर महाराजा रणजीतसिंह का ही प्रभुत्व रहा था।

बुद्धि उनकी विलक्षण थी। कब किसका किस प्रकार उपयोग करना है? इस बात को वे खूब जानते थे। राज्य के बढाने और अनेक सहायक पैदा करने के लिये उन्होंने किसी मौके को नहीं चूका। उन्होंने अपने राज्य को बढाने के लिये अनेकों छोटी-मोटी रियासतों को अपने अपने राज्यमें मिलाया और अनेकों से दोस्ती भी की। फतहसिंह अहलूवालिया को दोस्त बनाकर उस समय की स्थिति के अनुसार उन्होंने काफी लाभ उठाया था। रामगढिया और भंगी दोनों ही उनके विरुद्ध थे। कन्हैया लोगों के साथ उनका रिस्ता था अहलूवालियों से दोस्ती करली। इस प्रकार उन्होंने अपनी शक्ति बढ़ाकर अपने शत्रुओं का सहज ही मान मर्दन किया था। जो उनकी तीव्र बुद्धि का परिचायक है।

यद्यपि उनकी एक आँख चेचक मे जाती रही थी किन्तु उनके चेहरे पर अपूर्व तेज था। अंग्रेज लार्ड के यह पूछने पर कि महाराज किस आख से काने हैं? फकीर अजीजुद्दीन ने कहा था। "हम यह नहीं कह सकते। हमारी तो उनके प्रचड तेजस्वी चेहरे की ओर देखने की भी हिम्मत नहीं होती है।" वास्तव मे उनका रौब ऐसा ही था। बड़े से बढे खूंखार भी जब उनके सामने आते थे तो दहल जाते थे।

उनका ऐसा रौब था कि लोग उनसे थर-थर कापते थे। राजा ध्यानसिंह, गुलाबसिंह आदि वजीर उनके सामने बैठने से भी डरते थे, खडे होकर बातें करते थे। किन्तु महाराजा रणजीतसिंह स्वयम पथ के सामने अपने को बहुत ही छोटा आदमी समझते थे।

दान पुण्य करने मे भी महाराज उतने ही उदार थे जितने सम्पत्ति सग्रह करने में उत्सुक। इतने दिन बीत जाने पर भी काशी, लाहौर, ज्वालामुखी और अमृतसर आदि में आज तक उनके दान की महिमा बखानी जाती है।

अपने समय में भारत मे वे अद्वितीय बहादुर और तेजस्वी राजा थे। अंग्रेज उनसे डरते थे और अफगान उनके भय से थर-थर कापते थे।

उनके समय खालसा राज्य की परिधि बहुत बढ़ गई थी। किन्तु कहना तो यह चाहिये कि उत्तरी भारत का प्राय. सारा ही उपजाऊ प्रदेश उनके और उनके सहधर्मी सिख सरदारों के हाथ में था। उस विशाल राज्य की सीमायें जो महाराजा रणजीतसिंह जी के अधिकार में था। उत्तर और ईशान कोण की ओर हिन्दुकुश और तिब्बत की पर्वत माला तक विस्तीर्ण होगई थी। नैऋत्य कोण में उसमा खेल, खैबर और सुलेमान की पर्वत मालाओं को उनके राज्य की सीमा छूती थी। मिट्ठन कोट से अमरकोट तक सिन्धु नदी उनके राज्य की सीमा बनाती थी। अग्निकोण की ओर सतलज उसकी राज्य-रेखा थी। वैसे सतलज के पार भी उनके ४५ तालुके थे। उत्तर में उनके राज्य की जहाँ तक सीमा बढ़ी थी। इससे पूर्व

कनिष्क और अशोक के राज्यों की सीमा भले ही रही हो।

मुगल पठान, गोरखा और राजपूत सभी ने उनके राज्य-वर्द्धन के कार्य में रुकावट डाली थी और सभी ने उनसे बल आजमाई की थी। किन्तु अखिर मे सभी को उनका लोहा मानना पड़ा था।

यह बाते हम संकोच से कहते है। वरना जितना हम लिख रहे है। महाराजा रणजीतसिंह जी उससे कहीं बहुत अधिक महान थे। जिन अंग्रेजों ने उनके बाद उनका राज्य हड़पा वे आज भी उन्हे 'पंजाब का शेर' नाम से ही याद करते है। उनकी जिन्दगी के समय मे तो उनकी दोस्ती के लिये भारत के भीतर और बाहर सभी स्थानों के शासक इच्छुक रहते थे। समय समय पर वे अनेक प्रकार की भेट और तोहफे भी उनके वास्ते भेजते थे।

उनका सम्मान

भारत मे निजाम हैदराबाद क्लात (बिलोचिस्तान) और सिन्ध के अमीरों ने जहाँ दोस्ती करने के लिये उनके पास अपने एजेन्ट भेजे। वहाँ उनके वास्ते विदेशोने बहुमूल्य वस्तुये भेजीं। भारत के बाहर इंगलेड के बादशाह विलियम ने एक गाड़ी और पाच बढ़िया घोड़े मि० वरञ्ज वरीनस के साथ मय दोस्ती के पैगाम भेजे थे। सन् १८३५ मे एलार्ड नामका फ्रेंच फ्रास के बादशाह की ओर से तोहफा लेकर हाजिर हुआ और महाराज की प्रशंसा मे अपने बादशाह की ओर से एक पद्य भी सुनाया। इसी वर्ष तिब्बत के राजा का भाई भीम काल भी अच्छी २ भेंट लेकर आया। देश मे नैपाल, जयपुर आदि सभी राजाओं ने अपने वकील भेजकर यह जाहिर किया कि हम आपके बढ़ते हुये वैभव से प्रसन्न हैं और पारस्परिक सहयोग के इच्छुक है।'

इसके अलावा उनके समय मे अनेकों विदेशी यात्रियों ने आकर उनके राज्य प्रबन्ध और शासन व्यवस्था को देखा, कारण कि उनकी कीर्ति सुदूर देशों तक फैल रही थी। ऐसे यात्रियों मे फ्रास के चित्रकार मि० 'पिकर जैकमो, जर्मनी के डाक्टर हानिग वरगर अमरीका के लेखक मि० मैक् गिरगर के नाम विशेष उल्लेखनीय हैं। जिनसे महाराज ने उनके देशों के सम्बन्ध मे सेना, प्रबन्ध, सभ्यता और धर्म सम्बन्धी अनेकों प्रश्न करके अनेक प्रकार की जानकारी हासिल की थी। इन यात्रियों ने महाराजा के शासन और सेना के सम्बन्ध मे काफी प्रकाश डाला है।

बहादुरी और प्राण देने मे निर्भीक, इस दृष्टि से उनके सैनिक ससार भर में प्रथम श्रेणी के थे किन्तु नये ढंग से सैनिक शिक्षा भारत के बहुत कम रजवाड़ों में दी जाती थी। महाराजा रणजीतसिंह जी ने अपनी सेना को इस बात मे भी सर्वश्रेष्ठ बनाने की कोशिश की उन्होंने फ्रांसीसी युद्ध-विशारदों को अपने यहाँ रखकर सेना को आधुनिक ढग से ट्रेनिङ्ग दिलाई। जनरल वेन्चरा और मि० एलार्ड के नाम इस प्रकार के युद्ध विद्या शिक्षकों मे उल्लेखनीय हैं[1] घोड़े की सवारी मे प्रत्येक सिख सवार दक्ष होता था। सिख सैनिकों की मजबूती तो इसी से जानी जा सकती है कि वह कन्धे पर दस सेर वजन की बन्दूक और पीठ पर आठ दिन तक रासन बांध कर बीस मील तक का धावा कर सकते थे।

सेना और सेनापति

महाराज खुद भी सैनिक जैसा ही परिश्रम करते थे। उन्होंने घोड़े की सवारी, निशानेबाजी और तलवार चलाने में पहले दर्जे की योग्यता हासिल की थी। ये सरपट दौड़ते हुए घोड़े पर से जमीन की

१. यूरोपियन अफसरों की सख्या ४० से ऊपर बताई जाती है। जिनमें से कई को तो तीन हजार से ऊपर तक वेतन मिलता था।

चीज को वर्छे की नोक से उठा सकते थे।

सन् १८३८ ई० में जो उनकी सेना थी। उसकी संख्या इस प्रकार दी है। २६६१७ पैदल १०७६५ सवार १८८ तोप २८० जम्बूरे आदि। एलार्ड साहब कवायद परेड कराते थे। इसके सिवा मातहत जागीरदारों के यहाँ हजारों पैदल और सवार किसी भी समय काम में लेने को तैयार रहते हैं।

यह सख्या सन् १८३८ ई० की है। इसके बाद तो महाराज ने और भी सेना बढ़ा ली थी और वह बढ़ी हुई सेना समेत दुगने से ऊपर थी। जिसमें अपने राष्ट्र की रक्षा के लिये सदैव प्राणों की वाजी लगाने वाले खालसा वीर ही अधिक थे। इन सैनिकों को नियत वेतन मिलता था। युद्ध के समय उन्हें राशन और इनाम अलग से मिलते थे। पद वृद्धि के साथ वेतन के अलावा कभी-कभी जमीन भी दी जाती थी। जागीरी सेनाओं के वेतन के लिये यह नियम था कि जागीरदार के पास जो जमीन होती थी उसमें से जागीरदार के खर्च और सैनिकों की खर्च की रकम पृथक २ मुकर्रिर की जाती थी। पिछले पृष्ठों में कई स्थानों पर इस प्रकार हम वर्णन भी कर चुके हैं। महाराजा रणजीतसिंह जी ने खुद भी राज्य में से एक जागीर अपने निजी खर्चों के लिये मुकर्रिर कर ली थी। यही वात उन्होंने अपने परिवार के अन्य लोगों के लिये कर रक्खी थी। कुँवर शेरसिंह जी के लिये उन्होंने अपनी सास सदाकौर वाली जागीर दे दी थी।

सेनापतियों में उनके यहाँ दो किस्म के लोग थे। एक तो वे जो किन्हीं भू-भागों पर अधिकार रखते थे। और उन भू-भागों की रक्षा के लिये उन्होंने महाराज की अधीनता राजी या युद्ध के बाद स्वीकार कर ली थी और वफादारी में युद्ध मे जाते थे। इस प्रकार के लोगों का उनकी स्थिति और शक्ति के अनुसार सेना में पद भी निश्चित हो जाता था। दूसरे वे लोग थे, जो साधारण सिपाहियों में भरती होकर अपनी प्रतिभा से ऊंचे उठ गये थे। सेनापतियों में से कई तो इतने विश्वस्त थे कि वे मन्त्रिमडल में भी स्थान पाते थे।

एक विशेष वात जो अंग्रेज सैनिकों से भी वाजी मार जाती है। वह थी आचरण की। अंग्रेज अपने गोरे सिपाहियों को इस हद के अन्दर रखते हैं कि वे विजित देशों की स्त्रियों के साथ कोई नैतिक दुर्व्यवहार न करें। किन्तु सिख सैनिक तो अन्त करण से पाक थे। वे कभी शत्रुओं की स्त्रियों को वे इज्जत करने का खयाल तक नहीं लाते थे। काश्मीर में वे रहे। हजारा में उनका दल रहा जहाँ कि स्त्रियां सौन्दर्य की प्रति मूर्ति होती हैं किन्तु कहीं भी उन्होंने अपने ऊंचे आचरण को न गिरने दिया। स्त्री और बच्चों के साथ सभी शत्रु देशों में उनका भलमनसाहत का व्यवहार रहा।

यद्यपि उन दिनों प्रजा से अधिक छीन लेने की भावना किसी भी राजा की नहीं थी। फिर भी इतना बड़ा उनका राज्य था जितना भारत में किसी भी एक राजा या नवाव के पास न था। उनके राज्य में कश्मीर का स्वर्ग था। पंचनद की स्वर्ण भूमि थी फिर भी भला कहाँ तक कम आमदनी होती। भूमिर से १४८८१५००) नमक कर से ४४०००००) शाल के ठेके से २७५०८००) के लगभग आमदनी होती थी। और १८६७८०००) आमदनी का इलाका उन्होंने जागीरदारों को दे रक्खा था।

राजस्व

उनके समय में भूमि कर दो प्रकार से वसूल होता था। कहीं तो पूरे गाँव पर गाँव के प्रमुखों की राय के अनुसार एक निश्चित रकम वाँध दी थी। जिसे गाँव के चौधरी वसूल करके दे आते थे।
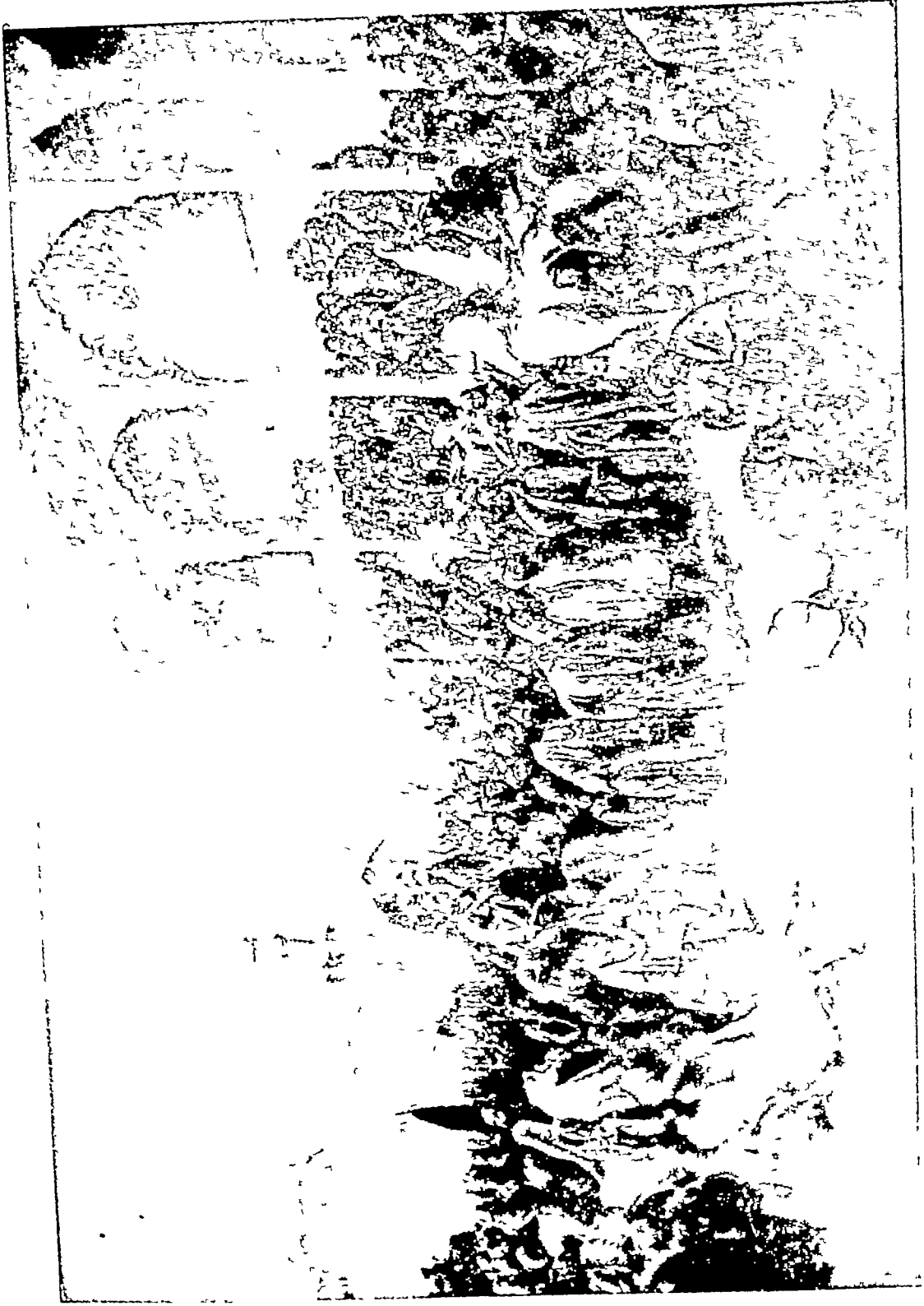
रावी नदी के किनारे लाहौर किले के पार्श्व मे महाराजा रणजीतसिंह के दरबार का एक दृश्य
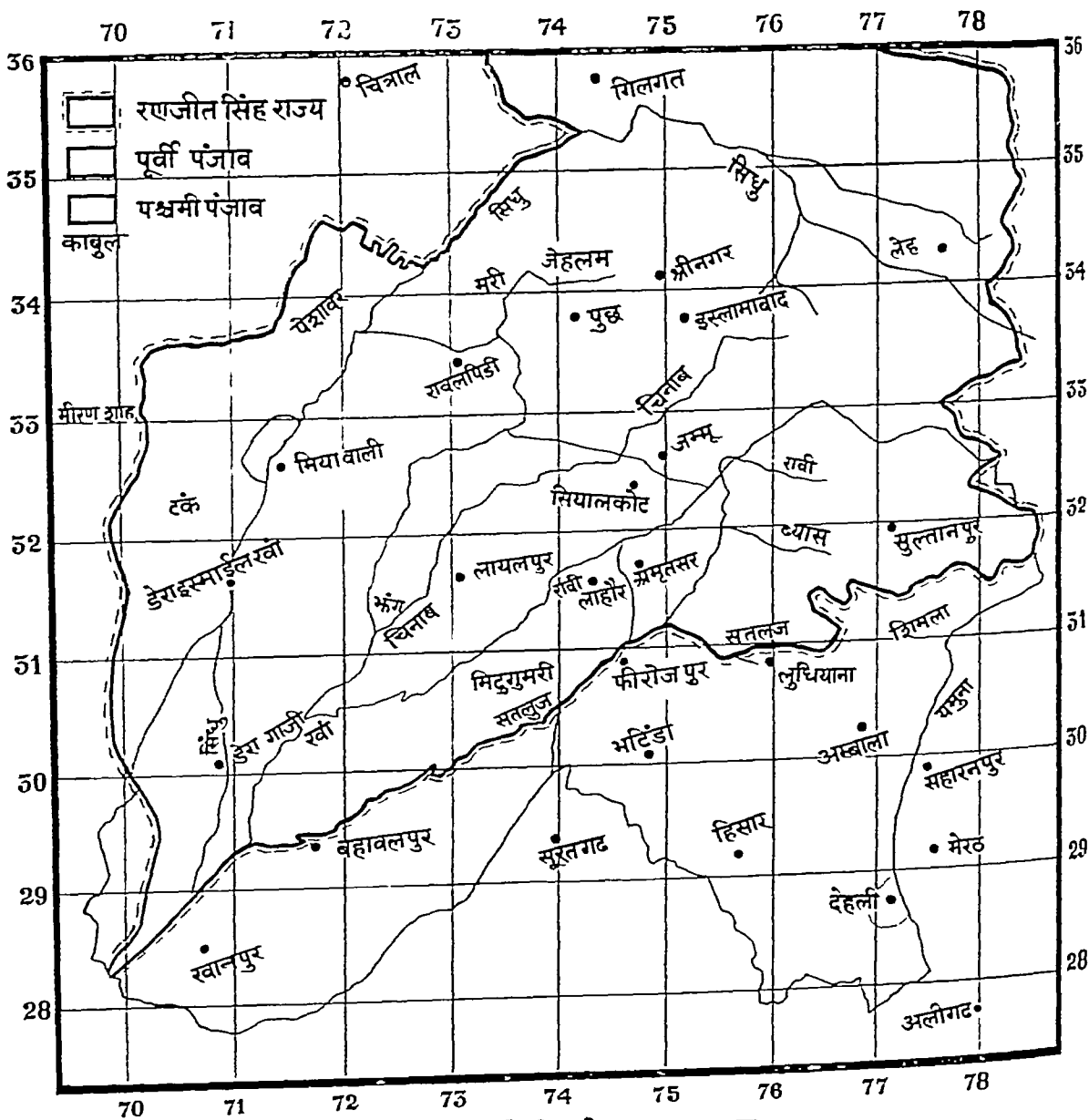
महाराजा रणजीतसिंह के राज्य का नक्शा

दूसरी प्रणाली बटाई की थी।[१] बटाई में उपज का छटे से दसवॉ हिस्सा तक लिया जाता था। फसल के समय पर यह बॉट गॉव के मोदी के यहॉ जिसे तौला भी कहा जाता है जमा होती थी। पंजाब मे मोदियों की इस प्रकार एक जाति ही बन गई है। हमे ऐसे मौके याद नहीं आते जब लगान वसूली मे कोई सख्ती की गई हो।

अकाल के समय में यह लगान तो माफ कर ही दिये जाते थे। अपितु राज्य की ओर से सहायता भी दी जाती थी। काश्मीर के भयंकर अकाल मे दीवान मोतीराम ने महंगा गल्ला[२] मंगा कर सस्ते भाव पर काश्मीर निवासियों को दिया। इस का जिक्र हम पहले कर चुके है।

कुछ टैक्स व्यापारियों पर भी था। सिन्ध नदी मे नावों द्वारा व्यापार करने वाले विशेष अवसरों पर सौगातें भेजते थे।

आदि से अत तक लड़ाइयों मे उलझे रहने के कारण महाराजा रणजीतसिंह जी कोई शासन-विधान तो तैयार नहीं करा सके। परन्तु इतने बड़े राज्य को संभालने के लिये उन्होंने जो भी प्रबन्ध किया वह तत्कालीन राजाओं से काफी अच्छा था। वे जिस प्रदेश को जीतते थे। उस पर दो हाकिम मुकर्रिर करते थे। एक फौजी अफसर और दूसरा रेवेन्यू अफसर। बगावत को दबाने और आक्रमणकारियों से प्रदेश की रक्षा करने का काम फौजी अफसर के जिम्मे होता था। और मालगुजारी वसूली रेवेन्यू अफसर करता था। काश्मीर, मुलतान और पेशावर मे ऐसे ही प्रबन्ध किये गये थे। सरदार हरीसिंह और मोतीराम जिन दिनों काश्मीर के सूबेदार थे। पं० वीरधर रेवेन्यू अफसर था।[3]

शासन-व्यवस्था

उस समय अपराधों की सूची भी बहुत लम्बी नहीं थी और हरेक आदमी की सीधे महाराज तक पहुँच भी थी अत न्याय विभाग कोई स्वतन्त्र महकमा नहीं था। ये दोनों अफसर ही न्यायाधीश का भी काम करते थे, जो अपराध माल सम्बन्धी होते थे। उनका फैसला माल अफसर के यहां और जो फौजदारी के मामले होते थे, उनका निर्णय सूबेदार कर देता था।[४]

उस समय ग्राम पंचायतों को वही अधिकार प्राप्त थे, जो प्राचीन काल से चले आते थे। ग्रामों के झगड़ों को निपटाने मे ग्राम पंचायतें और विरादरियां पूर्णतया स्वतन्त्र थीं। हॉ, यदि कोई किसी के माल का जबरन अपहरण करता था, या स्त्रियों को उड़ा ले जाता था तो फरियाद करने पर सूबेदार उचित कार्यवाही करता था और वह कार्यवाही सीधा अपराधी को दण्ड देना, माल की वापिसी, आदि ही होता था। न्याय को व्यापार का रूप प्राप्त न था। इसीलिये वकील और कोर्ट फीस का कोई सिस्टम न था।

१. फौजी गजट मई सन् १८३०

२ लाहौर में महाराज अपने समस्त राज्य को अकाल के समय अपने सरकारी अन्न भडारो को प्रजाजन के लिये खोल देते थे।

३. फौक लिखित काश्मीर 'अहदे सिखान'।

४. लाहौर में दरवाजों पर प्रजा की शिकायती दरख्वास्तों के लेने के लिये बक्स रखवा दिये थे। जिनकी चाबियां महाराज और कुंवर खडगसिंह जी के पास रहती थीं। एक यह भी रिवाज था कि जब महाराज बाहर निकलते थे तो लोग पल्ला हिला देते थे। जिसका अभिप्राय यह होता था कि वह कोई शिकायत करना चाहता है। महाराज रुक जाते थे और उसकी पुकार सुनते थे।

हाँ, गाँवों की सब तरह की खबरें लाने के लिये कुछ आदमी जरूर मुकर्रिर रहते थे। जिनसे सही घटनाओं का पता चल जाता था। ये खबर देने वाले लोग दुश्मनों के हल्कों की भी खबर लाते थे। इनकी खबरें नोट भी की जाती थीं। जो खैर-सल्ला की डाक के साथ केन्द्र में महाराज के पास—भेज दी जाती थीं।

डाक का काम साडिनी सवारों से लिया जाता था। यह लोग सरकारी सूचनाओं को देहातों में और मातहत अफसरों तथा कर्मचारियों तक पहुँचा देते थे।

प्रबन्ध के लिये राज्य मुख्यत सूबों में बंटा हुआ था। सूबों के मातहत किलेदार और परगनेदार होते थे। जहाँ तक हम जानते हैं। महाराजा रणजीतसिंह जी का राज्य चार सूबों में बंटा हुआ था। पेशावर मुल्तान, लाहौर और काश्मीर। इन सूबों के नीचे ३४ किलेदार थे। इनके नीचे भी छोटे-छोटे किलेदार थे। यह फौजी प्रबन्ध था। जिसकी मजबूती ५६ छावनियों द्वारा होती थी। प्रत्येक किले में किलेदार के अलावा एक मालगुजार अथवा करवाहक और एक शस्त्रागार का निरीक्षक और एक खाद्य-सामग्री का प्रबंधक रहता था। एक रहता था खबरों का इंतजाम करने वाला। किलेदारों का फर्ज होता था कि देहातों में सैनिक भेज कर अमन-अमान कायम रक्खे और लोगों को निर्भयतापूर्वक अपने धंधे करने की गारन्टी दे।

महाराज ने खुद अपनी ओर से एलान करा रक्खा था कि जिस किसी को मेरे अफसरों नौकरों और दूसरे लोगों की कोई शिकायत हो वे दरवाजे के बाहर रक्खे हुए सन्दूक में लिखवा कर डाल दिया करें [1] और उन्हें अपने पास बुलाकर सब शिकायतें सुनूंगा। मेरा बल प्रजा ही है। मैं प्राण देकर प्रजा की भलाई करूंगा।"

शहरों में कोतवाल भी थे। वैसे स्वतन्त्र पुलिस न थी। यही कारण है कि उस समय रिश्वत का नाम निशान भी न था। प्रजा आनन्द से थी।

जहाँ तक भी सम्भव होता महाराजा रणजीतसिंह जी राज्य की नौकरियों में योग्य आदमियों को भर्ती करते। इस सम्बन्ध में हिन्दू मुसलमान का वे खयाल नहीं करते थे। उनके मन्त्रीमंडल तक में गैर सिख और गैर हिन्दू मौजूद थे।

प्रजा को सतानेवालों के साथ उन्होंने कभी रियायत नहीं की। अपने प्यारे से प्यारे आदमियों को भी दण्ड देने से नहीं चूके। जमादार खुशालसिंह को जिसे कि वे बहुत चाहते थे दो महीने तक सामने नहीं आने दिया। बल्कि यह कह दिया कि मैं ऐसे आदमी का मुँह भी नहीं देखना चाहता। जिसने प्रजा के दिल को दुखाया है। काश्मीर की मुसलमान प्रजा ने जब सरदार हरीसिंह नलवा की शिकायतें की तो महाराज ने उसे वहाँ से तुरन्त ही बदल दिया।

"महाराजा रणजीतसिंह का राज प्रबन्ध" शीर्षक में मुल्की प्रबंध के लिये महाराज के यहाँ बारह दफ्तर बताये हैं। (१) जमाखर्च (२) आबकारी (३) नजराना (४) जब्ती (५) वजूहात मुकर्ररी (६) चौकीआत (७) ताहवीलात (८) मवाजिब (९) जनानखाना (१०) तोशाखाना (११) खिलअत (१२) रोजनामचा आदि इन दफ्तरों के नाम बताये हैं। किन्तु प्रमाण कुछ भी नहीं दिये। फिर भी इतना मानना ही पड़ता है। काम नियम और खातेवार होते थे।

जमीन का बंटवारा और बन्दोवस्त उनके समय में नहीं हुआ था और जमीदारों को भी इसकी आवश्यकता महसूस नहीं होती थी। इसलिए भूमिकर ऐसा न था। जिसे प्रजा बर्दाश्त न कर सके। यही

१ पंजाब केसरी पं० नन्दकुमार लिखित पृष्ठ २२४

कारण था कि प्रजा ने उनके राज्य मे एक संतोष की सास ली थी। चूंकि अब किसी की हिम्मत उसे लूटने की तो पड़ ही नहीं सकती थी। अत. प्रजा बराबर खेती और व्यवसाय से सम्पन्न होती जा रही थी कि पैंतीस करोड़ रुपया खालसे के खजाने मे था। इसके सिवा तीस लाख अशर्फियों की कीमत का कोहनूर हीरा था। इसके अलावा लाखों के हीरे मोती और जवाहरात थे।"

खजाने के बाहर उनके पास फीलखाना और अस्तबल था। फीलखाने मे हजारों हाथी थे जिनमे एक सौ एक तो महाराज की ही सवारी के लिये नियत थे जिनमे 'इन्द्रराज' और 'सरदार जी' नाम के दो हाथी बहुत मशहूर थे। तबेले मे एक हजार से ऊपर तो बढ़िया नस्लों के घोड़े थे। बाकी साधारण थे। इनमे लैली घोड़ी की कीमत तो पचास हजार कही जाती है।

शस्त्रागार

लाहौर के किले मे आज भी उनके समय के कुछ हथियारों को देखने के लिये रख छोड़ा गया है। जिनमे बन्दूक, बर्छे, तलवारें, जिरहबख्तर, टोप, कृपाण आदि सब प्रकार के हथियार हैं। उस समय महाराज के पास ३८४ बड़ी तोपे ४०० शुतरी गुब्बारे थे। उनके तोपखाने की प्रशसा 'आजबर्नज्' आदि कई यूरोपियन लेखकों ने की है। प्रसिद्ध भंगी तोप भी महाराज के ही तोपखाने मे थी। उन्होंने भारत के सिवा ईरान और फ्रास तक से हथियार इकट्ठे किये थे।

लाहौर मे बारूद का कारखाना बड़े पैमाने पर खोलने के लिये उन्होंने पक्का इरादा कर लिया था। वे अपने इस एक लाख पेतीस हजार वर्ग मील के साम्राज्य को और भी अधिकाधिक बढ़ाने के इच्छुक थे। इसीलिये प्रतिवर्ष कुछ न कुछ हथियार इकट्ठे कर लेते थे और अच्छे से अच्छे सिपाही बढ़ा लेते थे और उनके सिपाही और वे खुद प्रत्येक प्रकार की युद्ध विद्या सीखने मे दिलचस्पी रखते थे। यही कारण था कि उन्होंने अपने समय तक बनने वाले सभी प्रकार के हथियार इकट्ठे किये थे।

व्यक्तित्व और रहन सहन

यह हम पहले ही लिख चुके हैं कि वे नमूने के योद्धा, विजेता और शासक थे। यह उन्हीं का पराक्रम था कि पिछली आठ सदियों से बराबर चली आ रही मुस्लिम हुकूमत को उन्होंने पजाब मे से जड़ से उखाड़ कर फेंक दिया। और जिन पठानों का राजपूतों को बार-बार परास्त करने के कारण सिर आस्मान पर चढ़ गया था। उनसे भेट और नजराने लिये, यही क्यों, उन्हीं के देश यूसफजई, जमरूद और खैबर मे जाकर उन्हे परास्त किया था, अपनी हुकूमत कायम की। जो काबुल कई सौ वर्ष से भारत से खिराज लेता था। उसे अपना खिराजगुजार बनाया।

उनमे बहादुरी के साथ ही तेज बुद्धि भी थी। काम से वे थकने न थे। रात के समय भी जब कोई उन्हे खास बात सूझती तो फौरन नोट करा देते थे।

जब वे बातें करते थे तो उनका एक हाथ दाढ़ी पर रहता था। कुर्सी पर पालथी मार कर बैठते थे। कहा जाता है उनका स्वभाव विनोदी था। वे सिख सरदारों के साथ मिलकर खूब मनोरजन करते थे। उन्होंने दरबार में भी कुछ ऐसे लोग रख छोड़े थे जो उनकी तबियत को प्रसन्न करते थे।

श्री गुरु ग्रन्थ साहब को वे नियम पूर्वक नित्य प्रति सुनते थे।

वे दरबार में मोतियों से जड़ा हुआ सिर पेंच सिर पर बांध कर बैठते थे। अंगरखे मखमली या रेशमी और छींट के ऋतुओं के अनुसार पहनते थे। लड़ाइयों मे वे जिरहबख्तर आदि फौजी लिबास पहनते थे। और कठिन मौको पर युद्ध का भी संचालन करते थे। काबुल के मेवे उन्हे बहुत पसन्द

थे। काश्मीरी फल भी काफी मंगाते थे।

उनका व्यवहार प्रेम-पूर्ण और सहृदयता का होता था।

रणजीतसिंह जी का दरबार कैसा था ? इसका उत्तर तो लाहौर के किले के भीतर की बारहदरियाँ ही देती हैं। मुगल सम्राट बादशाह अकबर के दरबार की जो शान-शौकत किसी समय रही होगी वही सिख सम्राट महाराजा रणजीतसिंह जी के दरबार की थी। जिन्होंने देहली किले की बारहदरी और अकबर के आम, खास (दरबार) देखे हैं और जिसने लाहौर के किले की भी सैर की है। वह हमारे कथन का अवश्य समर्थन करेगा। यदि हिन्दू, मुसलमान और सिख के भेद को एक ओर हटा कर हम देखें तो महाराजा रणजीतसिंह, पृथ्वीराज चौहान जैसे योद्धा और बादशाह अकबर जैसे प्रतापी और भाग्यशील राजा थे। तीनों ही लड़ाकू सरदारों के पुत्र थे। तीनों ही ने अपने बाहुबल और योग्यता से अपने को ऊचा उठाया था। तीनों के दरबार मे एक से एक वीर योद्धा और बुद्धिमान आदमी थे। तीनों के घरों मे अनेक रानियाँ थीं। तीनों को ही विकट शत्रुओं से पाला पड़ा था। अंतर इतना है कि पृथ्वीराज को उसके शत्रु मुहम्मद गौरी ने उसके जीवन में ही नष्ट कर दिया। अकबर राणा प्रताप से नष्ट तो न हो सका किन्तु उसका विजयी मस्तक नत अवश्य होगया। महाराजा रणजीतसिंह के सामने उनका दुश्मन ब्रटिशसिंह सदैव किनारा काटता रहा। इस तरह हम कुछ अंशों मे महाराजा रणजीतसिह जी को अकबर और पृथ्वीराज दोनों से महान ही पाते हैं किन्तु सतर्कता और साहस मे जो चीज हमे महाराजा रणजीतसिंह जी में दिखाई देती है। वह उन दो मे नहीं।

दरबार और सरदार

महाराजा रणजीतसिंह अपने सिख अकीदे के अनुसार प्रात. ५ बजे जग कर नित्य कर्म करते और फिर फौजों की परेड देखने मैदान में जाते। थोडा सा जलपान करके ६ बजे दरबार में पधारते। जहाँ आये हुये पत्रों और समाचारों को सुनते। उनके उत्तर लिखवाते अपने हुक्म जारी करवाते। हिसाब-किताब देखते। दोपहर मे दरबार समाप्त हो जाता और वे महलों में आराम के लिये चले जाते। तीसरे पहर फिर दरबार मे आते और उपस्थित विषयों पर विचार करते।

दरबार में उनके पीछे दायें बायें वजीरों की कुर्सियाँ होती थीं। जो आवश्यकतानुसार उनके सामने जाकर खड़े हो जाते और सब हुक्मों को सुनते। जिस किसी को अपनी ओर से कुछ अर्ज करनी होती वह भी सामने आ जाता।

उनके दरबारियों मे से निम्नलिखित सरदारों के नाम उल्लेखनीय हैं :—

(१) राजा ध्यानसिंह—यह डोगरा राजपूत था और एक अबतर हालत में महाराज की सेवा में हाजिर हुआ था। आरम्भ मे सेना में इसे स्थान दिया गया। फिर शनै-शनै अपनी सेवा और स्वभाव की भलाई से तरक्की पा गया और यहाँ तक महाराज को खुश कर लिया कि राजा का खिताब भी पा लिया। महाराज के जीवन भर उनका सच्चा वफादार भी रहा। बुद्धि का तेज, जाहिरा तौर पर मालिक के प्रति भक्ति ये उसके गुण थे। अपनी नम्रता से उसने समस्त सिखों को अपनी ओर आकर्षित कर लिया था। इसके दो भाई और थे। गुलाबसिंह और सुचेतसिंह। काश्मीर में एक विद्रोह को दबाने मे बहादुरी दिखाने के उपलक्ष में महाराज ने गुलाबसिंह को काश्मीर मे एक जागीर प्रदान की थी। सुचेतसिंह सदैव दरबारी ही रहा।

ध्यानसिंह का एक लड़का था हीरासिंह बड़ा सुन्दर और चतुर। महाराज उसे अपने बेटों की ही

तरह प्यार करते थे। ध्यानसिंह की इच्छा के अनुसार महाराज ने राजा संसारचन्द की लड़की के साथ उसकी शादी की कोशिश भी की थी किन्तु हो न सकी। महाराज के मरने के वाद इन चारो ही ने अपने स्वार्थ के कारण अनेक खेल खेले जो सिख साम्राज्य के लिये घातक ही सिद्ध हुये।

(२) दीवान मुहकमचन्द—महाराज के मशहूर जनरलों मे से था। शूरवीर होने के सिवा मुहकमचंद शासन प्रवन्ध मे भी काफी निपुण था। यह महाराज के पिता सरदार महासिंह के समय से ही दीवान के पद पर मुकर्रिर था। निष्कपट स्वभाव और ईमानदारी के कारण यह विश्वासपात्र बन गया था। इसने महाराज का राज्य बढ़ाने के लिये अनेक स्थानों मे लड़ाइयॉ लड़ी, वहुत सारे प्रदेश विजय किये। महाराज ने भी प्रसन्न होकर इसे फलोर का इलाका जागीर मे और एक हाथी मय सुनहरी हौदे के इनाम मे दिया था। सन् १८११ ई० मे इसने राजौरी के हाकिम राजा सुलतानखा को गिरफ्तार करके महाराज के सामने पेश किया। सन् १८१३ ई० मे हजारा के मुकाम पर अटक की विजय हेतु पठानों को परास्त किया। इस प्रकार इसकी अनेकों वहादुरियॉ हैं। सन् १८१५ ई० मे इसका देहान्त हो गया।

(३) मोतीराम रामदयाल-महाराज ने सन् १८१५ मे मोतीराम को अपना दीवान वनाया। दीवान रामदयाल भी एक अच्छा सेनापति था। वह महाराज के लिये लड़ता हुआ ही काम आया था। रामदयाल मोतीराम का लड़का था। इन दोनों ही वाप बेटों ने युद्ध और प्रबन्ध द्वारा सिख दरवार की अच्छी सेवाये कीं। मोतीराम को तो काश्मीर की गवर्नरी भी प्रदान की गई। महाराज भी वरावर इनका मान बढ़ाते रहे। रामदयाल हजारा की लड़ाई मे लड़ता हुआ मारा गया था। अपने पुत्र के शोक से दीवान मोतीराम इतने दुखी हुये कि वे विरक्त होकर काशी चले गये। महाराज ने मोतीराम के दूसरे लड़के कृपाराम को पहले जालधर का हाकिम वनाया था। कृपाराम ने भी अपनी वहादुरियों और सेवाओं से नाराज हुये महाराज को प्रसन्न कर लिया और काश्मीर की सूबेदारी तक हासिल करली। इस प्रकार इस परिवार ने सिख दरबार की अच्छी ही सेवायें कीं।

(४) मिश्र दीवानचन्द—भी एक प्रसिद्ध सेनापति था। यह आरम्भ मे तोपखाने मे आकर भर्ती हुआ। जाति का ब्राह्मण होते हुये भी अद्वितीय योद्धाओं मे से था। इसने प्रत्येक लड़ाई मे बढ़कर काम किया। निशानेबाजी मे इतनी योग्यता रखता था कि इसका निशाना कभी चूकता ही नहीं था। लंबे चौड़े और सुन्दर शरीर का नौजवान थोड़े ही समय मे तरक्की कर गया। और तोपखाने का आला अफसर बन गया। महाराज ने इसे जफरजग की पदवी दी थी। सन् १८१८ ई० मे इसने मुलतान विजय में अपूर्व चतुराई और वीरता दिखाई। काश्मीर और नौशहरा की विजय करने मे इसका साहस सबसे अधिक बताया जाता है। सन् १८२४ ई० मे लकवा की वीमारी मे इसका देहान्त हो गया। महाराज ने चन्दन चिता मे इसका संस्कार कराया और बड़े रन्जीदा हुये।

(५) फकीर बन्धु—महाराज के यहा फकीर नूरुद्दीन और अजीजुद्दीन उसी प्रकार दो चतुर मुसलमान दरवारी थे। जिस प्रकार अकबर के दरवार मे वीरवल और टोडरमल थे। ये दोनों ही वफादार आदमी थे। लाहौर पर अधिकार करते ही महाराज ने इन्हे अपने यहॉ रख लिया था। मरते समय तक यह महाराज के शुभचिंतक रहे। फकीर नूरुद्दीन एक चतुर हकीम था। महाराज का वही राजवैद्य था। सन् १८७५ ई० मे महाराज ने उसे गुजरात का हाकिम बना दिया। अंग्रेज हाकिमों से मिलने जुलने के लिये महाराज फकीर अजीजुद्दीन को ही भेजते थे। वह भी वहॉ महाराज की मान मर्यादा को वढ़ाकर ही पेश करता था। ये दोनों भाई मजहवी पक्षपात से विल्कुल वरी थे। अटक, मुलतान आदि की लड़ाइयों मे

महाराज की ओर से मुसलमानों से खूब डट कर लड़े। पेशावर के युद्ध में जब कि काबुल के अमीर दोस्त मुहम्मद से मुकाबिला था। इन दोनों भाइयों ने बड़ी चतुरता दिखाई। महाराज भी इन्हें सिखों की तरह ही प्यार करते थे।

(६) भवानीदास—महाराजा रणजीतसिंह जी की सेवा मे आने से पहले यह काबुल मे शाहशुजा का दीवान था। सन् १८०८ ई० में लाहौर आया। महाराज ने भी इसे दीवान ही बना दिया। भवानीदास जहाँ माल अफसरी के काम मे होशियार था। वहाँ लड़ाई के इल्म में भी शौक रखता था। जम्बू विजय में उसने खूब बहादुरी दिखाई थी।

(७) गगाराम—महादाजी सिंधिया के साथ रहकर इसने राजनीति की शिक्षा पाई थी। रहने वाला दिल्ली का था। महाराज ने इसे अपने यहाँ बुला लिया और सरकारी मुहर उसके सुपुर्द कर दी। महकमा आबकारी का प्रबन्ध इसने बहुत ही अच्छा किया।

(८) पं० दीनानाथ—गंगाराम के मर जाने पर यह उसका उत्तराधिकारी हुआ। उसके कुल काम इसे सुपुर्द किये गये। सन् १८२४ ई० मे भवानीदास के मर जाने पर महक्मा माल भी इसके ही हाथ आ गया। मुलतान का हिसाब भी इसने ही दुरुस्त किया। तनख्वाह इसे ६००) माहवार मिलती थी। महाराज ने कई स्थानों पर जागीर में इसे जमीन भी दी थी।

(९) सरदार हरीसिंह नलुआ[1]—यह वीर गुजरानवाला में पैदा हुआ था। लडकपन मे महाराज के साथ खेला करता था। महाराज की इससे बचपन की ही मुहब्बत थी। जवान होने पर महाराज की सेना में ही भर्ती हो गया। अपनी बुद्धिमानी और बहादुरी से काफी तरक्की की। सन् १८०५ ई० मे ८०० प्यादों का अफसर बना और फिर तो काश्मीर और पेशावर का सूबेदार भी। प्रबन्ध की बजाय सरदार हरीसिंह को लड़ने-भिड़ने में अधिक मजा आता था। यूसफजई के दुर्दान्त पठानों को काबू में करना और हजारा को विजय करना सरदार हरीसिंह का ही काम था। अटक, दुरबन्द, जहाँगीरा, खबर और पेशावर जहाँ भी पठान उसके सामने आये, सभी जगह उसने उनके छक्के छुड़ाये। सन् १८३७ ई० मे जमरूद की लड़ाई मे सख्त घायल होने के कारण उसका देहान्त हो गया। उसका साहस अनुपम था। खैबर की घाटी के उस पार भी उसके नाम से पठान कापते थे। आज भी पठान प्रदेशों मे मातायें बच्चों को 'हरी आया' कह कर डराया करती हैं। चिड़ियों से बाज लड़ाने की गुरु गोविन्दसिंह जी महाराज की उक्ति को सरदार हरीसिंह जी ने सोलह आना चरितार्थ कर दिया।

महाराज ने सरदार हरीसिंह नलुआ से प्रसन्न होकर बहुत सारा इलाका जागीर में दिया था। फौज मे उनका भारी मान था। हरीसिंह फारसी और गुरुमुखी खूब अच्छी तरह जानते थे।

सरदार हरीसिंह जी की ताकत का पता इस बात से लग जाता है कि जमरूद में जब उन पर शेर ने हमला किया तो उन्होंने उसके जबडे पकड़ कर उसे चीर डाला।

(१०) सरदार लहनासिंह मजीठिया—यह गोलन्दाजी के काम में बड़े हुशियार थे। अमृतसर मे

१ हरीसिंह का जन्म १७९१ ई० में हुआ था। इनके बाप का नाम गुरुदयालसिंह और दादा का नाम हरदयालसिंह था। इनके बाप और दादा सुकरचकिया मिसल के स्वामी खोखर गोत के स्वामी के नौकर थे। नलवा की पदवी इसको बहादुरियों से मिली थी। सरदार हरीसिंह ने एक शेर को बिना हथियार के मार डाला था। तभी उसे व्याघ्र अर्थात नलवा की पदवी मिली।

तोपे ढालने का काम भी इन्होंने किया था। यह काफी पढ़े लिखे और कई भाषाओं के जानकार बताये जाते हैं। ज्योतिष विद्या मे भी इनका ज्ञान अच्छा था।[1] महाराज ने अमृतसर के इलाके का प्रबन्ध भी इन्हें सौंपा था। महाराज के देहान्त के बाद यह भी घरेलू झगड़ों मे फस गये। सिख अंग्रेज युद्ध के समय यह बनारस चले गये।

(११) तेजासिंह—यह जात का ब्राह्मण था। महाराज के समय इसने कई स्थानों पर अच्छी बहादुरी दिखाई किन्तु महाराज की मृत्यु के बाद इसने खालसा सेना को बुरी तरह हरवाया। यह अंग्रेजों के साथ मिल गया और सेना का सर्वनाश कराता रहा। यदि यह दगाबाजी न करता तो आज पजाब दूसरा ही होता।

(१२) फूलासिंह जी अकाली—इनका मान सिख जगत मे बहुत था। पंथ मे इनका आदर था। पंथ मे पेश होने वाले मामले प्राय. इनके ही सभापतित्व में निर्णय होते थे। महाराज की बात उलट सकती थी किन्तु फूलसिंह अकाली की बात को लौटाना मुश्किल था। एक बार महाराज के साथ उनकी अनबन भी हो गई थी किन्तु फिर भी महाराज को उनके बिना चैन नहीं पड़ा। सिख धर्म का प्रेम भी अटूट मात्रा मे बाबा फूलासिंह जी मे था। बहादुरी मे, साहस मे और निर्भयता मे फूलासिंह अकाली सरदार हरीसिंह नलुआ दोनों ही लौह पुरुष थे। आपका जन्म जाट जमीदारों के घर हुआ था। जब तक आप सिख दरबार में नहीं आये थे। हमेशा निर्बलों की मदद करते थे। बाबा की खूब इच्छा थी कि अंग्रेजों के साथ युद्ध किया जाय किन्तु उनके जीवन मे उनकी यह साध पूरी नहीं हुई।

(१३) सरदार शामसिंह अटारी वाला—सन् १८०३ ई० मे यह सरदार महाराज के पास आकर सेना मे भर्ती हुए। मुल्तान और काश्मीर के युद्धों में इन्होंने खूब वीरता दिखाई। महाराज के पोते कुँवर नौनिहालसिंह जी की शादी आपकी ही पुत्री से हुई थी। आपका खानदान पहले से ही सम्पन्न खान्दान था। उस शादी में आपने पन्द्रह लाख रुपया खर्च किया। महाराजा के बाद भी आपने बड़ी वफादारी के साथ सिख दरबार की सेवा की। अंग्रेजों से लड़ाई छिड़ने या महारानी जिन्दा की आज्ञानुसार आप मैदान मे आये और सुबराव के मैदान में १० फरवरी १८४६ मे बहादुरी के साथ लड़ते हुए शहीद हुए। आपकी सरदारनी ने जब यह समाचार सुना तो उन्होंने आपकी लाश मंगवाई और सती हो गई। अपने महाराज के प्रति इस खानदान ने आरम्भ से ही बलिदान किये थे। आपके बुजुर्ग सरदार निहालसिंह जी के सम्बन्ध में कहा जाता है कि उन्होंने एक बार महाराजा रणजीतसिंह जी के बीमार पड़ने पर ईश्वर से प्रार्थना की थी कि महाराज चंगे हो जाय और परमात्मन् मुझे उठा लो। दैवात् ऐसा ही हुआ।

(१४) जनरल बेन्तूरा—इटली का रहने वाला था और किसी समय नेपोलियन की फौज मे रह चुका था। महाराज ने इसे ढ़ाई हजार रुपया माहवार की तनख्वाह पर रख लिया। इसने और इसके अन्य यूरोपियन साथियों नेन ये ढग से महाराज की फौज को कवायद परेड सिखाई। आरम्भ मे महाराज के सिपाही नया लिवास पहनने और नये ढग पर कदम उठाने में हिचकते थे। इसलिये महाराज ने आरम्भ मे खुद नयी फौजी पोशाके पहनी और परेड भी करने लगे। कहा जाता है महाराज ने इन यूरोपियन सरदारों से तीन प्रतिज्ञायें ली थीं। गाय का गोस्त नहीं खायेगे। तम्बाकू नहीं पियेंगे। दाढ़ी, केश रखेंगे। वेन्तूरा की तरह एलार्द, कोर्तलान्त अवीता सेल नाम के यूरोपियन अफसर भी फौजी मामलों मे काफी होशियार थे।

१. अमृतसर में दरबार साहब के पास जो धूप घडी है इन्हीं की बनाई हुई है।

इन लोगों ने लगभग पचास हजार सैनिकों को पच्छिमी ढंग पर तैयार किया था। इस तरह महाराज की सेना का एक बड़ा हिस्सा ऐसा था जो किसी भी सभ्य देश की सेना से मुकाबिला कर सकता था।

राज्य के आतरिक मामलों में सलाह के लिये राजा ध्यानसिंह, फकीर अजीजुद्दीन, सरदार निहालसिंह, दीवान मुहकमचद और राजकुमार खड्गसिंह जी से ही प्राय. सलाह ली जाती थी। सेना और युद्ध के सम्बन्ध मे उपरोक्त सभी दरबारी बुलाये जाते थे।

इन सरदारों के अलावा विशेष दरबारों में राजा साहब जीन्द, फतहसिंह अहलूवालिया और समस्त जागीरदार भाग लेते थे।

अपने दरबार में यथा समय महाराज ने उस समय के पजाब के चुने हुये दिमाग इकट्ठे कर लिये थे। जिनमें से कई प्रथम श्रेणी के योद्धा और कई रेवेन्यू के काम मे अच्छी योग्यता रखने वाले थे।

यही कारण था कि निरन्तर लड़ाइया होने पर भी उनका खजाना शायद ही कभी खाली रहा हो।

यह तो कोई अविदित बात नहीं कि उस समय देश में शिक्षा का प्रचार बहुत कम था किन्तु महाराजा रणजीतसिंह जी ने सस्कृत और फारसी की लाहौर मे जो पाठशालायें मकतब थे उन सब को सहायता दी। महकमा सखावर्त से इस काम से मदद दी जाती थी। पजाब में जहा भी कहीं गुरुद्वारे थे वहां गुरुमुखी अक्षरों का बराबर ज्ञान कराया जाता था।[1] उनके समय मे सिंध और काश्मीर के बीच व्यापार होता था। कुछ माल रूस चीन और काबुल तक भी जाता था। पजाब से सिंध के लिये नावों द्वारा माल लाते ले जाते थे। तुर्क और ईरानी लोग घोड़ों का व्यापार करते थे। सिख भी इस धधे को करते थे। ये व्यापारी विशेष अवसरों पर अच्छी २ सौगातें महाराज को भेंट करते रहते थे। काश्मीर के शालों का निर्यात सुदूर तक होता था।

शिक्षा और व्यवसाय और उद्योग धघे

बाहरी लोग ईरान और दूसरे देशों से हथियार लाकर यहा से खूब रुपया कमाते थे। सिख लोग और रजवाड़ों से इस व्यापार में खूब आमदनी होती थी। पठान लोग हींग और मेवा घोडो पर लाद कर मध्य पजाब मे उतरते थे और यहा से बढ़िया कपास और गेहूँ टूटा-फूटा लोहा, कासा ले जाकर दूसरे देशों में भेज देते थे।

महाराज की इच्छा लाहौर या अमृतसर में बढ़िया कपड़ों के कारखाने खुलवाने की थी। इसके लिये उन्होंने विदेशी यात्रियों से बहुत-सी जानकारी हासिल की थी।

संक्षेप से इतना कह सकते हैं कि उनके राज्य मे प्रजा शनै शनै उन्नति की ओर ही अग्रसर थी।

१ महाराज की इच्छा लाहौर में अग्रेजी का एक स्कूल खोलने की भी थी। उन्होंने जे० सी० लोरी से जो लुधियाना में ईसाई मिशनरी हो कर आए थे। बुलाकर यह कहा था कि तुम लाहौर मे अग्रेजी शिक्षा का स्कूल खोल लो सारा खर्च हम देंगे किन्तु शर्त यह है कि केवल अग्रेजी पढ़ाओगे। किन्तु लोरी क्रिश्चियनटी की तालीम भी देने को बाध्य थे। इसलिये यह काम सफल न हो सका।

सोलहवाँ अध्याय

सिख साम्राज्य का अधःपतन

महाराजा खडगसिंह जी का जन्म माई नकैन के उदर से सन् १८०७ ई० मे हुआ था। महाराजा रणजीतसिंह जी ने अपनी मृत्यु से पूर्व ही समस्त सिख सरदारों के सामने यह घोषित कर दिया था कि मेरे बाद गद्दी के हकदार खडगसिंह होंगे। नियमानुसार उन्हे युवराज का अभिषेक भी कर दिया गया था। कहा जाता है कि महाराज यह भी कह गये थे कि राजा ध्यानसिंह को मेरे बाद अपने नये महाराज का वजीर बनाना।

महाराज खडगसिंह

महाराज खडगसिंह जी बालकपन में बडे लाड़ प्यार से पाले गये थे। क्योंकि रानी दातारकौर जी प्राय. सदैव ही महाराज के साथ रहती थीं। खडगसिंह जी की शादी भी बड़े धूम-धाम से की गई थी। इस विवाह में पंजाब के राजा रईसों और अग्रेज अफसरों ने तबेल (न्यौते) मे जो रकम दी थी उसी से पता चल जाता है कि इनका विवाह कितनी धूम-धाम के साथ हुआ था। वह रकम इस प्रकार है। ५०००) अंग्रेजों ने ११००८), भीन्द नरेश ने, ११०००) कैथल नरेश ने, ११०००) नाभा नरेश ने, ४०००) फकीर अजीजुद्दीन ने, १७०००) दीवान देवीदास ने, ६०००) दीवान भवानीदास ने, ६०००) सरदार हुक्मसिंह अटारी वाले, ६०००) निहालसिंह अटारी वाला, ६०००) दीवान हुक्मसिंह बघारी, ४०००) हुक्मसिंह चिमनी, ५०००) खानआदमसिंह, ५०००)सितसिंह भतानिया, ४०००) राजा नूरपुर, ६०००) चम्पा नरेश, ४०००) जमरोटा नरेश, २१०००) कपूर्थला नरेश, २१०००) दलसिंह रामगढ़िया, ७०००) राजा ससारचंद, १००००) अहमदखा स्याल, ५०००) बसोली नरेश, ४०००) हरिपुरा नरेश, ४०००) सकटोई नरेश, १००००) कुतुबखा रईस कसूर, २००००) नवाब हुक्मद्दौला मुहम्मद सादिकखा, ११५००) नवाब सर बुलंदखा, ५०००) नवाब मुल्तान ने दिये। इसके अलावा लाहौर के कई जौहरी और सराफों ने ५००-५०० सौ रुपये दिये।

महाराजा रणजीतसिंह जी ने भी दिल खोल कर इस शादी मे खर्च किया।

यह शादी फतहगढ़ जिला गुरदासपुर के कन्हैया सरदार जैमलसिंह की पुत्री चन्दकौर के साथ हुई थी। किन्तु शादी की रस्म लाहौर मे अदा हुई थी।

खडगसिंह जी प्राय' सभी लड़ाइयों मे फौज के साथ रहते थे। जब सयाने हो गये। तब तो उन्होंने स्वतंत्र रूप से भी कई स्थानों पर चढ़ाइया कीं। भिम्बर, मुल्तान और पेशावर की लडाइयों मे वे बराबर साथ रहे।

अपने पिता के मरने पर जब वे गद्दी पर बैठे तो राजा ध्यानसिंह उनके मंत्री हुए। किन्तु महाराजा खडगसिंह और ध्यानसिंह के बीच मे सद्भावनाओं की कमी थी। ऐसा जान पड़ता है कि महाराज रणजीतसिंह जी के समय मे राजा ध्यानसिंह नें खडगसिंह जी के साथ वैसा अच्छा आदर का व्यवहार नहीं किया था। जैसा कि युवराजों के साथ दरबारियों को करना चाहिये। हम देखते हैं। जहां तक भी राजकाज सीखने से सम्बन्ध है। खडगसिंह जी को दूर ही रक्खा गया और इस दूर रखने में राजा ध्यानसिंह का हाथ जरूर था। जैसे वह अपने पुत्र हीरासिंह को बराबर बढ़ा रहा था और महाराज के सम्पर्क मे भी रखता था। वैसे खडगसिंह जी को भी तो मौका दे सकता था। अगर ध्यानसिंह का युवराज अवस्था में महाराज खडगसिंह जी के साथ प्रेम और आदर का व्यवहार रहा होता। यदि कोई आशका उन्हे राजा ध्यानसिंह की ओर से न होती तो वे कुछ ही दिन के बाद ध्यानसिंह की बजाय चेतसिंह को मंत्री न बना लेते।

महाराज खडगसिंह के लिये हम यह कह सकते है कि वे अपने पिता की तरह रौबवाले और बुद्धिमान नहीं थे। किन्तु यह नहीं कह सकते कि वे राज्य कार्य को उत्तमता से न चला सकते थे। किन्तु राजा ध्यानसिंह ने जब देखा कि उनकी वजीरी छिन गई है तो वह महाराजा खडगसिंह का दुश्मन हो गया। उसने सिखों में फैलाया कि महाराज खड़गसिंह ने चेतसिंह को अंग्रेजों की मर्जी से वजीर बनाया है। चेतसिंह ने अग्रेजों से वायदा किया है कि मैं महाराज खडगसिंह को अग्रेज सरकार की अधीनता स्वीकार करा दूंगा और यह भी उड़ाया कि महाराज खडगसिंह भी रुपये में छ आना खिराज देना अंग्रेजों से स्वीकार कर चुके हैं। बहादुर सिख सब कुछ बर्दाश्त कर सकते थे। किन्तु उन्हें उस समय गुलामी किसी भी तरह स्वीकार नहीं थी। वे भड़क उठे और सिख सेनापतियों ने ध्यानसिंह से इस बात के प्रमाण मांगे। ध्यानसिंह काफी चतुर आदमी था। उसने कुछ जाली चिट्ठियां खालसा के सामने पेश करदीं। जिनकी बाबत कहा गया कि यह शिमला भेजी जाने वाली थीं। कुछ ऐसे लोगों ने जो चेतसिंह के आदमी कहे जाते थे लोभ में पड़कर कह दिया कि हा, हमें इन चिट्ठियों को शिमला ले जाने काम चेतसिंह ने सौंपा था।

कई सिख सरदार किले मे घुस गये। चेतसिंह को जब पता चला तो वह दूसरे कमरे में चले गये। किन्तु वे उसे वहा से भी पकड़ लाये और वहीं कत्ल कर दिया।

चेतसिंह को मरवाने के बाद ध्यानसिंह फिर वजारत का काम करने लगा। महाराज खड्गसिंह नाम मात्र के राजा थे इस समय सर्वेसर्वा ध्यानसिंह बना हुआ था। महाराज किले को छोड़कर शहर के महल मे चले गये और वहीं रहने लगे किन्तु वे या तो मानसिक कष्ट से या ध्यानसिंह की करामात से अधिक जिन्दा न रह सके उन्होंने सवा-डेढ़ ही वर्ष राज्य किया।

इसमे सन्देह नहीं कि नौनिहालसिंह बहुत योग्य थे और समय मिलता तो वह पजाब के लिये दूसरे रणजीतसिंह सिद्ध होते। उन्होंने राज-काज अपने पिता की बीमारीके बाद से ही बडी कुशलता मे सभाल लिया था। उनकी इस प्रकार की योग्यता को देखकर ध्यानसिंह और भी शंकित हुआ। उसने क्लार्क साहब के दिमाग मे अपने सहायकों द्वारा यह बात बिठवा दी कि कुंवर नौनिहालसिंह ने ऐसे आदमी मुकर्रिर किये हैं जो अफगान-प्रजा को अग्रेजों के खिलाफ भड़कावेंगे। अंग्रेज अधिकारियों ने उनसे इस सम्बन्ध में पूछताछ भी की किन्तु भला निराधार बात सिद्ध कहा से होती।

जिन दिनों महाराजा खड्गसिंह जी निहायत बीमार थे उन्होंने कुंवर साहब को मिलने के लिये

बुलाया। ध्यानसिंह ने संदेश लाने वालों को उल्टा पढ़ा दिया और उन्होंने कुँवर साहब के पास जाकर कहा 'आपके पिता हालांकि मरने वाले हैं किन्तु आपको बराबर कोसते है।' इस प्रकार दोनों पिता पुत्रों को अंतिम समय तक एक न होने दिया।

महाराज खड्गसिंह जब मर गये तब उन्हे खबर होने दी।

जिस दिन महाराज खड्गसिंह जी का देहान्त हुआ वह सन् १८४० ई० की ५ वीं नौंबर थी। दो घण्टे बाद नौनिहालसिंह जी अपने पिता के पास पहुँचे। रावी के किनारे उनका अंत्येष्टि संस्कार कराया। उनके साथ उनकी दो सुन्दर रानियां सती हो गईं। स्मिथ साहब ने लिखा है कि रानी की अवस्था तो अभी कुल बाईस वर्ष की ही थी और सुन्दरता मे भी वह लाजवाब थी।

नौनिहालसिंह

नौनिहालसिंह जब अपते पिता की अत्येष्टि से लौट रहे थे तो उनके ऊपर दरवाजा गिर पड़ा। जिससे उन्हें चोट आई और बेहोश हो गये। उनके साथ ही गुलाबसिंह का लड़का ऊधमसिंह भी था वह उसी समय मर गया।

लतीफ की तारीख पंजाब इस बात की कुछ इस प्रकार साक्षी देती है कि कुँवर नौनिहालसिंह के ऊपर दरवाजा गिरने मे राजा ध्यानसिंह का षडयन्त्र था। यदि उसका मन साफ होता तो वह कुँवर साहब की माँ रानी चन्दकौर को उनके पास आने से क्यों रोकता और क्यों अन्य सिख सरदारों को उनके पास आने से वंचित रखता। बल्कि जब रानी चन्दकौर अपने पुत्र के पास पहुँची। तब उन्हे बताया कि कुँवर साहब मर चुके हैं। फिर भी उन पर दबाव डाला कि अगर वे चुप रहेगी तो राज्य की मालिक उन्हे ही बना दिया जायगा।

ऐसा करने के कुछ कारण भी उपस्थित हो गये थे। कुंवर नौनिहालसिंह राजा ध्यानसिंह से सतुष्ट नहीं थे। वे कुल अधिकारों को अपने हाथ में लेते जा रहे थे। राजा ध्यानसिह ने काश्मीर का प्रबंध गुलाबसिंह को सौपने की बात कही थी किन्तु कु वरसाहब ने उसे अस्वीकार कर दिया था।

सिखों के वर्तमान ख्यातनामा हिस्टोरियन सरदार गडासिंह जी ने "डोगरा गरदी के गुझे भेद" शीर्षक से फुलवाड़ी की छठी जिल्द के अंक २, ३ मे राजा ध्यानसिंह और उसके भाइयों के समस्त कारनामों पर प्रकाश डाला है।

विजयसिंह नामी डोगरा सरदार को जोकि राजा गुलाबसिंह का खास आदमी था। इस काम के लिये मुकर्रिर किया गया था कि जब कुंवरसाहब हजूरी बाग की ड्योढी के दरवजे पर से गुजरे, उनके ऊपर दरवाजे के छज्जे गिरा दिये जावें।

उम्मेद ऐसीं थी कि कुंवरसाहब बच जाते क्योंकि वे पत्थरों के पड़नेसे एकबार जमींन पर गिर पड़ने पर भी उठ खड़े हुए थे किन्तु राजा ध्यानसिह ने उन्हें अपने प्रवध मे लेकर उनका तुरंत ही डाक्टरी इलाज नहीं कराया। वह तो कराता भी क्यों? उसने कु वर साहब की रानियों सिंधान वाले सरदारों और खास मा तक को भी तो पास नहीं जाने दिया।

इस सब से बढ़कर पडयत्र उसने यह किया था कि समस्त परदेशी अफसरों चाहे वे सेनापति थे चाहे डाक्टर अपनी ओर मिला लिया था।

जब रानी चन्दकौर को अपने प्यारे पुत्र की मृत्यु का पता लग गया तो उनसे कहा, अब पुत्र तो तुम्हारे हाथ से गयाही राज्य को भी क्यों खोती हो। मैं आपको राज्य की शासक बनाने का प्रबंध करता

हूँ। तव तक आप चुप रहें। यह भी जाहिर न करें कि कुंवर नौनिहालसिंह अव इस संसार में नहीं हैं। वरना विघ्न पड़ने की संभावना है।

हमारा तो ख्याल है और इस ख्याल की पुष्टी कर्नल गाडनर, मुन्शी देवीप्रसाद और मुहम्मद लतीफ आदि के लेख भी करते हैं कि महाराज नौनिहालसिंह को भीतर ले जाकर मार डाला।

इसके लिये हम समस्त सिखों को भी दोष दिये विना नहीं रह सकते। जिन्हें यह मालूम हो चुका था कि महाराज के ऊपर दरवाजा गिर पड़ा है फिर भी वे समूह के समूह उन्हें देखने के लिये नहीं उमड़े। चद डोगरों ने हजारों सिखों को धोखा दे दिया यह भी एक महान आश्चर्य है।

कुछ भी हो महाराजा खड्गसिंह और महाराज नौनिहालसिंह जी दोनों ही वाप वेटे डोगरा षडयत्र के शिकार हो गये।[१]

तीसरे दिन वटाला से महाराज शेरसिंह अपने दल सहित आगये।

महाराजा रणजीतसिंह जी के दूसरे पुत्र महाराज शेरसिंह जी थे और अपनी नानी की रियासत के मालिक थे।

कुंवर नौनिहालसिंह जी के मारे जाने के वाद ध्यानसिंह ने शेरसिंह जी को लाहौर वुला भेजा किन्तु रानी चन्दकौर इस वात पर विगड़ पड़ीं। उनके साथ ही सिधान वाले भी मिल गये। क्योंकि उन्होंने कहा कि जो गद्दी मेरे पति को मिल चुकी और उसके वाद उस पर मेरा पुत्र वैठने वाला था। उसके दो ही हकदार हो सकते हैं। या तो मैं या मेरी पुत्र वधू जो कि गर्भवती है। अटारी वाले सरदार भी रानी साहिवा के ही समर्थक थे। अत. ध्यानसिंह असमंजस में पड़ गया।

ध्यानसिंह ने सिखों को समझाने की चेष्टा की किन्तु वे उस समय तैयार नहीं हुए। अत में तय यह हुआ कि महारानी अधीश्वर और शेरसिंह जी उनके प्रतिनिधि के तौर पर रहें। उन्हें प्रधान मन्त्री के भी अधिकार रहेंगे। ध्यानसिंह खुद महाराज शेरसिंह के सलाहकार व मंत्री रहेंगे। किन्तु यह प्रवन्ध वहुत ही थोड़े दिनों चला। ध्यानसिंह जम्मू चला गया और शेरसिंह भी वटाले लौट गये। अव सिन्धान वाले महारानी चन्द कौर की ओर से मुखिया वनकर शासन करने लगे। एक कौंसिल भी वनाई गई। ध्यानसिंह का भाई गुलावसिंह इस कौंसिल का मेम्वर वन गया। देखने को यह मालूम होता था कि गुलावसिंह रानी चन्द कौर के हितैषी हैं और ध्यानसिंह शेरसिंह के मित्र किन्तु वास्तव मे वे सिख शक्ति को नष्ट करके अपना एकाधिकार जमाने की चालें चल रहे थे।

महाराज शेरसिंह की ओर से ज्वालासिंह नाम का एक चतुर सिख सिख-सेना में अपना प्रचार कर रहा था। कुछ एजन्ट ध्यानसिंह के भी सिखों को फोड़ने मे लगे हुए थे। आखिर जव वायुमंडल अनुकूल हो गया तो महाराज शेरसिंह कुछ आदमियों के साथ लाहौर पर चढ़ आये। अनेकों सिख नायकों ने शालीमार वाग में जाकर उन्हें अपना राजा मान लिया। सुचेतसिंह और जनरल वेन्तूरा भी शेरसिंह जी से जा मिले। लगातार पॉच दिन की लड़ाई के वाद शेरसिंह जी का लाहौर पर प्रभुत्व हो गया। ध्यानसिंह और गुलावसिंह ने वीच में पड़कर महारानी चन्दकौर और शेरसिंह जी के वीच सन्धि करा दी। इसके अनुसार महारानी जी को जम्मू मे नौ लाख रुपये की जागीर मिली। इस घरेलू युद्ध ने ४५८३ सैनिक ६१० घोड़े और पांच लाख रुपये खालसा राज्य के नष्ट हो गये। सिन्धान वाले सरदार अतरसिंह व अजीत

१. नौनिहालसिंह जी का जन्म ११ फर्वरी १८२० को हुआ और मृत्यु सन १८४० के ५ नवम्बर को हुई थी।

महाराजा शेरसिंह जी

अकाली वीर

बाबा फूला सिंह जी

सिंह भाग गये और लहनासिह पकड़े गये। जिन्हें महाराज शेरसिंह ने अपना विरोधी समझकर जेल मे डाल दिया।

महाराज शेरसिंह जी को खालसा राज्य के अधिपति घोषित कर दिये गये और राजा ध्यानसिह प्रधान मन्त्री।

महाराज शेरसिंह शरीर से स्वस्थ और सुन्दर सरदार थे। राजकाज मे भी दिलचस्पी लेते थे। किन्तु शराव की उन्हे काफी आदत थी। फिर भी वे ऐसे अयोग्य नहीं थे कि यदि शाति रहती तो वे राज-काज को न सभाल लेते।

उनकी यह भी इच्छा थी कि महारानी चन्दकौर के साथ उनका मेल हो जाय। उन्होंने कहा था कि यदि वे राजी हों तो मै उनके साथ नाता कर सकता हूँ। पटरानी भी उन्हे ही बना दिया जायगा। आरम्भ मे तो वे राजी न थी चूंकि उन्हे उम्मेद थी कि कुंवर नौनिहालसिंह जी की रानी नानकी जी के उदर से जो कि अटारीवालों की कन्या थी। अवश्य ही लड़का पैदा होगा किन्तु उनकी यह आशा पूरी नहीं हुई। बच्चा मरा हुआ पैदा हुआ। कुछ दिन के वाद वे राजी भो हो गई थीं। इसलिये अपनी जागीर से लाहौर आ गई। किन्तु गुलावसिंह ने आकर बाधा डाल दी। उनकी टहल के लिये जो बादियां रक्खी गई। उन्होंने महाराज शेरसिंह से जाकर कहा, रानी चन्दकौर तो आपको गाली देती हैं उधर रानी चन्दकौर से कहतीं कि महाराज तो तुम्हे ठगने की फिक्र मे है। नाता करने के बाद मे तुम्हे वांदी बनाकर रखना चाहते है। दोनो ओर से तनाव पड़ गया। महाराज शेरसिंह जब कि जलालाबाद थे। वांदियों ने महारानी चन्दकौर का सिर ईंटों से फोड़कर उन्हे मार डाला। कहा जाता है महाराज शेरसिंह को खुश करने के इरादे से ही बादियों ने ऐसा किया था। चालाक ध्यानसिंह ने बांदियों को कोतवाली पर मृत्यु का दंड देकर सिखो की सहानुभूति प्राप्त करली।

इस समय देश मे अराजकता फैलने लगी क्योंकि सैनिकों को समय पर तनख्वाह का प्रबन्ध न था। प्रबन्ध भी कहाँ से होता सूबों से कोई रकम आ नहीं रही थी। यत्र तत्र उपद्रव भी हो रहे थे। वे सिख भी महाराज शेरसिंह से नाराज हो रहे थे। जिन्हे कि महाराज ने आरम्भ के दिनों मे बडी इनामे देने को कहा था। डोगरों ने इस मौके से भी लाभ उठाया, उन्होंने महाराज को उनके अनन्य भक्त ज्वाला-सिंह से भी नाराज कर दिया।

सिंधानवाले सरदार भाग कर शिमला और दिल्ली में अंग्रेजों के साथ बाते करने लगे और अपने सम्वन्ध मे शिफारसें भी कराई। भाई रामसिंह जी ने कह सुन कर सरदार लहनासिंह जी सिंधान वाला को जेल से छुटकारा दिला दिया। लहनासिंह ने थोडे दिनों मे महाराज को खुश कर लिया और अजीतसिंह और अतरसिंह भी महाराज ने वापिस बुला लिये। महाराज और सिन्धान वाले एक ही वृक्ष की शाखाये थे। उनके पूर्वज भी एक ही थे। सभव था कि वे आपस की पिछली कड़वी वातों को भूल जाते किन्तु राजा ध्यानसिह इसे उचित न समझता था।[1] वह अव शेरसिंह की वजाय महाराजा रणजीत सिंह के छोटे राजकुमार दिलीपसिंह जी की ओर आकर्पित हुआ। सिंधान वाले ध्यानसिंह और शेरसिंह दोनों ही से प्रसन्न न थे वे चाहते थे। कि इन दोनों का खात्मा किया जाय।

१ और वह किसी न किसी तरह से इस खानदान को नष्ट कर देना चाहता था। खड्गसिंह और नौनिहालसिंह तो खत्म कर दिये थे। अब शेरसिंह को मिटाने की फिकर में था।

राजा ध्यानसिंह ने सिंधान वालों को उभाड़ा, उसने कहा जानते हो, महाराज आजकल तुम्हारे ऊपर इतने क्यों खुश हैं। उनकी ओर से आप लोग ज्योंही असावधान हुये तुम्हें वे मरवा डालेंगे। कहते हैं ध्यानसिंह ने उन्हें यह भी कहा कि मेरी तुम्हारे साथ सहानुभूति है और महाराज के खिलाफ जो भी तुम करोगे उसमें मैं सहायता दूंगा।[1] सिंधानवालों ने इस मौके पर लाभ उठा लेने की वात सोची। उन्होंने महाराज के पास जाकर कहा, ध्यानसिंह तो आपकी भी जान का दुश्मन वना हुआ है किन्तु वह हथियार हमें वनाना चाहता है। महाराज ने अपनी तलवार सिंधानवालों के हाथ में दे दी और कहा कि आप मुझे मार सकते हैं किन्तु वह छोडेगा आपको भी नहीं। सिंधानवालों ने कहा तव क्या यह उचित नहीं होगा कि इसका ही खात्मा कर दिया जाय आप इजाजत दें तो हम यह काम कर सकते हैं। महाराज ने अपने भोलेपन से उन्हें लिखित आज्ञा दे दी। कहा जाता है सिंधानवालों ने उस आज्ञा को ध्यानसिंह को दिखाकर उससे भी महाराज के मारने की आज्ञा लिखाली।

इस तरह के आज्ञापत्र पाकर प्रतिहिंसा से भरे हुये सिंधानवाले एक दिन पाच सौ सवारों के साथ लाहौर में आ गये। अपने आदमियों को इधर उधर लगा दिया। महाराज उस दिन लाहौर से शाह विलावल के मकवरे के पास वाहर कुस्तियाँ देखकर इनाम वाट रहे थे। अजीतसिंह ने उनके सामने जाकर एक वन्दूक दिखाई और कहा, महाराज मैंने यह नई वन्दूक खरीदी है। आप देखिये तो, महाराज ने ज्यों ही वन्दूक लेने को हाथ वढ़ाया कि उसने घोड़ा दवा दिया। गोलियाँ छाती में पार हो गईं। महाराज इतना ही कह पाये थे 'की' दगा। लहनासिंह उधर प्रतापसिंह के पास जा पहुँचा था। उस वेचारे वालक को भी मार डाला।

सिख साम्राज्य का विनाशक आज तक जहाँ एक डोगरा परिवार ही था। वहाँ अव सिन्धान वाला भी वन गया। ध्यानसिंह के दिमाग में यह वात घुस गई थी कि अपने पुत्र हीरासिंह को सिखराज का अधीश्वर वनाना चाहिए। इसके लिये रास्ता भी साफ कर रहा था।

दोनों वाप वेटों को मार कर सिंधानवाले राजा ध्यानसिंह के पास आये और उसे वड़ी खुशी २ के साथ सारा हाल सुना दिया। इसके वाद पूछा अव क्या करना है? ध्यानसिंह ने विना ही परिस्थिति को देखे हुये कहा, करना यही है कि दिलीपसिंह जी को महाराज वनाया जाय और मुझे वजीर। अजीत-सिंह ने भीषणता की हसी हँसते हुये कहा, "ठीक है" दिलीप तो महाराज हो जायगे और आप वन जायेंगे मंत्री। वस इतना कह कर उसे (ध्यानसिंह) भी खत्म कर दिया। सरदार लहनासिंह की दृष्टि में अजीतसिंह का यह कार्य जल्दवाजी का रहा। क्योंकि वह चाहता था कि जव सारा ही डोगरा परिवार इकट्ठा हो तव यह काम किया जाय। यदि सचमुच ही ऐसा होता तो सिख साम्राज्य के लिये एक हद तक अच्छा ही रहता। ताकि इनके दुष्कृत्यों से सिख राज्य वचा रहता।

हीरासिंह ने जव अपने पिता के कत्ल का समाचार सुना तो वह वेहोश हो गया। किन्तु उसके परिवार के लोगों ने उसे उलाहना देकर वदला लेने पर उत्साहित किया। हीरासिंह के हृदय में प्रतिहिंसा की ज्वाला धधक उठी।

उधर सिखों ने जव सुना कि सिंधानवालों ने महाराजा शेरसिंह और उसके नि अपराध पुत्र को मारडाला है। तो वह भड़क उठे उधर हीरासिंह ने जाकर उभाड़ा। हालाकि सिंधान वालों ने हीरासिंह

१. सिखों का उत्थान पतन पृष्ठ १७६

के सामने यह सफाई पेश की कि उनके पिता को एक मुसलमान ने मारा है कि जिसे कि हमने मौके पर बदले में कत्ल कर दिया है। किन्तु उनकी इस बात पर विश्वास नहीं किया गया। सिखों का क्रोध शांत करने के लिये उन्होंने महाराजा दिलीपसिंह को लेकर गद्दी पर बैठा दिया और अजीतसिंह को मंत्री घोषित किया। फिर भी सिख शात नहीं हुये। सिंधानवालों पर उन्हे यह भी शक होने लगा कि कहीं वे महाराजा दिलीप का भी खात्मा न कर दे और हीरासिंह भी यही कहकर उन्हें भड़काता था। सिंधानवालों की ओर से एक बात और फैलाई गई कि वे कहते है "हमने जो कुछ किया है अपनी भुजाओं के बल पर किया है।"

यह बात छावनी के सिखों को बरछी की तरह लगी, वे हीरासिंह की कमान में चालीस हजार की तादाद मे इकट्ठे होगये। और मे वे अपने ही किले पर गोला बारी करने लगे। रात भर तोपे दगीं। नारे लगे। गोलियों की बौछार हुई। अजीतसिंह और उसके बहादुर सैनिक दीवार को पार करके-सेना को चीर कर निकल जाने के इरादे से—उतर रहे थे कि अजीतसिंह मार दिया गया। थोड़ी देर बाद लहनासिह भी मारे गये। अमरसिंह उस समय बाहर होने की वजह से भागकर अंग्रेजों के इलाके मे चले गये। हीरासिंह की मुराद पूरी हुई।

उसने नये सिरे से महाराज दिलीपसिंह का राजतिलक किया। सिखों की आंखो में धूल झौंकने की चेष्टा से उसने महाराज के पैर चूमे। बहादुर किन्तु भोले सिखों ने हीरासिंह को ही महाराज का मंत्री बनाया।

उस समय महाराज दिलीपसिंह जी की अवस्था कुल पाच वर्ष की थी। कई अंग्रेज इतिहासकारों ने लिखा है कि वे छोटे थे। किन्तु बुद्धि उनकी बड़ी विलक्षण थी। यदि उन्हे राज्य करने का अवसर मिलता तो निश्चय ही वे बड़े पराक्रमी और चतुर शासक साबित होते। महारानी जिन्दाकौर जोकि माई जिन्दा के नाम से प्रसिद्ध हैं। उनकी मां थीं। वेही अभिभावुक नियुक्त हुईं। वे राजकाज में पूरा सहयोग देती थीं। अपने भाई सरदार जवाहरसिंह के साथ कभी फौजों मे महाराज को भेजतीं और कभी हाथी पर चढ़ाकर शहर मे। ताकि सेना और प्रजा की उनमे भक्ति बढ़ती रहे।

महाराज दिलीपसिंह

हीरासिंह का सलाहकार जल्ला नामका एक तान्त्रिक ब्राह्मण था। वह बड़ा चलता पुर्जा था। उसकी सलाह से हीरासिंह शासन को चलाने में कामयाब हो रहा था। किन्तु उन्हे महारानी के भाई सरदार जवाहरसिंह की तरफ से खटका था। इसलिये उन्होंने सेना मे फैलाया कि जवाहरसिह तो महाराज को अंग्रेजों के यहाँ ले जाना चाहता है। इधर जवाहरसिंह ने भी हीरासिंह के ताऊ सुचेतसिह को मत्री बनाने का प्रलोभन देकर फोड़ लिया। किन्तु जवाहरसिंह को यह पता न था कि खालसा मे उसके खिलाफ अंग्रेजों के साथ सम्बन्ध रखने की बात हीरासिंह की ओर से फैलाई जा चुकी है। इसलिये एक दिन जब कि वह महाराजा को मय सुचेतसिंह के खालसा के पास ले गया था। हीरासिंह की शिकायत करते हुये केवल धमकी के तौर पर यह बात कह डाली कि "हीरासिंह महाराज को बहुत तकलीफ देता है। अगर आप महाराज की रक्षा न करेंगे तो मे उन्हे लेकर अंग्रेजों के पास चला जाऊँगा। जवाहरसिंह अपने ही तीर से विंध गया। खालसा ने उसे और सुचेतसिंह समेत गिरफ्तार कर लिया। महाराजा को भी रात भर सेना में ही रक्खा। दूसरे दिन प्रात महाराज को तो हीरासिंह के हाथ सौंप दिया और जवाहरसिंर को जेल भिजवा दिया। हीरासिंह ने सुचेतसिंह के साथ भी कठोरता करनी चाही किन्तु उसे

गुलाबसिंह जम्मू लेगया। हम तो समझते हैं। जवाहरसिंह को कैद करने में डोगरों की चालाकी थी।

जल्ला पंडित ने महारानी जिन्दा के लिये भी बुरे भाव सिखों में फैलाना शुरू किया। सिख इस बात से नाराज हुये। उधर जम्मू में गुलाबसिंह भी शांति से न बैठा रहा। उसने लाहौर दरबार के पास एक पत्र भिजवाया कि काश्मीरासिंह और पिशोरासिंह, अतरसिंह के साथ मिलकर सिख राज्य को हड़पने की कोशिश में हैं। हीरासिंह ने उनके दमन के लिये गुलाबसिंह के पास पत्र लिख दिया और एक सेना भी भेज दी। इस बात को सुनकर हजारों सिख सैनिक हीरासिंह से नाराज होगये और उन्होंने हीरासिंह और जल्ला पंडित को उसी की हवेली में कैद कर लिया। हीरासिंह ने इस काम से अपनी अनभिज्ञता प्रकट करते हुए विश्वास दिलाया कि मैं राजकुमारों के साथ कोई दुर्व्यवहार न होने दूंगा और जल्ला पंडित को अब राज काज से अलग कर दिया जायगा।

उधर गुलाबसिंह की सेनाओं के हाथ जब दोनों राजकुमार जोकि अपनी जागीर को भी छोड़कर भाग गये थे न आये तो गुलाबसिंह ने उन्हें धोके से बुलाकर कैद कर लिया। यह थी डोगरों की वफादारी ?

इधर कुछ दिनों से वेतन रुका हुआ था। उधर काश्मीरासिंह और पिशोरासिंह गिरफ्तार कर लिये गये। इन कारणों से खालसा सेना एक बार फिर बिगड़ी उसने सुचेतसिंह को कहलवा भेजा कि तुम लाहौर आजाओ। मंत्री बना दिया जायगा। सुचेतसिंह लाहौर की ओर ४०० सैनिकों के साथ चला आया। किन्तु हीरासिंह ने अपनी चालाकी से पुनः सिख सेना को संतुष्ट कर लिया। आरजू, मिन्नत करने के अलावा उसने पुरुस्कार बाटने की भी घोषणा की और अपने ताऊ सुचेतसिंह की सेना पर हमला कर दिया। सुचेतसिंह इस लड़ाई में मारा गया। कहा जाता है। सुचेतसिंह की मृत्यु से हीरासिंह को बहुत दुःख हुआ।

जवाहरसिंह जिसे कि नाबालिग महाराज की इच्छा के अनुसार हीरासिंह ने मुक्त कर दिया था। सुचेतसिंह के मारे जाने के कारण लाहौर छोड़कर अमृतसर चला गया। वहाँ उसने भाई और बाबा सिंहों के सामने हीरासिंह की चालबाजियाँ पेश कीं, वे सब लोग जवाहरसिंह के पक्ष में होगये।

माझे में में बाबा वीरसिंह रहते थे। जब उनके पास लाहौर के दिल दहला देने वाले षड्यन्त्रों के समाचार पहुंचे तो वे बड़े दुखी हुये। उन्होंने घूम २ कर देहाती सिखों से कहा "लाहौर का राज्य गुरुओं के कृपा पर कायम हुआ राज्य है। इसकी रक्षा के लिये प्रत्येक सिख को कमर कसनी चाहिये। उनके प्रभाव से लगभग १५०० सिख उनके पास जमा होगये। अतरसिंह सिंधानवाला कुँवर पिशोरासिंह और काश्मीरासिंह भी बाबा के पास पहुंच गये।

जब हीरासिंह को यह खबर लगी तो उसने एक बड़ा दल इन्हे दमन के लिये भेजा। बाबा जी ने बहुत प्रयत्न किया कि रक्त पात न हो। किन्तु लड़ाई हो ही गई। इसमें बाबा वीरसिंह, सरदार अतरसिंह और काश्मीरासिंह अनेकों सिखों के साथ मारे गये। कुँवर पिशोरासिंह एक दिन पहले लाहौर चले आये थे वे बच रहे। उनके साथ हीरासिंह ने काफी बनावटी प्रेम दिखाया। उनकी आवभगत भी अच्छी की।

खालसा सेना बाबा वीरसिंह के प्राण तो ले आई। किन्तु उसे बड़ी ग्लानि हुई। उसका हृदय हीरासिंह से जल उठा। हीरासिंह ने बहुत कोशिष असंतोष को दबाने की की। किन्तु जब पाप का घड़ा भर जाता है तब फूट कर ही रहता है। इन्हीं दिनों अफवाह उड़ी कि हीरासिंह और जल्ला पंडित महारानी और महाराज के साथ कठोरता का वर्ताव करते हैं। फिर क्या था अग्नि पर घी की आहुति

पड़ गई। वीर सिख उन्मत्त हो उठे। चारों ओर से किले को घेर लिया गया। अब हीरासिंह ने समझ लिया कि उसके प्राणों की रक्षा भागकर ही हो सकती है। प्रातःकाल के समय जल्ला पंडित के साथ वह भाग निकला। किन्तु सिखों ने उसे पकड़ लिया। दोनों के शिर काट लिये गये। जल्ला की लाश कुत्तों के सामने पटक दी गई। हीरासिंह और उसके चचेरे भाई सोहनसिंह के जोकि गुलाबसिंह का लड़का था सिर शहर के बाहर दरवाजों पर टाँग दिये गये।

जवाहरसिंह की इच्छाये पूरी हुईं और उसे खालसा ने मंत्री बनाया। जवाहरसिंह ने सेना मे पुरुस्कार बाटा। इस प्रकार उसने सेना को खुश कर लिया। लालसिंह ने पिछले दिन सरदार जवाहरसिंह का साथ दिया था। यह जल्ला पंडित और हीरासिंह से जलने लग गया था। जवाहरसिंह के मंत्री होने से उसकी पूछ और भी बढ़ गई।

किन्तु खजाना खाली था। मुल्तान और जम्मू तथा पेशावर के सूबेदार पैसा न भेज रहे थे। जम्मू के प्रबन्धक गुलाबसिंह की ओर तीस करोड़ रुपये निकलते थे। अत. जवाहरसिंहने पहले उसीपर चढ़ाई करने को सेना भेजी। गुलाबसिंह डर गया। उसने तीन लाख रुपया तो सेना को भेंट किया और खुद लाहौर हाजिर हुआ। महारानी जिन्दा ने उसे क्षमा कर दिया। केवल ६ लाख ८० हजार जुर्माना उस पर किया और कुछ इलाके छीन लिये।

गुलाबसिंह ने जम्मू पहुंचकर महारानी और उसके भाई जवाहरसिंह से बदला लेने की सोची। उसने पिशोरासिंह को भड़काया और उससे ऐलान करा दिया कि मेरे होते हुए दिलीपसिंह को गद्दी देकर मेरे साथ न्याय नहीं हुआ है। इधर गुलाबसिंह ने अपने सलाहकार जवाहरमल नाम के आदमी को लाहौर भेज दिया कि वह खालसा सेना को पिशोरासिंह का साथ देने को तैयार करे। खालसा सेना ने पिशोरासिंह के लाहौर आने पर उससे यह कहकर मदद देने से इन्कार कर दिया कि दिलीप और आप दोनों महाराज रणजीतसिंह के पुत्र हो हम किसी की कोई मदद नहीं करेंगे। तुम्हारे गिरफतार करने का हमें जवाहरसिंह की ओर से जब हुक्म मिला तो उसे भी हमने यही जवाब दे दिया है। पिशोरासिंह लाहौर से चला गया और अटक पहुंच गया। कहा जाता है कि वहाँ उसे फतहसिंह ने धोखे से मार दिया।

सिख सेना जवाहरसिंह से भी नाराज थी पेशावरासिंह के मारे जाने के बाद यह नाराजगी और भी बढ़ी। उन्होंने जबकि जवाहरसिंह सेना मे कार्यवशात गया था। उसे मार डाला।

महारानी जिन्दा सेना से उसकी इस हरकत पर बहुत नाराज हुई। वह अपने भाई की लाश से लिपट गई और फिर फोड़ने लगीं। जिम्मेवार सिख सेनापतियों ने महारानी को विश्वास दिलाया कि हम लोगों से विना ही पूछे यह काम जल्दी मे हुआ है। अपराधी जवाहरमल को जो कि गुलाबसिंह का आदमी था अन्य साथियों सहित महारानी जिन्दा के सुपुर्द कर दिया।

विवश होकर रानी ने सतोप किया। उन्होंने शासन करने के लिये एक कौंसिल कायम की। जिसमे दीवान दीनानाथ, भाई रामसिंह और मिश्र लालसिंह सदस्य थे। लालसिंह ने जवाहरसिंह का साथ दिया था इसलिये रानी अपना आदमी समझती थीं।[1]

१ तेजसिंह और गुलाबसिंह के नाम की पर्चिया मत्री पद के लिये डाली गईं और दैवयोग से लालसिंह की पर्ची निकल आई और वह मत्री हो गया।

इस प्रकार से गृह कलह और रात दिन की खून खराबियों में छः वर्ष बीत चुके थे। अब सन १८४५ चल रहा था। महाराज की आयु भी ६-७ साल की हो चुकी थी। अब उम्मेद भी थी कि आगे कोई फिसाद न उठेगा। किन्तु खजाने खाली थे और सेना का वेतन चढ़ा हुआ था। भूखी सेनाएं राजा की दुश्मन होती हैं। अत सैनिकों में असंतोष की लहर दौड़ रही थी। अब तो एक ही उपाय हो सकता था कि कोई चतुर और वफादार सेनापति इस विशाल सेना से विजय यात्रा करा देता। किन्तु इस सेना के जो इस समय अफसर बने हुए थे। वे सिख राज्य के ही नहीं किन्तु सिख धर्म के भी दुश्मन थे। हालांकि उन्होंने सिखों का जैसा वेश बना रखा था। किन्तु उन में वह माद्दा न था जो गुरु के लाडले खालसाओं में था।

जब खालसा राज्य में इस प्रकार धांधली मची हुई थी। अंग्रेजों ने इस अवसर से लाभ उठाना आरंभ कर दिया। खालसा दरबार के विद्रोहियों को बड़ी प्रसन्नता से शरण देने लग ही गये थे। किन्तु शेरसिंह के पंजाब का महाराजा बनते ही अंग्रेजों ने उन्हें लिखा कि हम खालसा सेना की उद्दंडता को दूर कर सकते हैं किन्तु बदले में तुम्हारे सतलज के दक्षिण के प्रदेश और चालीस लाख रुपया देना होगा। किन्तु शेरसिंह ने इस सहायता के लिये इनकार कर दिया। इससे भी अंग्रेज निराश नहीं हुए। अफगान स्थित कर्नल एबट ने उन्हीं दिनों घोषणा की कि सिख दरबार से की हुई हमारी सन्धि भंग होगई है।

सन् १८०६ ई० की संधि के अनुसार सिख साम्राज्य के निकट वे छावनी नहीं बना सकते थे किन्तु उन्होंने इस प्रतिज्ञा को तोड़ दिया। लुधियाना और फीरोजपुर में छावनियाँ कायम कर लीं। लुधियाने को रानी लच्छमनकौर से जब्त ही इसीलिये किया गया। फीरोजपुर एक प्रकार से लाहौर दरबार का एक रक्षित राज्य था। इसके सिवा अम्बाला और अन्य पड़ौसी पहाड़ी इलाकों में भी उन्होंने अपने सैनिक कैम्प खोल दिये। सीमाप्रान्त में आरम्भ में केवल ढाई हजार अंग्रेजी सेना के आदमी रखते थे किन्तु धीरे २ बतीस हजार इकट्ठे कर लिये। यह सब तैयारियाँ सिखों से लड़ने के लिये ही कही जा सकती हैं। चाहे उस समय अंग्रेज सरकार ने कारण कुछ भी बताये हों।

सिख साम्राज्य के तीन ओर अंग्रेजी सेनायें बढ़ाई जा चुकी थीं। जम्बू की ओर गुलाबसिंह को मिलाने की कोशिशें चल रही थीं। फिर भी सतलज नदी अंग्रेजों को अपने मार्ग में कांटा दिखाई देती थी उसे वह सिख राज्य की रक्षा में खास चीज समझते थे। अतः उस पर मजबूत पुल बनवाने के लिये बम्बई में सामान तैयार किया जाने लगा। सिखों को यह खबर लग गई।

लड़ाई के लिये अंग्रेज तैयार थे। वे कोई बहाना चाहते थे। बहाना सिखों के भड़कने से ही मिलता अत. जिस ब्राडफुट के प्रति सिखों की शिकायतें थीं। उसे ही अंग्रेज अधिकारियों ने अपना राजदूत बना कर लाहौर दरबार में भेजा। सिख अब भी चुपचाप थे। वे सब बातों को सह रहे थे। लेकिन ब्राडफुट यह तो नहीं चाहता था कि सिख बर्दाश्त करते रहें। उसका तो मंशा ही यह था कि वे किसीतरह भड़क उठें जिससे हमें लड़ने का बहाना मिले।

हालांकि सन् १८०६ ई० की सन्धि के अनुसार वे फीरोजपुर के पास से सतलज पार कर सकते थे। उलटा उन पर इल्जाम यह लगाया कि ब्रटिश इलाके में सिख सैनिक बिना इजाजत लिये घुसे। उसने सतलज में जहाज चलवाये और उन्हें सिखों की सीमा में खूब घुमाया। ब्रटिश सैनिकों का सतलज में प्रदर्शन कराया। वह जो भी कुछ उभाड़ने के लिये कर सकता था सब किया। कनिंघम ने लिखा है कि मेजर ब्राडफुट के एजन्ट बनने के ही कारण सिख युद्ध शीघ्र संभावित हुआ।

बात यहीं तक रहती तब भी शायद सिख बर्दाश्त कर लेते। ब्राडफुट ने तो उस मूलराज का भी पक्ष लिया जिसने वर्षों से मुलतान सूबे की मालगुजारी लाहौर के खजाने मे दाखिल नहीं कराई थी और अब अपने को स्वतन्त्र शासक समझने लगा था। ब्राडफुट ने सिन्ध विजेता नैपियर साहब को लिखा। मूलराज अंग्रेजों की सहायता चाहता है। सिख सेना उससे लड़ने गई है। अगर वह जीत गई तो उसका हौंसला बढ़ जायगा और वह अंग्रेजों के लिये भी फिर जायगी। नैपियर खुद ही ब्राडफुट से सिखों से द्वेष रखने मे आगे था। उसने सिन्ध मे उन सिख सिपाहियों के ऊपर हमला करा दिया था जो (सन् १८४५) डाकुओं का पीछा करते हुये उसके कैम्प के ईर्द गिर्द तक पहुँच गये थे। हालाकि कानूनी रूप से उस समय तक सिन्ध मे कोई सीमाये निश्चित नहीं हुई थीं। नैपियर और ब्राडफुट दोनों ही चिल्लाते थे कि 'सिखों से युद्ध होना है।" अंग्रेजों का अखबार भी ऐसी ही खबरें छापता था। इसके अलावा ब्राडफुट ने लुधियाने में दो सिख जागीरें जब्त कर लीं जो कि सन्धि के नियमों से बिल्कुल बाहर की बात थी।

इन सब घटनाओं के कारण सिखों का खून उबल उठा। उबलता भी क्यों न जब कि न तो उनकी भुजाये निर्बल थीं और न उनके हथियारों मे ही मोरचा लगा था। आम सिख सैनिकों और सिख सरदारों की भावना को देखकर वे लोग भी लड़ाई के लिये तैयार हो गये जो अन्तकरण से खालसा सेना से संतुष्ट न थे उन्होंने भी इस समय लड़ाई को उचित ही समझा वे खालसा की शक्ति के कमजोर होने मे ही अपना हित समझते थे। उनका वश चलता तो इससे भी पहले खालसा सेना को लड़ाई में पटक देते किन्तु चूंकि गोला बारूद की कमी थी, इसलिए वे समय को टालते रहे।

सन् १८४५ ई० के नवम्बर से घरू शत्रु भी सेना को उत्तेजित करने लगे। कभी कहा जाता अंग्रेजी सेना सतलज पार कर रही है कभी अंग्रेजों को धमकी की जाली चिट्ठी दिखाई जाती। हम कहना चाहते हैं कि जहाँ अंग्रेजों ने सन्धि भंग करके सिखों को उभाड़ने के लिये आग जलाई वहाँ घरू दुश्मनों ने उसमें आहुतियाँ दीं।

लालसिंह ने खालसा सरदारों और समस्त सिख पंचायतों का एक संयुक्त अधिवेशन किया। शालामार बाग सिखों से खचाखच भरा हुआ था। दीवान दीनानाथ ने खड़े होकर कुछ पत्र सुनाये। जिनका साराश था सतलज के इस पार के कुछ इलाके पर अंग्रेजों ने अपना दखल देना शुरू कर दिया है। वे सिख प्रजा से कर मांगते हैं। पेशावर पर शीघ्र ही अंग्रेज अफगानों का अधिकार करा देना चाहते हैं। काश्मीर और मुलतान के सूबे बिगड़ गये है। अंग्रेज शह देते हैं। खजाने मे राजस्व के नाम पर कुछ नहीं आ रहा है। इन पत्रों को पढ़ने के बाद उसने महारानी जिन्दा की ओर से बोलते हुये कहा, "खालसा जी, जिस राज्य को स्वर्गवासी महाराज ने कायम किया था और जो समस्त सिखों की शान है आज उस पर विपत्ति के बादल मंडरा रहे हैं। दुश्मन उसे नष्ट कर देना चाहते हैं। बोलो इस समय आपका क्या कर्तव्य है। चारों ओर से हजारों कंठों से आवाज आई। "हम अपने हृदय का भी रक्त बहा कर अपने राज्य की रक्षा करेंगे।"

जब कि सिख सेना मे ऐसी प्रबल युद्ध आकांक्षा जागृत हो रही थी। उस समय गवर्नर जनरल ने बृटिश राज्य की सीमा पर जहाँ से कि सिख राज्य निकट ही था डेरे आ जमाये। फिर क्या था ? सिखों ने समझ लिया कि अब देर करने मे अपनी ही हानि होगी। इसलिये वे अंग्रेजों की ओर से तैयारियों को देखकर उनकी तरफ के खतरे से अपने देश को बचाने के लिये सतलज की दक्षिण में अपने इलाके मे अपनी फौज को पहुँचा देने का फैसला कर दिया। लाहौर युद्ध की प्रति ध्वनि से गूंज उठा। सिख लोग

महाराजा रणजीतसिंह जी की समाधि पर इकट्ठे हुए। खालसा के समस्त सरदारों और पंचों ने गुरु ग्रन्थ साहब को स्पर्श करके प्रतिज्ञा की कि महाराज दिलीपसिंह जी के प्रति राजभक्त रहेंगे।

अंग्रेजों की ओर से हो रही ज्यातियों और तैयारियों को इन चार बातों में लाहौर दरबार की ओर से बताया गया।

(१) लड़ाई करने की पहल अंग्रेजों की ओर से हो चुकी है। उनकी कुछ सेनायें सतलज को पार कर आई हैं। (२) फीरोजपुर के खजाने में राजा सुचेतसिंह का जो अठारह लाख रुपया जमा है। उसे सिख दरबार के मांगने पर भी अंग्रेजों ने नहीं दिया है। (३) मृत राजा सुचेतसिंह की समस्त संपति पर उनके बाद सिख दरबार का अधिकार है अंग्रेज कर्मचारी इसे स्वीकार नहीं करते (४) सतलज के दक्षिण लाहौर दरबार के जो इलाके हैं उनमें हमारे सैनिकों को आने जाने से अंग्रेजों ने रोक दिया है। अतः हम समझते हैं कि अंग्रेज न केवल सधियों को ही भग कर रहे हैं किन्तु वे खालसा राज्य के कार्यों मे भी बाधा डालते हैं।

दोनों ओर से लड़ाई की तैयारी होने लगी। फ्रांसीसी नैपोलियन को कैद कर लेने भारतीय मरहठों को मटियामेट कर देने और राजपूत रज्जू का बल निकाल देने के बाद से फौजी अंग्रेजों के दिमाग अभिमान से अस्मान पर चढ़ गये थे। क्योंकि उनसे पठान कापते थे बिलोच घबराते थे। अब बाकी थे तो केवल गुरु के लाड़ले, रणजीतसिंह के शूर, जननी के सपूत और खालसा के वीर सिपाही सिख। अंग्रेज सिख सैनिकों के बल को नापना चाहते थे। उनके दिलों में बहुत दिनों से ख्वाहिश थी। वे मौके की लाश में थे। उन्होंने मौका भी पैदा कर लिया। इधर सिख वीरों के मन में गोरे सैनिकों से दो-दो हाथ कर लेने की लगी हुई थी। क्योंकि उनकी भुजाओं मे भी वह बल था जिसका लोहा मानकर राजपूत उनके महाराज पर चंवर करते थे। गोरखा गुफाओं से बाहर न निकलते थे और पठान थकान महसूस कर रहे थे। उन्हें अंग्रेजों से तनकभी भय न था क्योंकि वे काबुल में उनके साथ रह कर देख चुके थे। भरतपुर में उनकी जो गति हुई थी उसकी चर्चा सुन चुके थे। जब दोनों ही ओर से लडने का चाव हो फिर चाहे वह प्रतिहिंसा से ही क्यों न हो तब भला युद्ध क्यों न होता।

अंग्रेजों के सैकड़ों भेदिये लाहौर मे लगे हुए थे ज्योंही सिख सेनाओं ने कूंच किया और उन्हें पता चला त्योंही अम्बाला, लुधियाना और फिरोजपुर से अंग्रेजी सेनायें सामना करने के लिये तैयार हो गई।

युद्ध

सिखों की रणवाहिनी ११ दिसम्बर सन् १८४५ को सतलुज पार उतर आई। १६ वीं दिसम्बर को सिख सेनापतियों ने अपने आगमन की सूचना दे दी। कहा जाता है इस समय अंग्रेजों ने भी युद्ध की घोषणा कर दी और उनमें युद्ध के लिये तैयार होने का सारा दोष अंग्रेजों ने सिखों के सिर मढ़ा। यह ठीक है कि घोषणा अंग्रेजों ने सिखों से पीछे की किन्तु तैयारी उन्होंने सिखों से भी पहले की थी। अम्बाले से सतलज तक ३२४७९ सैनिक पहले से ही उन्होंने जाल की भांति पूर रक्खे थे। फिर भी उन्होंने घोषणा में यही कहा कि सिखों ने अकारण ही हमारे इलाके पर हमला किया है। अत अब हम सतलज के बाईं ओर के लाहौर दरबार के इलाके पर भी अपना प्रभुत्व स्थापित करते हैं।

अंग्रेज इतिहासकारों ने सिखों की २५, २६ हजार सेना बतलाई है और अंग्रेजों की सेना १८ हजार थी, किन्तु कनिंघम ने इस बारे में एक सच्ची बात कही है वह यह कि "शत्रु की सेना को अपने से अधिक बताने में लड़ने वाले अपनी प्रशंसा समझते हैं।"

हम लोग आजकल जापान या अमरिका के उन देशभक्तों की बड़ी प्रशंसा किया करते हैं जो किसी भी छोटे से छोटे काम को करने मे हिचकते नहीं किन्तु आज से पचास वर्ष पहले सिखों मे अपने देश और राज्य के लिये जो मुहब्बत थी वह ससार में भारत का सिर ऊचा उठा देने वाली है। लड़ाई का बिगुल बजते ही कुलियों के अभाव में उन्होंने गाड़ियों मे अपना सामान लादा। खिच्चर कम होने की हालत मे गाड़ियों को भी खींचा और नावो को सतलज मे अपने ही हाथों से धकेल कर पार लगाया वे इस युद्ध मे उसी प्रसन्नता से प्रत्येक कार्य को करते थे। जितनी प्रसन्नता से धनी लोग व्याह-शादियां करते हैं। अपने देश की आजादी को अटल बनाये रखने के लिये वे प्राण देने जा रहे थे। किन्तु किसी भी चेहरे पर न चिन्ता थी और न घबराहट। ऐसा शायद ही कहीं होता हो।

इस प्रकार के उत्साह और देश प्रेम से ओतप्रोत खालसा सेना को भी अंग्रेज उपेक्षा की दृष्टि से देख रहे थे उनका अनुमान था कि सिख जितना घमंडी है उतना वीर नहीं। वह हमारे ट्रेन्ड सिपाहियों के सामने कितनी देर ठहरेगा। जिस समय हमारी तोपे आकाश के हृदय को विदीर्ण करने वाली गर्जन से धुंआ उगलेगी वह भाग खड़ा होगा। फिर उनका कोई योग्य सेनापति भी तो नहीं। हम युद्ध की कला जानते हैं। सिख तो केवल मजबूती पर बावले बने हुए है। ड्यूक आफ़ विलिंगटन का भी यही खयाल था उसने नेपोलियन को हराया था इसलिये लार्ड गफ ने जो कि अंग्रेजी सेना का जनरल था यही युद्ध संचालक नियुक्त हुआ।

युद्ध का वर्णन करने से पहले हमे सिख सेना के सेनापतियों के बारे मे कुछ कह देना जरूरी है ताकि युद्ध में सिखों की हार-जीत के मामले को समझने में पाठकों को सुविधा हो।

सिख जिस उत्साह और "न पलायनम न, दैन्यम" की जिन प्रतिज्ञाओं को लेकर रण में उतरे थे, वह बातें उनके सेनापतियों मे न थीं। लालसिंह और तेजासिंह दोनों ही विजय की आकाक्षा से नहीं आये थे किन्तु खालसा की शक्ति को क्षीण कराने को आये थे। वे अंग्रेजों के हाथ मे खेल रहे थे पंजाब से उन्हे कोई प्यार नहीं था क्योंकि वे यहां से दूर के रहने वाले थे।

बहादुर सिखों का उद्देश्य अपना सर्वस्व गवा कर भी अपने राज्य की रक्षा करना था और उनके सेनापतियों का उद्देश्य उनकी शक्ति को क्षीण कराना था। इस स्थिति मे सिख वीरों ने जो बहादुरी दिखाई वह तब तक अमर रहेगी जब तक कि संसार मे एक भी आदमी वीरता की कद्र करने वाला मौजूद रहेगा।

सतलज के इस पार आते ही लालसिंह ने अंग्रेज ऐजेंट मि० निकलसन को एक पत्र लिखा—"आप जानते होंगे मैं अंग्रेजों का मित्र हूं। मैं सिख सेना समेत सतलज पार उतर आया हूं। अब कहिये मुझे क्या करना चाहिये।" निकलसन ने इसके उतर मे लाल सिंह को सलाह दी कि यदि आप सचमुच अंग्रेजों के हितैषी हैं तो सिख सेना को फीरोजपुर पर आक्रमण करने से रोकते रहिये। जितने दिन भी हो सके सेना को लड़ाई से रोके रहिये। और किसी भी तरह उसे गवरनर जनरल की सेना के सामने ले जाइये। लालसिंह ने खरीदे हुए गुलाम की भाति निकलसन की इस आज्ञा को माना। बार-बार सिख सैनिकों के फीरोजपुर पर आक्रमण करने के इरादे को टालता रहा। यदि वह वह उस समय सैनिकों को इजाजत दे देता तो फीरोजपुर सिखों के हाथ आ जाता और वहां से उन्हे इतना धन और हथियार हाथलगते कि अंग्रेजों को हराना उन्हे कुछ भी मुशकिल न होता। फीरोजपुर पर वे अवश्य ही कब्जा कर सकते थे। कारण कि उस समय वहा बहुत कम सैनिक थे। इसके बाद लुधियाने और अम्बाला पर एक ही साथ

आक्रमण किया जाता तो अंग्रेजों को लेने के देने ही नहीं पड़ जाते किन्तु पंजाब से उन्हें निश्चय ही भागना पड़ता।

जब-जब भी सिख सैनिक आक्रमण की बात कहते, लालसिंह कहता "इस तरह तुम अपनी शक्ति नष्ट न करो। अंग्रेजों के प्रधान सेनापति को आने दो। हमें तो उसे पकड़ना है। इसमें तुम्हारीकीर्ति भी बढ़ जायगी।" वे लालसिंह के भुलावे में आगये और शत्रु को मजबूत होने का मौका देते रहे। लालसिंह उन्हें मुदकी के मैदान में ले पहुंचा उधर से विशाल अंग्रेजी दल भी आगया।

१८वीं दिसम्बर सन् १८४५ मुदकी के मैदान को रक्तरंजित होने के लिये दैव ने घटना कारूप दिया। ग्यारह हजार अंग्रेजी सैनिक थे। लालसिंह ने उसके मुकाबले केवल तीन हजार सवार और पैदल सिखों से भिड़ा दिया। और खुद सेना के पिछले भाग पहुँचकर जो मैदान से काफी पीछे छोड़ दिया गया था लौट गया। यह अल्प सैन्य भी सेनापति विहीन रह गया। फिर भी रण-बांकुरे सिख "वाहि गुरु जी का खालसा, और वाहिगुरु जी की फतह के नारे लगा कर अंग्रेजी सेना पर वन केसारियों की भांति टूट पड़े। जिधर वे पिल पड़ते, मैदान साफ हो जाता। सिखों के इस प्रकार भीम-विक्रम को देखकर अंग्रेजी सेना का प्रधान सेनापति गफ आश्चर्य में पड़ गया। उन्हें कोई मार्ग दर्शक नहीं है न आर्डर देने वाला। फिर भी वे इस प्रकार से लड़ रहे हैं मानो कोई उनका संचालन कर रहा है। उन्होंने घंटों उनके युद्ध कौशल को देखा और साथ ही देखा कि वे अंग्रेजी सेना का भारी नुकसान कर रहे हैं। अपनी सेना की तरफ गौर से देखने पर उन्हें ऐसा लगा मानो सिखों की विकट मार से घबराहट में आकर सेना के कुछ हिस्से के लोग आपस में ही लड़ रहे हैं। वे अपनों पर ही गोली चला रहे हैं। आखिर उन्होंने दोपहर बाद अपनी सेना को आर्डर दिया कि गोलियां चलाना बंद करके संगीनोंसे एकसाथ सिखों पर हमला किया जाय। आगेकी टुकड़ियां पीछे कर दी गई और पीछे की ताजा टुकड़ियां आगे आ गई।

सिखों की वही टुकड़ियां थीं जो सवेरे से बराबर बढ़ रही थीं। सिखों ने सोचा अपनी पिछली सेना के पास पहुँचना चाहिये किन्तु पीठ दिखा कर नहीं। वे बराबर लड़ते रहे और धीरे धीरे उलटे पैरों वापिस भी होते रहे। अंत में दिन छिप गया और लड़ाई स्थगित हो गई। इस लड़ाई में अंग्रेजों के ८७२ आदमी काम आये और हजारों घायल हो गये किन्तु उनके हाथ सिखों की १७ तोपें लग गई। राबर्टसन और सेनापति मैकेसकिल नाम के दो प्रसिद्ध युद्ध संचालक भी अंग्रेजों के काम आए। इस लड़ाई में सिखों की सेना के सैनिक अंग्रेजी सेना की अपेक्षा कम काम आये किन्तु अंग्रेजों ने विजय अपनी ही समझी।

रातको अंग्रेज युद्धसंचालकों की कौंसिल बैठी और उसमें लिटलर साहब की सेना को भी जोकि फीरोजपुर में आठ हजार की संख्या में थी अगले दिन की लड़ाई में शामिल कर लेना तय हुआ।

मुदकी के बाद फीरोजपुर में रणचंडी का तांडव नृत्य हुआ। पिछली कठिनाई और हानि का खयाल करके अंग्रेजों ने सेना को बढ़ा लिया। सैनिकों का उत्साह बढ़ाने के लिये गवर्नर जनरल लार्ड हार्डिङ्ग भी लड़ाई में उतर पड़े। उन्होंने गफ को अपनी सेवायें सौंप दीं। अठारह हजार सैनिक और ६५ तोपों के साथ २१ वीं दिसम्बर सन् १८४५ को दोनों सेनाये भिड़ गई।

सिख वीर भी अदम्य उत्साह से आज के युद्ध में सम्मिलित हुये। विजय प्राप्त करना अथवा समर क्षेत्र में रणचडी को आत्म बलि देना उनका उद्देश्य था। इसलिये उन्होंने कठिन व्यूह की रचना की। अंग्रेजी सेना ने विद्युत गति से सिख व्यूह पर हमला किया। जिस समय अंग्रेजी तोपों ने भीषण अग्नि वर्षा की वह समय बड़ा भयावना था। इससे भी भयावना दृश्य चारों ओर से अंग्रेजी सेनाओं का सिख

व्यूह पर धावा करना था। किन्तु बार-बार के सर्व-ग्रासी धावों के बाद अंग्रेजी सेना सिखों के व्यूह को न तोड़ सकी। प्रत्येक हमले में अंग्रेजी सेना को हानि उठानी पड़ी। अंग्रेजी सेना को इससे पहले किसी भी एशियाई लड़ाई मे इतना लज्जित न होना पड़ा था।

इधर सिख गोलन्दाज भी अंग्रेजों की इस प्रकार की अग्नि वर्षा से भभक उठे। उन्होंने अपनी तोपों का मुंह अंग्रेजो तोपखाने को ओर फेर दिया। जिसमे केवल तोपों को ही नष्ट नहीं किया किन्तु रसद की भरी हुई गाड़ियों को भी ध्वंस कर दिया। इससे बढ़ कर उन्होंने अंग्रेजों के बारूद खाने मे गोला फेंक कर आग लगा दी। बारूदखाने मे आग लगने से अंग्रेजी सेना मे हाहाकार मच गया किन्तु सेनापतियों की दृढ़ता के कारण सेना भागने से रुकी रही। सेना भागी नहीं सही किन्तु अंग्रेज सेनापतियों को यह अनुभव हो गया कि आज तक उन्हे ऐसे सकट का सामना किसी भी लड़ाई मे नहीं करना पडा था। सेना भेड़ों की तरह इकट्ठी होने लगी।

उस समय एक विचित्र घबराहट अंग्रेजी सेना मे थी। सिपाही गोलियां चलाते थे किन्तु उन्हे यह होश न था कि लक्ष्य किसे बना रहे है। गोलन्दाजों की निशाने पर गोला मारने की शक्ति कुंठित हो रही थी। सेनापति हुक्म देना चाहता है किन्तु वह किसे हुक्म दे और कौन हुक्म की तामील करेगा यह यह निश्चय करना उन्हें मुश्किल हो रहा था। कारण कि उनका बनाया हुआ व्यूह छिन्न हो चुका था। इसी अरसे में रात्रि आगई किन्तु लड़ाई कैसे बन्द हो। मामला सारा अस्तव्यस्त था। सिखों के इस अंधेरे में भी एक धावा मारा अंग्रेजी सेना का बाया भाग तोड दिया। मि० लिटलर उस भाग पर थे। वे फौज कों बचाने की गर्ज से भाग निकले।[१] बालस साहब की अध्यक्षता में जो दो पलटने लड़ रही थीं वे भाग कर गिलबर्ट की सेना के व्यूह के पीछे हो गईं। लार्ड हार्डिंग और लार्ड गफ ने देखा सिखों की एक तोप इतनी अग्नि वर्षा कर रही है कि उससे अंग्रेजी सेना भुनी जाती है उन्होंने भारी गोलाबारी कराकर उस तोप को बन्द कर दिया।

सिखों ने इस समय लालसिंह से जो पीछे के भाग मे खड़ा था कहा आप अपनी इस ताजी सेना को अंग्रेजों पर हमला करने की इजाजत दीजिये। आज का मैदान हमारे हाथ रहेगा। किन्तु लालसिंह ने यह बहाना बना दिया कि अंग्रेजों की एक ताजी सेना इस पर हमला करने वाली है।

घना अन्धकार होने पर लड़ाई खतम हो गई। दोनों सेनाये अपने-अपने कैम्पों को चली गई।[२]

दूसरे दिन बड़े तड़के ही दोनों ओर से फिर मारकाट की ध्वनि व्याप्त हो गई। अंग्रेजी सेना ने लालसिंह की सेना पर भी आक्रमण कर दिया जिसे कि वह पीछे लिये खड़ा था। क्योंकि उन्हे भय था कि यह सेना अगली सेना को मदद न दे बैठे। इस हमले से उस सेना की बड़ी दुर्गति हुई क्योंकि वह लड़ने के लिये तो व्यूह बना कर थोडे ही खडी थी। उस सेना की रक्षा तेजसिंह की अध्यक्षता मे खड़ी सेना ने की। हालाकि तेजसिंह ने उसे उस समय तक आज्ञा नहीं दी जब तक कि दुबारा अंग्रेजी सेना

१. लार्ड हार्डिङ्ग की उस सूचना का सार जो उन्होंने इगलेंड भेजी थी।

२ रोबर्ट ने २२ दिसम्बर को अपने रोजानामचे में लिखा है कि २१ दिसम्बर को अंग्रेजी धावा नाकामयाब रहा और हालात इतने खराब थे कि सरकारी कागजात जला देने का खयाल हो रहा था। इसके साथ ही हम सिखों के सामने बिना शर्त हथियार डाल देने की तैयारियाँ कर रहे थे जो कि मुझे निहायत दुख की बात प्रतीत हो रही थी।

उन पर भी आक्रमण नहीं किया। दोनों सिख सेनाये जब लड़ाई में सामिल हो गई तो अंग्रेजी सेना घबरा गई। अंग्रेजी सेना के कई दल भाग निकले। विजयलक्ष्मी सिखों को ही प्राप्त होने वाली थी कि विश्वासघाती तेजसिंह मैदान से निकल भागा और साथ ही अपने आदमियों को भी भागने का इशारा कर दिया। अग्रेज सेना का हौसला बढ़ गया और सिख असमंजस में पड़ गये। इस प्रकार भागने की हालत तक पहुंची हुई अंग्रेजी सेना की विजय हो गई। मि० कनिंघम साहब ने इस युद्ध का हृदय द्रावक वर्णन इस प्रकार किया है "यह घटना ऐसी थी कि जिससे सच्चे हृदय के मनुष्य को युद्ध करने का उत्साह बढ़ता पर विश्वासघाती सिख सेनापति तेजसिंह के ऊपर इसका उल्टा असर हुआ। उन्होंने तोपें बन्द करवा दीं। और अपने घोड़े को मोड़कर सतलज की ओर जितना ही जल्दी हो सका उतनी ही जल्दी भागे। यह उन्होंने ऐसे समय में किया जब उन्हे विजय होने वाली थी। क्योंकि उस समय बृटिश सेना का कुछ भाग फीरोजपुर से पीछे हट रहा था।"[1]

इस युद्ध में अंग्रेजों की विजय तो हुई किन्तु उन्हें यह पड़ी बहुत महंगी। इनकी कीमत में उन्हें अपने ढाई हजार सैनिकों और अनेक योग्य अंग्रेज अफसरों को स्वाहा करना पड़ा। इस भारी नुकसान से अंग्रेज सेनापति तिलमिला उठे। वह बड़ी शीघ्रता से लड़ाई का सामान और सैनिक बढ़ाने लगे और उस समय तक के लिये उन्होंने लड़ाई स्थगित कर दी।

इस लड़ाई के सम्बन्ध में 'सिख और सिख युद्ध' के वे लेखक आर्थर डी इनस और चार्लस गफ ने लिखा है.—

"भारत मे आज तक जितने प्रकार के सैनिकों का सामना करना पड़ा है सिख उनमें सबसे अधिक बढ़कर दक्ष, भीषण और दुर्जय प्रतीत हुये।" इसमें सन्देह भी नहीं यदि सिखों के सेनापति योग्य और विश्वासपत्र होते तो इस युद्ध का फल ही कुछ और होता।

अंग्रेजों की शिथिलता को देखकर सिख पुन. सतलज के इस पार आगये और उन्होंने कई मोरचे बना लिए। तथा कुछ दल अंग्रेजी सेना की रसद के सामान को लूटने के लिये मुकर्रिर होगये। यह सब काम सिख सैनिक खुद ही उसी प्रकार कर रहे थे। जिस प्रकार स्वयं सेवक अपनी ड्यूटी खुद चुन लेता है।

फिरोजपुर की लड़ाई के बाद एक पासा और पलटा वह यह कि सतलज के आस पास के प्रदेश में जितने सिख जागीरदार और राजा रईस थे और जिन्हें कि अंग्रेजों ने उनके गृह-कलह से लाभ उठाकर कलम की एक रगड़ से अपने मातहत कर लिया था। सब हृदय से सिखों को ओर होरहे थे। अंग्रेजों को उनसे बड़ी २ उम्मीदें थीं। वे समझते थे रसद के तो यह लोग ढेर लगा देंगे। किन्तु वैसा न हो रहा था। कपूरथला की सेना ने कतई इनकार अंग्रेजों की ओर से लड़ने का कर दिया था। गढमुक्तेश्वर और धर्मकोट के जैसे छोटे २ किलेदार भी अब सिखों की ओर ही मिलने को उत्सुक हो रहे थे। सरदार रणजोधसिंह मजीठिया जिसे कि अंग्रेजों ने मार भगाया उनकी डावांडोल स्थिति समझकर मैदान में आगया और उसने बढ़ोवाल पर कब्जा कर लिया। यही क्यों उसने लुधियाने की अंग्रेजी छावनी में आग भी लगा दी।

फीरोजपुर में जो सिख सरदार अंग्रेजों की रक्षा और मदद के लिये इकट्ठे हुये थे। अंग्रेज उनसे भी शंकित थे।

१. The Sikhs and the Sikh wars by आर्थर डी इन्स M. A.

वद्दोवाल पर रणजोधसिंह का कब्जा हो जाने से अब अंग्रेजों की दृष्टि मे वही लड़ाई का मैदान बनना था। वे रसद की प्रतीक्षा कर रहे थे और रसद सही सलामत आ पहुचे, इसके लिये उन्होने प्रबन्ध भी खूब किये। १७ जनवरी सन् १८४६ को हैरीस्मिथ ने कुछ सेना लेकर धर्मकोट को जा घेरा क्योंकि अंग्रेजों का खयाल था कि सिख धर्मकोट की रक्षा मे लग जायेंगे और तब तक रसद फीरोजपुर पहुँच जायगी। किन्तु सिखों ने इससे उलटा किया। उन्होंने लुधियाने पर एक बडा दल भेज दिया। ताकि अंग्रेजों का ध्यान उधर आकर्षित हो जावे। हुआ भी वही। हैरीस्मिथ भी धर्मकोट से तुरन्त ही लुधियाने की ओर बढ़ा क्योंकि उसे विश्वास था कि समस्त सिख ताकत उधर ही है। उस समय बद्दोवाल मे दस हजार सिख सैनिक थे। हैरीस्मिथ बद्दोवाल से ६ कोस लुधियाने की ओर डेरा डाले और रसद को अपने दाहिनी ओर करके लुधियाने को रवाना किया। सिखों ने भी इस समय बुद्धिमानी से काम लिया। उन्होंने रसद और हैरिस्मिथ के दल के बीच से पीठ पीछे तक तोपखाना लगा दिया और रसद के बाईं ओर से हमला कर दिया। इधर हैरी के साथ भी छेड़छाड़ कर दी। हैरीस्मिथ को रसद तक पहुचने के लिये मुश्किल होगई। अगर वे रसद की ओर मुड़ते तो पीछे सिखो की तोपें थीं और रसद तक पहुँच भी जाते तो वे सिख सेना के बीच मे दो ओर से घिर जाते। इस प्रकार की चतुराई से सिखवीरों ने अंग्रेजों की रसद और गोला-बारूद का सामान लूट लिया। अंग्रेज सेना रसद गोले और तोपों की रक्षा के मोह को छोड़कर लुधियाने की ओर भाग निकली। किन्तु इस समय सिख नायक रणजोधसिंह ने एक गलती की और वह यह कि सिखों को भागती सेना का पीछा नहीं करने दिया। वरना और सामान हाथ लगता और उनकी एक अच्छी शक्ति नष्ट हो जाती। साथ ही कुछ सामान दिल्ली से तोप आदि जो आ रहा था। उसे भी लूटने को सिखों को न जाने दिया। इस प्रकार अंग्रेज एक बड़ी आफत से बच गये।

बद्दोवाल युद्ध के बाद सिख सेना २२ जनवरी १८४६ ई० को वहाँ से रातों रात चलकर लुधियाने ३५ मील सतलज की ओर हट गई। कुछ ने लिखा है कि अंग्रेजो की इस समय इतनी अधिक सेना इकट्ठी होगई थी कि वहाँ ठहरने मे सिखों की हानि अधिक ही होती। स्मिथ ने इस मौके पर भी लाभ उठाया और सिखों के छोड़े हुये स्थानो पर कब्जा कर लिया और ग्यारह हजार सेना लेकर सिखोंपर हमला करने की तैयारी कर दी। उधर सिख सेना ने भूदड़ी और अलीवाल नामक गाँवों पर कब्जा कर लिया।

चौथा मोर्चा अंग्रेज और सिखों का अलीवाल मे जमा। इस समय रणजोधसिंह के पास काफी सेना न थी वह इधर उधर बटी हुई थी। फिर सिख लोग बड़ी बहादुरी के साथ मैदान में जम गये। किसी ने 'साधयाम या पातयाम' के सिद्धान्त के अनुसार एक भी आदमी के रहते मैदान से हटने का नाम नहीं लिया। ग्यारह हजार के सामने पचास सौ आदमी भला क्या कर सकते थे। फिर भी लड़ाई चली और उस समय तक चली जब तक एक आदमी भी रहा। वह बराबर अपनी तोप से आग उगल रहा था। जब उसे चारों ओर से घेर लिया। तो उसने कहा, "तुम मेरी तोप को लेजाने का इरादा दूर रख दो मैं प्राणों के रहते तुम्हे नहीं दूंगा।" यह कह कर वह तोप से चिपट गया। कहा जाता है अंग्रेज सैनिकों ने उसके टुकड़े २ कर दिये।

अलीवाल में सिखों की इस हार में भी एक रहस्य बताया जाता है। वह यह कि तोपों को लगाने वाले यूरोपियन अफसर मि० पीटर ने तोपों के मुँह कुछ ऊँचे कर दिये थे। जिससे उनके गोले आगे जाकर पड़ते थे।[1]

१. सिखयुद्ध पृष्ठ ६७ चक्रवर्ती द्वारा लिखित।

अलीवाल युद्ध की हार से सिख तिलमिला उठे। वे अपना सर्वस्व अर्पण करके भी अंग्रेजों को परास्त करना चाहते थे। उन्होंने राजा गुलाबसिंह से पंजाब का मंत्रित्व करने की अपील की वे समझते थे कि गुलाबसिंह की योग्यता से लाभ उठावें। किन्तु यह उनकी एक और गलती थी। गुलाबसिंह ने मन्त्री होते हुये ही अंग्रेजों से एक गुप्त संधि कर ली। जिसके अनुसार सिखों को बर्बाद करके अंग्रेजों के मार्ग को साफ करना और अन्त में अपना स्वार्थ साधना गुलाबसिंह का अभीष्ट था।

सर्दार श्यामासिंह जी अटारीवाले जो कुँवर नौनिहालसिंह जी के ससुर थे। इन सारी धोखेबाजियों से गर्म हो गये। उन्होंने सिखों की सेना में खड़े होकर कहा। वीरो, गुरु के लाड़ले खालसा वीरो, आओ, मातृभूमि की रक्षा के लिये अपने गर्म-गर्म लहू की आहुति देकर स्वर्ग में बैठे अपने महाराजा रणजीतसिंह की आत्मा को तृप्त करें। गुरुओं के गौरव को ऊंचा करें। मैं अपनी पवित्र गुरुवाणियों को साक्षी करके कहता हूँ कि मैं रणक्षेत्र से टुकड़े २ होने पर भी पीछे कदम न हटाऊँगा। खालसा को श्यामसिंह जी की यह मार्मिक अपील काम कर गई। वे सिंहनाद से गर्जे और सबने भीम गर्जन के साथ 'वाहि गुरुजी की फतह' के नारे लगाये।

वीर सिखों ने सुबरॉव पर दखल करके अपना सेना व्यूह बनाया। ६७ तोपों के साथ १५ हजार सिख मरमिटने या शत्रुओं को मिटा देने के लिये अंग्रेज सेना के आने की प्रतीक्षा करने लगे। इधर तो सिख इस तरह की तैयारी कर रहे थे। उधर विश्वासघाती लालसिंह ने यहाँ के कुल समाचार अंग्रेजी कैम्प में लिख भेजे। उसने जो कुछ लिखा उसका सार था —

"इस युद्ध का जनरल तेजसिंह है। जो अंग्रेजों के हित की ही चेष्टा करेगा। मेरे संचालन में घुड़सवार सेना है जिसे मैंने तितर-बितर कर रक्खा है। सिख सेना व्यूह का दक्षिण पार्श्व कमजोर है।"[1]

आखिर अंग्रेजों ने ऐसा ही किया। सर राबर्ट डिक ने अपनी सेना को दक्षिण पार्श्व पर हमला करने को दौड़ाया। यह घटना ६ फर्वरी सन् १८४६ ई० की रात की है।

इस आक्रमण से पहले अंग्रेजों ने बहुत सारा प्रबन्ध कर लिया था। दो हजार सैनिक फीरोजपुर की रक्षा के लिये छोड़ दिये थे और अपनी सेना का व्यूह भी सुदृढ़ बना लिया था। सोलह हजार राजपूत और गोरे सैनिकों के साथ अंग्रेजों ने यह हमला किया। एक सैनिक दल उन्होंने लालसिंह की निगरानी के लिये भी छोड़ दिया।

यकायक और रात मे हमला होने से सिख घबराये नहीं। रणभेरी बजाई गई और चारों ओर सिख छातियाँ तान कर खड़े हो गये। अंग्रेजों के १३० तोपों ने ज्योंही धुआँ उगलना शुरू किया। सूर्य भगवान भी निकलनेको उद्यत हो गये।

अंग्रेजों की तोपें सिखों के तोपखाने और बालू से बनी दीवारों पर गोले फेंक रही थीं। १३० तोपों से धाय धाय होते समय भी वे बड़ी बड़ी बहादुरी से लड़ रहे थे। उनकी ६५ तोपें भी बन्द न थीं। दोनों ओर से ताकत आजमाई हो रही थी। अंग्रेज सेनापति बडी बुद्धिमानी से अपनी फौजों को सभालते थे। किन्तु सिख उनके प्रत्येक आक्रमण का बडी फुर्ती से जवाब देते हुये प्रतिक्षण अंग्रेजी सेना मे हाहाकार मचा देते थे।

ज्यों २ सूर्य भगवान ऊपर को चढ़ने लगे युद्ध की भयंकरता बढने लगी। अंग्रेजों ने समझा था

१ सिख हिस्ट्री। लेखक मि० एडवर्ड।

कि गोलावारी से हम सहज ही सिखों को भगा सकेंगे। किन्तु उनकी इच्छा पूरी नहीं हुई। तब उन्होंने गोलंदाजी को कुछ देर के लिये बन्द करके एक प्रबल शक्ति के साथ दक्षिण पार्श्व पर हमला किया। किन्तु सिखों ने प्राणों पर खेलकर उधर ऐसा छापा अंग्रेजी सेना पर मारा जिससे सैनिक पीछे लौट पडे और डिक साहब सख्त घायल हुए। यह देखकर पीछे से गिलबर्ट ने अपनी सेना को आगे बढ़ाया। डिक की भागती सेना भी रुक गई। दोनों अंग्रेजी सेनाओं ने फिर हमला किया। किन्तु सिख गोलन्दाजों ने इतनी फुर्ती से गोले दागे कि दोनों सेनाओं को हटना पडा। तीसरी बार हेरी स्मिथ ने अपने दल को भी मिला दिया और एक जोर का हमला तीनों सेनाओं ने किया। सिख लाशों पर लाश बिछ जाने पर भी एक गज भी पीछे न हटे। उन्होंने तीनों ही बार आते और लौटते समय अग्रेज सैनिको को जमीन पर सुलाया।

यद्यपि अंग्रेज अभी तक पराजित हो रहे थे। किन्तु उन्होंने हिम्मत नहीं हारी। अग्रेज का यही गुण ऐसा है। जिसने उसे ससार का बादशाह बना दिया है। वह तो कर्म करना जानता है। निराश होना उसने सीखा ही नहीं। उन्होंने अपनी इस हार से भी सबक लिया। पुन आक्रमण के लिये वे फिर बल संचय करने लगे। सेनापति लड़ाई का नक्शा तैयार कर रहे थे और सेना स्वास्थ्य प्राप्त कर रही थी। उधर सिख सेना की ओर देखिये। सैनिक ही टूटी हुई दीवारों को सभाल रहे थे और वही लाशों को उठाकर अलग कर रहे थे। न तो उनके लिये कोई रसद की चिन्ता करने वाला था और न उन्हे लड़ाई के दांव बताने वाला। उनके गैर सिख सेनापति कैम्पों में पड़े मौज कर रहे थे।

पुन. युद्ध छिड़ा। सिख सेना ने बाये और मध्य भाग को मजबूत बनाने मे दाहिने भाग को फिर कमजोर रहने दिया। डिक सेना ने फिर उसी भाग पर हमला किया गिलबर्ट और हैरी स्मिथ भी तैयार थे। कुछ सेनाये अग्रेजों ने वाम भाग की ओर भी अड़ा दीं। इस समय सिख सेना [ने लालसिंह से अपनी घुड़सवार सेना को अंग्रेजों पर अक्रमण करने को कहा किन्तु वह बहाना कर गया। अंग्रेजी तोपों ने मध्य भाग पर और सेना ने दक्षिण भाग पर गोले गोलियाँ बरसाना आरम्भ कर दिया और तीनों सेनाओं ने बड़े वेग से दक्षिण पार्श्व से हमला कर दिया। सिखों ने बहुत सभाला। वे अड़ गये। किन्तु अड़कर होना तो यही था कि वे खतम होते उनकी लोथों पर होकर अंग्रेजी सेना उनके बीच मे घुस गई। तोपखाना हाथ से निकल गया। सरदार श्यामसिंह ने अपने घोड़े को चारों ओर दौड़ाकर नेतृत्व करना शुरू किया। वे तो प्रतिज्ञा करके आये थे। युद्ध से पीछे पैर न रक्खूंगा। युद्ध मे ही समाप्त हो गये। सिखों ने गोली बारूद के अभाव मे तलवार ओर संगीनों से काम लेना शुरू किया। इस समय तक उनकी बनाई हुई दीवारे भी ध्वंश हो गई थीं। चारों ओर से अंग्रेजी सेना ने सिख सेना को बीच में घेर लिया। नमकहराम तेजसिंह अपने एक दल के साथ भाग गया और उसने सतलज का पुल भी तुड़वा दिया। जिससे बचे हुये लोग पार न आ सकें। अब इसके सिवा सिखों के पास क्या चारा था कि जन्म भूमि के हित डट कर लड़ें और लड़ते-लड़ते ही प्राणों को उत्सर्ग करदे। किन्तु लड़ने के साधन भी तो उनके नष्ट किये जा चुके थे। वे आपस में ही बिना सेना पति के एक दूसरे को आश्वासन देने लगे। सिंहिनियों के सपूतो अमृत छके की लाज रखना। गुरु के सिंहो गीदड़ों से घबरा न जाना। प्रत्येक सिख को हथियार चलाने के साथ ही एक पैतरा बदलना पड़ता था। जिससे वे घिराव से निकल कर सामने आ जाय। सामने और बॉये दॉये वे हथियार चलाते थे और उलटे कदमों पीछे को हटते थे। उनके इस प्रकार के करते-करते सतलज आगई। पुल नदारद था। भिर भी वे सतलज में भी उलटे ही बढ़े, अग्रेज

सवारों ने उन पर हमला किया। सतलज उनके खून से रंग गई। उनके इस तरह से लड़ने पर अंग्रेजों का दिल विस्मय से भर गया। इस तरह से जीवन से निराश होने पर भी उनमें से एक भी सिख ने अंग्रेजों के सामने हथियार नहीं डाला।

इस भीषण युद्ध में उनके आठ हजार आदमी खेत रहे और अंग्रेजों के दो हजार तिरासी। यह भारी क्षति उनकी सोरांव से सतलज पार करते समय तक हुई। अंग्रेजों की विजय हुई। किन्तु उनके दिल जानते थे, यह विजय उनकी बहादुरी के साथ मिली या ब्राह्मण तेजसिंह की गद्दारी की बदौलत।

सुबरावों का युद्ध सिख साम्राज्य के लिये वैसा ही साबित हुआ जैसा मराठों के लिये पानीपत। पानीपत के बाद मराठों का सूर्य अस्ताचल की ओर टल गया था और सोरांव के बाद सिख साम्राज्य को हड़पना अंग्रेजों को सहज दिखाई देने लगा।

सुबरावों युद्ध के बाद विश्वासघाती लोगों ने समझा चलो अच्छा हुआ। पन्द्रह सोलह हजार सिख इन लडाइयों में मारे गये। अब उनकी शक्ति कम हो गई। हम आनन्द से अपनी इच्छाओं के अनुसार राज्य का सचालन करेंगे किन्तु उनकी आंखें खुल गईं जब उन्होंने १८४६ ई० की २० फर्वरी को अंग्रेजों की इस घोषणा को सुना :—"अंग्रेजों का विचार खालसा राज्य को अपने राज्य में मिलाने का तो नहीं है किन्तु सिखों ने जो सन्धि तोडी है उसकी सजा तो देनी ही होगी। युद्ध के खर्चा को वसूल किया ही जायगा। किन्तु भविष्य मे कोई शान्ति भंग का कार्य न हो, इसलिये राज्य का प्रबंधक मंडल भी अंग्रेज सरकार के द्वारा स्थित किया जायगा। यद्यपि अपराध तो लाहौर दरबार का संगीन है किन्तु लाट साहब लाहौर दरबार को और उसके सरदारों को अपने सुधार का मौका देना चाहते हैं। यदि फिर भी कोई उत्पात होगा तो अंग्रेज उस पर नए सिरे से विचार कर सकेंगे।

सिख साम्राज्य छिन्न भिन्न

इस घोषणा के साथ ही अंग्रेज सेनायें सतलज के इस पार आ गईं। लालसिंह, गुलाबसिंह और तेजसिंह सबकी अब आंखें खुलीं। गुलाबसिंह महाराज को लेकर लाट साहब के पास पहुँचे। उन्होंने अपनी वफादारी की बात भी कही कि यदि मैं लड़ाई मे शामिल हो जाता तो अस्सी हजार सिख स्थिति ही दूसरी कर देते किन्तु लाट साहब अपने निश्चय से न डिगे।

इस समय तक अंग्रेजी सेना कसूर तक आ पहुँची थी। दूसरे दिन अंग्रेजों की कुछ चुनी हुई सेनाएं लार्ड हार्डिंग और उसके प्रमुख सेनापतियों के साथ लाहौर जा पहुँचीं।

महाराज दिलीप का पुनः राज्याभिषेक किया गया। इसके माने ये थे कि अब यह राज्य अंग्रेजों का दिया हुआ है। पंजाब अब कल का पंजाब नहीं रहा है।

इसे लार्ड हार्डिंग की उदारता नहीं कहा जा सकता कि उन्होंने पंजाब को एकदम जब्त नहीं किया अभी सिख कतई निर्वीर्य नहीं हुए थे। उनकी बीस हजार सेना अब भी अमृतसर की ओर पड़ी बाट देख रही थी कि कोई उसका नेतृत्व करे किन्तु निज के स्वार्थों ने उनके सेनापतियों को सांप की तरह सूंघ लिया था।

लाट साहब ने घोषित किया—'लाहौर दरबार अब २० हजार पैदल और १२ हजार सवार से अधिक सेना न रख सकेगा। बाकी सेना को वेतन चुकाकर अलग कर देना होगा। ३० तोप लाहौर दरबार के पास रहेंगी। व्यास और सतलज के दक्षिण के सम्पूर्ण देश अब अंग्रेजों के हाथ रहेंगे। युद्ध डेढ़ करोड़ रुपया तत्काल न देने के कारण काश्मीर और हजारा सहित व्यास और सिंध के बीच के प्रदेश

अंग्रेजों के प्रबंध में रहेंगे। शांति बनाए रखने के लिये लाहौर में एक साल तक अंग्रेज सेना रहेगी।" इस सधि का नाम लुधियाना संधि था। चूंकि इसका मस्विदा लुधियाना गाव मे पूर्व ही बना लिया गया था। इसके अलावा लाहौर दरबार के आधीन सब राज्यों से सहायता प्राप्त करके लाख रुपया और दिये क्योकि उपरोक्त प्रदेश की कीमत अंग्रेजों ने एक करोड़ की लगाई थी।

जिस राज्य को महाराजा रणजीतसिंह ने इतनी ऊंची इज्जत पर पहुचाया था, उसे देश-द्रोहियों ने अंग्रेजों का रक्षित राज्य तो बना दिया किन्तु संतोष इतने पर भी नहीं हुआ। बाद में यह भी प्रबंध कर लिया गया जब तक महाराज बालिग हों, अंग्रेजी सेना लाहौर मे रहे और कुछ ऐसा भी प्रबंध किया जाय जिससे लाटसाहब के द्वारा किये गये प्रबंध को कोई भंग करने की हिम्मत न कर सके।

तारीख ११ मार्च की सन्धि—मे कुछ और हेर-फेर हुआ क्योंकि इस समय तक उन्होंने लाहौर दरबार की प्रत्येक बात को जान लिया था। इसके अनुसार लालसिंह को प्रधान मंत्री बनाया गया और गुलाबसिंह को काश्मीर का सूबा ७५ लाख पर बेच कर उसे वहां का स्वतन्त्र राजा बना दिया। तेजसिंह को राजा का खिताब दिया। इस प्रकार प्रकार प्रत्येक विश्वासघाती को अंग्रेजों ने उनकी देश द्रोहिता का पुरुस्कार दे दिया।

लालसिंह अब निश्चिन्त था। खालसा की शक्ति नष्ट हो चुकी थी। लाहौर में एक अंग्रेजी फौज उनकी इच्छा के अनुसार रहती ही थी। अब वह निडर होकर विलास में फंस गया। मदिरा और मृगनयनी उसके जीवन के अग हो गये। शहर के धनियों से रुपया वसूल करना और रास रंग मे उड़ाना उसकी आदत बन गये। उसने समझ लिया था कि बस अब तक जो हो चुका है वह हो गया। जब अंग्रेजों ने उसे प्रधान मन्त्री बनाया है तब अब कौन उसे इस पद से हटा सकता है।

काश्मीर के राजा गुलाबसिंह के खिलाफ इमामुद्दीन नाम के एक मुसलसान ने बहुत से आदमी इकट्ठे करके बगावत खड़ी कर दी। बगावत तो दबा दी गई किन्तु अंग्रेजों ने बगावत खड़ी करने का दोष थोपा लालसिंह के सिर और उसे पंजाब के प्रधान मन्त्रित्व की गद्दी से हटाकर दो हजार मासिक की पेन्शन देकर आगरा भेज दिया। जहां वह अपने अन्तिम दिनों को गुजारता हुआ पिछले कर्मों पर आंसू बहाता रहा।

लालसिंह को देश निकाला देने के बाद सन् १८४६ ई० की १६ वीं दिसम्बर को गवर्नर जनरल लार्ड हार्डिङ्ग ने भैरवाल नामक स्थान पर सिख दरबार से एक और सन्धि की जिसके अनुसार अंग्रेजी रेजीडेन्ट की मातहती में एक कौंसिल बनाना तय हुआ और उस रेजीडेन्ट को एडमिन्स्टेटर के कुल अधिकार दे दिये गये। जो सिख सेना में कमी वेशी करवा सकता है। वक्त पर किसी भी किले को अंग्रेजी सेना के लिये खाली करवा सकता है। चाहे जिसे हटा सकता है और चाहे जिसे रख सकता है किन्तु यह प्रबंध महाराज के बालिग होने (४ दिसम्बर १८५४) तक के लिये किया गया।

इस प्रवन्ध के अनुसार जो कौंसिल बनी, उसमें राजा तेजसिंह, सरदार शेरसिंह अटारीवाला, दीवान दीनानाथ, फकीर नूरुद्दीन भाई निधानसिंह, अतरसिंह और शमशेरसिंह को सदस्य नियुक्त किया गया। और सर हेनरी लारेंस रेजीडेन्ट मुकर्रिर हुए।

महारानी जिन्दा को शासन कार्य से कतई अलग कर दिया गया और उन्हें और उन की सहे-

१. इतिहास तिमिर नाशक द्वितीय भाग।

लियों के खर्च के लिये डेढ़ लाख रुपया सालाना की पेन्शन कर दी गई।

हेनरी लारेंस ने रेजीडेन्ट होते ही अंग्रेजी कायदे कानूनों का प्रचलन शुरू कर दिया। अदालतें कायम की गई। शिक्षा, स्वास्थ्य के महकमे स्थापित किये। जिसमे एक ओर प्रजा का असतोष कम हो।

इसके बाद लाट साहब ने समय-समय पर कौंसिल के नाम पत्र भेज कर बता दिया कि यह खयाल न किया जाय कि सिख राज स्वतन्त्र है और न कौंसिल के लोग ही ऐसा खयाल करें कि वे रेजीडेन्ट के मातहत नहीं है।

महारानी जिन्दा राज काज से अलग कर दी गई थीं फिर भी सिख सरदार तो उन्हे अपना मालिक ही समझते थे। सैंकडों आदमी उनके यहां नित्य प्रति मिलने जुलने जाते। उन्हें सान्त्वना देते।

महारानी जिन्दा को निर्वासन

महारानी अपनी धार्मिक श्रद्धा के कारण नित्य प्रति सैकड़ों भूखे नगों को दान पुण्य भी करतीं। रेजीडेन्ट सर हेनरी लारेंस ने इन बातों का यही अर्थ लिया कि महारानी को एक इस आशय का पत्र लिखा कि—"भैरोंवाल की सन्धि के अनुसार आप राज-काज के मामलों मे दखल देने से कतई वचित कर दी गई हैं। आप अब अपने अन्तिम दिनों को डेढ़ लाख वार्षिक पेन्शन के आनन्द से व्यतीत करें। दान पुण्य के भी कोई खास दिन मुकर्रिर कर लें। कभी-कभी चार छ सरदारों से मुलाकात कर लिया करे। सो भी पर्दे के आड़ से। नैपाल और जोधपुर आदि की महारानी जिस प्रकार पर्दे मे रहती हैं उसी रिवाज को आप भी अपनाये।'

खूब को महारानी ने भी इस पत्र का उत्तर दिया था जिसका सार यह है कि 'मैं अपने सरदारों से मिलती हूँ तो कोई भी बात उनसे ऐसी नहीं होती जो अंग्रेजों की मित्रता में शका उत्पन्न करने वाली हो, दान पुण्य में भी मैं वही करती हूं जो मेरा धर्म इजाजत देता है। मैं तो अब तक यही समझती थी कि महाराज की माता होने के कारण मैं अपने राज्य की मालिक हूँ। पर्दे मे मैं नहीं रह सकती क्योंकि मैंने राज-काज मे भाग लिया है और न हमारे यहाँ उसका कोई रिवाज है।

सर हैनरी लारेन्स उनकी प्रत्येक गति विधि पर नजर रखने लगा। एक समय मुल्तान से उनकी सखी सफेद गन्ने लेकर आई थी। हैनरी ने इसका यह अर्थ लगया। महारानी मूलराज के साथ कोई षडयत्र कर रही हैं।

७ वीं अगस्त सन् १८४७ ई० को सर हेनरी ने एक दरबार किया। उस दिन तेजसिंह को राजा की उपाधि देनी थी। महाराज दिलीपसिंह से टीका करने को कहा गया। उन्होंने इनकार कर दिया। इसमें हेनरी ने यही समझा कि महारानी जिन्दा ने ही महाराज को बहकाया है।

अत मे अंग्रेज सरकार ने महारानी जिन्दा के सम्बन्ध में यह आखरी निश्चय कर लिया कि उन्हें लाहौर से हटा दिया जाय और महाराज को उनके प्रभाव से मुक्त कर लिया जाय।

महारानी जिन्दा लाहौर से गोरी सेना के पहरे में निकाल दी गई और उन्हें शेखपूरा के किले में नजरबन्द कर दिया गया। पेन्शन भी केवल ४८ हजार सालाना की रहने दी। जिस समय महारानी को महलों से निकाला जा रहा था। उनके बालक बच्चे को मिलने भी नहीं दिया गया, किन्तु उन्हें शालामार बाग में भेज दिया गया।

यह पहले ही लिखा जा चुका है कि मुल्तान में मूलराज (सावनमल का बेटा) दीवान था उसने सिखों के गृह कलह के समय अपने को स्वतन्त्र शासक होने की भी कोशिश की थी किन्तु फिर वह दब गया था। तेजसिंह ने सिख युद्ध के बाद मत्री होते ही उस पर चढाई कर दी किन्तु

मुल्तान-विद्रोह हेनरी लारेन्स ने मध्यस्त बन कर समझौता करा दिया था। जिसके अनुसार उसके दीवानी फौजदारी के कुछ अधिकार और झंग का इलाका तो हाथ ने निकल गये किन्तु खिराज की रकम बढ़ गई। अत उसने लाहौर आकर अपना स्तीफा पेश कर दिया और पिछली सेवाओं के बदले मे कुछ जागीर मागी। हेनरी लारेन्स ने उसे यों ही समझा-बुझा कर अटका रक्खा।

किन्तु थोडे ही दिन बाद पजाब का रेजीडेन्ट और भारत का लार्ड दोनों ही बदल गये और मि० फेडरिक करी तो पजाब के रेजीडेन्ट हुए और डलहौजी भारत के गवर्नर जनरल होकर आये।

उधर उस समय इगलेड मे इस प्रकार का आन्दोलन हो रहा था कि पंजाब को अबतक पूर्णत. अंग्रेजी राज्य मे क्यों नहीं मिलाया गया है। डलहौजी इसी नीति को लेकर आया था।

मूलराज को जागीर देने की बात तो अलग रही। करी साहब ने उससे पिछला दस वर्ष का हिसाब और चाहा। मूलराज अन्शत हिसाब देने का राजी हो गया। सरदार काहनसिंह को करी ने मुल्तान का सूबेदार बनाकर भेज दिया। उसकी मदद के लिये एक पलटन ६ तोपे और मि० वेन्ज अगन्यू और अन्डरसन को भी भेजा।

मूलराज ने इनके मुल्तान पहुँचने पर खूब स्वागत सत्कार किया। हिसाब के कागज पत्र भी दिखाये। कागज पत्रों को देखते समय दोनों ओर से कुछ कहा-सुनी भी हुई किन्तु मामला शान्त हो गया। तीसरे दिन जब ये दोनों साहब किले से अपने कैम्प को आ रहे थे तो मूलराज इन्हे विदा करने भी आया। किन्तु बाहर निकलते ही बारी २ से दोनों अग्रेजों पर किन्हीं लोगों ने आक्रमण किया। यह सभव भी था क्योंकि मुल्तान के जिले में अंग्रेजों ने गोरखा फौज घुमा दी थी। सिखों का यह घोर अपमान था पहले तो मूलराज का इरादा शायद ढिल मिल रहा हो किन्तु अब उसे विद्रोहियों मे शामिल हो जाना पड़ा क्योंकि विद्रोहियों ने उसके साले को भी इस अपराध में मारडाला कि वह मूलराज को अग्रेजों की शरण में लेजाने के लिये तैयार कर रहा था।

इस प्रकार मुल्तान में विद्रोह की चिन्गारी भभक उठी। अन्डरसन और अगन्यू के साथ की फौज के जो सिख सिपाही थे वे भी विद्रोहियों मे मिल गये। मूलराज के नेता बनते ही उनमे और भी उत्साह बढ गया। उधर बन्नू से मेजर एडवर्ड बारह सौ पैदल ३५० घुड़ सवार और दो तोपे लेकर अंडरसन वगैरह भी मदद के लिये दौडे किन्तु उन के आने से पहले इन अग्रेजो का विद्रोही खात्मा कर चुके थे।

मेजर,एडवर्ड ने मुलतान की ओर रवाना होने से पहले ही लाहौर मे रेजिडेट कैरी को भी इस बात की सूचना दे दी थी कि मुलतान मे विद्रोह हो रहा है मैं उधर जाता हू। आप भी सेना भेजें। जब उस का यह पत्र करी के पास पहुचा तो उसे कौंसिल के पेश किया गया। कौंसिल के सिख मेम्बरो ने कहा कि अग्रेजी सेना की टुकड़ी भेज दें। सिख सेना के भेजने में खतरा है कि सभवतया वह विद्रोहियों मे मिल जाय। अभी तक सिख सुवराओं के युद्ध को भूले नहीं हैं। कैरी ने अंग्रेजी सेना नहीं भेजी और गवर्नर जनरल को भी उसने मुलतान मे अग्रेजी सेना न भेजने का ही परामर्श दिया। इसमे कैरी का स्पष्ट भाव विद्रोह को और भी भयकर रुप देना था। वह चाहता था कि जितना यह अधिक बढ़ेगा उतना ही हम को सिख राज्य को अपने तहत में ले आना सरल हो जायगा। एक अंग्रेज लेखक ने "हिस्ट्री आफ इन्डिया" की प्रथम जिल्द के पृष्ठ १३५ पर लार्ड डलहोजी और कैरी फैड्रिक की इस भावना को निहायत गन्दी और कलंकित बताया है।

एडवर्ड और डेरागाजीखां का अंग्रेज सेनानायक कोर्तलान्त दोनों विद्रोह को दबाने की कोशिश

करते रहे और भावलपुर के नवाब से रुपये और सेना दोनों प्रकार की सहायता ली। विद्रोहियों के हाथ लगे छोटे २ किलों पर भी उन्होंने अधिकार कर लिया। कनेरी के घाट पर विद्रोहियों से उनकी एक कठिन लड़ाई भी हुई।

अब तक एडवर्ड ने १८ तोपें और २२ हजार आदमी इकटठे कर लिये थे। जिन में ८ तोपें तो सिखों से ही प्राप्त की थीं।

मुलतान के पास ही मूलराज और एडवर्ड की सेनाओं मे मुकाविला हुआ। उस समय मूलराज के पास ११ हजार सेना और १० तोपें थीं। फिर भी इतनी बहादुरी से लडा कि अंग्रेज सेनायें भागने लगीं किन्तु इसी समय उनके हाथी के ऊपर गोला गिरने से वह नीचे गिर पड़ा और उसकी फौज उसे मरा जानकर भाग गई। किन्तु वह घोडे पर सवार हुआ और २५० आदमियों के संरक्षण में मुलतान के किले में घुस गया।

यह युद्ध सन् १८४८ की पहली जुलाई को हुआ था। अब मुलतान को जीतना एडवर्ड के वस की वात न थी पर वह इधर-उधर घूम कर विद्रोह को दवाने की चेष्टा करता रहा।

प्राय मुलतान का उपद्रव ठंडा हो रहा था किन्तु १४ जून सन् १८४८ ई० को अंग्रेजों ने महारानी जिन्दा को शेखूपुरा से भी वनारस भेज दिया और उन्हें कहा गया कि आप पंजाव मे रहकर शाति भग करने के लिये सिखों को भड़काती हैं और वारवार मना करने पर भी अंग्रेज विरोधी प्रवृतियों को उभाडती हैं। उनके वकील गगाराम को मुलतान विद्रोह में भाग लेने के कारण फासी भी दे दी गई।

महारानी को बनारस पहुचा दिया गया और उनकी पेन्शन भी केवल एक हजार रुपये कर दी गई। इससे सिख सैनिकों में वड़ी उत्तेजना फैली। शेरसिंह ने जो कि हजारा के हाकिम सरदार चतुरसिंह के लड़के और लाहौर कौंसिल के मेम्बर थे रेजीडैंट केरी को लिखा कि सिखों में महारानी जी के निर्वासन से बडा असतोष फैला है। किन्तु अंग्रेजी रेजिडैंट और लार्ड डलहोजी ने इन वातों पर कोई ध्यान नहीं दिया।

हजारा का सिख परिवार अंग्रेजों का हमदरद ही था। मुलतान के विद्रोह को दवाने के लिये शेरसिंह सेना लेकर मेजर एडवर्ड के पास पहुच गया। दूसरा भाई गुलावसिंह भी नेकनीयती के साथ कौंसिल में अंग्रेज पक्ष को ही रखता था। अपनी अंग्रेज भक्ति के आवेश में इन दोनों भाइयों ने महारानी जिंदा के पन्जाव से वाहर भेजने के कागजों पर भी मुहर कर दी थी।

हजारा विद्रोह

शेरसिंह की वहिन की सगाई महाराज दिलीप सिंह के साथ हो गई थी। इससे यह सोचते थे कि महाराज के स्याने होने तक और उनकी भलाई के लिये हमे अंग्रेजों की खुशामद भी करनी पडे तो तव भी हम कोई वुरा काम नहीं करे गे। किन्तु अंग्रेजों ने इस परिवार के साथ भी मक्कारी की। कोई अच्छा सलूक नहीं किया।

सरदार चतुरसिंह वहुत वुड्ढे हो चले थे और वे चाहते थे कि उनकी पुत्री का विवाह उनके ही सामने हो जावे। उन्होंने अपने पुत्र शेरसिंह को लिखा कि रेजीडेन्ट साहव से पूछो वे इस शुभ काम के लिये कौन-सा समय उपयुक्त समझते हैं। शेरसिंह ने एडवर्ड के जरिये रेजीडेन्ट को पत्र भिजवाया। साहव ने भी अपनी सिफारिस लिख दी। साथ ही शेरसिंह की अंग्रेजभक्ति की भी प्रशसा लिखी। किन्तु रेजीडेन्ट मि० करी ने ऐसा रूखा जवाव दिया जिससे यह स्पष्ट होता था कि विवाह करने में महाराज

और सरदार चतुरसिंह स्वतंत्र नहीं हैं जब भी अंग्रेज सरकार उचित समझेगी तब विवाह कर दिया जायगा। इस प्रकार के जवाब से सरदार चतुरसिंह और शेरसिंह दोनों ही के दिल को चोट पहुँची।

इसके भी अलावा उनके इलाके मे पठानों ने बगावत खड़ी कर दी और यह बगावत खड़ी कराई एवट नाम के अंग्रेजी ने जिसे कि रेजीडेन्ट ने प्रबन्ध मे सहायता देने के लिये भेजा था। यह अंग्रेज बड़ा वहमी था। रेजीडेन्ट करी भी खूब जानता था उसने इसकी गवर्नर जनरल को एक दो बार शिकायत भी की थी किन्तु मजा यह है कि जब सरदार चतुरसिंह ने उसकी शिकायत की तो मि० करी ने कोई ध्यान नहीं दिया अपितु उन्हीं बातों को सही माना जो एवट के पृष्ठ पोषक निकलसन ने पेश की।

पठान-विद्रोह मे कनोरा नाम के एक विलायती गोलन्दाज की मृत्यु हो गई थी। कनोरा ने सरदार चतुरसिंह की आज्ञा का उलघन करके तोप पर अपना कब्जा कर लिया था और दो सिखों को भी जान से मार डाला। एक सिख ने कनोरा के प्राण लेकर अपने दल की रक्षा की थी। यही सरदार चतुरसिंह का अपराध था। कैरी ने पहले तो चतुरसिंह जी को निर्दोष ही माना किन्तु निकलसन की सलाह पर उनकी जागीर भी जब्त कर ली। बुड्ढा सरदार इस अपमान को बर्दास्त न कर सका उसका खून उबल पड़ा। और वह स्वय रेजीडेन्ट से बात करने के लिये लाहौर की ओर चल पड़ा। एवट ने इसे बगावत का नाम देकर उसका रास्ता रोकने की कोशिश की और उसे तग किया। एक दो छोटी-मोटी झड़पे भी हुईं और सरदार चतुरसिंह हजारे से लाहौर की ओर को निकल पडे। सिख समुदाय महाराजी जिन्दा के निर्वासन से क्रुद्ध हो ही रहा था। दल के दल सिख सरदार चतुरसिंह के पास इकट्ठे होने लगे। यही हजारा विद्रोह की भूमिका है।

मूलराज ने शेरसिंह को मुल्तान सूबे में पहुँचते ही समझाने की चेष्टा की किन्तु शेरसिंह ने मूलराज के एलचियों की बात सुनना तो दूर उनका अपमान तक किया। वह बराबर अंग्रेजों की ओर से लड़ता रहा। और उस समय तक लड़ा जब तक कि उसकी जागीर न छीन ली गई और उसकी बहिन की शादी का मामला खटाई मे न पड़ गया।

अपनी जागीर छिन जाने के समाचार ने शेरसिंह के हृदय को बहुत चोट पहुँचाई और यह भी बागियों मे शामिल हो गया।

शेरसिंह विद्रोहियों के दल मे शामिल हो गया उसने मूलराज को पत्र लिखा कि मैं आपके साथ मिलकर अंग्रेजों से लड़ने को तैयार हूँ किन्तु मूलराज को विश्वास नहीं हुआ क्योंकि पहले शेरसिंह उसके प्रस्ताव को ठुकरा चुका था। शेरसिंह और मूलराज मिले भी किन्तु फिर सरदार शेरसिंह के भी मन मे यही जंचा कि अपने पिता के पास चलना उचित होगा। उसके साथ चार हजार सिख हो लिये। अब अंग्रेजी सेना की हिम्मत सहज ही मुल्तान पर हमला करने की न रही। इतने समय मे मूलराज ने और भी सेना बढ़ा ली उसने काबुल के दोस्तमुहम्मद से भी कुछ सहायता मंगा ली।

कहाँ तो विद्रोह के आरम्भिक दिनों मे मि० करी अंग्रेजी सेनाये मुल्तान में भेजना नहीं चाहते वहाँ अब उन्होंने बम्बई, कलकत्ता सब ओर से फौजे बुलाना शुरू कर दिया। वास्तव मे अब उनकी इच्छा पूर्ण हो चुकी थी। सिख साम्राज्य को कतई तड़पने लायक स्थिति बनाने का उन्हे मौका मिल चुका था।

बहादुर मूलराज अंग्रेजों से ४ नवम्बर (सन् १८४८) से लगाकर ३० दिसम्बर (सन् १८४८) तक लगातार लड़ा। यों तो उसे लड़ते हुए पूरा साल हो चुका था।

अंग्रेजों की ओर से तमाम सिख जागीरदार बहावलपुर के नवाब और पंजाब के कई रईसों के दल लड़ रहे थे किन्तु मूलराज सब से टक्कर ले रहा था उसकी सेना और किले पर गोले बरसाये गये संगीनों से हमले किये गये किन्तु उसने हरबार अंग्रेजी सेना के दांत खट्टे किये।

२३ दिसम्बर को बम्बई से अंग्रेजों की नयी सेनायें भी आ गई। २७ दिसम्बर को १५६४८ पैदल ३०१२ सवार और ६१ तोपों से अंग्रेजी सेना ने मूलराज के सैनिकों पर हमला किया। तीन दिन तक बराबर धुआँधार लड़ाई हुई। किले की दीवारें टूट जाने पर जब अंग्रेजी सेनायें किले में घुसीं तो 'वाहि गुरुजी की फतह' के साथ दो हजार सिखों ने अपने प्राण देकर अंग्रेजों के हौसले ढीले कर दिये।

ता० ३० दिसम्बर को भाग्य ने मूलराज के साथ दगा की। उसके बारूद खाने में जहाँ पचास मन बारूद भरी थी। गोला गिरा जिससे पाँच सौ आदमी एक दम लापता होगये और भारी क्षति हुई।

सन् १८४६ की २७ वीं जनवरी तक इस हालत में भी मूलराज ने लड़ाई जारी रक्खी। उसकी सेना ने कदम-कदम पर अपना खून बहाकर अंग्रेजी सेना को आगे बढ़ने दिया। आखिर मूलराज हजारों दुश्मनों के बीच में घिर गया और गिरफ्तार कर लिया गया। कुछ लोगों ने लिखा है कि मूलराज ने अपनी स्त्रियों के सतीत्व की रक्षा की मेजर एडवर्ड से गारंटी मिलने पर खुद ही आत्म-समर्पण कर दिया था।

कुछ भी हो मूलराज ने अपने अंतिम जीवन को सार्थक कर दिया। अंग्रेजी कोर्ट ने उसे फांसी की सजा दी और फिर बदल कर उसे काले पानी में परिवर्तित कर दिया।

मूलराज जिस समय अपनी जन्मभूमि से दूर जहाज में बैठ कर काले पानी को जा रहा था। बीच ही में इस शरीर को छोड़ गया।

मुल्तान से चलकर सरदार शेरसिंह अपने पिता से मिलने को उत्तर की ओर गुजरात पहुँचने के लिये बढ़ रहे थे कि अंग्रेजी सेना ने उनका पीछा करना शुरू कर दिया।

सन् १८४८ ई० की २२वीं नवम्बर को इस दूसरे सिख युद्ध का श्रीगणेश हुआ। रामनगर के पास कोलिन, केम्बल और क्योरटन नाम के अंग्रेजों की अध्यक्षता में अंग्रेजी सेना ने सिखों पर हमला किया।

रामनगर युद्ध

सिख यहाँ पूरी तैयारी से थे। अंग्रेजी तोपों ने गोले बर्षाये किन्तु सिख तोपों के ऊंचे स्थान पर लगे रहने के कारण उनका मुकाबिला न कर सकीं। सिख सिपाहियों ने भी वह जौहर दिखाया कि अंग्रेजी सेना को विवश होकर भागना पड़ा। इस प्रकार रामनगर में सिखों की एक छोटी सी विजय हुई और सिखों के हाथ अंग्रेजों को दो तोपें और कुछ रसद के छकड़े हाथ लगे।

रामनगर के मैदान से जब अंग्रेजी सेना भाग रही थी तो सिखोंने उनका पीछा किया और लड़ने के लिये ललकारा। इस ललकार को सुनकर जो सैनिक ठहरे वे सिखों द्वारा तलवार के घाट उतार दिये। उनमें विलियम हैवल और उसके कई साथी अंग्रेज भी काम आये। कुल मिलाकर २३० सैनिक और अफसर अंग्रेजों के इस लड़ाई में मारे गये। कुछ अंग्रेज कैद भी हुये जिन्हें सरदार शेरसिंह ने अपनी उदारतावश छोड़ दिया।

रामनगर युद्ध के बाद अंग्रेज सेनापति गफ एक सप्ताह तक चुप रहे। इस बीच में शक्ति बढ़ाकर उन्होंने रामनगर से ६६ मील की दूरी पर छावनी लगाई। दूसरी दिसम्बर को सरदार शेरसिंह पर आक्रमण करने को मेजर थैकवेल सात हजार सैनिक लेकर बाईं ओर से बढ़े और

सादुल्लापुर युद्ध

गफ साहब खुद सामने से किन्तु सरदार शेरसिंह पहले ही सचेत होगये थे। इसलिये उन्होंने थैकवेल की ओर कूच कर दिया। जिससे वे अकेले थैकबेल को हराकर फिर गफ की ओर झपटे।

सादुल्लापुर के पास लडाई हुई। वैसे थैकवेल ने भागने की भी चेष्टा की। किन्तु सिख सेना जब छाती पर ही आगई तो वे एक ईख के खेत मे छिप कर लड़ाई का संचालन करते रहे। पूरे दिन भर लड़ाई हुई। इस प्रकार थैकवेल की सेना को हानि पहुँचाकर सरदार शेरसिंह जेहलम के दक्षिण की ओर बढ़ गये। यद्यपि थैकवेल को सादुल्लापुर के युद्ध मे से प्राण बचाकर भागना पड़ा था। किन्तु उन्होंने विजय अपनी ही घोषित की लेकिन सही बात मि० मार्शमेन के इस लेख से मालूम हो जाती है। "इस युद्ध मे फायदा शेरसिंह को ही रहा। क्योंकि वह अंग्रेजों के इरादों पर पानी फेर कर सुभीते के स्थान पर पहुँच गया।"

एक महीने तक सेनापति गफ साहब का लड़ाई से दूर रहना भी इसी बात को साबित करता है कि विजय थैकवेल की नहीं हुई और इन दोनों हारों का उनके दिल पर असर पड़ा। १२ वीं जनवरी को लार्ड गफ ने डिंघा नामक स्थान पर एक सुदृढ़ छावनी तैयार कराई। वह शेरसिंह जी की सेना का कैम्प भी वहाँ से कुल ८ मील की दूरी पर था। सिख-छावनी के पीछे जेहलम की ओर आगे एक छोटा-सा जंगल था। वहाँ पर दांये बांये भी सिखों ने अच्छा प्रवध कर लिया था।

चेलियाँवाला युद्ध

१३ जनवरी को कूच करके अंग्रेजी सेना ने १४ जनवरी को बाईं ओर से हमला किया। कौलिन केम्बल आज के युद्ध के सचालक थे। उन्होंने सेना के दो भाग कर रक्खे थे। दो घंटे की गोलेबारी से कोई फायदा न निकलते देखकर अग्रेज सेनापति ने सेना को जोर का हमला करने की आज्ञा दी। इस हमले मे सैकड़ों अग्रेजी सिपाही जमीन पर बिछ गये। किन्तु कुछ आदमी सिखों की तोपों तक पहुँच गये। उन्होंने कई तोपों के मुँह भी बन्द कर दिये। किन्तु सिख क्या कम थे। उन्होंने तोपों के मुँह बन्द करने वालों को काट कर टुकडे कर दिया और मुँह खोल दिये। कैम्बल पर भी एक सिख सैनिक ने हमला किया और उसे जख्मी कर दिया।

एक हिस्से मे जिधर केम्बल साहब थे। दूसरे हिस्से में मि० पैनीकुइक पाँच सौ आदमियों के साथ मारे गये और अग्रेजी झंडा सिखों के हाथ आया। मध्य भाग मे गिलबर्ट पर सिखो ने सांघातिक हमला किया। किन्तु दूसरे दल के आजाने से वे घिर गये और ३ तोपें उनकी गिलबर्ट के हाथ लग गईं। किसी मोर्चे पर अग्रेज जीत रहे तो किसी पर सिख। किन्तु रणभूमि लाशों से पट रही थी। खून से जमीन लाल हो रही है।

आज को लड़ाई मे १६ अग्रेज अफसर और उनके सौ सिपाही काम आये।

मेजर थैकवेल ने सिखों की घुड़सवार सेना के अध्यक्ष तारासिंह की सेना पर आक्रमण किया। यूनेट साहब इस आक्रण का नेता बना। यूनेट ने सिख व्यूह को तोड़ना चाहा। किन्तु सिखों का मुकाबिला कम न था। यूनेट अपने उद्देश्य की पूर्ति मे विफल रहा। उसके कितने ही सैनिक काम आये और वह खुद भी मारा गया। सिखों ने इस समय अद्वितीय पराक्रम दिखाया। शत्रु सेना का उन्होंने बदहवास कर दिया। थैकवेल साहब ने इस लड़ाई के हालात मे खुद लिखा है। "मुझे मालूम हुआ कि मेरी सेना मे एक भी मनुष्य जिन्दा नहीं।"

थैकवेल को इस प्रकार मुसीवत में देखकर जर्नरल गफ ने लेफ्टीनेंट कर्नल पोप को घुडसवारों की ४ रजमेंट देकर दाहिनी ओर से सिख घुडसवारों के ऊपर हमला करने के लिये भेजा। अंग्रेजों के इन घुड़सवारों मे भाला धारी सैनिक ही अधिक थे। सिखों की पैदल पल्टन ने उन्हें रोका। ढालों पर वर्छों की चोट वचाते हुये उन्होंने नीचे से ही लडकर अंग्रेजी घुड़सवारों के छक्के छुड़ा दिये। थैकवेल ने खुद लिखा है। "सिख पैदल अपनी जान पर खेल गये और उनमे से एक-एक ने तीन-तीन घुडसवारों के प्राण लिये। लेफ्टीनेंट कर्नल पोप पर भी उन्होंने दृढ़ता से हमला किया और उसके प्राण लेकर रहे। उन्मत्तता के साथ अंग्रेज और उनके सैनिकों को खतम किया। इस भयँकर युद्ध में अंग्रेजी सेना के पॉव उखड गये। मेजर क्रिस्टी जो अपनी तोप को सुरक्षित ले जाने की फिक्र मे थे। मारे गये। कुछ गोरे सैनिक अपने गोलन्दाज की मदद को दौड़े। सिखों ने उन पर भूखे भेड़ियों की तरह हमला किया और थोड़ी ही देर मे जमीन पर सुला दिया।

गफ को भी उनके साथियों ने सलाह दी कि इस समय भागना ही ठीक होगा। किन्तु वे एक अच्छे दल के वीच मे खडे हो गये और पास की तोपों से धुआधार गोले छुड़वा कर अपनी रक्षा कर ली। रात हो जाने के कारण सिख सेनायें जोभी उन्हें अंग्रेजों का सामान हाथ लगा लूट कर पीछे को लौट गईं।

मजे की वात यह है कि इस चेलिआंवाले युद्ध मे अंग्रेजों की भारी क्षति हुई। सेना भी उन्हीं की भागी। किन्तु फिर भी जनरल गफ ने विजय के नगाड़े वजवाये और तोपों की सलामी ली। यह सव कुछ केवल जनता पर आतंक जमाने के लिये उन्होंने किया। वरना उनकी इस हार के समाचार से विलायत तक मे हैरानी छागई और गफ को लड़ाई से हटा कर दूसरे फौजी जनरल नेपियर को भारत भेजने तक की तैयारी होगई।

इस लड़ाई मे सरदार अतरसिंह ने वड़ी वीरता का प्रदर्शन किया था। चालाक व्राइन्ड को भी उन्होंने भली प्रकार छकाया था।

इस चेलिआंवाले युद्ध के सम्वन्ध में 'कलकत्ता रिव्यू' नामक अंग्रेजी अखवार ने लिखा था। "भारत में अंग्रेजों ने जितने भी युद्ध किये हैं। उनमें चेलिया का युद्ध सवसे अधिक भयँकर हुआ।" सिपाही युद्ध का इतिहास नामक पुस्तक में के (Ke) साहव ने लिखा है। "चेलिआंवाले में व्रटिश लोगों की तोपें सिखों ने छीन लीं। अंग्रेजी पताका को छीन कर अपने गौरव को वढ़ाया और अंग्रेजी फौज उनके सामने से वुरी तरह भाग निकली।" सरलेविल गिफिन ने भी चेलिआंवाला युद्ध के लिये वहुत खतरनाक वताया है।

चेलिआंवाला लड़ाई के वाद गफ ने २५ दिन तक लड़ाई वन्द रक्खी इस अवसर में राजा चेतसिंह भी शेरसिंह के पास आगये। उन्होंने मेजर लारेन्स, लेफ्टीनेन्ट हर्वर्ट आदि कई अंग्रेज अफ्सरों को कैद कर लिया था। सरदार शेरसिंह ने इन्हें छोड़ दिया। इससे सिख सेना को नुकसान ही हुआ। क्योंकि इन्होंने वहुत सारी इधर की वाते अंग्रेजों को वतादीं। इससे भी वड़ी गलती शेरसिंह ने यह की कि सन्धि वार्ता भी इन्हीं के द्वारा होने लगी। यह लोग वे रोक-टोक चाहे जव आजा सकते थे। इस प्रकार की छूट दे दी गई।

सन्धि के चक्कर में पड़कर सरदार शेरसिंह ने पच्चीस दिन व्यर्थ ही गँवाये और उधर इन दिनों में अंग्रेजों ने अपनी सेना को और भी मजवूत कर लिया। उन्हें यह भी भेद लग चुका था कि सिख तोप का नाम सुनकर अवश्य कुछ भय मानते हैं वरना उन्हें हराना टेढ़ी खीर है।

जब 'सन्धि करना अभी मंजूर नहीं' इस प्रकार का उत्तर आया तो सरदार शेरसिंह बड़े घबराये। किन्तु उन्होने इस समय एक ही उपाय सोचा और वह यह कि किसी प्रकार हमें लाहौर पर कब्जा करना चाहिये। इसी खयाल से वे ६० तोपों और लगभग चार हजार सैनिकों के साथ लाहौर की ओर चल पड़े।

१८४६ ई० की ६ठी फरवरी को इधर अंग्रेजों ने रसूल पर धावा किया। क्योंकि उन्हें सिख फौजों के वहीं होने का पता था। रसूल एक सुदृढ़ स्थान था। उसे सहज ही खाली पाकर अंग्रेज खुश हुये किन्तु जब उन्हे पता चला कि विद्रोहियों का लाहौर पर कब्जा करने जा रहा है। तो बहुत घबराये, और तुरन्त पीछा किया।

चूंकि अंग्रेजों को पता लग चुका था कि सिखों के पास बढ़िया तोपों की कमी है। अत. गुजरात के मैदान में सिखों से मुठभेड़ होते ही उन्होंने तोपों का इस्तैमाल किया। सन् १८४६ ई० के १४ फरवरी का दिन बड़ा ही भयंकर थीं। जोकि इस युद्ध मे चतुरसिंह जी के पास ३६०० बढ़िया सैनिक थे, ५६ तोपे भी थी, इसके अलावा दोस्तमुहम्मद के १५०० पठान सैनिक भी थे। किन्तु चारो ओर से तोपों की गोलों की मार को ये आदमी कहाँ तक सहते।

गुजरात युद्ध

उधर मुल्तान का विद्रोह खतम होने के बाद तोपों और बारह हजार सैनिकों को लेकर एक दूसरे अफसर गफ की सहायता के लिये आ पहुँचे थे।

ता० २१ फरवरी तक लड़ाई चलती रही, किन्तु यही दिन था। जब कि अंग्रेजों की लगभग २०० तोपे सिखों पर आग उगल रहीं थीं। आखिर सिखों की तोपों ने जवाब दे दिया। क्योंकि अंग्रेजी तोपों के गोले बराबर उन्हे नष्ट कर रहे थे। अब सिखों के लिये एक ही मार्ग था, यातो वे भागे या तलवार खींच कर साथ ही आँख मूदकर, शत्रु पर टूट पड़े।

'सत श्री अकाल' और 'वाहि गुरु जी का फतह' का गगन भेदी नारा लगाकर वे ठीक बाज की तरह अंग्रेज सेना पर झपटे। कितने मरे इनकी कुछ भी उन्हे चिन्ता न थी। वे मारते थे और मरते थे। किन्तु बराबर बढ़ते जा रहे थे। उनका एक गिरोह जनरल गफ की ओर ही बढ़ा क्योंकि वह बड़े उत्साह से तोपों से आग उगलवा रहा था। वे बढ़े और खूब बढे कि जनरल गफ के पास पहुँचने मे कुछ ही फासला था। इतने मे मेजर थैकवेल ने दो पलटनें उनके मार्ग मे अडा दीं और एक साथ दस तोपें खिचवा कर उनके पीछे। आगे उनकी छाती पर सगीनें, पीठ पर गोले पड़ने लगे। पर वे बराबर आगे बढ़ते ही जाते थे। उनका इरादा था कि कोई अकेला रह जाय वह भी आगे बढ़े। इधर यह आत्म बलिदान हो रहा था। कि उधर तोपों की मार से घबरा कर दोस्तमुहम्मद के पठान भाग खड़े हुए। कुछ सिखों ने उनका अनुकरण किया कुछ सिख तोपों की मार से बचने के लिये पेडों पर चढ़कर कुछ उपाय सोचने लगे। किन्तु अंग्रेजी सवारों ने गोलियों से भून डाला।

कैसा था वह स्वतत्रता का युद्ध। उसका वर्णन भला कलम कर सकती है। एक दो नहीं किन्तु तीन हजार से ऊपर माई के लालों ने एक ही दिन मे अपनी जननी-जन्मभूमि को फिरंगियों से मुक्त करने के लिये अपनी बलि देदी।

सिख नेताओं ने अब भागना उचित न समझा वे भागते भी किस के लिये। आज उनके पास बचा ही क्या था। वे सब बन्दी बना दिये गये। राजा चतरसिंह, सरदार शेरसिंह और रामसिंह आदि आज कैदी थे।

तलवार रखते हुये सरदार शेरसिंह ने मेजर गिलवर्ट की दाहिनी ओर खड़े होकर कहा "अंग्रेजों के अनेक अत्याचारों से ऊब कर हमने युद्ध किया था। अब हमारी यह दुर्दशा हो गई है और हमारी सेना के बाँके सिपाही सदैव के लिये हम से अलग हो गये हैं। हमारी तोपें, हमारे हथियार हाथ से निकल चुके हैं। इस समय हम बिल्कुल युद्ध के साधनों से हीन हैं। हमने जो कुछ भी किया है उसके लिये हमें कोई पश्चाताप नहीं। और जो आज किया है शक्ति होने पर उसे ही कल भी कर सकते हैं।"

गिरफ्तार लोगों से अंग्रेज हथियार रखवा रहे थे। हथियार रखते समय अनेकों सिखों के हृदय फट पड़े और उनकी आँखों से आँसू बहने लगे। आज सिंहों के बच्चे इतने विवश हैं। यह बात उनके मन को मसोसने लगी। महाराजसिंह और रिछपालसिंह नाम के दो नौजवानों ने तो कह भी दिया कि हम राजी से हथियार नहीं रक्खेंगे। बलात छिनाओ और हमारे आगे आओ कौन हथियार छिनाता है।

सरदार शेरसिंह जी ने वन्दी अंग्रेजों को कई बार छोड़ने की शिघ्रता दिखाई थी किन्तु कृतघ्न अंग्रेज फौजी अफसरों ने उन्हें छोड़ना तो दूर किन्तु पंजाब से भी बाहर कलकत्ते में सजा पाने के लिये भेज दिया।

यह दूसरा सिख युद्ध समाप्त हो गया। विद्रोह दब गया। अंग्रेजों ने कोने-कोने से विद्रोह को दबा दिया। किसी को सजा देकर और किसी को लोभ लालच देकर सारे पंजाब में शांति कर दी। भीतर असतोष की भट्टी चाहे भले ही धधकती रही थी किन्तु सन्नाटा सारे पंजाब में हो गया।

अब अंग्रेज निश्चिन्त थे। उन्हें पक्का विश्वास हो गया कि अब उनका मुकाबिला करने लायक कोई भी संगठन सिखों का पंजाब में शेष नहीं है। सारे सूबों में उनकी छावनियाँ पड़ी हुई हैं। कोई भी मजबूत किला ऐसा नहीं जहाँ उनका प्रबन्ध नहीं है। तब उन्होंने एक बड़ा काम हाथ में लिया जिसे पूरा करने की उनकी बीसियों वर्ष से साध थी।

इस बात को सभी अंग्रेज इतिहास लेखकों ने भी स्वीकार किया है कि विद्रोह से लाहौर दरबार का कोई सम्बन्ध न था। सरदार शेरसिंह जो लाहौर दरबार की प्रतिनिधि सभा के सदस्य थे। निज की प्रतिहिंसा से विद्रोही हुए थे। सरदार रणजोधसिंह पर भी अंग्रेजों ने विद्रोहियों को सहायता देना बताया है। वह भी व्यक्तिगत ही रहा होगा। और सही बात तो यह है कि उस समय शासन के प्रबन्धक और शांति के लिये उत्तरदायी भी तो अंग्रेज ही थे। महाराज तो नाबालिग थे ही।[१] रानी जिन्दा परदेश में पड़ी थीं। तब पंजाब को जब्त करने के लिये कोई भी कारण न था।

पंजाब हरण

जिस समय एलेयिक साहब ने तेजसिंह और दीवान दीनानाथ के सामने यह बात जाहिर की कि पंजाब तो अब अंग्रेजी राज्य में मिलाया जायगा किन्तु क्या यह उचित नहीं होगा कि कौंसिल के लोगों की स्वीकृत भी इस पर ले ली जाय। थोड़ी देर तक दीनानाथ ने मूल प्रस्ताव का विरोध किया किन्तु जब उन्हें धमकी दी गई तो वह चुप हो गये।

२६ मार्च सन् १८४८ को प्रात-काल महाराजा रणजीतसिंह जी के राजभवन में दरबार लगा। बस यही आखिरी दरबार था जब कि सिख बादशाही खतम हो रही थी और यही दिन था जब कि

१. १६ दिसम्बर १८४६ की सन्धि के अनुसार पंजाब में अमन-अमान कायम रखने का उत्तरदायित्व अंग्रेजों पर ही था। जिसके लिये कि सिख दरबार को उन्हें २२ लाख रुपया सालाना देना नियत था।

महाराजा दिलीपसिंह पंजाब के राजसिंहासन पर आखिरी बार बैठ रहे थे। आज दरबार था, किन्तु कहीं भी प्रसन्नता दृष्टिगोचर नहीं हो रही थी। सभी के चेहरे मुरझाये हुये थे। सबके दिल क्षोभ और बेबसी से फटे जा रहे थे। ठीक समय पर मि० इलियट, सर हेनरी लारेन्स और रेजीडेन्सी अनेक यूरोपियन कर्मचारी दरवार मे पहुँचे। जिनके साथ गोरे और काले लोगों के अनेक शस्त्रधारी बाडीगार्ड थे।

महाराजा दिलीप अभी नाबालिग थे किन्तु अपने अनिष्ट की आशंका से आज उनका भी चेहरा उतरा हुआ था। वह गंभीरता के साथ नीचा मुंह किये सिंहासन पर बैठे थे। उनके बाईं ओर उनके दरबारी और दाहिनी ओर अंग्रेज अधिकारी और उनके पीछे गोरे सैनिक, शहर के और भी हजारों आदमी आज की वज्र घोषणा को सुनने के लिये दुखी मन से मौजूद थे।

नियत समय पर इलियट साहब ने आज जो कुछ करना था उसकी घोषणा की जिसका अनुवाद प्रांतिक भाषा में एक द्विभापिये ने इस प्रकार किया—

"अंग्रेज सरकार पजाव के वाशिन्दों की बहतरी के लिये उचित समझती है कि अब पंजाब का शासन भार वह कतई रूप से अपने हाथ में ले ले। अत. अब से महाराजा दिलीपसिंह पंजाब के महाराज नहीं रहेंगे किन्तु उनके आराम और सन्मान का खयाल सरकार सदैव रक्खेगी। इसका फैसला हो चुका है और लाहौर-दरवार के साथ सन्धि हो चुकी है जिसके अनुसार आपका दरबार महाराजा रणजीतसिंह जी के कुल राज्य को स्वेच्छा से अंग्रेजों को सौंपता है। उस सन्धि की शर्तें इस प्रकार है। (१) महाराजा दिलीपसिंह और उनके वारिसान पंजाब-राज्य-सम्बन्धी समस्त स्वत्व, दावा, और क्षमता परित्याग करते हैं। (२) लाहौर-दरबार की जो सम्पत्ति है उस पर ईस्ट इंडिया कम्पनी का अधिकार होगा। (३) महाराजा रणजीतसिंह जी ने शाहशुजा से जो कोहनूर हीरा प्राप्त किया था उसे अब महाराजा दिलीपसिंह महारानी विक्टोरिया को भेट कर देंगे। (४) ईस्ट इडिया कम्पनी महाराजा दिलीपसिंह और उनके परिवार तथा नौकरों के गुजारे के लिये ४-५ लाख रुपया वार्षिक की पेन्शन देगी। (५) महाराजा दिलीपसिंह जी के साथ सन्मान का व्यवहार किया जायगा। उनकी पदवी 'महाराजा दिलीपसिंह बहादुर' रहेगी। उनके रहने के लिये गवर्नर जनरल जहाँ उचित समझेंगे प्रवन्ध कर देंगे। महाराजा को यावज्जीवन ब्रटिश गवर्नमेंट के अधीन रहने में ऊपर लिखी पेन्शन बराबर मिलती रहेगी।"

जब इस प्रकार की घोषणा पढ़कर सुनाई गई तो समस्त लोगों के मुँह स्याह पड़ गये। दीवान दीनानाथ ने आँखों से आंसू पोंछते हुये कहा, "मैं ईस्ट इडिया कम्पनी से दरख्वास्त करता हूँ कि वह बालक महाराजा के साथ दया का व्यवहार करे।" कहा जाता है इलियट ने दीनानाथ को यह कहते हुये डांट देकर बिठा दिया कि "अगर चुप नहीं रहे तो काले पानी भेज दिये जाओगे।"

अंग्रेजों के इस कार्य की प्रत्येक हृदयवान व्यक्ति ने निन्दा की। लार्ड 'ले' ने लिखा था—"हम अंग्रेज चौड़े मे दिलीपसिंह के रक्षक थे। दिलीपसिंह सन् १८५४ ई० में बालिग होते। हमने १८४८ की १६वीं नवम्बर को उनके राज्य की रक्षा की गारण्टी के लिये कदम बढ़ाया था। इसलिये विद्रोहियों को दंड देने और शासन सभा के प्रति होने वाले बखेड़े को दबाना हमारा फर्ज था। किन्तु पाच महीने में ही हम इतने बदल गये कि हमने दिलीपसिंह का राज्य जब्त कर लिया। यह हमने खूब विलक्षण रक्षा की।"

सर हेनरी लारेन्स ने कतई रूप से इस जब्ती का विरोध किया था, किन्तु उसकी कुछ चल न सकी। पजाब का शासन सर हेनरी लारेन्स के भाई जौन लारेन्स को सौंपा गया।

महाराजा दिलीपसिंह जी के लिये एक अंग्रेज अभिभावुक नियत कर दिया जिसका नाम

डाक्टर लोगन था और जिसे कि १२००) महीना वेतन दिया जाता था। महाराज दिलीपसिंह जी फारसी तो कुछ जानते थे, डाक्टर लोगन से वे अंग्रेजी सीखने लगे। उनकी बुद्धि बड़ी तेज थी और इस बारह वर्ष की उम्र मे भी वे बड़ी समझदारी की बातें लोगन से किया करते थे। बाज रखने का, चित्रकारी सीखने का भी उन्हें शौक था। उनके पास ऐसे आदमियों का आना वर्जित था जो उन्हे कोई ऐसी बात कहे जिससे उन्हे यह पता चल जाय कि उन्हें अब कभी भी लाहौर का राज्य नहीं मिलेगा। डाक्टर लोगन भी उनसे ऐसी ही बातें कहते यदि आप अंग्रेजों के भक्त रहेंगे तो लाभ ही होगा। डाक्टर लोगन महाराज के परिवार के अन्य व्यक्तियों की देख-भाल भी करते थे। जिनमें महाराजा रणजीतसिंह, महाराज खड्गसिंह, शेरसिंह, नौनिहालसिंह आदि की रानियाँ आदि और शेरसिंह के पुत्र सहदेवसिंह भी थे।

सरदार महासिंह से लेकर महाराजा रणजीतसिंह के समय तक जो भी अमूल्य वस्तुयें उन्हे पंजाब के राज्य घरानों से भेंट और जीत में मिली थीं। वे सब और कोहनूर हीरा थोड़े दिन के बाद खजाने से निकाल कर विलायत पहुँचा दिये गये। जिनमें स्वर्ण-सिंहासन और रत्नजटित काश्मीरी शाल बे-जोड़ वस्तुए थीं।

सन १८४६ ई० की चौथी सितम्बर को महाराजा दिलीपसिंह जी की वर्षगाठ थी। उसी समय डाक्टर लोगन ने उन्हे बहुमूल्य वस्त्र और मोती जवाहरातों की मालायें पहनाईं, बालक महाराज ने डाक्टर लोगन से कहा, 'कोहनूर हीरा अब की मेरी बाह पर क्यों नहीं बाँधते।" पर अब वह हीरा था कहाँ ?

सन्-१८४६ ई० के सितम्बर महीने में लार्ड डलहौजी लाहौर आये। महाराज ने डाक्टर लोगन के सिखाये शब्दों में उनका स्वागत किया। १५ दिन तक उन्होंने लाहौर की और सिखों की मनोदशा और शाति का अध्ययन किया। इसके बाद वे लौट गये।

पंजाब विछोह

११ वीं दिसम्बर को उन्होंने डाक्टर लोगिन को लिखा—"महाराज दिलीपसिंह और महाराज शेरसिंह के पुत्र सहदेवसिंह के लिये फतहगढ़ में रहने का प्रबन्ध कर दिया गया है। आप उन्हे लेकर वहाँ चले जायँ। आपके वेतन का आधा भाग महाराज की पेन्शन में से दिया जाया करेगा।"

२१ वीं दिसम्बर को प्रात ६ बजे डाक्टर लोगन महाराज और सहदेवसिंह तथा सहदेवसिंह की माता को लेकर लाहौर से फतहगढ़ के लिये चल पड़े।

चलते समय महाराज की आँखों से अपनी जन्मभूमि को छोडने के दुःख में आँसू भरने लगे किन्तु तब भी उन्हे ऐसा विश्वास न था कि वे फिर यहाँ लौटकर न आ सकेंगे। कई दिन के बाद सिख जनता को यह समाचार सुनाई पड़ा किन्तु अब किया क्या जा सकता था।

फतहगढ में उनके रहने के लिये मकान बनवा दिये गये थे। जो शहर और छावनी के बीच में थे और सिपाहियों का जिन पर बराबर पहरा रहता था।

लोगन साहब यथा सम्भव महाराज को खुश रखने का उपाय करते थे किन्तु लाट साहब को यह बात मजूर न थी। उन्होंने, लोगन को लिखा भी था—"तुमने महाराज दिलिपसिंह के लिये बाग लगवाया है किन्तु यह तो याद रखना है कि उनका जीवन अब बादशाहों का नहीं गुजरना है। अत कोई भी फिजूलखर्ची न की जाय।"

कहा जाता है महाराज दिलीपसिंह पढने-लिखने मे दिलचस्पी लेते थे और वे, अंग्रेजी का ज्ञान बराबर प्राप्त कर रहे थे, किन्तु अंग्रेजों को परिवार मे रखकर और रात-दिन उनकी ही सभ्यता व संस्कृति

की बात सुनकर उन पर पश्चिमी सभ्यता का विष भी असर डालता जा रहा था। वे अब अंग्रेज लड़कों की जैसी वेश-भूषा को पसन्द करने लगे। किन्तु महाराज शेरसिंह की रानी को यह बाते पसन्द न थीं। वे जब भी जितना भी समझा सकतीं अपने सिख धर्म की बाते महाराज को समझातीं।

लार्ड डलहौजी ने न मालूम क्या सोचकर सहदेवसिंह की माँ (रानी शेरसिंह) को एक धमकी का पत्र लिखा—"आप अपने दिमाग से इस बात को निकाल दीजिये कि पंजाब अब सिखों का राज्य है और भविष्य मे आपके पुत्र या और किसी को वहाँ का राजा बनाया जायगा।" बेचारी महारानी चुप हो रहीं और वे कुछ दिन के लिये अपने पिता के घर जाने के लिये विचार बाँधने लगीं।

सन् १८५२ ई० मे महाराज ने भारत के विभिन्न स्थानो की सैर की। अंग्रेजों ने उनका इस सैर का इस प्रकार प्रवन्ध किया कि किसी को पता नहीं चल सका। हाँ, हरिद्वार मे अवश्य हजारों सिखों ने उन्हें पहचान लिया, जो कि पर्व का स्नान करने आये थे। महाराज हाथी पर बैठे सैर कर रहे थे। सिख उनके इर्द गिर्द इकट्ठे हो गये और उनकी जय बोलने लगे। किन्तु महाराज केवल आँखों मे आँसू भर लाने के सिवा उनसे कुछ भी न कह सके। इस वर्ष की वर्षा उनकी मंसूरीमे बिताई गई। जहाँ कि वे अंग्रेज बालक-बालिकाओं के साथ खेलते-कूदते और मनोरंजन करते रहे।

महाराज को बराबर कोशिश करके इस बात के लिये तैयार किया गया कि सन् १८५३ की ८ वीं मार्च को महाराज ने ईसाई धर्म ग्रहण कर लिया—जिसकी कि लार्ड डलहौजी ने भी स्वीकृति दे दी। भला डलहौजी क्यों न दे देता जब कि वह समझता था कि महाराज के ईसाई हो जाने पर सिखो के दिलों मे जो उनके प्रति प्रेम है वह नष्ट हो जायगा।

५ अप्रैल को डलहौजी ने महाराज को जो पत्र लिखा था उसमें बायबिल भेजते हुये उनके ईसाई हो जाने पर बड़ी प्रसन्नता प्रकट की थी।

ईसाई किये जाने के बाद महाराज को विलायत ले जाने की तैयारी की गई। लार्ड डलहौजी इस बात से भी प्रसन्न हुआ और उसने पुन. बायबिल की एक प्रति उनके पास भेजी।

सहदेव की माँ ने इस बात का विरोध किया और कहा—"सहदेवसिंह को तो मैं विलायत हर्गिज भेजने को तैयार नहीं हू किन्तु मैं महाराज के विलायत जाने का भी विरोध करती हूं। मैं तो इसे ठीक समझती हू कि हरिद्वार मे उनके रहने का प्रबन्ध कर दिया जाय।"

लार्ड डलहौजी ने सहदेवसिंह को विलायत न भेजना तो मंजूर कर लिया किन्तु वह इस बात से राजी नहीं हुआ कि महाराज को भी विलायत जाने से रोका जाय। यह बातें सहज ही बतलाती हैं कि महाराज को ईसाई बनाने उन्हे और विलायत ले जाने मे उनकी अन्तर सहमति थी।

सन् १८५४ ई० की गर्मियों में महाराज काशी, लखनऊ आदि स्थानों को देखते हुये कलकत्ता पहुँच गये। रास्ते मे अनेकों स्थानों को देखते हुये वे जून १८५४ ई० मे लन्दन पहुँच गये। वहाँ उनके लिये कोर्ट आफ वार्ड्स के डायरेक्टरों ने रहने को मकान बनवा दिया था। वे लोग महाराज के सौजन्य-पूर्ण व्यवहार से बडे प्रसन्न हुये थे। महारानी विक्टोरिया ने भी उन्हे अपने महल मे बुलाकर उनके साथ मुलाकात की।

कहा नहीं जा सकता महाराज को कितने दिन तो विलायती वेश भूषा से प्रेम रहा और कितने दिनों उन्हें बाइबिल की बातें भाईं किन्तु इतना तो हम जानते हैं कि ज्यों ज्यों महाराज का विलायत में अधिक रहते समय बीतने लगा त्यों-त्यों उनके दिल से विलायत की सभ्यता और रहन-सहन का रङ्ग रफू

होने लगा। उन्होंने हैट-कोट पहनना छोड़ दिया और ये शनैः-शनैः सिख पोशाक पर आ गये। उनके रहन-सहन और आचार-व्यवहार में भी परिवर्तन हो गया।

इतना होने पर भी वे बराबर अपने मन के भावों को दबाये रखते और किसी भी प्रकार की टिप्पणी किसी विषय पर नहीं करते। डाक्टर लोगन और उनकी स्त्री के प्रति उन्होंने वही प्रेमपूर्ण व्यवहार निभाया।

आपके मनोभावों को जानने की बडी कोशिश की जाती थी। एक बार महारानी विक्टोरिया ने लेडी लोगन से पूछा—"महाराज दिलीप कोहनूर के सम्बन्ध में तो कुछ चर्चा नहीं करते हैं।' जब लेडी लोगिन महाराज के पास आई तो उन्होंने कोहनूर की चर्चा छेड़ दी हालाँकि महाराज अब उस प्रसग को भूल जाना चाहते थे जो उनके दिल को दुखी करता। न मालूम क्यों आज यकायक कोहनूर की चर्चा से उनका दिल भारी हो गया और उन्होंने कहा—"क्या आप मुझे एक बार कोहनूर हीरा दिखवा देंगी। 'लेडी साहिबा ने पूछा—"लेकिन आप उसे देखकर क्या करेंगे।" महाराज ने अपने मन के भाव दबाते हुए कहा—"एक तो मैंने उसे बचपन में देखा था इसलिये अब भले प्रकार देखना चाहता हूँ और दूसरे तब मेरी अजानकारी में वह यहाँ लाया गया अब मैं अपने हाथ से साम्राज्ञी को भेट कर दू।"

लेडी लोगन के कहने पर महारानी विक्टोरिया ने कोहनूर दिखाना मजूर कर लिया। उन्होंने कोहनूर दिलीपसिंह के हाथ मे देते हुये पूछा—"अच्छा बताओ यह अब सुन्दर है या तब सुन्दर था जब लाहौर में था।" इस समय महाराज ने अपने चेहरे के भावों को बिगड़ने नहीं दिया। उन्होंने सहज भाव से कहा—"कटने छटने से कुछ सुन्दर तो अवश्य हो गया है किन्तु हल्का भी हो गया है।" यह कहते हुये उन्होंने हीरे को महारानी को लौटा दिया।

महारानी विक्टोरिया को महाराज दिलीपसिंह के सम्बन्ध मे काफी जानकारी हासिल करने की इच्छा थी। इसलिये उन्होंने लेडी लोगिन से महाराज के सम्बन्ध की एक तवारीख ही लिखने को कहा। प्रिन्स अलबर्ट (विक्टोरिया के पति महाशय) ने महाराज के मनोगत भावों को जानने की इच्छा से उन्हें कई बार अपने पास प्रेमपूर्वक बुलाया।

कहा जाता है महारानी विक्टोरिया उनके प्रति प्रेम का व्यवहार करती थीं। लार्ड हार्डिङ्ग ने उन्हें अपने यहाँ कई दिन निमत्रित किया था। किन्तु हम जहाँ तक भी समझ सकते हैं महाराज को बहलाने और उनके अन्तर की बातें जानने के लिये वह सब किया जाता था। वरना उन्हे यूनिवर्सिटी की परीक्षा में न बैठने देकर पेन्शन की रकम मे उत्तरोत्तर कमी करके जो मानसिक और आर्थिक कष्ट दिये जाते थे वह ब्रृटिश राजनीतिज्ञों की सहृदयता के द्योतक नहीं थे।

भैरववाल की सन्धि के अनुसार उन्हें १८५४ ई० में बालिग मान लेना चाहिये था, किन्तु १६ वर्ष की उम्र में उन्हें बालिग माना गया सो भी इतने के लिये भी महाराज को काफी लिखा-पढी करनी पड़ी थी।

इस बीच में एक बार उन्होंने लेडी लोगन के साथ कई यूरोपियन देशों की सैर भी की।

उन्हें अखबार पढ़ने का बड़ा शौक था। वे अखबारों में सबसे पहले हिन्दुस्तान की खबर पढने की चेष्टा करते थे। एक बार उन्होंने पढ़ा, अवध जब्त हो गया और उसके नवाब की पच्चीस लाख की पेन्शन हो गई। महाराज को खयाल आया कि अवध के नवाब से हमारा दर्जा कुछ कम नहीं। फिर हमारे सारे परिवार को केवल चार लाख वार्षिक ही। महाराज ने लिखा-पढ़ी भी की किन्तु उन्हें इसके

लिये निराश ही होना पड़ा।

सन् १८५७ में फ्रांस के बादशाह और उनकी रानी इगलैंड गये। महाराज से मिलने की उन्होंने इच्छा प्रकट की। जब महाराज मिले तो दोनों राजा-रानी महाराज से बहुत खुश हुये, किन्तु कोई खुश हो या नाराज, महाराज के भाग्य पर इन बातों का क्या असर पड़ता। वे तो उनके शाही कैदी थे। शुक्र इतना था कि व्यवहार उनके साथ मेहमानदारी का होता था।

सन् १८५६ ई० मे उन पर एक इल्जाम भी लगाया गया और वह यह कि उन्होंने अपनी माँ जिन्दा महारानी के पास एक गुप्त-पत्र उन्हे यूरोप की ओर चले आने के लिये लिखा है। कोर्ट आफ डायरेक्टर्स ने जांच कराई।

इसके बाद उन्होंने अपनी माता महारानी जिन्दा के पास नेमी गोरा के हाथ एक पत्र भेजा और उसमे लिखा कि आपको नैपाल मे ही रहकर शांति से शेप जीवन बिताना चाहिये।

कुँवर सहदेवसिंह जी और इनकी माता की इधर भारत मे पेन्शन बन्द हो गई थी। इस समाचार को सुनकर महाराज को बडा दु.ख हुआ और उन्होंने कोर्ट आफ डाइरेक्टर्स की मार्फत हिन्दुस्तान के वायसराय के साथ लिखा-पढ़ी की। तब बड़ी मुश्किल के बाद उन दोनों के लिये पॉच हजार वार्षिक की पेन्शन हुई।

सन् १८५६ ई० की २० मई को लार्ड स्टेनले ने महाराज को सूचना दी कि अब आप बालिग हो गये और आपको २५००० पौंड सालाना पेन्शन मिलेगी। महाराज को अंग्रेजों के बर्ताव से अब शनैः-शनै. खेद बढ़ता ही जाता था और सन्देह तो भारी मात्रा मे। इसलिए उन्होंने सरकार से पूछा "यह पेन्शन मेरे ही जीवन तक है या मेरे वारिसों को भी मिलेगी।" इसके उत्तर मे उन्हे बताया गया—आपको १५००० पौंड मिलेंगे, तीन हजार आपकी स्त्री को, शेप आपकी संतान को सुरक्षित रहेगा और सतान न होने की हालत मे मय ब्याज के अंतिम दिनों मे आपको ही दे दिया जायगा।"

अब दिनों दिन महाराज के हृदय में अपने देश के प्रति प्रेम उमड़ता जाता था। ज्यों-ज्यों वे सयाने होते जाते थे। त्यों-त्यों ही उन्हे अपनी दशा पर क्षोभ होता था। उन्होंने सरकार को लिखा—"मेरी बची हुई सपत्ति पजाब मे अगर शिक्षा पर खर्च की जाय तो मुझे बडा संतोप होगा।" किन्तु इन बातों पर भला ध्यान दिया जा सकता था।

गदर के समय में विद्रोहियों ने फतहगढ़ में महाराज के मकान की भी लूट कर ली थी। उसमे उनका बडा नुकसान हुआ था। इसके लिये महाराज ने सरकार से हरजाना मॉगा, क्योंकि उनका वह सामान सरकार के संरक्षण मे ही तो था। सरकार ने इस बात का भी कोई जवाब नहीं दिया। महाराज की इन बातों से अधीरता बढ़ने लगी। इधर उनकी पेन्शन का उन्हे पूरा रुपया नहीं मिलता था इससे वे खर्च से भी कुछ-कुछ तग रहने लगे। सर चार्लस बुड ने महाराज को मुलाकात के लिये बुलाया और उनकी सारी बातें सुनकर उसने महाराज से इस प्रकार का एक इकरारनामा लिखवाया—"मैं अपने खर्च के लिये पच्चीस हजार पौंड वार्षिक चाहता हूँ और मृत्यु के बाद अपने वारिसों के लिये बीस हजार पौंड की प्रार्थना करता हूँ। यदि मेरे कोई वारिस न हो तो यह मेरी सचित पूँजी हिन्दुस्तान की भलाई के कामों मे खर्च कर दी जाय। इससे अधिक हिन्दुस्तान की अंग्रेजी सरकार पर उनका दावा नहीं है।" यह घटना २० जनवरी सन् १८६० ई० की है।

इसके दो महीने बाद ही महाराज को कार्ट आफ वार्डस ने एक पत्र के उत्तर में लिखा कि

"सन् १८४६ ई० की सन्धि के अनुसार उनके परिवार के लिये जो पॉच लाख सालाना की पेन्शन मुकर्रिर हुई थी उसमे से किसे कितना दिया गया यह मालूम करने का महाराज को अधिकार नहीं है। हाँ, हम इतना वता देना चाहते हैं कि डेढ़ दो हजार पौंड पिछली रकमों से जमा है।" महाराज ने इसका उत्तर कुछ गुस्से के साथ इस प्रकार दिया कि "जव तक मुझे यह वात नहीं वताई जायगी तव तक मैं उस इकरारनामे को भी वेकार ही समझता हूँ। जो चार्लस ने लिखाया है।"

महाराज को अपनी मॉ से मिलने और अपनी मातृ भूमि के दर्शनों की भारी उत्कठा थी। इसलिये उन्होंने भारत जाने की इच्छा प्रकट की। गवर्नर जनरल ने उनको लिखा कि "महाराज पजाव नहीं जा सकेंगे शेष भारत मे उनकी जहॉ इच्छा है जा सकेंगे। महारानी जिन्दा यद्यपि चुनार से भागकर नैपाल पहुँची हैं, किन्तु वे भारत में वापिस लौटे तो उनके साथ अच्छा ही व्यवहार होगा।"

महाराज सन् १८६१ के जनवरी मास में बड़े आह्लाद के साथ कलकत्ता आ गये। उधर महारानी भी रानीगंज (वगाल) मे आ गई। जहॉ दोनों मॉ वेटों का मिलाप हुआ। वहुत दिन के विछुडे माँ-वेटे जव मिलें उस समय उनकी क्या दशा होती है उसका वर्णन नहीं किया जा सकता। पहले दोनों गले मिल कर रोये और फिर अपनी-अपनी विपत्तियों की कहानियॉ कहकर दिल हल्के किये।

अग्रेज अधिकारियों का ऐसा खयाल था कि महाराज दिलीपसिंह के इसाई हो जाने के समाचारों से सिख उनके साथ कोई हमदर्दी नहीं रक्खेंगे किन्तु जव यह समाचार मिला तो अनेकों सिख कलकत्ते में उनसे मिलने पहुँचे। जो सिख सैनिक चीन से वापस लौटे थे उन्होंने भी महाराज से मिलने की इच्छा प्रकट की। इस वात को देख कर लार्ड केनिंग चिन्तित हुए और उन्होंने महाराज को वापिस विलायत भेज दिया। कहा यह गया कि महाराज को यहॉ की आवहवा अनुकूल नहीं जॅची इससे वह लौट गये हैं। महाराज शेर के शिकार का इरादा करके आये थे किन्तु इसके लिये भी उन्हें अवकाश नहीं मिला।

महारानी जिन्दा भी पुत्र-प्रेम से विलायत जाने को तैयार हो गई। उन्हें उनके चुनार में छोडे हुए जेवर दे दिये गये, क्योंकि अंग्रेज अधिकारी उनके विलायत जाने से खुश थे।

किन्तु खेद है कि महारानी जिन्दा को विलायत में भी उनके प्यारे पुत्र से अलग कर दिया गया। उन पर यह इल्जाम लगाया गया कि वे महाराज को ईसाई-धर्म से विचलित करती हैं। जव से वे आई हैं, महाराज ने गिरिजों में जाना भी वन्द कर दिया है। इस दु ख से और अव तक की विपत्तियों से उन प्राणों की शक्ति काफी क्षीण हो चुकी थी। अत केवल दो ही वर्ष के वाद सन् १८६३ के सितम्वर में उनका देहान्त हो गया।

भारत माँ की सुपुत्री, खालसा राज्य की अधिष्ठात्री और महाराजा रणजीतसिंह की महारानी की इस दु खद मृत्यु से किस सहृदय का दिल न रो उठेगा। उसने सात समुन्दर पार उस श्वेत देश मे मरते समय एक ही याचना की और वह यह कि उसका अन्त्येष्टि संस्कार उसके अपने भारत देश में ही हो। कहा जाता है, उनका शव मसालों से सींचकर रख दिया गया और सन् १८६४ ई० मे महाराज दिलीपसिंह वम्वई के रास्ते आकर नर्मदा-तट पर उनका संस्कार करके वापिस चले गये। इन्हीं दिनों डाक्टर लोगिन का भी स्वर्गवास हो गया। अव वे दुखी रहने लगे। अंग्रेजों ने उनसे किसी कुलीन रमणी के साथ व्याह कर लेने की वात कही। किन्तु उन्हें अपना भविष्य अधकारपूर्ण दिखाई देता था। इसलिये वे एक गरीव कन्या से शादी करके दिल को वहलाने की चेष्टा करने लगे। यह महिला इजिप्ट की रहने वाली और वम्वा नाम की थी। महाराज ने इसे शिक्षा दिलाकर योग्य वनाया।

महाराजा दिलीप सिंह जी

फूल-वंश-संस्थापक
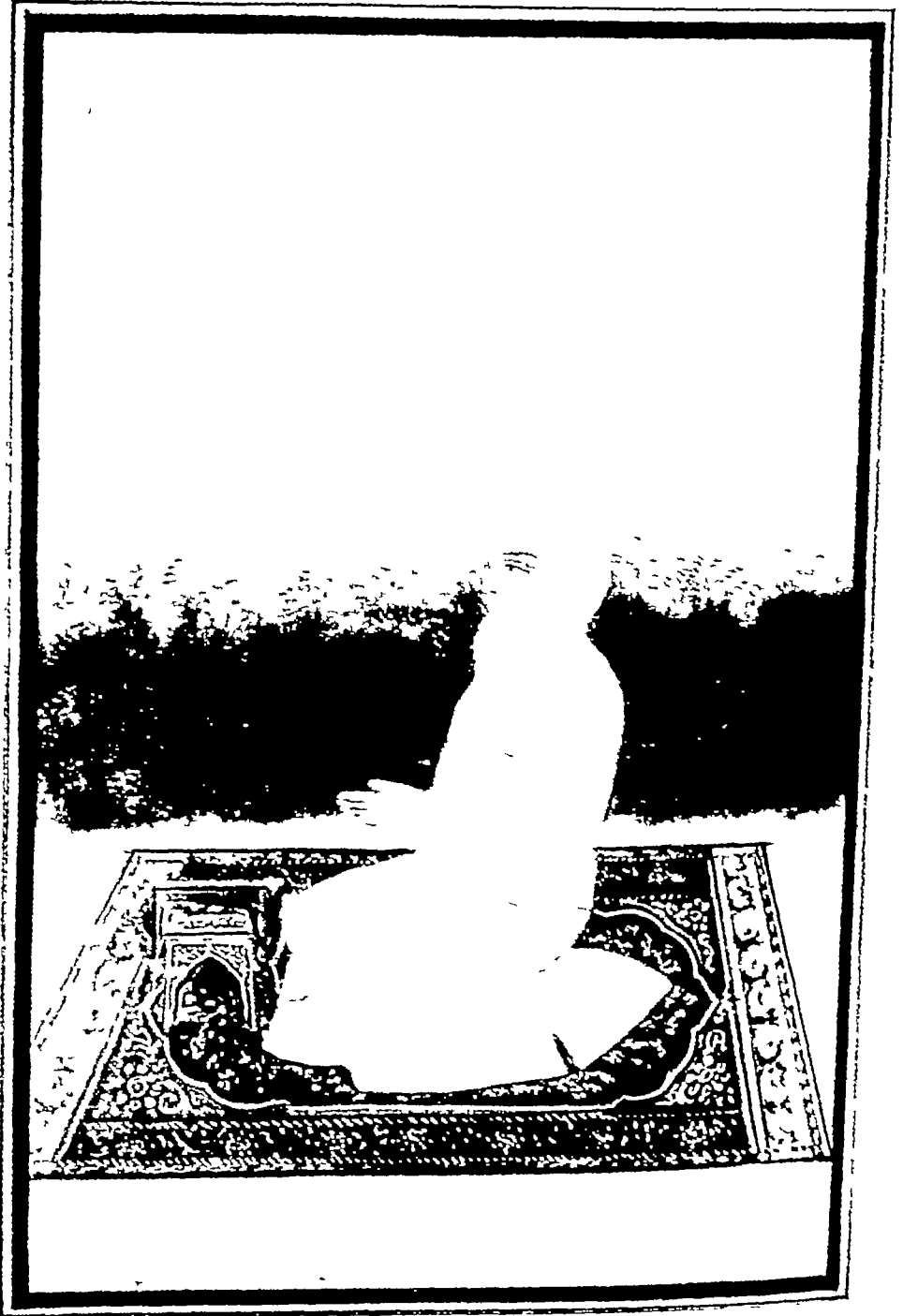
बाबा फूल

सन् १८६३ ई० मे ब्रृटिश सरकार ने महाराज को 'सितारेहिन्द' की भी उपाधि दी। बलिहारी इस अंग्रेज जीव की। एक ओर तो उनके पत्रों का जवाब डेढ़ डेढ़ वर्ष तक नहीं दिया जाता है दूसरी ओर उन्हे उपाधि देकर प्रसन्न करने की कोशिश की जाती है।

जब महाराज-अंग्रेज शासकों से काफी लिखा पढ़ी करके निराश हो गये और उन्होंने अपने को अधिक से अधिक बेबसी मे अनुभव किया तो उन्होंने आखिर इंगलेड की जनता के सामने अपना केस रक्खा। लंदन के प्रसिद्ध पत्र 'टाइम्स'से उन्होंने अपनी समस्त कठिनाइयों एवं उचित मांगों और अंग्रेज अधिकारियो के रुख पर प्रकाश डालते हुये इगलैंड के सुसभ्य समाज से अपील की कि वे इसमे उनका साथ दे।

वास्तव मे महाराज दिलीपसिंह का उन लोगों को साथ देना चाहिये था, क्योंकि उनकी नागरिकता भी स्वीकार की जा चुकी थी। किन्तु उनकी यह अपील भी बेकार हो गई। इसके तीन वर्ष बाद उन्हें जो जवाब मिला वह पिछले जवाबों से भी अधिक निराशाजनक था। इस जवाब के अनुसार उनकी सन्तान के लिये कुछ भी सहायता देने से अधिकारियों ने इन्कार कर दिया। अब फिर वे इंगलैंड रहते भी क्यों। इसलिये उन्होंने वहाँ की अपनी जमींदारी और जायदाद बेच डाली और भारत आने की तैयारी करने लगे। उनके इस इरादे से सरकार कुछ भयभीत हुई और उन्हे कहा गया कि यदि आप यहीं रहेंगे तो उनके दावे के लिये उन्हे पचास हजार पौंड दिया जायगा और भारत गये तो उन्हे पजाब में तो जाने ही नहीं दिया जायगा, किन्तु दूसरे स्थान मे भी प्राय वह सरकार के ही प्रबन्ध मे रहेंगे, स्वतन्त्र नहीं।

यह सब बाते सुनने पर भी महाराज ने भारत पहुँचने का ही अपना निश्चय पक्का रक्खा और उन्होंने अपने देशवासियों के नाम एक पत्र लिखा; जो कि १७ अप्रैल १८८६ शनिवार को 'ट्रिब्यून' अखबार मे प्रकाशित हुआ था, उनके शब्द यह हैं :—

"मेरे प्यारे देशवासियो!

मेरी हिन्दुस्तान लौटने की कभी कोई इच्छा नहीं थी। परन्तु सतगुरु ने, जो कि सबके भाग्यों का मालिक है और अपने गलती करने वाले (अपने कृत्य) से अधिक शक्तिवान है, ऐसे हालात पैदा कर दिये हैं कि मैं अपनी इच्छा के विरुद्ध इंगलैंड छोड़ने पर बाध्य होगया हूँ। ताकि भारतवर्ष मे एक मामूली मनुष्य की जिन्दगी गुजारूं। मैं यह समझता हुआ कि जो कुछ नियमति है वही होगा। ईश्वरेच्छा के सामने सिर नवाता हूँ।

अब मैं पवित्रात्मा खालसा जी! इसलिये आपसे क्षमा चाहता हूँ कि मैंने अपने बुजुर्गों के धर्म को एक विदेशी धर्म के लिये त्यागा किन्तु उस समय, जब कि मैंने ईसाई मत को धारण किया, मैं बच्चा था।

यह मेरी तीव्र इच्छा है कि बम्बई पहुंचने पर फिर पाहुल लूँ अर्थात् सिख धर्म की दीक्षा लूँ और आपसे हार्दिक उम्मीद है कि आप उस पवित्र अवसर पर सतगुरु के हुजूर अरदास करेंगे।

मैं आपको लिखने पर मजबूर हुआ हू, क्योंकि मुझे पंजाब मे आपसे मे मिलने की आज्ञा नहीं है। जैसी कि मेरी बहुत इच्छा थी।

हिन्दुस्तान की मल्का के लिये अटल भक्ति का क्या ही अच्छा परिणाम है। परन्तु होगा वही जो वाहिगुरु को मंजूर है।

वाहि गुरु जी की फतह बुलाता हुआ मैं हूँ

मेरे प्रिय देशवासियो आपका ही मांस और हाड़—दिलीपसिंह"

महाराज अदन तक आ पहुँचे थे। उन्हे वहीं रोक दिया गया और कहा गया कि "भारत के गवर्नर जनरल आपका भारत पहुँचना शाति के लिये खतरनाक समझते हैं।" वास्तव में उनका हिन्दुस्तान आना अंग्रेज अधिकारियों के लिये खतरनाक ही सावित होता। क्योंकि सिखों के अन्दर से उनकी भक्ति कम नहीं हुई थी और सारा पजाव वडी खुशी से उस दिन की वाट देख रहा था।

अंतिम दिन

विलायत लौटने के लिये उन्हे विवश किया गया। किन्तु वहाँ पहुँचकर वे खिन्न रहने लगे और उनकी वह गम्भीरता भी नष्ट होगई। घण्टों बैठे वे अपनी दशा पर विचार करते और कभी-कभी तो वड-वडा भी उठते। एक समय वे महारानी विक्टोरिया को कोहनूर को धारण किये हुये देखकर कह उठे—"यह मेरे वाप की चीज है। महारानी विक्टोरिया का इस पर कोई अधिकार नहीं है।" विक्टोरिया उसकी मनोदशा को समझकर चुप हो रहीं। किन्तु तव से उनका महलों में जाना वन्द ही हो गया। उनकी उत्तेजना दिन पर दिन वढ़ने लगी और उन्होंने वह पेंशन लेना वन्द कर दिया। वह स्पष्ट कहने लगे—"सन् १८४९ की वह सन्धि जिसके अनुसार पजाव जव्त कर लिया भला कोई सन्धि कही जा सकती है।"

अत में उन्होंने फ्रास की यात्रा की और वहाँ के वादशाह से कहा कि मुझे पाडेचरी भेज दो। वहाँ जाकर मैं अपने राज्य को लेने की कोशिश करूँगा। फ्रास में उनकी वात तो ध्यान से सुनी गई किन्तु दूसरे की वला को अपने गले में कौन डालता है। इसके वाद वे जर्मनी पहुंचे। जर्मनी से रूस की तैयारी की। वहाँ वे सर्व प्रथम 'मास्को गजट' के सम्पादक मौ० केटकफेक के यहाँ ठहरे और वादशाह एलेगजेण्डर से वातचीत की।

सन् १८८२ के अक्तूवर महीने में उन्होंने अखवारों में प्रकाशित कर दिया कि मैं उस सन्धि को कतई नहीं मानता हू, जो मेरी नावालिगी में हुई है।

इन्हीं दिनों उन्होंने महारानी वम्पा की मृत्यु का समाचार सुना जिससे वे वडे दुखी हुये और रूस से लौटकर पैरिस में आकर वीमार हो गये। लन्दन से उनके वेटे विक्टर दिलीप ने आकर उनकी काफी सेवा की। किन्तु वे अच्छे न हो सके और अपने समस्त भावों को साथ लेकर सन् १८९३ में इस ससार से चल वसे।

भारत के सिंहों का वादशाह इस प्रकार नि सहाय और मानसिक यंत्रणाओं में अपनी जन्मभूमि से वहुत दूर प्राण-विसर्जन करेगा, पंजाव के शेर रणजीतसिंह के पुत्र की यह दयनीय दशा होगी, ऐसी समावना किसे थी।

कहा जाता है महाराजा ने तीन पुत्र और तीन लड़कियाँ अपने पीछे छोड़े।

सत्रहवाँ अध्याय

कपूर्थला राज-वंश

कपूर्थला राज्य दो भागों मे बटा हुआ है। एक भाग उसका पजाव मे है और दूसरा अवध मे। पजाव का राज्य सरदार जस्सासिंह और उनके वशजों ने बाहुवल से अर्जित किया था और अवध का भाग महाराजा रणधीरसिंह जी को उनकी उन खिदमात के बदले मे मिला था जो उन्होंने विदेश से आये भाग्यशाली अग्रेज विजेताओ के लिये स्वदेश के किन्हीं हिस्सों को जीतते समय युद्धों मे की थीं। 'तारीख कपूर्थला' के लेखक दीवान रामजस साहब ने लिखा है कि अवध-स्थित भू-भाग कपूर्थला को सन् १८५७ के गदर के बाद महाराज रणधीरसिंह जी की खैरख्वाही के एवज मे दिया गया था।

पंजाव मे जो भू-भाग राज्य कपूर्थला के नाम से मशहूर है वह ४८२ वर्ग मील मे फैला हुआ है उसकी लबाई ३० मील और चौडाई ७ से २० मील तक है। अधिकांश मे वह व्यास के किनारे-किनारे आवाद है। इसके उत्तर मे जिला होशियारपुर, दक्षिण मे सतलज नदी, पूर्व मे जिला जालन्धर और पच्छिम मे व्यास नदी बहती है।

साढ़े तीन लाख के करीब इसकी जन-सख्या और पन्द्रह लाख के करीब सालाना आमदनी है। इसके ग्राम और नगरों की सख्या सात सौ से ऊपर है।

रियासत के प्रसिद्ध नगरों मे कपूर्थला राज्य की राजधानी और मुख्य शहर है। इसे ग्यारहवीं सदी मे कपूर नाम के अहलूवाल सरदार ने वसाया था। १७५० ई० में भट्टी मुस्लिम राजपूत इब्राहीम ने इस पर कब्जा किया और उसे तरक्की दी। सन् १७८० ई० या सवत् १८३७ वि० मे सरदार जस्सासिंह ने मुसलमान हाकिम से छीनकर अपनी राजधानी बनाया। तब से बराबर उन्हीं के वशजों के हाथ मे चला आ रहा है। बेंई नदी के किनारे बसे होने की वजह से इसकी सुन्दरता मे कोई कमी नहीं है। बाग-बगीचों की हरियाली से यह और भी अच्छा लगता है। यहाँ पर ठाकुरद्वारा, कला मन्दिर देखने लायक है। यहाँ का कचहरीघर भी बढ़िया है। शिक्षा के लिये एक कालेज 'रणधीर कालेज' के नाम से बना हुआ है। वर्तमान् प्रणाली के ढग का अस्पताल भी है।

कपूर्थला से ढाई मील दक्षिण मे शेखू पुरा नाम का कसबा भी उम्दा है। यहाँ पर पुराने जमाने का एक किला बना हुआ है। इसके बाद सुलतानपुर का कस्बा भी अच्छा है। गुरू नानकदेव जी यहीं के नवाब के मोदी रहे थे। यह बेंई नदी के किनारे पर बसा हुआ है। आरभ मे इसका नाम श्रीमानपुर

था। १४ वीं सदी मे नासिरुद्दीन के मामाजाद भाई सुल्तान खाँ ने इस पर कब्जा कर लिया। किसी समय इसमे ३२ बाजार और साढे पांच हजार दूकानें थीं। प्रत्येक पेशे के लोग बसते थे। कला और दस्तकारी में बहुत उन्नत था। इसमें बारह दरवाजे थे और चालीस हजार मनुष्य बसते थे। ८ मील के घेरे मे आबादी थी।

इसके पास ही मे दूसरी काली नदी बहती है इस पर उसी जमाने के दो पुल बन्धे हुए हैं। दो लाख रुपया इन पुलों पर खर्च हुआ था। यहाँ का किला भी बडा मजबूत है जिसे मुसलमान नवाबों ने एक लाख रुपये से ऊपर खर्च करके बनवाया था।

महाराज फतहसिंह बरसात के समय मे कपूर्थला की बजाय सुलतानपुर मे ही रहते थे इसलिये उन्होंने यहा की बारहदरी की मरम्मत नये सिरे से करा दी थी।

इसके सिवा सुल्तानपुर के पुराने मकबरे अब्दुल लतीफ का हौज आदि भी देखने लायक हैं।

यहा पर गुरू नानकदेव जी की स्मृति मे भी कई उम्दा स्थान हैं। बेंई नदी का संत घाट, बेर साहब, कोठरी साहब आदि उनके नाम हैं।

फगवाडा कस्बा भी इस राज्य का एक पुराना कस्बा है। यहाँ पर अहलूवाल राजाओं ने एक किला भी बनवाया था। इसके अलावा और भी कई अच्छे कस्बे हैं।

अवध में इस रियासत का जो भू-भाग था वह इस प्रकार है—बहरा व बाराबंकी के जिलों मे चौंडही। भटोली ये इलाके सरयू नदी के किनारे पर अवस्थित हैं। अकोना और दुरगापुर बहराइच के दक्षिण-पच्छिम मे है। खेरी जिले मे देहर दरा का इलाका है।

इस भू-भाग के प्रबध के लिये कुछ अधिकारी रियासत की ओर से मुकर्रिर हैं। वास्तव में यह भू-भाग बतौर जागीर के हैं। और सारे इलाकों मे लगभग ६०० गॉव और तीस हजार के करीब आबादी है। ७०० मील के लगभग इस इलाके का क्षेत्रफल है। इन इलाकों में शिक्षा और स्वास्थ्य का भी राज्य की ओर से प्रबन्ध है। करीब-करीब २०० सैनिक मय तोपों, हथियारों और दीगर रक्षा के सामान के शाति बनाये रखने के लिये इन इलाकों मे रहते थे।

इस इलाके मे कई धर्म स्थान है। देरह दरा में तुलसीदास जी ने बैठकर रामायण लिखी थी और सीता धमार मे भगवान् राम ने अपना अतिम यज्ञ किया था। ऐसा वहाँ के लोगों का विश्वास है। इस इलाके की वार्षिक आमदनी १६ लाख से ऊपर है।

कपूर्थला के मौजूदा राज-वश के प्रसिद्ध पुरुप जिनसे कि इस वश को इतना उरुज मिला है। सरदार जस्सासिंह जी अहलू वालिया थे। यह राज-वश अपने लिये पटियाला, नाभा, जीन्द की भॉति ही जयसलमेर के भट्टियों से ही अपना निकास बतलाता रहा है और राजा सालिवाहन को उन्हीं की भॉति अपना बुजुर्ग मानता रहा है। यह हम महाराजा रणजीतसिंह जी के पूर्वजों के वर्णन में लिख चुके हैं कि शाका सालिवाहन और गजवशीय सालिवाहन दो अलग-अलग व्यक्ति थे। कपूर्थला वाले इसी गजवशीय सालिवाहन के वशज बनते हैं। उनका यह दावा अनुचित नहीं है। प्रत्येक बडा खान्दान अपने को बडों का ही वशज मानता है। जयपुर के कछवाहे और बीकानेर के राठौर जब अपनी वशावली भगवान राम से जोडने की व्यर्थ चेष्टा करते हैं तो यह हक सभी को है कि वह अपने कुल का सम्बन्ध भारत के प्राचीन किसी भी महापुरुष मे स्थापित कर ले। इससे उस कुल की अनेक सामाजिक कठिनाइयाँ हल हो जाती हैं।

कपूर्थला के पूर्वज

स० जस्सा सिंह अहलुवालिया

गुरुद्वारा साहिब

कपूर्थला

जैसलमेर से अपना कुल सम्बन्ध जोड़ने वाला कपूर्थला-राज्य का दावा इस प्रकार है —"महाराज जस्सासिंह की लड़ी जैसलमेर के राजपूत-खानदान से मिलती है और उसका वर्णन यों है कि जो राजा दोसाज का बेटा जैसल नामी पैदा हुआ, उसने अपनी राजधानी जैसलमेर मे कायम की और उसका लकब यही मशहूर हुआ। राजा जैसल से राना हेला उर्फ महारावल और शालिवाहन आदि पुत्र हुये। हेला से चन्द्र, चन्द्र से ओजल, ओजल से जगपाल, जगपाल से धर्म,धर्म से पद्मरथ, पद्मरथ से कपूर। राजा धर्म का राज्य तो पूर्ण ऐश्वर्यवान रहा। परन्तु इस समय मे भटिंडे के राजा जयपाल ने पद्मरथ के राज्य का कुछ भाग दवा लिया। इन्ही दिनो महमूद गजनवी भारत मे चढ़ाई कर रहा था। पद्मरथ ने कपूर को गजनवी की खिदमत मे रख दिया। अच्छी खिदमते करने की वजह से महमूद ने कपूर को व्यास नदी के पास का इलाका बता दिया वहीं पर उसने कपूरथला नामक नगर वसाया। किन्तु गजनवी आँधी के बाद जयपाल ने तुरन्त ही कपूर्थला कपूर से छीन लिया। जैसलमेर मे उस समय उनका बड़ा भाई राजगद्दी का मालिक वन चुका था वहाँ कपूर को जागीर मिली। बाद मे कपूर से भूनी, भूनी से हरपाल, हरपाल से उधरन, उधरन से चन्द्रपाल, चन्द्रपाल से तुलसी इस समय तक जागीर कायम रही। बादशाह अकबर के इशारे से हरराय रावल ने जागीर छीन ली। तुलसी से रूप उससे ककड उससे मगराज, उससे सलो, उससे सेतासिंह राऊ उससे बुद्धसिंह, उससे गडासिह, उससे सुदावसिंह,

सुदावसिह ने हाकिम लाहौर से रकवा लेकर आहलू, हलू,साहदू, हूर और चक नामक पॉच गॉव आवाद किये। अपनी रिहायश आहलू गॉव में रक्खी इससे अव इनका वंश अहलूवालिया के नाम से मशहूर हो गया।

यह तो साबित हो गया कि यह खानदान ऊचा और चन्द्रवशी कृष्ण से मिलता है और जैसलमेर की शाखा है। परन्तु कलाल लोगों के साथ कैसे सम्बन्ध हो गया अव यही बताना शेष है। इस खानदान के लोग जैसलमेर से सुदूर पजाव मे आकर बसे तो पहाड़ी राजपूतों से तो कुछ परिचय था नहीं और राजपूताने को आने-जाने के मार्ग सरल नहीं थे। अत कलालो के साथ ही शादी-व्यवहार करने लग गये और राजपूत से कलाल वन गये। अव यातायात के साधन सुगम होने की वजह से यह उचित समझा गया कि पुन अपनी राजपूत विरादरी मे भी शामिल हुआ जाय। कोशिश और प्रचार से यह मौका आया कि महाराज जगजीतसिंह (आहलूवालिया) का रिश्ता खान्दान गुलेर के ठाकुर रनजीतसिह की वहिन के साथ होगया। रनजीतसिंह की एक वहिन राजा चम्पा से व्याही गई थी। इस प्रकार आहलूवालिया पुन अपनी पुरानी राजपूत विरादरी मे शामिल हो गये।"

हम समझते है कि सिख होने पर भी यदि किसी को यह खयाल रहता है कि अमुक विरादरी हमारे से ऊँची है तो हम कहेगे कि उन्होंने सिख धर्म के आदर्श को हृदयंगम नहीं किया। कलाल खुद कोई नीची जाति नहीं है। उनका पेशा नीचा जरूर है शराव निकालने और इसे वेचने वाले लोग कलाल कहलाने लग गये थे। वास्तव मे वे उन हैहयवंशी क्षत्रियो मे से हैं, जिनका परशुराम काल मे वाह्मणों मे सघर्ष हुआ था और जिनके पूर्वज सहस्रावाहु जैसे योद्धा के राजहीन होने पर उनके दल महिष्मती नगरी व उस प्रदेश को छोडकर देश के विभिन्न भागो मे फैल गये। अफगानिस्तान मे भी वे हाहज नाम से अनेकों वर्ष राज्य करते रहे। अरव विजेताओं के अफगानिस्तान पर हमला होने के समय पजाव मे आ गये और यहाँ हैहय से हैहयवाले अहहवाले या आहलूवाले कहलाने लग गये। अफगानिस्तान मे अगूरो का रस पीते या दाखो का रस (शराव) पीने और वेचने में लग पडे थे। चूकि वैष्णव धर्म मे

शराब का बडा निषेध है अत वैष्णव प्रवृत्ति के लोग उन हैहय अथवा आहलू लोगों को कुछ हीन समझने लगे। वास्तव में वे रक्त से क्षत्रिय ही थे। मध्यप्रान्त में अब भी हजारों हैहय क्षत्रिय हैं।

जैसलमेर से ही सिजरा मिलाने का कारण यह है कि जैसलमेर के लोग भी अफगानिस्तान से ही लौटकर आये थे और सम्भव है कि वे भी हैहय वंशी ही हों और भारत में लौट कर उन्होंने वातियाना प्रदेश में जिसे संस्कृत ग्रन्थों में वाति भय के नाम से याद किया गया है और सिंध से मिला हुआ बताया गया है, शक्ति प्राप्त करली और वैष्णव धर्म को ग्रहण करके राजपूत कहलाने लग गये हों।

हम खूब जानते हैं कि महाराज श्रीकृष्ण की सन्तान के लोग गजनी नहीं गये थे और न उनके किसी लडके का नाम गज था ही। उनके पुत्र का नाम वज्र था जो वज्रपुर (साइबेरिया) और पुन जदूका डूंग में बसा था। काबुल गजनी में हैहय लोग ही पहुँचे थे और यह हैहय भी यदुओं की ही एक शाखा थे। इसलिये इन्हें या जैसलमेर वालों को यदुवंशी तो कहा जा सकता है और सालिवाहन का वंशज भी माना जा सकता है किन्तु कृष्ण से उनका सीधा सम्बन्ध कठिनता से जुड़ता है। किन्तु इसमें कोई सन्देह नहीं वे क्षत्रिय हैं और चन्द्रवंशी क्षत्रिय हैं। किन्तु हैं हैहयवंशी। हैहय से हैहयलू वाले और अहयलूवाले तथा अहलूवाले सहज ही बन जाते हैं।

भाटों ने जो वंशावली और तर्ज इस खान्दान को बताई यह स्वाभिमान को गिराने वाली है। और उससे केवल इतना ही हो सकता है कि कपूर्थला का राजघर तो राजपूतों में मिल सकता है किन्तु अन्य सारी बिरादरी उनकी जहाँ की तहाँ ही रही जाती है जिसके बल पर सरदार जस्सासिंह ने उन्नति की थी और उन्नति का फल आज का कपूर्थला राजवंश है। वास्तवमें उनकी सारी ही बिरादरी क्षत्रिय है आज से नहीं लाखों वर्ष से वह किसी भी कलारिन के साथ शादी करने से कलार नहीं कहलाई किन्तु आपत्ति काल में शराब बेचने का धन्धा करने के कारण कलाल कहलाई और जब उसने तलवार पकड़ ली अमृत चख कर सिंह बन गई तब फिर वही उसका पुराना क्षात्र तेज चमक उठा और क्षत्रिय नाम से अभिहित होने के अधिकार को प्राप्त कर गई।

भाटों की पोथियों और सिजरों पर अविश्वास के कई कारण होते हैं उनमें एक यह भी है कि उन्होंने जो नामों की सूची दी है, वह इस बात को साबित नहीं करती कि जिस समय का वे उस नाम को बता रहे हैं। उस समय ऐसानाम रक्खा भी जाता था क्या ?

उदाहरणार्थ शालिवाहन के लडकों में धर्म,जगपाल, अजल, चन्द्र, बीजलजी, कालनजी चाचूजी आदि नामों को देखिये। जगपाल जैन पद्धित का नाम है और ऐसे नाम दसवीं सदी में बहुत रक्खे जाते थे। चन्द्र संस्कृत नाम है ऐसे नामों का रिवाज प्राचीनकाल में बहुत था। बीजलजी कालनजी ये ठेठ मारवाड़ी नाम हैं। चाचू जी भी मारवाड़ी है किन्तु बिल्कुल गँवार ढंग का। यह सहज ही बता देते हैं कि सब मनगढन्त नाम हैं। कहाँ शालिवाहन जैसा शुद्ध नाम और कहाँ उसके साथ चाचू जैसे गँवार नाम।

पटियाला, नाभा, जीन्द और फरीदकोट के पूर्वजों के सैकड़ों नामों की इसी प्रकार मनगढन्त की गई है। जयपुर, उदयपुर के पुरखाओं के नामों में भी यही तमाशा है। इसीलिये अब ऐतिहासिक विद्वान भाटों की वंशावलियों पर बहुत ही कम विश्वास करते हैं और वे इतिहास को भी विज्ञान की कसौटी पर ही कस कर आगे बढ़ते हैं।

हमने जो स्थापना आहलूवालियों के लिये की है यह वैज्ञानिक है और सचाई के बहुत पास है।

खैर कुछ भी हो सरदार जस्सासिंह के इस वंश ने खूब उन्नति की और अपना एक स्थान बना लिया।

चूंकि इस मिसल के इतिहास मे सरदार जस्सासिंह जी का हम काफी वर्णन कर चुके है। इसलिये उनके इति-वृत को दुहराना अब उचित नहीं समझते। अत उनसे आगे का वर्णन यहाँ पर अंकित करते है।

सर लेपिलग्रिफिन ने पंजाबी रियासतो का इतिहास लिखा था। उनके बाद कुछ और अंग्रेज लेखकों ने भी लिखा। कपूर्थला राज्य के भी उन्होने उस इतिहास का काफी वर्णन किया है जो प्राय' सारा उस इतिहास के आधार पर है जो कपूर्थला के दीवान श्री रामजसजी साहब ने लिखा था। हमारे सामने लेपिलग्रिफिन और रामजसजी दोनों के इतिहास है ही साथ ही सिख इतिहासकारों के लिखे विवरण भी मौजूद है। उन सब तथा अन्य इतिहासो के आधार पर ही हम यह इतिहास लिख रहे है।

सरदार भागसिंह जी का थोड़ा सा वर्णन तो हमने इस मिसल के इतिहास मे कर दिया है किंतु विस्तार से उनका परिचय देना चाहते है।। जस्सासिंह जी के बाद आप उनके उत्तराधिकारी हुए। आपने इस अवसर पर सिख सस्थाओं को बहुत कुछ दान दिया।

सरदार भाग सिंह

भागसिंह जी के आरम्भिक समय मे उनका बहुत सा इलाका उनके हाथ से निकल गया क्योंकि सरदार जस्सासिंह जी की बहादुरी से जो लोग डरते थे। अब वह निडर हो गये। नकई सरदारों ने भी कुछ इलाके पर कब्जा कर लिया। भागसिंह लगभग एक वर्ष तक चुप रहे क्योंकि शोक के दिनों मे वे कोई बखेडा नहीं उठाना चाहते थे।

कहा जाता है भागसिंह जी बड़े दयावान और उदार थे। वे किसी को भी तकलीफ नहीं देना चाहते थे। कीडे-मकोड़ों पर भी दया करते थे। दुश्मनो ने उनके इस स्वभाव से भी लाभ उठाया। अनेकों मातहत मालगुजारो और माडलिकों ने मालगुजारी व खिराज देना बन्द कर दिया। लाचार भागसिंह जी को कमर कसनी पड़ी पहले तो उन्होने नकई सरदारो से अपने दबाये हुये इलाके को वापिस किया फिर गुरुबख्शसिंह को जीता तथा उसका इलाका जब्त कर लिया किन्तु उससे सुलह होगई और उसका इलाका वापिस कर दिया।

इसके बाद मलूवाल और बाजीदपुरा पहुँचे। और यहीं से कसूर पर जयसिंह कन्हैया के साथ चढाई की और कसूर को जीतने में जयसिंह की मदद की। इसी साल मुल्तान पर चढ़ाई की जिसमे मुल्तान के नवाब मुजफ्फरखाँ का चाचा मारा गया। नवाब ने अधीनता स्वीकार करली और प्रतिवर्ष नजराना देने का भी इकरार किया। मुल्तान से वापिस होकर रास्ते के बागियो को ठीक करते हुये लहनासिंह भगई से मिले। फतिहाबाद आकर उन्होने बुद्धामल दीवान की शिकायतों पर ध्यान दिया और उनको निकाल कर नया दीवान रखने का विचार किया।

सम्वत् १८४२ मे सुकरचक सरदार महासिंह और भंगई लोगों मे लडाई हुई। आपने मौके पर पहुँच कर महासिंह की मदद की और भगैयों को हराया। इसी साल राजा ससारचन्द्र को अपने मित्र कन्हैया जैसिंह के उस इलाके से निकाला, जिस पर कि वह पिछली लडाई मे काबिज हो गया था। किन्तु भगी सरदार गुलाबसिंह ने इस मौके पर भागसिंहजी के कुछ इलाके को दबा लिया। इसलिये गुलाबसिंह से भी लड़ना पडा, जिसमें जीत इन्हें ही मिली।

सवत् १८४६ मे कागड़े के राजा ससारचन्द और कन्हैया लोगों मे लड़ाई हुई। इस लड़ाई मे

रामगढ़िया लोग ससारचन्द के साथ मिल गये। भागसिंह जी को यह वात बुरी लगी और उन्होंने कन्हैया मिसल की मदद की। संसारचन्द का भाई मानचन्द लडाई से भाग गया और इस प्रकार मैदान कन्हैया लोगों के हाथ में रहा। यहाँ से मालेरकोटला, नाभा, जीन्द, पटियाला होते हुए आप आनन्दपुर पहुँचे जहाँ वेदियों ने उनसे चमकौर वगैरह के उन इलाकों को वापिस दिला देने की प्रार्थना की जो डल्लेवाली मिसल के वहादुर लोगों ने अपने कब्जे मे कर लिये थे। इन दिनों दीवान बुद्धासिंह भी वहुत खिलाफ हो गया था उसने एक जमात इकट्ठी करली थी। भागसिंहजी ने उसे निकाल दिया और सरदार दीवानसिंह को उसकी जगह पर मुकर्रिर किया।

सम्वत् १८४८ मे भागसिंहजी के सुपुत्र फतहसिंह जी के चेचक निकली और इस जोर से निकली कि उनकी जान मुश्किल से वची। इसलिये इस वार कहीं भी नहीं गये।

सम्वत् १८४६ वि० मे ज्वालादेवी के दर्शनों के लिये पधारे और वहा पर राजा ससारचन्द से भेंट की। राजा संसारचन्द वड़ा चलता पुरजा शख्स था। इसलिये उसने इन्हें अपना पगडीपलट दोस्त वना लिया। कागड़ा मे कुछ दिन रहकर अन्य पहाड़ी रईसों से मुलाकात की। यहीं पर जसवान के राजा ने मुलाकात मे आपको वढ़िया-वढ़िया घोडे भेंट किये थे। सरदार तारासिंह और लालसिंह जिनमें आपस में वैमनस्य था—यहाँ आपसे मिलने आये। आपने सवसे पहले उनका यह काम किया कि उन दोनों मे सुलह करा दी।

संवत् १८५० मे भागसिंहजी ने माझा प्रदेश का दौरा किया जडियाल मे उन्हे दीवान अमरदास विश्वम्भरदास ने घोड़े भेंट किये।

तरनतारन में पहुँच कर गुलावसिंह भंगई से उन आदमियों को अपने कब्जे मे लिया जिन्होंने वघेलसिंह के मुख्तार को मौजा चवाल में मार डाला था। कहा जाता है वघेलसिंह ने आपसे पुकार की थी और इसीलिये आपको तरनतारन पर चढाई करनी पडी थी।

खोलर के किले पर जो कि रामसिंह हिन्डोरिया का था बुधसिंह सिंहपुरिया ने आकर कब्जा कर लिया था। राजा ससारचन्द ने अवसर पाकर बुधसिंह पर इसी वर्ष चढाई करदी। भागसिंहजी ने बुधसिंह की मदद की। एक गहरी लडाई के वाद राजपूत सरदारों ने आपसे सुलह की प्रार्थना की। आप भी सुलह चाहते थे इसलिये इस वायदे पर कि आधा-आधा इलाका दोनों पक्षों को दे दिया जावे और सिंहपुरिया अपना दूसरा किला वना लें। सुलह हो गई। इस लडाई से बुधसिंह को वहुत नुकसान हुआ था। इसके दो लडके धर्मसिंह और अमृतसिंह मारे गये किन्तु ज्यादती भी इन्हीं की थी क्योंकि इन्होंने हिन्डोरिया के इलाके पर कब्जा कर लिया था।

संवत् १८५१ मे जव कि सरदार भागसिंह जी अमृतसर मे ठहरे हुए थे शाहजमान अमीर काबुल ने भारत पर आक्रमण किया। उस समय जो भी सिख अमृतसर मे थे वे छिपने के लिये चले गये किन्तु भागसिंह डटे रहे। परन्तु शाहजमान हसन अब्दाल से ही लौट गया। इस वर्ष अमृतसर के आस-पास के इलाके में वडा अकाल पडा। मवेशी और आदमी सभी पानी के लिये तरसने लगे। आपने सर्वसाधारण के लाभ के लिये देवी द्वारे के पास एक तालाव वनवा दिया। दूसरे वर्ष आप आनन्दपुर गये और वहाँ से लौटकर अपने लड़के फतहसिंह को साधुसिंह अकालबुंगा से पाहुल दिलाई।

आपके हृदय मे अपने धर्म के प्रति वडी श्रद्धा थी। अमृतसर की रक्षा के लिये आप सदैव तैयार रहते थे यही कारण है कि संवत् १८५३ मे भी आप शाहजमान का मुकाविला करने और अमृतसर

की रक्षा करने के लिये मय फौज तैयार रहे। शाहजमान के लाहौर से ही लौट जाने के बाद आपने बडी धूम-धाम से इसी वर्ष अपने लड़के की शादी की।

मियानी जिसे कि सरदार जस्सासिंह ने विजय किया था। अब उस पर पठान काविज हो गये थे सवत् १८५४ मे भागसिंहजी ने उस पर चढाई की किन्तु मौसम अनुकूल न होने से विजय प्राप्त नहीं हुई। इसी बीच रामगढ़ियों से लड़ना पड़ा। वर्षा के बीतने पर मियानी पर चढ़ाई की और पठानों को मार भगाया।

इस साल दीवान लाहौरीमल से भी झगड़ा हो गया। दीवान तबेले से एक घोडा लेगया था। उसे टिक्का फतहसिंह भी चाहते थे। मांगने पर लाहौरीमल ने यह कह कर देने से इनकार कर दिया कि वह मैंने लडके के लिये लिया है।

फतहसिंह जी को लाहौरीमल की यह बात बहुत अखरी और दूसरे दिन जबकि लाहौरीमल दरबार मे आया उसे गिरफ्तार करा के उसकी बड़ी बेइज्जती कराई और उसकी जागीर के गॉव भी छीन लिये तथा उसे मंसूरवाले के किले मे कैद कर दिया। कोई दुश्मन उसे उडा न ले जाय इसलिये फतहसिंह ने अपना कैम्प भी मंसूरवाला ही मे लगा लिया।

टिक्का फतहसिंह वास्तव मे बड़े कडे मिजाज के थे। वे किसी के अभिमान को भी बर्दाश्त नहीं कर सकते थे। बल्कि यह कह सकते हैं कि वे खुद अभिमानी थे। सवत् १८५५ मे जब कि वे अपने इलाके मे दौरा पर गये और फतिहाबाद मे ठहरे हुए थे। मिलने के लिये आने वाले जमीदार और इलाकेदार आपके बराबर और उसी चारपाई पर बैठते रहे जिस पर कि फतहसिंह बैठे थे। इससे वे चिढ़ गये और दूसरे दिन उन्हे खेमे मे बुलाकर गिरफ्तार करा लिया। और उन्हे बाधकर कपूर्थला ले आये।

यह गिरफ्तारी भी बड़ी धोखे से कराई थी बड़ी इज्जत से सबको बुलाया और फिर नाच कराया। जबकि सब लोग देखने मे मस्त थे। आपने बाहर निकाल कर खेमे की रस्सिया काट दीं।

यह गिरफ्तारी केवल इन्होंने अपना रौब डाटने के लिये कराई थीं। और हुआ भी ऐसा ही लाहौरीमल की बेइज्जती और इलाकेदारों की गिरफ्तारी से उनका रौब समस्त रियासत मे बैठ गया।

सम्वत १८५६ वि० मे युवराज फतहसिंहजी समेत महाराज ने सतलज पार रायकोट की तरफ जाकर वहॉ के रईस और जागीरदारों से कर वसूल किया जिन्होंने कि कई वर्ष से कर देने के नाम पर चुप्पी साध ली थी। इसी साल नागोके गॉव को भी वहॉ के रईस गुलाबसिंह से छीनकर खालसे मे मिला लिया। यह नागोके रामगढ़िया के इशारे पर यहॉ के नायकों के शरारत करने पर खेडा के गुलाबसिंह के सुपुर्द कर दिया गया था, किन्तु गुलाबसिंह ने भी काबुल की ओर से शाहजमान अमीर की आमद का हाल सुनकर कर चुकाने मे ढिलाई की थी। इसीसे गुलाबसिंह से यह गॉव छीना गया और इस इलाके को काबू मे रखने के लिये यहॉ एक गढ भी बनवाया।

वह जमाना ही शरारत और अराजकता का था। एक दो गॉव नहीं किन्तु अनेकों गॉव विद्रोही हो जाते थे सतलज के पार के इलाके में ऐसे अनेकों गॉवों को काबू मे करना था इसलिये दूसरे वर्ष संवत १८५७ मे युवराज फतहसिंह को महाराज ने सहोड़, खानपुर, हसनपुर, मझोली, सरसोंहाग, रुड़की और सकरल्ला-पुर आदि के लोगों को दबाने के लिये भेजा। सरदार रणसिंह के साथ फतहसिंह जी ने इन सभी इलाकों के लोगों को काबू में करके मालगुजारी वसूल की। थोड़े दिनों बाद उन्होंने तलवंडी के चौधरी कादिर, बख्श को मुलाजिम रख लिया जो मालगुजारी वसूल करने के मामलों में काफी चतुर था। कादिरबख्श के साथ

व्यास नदी की ओर के अपने इलाकों में जाकर फतहसिंह जी ने फिसादी लोगों को ठीक भी किया। लेकिन अभी तक माझ के इलाके में वही बदअमनी चल रही थी। डकैतियों का भी खूब जोर था। अत महाराज और युवराज फतहसिंह जी लाहौर होते हुए संगतपुर पहुँचे और वहाँ एक किले की नींव डाली। सरहाली के डाकू प्रसिद्ध थे। सारे प्रदेश की लूट का माल सरहाली ही इकट्ठा होता था। फतहसिंहजी ने सरहाली को लूटने की तैयारी की और वे इस काम मे सफल भी हुए। सरहाली की लूट से उन्हें बहुत-सा धन हाथ लगा। साथ ही लुटेरो को भी सबक मिल गया। इसके बाद फतहाबाद होते हुए गोइन्दवाल पहुँचे। जहाँ प्रसिद्ध डाकू सुजानसिंह निहग को मारा जो दैवात गोइन्दवाल के जंगलों में मिल गया था।

अगले साल जबकि महाराज करतारपुर मे थे। कागडा के राजा ससारचन्द ने अपनी ओर से उस इलाके पर हाथ साफ करना शुरु कर दिया जो कि कपूर्थला के मातहत था। अत महाराज ने सरदार हम्मीरसिंह को संसारचन्द का सामना करने के लिये भेजा किन्तु हम्मीरसिंह जख्मी होकर वापिस लौट आया। इसलिये महाराज और युवराज दोनों ने लडाई के लिये तय्यारी की किन्तु फगवाडा के मुकाम पर अचानक महाराज के पैर मे फोडा निकल आया। इसलिये वापिस कपूर्थला लौट आये और वहीं सवत १८५८ के आषाढ मास की २८ वीं तिथि को स्वर्गवास हो गया। कहा जाता है कि उनके मृत्यु-दिवस तक नित उनके पास वाहिगुरु का कीर्तन हुआ करता था और नित ही सैकडों आदमियोंको भोजन कराया जाता था।

महाराज साहब संत प्रकृति और दयालु पुरुष थे। अधिक समय वे वाहिगुरु की याद मे लगाते थे। दान पुण्य भी वे नियमित रूप से करते थे। नित एक जाप करने का उनका सकल्प था। नये आये हुए ब्राह्मण, साधु और सिख मतो का आतिथ्य भी उनकी भोजन शाला मे होता था। प्रजाजनों की दरख्वास्तों पर खुद ही गौर करते और जहाँ तक भी होता इन्साफ भी खुद ही करते थे।

साधु-सतों और पडितो के सत्सग मे नित शामिल होते और लाभ उठाते। गर्ज यह कि वे हर प्रकार से धार्मिक जीवन बितानेवाले राजा थे।

महाराज भागसिंह जी के बाद उनके सुयोग्य पुत्र श्री फतहसिंह अपने पिता की गद्दी पर बैठे। उनकी गद्दी नशीनी की रस्म का उत्सव सवत् १८५८ के सावन महीने मे हुआ। जिसमे महाराज की ओर से सरदारो को खिल्लतें बख्शी गईं और दूसरी रियासतों और जागीरों की ओर से भेंट स्वीकार की गई।

महाराजा फतहसिंह

दूसरे वर्ष बन्डाला के बागी जमींदारों को वश में किया। और उसी वर्ष महाराजा रणजीतसिंहजी के स्वागत मे फतहाबाद मे उत्सव मनाया गया। कहा जाता है कि महाराजा रणजीतसिंह इनसे इतने खुश हुए कि उन्होने इन्हे अपना पगड़ी-पलट दोस्त बना लिया और इसकी रस्म अमृतसर में जाकर पूरी की गई।

सरहाली कस्बा इन दिनों फिर हाथ से निकल चुका था। उन लोगों ने भगी सरदारों से दोस्ती गाठ ली थी। इसलिये फतहसिह जी को अमृतसर से लौटकर सरहाली पर आक्रमण करना पडा। सरहाली का नेता अमरदास मारा गया और कस्बा पुन कब्जे अहलूवालियान मे आ गया। सरहाली का अभी प्रबन्ध किया ही जा रहा था और वहाँ किला बन रहा था कि महाराजा रणजीतसिंह का सदेश जामकीपुर मे पहुँच कर मदद देने के लिये आ गया। रावी को पार करके आप वहाँ पहुँचे और जामकीपुर को जीतने में मदद की। यहाँ पर अन्य भी अनेकों रईस और जागीरदार जिनमे गुजरात और पठानकोट के भी रईस थे आकर हाजिर हुये और फतहसिंह जी ने उन सबको रणजीतसिंह जी की अधीनता स्वीकार

कराकर अभयदान दिला दिया। इसके बाद अमृतसर की होली मनाते हुए कपूर्थला लौटे और यहाँ आकर खड्डरगाँव, लखनपुर और कटोटा पर दखल किया जोकि गुलाबसिंह गन्दे, संसारचन्द कागड़िये और बुधसिंह नकरिये के कब्जे मे पहुँच चुके थे। इसके बाद जमालपुर, चम्पा और सुजानपुर पर भी अधिकार जमाया।

सम्वत् १८६० वि० मे कसूर को विजय कराने मे महाराजा रणजीतसिंह जी की सहायता के लिये फतहसिंह जी कसूर पहुँचे। यहाँ से कोट ईसाखां पर चढाई की जहां पर कि भंगासिंह और सरदार रामसिंह का कब्जा हो चुका था। किन्तु फतहसिंह जी का आना सुनकर उनके अनेक साथी उनका साथ छोड़कर फतहसिंह जी से आ मिले। इस हालत को देखकर भगासिंह ने खुद हाजिर होकर अधीनता स्वीकार कर ली और कुछ रकम भी भेट की।

भगी सरदार सदैव ही महाराजा रणजीतसिंह की मुखालिफित किया करते थे। अत. फतहसिंह ने यह उचित समझा कि अपने पडोस के भंगी इलाके कब्जे मे कर लिये जावे। इसलिये सम्वत् १८६१ वि० मे उन्होने लखनपुर, सगतपुर, फाखड़याना आदि इलाके रामगढियों से अपने कब्जे मे करते हुए उनके कई किलो पर कब्जा कर लिया। जिनमे किला गृजरसिंह और खुसरो भी थे। यह किले उन्होंने रणजीतसिंह जी को दे दिये। इसी वर्ष झग की लडाई मे महाराजा रणजीतसिंह जी का साथ दिया और यहाँ की फतह मे से एक तोप आपने पसद की। इधर संसारचन्द ने जोधसिंह रामगढ़ियों को साथ लेकर फिर ऊधम मचाना शुरु कर दिया था। इसलिये डरोली के मुकाम पर उसके भी होश ठीक किये किन्तु राजा संसार-चन्द सहज ही मानने वाला आदमी थोडे ही था। चन्द दिन मे ही फिर चढ़ आया। महाराज ने चौधरी कादिरबख्श को भेजकर रणजीतसिंह जी को बुलावा लिया। विजवाडे के मुकाम पर लड़ाई हुई। खूब जोरों की हुई, इसमे महाराज फतहसिंह जी एक गोली से बाल-बाल बचे। दो दिन तक लडाई चलती रही। ससारचन्द की फौज रात्रि के समय भाग गई और उसका बचा सामान फतहसिंह जी ने अपने अधिकार मे ले लिया। कहा जाता है इस लडाई मे कई सिख जत्थेदार संसारचन्द के साथ थे किन्तु जहाँ रणजीतसिंह और फतहसिंह दोनों साथ हों। वहा कौनसी शक्ति थी जो हार खाकर न जाती।

फतहसिंह जी शिकारी भी अव्वल दर्जे के थे। इसी साल महाराजा रणजीतसिंह जी के साथ जब विजवाडा की दुबारा मुहीम से आनन्दपुर लौट रहे थे तो रास्ते मे किसी ने खबर दी कि इस जंगल मे दो खौफनाक शेर रहते हैं। आप चन्द सवार लेकर शेरों की खोज मे जंगल मे घुस गये। एक शेर मिल गया जो झपटकर आपके ऊपर आया। बीच ही मे उसके गोली लग गई। जिससे उसने गुस्से के मारे हाथी मे ऐसे जोर का थप्पड़ मारा कि हाथी बैठ गया। आप हाथी पर से कूद पडे और तलवार लेकर शेर पर टूट पडे और जमीन पर मारकर गिरा दिया। फिर घोडे पर चढ़ कर दूसरे शेर की तलाश मे चले हालांकि दिन छिप चुका था और साथ के सरदार भी मना करते थे। पर आप न माने। आगे जाकर देखा कि शेर एक सवार को मार कर गुर्राता हुआ जा रहा है। आपने उस पर गोली छोड़ी। गोली के लगते ही वह चिंघाड़ कर पीछे को लौटा। उसकी चिंघाड़ को सुनकर घोड़ा भाग निकला उसे आपने मुश्किल से रोका और फिर एक निशान लगाया। इस तरह उस शेर को भी मार डाला। आपकी इस प्रकार की बहादुरी से महाराजा रणजीतसिंह जी बड़े प्रसन्न हुए।

दूसरे वर्ष आपने ज्वाला जी के पास के जगलों में शेर का शिकार किया। इस वर्ष भी महाराज रणजीतसिंह जी साथ थे। क्योंकि दोनों ही पटियाला आदि रियासतों को देखने के इरादे से निकले थे और

फिर वहाँ से ज्वाला जी के दर्शनार्थ इधर आ निकले थे। रास्ते में बिलासपुर हुशियारपुर आदि स्थानों को भी देखा-भाला था। यहाँ से लौटकर दोनों राजाओं ने झंग पर चढ़ाई की और फिर चूहड़चक और ज्वाला गढ वगैरह को कब्जे में किया।

इसी साल जसवन्तराव होलकर महाराजा रणजीतसिंह से मिलने और अंग्रेजों के विरुद्ध मदद मांगने आया, जिसमें फतहसिंह जी ने यही सलाह दी कि अभी हम लोगों की तो ताकत ही थोड़ी है और आन्तरिक शांति ही अपने यहाँ है। ऐसी हालत में किसी बखेड़े में पडना कतई ठीक नहीं होगा।

लार्ड लेक होलकर का पीछा करता हुआ व्यास के किनारे पड़ा था। आप उसके पास भी पहुँचे और सब प्रकार की रसद आदि की उसे सुविधायें भी कर दीं। लार्ड लेक फतहसिंह जी पर बहुत खुश हुआ और उसने इच्छा प्रकट की कि वे रणजीतसिंह जी के साथ भी हमारी मुलाकात और दोस्ती करादें।

फतहसिंह ने अमृतसर के मुकाम पर दोनों दलों का परिचय करा दिया और वहीं पर एक संधि भी रणजीतसिंह और कम्पनी सरकार के बीच करा दी। यह घटना संवत् १८६२ वि० तदनुसार सन् १८०५ ई० २४ दिसम्बर की है। अहदनामे का सार इस प्रकार था :—

"होलकर के साथ हमारा दोनों का कोई सम्बन्ध न होगा और उसे अपने राज्यों में भी अंग्रेजों के विरुद्ध शरण न देंगे। कम्पनी की ओर से विश्वास दिलाया गया था कि यह भी उनके इलाकों की ओर न बढ़ेगी और न होलकर को आने देगी। इस सुलह के बाद दोनों ओर से कुछ तोहफे एक दूसरे को दिये गये और अंग्रेज अफसरों ने महाराज फतहसिंह जी का बहुत अहसान माना।

कहा जाता है महाराजा रणजीतसिंह जी भी फतहसिंह जी की चालाकी पूर्ण चतुराई से बहुत खुश हुए। इसके बाद दोनों अपनी २ राजधानियों को वापिस लौट आये। कपूर्थला आकर आपने कुछ व्यवस्था-सम्बन्धी कार्य्यों का निरीक्षण किया।

संवत १८०६ में चाहली का प्रबन्ध किया। वहाँ पर दसौंधासिंह को थानेदार नियुक्त किया। इसके बाद महाराजा रणजीतसिंह जी के साथ कसूर की लूट में शामिल हुए। जोधसिंह रामगढ़िया के इलाके को भी लूटा। वह बेचारा गोविन्दपुर की ओर भाग गया। इस वर्ष के हमले में कसूर के कुतुबुद्दीन ने अधीनता स्वीकार करली और कसूर को महाराजा रणजीतसिंह जी के सुपुर्द कर दिया। उसे गुजारे के लिये ममदूट का इलाका मिल गया। कसूर की विजय के बाद आप रणजीतसिंह जी से अलग होकर अपने इलाके के उन स्थानों का दौरा करने लगे जहाँ से कर वसूल नहीं हो रहा था। इसी सिलसिले में जगराव को मुख्तारराय से छीन कर अपने कब्जे में कर लिया। उसकी रानी को गुजारे के लिये कस्बा कोटराय दिया। इन्हीं दिनों रणजीतसिंह जी के साथ झंग पर लड़ाई में जाना पड़ा। वहाँ से लौट कर तलवड़ी को नोदियों के सुपुर्द किया जो कि २०-२५ वर्ष से झंग के सिखों ने अपने कब्जे में कर लिया था। वहाँ से आगे मासूमपुरा को बेदियों से छीन कर डल्लासिंह को वापिस किया। वहाँ से फिल्लौर लुधियाना होते हुए पायल में पहुँचे जहाँ कर्मसिंह निर्मले और महताबसिंह भगई के झगड़े को तय किया और कर्मसिंह का इलाका सरायदोराहा उसे वापिस दिलाया। अनन्तर मालवा के जमींदारों से कर वसूल करते हुए और उन सभों के मिजाजों को ठीक करते हुए जो सिर फिरे हो गये थे वापिस कपूर्थला आये।

संवत् १८६४ वि० में महाराज रणजीतसिंह जी के साथ आप पटियाला गये। वहाँ से नारायनगढ़ को जोकि इस समय सिरमौर के कब्जे में चला गया था बाद लड़ाई के वापिस लिया। हक और पंजलासा में चौकियाँ कायम कीं। यहाँ से मय रणजीतसिंह जी के कपूर्थला में आये जहाँ महाराज

रणजीतसिंह जी का स्वागत सत्कार किया। तथा राज्य के बड़े-बड़े स्थान दिखाये। इनमें लुधियाना जगराव के नाम उल्लेखनीय हैं। अपने राज्य की सैर कराने के बाद नाभा, पटियाला और नाहन राज्यों मे रणजीतसिंह जी को सैर कराई और फिर नारायनगढ़ पर चढ़ाई की। क्योंकि इस अर्से में वह हाथ से फिर निकल चुका था। अब की बार उसका गढ़ विसमार कर दिया। वहाँ से दौलतमड़हाया पर चढ़ाई की जहाँ धर्मसिंह अमृतसरिया इलाकेदार था किन्तु वह खिदमत मे हाजिर नहीं हुआ। वहाँ से हुशियार-पुर अन्तवोटा होते हुए वापिस राज्य में आगये। रास्ते में ज्वालामुखी के भी दर्शन किये, जहाँ रणजीतसिंह जी ने सोने का कलस चढ़ाया।

संवत् १८६५ वि० मे सर मेटकाफ साहब अमृतसर होते हुए कपूर्थला पधारे। जिनका राज्य की ओर से खूब स्वागत सत्कार हुआ। मेटकाफ साहब ने दूसरे दिन महाराज को अपने डेरे पर बुलाकर सत्कार किया तथा भेट भी दी। यह खुशियाँ उस खुशी के उपलक्ष मे मनाई गई जो फतहसिंह जी ने महाराजा रणजीतसिंह जी से एक अहदनामा करा कर अंग्रेजों के लिये पैदा की थीं। इस सन्धि के होने से पहले चार्लस, मेटकाफ आदि सारे ऊँचे दर्जे के अंग्रेज बड़े चिन्तित थे। उन्होंने कसूर के मुकाम पर फतहसिंह जी को बुला कर इस बात की कोशिश की थी कि किसी भी तरह रणजीतसिंह जी के साथ एक प्रमाणिक सन्धि हो जावे क्योंकि उस समय उन्हे नैपोलियन, रूस और काबुल सभी का खतरा था। फतहसिंह जी ने जब संधि करादी तो अंग्रेज बड़े खुश हुए और उसी की वजह से मेटकाफ कपूर्थला पधारे थे। कपूर्थला से वापिस दिल्ली जाकर भी उन्होंने कृतज्ञता-ज्ञापन के लिये एक पत्र लिखा जिसका सार यही है कि—आपने इस महत्वपूर्ण कार्य में हमारी जो मदद की उसके लिये हम सदैव कृतज्ञ रहेंगे। रणजीतसिंह के अयोग्य दोस्त उन्हे बहकाकर जो गलती कर रहे थे उसे आपने सुधार लिया।"

यद्यपि राजा ससारचन्द कांगड़े वाला सदैव ही कपूर्थला राज्य को नुकसान पहुँचाने की चेष्टा में रहा किन्तु महाराज फतहसिंह जी ने उसकी मदद करने से इन्कार नहीं किया। संवत् १८६६ वि० मे जबकि उसके देश पर गोरखे चढ आये और काँगड़ा शहर पर कब्जा कर लिया। सिर्फ किला ही लेना बाकी था, फतहसिंह जी महाराजा रणजीतसिंह जी के साथ काँगड़ा की रक्षा के लिये पहुँच गये और उसकी सहायता की अपील को स्वीकार किया। ज्वाला जी के मन्दिर मे बैठकर तय हुआ कि ससारचन्द के राज्य से गोरखों को निकाल देने के उपलक्ष्य में काँगड़ा का किला रणजीतसिंह जी को सौंप दिया जायगा। संसारचन्द ने स्वीकार कर लिया। उन दिनों मानगंगा चढ़ी हुई थी। फतहसिंह जी अपनी सेना को हाथियों का पुल बना कर पार उतार ले गये। दूसरे दिन महाराजा रणजीतसिंह जी भी पहुँच गये। तीसरे दिन गोरखों से लड़ाई हुई। इस लड़ाई का नेतृत्व फतहसिंह जी ही ने किया पहाड़ी सेनाये गोरखों के नाम से ही घबराती थीं किन्तु सिखों के सामने वे ठहर न सकीं और कर्मसिंह थापा की सारी बहादुरी मिट्टी में मिल गई। उसको विवश होकर पीछे हटना पड़ा। आध मील के फासले पर मारगढ़ के किले मे जाकर गोरखों ने पनाह ली। मारगढ़ पर हमला किया गया। गोरखे घबरा गये और उन्होंने प्राण-रक्षा का वचन लेकर किला खाली कर दिया। इसके बाद सब ज्वाला जी पर चले गये। यहाँ से पास ही रेहाना का किला था उसे भी फतहसिंहजी ने जाकर जीत लिया। महाराजा रणजीतसिंह जी ने बहुत चाहा कि इस किले पर फतहसिंह जी ही अपना अधिकार रक्खें किन्तु उन्होंने कह दिया यह समस्त विजय आपके नाम पर हो रही है। अत. यह सब आप ही का है।

सवत् १८६८ वि० में बुधसिंह फैजलपुरिया का इलाका महाराजा रणजीतसिंह जी ने अपने राज्य

में मिला लिया। जिसमे से जालन्धर रणजीतसिह जी ने अपने राज्य में रक्खा और तेहाड़ा व म
कपूर्थला को दे दिये। महाराज फतहसिह जी चाहते थे यह कि बुधसिह का सारा ही इलाका र
के पास रहे किन्तु वे अपने मित्र को नाराज किसी भी बात पर न करना चाहते थे। इसी वर्ष ड
एक पुत्र रत्न भी हुआ जिसका नाम तेजसिंह रक्खा गया।

संवत् १८६६ वि० में कोटलहर को पूर्णतया राजा संसार चन्द को आपने छोड़ दिया और
राजा रणजीतसिंह जी के साथ बेर साहब के दर्शन किये। तथा चढ़ावा चढ़ाया। यहाँ से उन्हें अपने
कपूर्थला भी ले आये और आदर सत्कार से उन्हें कई दिन बतौर महमान के रक्खा। इन दिनों के
में आपको राजौरी के इलाकेदार को काबू करने के लिये भी जाना पड़ा क्योंकि उसने बगावत म
शुरू कर दिया था। इतने दिनों रणजीतसिंह भी कपूर्थला मे ही ठहरे।

सम्वत् १८७० वि० में जब कि कुंवर खड़गसिंह और दीवान मुहक्मचन्द अटक की रक्षा पे
गये, आप भी इनके साथ गये। फतहखान नाम के एक मुसलमान सरदार ने अटक पर उसे रणजी
जी के अधिकार से निकाल लेने के इरादे से चढ़ाई की थी। फतहखान को फतहसिंह जी ने भगा दि
वह उनके सामने न ठहर सका वहाँ से लौट कर आपने जंडियाला का नया प्रबन्ध किया। विश्वम्भर
को हटाकर कादिरबख्श के भाई गुलामगोस को इलाकेदार मुकर्रिर किया। विश्वम्भरदास जनी
को सताता था इसीलिये उसे हटाया गया। लेकिन इसी वर्ष फतहखां दुबारा भारी तैयारी के साथ
अटक पर चढ़ आया तो आपको पुन. उससे लड़ने के लिये जाना पड़ा। हसन अब्दाल मे आगे बुरहान
मे खान से भिड़न्त हो गई। उसके कुछ सिपाही गार मे छिपे बैठे थे महाराज फतहसिंह ने उन गारं
मुँह पर तोपें लगा दीं जिनकी धुआंधार मार से घबरा कर पठान भाग निकले। यह लड़ाई पाच
तक रही और इसमें सैंकड़ों आदमी फतहसिंह जी के भी काम आये किन्तु मैदान सिखों के ही हाथ र
इस जीत के उपलक्ष मे आपने सैनिकों को दिल भर कर इनाम बाटा और लूट में जो जिसके हाथ ल
उसके ही पास रहने दिया।

सवत् १८७० और १८७१ के दोनों वर्ष फतहसिंह जी ने अपने राज्य की आन्तरिक दशा
सुधार में लगाये क्योंकि अभी तक लोग मालगुजारी और लगान देने में आंखमिचौनी खेल जाते थे
भम्मर और राजोरी के राजाओं को भी वस मे किया और उन पर खिराज की रकम निश्चित कर दी।

अगले साल संवत् १८७३ वि० में बहावलपुर के इलाके में सब लश्कर के गये। अब तक का
मुआमला रुका हुआ था उसे वसूल किया। इस समय तक जोधसिंह फैजलपुरिया मर चुका था। उस
रहा-सहा इलाका जिसमें ओड मडतान्डह और बिजैपुर वगैरह के इलाके थे अपने राज्य में मिला लिये
घोट के इलाकेदार महासिंह की बहुत शिकायतें थीं। अम्बाला से अक्टरलोनी ने भी उसकी शिकायत भेजी
अत एक लड़ाई के बाद घोट को भी कब्जे में किया गया। इसके सिवा सलोदी वडाला, उम
माजरिया के इलाकेदारों से भी लड़ाई हुई किन्तु सब को वस में कर लिया गया। अन्त में फडाग को भी
कब्जे में कर लिया। इस प्रकार राज्य के एक बड़े भाग की अशांति को काबू में किया गया। इसी व
टिक्का निहालसिंह जी का जन्म हुआ जिसकी खुशी में रणजीतसिंह जी भी कपूर्थला पधारे। सवत्
१८७४ मे फतहसिंह ने मुल्तान की लड़ाई में भाग लिया और तिलया में अपना थाना कायम किया।

सवत् १८७६ में भूचरियों से दाइयान और भवानीपुर जब्त कर लिये। ये गाव उन्हें नौकरी
देने के एवज में दिये हुए थे। उनको अब नकद नौकरी तय कर दी। इस साल एक पुत्र का जन्म हुआ

हुआ। नाम खुशालसिंह रखा गया किन्तु वह ६ माह का ही होकर चल बसा। इस वर्ष के अन्त मे गन्द गढ़ पर चढ़ाई की। गन्दगढ़ काबू मे तो आ गया किन्तु दीवान रामदयाल इस लड़ाई मे मारा गया। मंगेरा के नवाब को भी ठीक किया और उससे खिराज वसूल किया।

संवत् १८७८ मे एक पुत्र रत्न का और लाभ हुआ उसका नाम अमरसिंह रक्खा गया। इस वर्ष आप किसी लडाई मे शामिल नहीं हुए बल्कि महाराजा रणजीतसिंह जी के अटक की ओर अजीम खान से लडने के लिये चले जाने के कारण आपने लाहौर हुकूमत की देखभाल की। अगले वर्ष भी शान्ति से रहे।

सवत् १८८२ वि० मे किन्हीं खास बातों को लेकर आपके बीच और महाराजा रणजीतसिंह जी के बीच मन-मुटाव हो गया। फतहसिंह जी नाराज होकर जगरॉव आगये। लुधियाने और अम्बाला मे जो अंग्रेज अफसर थे। उन्होंने फतहसिंहजी को धैर्य तो बहुत दिलाया किन्तु वे कोई क्रियात्मक सहायता न कर सके। इधर रणजीतसिंहजी ने सारे राज्य को हड़प करने का इरादा कर लिया किन्तु कुछ सोच समझ-कर उन्होंने फतहसिंहजी को राजी करना ही उचित समझा और अमृतसर बुलाकर उनका राज्य उन्हे लौटा दिया और शपथ खाकर आगे उचित सम्मान करने का वायदा किया किन्तु कहा जाता है कि लगभग एक तिहाई इलाका तो फिर भी रणजीतसिंह जी ने कपूर्थले का दबा ही लिया। तवारीख कपूर्थला के लेखक ने बताया है कि ८८ इलाकों में से ३६ इलाके रणजीतसिंह जी ने दबा लिये और ७०० सवारों की नौकरी दिलाना फतहसिंह जी से मजूर करा लिया। इस तरह से कपूर्थला को रणजीतसिंह जी ने अब एक मित्र-राज्य के बजाय मांडलिक-राज्य बना लिया। यह घटनाये सम्वत् १८८४ और १८८५ विक्रम की हैं।

हमें ऐसा जान पड़ता है फतहसिंह जी महाराजा रणजीतसिंह जी के इस न्याय से भी राजी ही हुए थे क्योंकि इसी वर्ष उन्होंने टिक्का निहालसिह जी की शादी की जिसमे कि महाराजा रणजीतसिंह जी की ओर से उनके कुँवर नौनिहालसिह और सरदार राजा ध्यानसिंह जी शामिल हुए थे। और इसी वर्ष दोनों महाराज पहाड़ों मे शिकार खेलने के लिये भी गये थे। दूसरे वर्ष संवत् १८८६ में उन्होंने महाराजा रणजीतसिंह जी को भेट में एक बहुत ही कीमती घोड़ा भेजा था जिसे पाकर महाराजा रणजीतसिंह उतने ही खुश हुए थे जितने कि मुल्तान की विजय से हुए थे। इससे अगले वर्ष महाराजा रणजीतसिंह को कपूर्थला बुलाकर फतहसिंह जी ने उनका शाही स्वागत किया जिसे देखकर लार्ड हार्डिङ्ग भी हैरान हो गया क्योंकि वह भी कपूर्थला आया हुआ था इन सब बातों से यही सिद्ध होता है कि महाराजा रणजीत-सिंह और फतहसिंह मे उस घटना के बाद भी वही प्रेम रहा। असल मे तो फतहसिंह जी ने जीवन भर कभी भी यह खयाल ही नहीं किया था कि रणजीतसिंह उनके बड़े भाई के सिवा कोई गैर हैं क्या?

सवत् १८८८ में टिक्का निहालसिंह को अमृतसर ले गये जहॉ महाराजा रणजीतसिंह से भी उनकी मुलाकात कराई।

सवत् १८६० वि० में पटियाला के साथ कुछ चख-चख हुई इसमे दोष पटियाले के ही अहलकारों का साबित हुआ। अम्बाला में जो स्कूल अंग्रेजों ने स्थापित किया था उसमें भी फतहसिंहजी ने पाच हजार रुपया सहायता स्वरूप दिया। इसी वर्ष कपूर्थला की चहारदीवारी की मरम्मत कराई तथा जहॉ-जहॉ मुनासिब समझा वहॉ किले बनवाये और जहॉ के किलों को अनावश्यक समझा मिसमार करा दिया। इसलिये टिक्का निहालसिंह ही महाराजा रणजीतसिंह जी के साथ लड़ाइयों में जाने लग गये थे। महाराजा

रणजीतसिंह जी ने उन्हे काश्मीर में एक जागीर भी दे दी थी। सम्वत् १८७३ की पेशावर की लडाई में भी निहालसिंह जी शामिल हुए। इस समय फतहसिंह जी ने रियासत के आन्तरिक प्रवन्ध मे वहुत सुधार किया। रियासत की हदवन्दी भी करालो। हदवन्दी के सिलसिले मे रियासत नाभा से खटकने के आसार पैदा हुए थे किन्तु परमात्मा की कृपा से सव काम हदवन्दी का विना किसी झगड़े के समाप्त हो गया।

हम यह कह सकते हैं कि महाराज फतहसिंह जी निहायत वुद्धिमान और वहादुर आदमी थे। उनके पिता के समय उनके राज्य की दशा निहायत डॉवाडोल हागई थो। सभी इलाके सिरफिरे हो गये थे। फतहसिंहजी ने उन सभी को धीरे २ अपने कावू मे किया और राज्य की हालत को सुधारा उनके समय राज्य वढ़ा ही, घटा नहीं। महाराजा रणजीतसिंह जी के साथ दोस्ती करने मे भी उन्हें लाभ ही रहा। वरना उनकी रियासत मे जो विद्रोही खड़े हो रहे थे उन्हे रणजीतसिंह जी से मदद लेने का मौका मिल जाता। सम्भव था कि दो शेरों की लडाई में राज्य की दशा और भी खराव हो जाती। उनकी वुद्धिमानी और साहस की और भी अनेकों कहानियॉ हैं। उन्होंने अपने समय में कोई गलती की थी तो यह कि मल्हार-राव होलकर की रणजीतसिंह जी को मदद नहीं करने दी वरना सम्भव था कि हिन्दुस्तान का नक़शा आज दूसरा ही होता।

इस तरह के योग्य और शूरमा राजा फतहसिंह जी का संवत् १८६३ वि० के क्वार महीने मे शुक्ल पक्ष की एकादशी को स्वर्गवास हो गया।

उनके समय मे कपूर्थला शहर में काफी तरक्की हुई। कई अच्छे २ राजभवन वने। वाग-वगीचे भी लगवाये गये। पुराने स्थानों की मरम्मत हुई।

अपने राज्य के कई कस्वों को उन्नतिशील वनाया। कपूर्थला में आपके समय से अमन अमान और आपकी सर्व-मिलनसारी से तिजारत का काम भी खूव चेता था।

आपके वाद मे आपके सुपुत्र कुँवर निहालसिंह जी गद्दी नशीन हुए। महाराजा रणजीतसिंह जी ने चार लाख रु० भेंट लेकर उन्हें कपूर्थला का राजा स्वीकार कर लिया किन्तु नौकरी सात सौ सवार की वजाय वारह सौ सवार की मजूर कराली। एक राजा की अनेक सन्तानों में जो झगड़ा-फसाद होता है वह आपके साथ भी हुआ। सवत् १८६४ में जवकि आप वरसात करतारपुर और अमृतसर में विता कर कपूर्थला आये। आपके भाई अमरसिंह के साथियों ने आपको हवेली में घेर लिया और कातिलाना हमला कर दिया।

महाराजा निहालसिंह

आपकी रक्षा करते हुए आपके दो साथी जान से मारे गये। आपसे लिखा लिया गया कि इलाका ठट्ठा, विट्ठा और सुल्तानपुर कुवर अमरसिंह जो को जागीर में दिया गया और अमरसिंह जी सुल्तानपुर में रहे। निहालसिंह जी ने इस घटना की महाराजा रणजीतसिंह जी के पास शिकायत की किन्तु उन्होंने यह कह कर संतोष कर लिया। एक ही वाप की सतान हैं। मैं किसका पक्ष लू। आपस में ही सुलझ लें और अव जो हो गया है सो ठीक ही है।

महाराज निहालसिंह जी ने अवसर मिलते ही उन सव लोगों को दंड दिया जिन्होंने उनके साथ गुस्ताखी की थी। अमरसिंह ने महाराज रणजीतसिह के पूछने पर वताया था कि निहालसिंह जी का वर्ताव मेरे साथ भाई-जैसा नहीं है। मेरे गुजारे का उन्होंने कोई प्रवन्ध नहीं किया है। महाराजा रणजीतसिंह जी ने दोनों भाईयों में मुहव्वत करा दी और अमरसिंह के गुजारे का भी प्रवन्ध करा दिया।

जिस प्रकार फतहसिंह जी महाराज रणजीतसिंह के साथ हर समय और हर लडाई मे रहते थे।

इसी प्रकार निहालसिंह जी भी रहने लगे। सम्वत् १८६५ मे जब लार्ड आकलेड से महाराजा रणजीतसिंह जी ने फीरोजपुर जिले में बाडे के मुकाम पर मुलाकात की तो आप भी उसमें शामिल हुए। इसके अलावा आपने मक्खो गॉव मे भी लाट से भेंट की।

संवत् १८६६ मे इन भेंटों का महाराज निहालसिंह को फल भी मिल गया। इस वर्ष महाराजा रणजीतसिंह जी का स्वर्गवास हो गया। महाराज खड्गसिंह गद्दी पर बैठे। उनके सूबेदार मिश्र रूपलाल ने जोकि द्वाबा जालंधर में मुकर्रर था। कपूर्थला के कुछ हिस्सों को दबाना शुरू किया। दोनों ओर से लड़ाई भी हुई जिसमे रूपलाल हार गया। इस अमर की शिकायत महाराज निहालसिंह जी ने अम्बाला के अंग्रेज अधिकारी क्लारक साहब से की। उन्होंने विश्वास दिलाया कि उनके राज्य पर अगर रणजीत-सिंह के उत्तराधिकारियों ने हाथ डाला तो हम पूरी मदद तुम्हारी करेंगे।

रणजीतसिंह जी के बाद निहालसिंह जी के लाहौर दरबार के प्रति पहले जैसे भाव नहीं रहे और रहते भी किसके साथ। वहॉ तो घर-घर के ही चिराग से जल रहा था। सवत् १८६७ मे महाराज खड्गसिंह और कुॅवर नौनिहालसिंह दोनों ही मर गये। निहालसिह जी ने यह सूचना क्लारक साहब को दी। वहॉ से परामर्श आया कि ध्यानसिंह शेरसिंह को राजा बनाना चाहता है आप उसे मदद दें। इस परामर्श का पालन करने के लिये महाराज निहालसिंह जी लाहौर को रवाना हुये किन्तु वहॉ गद्दी पर रानी चन्द-कौर ने कब्जा कर लिया था इसलिये आप वापिस कपूर्थला आ गये। उधर थोड़े ही दिन बाद रानी चन्द-कौर गिरफ्तार कर ली गई और शेरसिंह राजा बन गये।

इसी साल कुॅवर अमरसिंह का भी इतकाल हो गया वह राजा शेरसिंह जी के साथ रावी नदी मे नाव पर बैठा हुआ सैर कर रहा था कि नाव डूब गई। शेरसिंह जी वगैरह तो बच गये किन्तु अमरसिंह न बच सके इस तरह निहालसिंह जी के रास्ते का एक काटा आप ही नष्ट हो गया। इन दिनों क्लारक साहब भी कपूर्थला तशरीफ लाये और सिखों के सारे हाल-चाल महाराज निहालसिह जी से दरियाफ्त किये।

संवत् १८६८ मे महाराज निहालसिंह जी ने अमरसिंह जी को दिये हुए इलाके पर भी कब्जा कर लिया और उनके स्त्री बच्चों को कपूर्थला लाकर उनके गुजारे के लिये माकूल इतजाम कर दिया। अमरसिंह के लड़के का नाम केसरसिंह था। उसके ऊपर महाराज की निगाह-महरबानी बराबर बनी रहती थी।

अंग्रेजों ने अपनी दोस्ती का लाभ उठाना महाराजा निहालसिंह जी से उसी प्रकार शुरू कर दिया जिस प्रकार कि रणजीतसिंह किया करते थे। काबुल में जनरल पोलक अफगानों से भिड़ रहे थे उनकी मदद के लिये कपूर्थला की एक फौज माग ली। जिसे महाराज ने खुशी के साथ हैदरअलीखा की मातहती मे काबुल भेज दिया।

अपनी कठिनाइयों के कारण महाराज निहालसिंह दिन-ब-दिन अंग्रेजों के सहायक और आश्रित होते जा रहे थे। अंग्रेज लाहौर दरबार की भीतरी और सही जानकारी भी उन्हीं से प्राप्त करने लग गये थे। लाहौर मे तो एक प्रकार की अराजकता फैली हुई थी। महाराजा शेरसिंह भी मार डाले गये और उनकी जगह कुॅवर दलीपसिंह गद्दी के मालिक बने उधर खालसा सेनायें भड़क उठीं। अंग्रेजों ने यह मौका अपने अनुकूल देखा और पंजाब के सिख-साम्राज्य को खतम कर देने की तैयारी कर दी। उन्होंने महाराज निहालसिंह जी कपूर्थला नरेश को भी लिखा कि आप पांच दिन के अन्दर ही अन्दर अपनी फौजें लेकर आजाइये।

निहालसिंह जी की फौज मे भी तो सिख ही थे उन्हे यह बात बहुत बुरी लगी और सारी सेना बिगड गई उसने पहले तो वजीर साहब मौलवी गुलाममुहम्मदजान का सफाया किया और फिर महाराज को घेर लिया। और रनजोधसिंह को अपना नायक मुकर्रिर करके फौजे लाहौर दरबार की सहायता को चल पड़ीं। महाराज ने अपना पीछा छुडाकर अपने विश्वस्त आदमियों द्वारा अंग्रेज अफसरों को इस अमर की सूचना दी और अपनी वफादारी जगरॉव का किला अंग्रेजी फौजों को रहने को देकर तथा रसद आदि की मदद देकर प्रकट की। इतने पर भी राज्य कपूर्थला को बहुत नुकसान उठाना पडा। खैरियत यही हुई कि कपूर्थला राज्य अंग्रेजों ने जब्त नहीं किया किन्तु उसके कुछ इलाके तथा समुचित खिराज बाँध कर ही उसे बख्श दिया।

लडाई के बाद अंग्रेज हाकिमों ने महाराजा निहालसिंह पर बड़े सख्त इल्जाम लगाये। जिनमें कहा गया कि न तो तुमने हमें लाहौर की पूरी-पूरी और सही खबरें दीं। और न हमारे लश्कर के लिये रसद दी। केवल ५४८ मन गल्ला दिया। हॉ, लडाई के खतम होने पर सब कुछ किया। लड़ाई में तुम्हारी फौजे हमारी फौजों से डटकर लड़ीं और उन्होंने हमारा कुछ सामान भी लूट लिया। तुम और तुम्हारे लडके अपनी फौजों के साथ रहे अगर फौजे बिगड गई थीं तो तुम अकेले ही हमारे साथ आ सकते थे। तुम्हारे राज्य की रक्षा तो हमारी ही बदौलत हुई थी। हमने तुम्हारे राज्य की गारटी भी दी थी।" इन अपराधों मे तुम्हारा गुजरात का इलाका जब्त किया जाता है। और अमुक-अमुक इलाका भी लिया जाता है। महाराज निहालसिंहजी ने काफी सफाई दी किन्तु अंग्रेज तो जब जिस बात पर तुल जाते हैं उसे करके ही छोड़ते हैं। हालाकि वे सिखों के स्वभाव से परिचित थे। वे जिस बात को अनुचित समझते हैं किसी के समझाने पर काबू नहीं हो सकते। लाहौर की खालसा सेना का उदाहरण उनके सामने था। महाराज निहालसिंह यदि अपनी फौज के सामने जरा भी अकड़ते तो न मालूम वह क्या कर बैठती। अंग्रेजों ने कपूर्थला से लगभग १३ इलाके जिनमें करीब ५२० गॉव थे हड़प लिये। बाकी जितने बचे उनमें महाराज निहालसिंह जी ने बड़ी योग्यता से प्रबन्ध किया। संवत् १९०५ मे उन्होंने फौजदारी और दीवानी की अदालतें भी अंग्रेजी ढंग की कायम करलीं। इसी वर्ष कुॅवर रनधीरसिंह और विक्रमसिंह की शादी कालागॉव मे हुई। अंग्रेजी सरकार ने एक परगना नूरमहल का और ले लिया जिसके बदले में सात हजार रुपया सालाना का खिराज कम कर दिया अर्थात् एक लाख अडतीस हजार की बजाय एक लाख एकतीस हजार सालाना का खिराज रह गया।

इसी अर्से मे मूलराज और सरदार चरनसिंह ने पजाब मे अंग्रेज सरकार के विरुद्ध बगावत का झडा खडा कर दिया। महाराज ने इस समय स्त्री-बच्चों को तो गगा के किनारे भेज दिया और आप तैयार मौके के लिये हो गये। इस बार वे किसी भी हालत में अंग्रेजों का साथ नहीं छोड़ते। उन्होंने अपना इरादा चिट्ठी-पत्री से जान लारेंस पर प्रकट भी कर दिया और लड़ाई के समय रसद की पूरी मदद दी जिससे मुल्तान-विजय के बाद अंग्रेज सरकार ने उन्हें राजा की सनद दे दी। अभी तक अंग्रेज उन्हें एक सरदार समझते थे और चिट्ठी-पत्री मे भी उन्हे सरदार ही लिखते थे।

राजा की सनद के साथ ही वह इलाका जो जालधर की छावनी के नीचे आ गया था महाराज निहालसिंह को वापिस कर दिया। इस इलाके का नाम ऊंचा था और इसमें दोकोहा और सूरजपुर आगई नगर शामिल थे।

इस समय महाराज निहालसिंहजी को यकीन हो गया कि अब उनकी रियासत सुरक्षित है और

कम्पनी के भारतीय अंग्रेज अफसर उससे प्रसन्न हैं।

दूसरे वर्ष लार्ड डलहौजी कपूर्थला मे पधारे जिनका महाराज निहालसिह जी ने धूमधाम से स्वागत सत्कार किया। इसी वर्ष टिक्का साहव रनधीरसिंह के पुत्र का जन्म हुआ जिसका नाम खड्गसिंह रक्खा गया। दूसरे वर्ष दूसरे पुत्र विक्रमासिंह जी के भी पुत्र हुआ। इसी वर्ष महाराज साहव के घर पुत्री का जन्म हुआ।

महाराज ने अजायबुलनिहाल और गुराइबुलनिहाल नाम की किताबे लन्दन के अजायबघर के वास्ते अपने दीवान द्वारा लिखाकर कर्नल लारेंस को भेट कीं।

सवत् १६०८ वि० मे महाराज ने निश्चिन्त होकर ज्वाला जी के दर्शन किये और जहाँ दान-पुण्य किया। वहाँ से कुछ पहाडी राजाओं के यहाँ जाकर आतिथ्य स्वीकार किया। राजा नादून ने आपका जोरदार स्वागत किया। इस वर्ष टिक्का रनधीरसिह जी के एक पुत्र और हुआ। उसका नाम हरनाम-सिह रक्खा गया और महाराज के द्वितीय पुत्र विक्रमासिंह का देहान्त हो गया।

अपने समय मे महाराज निहालसिंह जी ने भी कपूर्थला शहर को रौनक दी। कचहरियो की नई इमारते बनीं। नये वाजार भी बने।

संवत् १६०६ वि० के भाद्रपद मास की अमावस को आपका स्वर्गवास होगया। आपका जीवन प्राय कठिनाइयों का सामना करने मे ही गुजरा। अपने पिता के स्वर्गवास के वाद महाराजा रणजीतसिंह जी को खुश रखना और उनके इरादों को पूरा करने की दिक्कतें आपको वर्दाश्त करनी ही पड़ीं। वाद मे अंग्रेज अफसरों को अपनी नेकनीयती और वफादारी का परिचय देने के लिये वहुत सारा समय खर्च करना पड़ा। वात दरअसल यह थी कि आपका राज्य दो खतरों के वीच में था। एक तरफ सिखों का साम्राज्य लगा हुआ था और दूसरी तरफ अंग्रेजों की हकूमत थी। इसलिये आपको प्रत्येक कदम वड़ी होशियारी से रखना पड़ता था।

महाराज निहालसिंह जी के दो रानियाँ थीं उनसे तीन लड़के जन्मे थे। रनधीरसिंह, विक्रमसिंह और सुचेतसिह। उन्होंने मरते समय एक वसीयत लिखी थी। जिसे वोर्ड आफ मिनस्ट्रेशन के पास भेज दिया था। उसका सार यह था कि "मेरे वाद मेरे तीनों लड़कों मे झगड़ा न हो इसलिये विक्रमसिंह और सुचेतसिंह को एक-एक लाख रुपये की जागीर विना किसी रकम के मुकर्रिर किये दे दी जावे और रनधीर-सिंह शेष रियासत का मालिक रहे। दोनों जागीरों के फौजदारी दीवानी के अधिकार भी रनधीरसिंह के हाथ ही रहें।"

जिस समय निहालसिंह जी की मृत्यु हुई थी। रियासत की कुल आमदनी पाँच लाख सत्तर हजार सात सौ तिरेसठ रुपया सालना की थी। दो लाख की जागीर निकाल देने के वाद जो रियासत रह जाती थी उसमें से भी अंग्रेज सरकार का खिराज, फौज पुलिस और अदालतों का खर्चा निकाल देने के वाद राजा के खर्च के लिये केवल वीस वाईस हजार साल की वचत रहती किन्तु रनधीरसिंह जी वड़े चतुर थे। उन्होंने अपने दोनों भाईयों से निहालसिंह जी की मृत्यु के वाद दरख्वास्त दिलादी कि हम रियासत का वेटवारा नहीं चाहते हैं और अपने वड़े भाई के साथ हिलमिल कर ही रहना ठीक समझते हैं। अत. गवर्नमेंट ने उस समय कोई दखल नहीं दिया।

सम्वत् १८१० वि० मे जालंधर के कमिश्नर ने आकर टिक्का रनधीरसिंह जी को गद्दीनशीन वनाया और उन्हे खिलअत दी। महाराज रनधीरसिंह जी ने बुद्धिमानी पूर्वक अपने भाईयों को अपनी

राजा रनधीरसिंह

और मिलाकर राज्य को एक खतरे से बचा लिया था। वरना बहुत सभव था। राज्य के तीनों भाग जागीरदार करार दे दिये जाते और राजगी के अधिकार छीन लिये जाते। क्योंकि वोर्ड के कुछ मेम्बरों की यही राय थी। फगवाड़े के इलाके ले लेने की सलाह थी। किन्तु हिलमिल कर रहने की व्यवस्था अधिक दिन तक नहीं चली। कुँवर सुचेतसिंह ने थोड़े ही दिनों वाद सुप्रीम गवर्नमेंट के पास अपने हिस्से के बँटवारे के लिये दरख्वास्त भेजी। जालधर के कमिश्नर को सरकार ने इस कार्य के निवाहने का काम सौंपा। सवत् १६११ में कमिश्नर साहब ने जॉच-पड़ताल के बाद वसीअत की मंशा को लगभग पूरा करने के इरादे से भोंगा का इलाका सुचेतसिंह को दिला दिया। किन्तु थोड़े ही दिनों बाद कुँवर सुचेतसिंह ने सरकार के पास दरख्वास्त भेजी कि मैं एक लाख के वजाय पचास हजार का ही इलाका चाहता हूँ। जिससे मेरे भाई के साथ स्नेह का सम्बन्ध बना रहे। कर्नल लेक उस समय जालधर के कमिश्नर थे उन्होंने भी इस दरख्वास्त पर सिफारिश लिख दी। इस वीच गदर हो गया था और उसमे राजा रनधीरसिंह जी ने सरकार को काफी मदद दी थी। इसलिये सरकार ने भी सुचेतसिंह जी की बात को मान लिया और सम्वत् १६१७ में मंजूरी दे दी।

ख्याल था कि अव कोई झगड़ा भाइयों मे नहीं होगा। किन्तु सम्वत् १६२३ में विक्रमासिंह खड़े होगये और उन्होंने भी गवर्नमेंट को लिखा कि नौवत यहाँ तक आ गई है कि हम भाई २ शामिल नहीं रह सकते। वसीयत के अनुसार हमारा हक दिला दिया जाय। इस समय तक गवर्नमेंट की इनके वाहमी झगड़ों से वह दिलचस्पी नहीं रही थी जो आरम्भ मे थी। इसलिये विक्रमासिंह को सरकार की ओर से कोरा जवाब मिला कि हम तुम्हारे आपस के झगड़े में ज्यादा समय खर्च करना ठीक नहीं समझते जब हमने पहले वार-वार तुम्हे लिखा था तव बँटवारा क्यों नहीं कराया। विक्रमासिंह इस जवाब मे चुप नहीं हुआ उसने सुचेतसिंह को अपनी ओर मिलाया और फिर दरख्वास्त दी। इस पर पंजाब सरकार ने इनका मामला भारत सरकार के पास भेज दिया। जहाँ से विक्रमासिंह के पक्ष मे फैसला हुआ। महाराज रणधीरसिंह जी ने फैसले के विरुद्ध लिखा पढ़ी की किन्तु बँटवारा कर ही दिया गया और लिखा गया कि अगर हिस्सेदारों मे से कोई लावल्द मरेगा तो उसका हिस्सा महाराज रनधीरसिंह को ही मिल जायगा।

महाराज रनधीरसिंह जी ने इस फैसले की अपील विलायत में की। वहाँ से फैसला महाराज साहब के पक्ष में हुआ। जिसमे कहा गया कि गदर की सेवाओं के उपलक्ष में जो विश्वास महाराज रनधीरसिंह जी को उनकी रियासत की स्थिरता और सरक्षा का दिलाया गया है। उसके अनुसार रियासत के टुकड़े नहीं हो सकते।

इस मुकद्दमे को जीतने के उपलक्ष मे महाराज ने अपने वकील मथुरादास को उनके साथ जाने वाले आदमियों को बहुत-कुछ इनाम इकराम दिये।

अंत मे भारत सरकार के परामर्श के अनुसार और प्रिवी कौंसिल के फैसले की नीयत को पूरा करने के लिये दोनों भाइयों से इलाके वापिस ले लिये और उनको साठ-साठ हजार रुपया सालाना का वजीफा कर दिया गया। जो छ -छः महीने के बाद किस्तों मे उन्हे मिलता रहा। कहा जाता है कि यह मुकद्दमा लगभग १६ वर्ष चला था और इसने महाराजा साहब को बहुत परेशान रक्खा था। महाराज ने मथुरादास को भी दो हजार रुपये सालाना की जागीर सुल्तानपुर जिले में रामपुरा और शाहजहानपुर गाँवों में दी। इस प्रकार का इनाम देने के लिये उन्होंने एक दरबार किया था। जिसमें आस-पास के जिलों के प्रतिष्ठित जन और यूरोपियन अफसर भी पधारे थे।

गवर्नमेंट ने भी राजा साहब की गदर सम्बन्धी सहायता का धन्यवाद करते हुए उन्हें पन्द्रह हजार की खिलअत दी और खिराज में से पच्चीस हजार सालाना कम कर दिया। साथ ही एक साल का खिराज कतई माफ कर दिया। ग्यारह तोपों की सलामी भी बख्शी। 'फरजन्दे दिल बन्दरा सख उल-एतकाद" का खिताब भी महाराज को अंग्रेज सरकार ने दिया। उनके भाई विक्रमासिंह जी को दस हजार का खिलअत और बहादुर का खिताब मिला।

इसके बाद संवत् १६१५ में अंग्रेज सरकार ने अवध को कब्जे मे करने के लिये लड़ाई छेड दी। महाराज रनधीरसिंह मय अपनी फौज और भाई विक्रमासिंह के अंग्रेजों की मदद के लिये अवध पहुँचे। वहाँ जी जान लड़ा कर आपने बड़ा परिश्रम किया। हर मोरचे पर बहादुरी दिखाई। लड़ाई मे दुश्मन की ६ तोपे भी छीन लीं। अंग्रेजों की जीत हुई और सारा अवध उनके अधिकार में आगया। इस लड़ाई मे सहयोग देने के बदले मे अंग्रेज सरकार ने अवध मे महाराज रनधीरसिंह को बोंडी और भटोली के ताल्लुके जागीर मे उन सारे अख्तियारों के साथ दिये जो वहाँ के तालुक्केदारों को थे। इन इलाकों की सालाना आमदनी चार लाख बत्तीस हजार रुपया थी। इसके सिवा दो लाख रुपया फौज खर्च के और ५०००) की खिलअत और महाराज को मिली।

सरदार विक्रमासिंह जी को भी सरकार ने इकतर, मलका, इकोना के परगने जिनकी कि आमदनी सालाना २५०००) रुपया थी जागीर मे दिये। यह इलाका जिला बहराइच मे है। इसके सिवा महाराज साहब के कुछ अन्य फौजी सरदारों को भी इस जिले की जागीरों की खिलअत अंग्रेज सरकार ने दीं।

सम्वत् १६१६ वि० में महाराज रनधीरसिंह ने सरदार विक्रमासिंह जी से अकोना का इलाका और खरीद लिया और सरदार साहब ने साढ़े पॉच लाख का इलाका जिला लखीमपुर मे खरीद लिया। कहा जाता है उस इलाके से उन्हे साढ़े तीन लाख के करीब आमदनी होती थी जिसमे से एक लाख ३२ हजार वे सरकार को देते थे।

अम्बाला जिला के नारायनगढ़ में कपूर्थला राज्य का जो बाग था उसे अंग्रेज सरकार ने जब्त कर लिया था वह भी गदर के बाद महाराज रनधीरसिंह को मिल गया।

संवत् १६२० विक्रमी मे अंग्रेज सरकार ने अन्य राज्यों की भांति ही कपूर्थला नरेशों को भी पुत्रहीन न होने की हालत मे बिरादरी के रिवाज के अनुसार गोद लेने के अधिकार की सनद दे दी। इस प्रकार की सनदें महारानी विक्टोरिया के उस हुक्मनामे की सार्थकता को कायम रखने के लिये बॉटी गई थीं जो उन्होंने भविष्य मे भारत के वर्तमान सभी रजवाड़ों को सुरक्षित बनाये रखने के विश्वास दिलाने के लिये की थी।

महाराज रनधीरसिंह जी ने अवसर पाकर इलाका आहलू को भी जो कि सिखों की पहली लडाई के बाद सरकार ने जब्त कर लिया था पुन वापिस दिये जाने की दरख्वास्त सरकार से की। सरकार ने यह दरख्वास्त भी मंजूर कर ली और वह इलाका बतौर जागीर के महाराज को वापिस कर दिया। दीवानी फौजदारी के कुल अख्तियारात उस इलाके पर अंग्रेज सरकार के ही रहे। इस इलाके के १८ गॉव जिला लाहौर मे, २१ गॉव जिला अमृतसर मे और एक बाग मुल्तान मे था। संवत् १८०६ वि० मे इस इलाके की आमदनी लारेंस साहब ने ६६३००) सालाना की अन्दाजी थी।

सम्वत् १६२१ वि० मे वायसराय ने महाराजा रनधीरसिंह जी को लाहौर के दरबार मे सितारे

हिन्द का खिताब दिया और उनकी उन समस्त सेवाओं की चर्चा की जो उन्होंने अंग्रेज सरकार की गदर और अवध की लड़ाइयों में की थी। महाराज ने भी वायसराय महोदय की रहनुमाई और महरबानी के लिये धन्यवाद दिया। इस दरबार में पंजाब के सभी राजा रईस शामिल हुए थे।

संवत १६२७ वि० में महाराज रनवीरसिंह जी का स्वर्गवास अदन बन्दरगाह पर हो गया। आप विलायत सैर करने जा रहे थे कि बम्बई में आपकी तबीयत खराब हुई। कुछ मित्रों ने मना की भी किन्तु आप चल ही पड़े अदन में तो यह हालत हो गई कि डाक्टरों ने साफ कह दिया इन्हें वापिस ले जाओ। जहाज के बदलते समय ही आप स्वर्ग सिधार गये। आपका शव बम्बई लाया गया जहाँ कि उनके युवराज खड्गसिंह और रियासत के अनेक गण्यमान्य सरदार पहुँच गये थे। नासिक में ले जाकर दाह-संस्कार किया गया।

युवराज खड्गसिंह जी वायसराय की आज्ञा प्राप्त करके अपने बाप की गद्दी के हकदार हुए। वायसराय ने खड्गसिंह जी को उनके पिता की मृत्यु पर समवेदना सूचक एक पत्र भी लिखा था जिसमें महाराज रनवीरसिंह के स्वर्गवास पर खेद और उनकी अंग्रेज सरकार के प्रति की जाने वाली वफादारी का जिक्र था।

विलायत से महारानी विक्टोरिया और वजीर आलम ने भी महाराजा रनवीरसिंह जी की मृत्यु पर शोक समवेदनायें महाराज खड्गसिंह जी के पास भेजी थीं। कहा जाता है इससे पहले अन्य किसी भी राजा की मृत्यु पर महारानी विक्टोरिया अथवा प्रधान मंत्री ने शोक-सूचक पत्र उनके उत्तराधिकारी के पास नहीं भेजे थे।

महाराज खड्गसिंह जी की गद्दीनशीनी का उत्सव खूब समारोह के साथ हुआ। उसमें उच्च अंग्रेज अधिकारियों के सिवा पंजाब के प्रायः सभी राजा रईस शामिल हुये। अंग्रेज प्रतिनिधि मि० वान्स ने महाराज को खिलअत दी और ली। राजा लोगों की ओर से रस्म अदा हुई। एक लाख तीन हजार रुपया महाराज को अन्य रईसों की ओर से स्वर्गीय महाराज की यादगार बनाने के लिये भेंट किया गया। महाराज खड्गसिंह ने एक लाख रुपया अपनी ओर से इसमें मिला दिया और रनवीर कालेज तथा रनवीर शफाखाना की नींव डाली। पच्चीस हजार रुपये में तो दोनों की इमारतें बनवा दीं बाकी दो लाख के प्रोमेसरी नोट खरीद लिये जिनके व्याज से १००००) सालाना की जो आमदनी होती है वह इन दोनों संस्थाओं के चलाने के ही काम में खर्च होती है। २५०००) रुपया महाराज ने पंजाब के लेफ्टिनेन्ट गवर्नर डोनलफ मेकलैण्ड की यादगार ताजा बनाये रखने के लिये देना चाहा किन्तु गवर्नर महोदय ने इस बात को स्वीकार न करके यह तजवीज पेश की कि इस धन के व्याज से उन लेखकों का उत्साह बढ़ाया जाय जो पदार्थ विद्या पर अच्छी पुस्तकें लिखें।

दस वर्ष तक महाराज खड्गसिंह जी ने बड़े अच्छे ढंग से राज्य किया। प्रजा के सुख और शान्ति के उपायों को सोचा। आगे और कुछ अच्छा ही करते किन्तु सम्वत् १६३७ वि० में उनका दिमाग खराब हो गया। साथियों ने अच्छे-अच्छे वैद्य डाक्टरों से इलाज कराया किन्तु कोई इलाज लाभ न पहुँचा सका।

राज्य प्रबन्ध खराब न हो जाय इस विचार से अंग्रेज सरकार ने राज्य प्रबन्ध एक कौंसिल के सुपुर्द कर दिया। जिसके मेम्बर दीवान रामजस जी, दीवान वैजनाथ जी और गुलाम जीलानी बनाये गये। तीन साल तक कौंसिल ने सारा राज्य प्रबन्ध किया। संवत् १६३४ वि० में अंग्रेज सरकार ने राज्य का नया प्रबन्ध किया और सर लेपिलग्रिफिन को राज्य का सुपरिन्टेन्डेन्ट मुकर्रिर किया।

इसी वर्ष ३ साल के लगातार कष्ट के बाद महाराज खड्गसिंह जी का भागसू के मुकाम पर स्वर्ग-वास हो गया और उनके पुत्र युवराज जगजीतसिंह जी को जिनकी उम्र इस समय केवल पॉच वर्ष की थी गद्दी पर बिठाया गया।

जगजीतसिंह की गद्दीनशीनी की यह रस्म सवत् १९३४ वि० के मघर महीने मे हुई थी जिसमे पंजाब के तत्कालीन लेफ्टीनेन्ट गवर्नर अजर्टन खुद पधारे थे। पंजाब के अन्य अनेकों राजा रईस भी शामिल हुये थे पहले गवर्नर की ओर से खिलअत पेश हुई और फिर अन्य रईसों की ओर से। कहा जाता है कि गद्दी नशीनी की रस्म पूरी हो जाने पर आपने कहा था। "मैं अंग्रेज सरकार और उसके गवर्नर साहब को मुझे गद्दी पर बिठाने के लिये धन्यवाद देता हूँ। आपके बाल-मुँह से यह बात सुनकर गवर्नर बड़ा प्रसन्न हुआ। उसने विदा होते समय दीवान जसमतराय से उनकी सावधानी के साथ शिक्षा-दीक्षा करने-कराने के लिये चेतावनी दी थी।

जगजीतसिंह

नाबालिगी के समय मे अंग्रेज सरकार द्वारा नियुक्त विभिन्न सुपरिण्टेन्डेन्टों ने कपूर्थला का शासन-प्रबन्ध संभाला था जिनमे सर लेपिलग्रिफन, मि० रीवार, मि० कनेहम, मि० आरे, मि० सेमी आदि सभी अग्रेज थे। १८ वर्ष की अवस्था होने पर संवत् १९४७ में महाराज जगजीतसिंह जी को अधिकार बख्शे गये और यह अधिकार-प्रदान की रस्म सर जेम्स लायल तत्कालीन गवर्नर पजाब ने खुद कपूर्थला जाकर अदा की थी।

महाराज जगजीतसिंह जी ने राज्याधिकारी होते ही शासन का कुल प्रबन्ध अपने हाथ मे ले लिया। योग्य नौकरों की तनख्वाहों में वृद्धि की और राज्य के मुख्य शहरों मे घूम कर वहॉ की हालत जानी और उसी के अनुसार सुधार किये।

सिखों की तरक्की के कामों मे आपने हमेशा दिल खोल कर मदद की। खालसा कालेज के लिये भी एक लाख रुपये का दान आपने दिया।

इसके दो ही वर्ष बाद सवत् १९४९ के ज्येष्ठ मास मे आपके एक पुत्र रत्न हुआ और दूसरे दिन महाराज पटियाला कपूर्थला पधारे। इससे दुगुनी खुशी का कपूर्थला मे उत्सव मनाया गया।

महाराज जगजीतसिंह जी ने अपने समय मे राज्य मे अनेक सुन्दर मकान बनवाये है। दरबार हाल, महल, कचहरी और गुरद्वारे आदि जो आपके समय मे बने हैं, वे निहायत सुन्दर है।

महाराज पजाबी, अंग्रेजी हिन्दी और फ्रेंच भाषा के अच्छे विद्वान हैं। स्वयम विद्वान् होने के कारण राज्य के महकमों मे भी आपने योग्य आदमियों को ही नियुक्त किया है।

आपने विदेशों की सैर बहुत अधिक की है और इस बात मे भारत के कुछ ही राजा महाराजा आपकी बराबरी कर सकते हैं।

प्राणदण्ड के अधिकार सरकार द्वारा आपके प्रबन्ध की योग्यता को देख कर आपको दे दिये गये है। एक लाख इकत्तीस हजार सालाना राज्य को जो खिराज गवर्नमेन्ट को देना पडता था वह भी आपने लिखा-पढ़ी कराके माफ करा लिया है।

महाराज के राजकुमारों के नाम इस प्रकार है.—(१) युवराज धर्मजीतसिंह जी जिनका कि जन्म सन् १८९२ ई० की १६ वीं मई को हुआ था। (२) महीजीतसिंह जी (३) अमरजीतसिंहजी (४) कर्मजीत-सिंह जी और (५) जीतसिंह जी है।

सन् १९३८ ई० मे आपने अपनी प्रजा को शासन मे भाग लेने के लिये कुछ अधिकार

भी बख्शे थे।

आपने खेती की उन्नति के लिये अपने राज्य में नहरें भी निकाली।

आपको अंग्रेज सरकार की ओर से जो खिताब मिले थे। उनकी सूची इस प्रकार है—

जी सी. एस. आई., जी सी. आई ई, जी.बी. ई।

फौज में आपको कर्नल का मान है। सन् १६४८ में यह राज्य पेप्सू सघ में शामिल कर दिया गया है।

अठारहवाँ अध्याय

नाभा राज्य का इतिहास

यह राज्य भी फुलकिया स्टेटों मे गिना जाता है बल्कि खानदान भी वही है। जो पटियाला का है। सन् १७६३ तक पटियाला और नाभा का इतिहास एक ही है। सरहिन्द की विजय के बाद फुलकियाँ राज्य अलग-अलग बँट गया। नाभा राज्य का विस्तार प्राय ६६६ वर्ग मील मे है। इस राज्य का एक भाग राजपूताने में भी है जिसका बावुल सदर मुकाम है और जो निजामत कहलाता है। इस राज्य मे ४ बड़े नगर और लगभग ५०० ग्राम हैं। आबादी तीन लाख के करीब है। इनमें ज्यादातर हिन्दू हैं। जाट सिख उनसे कम हैं और उनसे कम मुसलमान हैं। बावुल निजामत मे राजपूत और अहीर ज्यादा हैं। इस समय आमदनी लगभग १७ लाख रुपये सालाना है। महाराज रिपुदमनसिंह जी (अब निर्वासित) एक कौंसिल की सहायता से राज्य करते थे जो 'इजलासे आलिया' कहलाती थी। शासन के चार भाग किये हुए थे जिनके प्रधान मीर मुंशी, बख्शी, हाकिम अदालत सदर, और दीवानेमाल सदर कहलाते थे। वैदेशिक मामलात मीरमुंशी के सुपुर्द थे और सेना, पुलिस बख्शी की अध्यक्षता मे, हाकिम-अदालत-सदर न्याय विभाग के और दीवानेमाल-सदर माल विभाग के प्रधान थे। महाराज इजलास आलिया मे खुद बैठकर भी न्याय करते थे।

नाभा जोकि इस राज्य की राजधानी है। भटिंडा राजपुरा रेलवे लाइन पर राजपुरा से ३२ मील के फासले पर है। शहर एक कच्चे परकोटे से घिरा हुआ है। शहर मे ६ दरवाजे है। परकोटा के चारों ओर भरतपुर की जैसी पक्की सडक है। शहर के पास बागों के होने से वह अच्छा लगता है। रुई कपास के कुछ पेच (कारखाने) हैं। अम्लोह, गोविन्द गढ़, फूल, धनोला, जैतों और बावल राज्य के बड़े नगर हैं। जिनमें कुछ निजामत का सदर मुकाम होने और कुछ मंडी होने के कारण रौनक पर हैं।

फुलकियां मिसल मे इस वश का पूर्व का बहुत-कुछ इतिहास आ चुका है। यहा हम चौधरी फूल के बडे बेटे त्रिलोकसिंह से आरम्भ करते हैं जो नाभा राज-खान्दान का वह पुरखा था जिसपर पटियाला से अलग शाख छट जाती है। चौधरी त्रिलोकसिंह जी को दिल्ली की ओर से भी चौधरी का खिताब मिल चुका था। इनका जन्म संवत् १७१६ वि० में हुआ था। चौधरी त्रिलोकसिंह जी ने गुरु गोविन्दसिंह जी का भी कई लड़ाइयों मे साथ दिया था। सम्वत् १७५३ वि० मे गुरु गोविन्दसिंह जी ने अपनी कुछ वस्तुऐ इनके यहाँ सुरक्षित रखने के लिये भी भेजी थीं जो अब तक नाभे में मौजूद हैं। कहा जाता है कि सर-

हिन्द में से गुरु जी के साहवजादों के मृत शरीरों को लाकर इन्हीं के भाई रामा ने उनका सन्कार किया था। जिससे सरहिन्द का सूवेदार चौधरी त्रिलोकसिंह जी से वहुत विगड़ गया किन्तु उन्होंने उसकी कुछ भी परवाह नहीं की।

चौधरी त्रिलोकसिंह जी का विवाह रोड़ी गाव में चौधरी सैदासिंह की पुत्री वखता से हुआ था। जिसके उदर से गुरुदित्त और सुखचैन नाम के दो पुत्र उत्पन्न हुए। जीन्द राज्य के सस्थापक सुखचैन ही थे।

सवत १७८६ वि० में चौधरी त्रिलोकसिंह जी का स्वर्गवास हो गया। अत उनकी रियासत के मालिक उनके वड़े पुत्र गुरुदित्तसिंह जी हुए। गुरुदित्तसिह जी का विवाह मौडके गाव में

गुरुदित्तसिंह

चौधरी शार्दूल की पुत्री राजकौर के साथ हुआ। जिससे एक पुत्र सूरतसिंह सवत १७६६ वि० में पैदा हुआ। कहा जाता है सम्वत १८०६ वि० मे गुरुदित्तसिंह को वनोले के पास खडहरों मे एक खजाना मिला। जिससे उन्होंने एक गाव वहीं पर आवाद किया। अगले वर्ष सगरूर नामक स्थान आवाद किया। जो अव जीन्द के कब्जे में है। मुगल शासन की डावाडोल की हालत में गुरुदित्तसिंह ने आस-पास के अनेकों गांवों पर अपना कब्जा कर लिया था किन्तु दोनों भाइयों में सदैव ही खटपट वनी रहती थी। सवत् १८०६ वि० में उनका वड़ा लडका सूरतसिंह भी मर गया। कुछ दिनों वाद सुखचैनसिंह भी मर गया। उसकी विधवा पत्नी अपने मायके चली गई। अत गुरुदित्तसिंह ने कस्वा फूल भी जो कि सुखचैनसिंह के कब्जे में था अपने अधीन कर लिया।

सूरतसिंह ने अपने पीछे दो पुत्र छोड़े थे (१) हमीरसिंह और (२) कपूरसिंह। संवत १८.. वि० मे गुरुदित्तसिंह जी का भी स्वर्गवास हो गया। इसलिये उनका उत्तराधिकारी उनका वडा पोता हमीरसिंह हुआ। इन दोनों भाइयों ने सरदार आलासिंह जी के साथ रहकर खूब तरक्की की। उनके साथ हमलों में रहने से लड़ाई के हर दाव-पेच से दोनों भाई जानकार होगये। उन्होंने सरदार आलासिंह की मदद से लाहोवाल गॉच को भी अपने कब्जे में कर लिया। सवत १८१६ वि० में भानीअन और भमदी के वीच के स्थान पर एक किले की नींव डाली और उसका नाम नाभा रक्खा।

कपूरसिंह की शादी सुजानकुँवर मानसिंहिया की लडकी के साथ हुई थी। यह भी अपने पति के मरने के वाद हमीरसिंह जी की घर वाली हो गई थी। इससे हमीरसिंह के पास कपूरगढ परगना और वुड़ियाला भी आ गये थे। इस सरदारनी से ही कुवर जसवतसिंह जी का जन्म हुआ था। इसके अलावा भी हमीरसिंह जी ने तीन शादियां और की थीं। एक तो नत्थासिंह वनगरिया की लडकी के साथ दूसरी लखनसिंह रोडीवाला की लड़की के साथ, जिससे कि सदाकुवरि और शोभाकुवरि दो लडकिया पैदा हुई थीं। तीसरी शादी धन्नासिंह कुरतान वाला की लडकी के साथ हुई थी। इससे कोई सतान नहीं हुई। सरदार हमीरसिंह वडे वुद्धिमान और शक्तिशाली व्यक्ति थे। नाभा राज्य का निर्माण इनके वाहुवल पर हुआ था। नाभा शहर के आवाद हो जाने पर उन्होंने भादसों पर अधिकार कर लिया।

सवत् १८२६ वि० में हमीरसिंह जी ने रोडी पर हमला कर दिया। हासी का हाकिम ... मुकाविले के लिये आया किन्तु हार कर भाग गया। इससे रोडी का इलाका हमीरसिंह जी के कब्जे में आ गया जो कि सिरसा मे लगा हुआ है।

कहा जाता है संवत १८३२ में जीन्द में गजपतसिंह ने हमीरसिंह को गिरफ्तार कर लिया।

क्योंकि एक तो उनके फूल गॉव पर उन्होंने कब्जा कर लिया था। दूसरे लड़की की शादी के समय घास के मामले पर कुछ झगड़ा हो गया था। बाद मे पटियाला के बीच मे पड़ने से और संगरूर का इलाका व जीन्द को दे देने के वायदे पर हमीरसिंहजी को छोड़ दिया गया। कहा जाता है, इस बीच सारे इलाके का प्रबन्ध और रक्षा हमीरसिंहजी की रानियों ने बड़ी बहादुरी के साथ की थी। संगरूर पर गजपतिसिंह के हमला करने पर अपने पति की गैरहाजिरी मे भी उन्होंने बड़ी बहादुरी से उसकी रक्षा कर ली थी। पटियाला को भी बीच मे रानियों ने ही डाला था।

जीन्द से वापिस आकर हमीरसिंह जी ने अपने दामाद साहबसिंह जी (इसके साथ शोभाकुंवरि व्याही थी) की मदद से भावसू और अमलोह के इलाकों को जोकि इस बीच हाथ से निकल गये थे पुन प्राप्त किया। हमीरसिंह जी की इच्छा थी कि सगरूर को भी वापिस ले ले किन्तु "मेरे मन कछु और है साईं के कछु और" के अनुसार संवत् १८४० मे उनका देहान्त हो गया। इससे सगरूर फिर कभी भी नाभा के हाथ मे नहीं आया। आपकी मृत्यु के बाद आपका पुत्र जसवंतसिंह गद्दी पर बैठा जिसका कि जन्म सवत् १८३३ मे हुआ था और जोकि इस समय ७ वर्ष का ही बच्चा था किन्तु जसवन्तसिंह जी की विमाता रानी देसू ने उनकी सरपरस्ती का काम किया।

रानी ने सात साल तक बड़ी योग्यता से राज्य-कार्य को चलाया। फौज का संचालन उसके दोनों जॅवाई साहबसिंह गुजरात और जैसिंह कन्हैया करते थे किसी की भी मजाल न थी जो इन दो सरदारों के मुकाबिले पर नाभा राज्य को नुकसान पहुँचाने आता। सवत् १८४६ वि० मे रानी देसू का भी स्वर्गवास हो गया। राज-खालसा के लेखक ज्ञानी ज्ञानसिंह ने लिखा है कि "राजा जसवन्तसिंह ने ही उनको रनसिंह और खड्गसिंह की सलाह से मरवाया था। कुछ भी हो रानी साहिबा मर गई और उनके पीछे राजा जसवत-सिंह जी ने राज्य की बागडोर पूर्णतया अपने हाथ में ले ली। अपने मुसाहिबों की सलाह से राज्य-कार्य करने लगे। उन्होंने अपने सरदारों के कहने में आकर एक और भी गलती की वह यह कि पटियाला राज्य के बहालू और करमना गांवों पर हमला कर दिया। जिसमें उन्हे नुकसान ही उठाना पड़ा।

जवान होने पर महाराजा जसवतसिंहजी ने प्रत्येक कार्य को बुद्धिमानी के साथ निभाया। महा-राज रणजीतसिंह जी के साथ सदैव ही अच्छे खयाल रखे। इन्हीं दिनों होलकर पजाब में घूम रहा था और उसके पीछे-पीछे लार्ड लेक फिर रहा था। टमकलोटा स्थान पर पंजाब के सभी रईसों ने अंग्रेज अफसरों से वायदा किया था कि वे मराठों का साथ न देंगे। उस समय आपने भी अपना प्रतिनिधि वहॉ भेज दिया। दैवात् जसवंतराव होलकर सबसे पहले आपके ही पास मदद के लिये आया जिसे आपने साफ जवाब दे दिया कि हमारी अंग्रेजों से मित्रता हो चुकी है। इन रियासतों के सस्थापकों के वशज ऐसी बातों पर अभिमान कर सकते हैं कि उन्होंने भारत भूमि को विदेशियों से मुक्त करने की इच्छा रखने वाले वीर होलकर को मदद न देकर अंग्रेजों के प्रति वफादारी जाहिर की किन्तु हमे तो यह लज्जा की ही बात जान पड़ती है।

लार्ड लेक भी होलकर के बाद नाभा आया और उसने महाराज को धन्यवाद दिया तथा विश्वास दिलाया कि उनकी रियासत सुरक्षित रहेगी। साथ ही किसी भी प्रकार का उनसे खिराज भी न लिया जायगा।

संवत् १८६३ वि० मे हुलकी के झगड़े की वजह से महाराज रणजीतसिंहजी को पचास हजार रुपये देना करके पटियाले पर चढ़ाई करने के लिये बुलाया। महाराजा रणजीतसिंह जी इस प्रकार के मौकों को

ताका ही करते थे। वे रायकोट और रायपुर के परगनों को जीतते हुये आये। जसवतसिंहजी ने पहले तो उन्हे चौदह हजार रुपया देकर पक्खो का इलाका लिया। सवत् १८६४ वि० में जैतों पर चढ़ाई करके अपने कब्जे में किया जो फरीदकोट के कब्जे मे था। महाराज रणजीतसिंहजी ने कुछ और भी इलाके दूसरे रईसों से छीनकर इन्हे दिये। जिनकी आमदनी लगभग २६ हजार सालाना की इतिहासकारो ने लिखी है।

यह हम पहले लिख चुके हैं कि ये महाराज काफी चतुर थे। जो भूभाग कब्जे मे आ जाता था उसे कभी भी कब्जे से न निकलने देने का पूरा प्रवन्ध कर देते थे। वनोली मे किला इसी हेतु से वनवाया। नाभे को सुदृढ़ दुर्ग वनाने के कार्य किये। इन सवसे ज्यादा सियानप यह किया कि एक ओर महाराजा रणजीतसिंह से भी दोस्ती रखी। दूसरी ओर अंग्रेजो को भी गाठ लिया। अपने राज्य की भी इन्होंने खूब तरक्की की थी। इनके वारे मे अक्टरलोनी ने गवर्नमेंट को लिखा था—"जसवतसिंह उन प्रमुख सरदारों में से एक हैं जो हमारी तरफदारी करते हैं। मैं अब तक पजाव के जितने भी रईसों से मिला हूँ उन सवमे इनको चाल ढाल और वुद्धिमानी अग्रिम दिखाई दी। मैंने नाभे राज्य को घूम-फिरकर भी देखा है। आन्तरिक शाति है और लोग आनन्द से अपनी खेती को तरक्की देते है। पटियाला की अपेक्षा भी इनकी प्रजा खुशहाल जान पड़ती है। वे प्रजा के साथ नर्मी का व्यवहार करते है। यह गुण इधर के अन्य रईसों मे नहीं पाया जाता।"

सवत् १८६७ वि० मे महाराज जसवंतसिंह जी को अंग्रेज सरकार ने वराडवश सिरमोर और मालवेन्द्र का खिताव दिया। सिकन्दर आजम से जिन मलोई लोगों ने युद्ध किया था यह राज उन्हीं की भूमि पर कायम हुआ था। समय की गति से वे सारे मलोई अव जट-सिख वन गये थे। इस देश का नाम उन्हीं के नाम पर मालवा कहलाता था इसलिए जसवतसिंह जी को मालवेन्द्र का खिताव दिया गया।

फूल की वडी सतान के होने के कारण जसवंतसिंह जी को यह महत्वाकाक्षा सदैव रही कि राज भी उन्हीं का वड़ा रहे किन्तु पटियाला उनके राज्य से वड़ा वन रहा था। यह वात उन्हे सदैव खटकी और सरहद-वन्दी में उन्होंने पटियाला के साथ वहुत काल तक झगड़ा भी रक्खा किन्तु कहा जाता है कि राजा नरेन्द्रसिंह जी ने अपनी गभीरता और समझदारी से मामला वढ़ने नहीं दिया और दोनों राज्यों मे मित्रता कायम हो गई।

पटियाला और नाभा मे जो झगडा चल रहा था। उसमे कुछ दूसरे कारण भी थे। रियासतों की हद वाधने मे भी दोनों रियासतें एक मत पर नहीं पहुँचती थीं। कई स्थान ऐसे थे जिन पर दोनों रियासतें अपना अधिकार वताती थीं। इन हक-हक्क के झगडों मे कई ऐसे दावे थे जिनमे राजा नाभा का दावा न्याय सगत था। मौजा कोसलहेड़ी इलाका पटियाला और मौजा फूलागेरी इलाका नाभा के फैसले के लिये पंच मुकर्रिर किये गये थे उन्होंने भी फैसला नाभा के ही पक्ष मे दिया था। एक दूसरा झगडा [illegible] भदोड और कागड गाव की सरहद का था। भदोड सरदार दलीपसिंह और वीरसिंह के अधिकार मे था जो पटियाला के रिश्तेदार थे और कागड नाभा के इलाके मे था। इस मामले मे भी नाभा का [illegible] वताया जाता है। लेकिन सरलेपिलग्रिफिन ने राजा जसवतसिंह जी के खिलाफ जो रिपोर्ट दी थी वह दोनों रियासतों के कड़वे रुख को जाहिर करती है। उसने लिखा था कि जसवतसिंह की यह [illegible] है कि पटियाला राज्य नष्ट हो जाये।

महाराज जसवतसिंह जी मे जहाँ प्रजा-प्रियता और चतुराई आदि कई गुण थे वहाँ [illegible]

कमजोरियां भी थीं। उन्होने अपने चार विवाह किये थे। पहिली रानी सरदार जयसिंह की पुत्री दयाकौर थी दूसरी। चन्द्रकौर ढिलों के सरदार रामसिंह की पुत्री थी। तीसरी रलावाला के सरदार वाघसिंह की पुत्री प्रेमकौर थी। चौथी रणसिंह जोधपुरिये की लड़की हरकौर थी। इनमे रानी दयाकौर के उदर से कुॅवर रणजीतसिह जी और हरकौर के पेट से देवेन्द्रसिंह जी पैदा हुए थे। रणजीतसिंह वड़े होने के कारण गद्दी के हकदार थे किन्तु जसवतसिंह जी का ज्यादा प्यार रानी हरकौर पर था इसलिये कि राज्य देवेन्द्रसिंह को ही देना चाहते थे। रणजीतसिंह वड़े होनहार और समझदार थे वे जिस किसी से भी मिलते उसे अपनी ओर आकर्पित कर लेते किन्तु उनमे फिजूलखर्ची का वड़ा अवगुण था। इसी को आधार वनाकर महाराज जसवंतसिंह जी ने उनको खर्च देना वन्द कर दिया। रानी दयाकौर का मायका मालदार था। अतः कुछ समय तक खर्च आता रहा लेकिन रणजीतसिंह को यह वात सह्य नहीं हुई। कुछ सलाहकार भी उसे भड़काने वाले ही मिल गये इसलिये वह सवत् १८६७ मे खुल्लमखुल्ला वागी हो गया। अव तक जो नाम मात्र के लिये उसके खाने खर्चे के लिये जागीर वता रक्खी थी। वह भी जव्त कर ली गई। और महाराज ने पोलीटिकल एजन्ट को शिकायत कर दी। पोलीटिकल एजन्ट ने रणजीतसिंह को धमकाया भी।

संवत् १८७१ वि० मे महाराज जसवन्तसिंह ने स्पष्ट घोपणा करदी कि मेरा वड़ा लड़का रणजीत-सिंह मेरी विरासत का अधिकारी नहीं है और अंग्रेजी सरकार के पास यह दावा दायर कर दिया कि वह मुझे कतल कर देना चाहता है। पड्यन्त्र सावित करने के लिये कई सवूत भी दिये किन्तु गवर्नर जनरल ने उन सवूतों को नाकाफी समझा और महाराज जसवन्तसिंह जी को सलाह दी कि वे रणजीतसिंह जी को वन्धन-मुक्त कर दे क्योंकि इस वीच मे रणजीतसिह गिरफ्तार कर लिये गये थे। राजा साहव को इस आज्ञा से सतोप नहीं हुआ। उन्होंने दुवारा भी लिखा पढ़ी की किन्तु गवर्नर जनरल ने फिर भी वही फैसला कायम रक्खा। रणजीतसिंह वन्धन मुक्त होकर लाहौर चला गया। वहॉ महाराजा रणजीतसिंह ने उसे लगभग ७०हजार के इलाके लोई और ढेहरिया, जालन्धर के जिले मे देकर वसा दिया।

जिस प्रकार जसवतसिंह जी ने रणजीतसिंह पर झूठा आरोप लगाया। वैसा ही आरोप रणजीतसिंह ने भी अपने एकलौते वेटे सतोपसिंह के मर जाने पर लगाया कि उसे उनके दादा जसवंतसिंह ने ही मरवाया है किन्तु खास सवूतों की कमी से यह मुकद्मा भी डिसमिस हो गया।

रणजीतसिंह ने अपने वाप की तरह एक ही स्त्री से सतोष न करके तीन शादियॉ की थीं जिनमे से एक शहीद गुलावसिंह की साली थी।

सवत १८६६ वि० मे जव कि रणजीतसिंह अपने इलाके मे कर वसूल करने के लिये गया हुआ था। कोपतरेडी नामक गॉव में जहॉ कि इसका साढ़ू रहता था, मर गया। उसकी लाश नाभे की ओर ले जा रहे थे किन्तु पटियाले के महाराज कर्मसिंह ने उसका वहादुरगढ़ मे संस्कार करा दिया। जहॉ पर कि उसकी समाधि वनी हुई है।

रणजीतसिंह की मृत्यु भी रहस्य से भरी हुई समझी गई। इसलिये उसकी रानियों ने अपने ससुर राजा जसवंतसिह पर ही उनकी मौत का आरोप लगाया किन्तु फल कुछ न निकला।

रियासत नाभा मे लाधडां और सोनटी के दो अच्छे ठिकाने थे महाराज इन दोनों से क्रमश. ५० और ७० सवारों की नौकरी लेते थे। इन दोनों ने भी स्वतंत्र होने की इच्छा से अंग्रेज सरकार मे दावा कर दिया कि हम तो स्वतन्त्र हैं। हमने अपना इलाका खुद विजय किया था। हमे नाभे से थोड़ा ही मिला है जो राजा नाभा हमसे नौकरी लेते हैं और मातहतों-जैसा व्यवहार हमारे साथ करते हैं। जार्ज लोनी

को सरकार ने उनके दावे की जॉच के लिये मुकर्रिर किया। जॉच मे मालूम हुआ कि "लाधडा, अमलोह, सोनटी, दुहाड़ा शाहवाद आदि इलाके निशानवालिया मिसल के प्रमुख सरदार सगतसिंह, दसौंधासिंह, जयसिंह और मोहरसिंह ने सरहिन्द विनाश के वाद अपने अधिकार मे किये थे। तव से इन पर उन्हीं के वंशजों का अधिकार चला आता है किन्तु महाराजा रणजीतसिंह जी पंजावकेशरी के भय से अपनी २ भूमि की रक्षा करने के लिये किसी न किसी वड़े रईस की इन इलाकेदारों को शरण लेनी पडी थी। लाधडा के रईसों ने नाभा की शरण ली थी और उसी के एवज में उन्होंने नौकरी देना स्वीकार किया था। सोनटी के इलाके नाभा के रईस ने उस समय कब्जा कर लिया जवकि उसके रईस एक मुहीम पर जमानशाह से लडने गये थे। पीछे वहुत समय के वाद ही सोनटी का इलाका उन्हे अधीनता स्वीकार करने पर ही मिला था।"

पोलिटीकल एजन्ट अम्वाला ने इस मामले मे सलाह दी थी कि "यह वात आवश्यक और न्यायपूर्ण है कि यह सरदार राजा नाभा की खिदमत करने के वास्ते वदस्तूर सवार देते रहें किन्तु यदि राजा साहव उन पर सख्ती करें तो इसकी शिकायत सरकार के पास करनी चाहिये" किन्तु रेजीडेन्ट देहली ने इस वात को स्वीकार नहीं किया और इस प्रकार निर्णय दिया। "लवरा और सोनटी के सिख सरदार नाभा के अधीन समझे जॉय। अग्रेज सरकार इस मामले में हस्तक्षेप न करे। इससे राजा साहव नाभा के प्रवन्ध और रौव मे अतर आता है।" परन्तु अतिम फैसला सवत् १८६३ वि० में इस प्रकार हुआ। "जव राजा साहव नाभा के यहाँ कुँवर उत्पन्न हो, या किसी लड़के लडकी का विवाह हो या किसी रईस की मृत्यु का अवसर हो या इत्तिफाक से कोई लड़ाई पेश आये। केवल उस वक्त इन सरदारों से सेवायें ली जावे। हर समय नहीं।"

महाराज की उम्र इस समय काफी हो चुकी थी और वे वीमार भी रहने लगे थे। साथ ही उनका सारा जीवन क्लेशों मे ही समाप्त हुआ था। आखिर उनका रोग वढ़ गया और सवत १८६७ मे जव कि उनकी उम्र ६६ वर्प की हो चुकी थी देहावसान हो गया। उनके पुत्र देवेन्द्रसिंह ने वडी धूम-धाम से उनका अन्त्येष्टि सस्कार किया। यह ठीक है कि उनका जीवन झगड़ों मे ही वीता किन्तु प्रजा के लिये सुख पहुँचाने मे उन्होंने शक्ति भर प्रयत्न किया।

इस समय कुँवर देवेन्द्रसिंह जी १८ वर्प के थे अत वे ही गद्दी पर विठाये गये और कुल अधिकार राज्य-सचालन के उनके हाथ सौंप दिये गये। सिख इतिहासकारों की राजा जसवंतसिंह जी के विरुद्ध एक शिकायत है और वह यह कि इस राजा ने कई मन्दिर वनवाये और उनसे जागीरें भी लगवाईं। किन्तु सिख धर्म का कोई गुरुद्वारा नहीं वनवाया और न जागीर ही दी। वास्तव में यदि उन्होंने ऐसा किया तो गलती ही की थी। उस समय तो जो भी तरक्की उनकी हुई थी। सिख सस्कारों के ही वल पर हुई थी। राजा जसवन्तसिंह जी मे हिन्दू सस्कार अधिक थे। उन्होंने गया में जाकर पिंड भरवाये थे। और सवा लाख का दान-पुण्य भी किया था। राज्य मे ठाकुरद्वारों पर जो जागीरें हैं वह वीस हजार के लगभग की हैं। कहा जाता है। गया जी जाते हुए पटना में वहाँ सिख गुरुद्वारे (पटना साहव) में केवल १२५) दिये और सदैव के लिये कोई रकम मुकर्रिर नहीं की।

राजा जसवतसिंह जी की रानियों मे ढिलवा वाली रानी चन्द्रकौर वडी समझदार थी। इन्हें टेपालपुरा की जागीर मुद्दत तक उनके पास रही और उन्होंने उसका काम भी वडी अच्छी तरह चलाया।

राजा देवेन्द्रसिंह जी की गद्दी व अधिकार प्रदान का उत्सव धूम-धाम से मनाया गया। सिख

अम्बाले के एजेन्ट गवर्नर जनरल भी उपस्थित थे। सतलज पार के अन्य राजागण भी मौजूद थे।

राजा देवेन्द्रसिंह

एजेन्ट महोदय ने एक हाथी जरदोजी की भूलवाला, एक घोड़ा चाँदी की जीन वाला, १५१ कपड़े और एक तलवार खिलअत मे दिये।

राजा देवेन्द्रसिंह जी लाड़-प्यार मे पाले जाने के कारण राजकीय दाॅव-पेचो और मुसाहिवों की चालवाजियों से नातजुर्वेकार रह गये। इसका फल यह हुआ कि वे उन लोगो द्वारा घिर गये जो अच्छी से अच्छी खुशामदाना वाते वनाकर आपको प्रसन्न रखते थे। कहा जाता है कुछ ब्राह्मण मुसाहिव आप की तारीफ मे अतिशयोक्ति पूर्ण श्लोक सुनाकर खूव वनाते रहते थे। दरवार मे प्रणाम का ढग पहले से आदाव करना जारी था आपने दण्डवत करने की प्रथा चला दी और सस्कृत पढ़ने के लिये एक स्कूल भी खोला। यह सव काम ब्राह्मण मुसाहिवों की मर्जी से होते थे। जो वुरे नहीं थे। हाॅ, सिख सरदारों की सलाह की उपेक्षा की जाती यही वुराई थी। आपने संगरूर पर भी चढ़ाई कर दी और वहाॅ के राजा को भगा दिया किन्तु आपके सलाहकार आपको सगरूर से वापिस नाभा ले आये और अंग्रेज सरकार से सगरूर पर अपना अधिकार स्वीकार किये जाने की लिखा-पढ़ी शुरू करादी।

कहा जाता है राजा स्वरुपसिंह जी ने जीन्द नरेश गजपतिसिंह के मरने पर आपसे यह वायदा कर दिया था कि सगरूर आपको ही वापिस दे दूंगा। वशर्ते कि मैं जीन्द का अधिकारी स्वीकार कर लिया जाऊं। अंग्रेज सरकार ने पटियाला की सिफारिश पर सरूपसिंह को जीन्द का राजा स्वीकार कर लिया। राजा गजपतिसिंह नि.सतान मरे थे। इसीलिये यह वखेड़ा खड़ा हुआ था। संगरूर पहले नाभे का ही था। राजा गजपतिसिह ने ही उसे अपने अधिकार मे कर लिया था। देवेन्द्रसिह का उसे वापिस मागना इसीलिये न्याय था।

राज खालसा के सिख लेखक ने लिखा है कि महाराज देवेन्द्रसिह वुरी तरह से साधुओं के फन्दे मे फॅस गये थे। कंठी तिलक सव धारण करने लगे थे और उन्होंने उन लोगों के वहकावे मे आकर सवत् १६०५ वि० मे एक अश्वमेध यज्ञ भी पटियाला दरवाजे के वाहर किया था, कारण कि उन्हे समझाया गया था। अश्वमेघ यज्ञ करने से तुम चक्रवर्ती हो जाओगे। वरावर तीन महीने तक यज्ञ हुआ। इस दरम्यान मे वहुत खर्च हुआ। पचास हजार के तो यज्ञ पात्र ही वनवाये थे। जिन सबको यज्ञ कराने वाले ले गये इसके अलावा एक हाथी भी दान दिया। और भी वहुत खर्च हुआ।" आगे फिर लिखा है —"नाभे के गिरद कोट को नये सिरे से वनवाते समय उसके वीचमे आने वाले पीपलों को कटवाने के लिये प्रति पीपल एक सोने की कुल्हाडी वनवाई जो ब्राह्मणों को दान दे दी गईं। इस प्रकार सारा सचित धन ब्राह्मण चाट गये।

गॉव मोडा ही जागीर मे दिला दिया जाय। महाराज रणजीतसिंह जी ने महाराजा जसवतसिंह को सू दे दी। मोडा गॉव हमने धनसिंह को जागीर में दे दिया है। राजा जसवन्तसिंह जी भला महारा रणजीतसिंह का विरोध कैसे कर सकते थे और जब कि महाराजा रणजीतसिंह जी ने महाराज जसवतं जी की बहिन सभाकौर के विवाह मे अपना एक गॉव मनोखा दहेज में दे दिया तो जसवतसिंह सतुष्ट हो गये। किन्तु रणजीतसिंह जी के बाद खड्गसिंह जी ने वह गॉव जब्त कर लिया। इस पर देवे सिंह जी को गुस्सा आया और उन्होंने भी धनसिंह के लडके हुक्मसिंह को कहला भेजा कि मोडा ग को खाली कर दो। उसके न मानने पर आपने अपनी सेना भेजकर उस पर कब्जा कर लिया। समय लाहौर में महाराज शेरसिंह जी की हुकूमत हो चुकी थी। उन्होंने अग्रेज सरकार से इस बात शिकायत की।

सरकार अग्रेजी ने इसकी तहकीकात की और 'बन्दर बाट' न्याय से मोडा को न तो लाहौर दरब को दिया और न नाभा के पास रहने दिया जब्त करके अपने अधीन कर लिया। इस न्याय का दो ओर बुरा असर पडा। यद्यपि इस समय लाहौर में नाबालिग महाराज दलीपसिंह का राज्य था फिर भ सिखों ने यह तो अनुभव किया ही कि सन्धि के प्रतिकूल अग्रेज हमारे राज्य पर हाथ डालने लग ग और उधर नाभा महाराज देवेन्द्रसिंह जी भी नाराज हो गये।

इन्हीं दिनों परिस्थितिया ऐसी पैदा हो गई कि लाहौर दरबार और अग्रेज सरकार मे जग छि गई। अग्रेजों ने देवेन्द्रसिंह को लिखा कि हमें ज्यादा से ज्यादा रसद दीजिये। राजा साहब कुछ नारा तो थे ही लापरवाही कर गये। इससे अग्रेजों का दिमाग बिगडा, इन्हीं दिनों एक और घटना हुई सरदा रामसिंह जोकि लाहौर दरबार की सेना में एक उच्च अफसर थे नाभा पधारे। वहॉ एक दो दिन ठहरे भी। महाराज की इच्छा तो यह थी कि दोनों ओर से तटस्थ रहें किन्तु अग्रेज भला इस बात को कब बर्दाश्त करते, मेजर ब्राडफूट ने लिखा आप लुधियाना पहुँच कर अपनी मैत्री का सबूत दें और ज्यादा से ज्यादा रसद भेजे। आपने लिख भेजा रसद का प्रबन्ध हो रहा है किन्तु प्रबन्ध कुछ भी नहीं हो रहा था।

लडाई खतम हो गई अग्रेज जीत गये। तब उन्होंने महाराज देवेन्द्रसिंह जी पर कोप किया। पहले तो जो जीत की खुशी में लुधियाने में दरबार किया। उसमे उनको बुलाया नहीं। दूसरे उनको स्पष्ट शब्दों में लाहौर दरबार का सहायक साबित कर दिया और उन्हें गद्दी छोड देने के लिये हुक्म दे दिया। तीसरे राज्य का चौथा हिस्सा जब्त कर लिया। उनके बडे बेटे को जिसकी कि अवस्था अभी केवल आठ वर्ष की थी गद्दी पर बैठाया और उसकी शिक्षा-दीक्षा का प्रबन्ध राज्य के तीन अधिकारी सरदार गुरुबख्श-सिंह, सरदार फतहसिंह और ला० बहालीमल के सुपुर्द किया। इन्हीं की एक कौंसिल नाबालिगी मे राज्य का प्रबन्ध सौतेली दादी चन्द्रकौर के परामर्श से करने के लिये बना दी गई।

महाराज देवेन्द्रसिंह जी के लिये पचास हजार रुपया सालाना की पेंशन मुकर्रिर कर दी और उनके लिये तय किया गया कि देहली मेरठ के बीच कहीं भी रह सकते हैं। राज्य का यह सारा प्रबन्ध मिस्टर मैक्सन ने सवत् १६०४ वि० मे खुद नाभा जाकर किया था। कुंवर भरपूरसिंह जी की गद्दी-नशीनी की रसम भी उस समय मामूली ढंग से ही हुई थी।

यह बात नहीं कि महाराज देवेन्द्रसिंह जी ने अपने निर्दोष होने के लिये कोई सफाई नहीं दी थी। उन्होंने सभी इल्जामों का जवाब दिया था। उन्होंने सरदार रामसिंह जी के सम्बन्ध में कहा था कि वे मुझे भड़काने नहीं आये किन्तु इसलिये आये थे कि अगर लाहौर दरबार से उनकी अनबन हो जावे तो नाभा

आकर उन्हे रहने को जगह मिल जाय। मुलाकात केवल शिष्टाचार के लिये हुई थी। महाराजा साहब ने यह भी कहा था कि हमारा कोई भी गुप्त पत्र-व्यवहार लाहौर दरबार से न था।

राज्य से निर्वासित होने पर देवेन्द्रसिंह जी ने मथुरा मे रहना पसन्द किया किन्तु दान और उदारतापूर्वक किये जाने वाले खर्चों के लिये उनका काम पचास हजार सालाना मे चलना मुश्किल था। इसलिये वे कर्जा लेकर काम चलाने लगे। इस खबर को पाकर गवर्नमेंट ने उन्हे लाहौर भेज दिया जहाँ वे राजा खड्गसिंह की हवेली मे रख दिये गये। वे मथुरा मे लगभग आठ साल तक रहे थे और वहाँ उन्होंने अपना अधिकाश धन ब्राह्मण और साधुओं को खिलाने मे खर्च किया था। यहा यह बता देना भी उचित होगा कि महाराज देवेन्द्रसिंह जी ने भी चार शादिया की थीं, जिनमे रानी मानकौर से दो पुत्र जन्मे थे एक भरपूरसिह दूसरे भगवानसिंह।

महाराज के निर्वासित हो जाने के बाद शासन-कार्य के लिये एक कौंसिल बनाई गई थी। यह तो हम पहले ही लिख चुके है। इस कौसिल के प्रेसीडेन्ट सरदार गुरुबख्शसिंह जी बनाये गये थे। इस कौंसिल का काम तीन वर्ष तक तो अमन से चला किन्तु फिर बखेडा खड़ा हो गया। बखेड़ा खडा करने वाला मु शी साहबसिंह था। मि० मैक्सन ने तो इसे भी निर्वासित कर दिया था। इस पर इल्जाम यह लगाया गया कि इसने महाराज को कभी नेक सलाह नहीं दी। उन्हे सदा गुमराह ही किया। किन्तु दादी चन्द्रकौर इस पर महरबान थी। इससे यह नाभा मे आ गया और इसने सरदार गुरुबख्शसिंह की पोल गवर्नमेंट के पास लिख भेजी कि राज्य की तमाम नौकरियों मे गुरुबख्शसिंह ने अपने आदमी भर लिये हैं और साथ ही राज्य का धन भी खूब लूटा है। अग्रेज सरकार की ओर से जांच हुई तो मामला सही निकला। गुरुबख्शसिंह कौंसिल से अलग कर दिये गये। उनके सारे रिश्तेदार भी नौकरियों से हटा दिये गये। मुंशी साहबसिंह ने इधर यह भी हिम्मत का काम किया कि कौंसिल का प्रेसीडेन्ट भी खुद ही बिना गवर्नमेंट की मजूरी लिये बन गया।

अपने पिता के निर्वासित होने के कारण गद्दी पर जब बैठे थे कुल उम्र ८ साल थी। इसलिये इनकी दादी चन्द्रकौर ने इनकी देखरेख की? रानी चन्द्रकौर बडी हुशियार थीं। वे शासन कार्य्यों की देखरेख भी रखती थीं। गुरुबख्शसिंह लुब्धक को उन्होंने ही हटवाया था और साहिबसिंह को दीवान मुकर्रिर किया था। हालाकि यह काम गवर्नमेंटकी मजूरीसे होना चाहिये था किन्तु चूंकि आप अपने को राज्य शासन की जिम्मेदार समझती थीं। अत साहिबसिंह को रखने मे कोई हिचक नहीं की।

राजा भरपूरसिंह

इन दिनों तक महाराज भरपूर सिंह भी सयाने हो चुके थे कि सवत् १९१४ वि० मे भारत व्यापी विद्रोह अग्रेजों को उखाड़ फेकने के लिये उठ खड़ा हुआ। इस विद्रोह मे महाराजा भरपूरसिंह जी ने अंग्रेज सरकार की भरपूर मदद की। रसद पहुँचाने व आदमी देने की किसी बात में कमी नहीं की। आपको लुधियाने की छावनी पर मुकर्रिर किया गया जहाँ छ महीने तक रहकर आपने विद्रोहियों का आक्रमणों के समय मुकाबिल किया। उस समय आपके पास दो तोपखाने ३५० सवार और ४५० पैदल सिपाही थे। नाभे की फौज ने हर मौके पर अंग्रेजों की मदद की। दिल्ली और फजोर सब नाकों पर जहाँ भी उन्हे भेजा गया, पहुँचे। और बड़ी बहादुरी से लड़े। राजा भरपूरसिंह जी मय अपने भाई राजा भगवानसिंह के लुधियाने में सतर्कता के साथ रहे। उन्होंने सरकार से यह भी इच्छा प्रकट की कि दिल्ली के मुहासिरे पर हमें भेजा जाय किन्तु चूंकि आप नाबालिग थे अत सरकार ने आपको पजाब मे ही रक्खा। इस सकट

समय में राजा भरपूरसिंह ने २॥ लाख रुपया भी सरकार को दिया क्योंकि रुपये की भी सख्त जरू[illegible] आ पड़ी थी। नाभे का प्रबन्ध इस समय मुन्शी साहिबसिंह और सरदार निहालसिंह के हाथ [illegible] उन्होंने भी नाभे से निकलने वाले विद्रोहियों को महाराज की आज्ञा के अनुसार पकड़ कर कैद कर [illegible]

इन सब सेवाओं के बदले में युद्ध की समाप्ति पर अंग्रेज सरकार ने राजा भरपूरसिं[illegible] को [illegible] अन्य राजाओं की भांति इनामात दिये। जिला झज्झर में से परगना बावुल एव काटी के परगने [illegible] कि आमदनी एक लाख छ हजार से ऊपर सालाना थी—दिये। और जब्त किये हुए इलाके भी वापिस [illegible] दिये। खिलअत ७ की जगह १५ कपड़ों की और सलामी ११ तोपों की स्वीकार की गई। "फरजन्द [illegible] मंद अकीदत पैवन्द दौलत इंगलिशिया बैराड़ वश सरमौर मालवेन्द्र बहादुर" का खिताब मिला। [illegible] समय बाद सितारेहिन्द का भी खिताब सरकार ने दिया।

संवत १९१७ में लार्ड कैनिंग ने अम्बाला में जो दरबार किया। उसमें राजा भरपूरसिं[illegible] जी [illegible] भी बुलाया गया। उसमें वायसराय ने राजा नाभा की सेनाओं को बहादुरी की खूब प्रशंसा की और [illegible] कि आपको सरकार ने जो भी इलाका दिया है। इस पर आपकी संतान का पीढ़ी दर पीढ़ी अधि[illegible] रहेगा। आपको भी अन्य राजाओं की तरह निःसंतान होने पर गोद लेने का अधिकार है। पटियाला [illegible] की तरह फांसी तक के अधिकार की आपको भी सनद प्राप्त होगई।

आपको सरकार की ओर से जो सनद हासिल हुई उसकी कुछ धारायें इस आशय की थीं।

(१) नये दिये हुये इलाकों पर भी महाराजगान नाभा को वही अधिकार होंगे जो उनके पुराने राज्य में है।

(२) राज्य के आन्तरिक शासन में वे स्वतंत्र होंगे सरकार कोई दस्तंदाजी न करेगी।

(३) नाभा राज्य को अपने राज्य से सती प्रथा और कन्या वध की बुरी रस्में उठा देना होगा।

(४) नाभा दरबार ब्रिटिश दोस्ती का सदैव नेकनीयती से पालन करेंगे।

(५) अंग्रेजों के दुश्मनों को अपना दुश्मन समझेंगे और रसद व सेना आदि से हर [illegible] अंग्रेजों की मदद करेंगे।

(६) अंग्रेज सरकार नाभा राज्य के जागीरदार और माफीदारों की शिकायतों पर [illegible] उन्हें रियासत ही निबटायेगी।

(७) रेल और सड़कों के लिये जो जमीन सरकार लेगी उसका उचित मुआविजा देगी।

(८) नाभा दरबार की इज्जत और मान रक्षा को बनाये रखने में सरकार सदैव [illegible] आदि आदि।

संवत १९[illegible] में लाहौर में निर्वासन के दिन बिताते हुए महाराज देवेन्द्रसिं[illegible] [illegible] होगई। इधर राजा साहब भरपूरसिंह जी को राज्य शासन के कुल अधिकार मिल गये थे। [illegible] काम को सुचारू रूप से चलाने लगे। इन्होंने २॥ लाख रुपया जो सरकार को गदर के समय [illegible] इसके सिवा लाख पहिले दिये जा चुके थे। महाराज भरपूरसिंह जी ने [illegible] सरकार बानोड़ और बुढ़लाने के परगने नहीं रखना चाहती है। इन्होंने अपने [illegible] बानोड़ का पट्टा करा लिया। इससे उन्हें [illegible] भी वसूल होगये और [illegible]

[illegible] के समय में राज्य में कई [illegible] जो राजा [illegible] शुभ चिन्तक न थे। उनकी भी अम्बाला के एजेन्ट ने जांच की और उन [illegible] का निर्णय [illegible]

भरपूरसिंह जी की यह आदत थी कि राज्य के प्रत्येक संगीन मामले मे अम्वाला के कमिश्नर और पटियाला के महाराज की सलाह ले लेते थे। उन्होंने अपने पिता और दादा की भांति पटियाला से द्वेष नहीं रक्खा। किन्तु मेल मिलाप वढ़ा लिया था। हालांकि कुछ लोगो ने उन्हे भड़काना भी चाहा किन्तु वे सावधान रहे।

महाराज भरपूरसिंह चालचलन के अच्छे थे। उनके अन्दर कोई भी ऐसा ऐब नहीं था। जो राजे रईसों मे होता है सर लेपिलग्रिफन ने भी लिखा था कि "देशी रियासतों के रईसों मे छोटी उम्र मे जो खराबियाँ होती हैं .. उनसे महाराज भरपूरसिंह वचे हुए हैं।" महाराज हिन्दी, गुरुमुखी और फारसी मे अच्छी योग्यता रखते थे। कविता करने का भी आपको शौक था। आप समझते थे कि अंग्रेजों के शासन मे अंग्रेजी सीखना भी जरूरी है इसलिये समय निकाल कर अंग्रेजी सीखते थे। रियासत मे माल, दिवानी और फौजदारी के कानून भी आपने ही कायम कराये। आप सारा समय राज काज मे ही बिताते थे। दफ्तरों मे जाकर अहलकारों के काम की देखभाल भी करते और जिलेदार तथा जागीरदारों से मुलाकातें भी करते।

सम्वत् १६१६ वि० मे आपने अम्वाला कमिश्नर की मार्फत गवर्नर जनरल से मिलने का अपना नम्वर भी निश्चित कराया क्योंकि पहले आपका ही पहला नम्वर था किन्तु जीन्द वालों ने कोशिश करके अपना नम्वर आगे रखा लिया था कमिश्नर ने आपकी वात पर ध्यान दिया। जीन्द को और आपको एक ही नम्वर मे रख दिया।

राजा भरपूरसिंह जी अपने प्रतिदिन के कार्य को यथा सभव नोट कर लेते थे। इस काम के लिये वे डायरी रखते थे। गरज यह कि उन्हे इस वात की पूरी चिन्ता रहती थी कि उनके द्वारा जितना भी हो सके, राज्य का भला हो और राज्य उन तमाम सकटों से वचता रहे, जिनमे होकर उसे अव तक गुजरना पड़ा है। आप हिन्दू और सिख सभी प्रकार के विद्वानों की कदर करते थे किन्तु सिख धर्म मे आपकी आस्था थी।

राजा भरपूरसिंह का घर के लोगों से भी प्रेम का ही व्यवहार रहता था वे अपने भाई को तो पुत्र के तुल्य ही प्यार करते थे। सौतेली माताओं और दादियों से भी उनका सलूक श्रद्धा का था। यही वजह थी कि रानी चन्द्रकौर ने जिसके पास फूल और दयालपुरा की जागीर थी। इनको राजी से ही छोड़ दी। क्योंकि उन्हे विश्वास था कि वे जव तक जिन्दा रहेगी भरपूरसिंह उनका अच्छे से अच्छा खाने ठहरने और अन्य खर्चों का प्रवन्ध करेगा। कहा जाता है रानी चन्द्रकौर ने सरदार उत्तमसिंह का लालन पालन किया था। जमड़ वाले को विश्वेदारी वख्शी थी। जो उनके पास वरावर रही।

सवत् १६२० वि० में लार्ड एलगन ने आपको सूचित किया कि सरकार ने आपको अपनी कानून वनाने वाली कौंसिल का मेवर वना लिया है। आप इसे स्वीकार करेंगे। यह वात उस समय काफी इज्जत की समझी जाती थी। उन्हें प्रसन्नता हुई। वे इस वात के वहुत इच्छुक थे कि उस कौंसिल मे भाग लेने के लिये कलकत्ता जावें किन्तु दैवात इसी वर्ष गर्मियों में वे वीमार हो गये। मियादी वुखार ने धर दवाया। दो महीने तक काफी उपचार हुआ किन्तु वीमारी वढ़ती गई और वह दिन आ पहुँचा जव कि वे इस संसार को छोड़ कर परलोक के लिये विदा हो गये।

विमान निकाल कर उनके शव का वड़ी धूमधाम से उनके भाई भगवानसिंह ने अन्त्येष्टि सस्कार किया और सारे राज्य ने उनके परलोक गमन पर शोक मनाया।

महाराजा भरपूरसिंह जी के वाद उनके छोटे भाई भगवानसिंहजी रियासत नाभा के मालिक

हुए, कारण कि भरपूरसिंह जी ने कोई सन्तान न छोडी थी। और किसी दूसरे का इतना नजदीकी रिश्ता न था। सरकार ने महाराजा पटियाला और जीन्द से सलाह ली तो उन्होंने भी भगवानसिंह जी का ही हक़ साबित किया। अत: राजा भगवानसिंह ही राज्य के मालिक बने।

राजा भगवानसिंह

संवत् १६२१ विक्रमी के जेष्ठ महीने में आपकी गद्दी नशीनी की रस्म अदा हुई। जिसमें अम्बाले का एजन्ट गवर्नर एवर्ट, जीन्द पटियाले के महाराज तथा अन्य अंग्रेज अफ़सर और सतलज पार के रईस शामिल हुए। सरकार की ओर से खिलअत में १५ कपड़े ३ जवाहरात १ हाथी और १ घोड़ा मिले। रस्म के अनुसार राजा रईसों ने भी तोहफे दिये।

महाराज भगवानसिंह जी खुद नेक आदमी थे फिर भी उनका राज्यकाल संकट का ही रहा। गद्दी पर बैठते ही उन्हें आपत्तियों का सामना करना पडा। राज्य के अधिकारी और कर्मचारियों में धड़ा-बन्दी हो जाने के कारण यह अफवाह फैल गई कि महाराज भरपूरसिंह जी को जहर देकर मरवाया गया है। यदि यह बात सही भी हो तो भी राजा भगवानसिंह जी का उसमें कोई हाथ न था। यह गुल खिला- रंघड वाले की सरदारनी महताबकौर के कत्ल पर। राज खालसा के लेखक ज्ञानी ज्ञानसिंह जी ने महताब कौर के कत्ल का हाल इस प्रकार लिखा है—"राजा भरपूरसिंह जी बडे सुन्दर, सजीले और आकर्षक जवान थे। उनमें जहा अनेकों गुण थे। वहां सुन्दरियों के देखने का एक व्यसन भी था। अच्छी २ स्त्रियों के चित्र भी खींचा करते थे। राजा साहब के लाजवाब सौन्दर्य को देख कर स्त्रिया भी उनके पास खिंची चली आती थीं। महताबकौर जो इनकी रिश्ते में भाभी होती थी। वह भी इन पर रीझ गई और राजा साहब भी उसके भरे हुये गुलाबी चेहरे पर अपने को निछावर कर बैठे। स्त्री का स्वभाव है कि वह एकाधिकार चाहती है। महताबकौर ने देखा कि राजा साहब का किशनकौर नाम की एक युवती से भी प्रगाढ़ प्रेम है तो वह इनसे नाराज हो गई। नाराजी भी यहाँ तक बढ़ी कि जानी दुश्मन बन गई। महाराज को उसके बेटे के विवाह में अपनी माता के आग्रह से शामिल होना पड़ा। यहीं से वे बीमार होकर आये। और अंत में मर गये। सरदार गुरुबख्शसिंह जो कि महाराज भरपूरसिंह का दोस्त था। उसे राजा भरपूरसिंह के कहने से यही शक हो गया कि महताबकौर ने राजा साहब को जहर दिया। गुरुबख्श सिंह ने बड़ी कोशिशें करके भगवानसिंह जी को राजा बनवाया और फिर भगवानसिंह जी की लिखित अनुमति लेकर महताबकौर को कत्ल करा दिया। कत्ल करने वालों ने शराब के नशे में सारा किस्सा जैतों के थानेदार के सामने ब्यान कर दिया फिर क्या था मुकदमा चल निकला। सरकारी कमीशन बैठा। राजा जीन्द और पटियाला के सामने कमीशन ने जाच की। जिसमें राजा भगवानसिंह जी निर्दोष साबित हुए गुरुबख्शसिंहजी को दो महीने की सजा और कत्ल करने वालों को आजन्म काला पानी हुआ।

इस केस के समाप्त होने पर भी महाराज भगवानसिंह जी के लिये शांति के दिन नहीं आये। प्रजा में तो कानाफूसी चलती ही रही। लधडां और सोनटी के जागीरदार भी अपने केसों को लेकर उठ खड़े हुए। यद्यपि संवत् १८६५ वि० में उनके झगड़ों का फैसला हो चुका था किन्तु सोनटी वाले उससे रजामन्द नहीं थे। अत पुन. उन्होंने नये सिरे से अपने मामले को चला दिया। लार्ड कैनिंग की आज्ञा से अम्बाला के तत्कालीन कमिश्नर ने जाच की और महाराजा जींद और पटियाला की राय लेकर यह तय किया कि सोनटी के सरदारों को बिना किसी तरह की सेवा किये पाच हजार सालाना राज्य से पेन्शन स्वरूप मिला करे। सोनटी के सरदार इस फैसले से राजी नहीं हुए। उन्होंने प्रिवी कौंसिल में अपील करदी।

वहां से फिर नये सिरे से जांच करने का हुक्म हुआ और मि० टेलर के सुपुर्द यह काम हुआ। उन्होंने काफी जाच पड़ताल के बाद तय किया कि सोनटी कुल चौतीस हजार पांच सौ के लगभग आमदनी की है। इसमे से निम्न प्रकार नाभा को मिलना चाहिये—

८३६८॥=) बावत जब्ती लावारिस सवारों का हिस्सा

५०७१॥) बावत ६० सवारों की नौकरी व हाजिरी सात रुपया मासिक प्रति सवार के हिसाब से

८०६१॥) बावत जब्ती इलाका नाभा चौथे की बा हिसाब छटे हिस्से।

अर्थात् कुल २१५०१॥=) रियासत नाभा को मिले और १२६६७।=) सोनटी के सरदारों के पास रहे इस फैसले को सब लोगों ने स्वीकार कर लिया। इस प्रकार इस झगड़े से भी छुटकारा हुआ यह याद रहे लाधरा वाले इस फैसले से मुक्त थे।

इसके बाद भी रियासत मे शांति नहीं रही। नाभे का जो वकील अब्दुल रहीम खां नाम का अम्बाले में रहता था उसने कमिश्नर टेलर को हत्थे पर चढ़ा लिया और उससे महाराजा भगवानसिंह जी पर दबाव डलवाया कि अब्दुल रहीम के बाप नूरखां के नाभा के प्राय. सभी प्रतिष्ठित सरदार इस बात के खिलाफ थे जिनसे सरदार लालसिंह, हजूरासिंह, शेरसिंह और दयालसिंह के नाम विशेष उल्लेखनीय हैं। रहीमखां ने सबको अम्बाले बुलाकर कैद करा दिया। इल्जाम यह लगाया कि यह लोग महाराज को बहका कर राज्य को बर्बाद करना चाहते हैं। मि० टेलर ने महाराजा साहिब की इच्छा के विरुद्ध एक कौंसिल बनवा दी। जिसमें नूरखां को प्रेसीडेन्ट और बख्तावर सिंह और हाकिम राय को मेम्बर बनाया गया। रहीम खां को इससे भी सन्तोष नहीं हुआ वह तो अपने बाप को रियासत का सर्वेसर्वा बनाना चाहता था उसने हाकिमराय, प्रभुदयाल, मीरमुन्शी और फरीउद्दीन को अम्बाला बुलाकर कैद मे डलवा दिया। और महाराज को एक हजार मासिक का खर्च मुकर्रिर करा दिया। हम नहीं समझते मि० टेलर किस स्वार्थ से रहीम बटलर के इशारे पर नाचते थे। राजा साहब कहां तक बर्दाश्त करते। उन्होंने भारत सरकार को साफ २ लिख दिया कि हमारी रियासत का सम्बन्ध सीधा लाहौर से हो नकि अम्बाला के कमिश्नर से। इस बात को मनवाने के लिये उन्हे लगभग एक लाख रुपया खर्च करना पड़ा। उनका सम्बन्ध लाहौर से तय हो गया। इसके बाद उन्होंने कौंसिल तोड़ दी और अपनी इच्छा के अनुसार नया प्रबन्ध किया। ऐसे सभी लोगों को निकाल दिया जो राज्य के कार्य्यो मे विघ्न डालते थे। साहिबसिंह भी बनारस की ओर भाग गया और वहीं मर गया।

महाराज भगवानसिंह जी हिन्दी, उर्दू और अंग्रेजी सभी जानते थे और स्वभाव के भी अच्छे थे वे राज्य मे सुधार भी करते किन्तु काल ने उन्हे अधिक दिन दुनिया मे नहीं रहने दिया। उन्हे तपेदिक हो गया और उसी मे बीमार रहकर संवत् १७२७ वि० के जेष्ठ बदी १२ को इस संसार से प्रस्थान कर गये।

उन्होंने अपने सामने ही अपनी भाभियों के खर्च के लिये रकम मंजूर करदी थी जो उनके पीछे भी उसी हिसाब से मिलती रही। उनके खुद के तीन रानियाँ थीं। इनमे से किसी के भी सतान नहीं हुई। दीवान हाकिमराय ने मुन्शी प्रभुदयाल के लिखे "नाभा राज्य वश" के कुर्सी नामे के अनुसार बड़रूखा के रईस सरदार हीरासिंह जी को राज्य का हकदार समझा और उन्हीं के लिये सरकार मे लिखा पढ़ी शुरू की। सर लेपिलग्रिफन इस जॉच के लिये मुकर्रिर हुए। उन्होंने पटियाला, जींद के महाराजों की राय लेकर हीरासिह का ही हकदार होना गवर्नमेंट को लिख भेजा। जिसे गवर्नमेंट ने भी स्वीकार कर लिया।

नाभा राज्य के अनेकों सरदार और अहलकार भी इस चुनाव के पक्ष में थे।

संवत् १९२८ वि० के भादों महीने की बदी अष्टमी को महाराजा हीरासिंह जी को गद्दी पर बैठाया गया। और बड़ी धूम धाम के साथ उनका राजतिलक हुआ। जिसमें पूर्व प्रथा के अनुसार राजा रईस और कई अंग्रेज अधिकारी भी शामिल हुए। राजा हीरासिंह जी गुरुमुखी और हिन्दी में अच्छी योग्यता रखते थे। अंग्रेजी नहीं जानते थे। फिर राजनीति और शासन प्रबंध की योग्यता में वे अनेकों अंग्रेजी जानने वाले रईसों से आगे थे। आपने सरदार सेवासिंह जी को अपना मंत्री बनाया जोकि राजा प्रजा का सच्चा शुभचिंतक सरदार था।

राजा हीरासिंह

कूका आन्दोलन इन्हीं के समय में हुआ था। जिसे दबाने में आप को भी गवर्नमेंट की मदद करनी पड़ी। कूका सिखों को नामधारी भी कहते हैं। धार्मिक भावावेश में कसाइयों को नेस्तो नाबूद करने के लिये कुछ नामधारी सिख बिखर पड़े थे। फौजी सहायता भी भेजी।

संवत् १९३५ वि० में काबुल के अमीर और अंग्रेजों के बीच लड़ाई छिड़ गई। महाराज हीरासिंह जी ने अंग्रेजी सरकार की सहायता के लिये अपने ७०० सैनिक काबुल भेज दिये। जिन्होंने वहाँ बहादुरी दिखाई। कई अंग्रेज अधिकारियों द्वारा महाराज हीरासिंह की फौज की बहादुरी का जिक्र किया। इसी समय अंग्रेजों ने कुछ कर्जा लिया। उसमें भी महाराज ने चार लाख रुपया कर्ज अंग्रेजों को दिया। जिसका ब्याज नाभा राज्य को बराबर मिलता रहा। अन्य स्थानों पर भी जहाँ कहीं अंग्रेजों को दुश्मनों से लड़ना पड़ा। महाराज ने खैरख्वाही दिखाने के लिये अपनी ओर से सहायता देने की इच्छा प्रगट की।

संवत् १९४१ वि० में जब अमीर काबुल भारत में आये। उनके स्वागत के समय रावलपिंडी में आपकी फौज के प्रदर्शन की बड़ी प्रशंसा हुई।

महाराजा हीरासिंह जी ने रियासत में कई तरक्की के काम किये। सबसे पहले तो लुटेरों का दमन किया। राज्य में सड़कें धर्मशाला, अन्न क्षेत्र, छात्रालय, स्कूल और औषधालय स्थापित करके प्रजा सुधार की नींव डाली। चार लाख रुपये से आपने सैनिकों के रहने के लिये एक पक्की छावनी बनवाई। नाभा शहर में इन्टरमीजियेट कालेज की स्थापना की। अंग्रेजी ढंग के डाकखानों का प्रबन्ध किया। पन्द्रह लाख रुपये खर्च करके सिंचाई के लिये नहर निकलवाई। राज्य में रेल निकलवाने में स्टेशनों का खर्च आपने बर्दाश्त किया। एक हस्पताल बनवाया। बाग में पचास हजार की एक कोठी प्रतिष्ठित मेहमानों के लिये बनवाई। दूसरे बाग में एक कोठी दो लाख रुपये की लागत से अपने लिये बनवाई। शहर की सारी नालियों को पक्का करा दिया। भावसू के मुकाम पर नदी का पुल बनवाकर वर्षा में होने वाले प्रजा के कष्ट को दूर किया। नाभे से मालेरकोटला. और पटियाला तक लगभग ४० मील लंबी पक्की सड़कें बनवाईं। बावल में एक गढ़ बनवाया। अमलोह में एक पक्की सराय और बाजार बनवाया। फूल में बाग और मंडी जैतो में बाजार और बनोला में सराय बनवाई। इसके सिवा जेल छावनी. कोहिंग हाउस, तालाब, महल और कई धर्मशालायें भी बनवाईं। कहने का मतलब यह कि प्रजा को आपसे सारी लाभ पहुँचा और रियासत का प्रबन्ध कानूनी तरीका पर होने लगा। पंजाब में आपका शासन नमूने का रहा। जिसकी तारीफ कई अंग्रेज अफसरों ने भी की।

राज्य का कार्य भली प्रकार करने वाले अफसरों और अहलकारों का महाराज सदैव ध्यान रखते थे और तरक्की देकर उनका हौसला भी बढ़ाते थे। सरदार सेवासिंह जी ने जो आपके वजीर थे। राज्य को उन्नत बनाने में आपकी बड़ी मदद की। उन्हें इन सेवाओं के बदले में राज्य की ओर से १२ हजार की

जागीर और तीन गाँवों की विस्वेदारी बख्शी गई। एक लंबे अर्से तक सरदार सेवासिंह जी ने राज्य की सेवा की। जब उनका स्वर्गवास होगया तो महाराज ने उनके योग्य पुत्र सरदार प्रतापसिंह जी को अपना वजीर नियुक्त किया। जिन्होंने राज्य का काम संभालने में अपने पिता का पूरा अनुकरण किया।

महाराजा हीरासिंह जी ने चार विवाह किये थे। (१) सरदार अनोखासिंह जी लोंगेवाले की सुपुत्री सीरकौर के साथ। (२) सरदार प्रेमसिंह जी रल्लेवाला की सुपुत्री प्रेमकौर के साथ। (३) कर्मगढ़ के सरदार वसावासिंह जी की सुकन्या हरनामकौर के साथ। (४) सरदार संतोषसिंह की सुपुत्री ईसरकौर के साथ। जिनमें से बड़ी महारानी सीरकौर जी के उदर से कुँवर रिपुदमनसिंह जी का संवत् १६३६ में जन्म हुआ और प्रेमकौर से एक बीवी जी उत्पन्न हुई।

महाराज हीरासिंह जी को अपने युवराज साहब की शिक्षा-दीक्षा का बड़ा खयाल था। इसलिये उन्होंने उनकी संरक्षा और शिक्षा के लिये स्वनाम धन्य भाई काहनसिंह जी और किशनदास जी को—गुरुमुखी, संस्कृत और अंग्रेजी के लिये--शिक्षक नियुक्त किया। महाराज हीरासिंह जी चाहते थे कि उनका उत्तराधिकारी पंजाबी राजाओं में शिक्षा और बुद्धिमानी में सबसे श्रेष्ठ हो।

महाराजा हीरासिंह जी ने लगभग ४० वर्ष राज्य किया। इस अर्से में सरकार की ओर से आपको जी० सी० एस० आई, जी० सी० आई० ई० की उपाधियाँ मिली थीं। संवत् १६६८ की शरद ऋतु में आपका देहान्त होगया। उस समय आपके राजकुमार की अवस्था २६ वर्ष की हो चुकी थी। संवत १६६६ वि० के आरम्भ में पिता के स्वर्गवास से लगभग एक माह बाद आपको सिंहासनारूढ़ कराके सरकार अंग्रेज के प्रतिनिधि ने नाभा जाकर अधिकार प्रदान की रस्म अदा की। आप पिता की मृत्यु के समय यूरोप में थे। इसलिये एक महीना गद्दी नशीनी होने में लग गया। आपने अपने समय में राज्य का प्रबन्ध शान के साथ किया। राजसी ठाठ भी खूब बढ़ाये। आपने अपने १२ साल के शासन काल में क्षत्रियोचित ढग से राज्य किया। संवत् १७८० में पटियाला में और आपमें जो झगड़ा चल रहा था। उनका लाभ उठाकर अंग्रेज सरकार ने आपको गद्दी से अलग कर दिया।

महाराज रिपुदमनसिंह

अलग करने के सरकार अंग्रेज ने चाहे जो भी कारण बताये हों किन्तु भारतीय लोकमत ने उनमें स्वाभिमान और कौम परस्ती के कारण भी समझे थे। वास्तव में महाराज रिपुदमनसिंह जी स्वाभिमानी थे ही। पंजाब में राजतिलक के समय ताज पहनाने की प्रथा यह चल पड़ी थी कि अंग्रेजी एजेन्ट सिर पर ताज रखा करते थे। किन्तु आपने एजेन्ट महोदय से यह कह कर कि आप कष्ट न करें। यह तो मेरे घर की चीज है मैं खुद ही पहन लूंगा। अपने हाथों ही पहन लिया। इसके अर्थ यह समझे जा सकते थे कि महाराज किसी के बनाये हुये राजा अपने को अनुभव नहीं करते थे। प्रजा की सुविधा के लिये उन्होंने तहसीलें बढ़ाई। क्योंकि मालगुजारी वसूल करने के लिये जमींदारों को बीसियों मील हैरान होना पड़ता था। इन्साफ पाने के लिये हाईकोर्ट की स्थापना की। राज्य में आपसे पहले पढ़े लिखों की कुल संख्या आठ हजार के करीब थी। आपने विद्या प्रचार के लिये प्राइमरी तक की शिक्षा मुफ्त कर दी और अनेकों स्थानों पर स्कूल खुलवाये। पंडित मदनमोहन मालवीय जी को उनके नाभा पधारने पर हिन्दू यूनीवर्सिटी के लिये एक लाख रुपये प्रदान किये।

राज्य की प्रजा में स्वायत शासन उपयोग की योग्यता और लालसा बढ़े इस दृष्टिकोण से आपने डिस्ट्रिक्ट बोर्ड और एडवाइजरी कमेटियो की स्थापना की। डिस्ट्रिक्ट कमेटियों का निर्माण चुनाव-पद्धति

से होता था। जो राज्य के मामलों मे एडवाइजरी कमेटी को सलाह देती थी। वे बहुत ही सादे लिबास में रहते थे। कभी-कभी तो प्रजा के अनेकों मनुष्य उन्हें राज्य का कोई सरदार मात्र ही—इस सादगी के कारण—समझ लेते थे। सादा वेश में ही राज्य के गाँवों में भी निकल जाते और प्रजा जनों से उनकी दिक्कतों और तकलीफों की जानकारी प्राप्त करते।

एक पजाबी लेखक ने महाराज की देश भक्ति के सम्बन्ध में लिखा था उनकी मि० गोखले और पडित मदनमोहन मालवीय से दोस्ती थी। उन्होंने तिलक फंड में भी रुपया दिया था। वे राज्य की नौकरियों मे भी प्राय सभी स्थानों पर देशियों को ही रखते थे योरोपियन लोगों को उन्होंने राज्य के ऊँचे ओहदों पर नहीं भरा। जग योरोप के समय भी उन्होंने अपनी प्रजा से कोई चन्दा नहीं माँगा। न अपनी ओर से सेना देने की इच्छा ही प्रकट की। प्रजा को कोई कष्ट सरकारी आदमियों या उनकी वगैरह न पहुँचे इस बात की वे पूरी चिन्ता रखते थे। पजाब के गवर्नर लूईडैन जब वापिस विलायत जा रहे थे तो उन्होंने पजाब की रियासतों में दौरा किया। महाराजा रिपुदमनसिंह जी ने उन्हे लिख भेजा खेद है कि मैं स्वयम इस समय दौरे पर हूँ, आपका सत्कार किसी उचित समय पर करूँगा।"

ननकाने के काण्ड को सारी दुनिया जानती है। महाराज की सहानुभूति अपनी कौम की ओर इस मामले में रही। शिरोमणि गुरुद्वारा प्रबन्धक कमेटी के आदेशानुसार आपने भी अपने राज्य में शहीदी दिवस मनाया। उस दिन राज्यकीय विभागों की छुट्टी करदी। जो सिख अकाली पोशाक पहन कर ननकाना साहब जाते थे। उनके लिये महाराज नाभा ने कोई रोक टोक नहीं की। यह उनकी कौमपरस्ती की छोटी छोटी घटनायें है। जो अंग्रेज सरकार की नौकरशाही को कब बर्दाश्त हो सकती थी।

नाभे पटियाले का कई पीढ़ियों से मन मुटाव चला आरहा था। यह बात हम पूर्व लिख चुके हैं। महाराज रिपुदमनसिंह अपनी ओर से तो चाहते भी न थे कि यह झगड़ा सदैव रहे। इसीलिये भाई साहब भाई अरजनसिंह जी बागड़िया के बीच में पड़ने से उन्होंने महाराजा पटियाला से शिमला में मुलाकात भी की किन्तु सन् १९२१ ई० तदनुसार संवत् १९७८ में फिर गड़बड़ होनी शुरू हो गई। एक चोरी का अपराधी भाग कर पटियाला पहुँच गया। महाराजा नाभा ने पटियाला से उसे मागा किन्तु पोलीटिकल एजेन्ट ने पटियाला को मना कर दिया कि मुलजिम को नाभे के हवाले मत करो। पता नहीं उन्होंने किस कानूनी पाइंट से ऐसी सलाह महाराजा पटियाला को दी थी। नाभे को मुलजिम नहीं सौंपा गया। इसके कुछ ही अरसे बाद पटियाला का एक सब इन्सपेक्टर अब्दुल अजीज व्यभिचार के मामले में और एक कानिस्टेबिल मुहम्मद याकूब डाके के अपराध मे राज्य नाभा मे पकड़े गये और उन्हें सजा भी दी गई। पटियाला ने इसमे अपनी तौहीन समझी उसने पोलीटिकल डिपार्टमेन्ट को नाभे की शिकायत की। पोलीटिकल डिपार्टमेन्ट तो मौके की तलाश मे था ही उसने तो बीच में ही कई बार महाराज रिपुदमनसिंह को गद्दी से हटाने के इरादे किये थे किंतु अवसर अनुकूल न समझ कर चुप्पी साध ली गई।

पटियाले के लगाये गये इलजामों की जांच के लिये सरकार ने इलाहाबाद हाईकोर्ट के जज स्टूअर्ट को मुकर्रिर किया। निर्णय के लिये आठ मुकदमे जज महोदय के सामने पेश हुये।

पहला यह कि नाभे की ईसरी नाम की जनानी कुछ गहने और टूम नाभे के जमाई के साथ लेकर लाहौर भाग गई और फिर पटियाला चली गई। नाभे के पुलिस अफसरों ने उसे पटियाला जा पकड़ा किंतु पटियाला राज्य ने उन्हें नाभे के सुपुर्द नहीं किया। दूसरा यह कि सबइन्सपेक्टर अब्दुल अजीज ने एक स्त्री का सत भंग किया और मौके पर पकड़ा गया। पटियाला ने कहा वह एक डाकू की

तलाश में नाभा गया था। तीसरा यह कि याकूब ने डकैती की और उसने खुद स्वीकार किया कि इन्सपेक्टर जनरल पटियाला के हुक्म से ही मैंने ऐसा किया था। पटियाला ने इसका जवाब दिया कि नाभा अकालियों का मददगार है और यह सिपाही पटियाले ने अकालियों की देखभाल के लिये मुकर्रिर किया था। अकालियों से मिलकर इस पर झूठा मामला चलाया गया है।

चौथा यह कि, जब याकूब को पकड़ कर नाभा पुलिस हमारे राज्य मे जो कि उसके रास्ते मे पड़ता था लेजा रही थी तो रास्ते मे हमारी पुलिस पर गोली चलाई। नाभा का कहना था यह बिलकुल बनावटी बात है। पांचवां यह कि—जब नाभा पुलिस मुलजिम को पकड़ ला रही थी पटियाला ने उसमे हस्तक्षेप किया—पटियाला ने इससे इन्कार किया। छटा यह कि नाभे जनानी को उड़ाने के षडयंत्र रचे जिसे कि पुलिस कब्जे मे रख रही थी। इसमे पटियाला ने नाभा के एक मुसलमान डाक्टर को अपने पक्ष मे कर लिया था जिसकी कि बहुत सी जायदाद पटियाला में थी। सातवां मुकदमा नं० ३-४ से ही संबंध रखता था। वह पैधनी गाँव की स्थिति बताकर दायर हुआ था। आठवां यह कि रियासत पटियाले के एक भागे हुए घोड़े को नाभे ने नीलाम कर दिया।

कहना न होगा कि पटियाला ने अपनी चतुराई से अपने पक्ष को पूरी चालाकी से पेश किया और उसकी मदद पर पोलीटिकल एजेन्ट भी था। नाभे के अनेकों नौकरों को मिला लिया गया और उन्होंने नाभे के विरुद्ध गवाहियां दीं। मुकदमे मे दोनों ओर से रुपया बहाया गया। मदरास तक के नामी-नामी कानून दां अपने पक्ष के साबित करने के लिये दोनों ओर से बुलाये गये।

मुकद्मे के दौरान मे नाभे के अनेकों कर्मचारियों ने पूरी नमक हरामी दिखाई। नित-प्रति कोई नाभा छोड़ कर भागता तो कोई पटियाले के अफसरों से जा मिलता। कोई कागज उड़ा ले जाता तो कोई छिप जाता। जिन अफसरों की रक्षा के लिये महाराज ने मुकद्मा अपने ऊपर लिया था वे ही उन्हे दगा देने लगे।

अंत में यह हालत पैदा हो गई कि महाराज बेचैनी में पड़ गये और वजीर, सैक्रेटरी सबने उन पर जोर डाल कर इस आशय की चिट्ठी वायसराय के नाम लिखवादी कि मैं गद्दी छोड़ने को तयार हूँ। तीन लाख सालाना पर देहरादून या मंसूरी रह कर गुजर कर लूँगा। पटियाला के हरजाने को भी रियासत नाभा पूरा कर देगी।

पंजाब के सारे पत्रों मे यह खबरें प्रकाशित हो गई थीं कि महाराज नाभा गद्दी से उतारे जा रहे हैं। इसलिये संत तेजासिंह और भाई दीदारसिंह उनसे मिलने नाभा गये। जहाँ उन्हे मुश्किल से मिलने दिया गया। उन्होंने जो ब्यान लौट कर दिया उसका सार है कि महाराजा नाभा और पटियाला के बीच इस प्रकार का वैमनस्य कुछ स्वार्थी अफसरों ने फैलाया था और उन्होंने अन्त समय तक दोनों ओर राजी-नामा भी नहीं होने दिया। राजी से गद्दी त्याग की चिट्ठी भी उनकी बेचैनी से लाभ उठाकर पोलीटिकल एजेन्ट के दबाव मे आकर उनके सलाहकारों ने ही लिखा ली थी। और जब महाराज ने चाहा कि मेरी चिट्ठी वापिस मंगा दी जाय। लोगों ने टालमटोल ही कर दी और वह समय ला दिया जब कि महाराज को राज्य छोड़ने का सरकार की ओर से हुक्म आ गया।

महाराज रिपुदमनसिंह को गद्दी से हटाये जाने का समाचार सारे भारत के सिखों के लिये वज्रपात सा लगा। बम्बई कलकत्ता से लेकर सारे पंजाब मे सरकार के इस कार्य पर रोष प्रकट किया गया। शिरोमणि गुरुद्वारा प्रबन्धक कमेटी ने इस मामले को हाथ मे ले लिया और जैतो पर सत्याग्रह रोप दिया।

तमाम हिन्दुस्तानी अखवारों ने भी सरकार के इस कार्य की निन्दा की किन्तु सरकार टस-से-मस नहीं हुई। और महाराज साहब को गद्दी छोड़ देनी पड़ी वे देहरादून भेज दिये गये। जहाँ से दक्षिण भारत मद्रास के किसी जिले मे नजरवन्द कर दिये गये। उनका खर्च भी काफी कम कर दिया गया। कहा गया कि वह अपने खर्चे में से वहुत कुछ अपने पक्ष के आन्दोलन पर खर्च करते हैं।

महाराज ने निर्वासन में इस वात की काफी कोशिश की कि एक वार उन्हें फिर से रियासत का प्रवन्ध सौंप दिया जाय किन्तु उनकी यह वात कतई नहीं सुनी गई।

उनके सम्वन्ध में कई वार ऐसेम्वली में भी प्रश्न किये गये किन्तु सरकार ने कोई सतोषजनक उत्तर नहीं दिये।

उनके राजकुमार साहव की शिक्षा का सरकार ने उचित प्रवन्ध किया उन्हें विलायत में भी शिक्षा दिलाई। अगले वर्ष उनको शासनाधिकार दे दिये गये। उनका शुभ नाम श्री प्रतापसिंह जी है।

प्रतापसिंह

महाराजा रिपुदमनसिंह जी ने तीन चार वर्ष वाद अपना नाम गुरुशरणसिंह जी रख लिया था।

उनके समय के वाद राज्य में शासन-सम्वन्धी कई हेर-फेर हुए हैं कुछ उन्नतशील कार्य भी हुए हैं। महाराज प्रतापसिंह जी ने शासनाधिकार हाथ मे आने पर राज्य में कई सुधार किये। उनका विवाह नरेन्द्र मडल के वायसचांसलर महाराजा धौलपुर की सुपुत्री के साथ हुआ है।

सन् १९४८ मे अन्य राज्यों की भांति यह राज्य भी पेप्सू यूनियन में शामिल हो गया है।

उन्नीसवाँ अध्याय

कैथल का भाई खान्दान

कैथल भी जाट सिखो की एक रियासत थी। उस समय उसकी भी अच्छी इज्जत थी। समय पाकर सरकार अंग्रेज ने उसे जब्त कर लिया। 'सैरे पंजाब' के लेखक ने कैथल का वर्णन इस प्रकार दिया है—"गुरु अमरदास जी ने गुरु रामदास जी को गद्दी देते समय कहा था कि तुम्हे एक कार्य करना है और वह कार्य एक पवित्र कार्य है। तुंग, सुल्ताना और गुमराला गॉवों के बीच में कई कोस का एक जंगल था उस जंगल में एक बहुत पुराना तालाब था किन्तु वह मिट्टी से भरा हुआ था। गुरु अमरदास जी उसे खुदवा कर फिर से जलाशय बनवाना चाहते थे। बस यही वह कार्य था जिसे पूरा करने के लिये गुरु अमरदास जी ने अपने परम आज्ञाकारी शिष्य रामदास जी से कहा था गुरुजी ने अपने योग्य शिष्य को एक बार वह स्थान दिखा भी दिया था। उस जंगल की वह भूमि आस-पास के गॉवों के जाट जमीदारो की सम्मिलित भूमि थी। इसलिये गुरुजी ने उस इलाके के प्रमुख-प्रमुख चौधरियों को बुलाकर उस स्थान पर जलाशय खुदवाने का अपना पवित्र संकल्प प्रकट किया। जाट इस बात को सुनकर बड़े प्रसन्न हुए और उन्होंने वह भूमि बड़ी खुशी के साथ गुरुजी को सौंप दी। जगह मिलने पर सम्वत् १८२६ वि० मे आषाढ़ के महीने मे गुरु रामदास जी ने उस स्थान पर एक नगर और सरोवर की नींव डाली।

उस समय गुरु लोगों के पास साम्पतिक शक्ति बहुत ज्यादा न थी। वे अपनी आध्यात्मिक शक्ति से उपदेशों द्वारा लोगों पर प्रभाव पैदा किया करते थे। गुरु रामदासजी के उस इलाके में अनेकों हिन्दू उनमे भी विशेषतया जाट शिष्य हो गये। इन्हीं जाट शिष्यों मे एक भाई भगतू जी थे।

भगतू जी भी नाभा और फरीदकोट की तरह विराड़ वंशी जाट थे। इनके पिता का नाम ओमजी था। भगतू जी इतने ईश्वर-भक्त और गुरु-भक्त थे कि लोग उनके असली नाम को भूल गये और वे भगतू के नाम से ही मशहूर हो गये। गुरु रामदास जी इस चिन्ता मे थे कि तालाब किस भाति से खुदे। उनके पास कोई साधन न था। इधर ओमजी भी कोई सम्पन्न व्यक्ति न थे किन्तु उनके अन्दर श्रद्धा थी इसलिये वह खुद तालाब खोदने मे लग गये। आस-पास के गॉवों के अन्य आदमियों ने भी अवैतनिक रूप मे तालाब मे खुदाई करना आरम्भ कर दिया। गुरु रामदास जी ओमजी से बहुत प्रसन्न हुए और उन्होंने आशीर्वाद दिया कि तुम्हारे एक प्रतापी पुत्र होगा। दैवयोग से यही हुआ। ओमजी के सुपुत्र भगतू जी के नाम से आज सारा पंजाब परिचित है।

गुरु रामदास जी के देहावसान के पश्चात् गुरु अर्जुन देव जी गद्दी पर विराजे। भगतू जी ने सिख लोगों की और गुरु जी की बहुत सेवाये कीं। अत. सिख भी उन्हे श्रद्धा की दृष्टि से देखने लगे। भगतू जी करामाती भी पूरे होगये थे। उनके सम्बन्ध मे अनेकों विचित्र बाते कही जाती हैं। जिनमे से एक गुरु हरिरायजी के समय की है। गुरु हरिराय जी ने उनसे कहा, भगतू मैं चाहता हूँ कि तुम अपना शरीर मेरे ही आगे छोड़ दो। भाई भगतू ने गुरुजी की यह बात मान ली और जालंधर जिले के

करतारपुर मे जाकर पृथ्वी में समा गये। कुछ समय बाद गुरु हरिराय जी जब इधर से गुजरे तो उन्होंने भगतू की समाधि के पास जाकर कहा, ऐ सिख धर्म के सच्चे अनुयायी प्रकट होकर हमें दीदार दो। भगतू गुरु जी की इस बात को सुनकर समाधि मे से जिन्दा निकल आये। योगियों के लिये असम्भव नहीं। गुरुजी से कुछ देर बाते करके फिर समाधि मे समा गये। गुरुजी ने आशीर्वाद दिया कि तुम्हारे वशजों के घर मे राज्यश्री विराजेगी।

यह भी कहा जाता है कि गुरु अर्जुनदेव जी ने इन्हे प्रेम से भाई की उपाधी दी थी। इस कारण उनका खान्दान भाई के नाम से भी प्रसिद्ध है। भाई भगतू जी के दो बेटे हुए।जीवनसिंह और गोरासिंह उनके नाम रखे गये किन्तु जीवनसिंह सत लोगों की बड़े प्रेम से सेवा करते थे इसलिये लोग उन्हें सतदास के नाम से भी पुकारने लगे। जीवनसिंह जी की औलाद के लोग भटिंडा की ओर चले गये। वहाँ जाकर उन्होंने एक इलाके को अपने कब्जे मे कर लिया। गोरासिंह की संतान के लोगों ने कैथल और पूनोली पर अपना आधिपत्य जमाया। अवसर पाकर उन्होंने अपने लिये राजा की उपाधि से विभूषित किया। गोरासिंह के महासिंह, किशनसिंह, माईदास और दयालसिंह नाम के चार पुत्र उत्पन्न हुए। जिनमें महासिंह और किशनसिंह की सतान के लोग भी भटिंडा की ओर चले गये। माईदास निस्सतान मर गये। भाई दयालसिंह के छ पुत्र उत्पन्न हुए। सुक्खासिंह, धनसिंह, गुरुदाससिंह, देसूसिंह, बुद्धासिंह और बख्तसिंह नाम रक्खे गये। सुक्खासिंह के दो पुत्र हुए विसावासिंह और गुरदत्तसिंह। धनसिंह के कर्मसिंह और चढ़तसिंह नाम के पुत्र हुए। देसूसिंह के लालसिंह, सुजानसिह और बख्तसिंह के दालसिंह नाम का पुत्र हुआ, बुद्धासिह जी नि:सतान रहे।

कैथल पर अधिकार देसूसिंह की सतान का था। लालसिंह उनका बड़ा पुत्र कैथल का राजा बन गया था। कैथल राज्य की आमदनी चार लाख सालाना की थी। सुक्खासिंह के पुत्र विसावासिंह के पास भी बीस गाम थे। राजा लालसिंह जी के दो पुत्र हुए, उदयसिंह और प्रतापसिंह ये दोनों ही नि:संतान मर गये। सवत् १८०३ वि० मे राजा लालसिह जी का स्वर्गवास हो गया। इस समय तक भारत के नेपोलियन महाराजा रणजीतसिंह जी का स्वर्गवास हो चुका था और लाहौर के राज्य सिंहासन पर एक आज तो दूसरा कल आ जा रहे थे। रानी महताबकौर जो कि उदेसिंह की रानी थी, उदेसिंह के बाद गद्दी की मालिक हुई। रानी महताब कौर स्वाभिमानिनी और वीर प्रकृति की थी, अंग्रेजों से लड बैठीं। अंग्रेजों की शक्ति के मुकाबले बेचारी क्या कर सकती थीं। हार निश्चित थी। सेना तितर-बितर हो गई। फिर भी आपके दिल मे आशा थी। अत आप मैदान भागीं और सेना संचय करने में लग पड़ीं। अंग्रेजी सेना ने आपको गिरफ्तार कर लिया और आपका राज्य जब्त कर लिया गया। राजा उदेसिंह ने अपने चचेरे भाई विसावासिंह जी को दत्तक बना लिया था। सरकार ने उसको चौबीस हजार सालाना का इलाका छोड़ दिया और रानी साहिबा को बीस हजार सालाना की पेशन कर दी। इसी बीस हजार मे से उन्हें अपने भानजे चूहड़सिंह को भी खर्च देना पड़ता था। पोदा नाम के गाव में उदेसिंह जी ने अपने प्रवास के लिए एक कोठी बनवाई थी। सरकार ने महारानी महताबकौर को उसी कोठी में रहने के लिए आज्ञा दी। बाद के समय में यह स्थान भी इलाका अंग्रेजी में ले लिया गया। विसावासिंह और उसके पुत्र अरनौली में रहने लगे। संगतसिंह और उनकी संतान के लोग इलाका सिहूवाल के अधिकारी रहे। कैथल एक अच्छा राज्य था और उसकी निज की टकसाल भी थी। सरकार ने कैथली रुपये की कीमत ।||-) स्थिर की थी।

वीसवॉ अध्याय

रियासत जीन्द

पटियाला नाभा और जीन्द सब एक ही फुलकियॉ वश की रियासते है। चौधरी फूल के पुत्र तिलोकसिंह के दो पुत्र थे। गुरदित्तसिंह और सुखचैनसिंह। गुरदित्तसिंह के वंशज नामा के और सुखचैन सिंह के वंशज जीन्द राज्य के संस्थापक व अधिकारी हुए। इन्हीं की एक शाख बडरूखा व वाजेदपुर की मालिक हुईं।

संवत् १८०८ वि से चौधरी सुखचैनसिंह का स्वर्गवास हो गया। उसने अपनी जिदगी में ही अपने इलाके को अपने तीनों पुत्रों मे बॉट दिया था। आलमसिंह को पिंड वाली बुलाकीसिंह को पिंड सुखचैन और गजपतिसिंह को फूल दिया। खुद गजपतिसिंह के साथ ही रहता था। लगभग ६० गॉवों का मालगुजार वह बादशाह की ओर से स्वीकृत हो चुका था।

चौधरी सुखचैनसिंह का बड़ा लड़का आजमसिंह बड़ा जवॉमर्द आदमी था दहशत उसको छू तक नहीं गई थी वह लड़ाइयों मे शाही सेनाओं मे टक्कर लेने लग गया था। सरहिंद की विजय के बाद इसने बहुत सारे खाली पडे हुए इलाकों पर कब्जा कर लिया था। जिन दिनों यह सरहिंद की लड़ाइयों मे था इसके छोटे भाई के स्थान फूल गॉव पर महाराजा नाभा ने अधिकार कर लिया क्योंकि इसकी मॉ अकेले होने के कारण गजपतिसिंह को लेकर अपने मायके चली गई थीं। सवत् १८२१ वि० मे अचानक घोड़े से गिर पड़ने के कारण आलमसिंह की मृत्यु हो गई। आलमसिंह ने अपने पीछे कोई सतान नहीं छोड़ी थी। इससे उनकी सरदारनी ने अपने देवर गजपतिसिंह के साथ अपना नाता (सम्बन्ध) कर लिया। इस तरह गजपतिसिंह को राज और रानी दोनों ही मिल गये। और वालीयावाली से जितना भी इलाका आलमसिंह जी का लगता था। सब के मालिक हो गये।

गजपतिसिंह भी अपने भाई के समान बहादुर थे उन्होंने भी रोहतक पानीपत तक धावा किया और बहुत सारा धन लूट कर लाये।

गजपतिसिंह जी ने कब्जे मे किये हुए इलाके का खिराज दिल्ली के बादशाह को देना बरावर जारी रक्खा किन्तु सवत् १८२४ में किन्हीं कारणों से खिराज न जा सका। कुछ पहला भी बाकी था। इस अपराध मे वजीर नजीबखॉ ने इनपर चढ़ाई कर दी और गिरफ्तार करके देहली ले गया किन्तु बादशाह मुहम्मद शाह इनकी बुद्धिमानी और निर्भीक बातों से बड़ा प्रभावित हुआ। उसने इनके पठन-

पाठन का भी प्रवन्ध कर दिया। वादशाह ने इन्हे वापिस इलाके में भेज दिया । कहा जाता है खिराज के एवज में चुकने तक के समय तक के लिए ये अपने लडके भूपसिह को दिल्ली छोड़ आये थे। कुछ ही दिनों वाद खिराज का रुपया भेज दिया और भूपसिह को वापस वुला लिया।

सवत् १८२७ वि० मे दिल्ली के नये वादशाह शाह आलम ने इन्हे राजा का खिताव और मरातिव भेजा।

संवत् १८३२ वि० मे गजपतिसिंह ने सगरूर पर भी जोकि नाभे के अधिकार मे था—कब्जा कर लिया। इस कस्बे पर देर से इनका मन था क्योंकि वह वडरुखा के पास ही था। गजपतिसिंह ने अपने नाम का सिक्का भी चला दिया।

इन्होंने अपनी भाभी से नाता किया था उससे एक लडकी पैदा हुई। पजाव के रईसों की तरह और भी एक विवाह कर लिया। जिससे तीन लडके और एक लडकी पैदा हुए। लड़कों का नाम मेहरसिंह, वाघसिंह और भूपसिह थे। लड़की का नाम राजकौर था। यह वही राजकौर थी जो सुकरचकिया मिसल के वहादुर सरदार महासिंह जी से व्याही गई थीं और जिनसे कि महाराजा 'शेरे पजाव' रणजीतसिंह पैदा हुए थे।

खिराज की टालमटूल देखकर वादशाहकी आज्ञा से रहीमखॉ हॉसी के हाकिम ने सवत् १८२६वि० मे राजा गजपतिसिंह जी पर चढ़ाई कर दी। राजा गजपतिसिंह वडे चतुर थे। उन्होंने पटियाला और कैथल सभी से मेल वना रखा था। अत सभी ने उन्हे सहायता दी। इस लडाई में रहीमखॉ की हार ही नहीं हुई अपितु खुद भी लड़ाई में मारा गया। इसके कुछ समय वाद राजा गजपतिसिंह जी ने पटियाला और अपनी संयुक्त सेना लेकर रोहतक पर चढ़ाई कर दी। नजीवुद्दोला का लड़का जाव्ताखॉ और गुलाम कादिर ने आकर मुकाविला किया। दोनों ओर से डट कर लडाई हुई अत मे सुलह हो गई। फिर भी इस लडाई से पटियाला और जीन्द दोनों को लाभ रहा। जीन्द को गुहाने का कुछ इलाका मिल गया। पटियाला को रोहतक, हिसार में कुछ गॉव मिल गये।

समय की आवश्यकता के अनुसार राजा गजपतिसिंह ने जीन्द में पक्का गढ़ वनवाने और अच्छे २ महल तिवारे वनवाने का भी आयोजन किया और वे अपने इस काम में सफल हुए।

राजा गजपतिसिंह जी में एक गुण यह भी था। वे अपने पड़ौसी और शक्तिशाली पटियाला राज्य से सदैव मेल रखते थे। उन्होंने पटियाला के साथ लडाइयों में भाग लिया। उसके आन्तरिक झगडों को सुलझाने और दवाने में भी सहयोग दिया। पटियाला के लिये वे सदैव उसी भाति शुभचिन्तक रहे जिस भाति कि महाराजा रणजीतसिंह जी के लिये कपूर्थला के राजा साहिव फतहसिंह शुभचिन्तक रहे थे और हर काम में मदद और सलाह मशविरा भी देते रहते थे।

महाराज गजपतिसिंह ने अपने वडे लडके मोहरसिंह को सफेदूँ का इलाक दे रखा था। वह वहीं पर सवत् १८३७ में स्वर्गवास कर गया। उसके पीछे उसका एक मात्र लडका हरीसिंह भी अपने वाप से दो वर्ष वाद ही कोठे से गिर कर मर गया। हरीसिंह की एक लड़की चन्द्रकौर थी। जिसका विवाह थानेसर के सरदार वहगासिंह के पुत्र फतहसिंह के साथ हुआ था। वह भी वेचारी विधवा हो गई। और विधवा होनें पर वडी वुद्धिमानी के साथ अपने राज्य को संभालती रही। पजाव राज्य हरण के वाद अंग्रेजों ने लावारसी में इस इलाके को अपने कब्जे में कर लिया। इसी प्रकार हरीसिंहजी की सिंहनी दयाकौर जोकि अपने वाप दयासिंहजी के इलाके वलेवाल की स्वामिनी थीं उनका भी इलाका सरकार ने जब्त कर लिया।

राजा गजपतिसिंह जी ने जहाँ पटियाला के साथ मेल निभाया वहाँ नाभा के साथ शत्रुता भी पूरी निबाही थी। नाभे के राजा हमीरसिंह जी को जिसके नौकरों ने राजकौर की शादी के समय घास काटने पर मिहमानों का अपमान किया था। बदला लेने के लिये अपने बीमार होने का बहाना करके अपने यहाँ बुलाकर कैद कर लिया था। यह काम इनका ऐसा था। जिसकी किसी ने भी प्रशंसा नहीं की। हमीर-सिंह को कैद करने के बाद आपने उसके इलाके पर चढ़ाई भी की। किन्तु उसकी रानी ने बराबर चार महीने तक सामना किया। संगर भी उसी समय कब्जे में किया गया था।

मेरठ की ओर जब महाराजा पटियाला ने चढ़ाई की तो आपने उसमे पटियाला की सहायता की। मिर्जा सफीबेग के साथ लड़ाई हुई। विजय सिखों के साथ न रही। राजा गजपतिसिंह को गिरफ्तार भी होना पड़ा। किन्तु बाद में समझौता हो जाने पर छोड़ दिये गये।

आपने अपने समय मे दर्जनो लड़ाइयाँ लड़ीं और बड़ी बहादुरी के साथ जीवन बिताया। अंत मे जीवन लीला भी लड़ाई के समय ही बुखार आजाने से समाप्त हुई। सवत् १८४६मे आपका स्वर्गवास हो गया। चारों ओर आपका शोक मनाया गया।

आपकी साहसिकता और बुद्धिमानी का ही प्रभाव था। कि आपके समय मे जीन्द जैसे राज्य की स्थापना और वृद्धि काफी तौर से हुई।

राजा गजपतिसिंह जी के बाद उनकी रियासत दो हिस्सों में बट गई। भूपसिंह जी को बडरूखाँ का इलाका मिला और भागसिंह को इलाका जीन्द व सफेदूं का। चूंकि भागसिंह भूपसिंह से बड़े थे। अत: राज्य का अधिक भाग और राजा का खिताब उन्हे ही मिला। उनकी उम्र इस समय २१ वर्ष की थी।

राजा भागसिंह

राजा भागसिंह जी का इतिहास पटियाले से बहुत ताल्लुक रखता है। क्योंकि वे अधिकांश लडाइयों में पटियाला के मददगार रहे थे। संवत १८४३ मे गोहाना और खरदोदा उन्होंने बादशाह शाह-आलम से बतौर जागीर के हासिल किये थे। संवत् १८५१ वि० मे जो फौज बीबी साहिबकौर के अधिपत्य में अम्बाराव व लक्ष्मनराव मरहट्टों से लड़ने के लिये राजगढ़ पर गई थी। उसमे राजा भागसिंह शामिल थे। उस समय सारी सिख सेना का नायकत्व राजा गुलाबसिंह जी कर रहे थे। इसमे भागसिंह जी ने बड़ी बहादुरी दिखाई और विजय सिखों की ही हुई। दूसरे साल कर्नाल राजा के हाथ से निकल गया। जिसे मरहट्टों ने विजय करके टामसन साहब को सौंप दिया। कारण कि सिखों को पीछे हटाने मे टामसन ने मरहटों को खूब मदद दी थी। जार्ज टामसन ने अगले वर्ष जीन्द और सफेदूं पर भी हमला किया। किन्तु यहाँ भागसिंह ने बड़ी बहादुरी के साथ मरहटों को भगा दिया। टामसन पर जिस समय सिखों ने संयुक्त धावा किया था। उसमे भी राजा भागसिंह जी मौजूद थे और इस लड़ाई मे सिखों ने टामसन के ऐसे लत्ते लिये कि उसे हाँसी से भी भागकर अग्रेजी इलाके में दम लेने की फुरसत मिली।

सवत् १८६२ में राजा भागसिंह ने कैथल के राजा लालसिंह को साथ लेकर लार्डलेक की मदद मरहटों को पजाब से भगाने के लिये की। सहारनपुर के इलाके की मरहटों से रक्षा भी की। लगभग ४ महीने इन्होंने लार्डलेक का साथ दिया। फिर लार्डलेक के आदेशानुसार राजा भागसिंह जी को जोकि इनके भानजे होते थे इस बात के लिये तयार किया कि मराठों की अपेक्षा अंग्रेज और महाराजा रणजीतजिंह जी मे सन्धि कराने के उपलक्ष मे अग्रेजों ने भागसिंहजी को इलाका बुवाना जो जिला पानीपत की तरफ है मिला।

राजा भागसिंह जी अपनी बुद्धिमानी से दोनों तरफ से हाथ साफ कर रहे थे। पटियाला और नाभा के तथा राजा रानी पटियाला के झगड़ों को सुलझाने के लिये जब महाराज रणजीतसिंहजी पटियाला आये तो भागसिंह जी भी शामिल हुये और अपने भानजे से उन्होंने लुधियाना में २४ गाँव प्राप्त किये जिनकी आमदनी १५३८०) सालना थी। जंडियाले २४ गाँव ४३७०) रुपये सालाना की आमदनी के और जगरांव के २ गाँव २०००) सालना आमद के तथा कोट के २ गाँव २३७०) वार्षिक आय वाले भी प्राप्त किये। दूसरे वर्ष महाराजा रणजीतसिंह ने जो गाँव रामपुर वाले गूजरसिंह से छीने थे और २७ गाँव धर्मसिंह के बेटे से लिये थे वे भी भागसिंह जी को दे दिये। जिनकी आमदनी १६२५५) सालाना की थी। इस प्रकार लगभग पचास हजार सालाना का इलाका बढ़ा लिया।

संवत् १८६४ वि० में जब राज्य की पैमायश लेफ्टिनेंट एफ वायफ ने की तो उनमें आपने सब प्रकार मदद दी कोई विघ्न नहीं डाला।

अगले वर्ष आपने हरिद्वार जाने की तयारी की और अपने सरदार महाँसिंह लाम्बा और बिशनसिंह को देहली में इस बात की इजाजत लेने के लिये भेजा। महाराज के लिये हरिद्वार में निहायत उमदा प्रबन्ध किया गया था। ३०० आदमी उनकी खिदमत के ही लिये नियुक्त किये गये थे। इसी अवसर पर महाराज को किसी ने इस आशय का समाचार दिया कि महासिंह बाघसिंह उनको धोखा दे रहे हैं। और अपने समस्त रुपयों को देहली में हुण्डियों और अंग्रेजी नोटों में बदलवा रहे हैं। उनकी यह सूचना भी विश्वीसनीय नहीं थी कि हरिद्वार जाने में महाराज को कोई खटका नहीं है।

महाराजा साहिब को यह भी राय दी गई कि इतनी सारी सेना के साथ यात्रा न की जाय। यद्यपि यह खबर भ्रम ही पैदा करने वाली थी। किन्तु अशत सचाई भी रखती थी। दो वर्ष के बाद ही महासिंह का बिना आज्ञा लिये जीन्द से बनारस चला जाना भेद से खाली नहीं था।

राजा भागसिंह जी हरिद्वार का मेला देखने गये और फिर वहीं से सीधे लाहौर को चले गये। जहाँ वह अपने भानजे महाराजा रणजीतसिंह जी के साथ ही ठहरे। संवत् १८६५ वि० में महाराज रणजीतसिंह जी सतलज के पार आये उस समय भी आप उनके साथ ही रहे। इसी वर्ष के आरम्भ में लालसिंह और पटियाला की फौजों ने घोघराना पर हमला किया। एक अर्से तक लडाई होती रही। महाराजा रणजीतसिंह जी ने बीच में पड़कर लड़ाई को खतम कर दिया। किन्तु इस तरह भी किले के मालिक गूजरसिंह को तो हानि ही उठानी पड़ी उसके लिये तो सांपराज और नागराज में कोई फर्क नहीं रहा। महाराजा रणजीतसिंह ने किले को खाली कर लिया और अपने एक प्रेमी सरदार कर्मसिंह के सुपुर्द कर दिया।

कर्मसिंह ने अपने मामा राजा भागसिंह को दिये गये इलाके भी मांगे कहा, वह भी उन्हें ही दे दिये जाँय किन्तु महाराजा रणजीतसिंह दिये हुए इलाकों को वापिस करना उचित नहीं समझते थे। इस तरह निराश होने पर कर्मसिंह ने भागसिंह जी के साथ कई बार खटपट भी की। लडाई और खून खराबी हुई।

महाराजा रणजीतसिंह जी पंजाब के रहे सहे रईसों से मनोइच्छित भेंट चाहे जब तलब करने की शक्ति रखते थे। उन्होंने सवत् १८६५ वि० में मालेरकोटला से एक लाख रुपया तलब किये। उसने २५०००) तो दे दिये। बाकी के लिये नाभा, जीन्द, कैथल आदि को जामिन बना दिया। आगे इन सब की प्रार्थना पर शेष रकम माफ कर दी।

महाराजा रणजीतसिंह जी की इस सख्ती से ये सभी सिख राजे लौट गये और इन्होंने भीतर ही

भीतर अपनी रक्षा के लिये अंग्रेजों से लिखा-पढ़ी आरम्भ कर दी। अंत मे स्पष्टत अंग्रेजों से यह इच्छा जाहिर की कि अपनी शरण मे हमारे अस्तित्व को बनाये रखें। भागसिंह जी इस मामले मे अग्रणी रहे, उन्होंने सरकार पर इस बात को भी प्रकट कर दिया कि हम लोग नीति के तौर पर रणजीत-सिंह से मिलते-जुलते हैं वरना हमारा सच्चा सम्बन्ध तो आप ही के साथ है।

भागसिंह अपनी मित्रता की गाँठ को और भी मजबूत करने के लिये देहली को भी रवाना हुये किन्तु मार्ग मे ही अक्टरलोनी की फौजे पंजाब की ओर आती हुई मिल गईं जिनके साथ भागसिंह जी, को लौटना आवश्यक सा हो गया। इसी वर्ष की १८ वीं फरवरी को फौजे लुधियाना पहुच गईं। यहाँ पर दो वर्ष से जींद का अधिकार था। अपने मित्र के राज्य में छावनी कायम करने मे अंग्रेजों को हिचक भी क्यों होती। भागसिह भी मित्रता का सबूत देने के लिये चुप हो रहे किन्तु छावनी पड़ जाने के बाद और लुधियाना को अंग्रेज राज्य मे शामिल किये जाने के बाद भागसिंह जी ने इसके बदले मे पानीपत करनाल के इलाके माँगे। अक्टरलोनी ने भी इसका समर्थन कर दिया किंतु गवर्नर जनरल ने यह दरख्वास्त ना मंजूर कर दी। दरख्वास्त नामजूर करते समय कहा गया था कि आवश्यकता के न रहने पर छावनी लुधियाने से हटा ली जायगी। इस प्रकार एक सरसब्ज इलाके के हाथ से निकल जाने के कारण भाग-सिंह को भारी मानसिक कष्ट हुआ।

राजा भागसिंह के तीन स्त्रियाँ थीं। बड़ी से फतहसिंह जी पैदा हुए थे और छोटियों से क्रमश. प्रताप-सिंह और महताबसिंह। बीच की रानी पर अधिक प्यार होने के कारण राजा भागसिंह जी चाहते थे कि राज प्रतापसिंह को ही मिले। संवत् १८७० वि० मे राजा भागसिंह पर लकवे का आघात हुआ। आधा शरीर कतई बेकार हो गया। कहा जाता है कि आपको शराब पीने की भारी आदत थी। उससे अपना पिंड कई बार इरादा करने पर भी नहीं छुड़ा सके। जब जिन्दगी की उन्हे कोई आशा नहीं रही तो पौलिटीकल ऐजेन्ट के पास सरकार से मंजूर करा देने के लिये एक वसीयत भेजी। जिसमे राजगद्दी बीच के लड़के प्रतापसिंह को देने का जिक्र था और फतहसिंह को संगरूर और बसियान की जागीर देने की बात लिखी गई थी। गवर्नर जनरल ने इस बसीहत को भारतीय रस्म रिवाज के खिलाफ बताकर ना मजूर कर दिया और सम्बन्धित अफसरों को सूचना दे दी कि ठीक समय पर जाकर फतहसिंह को गद्दी पर बिठा दिया जाय। भागसिंह जी को इससे भी बड़ी मानसिक वेदना हुई।

किन्तु इस समय राज्य का कोई उचित प्रबन्ध नहीं था। राजा साहब किसी काम को नहीं सम्भाल सकते थे। फतहसिंह से वे और भी चिढ़ गये। प्रतापसिंह को प्रबन्ध सौंपने से वे अंग्रेजी के डर से डरते थे। फतहसिंह की माताजी से भी उन्हे कोई प्रेम न था। आखिरकार बजीर और दूसरे लोगों की यह सलाह हुई कि महताबसिंह की माँ रानी समराई को राज्य का प्रबन्ध सौंप दिया जाय। सर्व सम्मति से उन्हें राज्य की बागडोर सौंप दी गई। उन्होंने भी वचन दिया कि मैं जो भी कुछ करूँगी इसाफ के साथ और निष्पक्ष होकर करूँगी।

रानी महताबकौर के हाथ प्रबन्ध आते ही प्रतापसिंह जी को अब पूरा निश्चय हो गया कि अब तेरे हाथ राज्य नहीं पड़ने का अत. उन्होंने षडयन्त्र रचना शुरू किया। रानी समराई ने सरकार को लिखकर भेजा कि प्रतापसिंह की वजह से हमारी जान खतरे मे है वह खुल्लम-खुल्ला बगावत करना चाहता है। सरकार की ओर से प्रतापसिंह को चेतावनी भी दी गई कि इस प्रकार उनके हाथ से वह सौभाग्य भी निकल जायगा जो उनके लिये उचित प्रबन्ध करके सरकार बख्शना चाहती है।

सरकार की इस चेतावनी का प्रतापसिंह पर कोई असर नहीं पडा और उन्होंने सवत् १८७१ वि के आषाढ़ महीने मे हमला करके रानी समराई और उनके मुशी जैशिव तथा और भी कितने ही व्यक्तियों को मार कर जींद पर कब्जा कर लिया। रेजीडेण्ट को ज्योंही यह समाचार मिला। उन्हें उसने दिल्ली को खबर दी तथा करनाल और हॉसी के फौजी अफसरों को हुक्म की प्रतीक्षा में फौरन तय्यार रहने की आज्ञा दी। सरकार ने प्रतापसिंह को गिरफ्तार करके दिल्ली भेजने और राज्य का प्रवन्ध फतहसिंह जी के हाथ सौंप देने के फर्मान जारी किये। अंग्रेजी फौजे जींद राज्य में घुस पड़ीं। जब प्रतापसिंह को यह खबर लगी तो उसका दिमाग ठंडा हो गया और वह जींद को छोड़ कर किला कालानवाली जो भटिंडा की ओर था भाग गया किन्तु जब वहॉ भी अंग्रेजी फौज के जत्थे जा पहुँचे तो सारा माल मता लेकर और अपने चालीस साथियों समेत भागता फिरता फूलासिंह अकाली के साथ जा मिला। फूलासिंह वह व्यक्ति था जो महाराजा रणजीतसिंह जी से झगड़ा करके लाहौर छोड़ कर चला गया था और नन्दपुर माखूवाल पर कब्जा करके इधर-उधर की लूट पर अपना गुजर कर रहा था। उसके पास ६०० सवार और दो तोपें थीं। प्रताप सिंह इसके पास दो महीने तक रहा। फूलासिंह बड़ा निर्भीक जवान था उसके जोड़ के पंजाब में बहुत ही थोडे आदमी थे। वह प्रतापसिंह की मदद भी करना चाहता था। यह समाचार पाकर पजाब के रेजीडेंट ने नाभा और मालेरकोटला के रईसों को फूलासिंह पर हमला करने की इजाजत दी। प्रतापसिंह किले में अकेला घेर लिया गया। वह वहाँ से भी भागकर लाहौर पहुचा। इस प्रकार के हत्याकारी काम करने के कारण महाराजा रणजीतसिंह ने भी उसे शरण नहीं दी और वह बेचारा पकड़ा जाकर दिल्ली भेजा गया। जहॉ नजर बंदी में ही संवत् १८७३ मे उसकी मृत्यु हो गई। उधर फूलासिंह भी निहालसिंह अटारी वालों के हाथ पराजित किया जा चुका था।

इधर कुछ ही महीने पहले महताबसिंह का भी देहान्त हो चुका था। प्रतापसिंह के दो स्त्रिया थीं किन्तु सन्तान किसी के भी न थी। राज्य का प्रवन्ध अपने बाप के नाम पर कुॅवर फतहसिंह ही चला रहे थे।

सवत् १८७६ वि० मे राजा भगतसिंह जी की भी मृत्यु हो गई। कहना न होगा कि अंतिम समय में उन्हें एक से एक बढ़कर मानसिक कष्ट उठाने पड़े थे। दो बेटों की मृत्यु से और राज्य में होने वाले रक्तपात से उन्हे निश्चय ही बडा दुख हुआ था।

राजा भागसिंह जी के अपने परिवार एव युवराज फतहसिह जी के सिवा नीचे लिखे व्यक्ति थे। उनकी तीन रानियॉ जिनमे एक बडी पिण्डी के सरदार बख्शासिंह की पुत्री दयाकौर। फतहसिंह जी इन्हीं से पैदा हुये थे दूसरी पाखरसिंह जोधपुर वालों की पुत्री सदाकौर। प्रतापसिंह जी की आपही माँ थीं किन्तु राजा साहब से पहले ही मर गई थीं। तीसरी समराई महताबसिंह जी की मा थीं। राजा साहब के प्यारे पुत्र प्रतापसिंह ने दो विवाह किये थे (१) कृपालसिंह शामगढ़ वाले की पुत्री भागभरी के साथ (२) सुन्दरसिंह काकड़ फलोर वालों की लड़की रतनकौर के साथ। तीसरे लडके महताबसिंह के भी दो स्त्रिया थीं। (१) जलकौर राजा बल्लभगढ़ की राजकुमारी (२) मुदकी वाले सरदार की लड़की रामकौर। युवराज फतहसिंह के भी दो रानियाँ थीं (१) रानी खेमकौर सरदार दीदारसिंह की लड़की (२) बहमणा के सरदार ... सिंह की लड़की रानी साहबकौर से एक लड़का उत्पन्न हुआ। जिसका नाम सगतसिंह रक्खा गया। दूसरी रानी के कोई सतान न थी। प्रतापसिंह और महताबसिंह की रानियों से भी कोई सन्तान नहीं हुई थी।

इस प्रकार का अपना कुटुम्ब छोडकर राजा भागसिंह जी शोक और चिन्ताओं से तप्त हृदय से

लेकर संवत् १८७६ मे इस संसार को छोड़ गये।

राजा फतसिंह जी ने वड़ी वुद्धिमानी से अपनी रियासत का काम संभाला किन्तु खेद है कि वह अपने पिता के वाद अधिक दिनों तक जिन्दा न रह सके। इन्होंने अपनी जिन्दगी मे दो वार लाहौर की यात्रा भी की। महाराजा रणजीतसिंह जी ने स्वागत सत्कार भी काफी किया था।

राजा फतहसिंह जी

मुदकी वाले सरदारों ने सात हजार की आमदनी के सानावाल, तलवडी और हलवारा नाम के गॉव आपको दिये थे। जिनकी सनद नाभे मे रक्खी वताई जाती है। आपके पिता के तीन वर्ष पीछे सम्वत् १८७६ मे ३२ वर्ष की अवस्था मे आपका स्वर्गवास हो गया उस समय आपने अपने पीछे एक राजकुमार संगतसिंह राज्य के उत्तराधिकारी छोड़े जिनका कि संवत् १८६७ मे जन्म हुआ था।

अपने पिता के देहावसान के वाद आप उनके उत्तराधिकारी वने। कुलरीति के अनुसार गद्दी नशीनी की रस्म जीन्द मे अदा हुई। संवत् १८८७ वि० मे आपका विवाह शाहावाद के रईस सरदार रणजीतसिंह जी को पुत्री शोभाकौर के साथ वड़ी धूम से हुआ।

राजा संगतसिंह जी

महाराज संगतसिंह जी तो नावालिग थे ही किन्तु अंग्रेज सरकार ने भी राज्य प्रवन्ध की कोई उचित व्यवस्था नहीं की किसी के प्रति खास जिम्मेवारी न होने के कारण सभी अधिकारी और कर्मचारी मन मौज हो जाते हैं। जींद मे भी यही हाल हुआ। दिन पर दिन प्रवन्ध सम्वन्धी ढिलाई से प्रजा में असन्तोष वढ़ने लगा।

संवत् १८८३ वि० मे राजा सगतसिंह जी महाराजा रणजीतसिंह जी की मुलाकात के लिये लाहौर गये और होली का त्यौहार वहीं मनाया। महाराजा रणजीतसिंह जी ने अपने सरदारों और अफसरों से उन्हे भेटें भी दिलाई। इसके वाद महाराजा रणजीतसिंह जी ज्वालामुखी की यात्रा के लिये गये और राजा साहव को भी ले गये जा उनके साथ दीनानगर तक गये और फिर वहॉ से महाराज के साथ ही लौट आये।

संवत् १८८४ वि० में राजा साहव संगतसिंह ने फिर महाराजा रणजीतसिह जी से मुलाकात करने के लिये लाहौर की ओर कूच किया। वास्तव में वात यह थी कि राजा साहव महाराजा से विशेष प्रेम करते थे। महाराज भी उन्हे कुछ न कुछ देते ही रहते थे। इस समय भी उन्होंने मौजा अनयाना को सरदार रामसिंह से छीनकर उन्हे दे दिया। राजा साहव ने अपना फौजी जत्था लेजाकर उस पर अपना दखल जमा दिया। सरदार रामसिंह ने एजेन्ट गवर्नर से लिखा पढ़ी की। सरकार ने जोकि राजा संगतसिंह से इस वात पर चिढ़ती भी थी कि वे महाराजा रणजीतसिंह से इतना घनिष्ट सम्वन्ध रखते हैं। राजा साहव से जवाव तलव किया कि उन्होंने रामसिंह के गॉव पर कब्जा क्यों कर लिया है। राजा साहव ने साफ उत्तर दिया कि यह गॉव और इसके अलावा दो गॉव और भी मुझे महाराजा रणजीतसिह जी ने वतौर जागीर के दिये हैं जिनकी मेरे पास सनद मौजूद है। इस जवाव के वाद चाहिये तो यह था कि अंग्रेज सरकार महाराजा रणजीतसिंह जी से पूछती कि उन्होंने यह अनाधिकार चेष्टा क्यों की है? किन्तु भला उनसे पूछने की हिम्मत थी। राजा साहव से ही कहा "चूंकि अनियाना गॉव पर उनका अधिकार न था अत. वह गॉव आप नहीं रख सकेंगे। राजा साहव ने गॉव अनियाना रामसिंह को लौटा दिया। गवर्नमेंट इतने से भी चुप न हुई उसने एक एलान जारी किया कि विना सरकार की इजाजत के वे किसी भी राजा या सरकार के साथ साधारण रस्म रिवाज की अदायगी के वह कोई गहरा सम्वन्ध

स्थापित न करें। राजा साहब में चाहे अन्य कई अवगुण थे किन्तु उनके अन्दर यह गुण अवश्य था कि वे सहज ही डर नहीं जाते थे। इसलिये उन्होंने महाराजा रणजीतसिंह जी के साथ जो दोस्ताना किया था उसे तोड़ा नहीं। वे बराबर उनके साथ चिट्ठी पत्री करते रहते थे। उनके कुछ गावों का ठेका लेने का भी विचार कर रहे थे ताकि सबन्ध शिथिल न हो किन्तु अंग्रेजों को यह भी न भाया।

राजा साहिब राजधानी से दूर गॉव बसिया मे रहते थे। कुछ चालचलन भी उन्होंने बिगाड़ लिया था। असल मे स्वतन्त्र किन्तु छोटी उम्र के राजाओं को उनके सरदार और मुसाहिब अपने स्वार्थ के कारण कुमार्ग पर डाल ही देते है। जब राजा रईस ऐश आराम मे गर्क हो जाते हैं तब वे अपना उल्लू सीधा करते है। जीन्द में यही बात हो रही थी। एक ओर राज कर्मचारी प्रजा को तबाह कर रहे थे दूसरी ओर डाकुओं के दल उठ खडे हुए थे। विवश होकर प्रजा को भी एजन्ट के पास कुप्रबन्ध की शिकायते करनी पड़ीं। इससे सरकार को और भी कई एक हथियार हाथ लग गये। सवत् १८६० वि० में लेफ्टीनेण्ट एलवर्ट को सरकार ने डाकुओं का दमन करने के लिये जींद के इलाके मे भेजा। डाकू इतने उद्दड हो चुके थे कि उन्होंने एलवर्ट के सैनिकों पर हमला कर दिया। जिससे कई सिपाही घायल हुए और पलटन को काफी नुकसान उठाना पडा। राजा साहिब ने माली नुकसान को तो पूरा कर दिया फिर भी डाकुओं को दबाने मे कामयाबी हासिल न हो सकी।

सवत् १८७१ मे महाराजा रणजीतसिंह ने राजा साहिब को लाहौर में एक जरूरी काम से बुलाया। सरकार को यह पता चला तो उन्हे मौखिक धमकी दी गई कि वे यदि लाहौर गये तो उनके हक में अच्छा न होगा। इससे राजा साहिब के दिल पर बड़ी चोट लगी। राजा साहब चलने की तयारी करने लगे हालाकि पहले से ही गवर्नमेंट उन पर इल्जाम लगा रही थी कि वे महाराजा रणजीतसिंह के साथ मिलकर अंग्रेजों के खिलाफ कोई षडयन्त्र रच रहे हैं।

जब कि लाहौर जाने की राजा साहब तयारी कर रहे थे अचानक बीमार हो गये। हाला कि रात्रि के समय वे मजे मे शराब पीकर सोये थे किन्तु प्रात. ही उनकी तबीयत खराब होगई। बराबर दशा गिरती ही गई। उनके साथियों ने उन्हें सगरूर ले जाने की तयारी की पालकी मे बिठाकर थोडी ही दूर चले थे कि उनके प्राण पखेरू उड़ गये। इस प्रकार वह दैवात् ही और सदा के लिये महाराजा रणजीतसिंह जी के मिलने से रुक गये।

सर लेपिलग्रिफिन ने अपनी पुस्तक 'पजाब राजाज' मे महाराजा सगतसिंह जी का वर्णन करते हुए लिखा है कि उनके बाप ने खजाने में बहुत सारा रुपया छोड़ा था किंतु सगतसिंह ने सबको पानी की तरह बहा दिया और उस खर्च का बहुत सारा भाग लाहौर की ओर को जाने वाली यात्राओं में हुआ। लाहौर में वे केवल राजनैतिक कारणों से जाते थे और वह कारण अंग्रेजों के विरुद्ध ही हो सकते है।" हम समझते हैं ग्रिफिन का यह केवल इल्जाम है। इसमें सचाई बहुत कम है। फिजूलखर्ची कितनी उन्होंने की और उन्हें राज संभालते समय कितना खजाने मे मिला था इसके ग्रिफिन साहब ने कोई आकडे तो दिये ही नहीं हैं। खैर यह मानते हैं कि उन्होंने फिजूल खर्ची की लेकिन लाहौर की यात्राओं से नुक्सान हुआ यह तो सही नहीं है। लाहौर के जाने से तो उन्हें हर बार लाभ ही हुआ। महाराजा रणजीतसिंह जी ने उन्हे काफी जागीरें दीं। अपने सरदारों से भेटें भी दिलाईं।

मृत्यु के समय राजा साहब की औरत केवल २३ वर्ष की थी अभी तक उसके कोई सतान भी नहीं थी। हालां कि शादी उन्होंने तीन जगह की थी। बड़ी रानी शोभा कुवरि शाहाबाद के रईस की

लड़की थी दूसरी सरदार जीवनसिंह धारीवाल की लड़की और तीसरी सरदार दूलासिंह टिब्बा वाले की लड़की थीं। राज खालसा के लेखक ज्ञानी ज्ञानसिंह ने एक चुटकी ली है कि "इन बेचारियो ने महाराज का मुँह भी न देखा था फिर सतान कहां से हाती" दरअसल बात तो यह है कि अभी तो उनकी उम्र ही ब्याह लायक हुई थी किन्तु स्वार्थी लोगों ने उन्हे बचपन मे ही शराब और बुरी आदतों की ओर डाल दिया था। यदि राजा संगतसिंह मे शराब पीने और अच्छी अच्छी स्त्रियों के साथ मुहब्बत करने की कुटेव न होतीं तो वे अपना नाम अपनी हिम्मत और दृढ़ता की बदौलत जरूर कर जाते।

राजा सगतसिंह जी की मृत्यु के बाद सरकार ने जीन्द का प्रबन्ध उस समय तक के लिये जब तक कि राज्य का कोई वारिस साबित न हो जाय। कोर्ट आफ वार्डस के अधीन कर दिया। भला राज्य के लिये वारिसों की क्या कमी रह सकती थी। अव्वल तो महाराजा फतहसिंह की विधवाओं ने दावा पेश किया। किन्तु उनके खिलाफ सगतसिह की रानियों ने अपने हकदार होने का दावा पेश कर दिया। बडरूखाँ और वाजेदपुर के सरदारों ने भी जोकि राजा गजपतिसिंह के छोटे लडके भूपसिंह के वशजो मे से थे। अपने हकदार होने के दावा किये। नाभे के तत्कालीन महाराज ने भी मौके को न चूका। नाभे का दावा तो यह कहकर नामजूर कर दिया कि चौधरी सुखचैन के बाद ही वह तो काफी दूर अलग हो चुका है। उससे अधिक नजदीकी भी मौजूद हैं। सगतसिंह की नवयुवती स्त्रियाँ इतने बड़े राज्य को नहीं सभाल सकतीं इस आधार पर अधिकार से वचित कर दिया गया। मुख्यत दावे सरदार सरूपसिंह जी वाजेदपुर और सरदार सुखसिंह बडरूखाँ के थे। इसलिये इनके इतिहास पर थोड़ा सा प्रकाश डालना उचित ही होगा। राजा गजपतिसिंह जी के तीसरे लड़के का नाम भूपसिंह था। राजा गजपतिसिंह के बाद भूपसिंह को बडरूखाँ और वाजेदपुर के परगने जागीर में मिले थे। उसने बडे सतोप और बहादुरी के साथ अपने परगनों की तरक्की की। भूपसिंह जी के दो पुत्र थे कर्मसिंह और बसावासिंह। कर्मसिंह ने अपने पिता से झगडा करके बडरूखाँ को अपने कब्जे मे कर लिया। इस पर भूपसिंह ने दूसरे फूल सरदारों की मदद लेकर बेटे को दंड दिया और उसे केवल मटमूदपुर गाँव दिया। कर्मसिंह फिर भी काबू में न रहा और उसने वाजेदपुर पर कब्जा कर लिया। किन्तु जब उसे वाजेदपुर छिनता दिखाई दिया तो वह भागकर लाहौर महाराजा रणजीतसिंह जी के पास चला गया। जब भूपसिंह जी की मृत्यु हो गई तब फूल सरदारों ने उसकी कुल जागीर दोनों बेटों कर्मसिंह और बिसावासिंह मे बाँट दी। बटवारे मे कर्मसिंह को बड़ा होने पर भी छोटा हिस्सा दिया। क्योंकि वह सतोप से न रहा था। पिता से भी बगावत की थी। बडरूखाँ का इलाका बसावासिंह को और वाजेदपुर कर्मसिंह को मिला। कर्मसिंह के ही लड़के का नाम सरूपसिंह था और बसावासिंह के लड़के का नाम सुखासिंह। चूंकि भूपसिंह के बड़े लड़के की औलाद होने के कारण सरूपसिंह ही जीन्द के लिये अपना दावा पेश कर सकता था। किन्तु सुखासिंह ने इस दलील पर दावा पेश किया कि कर्मसिंह को उसके बागी होने के कारण उसके पिता (भूपसिंह) ने अधिकार-च्युत कर दिया था। अत चूंकि मेरा पिता उनकी जागीर का उचित अधिकारी था अत मैं ही जीन्द की गद्दी का अधिकारी हो सकता हूँ। सरकार अंग्रेज ने सुखासिंह का दावा खारिज कर दिया और सरूपसिंह को जीन्द का राजा बनाया।

चूंकि सरूपसिंह इस आधार पर जीन्द का राजा बना था कि मैं जीन्द के राजा गजपतिसिंह के पुत्र का पोता हूँ। अत सरकार अंग्रेज ने भी इस आधार से लाभ उठा लिया वह यह कि राजा गजपति-सिंह के समय मे जो इलाका उनके पास था। उसी पर सरूपसिंह को मालिकी मिली। बाकी का जो महाराजा

रणजीतसिंह जी की ओर से जागीरों के बतौर दिया गया था। वह उन्हें वापिस कर दिया गया और इलाका लुधियाना अपने कब्जे में कर लिया। संवत् १८६६ के अहदनामे के बाद से प्राप्त हुए सारे इलाके जीन्द के हाथ से निकल गये। सरूपसिंह जी ने इसी पर संतोष किया। अनेकों दावेदारों के होते उन्हें राजा बनाया जा रहा था। यह तो उनके लिये बहुत था।

संवत् १८९४ मे गवर्नर जनरल ने राजा स्वरूपसिंह के अधिकारी होने की घोषणा जारी कर दी। और वह लिस्ट भी प्रकाशित कर दी। जिसके अनुसार उन्हें इलाका मिलने थे।

सर लेपिलग्रिफिन ने उन इलाकों की तालिका जो राजा सरूपसिंह जी को मिलने मंजूर हुए थे 'तारीख राजगान पंजाब' मे इस प्रकार दी है।

नाम परगना	ग्रामों की संख्या	मामले की रकम
जीन्द खास	१४०	१३००००)
सफेदूं	२५	४२००)
आसदा	२६	४७००)
सालोन	८	४२००)
वालांवाली	१०८	७०००)
जच्चेवाला	१	४००)
भोके	१	४००)
लहू	१	४००)
मामला	१	४००)
	३११	२६७०००)

ग्रिफिन साहब ने रकमों का ब्यौरा क्लार्क साहब की संवत् १८९२ और ९३ की रिपोर्टों के आधार पर दिया है। सालोंन के परगने के आठ गाँवों की रकम ४२००) बहुत ज्यादा मालूम होती है। वालांवाली के १०८ गॉवों की आमदनी केवल बीस हजार कुछ कम जान पड़ती है। पर मूल रकमें ये अवश्य हैं। किन्तु कुल इलाका लगभग सवा दो लाख का था। यह अन्दाज सही है।

कोर्ट आफ डाईरेक्टर्स के डाइरेक्टर ने एक और सलाह दी थी वह यह कि जो इलाका न तो रणजीतसिंह जी ने दिया है और न सरकार अंग्रेज ने ही और वह चला आता है महाराज गजपतिसिंह के समय से ही उस इलाके को भी सरूपसिंह जी को दे देने में कोई हर्ज नहीं है। किन्तु डाइरेक्टर की इस बात का कोई असर फैसले पर नहीं हुआ। और सन् १८०८ के अहदनामे से पहिले के गजपतिसिंह जी के अधिकार में रहे इलाकों के अनुसार फहरिस्त पर चढ़ाये हुये इलाके ही सरूपसिंह के जीन्द राज्य का फल रहे।

इस फैसले को सुनकर फतहसिंह की माताओं और रानियों में सख्त नाराजगी फैली। उन्होंने दलीलों के साथ सरकार के फैसले को अपने साथ अन्याय बताया। किन्तु उनकी कुछ भी सुनवाई नहीं हुई।

संवत् १८९४ के वसंत मे कुल खानदान के तमाम रईसों और सरकार अंग्रेज के प्रतिनिधि की उपस्थिति में राजा स्वरूपसिंह जी का गद्दीनशीनी उत्सव हुआ और वे जीन्द राजा के अधिकार बन गये।

राजा स्वरूपसिंह

प्रतापसिंह की रानी भी एक बहादुर औरत थी। उसने देखा कि सरकार अंग्रेज उसकी बातों पर कोई ध्यान नहीं देती है। उसने परगना, वालावाली के बहादुर लोगों को भड़का

दिया और उनकी सरदार खुद बन गई। हालांकि यह रानी का भोलापन था। वह बेचारी कर क्या सकती थी। अंग्रेजों की शक्ति के आगे उस समय उसका यह साहस धृष्टता ही कहा जा सकता था। बालानवाली का सरदार गुलाबसिंह जीन्द की फौज मे रिसालदार था अनेकों सिपाहियों को लेकर बागियों मे मिल गया। बालानवाली के किले और थाने पर बागियों ने कब्जा कर लिया। किन्तु उनके पास कोई भारी शक्ति नहीं थी। फौजों ने आकर बालानवाली को घेर लिया। बागियों की हार हुई। इसमे दिलसिंह लक्खासिंह और प्रतापसिंह की विधवा रानी कैद कर लिये गये। गुलाबसिंह बहादुरी के साथ लड़ता हुआ मारा गया। देवासिंह को फौज पकड़ना ही चाहती थी कि उसने खुद गोली मार ली। गिरफ्तार किये हुए लोगों को अम्बाला भेज दिया गया और फौज का एक दस्ता बालानवाली मे ही मुकर्रिर कर दिया गया ताकि फिर कोई बगावत उठ खड़ी न हो। बालानवाली के इलाके से राज्य को वैसे भी भय था। ये लोग निडर और उद्दण्ड प्रकृति के थे। इनके ही बल पर प्रतापसिंह बागी बना था। हालांकि उस बगावत में भी उन्हे काफी नुकसान उठाना पड़ा था। किन्तु प्रतापसिंह की रानी के साथ इस बार भी खड़े हो गये। अत. फौज का बालानवाली मे रखना उचित ही जंचा था। सफेदूं रियासत जीन्द का एक खास परगना था। सफेदूं मे ही स्वर्गीय राजाओं की समाधे बनाई जाती थीं। संवत् १६०० में सफेदूं इलाके को राजा सरूपसिंह जी से अंग्रेज सरकार ने माग लिया और उसके बदले मे उन्हे कैथल राज्य को परगना माहलान और धावदान दिये। चूंकि संवत् १६०० मे कैथल का राज्य सरकार ने लावारसी में जब्त कर लिया था। इलाके सफेदूं मे ३८ गॉव थे और इन नये परगनों मे २३ गॉव। किन्तु कसबा सफेदूं को सरकार ने जीन्द के ही पास छोड़ दिया। क्योंकि उसके अन्दर स्वर्गीय महाराजाओं की समाधे थी।

संवत् १६०२ मे सरकार अंग्रेज ने महाराजा रणजीतसिंह के उत्तराधिकारियों के साथ बिगाड़ कर लिया। अंग्रेज बहुत दिन से उसे लेना चाहते थे उनके दिल मे रणजीतसिंह का राज खटकता था किन्तु उस समय उनकी हिम्मत न पड़ती थी। अब रणजीतसिंह के बाद पड़ गई। इस समय अंग्रेजों ने महाराजा जीन्द से अपनी सहायता के लिए १५० ऊंट अम्बाला छावनी के लिए मागे। राजा साहब यह सहायता समय पर न पहुँचा सके। इस बात से नाराज हो कर मेजर ब्राडफुट साहब रेजीडेन्ट ने दस हजार रुपया जुर्माना यह अपराध लगा कर कर दिया कि समय पर ऊँट न मिलने से सरकारी फौजों को बड़ी तकलीफ उठानी पड़ी है। इसके बाद ही राजा साहब का इकट्ठा किया हुआ रसद का सामान और फौजी दस्ते भी अम्बाले पहुँच गये। जीन्द की फौज ने बड़ी बहादुरी से लड़ाई मे अंग्रेजों का हाथ बटाया। इसके बाद ही एक दस्ता फौज का काश्मीर मे गुलाबसिंह की मदद करने के लिए सरकार की आज्ञानुसार भेजा उसने भी वहॉ अपनी ड्यूटी को बड़ी सफलता से निभाया। इस प्रकार सरूपसिंह द्वारा दी हुई सहायता से गवर्नर जनरल बहुत प्रसन्न हुये और उन्होंने जुर्माने की रकम माफ कर दी। साथही तीन हजार रुपये की एक जागीर भी दी। काश्मीर जाने वाली फौज को उतने दिनों का दुगना वेतन दिया।

लाहौर के सिख राज्य को जीत लेने के बाद सरकार ने राज्य जीन्द से उस महसूल की प्रथा को मिटा दिया जो बाहर से आने वाले माल पर लिया जाता था। और खिराज माफ कर दिया। इसके अलावा एक हजार रुपये सालाना की जागीर और दी। दूसरे पूना के राजाओं की तरह एक सनद भी इस बात की अदा की कि उनकी रियासत सदैव सुरक्षित रहेगी। इसके बदले मे जीन्द के अधिकारियों को सरकार का खैरख्वाह रहना पड़ेगा।

पंजाब की जब्ती के बाद सरकार ने राजा जीन्द को भी दूसरे राजाओं की तरह फासी देने तक के अधिकार दिये।

महाराजा स्वरूपसिंह जी ने अवकाश मिलते ही अपने राज्य के प्रबन्ध को यथा समय अंग्रेजी तौर तरीके पर सुधारने की कोशिश की किन्तु उनके इस ख्याल से दकियानूसी खयाल के अहलकारों ने सहमति प्रकट नहीं की किन्तु कुछ लोग तो नाराज भी हुए। अहलकारो के सिवा देहाती लोगों को भी अधिक बन्धन पसन्द नहीं आये। जब एक तहसीलदार जब्बे वाला गांव की ओर पैमायश करने गया तो वहा के जमीदारों ने उसे पैमायश करने से रोका। जब वह नहीं माना तो जान से मार डाला। पैमायश प्रथा का विरोध करने के लिये वे बागी होगये उनका कहना था जमीन हमारी है। हमारे गॉव पर जो रकम राज्य को हम अमन अमान बनाए रखने के लिये देते हैं। वह उसे सदैव देंगे किन्तु जमीन नपवाने से राजा को क्या मतलब। उधर के कई गांव इस बगावत से सहमति रखते थे। महाराज स्वरूप सिंह जी ने अपनी कुछ फौज लेकर उन गावों को दबाने के लिये चढ़ाई की किन्तु मारकाट शुरू करने से पहले उन्होंने एक इश्तहार जारी किया कि जो लोग घरों को छोड़ कर बाहर निकल गये हैं अगर वे वापिस घरों पर आ जाय और बागीपने को छोड़ दें तो सरकार सब को माफ कर देगी। साथही यह भी समझाया गया कि जमीन को नाप कर भी सरकार उस पर अधिकार तुम्हारा ही रक्खेगी बल्कि फायदा तुम्हें यह होगा कि इस समय जिसके पास जितनी जमीन है वह उतनी का मालिक मान लिया जायगा। इस प्रकार जमीन का बटवारा भी हो जायगा। अब जहा सारी जमीन का मालिक गाँव है वहा अलग २ व्यक्तियों की मालिकी भी हो जायगी। लोग वापिस लौट आये और बगावत खतम हो गई।

गदर के समय मे हिन्दुस्तान के सभी राजाओं ने भारत को गुलाम बनाने वाले अंग्रेजों को मदद दी थी। महाराजा सरूपसिंह जी उस काम में पीछे नहीं रहे उन्होंने भी अंग्रेजों की खूब मदद की। गदर की खबर सुनते ही संगरूर से मय सेना के कबीले जा पहुँचे। वहॉ पहुँच कर शहर और छावनी की रक्षा का भार उन्होंने अपने ऊपर ले लिया। यदि उनकी निज की सेना मे कुल आठ सौ आदमी थे। परन्तु चू कि उन्होंने उसे भी कवायद आदि अंग्रेजी ढग से सिखाई थी। अत उसने बड़ी मुस्तैदी से कर्नाल की रक्षा की। एक दस्ता फौज का उन्होंने बागपत की रक्षा के लिये भी भेजा। बागपत के पास एक दल था विद्रोही उसे तोड़ देना चाहते थे ताकि इधर की अंग्रेजी सेनायें मेरठ मे न पहुँचने पावें। सरूपसिंह जी के सैनिकों ने उसकी रक्षा कर ली जिससे बनार्ड साहब की पल्टन की सहायता के लिये मेरठ की कुछ फौज पानीपत पहुँच गई और पानीपत को विद्रोहियों की लूट से बचा लिया था। जीन्द की फौज ने सबमे अधिक बहादुरी का काम यह किया कि अंग्रेजी फौज के आगे आगे चलकर नम्हाल का और रार को काबू में करके सड़कों पर कब्जा कर लिया। और अंग्रेजी फौज के लिये रसद जमा की। राजा स्वरूपसिंह स्वय एक दस्ते के साथ थे और वे सातवीं जून को अलीपुर में पहुँच कर अंग्रेजी फौज के सहायक हो गये। कमान्डर इन-चीफ राजा साहब से बहुत खुश हुआ और उसने जीती हुई तोपों में एक राजा साहब को भेंट दी। १६ वीं जून को जीन्द के एक दस्ते ने नसीराबाद मे बागियों का मुकाबला किया और २१वीं जून को दूसरे दस्ते ने बागपत के पुल को जो कि इस बीच मे बागियों ने तोड दिया था तीन ही दिन में तैयार करा दिया। याद रहे यह पुल नावों से बनाया हुआ था। इधर विद्रोहियों ने उस बने हुए पुल से फायदा उठाने के लिये उसे इस्तेमाल करना चाहा वे राजा स्वरूपसिंह की इस दौड धूप का बदला देना चाहते थे। इसलिये बना हुआ पुल भी तोड देना पड़ा। राजा साहब तो इधर

विद्रोहियों को नष्ट करने और अंग्रेजों की मदद करने मे लगे हुये थे इधर रियासत के लोग हांसी, हिसार और रोहतक के आस-पास के इलाके के विद्रोहियों को मदद दे रहे थे जब राजा साहब को यह समाचार मिला तो राजा साहिब को राज मे वापिस आना पड़ा। और उस तूफान को दवाया जो राज्य मे ही खड़ा हो जाने वाला था। बड़ी बड़ी रकमों पर रियासत में से घोड़े खरीद लिये और बड़ी बड़ी तनख्वाहों पर लोगों को भर्ती किया और ये भरती किये हुए सैनिक तथा खरीदे हुए घोड़े अंग्रेजो के सुपर्द कर दिये। इसके वाद दिल्ली के मुहासिरे के समय राजा साहब खुद भी उसमे शामिल हुए। इस समय अंग्रेजों ने एक होशियारी की और वह यह कि राजा सरूपसिंह को रोहतक मे बिठा दिया और देहात के मुखियाओं और जमींदारों को इत्तला दे दी कि वह अपनी मालगुजारी व लगान की रकम राजा सरूपसिंह जी के पास जमा करावे। इससे रोहतक के जाट जो पूरी तरह से विद्रोह मे भाग लेना चाहते थे। दब गये। देहली के हाथ मे आ जाने और कुछ शान्ति हो जाने के बाद सरकार ने राजा साहिब को इजाजत दी कि वे अब कुछ दिन सफेदूं मे रहे और उनकी फौज के २५ आदमी हरसौली मे तथा कुछ देहली मे विद्रोहियों के मुकाविले के लिये अंग्रेजी सैनिकों के साथ मुकर्रिर किये। ५०० आदमी जनरल वानकोर्ट के साथ हांसी को भेजे और ११० आदमी सरदार कान्हासिंह जी की अध्यक्षता मे झझर को रवाना किये। इसी प्रकार २५० रोहतक मे और ५० गुनाहा मे मुकर्रिर किये। इन विवरणों के पढ़ने से सहज ही पता चल जाता है कि रोहतक, हिसार, हांसी, कर्नाल, पानीपत और बागपत सब स्थानों पर विद्रोह को दवाने में जीन्द राज्य की सेना और राजा साहिब सरूपसिंह जी ने जी तोड़ कर और सम्पूर्ण श्रद्धा विश्वास के साथ सरकार अंग्रेज का साथ दिया। कहा जाता है कि पटियाला, नाभा, कपूर्थला और दूसरी सभी सिख और गैर सिख हिन्दू रियासतो ने इसी प्रकार की सहायता सरकार अंग्रेज की अथवा कम्पनी राज्य की की थी। इन सहायताओ और सेवाओं से अंग्रेजों की जान ही नहीं बची अपितु भारत के इस सिरे से उस सिरे तक लगी हुई आग को बुझाने मे भी बड़ी अच्छी तरह से सफल हुए।

विद्रोह के समाप्त हो जाने पर राजा सरूपसिंह जी की इन सेवाओं के बदले में जनरल विल्सन साहब ने सरकार को राजा साहब की बड़ी तारीफ लिखी रावर्टसन ने तो लिखा था। "अगर ठीक समय पर राजा सरूपसिंह जी की मदद न मिलती तो हमे बड़ी कठिनाई का सामना करना पड़ता। यही नहीं कि राजा साहब ने केवल रसद और फौज से ही हमारी मदद की हो किन्तु देहली के हमले मे तो वे खुद भी शामिल हुए।" सम्वत् १९१४ वि० की ५ नवम्बर को गवर्नर जनरल ने राजा साहब सरूपसिंह जी की सहायताओं के सम्बन्ध मे खुद लिखा था। "राजा साहब द्वारा इस नाजुक मौके पर की गई सेवाओं के लिये गवर्नमेट उनकी हृदय से कृतज्ञ है।"

इस प्रकार प्रशसा और बधाइयॉ देकर ही सरकार चुप न रह गई उसने राजा साहब को जागीरें भी दीं। दादरी का एक लाख का इलाका जो कि वहॉ के नवाब से जब्त किया गया था। राजा साहब जीन्द को दिया गया। परगना कुलाडा के १२ गॉव जो कि सगरूर से मिले हुये थे और जिनकी वार्षिक आय १३८१३) थी जिनके कि नाम मधापुर, आलमपुर, बल्लवगढ़, कलाड़ा, रोड बड़ा, टोटली, रोग लोई, धर्मगढ, बजुरगा, धीमोद, मोदी, ककराला और शाहपुर थे दिये। इन जागीरों के अलावा देहली मे ६०००) की कीमत की एक हवेली शाहजादा मिर्जा अबूबकर वाली महाराज सरूपसिंह जी के लिये और दी। तोपों की सलामी की संख्या ग्यारह कर दी गई। खिलअत की सख्या भी ग्यारह से १५ मुकर्रिर की गई। इन सब के अलावा राजा साहब को फरजन्द दिल बन्द रास उलएतकाद का खिताब मिला।

धन्यवाद, बधाई, जागीर और खिताबों को उदारता पूर्वक देने से निश्चय ही अंग्रेज सरकार ने राजा साहब को और भी अपनी ओर आकर्षित कर लिया।

महाराज सरूपसिंह जी की ख्वाहिश थी कि बडरुखा और भीमवद्दी आदि इलाके सरकार की मातहती मे हैं। वह फिर से हमारी मातहती में आने चाहियें। इस समय उन्होंने अपनी इच्छा को पूरा कराने के लिये उपयुक्त मौका समझा। अत सरकार के पास इन इलाकों को लेने की दरख्वास्त भेजी। सरकार ने १२८७०) रुपया लेकर यह इलाके इन्हे दे दिये। और बडरुखों के सरदार जीन्द के मातहत बना दिये गये।

इसके बाद प्रबन्ध की सहूलियत के लिये सरकार ने राजा सरूपसिंह जी से कुछ गाव भी बदल लिये जो कि जग, बाघल, बगला, नौरगाबाद, भंड, रगाली, ऊन, बास, रत्नीला, सोफल, बराती, चग, रोला, बजना और चाबाह नाम से मशहूर थे। इनके बदले में सरकार ने चटकली, नदा, तवाली, धवाला, पचोचा खुर्द और कला दोनो और टोडी जिनकी कि आमदनी सालाना १०८५०) थी राजा साहब को दिये। इसी प्रकार सम्वत् १६१८ में भोरी. खेडा, बधाना खेड़ा, पनहारी, ढाड, सरसाना, सोघना, चडलाना, खड़क, योनियां, जियान कपट्टू, खट खोरी जीन्द राज्य के गॉव जो कि जिला हिसार मे थे लेकर नगरी, चपकी मंडावाला धनोरा, असमानपुर, सपर होडी, मरोडी, मरदा जहेडी, मडलावाली, कनहरा, बदले में जीन्द को दे दिये। इन गाँवों की बदला बदली से जमीन के बन्दोबस्त और अपने अपने इलाके के प्रबन्ध मे काफी सहूलियतें हुई। जीन्द के वे गॉव जो सरकार ने लिये थे अंग्रेजी इलाके मे फैले हुये थे उनके बदले में जीन्द के समीप ही महाराज सरूपसिंह को गॉव मिल गये। जिन्हें कि उन्होंने सहर्ष स्वीकार कर लिया।

राजा सरूपसिंह जी को उनके राज्य के आन्तरिक मामलों में पूर्ण स्वतन्त्रता देने और गवर्नमेंट के साथ सम्बन्ध जाहिर करने वाली एक सनद भी दी गई जिसका सार इस प्रकार है—

(१) राजा साहिब और उनके उत्तराधिकारी अपने राज्य के इलाकों पर जिनकी कि सूची साथ है शासक के अधिकार रक्खेंगे। प्रजा का कर्त्तव्य होगा कि इनके हुक्म की पाबन्दी करे। नवीन मिले हुये इलाकों पर इन्हे वही अधिकार होंगे जो पुरानों पर।

(२) राज्य से किसी प्रकार का खिराज सरकार न लेगी।

(३) जीन्द के राजाओं को गोद लेने का उसी प्रकार अधिकार होगा जिस प्रकार कि अन्य फुलकियन स्टेट्स को।

(४) राज्य से सती प्रथा, कन्या वध, और गुलामों का क्रय-विक्रय कानूनन बन्द करेंगें।

(५) किसी शत्रु का सामना करते समय रियासत जीन्द सरकार अंग्रेजी की इस इलाके मे रसद और सेना से मदद करने के लिये हर समय तैयार रहेगी।

(६) बृटिश राज्य की रियासत शुभचिन्तक रहेगी।

(७) गवर्नमेंट रियासत की प्रजा की शिकायतों पर कोई ध्यान न देगी। उनका निपटारा रियासत ही करेगी।

(८) राजा साहिब तथा अन्य राज पुरुषों को अंग्रेज लोग इज्जत की निगाह से देखेंगे और घरु मामलात मे कोई हस्तचेप न करेंगे।

(९) रेलवे लाईन्न और सड़कों के वास्ते राजा साहब खास तौर से सामान और सहायता देंगे।

(१०) जब तक राजा साहिब और उनके उत्तराधिकारी अंग्रेज सरकार के वफादर रहेंगे गवर्नमेंट उनके अस्तित्व को कायम रक्खेगी।

(१) परगना जीन्द (२) परगना सफेदूं (३) परगना लजवाना (४) बालावाल (५) परगना सगरूर (६) परगना बाजीदपुर (७) पिंड भाई भूपा की फहरिस्त इस सनद के साथ शामिल थी जिस पर कि राजा साहब का अधिकार घोषित करके उन्हे उपरोक्त अख्तयारात प्रदान किये गये थे।

इस सनद के बाद भी कुछ परगने राजा सरूपसिंहजी को मिले थे। जिनका ब्योरा इस प्रकार है.— पिंड दोलमवाला (जो रानी जीन्द के इलाके मे शामिल था) पिंड बसीना, पिंड बटाला, परगना दादरी १४ गॉव परगना कलारा मे।

महाराजा सरूपसिंह की कुछ दिनो बाद सुखॉ और दयालपुर की जागीरे जब्त करलीं। जिनकी अपीलें भी सरकार मे हुई। किन्तु सरकार ने संवत् १६१७ की दी हुई सनद के अनुसार हस्तक्षेप करना उचित न समझा।

संवत् १६१८ मे गवर्नर जनरल ने झज्झर के उस हिस्से के जो जीन्द राज्य को छूता था १६ गॉव ३७००००) मे कुल अख्तयारात के साथ और सदैव के लिए जीन्द को दे दिये। इनकी सालाना आमदनी १८५२०) थी। सरकार मे जीन्द को तीसरी कुर्सी नियत की गई थी। पहली पटियाला और दूसरी नाभा को राजा सरूपसिंह जी ने इसके लिये भी लिखा पढ़ी की। सरकार ने उनका दर्जा दूसरा कर दिया। इस प्रकार राजा सरूपसिंह जी ने जहॉ अपने समय में अंग्रेज सरकार को लाभ पहुँचाया वहॉ खुद भी उससे लाभ उठाने मे कसर बाकी नहीं रखी।

संवत् १६२१ मे महाराज साहब को रोग ने घेर लिया उन्हे पेचिश हो गई। उस समय वे बाजीदपुर में रह रहे थे। उन्होंने अंग्रेज डाक्टरों से भी इलाज कराया। कहा जाता है कि उन्होंने एक फकीर से तावे का जोस दिया पानी पीलिया। जिससे उनकी शीघ्र ही मृत्यु हो गई। मृत्यु के समय उनकी ५१ वर्ष की अवस्था थी।

राजा सरूपसिंह जी अवसरवादी थे उन्होंने अवसर के अनुसार ही अग्रेजों को सहायता दी। उनकी सुन्दरता और तन्दुरस्ती का पता सर लेपिलग्रिफिन की इन लाइनो से लगता है.—"जिस समय वह जिरह बख्तर पहन कर सैनिक वेश में फौज के आगे खड़े होते थे तो उनकी सानी का कोई दूसरा रईस नहीं दिखाई देता था।" सरकार की ओर से उन्हे "सितारे हिन्द' का तमगा भी मिलना निश्चय हो गया था। किन्तु अम्बाला पहुँच कर उसे हासिल करने के सौभाग्य से—बीमारी के कारण वंचित रह गये।

राजा सरूपसिंह जी ने अपने समय मे काफी दान पुण्य किये थे। धर्म पूजा के लिये स्थापित होने वाले निरमली अखाड़े के लिये आपने बीस हजार नकद और दो गॉव मडलावाला तथा बल्लभगढ़ जिनकी कि आमदनी १३००) सालाना थी, दिये।

राजा साहब ने भी दो शादियॉ की थीं। (१) किशनकौर जी से जो कि सरदार तारासिंह जी मानशाहिये की लड़की थीं। (२) हॉसी के सरदार काहनसिंह की बहिन सदाकौर से। बड़ी रानी साहिबा से कुँवर रघुबीरसिंह जी का (सवत् १८६६ के कार्तिक मे) जन्म हुआ था। छोटो रानी से १८६७ मे कुँवर रनधीरसिंह जी का जन्म हुआ था।

वह १८ साल की उम्र में ही संवत् १६०५ मे स्वर्ग पधार गये थे। राजा सरूपसिंह जी के बाद कुँवर रघुवीरसिंह जो राज्य के मालिक हुये। संवत् १६२१ वि० को शरद ऋतु में उनका गद्दीनशीनी का

समारोह हुआ जिसमे अंग्रेज प्रतिनिधि और फूल सरदारों ने भाग लेकर पूर्वानुसार खिलअतें बख्शीं।

राजा रघुवीरसिंह

राजा रघुवीरसिंह जी ने अभी राज प्रबन्ध संभाला ही था बहुत दिन नहीं हुये थे कि इलाका दादरी में बगावत हो गई क्या कारण था? इस पर प्रकाश डालने की लेखकों ने शायद आवश्यकता अनुभव नहीं की। किन्तु बात यही थी कि राजा सरूपसिंह के समय में जमींदारों पर मालगुजारी अदा करने की पाबन्दी सी होगई थी। इससे पहले तो योंही धींगागर्दी चलती थी। राजा सरूपसिंह के मर जाने के बाद उधर के जमींदारों ने देखा कि यह नौजवान राजा उन्हें दबाने मे शायद ही सफल होगा। इसलिए उन्होंने खरीफ का मालियाना अदा नहीं किया और जो अफसर उगाही करने गये उन्हें पीटकर निकाल दिया। साथ ही वह सामूहिक बगावत के लिये आमादा हो गये। लगभग दो हजार आदमी चर्खी के मुकाम पर इकट्ठे हो गये। राजा साहब ने इस खबर को पाते ही तोप खाने के समेत चढ़ाई कर दी। मौजा भूफ, और मानिकवास पर बागियों ने अपना झंडा खड़ा कर दिया लड़ाई हुई, लड़ाई मे तोपों का प्रयोग भी हुआ। दोनों ओर से आदमी मारे गये। कुछ बागी राजपूताने की ओर भाग गये। किन्तु शाति हो जाने पर राजा रघुवीरसिंह जी ने लोगों के साथ बदले की भावना मे कोई सख्ती नहीं की। जिससे आगे उनके जीवन मे फिर कोई झगड़ा नहीं उठा।

राजा साहब रघुवीरसिंह ने तीन शादियॉ की थीं। पहिली दादरी के चौधरी जवाहरसिंह जी की सुपुत्री प्रतापकौर से। दूसरी ध्यानसिंह जी गलमाजरियॉं की पुत्री इन्द्रकौर से और तीसरी रायपुर के सरदार ज़हनासिंह जी की लड़की अमीरकौर से। बड़ी रानी से टिक्का बलवीरसिंह और एक लड़की उत्पन्न हुए।

राजा रघुवीरसिंह जी ने सगरूर को अपनी राजधानी बनाया। फिर भी सारी रियासत पर सावधानी से ध्यान रक्खा। शिकार और फौजीपन के शौक के अलावा राज्य का व्यापार बढ़ाने की ओर भी आपकी काफी रुचि थी। सवत् १८२२ मे सगरूर के बाजारों को चौडे और साफ सुथरे बनाने का आयोजन किया। संगरूर में बारहदरी, दीवानखाना और तालाब भी बनवाये। सफेदू मे लालक्षेत्र नाम का एक सुन्दर मकान बनवाया। अमृतसर में जो ढाई परिक्रमा बिना बने पड़ी थीं। उसे भी काफी धन खर्च के पूरा करा दिया। उसमे आपने संगमरमर और संगमूसा लगवाये जो संवत् १८३६ से संवत १८४४ तक पॉच वर्ष मे बन पाई।

राजा रघुवीरसिंह जी अपनी उम्र में एक ऐसा काम कर गये हैं जो उन्हे सदैव अमर रक्खेगा। वह काम है दिल्ली में गुरुद्वारा शीसगज का निर्माण कराना। दिल्ली में गदर दबाने मे सहायता करने के उपलक्ष मे जो मकान राजा सरूपसिंह जी को मिला था वह वही मकान था जहॉ गुरु श्री तेगबहादुर जी ने धर्म हेत अपना शीस दिया था। उस स्थान पर मस्जिद भी बनी हुई थी राजा साहब ने वह भी मागली और वहॉ गुरुद्वारा बना दिया। गदर के कई वर्ष बाद मुसलमानों ने सरकार से दरख्वास्त की कि मस्जिद की जगह जहा कि गुरुद्वारा बना लिया है हमें मिलनी चाहिये, सरकार ने दे दी। राजा रघुवीरसिंह ने इसके विरुद्ध स्टेट सेक्रेटरी को विलायत में लिखा पढ़ी की वहॉ से फैसला राजा रघुवीरसिंह जी के पक्ष हुआ। उन्होंने मसजिद को जो कि मुसलमानों ने गुरुद्वारे के स्थान पर बनाली थी तुड़वा दिया और गुरुद्वारा बनवा दिया। साथ ही खर्चे के लिये एक गॉव भी गुरुद्वारा शीसगंज से लगा दिया।

सम्वत १८५३ में राजा साहब को सरकार ने जी० सी० ऐम० आई० का खिताब दिया। इसके

दो वर्ष बाद राजा साहब ने ज्वालामुखी की यात्रा की। इससे अगले वर्ष काबुल और अंग्रेजों मे लड़ाई छिड गई उसमे आपने ५०० पैदल २०० सवार और दो तोपें सहायता के लिये दीं। इसके बदले मे सरकार ने राजा साहब को राजाये राजगान का खिताब दिया।

सगरूर में बराबर रौनक पैदा करने की ओर आपका ध्यान था। सम्वत् १९३४ मे एक वर्कशाप भी बनवाने का डौल डाल दिया। जिसमे आटे पीसने, बर्फ बनाने और पानी निकालने आदि की मशीनें लगवाईं।

प्रबन्ध करने मे राजा साहब का स्वभाव कुछ लेखकों ने सख्त बताया है। आरम्भ में राज्य की आमदनी ६ लाख रुपये थी उसे भी आपने अपने समय मे तेरह लाख कर लिया। इंसाफ करने मे सदा ही उनका यह ध्यान रहा कि किसी के साथ रियायत और अन्याय न हो जाय। इस प्रकार उनका प्रजा और अहलकार सबो पर रोब भी गालिब था। उन्होंने भी तीन विवाह किये (१) बरेली के राजा शिवदेवसिंह की लड़की के साथ जो छोटी ही आयु में गुजर गईं। (२) शहजादपुर के रईस कृपालसिंह जी की लड़की से (३) राजीयाना के सरदार दीदारसिंह की लड़की से। इनमें मझली रानी से टिक्का बलवीरसिंह जी और दो लड़कियां पैदा हुईं। जिनमे से एक छिछरोली ब्याही गईं और दूसरी वृन्दावन के लोक विख्यात राजा महेन्द्रप्रतापसिंह जी के साथ ब्याही गई। टिक्का बलवीरसिंह जी का जन्म सवत् १९१३ मे हुआ जो कि भरी जवानी मे इस संसार से कूच कर गये। इस दुखदाई मृत्यु का राजा रघुवीरसिंह जी पर घातक असर जरूर पडा। वे उसी समय से खिन्न रहने लगे जिसका नतीजा यह हुआ कि वे भी सम्वत् १९४४ मे स्वर्ग सिधार गये।

सर जेम्स लायल साहब ने राज्य के प्रबन्ध के लिये जीन्द जाकर एक कौंसिल उस समय तक के लिये बनादी, जब तक कि युवराज रणवीरसिंह बालिग न हो जांय। उसके प्रधान सरदार रतनसिंह बनाये गये और मुन्शी हरस्वरूप और रहीमबख्श मेंबर नियुक्त किये गये।

राजा रणवीरसिंह को राजा रघुवीरसिंह की मृत्यु के कुछ दिन बाद ही सिंहासनारूढ़ कर दिये गये। अभी उनकी उम्र सिर्फ नौ साल की ही थी। गद्दीनशीनी के समय सर जेम्स लायल अंग्रेज प्रतिनिधि और महाराजा पटियाला और नाभा भी पधारे थे।

राजा रणवीरसिंह

राजा रणवीरसिंह ने दो विवाह किये। उनमें से एक सरदार जीवनसिंह की पुत्री के साथ संवत् १९५१ वि० दूसरा जनरल हीरासिंह की लडकी के साथ संवत् १९५२ वि० में। राजा साहब को फारसी, गुरुमुखी और अंग्रेजी की शिक्षा दिलाने को सरकार के आदेशानुसार अच्छा प्रबन्ध किया गया था।

बारह वर्ष तक कौंसिल ने राज्य कार्य्य को सभाला इस समय मे उसने खालसा कालेज को ७५०००) रुपया भी दान दिया। सवत् १९५६ वि० मे महाराज रणवीरसिंह जी को राज्य के कुल अधिकार प्राप्त हो गये। जब से आपके हाथ मे शासन की बागडोर आई थी आपने यथा सम्भव प्रजा के हित पर ध्यान दिया। स्वास्थ्य और तालीम के लिये भी आपने प्रबन्ध किया। सरकार की ओर से आपको जी० सी० आई० ई० और के० सी० एस० आई० की उपाधियां भी मिलीं। आपके दो राजकुमार हैं जिनमे से टिक्काराज वीरसिंह जी का संवत् १९७५ मे और कुवर जगतवीरसिंह जी का संवत् १९८२ मे जन्म हुआ है। महाराज ने प्रजा की दशा देखने के लिये राज्य के कई दौरे भी किये हैं। आप भी सगरूर ही मे रहते हैं। लेकिन नियम वह बना रक्खा है कि चार मास संगरूर में चार मास जीन्द मे और चार

मास चरखी दादरी में रहे। आपको सरकार द्वारा १५ तोपों की सलामी दी हुई थी।

राज्य का रकबा इस समय १३३२ वर्ग मील, जन संख्या २२४००० और सालाना आमदनी बीस लाख के लगभग थी, ५० स्कूल हैं। सेना में इम्पीरियल सर्विस और राज्य दोनों प्रकार के लगभग १२०० पैदल २५० सवार और ४० गोलन्दाज हैं।

महाराज ने अपने समय में अनेक सुधार करने का प्रयत्न किया। किन्तु सफलता नहीं मिली।

सन १९४८ में जब पेप्सू यूनियन बना। उसमें यह राज्य भी शामिल हो गया।

इक्कीसवाँ अध्याय

फरीदकोट राज्य का इतिहास

विराडवंश—वर्णन

फरीदकोट राज्य का विस्तार ६४३ वर्ग मील जनसख्या १५०६४१ वार्षिक आमदनी १५ लाख के लगभग थी।

इस राज्य के संस्थापदक बराडवशी सिद्धू गोत्र के जाट थे जिन्होंने कि आगे चलकर सिख धर्म ग्रहण कर लिया था। पटियाला और नाभा की तरह इनका भी यही विश्वास भाटों की दन्त कथाओं के आधार पर बन गया था कि राव खेवा ने सबसे पहले अपने को भाटी-राजपूतों से अलग किया था और अलग होने का कारण बतलाते है राव खेवा का किसी जाट कन्या के साथ शादी कर लेना। यह एक वेहूदी बात जातियों के क्रान्तकारी परिवर्तनों से अजान रहने वाले भाटों और फिर उन्हीं के आधार पर चलने वाले इतिहासकारों की फैलाई हुई हैं। जहाँ तक भी इतिहास साक्षी देता है उससे यह तो सावित होता है कि अनेक जाट घरानों ने अपने को राजपूतों मे शामिल कर दिया कारण कि जाट शव्द और जाति का पृथक अस्तित्व राजपूत शव्द और जाति से कई सदी पहले का है। कुछ सामाजिक रस्म-रिवाज और राजनैतिक कारणों से जाट, गूजर, अहीर कुछ राजवंशी ब्राह्मण प्रभृति राजघराने और समूह ही एक दिन राजपूत शव्द से अभिहित हुए थे सम्भव है रावखेवा के अन्य साथी भाटियों ने सभी अपने पुराने रस्म-रिवाज और राजनैतिक उसूलों को छोड कर राजपूत शव्द धारण कर लिया हो। या इससे पहले। जिस प्रकार चन्द धार्मिक उसूलों और रस्म-रिवाज के भेद से आज सिखों का एक समूह शेप हिन्दुओं के वरावर अलग वनता जा रहा है उसी भाँति बुद्ध काल के वाद पुराने साथियों जाट, गूजर, अहीर, मराठा आदि में से चन्द नये उसूलों और रस्म रिवाजों को लेकर राजपूत समाज वना था।

भाटियों मे से राव खेवा और उनके ही जैसे खयालात के लोगों ने अपने पुराने सामाजिक रीति रिवाजों और उसूलों का उसी भाँति पालन किया जिस प्रकार कि कई शताब्दियों से उनके पुरखे करते आ रहे थे। जो लोग उन उसूलों और रस्म रिवाजो में हेर-फेर करके राजपूत-समाज मे मिल गए वे राजपूत कहलाने लग गये। यही राजपूत भट्टी और जाट भट्टी के अलग होने का संक्षेपत. कारण है। यहाँ यह वता देने में कोई हर्ज नहीं होगा कि सिन्ध मालवा और यौधयों के वीच का देश भातियाना व वतियाना कहलाता था। शव्द भातियाना वातियाना का अपभ्रंश था और वातियाना भी पुराणों

के वाति-भय का रूपान्तर था। इसी देश के लोग भतियाने या भटियाने अथवा भाटी कह-लाते थे। भाटिया और भाटी मे कोई अन्तर है तो केवल यही कि भाटिया वैश्य हैं और भाटी या भट्टी क्षत्रिय हैं। सिंध की भाषा (जिसे पश्चिमी हिन्दी कहा जा सकता है) मे त के स्थान पर वहुधा ट का प्रयोग होता है अत. भाती से भाटी पुकारा गया और पजाबी मे भट्टी। जो लोग भातियाना मे रहते थे वही भट्टी या भाटी थे। भाट ग्रथों में कहा गया है कि यदुवंश के एक राजकुमार ने देवी की भट्टी में अपने शिर की बलि दी थी इससे देवी ने उसे भट्टीराव का खिताब दिया। आज इस प्रकार की बेहूदा बात पर विश्वास नहीं किया जा सकता। अस्तु,

फरीदकोट राज्य को सुव्यवस्थिति रूप मे लाने वाले कपूरसिंह जी थे जिनकी राजधानी कोट कपूरा थी। इस राज्य को भट्टी राजपूतों और भट्टी मुसलमानों से वड़ी हानि पहुँची उन्होंने वड़ी मुश्किल से इस राज्य को पनपने दिया।

हम चाहते हैं कि इस राज्य के सस्थापकों के पूर्वजों के इतिहास पर भी यहाँ प्रकाश डाले जिससे प्रेमी पाठकों को कुछ सामग्री मिल जाय। जिस समय मध्य भारत मे वहमनी मुसलमानों का राज्य था

राव सिद्ध

उस समय पजाव में राव सिद्धू नाम के साधारण से रईस थे जो अपनी ईश्वर भक्ति के लिये अधिक प्रसिद्ध थे शमशुद्दीन वहमनी के इस वाक्य—चनी गुस्त सिद्धू व व फीरोज खाने। दरेग अज तू माले व जान। वकूशम कि औरग के खुश खी। वह फर्र कलाहे तू गिरद व कबी। अर्थात् नियत समय में सिद्धू ने वहमनी फीरोज खाँ की मदद की—से मालूम होता है सिद्धू व उसके बुजुर्ग मध्य भारत में चले गये थे क्योंकि 'वहमनी' मे सिद्धू को सागर का शासक लिखा है। सिद्धू के छ लडके वताये जाते हैं। (१) रावभूर (२) डाहड (३) सूरा के नाम उल्लेखनीय हैं। शेष के नाम रूपा, महा, वाप्पा थे। पंजाव मे सिद्धू गोत के जाटों की वडी भारी तादाद है।

इनका अस्तित्व पंजाव मे ही पाया जाता है। इन्होंने भट्टियों से कई वार लडाई लड़ी। लूट मार करके कुछ इलाके भी हथियाये किन्तु उनके पास ज्यादा इलाके ठहर नहीं सके। इनके लडके का नाम

राव भूर और भय्या सिंह

भय्यासिंह था। जो वडा साहसी था। उसने अपनी वहादुरियों मे थोडे ही दिनों में वीर का पद पा लिया था वीर के दो पुत्र हुए (१) तिलकराव और (२) सतराव। तिलकराव साधु सगति मे पडकर वैरागी हो गया। संतराव ने जगली लोगों का सगठन करके भट्टियों से वदला लेना शुरू किया। किन्तु वह एक लड़ाई मे मारा गया। इसके वाद भट्टियों ने सिद्धू जाटों को तग करने पर कमर वांधी, उन्होंने सत राव को भी कत्ल कर दिया, जिसकी समाधि फरीदकोट के महमा गाँव मे वनी हुई है—और वहाँ साल भर में एक वार मेला लगता है। सतराव के लडके का नाम गोलसिंह व चडहटा था। उसने भी तलवार सम्भाली और जिंदगी भर भट्टियों से लडता रहा। गोलसिंह के लडके का नाम महाचे था। महाचे के लडकों मे वडे का नाम हमीरसिंह था। राव वराड़ इन्हीं हमीरसिंह के वडे लडके थे जिनके नाम पर सिद्धुओं का यह समूह वराड के नाम से मशहूर हुआ है। राव वराड ने अनेक लडाइयाँ लड़ीं उन्होंने फकरसर, लहडी और कोट लद्धू को भी अपने कब्जे मे कर लिया था।

राव वराड़ के दो पुत्र थे (१) राव दुल (२) राव पौड। फरीदकोट के राजाओं का वश राव दुल से और पटियाला, नाभा, जींद, का राव पौड से चला वताया जाता है। पिता के राज्य पर दोनों भाइयों

मे झगड़ा हुआ किन्तु फतह रावदुल की हुई और राव पौड़ दक्षिण पश्चिम की ओर चले गये और कई पीढ़ी तक उनकी संतान की आर्थिक हालत भी शोचनीय रही। मगर सोलहवीं सदी मे चौधरी सघर और डेरम ने कुछ शक्ति पकड़ी और उनका फल पटियाला नाभा और जींद जैसे राज्य है।

राव दुल

राव दुलसिंह को भटियो से कई वार लड़ना पडा किंतु उन्होने हिम्मत नहीं हारी। उनके चार पुत्र हुये। विनयपाल (२) सहनपाल (३) लखनपाल (४) रतनपाल। विनयपाल अपने वाप के इलाके के मालिक हुए। एक वार हिम्मत करके इन्होंने भटिंडा पर कब्जा कर लिया किन्तु भट्टियों ने फिर छीन लिया। विनयपाल के लड़के अजीतसिह थे जिन्हे अपनी सारी जिंदगी भट्टियों से लड़ने मे ही वितानी पड़ी। अजीतसिंह के चार पुत्र हुए (१) बड़े पुत्र मानिकसिंह को अपने वाप से अच्छा इलाका मिला था जो सतलज घग्घर के वीच मे था किन्तु यह उसकी रक्षा नहीं कर सके। इनके सात लड़के थे। (१) टेडासिंह (२) खूखर (३) खखी (४) पक्खू (५) सीलू (६) वाहिना और (७) कन्हैया। अपने वाप के वाद जायदाद के मालिक टेडासिह हुये जिनके कि पॉच लडके थे (१) आसीसिंह (२) वासीसिह (३) इन्द्रा (४)मुद (५) कृपाल। आसीसिह ने अपने समय मे लड़ाई झगड़ो मे काफी ताकत दिखाई किन्तु हालत यह हो गई कि कहीं वैठने को भी जगह नहीं रही। इनके लड़के धीरसेन थे जिनके कि फतू, काला, मुल्क तीन पुत्र हुए। फतू ने अपने समय मे भाटियों के मुकाविले मे पठानों का पक्ष लिया। जिससे उसने पुन अपने कुछ इलाके पर अधिकार कर लिया।

फतू के संगर, लंघर, सहनू और लहनू चार लड़के हुए। संगर ने जव उत्तराधिकार सभाला था उस समय हिन्दुस्तान मे वावर वादशाह आ चुका था। संगर का इलाका चक्कर (कोटकपूरा) के आस-पास था। जिसमे संगर अपने लिये हजारों मवेशी रखता था। एक समय वादशाह वावर भूख-प्यास से भटका हुआ इसी जंगल मे आ निकला। सगर ने उसका खूव सत्कार किया। वादशाह वड़ा खुश हुआ। हुमायूँ और शेरशाह की लडाई के समय सगर ने अपने समस्त साथियों को लेकर हुमायूँ की मदद की थी जिससे यह अपने इलाके के वेखटके मालिक वने रहे। इनके दो स्त्रियॉ थीं जिनके चौदह लडके हुए। जिनमे से कई लड़ाइयो मे मारे गये। सगर के वाद भुल्लनसिंह अपने इलाके का मालिक हुआ। इस समय वादशाह अकवर का जमाना आ चुका था। एक मही राजपूत ने अपनी लड़की अकवर को भेंट कर दी और खुद मुसलमान हो गया। इसका नाम मन्सूर खॉ था। इस प्रकार इनके इलाके पर अव फिर आपत्ति आ गई। भुल्लन और मन्सूर दोनों ही अकवर के पास फैसला कराने गये। अकवर ने कहा किसी समय तुम्हारे इलाकों की हदवन्दी करा दी जावेगी। वादशाह ने उनके लिये पगड़ी दी जिसे दोनों-दोनों सिरों की तरफ से वॉधने लगे। वादशाह ने कहा वस जिसने जितनी पगडी वांधली है। वह उतने ही इलाके का मालिक रहे। कहा जाता है कि इसके वाद ये दोनों अपने देश मे लौट आये किन्तु शाति नहीं हुई। फिर लडाइया हुई। जिनमे वराड़ जीत गये और मन्सूर खॉ जिसके कि दोनों लडके लडाई मे काम आ गये थे रानियॉ की ओर भाग गया। इसके वाद वराडों ने मन्सूर के साले वाजा पर आक्रमण किया और टामक, घोड़े, सांग और ऊँटो पर कब्जा कर लिया। कुछ दिनों के वाद जवकि मन्सूर खॉ ने वराडो पर शक्ति-सग्रह करके हमला किया मारा गया।

वराडो ने खूव ताकत वढ़ाली थी। उनके पास हजार वारह सौ आदमियों का दल रहने लग गया था, मुहीम, धनोरा और फ्लूगन तक धावे मारकर वह लूट मार कर ले जाते थे। इन वराडों मे एक राव

दुल के लडके रतनपाल थे। उन पर एक राठौर राजपूतनी राज्य वीकानेर की जोकि विधवा थी आसक्त हो गई। रतनपालसिंह जी ने उससे शादी करली। जिससे हरीसिह नाम का लड़का पैदा हुआ वह वड़ी वहादुरी के साथ वराडों की लडाइयों में जाता था। भुल्लनसिंह ने इन सभी प्रदेशों पर कब्जा कर लिया था जो आज इलाका कोटकपूरा, इलाका फरीदकोट, इलाका मुरकी और इलाका साडी के नाम से मशहूर है। भुल्लनसिंह ने लवी उम्र पाई थी और वादशाह अकवर से लगाकर वादशाह शाहजहा के समय तक को उन्होंने देखा था। वे अपने इलाके की आमदनी का कुछ हिस्सा वादशाहों के पास भेट स्वरूप पहुँचाते रहते थे। वुन्देलखड मे वादशाह शाहजहा की सहायता करते हुये अपने भाई लालसिंह समेत नि सतान मारे गये। उनके छोटे भाई के पुत्र कपूरसिंह जायदाद के मालिक हुए। जिनकी कि कुल उम्र उस समय ७ वर्ष की थी। इलाका कई भागों मे वॅट गया। परिवार और पडौसी किसी ने भी इनके साथ सहायता का सम्वन्ध न रक्खा। फिर माता और ताई ने कुछ धन माल की रक्षा की और इन्हें भी वडे जतन से पाल पोस कर वडा किया।

माता और ताई ने मवेशी काफी पाल रक्खे थे कपूरसिंह जी ने सयाना होते ही शिकार खेलने और शस्त्र विद्या सीखने में समय विताया। गुरु हरिराय जी जव पजराई पधारे तो वे इनके ही घर पर ठहरे। इनकी नावालिगी का सारा शाही टैक्स रुका हुआ था। इन्होंने सवसे पहले तो चौधरायत प्राप्त की और फिर शाही आदमियों की मदद लेकर पिछला सव टैक्स चुका दिया और वापिस गये सभी इलाकों पर अधिकार कर लिया। कोट ईसा खा के सूवेदार ने भी इनकी मदद की। चौधरी कपूरसिंह जी को गहवर लोगों की एक वडी सम्पत्ति हाथ लग गई जो उन्होंने भट्टियों से लड़ते समय कपूरसिंह जी को सौंप दी थी। इनसे भी कपूरसिंह के उत्थान में वड़ी सहायता मिली। उन्होंने कई गढ़िया भी वनवाईं।

कपूरसिंह

इधर उधर के झगड़ों से मुक्त होने पर उन्होंने भाई भगतू की सलाह से कोटकपूरा नाम का एक नगर आवाद किया और अपने महल और कोट भी तैयार कराया। इस सम्पन्न अवस्था के समय गुरु गोविंदसिंह जी भी कोटकपूरा पधारे थे। कहा जाता है कि कपूरसिंह ने गुरुजी के लिये जव कि वे मुसलमानों से लड़ रहे थे यह सुदृढ कोट देने से इकार कर दिया। थोड़े ही दिनों वाद कोट ईसा खा के मुसलमान सूवेदार से अनवन हो गई किन्तु आप उसके धोखे मे आगये और उसकी दावत का निमंत्रण स्वीकार करके उसके यहा चले गये। जहा उन्हें जान से मार डाला गया।

कपूरसिंह जी के तीन लडके थे। शेखासिंह, मेखासिंह और सेनासिंह। इन तीनों ही भाइयों ने शपथ ली कि जव तक हम ईसा खा से वदला न ले लेंगे सुख से न सोयेंगे। आये वर्ष फौज इकट्ठी करते और ईसा खा पर हमला करते। पूरे वारह वर्ष तक लडते रहे अत में हिसार और लाहौर के सूवेदारों को ईसा खा के खिलाफ भड़काया और इस मिशन मे वे सफल हुये। ईसा खा हाथी पर चढ़कर मैदान में आया। सेनासिंह ने अपना घोड़ा कुदा कर उसके होदे में अड़ा दिया और उसका सिर काट लिया। इस लड़ाई में वराड़ इस उत्साह से लडे थे कि मुकलावा की हुई औरतों से सुहाग रात मनाना भी छोड़ कर मैदान मे चले गये थे।

ईसा खां से वदला लेकर शेखासिंह गद्दी पर वैठा उसने भी आवादी वसाना शुरू किया। कोट सेखा के नाम से एक नगर भी वसाया।

सेखासिंह के दो रानिया थीं। वडी से जोधासिंह और छोटी से हमीरसिंह और वीरसिंह का

जन्म हुआ। नियमानुसार अपने बाप के बाद कोटकपूरा की गद्दी जोधसिंह को मिली। तीनों भाई प्रेम से रहते थे किन्तु दरबारियों ने उनमें फूट डाल दी। और फल हुआ कि वीरसिंह को जोधसिंह ने अपने प्राणों की रक्षा के लिये कैद में डाल दिया और हमीरसिंह को दिन भर दरबार में हाजिर रहने और रात को मौजा हरी में चले जाने का आर्डर दे दिया।

जोधसिंह

जोधसिंह ने भाइयों को दबा दिया। शायद इसी से उन्हें कुछ अभिमान सा हो गया। वे अपने आगे पटियाला के राजा आलासिंह को भी हेय समझने लगे। उन्होंने अपने घोड़ा घोड़ियों के नाम आला और फत्ते भी रख लिये। इस अभिमान के साथ ही जोधसिंह प्रजा की ओर से भी लापरवाह हो गये। उनके सरदार भी आपस में लडने झगड़ने लगे। इन सब बातों का फल यह हुआ है कि कुछ सरदार और प्रजा के प्रमुख लोगों ने हमीरसिंह को राजा बनाने का षडयंत्र रच डाला। और बृहस्पति के दिन जब कि फरीदकोट का इंचार्ज मेले में आकर चौसर खेल रहा था। हमीरसिंह को उनके साथियों ने फरीदकोट का किला सुपुर्द कर दिया। इधर जोधसिंह को पता चला तो कुल फौज किला खाली कराने को भेजी किन्तु वह नाकामयाब रही। इस पर जोधसिंह चुप हो रहा। कहा कोई हर्ज नहीं अपना ही भाई तो है। जब खर्च से तंग आ जायगा तो उसका मिजाज ठीक हो जायगा किन्तु ऐसा हुआ नहीं। हमीरसिंह अपनी ताकत बढ़ाने में लग गया और सूबा सरहिंद से फरीदकोट के मालिक होने की सनद भी प्राप्त कर ली। इस पर कोटकपूरा और फरीदकोट दो राज्य घर की फूट से बन गये।

हमीरसिंह के सम्बन्ध में यह यकीन हो जाने पर भी कि वह अब सहज ही ठीक नहीं होगा। जोधसिंह ने खुद फरीदकोट पर चढ़ाई की। किन्तु इधर पटियाले वाले इलाके में लूटमार करने लगे इसलिये जोधसिंह को शीघ्र ही लौटना पडा। कोटकपूरा लौटकर जोधसिंह ने उन सब लोगों को कैद कर लिया। जिनके कि वारिस हमीरसिंह के साथ मिलकर फरीदकोट चले गये थे। हमीरसिंह के भाई और बच्चे भी कैद कर लिये गये। इससे हमीरसिंह के साथी घबराये किन्तु उपाय यह सोचा गया कि जेलर को अपनी ओर मिला कर कैदियों को छुड़ा दिया जाय। जेलर मिट्ठा हमीरसिंह से मिल गया और उसने बहुत सारे कैदियों को जिनको कि हमीरसिंह को जरूरत थी निकाल दिया। लेकिन कुछ दुर्भाग्य से रह ही गये जिन्हे फांसी और कठोर सजा दी गई।

इसके बाद हमीरसिंह निशानवालिया और फैजलपुरिया मिसल से सहायता लेकर कोटकपूरा पर चढ़ गया। सिंधवां गाव पर दोनों ओर से लड़ाई हुई। जिसमे दोनों भाइयों के आदमियों का खूब खून-खच्चर हुआ। दिन भर की लडाई के बाद जब जोधसिंह की सेनायें शाम को किले में घुस गईं तो हमीरसिंह के साथियों ने सिन्धुवा को जो एक सम्पन्न गॉव था लूट लिया।

जोधसिंह फिर किले से बाहर निकल कर लड़ने को न आया। हमीरसिंह भी वापिस लौट गया। मिसलवालों की फौजें अपना भरपूर किराया लेकर अपने देश को चली गईं। इसके बाद हमीरसिंह ने नये गढ़ बनवाने और कुछ पुरानों को मिसमार कराने का काम शुरू कर दिया। कोट करोड़ को तुड़वाने में उसे ३५ तोप और कुछ खजाना भी हाथ लगा। बहुत से इलाके अपने कब्जे में कर लिये। जिनमें झोक, मर और धर्मकोट के नाम विशेष उल्लेखनीय हैं। कब्जा किये हुये इलाकों में आबादी बढ़ाना भी जारी रक्खा। इधर वीरसिंह जेल से छूट कर माड़ी में जमकर रहने लगे थे वहाँ उन्हे लोगों ने भड़का दिया कि माडी के आस पास के इलाकों पर वह अपना कब्जा करले। निदान वह भी ऐसा ही करने लगा। अब

जोधसिंह तीन दुश्मनों के बीच में अकेले फँस गये। दो तरफ उसके भाई थे एक तरफ पटियाला का राजा। यह तीनों ही जोधसिंह को तबाह कर देना चाहते थे किन्तु जोधसिंह ने भी घबराने की बजाय सबका मुकाबिला करते रहना ही ठीक समझा।

कुछ ही दिनों में जोधसिंह की शक्ति इतनी घट गई कि उसके पास कोटकपूरा के अलावा केवल पाच गाँव और रह गये। लेपिलग्रिफिन ने लिखा है कि मिसलवाले आकर राज्य को तीन हिस्सों मे बाट गये थे उन्होंने तीनों को सिखधर्म की दीक्षा भी दी थी। हमीरसिंह निरन्तर की कोशिशों से सबसे बडे इलाके को दबा बैठा था।

मौजा सेखा मे फिर लड़ाई हुई किन्तु जोधसिंह को हार कर ही लौटना पड़ा। इसके कुछ ही दिन बाद जोधसिंह के साथी जोन्दा को हमीरसिंह के आदमी पकड़ लेगये और सिर काट कर फरीदकोट के बाजारों मे घुमाया गया।

भाइयों की आपस की लड़ाई से लाभ उठाने और जोधसिंह को इस बात की सजा देने के लिये कि उसने अपने घोडे का नाम आला रख लिया था आलासिंह के उत्तराधिकारी अमरसिंह हमीरसिंह और बीरसिंह दोनों भाइयों को साथ लेकर कोटकपूरा पर चढ़ाई करदी। दुर्भाग्य से उस समय जोधसिंह अपने लड़के रणजीतसिंह के साथ हवाखोरी के लिये निकला हुआ था। दुश्मनों ने उन्हें घेर लिया और मार डाला। हमीरसिंह उसका सस्कार करके वापिस लौट आये। जोधसिंह के दो और भी लड़के थे (१) टेकसिंह और (२) अमरीकसिंह। बाप के बाद टेकसिंह कोटकपूरा का राजा बना। उसके दिल में अपने पिता का बदला लेने की आग जल रही थी किन्तु इतनी बड़ी ताकतों से सुलझता कैसे। अत उसने अपने चाचाओं से तो मेल किया किन्तु पटियाला के उन नौ मुस्लिम राजपूतों को दण्ड देने का पक्का इरादा कर लिया जिन्होंने जोधसिंह को घेर कर मार डाला था। चचा हमीरसिंह को फुसलाकर वह उन नौ मुस्लिमों के गाव जलालकिया पर चढ़ाकर ले गया और उन्हें भारी नुकसान पहुँचाया। इसके बाद चचा भतीजे खूब मेल से रहने लगे। टेकसिंह प्राय फरीदकोट ही बना रहता। हमीरसिंह के मुसाहिबों को यह बात अच्छी नहीं लगी। उन्होंने हमीरसिंह से कहा जिसके पिता को तुमने मरवाया है उससे इतना प्रेम, एक दिन दगा भी दे सकता है। हमीरसिंह बातों मे आगया और उसने टेकसिंह को गिरफ्तार करा लिया जब यह समाचार कोटकपूरा पहुँचा तो अमरीकसिंह लडाई की तयारी करने लगा। हमीरसिंह ने उसे भी दड देने के लिये कोटकपूरा पर चढ़ाई की किन्तु सफलता नहीं मिली और वापिस लौटना पडा। अन्त मे कुछ फूल सरदारों के बीच मे पडने से उसने टेकसिंह को छोड दिया। इधर प्रजा मे काफी बदअमनी फैल चुकी थी। दुश्मन उसके गाँवों को लूट कर बर्बाद कर रहे थे। सबसे दुखदायी घटना यह हुई कि टेकसिंह के ही बेटे ने एक दिन उसके मकान मे आग लगा दी जिसमे वह जल कर मर गया। यह घटना १८०६ ई० की है।

पिता की हत्या करने के बाद जगतसिंह कोटकपूरा का मालिक बना किन्तु उसी का हकीकी भाई कर्मसिंह उसके इस कृत्य से नाराज होकर रणजीतसिंह की फौज चढ़ा लाया जिसने कोटकपूरा जब्त कर लिया और जलालकिया नाभा को दे दिया। जगतसिंह ने एक बार फिर कोटकपूरा पर कब्जा कर लिया किन्तु अधिक देर तक सभाल न सका। अत उसने हार कर महाराज रणजीतसिंह के लडके शेरसिंह को अपनी लडकी का रिश्ता देकर सुलह करली। लेकिन जगतसिंह अधिक दिन जिन्दा न रहे सन १८२५ ई० में उनकी मृत्यु होगई। निस्संतान होने के कारण महाराज रणजीतसिंह ने उसके राज्य को जब्त कर लिया

उधर वीरसिंह भी निःसन्तान ही मरा। इसलिये उसके राज्य को अंग्रेजों ने जब्त कर लिया और फीरोजपुर मे मिला दिया।

हमीरसिंह के दो लड़के थे (१) मुहरसिंह और दिलसिंह इनमे दिलसिंह चुस्त चालाक और चलते पुर्जा था। निशाने बाजी मे इतना होशियार था कि अपने बाप की चारपाई के पाये में निशाना लगा दिया था। जब मुहरसिंह से कहा गया तो उसने कहा निशाना दुश्मन पर लगाया जाता है मां बाप पर नहीं। हमीरसिंह ने दिलसिंह की ओर से सशंकित होकर उसे ढोढ़ी मे रहने की इजाजत दे दी। बाप के मरने पर मुहरसिंह राज्य का मालिक हुआ। मुहरसिंह ने दो विवाह किये। पहली रानी से एक बच्चा था जिसका कि नाम चडहतसिह था। पहली मर गई तब दूसरी शादी जानी गोत के जाटों मे की, किन्तु उससे कोई सन्तान पैदा नहीं हुई।

दिलसिंह मुहरसिंह का पहिले से ही दुश्मन बना हुआ था वह मुहरसिंह के राजा हो जाने से बड़ा चिढा किन्तु पेश न जाने के कारण चुप रहा और मिसलवालों को धीरे-धीरे मुहरसिंह के खिलाफ लड़ने को तैयार करने लगा। यह देखकर मुहरसिंह ने उसके गाव ढोढ़ी पर चढ़ाई की किन्तु वहॉ मिसलवालों की फौज इकट्ठी हो रही थी इसलिये उसे वापिस लौटना पड़ा।

कई इतिहासकारों ने लिखा है मुहरसिंह ऐश पसन्द आदमी था। प्रजा की भलाई और राज की भलाई तथा राज की देखभाल की ओर से वह कतई लापरवाह था। अबोहरा, कडमा, भक और वोद उसकी लापरवाही से फरीदकोट के नीचे से निकल गये। उसने अपने ऐश के लिये रावल राजपूतों की एक सुन्दर स्त्री पजी को छीनकर अपने महल मे रख लिया। इस औरत ने मुहरसिंह को उसी भाति अपने वश कर लिया जिस भाति सयुक्ता ने पृथ्वीराज को कर लिया था। यह औरत राज काज के मामलों में भी दखल देती थी और इसके उदर से पैदा होने वाला लड़का भूपसिह भी इस बात का इच्छुक था कि राज उसी के हाथ रहे। राज के असली वारिस चड़हतसिंह की रीझ बूझ न थी। पजी दरबार में बैठती, इसाफ करती और राज काज की प्रत्येक बात की देख भाल करती। उसका रौब ऐसा था कि अहलकार बिना कान पूँछ हिलाये चुपचाप अपने काम मे लगे रहते थे। पजी ने अपने भाई बन्धुओं को भी राज्य मे भर लिया। उसने अपने लड़के भूपसिंह की शादी तीन जगह जाटों मे ही कराई। पजी उन लोगों को तनक भी पसन्द नहीं करती थी जो सर उठाना चाहते थे। वह खुद फौज लेकर चढ़ जाती थी। अपने कठोर स्वभाव से उसने प्रजा और राज के कर्मचारी सबका ध्यान चड़हतसिंहकी ओर कर दिया। यह प्राय अपनी ननसाल रहता था। एक समय मुहरसिंह महिला और मलोद गॉव के झगड़े निपटाने को कई दिन के लिये बाहर चला गया। राज कर्मचारियों को मौका मिल गया उन्होंने तुरन्त चड़हतसिंह को ननसाल से बुलाकर गद्दी पर बिठा दिया। पंजी को मार डाला और उसके भाई, बन्धुओं को भगा दिया। भूपसिह भी भाग गया। जब मुहरसिंह ने यह खबर सुनी तो फरीदकोट पर चढाई की किन्तु उसमे सफल न हुए। इसके बाद भी हमले किये फिर भी सफलता न मिली तब एक रात में मोरी दरवाजे मे होकर किले में भीतर घुस गये। भारी खून खराबी हुई। फिर भी उनकी मशा पूरी न हुई और लौटकर पक्खा नायक गॉव मे रहने लगे।

तंग आकर चड़हतसिंह ने बहुत सारी सेना इकट्ठी करके और कुछ नाभा से किराये पर मंगाकर बाप के ऊपर आक्रमण किया। पम्पा गॉव मे दोनों ओर से लड़ाई हुई। इस लड़ाई से प्राण बचाकर मुहरसिंह राज्य के बाहर मुदकी की ओर भाग गया। वहॉ से कुछ दिन बाद मुदकी के रईस की मदद

से फिर फरीदकोट पर चढ़ाई की किन्तु सफलता नहीं मिली। इसके बाद चढ़हतसिंह ने मुहरसिंह को पकड़वा कर ससुर की देखभाल में मौजा शेरसिंहवाल मे नजरबन्द कर दिया। जहाँ पर कि सन् १७६८ में उसका देहान्त हो गया।

चढ़हतसिंह अब भी सुरक्षित नहीं था पजी का लड़का भूपसिंह उसके विरुद्ध तैयारियाँ करता फिरता था। वह मुदकी के रईस महासिंह के पास पहुँचा। मुहरसिंह के कुछ साथी भूपसिंह के पास पहुँच गये। महासिंह ने इनकी बातों में आकर फरीदकोट पर फिर चढ़ाई की। मौजा चकबाजा मे दोनों ओर से जम कर लड़ाई हुई। महासिंह ने अपनी फौज को व्यर्थ कटाना ठीक नहीं समझा। दोनों ओर की सेनायें दिन भर की लड़ाई के बाद अपने अपने स्थानों पर लौट गई। भूपसिंह अब भी चुप नहीं रहा। कोटकपूरा के सरदार से जाकर मेल किया और कुछ ही दिन बाद उसे चढ़ा लाया। भूपसिंह खुद बड़ी बहादुरी से लड़ रहा था किन्तु फरीदकोट की सेना के मशहूर निशानेबाज कर्मसिंह ने उसे गोली का निशाना बना दिया। भूपसिंह के गिरते ही कोटकपूरा की फौजें भाग गई। भूपसिंह से पीछा छूटा ही था कि दिलसिंह को फरीदकोट के स्वार्थी महाजनों ने भड़का दिया और उसे फरीदकोट की सारी खबरें नित्य देते रहते। एक दिन ऐसे मौके पर जब कि चढ़हतसिंह एक जनाने महल मे अकेला ही था। दिल-सिंह ने हमला कर दिया और कत्ल कर दिया।

दरबारी लोग इससे बड़े नाराज हुए। क्योंकि चढ़हतसिंह का व्यवहार उनके दिलों मे घर किये हुये था। दिलसिंह की धृष्टता ने उनके दिलों में घृणा पैदा कर दी। परन्तु प्रकट में उन्होंने कोई विरोध नहीं किया।

चढ़हतसिंह ने अपने पीछे चार रानियाँ और चार पुत्र छोड़े थे। बड़ी रानी सिन्धू जाटों की लड़की मौजा शेरसिंहवाला की थी इससे तीन लड़के (१) गुलाबसिंह (२) पहाड़सिंह और (३) साहब-सिंह हुये थे। दूसरी मौजा गोलेवाला की मानसाहियों की लड़की थी। जिससे महताबसिंह का जन्म हुआ था तीसरी चौथी की अभी कोई सन्तान नहीं थी। यह क्रमश कोट करोड़ के खूमा जाट और पक्का पथ-राला की थीं।

दिलसिंह के खिलाफ दरबारी मौके की तलाश मे थे किन्तु दिलसिंह को इसका कुछ भी पता न था। अभी उसे फरीदकोट लिये केवल दो ही हफ्ते हुये थे कि डरोली गुरुद्वारे मे जाने की तैयारी करने लगा। दरबारियों ने इसी मौके पर अपना काम बनाना ठीक समझा। उन्होंने मौजा शेरसिंहवाला में बड़ी रानी के पास खबर भेज दी कि डरोली के मेले से एक दिन पहले गुलाबसिंह जी को साथ लेकर चुपके से पास के गाँव में आ ठहरे। दिलसिंह के तमाम साथी भंग पी-पी कर गुरुद्वारा डरोली को चले गये दिलसिंह भी तैयारी करने लगा। बस उसी समय मुहरसिंह और भोगसिंह नाम के दो जवानों ने उन्हे कत्ल कर दिया।

रानी को बुलाकर गुलाबसिंह को गद्दी पर बिठा दिया गया। उधर डरोली के मेले मे दिलसिंह के साथियों को यह खबर मिली तो वे सब ढोढी को चले गये। इधर फरीदकोट से दिलसिंह की लास भी वहीं पहुँचा दी गई। दिलसिंह ने कुल २६ दिन फरीदकोट का राज्य भुगता।

गुलाबसिंह (सन् १८०४ में) जिस समय फरीदकोट की गद्दी पर बठे उनकी उम्र उस समय केवल सात वर्ष की थी इसलिये राज और राज परिवार की देख भाल का काम उनके मामा फैजूसिंह के हाथ में रहा। फैजूसिंह से प्रजा और दरबारी सभी प्रसन्न रहते थे। रानी भी निश्चिन्त

गुलावसिंह थीं क्योंकि फैजूसिंह उनका सगा भाई ही तो था। गुलावसिंह ने गुरुमुखी पढ़ने और अस्त्र शस्त्र चलाने मे योग्यता हासिल करली थी।

फैजूसिंह ने सवसे पहले राज की सीमा बॉधने का काम किया। उसने सीमा पर अपनी चौकियॉ और गढ़ियॉ स्थापित करना शुरू किया। इस काम के करने मे इन्हे फीरोजपुर की रानी लक्ष्मनकौर और खुडिया के पठानों से लड़ना पडा। कहने का मतलब यह है कि फैजूसिंह वड़ी योग्यता और वफादारी के के साथ राज्य का काम चला रहा था।

उधर महाराज रणजीतसिंह जी का दीवान मुहकमचन्द धीरे-धीरे बराड राज्यों के कुछ हिस्से हड़प कर रहा था। उसने जोरा, वूडा, मुदकी, कोटकपूरा और माड़ी को अवतक जीत कर रणजीतसिंह के साम्राज्य मे मिला दिया था। सन् १८०६ मे मुहकमचन्द ने फरीदकोट पर भी चढ़ाई कर दी किन्तु पानी की कमी से उसे घेरा उठा लेना पड़ा। फैजूसिंह ने एक घोड़ा और कुछ नकद देकर उसे वापिस कर दिया किन्तु महाराज रणजीतसिंह जी तो यह चाहते थे कि अधिक से अधिक देश उनके हाथ आ जाय इसलिये कुछ समय के वाद कर्मसिंह के नायकत्व मे फिर सेना भेजी। फैजूसिंह ने विवश होकर किले की चाबियॉ कर्मसिंह के हाथ सौंप दीं। उस समय महाराजा रणजीतसिंह फीरोजपुर मे थे। उन्होंने फरीदकोट पहुॅच कर खजाने को अपने कब्जे मे कर लिया और गुलावसिंह तथा उसके परिवार को गुजारे के लिये कुछ गॉव देकर राज्य से वेदखल कर दिया किन्तु सन् १८०७ मे उन्होंने फरीदकोट को गुलावसिंह को ही वापिस दे दिया। कारण कि अंग्रेजों से जो मैत्री हुई थी उसके अनुसार सतलज इस पार के इलाकों को वह अपने पास नहीं रख सकते थे। इस पार के सारे राजा रईस मिल कर अंग्रेजों की शरण मे अपनी रक्षा की खातिर रणजीतसिंह जी के विरुद्ध आ चुके थे। यह भी महाराज रणजीतसिंह को पता चल गया था।

रियासत के वापिस आते ही फैजूसिंह ने पूर्ववत कार्य आरम्भ कर दिया चूंकि रियासत का सम्बन्ध अंग्रेजों से हो गया था अत बाहरी आक्रमण का तो डर था ही नहीं। फैजूसिंह ने हदबन्दी का अधूरा काम फिर शुरू किया जहॉ-जहॉ झगड़े खड़े हुये पोलिटिकल एजेन्ट ने बीच मे पड़ कर फैसला करा दिया। इसलिये खून खराबी की भी नौवत नहीं आई। फरीदकोट की ओर से फैजूसिंह ने मुहकमसिंह को वकील बनाकर अम्वाले मे एजेन्ट के पास भेज दिया। फैजूसिंह ने राज्य की आमदनी वढ़ाने का भी कार्य किया।

गुलावसिंह ज्यों-ज्यों सयाने होते जाते थे राज काज मे भी भाग लेते थे। जवान होने पर तो वे पूरा दखल देने लगे। अब तक राज्य का मजा फैजू ने अकेले लिया था अव उसे चिन्ता हुई कि गुलावसिंह को अधिकार मिलने ही वाले हैं। तब मेरी कदर घट जायगी। इसलिये उसने साहव-सिंह के साथ मिलकर षडयन्त्र किया और एक दिन जब कि गुलावसिंह सैर सपाटे से लौट कर आ रहे थे फैजू और साहवसिंह के आदमियों ने उन्हे मार डाला। गुलावसिह एक छोटा लडका—अतरसिंह नाम का पीछे छोड़गया।

अम्वाले में जब पोलीटिकल एजेन्ट को यह खबर लगी तो वे जॉच करने के लिये फरीदकोट आये। गुलावसिंह की रानी ने साफ कहा कि उनको साहवसिंह और फौजू ने मारा है किन्तु फैजू ने अपनी पुरानी सेवाओं को याद दिलाकर एजेन्ट के दिल से इस ख्याल को दूर कर दिया। एजेन्ट साहव साहवसिंह को नजरबन्द बना कर अम्बाला ले गये किन्तु सबूतों के अभाव मे उन्होंने साहवसिंह को

भी छोड़ दिया। यह सारी घटनायें सन् १८२६ ईस्वी की हैं। जब कत्ल का मामला शांत हो गया तो साहबसिंह और पहाड़सिंह राज्य पाने के लिये कोशिश करने लगे। उन्हें फैजू को भी अपनी ओर मिलाने की कोशिश की। परन्तु फैजू नाबालिगी-शासन को ही पसन्द करता था जिसमें कि उसकी आम मुख्तारी चलती थी अत उसने चुपके-चुपके कोशिश करके गुलाबसिंह के लड़के अतरसिंह के लिये—राज्य का मालिक होने के—हुक्म सरकार से मगा लिये।

फैजू दरबार मे नाबालिग राजा अतरसिंह को बैठा लेता था और खुद राज शासन चलाता था। साहबसिंह और पहाड़सिंह फौजू की इस चालाकी से बड़े कुढ़ते थे। अचानक ही—कुछ ही दिनों बाद—अतरसिंह का देहान्त हो गया। फैजूसिंह ने सरकार को लिखा कि इस मौत में साहबसिंह का हाथ है। साहबसिंह ने भी एक संगीन आरोप लगाकर फैजू की शिकायत की। फैजू उस समय फरीदकोट से हटकर कहीं बाहर चला गया। गद्दी के लिये साहबसिंह, पहाड़सिंह, और महताबसिंह तीनों भाई कोशिश करने लगे। पोलिटिकल एजेन्ट की शिफारिस से सरकार ने पहाडसिंह को राज्य का उत्तराधिकारी मान लिया। और साहबसिंह के लिये वचन दे दिया कि उनके गुजारे का प्रबन्ध सरकार महाराज फरीदकोट से जरूर कराएगी वे कोई उपद्रव नहीं करे।

सन् १८२७ ई० मे पहाड़सिंह जी को गद्दी पर बिठा दिया गया। राजा पहाडसिंह जी गद्दी पर बैठ तो गये किन्तु उन्हें फैजूसिंह और साहबसिंह दोनों ही की ओर से खतरा रहा। इसलिये फैजूसिंह को तो हुक्म दिया कि दिनभर तो तुम दरबार मे हाजिर रहा करो और शाम को मौजा नूआ मे चले जाया करो। साहबसिंह और महताबसिंह के लिये उन्होंने भरसक अच्छे गुजारे का प्रबन्ध करा दिया। यहाँ तक कि बेवा भौजाइयों को भी गुजारे के प्रबन्ध से खाली नहीं छोड़ा। फैजूसिंह बड़ा मक्कार था उसने साहबसिंह को आधा राज्य बटा लेने के लिये भड़का दिया।

राजा पहाडसिंह

राजा पहाड़सिंह जी ने इस अमर की सूचना अम्बाले मे पोलीटिकल एजेन्ट को दे दी उसने साहबसिंह को अम्बाला बुलाकर समझाया किन्तु वह नहीं माना और फौज इकट्ठी करने लगा। पहाडसिंह ने जीन्द से कुछ फौजी सहायता लेकर उस पर और उसके इकट्ठे किये हुए आदमियों पर हमला करा दिया। इसके बाद साहबसिंह अचानक बीमार हुआ और अम्बाला से लौटता हुआ समाप्त हो गया।

उन दिनों भारत के मुल्की लाट लार्ड एम्हर्स्ट थे। उन्होंने राजा रईसों की इस प्रकार की खून खराबी को देखकर एक ऐलान निकाला कि राजा रईस जमीन के लिये न तो आपस मे लड़ें और न खून खराबी करें। सरकार जो फैसला करदे उस पर दृढ रहे। अपने राज्यों की हदबन्दी सही तरीके से कराकर उसकी पुख्तगी सरकार से करालें।

राजा पहाडसिंह जी ने पोलीटिकल एजेन्ट की मदद से अपने राज्य की पूरी तरह से हदबन्दी कराना आरम्भ कर दिया। उनके घरू झगडे तो प्राय' खतम से थे किन्तु फैजू से वह निःशंक नहीं थे अत उन्होंने उसे निकालना ही तय किया। उस पर सरकारी रुपया गबन करने का इल्जाम लगाया पर चूँकि उस समय हिसाब चलते ही बेढंगे-से ढंग से थे कोई रसीद वौचर आदि तो रक्खे ही नहीं जाते थे। तलाशी में भी उसके घर कुछ नहीं निकला। अत मे राजा पहाडसिंह ने पोलीटिकल एजेन्ट जो कि अभी नये ही नियुक्त हुये थे और जिनका कि नाम मि० रसल क्लार्क था—सलाह लेकर उसे नौकरी से अलग कर दिया।

सन् १८३८ में अफगानिस्तान अंग्रेज युद्ध के समय राजा साहब पहाड़सिंह जी ने ऊँट घोड़े, बैलगाड़ी, खलासी जो कुछ भी अंग्रेजों ने मांगा दिया। उन्होंने अपनी ओर से किसी भी किस्म की कमी सहायता देने में न रहने दी।

इसके सात साल बाद जब अंग्रेजों और खालसा वीरों की लड़ाई हुई तो आपने अंग्रेजो का पक्ष लिया और फीरोजपुर मे घिरे हुये मि० लिटलर को बचाने मे आपने अपनी बुद्धि का परिचय दिया। रसद आदमी और रुपये पैसे से सब प्रकार अंग्रेजों की मदद की। यही नहीं वे खुद भी लडाई मे काम आये। उनके बड़े लड़के वजीरसिंह भी इस लडाई मे अंग्रेजों के साथ रहे। इन सेवाओं से खुश होकर लड़ाई की समाप्ति पर अंग्रेज सरकार ने महाराज वजीरसिंह को एक सनद दी जिसके अनुसार फरीदकोट के सरदारों को राजा का खिताब और खिलअतें भी बख्शी गई थीं। यह सनद २४ मार्च सन् १८४६ को दी गई थीं। इसके सिवा इलाका मुकसर भी मिला।

राजा पहाड़सिंह जी के चार रानियां थीं। बड़ी से वजीरसिंह पैदा हुए थे और दूसरी रानी से दीपसिंह और अनोखासिंह। शेष दो के कोई सतान न थी। राजा साहब ने अपने यहां से कन्या वध और सती की प्रथा कानूनन बद करा दी थी। अवसर मिलने पर कुछ आबादी भी की थी।

अपने पिता के मरने के बाद वजीरसिंह जी गद्दी पर बैठे। उन्होने आरम्भ से प्रजा की भलाई के कामों मे अपना समय खर्च किया। बस्तिया आबाद कराईं। खेती को उजाड़ने वाले पशुओं का दमन कराया। घमण्डीसिंह को जिसने कि युद्ध मे अंग्रेजों के पक्ष मे बड़ी बहादुरी दिखाई थी फरीदकोट का बख्शी बना दिया किन्तु यह आदमी लुटेरों से मेल रखता था। जब महाराज वजीरसिंह को मालूम हुआ तो इसे हिरासत में ले लिया। कुछ दिन बाद उसे छोड़ दिया गया और वह फिर राज्य से भाग गया। महाराज और उनके सच्चे साथी लोग राज्य की आबादी और आमदनी बढ़ाने तथा बेकार भूमि को खेती योग्य बनवाने में लग गये।

वजीरसिंह

इधर सन् १८५७ आ गया और सारे देश मे मारो-मारो और निकालो-निकालो की ध्वनि छा गई। उस समय महाराज वजीरसिंह जी ने अंग्रेजों की खूब मदद की। नाभा राज्य का एक सामदास नाम का आदमी विद्रोहियों में मिल गया था और उसने हजारों सिखों को साथ मिला लिया था। वजीरसिंह ने उनका दमन करके पजाब की आग को बहुत कुछ ठंडा कर दिया राज्य से गल्ला देकर अग्रेज सिपाहियों के प्राण भी बचाये। इस तरह पूरे एक साल तक गदर को दबाने मे महाराज वजीरसिंह जी ने अग्रेजों का साथ दिया।

गदर के शांति हो जाने पर जब अग्रेजों की जान मे जान आई तो अन्य सहायकों की तरह महाराज फरीदकोट को भी उन्होंने याद किया। उनके जिम्मे की सवारों की सेना माफ की गई। खिलअत भी बढ़ाई गई। अलकाब 'बराड वश बहादुर राजा साहब' का कर दिया गया। यह बात १२ जौलाई सन् १८५८ की है इसके दो वर्ष बाद गवर्नर जनरल के हुक्म से सेक्रेटरी गवर्नमेंट पजाब ने ११ मई सन् १८६० को ग्यारह तोप की सलामी का अधिकार सदैव के लिये दिया।

झंझटों से निवृत्त होने पर महाराज ने सन् १८६१ में फरीदकोट राज्य की जमीन का बन्दोबस्त कराया। महकमा पुलिस की स्थापना की। अपराधों के नियम बनाये। मालगुजारी की शरह मुकर्रर की। तहसीलें कायम कीं। इसके ६ वर्ष बाद सन् १८६५ मे कोर्ट स्टाम्प का परिचलन किया और धीरे-धीरे अंग्रेजी ढग पर महकमों का निर्माण करना आरम्भ कर दिया।

यह बता देना उचित होगा कि सन् १८४३ की सनद के अनुसार कोटकपूरा व मौजे सुल्तान-खानवाला भी उन्हें मिल चुके थे। इस सनद के द्वारा इस समस्त राज्य पर उनका हक मौरूसी कबूल कर लिया गया था। उनके आन्तरिक प्रबन्ध में हस्तक्षेप न करने की बात भी कबूल करली गई थी। गोद-नशीनी का हक भी दे दिया गया था।

महाराज वजीरसिंह ने खजाना रखने का पुराना ढंग बदल दिया। पहले महाजन के यहा रुपया जमा होता था। अब वह किले मे रखने लगे और हिसाब के वाकायदा कागज रक्खे जाने लगे।

सन् १८७४ में आपने थानेश्वर-कुरुक्षेत्र की यात्रा की किन्तु यह यात्रा आपके लिये दुखदाई साबित हुई और उधर से लौटते ही आप इस ससार से चल बसे।

महाराज वजीरसिंह जी के बाद उनके सुयोग्य पुत्र विक्रमसिंह अपने राज्य के मालिक हुए। उनकी गद्दीनशीनी की रस्म बड़ी धूमधाम के साथ सम्पन्न हुई। उस समय आपकी अवस्था बीस साल की थी। इस उत्सव में कई बड़े बडे अँग्रेज अफसरों के अलावा पटियाला के महाराज महेन्द्रसिंह जी पधारे थे। आपने उर्दू अंग्रेजी का ज्ञान प्राप्त किया था।

विक्रमसिंह

राज्य की बागडोर हाथ मे आते ही आपने सबसे पहले खजाने का हिसाब देखा क्योंकि बख्शी वीरसिंह पर आपका विश्वास कम था। इसके बाद दीवानी और फौजदारी की अलग-अलग अदालतें कायम कीं। मालगुजारी वसूल करने के कायदे बनाये। इन महकमों मे उन लोगों को नौकर रक्खा जो इस किस्म का काम अंग्रेजी इलाके में कर चुके थे। खुद भी शासन के मामलों में खूब दिलचस्पी लेते थे और इतने होशियार हो गये थे कि पंजाब का लेफ्टीनेंट सर हेनरी डेविस भी चन्द मामलात में आपकी सलाह लेता था क्योंकि वह भारतीय रिवाजों से अनभिज्ञ था।

पंजाब को जब अहाता बनाने के लिये सरकार को रुपये की जरूरत हुई थी तो महाराज विक्रमसिंह जी ने बिना ही ब्याज के सरकार को छः लाख रुपया उधार दिया था।

सन् १८७८ ई० में अंग्रेज सरकार ने जब अफगानिस्तान के साथ युद्ध किया तो महाराज विक्रमसिंह ने अपना तोपों का रिसाला मदद को भेजा। वहां आपकी सेना ने खूब नामवरी हासिल की। सन् १८७९ की पहली जनवरी को सरकार ने इस सहायता के बदले में महाराज को "फरजन्द सहादत निशात हजरत कैसरे हिन्द" का खिताब दिया जिसे महाराज ने दरबार करके स्वीकार किया।

महाराज विक्रमसिंह ने राज्य और प्रजा की उन्नति करने के अलावा अपने धर्म की उन्नति में भी खूब दिलचस्पी ली। आपने अपने ही खर्चे से गुरु-ग्रन्थ साहब की सरल टीका कराई। इस काम को सम्पन्न करने के लिये ४० वर्ष तक ज्ञानी लोग लगे रहे और इस काम पर एक लाख रुपया खर्च हुआ। इसके सिवा अमृतसर के गुरुद्वारे पर आपने बिजली का प्रबन्ध कराया। प्रजा में किसी प्रकार का झगड़ा फिसाद न हो। इस बात का वे खूब ध्यान रखते थे। खजाने में रुपया हो जाने और राज्य में पूरी तरह अमन कायम हो जाने पर आपने फरीदकोट को नये सिरे से बसाना शुरू किया। नये ही ढंग के बाजार, हाट, गली और कूचे बने। बाग, बगीचे, कोठी, मन्दिर धर्मशाला, स्कूल और सफाखानों के बन जाने से फरीदकोट की काया ही बदल गई। पहले से उसकी शोभा कई गुनी हो गई। राज्य में कई सड़कें बनाकर प्रजा के लिये आराम पैदा कर दिया।

महाराज विक्रमसिंह के समय में एक नहर भी निकाली गई जिससे राज्य के एक भू-भाग की सिंचाई होने से प्रजा को बड़ा लाभ हुआ।

आपके तीन औलाद हुई। दो राजकुमार और एक राजकुमारी (१) राजकुमार वलवीरसिंह और (२) कुँ० राजेन्द्रसिंह दो पुत्र थे। इनमे युवराज वलवीरसिंह का सन् १८६६ ई० मे जन्म हुआ था। आपके छोटे भाई आप से दस वर्ष छोटे थे। और वहिन सात वर्ष छोटी जो कि मुरसान के राजा साहव को व्याही गई। युवराज वलवीरसिंह जी का विवाह रियासत मनी (जिला अम्बाला) के रईस भगवान-सिंहजी की पुत्री के साथ हुआ।

महाराज विक्रमसिह जी ने फरीदकोट और थानेसर मे सदावर्त भी जारी किये जहाँ गरीवों को भोजन वस्त्र दिया जाता था।

कहा जाता है किन्हीं कारणों को लेकर महाराज और राजकुमार वलवीरसिंह जी मे गहरी अनवन हो गई थी और अन्त समय तक रही। सन् १८९८ के अगस्त महीने मे महाराज का स्वर्गवास हो गया। राजकुमार वलवीरसिंह जी उस समय शिमला मे थे। वहाँ से उन्हे तार देकर बुलाया गया।

जालन्धर के कमिश्नर मि० सिलकाक की उपस्थिति मे वलवीरसिंह जी को राजतिलक किया गया। इसके वाद अच्छे मुहूर्त मे महाराज ने राजतिलक के उपलक्ष्य मे लोगों को भोज दिया। जिसमे पटियाला के महाराज सर राजेन्द्रसिह और धौलपुर के महाराज राणा श्री निहालसिंह जी भी पधारे थे। इस समय महाराज वलवीरसिंह जी की अवस्था इक्कीस साल की थी। कमिश्नर जालधर ने प्रसन्नता के साथ आपकी कमर में किरच बॉधी थी और सभी राजाओं ने तोहफे भेंट किये थे। सरकार की ओर से खिलअत प्राप्त हुई।

महाराज वलवीरसिंह

आपने गुरुमुखी, उर्दू और अंग्रेजी की शिक्षा प्राप्त की थी। चार साल अजमेर के मेयो कालेज में भी आप रहे थे। छोटे भाई राजेन्द्रसिंह जी की शिक्षा के लिये आपने एक अंग्रेज ट्यूटर रख छोड़ा था। जिसे छ हजार सालाना वेतन देते थे। किन्तु शोक है कि राजेन्द्रसिंह जी की बीस साल की अवस्था मे ही मृत्यु होगई। इससे महाराज वलवीरसिंह जी को बड़ा दु ख हुआ।

महाराज ने राज्य के ओहदों पर परखे हुए लोगों को ही नियुक्त किया। क्योंकि राज्य फरीदकोट मे ओहदेदार और अहलकारों ने भी काफी खून-खरावियॉ करवाई थीं। जो लोग पिछले समय मे आपसी झगड़ों या कुशासन के भय से राज्य छोड़कर भाग गये थे। उन सबको बुलाकर आपने राज्य मे बसाया और जो नौकरी करना चाहते थे। उन्हे नौकरियॉ दीं। सन् १८९९ ई० मे अफ्रीका के युद्ध मे कुछ घोड़े देकर भी महाराज ने सरकार की सहायता की। जिसके बदले मे उन्हे धन्यवाद मिला।

महाराज वलवीरसिंह जी को प्रजा की उन्नति की वड़ी चिन्ता रहती थी। उन्होंने कई तालाव और वावड़ी भी वनवाये थे और जव राज्य में लगातार पॉच वर्ष का अकाल पड़ा तो मालगुजारी तो आपने माफ की ही किन्तु राज्य के खर्चों से नाज भी बॉटा। विना व्याज के कर्ज बॉटा।

सन् १९०० की ३० अक्टूबर को आपने एक दरबार में निम्न घोषणाये कीं।

(१) स्कूल मिडिल को बढ़ाकर मैट्रिक तक कर दिया जावेगा।

(२) मेला मवेशी फरीदकोट की तरह कोटकपूरा मे भी लगा करेगा।

(३) अदालतों के कायदे कानूनों मे सुधार किये जावेगे और अदालतों के लिये मकान भी वनवाये जावेंगे।

(४) मुसाफिरों के लाभ के लिये रेलवे स्टेशन के सामने एक वेटिंग रूम बनवाया जावेगा।

इस दरवार मे प्रजाजनों ने महाराज से राज्य का दौरा करने की प्रार्थना की, जिसे महाराज ने

स्वीकार करके राज्य का दौरा किया और देखा कि प्रजाजनों को क्या २ असुविधायें हैं।

महाराज को चित्रकारी से वडा शौक था। मकानात के नक्शे भी अक्सर वे ही तैयार करके कारीगरों को देते थे।

सन् १६०८ ई० मे ऐसे योग्य महाराज का स्वर्गवास हो गया। आपने कोई राजकुमार न छोडा था। इसलिये उनके छोटे भाई राजेन्द्रसिंह जी के लड़के व्रजेन्द्रसिंह जी गद्दी पर विठाये गये।

गद्दी पर वैठने के समय महाराज व्रजेन्द्रसिंह नावालिग थे। अत राज्य का प्रवन्ध करने के लिये रेजेसी कौंसिल की स्थापना की गई। महाराज को चीफस् कालेज मे शिक्षा पाने के लिये भेज दिया गया।

महाराज व्रजेन्द्रसिंह

शिक्षा प्राप्त करने के वाद से वह फरीदकोट में ही रहने लगे। २० वर्ष की अवस्था होने पर सरकार ने सन् १६१६ के २४ नवम्वर को आपको राज्य के कुल अधिकार सौंप दिये। उन दिनों अंग्रेजों और जर्मनों में युद्ध हो रहा था। महाराज ने अंग्रेजों को इस युद्ध में धन-जन से पूर्ण सहायता दी। इसलिये सरकार ने उनको मेजर की उपाधि से विभूषित किया। आपने अपने समय शिक्षा की उन्नति के लिये व्रजेन्द्र हाईस्कूल की स्थापना की और स्त्रियों के स्वास्थ्य की हित दृष्टि से जनाना अस्पताल वनवाया। आपही के समय में राज्य मे वाटरवर्क्स, टेलीफून और विजलीघर की स्थापना हुई। जिससे फरीदकोट की रौनक दुचन्द होगई।

महाराज व्रजेन्द्रसिंह की इच्छा थी कि राज्य को अंग्रेजी इलाके की तरह सुसम्पन्न और उन्नतशील वनावें। किन्तु उनकी जिन्दगी ने उनका साथ नहीं दिया और केवल दो ही वर्ष राज्य करके २३ दिसम्वर सन् १६१८ ई० को केवल २२ वर्ष की अवस्था में इस ससार से प्रस्थान कर गये। प्रजा को आपके वियोग से वड़ा कष्ट हुआ। चूंकि आपकी वहिन श्रीमती राजेन्द्रकौर जी भरतपुर के यशस्वी महाराज श्री कृष्णसिंह जी के साथ व्याही गई थीं। जव यह समाचार भरतपुर पहुँचा तो वहाँ भी सारे राज्य मे शोक मनाया गया।

महाराज व्रजेन्द्रसिंह जी के स्वर्गवास के बाद उनके सुपुत्र श्री हीरेन्द्रसिंह जी गद्दी पर विठाये गये। उस समय उनकी अवस्था कुल तीन वर्ष की थी। अत राज्य का प्रवन्ध कौंसिल के सुपुर्द हुआ।

महाराज हीरेन्द्रसिंह

आपका जन्म ७८ जनवरी सन् १६१५ ई० में हुआ था। आप अपने पिता के दो पुत्र हैं। छोटे राजकुवर का नाम मनजितेन्द्रसिंह है। सन् १६२५ ई० मे दोनों भाई चीफ्स् कालेज में भर्ती हुये। महाराज श्री हीरेन्द्रसिंह जी पढ़ने लिखने में वडे तीव्र थे। सन् १६३७ ई० में डिप्लोमा की परीक्षा आपने वड़ी सफलता के साथ पास की। अंग्रेजी के मजमून में सर्वश्रेष्ट रहने के कारण आपको गाडले मैडिल मिला। इतिहास और भूगोल के निवन्ध मे भी आप प्रथम रहे थे।

सन् १६३७ के आरम्भ मे आपको राज्याधिकार प्राप्त हो गये। राज्याधिकार समारोह मे धौलपुर और पजावी राज्यों के कई महाराजगण पधारे थे। आपने प्रजा-सुधार के कार्य गद्दी पर वैठते ही आरम्भ कर दिये थे। रिश्वत को मिटाने के लिये भी आपने घोषणा की थी। प्रजा को आपसे वडी आशायें थी। आप नरेन्द्र मण्डल के भी सदस्य थे। सन् १६४८ मे फरीदकोट पेप्सू में मिला दिया गया।

बाईसवाँ अध्याय

पटियाला राज्य का इतिहास

काश्मीर को छोड़कर पटियाला पंजाब की सवसे बड़ी रियासत है और जहा तक हम समझते हैं। राजा का खिताब भी पजाव की सिख रियासतों मे सवसे पहिले इसी रियासत के सस्थापक आलासिंह जी को मिला था। पटियाला राज्य का क्षेत्रफल ५६३२ वर्ग मील और जनसख्या १४६६७३६ थी। सालाना आमदनी १६३०००००) वताई जाती थी। यह राज्य तीन भागों मे विभक्त है जिनमे सवसे वड़ा हिस्सा दक्षिणी किनारे पर है। दूसरा शिमला के पर्वतीय प्रदेश मे और तीसरा नारनौल का परगना है। जो राजधानी से १८० मील दूर है। इस राज्य की स्थापना १८ वीं शताब्दी में सरदार आलासिंह जी द्वारा हुई थी।

पटियाला का खान्दान फुलकियां मलोई कहलाता है। फुलकियां चौधरी फूल के नाम पर और मलोई मालवा (पंजाब-स्थित) मे रहने के कारण नाम पड़ा।

प्रभास क्षेत्र मे यादवों के सर्व-सहारकारी युद्ध के वाद यादवों के अनेक कवीले काठियावाड़ (द्वारिका) को छोड़कर इधर उधर फैल गये। उनमे से कुछ गजनी की ओर, कुछ जदू का डूंग (पजाव) में और कुछ गुजरात, सिन्ध, पंजाव और राजपूताने में फैल गये। सिंध और जैसलमेर के मध्य का और पजाव के पश्चिम दक्षिण का भाग जिसका कि केन्द्र वर्तमान भटिंडा है। भतियाना कहलाता था जिसकी एक नोंक सिन्ध की प्राचीन राजधानी अलोर तक चली गई थी। इसके पड़ोसी इलाके चोलिस्तान, माझ, और मालवा के नाम से प्रसिद्ध हुए थे। गजनी से लौटने के वाद यहा इस भाटी समुदाय ने एक नई लहर देखी और वह लहर थी बौद्ध धर्म के विरुद्ध हिन्दू धर्म की। हिन्दू धर्म ने पुराने क्षत्रियों के लिये घोषणा कर दी थी कि कलियुग मे क्षत्रिय वर्ण ही नहीं है। इसका अर्थ यही था कि पुराने क्षत्रिय प्राय बौद्ध हो गये है और वे लडने-भिड़ने से उदासीन हो गये हैं। अत' उनका क्षत्रियत्व नष्ट हो गया है। ब्राह्मणों का ऐसा कहने का एक दूसरा कारण भी था। वह यह कि वौद्ध धर्म वर्ण प्रथा को महत्त्व नहीं देता था हालाकि वर्ण प्रथा को उसने नष्ट भी नहीं किया था। जैन लोगों ने खुल्लमखुल्ला घोषणा कर दी कि वर्ण तीन ही हैं। क्षत्रिय वैश्य और शूद्र। वौद्ध और जैन दोनों ही धर्म क्षत्रिय राजकुमारों द्वारा चलाये गये थे. अत क्षत्रियों का उस ओर झुकाव भी खूव हुआ था। इस हेतु भी ब्राह्मण धर्म को जो कि वौद्धों-जैनों के विरोध मे खडा हुआ था यह घोषणा करनी पड़ी कि कलियुग मे क्षत्रिय वर्ण नहीं।

ऐसा उन्होंने कह तो दिया किन्तु विना क्षत्रियों के काम चलना मुश्किल था। अत उन्होंने राजपुत्रों की सृष्टि की। गजनी से लौटे हुए अनेकों भाटियों ने उस नई लहर का साथ दिया और वे ब्राह्मण धर्म मे दीक्षित होकर राजपूत वन गये। राजपूत हो जाने के वाद स्त्रियों को पर्दे मे रखना, पुनर्विवाह न करना, त्यौहारों पर माँ दुर्गे को सतुष्ट करने के लिये वलि देना, विधवा स्त्रियों को सती कर देना, गऊ, ब्राह्मण और देवता को छोड़ किसी को सर न झुकाना।[१] आदि चन्द रिवाजो को कठोरता के साथ पालन करना पड़ता। इस प्रकार भाटियों के दो दल हो गये। एक वह जो नये सस्कारों से मुण्डित होकर राजपूत कहलाने लगा, दूसरा वह जो कि अपने पुराने सामाजिक नियमों पर दृढ़ रहा। जिसने न पर्दा प्रथा को ग्रहण किया और न देवर विवाह प्रथा का परित्याग। वह वर्ग जाट ही कहलाता रहा। पटियाला, नाभा, जीन्द और फरीदकोट आदि रियासते ऐसे ही भाटी क्षत्रियों की हैं जिन्होंने पुरातन प्रथाओं को वड़ी मजबूती के साथ पकडे रक्खा था और जो नयी लहर मे चले गये थे वे जैसलमेर के राजपूत भट्टी कहलाते हैं।

अव हम इस वात को यहीं समाप्त करते हुये पटियाला राज्य के मुख्य इतिहास पर आते हैं। इस वश में फूल एक प्रसिद्ध व्यक्ति थे। नाभा, पटियाला और जीन्द फूल के ही वशज हैं। फूल के वेटों में एक चौधरी रामा थे। चौधरी रामा के आलासिंह हुए जो कि एक प्रसिद्ध योद्धा हुए हैं। वहादुरी, रण-कुशलता और वुद्धिमानी में वे दूसरे रणजीतसिंह थे।

पटियाला जैसी सुप्रसिद्ध और विस्तृत रियासत की स्थापना करने वाले और फुलकियाँ खान्दान को विश्वविदित होने योग्य वनाने वाले सरदार आलासिंह जी का जन्म १६६५ ई० में मौजा फूल में हुआ था। आपके नामी पिता की जिस समय शत्रुओं के हाथ से मृत्यु हुई थी आप

सरदार आलासिंह

२३ साल के थे। दो वर्ष के वाद ही आपने शत्रुओं से अपने पिता का वदला ले ले लिया। अपने शत्रु कमला और वीरसिंह को जोकि पिंड मानू सीमा के रहने वाले थे। मारते समय इनके चेहरे पर वर्छे का घाव आया था।

इसके वाद आपने रायकोट के मुसलमान रईस गौसमुहम्मद को लडाई में मार कर संघेरा अथवा सिंहगढ़ पर कव्जा कर लिया। यह गौसमुहम्मद नौ-मुस्लिम राजपूत था जो हिन्दुओं को जवरन मुसलमान वनाने का काम कर रहा था। सघेरा के जमीदारों की पुकार पर ही आलासिंह जी ने सघेरा पर अपना थाना विठाया और गौसमुहम्मद से लड़ाई की। १७१२ ई० में आपने वरनाला को आवाद किया जो पीछे से अनहदगढ़ के नाम से मशहूर हुआ। इसके पास ही कस्वा पथौड़ था। उसे जीतकर आपने अपने भाई दूनासिंह को दे दिया। इन्हीं दिनों आपने लोंगेवाला नमेल और उभवाल आदि ६ गाँवों को और आवाद किया। यह गाँव मुसलमानों के अत्याचारों से वर्वाद हो गये थे।

सन् १७२५ ई० में दिल्ली के वादशाह मुहम्मदशाह ने आवाद किये हुये गाँवों पर आलासिंह का अधिकार स्वीकार कर लिया और राजा का खिताव देने का आश्वासन दिया। वादशाह ने राजा का खिताव देने की एक शर्त भी लगाई थी और वह यह कि वे सरहिन्द मे जाकर प्रवन्ध करें। इस शाही फरमान के आने के वाद सवसे पहले उन्होंने भाटी नौ-मुस्लिमों को ठीक करना उचित समझा जो सदैव से इनके पूर्वजों के शत्रु रहे थे और जिन्होंने सिद्धू वराड लोगों को काफी तंग किया था। अल्लादादखाँ

१ कन्या वध को इसी मनोवृति ने जन्म दिया।

पटियाला-राज्य-संस्थापक

राजा आला सिंह

महान् सेनापति

सरदार हरिसिंह नलुवा

बूहावाले, इनायतखॉ विलायतखॉ बूलाडावाले और वाकिरखॉ हरियाऊवाले सब पर चढ़ाई की। जो लगातार मौका व मौका १२ वर्ष तक चली। सन् १७४१ ई० मे अलीमुहम्मदखॉ सरहिंद का हाकिम होकर आया कुछ दिनों तक आलासिंह जी ने मिलकर उसके साथ काम किया। कोट और जगरवॉ की लड़ाइयों मे भी दोनो साथ-साथ रहे। आगे चलकर आलासिंह को मालूम हुआ कि अलीमुहम्मद उन्हे माडलिक समझता है। अत. वे उससे स्वतत्र होने की तैयारी करने लगे। अलीमुहम्मद को भी इस तैयारी का पता चल गया। इसलिये उसने सरदार आलासिह जी को कैद कर लिया। सरदार आलासिंह जी का करमा नाम का एक नौकर वडा होशियार था। उसने सरदार आलासिंह को सुनाम के किले[१] से ठीक उसी प्रकार निकाल दिया। जिस प्रकार कि महाराज शिवाजी को उनके राजभक्त सरदार हीरा जी ने निकाल दिया था। वह उनकी जगह सो गया और सरदार आलासिंह उसके कपडे पहन कर निकल गये। वाहर उनके अनेकों साथी तैयार ही थे। इस प्रकार रिहा होकर सरदार आलासिंह जी वरनाला आ गये और कर्मा को सीमा नाम का गॉव जागीर मे दिया तथा उसके ओहदे मे भी तरक्की करदी। इसके कुछ ही दिन वाद अलीमुहम्मद को वादशाह ने हटा दिया और अवुलसमदखॉ को सरहिन्द का हाकिम वनाकर भेजा। अलीमुहम्मद यू० पी० मे चला गया और उसकी संतान आजकल रामपुर के नवाव कहलाते है।

अलीमुहम्मद अगर वदल न जाता तो सरदार आलासिंह अवश्य ही उससे वदला लेते। अब वे अपना राज्य वढ़ाने मे लग पड़े। भटिंडा के सरदार जोधसिंह को उसके हित के लिये सदैव मदद देते रहे।

सन् १७४७ ई० मे मौजा ढहूदान मे एक किला वनाने की उन्होंने तैयारी की। इस मुकाम के पास काकड़े मे फरीदखॉ नाम का एक मुस्लिम राजपूत थोड़े से इलाके को दवाये बैठा था। फरीदखॉ ने आलासिंह को अपना काटा समझ कर समाना के हाकिम से सहायता की याचना की। उसके पास सहायता आये इससे पहिले आलासिंह जी के कुछ आदमियों ने अमरसिंह के नेतृत्व मे फरीदखॉ के इलाके पर कब्जा कर लिया। फरीदखॉ इस मुठभेड़ मे काम आगया।

सरदार आलासिंह के इस प्रकार के वढ़ते हुए शौर्य और प्रताप को देखकर परगना सनौर के जमीदार जिनके कि ४८ गॉव थे। स्वेच्छा से आलासिंह जी की मातहती मे आ गये। इस परगने की हिफाजत के लिये सरदार आलासिंह ने अपने साले गुरुबख्शसिंह को मुकर्रिर किया और एक मजबूत किला वनाया। यही किला और नगर आज पटियाला जिसके कि माने आलाका पट होते है—कहलाता है।

भटिंडा के सरदार से आलासिह का मेल था। किन्तु वह मेल इस बात पर टूट गया कि भटिंडा के सरदार जोधसिंह ने आलासिंह के साले गुरुबख्शसिंह की मंगनी को अपने लिये स्वीकार कर लिया। शादी भी करली। सरदार आलासिंह ने कुछ मिसल-पतियों को अपनी सहायता के लिये बुलाकर भटिंडा पर चढ़ाई कर दी। जोधसिंह हार गया और भटिंडा आलासिंह जी के अधिकार में आगया। इसके वाद भोलेड़ा और बूहा के मुस्लिम राजपूतों को परास्त करके उनके भी इलाके अपने राज्य मे मिला लिये। भोलेड़ा अपने साले को दे दिया।

सन् १७५७ तक उन्होंने नौ-मुस्लिम भट्टियों से मूनक, टोहाना, जमालपुर, धार सूल और सिकरपुरा को अपने कब्जे में कर लिया। पड़ौस मे मालेरकोटला पर हाथ साफ किया और उसके इलाके के शेरपुर और पहोड नामक कस्बों पर अपना अधिकार जमा लिया। मालेरकोटला के नवाब जमालखॉ के बेटे

१ अली मुहम्मद ने लाकर यहीं उन्हें बन्द कर रक्खा था।

भीखम के पास एक वढ़िया तलवार थी उसे भी आलासिंह जी के पौत्र हिम्मतसिह ने छीन लिया। लड़ाइयों में उनके पुत्र लालसिंह और पौत्र हिम्मतसिंह भी वरावर शामिल होते थे।

इन दिनों भारत पर अहमदशाह अव्दाली के आक्रमण होने आरंभ हो गये थे। वह अपने जीते हुए प्रदेशों पर अपने हाकिम मुकर्रिर करके देश के जनमत को अपने कब्जे में करने की कोशिश कर रहा था। नवाब मालेरकोटला ने अहमदशाह के पास सरदार आलासिंह जी की शिकायत भेजी।

जिस समय वरनाला पर अहमदशाह ने चढ़ाई की उस समय किले मे रानी साहिवा फत्तो ही थीं। रानी फतहकुंवरि वडी बुद्धिमान थीं उन्होंने अपने चार सरदारों को अहमदशाह के कैम्प में इसलिये भेजा कि वे उसके साथ सुलह की वातचीत करें और आप अपने पौत्र अमरसिंह के साथ मूनक की ओर निकल गईं। सरदार आलासिंह जी के पास जव यह समाचार पहुँचा तो उन्होंने वडी बुद्धिमानी के साथ अहमदशाह को खुश कर लिया कुछ धन दौलत भी भेंट किया। अहमदशाह उनसे खुश हो गया और उन्हें अपना माडलिक वनाकर सरहिन्द के हाकिम के नाम इस आशय का पत्र लिख गया कि "आलासिंह के अधिकृत इलाके को अपने से अलग समझो।" उस समय ७२६ गॉव और कस्बे आलासिंह जी के कब्जे मे थे सिख लोग जो मिसल वाले थे, वे सरदार आलासिंह से इस वात पर नाराज भी हुए कि उस लुटेरे से क्या सन्धि करनी थी। किन्तु आलासिंह जी ने अपनी स्थिति समझा कर सब को सतुष्ट कर दिया और फिर उनके साथ सरहिन्द पर चढ़ाई भी की जिसमे अहमदशाह का नियुक्त हाकिम जीन खॉ मारा गया। सिखों ने सरहिन्द की ईंट से ईंट वजादी, उसे लूट लिया और उसके अधीनस्थ इलाके को मिसल-पतियों ने आपस मे वॉट लिया। आलासिंह ने तोपों और अपने नजदीक के इलाके पर कब्जा किया। कहा जाता है सरहिन्द की लूट के धन से पटियाला का मजवूत गढ़ वनाया गया और शहर को रौनक दी गई। सरहिन्द विजय की घटना सन् १७६२ ई० की है।

जीनखॉ के मारे जाने व सरहिंद वर्वाद किये जाने का समाचार जव अहमदशाह को मिला तो वह वड़ा नाराज हुआ और एक वड़ा लश्कर लेकर पंजाव मे घुस पडा। सिख जत्थे पहाड़ों और झाड़ियों मे चले गये और उसे रास्ते मे कई वार छापे मारकर तग किया। सरदार आलासिंह उसके पास पहुँचे और उसके दिमाग मे यह वात भली प्रकार विठा दी कि आज सिखों की ताकत इतनी प्रवल है कि उनके विरुद्ध सग्राम जारी रखके अपनी हुकूमत को पजाव मे कोई भी स्थिर नहीं रख सकता है। प्रत्येक हाकिम की वही दशा होगी जो जीनखॉ की हुई है। अहमदशाह ने आखिरकार समझ सोच कर साढे तीन लाख सालाना के खिराज पर सरहिन्द का सारा वचा हुआ इलाका आलासिंह को दे दिया और साथ ही उन्हें राजा का खिताव भी वख्शा।

राजा आलासिंह जी के तीन पुत्र थे (१) कुॅवर शार्दूलसिंह (२) भूमियानसिंह (३) लालसिंह। एक लड़की प्रधान नाम की थी। ये तीनों ही भाई प्रत्येक लड़ाई में अपने वहादुर पिता के साथ रहते थे। यह वड़े होनहार और वहादुर थे किन्तु वे अपने पिता से भी पहले वीरों की भाँति युद्ध भूमियों में इस ससार से चल वसे। इनमें कुॅवर शार्दूलसिंह ने अपने पीछे अमरसिंह और हिम्मतसिंह नाम के दो राजकुमार छोड़े। शार्दूलसिंह जी के दो रानियां थीं। एक तो हुक्मकौर थीं जो विवाहित थीं। दूसरी रेसां या रेशमकौर उनके चेचरे भाई जोधसिंह की वेवा थीं। जिससे कि उन्होंने आनन्द पढ़ा लिया था।

सन् १७६५ ई० की २२वीं अगस्त को वुखार मे प्रतापी राजा आलासिंह जी का स्वर्गवास होगया।

महाराज आलासिंह जी ईश्वर भक्त और धर्मप्रिय सरदार थे। सिख धर्म की दीक्षा लेने के लिये

आप नवाव कपूरसिंह को अपने यहाँ लेगये थे और वड़ी धूमधाम के साथ आपने सिख धर्म की दीक्षा ली थी। उनके एक ही रानी थी वे भी वड़े पवित्र थे एकवार अचानक ही भूल से उनकी निगाह एक नंगी नौजवान—लड़की पर गई। इसके लिये उन्होने प्रायश्चित किया और बड़े दु:खी हुए। अहमदशाह ने जिन लोगों को कैद कर लिया था। आपने उससे कह सुन कर उनमे अधिकांश को छुड़ा दिया था। इसलिये लोग आपको वन्दीछोड़ भी कहने लग पड़े थे। उनकी रानी फतहकौर भी एक बुद्धिमान और वहादुर महिला थीं। विपत्ति के प्रत्येक अवसर पर वह धैर्य से काम लेती थीं। वह सलिक्यान जाट रईसों की लड़की थीं।

महाराज आलासिंह ने जहाँ अपने समय में अनेकों वस्तियाँ आवाद कीं, लड़ाइयाँ लड़ीं, इलाके जीते। वहाँ गरीवों के लिये उन्होंने एक लंगर भी जारी कराया। जिससे गरीब उन्हे दिल भर कर दुआये देते थे। गर्ज कि वह सव प्रकार से एक अच्छे राजा थे।

राजा आलासिंह जी के बाद उनके पौत्र अमरसिंह जी पटियाला की गद्दी पर बैठे। आपने गद्दी पर वैठते ही राज्य को वनाये रखने तथा भीतरी और वाहरी आक्रमणों की ओट के लिये सवसे पहले सरहद्दी इन्तजाम की ओर ध्यान दिया। अपने विश्वस्त सरदारों को सरहदों पर मुकर्रिर कर दिया। इसके वाद दूसरे वर्ष मालेरकोटला के पठानों से पायल नामक नगर को छीन लिया।

राजा अमरसिंह

इन दिनों सरदार जस्सासिंह अहलूवालिया एक जवर्दस्त सरदार था अमरसिंह जी ने उससे भी लाभ उठाया उसे बुलाकर मालेरकोटला के इलाकों पर धावा कर दिया और इसरड़ू को छीनकर अपने राज्य मे मिला लिया।

सन् १७६७ मे अहमदशाह ने हिन्दुस्तान की ओर फिर कदम बढ़ाया आपने कड़ा और वाना के मुकाम पर उसका स्वागत किया और उसके खिराज का वहुत कुछ हिस्सा अदा किया। जिससे खुश होकर अहमदशाह ने आपको "राजा राजगान" का खिताव और सिक्का प्रचलित करने की भी इजाजत देदी। अहमहशाह के लौटते ही आपने मालेरकोटला के पठानों पर फिर चढ़ाई की। रईस अताउल्लाशाह ने वार-वार की लड़ाईयों को खतम करने के लिये अधीनता स्वीकार कर ली। इसके वाद ही आपने सजोर और मतीम जुरुये के रईस और अधिकारी गरीवदास के इलाके वख्शी लखना के द्वारा जितवाकर अपने राज्य मे मिला लिये। सिरमौर का राजा कीर्ति प्रकाश इस वात से बड़ा खुश हुआ। क्योंकि गरीवदास उसे वहुत तग करता था। इस खुशी मे आकर उसने महाराज अमरसिंह जी से पगड़ी-वदल दोस्ती करली। इससे उसे यह भी डर जाता रहा कि उसके राज्य पर भी आच न पहुँचे।

इन वाहरी झगड़ों से अवकाश पाते ही अमरसिंह जी ने अपने भाई हिम्मतसिंह पर जोकि ढूंढान में रहते थे चढ़ाई कर दी। 'सैरे पजाव' के लेखक ने लिखा है कि "ढहोदा समेत हिम्मतसिंह के पास २०० गॉव थे। अमरसिंह जी ने सारे जव्त कर लिये किन्तु रानी फतहकुँवरि को यह वात अच्छी नहीं लगी वे अपने पोतों को इस प्रकार लड़ते देख कर दुखी हुई और उन्होंने दोनों मे मेल करा कर हिम्मत-सिंह के गॉव वापिस करा दिये।" कहा जाता है हिम्मतसिंह अमरसिंह जी के विरुद्ध वगावत की तैयारी कर रहा था। सर लेपिल ग्रिफिन ने इसका कारण वताया है कि राज्य का अधिकारी वड़ा होने कारण हिम्मतसिंह ही था परन्तु तारीख पटियाला के लेखक ने इस वात को गलत वताया है। वात कुछ भी हो एक वार तो फतो या फतहकौर ने इस झगड़े को शांत कर ही दिया।

कोटकपूरा का सरदार जोधसिंह अभिमान से अपनी घोड़ी को फत्तो और घोड़े को आला कहा करता था। अमरसिंह ने मौका मिलते ही उसे इस बात का दण्ड देने के लिये उसी के दूसरे भाई की माग पर अपने सैनिक भेज दिये जो उसे और उसके लड़के को—सैर करते हुये—घेर कर मार आये।

इसके बाद ही उन्हे दो लड़ाइयाँ और लडनी पडीं एक तो भट्टियों के अहरवाँ और सिंहा नामक गाँवों पर कब्जा करते समय, जिसमें बहुत से आदमियों का नुकसान हुआ क्योंकि दस हजार भाटियों ने सयुक्त रूप से आपकी सेना पर हमला कर दिया। इसके बाद भटिंडा पर। उन दिनों भटिंडा साबू गोत के जाट सुखचैनसिंह के हाथ था। उसने गूजरसिंह और जैतसिंह नाम के लोगों की स्त्री गौरा का सिर कटवा लिया था। उन दोनों ने महाराज अमरसिंह जी से सहायता मागी। एक साल तक पटियाले की फौजें घेरा डाले पड़ी रहीं। भटिंडा जीता न जा सका। आखिर रसद की कमी होने पर सुखचैनसिंह ने अपने लड़के कपूरसिंह को अमानत मे देकर वापिस कर दिया और खुद भी चार महीने बाद हाजिर हो गया। महाराज ने उसे गिरफ्तार कर लिया और उसके लड़के को वापिस भटिंडा चावियाँ सौंप देने को वापिस कर दिया। कपूरसिंह ने पिता को छुडाने के लिये चावियाँ वापिस कर दीं। भटिंडा को पटियाला राज्य में मिला लिया गया और सुखचैन और कपूरसिंह के गुजारे के लिये केवल १२ गाँव छोड दिये गये।

भटिंडा की विजय के बाद महाराज ने अपनी दादी फत्तोरानी का खजाना भटिंडा के किले में भिजवा दिया। पूछने पर उन्हें बताया कि वहा रुपया पैसा सुरक्षित रहेगा। इससे फत्तोरानी अमरसिंह से नाराज हो गई। इसके अलावा सेनापति सुखदाससिंह को भी महाराज ने नाराज कर दिया। इन बातों का नतीजा यह हुआ कि जब वे भटिंडा का प्रवेश-मुहूर्त करने भटिंडा पधारे हुए थे तो सेनापति और बूढ़ी रानी ने हिम्मतसिंह को बुलाकर पटियाला का राजा बना दिया। अमरसिंह जी को जब यह खबर लगी तो वे वापिस पटियाला आ गये और किले को घेर लिया। नाभा, जींद और सिरमौर से भी सहायतार्थ सेनायें बुलाई। उधर हिम्मतसिंह ने माझ के सिख बुला लिये। कई महीने तक लड़ाई होती रही। आखिर हिम्मतसिंह जी से समझौता हो गया। उन्हे २५ गांव डहरवा के परगने मे देकर वापिस कर दिया और किले पर अपना अधिकार कर लिया। सहायकों ने भी खूब रुपये दोनों से लिये। इसके दो ही वर्ष बाद हिम्मतसिंह मर गये। उनकी विधवा से महाराज अमरसिंह जी ने अपनी जातीय-प्रथा के अनुसार नाता कर लिया। इस प्रकार गृह-कलह सदा को समाप्त कर दिया। सिमरू भारतीय इतिहास में एक प्रसिद्ध फ्रांसीसी विजेता हुआ है। उसने पजाब मे आकर जींद के राजा गजपतिसिंह पर चढ़ाई कर दी। महाराज अमरसिंह जी का गजपतिसिंह से मेल था। अत. उन्होंने अपने सेनापति सुखदाससिंह जिससे कि अब मेल हो गया था—की कमान में गजपतिसिंह की सहायता के लिए सेना भेजी। पानीपत के मैदान मे दोनों राज्यों की सम्मिलित सेना के सामने सिमरू के पैर न टिक सके और वह वापिस देहली की ओर चला गया।

इसके दूसरे वर्ष फत्तोरानी का स्वर्गवास हो गया। महाराज ने उनके कारज (नुकते) में दो लाख रुपये खर्च किये। बड़ी धूम से उनका मौसर किया गया। इसी वर्ष मे आपके एक राजकुमार पैदा हुए जिनका नाम साहबसिंह रक्खा गया। पटियाला के पास ही सैफाबाद नाम का एक कस्बा है उन दिनो वह गुलबेग के अधिकार में था। महाराज ने राजा कीर्तिप्रकाश सिरमौर को सकेत कर दिया और दोनों को लड़ा कर आपने सैफाबाद को अपने कब्जे में कर लिया।

भट्टी लोगों के हालांकि पटियाला, नाभा, जींद और फरीदकोट ने अब तक काफी प्रदेश दबा लिए थे किन्तु उनका लूटमार और आक्रमण करना अभी तक भी बराबर जारी था, इसलिये महाराज कर्मसिंह जी ने सन् १८६६ ई० मे भटियाना को विजय करने के लिये चढ़ाई कर दी। भगीडान नामक स्थान पर भट्टियों ने भी पूरी तादाद मे इकट्ठे होकर मुकाबिला किया। कई दिन की घमासान लड़ाई के बाद भट्टी भाग गये। इस लड़ाई मे उनके १४०० आदमी काम आये। पटियाला को भी बहुत हानि उठानी पड़ी। कई सौ आदमी पटियाला के भी मारे गये। सरसा और फतेहाबाद पर इस भारी दल से महाराज ने कब्जा कर लिया। भट्टियों का एक सरदार मुहम्मद अमीनखां भाग कर 'रानियाँ' के किले मे जा छिपा था। विजित प्रदेशों पर दखल जमाते हुए महाराज ने 'रानियां' पर भी चढ़ाई कर दी। बीकानेर मे उस समय गजसिंह नाम का राठौर राजा राज करता था। उसने भयभीत होकर कर्मसिंह जी से पगड़ी-पलट दोस्ती करली। रानिया पर अभी युद्ध जारी था कि इधर जींद के राजा गजपतिसिंह की खबर आई कि उसके राज्य पर हॉसी के हाकिम मुल्ला रहीमदादखां ने चढ़ाई कर दी है। अत महाराज कर्मसिंह 'रानियां' का घेरा सुखदाससिंह को सुपुर्द करके वापिस लौट पड़े और फतेहाबाद पहुॅच कर अपने दीवान नानूमल को ५००० सवार देकर जीन्द के राजा साहब की सहायता के लिये रवाना किया। जींद और पटियाले की संयुक्त सेनाओं के सामने रहीमदादखॉ की सेनाये ठहर न सकीं और रहीमदादखॉ लड़ाई मे खेत रहा। दीवान नानूमल ने महाराज जींद की रजामन्दी से उसके अधिकृत प्रदेश हांसी,हिसार,रोहतक, तोसाम और मुहिम पर कब्जा करके पटियाले के राज्य मे मिला लिया। रोहतक और गोहाना के कुछ भाग राजा साहब जींद को दे दिये। इस लड़ाई मे रहीमदादखा के कई हाथी, घोड़े और लड़ाई का दूसरा सामान भी हाथ लगा। यह घटना १७७८ ई० की ही है। इसके चार महीने बाद ही खबर मिली की रानियॉ का किला भी जीत लिया गया है। भाटियों ने सुलह करली जिसके अनुसार वे भटनेर के किले मे चले गये और सरसा का कुल इलाका उन्होंने पटियाला के लिये छोड़ दिया।

रहीमदादखॉ के मारे जाने और उसका इलाका पटियाला द्वारा दबाये जाने की यह खबर जब देहली पहुँची तो वजीर नजफखा ने अलीखा की मातहती में एक बड़ी सेना इस बात का पता लेने के लिये पंजाब को रवाना की। किन्तु फुलकिया सरदारों ने लडाई की बजाय सुलह करली। जिसके अनुसार हासी, हिसार, रोहतक और मुहिम के कुल इलाके बादशाह देहली को वापिस कर दिये और गुहाना आदि सात गांव जींद के लिए रख लिये और भाटियों के विजित प्रदेश पर पटियाला का अधिकार स्वीकार कर लिया।

जिस समय कि अमरसिंह जी नये-नये देश जीतने मे लग रहे थे पंजोर के इलाके पर गरीबदास और हरीसिंह ने पुन कब्जा कर लिया। महाराज कर्मसिंहजी ने महासिह और पाखरसिह नाम के सेनापतियों की अध्यक्षता मे गरीबदास को दण्ड देने के लिये भेजा। गरीबदास तो थोड़ी सी लड़ाई के बाद ही हिम्मत हार कर अमरसिंह जी की शरण में आ गया। किन्तु हरीसिंह ने जस्सासिंह रामगढ़िया, कर्मसिंह शहजादपुरिया और गुरुबख्शसिंह अम्बाला वालों को अपनी सहायता के लिये बुला लिया। इस प्रकार की भयंकर लड़ाई हुई जिसमें बख्शी लखना मारा गया। नानूमल दीवान जख्मी हुआ और ३००० सैनिक खेत रहे। झण्डूसिंह और महासिंह दुश्मनों ने गिरफ्तार कर लिये। महाराज अमरसिंह इस समाचार से बड़े चिन्तित हुए किन्तु हिम्मत करके वह पुन. सेना इकट्ठी करने लगे। उन्होंने जींद के राजा गजपतिसिंह, नाभा के रईस हमीरसिंह, कैथल के सरदार-भाई-धन्नासिंह, भदौड़ के मालिक सरदार चोडहट-

सिंह, मलोद के सरदार दलेलसिंह और फगवाड़े से बहिन राजेन्द्रकौर तथा राहून से सरदार तारासिंह जी आदि को मय फौज रिसाले के अपनी सहायता को बुला लिया। यह संयुक्त सेना लगभग चालीस हजार थी। माझे के सिख जो कि हरीसिंह के मददगार थे छोटी २ लड़ाइयों द्वारा इस दल को छकाते रहे अन्त में महाराज अमरसिंह के साथियों ने उनको कुछ ले दे कर हरीसिंह से अलग कर दिया। हरीसिंह इस कौतुक को देखकर एक दम हक्का-बक्का हो गया और लाचार होकर एक घोड़ा भेंट का लेकर अमरसिंह जी की सेवा में हाजिर हुआ। महाराज ने उस समय तो उसे माफ कर दिया किन्तु कुछ ही दिनों बाद उसके इलाके स्यालबा को अपने राज्य में मिला लिया। कारण यह बताया कि हरीसिंह से जो युद्ध हुआ था उसमें हमारा दस लाख रुपया बर्बाद हुआ है। और जो आदमी मारे गये वह अलग रहे।

हरीसिंह को दबाने में पटियाला के दस लाख खर्च हो गये होंगे पर फिर भी उनके खजाने में अतुल धन राशि थी। उनके पास जितना इलाका था, उसमें काफी आमदनी होती थी। हरेक लड़ाई में काफी लूट होती थी। राजा आलासिंह के समय से बराबर खजाना बढ़ ही रहा था। उनकी अपार धनराशि का पता तो इससे चलता है कि उन्होंने अपनी बहिन चन्द्रकौर और साहबकौर की शादियों में बारह लाख रुपये खर्च किये थे। कई लाख रुपये मॉझे के सिक्खों को इस बात के लिये दिये थे कि वे पटियाला के इलाके को न लूटें।

राज्य बढ़ाने, धन-संग्रह करने और पड़ोसी मित्र राजाओं की मदद करने आदि के जहाँ उनमें अनेकों गुण थे—वहाँ शराब पीने का एक दुर्गुण भी था जो बहुत ज्यादा मात्रा में था। अन्तिम दिनों में आप इतनी शराब पीने लगे कि उनके ही कारण केवल ३४ वर्ष की अवस्था में आपका देहावसान हो गया।

अपने पिता के स्वर्गवास पर साहबसिंह गद्दी के मालिक हुए, उस समय (सन १७८१ ई० में) आपकी अवस्था केवल ७ वर्ष की थी। अतः राज-काज दीवान नानमल की देख-रेख में चलने लगा।

महाराज साहबसिंह

नाबालिगी से फायदा उठाने की हर किसी को इच्छा रहती है सभी यह चाहते हैं कि मेरा ही हुक्म चले। इसी प्रकार के कारणों को लेकर कुछ सिख सरदार दीवान नानूमल से नाराज रहने लगे। सरदार महासिंह जो कि रानी देसू के भाई और भवानीगढ़ के रईस थे बागी होगये। उन्होंने भवानीगढ़ को स्वतन्त्र होने की घोषणा कर दी। नानूमल ने महासिंह को दबाने के लिये भवानीगढ़ पर चढ़ाई की। लगभग चार महीने के युद्ध के बाद महासिंह काबू में आया। उससे दीवान नानूमल ने चार लाख रुपया जुर्माने का वसूल किया। यह विद्रोह अभी भली प्रकार दबा भी न था कि कोटसमेर के रईस बल्हासिंह मालू की विधवा राजकौर जो कि भटिंडा के रईस सरदार सुखचैनसिंह जी की पुत्री थी विद्रोही हो गई। दीवान नानूमल ने जैसे-तैसे इस सरदारनी को भी दबाया। इसके बाद भिक्खी के विद्रोह को दबाने के लिये नानूमल ने भिक्खी पर चढ़ाई की। यहाँ पर राजा अमरसिंह की रानी खेमकोर के भाई पाखरियासिंह और आसासिंह ने वहाँ के हाकिम सन्मासिंह बहालीवाला को निकाल कर कब्जा कर लिया था। इस चढ़ाई में रानी हुक्मा ने सेनापतित्व सभाला। आसासिंह भिक्खी को छोड़कर तलवंडी की ओर भाग गया जहाँ उसे रानी की फौज ने गिरफ्तार कर लिया। अन्त में तीन लाख का जुर्माना वसूल किया। लेकिन उनके गुजारे के लिये कुछ गॉव राज्य की ओर से उसे दे दिये गये। रानी हुक्मा राजा साहबसिंह जी की माँ थीं सन् १७८३ ई० में पटियाला राज्य में बड़ा दुर्भिक्ष पड़ा उसमें लोगों के खाने-दाने को कुछ भी पैदा

नहीं हुआ जिसका फल यह हुआ कि राज्य मे हर जगह लूटमार होने लगी और कुछ लोग राज्य को छोड़कर भागने लगे। ऐसे समय मे भी रानी साहिबा ने वडे धैर्य के साथ राज्य का प्रबन्ध किया।

रानी खेमकौर का एक सम्बन्धी मूलेपुरवाला शार्दूलसिंह भी था वह भी बागी हो गया। इसलिये नानूमल ने उसपर भी चढ़ाई की। २१ दिन तक उसके साथ लड़ाई रही। इस लड़ाई मे शार्दूलसिंह के नौकर खुर्रमबेग की तलवार से नानूमल को बहुत गहरी चोट आई। खुर्रमबेग को तो मार डाला गया किन्तु दीवान नानूमल को लड़ाई से हटना ही पड़ा। रानी हुक्मा भी इस लडाई मे मौजूद थीं। जब उन्होंने दीवान के इस प्रकार जख्मी होने की खबर सुनी तो पटियाले के भविष्य को अन्धकार-मय समझ कर वे बेहोश हो गईं और उसी बेहोशी मे उनके प्राण पखेरू उड़ गये। इस मौके से बीबी प्रधान और रानी खेमकौर के सम्बन्धियो ने दीवान नानूमल को कैद कर लिया और राज्य मे काफी गड़बड़ मचाने लगे किन्तु ज्योंही यह खबर फगवाड़े मे बीबी राजेन्द्रकौर को लगी वे अपनी फौज लेकर पटियाला आ पहुँचीं[1] और सबसे पहले उन्होंने दीवान नानूमल को कैद से छुटाया। राज काज मे सहायता देने के लिये भी पटियाला ही रहने लगीं। दीवान नानूमल राज्य का शुभचिंतक था किन्तु दुर्गुण उसमे भी था वह दरबार मे भी हुक्का पीता रहता था और सिखों की सलाम का जवाब हुक्के की नय से देने लग पड़ा था। भला सिख उसकी इस गुस्ताखी को कब बर्दाश्त कर सकते थे किन्तु नाबालिग महाराज के समझाने से वे चुप रहे। नानूमल की तरह उसके लड़के भी अभिमान मे आ रहे थे।

नानूमल ने बगावते दबाने मे कोई कसर नहीं रखी। बनेड़ के बागी खुशहालसिंह को भी जा दबाया और धम्मनसिंह को जिसकी ओर से अन्देशा था जेल मे डालकर राज्य का दौरा शुरू किया। मोलूपुरे जाकर शार्दूलसिंह के घातक हमीरसिंह से किला कब्जे मे किया और वहाँ जितना भी रुपया खजाने मे था पटियाला रवाना कर दिया। यहाँ से कोटकपूरा जाकर वहाँ के रईस से २० हजार नजराना वसूल किया और बराड़ लोगो से अपने राज्य की सरहद अलग करने के उद्देश्य से कोटकपूरा के पास ही एक किला बनवाया। भट्टियों के गाँव जो विद्रोही हो गये थे कोटकपूरा से लौट कर उन्हे भी ठीक किया।

इसके बाद पटियाला मे आकर महाराज साहबसिंह का विवाह भगई मिसल के सरदार गंडासिंह की लड़की रतनकौर के साथ बड़ी धूम-धाम के साथ किया।

सियालबा के हरीसिंह को भी जिसके पास कुछ ही गाँव राजा अमरसिंह ने रहने दिये थे। मदद दी और उसको कुछ इलाके भी जितवा दिये। यह इलाके सिंहपुरियावालों के कब्जे से निकलवाये थे। इस लडाई में कई सौ आदमी पटियाला के मारे गये।

अब तक प्राय सभी सिख दरबारी दीवान नानूमल से नाराज हो चुके थे। एक बीबी राजेन्द्रकौर ही थीं जो उससे बिगाड़ना न चाहती थीं। किन्तु उसकी एक बात ने बीबी साहिबा को भी नाराज कर दिया। वह बात यह थी :—

"मरहठे सरदारों का एक दल रानी खां की मातहती मे पंजाब आ निकला। नानूमल ने बीबी साहिबा से कहा कि आप भटिंडा चली जायें। वरना मरहठों को नजराना देने की फिकर करनी पड़ेगी। बीबी जी इस बात से नाराज होगई। मरहठों के पंजाब मे आने पर जब नानूमल उनसे मिलने गया तो बीबी साहिबा ने उसके लड़के दत्तामल को इसलिये गिरफ्तार कर लिया कि शायद नानूमल मरहठों के साथ

१ बीबी राजेन्द्रकौर राजा अमरसिंह के चाचा की बहिन थीं।

मिलकर कोई षड्यंत्र न रच बैठे। इससे तनातनी और भी बढ़ गई। नानूमल मरहठों को आखिर पटियाला ले ही आया। निकट के एक गाँव में उनके डेरे डाल दिये। मरहटों के कहने से बीबी जी ने नानूमल के लड़के को तो रिहा कर दिया। किन्तु नजराने की रकम पर वे बराबर झगड़ती रहीं। वे युद्ध करने को भी तैयार होगई। मरहठों ने भी जबरदस्ती नजराना लेने की तैयारी की। किन्तु किसी कारणवश तुरन्त ही उन्हें मथुरा की ओर जाना पड़ा। नानूमल के बेटे दत्तामल और बीबी साहिबा को भी उनके साथ मथुरा की ओर जाना पड़ा। इधर महाराज साहबसिंह ने दीवान नानूमल का कुल सामान जब्त कर लिया और उनका एक लड़का जो बरनाला में तहसीलदार था। उसे कैद कर लिया तथा उसका भी सारा माल छीन लिया। नानूमल को जब यह पता लगा तो उसने उन लोगों का सगठन करना आरम्भ किया जो विद्रोही भावना रखते थे। कुछ ही दिनों बाद बीबी राजेन्द्रकौर भी लौट आईं। नानूमल ने अपने परिवार की कुल दुर्दशा का हाल उनसे कहा। वे पसीज गईं और नानूमल को धीरज दिलाया कि तुम्हारे साथ इंसाफ होगा। किन्तु इधर चुगलों ने राजा साहबसिंह जी के कान भर दिये कि बीबी जी भी अपना प्रभुत्व बनाये रखने की फिक्र में हैं। साहबसिंह जी चुगलखोरों के हत्थे पर ऐसे चढ़े कि लाख कहने पर भी वे बीबी राजेन्द्रकौर से नहीं मिले। अपने भतीजे की कटुता का बीबीजी के दिल पर इतना धक्का लगा कि वे कुछ समय बाद इस संसार से चल बसीं। वास्तव में देखा जाय तो पाटियाला की वे महान रक्षक साबित हुई थीं।

नानूमल भी इधर-उधर भटक कर तथा एक दो लड़ाइयाँ पटियाले के साथ लड़कर सन् १७७२ में ससार से चल बसा।

दीवान नानूमल के बाद समाने के रहने वाले अलाहीबख्श नामक मुसलमान ने महाराज साहबसिंह को अपने हाथों रख लिया। वे उसकी प्रत्येक बात को मानने लगे थे। उसकी इस प्रकार की हरकतों को देख कर सरदार दयालसिंह अरोड़ा और सरदार सूबासिंह ढिल्लों ने एक दिन भरे दरबार में अलाहीबख्श को कत्ल कर दिया। इसके बाद सन् १७९३ ई० में सरदार अलबेलसिंह राज्य के वजीर नियुक्त हुए। राजा दयालसिंह दीवान बनाये गये।

दीवान अलाहीबख्श के इस प्रकार खुले आम कत्ल के बाद से राजा साहबसिंह खुद भी दरबारियों से सशकित रहने लगे। वे सोचते कभी यह मुझे भी मार सकते हैं। इस चिन्ता से मुक्ति पाने के लिये उन्होंने फतहगढ़ से अपनी बहिन साहबकौर को बुलाया। क्योंकि राजेन्द्रकौर की भाति ही वे भी बहादुर और होशियार थीं। जब वे पटियाला आ गई तो राज प्रबन्ध की देखभाल का समस्त भार उनको सौंप दिया। बीबी साहबकौर ने राज्य का प्रबन्ध अपने हाथ में लेते ही नया प्रबन्ध आरम्भ किया। उन्होंने सरदार तारासिंह की सहायता से नानूमल के भतीजे दीवानसिंह को दीवान बनाया। किन्तु उसके काम में ढिलाई देखकर गुरुदयाल को दीवान नियुक्त किया। जोकि इस काम में ठीक उतरा। बीबी साहबकौर के पटियाला आने के कुछ ही दिनों बाद उन्हें समाचार मिला कि उनके पति जयमलसिंह को उनके चचेरे भाई फतहसिंह ने कैद कर लिया है। इसलिये उन्हें वापिस सुसराल जाना पड़ा। जहाँ उन्होंने अपने पति को जेल से छुड़ाया और अपने इलाके का सुप्रबन्ध किया। इसके बाद वे पटियाला लौट आई।

सन् १७९४ के आरम्भ में मरहठों ने पंजाब की ओर मुँह फेरा। लक्ष्मनराव और अताराव नाम के मरहठा सरदारों की अध्यक्षता में मरहठों का यह दल नाभा, जीन्द, कैथल आदि सबसे नजराने लेता हुआ पटियाला की ओर रवाना हुआ। बीबी साहबकौर ने नजराना देने में अपनी हतक समझी और

लड़ाई के लिये तैयार हो गई। राजगढ़ के पास दोनों ओर से लड़ाई हुई। पटियाला के सैनिकों ने मरहठों जैसी सैनिक योग्यता प्राप्त न की थी। अत. वे मरहठों के सामने से भागने लगे। यह देखकर वीबी साहब-कौर रथ से नीचे उतर आई। और सैनिकों तथा सामन्तों को सम्बोधित करते हुए उन्होंने कहा "यदि आप लोग कायर है और आपको अपने प्राण प्यारे है तथा मान और मर्यादा का कुछ भी खयाल नहीं है तो आप भाग जा सकते हैं। किन्तु मैं प्राण रखते युद्ध भूमि से हटने वाली नहीं हूँ। क्षत्रिय क्षत्राणियों के दूध का सबूत युद्ध में ही परखा जाता है। आप चाहे तो अपनी माताओं के दूध को कुत्ती और गधी के दूध सिद्ध कर सकते हैं। किन्तु मैं समझती हूँ। अपमान की जिन्दगी से तो मान सहित मरना ही श्रेयष्कर है। है। एक स्त्री को—जो कि राजघराने और साथ ही आपके परिवार की है—शत्रुओं के बीच मे छोड़कर संसार को अपना मुँह दिखाने की हिम्मत कर सकते हों तो आप लोग अविलब मैदान छोड़कर भाग जॉय।"

वीवी साहिवा के उपरोक्त भाषण ने सेना मे और सेनापतियों मे मर मिटने की भावना पैदा करदी। "न दैन्य और न पलायनम्" सिद्धान्त के अनुसार उन्होंने मरहठों की सेना पर धावा कर दिया। मरहठों के पैर उखड़ गये और वीवी साहिवा की जीत हुई।

वीवी साहिवा जहाँ बुद्धिमान और ऊँचे दर्जे की वहादुर थीं वहाँ उनमे शासन योग्यता भी काफी थी। नाहन के राजा धर्मप्रकाश के मरने पर जब उसका छोटा भाई करमप्रकाश राज्य का अधिकारी हुआ तो उसके दरबारियों ने बगावत खड़ी कर दी। कर्मप्रकाश ने पटियाला से वीवी साहिवा को अपनी मदद के लिये बुलाया। वे थोड़ी सी फौज के साथ पटियाला पहुँचीं और जाते २ वागियों को ठीक कर दिया। इसके बाद दो चार ही दिन में वहाँ के शासन का भी प्रवन्ध ऐसे नये सिरे से कर दिया। जिससे सहसा बगावत पैदा होने की गुञ्जायश नहीं छोड़ी। राजा कर्मप्रकाश ने कृतज्ञता स्वरूप वीवी जी को वहुत से कीमती उपहार भेंट किये।

रोहतक जिले में झज्झर के पास एक किला जहाजगढ़ है। वास्तव मे उसका नाम जार्जगढ़ है इसे जार्ज टामसन ने बनवाया था। जोकि माधवराय सिंधिया के सूबेदार (नारनौल) का एक नायक था। खांडेराव ने जार्ज टामसन की वहादुरियों से खुश होकर झज्झर का इलाका उसे जागीर मे दे दिया था। यह जार्जटामसन किसी समय यूरोप से जहाज का खलासी होकर आया था। यहाँ उसने समरू फ्रासीसी की नौकरी करली। समरू ने किसी वात से नाराज होकर जार्ज टामसन को निकाल दिया। इसके वाद वह खाडेराव के पास जोकि उस समय नारनौल के मरहठा सूबेदार थे,नौकर हो गया। उन्होंने उसे झज्झर का जागीरदार वना दिया। खांडेराव के मरने के वाद जार्ज टामसन स्वतन्त्र हो गया और उसने हासी और हिसार पर भी अपना कब्जा कर लिया। वीवी साहबकौर को इससे भी लड़ना पड़ा। इसके पास युद्ध-विद्या मे प्रशिक्षित आठ सौ सैनिक और पचास तोपे थीं। फूल राज्यों के पारस्परिक झगड़ो को देखकर इसने जीन्द पर हाथ डाला। किन्तु इसके दुर्भाग्य से जीन्द की रक्षा करने के लिये कैथल, फरीदकोट और पटियाला सभी राज्यों से सेनायें इकट्ठी हो गई। वीवी साहबकौर के हाथ मे सेना सचालन सुपुर्द हुआ। विजय सिखों की हुई और जार्जटामसन हार कर दिल्ली की ओर चला गया।

वीवी साहबकौर की वजह से जहाँ पटियाला के आतरिक झगड़े वन्द रहे और रियासत टुकड़े-बन्दी से बची वहाँ कुछ इलाके जीते जाकर राज्य को बढ़ाया भी गया। इन सब बातों को देखते हुये चाहिये तो यह था कि राजा साहब उनके अहसानों से उऋण होने की कोशिश करते और आजीवन उन्हें स्नेह की निगाह से देखते। किन्तु वे अपने स्वार्थी कर्मचारियों के वहकावे मे आ गये। यह भी कहा जाता

है। कि राजा साहब की रानी आसकौर भी यह चाहती थी कि बीबी साहिबा के पद पर वह काम करे। इन बातों का यह नतीजा हुआ कि राजा साहबसिंह जी ने अपनी बहन पर तीन इलजाम लगा कर उन्हे हटाने की कोशिश की।

(१) राजा नाहन ने जो हथिनी बीबी साहिबा को भेट दी थी वह उन्होंने निज के लिये रख ली है।

(२) बिना सलाह मशविरा किये ही उन्होंने अपनी जागीर मे सन् १७६६ मे एक किला बनवा लिया है।

(३) भोरियॉ गॉव का नाम बदल कर उभयवाल रख लिया है।

बीबी साहिबा उन दिनों जींद मे ठहरी हुई थीं। जब उन्हे पता चला कि उनका भाई उनके अहसानों को भूल कर दुष्टों के काबू मे फॅस कर उनके विरुद्ध हो गया तो उनके दिल को बड़ी चोट लगी और वे बरनाला न जाकर उभयवाल चली गई। स्वार्थी लोगों ने बीबी साहिबा की इस बात से भी लाभ उठाया। उन्होंने महाराज को भडकाया कि बीबी साहिबा आपकी जरा भी परवाह नहीं करती हैं। राजा साहब भी उन लोगों के ऐसे हाथों चढे कि उन्होंने बीबी साहिबा को लिख भेजा आप उभयवाल के किले को खाली करके अपनी ससुराल फतहगढ चली जावे। बीबी साहिबा ने नाराज होकर किला खाली करने से इन्कार कर दिया। फिर क्या था सन् १७६६ की भरी गर्मी में राजा साहबसिंह ने उभयवाल किले पर हमला कर दिया। तीन दिन तक दोनों ओर से लडाई हुई। अत में सरदार लालसिह और जोधसिंह कलसियावालों ने दोनों भाई बहिनों मे समझौता करा दिया और दोनों को पटियाला वापिस कर दिया किन्तु रास्ते मे महाराज को उनके मुसाहिबों ने फिर भड़का दिया। महाराज ने भवानीगढ़ में लाकर बीबी जी को नजरबन्द कर दिया। बीबी जी बड़ी साहस वाली थीं। अपनी बुद्धिमानी से नजरबन्दी मे से निकल गई और अपने किले उभयवाल मे जा पहुची। राजा साहबसिंह को जब यह समाचार मिला तो वे खिसियाये तो सही किन्तु फिर उन्होंने चुप्पी साध ली और बीबी जी के साथ कोई छेडखानी नहीं की क्योंकि वे देख चुके थे कि इसमें उन्हीं को लोग बुराई देते थे किन्तु बीबी जी के हृदय पर भाई के इस रुख के कारण ऐसी ठेस लगी कि वह एक ही साल के अन्दर चल बसीं। राजा साहब को भी उनके मरजाने के बाद बडा रज हुआ क्योंकि आखिर तो दोनों भाई बहिन थे।

जार्ज टामसन ने पुन. पजाबी रियासतों को लूटना शुरू कर दिया, असल मे बात यह थी कि फौज तो उसने ज्यादा इकट्ठी करली थी और इलाका उसके पास थोडा था। उसने नाभा, जीन्द की भॉति ही पटियाले के कुछ हल्कों को लूटा और नरवाना तथा खूनरी आदि हल्कों को उसने अपने राज्य मे भी मिला लिया। टामसन से तंग आकर इन समस्त फुलकियन राज्यों ने टामसन के दुश्मन पैरन साहब को अपनी मदद के लिये चार लाख रुपये के भाडे पर बुलाया। उसने कुछ ही दिनों की लडाई मे टामसन को भगा दिया और इन लोगों के इलाके जो उसने जीते थे वापिस कर दिये। किन्तु पैरन को रुपया देने के लिये इन राजाओं ने उसे पजाब मे इधर-उधर घुमाया। अधीनस्थ लोगों मे नजराने वसूल किये। पैरन को भी चोट लग गई उसने भी फिर दुबारा नजराने लेने के लिये पजाब की ओर हमला किया और नजराने वसूल किये। इसकी भी अन्धा-धुन्धी उस समय तक चली जब तक कि लार्ड लेक ने पैरन को खदेड न दिया।

रानी आसकौर इस समय पटियाला की मुख्य शासक थीं, राजा साहब तो नाम मात्र के राजा थे। वे बहादुर और अक्लमद भी थीं। दुलद्दी गाव के लिये उन्हे नाभा से लडना भी पड़ा था, लडाई के समय

वे खुद मैदान मे रहती थीं। रानी आसकौर के दबदबे के आगे दरबारी भी कुछ ऐसा काम न कर सकते थे जिससे राज्य और प्रजा को कुछ नुकसान पहुँच जाय। उनकी मन मानी कतई रुकी हुई थी। इसलिये दरबारी लोग रानी साहिबा से नाराज भी थे और उन्होंने महाराज साहबसिंह जी को भडकाना शुरू किया। महाराज से कहा गया कि बीवियो की तरह अब महारानी ही आम मुख्तार हो गई है आप को तो कोई भी आगे नहीं लाना चाहतीं। नतीजा यह हुआ कि राजा रानी मे मन-मुटाव हो गया और नौबत यहाँ तक पहुँची कि राजा साहब पटियाला गढ से बाहर रहने लगे और रानी साहिबा भीतर। बीच २ मे रानी साहिबा राजा साहब को मनाती भी रहीं किन्तु चुगलखोरों की बदौलत नौबत यहाँ तक पहुँची कि राजा साहबसिंह ने सन् १८०७ मे महाराजा रणजीतसिंह को बुला भेजा। वे इससे एक-डेढ़ वर्ष पहले भी राजा साहब नाभा के बुलाने से इन दोनों रियासतों का झगडा निपटाने आ चुके थे और पटियाला से पचास हजार रुपया नजराना लेकर चले गये। अबकी बार राजा साहबसिंह ने उन्हे एक बहुमूल्य कठा और एक तोप देने का वायदा करके बुलाया था। रानी आसकौर घबरा गई और उन्होने अपने विश्वासपात्र आदमी द्वारा अपने पति को समझाया कि आखिर इसमें नुकसान किसका होगा। राज्य आपका मेरा अलग-अलग नहीं है। आप मेरे साथ जो भी इन्साफ-गैरइन्साफ करना चाहते हैं करें उसे मैं मानूगी इसमे लोक हँसी भी तो है किन्तु अब क्या होना था। महाराजा रणजीतसिंह जी तो आ ही धमके। वायदे के अनुसार भेट वसूल की और फिर रियासत मे होकर नाभा, जीन्द, कैथल में नजराने वसूल करते हुये लाहौर को चले गये। इन दोही वर्षों मे इन रियासतों को महाराजा रणजीतसिंह जी ने ऐसा दुहा कि इन्होंने उनसे पीछा छुड़ाना ही तय कर लिया और सन् १८०८ में सब मिलकर देहली मे अग्रेजों की शरण मे पहुँचे और स्पष्ट शब्दों में अपनी रक्षा के लिये प्रार्थना की। उस समय अंग्रेजो को भी महाराजा रणजीतसिंह से भय लगता था, इसलिये वे कोई खुला आश्वासन तो न दे सके पर कुछ धीरज अवश्य बँधा दिया।

इधर इन राजा लोगों ने महाराजा रणजीत सिंह जी से भी बनाये रखने की कोशिश जारी रखी किन्तु दिल से यह सब उनके दुश्मन बन गये थे। अंग्रेज भी कोई ऐसा समझौता रणजीतसिंह से करने के लिये कोशिश करने लगे जिसमे इन लोगों की रक्षा हो जाय। आखिरकार ऐसा समझौता हो ही गया।

अग्रेज सरकार ने रियासतों की सरहद की पैमायश के वास्ते आयोजन किया था। पटियाला की सरहद की पैमायश वायट नाम का एक अग्रेज करने आया। फूलासिंह अकाली जो कि उन दिनों बागी हुआ फिर रहा था। उसने वायट को मार दिया। पटियाला सरहद की जनता ने इसे बहादुरी का काम समझा, इसलिये लगभग एक हजार आदमी उसके साथ हो गये और पैमायश वालों को मार पीट कर भगा दिया। राजा साहबसिंह के पास यह खबर भेजी तो उन्होंने फूलासिंह अकाली को पकड़ने के लिये फौज भेजी। उस फौज के हाथ फूलासिंह तो क्या आना था किन्तु अंग्रेज अवश्य राजासाहब से इस बात के लिये खुश हुये और उन्होंने 'अधिराज राजेश्वर" को उपाधि इनके खिताब मे और बढ़ा दी।

इस समय राज्य-प्रबध पूर्ण रूप से साहबसिंह के ही हाथ मे था। रानी साहिबा को एक जागीर दे दी गई थी जिसमें वह अपने पुत्र युवराज कर्मसिंह के साथ रहती थीं। रानी साहिबा को भी राज-काज करने का ऐसा चस्का लगा था कि वे भी कुछ दुखी-सी रहती थीं। वे सोचती थीं राजा साहब में ऐसी योग्यता शासन चलाने की कहाँ जैसी मेरे अन्दर है और उनकी मुख्तारी में राज्य को हानि ही हो रही है लाभ कुछ भी नहीं और वास्तव मे बात ऐसी थी भी। राजा साहबसिंह बराबर राज्य को बर्बाद कर रहे

थे। अनेकों खुशामदियों को उन्होंने जागीरें दे डालीं। खजाने का रुपया वर्बाद कर दिया। वे खुशामदियों के भुलावे में सहज ही आ जाते थे। जब राज्य की हालत दिन-प्रतिदिन विगड़ने लगी तो कुछ फूल रईसों ने अक्टरलोनी साहब से शिफारस की कि राज्य का प्रवन्ध रानी आसकौर के ही हाथ मे रहना चाहिये। जब अक्टरलोनी ने यही वात राजा साहवसिंह जी के सामने रक्खी तो उन्होंने आगा पीछा सोचकर स्वीकार कर लिया हालांकि वे चाहते थे कि उनकी सौतेली माँ खेमकौर को प्रवन्ध सौंपा जाय तो ठीक रहे।

नये प्रवन्ध के अनुसार मिश्र नोधाराम, दीवान गुरुदयाल और सरदार अलवेलसिंह महारानी साहिवा के सलाहकार मुकर्रिर हुए। एक वर्ष तक तो काम अच्छी तरह से चलता रहा किन्तु फिर भीतर ही भीतर अशांति वढ़ने लगी। एजेन्ट अम्वाला को यह पता चल गया कि राजा साहव शासन में वाधा डालते हैं अत. उन्होंने पटियाला आकर रानी साहिवा को कानूनन राज्य का मालिक वना दिया। यह घटना ६ अप्रैल सन् १८१२ की है। रानी साहिवा ने अपने एक वर्ष के प्रवन्ध में एक लाख से ऊपर खजाने में रुपया इकट्ठा कर लिया था और ३००० सिपाहियों को वक्त पर वेतन चुका देती थीं। महारानी साहिवा के सुप्रवन्ध और शासन योग्यता से स्वार्थी लोग मन ही मन कुढ़ते थे। यहाँ तक कि अलवेलसिंह भी महारानी के खिलाफ हो गया। उसके खिलाफ होने का कारण यह था कि महारानी ने उसकी जागीर पर ७०००) सालाना राज्य-कर मुकर्रिर कर दिया था। महाराज को इन लोगों ने यह कह कर भड़काया कि वे अपने रास्ते का आपको काँटा समझती हैं और शीघ्र ही आपको नजरवन्द करने वाली हैं। राजा साहवसिंह को इस वात पर यकीन आ गया और उन्होंने शीघ्र ही महारानी, युवराज और नोधाराम मिश्र को नजरवन्द करा दिया और आप राज्य करने लगे किन्तु कुछ ही दिनों वाद उन्हें महसूस हुआ कि उनका यह काम उचित नहीं और मेरे से उतना अच्छा प्रवन्ध राज्य का हो भी नहीं सकता। अत. उन्होंने उन्हें नजरवन्दी से मुक्त कर दिया और राज्य का काम उन्हें ही सौंप दिया। अंग्रेज सरकार ने महारानी साहिवा को परामर्श दिया कि राजा साहव को एक लाख रुपये की जागीर देकर राज्य शासन से पृथक कर दिया जाय। और वे मजवूती से शासन करें। महाराज साहवसिंह शराव खूव पीते थे और फिजूल खर्च भी थे। सन् १८१३ ई० के मार्च में जागीर में रहते हुये ही उनका देहान्त हो गया।

राजा साहवसिंह जी की कमजोरियों से पटियाला राज्य की वढ़ोतरी तो रुक ही गई थी साथ ही राज्य को कई वार खतरा भी आ गया था। उनकी कमजोरी से ही रियासत के जागीरदार भी लाभ उठाना चाहते थे यदि रानी आसकौर तत्परता के साथ राज्य को न संभालती तो निश्चय ही पटियाला राज्य की हालत और भी खराव हो जाती। स्वार्थी लोग राज परिवारों में और यहाँ तक कि राजा-रानियों में भी फूट के वीज किस प्रकार वोने में सफल होते हैं पटियाला मे उसका सर्वोपरि उदाहरण महाराज साहवसिंहजी की ही वदौलत सावित हुआ। नशेवाजी के व्यसन ने भी महाराज को वहुत नुकसान पहुँचाया। जिसने जैसा कह दिया नशे में उसे ही मान लिया और नशे की वजह से ही इतनी जल्दी उनका देहावसान हुआ।

अपने पिता के स्वर्गवास के वाद सन् १८१३ ई० की ३० वीं जून को कर्मसिंह जी पटियाले के राज सिंहासन पर वड़ी धूम-धाम के साथ आरूढ़ हुये। फुलकियन सरदारों की ओर से इस समय खिल्लत और उपहार देने की पूर्ववत ही रस्म अदा हुई। इस समय सरकार अंग्रेज ने रियासत की ओर से अपना ध्यान हटा सा लिया था। इससे लोगों को सन्देह हुआ कि राज्य मे गड़वड़ मचेगी और उपद्रव भी होंगे किन्तु परमात्मा की कृपा से कोई

महाराज कर्मसिंह

बखेड़ा नहीं हुआ। सब कार्य ढंग से ही चलते रहे। गोरखों से अंग्रेजों की लड़ाई होने पर महाराज कर्मसिंह जी ने यथाशक्ति अंग्रेजों को सहायता दी।

सन् १८१५ के मई के आरम्भ मे एक जागीरदार चड़तसिंह ने कुछ विरोधी आन्दोलन का सूत्रपात किया। इस समय अंग्रेजों ने उसकी जागीर जब्त करने मे महाराज को मदद दी। मिश्र नौधाराम और महारानी आसकौर इस समय भी उसी प्रकार प्रबन्ध कर रहे थे।

राज्याधिकारों का कुछ मद ही ऐसा होता है जिसमे न तो भाई-भाई का सम्बन्ध रहता है और न बाप बेटे तथा माँ बेटे का। महाराज कर्मसिंह के सयाने होने पर पटियाला मे यह घटना भी सुनने को मिली कि माँ बेटों में मनमुटाव हो रहा है। माँ, चाहती है कि अभी और कुछ दिन मैं ही शासन करूँ और पुत्र अब अपने हाथ मे शासन सूत्र लेना चाहता है। मिश्र नौधाराम इस हालत को देखकर बड़ा घबराया और बेचारा ज्वाला जी के दर्शनों के लिए चल दिया किन्तु चूँकि उसने भी हकूमत का मजा लिया था। उसकी ज्वाला के दर्शनों से भी वह तृष्णा न छूटी। पटियाला की हवा देखने को लौट ही पड़ा। इधर उसकी सेवाओं की अब कोई जरूरत नहीं समझी जा रही थी। अतः रास्ते मे ही उसे मुल्के अदम रवाना कर दिया गया। यह उसे पुरानी सेवाओं का पुरष्कार मिला। किन्तु उसने हकूमत की थी या सेवा यह तो कैसे कहा जा सकता है।

अब रह गई माँ, उसके लिये भी महाराज कर्मसिंह जी ने प्रबन्ध कर दिया उन्होंने कप्तान जार्ज ब्रज असिस्टेण्ट एजेन्ट को पटियाला बुलाकर घोषणा करा दी। "अब राज्य का प्रबन्ध सोलह आने महाराज कर्मसिंह के अधिकार मे है। सब लोग इन्हीं की आज्ञा माने। जो कोई इनके कार्यों मे हस्तक्षेप करेगा उसे सख्त सजा दी जायगी। राजमाता आसकौर को सनोर की जागीर मौजूद है। वे पटियाला को छोड़ जाय और वहीं रहे।"

राजमाता आसकौर जार्ज ब्रज के आदेशानुसार सनोर चली गईं किन्तु अन्तिम दिन ईश्वराधना में व्यतीत करने को अभी उनकी भी इच्छा नहीं हुई। पचास लाख के जवाहिरात भी अपने साथ सनोर ले गईं। माया को भला कैसे छोड़तीं। उधर महाराज भी माया को 'माँ' से अधिक ही समझते थे। अतः वे क्यों बर्दास्त करते कि उनकी बजाय उनकी माँ के पास इतनी अतुल माया रहे। उन्होंने भी सवाल उठा दिया भला इतनी बड़ी जागीर की 'माँ' को क्या जरूरत और वे जवाहरात का भी क्या करेंगीं। वे तो राजकुमारों और राज महिषियों के पहनने की चीजे हैं। और जागीर लेने की उन्हे जरूरत ही क्या है। यहाँ रहे और जितना खर्च उनके खाने पीने पर पड़े, लेती रहे। सरकार ने उनकी बात को सुना और कप्तान मरे साहब को जोकि एजेन्ट साहब थे। पटियाला मे माँ बेटे के झगड़े को निपटाने के लिए भेजा कप्तान साहब ने रानी आसकोर से कहा आप पटियाला ही रहें और अपने खर्च के लिये पचास हजार साल लेती रहे। रानी साहब ने कहा—मैं क्या नौकर हूँ जो पचास हजार या पच्चीस हजार लूँ। यहाँ रहूँगी तो मालिक बनकर रहूँगी वरना गंगा किनारे जाकर भजन करूँगी। यह एक धार्मिक धमकी थी। जैसे तैसे वे पचास हजार सालाना की जागीर लेकर सनोर रहने पर ही राजी हुई। जवाहरात उन्होंने लौटा दिये। कहा जाता है अपने बेटे के घर जब एक लड़का पैदा हुआ तो वे पटियाला आ गईं।

एक बाप के दो बेटे थे। दूसरे थे अजीतसिंह महाराज के छोटे भाई, उन्हे भी लोगों ने चगुल पर चढ़ा दिया। उन्होंने दावा किया कि मेरी अपने भाई से नहीं निभती है, अत राज्य का बॅटवारा कर दिया जाय। बेचारे बहुत भटके बहुत कोशिश कीं। आखिर अक्ल आई और फिर भाई से ही समझौता

किया। महाराज ने भी सोचा "घर का भेदी लंका दाह" अत उन्हें १५०००) की जागीर और ३०००) नकद सालाना मुकर्रिर कर दिया और व्याह भी बड़ी धूम से करके अपने भ्रातृत्व का फर्ज अदा किया।

अब तक पुराने प्रवन्ध में काफी खराबियाँ आ गई थीं इसलिये घरेलू झगडों से निपटने पर महाराज ने राज्य प्रवन्ध की ओर ध्यान दिया। उस समय की हालत मे जो प्रवन्ध हो सका था वह अब सुधार चाहता था। उस समय तहसीलदारों को दीवानी और फौजदारी दोनों ही तरह के अख्तियारात हासिल थे। इसी तरह छोटे-छोटे थानेदारों को भी बहुतेरे अधिकार थे इस प्रकार ये सब ही प्रजा को मनमाने तौर पर सताने में अपनी-अपनी जगह के छोटे-मोटे राजा ही बने हुये थे। नौकरों को नौकरी के बदले मे प्राय जागीरें मिली हुई थीं। सिपाहियों को किसी किस्म की कवायद परेट भी नहीं सिखाई जाती थी। नीचे से ऊपर तक रिश्वत और बेईमानी का बाजार गर्म था। इन तमाम कमियों को दूर करने के लिए महाराज कर्मसिंह जी ने भरपूर ध्यान दिया। नये प्रवन्ध में उन्होंने चार पदाधिकारी अलग २ महकमों की देखभाल और अपीलें सुनने के लिए मुकर्रिर किये। खास २ सरदारों को छोड़कर नौकरों को जागीर की बजाय टके मुकर्रिर कर दिये। सैनिकों की श्रेणिया कायम कीं। कुछ फ्रासीसी लोगों को कवायद सिखाने के लिये नौकर रक्खा। मालगुजारी में रुपया महाजन के यहाँ जाने का रिवाज बन्द करके सीधा खजाने मे आने और रसीदे काट कर जमा कराने का कायदा नियत किया। जमीन पर उसकी किस्म को देख कर मालगुजारी बाँधी गई। इस सबके अलावा पुराने किलों और इमारतों की मरम्मत करवाई। अन्य कई नई इमारतें भी बनवाईं। इस प्रकार उन्होंने राज्य शासन गृह-प्रवन्ध सभी मे काफी सुधार किया जिससे प्रजा में भी संतोष फैला।

सन १८२६ में भरतपुर पर जब अंग्रेजों ने दूसरी बार हमला किया तो उस समय अंग्रेजों को उनकी माँग के अनुसार २० लाख रुपया उधार दिया। इस बात से जाना जा सकता है कि आपने खजाने को भरने में कोई कसर बाकी नहीं रक्खी थी।

पंजाब की चारों सिख रियासतें प्राय आपस में ही झगड़ा करती थीं। राजा कर्मसिंह जी ने यह कोशिश की कि किसी प्रकार यह लड़ाई झगड़े मिटें। अत में सन् १८३३ ई० में इन सभी रियासतों ने ढूँढान के मुकाम पर इकट्ठे होकर आपस मे सुलह करली उस सुलह का सार इस प्रकार है—

नाभा, जीन्द, कैथल और पटियाला की सन्धि

(१) हम चारों मे से कोई किसी के नौकर और अपराधी को शरण न देगा।

(२) जब दो रईसों में झगड़ा हो जाय तो बाकी दो फैसला करेंगे।

(३) सरहदी मामलात में संवत् १८२० तक जिन्होंने जहाँ तक कब्जा कर लिया था। वहाँ तक का माना जायगा।

(४) यदि कोई कर्जदार भागकर दूसरी रियासत मे चला जाय तो पहली रियासत उससे कर्जा वसूल वहाँ भी कर सकेगी।

(५) प्रत्येक राज्य अपनी प्रजा की पुकार पर यदि वह दूसरी रियासत की प्रजा के कानून खिलाफ होगी तो उचित इन्साफ मुद्दई के लिये करावेगा।

(६) चोरी का माल लेकर यदि कोई प्रजाजन दूसरी रियासत मे जायगा तो तब तक चोर नहीं समझा जावेगा जब तक कि उस गाँव के लोग उसके माल को अपने यहाँ रख न लेंगे।

(७) भगाई हुई स्त्रियों का पता यदि पॉच साल के भीतर लग जाया करे तो वह असली मालिकों को वापिस करा दी जावे। पाच साल बाद दो सौ रुपये नाते के दिला दिये जाया करे।

(८) यही नियम लड़कियों का व्याह दूसरी जगह करने पर लागू होगा।

(९) कत्ल के मामलो मे कातिल से मकतूल के वारिसों को दो सौ रुपया नकद दिलाया जायगा और कातिल को सख्त सजा दी जायगी।

सन् १८४१ मे अंग्रेजों ने पटियाला महाराज के सामने यह प्रस्ताव रक्खा कि जनरल पैरन की सहायता से जो इलाके सिरसा, हिसार आदि मे जीते है। वह हमे वापिस करदो क्योंकि मरहठों के वारिस हम ही है। दोनों ओर से अपनी २ दलीले दी जाती रही अंत मे महाराज ने अंग्रेजों की वाते मान लीं। २६६ गावों में से उन्हे ४१ गॉव हिसार जिले के और २५ सिरसा के इलाके के मिले।

यद्यपि अंग्रेजों के इस व्यवहार से महाराज कर्मसिंह कुछ नाराज हो गये थे फिर भी जब अंग्रेजो की खालसा सेना से लड़ाई हुई तो रसद, सेना आदि देकर आपने अंग्रेजों की खूब मदद की। इससे पहले उन्होंने अफ़गान युद्ध मे अंग्रेजों को पच्चीस लाख कर्ज मे दिये ही थे। सिखों की लड़ाई मे तो उन्होंने दो हजार सवार और दो हजार पैदल दिये थे वास्तव मे मुदकी में खालसा सेना को इसी दल से हारना पड़ा था वरना अंग्रेजी सेना के पॉव उखाड़ दिये जा चुके थे।

इस युद्ध में सहायता देने के उपलक्ष में सरकार ने उन्हे शिमले के पास सोलह परगने दिये थे।

राज खालसा के लेखक ने लिखा है कि "खालसा सेनाओं के विरुद्ध सहायता देने के कारण महाराज कर्मसिंह वहुत शर्मिन्दा हुए थे और उसी शर्मिन्दगी मे (२३ दिसम्बर सन् १८४५) स्वर्ग सिधार गये।"

इसमे कोई शक नहीं कि राजा कर्मसिंह जी अपने पिता और पितामह दोनों से अच्छे शासक सावित हुए और प्रजा की भलाई के भी अनेकों कार्य कर गये। उन मे धार्मिक पक्षपात की मात्रा नहीं थी। हिन्दू, मुसलमान और दूसरे सभी लोगों के साथ आप एक-सा व्यवहार करते थे।

अपने योग्य पिता के वाद आप ही राज्य के मालिक हुए। आपका जन्म सन् १८२३ ई० मे हुआ था और सन् १८४६ मे २३ वर्ष की अवस्था मे आप राज्य के मालिक हुए। जिस समय पटियाला का शासन

महाराज नरेन्द्रसिंह

सूत्र आपके हाथ में आया उस समय अंग्रेजों और खालसा सेनाओं की डट कर लड़ाई हो रही थी। इन्होंने भी अंग्रेजो की पूरी सहायता की। आपकी फौज के तो कुछ आदमियों को यह वात वुरी लगी। सिपाही वागी हो गये। किन्तु वे तुरन्त ही दवा दिये गये। अंग्रेजों को छोटे-छोटे जागीरदारों पर सन्देह हुआ कि शायद वे लोग हमारे पक्ष मे नहीं। इसलिये उन लोगों के सवके अधिकार छीन लिये गये। लड़ाई के वाद कई की जागीरे भी जब्त कर ली गईं। कैथल का राज्य भी इसी कारण से जब्त हुआ था। इसके अलावा अंग्रेजों ने प्रत्येक राज्य मे से जकात का रिवाज उठा दिया। पटियाला को इस साधन से नौ हजार रुपया सालाना की आमदनी होती थी। महाराज नरेन्द्रसिंह जी ने गवर्नर जनरल को लिख भेजा कि हमे मालूम हुआ है सरकार प्रजा के फायदे के लिये रियासतों मे से जकात उठवा रही है। हमने इसी हेतु से अपने यहॉ से जकात उठा दी है। इसके वदले मे गवर्नर जनरल ने धन्यवाद के साथ दस हजार के इलाके पटियाले को दे दिये।

कहा जाता है कि महाराज नरेन्द्रसिंह वड़े भारी दानी थे। उन्होंने सन् १८५० ई० में जव ज्वाला-मुखी की यात्रा की तो पचास लाख का चढ़ावा चढ़ाया। इसके अलावा और भी वड़े-वड़े दान किये।

जिनका जिक्र आगे करेंगे।

पंजाब के छोटे-छोटे सरदारों को बेदखल करने से एक लाभ सरकार ने पटियाला राज्य से भी उठा लिया। रियासत के चहारमी लोगों ने जब यह आन्दोलन उठाया कि रियासत हमारी आमदनी का चौथा हिस्सा ले। अब तक वह जो चौथा हिसा हमें देती है यह अनुचित है। चहारमी लोगों और पटियाला दरबार दोनों ने ही सरकार के पास अपने-अपने पत्त को रक्खा। स्थिति से लाभ उठाने के लिये तुरन्त ही सरकार ने कर्नल मेकन कमिश्नर अम्बाला को जॉच करने के लिये नियुक्त किया। जिस पर उन्होंने लिख दिया कि चहारमी लोग चाहें तो पटियाला से अलग हो सकते हैं। ऐसा ही हुआ भी पटियाला राज्य का चहारमियों वाला सारा इलाका अंग्रेज सरकार के कब्जे में चला गया।

अप्रैल सन १८५२ ई० में महाराज नरेन्द्रसिंह जी ने अपनी बड़ी लड़की की शादी धौलपुर के राजकुमार भगवंतसिंह जी के साथ बड़ी धूमधाम से की जिसमें चौदह लाख रुपया खर्च किया गया। ५०००) का दहेज अंग्रेज सरकार ने भी दिया। इस शादी के बाद महाराज नरेन्द्रसिंह जी ने गंगा-स्नान और तीर्थ यात्रा के लिये तैयारी की। हरिद्वार में गंगा-स्नान करके और बहुत कुछ दान-पुण्य करके ऋषीकेश और बद्रीनारायण के दर्शनों को गये। इन तीर्थों पर लगभग चौंसठ हजार रुपये का दान किया और बद्रीनारायण में एक हजार रुपये सालना का सदावर्त खोलकर आपने धर्म-प्रेम का परिचय दिया।

सन् १८५२ ई० में ही सितम्बर की १६ वीं तारीख को राजकुमार महेन्द्रसिंह जी का जन्म हुआ। किन्तु चूंकि आपके पुत्र पैदा हो-होकर मर जाते थे। इसलिये इस समाचार को गुप्त रक्खा गया और सन् १८५३ ई० की १४ जनवरी को प्रकट करके खूब धूमधाम से पुत्र जन्मोत्सव मनाया गया।

सन १८५४ के जीन्द राज्य में पैमायश पर उठे हुए विद्रोह को दबाने के लिये राजा साहब जीन्द की मॉग पर आपने दो हजार सैनिक और चार तोपों के साथ चौधरी इमामबख्श को भेजा। इस लड़ाई में बागियों के १७ आदमी जान से मारे गये और ८० जख्मी हुए।

जब हिन्दुस्तान में अंग्रेजों का बोलबाला था। सारे राजा रईस उनका लोहा मान चुके थे तो कौन ऐसा सम्पन्न आदमी होगा जो उनके देश की सैर करने की इच्छा न रखेगा। महाराज नरेन्द्रसिंह ने भी २८ अगस्त सन १८५४ को विलायत की यात्रा की तैयारी करली। उन दिनों कलकत्ते से ही आवागमन विलायत के लिये होता था। रास्ते में आपने काशी दर्शन किये। राजा ईश्वरप्रसाद नारायणसिंह काशी नरेश के घर पर ठहरे। स्थानीय अंग्रेज हाकिमों ने भी आपका काफी स्वागत सत्कार किया। यहाँ विश्वनाथ के दर्शनों के बाद अन्य धार्मिक स्थानों को भी देखा। काशी के गुरुद्वारे में एक सदावर्त जारी कर दिया। यहाँ से अग्निबोट के जरिये पटना और गया को देखते हुए कलकत्ते पहुँचे। कलकत्ता ही अंग्रेजों की राजधानी थी। वहाँ पर सरकार की ओर से आपका खूब स्वागत सत्कार हुआ। बहुत सी मेवा मिठाई और १३००) रुपया नकद सरकार की ओर से आये।

गवर्नर जनरल लार्ड डलहौजी ने गवर्नमेंट हाउस में दरबार लगाकर आपका स्वागत सत्कार किया। तोहफे भी भेंट किये और १७ तोपों की सलामी। नियमानुसार महाराज ने भी दूसरे दिन गवर्नर को अपने स्थान पर बुलाकर स्वागत सत्कार और भेंट की रस्म अदा की। इसके बाद कुछ आवश्यक कारण पैदा हो जाने से विलायत यात्रा स्थगित करके महाराज वापिस पटियाला लौट आये।

सन् १८५७ के गदर में राजा नरेन्द्रसिंह जी ने सरकार का हुक्म प्राप्त होते ही अम्बाला और थाना के मुकामों पर अंग्रेजों की जान बचाने और विद्रोहियों को दबाने में भरसक मदद दी। आपकी

ओर से २१५६ सवार २८४६ पैदल १५६ अफसर और ८ तोपे देहली, पानीपत, करनाल, अम्बाला, जगाधरी आदि अनेकों स्थानों पर विद्रोहियों का सामना करने के लिये पहुँचे। पटियाला में भागे हुए अग्रेज स्त्री बच्चों की बड़ी खातिर से रक्खा गया। पॉच लाख रुपया नकद सरकार को उधार दिया गया और दस लाख और भी देने का वायदा किया। रसद तो दिल्ली तक भेजी गई।

महाराज नरेन्द्रसिंह जी ने गदर मे जो सहायता की उसके बदले में सरकार ने आपको नारनौल का इलाका सदैव के लिये दे दिया। इसके अलावा भदोड का इलाका और जीनत महल आदि कई स्थान दिये। साथ ही "महाराजाधिराज" की उपाधि भी दी।

इस विजय की खुशी में जब अम्बाला मे अग्रेजो ने दरबार किया तो उसमे महाराज नरेन्द्रसिह के गले मे माला डालते हुए गवर्नर जनरल ने कहा था कि महाराज ने इस समय अग्रेज सरकार की जो सेवाये की है वे भूली नहीं जा सकतीं।

सचमुच ही अगर पंजाब के ये फुलकियन रजवाड़े अग्रेजों के साथ न होते तो पंजाब के सारे सिख चाहे वह अंग्रेजों की ही फौज मे क्यों न रहे हों। भड़क जाते ओर फिर अंग्रेजी राज्य का रहना मुश्किल हो जाता।

गदर के बाद जिस समय इलाका नारनौल पटियाला को सरकार ने दिया तो उसकी वार्षिक आय दो लाख दस हजार बताई थी। किन्तु जब देखा तो एक लाख सत्तर हजार ही आमदनी का टोटल बैठा। पटियाला की ओर से सरकार को इस बात की याद दिलाई गई। सरकार ने बाद जॉच के कनोड़ का इलाका और दे दिया। किन्तु उसकी बीस वर्ष की आमदनी उस कर्जे की रक़म मे से काटली जो पटियाला की ओर से दिया गया था। बाकी जो कर्ज पटियाला का सरकार पर था। उसके एवज मे कुछ ही दिन बाद सरकार ने इलाका खमानोन और कुछ नकद देकर कुल कर्जे को चुकता कर दिया।

महाराज ने कुछ दिन बाद शिमला जाकर वायसराय के दस्तखतों से उन इलाकों की सनद हासिल कर ली जो सरकार ने उन्हे दिये थे। जिसके अनुसार समस्त पटियाला राज्य पर पीढ़ी दर पीढ़ी महाराज के वंशजों का अधिकार स्वीकार किया गया था। इसके सिवा गोद लेने का अधिकार भी उन्हे प्राप्त होगया।

महाराज ने सरकार के परामर्शानुसार राज्य से सती-प्रथा कन्या-वध जैसे रिवाजों को भी नष्ट कर दिया।

इलाका झज्झर से जो परगने पटियाला को मिले थे। उनमें मुआफीदार भी थे और नवाब झज्झर के अहद मे वे एक प्रकार से स्वतत्र से रईस थे। उनका इलाका जब पटियाला को मिला तो उन्होंने आन्दोलन उठाया और कहा अपनी स्थिति स्वतंत्र ही रखना चाहते हैं। जैसे नवाब हम से भीड़ पड़ने पर जन, धन की मदद लेता था वैसे ही हम अब पटियाला को भी देते रहेगे। किन्तु महाराज नरेन्द्रसिंह ने यह बात पसद नहीं की। मामला दोनों ओर से सरकार तक गया। वहाॅ से फैसला हुआ कि माफीदार स्वतत्र नहीं रह सकते, उन पर पटियाला का अधिकार है।

जिस समय सन् १८५८ मे सरकार ने अग्रेजी ढंग की उपाधिया बाटने का सूत्रपात किया तो उस समय महाराज नरेन्द्रसिंह जी को सितारे हिन्द की उपाधि मिली।

इधर-उधर के झगडों से शात होने पर अग्रेज सरकार ने कानून बनाने वाली एक कौंसिल का निर्माण किया। उसमें अग्रेज सरकार ने महाराज नरेन्द्रसिंह जी को भी एक मेम्बर बनाया। उसमें महाराज के साथ बंगाल के लाट साहब की बराबरी का व्यवहार होता था। जिस प्रकार की कुर्सी बंगाल

गवर्नर की होती थी वैसी ही आपकी और उसी प्रकार एक अर्दली आपको दिया जाता था। भारत में उस समय यह कौंसिल अपने ढंग की नई-नई थी अत. महाराज इसमे सन् १८६२ ई० की १८ जनवरी की मीटिंग मे बड़ी खुशी के साथ शामिल हुए थे। इस कौंसिल में जाने से उन्होंने शासन सम्बन्धी बहुत-सी बातों की जानकारी हासिल की थी। उसके अनुसार आप अपने राज्य में भी कुछ कानून लागू करने मे अग्रसर हुये।

महाराज ने अपने राज्य के खजाने में अटूट धन राशि सग्रह कर ली थी। यही कारण था कि आपने अपनी लड़कियों की शादी में खूब खर्च किया। बीबी वसंतकौर की शादी में १४ लाख खर्च किये थे यह तो पहले ही बता चुके हैं। दूसरी लड़की बख्तावर कुँवरि की शादी मे भी जो कि महाराजा जसवन्तसिंह जी भरतपुर के साथ ब्याही गई थी। दस लाख रुपया खर्च किया था और विशेष अवसरों पर अलग देते थे।

कौंसिल के अधिवेशन के बाद वे कुछ दिन तक कलकत्ता ही ठहरे रहे क्योंकि लार्ड कैनिंग विलायत जा रहे थे और उनके स्थान पर एलगिन आ रहे थे। मार्च मे नए वायसराय के आने पर वे कलकत्ते से पटियाला लौट आये और अपने युवराज महेन्द्रसिंह जी की शादी की तैयारी करने लगे।

किन्तु उनकी यह मुराद पूरी न हो सकी और सन् १८६२ मे १३ नवम्बर को उनका देहावसान हो गया। उनके स्वर्गवास का रियासत और रियासत के बाहर काफी शोक मनाया गया। कई राजा महाराजाओं और गवर्नर पंजाब ने शोक सूचक तार भेजे। महाराज नरेन्द्रसिंह जी बुद्धिमान और योग्य शासक थे उनके जमाने में राज्य की काफी तरक्की हुई। नारनौल का ११० गाँव का इलाका और दूसरे कई इलाके जिनका जिक्र पिछले पृष्ठों मे कर चुके हैं उन्हीं के समय में पटियाला को प्राप्त हुए। उन्होंने अपने पड़ोसी नाभा, जीन्द और फरीदकोट के साथ भी अच्छा ही व्यवहार किया। उनसे आपसी मेल बढ़ाने के लिए भी कई सन्धियां कीं। आपको बाग लगवाने और इमारतें बनवाने का भी बड़ा शौक था। राज्य में आपने एक बडा बाग लगवाया। दीवानखाना और महल भी बनवाये। सन् १८६०-६१ के भारी अकाल में राज्य के कोठों से किसानों को अन्न बांटा। राज्य के जिन हिस्सों में डाकू प्रकृति के लोग रहते थे वहाँ-वहाँ दौरा करके उन्हे ठीक किया। डाक के प्रबन्ध में सुधार किया। भूमि-कर में अन्न की बजाय नकद लेने और नौकरों को वेतन देने के नियम भी आपने ही चालू किये।

पटियाला मे उन्होंने एक लाख रुपये की लागत से एक गुरुद्वारा भी बनवाया था और सवा लाख रुपया उसके खर्चे के लिये दिये।

सरकार की ओर से उन्हें "फरजन्दे खास दौलत इगलिशिया मनसूर-उल-जमान अमीर-उल-उमरा" का भी खिताब मिला था।

वास्तव में उन्होंने बड़ी ही बुद्धिमानी से अपने सारे काम चलाये थे। अंग्रेजों से उन्होंने काफी लाभ भी उठाया और काफी मदद भी दी। राष्ट्रीय दृष्टिकोण से उनकी अंग्रेज परस्ती चाहे जैसी रही हो किन्तु इसमें सन्देह नहीं उन्होंने पटियाला जैसे बड़े राज्य को खालसा की भांति नष्ट होने से बचा लिया।

महाराज महेन्द्रसिंह

अपने पिता नरेन्द्रसिंह जी के देहावसान के बाद महेन्द्रसिंह सन १८६३ ई० की २६ जनवरी को गद्दी पर बैठे। उस समय आपकी उम्र १० वर्ष चार मास २२ दिन की थी। आपका सिंहासनोत्सव बडी धूमधाम के साथ और अभूतपूर्व ढंग से मनाया गया अनेकों अंग्रेज ऑफीसरान के अलावा कपूर्थला, जीन्द, नाभा, बनारस, अलवर और यह-

मान जैसे राज्यों के अधीश्वर और प्रतिनिधि भी इस महोत्सव मे पधारे थे। चूंकि महाराज नावालिग थे इसलिये सरकार की ओर से नावालिगी के समय तक के लिये एक कौंसिल बना देने की सलाह दी गई किन्तु राज्य की वर्तमान बागडोर जिन लोगों के हाथ मे थी उन्होंने महाराज की ओर से एतराज किया कि आन्तरिक प्रवन्ध मे सरकार हाथ नहीं डाल सकती है। किन्तु सरकार ने सन्धियों के विस्तृत अर्थ के अनुसार तीन आदमियों की कौंसिल बनाई ही दी। जिसमे सरदार जगदीशसिंह जी नाजिम नारनौल, मियां रहीम बख्श नाजिम कर्मगढ़ और सरदार उदयसिंह जी को मेम्बर बनाया गया। ये लोग राज-काज मे काफी होशियार और ईमानदार थे अत. काम भली प्रकार चलने लगा किन्तु कुछ ही महीनो बाद सरदार उदय-सिंह जी का (सितम्बर १८६३ ई०) मे शरीरांत हो गया। उनकी जगह पर बख्शी बसावासिंह जी को मुकर्रर किया गया। बख्शी बसावासिंह के लिये कहा जाता है कि वे बड़े होशियार और प्रभावशाली आदमी थे किन्तु "ईश्वरेच्छा बलीयसी" सन् १८६६ ई० मे उनका भी देहान्त हो गया और उनकी खाली जगह पर सरदार फतहसिंह जी नियुक्त हुये। इसके कुछ दिन बाद मियां रहीमबख्श भी मर गये और सैयद मुहम्मद हसनखॉ को लेकर उनकी जगह भरी गई।

अब तक कौंसिल का काम अच्छा ही रहा था किन्तु सैयद मुहम्मद हसन के कौंसिलर बनने के समय से उत्पात खड़े हो गये। अच्छे २ और योग्य आदमियों को नौकरियों से अलग करके अपना दल बढ़ाया जाने लगा। कुछ को राज्य से बाहर भी कर दिया गया। इस पार्टीबंदी के समय मे ही दीवान निहालचंद को अपने प्राण खोने पडे। आखिर इस धड़ेबंदी का भी वही कटुफल निकला, जो निकला करता है। सरकारी खजाने मे से भी गडबड होने लगी।

इसी बीच सन् १८६४ ई० मे लाहौर मे जो दरबार हुआ। उसमे प्राय. सभी पंजाबी राजा रईस पधारे थे। महाराज महेन्द्रसिंह जी भी शामिल हुए। महाराज काश्मीर जिनका कि नाम रणवीर-सिंह था। उन्होंने महाराज महेन्द्र सिंह जी को अपने तम्बू मे बुलाकर खूब आवभगत की। दोनों ओर से भेट और उपहार भी दिये गये।

सन् १८६८ ई० की पाचवीं मार्च को महाराज महेन्द्रसिंह जी की शादी हुई।[१] महाराज ने इस अवसर पर बखेर के काम को कतई रुकवा दिया। राजाओं में उस समय यह कुप्रथा थी किन्तु आपने इसे अपने यहां से उठा दिया। इससे आपकी बुद्धिमानी का पता बखूबी चल जाता है।[२]

सन् १८७० ई० मे जब राजकुमार अल्फ्रेड अलवर्ट का उनके भारत पधारने के उपलक्ष मे लाहौर मे दरबार हुआ तो उसमें भी महाराज ने भाग लिया और पंजाब यूनिवर्सिटी को बीस हजार रुपया इसलिये दिया कि वह इस रकम के वजीफे प्रिन्स महोदय के नाम पर छात्रों को दे। यहा पर आपने भावल-पुर के नवाब सादिक मुहम्मदखॉ से भी मुलाकात की। उस समय वह दस ग्यारह साल के ही थे।

यहां पर आपको समाचार मिला कि उनकी बहिन (महारानी भरतपुर) का देहान्त हो गया है, अत. वे पटियाला लौट आये। चूंकि उनकी वह बहिन भी पटियाला ही मे आकर स्वर्गवासिनी हुई थीं। लाहौर दरबार के बाद महाराज को सरकार की ओर से "नाइट ग्रेन्ड कमांड तव का ए आली सितारे हिन्द" के खिताब भी मिले थे।

[१] राम नारायनसिंह फंजलपुरिये की लडकी के साथ।

[२] फिर भी शादी में ७० लाख रुपया खर्च हुआ था।

सन् १८७० ई० में २२ नवम्बर को महाराज महेन्द्रसिंह जी ने भी पटियाला में एक भारी दरबार किया। उसमें महाराज ने अपने कर्मचारियों को ७० हजार की खिल्लतें बख्शीं।

अगले साल की २०वीं जनवरी को महाराज ने कलकत्ता जाने की तैयारी शुरू की। कलकत्ते में खिताबों की सनदें देने के लिये सरकार की ओर से दरबार किया गया था। इसीलिये आप वहाँ गये। वहाँ से लौट कर गया, पटना और बनारस की यात्रा करते हुए पटियाला आ गये। इसी वर्ष नाभा के राजा भगवानसिंह जी के मरने पर आपने बडरूखा के रईस हीरासिंह जी को नाभा का उत्तराधिकारी बनाने के लिये राजा साहब जीन्द के साथ मिलकर कोशिश की, जिसमें आप सफल हुये। इसके बाद शिमले में लाट साहब से मुलाकात करने गये। वहां आपने अनाथालय के लिये बारह हजार का दान दिया। शिमला से लौट कर आपने पटियाला में उच्च शिक्षा के लिये एक कालेज की नींव डाली। जिसका नाम महेन्द्र कालेज रक्खा गया। ६० हजार रुपया सालाना खर्च के लिये मन्जूर किया। पटियाला में तार बर्की का प्रबन्ध हो जाने के बाद आपने अंग्रेज सरकार से सरहिन्द के इलाके में नहर लाने देने की मजूरी को लिखा पढ़ी की जो काफी कोशिशों के बाद मंजूर हो गई। कहा जाता है इस नहर के लाने मे आपको तीन करोड़ के लगभग रुपया खर्च करना पड़ा था।

यह कहना हम भूल गये हैं कि कौंसिल के मेंबरों की पार्टीबन्दी और स्वार्थपूर्ण नीति से तग आकर महाराज ने कौंसिल को उस दरबार में ही तोड़ दिया था जिसमे कि खिल्लतें बाटी गई थीं। उस समय उन्होंने एक स्वतन्त्र प्रबन्ध अपनी देखरेख में रक्खा था। सन् १८७० ई० के नवम्बर में महाराज महेन्द्रसिंह ने जब कि नारनौल में भयंकर अकाल पड़ रहा था। अनेकों गाँवों में घूमकर जमींदारों की हालत का निरीक्षण किया। वहाँ के नाजिम की सलाह के अनुसार साठ हजार रुपया की तकावी बाटी गई। एक लाख इकसठ हजार का बकाया मुल्तवी किया। इसके अलावा सोलह हजार की पुरानी रकमें भी माफ कर दीं। लगभग एक महीने का दौरा करके वापिस पटियाला आये। जहां आकर आपने परगनों के प्रबन्ध और मालगुजारी की वसूलयाबी के लिये कई सुधार किये।

बंगाल के अकाल में भी महाराज ने वहा के प्रजाजनों की सहायता के लिये सरकार को दस लाख रुपये दिये थे।

सन् १८७४ ई० में महाराज जब अमृतसर स्नान के लिये गये तो आपने १८ हजार रुपये चढ़ावा चढ़ाया और ५१ हजार रुपया दरबार साहब की भेट के लिये इसलिये दिया गया कि इससे सर्व साधारण के लिये लगर जारी किया जाय। इसी वर्ष आपने मुल्तान की भी सैर की।

सन् १८७५ ई० में जब प्रिंस आफ वेल्स भारत में पधारे तो आप उनसे मुलाकात करने के लिये गये और उन्हे राज्य में आने का निमन्त्रण भी दिया। निमन्त्रण के अनुसार प्रिन्स महोदय पटियाला राज्य के राजपुरा मे राज्य के महमान हुये. जहा महाराज ने उनकी यादगार ताजा बनाये रखने के लिये अल्बर्ट-महेन्द्रगंज बनाया।

महाराज की अवस्था इस समय कुछ अधिक नहीं केवल पच्चीस साल की थी। राज्य प्रबन्ध संभाले भी अभी व मुश्किल सात ही साल हुये थे कि अचानक देहान्त हो गया। हालांकि दो तीन महीने से आपकी तबियत खराब रहती थी किन्तु इस बात का किसी को स्वप्न मे भी खयाल न था कि महाराज महेन्द्रसिंह जी इतनी जल्दी संसार से कूच कर जायगे। इसीलिये इस अचानक मृत्यु से राज्य में कुछ सन्देह भी फैला। अंग्रेज सरकार की तरफ से भी जांच हुई किन्तु कोई प्रकरण सन्देह के लायक मिला

नहीं। हां, यह बात अवश्य है कि उन्हें शराब की आदत कुछ स्वार्थी लोगों ने बहुत ज्यादा लगादी थी वे बीमारी के दिनों में भी शराब पीते थे और शराब ही उनकी जान की गाहक साबित हुई।

इसमे सन्देह नहीं कि उन्होंने इस थोड़े से समय मे भी राज्य के सुधार के लिये काफी प्रयत्न किये थे। तार, डाक, स्कूल और शफ़ाखाना जोकि जमाने की खास जरूरत की चीजें समझी जाती हैं। अपने राज्य मे जारी कीं। इसके सिवा नहर लाकर तो प्रजा का भारी उपकार किया। समय-समय पर सार्वजनिक संस्थाओं को भी मुक्तहस्त से दान दिये। कूका आन्दोलन को दबाने का जो उपक्रम सरकार की ओर से था उसमे भी आपने सरकार का साथ दिया। इसे उनका उपकार तो नहीं कह सकते। आपको सरकार की ओर से १९ तोपो की सलामी बजाय १७ के इन्हीं कारणों से होगई थी। जयपुर से आकर मीने आपके राज्य मे लूट खसोट करके भाग जाते थे। इसके लिये आपने जयपुर महाराज से कुछ शर्तें तय कीं। जिसके अनुसार मीनों को छापे मारने की सुविधाये नहीं रहीं।

सरकारी क्षेत्रों मे उनकी पूछ होनी ही चाहिये क्योंकि वे अंग्रेजों के प्रत्येक काम को बड़ी उत्सुकता से पूर्ण कर देते थे। इसके बदले मे सरकारी अधिकारी भी उनकी इज्जत करते थे। सतलज के पुल का उद्‌घाटन आपसे ही अंग्रेज अधिकारियों ने कराया था। देशी राजा रईसों से भी उनका काफी मेल जोल था और प्रजा तो उनके समय मे कभी तंग ही नहीं की गई। अत. प्रजा मे भी आपके लिये काफी प्रेम था।

केवल चार वर्ष की अवस्था मे युवराज राजेन्द्रसिंह जी अपने पिता की गद्दी पर बैठे। उस समय कोई भारी उत्सव तो नहीं हो सका क्योंकि महाराज महेन्द्रसिंह जी की असामयिक मृत्यु से राज परिवार और सभी हितैषियों मे गम की घटाये छाई हुई थीं। राज्य प्रबन्ध एक कौंसिल के सुपुर्द ही किया गया। जिसमे सरदार देवसिंह के० पी० एस० ई० को प्रेसीडेंट बनाया गया। कौंसिल बनाने पंजाब गवर्नर के सेक्रेटरी मि० ग्रिफिन साहब खुद पधारे थे। इससे पूर्व कौंसिल बनने तक का प्रबन्ध भी सरकार की इच्छा के अनुसार ही हुआ था इसके अलावा सरकार ने पटियाला मे अपना एक रिपोर्टर भी इसलिये मुकर्रिर कर दिया कि वह राज्य प्रबन्ध और कौंसिल की कार्यवाहियों से सरकार को सूचित करता रहे।

महाराज राजेन्द्रसिंह

कहा जाता है सरदार देवासिंह एक योग्य और राजभक्त व्यक्ति थे। अपनी तनख्वाह के १८००) रुपयों मे से भी २००) राज खानदान के खर्च के लिये छोड़ देते थे। वह अपने अन्य साथी मेंबरों की बराबर ही १६००) माहवार ही लेते थे।

शोक समाप्ति के बाद गवर्नर खुद भी पटियाले आये और गद्दीनशीनी का उत्सव मनाया। इसी वर्ष सरकार ने पटियाला के सिक्के का भी अन्य राज्यों की तरह से ही प्रचलन बन्द कर दिया।

कौंसिल अपने समय मे बन्दोबस्त कराकर लगान सिक्कों में लेने की प्रणाली भी चला रही थी। जिससे खजाने में काफी रुपया बढ़ता जा रहा था।

सन् १८८६ में महाराज की बहिन का विवाह शहजादपुर के रईस जीवनसिंह जी के साथ हुआ। जिसमें लगभग २० लाख रुपया खर्च हुआ। इसके दो ही वर्ष बाद महाराज का भी विवाह सरदार किशनसिंह मानशाहीए चौकेरियावाले की लड़की के साथ बड़ी धूमधाम के साथ हुआ। महाराज भूपेन्द्रसिंह जी इन्हीं की कोख से पैदा हुए थे।

सन् १८८७ ई० मे उत्तर-पश्चिम में जो युद्ध हुआ, उसमे महाराज ने अपनी सेना अंग्रेजों की मदद को भेजी। चीन के युद्ध मे भी महाराज ने सैनिक सहायता सरकार को पहुँचाई। दक्षिण अफ्रीका

के युद्ध के समय में महाराज राजेन्द्रसिंहजी ने कुछ घोड़े सरकार को दिये थे। इस प्रकार सरकार-परस्ती में उन्होंने कोई कमी नहीं रहने दी।

सन् १८९० ई० के ३ अक्टूबर को महाराज को राज्य के कुल अधिकार प्राप्त हो गये क्योंकि इस समय तक आप वालिग हो चुके थे। कौंसिल खतम कर दी गई। उन लोगों को आपने पुरस्कार देकर उनकी वापिसी की। जिन्होंने कि नावालिगी में राज्य की अच्छी सेवा की थी। आपने खलीफा मुहम्मद हसन को अपना वजीर वनाया। सन् १८९५ मे खलीफा साहव के मरने पर आपने सरदार गुरुदत्तसिंह को वजीर वनाया।

महाराज राजेन्द्रसिंह जी को शिकार और पोलो खेलने का वड़ा शौक था। सूअर और शेर तक का शिकार आप वर्छे से करते थे। आपको शिकार करते देखकर अंग्रेज अफसर हैरान हो जाते थे। पोलो और क्रिकेट में तो नामी-नामी अंग्रेज खिलाड़ियों को आपने हराया था। लखनऊ, कलकत्ता, वम्बई और पूना तक आप पोलो खेलने के लिये गये थे। और प्राय. सभी जगह जीत आप ही की रहती थी।

आपके एक राजकुमार सन् १८७१ ई० के दशहरा के दूसरे दिन पैदा हुये थे। जव आपको तार द्वारा यह खवर शिमला में मिली तो पटियाला पहुँच कर खुशी मनाई और कर्मचारियों को खुशी में वख्शीशें दीं। वहुत-कुछ दान पुण्य किया। यही राजकुमार युवराज भूपेन्द्रसिंह थे। जो कि अपने पिता के वाद राज्य के मालिक वने थे।

भटिंडा राजपुरा रेलवे लाइन भी महाराजा राजेन्द्रसिंह जी के ही समय में वन गई थी।

सरकार ने सीमांत युद्ध में सहायता देने के उपलक्ष में आपको 'दी पोस्ट अगजाल्टर आफ दी स्टार आफ इंडिया" का खिताव और २१ तोपों की सलामी वजाय १९ के मंजूर की थी और काश्मीर के वाद दूसरी कुर्सी सरकारी दरवार में आप ही को मुकर्रिर थी। इस प्रकार आपने काफी इज्जत वढा ली थी।

आपके समय में राज्य में आठ हजार सेना थी जिसे आपने अंग्रेजी तरीके पर सैनिक शिक्षा दिलाई थी।

आपने अपने समय में पंजाव विश्व विद्यालय को ५५०००), अमृतसर खालसा कालेज को १६२०००), इम्पीरियल इन्स्टीट्यूट लन्दन को ३००००) रुपये दान दिये थे।

आपके संवन्ध में कहा जाता है कि आप एक दयावान नरेश थे। जव आपके सामने किसी मुलाजिम को अलग करने के कागजात पेश होते तो आप वड़े पशोपेश में पड़ते और उस समय तक किसी को नहीं निकालते जव तक कि उसके सम्वन्ध में खास शिकायतें नहीं होतीं।

आपने अपने समय में खेती की ओर भी यथा संभव ध्यान दिया। रियासत के प्रवन्ध में भी सुधार किये। राज्य में अंग्रेजी ढंग के कायदे कानून प्रचलित किये। अपील के लिये व्यवस्थित अदालतें कायम कीं। इन सव वातों को मिलाकर देखते हैं तो अपने समय के अनेकों राजा महाराजाओं से आप योग्य और अच्छे शासक थे।

सन् १९०७ ई० मे केवल १७ वर्ष राज्य करके और ठीक भरी जवानी में कुल सत्ताईस वर्ष की आयु में आपका स्वर्गवास हो गया। आपके देहावसान का शोक समस्त राज्य और सिख-समाज में मनाया गया। उस समय आपके उत्तराधिकारी युवराज भूपेन्द्रसिंह भी नावालिग ही थे।

महाराजा राजेन्द्रसिंहजी के स्वर्गवास के वाद उनके राजकुमार भूपेन्द्रसिंह जी गद्दी पर वैठे।

महाराजा भूपेन्द्रसिंह जी की अवस्था उस समय केवल १६ साल की थी। इसलिये राजकार्य फिर कौंसिल द्वारा ही संचालित होने लगा। जो कि ढाई वर्ष तक चला।

महाराज भूपेन्द्रसिंह महाराज भूपेन्द्रसिंह जी ने एटकिन्सन चोफ कालेज लाहौर मे शिक्षा पाई थी। सन् १६०३ ई० में जब कि कोरोनेशन दरबार हुआ। ग्रेण्ड रिव्यू दिखलाने के लिये अपनी फौज को ले गये। उसी समय तत्कालीन गवर्नर जनरल कर्जन के साथ आपकी मुलाकात हुई। युवराज जार्ज पंचम से भी जब कि वे लाहौर पधारे थे आपने भेंट की थी।

सन् १६०५ ई० मे आपने खालसा कालेज लाहौर के वास्ते एक लाख इसलिये दिया था कि इस रुपये से विदेशों में शिक्षा प्राप्त करने वाले विद्यार्थियों को कालेज सहायता दे।

सन् १६०८ ई० में जीन्द के एच० के० सेनापति की सुपुत्री के साथ आपका विवाह हुआ। और ३० सितम्बर सन् १६०६ ई० मे जब कि आप अठारह वर्ष के हो चुके थे सरकार ने आपको शासनाधिकार प्रदान किये। क्रिकेट के आप बड़े प्रसिद्ध खिलाड़ी थे सन् १६११ ई० मे भारतीय क्रिकेट टीम के आप कप्तान होकर विलायत गये थे। दुबारा आप विलायत बादशाह जार्ज पंचम के अभिषेक में पधारे थे। दिल्ली मे जब बादशाह के तिलकोत्सव का दरबार जुड़ा था तो आप उसमें भी शामिल हुये थे इसी दरबार में आपको सम्राट की ओर से जी० सी० एस० जार्ज का खिताब मिला था। इस यात्रा मे आपके साथ महारानी साहिबा भी थीं जिन्होंने कि भारतीय राजरानियों की हैसियत से सम्राज्ञी मेरी को मानपत्र भेंट किया था।

सन् १६१४ ई० मे जिस समय जर्मन युद्ध आरम्भ हुआ उस समय आप भारत की ओर से इम्पीरियल-वार कन्ट्रोलस में शामिल हुये थे और फिर युद्ध में आपने अपनी समस्त सेना अंग्रेजों के हवाले कर दी थी। साथ ही उन दिनों आपने पुर्तगाल, इटली, फ्रांस, जहां भी युद्ध क्षेत्र था वहाँ भ्रमण किया। इन सेवाओं के बदले मे सम्राट् की ओर से आपको सी० ओ० बी० ई० की उच्च उपाधि से विभूषित किया गया। शाही दरबारों मे अब तक पटियाला नरेशों की ओर से नजर देने का रिवाज था। इस समय से सरकार ने उसे भी बन्द कर दिया। मेजर जनरल की रैंक का सम्मान भी आपको प्राप्त हुआ था। नियमित रूप से पटियाला के नरेशों के लिये १७ तोप की सलामी थी किन्तु इस समय से १६ तोप की कर दी गई।

आपने शहर पटियाला मे गर्ल्स स्कूल, लेडी हार्डिङ्ग, नर्स पाठशाला, विक्टोरिया मेमोरियल और पूअरहाउस की स्थापना भी की थी। शहर की सफाई के लिये महकमा सफाई की भी स्थापना की थी।

राजकीय महकमों में आपके समय मे उचित परिवर्तन हुआ जिनमे अंग्रेजी ढंग का काफी समावेश किया।

सन् १६२७ ई० मे आपने घोषित किया कि हम जाट नहीं हैं राजपूत हैं। और इस राजपूत बनने की धुनि में जामनगर में जाकर हाथी भाई नामक के पंडित से आपने संस्कार कराया। हम तो समझते हैं महाराजा साहब ने अपने जीवन मे यह सबसे बड़ी भूल की थी। कारण कि अमृत छकते ही कोई भी आदमी हो वह 'सिंह' और 'खालसा' बन जाता है। खालसा के अर्थ होते हैं विशुद्ध, पवित्र और गंदगी रहित। आग मे तपाने के बाद लोहा जिस प्रकार विकार रहित हो जाता है उसी प्रकार अमृत चखने के बाद कोई भी मनुष्य चाहे वह किसी भी जाति और धर्म का हो 'खालसा' हो जाता है। खालसा को फिर क्या आवश्यकता रहती है कि वह अपना कोई दूसरा संस्कार करावे। वैसे जाट भी तो क्षत्रिय ही

हैं। राजपूत और जाटों मे इसके सिवा क्या अंतर है कि जाट विधवा विवाह करते हैं और वे खान-पान और ऊँच नीच के भेद भाव को बहुत कम मानते हैं। यह रिवाज पुराने समस्त क्षत्रिय वर्गों में थे। सिखों की लड़कियाँ गैर सिखों मे यथा सभव नहीं जानी चाहिये और जानी भी चाहिये तो उन्हीं लोगों में जो सिखों से सामाजिक रीति-रिवाज और रहन-सहन में बहुत पास हों और ऐसे जाट ही हैं फिर भी महाराज ने उन लोगों मे लड़कियों के व्यवहार करने की भी चेष्टा की जो सिख धर्म और सिख रस्म रिवाज से बहुत दूर थे। लोगों का कहना है कि राजनैतिक महत्वाकांक्षाओं ने उन्हें राजपूत बनने के लिये बाध्य किया था खैर कुछ भी हो।

इसमें सन्देह नहीं वे हिंदुस्तान के राजाओं मे एक ऊँचे दर्जे के राजनीतिज्ञ थे। गोलमेज कान्फ्रेंस मे भी पधारे थे और भारत की स्वराज्य की मांग का समर्थन करते हुए राजाओं का भी एक दृष्टिकोण पेश किया था। किन्तु उन्होंने अपने आचरण से प्रजा मे और बाहर भी एक गहरा असन्तोष पैदा कर दिया था। उन्होंने शादियाँ भी कई कीं।

इससे पहले उनके समय में महाराजा नाभा के केस को लेकर कुछ अप्रिय घटनाये हुईं जिनमें स्वार्थी लोगों ने आप मे और महाराज रिपुदमनसिंह जी में मेल नहीं होने नहीं दिया।

नरेन्द्र मंडल के चायस चान्सलर आप कई वर्ष तक रहे। फेडरेशन में न शामिल होने का राजाओं की ओर का जो आन्दोलन था। उसे आपही की नीति से बल प्राप्त हुआ था।

आपके समय मे आपके राज्य मे भी राजनैतिक जागृति प्रजा के लोगों में हुई जिसे दबाने मे आपने सफलता प्राप्त की। सरदार सेवासिंह की जेल में होने वाली मौत से आपके प्रति जनता के हृदय मे कटुभाव उत्पन्न हुए थे किंतु समस्त सिख समाज आप से एक दम नाराज हुआ हो ऐसा दिखाई नहीं दिया। कारण कि सिख संस्थाओं को दान देने में आप सदैव अग्रणी रहते थे।

सन् १९२६ ई० में अखिल भारतीय जाट महासभा ने आपको सभापति बनाना चाहा था। इसके बाद सन् १९३६ ई० में रैवाड़ी के राजपूत महासभा के आप प्रधान चुने गये थे किंतु वहाँ के लोगों की पार्टी बंदी और अपने स्वास्थ्य की खराबी के कारण आप उसमें शामिल न हो सके थे।

इतिहास की खोज के लिये आपने एक इतिहास विभाग भी राज्य की ओर से स्थापित किया था। जिसमें अन्य कई कार्यकर्ताओं के अलावा ठाकुर किशोरसिंह जी बारठ को भी रक्खा था किंतु पीछे राजपूतों के आन्दोलन पर महाराज ने उन्हें अलग कर दिया। राजपूत बारठजी से इसलिये नाराज हो गए थे उन्होंने राजपूतों के सम्बन्ध मे कलकत्ते के किसी समाचार पत्र में कुछ खरी-खरी बातें लिखी थीं।

महाराज भूपेन्द्रसिंह जी के समय मे राज्य कोष की वृद्धि तो नहीं हुई क्योंकि वह खर्चीले राजाओं में से थे। उनसे स्वार्थी और चलते लोगों ने लाभ भी काफी उठाया।

उन्होंने अपने समय बहुत सा रुपया दान दिया था जिसके कुछ आंकड़े इस प्रकार हैं—

मिन्टो मेमोरियल फंड ५०००), कांगड़ा रिलीफ फंड १००००), किंग मेमोरियल फंड २०००००), खालसा कालेज अमृतसर एण्डोमेंट फंड ६०००००), लेडी हार्डिञ्ज मेमोरियल १२५०००), लेडी हार्डिञ्ज मेडिकल कालेज २०००००), सिख कन्या महाविद्यालय फीरोजपुर १००००), सिख धर्मशाला लंदन १२००००), तिब्बिया कालेज देहली २५०००), हिंदू यूनिवर्सिटी बनारस ५०००००) एकमुश्त और २००००). प्रति वर्ष, युद्ध सम्बन्धी सहायता १५००००००) और प्रजा से संग्रह करके फंड ऋण मे ३५००००)। यह तो सन् १९३३ के आकडे हैं इसके बाद भी उन्होंने क्षयनिवारक फंड, बाढ़ फंड, न जाने किन-किन मदों में

लाखों रुपये दान व सहायता मे दिये।

आपको जो-जो उपाधियाँ सरकार की ओर से दी गई थीं उनकी सूची काफी लम्बी है। जी० सी० आई० ई०, जी० सी० एम० आई० जी० सी० वी० ओ० आदि हैं।

अंतिम समय मे आपने एक महत्वपूर्ण घोषणा की थी वह आपको सदैव अमर रक्खेगी वह थी प्रजा को अधिकारों की देन के लिये एक दायित्वपूर्ण सस्था के निर्माण की। जिसके लिये आपने एक कमीशन भी मुकर्रिर कर दिया था।

सन् १६३८ ई० मार्च के महीने की २३ वीं तारीख को महाराजा भूपेन्द्रसिंह जी के स्वर्गवास के वाद उनके बडे राजकुमार यादवेन्द्रसिंह जी पटियाला के महाराजा घोषित हुये। महाराजा यादवेन्द्रसिह का राज्याभिषेक उत्सव बड़े ही समारोह के साथ हुआ। जिसमे प्रतिष्ठित राजा रईस और अंग्रेज अधिकारियों ने शामिल होकर शोभा को दुगुणित किया। महाराज यादवेन्द्रसिंह जी ने इस उत्सव के समय जो घोषणा की वह लोकमत को आकर्षित करने वाली थी। आपने रिश्वत और राजकीय कार्मो मे पक्षपात को दूर करने और प्रजा के हितों पर ध्यान रखने की घोषणा से प्रजा की वृत्तियो को एक दम अपनी ओर आकर्षित कर लिया।

महाराज यादवेन्द्रसिह

सक्षेप मे आपका अब तक का जीवन विवरण इस प्रकार है। सन् १६१३ ई० की १७ वीं जनवरी को आपका जन्म हुआ। जब कि आप बालक ही थे। महाराज भूपेन्द्रसिंह जी ने अपनी खुद की निगरानी में आपकी शिक्षा के लिये एक हिन्दुस्तानी ट्यूटर नियुक्त किया। महाराज भूपेन्द्रसिंह जी की आपके लिये प्रवल इच्छा थी। एक योग्य नेता और शासक वने। जब आप सयाने हुये तो आपको एचसन कालेज लाहौर मे दाखिल कराया। जहाँ आपने मि० ए० सी० सोलज की गार्डियन-शिप मे बड़ी लगन से शिक्षा प्राप्त की। इसके बाद आपने चीफस कालेज का डिप्लोमा प्राप्त किया। आपके स्वभाव और बुद्धिमानी की प्रोफेसर प्रिंसपल और साथी सभी सराहना करते हैं। पढ़ाई के साथ ही आप क्रिकेट के खेलों मे भी अग्रसर थे।

सन १६३० ई० की पहली गोलमेज सभा मे आप अपने पिता के साथ लन्दन पधारे थे। उधर आपने अन्य यूरोपीय देशों की भी सैर की।

वहाँ से वापिस आकर आप फिलौर के पुलिस ट्रेनिंग स्कूल में दाखिल हुये। जहाँ आपने पुलिस सम्बन्धी कानून और कायदों का अध्ययन किया।

पुलिस ट्रेनिङ्ग पाने के बाद आपने सुपरिटेन्डेन्ड और इन्सपेक्टर जनरल पुलिस के पदों पर रहकर अपनी क्रियाशीलता का परिचय दिया। डाकुओं का भी दमन इस ड्यूटी के समय मे आपने वडी दिलचस्पी के साथ किया।

सन् १६३५ ई० मे आप फौजी शिक्षा मे निपुण होने के लिये कोयटा गये। जहाँ कि भूचाल आगया था। आपके साथ एक सिख रेजिमेट भी थी। आपने वहाँ वड़ी मुस्तैदी और हिम्मत के साथ निजी तौर पर भूचाल सम्बन्धी सहायता के सरकारी कामों मे भाग लिया। जब वहाँ हैजा फैला तो महाराज भूपेन्द्रसिंह जी ने आपको वापिस पटियाला बुला लिया।

सन् १६३६ ई० मे आपको महक्मा जंगल के सेक्रेटरी का चार्ज मिला, जिसे आपने वड़ी रुचि के साथ पूरा किया। पहाड़ी इलाके से मंगवा कर आपने अनेक किस्म के फल फूलदार वृक्ष पटियाला के सरकारी वगीचों मे लगवाये।

इसके बाद आपके पास महकमा सदावर्त भी आया। बाढ़ सहायक समिति, कोटा भूचाल सहायक समिति आदि में आपने प्रमुख की हैसियत से काम करके पहिले ही यह साबित कर दिया कि सार्वजनिक कार्य्यों की ओर आपकी रुचि है।

गरीबों के लिये आपके हृदय मे बराबर ख्याल रहता रहा है। एक बार अस्पताल में अचानक पहुँच कर आपने देखा कि गरीब लोगों की चिकित्सा पर डाक्टर लोग कोई ध्यान देते हैं या नहीं।

क्रिकेट के आप जन्मजात खिलाडी हैं। आस्ट्रेलियन टीम जोकि एक प्रसिद्ध टीम है उसके साथ आपने खेल में सफलता प्राप्त करके प्रसिद्धि प्राप्त की है। इस समय आपने पटियाला में एक खेल घर बनाने का आयोजन भी किया हुआ है।

आप सार्वजनिक जीवन से दूर भागने वाले रईसों में से नहीं हैं। उसका अध्ययन करते हैं और जो रुचि के अनुकूल होते हैं। उसमे भाग भी लेते हैं। जातीय संस्थाओं की ओर आपका ध्यान रहता है।

मार्च सन् १९३८ आपके पिता महाराजा भूपेन्द्रसिंह जी के देहावसान के बाद आपको जब अधिकार मिल गये। तब से तो आप बड़ी सलग्नता से कार्य करते रहे हैं। प्रजा को बिना किसी मजहबी और कौमी भेद भाव के इन्साफ और नौकरिया मिले इस बात पर तो आप पूरा जोर देते रहे हैं।

सन् १९५८ के अगस्त महीने की १५ तारीख को आपने अपनी दूसरी शादी प्रसिद्ध सिख नेता सरदार हरजानसिंह जी जेजीवालों की सुपुत्री के साथ की थी। वह महारानी सुशिक्षित और उदार खयालों की हैं। इस शादी से सिखों के अदर बड़ी प्रसन्नता पैदा हुई। सरदार हरजानसिंह जी मान गोत के जाट सिख थे। और सार्वजनिक कामों में बराबर भाग लेते थे।

उसी वर्ष दशहरा (३-१०-१९३८) के दरबार मे जिसमें कि पजाब सरकार के प्रधान मन्त्री सर सिकन्दरहयातखा कृषिमत्री सर सुन्दरसिंह मजीठिया और सिखों के प्रमुख लीडर मास्टर तारासिंह जी एव सरदार निरजनसिंह जी और ज्ञानी करतारसिंह जी आदि अनेकों सज्जन और जागीरदार एवं रईस इकट्ठे हुये थे। महाराज ने एक लोकोपयोगी घोषणा करके लोक का ध्यान अपनी ओर आकर्षित कर लिया। जिस किसी भी विवेकशील आदमी ने इस घोषणा को पढ़ा है उसी के मुंह से निकला कि पटियाले के वर्तमान महाराज नवयुवक भारतीय राजाओं में अपना एक विशेष स्थान कायम करने वालों में साबित होंगे।

इस दशहरे में दो लाख जन-समूह इकट्ठा हुआ था और शहर को प्रजाजनों ने बड़े ही उत्साह से सजाया गया था। जुलूस को देखने वालों का कहना है कि यह समारोह अभूतपूर्व था। महाराज के वजीर सर लियाकतहयातखा जोकि सर सिकन्दरहयातखा के भाई थे—ने प्रबन्ध करने और आगन्तुक जनों का स्वागत-सत्कार कराने में बड़ी दिलचस्पी से भाग लिया था।

इस प्रसिद्ध दरबार में महाराजा यादवेन्द्रसिंह जी द्वारा जो घोषणा हुई उसका सार इस प्रकार था —

(१) प्रजा की बहतरी और खुशहाली के कामों में मैं पूरी तरह से दिलचस्पी लूंगा। यह प्रजा विश्वास रक्खे।

(२) मैं अपनी समस्त प्रजा को बिना किसी मजहबी भेद-भाव के एकसा देखता हूँ और सब ही प्रजाजनों के लिये मुलाजमते और इसाफ मेरी सरकार द्वारा एकसा मिलेंगे।

(३) प्रजा की भलाई की मुझे हर समय फिक्र है। इस समय भी मेरे सामने प्रजा रजन की

पटियालाधीश श्री यादवेन्द्र सिंह जी

(श्री मथरादास सेक्रटरी राजप्रमुख के सौजन्य से प्राप्त)

कई योजनायें हैं।

(४) हमें अनुभव हुआ है कि प्रजा के स्वास्थ्य की ओर और भी कदम बढ़ाया जाय। अतः कुछ अधिक डिस्पेन्सरियां राज्य मे खोली जांयगी और चलते-फिरते अस्पताल का भी प्रबन्ध राज्य की ओर से किया जायगा।

(५) प्रजा की आर्थिक उन्नति और उद्योग-धन्धों की वृद्धि के लिये भी हमारे सामने योजनायें हैं। यह बताने मे हमे खुशी है कि राज्य मे सीमेट का कारखाना भी खोला जायगा। जिससे हजारों लोगों को रोजगार मिल सकेगा। सीमेंट के कारवार को चलाने के लिये एक कम्पनी कायम की जायेगी। सम्पन्न लोग उसके हिस्से खरीद कर लाभ उठा सकेगे।

(६) कर्जे की समस्या भी हमारे सामने है। राज्य मे ६६ फीसदी खेतिहर हैं वे लोग बुरी तरह कर्जे से दबे हुये हैं उनके उद्धार के लिये भी कोई तदवीर निकाली जायगी।

(७) इलाका नारनौल मे इस वर्ष चारे की भारी कमी है। इसलिये रेलवे से चारा लाने की सहूलियत के लिये रेलवे का चारा लाने सम्बन्धी भाड़ा कम करा दिया गया है। रेलवे को जो घाटा इस प्रकार होगा उसे राज्य पूरा कर देगा।

(८) हमारे सामने नौली, भवानीगढ़, पटियाला और धनोर के इलाकों की शिकायत थी कि मालगुजारी उधर के जमीदारों पर ज्यादा है। हमने नजरसानी करके भवानीगढ़ और नौली के चक में मालगुजारी की रकम में २६ फीसदी कमी करदी है। और पटियाला और धनोरा में इस समय तो पुराने वकाया के ३०६१८) माफ करते हैं और मालगुजारी में किस प्रकार कमी की जाय यह प्रश्न विचारार्थ है।

(९) प्रजा की भलाई के कामों सम्बन्धी जानकारी हासिल करने के लिये हम इसी शरद ऋतु में राज्य का दौरा करेंगे।

(१०) स्वर्गवासी महाराज ने जो कानूनी सुधारों के लिये कमेटी कायम की थी वह तत्सम्बन्धी जानकारी प्राप्त कर रही है। हम अवश्य ही राज्य में राजनैतिक सुधार देखना चाहते हैं।

(११) इस अवसर पर १०१ कैदियों को रिहा किया जारहा है साथ ही समस्त राजनैतिक कैदियों को भी छोड़ा जारहा है जो लोग वाहर भागे हुये हैं उन्हे भी मुक्त किया जाता है।

(१२) जिन लोगों ने राज्य की भलाई मे दिलचस्पी से भाग लिया है उन समस्त सरकारी कर्मचारियों का हम धन्यवाद करते हैं और उनमें से अनेकों को इनाम इकराम भी दिये जाते हैं।

अपने शासन-काल मे महाराज यादवेन्द्रसिंह काफी प्रगतिशील सावित हो रहे थे। यही कारण है कि जव सरदार पटेल ने रियासतें समाप्त कीं तो आपको पेप्सू राज्य का राज-प्रमुख नियुक्त किया। और आपका पटियाला राज्य भी पेप्सू में शामिल कर दिया गया।

चौबीसवाँ अध्याय

कलसिया राज्य का इतिहास

कलसिया जिला अम्बाला में एक छोटा सा सिख-राज्य है। पहले तो यह राज्य भी बहुत बडा हो गया था, किन्तु उस समय की परिवर्तनकारी हलचलोंमें इसका बहुत बडा भाग निकल गया। इस समय इसका क्षेत्रफल लगभग १७० वर्गमील है सालाना आमदनी १६६७२५) बताई जाती है। राज्य की कुछ भूमि जिला फीरोजपुर में भी है। इस राज्य के ककरौली और बसी मुख्य नगर हैं। आबादी ६७१८१, सैनानी १२५ के करीब हैं।

जिस जाति के महान वीरों ने इस राज्य की स्थापना की वे सिन्धू जाट थे। सिन्धू भारत का अति प्राचीन राजघराना है। महाभारत काल मे सिन्धू लोगों का राजा कौरवों की ओर से लडा था। सिकन्दर के समय मे भी सिन्धुओं का सिन्ध में स्वतन्त्र राज्य था। यह चन्द्रवशी क्षत्रिय हैं। अधिक खोज करने से इनकी वशावली का सिलसिला उन राजाओं तक पहुँच सकता है जिन्होंने भारत मे एक समय अच्छी ख्याति प्राप्त की थी और जो पच्छिमी भारत के एक लम्बे समय तक शासक रहे थे।

कलसिया राज्य के सस्थापक सरदार गुरुबख्शसिंह जी ने किरोड़ा मिसल के साथ पुन उत्थान किया था। पजाब के बरकिया गॉव का बहादुर सरदार करोड़ासिंह जिस सिख जत्थे के साथ रहता था। उसके प्रमुख शामसिंह और कर्मसिंह थे। इनके दल मे बारह हजार जवान रहते थे।

सरदार गुरुबख्शसिंह

और इन्होंने लगभग दस लाख के इलाके को अपने कब्जे मे कर लिया था। सन १७४० ई० मे नादिरशाह से मुठभेड करते हुये सरदार शामसिंह तो काम आगये। कर्मसिंह ने ६ वर्ष के अर्से में जालंधर मे इतनी उन्नति की कि जालन्धर को अपनी राजधानी बनाने में समर्थ हुआ। सन १७४६ मे दुर्रानियों से लडता हुआ यह भी खतम हुआ। तब इस मिसल की बागडोर करोडासिंह के हाथ आई और उसी के नाम पर इस मिसल का नाम किरोडा मिसल पड़ गया। सरदार गुरुबख्शसिंह ने किरोडा मिसल मे शामिल होकर उन सब लड़ाइयों मे भाग लिया जो किरोड़ासिंह के बाद सरदार बघेलसिंह ने लडी थीं। बघेलसिंह को इस मिसल की सरदारी सन् १७६१ ई० मे प्राप्त हुई थी। बघेलसिंह धारीवाल गोत का जाट सिख था।

माझा के सिखों ने इससे एक वर्ष पहले होशियारपुर के मुसलमान गवर्नर से बस्सोली को छीना था। इस लडाई में सरदार बघेलसिंह और गुरुबख्शसिंह दोनों ही शामिल थे।

आगे चलकर हमे यह दिखाई देता है कि इस मिसल के ये दोनों सरदार अपने-अपने लिये अलग-अलग इलाके कायम करने मे लग गये थे। होशियारपुर जिले मे सरदार बघेलसिंह और अम्बाला में सरदार गुरुबख्शसिंह अपनी-अपनी रियासते बनाने लगे। यह भी मालूम होता है कि सरदार गुरुबख्शसिंह जी का देहावसान सरदार बघेलसिंह से पहले ही हो गया था। बघेलसिंह सन् १८०२ ई० मे मृत्यु को प्राप्त हुआ। बघेलसिंह का राज उसकी दोनों विधवाओ ने आपस मे बांट लिया। रामकौर ने जिला होशियारपुर मे दो लाख के इलाके पर कब्जा कर लिया। और रतनकौर ने छलोदीवाले तीन लाख के इलाके पर अधिकार जमा लिया।

सरदार गुरुबख्शसिंह जी के सुपुत्र जोधसिंह ने अपने बाहुबल से अम्बाला के उत्तरी भाग से कुछ भू-भाग अपने कब्जे मे कर लिया था। यह वही भू-भाग थे जो आजकल कलसिया इलाके मे शामिल हैं। सरदार बघेलसिंह के मरने के बाद सरदार जोधासिंह ने महाराजा रणजीतसिंह के पास यह सवाल पेश किया कि बघेलसिंह जी का सारा इलाका मेरे और उनके उत्तराधिकारियों के बीच बटना चाहिये। महाराजा रणजीतसिंह जी ने सन् १८०६ ई० मे रतनकौर के पास पहुँच कर उसके इलाके मे से एक लाख का 'खुरदीन' वाला इलाका सरदार जोधासिंह जी को दिला दिया। इस तरह यह निपटारा हुआ। बसी, छिछरौली और चिराकू के इलाके के सिवाय भी बहुत सारे इलाके सरदार जोधासिंह ने अपने कब्जे मे कर लिये थे जो पीछे निकल गये। एक समय था कि जोधासिंह के अधीनस्थ इलाकों की आमदनी लगभग पांच लाख सालाना थी और उनका दरजा महाराजा पटियाला की बराबरी का समझा जाता था। नाभा पटियाला के झगड़ों मे उन्हे पच बनाया जाता था। सभी फुलकियन सरदार उनसे सलाह लेते थे।

सरदार जोधासिंह

सन् १८०७ ई० मे जब नारायणगढ़ पर महाराजा रणजीतसिंह जी ने हमला किया था, उस समय सरदार जोधासिंह जी उनके साथ थे। इसके अलावा कई मुहासिरों मे उन्होंने महाराजा रणजीतसिंह जी का साथ दिया था। महाराजा रणजीतसिंह जी ने भी इनको बदालाखेरी और शामचपल के इलाके दिये थे।

इनके रुतबा और बहादुरी का पता इसी से चलता है कि तत्कालीन महाराजा पटियाला ने इनके साथ दोस्ती करने के हेतु इनके द्वितीय पुत्र सरदार हरीसिंह के साथ अपनी सुपुत्री की शादी की थी।

सन् १८१८ ई० मे जब महाराजा रणजीतसिंह जी ने मुल्तान विजय के लिये सेनाये भेजीं तो सरदार जोधासिंह जी को उनका सेनापति बनाया गया। वे बड़ी बहादुरी के साथ मुलतान के पठानों से लड़ते हुए काम आये। इस युद्ध मे अनेकों मुसलमान रईस इकट्ठे हो गये थे और उन्होंने संयुक्त मोरचा लिया था।

अपने पिता के बाद सरदार शोभासिंह जी अपनी रियासत के मालिक हुए। इन्होंने पटियाला के राजा कर्मसिंह की देखरेख मे कुछ समय विताया था और उनसे इनका मेल जोल भी काफी था।

सरदार शोभासिंह जी को सन् १८२१ ई० मे सतलज के उत्तर के कुछ इलाके अंग्रेजों को दे देने पड़े। चूंकि अंग्रेजों की अधीनता तो सन् १८०६ मे सरदार जोधासिंह ही फुलकियन स्टेटों की भांति स्वीकार कर चुके थे। खिराज का बोझ हल्का करने के लिये इन इलाकों को सरदार शोभासिंह जी ने लाहौर दरबार को देकर अपना पिंड छुड़ाया। और अपने राज्य को एक प्रकार से लाहौर दरबार से स्वतन्त्र ही कर लिया।

सरदार शोभासिंह

जब अंग्रेजों की लड़ाई खालसा सेनाओं से हुई तो सरदार शोभासिंह जी ने दोनों लड़ाइयों में अन्य सिख राजाओं की भांति अंग्रेजों ही की मदद की और गवर्नर जनरल की इच्छा के मुआफिक आपने अपने राज्य से राहदारी महसूल भी उठा दिया। जिसके एवज मे २८५१) सालाना सरकार ने आपके राज्य को क्षति-पूर्ति मे देना स्वीकार किया।

सन् १८५७ ई० के गदर में शोभासिंह और उनके पुत्र लहनासिंह जी ने अंग्रेजों की यथा सामर्थ्य से भी कहीं अधिक मदद की। राज्य की ओर से एक सौ सैनिक तो दिये ही इसके अलावा खुद भी कई स्थानों पर सहायता के कार्मो मे मौजूद रहे। देहली के ऊपर नावों के पुल की रक्षा करने, कालका, अम्बाला और फीरोजपुर की सड़कों पर अंग्रेज स्त्री बच्चों को बचाने और दादूपुरे में थाना कायम करके वहां के उपद्रव को दबाने आदि के कामों में आपने पूरा सहयोग दिया।

इसके बदले में सरकार द्वारा आपके राज्य की गारण्टी और अधिकृत इलाकों पर पीढ़ी दर पीढी का स्वामित्व और गोद लेने के अधिकार प्रदान किये गये। इस मदद से कलसिया एक राज्य और उसके अधिपति राजा मान लिये गये और उन्हें फांसी के अलावा राज्य के आतरिक प्रबन्ध में पूर्ण स्वतन्त्रता दी गई।

सती की प्रथा कन्यावध की कुरिवाज और स्त्रियों का क्रय-विक्रय आपने अपने राज्य से उसी प्रकार उठा दिया जिस प्रकार कि पंजाब की अन्य रियासतों ने।

गदर समाप्ति के अगले वर्ष ही आपका देहान्त हो गया और आपके बाद लहनासिंह जी कलसिया रियासत के राजा हुये जोकि आपके ज्येष्ठ पुत्र थे। सन् १८६२ ई० में आपको सरकार की ओर से ऊपर लिखे हुये अधिकारों की सनद प्राप्त होगई। आप दो भाई थे। दूसरे का नाम मानसिंह था। मानसिंह जी के दो पुत्र जगजीतसिंह और राजेन्द्रसिंह हुये। आपके पुत्र का नाम किशनसिंह था।

सरदार लहनासिंह

सन् १८६६ ई० में केवल दस वर्ष राज्य करने के बाद ही राजा लहनासिंह जी का देहावसान हो गया। उन्होंने अपने समय में राज्य का सुप्रबन्ध करने की कोशिश की फिर भी अवस्था सन्तोषजनक नहीं हो पाई।

लहनासिंह जी के बाद उनके पुत्र किशनसिंह जी गद्दी पर बैठे। इन्हें महाराज जींद की राजकुमारी ब्याही गई थीं। जिनसे दो पुत्र पैदा हुये। जगजीतसिंह और रनजीतसिंह। बड़े जगजीतसिंह जी का सन् १८७६ ई० मे केवल सात वर्ष की ही उम्र में देहान्त हो गया था। किशनसिंह जी के सम्बन्ध अपने चचेरे भाइयों के साथ अधिक मधुर न थे। राज काज के मामले मे किशनसिंह जी जींद की नकल पर अपने यहाँ सुधार करने के इच्छुक थे किन्तु उनका समय से पहले ही देहान्त हो गया।

राजा किशनसिंह

किशनसिंह जी के देहान्त होने के बाद उनके छोटे लडके रनजीतसिंह जी कलसिया राज्य के मालिक हुए किन्तु उस समय उनकी उम्र काफी नहीं थी। नाबालिग थे अत. सरकार ने राज्य प्रबन्ध के लिये तीन आदमियों की एक कौंसिल बनादी। इस कौंसिल ने राज्य की जमीन का बन्दोबस्त कराया और बाकायदा रियासतों जैसे महकमे कायम किये। न्याय, माल और शिक्षा विभागों की स्थापना की। जमीन की उपज और अच्छाई बुराई के हिसाब से जमीन पर कर बँधाया। गाँवों की हालत की ओर भी ध्यान दिया। इस कौंसिल ने राज्य के

राजा रणजीतसिंह

मादक द्रव्यों का ठेका सरकार को ६०००) रुपया सालाना पर दे दिया। टैक्सों और लूट-खसोटों से कलसिया राज्य की प्रजा की काफी दुरावस्था हो गई थी। उसे भी सुधारने का आयोजन कौंसिल ने किया।

सन् १९०६ ई० मे राजा रनजीतसिंह जी को राज्य के कुल अधिकार मिल गये। किन्तु खेद है वे केवल दो ही वर्ष शासन करके सन् १९०८ ई० मे इस ससार से चल बसे। आपकी एक पुत्री का विवाह मुरसान-बल्देवगढ़ के राजा के साथ हुआ था।

राजा रविशेरसिंह

अपने पिता के देहावसान के समय राजा रविशेरसिंह जी की अवस्था भी कुल ६ वर्ष थी इसलिये कमिश्नर देहली की देख रेख मे एक कौंसिल की स्थापना की गई। जो आपके बालिग होने तक बराबर राज्य का प्रबन्ध करती रही। जब रियासते समाप्त हुई और पंजाब की रियासतों का सघ बना तो कलसिया राज्य, पेप्सू संघ मे मिला दिया गया।

पच्चीसवाँ अध्याय

सिख-जागीरों का इतिहास

वर्तमान समय मे सिखों में सैकड़ों छोटे-मोटे जागीरदार हैं। जिनमें से कुछ तो पेप्सू रियासत के अन्तर्गत हैं और कुछ पंजाब के अन्दर। किन्तु प्राय सभी सिख जागीरदार पंजाब में ही हैं। कुछ यू० पी० मे भी हैं किन्तु यू० पी० में जितने भी जागीरदार हैं महाराज रणजीतसिंह जी के रिश्तेदारों, दोस्तों और सरदारों में से हैं जिन्हें महाराजा रणजीतसिंह के बाद अपना दखल जमाने के लिये पजाब से बाहर निकाल देना उचित समझा था और जिनके गुजारे के लिये कुछ जमीन वहाँ बता दी थी अथवा फिर उन्होंने गदर के समय अंग्रेजों की मदद की थी।

सिख जागीरदारों का सबका एक-सा ही इतिहास हो, ऐसी बात नहीं है। इनमें से कुछ तो उन बहादुरों के उत्तराधिकारी हैं जिन्होंने मिसलों के समय में अपना खून बहा कर कुछ जमीन (इलाकों) पर कब्जा कर लिया था और महाराजा रणजीतसिंह, फूलवंश और अंग्रेजों की चपेटें खाते-खाते किसी भी रूप में बच रहे। कुछ ऐसे हैं जिन्होंने महाराजा रणजीतसिंह जी के साथ मुस्लिम सत्ता को नष्ट करने मे अपना सर्वस्व बलिदान किया था उसके बदले में महाराज ने उन्हें कुछ इलाके दे दिये थे और फिर अंग्रेजों की सेवा-शुश्रूषा से अपने को बचाने में भी समर्थ हो सके थे। कुछ वे है जो वर्तमान सिख राज्यों के ही छुट भइये हैं। जिन्हें या तो वहा के नरेशों ने ही या अंग्रेजों ने राज्य के कुछ भू-भाग पर स्वत्व दे-दिला दिये थे। एक वे भी हैं जो अंग्रेज सरकार की ही कृपा से बने हैं। इन सब के अलावा गुरुओं के खानदान के भी कुछ लोग जागीरदार हैं जिन्हें सिख राजों, मुस्लिम हाकिमों और अंग्रेज सरकार सभी से कुछ न कुछ मदद जागीरदार बनने और बने रहने मे मिली है।

संक्षिप्त तौर से हम कुछ जागीरदारों का इतिहास, यहाँ जिनके कि सम्बन्ध में जिक्र करना अत्यावश्यक समझते हैं—दे रहे हैं।

यह खानदान कहिलान कहलाता है जो कि इसी नाम के एक प्रसिद्ध जमीदार के नाम पर मशहूर हुआ है। कहिलान की ग्यारहवीं पीढ़ी में भागसिंह या भगो पैदा हुये। वह पजाब के गुरुदासपुर जिले में बटाला के पास अपना एक नया गाँव बसा कर रहने लगे। वही गाँव भगो वाला के नाम से मशहूर हुआ। जागीर भी उसी नाम पर प्रसिद्ध हुई। भगो की सन्तान मे ध्यानसिंह के पुत्र रामसिंह सरदार बाघसिंह जी बाघ के साथी बन गये।

भगो वाला

और लड़ाई झगड़ों मे बराबर भाग लेते रहे। बाघसिंह ने सन् १७६५ ई० भूगाथ और खातब नाम के दो और गॉव अपने विजित इलाके मे से रामसिंह को दे दिये। रामसिंह बहादुर आदमी थे। उन्होंने कुछ इलाका अपने बाहुबल से भी बढ़ाया और एक अच्छे इलाके के मालिक बन गये। सन् १८०६ ई० मे महाराजा रणजीतसिंह जी का इधर दौरा हुआ। उन्होंने भगोवालों के अधिकाश भाग को छीनकर देसासिंह मजीठिया को दे दिया। इस समय रणजीतसिंह का चढ़ता सितारा था इसलिये रामसिंह जी इतने पर भी कांगडा के युद्ध मे महाराजा रणजीतसिंह जी के साथ गये और वहां पर लड़ाई मे काम आये। यह घटना भी १८०६ ई० की ही हैं।

देसासिंह मजीठिया ने सरदार रामसिंह जी के नाबालिग पुत्र मिहांसिंह का खयाल रक्खा और उसे अपने लड़के लहनासिंह के साथ सैनिक शिक्षा दिलाई। सरदार देसासिंह जी जब महाराज की ओर से पहाडी इलाकों के सूबेदार बनाये गये तो देसासिंह जी उधर के पहाड़ी इलाकों की आय मे से २२००) सालाना सरदार मिहांसिंह जी को देते रहे। मिहांसिंह एक प्रकार से इस समय देसासिंह के अधीनस्थ और उनकी सेना के एक जत्थेदार थे। वे बराबर लड़ाइयों मे भाग लेते। सन् १८२५ ई० मे उन्होंने कोटलहेड़ की लड़ाई मे बिना रक्तपात के ही वहा के राजा से चाबियां दिलवा दी थीं। इस तरह जहाँ रणजीतसिंह का वह राज्य मांडलिक बन गया, वहां राज्य के साथ भी इतनी भलाई हुई कि वह एक दम नष्ट होने से बच गया।

सन् १८३२ ई० मे सरदार देसासिंह जी के मरने पर उनके पुत्र लहनासिंह का भी बर्ताव मिहांसिंह के साथ अच्छा ही रहा। उसने इन्हे १५५०) की अपनी रियासत मे जागीर देदी और १२००) साल की पेन्शन कर दी। लहनासिंह को इनका इतना विश्वास था कि जब वह पेशावर की लड़ाई मे गया तो मिहांसिंह को अमृतसर का थानेदार मुकर्रिर कर गया।

मिहांसिंह के पुत्र गुलाबसिंह को लहनासिंह मजीठिया ने अपने तोपखाने का अफसर बना दिया। गुलाबसिंह की कमान में ग्यारह तोपें दी गईं। गुलाबसिंह भी वफादार और बहादुर आदमी थे। इसलिये उनको भी २११६) सालाना की जागीर लहनासिंह ने व इजाजत महाराजा रणजीतसिंह बख्शी। गुलाबसिंह ने यहा तक तरक्की की कि जिन दिनों हीरासिंह सिख-साम्राज्य के मन्त्री बने। उस समय गुलाबसिंह सेना मे जनरल के पद पर पहुँच गये। उन्हे इस पद के वेतन मे एक हजार सालाना नकद मिलते थे और २४५८) की सालाना आमदनी के खाराबाद और लुहेका लाहौर दरबार की ओर से आपको जागीर में मिले हुये थे। जब हीरासिंह की बजाय जवाहरसिंह सिख साम्राज्य के मन्त्री हुये तो आपका सम्मान इतना और बढ़ा दिया गया कि पहले जहां आपकी कमान में ग्यारह तोपे थीं अब बारह रहने लगीं। वेतन उतना ही रहा।

दूसरे सिख-युद्ध के समय उन्हे विवश होकर अंग्रेज सरकार के पक्ष मे होना पड़ा।

सन् १८५३ ई० मे गुलाबसिंह ने सरदार लहनासिंह मजीठिया के साथ काशी की तीर्थ यात्रा की। दूसरे ही साल लहनासिंह की मृत्यु हो गई। अतः आप वापिस अपने देश मे आ गये। सन् १८६३ ई० मे आप लहनासिंह जी मजीठिया के पुत्र दयालसिंह के सरक्षक नियत हुए। इससे पहले वे नौशहरा के रईस जस्सासिंह के लडके सूरसिंह के भी सरक्षक रह चुके थे। इसके बाद कुछ दिनों के लिए राजा सासी के सरदार शमशेरसिंह सिन्धानवालिये के पुत्र बख्शीसिंह के भी संरक्षक रहे। आपकी लोकप्रियता इससे प्रकट होती है कि आपको अमृतसर गुरुद्वारा का मैनेजर भी चुना गया था। उन्होंने अपने समय मे एक

गलती भी की थी। वह यह कि अपनी जागीर मजीठियों के हाथ सन् १८७० में तीन हजार रुपये में बेच दी। किन्तु मजीठियों ने आधी उन्हें उनकी उन सेवाओं के उपलक्ष मे वापिस करदी, जो आपने इस खान्दान की की थीं।

सन् १८८२ ई० में सरदार मिहासिंह का देहांत हो गया और उनका पुत्र रिछपालसिंह उनकी जायदाद का मालिक हुआ। रिछपाल एक योग्य व्यक्ति थे। उन्हे सन् १८५५ में मुन्सिफी मिल चुकी थी किन्तु अपने पिता की मृत्यु के बाद उसे उन्होंने छोड़ दिया और अपने गॉव में ही रहकर जागीर की देखभाल करते रहे। सरदार बदनसिंह के साथ जो प्रातीय सरकार के दरबारी थे इनका रिश्ता था।

रिछपालसिंह का सन् १९०८ ई० मे देहावसान हो गया। गोपालसिंह जो कि उनके ज्येष्ठ पुत्र थे पिता के वारिस हुए। उनके दूसरे पुत्र पृथ्वीपालसिंह और विशनसिंह सरकारी ओहदों पर काम करते थे। गोपालसिंह ने अपने भतीजे के ज्येष्ठ पुत्र गुरुबख्शसिंह को गोद ले लिया था। विशनसिंह का सन् १९०४ मे ही देहांत हो गया था। विशनसिंह के हिस्से में तीन सौ एकड़ जागीर थी। जिस पर उनके तीन पुत्र काबिज हुए।

सरदार गोपालसिंह को सरकार ने दस मुरब्बे जमीन जिला लायलपुर में दी थी। उन्होंने पटियाला राज्य में खेरीमनियां नाम का गाँव भी खरीदा था। इस खान्दान के पास जिला गुरुदासपुर मे पाँच गाँवों मे ८५० एकड़ जमीन और कांगड़ा के गाजीया नामक स्थान में एक चाय का बाग है। जिला गुरुदासपुर के भगोवाला मे २०० एकड़ मुआफी और है। माफी और जागीरों से लगभग ३६७६) रुपये मालाना की आमदनी होती थी। यह पुराने समय का एक पूरे इलाके का मालिक कालांतर में पजाब का कुल चार हजार का चौफ्स रह गया।

रागर नागल का वह स्थान है जो बटाला के पास बीकानेर से आये हुए जाट लोगों ने कई सौ वर्ष पूर्व आबाद किया था और फिर मिसलों के समय में इनमें से रनदेव और उसके बेटे नत्थासिंह ने सिख धर्म की दीक्षा लेकर कन्हैया मिसल के सरदार जयसिंह की कमान में रहकर रागर नांगल के इर्द-गिर्द के इलाके पर कब्जा कर लिया था। इस स्थान पर नत्थासिंह ने एक छोटा सा किला भी बना लिया था।

रागर

नत्थासिंह के बाद कर्मसिंह ने अच्छा नाम पैदा किया। उन्होंने किले को अधिक मजबूत बनवाया और अमृतसर में एक कटरा आबाद किया जो कर्मसिंह रागर नांगल का कटरा कहलाता है। जब महाराजा रणजीतसिंह जी का प्रभुत्व बढा तो इन्होंने उनकी अधीनता स्वीकार कर ली और उनकी फौज में कप्तान का पद लेकर युद्धों में उनकी सहायता करते रहे। एक बार वेतन न मिलने पर आपने फौज का पक्ष लिया और महाराजा रणजीतसिंह जी पर दबाव डाल कर वेतन चुकवाया। इससे महाराज नाराज हो गये और उन्होंने इनका अमृतसर का मकान लुटवा लिया किन्तु फिर दोनों में मेल हो गया और पेशावर की लडाई में सख्त घायल होने के कारण दुआबा मे महाराजा ने इन्हें एक जागीर भी दी। एक समय इनके पास कई लाख रुपये की जागीर हो गई थी जो कि जिला गुरदासपुर ही मे अवस्थित थी।

कर्मसिंह के लड़के जमीयतसिंह भी महाराजा रणजीतसिंह की सेना में ही थे। उनकी बहादुरी के कारण महाराज उन्हें प्यार करते थे। जमीयतसिंह के छोटे भाई सरदारसिंह को तीन बार में महाराज ने एक जागीर दी थी। यह घटना सन १८२१ ई० की है क्योंकि इससे एक ही वर्ष पहले जमीयतसिंह और सरदारसिंह का चचेरा भाई रामसिंह दरबन्द युद्ध के समय हजारा में शहीद हो चुके थे। यह जागीर इसी युद्ध

के उपलक्ष मे मिली थी।

जमीअतसिंह के लड़के अर्जुनसिंह भी एक बहादुर सरदार थे किन्तु महाराज शेरसिंह के समय में कुछ आपसी ईर्षाद्वेष से इनकी जागीर काफी कम करदी गई। कुल २८०००) की आमदनी ही रह गई। इसमे से भी १३०००) के सवार लाहौर दरबार की मदद को देने पड़ते थे। अर्जुनसिंह की माँ राजा खड्गसिंह की रानी चांदकौर की चाची थी। अर्थात् खड्गसिंह की रानी अर्जुनसिंह की चचेरी बहिन थी। शेरसिंह और खड्गसिंह मे भाई-भाई होते हुए भी झगड़ा था। इसी कारण खड्गसिंह और नौनिहालसिंह के मरने के बाद अर्जुनसिंह की जागीर जब्त करली गई।

सतलज के धावे से पहले सन् १८४५ ई० में राजा लालसिंह ने आपको चार रेजिमेंटों का अफसर नियुक्त किया था। सौराव के युद्ध मे आप इन्हीं पल्टनों के नायक थे। क्योंकि राजा लालसिंह अंग्रेजों से मिल गया था और यह लालसिंह के इशारे पर ही चले थे। इसलिये सन् १८४७ मे मेजर लारेन्स की शिफारिस पर अंग्रेज सरकार ने इन्हे खिताव भी दिया था।

जब अकारण ही अंग्रेजों ने अटारी के राजा शेरसिंह को छेड़ा तो ये उनके साथ बगावत मे शामिल हो गये। यही क्यों आपके परिवार के सारे ही व्यक्ति राजा शेरसिंह के तरफदार हो गये। जब अंग्रेजी सेनायें रांगर नांगल पर पहुची तो उनको हटाने मे भी इनके पारिवारिक जन सफल हुए। किन्तु १८४८ के १५ अक्तूबर को ब्रिगेडियर हीलरने रांगर नांगलको फतह कर लिया और रांगर नांगलकी सारी जागीर सरदार मगलसिंह रामगढ़िया को दे दी। अर्जुनसिंह को केवल १५००) रुपये सालाना की पेंशन उनके जीवन भर के लिये सरकार ने दी। अर्जुनसिंह जी के बाद राजा नाभा की शिफारिस पर उनकी दोनों विधवाओं को केवल २४०) रुपया सालाना की पेंशन सरकार की ओर से की गई। सन् १८५६ ई० में आपका देहान्त हो गया।

अर्जुनसिंह जी के दो बेटे थे। जिनमे बड़े लड़के बलवंतसिंह ने जैसे-तैसे प्रांतीय दरबारियों में स्थान ग्रहण किया। बलवंतसिंह के दूसरे भाई अतरसिंह थे। दोनों भाइयों के पास गुरदासपुर और अमृतसर मे केवल १५०० एकड़ भूमि रह गई थी। नाभा के राजा भरपूरसिंह जी ने इन्हें रोही और बूराकलां जागीर में दे रक्खे थे किन्तु उनके उत्तराधिकारी ने उन्हे जब्त कर लिया। अतरसिंह को वे रोही की आमदनी देते रहे। सन् १६०३ ई० में अतरसिंह का भी देहान्त हो गया। उनके दो नाबालिग पोते गुरदत्तसिंह और गुरुवचनसिंह नाभा में ही परिवरिश पाकर बड़े हुए। इनके पिता प्रतापसिंह अपने बाप के आगे ही सन् १६०१ ई० मे मर चुके थे।

फरवरी सन् १६०८ ई० मे सरदार बलवंतसिंह जी का भी स्वर्गवास हो गया। उन्होंने भी दो नाबालिग पुत्र हरीसिंह और नारायणसिंह छोड़े। सरकार ने बच्चों के बालिग होने के समय तक के लिए आपकी जागीर को कोर्ट-आफ-वार्डस के प्रवन्ध मे कर दिया था। इस खान्दान को अंग्रेज सरकार से कोई जागीर नहीं मिली। जो भी कुछ शेप रही वह महाराजा रणजीतसिंह जी के समय की ही थी।

जयसिंह कन्हैया के गाव कान्ह के पास ही जुलका नाम का गांव है उसमें बघेलसिंह नाम के एक सिन्धू-गोत्रीय जाट जमीदार रहते थे। हकीकतसिंह उनके लड़के का नाम था। जयसिंह के साथ ही हकीकतसिंह भी सरदार कपूरसिंह सिंहपुरिया के दल मे शामिल हो गया। सरदार कपूरसिंह की मृत्यु के बाद दोनों सरदार स्वतन्त्र हो गये। हकीकतसिंह ने कालानौर, बूर, दुलवू, काहनगढ़, अदालतगढ़ और पठानकोट, मतू वगैरह पर अपना अधि-

फतहगढ

कार जमा लिया। इनकी कमान मे सगतपुर के सरदार साहबसिंह, दादूपुरे के दयालसिंह और सतसिंह, वनोद के चेतसिंह, तारागढ़ के साहबसिंह और देसासिंह सोहल जैसे प्रसिद्ध २ शूरवीर रहते थे। सन् १७६० ई० मे हकीकतसिंह ने चुरियानवाला को मिसमार कर दिया और उसकी जगह पर सगतपुर गाव और फतहगढ किले का निर्माण कराया। हकीकतसिंह के दूसरे भाई महतावसिंह ने चित्तोडगढ़ नाम से एक दूसरा किला वनवाया। इस प्रकार इनके अधिकृत इलाके मे दो किले हो गये।

सन् १७८२ ई० में हकीकतसिंह का देहान्त हो गया और उनका ग्यारह साल का लड़का जयमलसिंह उनका वारिस हुआ उसके समय मे कोई भी उल्लेखनीय वात नहीं हुई। सन् १८१२ ई०में ३० वर्ष की अवस्था में जयमलसिंह का देहान्त हो गया। महाराजा रणजीतसिंह ने मौका पाकर फतहगढ पर कब्जा कर लिया और जब कि जयमलसिंह की विधवा सरदारनी के तीन महीने वाद एक लडका जिसका कि नाम चादसिंह रक्खा गया था—हुआ तो महाराजा रणजीतसिंहजी ने पन्द्रह हजार रुपये सालाना की आमदनी का एक हिस्सा उनके लिये जयमलसिंह के कुल इलाके मे से छोड दिया। यह याद रखने की वात है कि महाराजा रणजीतसिंह के पुत्र कुँवर खडगसिंह के साथ जयमलसिंह की पुत्री चाँदकौर का विवाह हुआ था जो कि जयमलसिंह ने अपनी मृत्यु से कुछ ही समय पूर्व किया था। यह विवाह वड़ी ही धूमधाम के साथ हुआ था इसमें गवर्नर जनरल अक्टरलोनी और नाभा, जींद, कैथल के राजा भी पधारे थे। इससे जयमलसिंह के गौरव और वैभव का पता चलता है।

सन् १८३६ ई० में महाराजा रणजीतसिंह जी के देहावसान के वाद लाहौर मे जो-जो नाटक ध्यानसिंह वगैरह गद्दारों की नमकहरामी के कारण हुये उनका यहाँ हम विस्तृत वर्णन करना नहीं चाहते। इतना वता देना चाहते हैं कि महाराज खड्गसिंह और उनके कुँवर नौनिहालसिंह की मृत्यु के वाद जो हकदार खालसा राज्य के खड़े हुये थे। उनमे एक महाराज शेरसिंह थे और दूसरी महाराजा खड्गसिंह की विधवा महारानी चांदकौर थीं जो कि फतहगढ़ अपनी मा और भाई चादसिंह के पास रहती थीं। रानी चांदकौर के सामने दो प्रस्ताव रक्खे गये एक तो यह कि वे महाराज शेरसिंह के साथ अपना नाता करलें इससे दोनों ही अधिकारी रह सकें। दूसरे यह कि वे राजा ध्यानसिंह के पुत्र हीरासिंह को गोद ले लें। महारानी जी ने दोनों प्रस्ताव ठुकरा दिये और उन्होंने दो वातें रक्खीं। एक तो यह कि उन्हें अतरसिंह सिन्धानवालिया को गोद लेने का अधिकार दिया जाय। दूसरे यह कि कुँवर नौनिहालसिंह की वेवा के वच्चा होने वाला है उसे राज्य दिया जाय। वहुत सारे झमेले और झगड़ों तथा फिसाद के वाद लाहौर का राज्य महाराज शेरसिंह के हाथों में चला गया। रानी चादकौर अपने भाई की जागीर में ही वापिस आगई।

महाराज शेरसिंह को पता था कि फतहगढ़ मे वहुतसा धन नौनिहालसिंह ने भेजा था। अत उसने फतहगढ़ सेना भेजकर वह धन वापिस मंगा लिया। चादसिंह के लिये केवल ६० हजार रुपये की जागीर रहने दी। इनके दुर्भाग्य का अन्त यहीं नहीं हुआ। ध्यानसिंह का लड़का हीरासिंह जव खालसा राज्य का मन्त्री हुआ तो उसने चादसिंह का सारा इलाका जव्त कर लिया और दोप यह लगाया कि चांदसिंह ने मेरे पिता राजा ध्यानसिंह के मरने पर रोशनी की थी किन्तु लाहौर में फिर परिवर्तन हुआ और सरदार जवाहरसिंह मन्त्री वने। उन्होंने ३०६०) सालाना आमदनी की जागीर चांदसिंह के लडके केसरसिंह को वख्शी। जिस पर वे जिन्दगी भर काविज रहे। सन् १८७० ई० में सरदार केसरसिंह की मृत्यु हो गई।

फतहगढ़ में जहां कि किले के खंडहर अवशेष हैं। इस खान्दान के पास बहुत ही थोड़ी जमीन रह गई। अजनाला तहसील के कुछ गांवों मे थोड़ी-सी माफी की है। संगलपुर मे इस खान्दान के रईस सरुपसिंह जी के वंशज रहते हैं। वहां केवल ३०० बीघा जमीन के मालिक हैं ६२२) रु० सालाना की नकद जागीर सरूपसिंह के पास थी।

भागा

यह खान्दान पहले बहुत धनी और शक्तिशाली था। इस खान्दान का संस्थापक अमरसिंह मान गोत का जाट था और अमृतसर जिले के भागा नामक गॉव मे रहता था। सिख धर्म की दीक्षा लेकर यह कन्हैया मिसल के साथ मिलकर यवनो का शोधन और स्व-शक्ति का वर्द्धन करने लगे। सुकलगढ़, सुजानपुर, धर्मकोट और बहरामपुर पर कब्जा करके उन्होंने अपने रहने के लिये सुकलगढ़ मे एक किला बनवाया। सन् १८०५ ई० मे अमरसिंह के स्वर्ग सिधारने पर उनका बड़ा लड़का भागसिंह अपने इलाकों का मालिक हुआ। भागसिंह योद्धा प्रवृत्ति के आदमी न थे इन्होंने इलाका बढ़ाने की ओर तनिक भी ध्यान नहीं दिया, फारसी और संस्कृत के अच्छे विद्वान् होने के कारण अपना अधिकाश समय ज्ञान चर्चा मे बिताते थे। चित्रकारी में भी उनको विशेष प्रेम था। इन सबसे ज्यादा काम वह बन्दूक ढालने का जानते थे। अपने पिता के बाद केवल तीन वर्ष तक आप जीवित रहे। देसासिंह मजीठिया इनका फुफेरा भाई था। इसलिये इनकी उसके साथ दोस्ती भी गहरी थी। इनके मरने पर देसासिह ने यही कोशिश की कि इनका उत्तराधिकारी इनका लड़का हरीसिंह ही बने किन्तु ऐसा हो नहीं सका और भागसिंह का भाई बुधसिंह इलाके का मालिक बना किन्तु बुधसिंह अपने अधिकार को अक्षुण्ण नहीं बना सका। सन् १८०६ ई० मे कांगड़ा पर चढ़ाई करते समय महाराजा रणजीतसिंह ने बुधसिंह से सहायता मांगी थी किन्तु यह खयाल करके कि हम रणजीतसिंह के मातहत थोड़े ही हैं एक आदमी की सहायता नहीं दी। इससे चिढ़कर महाराजा रणजीतसिंह जी ने इसके इलाके पर कब्जा कर लिया और केवल धर्मकोट भागा की २२ हजार सालाना की आमदनी की जागीर बुधसिंह के पास रहने दी बाकी देसासिंह मजीठिया को उसकी सेवाओं के उपलक्ष्य मे दे दी। सन् १८४६ ई० में बुधसिंह की मृत्यु के बाद राजा लालसिंह ने उस पर भी कब्जा कर लिया किन्तु देसासिंह के पुत्र लहनासिंह मजीठिया की शिफारिस पर बुधसिंह की तीन विधवाओं और लड़के प्रतापसिंह के वास्ते ५०००) सालाना आमदनी की जागीर उनके गुजारे के लिये महाराजा रणजीतसिंह द्वारा दी गई। इसी मे भागसिंह के पुत्र हरीसिंह का भी हक—लाहौर दरबार की ओर से रक्खा गया। सन् १८५२ ई० मे हरीसिंह की भी मृत्यु हो गई। इनके दो पुत्र थे ईश्वरसिंह और जीवनसिंह। क्रमश. सन् १६०१ ई० और सन् १६०५ ई० में उनका भी देहान्त हो गया। दोनों ने अपने पीछे सात वारिस छोड़े। जिनमे दो पुत्र ईश्वरसिंह के और पांच जीवनसिंह के थे। इनमे हरनामसिंह सबसे बड़े थे अतः वे ही सारी जागीर के मालिक बन गये। बटाला के पास बुर्ज आर्येयान मे ६१६) सालाना की इनकी जागीर है। इनके दो भाई मुसलमान हो गये। इकबाल और फजलहक उनके नाम रक्खे गये और धर्मकोट में दोनों के पास जागीर थी। शेष भाई सरकारी फौजों और दूसरे महकमों मे घुस गये।

खन्दा

रनधावा खान्दान का संस्थापक बीकानेर राज्य से पंजाब की ओर आया था। लगभग ७०० वर्ष पहले उसने पजाब में सात खान्दानों की नींव डाली। धर्मकोट, धनियानली, झमिचारी, दोहा, दोरगा या तलवन्डी, काटू नागल और खन्दा उनके प्रसिद्ध भू-भाग थे। रनधावा की पांचवीं पीढ़ी में कजल हुआ। इसने बटाला के पास उपनिवेश कायम किया। नौशहरा, जफर-

वाल, शाहपुर और खन्दा इनके अधिकार मे आ गये। रनधावा खान्दान की दूसरी शाखाएँ भी काफी उन्नतिशील वन गई। इन्होंने आरम्भ मे कन्हैया मिसल के साथ पड़ कर तरक्की हासिल की थी। सन् १७६३ ई० मे जयसिह कन्हैया की मृत्यु के समय इनके अधिकार में लगभग दो लाख सालाना की आमदनी का भू-भाग था किन्तु रानी सदाकौर विधवा जयसिह ने इनके नौशहरा और हयातनगर के इलाके अपने कब्जे में कर लिये। इससे भागे सरदार प्रेमसिह के समय में महाराजा रणजीत-सिह जी ने सारे ही इलाके को अपने राज्य में मिला लिया। केवल १० गॉव इस खान्दान के गुजारे के लिये छोड़े।

प्रेमसिह के पिता सरदार पजावसिंह ने जोधसिह मजीठिया की पुत्री के साथ विवाह किया था। जोधसिह के पुत्र देसासिह मजीठिया का महाराजा रणजीतसिह जी पर वडा प्रभाव था। इसलिये प्रेमसिह को महाराज ने अपनी सेना मे घुडसवारों का नायक मुकर्रिर किया। प्रेमसिंह ने प्राय कई युद्धों में भाग लिया किन्तु सन् १८२४ ई० को अटक नदी को जव महाराजा रणजीतसिह पेशावर पर चढ़ाई करने के लिये पार कर रहे थे अनेकों सवारों के साथ सरदार प्रेमसिह भी वह गये। उनके चार पुत्र थे जिनमें वरावर-वरावर उनकी जागीर वॅट गई।

प्रेमसिह के वाद उनके दो लड़के सरदार जयमलसिह और जवाहरसिंह महाराजा रणजीतसिंह की सेवा में आ गये। जहॉ उन्हे सन् १८३६ ई० में रामगढ़िया व्रिगेड के कमाडर सरदार लहनासिह चाहल की जगह पर जो कि इनके श्वसुर होते थे और मर चुके थे। नियुक्त कर दिया। इन्होंने जमरुद और पहाडी प्रदेशों की सभी लडाइयों में भाग लिया। यह चार भाई थे। जवाहरसिंह और हीरासिह एक मां से और जयमलसिंह और जसवतसिंह दूसरी मा से। किन्तु प्रेम सवमें एक सा था। इनमें से जसवन्तसिंह का सन् १८४४ ई० में स्वर्गवास हो गया।

जमीन जायदाद पर सदैव से भाई-भाई भी लड़ते आये हैं। अत जव अलग-अलग होने का सवाल चला तो तीनों भाई आपस में झगड़ा करने लगे। सरदार लहनासिंह ने एक वार तीनों में उनकी ज़ायदाद का वटवारा भी कर दिया। किन्तु तुरन्त ही उनके काशी चले जाने के कारण मामला सुलझा नहीं। एक पचायत बैठाई गई जिसने खन्दा, शाहपुर, जयमल और उनके भाई को और नौशहरा और झुटपुट जवाहरसिंह को। फिर भी फैसला न हो सका। सन् १८५४ ई० मे सैटिलमेंट के समय इनके भाग्य का निर्णय अग्रेज अधिकारियों द्वारा हुआ।

इससे पहले यह वता देना होगा कि जयमलसिह ने सिखों के दूसरे युद्ध और गदर दोनों समय अग्रेज सरकार की काफी मदद की थी। किन्तु जवाहरसिंह ने इस ओर से उदासीनता ही दिखाई। इसके वदले में सरकार ने भी इन्हें तहसील उगाहने और इन्साफ करने आदि के सरकारी पद वख्शे थे। स्पेशल कमिश्नर भी वनाये गये। १०००) की सरकार ने खिलअत भी दी थी। सन् १८७० में उनका स्वर्गवास हो गया। २२००) सालाना की जागीर इसके पुत्र कृपालसिंह के हाथ में इनके वाद रही।

कृपालसिंह को भी सरकार ने वटाला में मजिस्ट्रेट का पद दिया था। दो वर्ष तक अपने उत्तरा-धिकार को पूरा करके सन् १८७२ ई० मे कृपालसिंह का भी स्वर्गवास हो गया। सरकार ने उनकी जागीर जव्त कर ली। कृपालसिंह की सरदारनी मनोकी वाले सरदार गोपालसिंह की पुत्री थीं। कृपालसिंह ने अमरीकसिंह को गोद लिया था। वही उनका वारिस हुआ। सरकार की ओर से न तो उनके पास जागीर ही रही और न दरवार में उनका स्थान ही रिजर्व रहा।

इस खानदान के पुरखा हरसैन नाम के सिन्धू जाट थे। सन् १५०० के लगभग उन्होंने गुजरानवाला जिले मे हरसैनवाल नाम की नींव डाली जो पीछे से हॅसनवाल नाम से मशहूर हुआ। इसके बाद इन्होंने स्यालकोट जिले में पसरूर तहसील के मध्य करियावंश को हटाकर एक गॉव बसाया। जिसका नाम सिरानवाली प्रसिद्ध हुआ। कारण कि उसमे हजारों आदमियों के सिर काटे गये थे। एक समय इस खान्दान के हाथ से सिहानवाली गॉव निकल गया और इस खानदान का दुरगा नामक एक शख्श स्यालकोट जिले को छोड़कर गुरदासपुर जिले मे चला आया और सिख धर्म की दीक्षा लेकर जयमलसिंह फतहगढ़िया की फौज मे भर्ती हो गया। इसके पुत्र लालसिंह ने सैनिक पने मे अच्छी तरक्की की और वह १०० सवारों का अफसर बनाया।

सिरानवाली

लालसिंह की पुत्री वहुत सुन्दर थी। जब महाराजा रणजीतसिंह स्यालकोट का दौरा कर रहे थे तो लालसिंह ने उसे महाराजा रणजीतसिंह को यह कह कर भेंट कर दिया कि आप ही जहॉ उचित समझे इसका सम्बन्ध कर दें। महाराज ने उसे अपने पुत्र खड़गसिंह के ही घर में रख दिया। खड़गसिंह ने उससे पुनर्विवाह कर लिया।[1]

लालसिंह की मृत्यु के बाद उसके पुत्र मंगलसिंह ने इस सम्बन्ध से लाभ उठाया। मंगलसिंह आरम्भ मे निरे देहाती थे। पजामा पहनना इन्होंने लाहौर मे ही आकर सीखा था। कुॅवर खड़गसिंह ने थालूर और खीटा की जागीर मंगलसिंह को बख्शी। जिनकी आमदनी लगभग ५०००) सालाना थी। मगलसिंह उत्तरोत्तर तरक्की करते गये। जब उन्हे चुनियान का इलाकेदार बनाया गया तो उस कार्य को बड़ी योग्यता से पूरा करते रहे। इससे खुश होकर खड़गसिंह जी ने महाराजा रणजीतसिंह की मंजूरी से दीवानी फौजदारी मामलात का मैनेजर और १६०००) सालाना की आमदनी का जागीरदार बना दिया। मगलसिंह ने अपने पुरखों के प्राचीन गॉव सिरानवाली को भी अपने अधिकार में कर लिया। जो अब तक अटारीवालों के कब्जे मे था। सन् १८२० ई० से सन् १८३४ तक मंगलसिंह उक्त पदों पर रहे। इसके बाद उन पदों का चार्ज तो सरदार चेतसिंह बजुआ को मिल गया और वे अपनी जागीर को सभालते रहे। इस समय तक मगलसिंह के पास २६१२५०) सालाना आमदनी की जागीर थी। इसके वदले में वे दरबार लाहौर के लिये ७८० सवार ३० जम्बूरा और २ तोप सदैव रखते थे।

जब लाहौर की राज्यशक्ति महाराज शेरसिंह के हाथ में आई तो उन्होंने मगलसिंह के पास केवल ३७०००) सालाना आमदनी के इलाके रहने दिये। बाकी सब वापिस ले लिये। किंतु कुछ सोच समझ कर सहीवाला और बेकलचिमी मे राजा शेरसिंह ने मगलसिंह को १२४५००) के इलाके और दे दिये। सन् १८४६ तक मंगलसिंह जी का इन पर अधिकार रहा। इसके बाद जब राजा लालसिंह अंग्रेजों की महरवानी से आगे बढ़ रहा था उसने केवल ८६०००) की पुरानी जागीर इनके पास इस शर्त पर कि वह १२० सवार दरबार की सहायता के लिये हर समय तैयार रक्खेगे, रहने दी। सिखों की तकदीर के हेर-फेर हुए। उन्होंने हालांकि अंग्रेजों की ही मदद की किन्तु सिख-विद्रोह की समाप्ति के बाद अंग्रेज सरकार ने उनके समस्त इलाके जब्त कर लिये और केवल ७००) सालाना की पेन्शन मुकर्रिर की। इनके एक पुत्र रिछपालसिंह नाम के थे सरकार ने उन्हे सरदार की उपाधि देकर प्रान्तीय दरबार मे स्थान दिया। मंगलसिह जी का देहान्त सन् १८६४ ई० मे हो गया। सन् १८७० ई० मे रिछपालसिंह ने काश्मीरी-

१. शायद विधवा थी तभी तो खड़गसिंह ने चादर डालकर पत्नी बनाया था।

सिंह की विधवा रानी की भतीजी से विवाह किया। सन् १८८४ में सरकार ने आपको जिला बोर्ड का चेयरमैन और आनरेरी मजिस्ट्रेट बना कर सम्मानित किया। लगातार १८ साल तक रिछपाल-सिंह जी ने आनरेरी मजिस्ट्रेटी करके १६०२ ई० में स्तैफा दे दिया। सरकार ने आपके खाली स्थान पर आप ही के पुत्र सरदार शिवदेवसिंह जी को मुकर्रिर किया। सन् १६०७ ई० में सरकार द्वारा शिवदेवसिंह को सरदार का खिताब और प्रांतीय दरबारियों में स्थान प्रदान किये।

यहाँ यह बता देना उपयुक्त होगा कि सरदार लालसिंह ने अपनी जिस रूपवती पुत्री को महाराजा रणजीतसिंह जी को भेट किया था और जिसके कि साथ महाराजा रणजीतसिंह के उत्तराधिकारी कुँवर खड्गसिंह जी ने चादर डाल कर शादी करली थी और जिसके सम्बन्ध के ही कारण इस खान्दान ने एक दिन अच्छी स्थिति प्राप्त करली थी। वह अपने पति महाराजा खड्गसिंह की मृत्यु होने पर उनके साथ ही सती होगई थी। उसका नाम रानी ईश्वरकौर था।

सिन्धू गोत के जाट चौधरी गजू ने जिला स्यालकोट में मुगल जमाने में मोचल के पास एक गाँव बसाया जिसका नाम वडाला मशहूर हुआ क्योंकि गजू अपने भाइयों में बड़ा था। इसीलिये उस गाँव का नाम वडाला पड़ गया। इस वंश में गुरदित्ता नाम का एक व्यक्ति मुगल बादशाहों की ओर से आस-पास के इलाकों का कर-ग्राहक (चौधरी) नियुक्त हुआ। यह पद कई पीढ़ियों तक इनके यहाँ मौरूसी रहा। इसके बाद इसके उत्तराधिकारी दीवान-सिंह ने सिख धर्म स्वीकार कर लिया। वह अंतिम समय तक तीन गाँवों का मुगल शासकों की ओर से प्रधान था।

वडाला

दीवानसिंह का पुत्र महताबसिंह बड़ा योग्य और महात्वाकांक्षी था, उसने ५२ गाँवों का ठेका कर-ग्राहकी का ले लिया। वह इन गांवों पर अपना पूर्ण अधिकार करने को उत्सुक था। इसलिये उसने अपने अनेकों साथियों—भंगी मिसल के सरदार गंडासिंह और झंडासिंह से सम्बन्ध स्थापित कर लिया। भंगी सरदारों ने महताबसिंह को इन ५२ गाँवों का अधिपति स्वीकार कर लिया। इसके बदले में वे एक निश्चित संख्या में आदमियों की मदद हिम्मतसिंह से लेते थे। इसके बाद उस समय इनकी स्थिति और भी मजबूत हो गई जब इनके तीसरे पुत्र सुल्तानसिंह ने भागसिंह मलोद के रिश्तेदार की एक लड़की से शादी करली। इस शक्ति का उपयोग करके उन्होंने इलाके और धन दोनों ही बढ़ाये। उनकी इस प्रकार की बढ़ोतरी को देखकर सुकरचकिया महासिंह ने उन्हें एक पंचायत के बहाने बुलाकर कैद कर लिया और फिर वडाला पर कब्जा करने के लिये फौज भेजी किन्तु उनके चारों पुत्रों ने बड़ी बहादुरी से सामना किया जिसके कारण महासिंह ने उनसे सुलह करली और एक बड़ी रकम नजराने की लेकर सरदार महताबसिंहजी को छोड दिया। यह रकम वसूल होने तक सुकरचकिया लोगों ने सुल्तानसिंह को जमानत के तौर पर अपने साथ रक्खा।

महताबसिंह के चार लडके थे। श्यामसिंह, निधानसिंह सुलतानसिंह और गुलाबसिंह। अपने पिता की मृत्यु के बाद श्यामसिंह और निधानसिंह में झगड़ा रहने लगा। इससे अहलूवालिया और दूसरे लोगों ने इनके राज्य को दबाना शुरू कर दिया। घर की फूट से दुश्मन सहज ही लाभ उठाते ही हैं। सन १८०६ ई० में महाराजा रणजीतसिंह जी ने इधर दौरा किया तो मोचल और वडाला दोनों ही इलाकों को अपने अधिकार में करके कुंवर खड्गसिंह को जागीर में दे दिया। उस समय इन स्थानों पर निधानसिंह का अधिकार था। वह अपने भतीजे के साथ काश्मीर की ओर भाग गया। जहाँ चचा भतीजे काश्मीर के हाकिम अतामुहम्मद के यहाँ नौकर हो गये।

सन् १८१३ ई० में जब महाराजा रणजीतसिंह का दल अतामुहम्मद के विरुद्ध लड़ने गया तो निधनसिंह का भतीजा टेकसिंह महाराजा रणजीतसिंह के सेनापति मुहकमचन्द के साथ मिल गया। इस उपलक्ष मे महाराज ने टेकसिंह को होशियारपुर जिले में तीन गॉवों का प्रधानत्व बख्शा। टेकसिंह ने इन गॉवों का प्रवन्ध तो अपने छोटे भाई के सुपुर्द कर दिया, खुद अटक की तरफ वहां के मुहासिरों मे चला गया। टेकसिंह ने बराबर लाहौर दरबार की सेवाये कीं। जिनके बदले मे उनके चाचाओं को वडाला के अधिकृत प्रदेश के कुछ भू-भाग वापिस मिल गये।

टेकसिंह चार भाई थे। फतेहसिंह, किशनसिंह और साहबसिंह शेष तीन के नाम थे। फतहसिंह जिनके अधिकार मे होशियारपुर जिले की तीन गॉवों की जागीर थी। सन् १८३० मे लावल्द मर गये। अत. वहां का प्रवन्ध उनके छोटे भाई किशनसिंह को सौंपा गया। सन् १८४४ ई० मे टेकसिंह का भी देहान्त हो गया। उनके सबसे छोटे भाई साहबसिंह भी महाराज की फौज मे ही थे किन्तु उन्होंने कोई खास तरक्की नहीं की।

सरदार टेकसिंह के ज्वालासिंह और मोहनसिंह नाम के दो लड़के थे। वे काश्मीर ही रहे आये जिनमे से मोहनसिंह का तो वहीं देहान्त हो गया।

सरदार किशनसिंह की भी सन् १८६९ ई० मे मृत्यु हो गई। सरकार ने उनके गांव अपने कब्जे में कर लिये। हॉ, कुछ एकड़ भूमि अवश्य उनके वशजों के हाथ रह गई।

सन् १८८१ मे साहबसिंह मर गये और सन् १८८३ मे ज्वालासिंह। उनकी जायदाद तो सरकार ने इस कसूर में जब्त करली कि द्वितीय सिख युद्ध में उन्होंने अंग्रेजों के विरुद्ध युद्ध मे भाग लिया था। हाँ, मोहनसिंह को गदर मे सरकार की काफी सेवा करने के उपलक्ष में सरकार ने मोचल मे कुछ जमीन जागीर में बख्शी। १२८) की पेन्शन भी मुकर्रिर की थी। साहबसिह के मरने पर सरकार ने उनके पुत्रों के पास उनकी जायदाद का कुल चौथाई भाग रहने दिया था। साहबसिंह ने तीन लड़के अपने पीछे छोड़े थे मंगलसिंह, बघेलसिंह और हीरासिंह। सरदार मंगलसिंह ने खुद तो मान की रक्षा के लिये सरकारी नौकरी की नहीं किन्तु अपने पुत्रों को जरूर फौज मे भर्ती करा दिया। जहॉ वे शीघ्र ही ऊँचे ओहदों पर पहुँच गये। बघेलसिंह ने काफी तरक्की की। उसने गदर मे २०० आदमी लेकर अंग्रेजों की मदद की। अपनी बुद्धिमानी से उसने अन्डमान की असिस्टेंट सुपरिन्टेन्डेण्टी भी की। सरकार ने उनकी सारी सेवाओं से खुश होकर रायबहादुरी का खिताब, २८० एकड़ जमीन लाहौर जिले के रखपैमार मे और ५०० एकड़ गुजरावाला मे दी। १२००) पेन्शन मुकर्रिर करदी। इसके अलावा प्रांतीय दरबारों में उनका स्थान रिजर्व किया गया। रायबहादुर सरदार बघेलसिंह जिन्होंने कि समय के अनुकूल अपने को इतना ऊंचा बनाया। सन् १६०८ मे इस संसार से कूच कर गये।

सन् १८७४ ई० में सरदार का बड़ा पुत्र ठाकुरसिंह अंडमान मे अंग्रेज सरकार की ओर से उसके बाप की वापिसी पर इंसपेक्टर बनाकर भेजा गया। उसके छः ही वर्ष बाद १८८० ई० मे ठाकुरसिंह का घोडे से गिरने के कारण देहान्त हो गया। ठाकुरसिंह के दो बेटे थे। उनमें से सोहनसिह पांचवीं पंजाब केवेलरी में रिसालदार होगया। उसने यहा तक तरक्की की कि असिस्टेण्ट कमिश्नर और फिर पंजाब सरकार का मीर मुन्शी बन गया। सन् १६०८ ई० मे इसका छोटा भाई तीस लाइन्सर्स में रिसालदार हो गया और रायबहादुर सरदार बघेलसिंह का लड़का हाकिमसिंह १८वीं बंगाल कैवेलरी मे ओहदेदार बनाया गया जो अफगान युद्ध तक उसी मे काम करता रहा। बाद में वह ब्रह्मा में पुलिस बटालियन

का सूबेदार बना और फिर वहा से पेन्शन लेकर घर आगया। यहां सरकार ने उसे सिविल जज और आनरेरी मजिस्ट्रेट बना दिया। यही अपने खान्दान के प्रधान माने गये।

इस स्थान को बसाने वाले का नाम कलास था और बजवा उसका गोत था। इसलिये यह गाम कलास बजवा के नाम से मशहूर हुआ। कलास के बाप का नाम मंजा था जिसकी कि समाधि पसरूर में 'मंजा कामाडी' नाम से प्रसिद्ध है। इस समाधि की पूजा हिन्दू और मुसलमान दोनों ही जातियों के लोग करते हैं। बजवा गोत के जाट तो जिनके कि गॉव इससे अधिक दूर नहीं होते अपने लड़के-लड़कियों की शादी भी यहीं पर आकर करते हैं। मालूम ऐसा होता है कि मजा की मृत्यु के बाद उसका लड़का पसरूर को छोड़ कर दूसरी जगह चला गया और वहा उसने कलास बजवा को आबाद किया।

कलास बजवा

कलास से कई पीढ़ी बाद उसके वश के दीवानसिंह नामक लड़के को भगी सरदार हरीसिंह ने गोद ले लिया, क्योंकि हरीसिंह के कोई सतान नहीं थी। सन् १७६० ई० मे जब हरीसिंह का देहान्त हो गया तो दीवानसिंह उसके इलाकों का मालिक हुआ किन्तु वह उस सारे प्रदेश की रक्षा नहीं कर सका और लगभग आधा प्रदेश उसके हाथ से निकल गया। जब वह मर गया तो इसी वंश के सरदार धनासिंह को खालसा ने उसका उत्तराधिकारी घोषित किया। धनासिंह पहले से ही युद्धों में भाग लेता था। उसका छोटा भाई मानसिंह तो हरीसिंह की सेवा ही में खतम हुआ था। धनासिंह योद्धा प्रकृति का आदमी था। जब भगी मिसल के अधिकृत प्रदेशों का बटवारा हुआ था उस समय कलास बजवा, पनवाना और चूहरा धनासिंह के हिस्से मे आये थे। सन १७६३ ई० में धनासिंह के मरने पर महाराजा रणजीतसिंह जी ने उसके पुत्र जोधासिंह को उसका उत्तराधिकारी स्वीकार कर लिया। जोधासिंह तीन भाई थे किन्तु योद्धा वृति अकेले जोधासिंह में ही थी। इसके तीन वर्ष बाद महाराज रणजीतसिंह किसी कारण से जोधासिंह से नाराज हो गये और उन्होंने उस पर चढ़ाई करने को सेना की एक टुकडी भेज दी। जोधासिंह तीन वर्ष तक इन सेना समूहों से नहीं दबाया जा सका। किन्तु अत में उसने अपने को महाराज की कृपा पर छोड़ दिया। महाराजा रणजीतसिंह जी उसके पास ६००००) सालाना की जागीर छोड़ दी। जोधासिंह को खालसा दरबार में दरबारियों में भी ले लिया गया। आगे चलकर इसने अपनी लड़की खेमकौर की शादी युवराज खड्गसिंह जी के साथ करदी। सन् १८१६ ई० मे जोधासिंह का देहान्त हो गया। उसकी विधवा ने अपने प्रभाव से सिख दरबार से यह मजूर करा लिया कि जोधासिंह का उत्तराधिकारी चादसिंह जो कि सरदारनी का रिश्तेदार है बनाया जा सकता है। चादसिंह बजवा खान्दान का ही नवयुवक था।

खालसा सेनाओं के परास्त होने पर रानी खेमकौर को बडा रज हुआ। अत उन्होंने अपने पिता के उत्तराधिकारी चांदसिंह को अग्रेजो के खिलाफ खडा किया। चादसिंह और उसका बडा भाई गुरुदत्तासिंह भीतर ही भीतर बगावत की तैयारी करने लगे। किन्तु अग्रेजों को पता लग गया अत अग्रेजी सेना ने उनके किले पर धावा करके उनके इलाके को अपने कब्जे मे कर लिया और उनके गॉव को भस्म कर दिया। रानी खेमकौर को तो सरकार ने २४००) की पेन्शन देकर अपना गुस्सा हल्का किया। चादसिंह और गुरुदत्तसिंह को रियासत से खारिज करके सन्तोष की सास ली। गुरुदत्त तो इस घटना के कुछ ही वर्ष बाद मर गया। चादसिंह मामूली-सी बची खुची जमीन का प्रबन्ध करने में लगा रहा। सन १८६७ ई० में जब चादसिंह का भी देहान्त हो गया तो उसका लडका भगवानसिंह अपने वश

का प्रधान मुकर्रिर हुआ । भगवानसिंह की बहिन महताबकौर अटारी के सरदार तेजासिंह के साथ ब्याही गई थी उस बेचारी को भी अपने पति के साथ पंजाब से निर्वासित होकर बरेली जिले मे जाना पड़ा । भगवानसिंह को अन्तिम दिनों मे सरकार ने आनरेरी मजिस्ट्रेट भी बनाया था । उसने अपने लड़के रघुवीरसिंह को एटचिसन कालेज में शिक्षा दिलाई थी। यही लड़का भगवानसिंह के बाद अपने बाप का उत्तराधिकारी बना। रघुवीरसिंह सन् १८६८ ई० मे स्वर्गस्थ होगये। तब उनके लड़के रनधीरसिंह इस वंश के प्रधान मुकर्रिर हुये। इस खान्दान के लोगों मे केवल संतसिंह ही सरकारी फौज मे गये। जिन्होंने केवल तीन साल 'मध्यभारत घुड़सवार पल्टन' में काम किया। इनकी मृत्यु सरदार रघुवीरसिंह से भी एक साल पहले सन् १८६७ मे होगई थी।

चौधरी तेजसिंह का आबाद किया हुआ यह गॉव जिला गुजरानवाला मे है। तेजसिंह के वंशज इस गॉव मे बहुत दिनों से रहते थे। उन्होंने कई गॉव की चौधरात भी मुस्लिम शासकों से ली थी। इस खान्दान मे रजवन्तसिंह एक प्रसिद्ध पुरुप हुआ था। सन् १७५६ ई० में इस खान्दान मे चौधरी भगतसिंह ने सिख धर्म की दीक्षा ली और गूजरसिंह जो कि एक शक्तिशाली जाट सिख और भंगी मिसल का प्रमुख था—के साथ अपनी लड़की का विवाह करके रूरियाला गॉव पर अपना स्वतन्त्र अधिकार घोपित कर दिया। सरदार गूजरसिंह ने अपने दोनों सालों देवासिंह और सेवासिंह को अपने दल में रख लिया और उन्हे गुजरात जिले मे नौशहरा की जागीर भी दे दी। इन दोनों भाइयों का इस जागीर पर सम्मिलित प्रभुत्व रहा। सेवासिंह लड़ाई मे मारा गया। कुछ दिन बाद गूजर भंगी सरदार भी लड़ाई में काम आया। उसके लड़के साहबसिंह ने देवासिंह से कुल जागीर अपने कब्जे मे ले ली और उसे केवल रूरियाला और अन्य दो गांव जागीर मे रहने दिये।

रूरियाला

देवासिंह के लड़के जोधसिंह ने रूरियानवाला सरदार के साथ जिसका कि नाम भी जोधासिंह था सवारों मे नौकरी कर ली और सन् १८२६ तक बराबर युद्धों मे भाग लिया। सन् १८२५ के बाद जोधासिंह कुॅवर शेरसिंह जी की फौज में शामिल हो गये। सैयद अहमदखॉ के युद्ध मे कुंवर शेरसिंह के साथ जोधासिंह ने अच्छी बहादुरी दिखाई जिसके उपलक्ष्य मे दो सवार की नौकरी की शर्त पर रूरियाला की जागीर १२०४३) रुपयों के साथ हमेशा उनके ही अधिकार मे रही। हॉ, बीच मे १८३५ ई० में खालसा दरबार ने किसी कारण से उसे जब्त कर लिया था किन्तु दूसरे ही साल दे दिया।

सन् १८४८ में अंग्रेज सरकार का पक्ष लेने के कारण गुजरानवाला के कोटली गॉव मे भी इन्हे सरकार ने जागीर बख्शी थी।

सतलज के धावे के बाद सरकार ने उन्हे अमृतसर मे ३०००) पर मय उनकी जागीर के अदालती मुकर्रिर किया। सन् १८४० में स्पेशल कमिश्नर बनाया। जिस पर यह सन् १८६२ ई० तक रहे, अमृतसर दरबार के भी यह प्रबन्धक मुकर्रिर किये गये थे।

इनके छोटे भाई मानसिंह ने भी अच्छी तरक्की पाई। पहले तो वह राजा सुचेतसिंह की फौज में भरती हुआ था। सिख युद्ध की समाप्ति पर अंग्रेजों ने उसे लाहौर में ५० सवारों पर अफसर बनाया। १८५२ में वह पुलिस में भर्ती हो गया और १८५७ के गदर में उसने अंग्रेजों की भरपूर रक्षा की। नवाबगज के घेरे के समय उसकी खिदमतें अच्छी रहीं लेफ्टीनेंट बुलर की भी उसने रक्षा की। बुलर की मदद करते समय वह बहुत घायल हुआ। इसके उपलक्ष मे सरकार ने उसे आर्डर आफ मेरिट की उपाधि दी। इसके बाद यह अमृतसर में धार्मिक जीवन व्यतीत करता रहा। उसे प्रान्तीय दरबारी भी बनाया गया

और सी० ओ० आई० ई० का खिताब भी मिला। उसकी आमदनी १२०००) रुपये सालाना तक पहुँच गई थी।

सन् १८९२ ई० में सरदार मानसिंह का देहान्त हो गया। उन्होंने अपने जीवन में काफी उन्नति की। यह उनकी विशेषता थी कि जिधर भी वह कार्य करते उसमे पूरी कामयावी हासिल करते। इनके वाद इनके पुत्र जवाहरसिंह को सरकार ने प्रांतीय दरवारी वना लिया और गुजरानवाला जिले मे उसे आनरेरी मजिस्ट्रेट और जेलदार भी मुकर्रिर किया।

सन् १९०७ ई० मे सरदार जवाहरसिंह का भी देहान्त हो गया और उनके पुत्र राजवन्तसिंह को जो उनका उत्तराधिकारी था दरवार मे स्थान दिया गया।

स० गंडासिंह के वेटे करमसिंह ने भी पुलिस में पद लिया। उनकी जमीन से कुल १५०) सालाना की ही आमदनी थी। सरकारी नौकरी की आमदनी से ही उसने अपने रुतवे को वढ़ाने की कोशिश की।

सरदार मानसिंह के वडे भाई काहनसिंह के तीन पुत्र हुये। हीरासिंह, वजीरसिंह और शेरसिंह। इनमें से हीरासिंह को सरकार ने चौवीसवीं पंजाव इन्फैंटरी मे सूवेदार मेजर वना दिया। आगे उसकी सेवाओं से प्रसन्न होकर सरदार वहादुर का खिताव भी दिया। हकदार होने पर सरदार वहादुर हीरासिंह जी ने पेन्शन ले ली। लाहौर और गुजरानवाला जिलों में सरदार हीरासिंह के पास ३०००) सालाना की आमदनी का भूभाग था जिसके कि वे मालिक समझे जाते थे। सन् १९०५ ई० इनका देहान्त हो गया।

हीरासिंह जी के सवसे छोटे भाई शेरसिंह को भी सरकार ने २८ वीं माउण्टेन वैटरी मे सूवेदार मेजर वना दिया और सन् १९०१ मे उसकी सेवाओं के उपलक्ष मे सरकार ने उसे सरदार वहादुर की उपाधि दी।

हीरासिंह जी के दोनों पुत्र भी फौज में चले गये जिनमें से शार्दूलसिंह तो मध्यभारत घुडसवार सेना मे दफैदार और छोटा आशासिंह पंजाव इन्फैन्ट्री में सूवेदार वना दिये गये। जहाँ उन्होंने वफादारी से काम किया।

सरदार जोधसिंह के पुत्रों में से प्रतापसिंह और हर्षसिंह पुलिस और सेना में चले गये और वहाँ पर क्रमश सूवेदार और रिसालदार मुकर्रिर हो गये। हर्षसिंह ने अवध युद्ध में अच्छी वहादुरी दिखाई और सन् १८६० ई०में इस संसार से चल वसा। इनका तीसरा भाई दलसिंह भी वंगाल सेना मे चला गया। जहाँ वह रिसालदार हो गया। उसका सन् १८८५ में देहान्त हो गया।

सरदार जोधसिंह के वड़े भाई जयसिंह ज्वालासिंह भी २० वीं नेटिव इन्फैन्ट्री मे सूवेदार हो गये। सन् १८८८ में उसका देहान्त हो गया। उसके लिये रूरियाला गाँव की आमद में से २४०) सालाना का हिस्सा था।

सरदार जोधसिंह के वंशजों के पास मौजा रामगढ़ जिला गुजरानवाला में ६८०) की आय का मौरूसी जागीर में था रूरियाले में कुछ जमीन और अमृतसर में मकानात की जायदाद थी।

यह जागीर अंग्रेजी इलके में नहीं किन्तु फूल राज्यों मे है। इसके मालिक फूल की सन्तान के और नाभा, पटियाला, जींद के भाई वन्धु हैं। नाभा राज्य के वुजुर्ग तिलोकसिंह के दो पुत्र थे। गुरुदत्तसिंह और सुखचैनसिंह। सुखचैनसिंह के तीन लड़के हुए। आलमसिंह, गजपतिसिंह और वुलाखीसिंह। गुरुदत्त सिंह ने जिस प्रकार नाभा राज्य की नींव डाली थी उसी प्रकार सुखचैनसिंह ने जींद राज्य की। सुखचैनसिंह का वड़ा लडका आलमसिंह लडाई में

वडरूखा वाले

मारा गया। इसलिये गजपतसिंह अपने पिता के उत्तराधिकारी हुये। राजा गजपतिसिंह के तीन पुत्र हुये। मेहरसिंह, भागसिंह और भूपसिंह। वड़रूखां का इलाका इन्हीं भूपसिंह जी के अधिकार मे आया। इनके दो लड़के हुये करमसिंह और बिसावासिंह। कर्मसिंह राजद्रोही होने के कारण अपने हकों से वंचित होगये। बिसावासिंह वड़रूखां के मालिक रहे। सरदार बिसावासिंह जी ने दो शादियॉ कीं किन्तु संतान पहली ही पत्नी से हुई। सुखासिंह और भगवानसिंह नाम के दो पुत्र हुये। सवत् १८८८ ई० मे बिसावासिंह मर गये।

सुखासिंह का जन्म सन् १६७० ई० मे चन्द्रकौर के पेट से हुआ था। वोडावाल गॉव के सरदार बुधसिंह की लड़की राजकौर के साथ इसका विवाह हो गया। उसके उदर से हरनामसिंह और हीरासिह नाम के दो पुत्र पैदा हुए। पिता की मृत्यु के वाद सरदार सुखासिंह ने अपने भाई भगवानसिंह के साथ अधिकृत इलाकों का वरावर का वंटवारा कर लिया था। किन्तु कुछ विना वटवारे के भी अपने पास बतौर सरदारी के रख लिया था। सन् १८५२ ई० में सरदार सुखासिह की मृत्यु हो गई। उस समय इनकी काफी इज्जत थी। गवर्नर जनरल के यहॉ इन्हे कुर्सी दी जाती थी।

सुखासिंह के वाद उसका पुत्र हरनामसिंह अपनी जागीर का मालिक हुआ। जिसका कि जन्म १८४० ई० मे हुआ था और इस समय जिसकी उम्र १२ साल थी। किन्तु तीन वर्ष के वाद ही हरनामसिंह मर गया। पीछे उसने एक भी पुत्र नहीं छोड़ा।

सुखासिंह के दूसरे पुत्र हीरासिंहजी सन् १८४३ ई० मे पैदा हुये थे। भाई के मरने पर इनकी उम्र केवल १२ साल थी। नाभा के महाराजा भगवानसिंह जी के लावल्द मरने के कारण आप नाभा राज्य के वारिस वनाये गए। वर्तमान महाराज प्रतापसिंह जी आप ही के पौत्र हैं। जो कि महाराजा रिपुदमनसिंह जी के सुपुत्र और उत्तराधिकारी हैं।

यह हम पहले लिख चुके हैं कि बिसावासिह जी के दूसरे पुत्र भगवानसिंह जी थे। जिनका कि जन्म सन् १८१५ ई० मे हुआ था। इनके दीवानसिंह और चतरसिंह नाम के दो पुत्र पहली रानी से जो श्यामगढ़ की थीं हुये और शेरसिंह नामक पुत्र पिंड रुढ़कीवाली रानी से हुआ। अपनी रियासत का वटवारा तो सरदार भगवानसिंह ने अपने भाई सुखासिंह से कर ही लिया था। सन् १८५२ में इनका देहांत हो गया।

भगवानसिंह जी के वड़े पुत्र दीवानसिह का जन्म सन् १८४१ मे हुआ था। दीवानसिंह की शादी वाजीदपुरे में हुई थी। एक पुत्र तो उनका दस साल की उम्र मे ही गुजर गया। दूसरा पुत्र हरनामसिंह सन् १८६० ई० मे पैदा हुआ। तीसरा शमशेरसिंह हुआ। ये दोनों भाई अपनी जागीर पर अपने पिता दीवानसिह के मर जाने के वाद तक शांति-पूर्वक काबिज रहे। हरनामसिंह लावल्द मरे और शमसेर सिंह ने तीन लड़के छोड़े। फतहसिह, चेतसिंह और तेजासिंह इनमे फतहसिंह सन् १८६२ में चेतसिंह १८६६ मे और तेजासिंह जी १६०० मे पैदा हुए थे।

भगवानसिह जी के शेप दो पुत्र शेरसिंह और चतरसिंह क्रमश. १८८२ और १८६१ ई० मे मर गये। सरदार चतरसिंह ने कोई संतान नहीं छोडी थी और सरदार शेरसिंह की भी किसी सन्तान का सर लेपिलग्रिफिन ने जिक्र नहीं किया है।

इन सरदारों की राज्य और सरकार में वड़ी इज्जत थी और रियासती जागीरदारों में इनका ऊँचा दर्जा भी था।

यह जागीर पटियाला राज्य में वरनाले के पास है। भदौड़ को बाबा आलासिंह ने वसाया था।

जिसे आगे चलकर अपने भाई दूना के लिये छोड़ दिया। दूना की संतान के लोग ही इस जागीर के मालिक हैं। इस प्रकार भदौडिये भी फूलवशी हैं। अंग्रेजों ने १८५४ में जिस समय इस जागीर को जब्त किया था। उस समय इसमें ५८ गाँव थे। इस खान्दान का संक्षिप्त वर्णन इस प्रकार है—

भदौडिये

चौधरी दूना के चार पुत्र उत्पन्न हुए। विघासिंह, दाऊसिंह, सगूसिंह और सुखसिंह। चौधरी दूना ने अपने भाई वुधासिंह की विधवा के साथ भी चादर डालकर नाता कर लिया था। उससे भी एक पुत्र शोभासिंह नाम का हुआ था। चौधरी दूना ने बादशाही हाकिमों से मित्रता करके जमीन और धन दोनों बढ़ाये। जितने इलाके का पट्टा अपने नाम करा लिया था। उसकी रकम वक्त पर शाही खजाने में पहुँचाई। १७७८ विक्रमी सवत में उसने बरनाला, धनौला, कोटदूना को आबाद किया। भाइयों के एवज माल न चुकाने के अपराध में चौधरी दूना और उसके लड़के दाऊ को लाहौर के हाकिम ने कैद कर लिया। जिसमें दाऊ तो वहीं मर गया और चौधरी दूना छूटने के बाद खवास गाँव में सवत् १७७३ में मर गया। कुटुम्बी लोगों ने इसकी समाधि गोइन्दवाल में गुरु अमरदास जी की समाधि के पास ही बनादी।

चौधरी दूना के पुत्र विघासिंह जिसका कि जन्म सवत्१७६० वि०में हुआ था की शादी सवत् १७७० वि० में डिघ के मान गोती जाट भोमे चौधरी की लड़की आगाँ के साथ हुई। जिसके उदर से सवत् १७६२ में गुरदास नाम का पुत्र हुआ। चौधरी विघासिंह को मालियाना टूट जाने के अपराध में हाकिम सूबा ने गिरफ्तार कर लिया। इस बीच सवत १७६५ में गुरदास की अचानक मृत्यु हो जाने के कारण उसकी मां आगा भी जहर खाकर मर गई। इससे विघा भी ससार से उदासीन होगया। जमीन जायदाद आपने छोटे भाई सुखू को सुपुर्द कर दी।

बिरादरी के लोगों ने विघासिंह को वैरागी होते देखकर पंचायत की और फिर उस पर दवाव डालकर मोगा तहसील के बिलासपुर गाँव में धारीवाल जाटों में उसकी दूसरी शादी सवत् १८०६ में देसो के साथ करादी। जिससे चूहड़सिंह और मोहरसिंह नामक दो लडके पैदा हुये। कुछ दिन बाद सुखसिंह के मर जाने पर विघासिंह ने उसकी स्त्री पर भी चादर डालकर शादी कर ली। उससे दलसिंह पैदा हुये जिसे कोटदूना को देकर अलग कर दिया। संवत् १८३० में विघासिंह मर गये।

उसके बाद उसका पुत्र चूहड़सिंह जिसका कि जन्म १५ कातिक संवत् १८०६ में हुआ था उत्तराधिकारी हुआ। संवत् १८२३ वि० के फाल्गुन में पिंड काले के चौधरी मलसिंह की लड़की राजकौर के साथ उसकी शादी हुई। चूहडसिंह ने गुरुदास की बेवा के साथ भी नाता कर लिया। यह बडा बहादुर शूरमा हुआ है। इसकी बहादुरी के पंजाब के उस इलाके में आजतक गीत गाये जाते हैं। इसने भदौड के आस पास ६० गाँवों पर कब्जा कर लिया। कोटले के पठानों से इसने बलपूर्वक कँगण के ताल्लुके को भी छीन लिया। इसने नाभा और पटियाला दोनों रईसों के इलाकों पर हाथ मारे और लूट मार भी की। इसे डर छू भी नहीं गया था।

संवत् १८५० ई० में खन्ने गाँव के सज्जनसिंह ने इन्हें दुश्मनी के कारण शराब पिलाकर और सोने के स्थान पर आग लगाकर जिन्दा जला दिया। साथ में दलसिंह कोटदूना वाला भी जल गया। जब यह खबर इसके पुत्र और सबन्धियों पर पहुँची तो उन्होंने खन्ने गाँव पर हमला करके सज्जनसिंह बराड को मार डाला। ग्यारह गाँवों पर कब्जा कर लिया।

चूहड़सिंह के बाद उसका पुत्र वीरसिंह जिसका कि जन्म पौष चदी १५ संवत् १८२५ में हुआ था।

उत्तराधिकारी हुआ। इसकी शादी रामपुर के गरेवाल चौधरी बेगा की पुत्री महाकौर के साथ हुई थी। इसके पेट से पैदा होने वाले दोनों लड़के मर गये। संवत् १८४८ मे गाजियाना गॉव तहसील मोगा से महताबकौर से दूसरी शादी की। जिससे जवाहरसिंह, जयमलसिंह और जगतसिंह तीन पुत्र पैदा हुये। वीरसिंह चतुर और शूरवीर आदमी था। इसने महाराजा रणजीतसिंह को एक बहुत बढ़िया घोड़ा जिसकी कीमत २१००) थी, भेट किया था। संवत् १८८० के क्वार महीने मे इसका देहान्त होगया। इसने अपने जीवन मे ही अपने भाई दीपसिंह को हिस्सा जागीर का बाट दिया था। कहा जाता है कि सरदार वीरसिंह को लाट साहब के दरबार मे कुर्सी मिलती थी।

अपने भाई के स्वस्थ होने और जायदाद का बटयारा हो जाने के बाद दीपसिंह ने अपनी जायदाद के प्रबन्ध का काम संभाला। उसका जन्म संवत् १८३४ के क्वार मे हुआ था। और चनारथल सतलज के निकट (रायटोहाना) मे साहबकौर के साथ शादी हुई थी। जिससे कोई औलाद न होने की उम्मीद मे दाना गॉव के सरदार हरीसिंह गिल की लड़की मानकौर के साथ दूसरी शादी की। इससे भी एक लड़की ही पैदा होने के कारण तीसरी शादी और की। इससे एक लड़का पैदा हुआ। जिसका नाम खड्गसिंह रक्खा गया। जो सीधा-साधा और बहादुर सरदार था। दीपसिंह जी में अपनापन खूब था। उन्होंने महाराज पटियाला के विरुद्ध रणजीतसिंह जी को सहायता देने से साफ मना कर दिया था। १८५४ मे इसने फ्रांसीसी जार्ज टामसन के विरुद्ध जीन्द की सहायता की। संवत् १८७० मे दीपसिंह ने अपनी जायदाद कतई तौर से बड़े भाई के साझे से अलग कर ली। क्योंकि अब तक कुछ भाग साझे में ही चला आता था। इसके कुछ ही दिन बाद दीपसिंह का स्वर्गवास हो गया।

दीपसिंह की मृत्यु के बाद खडगसिंह ने जोकि उसका एक मात्र पुत्र था। अपने हिस्से की जागीर का काम सभाला। खड्गसिंह का संवत् १८७६मे जन्म और संवत् १८८६ मे पिंडरले के सरदार बिसावासिंह चाहल की पुत्री के साथ विवाह हुआ था। फिर दूसरा विवाह भी इसी गॉव मे खजानसिंह की लड़की के साथ हुआ।

शरीर से सरदार खड्गसिंह जी लंबे-चौड़े और पुष्ट थे। कहा जाता है कि उनका वज़न दस मन पक्का था। इन्होंने पजाब के रईसों मे प्रसिद्धि प्राप्त की। अपनी रियासत मे अनेक इमारते बनवाई। सिख-युद्ध मे आपने अंग्रेजों को ही मदद दी। गदर के समय फीरोजपुर पहुँचकर अंग्रेजों की रक्षा में अपनी शक्ति खर्च की। गदर के एक साल बाद संवत् १९१५ वि० में खड्गसिंह जी का देहान्त होगया।

खड्गसिंह जी के पुत्र का नाम अतरसिंह था जो संवत् १८९० वि० में कार्तिक सुदी १२ सोमवार को पैदा हुये थे। ग्यारह वर्ष की आयु मे अतरसिंह जी का पहला विवाह बिसनपुर के जैजी सरदार वीर-सिंह की पुत्री के साथ हुआ। इसके बाद इस सरदारनी के नि.सतान मर जाने के कारण सवत् १९०६ वि० मे रायपुरे के सरदार चढ़तसिंह की लड़कीके साथ दूसरी शादी हुई। जिससे दो लड़के भगवन्तसिह,बलवंत-सिंह नाम के पैदा हुये। सरदार अतरसिंह जी बड़े विद्या-प्रेमी थे। गदर के समय आप भी अपने पिता के साथ फीरोजपुर मे फ्रेडूक मार्सडन के पास मौजूद थे और अंग्रेजों की रक्षा और भलाई मे आपने भरपूर सहयोग दिया। जैतो के फकीर सामासाह के उपद्रव को दबाने के लिये आप भी पचास सवार लेकर उस इलाके मे पहुँचे थे। आपने अपनी रियासत मे भी सुधार किये। पब्लिक के बच्चों की शिक्षा के लिये एक स्कूल भी खोला। सरकार की ओर से उन्हे खिताब भी मिला। दरबार मे उनकी कुर्सी अपने खानदान के लोगों मे आगे रहती थी। लुधियाने मे उन्होंने एक पुस्तकालय भी खुलवाया था। संवत्

१८५३ मे उनका स्वर्गवास हो गया।

सरदार अतरसिंह जी के दो पुत्र हुये। उनके नाम यह हैं। सरदार भगवन्तसिंह और सरदार वलवंतसिंह। सरदार भगवन्तसिंह जी का जन्म सवत् १६०६ कार्तिक सुदी ६ को और सरदार वलवतसिंह जी का जन्म संवत् १६१२ भादों सुदी ३ को हुआ था।

दोनों भाईयों ने भली प्रकार मौजूदा जमाने के देखते हुये शिक्षा प्राप्त की।

उपरोक्त वर्णन तो दीपसिंह जी के वशजों का है। उनके वड़े भाई वीरसिंह जी ने जवाहर-सिंह, जयमलसिंह और जगतसिंह तीन पुत्र छोडे थे। अव उनका वर्णन करते हैं —

जवाहरसिंह का जन्म सवत १८८४ के चैत सुदी १२ को शुक्रवार के दिन मानकौर से हुआ था। इसने दो शादियाँ की। पहली संवत् १८५६ में जव्वेमाजारिये के सरदारों के घर और दूसरी सवत् १८७५ पिंड खयाला के चाहलों की लड़की के साथ। इस दूसरी सरदारनी से अतरकौर नाम की लड़की हुई थी। जिसकी शादी कुँवर नौनिहाल लाहौर के साथ की गई। अतरकौर अपने पति के साथ सती भी होगई थी। जवाहरसिंह वडा शूरमा था। वह प्राय. लाहौर ही महाराजा रणजीतसिंह की सेवा में रहा करता था। पिता के मरने पर इसने मालिकी का दावा किया और सवत १८८३ में वह अपने पिता का उत्तराधिकारी वना। इसके वाद सवत् १८८७ में जवाहरसिंह का देहान्त हो गया। दो वर्ष वाद इसकी पहली स्त्री मर गई। दूसरी के साथ इसके छोटे भाई जगतसिंह ने चादर डालकर शादी करली।

वीरसिंह के दूसरे पुत्र जयमलसिंह का जन्म सवत् १८४५ के कातिक वदी ११ को हुआ था। सवत् १८५८ के फागुन मे जयमलसिंह का विवाह कूटसी के सरदार वहादुरसिंह की लड़की के साथ हुआ। जिससे खजानसिंह औह निधानसिंह नाम दो लडके और भागभरी नाम की कन्या पैदा हुई। सवत १८६५ पौप सुदी १५ को जयमलसिंह का देहान्त हो गया।

सरदार वीरसिंह के तीसरा पुत्र जगतसिंह संवत् १८४८ के पौप वदी ८ को पैदा हुआ था। इसकी पाँच शादियाँ हुई। एक सवत् १८५६ में पक्के पथराले के सरावाँ जाटों में और दूसरी—इस स्त्री के मरने पर सवत् १८६७ ढिलवाँ के सरदार हीरासिंह की पुत्री दयाकौर के साथ। इससे एक पुत्र हुआ।

फिर भी १८८५ में जगतसिंह ने तीसरी शादी मानसा के शार्दूलसिंह की लड़की सेखाँ के साथ कर ली। इससे दो लड़के हुये जो १०-१२ साल की उम्र में ही मर गये। इतने से भी संतोष न होने पर अपने भाई की विधवा से नाता कर लिया। पाँचवीं शादी और भी कराई रतनकौरके साथ जो हमीरवाला कुरज के धारीवालों की पुत्री थी। इससे अजैपाल का जन्म हुआ जो वड़ा फिसादी और खतरनाक आदमी था। कई तो इसने खून किये। लाहौर पटियाला वगैरह भागता फिरा। अत में संवत १६२२ में मदौड़ आकर मर गया।

जयमलसिंह ने अपना एक उत्तराधिकारी छोड़ा था खजानसिंह। यह सम्वत् १८६१ ई० में जसकौर के पेट से पैदा हुआ था। सम्वत् १८७० में मौड़ गाँव के सरदार धन्नासिंह की पुत्री साहवदेवां के साथ उसका विवाह हुआ। खजानसिंह अपने ताऊ जवाहरसिंह के शामिल रहा। उससे पीछे सरदारी पर भी वही कायम हुआ। सम्वत् १८८८ मे वह मर गया। उसके पीछे उसकी गर्भवती विधवा के महासिंह का जन्म हुआ।

महासिंह का जन्म आपाढ़ सुदी १० सम्वत् १८८६ में हुआ था। चार वर्ष की उम्र में ही वजीरसिंह वगेहरिये की पुत्री अतरकौर के साथ इसका विवाह हुआ। जिससे एक लड़का सम्वत् १६१२ मे पैदा हुआ।

उसका नाम ईश्वरसिंह रक्खा गया। महांसिंह शिकार का बड़ा शौकीन था। सरकार से उसे खिलअत और खिताव मिले। दरवार मे दूसरे नम्बर की उसकी कुर्सी थी। सम्वत् १९१५ के पौष महीने मे उसका देहान्त हो गया। सरदारनी अमरकौर ने केहरसिंह के साथ पुनर्विवाह कर लिया।

ईश्वरसिह की शादी धारीवालों के लोहार गॉव में माघ सम्वत १८२० मे हुई। शादी के तीन वर्ष ही वाद सम्वत् १८२३ के क्वार की पूर्णिमा को तपैदिक मे चल बसा। लावल्द मरने के कारण इसका इलाका उसके नजदीकी चाचा केहरसिंह को मिल गया। जिसके साथ कि इसकी मा ने नाता कर लिया था।

केहरसिंह निधानसिंह का लड़का और खजानसिंह का भतीजा था। यानी जयमलसिंह के दूसरे लड़के निधानसिह का पुत्र था। निधानसिंह सवत १८६४ वि० के पौष सुदी १२ को पैदा हुआ। सवत् १८६० मे उसकी शादी जोगे गांव के फैजूसिह चाहल की लड़की चन्दकौर से हुई थी। इसी के पेट से वैसाख बदी १२ सवत १८६२ मे केहरसिंह पैदा हुआ था। केहरसिंह लंगड़ा होते हुए भी बड़ा वहादुर था। कहारी में उसने पटियाला की सेनाओं से भी मुक़ावला किया था। अपनी भाभी के अलावा उसके एक विवाहित स्त्री आसकौर थी। उससे प्रतापसिह और औतारसिह नाम के दो लड़के पैदा हुए थे। केहर-सिंह सवत १९१४ के गदर मे फिरोजपुर मे अंग्रेजों की ओर से लड़ता हुआ घायल हुआ था। गवर्नर के दरवार मे उसे भदौड़िये सरदारो से चौथे नम्बर की कुर्सी थी। इसे अपने चचेरे भाई के लड़के ईश्वर-सिंह की जायदाद उसके लावल्द मरने के कारण मिल गई थी। प्रतापसिह और औतारसिंह जिनके कि जन्म क्रमश सम्वत १८१० और १८२० विक्रमी में हुये थे अपने वाप के उत्तराधिकारी हुये।

सरदार जगतसिह जी के पांच पुत्र थे, गुलावसिंह, वसावासिह, खेमसिंह, नारायणसिह और अजपालसिंह। गुलाबसिह का जन्म अषाढ़ सुदी ६ संवत १८७४ मे दयाकौर से हुआ था, कौलगढ़ के दीवान सोढ़ासिंह की लड़की के साथ सम्वत १८८५ मे शादी हुई। इसके वाद और भी कई शादियाँ कीं किन्तु सतान किसी से नहीं हुई। संवत १९१२ मे यह निःसंतान मर गया। अन्तिम दिनों मे यह टिल्लेवाल में रहने लगा था। वसावासिंह का जन्म फागुन सुदी १४ सम्वत १८८७ वि० में रतनकौर से हुआ था। सम्वत १८९९ मे दीनों के सरदार हरीसिंह की लड़की के साथ शादी हुई। अपने वाप से नाराज होकर पटियाला रहने लग गया था। आषाढ़ सुदी ८ सम्वत १९०२ में इसका देहान्त हो गया। खेमासिंह का जन्म सन् १८९५ मे सुखां के पेट से हुआ था। सात साल की उम्र में ही यह मर गया।

नारायणसिंह सम्वत् १८९५ में सुखां के उदर से पैदा हुआ और जल्दी ही मर गया, इसके वाद पैदा होने वाले लड़के का भी नाम सुखां ने नारायणसिंह ही रक्खा। वह भी सम्वत् १८२२ मे ननिहाल मे रहते हुये मर गया।

अजपालसिंह भादों वदी २ सम्वत् १९१५ मे रतनकौर से पैदा हुआ और चार वर्ष ही वाद मर गया। इस प्रकार जगतसिंह का वंश समाप्त हो गया।

यह हम पहले लिख चुके हैं कि आलासिंह के भाई दूना के पॉच पुत्र थे (१) विघासिंह (२) दाऊ-सिंह (३) संगूसिंह (४) सुखसिंह और शोभासिंह। इनमें दाऊसिंह तो लाहौर के जेल मे नि.संतान ही मर गया था। संगूसिंह भी २३ वर्ष की उम्र में अपने पीछे अपनी वेवा को छोड़कर मर गया

रामपुरिये,

सम्वत् १७८० मे पैदा हुआ था। इसके दो विवाह हुये। सम्वत् १८०१ मे भागां के साथ दूसरा १८१६ वि० मे हरिकौर के साथ। कहा जाता है यह अपने समय का अद्वितीय वहादुर शूरमा था। सम्वत् १८२२ मे यह मर गया। वड़ी औरत ने अपने देवर विघासिंह

से नाता कर लिया। इसके वशज दूनकोटिये कहलाते हैं। शोभासिंह जेठ सुदी ६ सम्वत् १७७५ में पैदा हुआ था। इसने तीन शादियाँ कीं। इसके पास रामपुरा और कोट वख्तू की जागीर थी। सम्वत् १८२६ मे इसका देहान्त हो गया। इसके वशज इसकी जागीर पर काविज रहे।[1]

विघासिंह की सन्तान में से मोहरसिंह और दलसिंह के वशजों का वर्णन शेप है जो इस प्रकार है। दलसिंह सम्वत् १८२४ मे भागा के पेट से पैदा हुआ था सम्वत् १८३७ में काले गाव की केसरकौर के साथ उसका विवाह हुआ। इनके वशज कोटदूने पर मालिक हैं दलसिंह के एक पुत्र जीतसिंह थे जो सम्वत् १८४५ चैत सुदी १२ को पैदा हुये थे। सम्वत् १८५७ में मेखी गोती जाटों की पुत्री खेमकौर के साथ शादी हुई। अपने पीछे दो पुत्र महताव-सिंह और जोधसिंह को छोडकर सम्वत् १८७५ मे जीतसिंह चल वसे।

कोटदूनिये

महतावसिंह का जन्म संवत् १८८६ के आपाढ़ में सुदी २ को खेमकौर के उदर से हुआ था। इनकी शादी रामपुर के गरेवालां गोती जाटों में हुई। दूसरी स्त्री से एक लड़की और एक लडका पैदा हुए। लडके का नाम उसकी वहन के नाम की तरह अतरसिंह रक्खा गया। अतरसिंह का जन्म सम्वत् १८८८ में साहवकौर से हुआ था। अतरसिंह के जन्म के तीन वर्ष वाद ही सरदार महतावसिंह का सवत् १८६१ में देहान्त हो गया। अतरसिंह ने तीन शादियाँ कीं, जिनसे एक लड़की और एक लडका पैदा हुये। लडकी का नाम किशनकौर और लड़के नाम किशनसिंह रक्खा, जिसका कि जन्म सवत् १६१६ के भादों मे शामकौर के पेट से हुआ था। यही आपकी मिलकियत के अधिकारी हुये। इनके पिता अतर-सिंह का सम्वत् १७२० मे जव कि यह कुल चार वर्ष के थे देहान्त हो गया था।

जोधसिंह जो कि महतावसिंह के भाई थे। सवत् १८७३ के क्वार मे खेमकौर के पेट से पैदा हुए थे। इन्होंने धारीवाल गोत के जाटों में शादी की थी। जिससे लालसिंह और पजावसिंह नाम के दो पुत्र और पंजावकौर नाम की एक लडकी पैदा हुई। इसके वाद इन्होंने दो शादिया और भी करलीं।

लालसिंह का जन्म संवत् १८७० की भादों वदी ४ को सरदारनी धनकौर के पेट से हुआ और इन्हीं के पेट से सवत् १८६३ की माघ सुदी ११ को पजावसिंह का जन्म हुआ। लालसिंह की दो शादिया हुईं। पंजावसिंह की शादी गिल गोत में हुई। जिससे दो पुत्र सम्पूरनसिंह और भागसिंह सवत् १७७५ तक ही हो गये थे।

चौधरी विघासिंह के पुत्रों में मुहरसिंह के वशजों का वर्णन अव तक नहीं कर सके। अत यहाँ देते हैं।

मोहरसिंह का जन्म सावन वदी २ सवत १८२४वि० को देसो के पेट से हुआ था। सवत् १८३१ई० में गांव फेरूराई मे टेकसिंह धारीवाल की लड़की राजकौर के साथ शादी हुई। इसके उदर से (१) अमरीकसिंह (२) समुद्रीसिंह और (३) सुजानसिंह नाम के तीन लड़के और महतावकौर नाम की लड़की पैदा हुई। इसके वाद दो शादिया और कीं किन्तु उन दोनों सरदारनियों से कोई सतान नहीं हुई। मोहरसिंह

१. रामपुरिये सरदार कहलाते हैं। शोभासिंह के (१) जस्सासिह (२) मस्सासिह (३) टेकसिह (४) चडत-सिह और वुधसिह पाच पुत्र पैदा हुए। जिनमें से जस्सासिह नाबालिग ही मर गया। बाकी चारों की औलाद रामपुर पर आबाद है। रामपुरे को सरदार रामसिह ने बसाया था। और बख्तू नामक गाव को शोभासिह की चादर डाली हुई (भाभी) सरदारनी बख्तो ने बसाया था यह जागीर ६०००) सालाना की थी।

झगड़ालू प्रकृति का आदमी नहीं था। इसलिये उसने असंमाल नाम का एक गाँव तो अपने गुजारे के लिये ले लिया। बच्चों को अपने भाई चूहड़सिंह के साथ ही रहने दिया। जब चूहड़सिंह ने अपने दिन निकट समझे तो मोहरसिंह के लड़कों मे उसने जद्दी इलाके के दो तिहाई बांट दिये। संवत् १६०३ मे सरदार मोहरसिंह का स्वर्गवास हो गया।

अमरीकसिंह का जन्म सम्वत् १८४२ मे वैसाख वदी ५ को हुआ था संवत् १८५४ मे पहली शादी हुई। जिससे चन्दकौर नाम की लड़की पैदा हुई। दूसरी शादी संवत् १८६० मे की उससे भी एक लड़की रतनकौर पैदा हुई। सम्वत् १८६७ के क्वार वदी ८ को धर्मकौर के पेट से इस अमरीकसिंह के एक पुत्र देवासिंह पैदा हुआ।

अमरीकसिंह के दूसरे भाई समुद्रसिंह का जन्म सम्वत् १८४६ वैसाख बदी ४ को हुआ था। समुद्रसिंह की चार शादियां हुईं। चौथी सरदारनी प्रतापकौर के पेट से इनके अचलसिंह नाम का पुत्र पैदा हुआ। समुद्रसिंह बाप से नाराज होकर पटियाला महाराज कर्मसिंह के पास जाकर नौकर होगया। सम्वत् १८८१ ई० मे भाई माना ने जब भदौड़ पर कब्जा करने के इरादे से हमला किया तो अचलसिंह ने पटियाला की फौजों की मदद से उसे शांत किया। महाराज मोहरसिंह की मौत के बाद महाराजा पटियाला की सिफारिश के कारण और उस बलवे को नष्ट करने की वजह से इलाके की सरदारी बजाय अमरीकसिंह के इसे ही मिली। इसे प्रान्तीय दरबार मे कुर्सी मिलती थी। सम्वत् १८६३ मे इसका देहान्त हो गया। इसका लड़का अचलसिंह जिसका कि जन्म १८८६ सम्वत् के माघ बदी पचमी को हुआ था। इसका उत्तराधिकारी हुआ। अचलसिंह ने भी तीन शादियां कीं। अमरीकसिंह के पुत्र देवासिंह ने इस बात का दावा कर दिया कि असल हकदार जागीर का मैं हूँ इसलिये सरदारी मुझे मिलनी चाहिये थी। सरकार ने सरदारी इन दोनों के बजाय मोहरसिंह के तीसरे पुत्र को दे दी। क्योंकि ये दोनों तो मोहरसिंह के पोते थे और पोतों का हक नहीं होता। अचलसिंह ने गदर के समय फीरोजपुर रहकर सरकार की सेवाये कीं।

मोहरसिंह के तीसरे पुत्र शोभासिंह का जन्म सम्वत् १८५१ मे आषाढ़ सुदी ४ को हुआ था। सम्वत् १८६० में भागणकौर के साथ इसकी शादी हुई। जिससे सम्वत् १८६६ के पौष बदी ८ को उत्तमसिंह नाम का एक लड़का पैदा हुआ। जो अपने बाप की जिन्दगी मे ही बटवारा कराकर अलग हो गया। सम्वत् १८८५ में शोभासिंह का अधिक शराब पीने के कारण देहान्त हो गया।

उत्तमसिंह के अतरसिंह नाम का लड़का भादों सुदी ८ सवत् १८६४ मे हुआ था। जिसने अपने पूर्वजों की तरह एक स्त्री से सन्तोष न करके बहुविवाह की रस्म को उसी भाति पूरा किया था।

अमरीकसिंह के पुत्र देवासिंह का जन्म सम्वत् क्वार वदी ८ सम्वत् १८६७ वि० मे धर्मकौर के पेट से हुआ था। इसने भी चार शादियां कीं। आखिर यही कम क्यों रहता। जिनसे कई लड़के पैदा हो-होकर बचपन में ही मर जाते रहे। सम्वत् १८६२ में पिंड उगोकी के धारीवालों की लड़की महताबकौर के साथ शादी की। उससे रामदेवी और नारायणकौर नामक लड़की पैदा हुईं। इसी से सम्वत् १६०६ के फागुन में नारायणसिंह नामक पुत्र का जन्म हुआ। अपनी दोनों बहिनों की शादी सयाने होने पर नारायणसिंह को ही करनी पड़ीं क्योंकि देवासिंह तो उस समय तक चलाणा कर चुका था। सम्वत् १६२३ में लधड्ढा वाले सरदारों के यहां अपनी भी शादी की।

सरदार आलासिंह के एक भाई दूनासिंह के वंशजों का हम वर्णन कर चुके है अब दूसरे भाई

वख्ता के वशजों का वर्णन शेष है। जो कि मलौदिये रईस कहलाते हैं। मलौद इस समय जिला लुधियाना में शामिल है। सन् १७११ ई० मे वख्तमल जी ने सहना गाँव में कोट वख्तमल आवाद किया था जो कि उन्हीं के नाम पर प्रसिद्ध हुआ था। सन् १७५७ में वख्तमल का देहान्त हो गया[1]। उसके बाद उसके लड़के मानसिंह को अपने पिता के समस्त इलाके पर अधिकार हुआ। मानसिंह ने भी अपने समय में अनेक गाँवों को अपने अधिकार मे करने का प्रयत्न किया। मानसिंह वडा दानी था।

मलौद

मानसिंह[2] के दो लड़के थे दलेलसिंह और वाघसिह। इन दोनों भाइयों मे काफी झगडा रहा। दलेलसिंह ने राजा साहब पटियाला के पास वाघसिंह की शिकायत की कि मेरे छोटे भाई वाघसिह ने कोट वख्ता पर जवर्दस्ती कब्जा कर लिया है। दीवानसिंह ने वाघसिंह पर चढ़ाई की। वाघसिंह किले में बैठकर बड़ी वहादुरी से लड़ा किन्तु आखिर मे हार गया। आठ दिन के युद्ध के बाद कोट वख्ता को दीवान ने वाघसिंह से छिना कर दलेलसिंह को दे दिया। इसके बदले में दलेलसिंह ने दीवानसिंह को वीस हजार रुपया नकद और एक तोप भेट की। वाघसिंह सन १८२० मे और दलेलसिंह सन् १८२४ ई० में स्वर्ग रवाना हो गये।

महाराजा दलेलसिंह ने दो लड़के अपने पीछे फतहसिंह और मितसिंह नाम के छोड़े। दलेलसिंह का देहान्त सन् १८२४ ई० मे हुआ था। फतहसिंह अपने वाप की जागीर का सरदार हुआ और अपने वाप के २६ वर्ष बाद मर गया।

फतहसिंह के भी दो लड़के थे। हजूरासिंह और उत्तमसिंह। हजूरासिंह अपने वाप के चार वर्ष ही वाद मर गया। इसलिये उसका छोटा भाई उत्तमसिंह कुल जायदाद का मालिक हुआ और सरकारी कार्यों में भाग लेने के कारण इसे सरकार की ओर से कुर्सीनशीन किया गया। मलौदियों में इसकी इज्जत सर्वोपरि थी। सन् १८६५ में इसका स्वर्गवास होगया।

सरदार उत्तमसिंह के पास मौजा सहना और रामगढ़ आदि थे जिनकी आमदनी ३३४५५) सालाना थी।

सरदार दलेलसिंह के छोटे पुत्र सरदार मितसिंह और उसकी सन्तान के पास मलोद और पक्खो वगैरह की जागीरें हिस्से में थीं। जिनकी आमदनी २०४१) रुपया सालाना की थी। सरदार मितसिंह[3]

१. किन्तु सरदार अतरसिंह रईस भदौड ने संवत १८११ यानी सन् १७५४ में लिया था।

२. मलोद को मानसिंह ने ही मालेरकोटला से जीता था।

३ सरदार मितसिंह के लडके राजा वदनसिंह के छोटे भाई का नाम सरदार सुन्दरसिंह था। जो अपने भाई से पहले ही सन् १९१७ में स्वर्गवास हो गए थे। उनके तीन लड़के थे (१) राजेन्द्रसिंह (२) किशनसिंह (३) गुरुदत्तसिंह। इनमें से राजेन्द्रसिंह जी ने सेना में लेफ्टीनेंट का पद लिया और सरकार की अच्छी सेवायें करने के कारण सरदार बहादुर का खिताब पाया। सन् १९२६ में अपने पीछे चार पुत्र छोड़ कर स्वर्गस्थ हो गये। इन चारों के नाम योगेन्द्रसिंह (जन्म १९१०) महेन्द्रसिंह (जन्म १९१३) वीरेन्द्रसिंह (जन्म १९१८) धीरेन्द्रसिंह (जन्म १९२०) हैं।

किशनसिंह लावल्द मरे और गुरुदत्तसिंह जी के दो पुत्र हुए। राजेन्द्रसिंह और रामेश्वरसिंह। जिनके कि क्रमश सन् १९१४ और १९१७ में जन्म हुये हैं।

का सवत् १८७८ ई० मे देहान्त हो गया था। उसके दो लड़के थे (१) वदनसिंह (२) सुन्दरसिंह। वदनसिंह ने अपनी योग्यता और सेवाओं से सरकार को खुश कर लिया था। जिससे सरकार की ओर से राजा का खिताव पाने मे सफल हुआ था। उसके छोटे भाई का उसके आगे ही देहान्त होगया। सन् १९२२ मे राजा वदनसिंह भी चल वसा। राजा वदनसिह के तीन पुत्र हुए थे। (१) हरनामसिंह (२) महतावसिंह और (३) सरदार दलसिंह। इनमे पहले दो का देहान्त राजा साहव के जीवन मे ही और लावल्द हो गया था। तीसरे सरदार दलसिंह जी ने अपने जीवन को अपने पिता की तरह ही ऊँचा उठाया और अच्छी तरह से अपनी रियासत का प्रवन्ध किया। सरकार के प्रति सद्भाव रखने के कारण सरकार ने वहादुर और आर० बी० ई० की पदवी से विभूपित किया। आपका जन्म सन् १८६८ का बताया जाता है। आपके सन् १८८५ मे सन्तसिंह नाम का सुपुत्र का जन्म हुआ। और फिर सन् १९१७ मे अमरजीतसिंह पोता हुआ। इस प्रकार सरदार दलसिंह जी अपने समय के खुशवख्त लोगों मे समझे जाते हैं।

जमीदारी के कामों मे भी आपने रुचि रक्खी। जिससे जागीर के प्रबन्ध मे सहूलियत रही। सन्तान को जमाने की रफ्तार के मुआफिक्र योग्य बनाने की ओर से आप सतर्क रहे है।

बख्तमल के दूसरे पुत्र वाघसिंह थे। ऊपर जो इतिहास है। वह उनके बड़े पुत्र दलेलसिंह के वंशजों का है।

वाघसिंह के दो पुत्र हुये थे एक रनजीतसिंह दूसरे हकीकतसिंह। बाघसिंह ने अपने ही समय में अपने भाई से जागीर का वटवारा करा लिया था। इसलिये उसके मरने पर अपनी स्वतन्त्र जायदाद के दोनों पुत्र मालिक हुये। बाघसिंह का सन् १८२० ही मे देहान्त हो गया। कुछ दिन के बाद दोनों भाइयों ने भी अलग २ होने की कोशिश की किन्तु सन् १८५४ ई० मे रनजीतसिंह के मर जाने के बाद हकीकतसिंह के हाथ ही में अपने आप की सारी जागीर आगई क्योंकि उसका भाई रनजीतसिह लावल्द ही मर गया था।

सन् १८६६ ई० मे हकीकतसिंह के एक लड़का पैदा हुआ जिसका नाम बलवंतसिंह रक्खा गया। जब कि कुँवर बलवंतसिंह की उम्र केवल ९ वर्ष की थी। सरदार हकीकतसिंह जी का देहान्त हो गया। उनके नाबालिग होने तक सरदार बलवंतसिंह की मा ने जागीर की देखभाल की। सरकार की ओर से भी ख्याल रक्खा गया।

सरदार बलवतसिंह जी के दो पुत्र हुये। भगवन्तसिंह और नारायणसिंह। खेद है कि इन दोनों का क्रमशः सन् १९२१ और सन् १९२७ई० मे देहान्त हो गया। उन दोनों ही ने तीन पुत्र अपने पीछे छोड़े।

सरदार भगवन्तसिंह के बलवंतराजसिंह हैं जिनका जन्म १९२१ मे अपने पिता की मृत्यु वाले वर्ष मे ही हुआ है और सरदार नारायणसिंह के (१) पुरुषेन्द्रसिंह (२) नरेन्द्रसिंह हैं। जिनमें पुरुषेन्द्र सिंह जी का जन्म १९१९ मे और नरेन्द्रसिंह जी का जन्म १९२६ ई० मे हुआ है।

खान्दान फूल की बड़ी जागीरों का वर्णन हम पिछले पृष्ठों मे कर चुके हैं अब छोटी २ जागीरों का जिक्र करते हैं। फूल खान्दान की पॉच छोटी २ जागीरे हैं जो (१) गुमटी वाले, लोहरगढ़िये, (२) मिरजे की दयालपुरिये, (३) जिउन्दा वाले, (४) रामपुरिये और (५) कोट दूनेवालों का भी वर्णन पीछे आ गया है। इन पॉचों जागीरों की लगभग इकत्तीस हजार सालाना की आमदनी है।

फूलवंशीय छोटी जागीरें

इस खान्दान का संस्थापक फूल का पुत्र चौधरी रघु था। जिउन्दे गॉव मे उन्होंने अपना प्रभुत्व

स्थापित किया था। चौधरी रघु बहादुर आदमी थे। उन्होंने अपने बाहुबल से इस मिल्कियत को कायम किया था। चौधरी रघु के चार पुत्र हुये। तीन पुत्र निःसन्तान मर गये। चौथे हरनामसिंह की औलाद आजकल इस जागीर की मालिक है। इन्हीं की एक पत्ती मगरौल है इनके यहाँ बटाई की प्रणाली है। जागीर की कुल आमदनी ४२००) रुपए सालाना है। लगभग १०० आदमियों का इसी पर दारमदार है।

जीऊन्दे वाले

चौधरी फूल की चौथी स्त्री रज्जो के उदर से तीन लड़के पैदा हुये। जिनमें से एक निःसन्तान मर गया दो के सन्तान हुई। जिसने गुमटी गाँव को आबाद किया। इनकी सात पत्ती हैं। इस जागीर को स्थापित करने में इन्हें सुखानन्द बैराड़ से अच्छी सहायता मिली थी। कुल जागीर ८०००) सालाना की है और लगभग ६०० आदमियों का दारमदार इसी के ऊपर है। लगान मे बटाई लेते हैं। यह जागीर राज्य नाभा के मातहत है। जागीर की आमदनी कम होने के कारण खुद भी काश्त करते हैं।

लोहड़गढिये गुमटीवाले

सुखचैनसिंह के एक पुत्र बुलाखी माई भागो के उदर से पैदा हुआ था। सुखचैनने बुढालीकी ढाव की जमीन में गढ़ी सुखचैनसिंह आबाद की थी। बुलाकी सीधा चौधरी था। कोटकपूरे के पास इसकी शादी हुई। जिससे पैदा होने वाले लड़के का नाम मिरजा रक्खा। मिरजेके छोटे भाई का नाम आलमसिंह था। जब वह मर गया तो मिरजा ने उसकी स्त्री के ऊपर चादर डालकर अपना घर बसा लिया। इससे जैतू नाम का लड़का पैदा हुआ। दयालसिंह पहली स्त्री से पैदा हुआ था। इस प्रकार एक गाँव का ही नाम मिरजे का दयालपुर हो गया। इनके वंशज उसी गाँव में रहते हैं। छलाल और जलालपुर भी इन्हीं के पास हैं। कुल जागीर ७०००) सालाना की है। लगभग ६० आदमियों का इसी पर निर्वाह है। लगान में बटाई का रिवाज है। यह जागीर राज्य जींद में है।

मिरजेकी दयालपुरिये

रामपुरिये और कोटदूनिये वालों का जिक्र पीछे कर ही आये हैं।

इन जागीरों का दौरा मदौड़ के सुयोग सरदार अतरसिंह जी ने किया था। उस समय के हालात में उन्होंने लिखा है कि ये इनमें राजवंश का खून अब तक तासीर रखता है। किन्तु पढ़ने लिखने की ओर न तो ध्यान देते हैं और न उसे महत्वपूर्ण समझते हैं।

पिछले वर्षों में शिक्षा सुधार तथा नौकरियों की ओर इनका ध्यान गया है।

जिस प्रकार मलोद लुधियाने में है। उसी प्रकार पक्खो,बेर और रामपुर की बहुत छोटी २ जागीरें जिला लुधियाना में फूल वंश की और हैं। जिनमें से प्रांतीय दरबार में मलौद को ही स्थान मिलता है।

यह जागीर जिला करनाल में है। पहले इसपर निशानवालिया मिसल का अधिकार था। यहां का अधिपति सरदार हिम्मतसिंह था। उसके मरने पर सरदार कर्मसिंह ने अपना दखल जमा लिया. आरंभ में उसे केवल पाँच गाँव हिम्मतसिंह की सरदारनी से मिले थे। अपनी बुद्धिमानी और बहादुरी से उसने लगभग तीस हजार सालाना आमदनी के इलाके पर कब्जा कर लिया। निशानवाली मिसल में काफी फूट फैल चुकी थी। सब सरदार आपस की लडाई-भिडाई में लगे हुए थे। उनकी कमजोरी से सरदार कर्मसिंह और महाराजा रणजीतसिंह दोनों ने लाभ उठाया। कहा जाता है सरदार कर्मसिंह सन् १७४९ ई० में इलाका माफ से इधर आया था और उसने इस मिसल के साथ मिलकर काम किया था। सन १७५४ में हिम्मतसिंह के मरने पर उसकी

पक्खो, बेग रामपुर शाहाबाद

वेवा ने सरदार कर्मसिंह को केवल पॉच गॉव दिये थे। सन् १८०८ ई० मे जब सरदार कर्मसिंह की मृत्यु हुई वह इतना बड़ा वैभव छोड गया कि उसके लड़के खड्गसिंह के साथ पटियाला महाराज कर्मसिंह ने अपनी बहिन प्रेमकौर की शादी की। यह घटना सन् १८०६ ई० की है।

सरदार कर्मसिंह ने चार वेटे अपने पीछे छोड़े। (१) रनजीतसिंह (२) शेरसिंह (३) काहनसिंह और खड्गसिंह। इन्होंने अपने पिता के मरने के बाद लड़-झगड़ कर इलाका आपस मे बांट लिया। सरदार खड्गसिंह जिसकी कि शादी पटियाला मे हुई थी सन् १८३१ ई० मे नि सन्तान मर गये। इसलिये उनका इलाका सरदार शेरसिंह को दिया गया। तीस वर्ष तक इस इलाके का उपयोग करके सन् १८६१ में शेरसिह भी मर गये। उनके पीछे उनका लड़का केसरसिंह भी मर गया। केसरसिंह के नि संतान मरने के कारण अंग्रेज सरकार ने हड़प लिया। यह घटना सन् १८६३ की है। केसरसिंह का इलाका ग्यारह हजार सालाना से ऊपर की आमदनी का था।

जिस सरदार कर्मसिंह ने अपने बाहुबल से इतना बड़ा इलाका पैदा किया था और जिसने पटियाला के दीवान नानूमल को नाक चने चबवा दिये थे। और जो हमेशा अपनी मान मर्यादा के लिये मरने-मिटने को तैयार रहता था तथा जिसने पटियाला की कुछ भी परवाह न करके खुशालसिंह बन्दूरवाले को मदद दी थी। उसका ग्यारह हजार का इलाका इस प्रकार लावारिसी मे अंग्रेज सरकार ने हड़प लिया। हालाकि सरदार कर्मसिंह के दो पुत्र और भी शेष थे।

सरदार रनजीतसिंह के धर्मसिंह और किशनसिंह नाम के दो पुत्र हुये। जो अपने इलाके की बड़ी सतर्कता से रक्षा करते रहे। हालांकि उनको भी यह भय बराबर लगा रहता था कि कहीं उनकी जागीर पर भी हाथ साफ न हो। इसलिये वे अंग्रेज हाकिमों को बराबर प्रसन्न करते रहते थे।

सरदार धर्मसिंह के शिवनाथसिंह नाम के पुत्र पैदा हुये। जो अपने पिता के स्वर्गवास(सन्१८७६ ई०) के ४६ वर्ष बाद सन् १६१५ ई० मे अपने पीछे एक मात्र पुत्र सरदार जस्मीरसिंह को छोड़कर स्वर्गवासी हो गये। सरदार जस्मीरसिंह जी का जन्म १६११ ई० मे हुआ था। इस समय आप ही शाहाबाद जागीर के प्रधान है।

सरदार किशनसिंह जी जो कि सरदार धर्मसिंह जी के भाई थे सन् १८८० में स्वर्गवासी हो गये। उन्होंने भी अपने पीछे एक ही पुत्र विचित्रसिंह छोड़े थे। सन् १८६८ मे विचित्रसिंह जी भी प्रस्थान कर गये। उन्होंने अपने पीछे दो लड़के छोड़े थे। राजेन्द्रसिंह और हरेन्द्रसिंह जिनमे से राजेन्द्रसिंह का सन् १६२६ मे देहान्त हो गया। हरेन्द्रसिंह अपने हिस्से पर काबिज हैं जिनका कि जन्म सन् १८६८ मे हुआ था। सरदार जयवीरसिंह और हरेन्द्रसिह दोनों की लगभग ८०००) सालाना की आमदनी की जागीर है। काहनसिंह जो कि सरदार रनजीतसिंह जी के भाई थे वह सन् १८३६ मे चलाना कर गये। उनके बाद उनके पुत्र प्रतापसिंह के हाथ जागीर आई जोकि साढ़े तीन हजार सालाना आमदनी की समझी जाती थी।

सन् १८७८ ई० मे प्रतापसिंह भी अपने पीछे रामनारायणसिंह नाम का पुत्र छोड़ कर चल बसे। संवत १८६२ में रामनारायणसिंह का भी स्वर्गवास हो गया। इस प्रकार सरदार कर्मसिंह के चार पुत्रों में से केवल एक का वश ही फल फूल रहा है।

यह जागीर (बागरियान) जिला लुधियाना में है। यहां के रईस भाई के नाम से याद किये जाते हैं। क्योंकि वह भाई रूपा की संतान में से हैं।

वागरियान

इलाका तरनतारन में वड़ाघर नामक गांव में आकल नाम का एक सिख रहता था। अनजान में उसने अपनी लड़की की शादी तुकलानी के सादे मुलतानिये के साथ कर दी। लड़की वड़ी गुरु-भक्त थी। वह अपने पति सादे को लेकर श्री गुरु हरि-गोविन्द जी के पास डरोली में पहुँची। जहा उसे सिख धर्म की दीक्षा दिलाई। सम्वत १७६१ वि० मे उसके एक लडका पैदा हुआ। गुरु जी ने उसका नाम रूपचन्द रक्खा। रूपचन्द ने गुरुजी की अपूर्व सेवा की। उसके अगाध प्रेम और श्रद्धा के वशीभूत होकर गुरुजी ने उसे भाई रूपा के नाम से पुकारा। उसी समय से रूपा का कुल खान्दान भाई के नाम से प्रसिद्ध है। उसी के नाम पर आगे एक गॉव आवाद कराया गया जिसका नाम पिंड भाई रूपा पड़ा। यह पिंड राज्य नाभा में है। गुरुजी ने प्रसन्न होकर एक खड्ग और कच्छा भाई रूपा को दिये थे। जिन्हे आज भी वागरिया सरदार वड़ी हिफाजत से रखते हैं।

भाई रूपचन्द जी के सात लड़के हुये जिनमें से परमचन्द और धरमचन्द इन दोनों ने गुरु गोविन्दसिंह जी महाराज से दीक्षा ली थी। और उन्हीं की सेवा में रहे।

संवत् १७६६ में भाई रूपचद जी का देहान्त हो चुका था।[1] उसके पॉच वर्ष ही वाद उनके वडे पुत्र परमसिंह का सवत् १७७१ में देहान्त होगया। भाई धरमसिंह दशमेश जी की आज्ञा लेकर वापिस अपने गॉव आ गये।

विदा करते समय दशमेश जी ने भाई धर्मसिंह को पाठ करने की एक पुस्तक, एक तलवार एक छोटी करद और एक छोटा खंडा दिया। इनमे से इस समय तलवार त. जीन्द नरेश के यहॉ है। वाकी सभी चीजें वागरिया सरदारों के पास हैं।

भाई रूपचन्द जी के सातों पुत्रों की औलाद भाई रूपा, भाई की समाधि, नेहियाँवाला और नट्टी आदि गॉवों में वसी हुई हैं। किन्तु मुख्य ठिकाने भाई रूपा और वागरिया ही हैं। भाई महानन्द, सदानद, सूरतिया, मुख्यानंद और कर्मचन्द उनके शेष पॉच पुत्रों के नाम थे। 'शैरे पंजाव' के लेखक राय कालीराम साहव ने जो वशावली दी है। उसके अनुसार आगे का वर्णन इस प्रकार है—

भाई रूपा के वाद उनका वडा पुत्र धर्मसिंह उनका उत्तराधिकारी हुआ। धर्मसिंह की शादी माई मुकन्दी के साथ हुई थी। उससे भाई दयालसिंह का जन्म हुआ। दयालसिंह ने राज्य नाभा में दयालपुर वसाया। माई सूसी के साथ इनका विवाह हुआ था।

भाई दयालसिंह जी के घर माई सूसी के उदर से (१) गुरुदत्तसिंह (२) उम्रसिंह (३) नानकसिंह और सुखमनसिंह चार लड़के पैदा हुये। जिनमें पहले तीनों पुत्र नि संतान ही संसार से प्रस्थान कर गये। इसलिये आखिर मे सुखमनसिंह ही भाई दयालसिंहजी की सम्मत्ति और जायदाद एव गद्दी के हकदार हुये।

भाई सुखमनसिंह जी के भी चार लड़के हुये। (१) मेहरसिंह (२) सगतसिंह (३) हरदाससिंह और (४) गुरुमुखसिंह। इनमें भाई संगतसिंह जवानी के आरम्भ दिनों में ही चल वसे। इनकी वेवा माई गौहर से मेहरसिंह जी ने चादर डालकर विवाह कर लिया। किन्तु माई गौहर के उदर से कोई सतान नहीं हुई। इसलिये भाई मेहरसिंह भी सन्तानहीन ही ससार से विदा हुये। भाई हरिदास जी के भी कोई सतान नहीं हुई। इ नकी पत्नी माई सुखा इनसे पहले ही मर गई थीं। भाई गुरुमुखसिंह जी ने तीन शादियाँ कीं। मल्हां, भरधा, और रामकौर उनके नाम थे। इससे सात पुत्र उत्पन्न हुये। माई मल्हा से

१ जिला फीरोजपुर में भाई की समाधि नाम का गांव आपही की स्मृति में आबाद हुआ था।

अतरसिंह, अनूपसिंह, अनोखसिंह और साहबसिंह नाम के चार पुत्र हुये। जिनमे से अतरसिंह के पुत्र भोलासिंह हुये। जिनकी कि संतान के लोग मौजा ककराला राज्य पटियाला मे रहते हैं। भरधां से बहादुरसिंह और जवाहरसिंह नाम के दो पुत्र हुये। बहादुरसिंह जी के ही सुपुत्र भाई सम्पूरनसिंह हुये। जिनके नाम का प्रकाश अब तक है इन्हीं के लड़के-पोते और पड़पोते बागरिया सरदार कहलाते हैं। बहादुरसिंह जी के छोटे पुत्र मूलासिंह थे। भाई बहादुरसिंह ने अपने छोटे भाई जवाहरसिंह जी को मौजा कलाहरान मे आधा हिस्सा देकर अलग कर दिया। जोकि इलाका ककराला मे है।

भाई गुरुमुखसिंह जी की तीसरी पत्नी से एक ही पुत्र महताबसिंह का जन्म हुआ।

सिख महान् कोष गुरुशब्दरत्नाकर के यशस्वी लेखक भाई काहनसिंह जी के कोष से पता चलता है। भाई बहादुरसिंह का देहान्त सं० १६०४, उनके सुपुत्र भाई सम्पूरनसिंह का सं० १६१६ मे हो गया।

भाई काहनसिंह जी के बड़े पुत्र नारायनसिंह जी का भी सम्वत् १६४६ मे देहान्त हो गया। उनके बाद उनकी कोई सन्तान होने की वजह से भाई अर्जुनसिंह जी गद्दीनशीन हुये। आपका जन्म सम्वत १६३१ वि० मे हुआ था। सम्वत् १६५६ मे आपके अरिदमनसिंहजी का जन्म हुआ। जो अपने खान्दान मे प्रथम ग्रेज्यूएट थे। आपके भी सम्वत् १६७७ मे एक सुपुत्र हो चुके हैं। जिनका नाम भाई हरिधनसिंह जी है। इस तरह बागरिया वर्तमान सरदार अर्जुनसिंह जी पुत्र और पौत्र की सम्पन्न फुलवारी मे सर्वानंद का उपभोग कर रहे हैं। ईश्वर का भजन करने मे रुचि सुलक्षणा स्त्री और सुपुत्र पुत्र-पौत्रों से भरा हुआ घर एवं स्वास्थ्य की उपस्थिति यही सर्वानन्द हैं। सरदार अर्जुनसिंह जी के भाई हरधनसिंह समेत तीन पुत्र हैं। अरिगजनसिंह और गहारिवसिंह उनके नाम है। जिनके कि क्रमश. सम्वत् १६६१ और १६७२ वि० मे जन्म हुये हैं।

कलाहरां के आधे हिस्सेदार भाई जवाहरसिंह का लड़का केसरसिंह लावल्द मर गया। अतः उनका हिस्सा भी भाई अर्जुनसिंह के ही हाथ आगया। आपको सरकार की ओर से सरदार बहादुर और ओ० बी० ई० के खिताब भी मिले थे।

हम यह बता चुके हैं कि भाई सम्पूर्णसिंहजी के दूसरे भाई मूलासिंह जी थे। उनके पांच पुत्र हुए। वीरसिंह, भगवानसिंह, विचित्रसिंह, सन्तोषसिंह और बसन्तसिंह इनमें विचित्रसिंह जी के करतारसिंह हुये और दूसरे भाइयों के बारे मे सन्तान सम्बन्धी कोई पता नहीं चलता।

करतारसिंहजी के सम्वत् १६८३ मे भाई हरदयालसिंह जी हुए।

भाई मूलासिंहजी के पुत्रों मे से वीरसिंह, सन्तोषसिंह और बसन्तसिंहजी का देहान्त हो गया।

सिख लोग बागरिया सरदारों को भाई रूपाजी के वंशज होने की वजह से प्रेम और सत्कार की निगाह से देखते है। यह सब गुरुओं का प्रताप ही समझना चाहिये कि उनके सेवकों के वंशजों का आज तक आदर बना हुआ है और उसी आदर ने सिखों के उरुज के समय भाई खान्दान को जागीरदार और भू स्वत्वाधिकारी की गद्दी पर भी बिठा दिया।

जिला अम्बाला की लाडवह तहसील मे यह जागीर अवस्थित है। इसकी स्थापना चौधरी नानूसिंह जो कि इलाका मांझ मे छावल मंडन का रहने वाला था की थी। सिख धर्म की दीक्षा लेकर सरदार

बूड़िया

नानूसिंह ने भंगी मिसल से मिलकर काम किया और शनैः-शनैः बूड़िया जैसी रियासत कायम करने मे सफल हुआ। सन १७६३ ई० मे जब जैनखां पर सिखों ने हमला किया यह भी अपने दत्तक पुत्र भागसिंह और मित्र रामसिंह के दल मे शामिल

हुआ और वाद विजय के आवाद हो गया। सन १८६४ ई० मे वूडिया पर कब्जा कर लिया।

वूडिया का नानूसिंह से पहले का इतिहास यह है कि यहां पर जैनखां की ओर से लक्ष्मीनारायण नाम का एक हिन्दू अफसर था। जव वह छोड़ कर चला गया तो नरवारिया सिखों ने इस पर हाकिमी हासिल करली। नानूसिंह ने जैनखां के परास्त हो जाने के वाद वूडिया पर अपना स्वतंत्र अधिकार जमा लिया। इससे नरवारिया सिख नाराज रहने लगे।

उस समय औरंगावाद मे पठानों का जोरदार प्रभुत्व था। उन्होंने और नरवारियोंने मिलकर सरदार नानूसिंह को धोखे से औरंगावाद के किले में वुलाकर कत्ल कर डाला। इस खवर के सुनते ही रामसिंह और भागसिंह को वड़ा क्रोध आया और उन्होंने औरंगावाद के इलाके पर हमला कर दिया। पठानों को औरंगावाद से मार भगाया और इस इलाके के दो सौ चार गांवों पर अपना झंडा फहरा दिया।

सरदार भागसिंह और रामसिंह ने इन गांवों को आपस में वांट लिया। जगाधरी और ज्वालगढ़ का इलाका मय चौरासी गांव के राममिंह के अधिकार में आया और वूडिया मय १२० गांवों के सरदार भागसिंह को मिला।

सरदार भागसिंह का १७८५ ई० मे देहान्त हो गया और रियासत वूडिया उसके वेटे सरदार शेरसिंह के कब्जे मे आया। शेरे पंजाव के लेखक ने वूडिया के पड़ोसी सिख-इलाके के सम्बन्ध में जिस पर कि रामसिंह का अधिकार था लिखा है कि वह सरदार दूलजासिंह के निःसन्तान मरने पर सरकार ने अपने कब्जे मे कर लिया।

सरदार शेरसिंह ने अपने समय में अंग्रेज अधिकारियों से खूब मेलजोल कर लिया था। कर्नल वैरन साहव के साथ सहारनपुर के मुहासिरे में भी शामिल हुआ। जहां सन १८०४ ई० में लड़ता हुआ मारा गया।

सरदार शेरसिंह के दो लड़के थे जयमलसिंह और गुलावसिंह इन दोनों ने अपने वाप के मरने पर राज्य को आपस मे वांट लिया। इस वटवारे के समय दोनों भाइयों मे आन्तरिक मन-मुटाव भी पैदा हुआ। सरदार जयमलसिंह अधिक दिनों तक अपने हिस्से की रियासत का उपभोग न कर सका उसकी सन १८१७ ई० में मृत्यु हो गई।

चूंकि जयमलसिंह ने कोई सन्तान अपने पीछे नहीं छोड़ी थी अत. सारी सम्पत्ति और जागीर का मालिक उनका छोटा भाई गुलावसिंह ही हुआ। सरदार गुलावसिंह ने अपने पैतृक भूमिभाग की उन्नति करनी चाही किन्तु इस समय तक महाराजा रणजीतसिंहजी का वहुत प्रभाव वढ़ गया था। उधर अंग्रेज मुँह वाये खड़े थे। इसलिए अपनी ही जायदाद की रक्षा करना मुश्किल हो रहा था। सन् १८४४ ई० में गुलावसिंह की भी मृत्यु हो गई।

गुलावसिंह के वाद वूडिया रियासत के अधिकारी उनके पुत्र जीवनसिंह हुये। उस समय उनके पास इतना भूभाग था जिसमें तेतीस हजार आदमी रहते थे और चालीस हजार के करीव सालाना आमदनी हो जाती थी। जीवनसिंह की वहिन की शादी महाराजा पटियाला महेन्द्रसिंहजी के साथ हुई थी। जो कई वार जीवनसिंह जी के आग्रह से वूडिया भी पधारे थे।

खालसा राज्य के खतम करने और सन १८५७ के गदर को दवाने के लिए अंग्रेजों ने जो लड़ाइयां लड़ीं थीं। उनमें सरदार जीवनसिंह ने अपने रिश्तेदार पटियाला नरेश से उत्साहित होकर अंग्रेजों की मदद करने में कोई भी कसर नहीं छोड़ी थी। अत. गदर की समाप्ति के वाद सरकार ने

आपको सी०आई०ई० का खिताब दिया था। सन १८६३ मे आपका देहान्त हो गया।

सरदार जीवनसिंह के पुत्र राजेन्द्रसिह जी का स्वर्गवास उनसे भी तीन वर्ष पहले १८६० मे हो चुका था। अत' जागीर के मालिक उनके पौत्र सरदार लक्ष्मनसिंह जी हुये। लक्ष्मनसिंह सुशिक्षित और योग्य सरदार थे सरकार की सेवाये उन्होंने भी खूब कीं। इसलिये सरकार ने उन्हे सरदार बहादुर का खिताब बख्शा था। सन १६२१ मे सरदार बहादुर सरदार लक्ष्मनसिंह का देहान्त हो गया। उन्होंने दो छोटे-छोटे पुत्र छोड़े। (१) रतनअमोलसिह (२) लालअमोलसिह। इनके जन्म क्रमशः सन् १६१६ ई० और १६२० ई० मे हुए थे अत' इनके नाबालिग होने के कारण रियासत का प्रबन्ध कोर्ट आफ वार्डस द्वारा इनके बालिग होने के समय तक के लिए कर दिया गया था।

शाहजादपुर

दमदमे साहब की तलवंडी के महन्त बाबा दीपसिंह मुगलों से युद्ध करते हुये शहीद हुये थे। दीपसिंह के बाद उनका शिष्य सदासिंह भी धर्म युद्ध मे ही परलोकवासी हुआ। इस बात से सिख बहुत खुश हुए और उन्होंने इनको शहीद के नाम से पुकारा। सदासिंह का उत्तराधिकारी महन्त कर्मसिंह अपने दोनों पूर्वजों से बढ़कर शूरवीर साबित हुआ। उसने कुछ गावों पर अपना दखल बिठा लिया। कुछ गाव उसे सिख सरदारों ने भी दिये। पटियाला के महाराज ने भी सिरसा तहसील मे सहादरा नाम का गाँव शहीद कर्मसिंह को दिया। इसने सरदार गुरबख्शसिंह और हरीसिंह आदि के साथ मिल कर अनेकों युद्धों मे अपनी बहादुरी का परिचय दिया। सवत १८२५ मे इसने खालसा जत्थों के साथ जलालाबाद लुहाणी के हाकिम पर चढ़ाई की क्योंकि उसमान हाकिम ने एक ब्राह्मण की स्त्री को जबरन घर मे डाल दिया था। कहा जाता है परगना रनखंडी और उसके इर्द-गिर्द का लगभग एक लाख सालाना की आमदनी का इसके अधिकार मे रहा था। संवत-१८५७ में इसका देहान्त हो गया।

इसके बाद शाहसिंह कर्मसिंह का लड़का गुलाबसिंह गद्दी पर बैठा। इसे मुरव्वतवाला और हौसलेमन्द आदमी कहा जाता है किन्तु सहारनपुर के जिले का सारा इलाका इसके ही जमाने मे हाथ से निकल गया था। करनाल तक अंग्रेजो की हकूमत आई देखकर इसने सम्वत् १८६२ ई० मे उनका आश्रय ग्रहण कर लिया।

सम्वत् १६०१ विक्रमी मे गुलाबसिह का देहात हो गया। इसका बेटा सरदार शिवकृपालसिंह उत्तराधिकारी हुआ। इसने सिख-अंग्रेज युद्ध और गदर में अंग्रेजों की पूरी सहायता की। जिसकी वजह से अंग्रेज इनसे खुश रहे और जागीर जब्त होने से बची रही। शिवकृपालसिंह जी के दूसरे भाई सरदार ठाकुरसिंह निःसन्तान ही मर गये। अत जागीर पर कोई झगड़ा नहीं हुआ। शिवकृपालसिंह के लिये तारीख पटियाला के लेखक ने लिखा है यह बहुत ही शराबी था।

सम्वत् १६२८ वि० में शिवकृपालसिंह का देहान्त होने पर उनके लडके जीवनसिंह के हाथ जागीर की बागडोर आई। सरदार जीवनसिंह जी का विवाह महाराज महेन्द्रसिंह जी पटियाला की लड़की के साथ हुआ। जिसमे लगभग २० लाख रु० का दहेज उन्हें मिला। दस हजार रुपया सालाना पटियाला से इनकी सरदारनी जी की पोशाकों के लिए आजीवन आता रहा। इनकी खुद की आमदनी जागीर से करीब चालीस हजार रुपया सालाना थी। इनका विशेष विवरण हम शहीदों की मिसल मे दे चुके हैं।

सरदार जीवनसिंह के दो पुत्र उत्पन्न हुये। रामसिंह और करतारसिंह। इनमे से सरदार रामसिंह जी पटियाला की सेना मे लेफ्टीनेन्ट कर्नल के पद पर सुशोभित हुए और अपने पिता के बाद जागीर के

भी मालिक हुये। आपके भाई सरदार करतारसिंह के जगजीतसिंह नामक पुत्र हैं जिनका कि जन्म सम्वत १६७८ वि० में हुआ है और आपके रनजीतसिंह और अजीतसिंह नाम दो सुपुत्र हैं जो क्रमश सम्वत् १६७१ और १६७२ में पैदा हुये हैं। सरदारजी स्वयं समझदार और जमाने की हवा के अनुकूल व्यक्ति थे।

यह जागीर भंगी मिसल का अवशेष है। सरदार हरीसिंहजी के बाद भंगी सरदारों के कई दल होगये थे। इस जागीर का आरम्भिक इतिहास तो वही है जो हमने भंगी मिसल के वर्णन में दे दिया है।

पंजवड जागीर

हरीसिंह के तीन पुत्र थे। झण्डासिंह, गंडासिह और नारदसिंह। पहले दोनों बेटे लडाइयों मे काम आये। मिसल की बागडोर नारदसिंह के लड़के देसासिंह के हाथ मे पहुंच गई। क्योंकि झण्डासिंह के कोई पुत्र था नहीं और गडासिंह का लडका अमरसिंह भी मर चुका था। देसासिंह के गुलावसिंह और कर्मसिंह दो पुत्र थे। जिनमे कर्मसिंह वहादुर होने के कारण मिसल का सरदार वना। इसकी वहादुरी के कारण मिसल के लोग इसे दूलाजी कहते थे। कर्मसिंह के एक लड़का जस्सासिंह और दो पौत्र फतहसिंह और जयमलसिंह थे। जिस समय कर्मसिंह मरा तो उसका पुत्र और पौत्र दोनों ही पास न थे अत मिसल का अधिपति कर्मसिंह का वडा भाई गुलावसिंह ही वन गया। गुलावसिंह के जमाने मे भी इलाके पर वड़ी आपत्ति आई। अधीनस्थ सभी छोटे २ इलाके स्वतन्त्र हो गये। जो इलाका हरीसिंह के आगे वीसियों लाख का था। वह अब एक लाख का ही रह गया। अमृतसर शहर, कोहली, मजीठा और नौशहरा वगैरा इलाके ही रह गये। गुलावसिंह वहुत ज्यादा शरावी थे। रामगढ़ियों की वात में आकर इसने सम्वत् १८५६ ई० में महाराजा रणजीतसिंह के विरुद्ध चढ़ाई भी की। जहाँ भसीन के क्षेत्र में शराव के ही नशे में मर गया।

इसके मरने के समय इसके लडके गुरुदत्त की उम्र केवल दस साल की थी, कोहली भी हाथ से निकल गया। इधर मौका पाकर महाराजा रणजीतसिंहजी ने अमृतसर पर चढ़ाई करदी क्योंकि यही इनकी राजधानी था। गुरुदत्तसिंह की माँ सुखां लड़ी तो वहादुरी से किन्तु आखिर स्त्री ही तो थी किला छोडकर रामगढ़ को मय अपने पुत्र गुरुदत्तसिंह के चली गयी। इस प्रकार सम्वत् १८६० में इनके पास कोई रियासत नहीं रही। माई सुखा रामगढ़ के सरदार जोधसिंह के पास रहती रहीं और वहीं बैठकर अपने लड़के की शादी व्यवहार किये। जब गुरुदत्तसिंह सयाना हो गया तो इधर-उधर के लोगों के कहने से साहोवाल की जागीर महाराजा रणजीतसिंहजी ने इसे दे दी किन्तु गुरुदत्तसिंह से उसका भी प्रवन्ध नहीं हुआ। आखिर उसकी एवज में नकद सहायता लेना स्वीकार करके गुरुदत्तसिंह अपनी सुसराल में जा वसा। जहाँ सम्वत् १८८४ वि० में उसका देहात हो गया।

गुरुदत्तसिंह के तीन लड़के थे। मूलसिंह, गंडासिंह और अजीतसिंह (नेत्र हीन)। गंडासिंह निः-संतान ही मर गया। मूलसिंह और अजीतसिंह अपने पुराने गाँव पंजवड़ में आ गये जहाँ कि इनकी पुरानी मालिकी थी। मूलसिंह के सम्वत् १८६६ में वसावासिंह नाम का लड़का हुआ। अजीतसिंह के दो लड़के हुये ठाकुरसिंह और हुकमसिंह।

ठाकुरसिंह और हुक्मसिंह दोनों ने ही अंग्रेज सरकार की मदद की। सम्वत् १६१४ के गदर में ये कमिश्नर की आज्ञा के अनुसार वागियों को दवाने के लिये मोर्चों पर हाजिर रहे। इसके वाद भी जहाँ पर सरकार को जरूरत हुई। इन्होंने अपने को हाजिर किया। इससे सरकार ने इन दोनों भाइयों को सरदार वहादुर के खिताव और इनामात वख्शे। इनकी जागीर में दो हजार वीघे से ऊपर जमीन पूर्वजों की

सचय की हुई मे से थी। अपनी योग्यता से इन्होंने अपनी इज्जत और संपत्ति को बढ़ाया ही। सरदार ठाकुरसिंह के सम्वत् १९३० मे हरनामसिंह नाम के सुपुत्र पैदा हुये जो कि अपने पिता के उत्तराधिकारी हुये। हरनामसिंह जी के भी दो पुत्र है। औतारसिंह और कृपालसिंह जो कि क्रमश सम्वत् १९६९ और १९७० विक्रमी मे पैदा हुए है।

सरदार हुकमसिंह के पुत्र सरदार हरदत्तसिंह ने जो कि सम्वत् १९४२ मे पैदा हुए थे। अच्छी उन्नति की। सरकार ने उन्हे आनरेरी मजिस्ट्रेट भी बनाया।

सरदार हुकमसिंह जी के तीन पुत्र है। (१) सरदार गुरुबख्शसिंह जो सम्वत् १९५९ मे पैदा हुये हैं (२) सरदार शिवदेवसिंह का जन्म सम्वत् १९६१ वि०मे हुआ है और (३) सरदार गुरुदयालसिंह सम्वत् १९७३ में जन्मे है।

कर्मसिंह दूला का लड़का जस्सासिंह चान्योट मे था। मिसल का अधिपति गुलाबसिंह के बन जाने के कारण वह चान्योटके इलाके पर स्वतंत्र प्रभुत्व जमा बैठा और उस समय तक अधिकारी रहा जबतक कि महाराजा रणजीतसिंह जी ने उस पर अपना कब्जा न कर लिया। जस्सासिंह के दो पुत्र थे। फतहसिंह और जयमलसिंह। महाराजा रणजीतसिंह जी ने इनके गुजारे को थोड़ी सी जमीन छोड़ दी थी। अन्त मे इनके युद्ध मे मारे जाने के कारण इनका इतिवृत भी समाप्त होगया।

इस भंगी मिसल के संस्थापक सरदार हरीसिंह जी के साथियों मे नत्थासिंह नाम का भी एक बहादुर जत्थेदार था। उसके ज्ञानसिंह, गूजरसिंह, निहालसिंह और आलासिंह नाम के चार पुत्र हुये। जिनमें गूजरसिंह बड़ा प्रतापी हुआ है। इसके साथ महाराजा रणजीतसिंह के पिता सरदार महासिंह ने अपनी बहिन राजकौर का विवाह करने में अपने को सौभाग्यशाली समझा था और फिर गूजरसिंह की ताकत से महासिंह ने लाभ भी उठाया था। गूजरसिंह के पास सारा गुजरात और तिहाई लाहौर का राज्य था।

गूजरसिंह ने अपने समय में बहुत सारा इलाका बढाया। उसके राज्य की आमदनी तीस लाख सालाना तक पहुँच गई थी। महासिंह की लड़ाइयों में जब भी जरूरत पड़ी। गूजरसिंह ने मदद दी। सन् १७७८ ई० मे गूजरसिंह का देहान्त हो गया। अपने पीछे उसने सुखासिंह, साहबसिंह और फतहसिंह नाम के तीन लड़के छोड़े। इनमें साहबसिंह बडा ही योग्य और बहादुर आदमी था इसलिये वही अपने बाप के राज्य का अधिकारी हुआ। हालाकि गुजरात पर उसने अपने पिता की जिन्दगी में ही कब्जा कर लिया था।

महाराजा रणजीतसिंह के साथ सरदार साहबसिंह को कई बार भिड़ना पड़ा। लाहौर फतह के बाद दूसरे ही वर्ष जब महाराजा रणजीतसिंह जी ने गुजरात पर चढ़ाई की तो साहबसिंह ने एक अच्छी रकम नजराने मे देकर उन्हे टरका दिया। अकालगढ़ के अधिपति दलसिंह से साहबसिंह की दोस्ती थी।

महाराजा रणजीतसिंह गुजरात से हटकर लाहौर पहुँचे और उनके पास दलसिंह की शिकायते पहुँची। अत उन्होंने दलसिंह को धोखे से लाहौर बुला कर कैद कर लिया और फिर आप फौज लेकर अकालगढ़ पर कब्जा करने के लिये चल पड़े किन्तु अकालगढ़ उन्हे सहज ही नहीं मिला। दलसिंह की सरदारनी धर्मकौर ने किले के फाटक बन्द करा के बुर्जों पर तोप चढ़ा दीं और बड़ी हिम्मत के साथ लड़ने लगीं। उधर साहबसिंह के पास मदद के लिये खबर भेजी। इस बात का पता लगते ही महाराजा रणजीतसिंह ने सरदार साहबसिंह पर ही चढ़ाई कर दी। अकालगढ़ का घेरा उठा लिया। साहबसिंह ने तीन दिन तक तो किले के बाहर बहादुरी के साथ सामना किया फिर किले मे बैठकर कई दिन लड़ा। अंत मे

बेदी साहबसिंह के बीच में पड़ने से समझौता हो गया और साहबसिंह ने अपने को मांडलिक स्वीकार कर लिया।

महाराजा रणजीतसिंह को गुजरात लेना था। वे कोई न कोई बहाना लेकर गुजरात पर चढ़ दौड़ते थे। सन् १८१० में तो इन्होंने आखिर गुजरात को ले ही लिया। साहबसिंह ने भी लड़ने और बहादुरी दिखाने में कोई कसर नहीं रक्खी किन्तु इस समय रणजीतसिंह जी की जितनी ताकत बढ़ गई थी। उसमें साहबसिंह कहाँ तक मुकाबिला करता। कहा जाता है गुजरात के किले में चालीस लाख नक़द का खजाना साहबसिंह का था। उसे महाराज ने अपने काबू में कर लिया। अंत में रिश्तेदारी का कुछ खयाल करके उसके गुजारे के लिये भगला का इलाका बाकी रहने दिये और सारे राज्य को जब्त कर लिया। इसके एक साल बाद ही साहबसिंह का रंजगाम में ही देहान्त हो गया। एक लड़का था गुलाबसिंह वह भी सन १८३२ ई० में इस संसार से कूच कर गया।

साहबसिंह का एक भाई फतहसिंह महाराजा रणजीतसिंह की फौजों में सेना-नायक होगया। सन् १८३२ ई० में उसका भी देहान्त हो गया। इसके बाद उसका लड़का जयमलसिंह पंजवाड़ में ही आ गया। जहाँ कि उनकी जन्मभूमि थी। वहीं १८७१ ई० में उनका देहान्त हो गया। जयमलसिंह के लड़के जवाहरसिंह के चार लड़के हुये। मिहासिंह, हीरासिंह, बुद्धसिंह और जसवंतसिंह। इनमें मिहांसिंह के दो लड़के तेजासिंह और जन्मेजयसिंह हुये। इनमें तेजासिंह के पुत्र बेंतसिंह मौजूद हैं। हीरासिंह के बेटे मोतासिंह के चार पुत्रों में से कृपालसिंह और अतरसिंह दो मौजूद हैं। बुद्धासिंह के पुत्र नायासिंह का सन १९०१ ई में देहान्त हो गया। जसवन्तसिंह के पुत्र औतारसिंह के तीन पुत्र गुरुचरनसिंह, जावन्दसिंह और अजीतसिंह मौजूद हैं।

प्रतापी सरदार गूजरसिंह के एक भाई ज्ञानसिंह के परिवार का वर्णन अभी शेष है। लाहौर में जो तीसरा हिस्सा सरदार गूजरसिंह का था। उसके प्रबन्धक ज्ञानसिंह के पुत्र चेतसिंह ही थे। लाहौर पर कब्जा करने के लिये जब महाराजा रणजीतसिंह ने चढ़ाई की तो दो साझीदार तो अपनी जान बचाकर भाग गये। किन्तु चेतसिंह कई दिन तक लड़ता रहा। आखिरकार उसे किला खाली करना पड़ा। क्योंकि सेना के लोग भी फूटकर रणजीतसिंह जी से मिल गये। महाराज ने चेतसिंह के गुजारे के लिये केवल दो गाँव दिये। आगे चेतसिंह के लड़के रामसिंह को फौज में स्थान दे दिया और उसकी मदद से खुश होकर उसे इनाम भी दिये। सन् १८८८ में सरदार रामसिंह का देहान्त हो गया। उसके चार लड़के थे। प्रतापसिंह, महताबसिंह वीरसिंह और चन्दासिंह जिनका कि रामसिंह खुद से भी पहले देहान्त होगया था। इन चारों में महताबसिंह के दो लड़के बूटासिंह और मूलासिंह हुये। बूटासिंह के लड़के का नाम उजागरसिंह है।

बस पंजवाड़ भंगी घराने का यही संक्षिप्त इतिहास है।

सिखों की मिसलों में रामगढ़ियों की मिसल भी बड़ी प्रतापशाली थी।[१] उसका वर्णन हम मिसलों वाले अध्याय में कर चुके हैं। अतः यहाँ उतना ही करेंगे। जितने से कि जागीरी इतिहास से सम्बन्ध है। सरदार जस्सासिंह पाँच भाई थे। जिनमें जैसिंह जी के कोई पुत्र नहीं हुआ। मानसिंह की पीढ़ियों का सिलसिला उसके बेटे वरियामसिंह पर टूट गया। खुशालसिंह के तीन लड़के महताबसिंह, शिवसिंह और गुलाबसिंह हुये। इनका भी सिलसिला

रामगढ़ियों की जागीरें

१. यह मिसल तिरखान अर्थात् बढ़ई लोगों की है।

यहाँ से आगे नहीं मिलता। आगे सरदार जस्सासिंह और तारासिंह की पीढ़ियों का सिलसिला बाकायदा चला है। इन्हीं के वंशजों के पास जागीरे हैं।

सरदार जस्सासिंह रामगढ़िया के दो पुत्र हुये। जोधसिंह और वीरसिंह। जोधसिंह बड़ा बहादुर आदमी था। किन्तु सन् १८१६ ई० मे वह नि सन्तान मर गया। इसके समय मे ही इसके चचेरे भाई दीवानसिंह ने जोकि तारासिंह का लड़का था। इससे जागीर का बटवारा कर लिया।

जोधसिंह के बाद उसका भाई वीरसिंह उत्तराधिकारी हुआ। जो अपने भाई से केवल दस वर्ष बाद ही सन् १८२६ ई० मे इस ससार से चल बसा।

वीरसिंह के दो लड़के थे। जयमलसिंह और मोहरसिंह[1]। जोधसिंह के मर जानेके कारण महाराजा रणजीतसिंह जी ने वीरसिंह, महताबसिंह और दीवानसिंह के लिये ३५ हजार की जागीर छोड़कर सारा इलाका जब्त कर लिया। इसमे से वीरसिंह के पुत्रों के हिस्से मे लगभग दस हजार का इलाका आना था। मोहरसिंह के लड़के का नाम शोभासिंह था। सन् १८४५ ई०में शोभासिंह और सन् १८४८ मे जयमलसिंह का देहान्त होगया। जयमलसिंह ने तीन और शोभासिंह ने एक लड़का छोड़ा।

जयमलसिंह के तीन लड़कों के नाम—उत्तमसिंह, फतहसिंह और ज्वालासिंह थे। इनमे फतहसिंह नि सन्तान मरे और ज्वालासिंह के मगहरसिंह हुये। उत्तमसिंह जी के सुपुत्र धातासिंह थे। जिनके पास ५०००) सालाना की जागीर होने का उल्लेख 'राज खालसा' के लेखक ज्ञानी ज्ञानसिंह जी ने किया है। धातासिंह के गाजूसिंह और छाजूसिंह दो पुत्र हुये।

शोभासिंह जी के पुत्र अतरसिंह या अच्छरसिंह जी के पास श्री हरिगोविन्दपुर मे ६००) सालाना की जागीर थी। उनका सन् १८८० ई० मे देहान्त हो गया। उनके गगासिंह, तिरखूसिंह, तिरभंगासिंह और कादिरसिंह नाम के चार लड़के हुये। जिनमे तिरखूसिंह जी के नाथासिंह नाम को एक ही पुत्र हुआ है। तिरभगासिंह जिनका कि सन् १६०० मे देहान्त भी होगया है। उनके तीन लड़के सन् १८५८ मे धूलासिंह, सन् १८६१ मे ठाकुरसिंह और सन् १८६५ मे चत्तरसिंह पैदा हुये। कादिरसिंह के सन १८६४ मे विशाखासिंह नाम के पुत्र हुये। गगासिंह के दीवानसिंह का जन्म १८४५ ई० मे हुआ। हीरासिंह १८८२ मे मर गये। सुन्दरसिंह (जन्म १८६६) और अर्जुनसिंह (जन्म १८६६ ई०) नाम के चार पुत्र हुये। सुन्दरसिंह जी के लड़के जगजीतसिंह हैं। जिनका कि सन् १८८७ मे जन्म हुआ था।

सरदार जस्सासिंह जी के भाई तारासिंह जी के पुत्र सरदार दीवानसिंह बडी जिद के और निडर आदमी थे। जब महाराजा रणजीतसिह जी ने उनका सारा इलाका जब्त करके तीनों भाईयों को केवल पैंतीस हजार का इलाका दिया तो आपने फौरन लेने से इन्कार कर दिया और पटियाला चले गये। अंत में महाराजा रणजीतसिंह जी ने इन्हे देसासिंह मजीठिया की मारफत बुलवा लिया और बारमूला की लड़ाई मे भेज दिया। जहाँ वह मारे गये।

दीवानसिंहजी के पुत्र सरदार मगलसिंह महाराजा रणजीतसिंह जी की फौज मे सवारों के अफसर मुकर्रिर हुये जहाँ उन्होंने बड़ी बहादुरी दिखाई। कोट कालूवाला, बतरा, कडोला की जागीर प्राप्त की।

सिख राज्य की डांवांडोल स्थिति को देखकर यह अंग्रेजों के खैरख्वाह होगये। जोधसिंह के

१. सर लेपिलग्रिफिन ने "चीफ्स एण्ड फैमली आफ नोट" में मोहरसिंह को अंकित नहीं किया। शोभासिंह को लिख दिया है। जिसको राज खालसा का लेखक मोहरसिंह का लडका मानता है।

वाद यह अमृतसर गुरुद्वारे के मैनेजर भी बने। अंग्रेजी सरकार ने इन्हे आनरेरी मजिस्ट्रेट और सितारे-हिन्द का खिताव भी दिया था। सन् १८७६ मे इनका देहान्त होगया।

इन्होंने अपने पीछे तीन पुत्र छोडे। (१) सरदार गुरुदत्तसिंह (२) सुचेतसिंह (३) शेरसिंह। गुरुदत्तसिंह ने अवध की लडाई मे अंग्रेज सेना मे भरती होकर सरकार की मदद की। अन्तिम दिनों में १२००) सालाना की पेन्शन लेकर आप अमृतसर मे रहने लगे। आपके दोनों छोटे भाइयों का जोकि सरकारी ओहदों पर अच्छा नाम पा चुके थे। आपसे पहले ही देहान्त हो गया था। आपका देहान्त सन १६०० मे होगया। गुरुदत्तसिंहके एक पुत्र सरदारसिंह थे। वे आपसे वहुत पहले १८६२ में फौत हो चुके थे।

सुचेतसिंह जी के पुत्र विशनसिंह जिनका कि जन्म १८६८ मे हुआ था। काफी योग्य निकले। पुलिस में उन्होंने डिपुटीगिरी की और फिर आनरेरी मजिस्ट्रेटी। उनकी सेवाओं के वदले मे सरकार ने उन्हे 'सरदार' का खिताव दिया। आपके चार पुत्र हुये हैं। (१) नारायनसिंह (२) त्रिलोचनसिंह (३) रिपुदमनसिंह और (४) करतारसिंह। जिनमे नारायणसिंह जी का सन् १६२० मे देहान्त हो चुका है। शेप तीनों की उम्र इस सन् १६५३ मे क्रमश ५२, ४६ और ३६ साल की है।

शेरसिंह जी के सन्तसिंह और सुन्दरसिंह नाम के दो पुत्र हुये। जिनमें से सन्तसिंह जी का सन् १८६४ में देहान्त होगया और सुन्दरसिंह जी का सन् १६२६ ई० में। सुन्दरसिंह जी ने अपने समय मे तरक्की की। फर्स्टक्लास के आनरेरी मजिस्ट्रेट भी रहे। आपके दो लड़के नरेन्द्रसिंह और महेन्द्रसिंह हैं जोकि क्रमश सन् १६१४, १५ में पैदा हुये है।

इस खान्दान के पास तीन हजार सालाना आमदनी की जागीर सरकार की ओर से है। अमृतसर में इनके मकानात और दीगर सम्पत्ति है। प्राय वहीं पर रहते भी हैं।

जालधर जिले में वल्लोकी एक गाँव है। डल्लेवाली मिसल का नेतृत्व जव तारासिंह के हाथ में आगया, तो उसने मिसल डल्लेवाली को वड़ी तरक्की दी। उसने वद्वोवाल, वर्मकोट और घेगराना को जीत कर राहूँ को अपना सदर मुकाम वनाया। तारासिंह की वहादुरियों का पूरा हाल डल्लेवाली मिसल के इतिहास मे दिया जा चुका है।

वल्लोकी जागीर

तारासिंह के तीन लड़के हुये थे। गूजरसिंह, दसौंधासिंह और झडासिंह, तारासिह के सन १८०७ ई० में मर जाने से पहले ही इन तीनों ने अपने २ लिये कुछ इलाके वाँट लिये। घुगराना और धर्मकोट पर गूजरसिंह ने कब्जा कर लिया। दक्षिणी वद्वोवाल दसौंधासिंह के अधिकार में रहा। निकोदर, माझपुर, और वल्लोकी झडासिंह के अधिकार में आये। लगभग पॉच लाख का इलाका महाराजा रणजीतसिंह ने जव्त कर लिया। यह वही इलाका था जो कभी तारासिंह के ही कब्जे में था। यह घटना सन् १८०७ ई० की है। दसौंधासिंह ने किला दक्षिणी को भी छीन लिया था। सन् १८०८ में महाराजा रणजीतसिंह जी ने दसौंधासिंह और गूजरसिंह से घुघराना और वद्वोवाल के इलाके भी छीन कर गुरदित्ता डल्लेवाला को दे दिये। यहाॅ यह न भूल जाना चाहिये कि तारासिंह और साहवसिंह के खान्दान एक ही नहीं थे। हा, मिसल एक ही थी। जो साहवसिंह के वाद तारासिंह के हाथ चली गई थी। दसौंधासिंहने वहुत विरोध किया। पर कुछ वश न चलने पर वह इसी रंज में अपने ससुराल में नि सतान मर गया। गूजरसिंह और झडासिंह को वल्लोकी गाॅवों में आधा मिल गया।

गूजरसिंह के जगतसिंह नाम का लडका हुआ। जो अपनी निर्मित जागीर में सतोप से गुजर करता रहा। किन्तु उसके भाग्य में यह वदा था कि उनके पुत्र लहनासिंह और खजानसिंह दोनों में से एक

भी नहीं बचा। इस प्रकार गूजरसिंह का भाग भी उनके भाई झंडासिह के लड़कों के पास चला गया। सरदार झंडासिंह के भी दो पुत्र थे। सरदार नाहरसिंह और सरदार बख्तावरसिंह। सरदारनी रतनकौर जोकि इनकी दादी होती थी और जिसको महाराजा रणजीतसिंह जी की ओर से १८००) माहवार पेन्शन मिलती थी। जब मरगई तो २००) मासिक पेन्शन सरदार नाहरसिंह को मिलती रही। इन दोनों भाइयों का क्रमश. सन १८७२ और सन् १८७३ ई० मे स्वर्गवास हो गया। नाहरसिंह जी के पुत्र का नाम सरदार अमरसिंह था। उनका भी सन् १६०४ ई० मे देहान्त हो चुका है। यही क्यों सरदार अमरसिंह के पुत्र ठाकुरसिंह भी सन् १६०७ ई० मे स्वर्गवासी हो गये। जागीर का प्रवन्ध उनकी सरदारनी की देखरेख में है।

ऊना

होशियारपुर जिले में बाबा कलाधारी जी के वशजों की यह जागीर है। बाबा साहब के पॉच पुत्रों में से जयसिंह जी के सुपुत्र साहबसिंह जी बड़े योग्य हुये है। इन्होंने महाराजा रणजीतसिंह और भंगी मिसल के दरम्यान अपने प्रभाव से कई बार समझौता करवाया था। साहबसिंह जी वेदी लड़ने-भिड़ने मे भी काफी चतुर थे। दसौधासिंह से किला दक्खिनी को आपने संवत् १८६४ वि० यानी सन् १८०७ ई० मे छिना कर अपने कब्जे मे कर लिया था। सिख-धर्म का प्रचार भी यह बड़े प्रेम से करते थे। बहुत सारा इलाका अधिकार मे करके इन्होंने ऊना को अपनी राजधानी बनाया। आपका लंगर आठों पहर चलता था। सवत् १८६१ मे आपका देहान्त हो गया। बाबा साहबसिंह जी के बिशनसिंह और विक्रमसिंह जी दोनों पुत्र बड़े प्रसिद्ध हुये हैं। सरदार तारासिंह जी की सिंहिनी के पास महाराजा रणजीत-सिंह जी के दिये हुये जो गॉव थे वह विक्रमसिंह जी के समय मे उनके ही पास आ गये। इस तरह से वेदी बाबाओं के पास काफी इलाका बढ़ गया था। पर जब कि महाराजा रणजीतसिंह जी का साम्राज्य समाप्त हो गया। अंग्रेजों ने संवत् १६०५ मे सारी जागीर जब्त करली। कुछ ऊना ही मे इनके खर्च के लिये रहने दी। सवत् १६२० वि० मे बाबा विक्रमसिंह जी का स्वर्गवास हो गया।

आप के दो सुपुत्र थे। एक सूरजसिंह जिनका कि आप से केवल एक वर्ष बाद ही देहावसान हो गया। दूसरे सुजानसिह। सरकार की ओर से बाबा सुजानसिंह जी को सरदार साहब का खिताब भी मिला था। सवत् १६७७ में सरदार साहब वेदी सुजानसिंह जी का भी परलोकवास हो गया। रामकिशनसिंह, मनमोहनसिंह और शिवदेवसिंह नाम के आप के तीन सुपुत्र हुये थे। जिन मे शिवदेवसिंह जी का आप के सामने ही देहान्त हो गया। बाकी दोनों पुत्रों ने ऊँची शिक्षा प्राप्त की और रामकिशन-सिंह जी आनरेरी मजिस्ट्रेट तथा मनमोहनसिंह सब-रजिस्ट्रार के पद पर नियुक्त होने का लाभ उठा चुके हैं।

सावलसिंह और देवेन्द्रसिंह नाम के दो पुत्र वेदी रामकिशनसिंह जी साहब के हुये हैं, जिनमे सॉवलसिंह जी का संवत् १६७५ में देहान्त हो चुका है। देवेन्द्रसिंह जी के—जिनका कि सवत् १६६१ में हुआ है—मदनसिंह नाम का एक पुत्र सवत् १६७६ हो चुका है।

ये सब लोग जो कि वेदी विक्रमसिंह जी के वशज हैं, ऊना में रहते है। ऊने मे जो श्री गुरु हरिगोविन्द साहब का पवित्र स्थान दमदमा साहब है। उसका प्रबन्ध इन वेदी साहबान के ही हाथ मे है।

बाबा बिशनसिंह जी वेदी के वशज कल्लर जिला रावलपिंडी मे रहते हैं। बाबा बिशनसिंह के पुत्र अतरसिंह जी हुये और उनके पुत्र खेमसिंह जी हुये जिन्हे कि सरकार की ओर से 'सर' का खिताब

भी दिया गया। और उनके पुत्र वावा गुरुवख्शसिंह जी को 'सर' के सिवा राजा साहव का भी खिताव मिला। सवत् १८७४ में आप के टिक्का सुरेन्द्रसिह जी का जन्म हुआ है।

सिख लोगों मे वेदी खान्दान के प्रति अत्यधिक श्रद्धा है।

अरनौली

यह जागीर भी भाई भगतू के वंशजों की वसाई हुई है। कैथल के वर्णन मे भाई भगतू का जिक्र आ चुका है। सिद्धू वश मे यह एक प्रसिद्ध धार्मिक पुरुष हुये हैं। भाई भगतू के एक पुत्र चौधरी गौरा थे और गौरा के चौधरी दयालसिंह उत्पन्न हुये। चौधरी दयालसिंह के सरदार गुरुवख्शसिंह जी उत्पन्न हुये। जिनका १७५० ईस्वी मे देहान्त हो गया। सरदार गुरुवख्शसिंह जी के छ पुत्र हुये। बुद्धासिंह, दानसिंह गुरुदाससिंह, देसूसिंह तख्तसिंह और सुखासिंह।

अरनोली का खान्दान भाई सुखासिंह जी से चलता है। जिनके गुरुदत्तसिंह और विसावासिंह नामक दो पुत्र हुये। इनमे से गुरुदत्तसिंह लावल्द मर गये थे।

विसावासिंह शाति से अपने इलाके मे दिन विताते रहे, उनके पॉच पुत्र हुये। वहादुरसिंह, पजाव-सिंह, गुलावसिंह, काहनसिंह और सगतसिंह। इनमे से तीन नि संतान मर गये। सन्तान गुलावसिंह और सगतसिंह के ही हुई। विसाखासिंह का सन् १८२३ ई० मे देहान्त हो गया।

धनासिंह के लड़के कर्मसिंह के मरने पर उनकी स्त्री भागभरी उसके हिस्से की मालिक वनी। उसके निस्सतान मरने पर उसके इलाके ककराले पर कैथल के रईस लालसिंह का अधिकार हो गया। किन्तु लालसिंह के वाद गुलावसिंह और सगतसिंह दोनों उस पर अपना-अपना अधिकार वता कर अंग्रेज सरकार की अदालतों मे मुकदमा लडे। इस मुकदमे का असर यह हुआ कि इनकी स्थिति कैथल जैसी अर्थात् राज्य जैसी न रह कर जागीरदारों जैसी हो गई। फैसले मे इन्हें सव इलाका वाट दिया गया।

सतलज की लड़ाई के वाद अंग्रेजों ने कैथलिया राज्य और इनके वहुत हिस्सों को अपने राज्य में मिला लिया। सन् १८४५ ई० गुलावसिंह और १८४६ में सगतसिंह का देहान्त हो गया। गुलावसिंह ने जसमीरसिंह और नौनिहालसिंह नाम के दो लड़के छोडे थे। जिनमें से नौनिहालसिंह का सन् १८६१ मे निसतान ही देहान्त हो गया। अत अपने वाप का कुल इलाका भाई जसमीरसिंह के ही हाथ आया। सन् १८६७ ई० में भाई जसमीरसिंह का भी देहान्त हो गया। उन्होंने भी दो ही लड़के अपने पीछे छोडे। जिनमें से रनजीतसिंह का सन् १६१२ मे ही देहान्त हो गया। वड़े लड़के शमशेरसिंह अपने पीछे केवल चार वर्ष के वालक शुमशेरसिंह को छोड़ कर सन १६१८ मे चल वसे। इस यही शुमशेरसिंह अरनोली जागीर के मालिक हैं।

भाई सगतसिंह के लड़के अनोखासिंह हुये जिनका सन् १८६४ में देहान्त हो गया। उनसे १८ वर्ष वाद उनके लड़के जवरजगसिंह का भी सन् १६१८ मे देहान्त हो गया।

भाई जवरजगसिंह जी ने अपने पीछे फतहजगसिंह और शेरजगसिंह दो लडके छोडे। जिनके कि जन्म क्रमश सन् १६०६ और सन् १६१३ ई० में हुए है। जो कि अपने हिस्से के इलाके सिद्धू-वाल पर काविज हैं।

समय की गति विचित्र है। कैथल जो किसी समय एक राज्य कहलाता था और वह भी नाभा जीन्द और फरीदकोट की तरह एक शक्ति रखता था। एक वडी-सी जागीर भी न रहा। वस अरनोली और सिद्धूवाल उसके पुराने वैभव को याद कराने वाले अवशेष अवश्य मौजूद रहे।

भाई भगतू के पुण्यप्रताप और गुरुओं के आशीर्वाद का जो वृक्ष इतना फला फूला था। वह चाहे नहीं रहा किन्तु भाई भगतू सदैव अमर रहेगे। आज भी सिख उनका नाम याद करने मे गौरवान्वित होते हैं। और आज केवल इसीलिये कि अरनोली और सिद्धूवाल के रईस भाई भगतू के वंशज है। उन्हे 'भाई' जैसे प्यारे और गुरुओं के दिये हुये नाम से पुकारते है।

आनन्दपुर सिखों का महान तीर्थ है। इसका वर्णन तो आगे के पृष्ठों मे करेगे। यहॉ तो केवल जागीर सम्बन्धी ही उल्लेख करना है। लगभग १६०) सालाना आमदनी की जमीन चन्दपुर, बुरज, चीकुना, मेहदड़ी आदि मे आनन्दपुर जागीर से लगी हुई है। खालसा राज्य के समय की ६००) सालाना की जागीर सादू और मुखेड़ा गॉवो में है। आनन्दपुर की गद्दी सोढ़ियों के हाथ मे है।

आनन्दपुर

श्री गुरु हरिगोविन्द जी साहब के साहबजादे सूरजमल जी के वंशज इस गद्दी के मालिक हैं। सूरजमल जी के पुत्र दीपचन्द जी हुये और उनके श्यामसिंह जी। श्यामसिंह जहॉ धार्मिक पुरुष थे। बहादुर भी पूरे थे। यह ठीक है कि सूरजमल जी का गुरुआई पाने के लिये प्रयत्न करते समय रुख अच्छा नहीं रहा था। किन्तु उनके पोते श्यामसिंह जी ने श्री गुरु गोविन्दसिंह जी साहब से अमृत चखकर पिछली भेद-भित्ति को गिरा दिया था। अमृत चखाकर गुरु गोविन्दसिंह जी साहब ने श्यामसिंह जी को एक खडा दिया था। जो इस समय भी आनन्दपुर मे सुरक्षित है।

मिसलों के समय मे सोढ़ियों के पास कई बार इलाके बढ़ भी गये थे। किन्तु परिवर्तनों के साथ उनके इलाकों मे भी परिवर्तन होता रहा। इस गद्दी के अधिकारियों ने कभी इस ओर खास तौर से ध्यान भी नहीं दिया।

श्यामसिंह जी के सात पुत्र हुये। (१) इन्द्रसिंह (२) नाहरसिंह (३) उदैसिंह (४) खेमसिंह (५) प्रेमसिंह (६) धौरसिंह और (७)जवाहरसिंह। इनमें मुख्यतौर से तीन का वंश बढ़ा। इन्द्रसिंह और जवाहरसिंह के कोई संतान नहीं हुई। प्रेमसिंह के एक पुत्र शेरसिंह के बाद यह शृंखला टूट गई।

इस समय आनन्दपुर के जो सरदार समझे जाते हैं। वे नाहरसिंह जी साहब के वंशज हैं। नाहरसिंह जी का सन् १७६५ ई० मे स्वर्गारोहण हो गया। उनके दो पुत्र थे। सुरजनसिंह और जयसिंह। दोनों भाइयों का परिवार खूब फला फूला। सुरजनसिह जी का सन् १८१५ ई० में देहान्त हो गया। उनके तीन लड़के हुये। (१) तिलोकसिंह (२) दीदारसिंह (३) दीवानसिंह। तिलोकसिह और दीवानसिंह नि सतान ही क्रमश. सन् १८२४ और १८३६ मे चल बसे। दीवानसिंह के भी जिनका कि देहान्त सन् १८५० ई० मे होगया। तीन लडके हुये थे। जिनमे तीसरे लड़के गजेन्द्रसिंह की शृंखला उसके लड़के गुरुवचनसिंह पर सन् १६१२ ई० मे समाप्त होगई। दूसरे लड़के नरेन्द्रसिंह जी का परिवार खूब बढ़ा। उनके तो एक ही पुत्र मोतीसिंह हुये। किन्तु मोतीसिह जी के हरकिशनसिंह, प्रीतमसिंह और हरवंशसिंह नामके तीन लडके हुये। जिनमें से प्रीतमसिह के तीन लड़के हैं। (१) महेन्द्रसिह (२) त्रिलोचनसिंह और (३) जगबहादुरसिंह उनके नाम हैं। वे क्रमशः १६१६, १६१६ और १६२२ ई० मे पैदा हुए हैं।

दीवानसिंह जी के ज्येष्ठ पुत्र व्रजेन्द्रसिंह के दो लड़के हरनामसिंह और रामनारायनसिंह नाम के हुये। जिनमें से हरनारायनसिंह जी सन् १८८६ मे नि:संतान ही प्रस्थान कर गये। सोढ़ी रामनारायनसिंह जी के औतारसिंह, जगतारसिंह, और करतार हुये। इनमे से औतारसिंह जी का सन १६११ मे देहान्त हो चुका है। सोढी जगतारसिंह जी ही जोकि सन् १६०३ ई० मे पैदा हुये हैं। इस समय आनन्दपुर की गद्दी

के मालिक हैं। आपके जगजीतसिंह और हरजीतसिंह नाम के दो सुपुत्र क्रमश सन १६२२ और १६२४ ई० मे पैदा हो चुके है।

सोढी जगजीतसिंह जी साहब के सम्बन्ध में कहा जाता है। वे मिलनसार रहमदिल वड़े समझदार आदमी हैं। बच्चों की शिक्षा की ओर आपका ध्यान है और धार्मिक सत्संग और चर्चा में रुचि।

कलासबजवा और कलासवाला दोनों के पुरुषा और गोत एक ही हैं। चौधरी कलास जिनका कि गोत बजवा था। उनके दो पुत्र थे। एक आमीशाह और दूसरा पत्ती। कलासबजवा के सरदार पत्ती की संतान के हैं और कलासवाला के अमीशाह की सतान के। चौधरी कलास ने दो गॉव बसाये। कलासबजवा और कलासवाला। अमीशाह की सन्तान के पास कलासवाला ही रहा। भंगी सरदारों की चढ़ती के दिनों मे अमीशाह की छठी पीढ़ी मे पैदा होने वाले सरदार खुशहालसिंह ने भगियों के साथ मिलकर अपना जौहर दिखाना आरम्भ किया। कुछ गॉवों पर अधिकार भी किया। किन्तु इधर महाराजा रणजीतसिंह जी के प्रभाव के बढ़ने से कुछ अधिक न कर सका। सन् १८३३ ई० मे खुशहालसिंह का देहान्त हो गया। उनके बेटे सरदार गुलाबसिंह और दूला-सिंह में से दूलासिंह के ६ लड़के हुये। जिनका कि परिवार काफी फला फूला। इस समय इस जागीर के मालिक सरदार गुरुदयालसिंह जी हैं। जिनका कि जन्म सन् १६०० ई० में हुआ है।

कलासवाला

सिन्धानवालिये भी उसी वंश के है। जिनके कि महाराजा रणजीतसिंह जी थे। चौधरी बुद्धासिंह और नौधासिंह दो पुत्र थे। महाराजा रणजीतसिंह जी नौधासिंह के प्रपौत्र अर्थात् पोते महासिंह के पुत्र इस प्रकार चन्दासिंह रिश्ते में महाराजा रणजीतसिंह जी के दादा चड़तसिंह जी के चाचा होते थे और यदि हम इसी प्रकार रिश्ते का हिसाब लगावें तो इस खान्दान के प्रसिद्ध रईस आनरेबुल लेफ्टीनेन्ट सरदार रघुबीरसिह जी ओ० बी० ई० महाराजा रणजीतसिंह जी के नजदीकी प्रपौत्र साबित होते हैं।

सिंधान वाला

इस खान्दान का आरम्भिक वर्णन मिसल सुकरचकिया के इतिहास में लिख दिया गया है। अत उसे दुहाराना आवश्यक नहीं समझते।

चन्दासिंह और नौधासिंह दोनों ही भाई बड़े बहादुर और साहसी थे। इन्होंने संवत १७८१ में रसूल नगर पर कब्जा कर लिया और उसका नाम रामगढ़ रख दिया। किन्तु रामगढ़ मे बहुत दिन तक ठहर न सके। क्योंकि मजीठे के गिल चौधरी लाहौर के हाकिम के तरफदार थे। इसलिये चन्दासिंह और नौधसिंह को गुजरानवाले की तरफ चला जाना पड़ा, जहॉ उन्होंने सुकरचक को आबाद किया और जिसके नाम पर ही उनका जत्था भी सुकर चकिया नाम से मशहूर हुआ। सम्वत् १७६३ में मजीठा के पास ही पठानों से मुकाबिला करते हुये सरदार नौधासिंह मय अपने पिता बुद्धासिंह के मारे गये। सरदार चन्दासिंह ने अपने भतीजे चड़तसिंह की उसी प्रकार देख भाल रक्खी और उसे तरक्की दी। जिस प्रकार कि कोई भी पिता अपने पुत्र की देखभाल कर सकता है। अथवा तरक्की दे सकता है। चड़तसिंह का जन्म सवत् १७७० मे हुआ। वह भी इस समय सयाना था। अपने चाचा की देखभाल में थोड़े ही दिनों मे वह एक योग्य योद्धा होगया। चन्दासिंह और दीदारसिंह नाम के दो पुत्र हुये।

चड़तसिंह ने थोड़े ही दिनों मे गुजरानवाला स्यालकोट और लाहौर तक अपना अधिकार कर लिया। तब दीदारसिंह और उनके पुत्र भी अमृतसर के आसपास के इलाके के रईस हो गये। किन्तु यह इलाका उनके पास उनके खर्चों के लिये था। कायदे से कोई बटवारा नहीं हुआ था। संवत १८४१ में

दीदारसिंह का देहान्त हो गया।

अपने पीछे दीदारसिंह ने चार पुत्र छोड़े थे। अमीरसिंह, रतनसिंह, गुरमुखसिंह और गुरुबख्श-सिंह। इनमे से गुरुबख्शसिंह सरदार महाराजसिंह के दल मे शत्रुओं से लड़ते हुये निःसंतान मारा गया। शेष तीन की औलाद मे आज सैंकड़ों आदमी इस खान्दान में मौजूद हैं। ये सभी महासिंह और रणजीतसिंह जी के साथ बराबर युद्धों मे शामिल रहे।

हमीरसिंह जी का सम्वत् १८८४ मे स्वर्गवास हो गया! उन्होंने अपने पीछे पॉच पुत्र छोड़े। लहनासिंह, बिसावासिंह, बुद्धासिंह, अतरसिंह और जयमलसिंह। इनमे से बुद्धासिंहजी का देहान्त भी इसी वर्ष हो गया जिस वर्ष कि उनके पिता का।

बुद्धासिंह जी के पुत्र शमशेरसिंह जी ने अपनी आंखों से सिख साम्राज्य का उत्थान और पतन दोनो देखें और उसमे वे हरेक खुराफात से दूर रहते हुये भी अवलोकन करते रहे। फिर भी उन्होंने उस साम्राज्य को बनाने मे जैसे कोई विशेष भाग नहीं लिया। उसी प्रकार बिगाड़ने में भी नहीं। क्योंकि सरदार शमशेरसिंह जी के कोई सन्तान नहीं थी। अत सरदार लहनासिंहजी के खान्दान मे से सरदार बख्शीसिंह जी गोद लिये। संवत् १९२८ वि० मे सरदार शमशेरसिंह जी का देहान्त हो गया।

बख्शीसिंह का भी अपने पिता के ३६ वर्ष बाद सम्वत् १९६४ वि० मे देहान्त हो गया। सरदार रघुवीरसिंह जी साहब जिनका कि जन्म १९४६ मे हुआ। उनके उत्तराधिकारी है। जर्मन युद्ध के समय उन्होंने सरकार को जन-धन से खूब मदद दी। उन्हे आनरेरी लेफ्टिनेन्ट और ओ० वी० ई० के खिताब सरकार ने सेवाओं से खुश होकर दिये हैं। फर्स्टक्लास आनरेरी मजिस्ट्रेट भी रहे है।

सूबे की कौंसिल के कई बार मेम्बर रह चुके हैं। उनके पास जागीर और जमीदारी से कई हजार रुपये साल की आमदनी है। उनके पास यू० पी० में एक अच्छा उपजाऊ भू-भाग है। धार्मिक और सामाजिक कामों मे खूब दिल खोलकर भाग लेते है और सहायता करते हैं। सन् १९३४ ई० मे आप अखिल भारतीय जाट महासभा के अलीगढ़ महोत्सव के प्रेजीडेण्ट भी रह चुके हैं। सीकर के जाट किसान आन्दोलन के साथ आपने गहरी दिलचस्पी जाहिर की थी। उनकी नई दिल्ली मे भी एक आलीशान कोठी है।

सिन्धानवालियों के इतिहास का एक ऐसा भी पहलू है। जिसे कौतूहलवर्द्धक, अनुत्तरदायित्वपन से किया हुआ और विवेकहीनता के नाम से पुकार सकते हैं। हालांकि उन्हे वह सब कुछ परिस्थिति से मजबूर होकर ही करना पड़ा था किन्तु जो भी कुछ किया गया वह गम्भीरता और सहृदयता और विवेक के साथ नहीं हुआ, यह कहना ही पड़ेगा।

महाराजा रणजीतसिंह जी के बाद जो अधेरगिर्दी लाहौर मे हुई वैसी तो शायद मुगल साम्राज्य के अंतिम दिनों मे नहीं हुई थी। महाराजा रणजीतसिंह जी अपनी उदारता और सीमा के बाहर की निष्पक्षता से कुछ ऐसे व्यक्तियों को ऊँचा चढ़ा गये थे। जो सार्वजनिक और राजवश के हित की अपेक्षा अपने निज के हित और स्वार्थों के लिए सर्वस्व नष्ट करने और उचित अनुचित का विचार बिना किये बुरा भला सब कुछ करने को तैयार रहते थे। इसके अलावा उनके उत्तराधिकारी भी उतने दबंग नीति-निपुण और ऊँचे हौसले के नहीं निकले जो इन समस्त प्रपंचियों पर काबू करके इतने बड़े शासन को चला ले जाते। परामुखापेक्षिता और असावधानता उनमें काफी मात्रा मे रही। यही क्यों वे उस संघर्ष के समय मे भी विलासितापूर्ण जीवन से निर्लिप्त न रह सके।

महाराजा रणजीतसिंह जी के मरने के वाद उनके पुत्र खड्गसिंह जी गद्दी पर वैठे। खड्गसिह और उनके पुत्र नौनिहालसिंह के एक ही दिन मे मारे जाने की घटनाये सिख-इतिहास की एक भारी कौतूहलजनक घटना हैं।

राजा ध्यानसिंह, राजा गुलावसिंह और सुचेतसिंह यह तीन डोगरा राजपूत थे जो वडी तंग हालत मे महाराजा रणजीतसिंह की खिदमत मे हाजिर हुये थे। वढते ? यहाँ तक वढ़े कि महाराज ने उनके लिये राजा के खितावों से भी विभूपित किया। जव महाराज खड्गसिंह गद्दी पर वैठे तो उन्होंने चेतसिंह नाम के एक जाट-सिख को मत्री वना लिया। हालाकि मरते समय महाराजा रणजीतसिह जी ने खड्गसिंह जी को ध्यानसिंह के ही सुपुर्द किया था। इससे ध्यानसिंह को उम्मीद थी कि मत्री मैं ही वनूँगा। अत उसने अपनी वुद्धिमानी से महाराजा खड्गसिंह जी से उनके पुत्र नौनिहालसिंह तक को भड़का दिया। और चेतसिंह को मरवा दिया। पिता को नजरवन्दी मे पहुँचा कर ध्यानसिंह ने पुत्र को गद्दी पर विठाया किन्तु वीमारी से जव महाराज खड्गसिंह का देहात हो गया। उसी दिन नौनिहालसिंह का भी अन्त हो गया।

अव राजा ध्यानसिंह ने अपनी मर्जी के अनुसार शासन चलाने के लिये कुँवर शेरसिंह जी को वुलाया। किन्तु खड्गसिंह की रानी चन्द्रकौर ने वीच मे आकर नया प्रवन्ध करा लिया। जिसमे उन्होंने अतरसिंह सिंधानवाला को अपना सलाहकार नियुक्त किया। यह प्रवन्ध भी अधिक दिन नहीं चला। इसलिये रानी साहिवा को अपनी जागीर में लौट जाना पड़ा और कुँवर शेरसिह को ही ध्यानसिंह ने अपनी जालसाजी से महाराज वना दिया। चूँकि सिंधानवाले रानी चन्द्रकौर के पक्ष मे थे। इसलिये महाराजा शेरसिंहजी ने उनको गिरफ्तार करने का हुक्म दिया। सरदार लहनासिंह तो गिरफ्तार कर लिये गये। अतरसिंह, अजीतसिंह और हरिद्वार की ओर भाग गये।

रानी चन्द्रकौर ने सिखों के सामने अपनी शर्तों मे एक शर्त यह भी रखी थी कि मुझे सिन्धानवालों मे से अजीतसिंह जी को या और किसी योग्य लडके को गोद ले-लेने दिया जाय और उसे ही गद्दी का अधिकार दे दिया जाय। चूँकि इस समय प्राय समस्त सिख सरदारों पर राजा ध्यानसिंह और उनके भाइयों का प्रभाव था। अत यह वात स्वीकार नहीं की गई थी। इससे सिन्धानवाले नाराज भी हुए थे। दूसरे शेरसिंह ने उनके साथ यह व्यवहार किया। वस यहीं से सिंधानवालों के हृदय मे कटुता वढ गई। वैसे ज्यादा गौर से हम देखें तो महाराजा रणजीतसिंह जी की ओर से भी एक गलती थी जिस प्रकार उन्होंने दूसरे ऐरे-गैरे लोगों को इतना वढ़ा दिया वहाँ इन अपने भाइयों को कोई तगडी-सी जागीर देकर अलग नहीं कर दिया। यदि इन्हे कोई पूरा जिला दे दिया जाता तो ये वेचारे उसमें दूर रहे आते और डोगरा-गिरदी में फँसकर न तो अपना नाम वदनाम करते और न सिख-साम्राज्य को नुकसान पहुँचाते।

कुछ समय वीत जाने पर महाराज शेरसिंह ने अपने भोले स्वभाव के कारण सरदार लहनासिंह सिन्धानवालिया को तो कैद से रिहा कर दिया और अतरसिंह अजीतसिंह, को वापस वुला लिया जो ओहदे उनके पहले थे, वे ही फिर उनको दे दिये। धीरे-धीरे रजिश के भाव दोनों ओर से दूर हो रहे थे। मुहव्वत वढती जा रही थी। राजा ध्यानसिंह को जव यह पता चला तो वह शंकित हुआ और उसने सिंधानवालों को भड़काना शुरू किया कि महाराज तो मौका देख रहे हैं। वे तुम्हें जिंदा रहने देने में अपने लिये खतरा समझते हैं।

सिंधानवालों ने महाराजा शेरसिंह जी के पास जाकर स्पष्ट शब्दों ने कहा कि राजा ध्यानसिंह

आपका दुश्मन है और वह ऐसी बातें हमसे कहता है कि जिससे हम आपके प्राणों के ग्राहक हो जायें।
आप कहे तो हम ध्यानसिंह का खात्मा कर दें। भला जो आपसे छिपी-छिपी दुश्मनी रखता है वह क्या नहीं कर सकता। महाराजा शेरसिह राजी हो गये और उन्होंने अपने हाथ से लिखकर उन्हें दे दिया। उधर उन्होंने वह पत्र ध्यानसिह को दिखा दिया और कहा महाराज हमारे ही दुश्मन नहीं है किन्तु आपको भी जिन्दा नहीं रहने देना चाहते हैं। अगर तुम सहमत हो तो इस दुश्मन को मिटा ही दिया जाय। ध्यानसिह सहमत हो गया। उसने भी लिखकर दे दिया। इसके बाद तीनों सिधानवाले सरदार अपने गाव राजा सासी चले गये। इधर महाराजा शेरसिंह और राजा ध्यानसिंह दोनों एक दूसरे की मौत के दिन की बड़ी उत्सुकता से प्रतीक्षा करने लगे। कहा जाता है कि किसी का बुरा सोचने से बुरा सोचनेवाले का ही बुरा होता है सो इन दोनों का ही बुरा हुआ।

सन् १८४३ ई० की १५ दिसम्बर को महाराज शेरसिह शाह बिलावल के पास बारहदरी मे कुश्ती देख रहे थे। उनका लड़का प्रतापसिंह बाग मे दान-पुण्य कर रहा था। अजीतसिंह तो महाराज के पास गया और लहनासिह बाग में जा छिपा। अजीतसिंह ने बाहदरी मे जाकर महाराज को बन्दूक की गोली का निशाना बना दिया और इधर लहनासिह ने प्रतापसिंह को मार डाला। महाराजा के साथियों ने भी हथियार संभाले पर एक दो, पचासों आदमियों के सामने क्या कर सकते थे। उनके एक विश्वासी नौकर का भी खातमा हो गया।

अजीतसिह महाराज शेरसिह जी के शिर को काट कर ले गया। जब किले मे पहुँचा तो उधर से राजा ध्यानसिंह भी मिल गया। जो बड़ा खुश हुआ। अजीतसिंह उसे वापिस लौटा ले गया और पूछा अब क्या करना है। ध्यानसिंह ने कहा, इसके सिवा क्या करना है कि महाराज, दलीपसिंह जी को बना दिया जाय। अजीतसिह के साथी गुरुमुखसिह ने जोकि अजीतसिंह का चाचा होता था, कहा ठीक है और मत्री तो तुम हो ही। हम बनते रहे बेवकूफ। इतना कहकर फड़ाकसे गोली छोड़ दी। और उसके नौकर को भी जोकि भड़क उठा था। उसके साथ सुला दिया और फिर दोनों की लाश एक गन्दी गली मे फिकवादीं।

अजीतसिंह आदि सिन्धानवालों ने महाराज दिलीपसिंह को गद्दी पर बिठाया और अजीतसिंह[1] स्वय वजीर बना।

राजा ध्यानसिंह के पुत्र हीरासिह को जब यह खबर लगी तो वह अपनी जागीर मे से सीधा लाहौर पहुँचा और उसने सिख सेनानायकों को भड़काया कि खालसा साहिबान, सिन्धानवालों ने मेरे ही पिता की हत्या नहीं की है। सिख राज्य के एक शुभचिन्तक को खो दिया है और भला जिन्होंने अपने ही रक्त मास के महाराजा शेरसिंह का कत्ल किया हो वे क्या नहीं कर सकते है। मालूम यह भी होता है कि ये अंग्रेजों से मिले हुये हैं। इस तरह इन गद्दारों को जीवित बने रहने देना कहाँ तक ठीक है? सिख सब कुछ बर्दास्त कर सकते थे। किन्तु उन्हे अंग्रेज के हाथ अपने राज्य को चले जाने की बात सुनते ही क्रोध चढ़ आता था। दूसरे उन्हे यह भी बात बुरी लगी कि सिन्धानवालों ने महाराज शेरसिंह और उनके पुत्र को कत्ल किया। लगभग चालीस हजार सैनिक हीरासिंह के साथ हो लिये और किले का घेरा दे दिया।

भीतर जब सिंधानवालों ने सुना तो वे घबराये किन्तु समझ यह रहे थे कि ध्यानसिंह के मारे जाने से फौज उत्तेजित हो उठी है। अत. उन्होंने ध्यानसिंह और उसके नौकर की लाश सेना मे भिज-

१. ज्ञानी ज्ञानसिंह ने लहनासिंह का वजीर बनना लिखा है।

वादी। उस समय ध्यानसिंह की लाश पर बढ़िया से बढ़िया कफन डाल दिया। कहलाया गया कि ध्यानसिंह को तो इस मुसलमान ने मारा था जिसे कि बदला लेने के लिये मार डाला है। एक ध्यानसिंह का ही मामला होता तो फौज शांत भी हो जाती मामला तो महाराज शेरसिंह और उनके पुत्र प्रतापसिंह का भी था। कहा जाता है जब खालसा दल शांत न हुआ तो लहनासिंह ने यह भी कहलवा दिया कि जो कुछ हमने किया है। खूब समझकर किया है और अपने बल पर किया है फिर क्या था किले पर गोली गोलों की वर्षा होने लगी। अजीतसिंह बड़ी बहादुरी से लड़ा और लड़ता हुआ ही मारा गया। लहनासिंह ने मोरी के रास्ते भागना चाहा किन्तु सफल नहीं हुआ। एक मुसलमान ने उसका सिर काट लिया और हीरासिंह के पास जाकर पेश कर दिया।

हीरासिंह ने सिंधानवाले मृत सरदारों की लाशों के साथ जो व्यवहार किया वह उसकी इंसानियत को जाहिर नहीं करता। उसने लाशों को बाजार में घसीटवाया। उनके सहायकों और हिमायतियों को भी मार डाला। सरदार मुखसिंह और उनके एक साथी को भी कत्ल कर दिया। उनकी सारी जागीर जब्त कर ली और राजा सासी के मकानों को ध्वंश करने का हुक्म दिया। उससे जो भी बन पडा उसे करने में उसने कसर नहीं छोड़ी।

सरदार अतरसिंह मय अपने पुत्र केहरीसिंह के किसी प्रकार निकल गया। कहा जाता है पहले तो अतरसिंह अंग्रेज अफसरों के पास अम्बाला गया। फिर सतवीरसिंह जी के पास चला गया। इधर गुलाबसिंह ने काश्मीरासिंह और पिशोरासिंह के सम्बन्ध में खालसा के पास समाचार भेजे कि अतरसिंह के कहने में आकर वे लाहौर पर चढ़ाई करने की तैयारी कर रहे हैं।

बाबा वीरसिंह सीधे और सच्चे आदमी थे। वे माँझा के सिखों पर प्रभाव भी खूब रखते थे। उन्होंने अतरसिंह को शरण भी दे दी। साथ ही पंजाब के अनेकों प्रतिष्ठित सिख-सरदारों को चिट्ठियाँ लिखीं कि हीरासिंह जो कुछ कर रहा है उस पर ध्यान दें और यह भी खयाल करें कि रणजीतसिंह का राज्य किसी आदमी का राज्य नहीं समस्त सिखों का राज्य है इसे नष्ट होने से बचायें। योद्धा प्रकृति के सैकड़ों सिख बाबा वीरसिंह से इस सम्बन्ध में सलाह के लिये भी आने आरम्भ हुये। इधर हीरासिंह ने जब यह समाचार सुना तो उसने सेना की एक टुकड़ी बाबा के स्थान पर भेजी। उस समय काश्मीरासिंह भी वहां थे। बाबाजी ने अपने जिन्दे रहने तक तो लड़ाई को रोका किन्तु उनके प्राणांत के बाद लड़ाई न रुकी, दोनों ओर से डट कर लड़ाई हुई। इसमें अतरसिंह और कश्मीरासिंह भी मारे गये। इस प्रकार सिंधानवाले और महाराजा रणजीतसिंह के वंशजों का बराबर खात्मा डोगरशाही की स्वार्थ-लिप्सा और राज खान्दान की अविवेक्ता से होने लगा।

सरदार अतरसिंह सिंधानवाला का लड़का केहरसिंह इस समय भी अंग्रेजी इलाके में था। और कई सिंधानवालिये जो कि अतरसिंह के भाई भतीजे होते थे। अंग्रेजी इलाके में चले गये थे। और वे उस समय तक वहाँ रहे जब तक कि डोगरों का भी सत्यानाश न हो लिया और खालसा राज्य का खातमा न हो गया। इनमें से कुछ उस युद्ध में भी रहे जो अंग्रेजों ने सिखों के विरुद्ध किया।

सिंधानवालों की जागीर तो वापिस आगई किन्तु उतनी नहीं जितनी महाराजा रणजीतसिंह जी के समय में थी।

अंत में यह कहना पड़ता है कि डोगरों के स्वार्थ और सिंधानवालों के अविवेक ने तथा अन्य सिख विरोधी प्रवृत्तियों ने उस विशाल सिख-साम्राज्य को मिट्टी में मिला दिया जिसकी जड़ें काबुल और

लद्दाख की ओर फैलना चाह रही थीं और अवश्य ही फैलने वाली थीं।

अतरसिंह सिंधानवाला का लड़का केहरसिंह भी सन् १८६४ ई० में स्वर्गवासी हो गया। अजीतसिंह के उस समय तक कोई संतान थी ही नहीं। सरदार लहनासिंह जी के दो पुत्र थे। प्रतापसिंह और ठाकुरसिंह। ये दोनों ही उस समय अंग्रेजी इलाके मे चले गये थे। शांति के समय अपने गॉव राजा सांसी में आ गये। प्रतापसिंह के लड़के गुरुवचनसिंह गुरुमुखसिंह के प्रपौत्र हरदत्तसिंह के यहां गोद चले गये। ठाकुरसिंह के (१) गुरुवचनसिंह, (२) वख्शीशसिंह, (३) नरेन्द्रसिंह, (४) गुरुदत्तसिंह हुये। इनमें से वख्शीशसिंह जी सरदार बुद्धासिंह जी के पुत्र शमशेरसिंह जी के यहां गोद चले गये। गुरुदत्तसिंह जी के सरूपसिंह और प्रीतमसिंह दो पुत्र हुये है। नरेन्द्रसिंह जी के चार पुत्र हैं। (१) दलपतसिंह (२) कृपालसिंह (३)गजेन्द्रसिंह और (४)विचित्रसिंह। इनमे दलपतिसिंह के तेजेन्द्रसिंह और गजेन्द्रसिंहजी के भूपेन्द्रसिंह जी हैं। बस लहनासिंह जी की सन् १९३६ तक की यही वंश-तालिका है।

हम पिछले पृष्ठों में लिख चुके हैं कि सरदार दीदारसिंह जी के चार पुत्र थे। उनमें से तीन की फुलवाड़ी खूब फली फूली। उनकी संतान मे से इस समय प्रमुख २ सज्जन इस प्रकार हैं।

(१) सरदार ले० रघुवीरसिंह जी ओ० वी० ई० और उनके पुत्र।
(२) सरूपसिंह जी सन् १९१५ में पैदा हुये है।
(३) नरेन्द्रसिंह जी के चारों पुत्र अजयपालसिंह
(४) औतारसिंह और उनके भाई निरंजनसिंह
(५) करतारसिंह और उनके पुत्र जगजीतसिंह
} एक ही बाप की सन्तान है।
(६) उजागरसिंह, अमरसिंह और उनके पुत्रगण।
(७) राजेन्द्रसिंह और उनके भाई।
(८) अमलसिंह, अमरसिंह और उनके भाई तथा पुत्र।
(९) कुन्दनसिंह, गुरदयालसिंह और उनके भाई।
(१०) वासदेवसिंह और उनके भाई।

इसी प्रकार अन्य सरदार और उनके भाई हैं। परन्तु प्रांतीय दरबार मे स्थान सरदार रघुवीरसिंह जी का ही था।

यह जागीर नकई मिसल का अवशिष्ट भाग है। जहॉ पर हमने नकई मिसल का वर्णन किया है। वहाँ पर इस जागीर के पूर्वजों का परिचय आ गया है। नकई मिसल मे जो प्रमुख सरदार चौधरी हेमराज थे। उन्हीं के वंशज इस जागीर के मालिक हैं। आरम्भ मे ये लोग लाहौर जिले के परगने चूनियॉ में भडवाल गॉव मे रहते थे।

बहरवाल

किसी समय ४५ लाख का इलाका इस जागीर के पूर्वजों के हाथ आ गया था।

चौधरी हेमराज के हीरासिंह और नत्थासिंह नाम के दो पुत्र थे। इनमे हीरासिंह ने वाहुबल से इस मिसल की शक्ति वहुत ज्यादा बढ़ा दी थी। सम्वत् १८२६ वि० में हीरासिंह के पाकपट्टन के शेख सुभान के साथ लड़ते हुये मारे जाने के कारण उनका भतीजा नाहरसिंह मिसल का अधिपति बना। क्योंकि हीरासिंह का खुद का लड़का दलसिंह नावालिग था। नाहरसिंह ने कुल छ. वर्ष इस मिसल की सरदारी की। सवत् १८३२ में तपेदिक मे उनका भी देहान्त हो गया। अत सरदारी उसके छोटे भाई रनसिंह के हाथ आई। जिसने अपनी होशियारी से मिसल का अध.पतन होने से रक्षा की। इसने भी बहुत

सारे इलाके वढ़ाये। सम्वत् १८३६ मे इसका भी देहान्त हो गया।

रनसिंह के तीन पुत्र थे। (१) भगवानसिंह (२)ज्ञानसिह और (३)खजानसिंह। भगवानसिंह के हाथ सरदारी आई। किन्तु वह उसे सम्भाल नहीं सका। उसके समय में वहुत सारे इलाके हाथ से निकल गये। सम्वत १८४६ में गृह कलह मे भगवानसिंह मारा गया। इसने अपनी वहिन की शादी महाराजा रणजीतसिंह जी के साथ करदी थी। इसके छोटे भाई ज्ञानसिंह का जमीन जायदाद पर प्रभुत्व हुआ।

सम्वत १८६४ विक्रमी मे ज्ञानसिंह भी मर गया। तव उसके लडके काहनसिंह को उत्तराधिकार मिला। किन्तु महाराजा रणजीतसिंह जी ने काहनसिंह के पास केवल पन्द्रह हजार की जागीर रहने दी। खजानसिंह के लिये जोकि काहनसिंह का चाचा था नानकोट का इलाका मिला।

इसके बाद पजाव मे अंग्रेजों का प्रभुत्व वढ़ गया। मुल्तान मे जव मूलराज ने अंग्रेजो के विरुद्ध युद्ध किया तो काहनसिंह का लड़का अतरसिंह अंग्रेजों के विरुद्ध मूलराज के साथ मिल गया। इससे अंग्रेज वडे नाराज हुये और उन्होंने जागीर का एक भाग जव्त कर लिया किन्तु काहनसिंह के वहुत कुछ सफाई पेश करने पर अंग्रेज उस वुड्ढे सरदार से खुश भी हो गये और उसे वहरवाल का आनरेरी मजिस्ट्रेट नियुक्त किया। जागीर लगभग वारह हजार रुपये की रह गई। काहनसिंह के चार लडके थे। चतरसिंह, अतरसिंह, ईश्वरसिंह और हुक्मसिंह। जिनमे हुक्मसिंह लावल्द मर गया और ईश्वरसिंह अतरसिंह मुस्लमान हो गये। चतरसिंह भी अपने वाप से १५ वर्ष पहले मर गया। सरदार काहनसिंह का देहान्त सवत् १९३१ वि० मे हो गया। अत चतरसिंह का लड़का रनजोधसिंह जायदाद का मालिक हुआ। किन्तु आपस में मुकदमा चलने पर रणजोधसिंह के पास दो हजार की जागीर रह गई। कुछ ईश्वरसिह, अतरसिंह और रणजोधसिंह के भाई प्रतापसिंह और ठाकुरसिंह को मिल गई।

सरदार रनजोधसिंह जी के दो पुत्र हुये। ऊधमसिंह और नारायनसिंह। सवत् १९४८ में उनके मरजाने के वाद जागीर के सरदार नरायनसिंह हुये। यह कहना होगा कि ऊधमसिंह के पुत्र और पौत्र सभी का देहान्त हो गया अत जागीर एक ही भाई के पास रही। सरदार नारायनसिंह जिनका कि देहान्त हो चुका है और हरदयालसिंह ही इस समय इस जागीर के मालिक हैं। सन १९२१ ई० मे आप के उत्तराधिकारी का जन्म हो चुका है जिनका कि नाम मनमोहन इन्द्रपालसिंह है। अतरसिंह के एक लडका लाभसिंह हुये थे और खजानसिंह के वश की फुलवाडी भी खूव फूल रही है।

मिसल नकाई मे चौधरी मीठा के पुत्र कमरसिंह भी एक वड़े वहादुर आदमी थे। ये चीमा के रहने वाले थे। जव मिसल का संगठन ढीला पड गया तो इन्होंने नकाई गॉव के आसपास के इलाके पर अपना प्रभुत्व जमा लिया। कमरसिंह दो भाई थे। उनके दूसरे भाई का नाम वजीरसिंह था। कमरसिह का सैयदवाले रईस के साथ लडते हुए सवत १८३७ वि० मे देहान्त हो गया। अव तक भी मिसल मे अच्छा सगठन था। इस समय

नकाई

कमरसिंह के भाई और रनजोधसिंह के लडके भगवानसिंह मे ज्यादा झगडा वढ गया। भगवानसिंह ने सरदार महासिंह सुकरचकिया के लडके प्रतापी रणजीतसिंह के साथ अपनी वहन दातारकौर का विवाह करके ताकत वढाली। इसलिये कमरसिंह के भाई वजीरसिंह को घाटा पडा। महासिंह ने अमृतसर मे भगवानसिंह और वजीरसिंह का समझौता भी कराया किन्तु वह समझौता अधिक दिन न चल सका। और सघर्ष यहाँ तक वढा कि भगवानसिंह वजीरसिंह के ही हाथों से संवत १८४६ वि० मे मार दिया गया। दलसिंह ने जो कि भगवानसिंह का रिश्ते में दादा होता था वजीरसिंह को मारने की

कोशिश की किन्तु वह खुद ही मारा गया। असल मे दलसिंह के साथ उसके ही नौकरों ने दगा की।

संवत् १८४७ वि० मे वजीरसिंह का भी देहान्त हो गया। मेहरसिह और मोहरसिंह नाम के उसने अपने पीछे दो लड़के छोड़े थे। मोहरसिह का वश उसके एक मात्र पुत्र हीरासिंह पर समाप्त हो गया। हमें वताया गया है कि इन दोनों वाप-वेटों की मृत्यु स्यालकोट की लड़ाई मे महाराजा रणजीतसिंह जी से लडते-लड़ते हुई थी। उन दिनों स्यालकोट भी चार सरदारों के अधिकार मे था। जीवनसिह, साहव-सिह, मोहरसिंह और वावा नत्थासिंह। इनमे से साहवसिंह तो उस समय गैरहाजिर था। वावा नत्थासिह और मोहरसिह मारे गये। जीवनसिंह को महाराजा रणजीतसिह ने इलाके देकर छोड़ दिया।

सरदार मेहरसिंह का भी सवत् १६०० मे देहान्त हो गया। उनके तीन लड़के जयमलसिंह, धारासिह और फतहसिह थे। इनमे जयमलसिह वचपन मे ही मर गया। धारासिंह और फतहसिह जी के सतानें हुई और खूब कुटुम्ब वढ़ा।

सवत् १६१७ वि० मे धारासिंह का देहान्त हो गया। उन्होने अपने समय मे जितना हो सका अंग्रेज सरकार की सेवा की जिससे रही-सही जागीर सुरक्षित रह गई। उनके उत्तमसिंह और शेरसिंह नाम के दो लडके हुये। इनमे शेरसिंह नि सतान रहे। उतमसिंह के तेजासिंह, लाजसिंह और वरियाम-सिंह, नाम के तीन पुत्र हुये। संवत् १६६४ वि० मे सरदार उत्तमसिह जी का देहान्त हो जाने पर सरदार तेजासिह जी जिनका कि जन्म सवत् १६२८ मे हुआ है जागीर के मालिक हुए। आप के छोटे भाई वरियामसिह जी के संवत् १६५८ मे महेन्द्रसिंह, सवत् १६६५ मे नरेन्द्र कुमारसिंह, संवत् १६६७ मे जोगेन्द्रसिंह और सवत् १६७३ मे राजेन्द्रसिंह नाम के चार पुत्र हुये हैं, मझले भाई लालसिंह जी के तीन पुत्र हैं। जिनके कि नाम गुरुदयालसिह, कुमार वसतसिंह और जगजीतसिंह है इन तीनों के जन्म क्रमश सवत् १६६७, १६७१, और १६७७ विक्रमी मे हुये हैं।

सरदार तेजासिंह जी के चार पुत्र हुये है। उनमे ऊधमसिह सवत् १६४६ मे, गुरुचरनसिंह संवत् १६५४ मे। हरचरनसिह सवत् १६५६ और शिवचरनसिह संवत् १६५६ मे पैदा हुये हैं। सरदार तेजासिह जी के इन चारों पुत्रों के भी सुपुत्रगण हो चुके हैं। शिवचरनसिह जी के हरेन्द्रपालसिह गुरुचरनसिह जदेश्वरसिंह हैं और हरचरनसिह जी के सुखवतसिंह और हरवंतसिंह है। वलरामसिंह, सुखरामसिंह दोनो पुत्र ऊधमसिंह के है।

नलवा खान्दान

सरदार हरदाससिंह जी जिला अमृतसर मे मजीठ के रहने वाले थे। सुकरचकिया मिसल के साथ उनके पुत्र गुरुदयालसिंह जी ने वड़ी वहादुरी से काम किया। सरदार चड़तसिंह और सरदार महासिंह जी के साथ वड़ी वीरता और वफादारी के साथ युद्ध करने के कारण सरदार महासिंह ने शाहदरे के पास एक छोटी सी जागीर इन्हे दी थी। सन् १७६१ ई० मे इनके एक पुत्र हुआ, जिसका नाम हरीसिंह था। यह हरीसिंह ही पीछे अपनी वहादुरियों के कारण नलवा के नाम से मशहूर हुआ। सरदार गुरुदयालसिंह जी का सन् १७६८ मे देहान्त हो गया। अत' वालक हरीसिंह जी की देख रेख महाराजा रणजीतसिंह जी के हाथ मे ही रही। वे इन्हें खूब प्यार करते थे।

सरदार हरीसिंह जी नलवा का जीवन-वृतान्त दूसरी जगह दिया जा चुका है। अत यहाँ इतना ही वताना चाहते हैं कि जमरूद मे सन् १८३७ मे वे पठानों से लड़ते हुये काम आये। उस समय उन्होंने आठ लाख की जागीर और वहुत-सी सम्पति छोड़ी थी।

सरदार नलवा के चार पुत्र थे। (१) सरदार गुरुदत्तसिंह (२) सरदार जवाहरसिंह (३) सरदार-पजावसिंह और (४) सरदार अर्जुनसिंह। ये अलग-अलग दो माताओं के थे। क्योंकि सरदार नलवा के दो सरदारनी थीं।

उस समय में इनकी जागीर मे गुजरानवाला, कच्छी, नूरपुर, मिठुवाना, कल्लर, खाट, हजारा, खानपुर, और खतक थे। इनकी एवज मे दो रेजीमेन्ट सवारों को, एक तोपखाना, एक ऊँटों का दल, हर समय महाराजा रणजीतसिंह जी की सेवा के लिये तैयार रखने पड़ते थे। उस समय गुजरानवाला एक गुलजार शहर वना हुआ था। एक वहुत सुन्दर वाग सरदार हरीसिंह ने लगवाया था जिसमे फ्रान्स और माल्टा से मगा कर नारगी आदि के वढ़िया-वढ़िया गाछ लगाये थे।

इतनी वडी जायदाद को आपस मे वाटने के लिये चारों भाइयों में झगड़ा हो गया और वे आपस में खून खच्चर पर उतर आये। यह देख कर महाराजा रणजीतसिंह जी ने कुल जायदाद जब्त करली और केवल उनतीस हजार सालाना की आमदनी का इलाका इनके लिये रहने दिया।

सरदार गुरुदत्तसिंह जी सन् १८०७ में पैदा हुये और सन् १८५४ ई० मे उनका देहान्त हो गया।

सरदार अर्जुनसिंह जी के अच्छरसिंह और सम्पूरनसिंह नाम के दो पुत्र हुये। अर्जुनसिंह जी का सन् १८४८ ई० में इन्तकाल हो गया। सरदार सम्पूरनसिंह जी के एक पुत्र हुये थे जिनका देहान्त उनके आगे ही सन् १८६८ में हो गया था। सन् १८७४ मे सम्पूरनसिंह भी चल वसे।

सरदार अच्छरसिंह जी के सन् १८६७ मे एक पुत्र हुये जिनका नाम सरदार नारायणसिंह है। सरकार की ओर से सरदार नारायनसिंह को सरदार वहादुर का खिताव और आनरेरी मजिस्ट्रेटी का दर्जा उनकी सेवाओं के उपलक्ष में दिया गया।

सरदार नारायणसिंह जी के ८ पुत्र हुए। जिनके नाम इस प्रकार हैं—(१) करतारसिंह इनका देहान्त हो चुका है (२) मूलसिंह इनका भी देहान्त हो गया। (३) वलवन्तसिंह आप पी० सी० एस० थे। (४) इकवालसिंह आप केप्टिन आई० एम० एस० थे। (५) सन्तसिंह आप पुलिस मे ऊँचे पद पर थे। (६) वख्शीशसिंह (७) कुलवन्तसिंह और (८) इन्दरसिंह।

सरदार नारायणसिंह जी ने सभी पुत्र सुशिक्षित कराये। गुजरानवाला में आपका खान्दान इज्जतदार घरानों में था। जेठे पुत्र वलवन्तसिंह जी के दो पुत्रों का हमें मालूम हो सका है। उनके नाम कुलदीपसिंह और अमरजीतसिंह हैं। शेष भाइयों की सन्तनें भी थीं। लोग सरदार हरीसिंह के नाम से अभी तक इन लोगों को नलवा ही कहकर सन्मान से याद करते हैं।

छब्बीसवाँ अध्याय

सिख-महिला-इतिहास

जिस प्रकार सिख जाति मे अनेकों वृद्ध, युवा और बालक धर्मवीर, शूरवीर और देशभक्त तथा विद्वान् हुए है। उसी प्रकार अनेकों सिख माताओ, बहिनों और बेटियों के बहादुराना, दिलेराना और अक्लमन्दाना कारनामों से सिख जाति का माथा ऊँचा हुआ है। इस अध्याय मे कुछ एक ऐसी ही सिख-महिलाओं के जीवन पर प्रकाश डालते है।

बीबी नानकी जी सिख धर्म के आदि प्रवर्तक गुरु नानकदेव जी की बड़ी बहिन थीं। उनका विवाह सुल्तानपुर के नवाब के कारिन्दा जयराम जी के साथ हुआ था। बहुत कुछ परिचय बीबी नानकी जी का पीछे के एक अध्याय मे आ चुका है। यहां केवल इतना ही कहना है कि वे परम ईश्वर भक्त बुद्धिमान, साहसी मिलनसार और धर्मप्रिय महिला थीं। संसार से परम विरक्त गुरु नानकदेव जी इनसे इतना प्यार करते थे कि जब भी वे याद करतीं गुरुजी परदेश से उसी समय उनसे मिलने को चल पड़ते थे।

बीबी नानकी जी

बीबी भानीजी सतगुरु अमरदास जी की पुत्री थीं और गुरु रामदास जी के साथ उनका विवाह हुआ था। आपने गुरु अमरदास जी की बड़ी सेवा की जिनका कि वर्णन हम प्रथम ही कर चुके हैं। कुछ इतिहासकार कहते हैं कि इन्होंने अपनी सेवाओं के द्वारा गुरु अमरदास जी से गुरुआई अपने वश मे स्थिर रहने का वरदान प्राप्त कर लिया था। यह गुरु-भक्त, सेवा-परायण, कष्ट सहने में परम साहसी, परिश्रमशील और दूरन्देश थीं।

बीबी भानी

आप गुरु अर्जुनदेव जी की धर्मपत्नी थीं। ईश्वर मे तो आपकी परम निष्ठा थी ही। साथ ही लंगर के काम की भी आप भली प्रकार देख-भाल करती थीं। परसाद छकनेवालों को कभी-कभी आप ही छकाने लगती थीं। छठे पातशाह गुरु हरिगोविन्द जी महाराज आप ही के पुत्र थे। वड़ों का सन्मान करने मे आप कभी भी इस बात का खयाल न करती थीं कि मेरा स्थान बहुत ऊँचा है। बाबा बुड्ढा के लिये अपने हाथ से भोजन खिलाना और उनकी सुविधाओं का ख्याल रखना आपके सेवा-भाव के प्रमाण हैं।

माता गगादेवी जी

गुरु अर्जुनदेव जी की शहीदी के बाद छठे पातशाह के साथ आपने बड़े सकट झेले क्योंकि दुश्मनों से पाला पड़ने के कारण छठे पातशाह को जीवन भर कठिनाइयां उठानी पड़ीं।

माई भागभरी

यह काश्मीर की रहने वाली थीं और सिख धर्म से बडी प्रीति रखती थीं। उधर के लोगों में इन्होंने गुरुमत का जीवन भर प्रचार किया। इनकी अन्तिम इच्छा थी कि मेरा प्राणान्त गुरु जी के दर्शन करके हो। इसे सिख धर्म की मीरा ही समझना चाहिये। इसकी हार्दिक भक्ति पूरी हुई और गुरु हरिगोविन्द जी साहब ने जाकर उसे दर्शन दिये। वह दर्शन पाकर जीवन-मुक्त होगई।

पजाब में बागडियान की एक जागीर है। ये लोग भाई साहब कहलाते हैं। इनके यहा गुरु हरिगोविन्द जी का दिया हुआ एक 'कडछा' है। ये लोग भाई रामा के पुत्र सिद्धू के वशज हैं। इन्हें सिख धर्म में लाने का श्रेय बीबी राजो को ही है जिसका कि नाम जसोदा भी था। जब

राजो बीबी

वह विदा होकर अपनी ससुराल जारही थी तो ढरोली मे कीर्तन की आवाज सुनकर डोली मे से उतर कर उसमें शामिल हो गई। रामा ने इस बात पर क्रोध किया और तलवार लेकर अपनी पुत्रवधू का सिर काटने को तैयार हो गया किन्तु हाथ जहाँ का तहाँ रुक गया। और इसके बाद यह गुरु के उपदेशों से प्रभावित होकर गुरु जी का शिष्य हो गया। उसने वहा से लौट कर सुल्तानपुर के मकान आदि को तोड़ फेका और गुरुमत मे पूरी श्रद्धा के साथ अपना जीवन बिताने लगे। सिख होने पर उन्होंने उत्तरोत्तर वृद्धि की। इसीलिये आज तक उनके वंशज बीबी राजो को अपनी कल्याणकर्त्री मानते हैं और उस कड़छे को बड़े प्रेम से रखते हैं जो गुरु जी ने कडाह-प्रसाद बनाने के लिये बीबी राजो को दिया था।

जीन्द के राजा गजपतिसिंह जी के जोकि उन दिनों बड़रुखा में रहते थे। एक लड़की पैदा हुई। जिसको स्त्रियों ने एक बर्तन मे बन्द करके जीते जी गाड दिया। इससे तीन दिन बाद बाबा गूदड़िया नाम के एक सत राजा गजपतिसिंह जी के पास आये। उन्होंने कुशल मगल के बाद

वीर प्रसूता माई मलावा

पूछा रानी जी के क्या बच्चा पैदा हुआ है? राजा साहब ने उत्तर दिया एक लड़की पैदा हुई थी। वह जन्मते ही मर गई। अत. उसे गाड़ दिया गया है। सत जी मुख्य बात को जान गये कि वह मरी नहीं है। बोले उसके भाग्य मे तो एक महान प्रतापी व्यक्ति को जन्म देना बदा है। सचमुच ही बालिका मरी न थी। वह बर्तन मे अपने अगूठे को पी रही थी।

यही बालिका सरदार महासिह को ब्याही गई और आगे चलकर पञ्जाब केसरी महाराजा रणजीतसिंह को जन्म देने वाली माई मलावा के नाम से जगत प्रसिद्ध हो गई।

सिख इतिहास मे चमकौर के युद्ध का स्थान बहुत ऊचा है। यहा गुरु गोविन्दसिंह जी साहब ने चालीस शूरवीरों के साथ बीसियों हजार मुगल सैनिकों से युद्ध किया था और अपने दो प्यारे बच्चों को धर्म की बलि देकर त्याग का अभूतपूर्व उदाहरण उपस्थित किया था। बीबी शरनकौर इसी चमकौर की रहने वाली थीं।

बीबी शरनकौर

जब गुरु जी चमकौर से चले गये और शत्रु लोग अपने दल के मृतकों को गाड फूंक कर निश्चित हो गये। तब सिखों की ल्हासों को पडी देखकर बीबी शरनकौर को बडा दुख हुआ। चमकौर के मर्द डर के मारे इधर उधर छिपे हुये थे। तब रात के समय बीबी जी ने ही समस्त लाशों को इकट्ठा किया और ईंधन से चिता बना कर उसमें आग लगा दी। आग का प्रकाश देखकर मुगल कैम्प में से कुछ सिपाही आये। उन्होंने बीबी से पूछा? तुम क्या कर रही हो। उन्होंने कहा देखते हो न,

अपने भाइयों का संस्कार कर रही हूँ। तुरकों ने फिर पूछा तुमसे किसने कहा कि इनका संस्कार करो। बीवी जी ने बिना ही घबराये हुए बड़े धीरज से कहा। यह मेरा धर्म है। यह मेरे धर्म भाई है। इस पर तुर्क आगबबूला हो गये और इन्हे बर्छों से छेद कर ऊपर को उठा लिया और बोले यह क्या है? बीवी जी ने कहा "यह धर्म पर शहीदी" है। शैतान के दिल नहीं होता है। यह कहावत मशहूर है। उन दुष्टों ने बीबीजी को उस धधकती चिता पर फेक दिया। किन्तु उस वीर बाला ने उफ तक न की।

आनन्दपुर के आखिरी युद्ध मे जो लोग दशम पातशाह को बेदावा लिख गये थे। उन्हे बड़ा दुःख हुआ, वे सब पुनः गुरुजी की सेवा के लिये उन्हे ढूंढ़ते फिरे। यह लोग मुक्तसर मे गुरु जी के दुश्मनों के साथ लड़ते हुए मारे गये। माई भागो भी इस युद्ध मे तुरकों से लड़ी थीं। और उनके कई घाव आये थे। जब गुरु जी ने उन्हें देखा तो उनको पानी पिलाया और उसके जख्मों पर पट्टी बाधी। कहा जाता है माई भागो की वीरता की कोई पुस्तक नादेड़ मे अब तक रक्खी है।

माई भागो

सुराहे गोत के चौधरी मलूका की पौत्री और चौधरी खन्ना की पुत्री का नाम फत्तो था जो आगे चलकर वीर सरदार राजा आलासिंह जी की धर्मपत्नी बनीं। इनका जन्म सन् १६६७ के आसपास हुआ था। ६ वर्ष की उम्र मे इनकी शादी हो गई। रानी फत्तो प्रायः प्रत्येक युद्ध में अपने पति के साथ रहती थीं। जहाँ वे निर्भीक थीं वहाँ अक्लमंद भी काफी थीं।

रानी फत्तो

एक बार नवाब मालेरकोटला के कहने से अली मुहम्मदखां रुहेला ने उन्हे गिरफ्तार कर लिया। हालांकि महाराजा की उससे दोस्ती थी किंतु वह नवाब मालेरकोटला की बातों में आगया।

इसके बाद उन्होंने बरनाला को जहां कि महाराज आलासिंह का सदर मुकाम था लूटने के लिये चढाई की किंतु रानी फत्तो ने उनके आने से पहले ही सारा कीमती माल भटिंडा पहुँचा दिया और अपने इलाके का बड़ी मुस्तैदी से प्रबन्ध करती रहीं। महाराजा आलासिंह को सुनाम के किले में बंद किया हुआ था और दो बरस बीत चुके थे आखिर रानी फत्तो ने कर्मसिंह नाम के सिख को और दूसरे सिक्खों को अपने साथ मिलाया। कर्मसिंह सुनाम के किले मे पहुँच गया और उसने अपने कपड़े राजा आलासिंह को पहना कर बाहर निकाल दिया। बाहर घोड़े तैयार खड़े थे। जो आलासिंह को लेकर दौड़ आये। पीछे से कर्मसिंह भी पट्टीदार को मारकर भाग आया। रक्षकों ने भागे हुए लोगों को पकड़ना चाहा किंतु उन्हे पहले से तैनात सिखों ने मार गिराया। यह बात सन् १७४७ ई० की है।

यह कहने मे कोई अत्युक्ति नहीं कि राजा आलासिंह यदि महाराज थे तो रानी फत्तो उनकी वजीर थीं। आलासिंह यदि विजेता थे तो वे चतुर प्रबन्धक थीं। यही वजह है कि उनका राज बराबर बढता रहा।

जिस समय अहमदशाह अब्दाली की सेना बरनाला की लूट को आई थी। उस समय रानी फत्तो ने अपनी बुद्धिमानी से अपने परिवार और तमाम संपति की रक्षा करली और उधर अपने आदमी अब्दाली के पास भी सुलह के लिये भेज दिये।

सन् १७६५ ई० में राजा साहब का देहांत हो जाने पर भी उन्होंने धैर्य्य को नहीं छोड़ा उस समय राजकुमार अमरसिंह नाबालिग थे। उन्होंने उन्हें गद्दी पर बिठाकर राज काज चलाना आरम्भ कर दिया। यह याद रहे अमरसिंह जी उनके बड़े पुत्र शार्दूलसिंह के पुत्र थे। शार्दूलसिंह का बाप से

भी पहले देहात हो चुका था।

अमरसिंह जी के एक सौतेले भाई हिम्मतसिंह थे। उन्होंने राज के लिये झगड़ा उठाया किंतु रानी फत्तो ने दोनों के झगड़े को मिटाने के लिये कुछ परगने हिम्मतसिंह को भी दे दिये।

इस वीर रानी का जिसका नाम सारे मण्डल में मशहूर हो गया था। सन् १७७३ ई० में पटियाला शहर में स्वर्गवास हो गया। उनके पति के पास ही उनका संस्कार किया गया। सारे पटियाला मे उनके लिये शोक छा गया और सभी ने उन्हें याद किया।

राज काज को सभालने की योग्यता और बहादुरी के सिवा भी रानी फत्तो में अनेकों ऐसे गुण थे जिनसे उन्हे पटियाला राज्य मे अब तक याद किया जाता है। उनके यहाँ जब सिख संगतें आती थीं तो वे खुद उनके खाने-पीने का इंतजाम अपनी आंखों के आगे कराती थीं। दान-पुण्य से भी कभी मुह नहीं मोड़ती थीं।

अभिमान उनमें तनिक भी न था। अगर उन्हे कोई कड़वी बात कहता तो वे उसे दुख पहुँचाने की चेष्टा नहीं करतीं।

उनकी कोशिश रहती थी कि अपनी बिरादरी के लोगों से राजा आलासिंह कोई भी बखेड़ा नहीं करें और ऐसा ही हुआ भी।

भला ऐसा कौन शिक्षित हिन्दू होगा जो माता गूजरी के नाम से परिचित न होगा। आप दशम पातशाह गुरु गोविन्दसिंह जी की माता और गुरु तेगबहादुर जी की धर्म पत्नी थीं। गुरु गोविन्दसिंह जी के जीवन वृतांत के साथ हम आपके सम्बन्ध की घटनाओं पर प्रकाश डाल चुके हैं।

माता गूजरी

यहाँ तो यही कहना है कि आप अत्यन्त बुद्धिमान और धीरज वाली थीं। गुरु गोविंदसिंह जी आपकी किसी भी आज्ञा का उलघन नहीं करते थे। आनन्दपुर को छोडने की उनकी इच्छा न थी। सिखों के साथ ही माता जी ने ही उन्हें आनन्दपुर छोडने को बाध्य किया। कारण यह था कि माताजी दयालु भी ऊँचे दर्जे की थीं। चू कि वहाँ सामग्री के निबट जाने के कारण सिख लोग भूख से छटपटा रहे थे। आप उनके कष्ट को बर्दास्त न कर सकीं और उसका फल यह हुआ कि आपको फिर भारी से भारी विपत्ति झेलनी पड़ीं। आपके हृदय मे जो धर्म-प्रेम था। उनका तो पता आपके उस धीरज से चल जाता है। जो अपने नन्हे-नन्हे पौत्रों को सरहिंद में बलिदान की भूमिका के समय धर्म पर दृढ़ रहने का उपदेश देकर प्रकट किया था।[1]

माता सुन्दरीजी दशमेश की धर्मपत्नी थीं। ससार मे ऐसी बहुत कम माँ रही होंगी। जिनके समस्त पुत्र धर्म की बलिपर चढे हों। ऐसी भी कम ही पत्नी रही होंगी। जिनके पति ने अपने पिता, पुत्र, मा और स्त्री सब ही को धर्म पर स्वेच्छा से वार दिया हो। माता सुन्दरी जी को अपने मातु-

माता सुन्दरी जी

ससुर, पति और पुत्रों को धर्म पर निछावर होते देखने का सौभाग्य प्राप्त हुआ था। वह संसार के इतिहास मे अद्वितीय है। उन्होंने भयकर से भयंकर दिन देखे। किन्तु कभी भी वे घबराई नहीं।

रानी सदाकौर कन्हैया मिसल के सरदार और संस्थापक श्री जयसिंह जी कन्हैया की पुत्रवधू थीं। आपके पति का नाम सरदार गुरुबख्शसिंह जी था। सरदार जयसिंह जी ने सरदार महासिंह के साथ

१ माता गूजरी का देहान्त भी उसी समय पौत्र शोक में हो गया।

रानी सदाकौर

स्थिरता करने के उद्देश्य से अपनी पोती महताबकुँवारि का विवाह महासिंह जी के पुत्र रणजीतसिंह जी के साथ कर दिया था। इस प्रकार रानी सदाकौर महाराजा रणजीतसिंह की सास थीं। आपके ससुर और पति जब गुज़र गये तो अपने राज्य का आप ही प्रबन्ध करने लगीं। उधर समधी महासिंह के मरने पर नाबालिग रणजीतसिंह जी की भी आप ही संरक्षक थीं। लड़ाइयों में आप खुद शामिल होती थीं। आपने दोनों राज्यों को बढ़ाया था। आप बड़ी बहादुर, कुशल और हिम्मत की स्त्री थीं। आपके स्वभाव में सख्ती जरूर थी। जिसके कारण महाराजा रणजीतसिंह जी समझदार होते ही आपसे स्वतंत्र हो गये। फिर भी आप इस बात की हर समय देख भाल करती थीं कि कोई उनके खानदान के खिलाफ जाल तो नहीं फैला रहे हैं। अंतिम दिनों महाराजा रणजीतसिंह के कहने से उन्होंने अपना कुल राज्य अपने दौहित्र शेरसिंह के अधिकार में दे दिया। क्योंकि दौहित्र के सिवा और किसी का उस पर अधिकार नहीं पहुँचता था। इनकी राजधानी बटाले में थी। यह घटना संवत् १८७७ वि० की है। इसके कुछ ही समय बाद रानी सदाकौर का देहान्त हो गया।

इसमें कोई सन्देह नहीं रानी सदाकौर बहुत बहादुर और सिपाही मिजाज की स्त्री थीं। उन्होंने रामगढ़िया मिसल के साथ कई महीने तक लड़ाई जारी रक्खी थी। इसके बाद राजा संसारचन्द की सेना के भी छक्के छुड़ाये थे। छोटी-मोटी अनेकों लड़ाइयों में उन्हें सामना करना पड़ा।

प्रबन्ध करने में भी काफी चतुर थीं। उनकी रियासत में कभी कोई बखेड़ा उनके जीवन में खड़ा नहीं हुआ।

बीबी दीपकौर के सम्बन्ध में जितनी जानकारी हासिल होनी चाहिये। उतनी तो नहीं मिलती किन्तु सिखों की प्रत्येक स्त्री बीबी दीपकौर के नाम से परिचित है। उनके जीवन की एक ही घटना ऐसी है। जिस पर प्रत्येक स्त्री गर्व कर अपने धर्म की रक्षा कर सकती है और सुयश भी प्राप्त कर सकती है।

बीबी दीपकौर

यह घटना उन दिनों की है जब कि दशमेश जी आनन्दपुर में ही रहते हुए अपने भक्तों को आध्यात्मिक अमृत चखाया करते तथा ज्ञान वर्षा से धर्म-हीन हृदयों को हरा किया करते थे।

दुआबा के पटवन नाम के एक गाँव में सिख धर्म की प्रेमिका एक युवती रहती थी। यह गाँव उसका ससुराल था। नाम उसका था दीपकौर। उस गाँव में दूसरे लोगों के हृदयों तक अभी गुरुमत का प्रकाश नहीं पहुँचा था। कुछ वे लोग डरते भी थे। क्योंकि उन्हें मालूम था। मुगल सरकार गुरु लोगों पर खफा हो रही है।

बीबी दीपकौर की इच्छा थी कि कोई संगत इस गाँव में भी आये और यहाँ के लोगों को भी गुरुमत की शिक्षा देकर उनके हृदयों में प्रकाश करे।

एक समय उसने सुना कि मांझा की एक संगत जिसमें स्त्री पुरुष और बाल बच्चे सभी हैं। कल इधर से होकर आनन्दपुर जा रही है।

संगत जिस रास्ते से गुजरती वह वतन से तीन चार मील के फासले पर था।

बीबी दीपकौर का पति घर न था। इसलिये खुद ही संगत को बुलाने जाने का इरादा किया और वह दूसरे दिन प्रातः ही उस मार्ग पर जा बैठी और संगत की बाट जोहने लगी।

लोगों में आतंक फैलाने के लिये उन दिनों मुस्लिम शासकों की ओर से सैनिक जत्थे भी देहातों में घूमा करते थे। दैवात् उस दिन एक ऐसा ही जत्था उस रास्ते पर उधर से ही आ निकला, जिधर से

संगत आने वाली थी।

बीबी दीपकौर ने पहले तो यही समझा कि संगत आ रही है। किन्तु ज्योंही जत्था नजदीक आ चुका बीबी तुरक सवारों को पहचान गई और रास्ते से हट कर एक खेत में बैठ गई।

उन दिनों मुस्लिम सैनिकों की हिन्दू स्त्रियों के प्रति जैसी भावनायें रहती थीं। यह तो किसी से छिपी हुई बात नहीं है। जत्थेदार सैनिकों को रास्ते पर ही खड़ा करके बीबी दीपकौर के पास पहुँच गया और घोड़े से उतर कर उसके पास ही बैठ गया।

उन दिनों बीबी दीपकौर की उम्र केवल २० वर्ष की थी। रूप फूटा पड़ता था। जमींदार की लड़की शरीर की मजबूत और रंग की गोरी। सेनानायक बीबी के रूप को देखकर विचलित हो गया। पहले तो उसने बीबी दीपकौर से उनका पता ठिकाना पूछा। फिर उसने कहना शुरू किया। देखो, गुरुलोगों से तो बादशाह नाराज है। उनके शिष्य बागी समझे जाते हैं। उन लोगों के साथ किसी को कुछ भी ताल्लुक नहीं रखना चाहिये। आखिरी बात यह है कि मैं चाहता हूँ तुम्हारे जैसी सुन्दरी से मेरे घर की शोभा बढ़े। उठो, चलो घोड़े पर बैठो। बीबी जी ने पहले तो उसे शांति के साथ ही समझाया। उन्होंने कहा, गुरुमत में अपना दृढ़ विश्वास है। इसकी हमें कोई चिन्ता नहीं कि गुरुमत से बादशाह नाराज होता है या प्रसन्न। हमारा धर्म हमें सच्चरित्र रहने की शिक्षा देता है। तुम्हें जबान सभाल कर बोलना चाहिये।

जब जत्थेदार ने देखा कि यह लड़की सहज ही काबू में आने वाली नहीं है तो उसने उन्हें पकड़ने को हाथ बढ़ाया। बीबी जी ने तुरन्त ही कमर से तलवार निकाल ली और सिंहनी की तरह झपट कर उसका सिर काट कर अलग फेंक दिया। शीघ्र ही उसके हाथ से बन्दूक लेकर उसी के घोडे पर सवार हो गई।

अपने जत्थेदार की इस प्रकार हत्या होते देखकर शेष सैनिकों ने जो नौ की तादाद मे थे, बीबी जी पर हमला किया। उन्होंने दो को तो तुरन्त ही गोली का निशाना बनाया। घोड़े की बाग मुँह में दबाकर दो पर तलवार से हमला किया। उनमें से दो ने झपट कर बीबी जी पर बर्छे से वार किया। किन्तु वह वार साघातिक नहीं हुआ। इतने में एक को और मार गिराया। दो भय से भाग गये। दो के साथ बीबी जी बड़ी फुर्ती से मुकाबिला कर रही थीं। इतने में सगत आ पहुँची। उन दो का भी खात्मा कर दिया गया।

बीबी दीपकौर बच तो गईं। किन्तु उनके शरीर पर कई जख्म आये थे। इससे वे बेहोश हो गईं। सगत के लोगों ने उनके घाव ठीक किये और पट्टियाँ बाधी। फिर डोली में डालकर सगत उन्हें आनन्दपुर ले आई। एक अच्छे से स्थान पर सगत ने डेरा लगाये। वहीं बीबी दीपकौर को सुला दिया।

जिस समय दरबार लगा हुआ था। यह माझा की सगत भी दरबार में पहुँची। दशमेश जी चिल्ला उठे। अरे मेरी बेटी कहाँ है? उन लोगों ने प्रार्थना की महाराज आपकी मुराद किससे है। गुरुजी ने फर्माया। वही मेरी प्यारी बेटी दीपकौर जिसने बहादुरी के साथ अपने धर्म की रक्षा की है।

गुरुजी की आज्ञा से बीबी दीपकौर जी को दरबार मे लाया गया। गुरु जी ने अपने हाथों से उनके घावों को धोया और मरहम पट्टी करके प्रेम से सर पर हाथ फेरकर बीबी जी को आशीर्वाद दिया।

उस दरबार मे खडे होकर बीबी दीपकौर ने अपनी आप बीती घटना को सुनाया। जिसे सुनकर लोगों के हृदय प्रेम से गद्गद् हो गये।

सिख लोगों मे बीबी दीपकौर के सतीत्व रक्षण में की गई बहादुरी के आज तक विशेष समारोहों पर गीत गाये जाते हैं।

जिला अमृतसर मे पश्चिम की ओर चौंडा नाम का एक गॉव है। जिस घटना का हम जिक्र करना चाहते हैं वह सिखों की आरम्भिक कष्ट काल की है। इस गॉव मे बहादुरसिंह नाम के एक चौधरी रहते थे। जो सच्चे ईश्वर परस्त और गुरुमत-प्रेमी थे। इस इलाके में जो भी सिख थे। उनके जत्थेदार भी आप ही थे। संवत् १७८२ वि० की बात है। इनके पुत्र की शादी हो रही थी। किन्हीं कारणों से लड़की वाले यहीं आकर शादी की रस्म अदा कर रहे थे। आस-पास के मिलने वाले सुदूर के रिस्तेदार जमा थे। इसी समय किसी ने आकर खबर दी थी कि माड़ी कम्बेह के गाव वालों की शिकायत पर मियॉ जफरबेग मारपीट करने के लिये आरहा है। वह वहॉ से कभी का चल चुका है। थोड़ी ही देर मे आया चाहता है।

बीबी धरमकौर

यह जफरबेग वही था जो भाई तारासिंह जी के यहॉ काफी पिट चुका था और खामख्वाह सिखों की जान का दुश्मन बना हुआ था।

सरदार बहादुरसिंह और दूसरे सिख घबराये नहीं और घबराते भी क्यों? जबकि इस तरह की घटनायें उनके लिये अब अचम्भे की चीज नहीं रही थीं। मजे मे विवाह का काम होता रहा। इतने में जफरबेग ने भी चौंड़ा का घेरा डाल लिया। सरदार बहादुरसिंह ने अपने साथियों से कहा बहादुरो चलो देखते क्या हो? दुश्मन को मारें या शहीद बनें। सबने जोर से हमला किया किन्तु ईश्वर की माया कि वह दुश्मनों के पचासों आदमियों को मार काट कर साफ निकल गये। एक का भी बाल बांका नहीं हुआ।

इस प्रकार का नुकसान होने के बाद जफरबेग ने सरदार बहादुरसिंह के स्त्री बच्चों को सताकर बदला लेने की ठानी। इसलिये उसने बचे हुये पचास आदमियों से बहादुरसिंह के मकान को घेर लिया। घर में उस समय केवल २० स्त्रियॉ थीं। बीबी धरमकौर ने तुरन्त सामना करने का प्रबन्ध कर दिया। उसने दो स्त्रियां तो तलवार लेकर दरवाजे पर अड़ा दीं और दो दीवारों पर बर्छे देकर खड़ी कर दीं। दो स्त्रियों को रिजर्व सैनिकों के तौर पर खड़ा कर दिया। चौदह स्त्रियॉ छत पर चढ़ गईं जिनमे कि बीबी धरमकौर खुद भी थीं। छत पर से ईंट पत्थर और गोलियों से उन्होंने दुश्मनों का सामना किया।

बहुत देर तक सामना करते रहने पर जब ऊपर का सामान निबट गया और देखा कि दुश्मन हल्ला करके घर में घुसना चाहता है। बीबी धरमकौर हाथ मे तलवार लेकर नीचे कूद पड़ीं। कुछ और भी साथिन नीचे आईं। कई आदमियों को भूतल-शायी करके बीबी धरमकौर भी जमीन पर गिर पड़ीं। तलवार अब भी उनके हाथ मे थी। इतने मे जफरबेग ने देखा कि बस काम बन गया। वह चाहता था कि इसे घोडे पर ले भागना चाहिये। बहादुरसिंह और तारासिंह की इसी मे नाक कट जायगी।

घोडे से कूदने की आवाज से बीबी धरमकौर चौकन्ना हो गईं और ज्यों ही जफरबेग उनके पास आया, उन्होंने घुमाकर तलवार का एक जोर का हाथ जमाया। वह तलवार जफरबेग के हाथ मे लगी जिससे झन्ना कर वह पछाड़ खाकर गिर पड़ा था। इतने मे उसके साथी झपट कर उसे उठा ले गये और घोडे पर डालकर ले भागे।[1]

इस तरह सती धरमकौर ने जहॉ अपने धर्म की रक्षा कर ली, वहॉ अपनी कौम का नाम भी रख लिया। धरमकौर की तरह और भी सिंहनियॉ जख्मी हुई थीं किन्तु सब खुश थीं क्योंकि उन्होंने आज अपने ही बल से अपने सतीत्व की रक्षा की थी। यह बीबी धरमकौर सरदार बहादुरसिंह जी की बहू थीं।

१. "बहादुर सिंहनियां" ले० सरदार सेवासिंह।

वीवी प्रधानकौर फत्तो रानी की ही पुत्री थीं इनका जन्म भदौड़ मे सम्वत् १७१८ ई० में हुआ था। इनकी शादी पिंड रामदास मे वावा वुड्ढा जी के खान्दान के लोगों में हुई थी। यह खान्दान रनवावा कहलाता था और इनके पति का नाम सरदारसिंह था।[1] आपके केवल एक ही

वीवी प्रधानकौर

सन्तान हुई थी वह भी मर गई। इसके कुछ ही दिन वाद आप विधवा हो गई। इससे अपने पिता राजा आलासिंह जी के ही पास आ गई और वहीं वरनाले में रहने लगीं। राजा आलासिंह ने तीस हजार सालाना की जागीर इनके गुजारे के लिये जिंदगी भर को इनके नाम करदी। जिसकी आमदनी से इन्होंने कई लोकोपकारी कार्य किये।

वीवी प्रधानकौर की रुचि ईश्वर भजन और शुभ कार्यों की ओर थी। इसलिये आलासिंह जी ने इनकी शिक्षा और सलाह के लिये चूनिया के पास हरी गाँव तहसील कसूर के भाई निक्कासिंह को वुलाकर इनके पास रख दिया। भाई खुद वड़ी धर्मात्मा प्रकृति के पुरुष थे। संस्कृत और गुरुमुखी के निक्कासिंह विद्वान थे। अत वीवी प्रधानकौर ने इनसे संस्कृत और गुरुग्रन्थ दोनों ही में अच्छी योग्यता कर ली।

वीवीजी ने भाई निक्कासिंह जी के लिये वरनाला और पटियाला में धर्मशालायें वनवादीं जो कि अव डेहरा वावा गांधा के नाम से मशहूर हैं। वावा गाँधासिंह इन्हीं भाई निक्कासिंह जी की पाँचवीं पुश्त में हुये थे किन्तु वे अपनी करामातों और अच्छे स्वभाव से काफी मशहूर हो गये। उनके नाम के अन्य स्थानों पर भी डेरे हैं।

वीवी प्रधानकौर अपनी जागीर की आमदनी का अधिकांश भाग लोक की भलाई के कामों में ही खर्च करती थीं। उन्होंने वरनाला मे एक सदावर्त और एक संस्कृत पाठशाला कायम की थी।

संस्कृत मे उन्होंने खुद ऐसी योग्यता हासिल करली थी कि उन्होंने वशिष्ठ पुराण[2] पर एक भाष्य लिखा था। जिसे छप गया वताते हैं।

वरनाले के डेरे साहव में एक हस्तलिखित गुरुग्रथ साहव हैं। यह वीवी वीरो के हाथ के लिखे हुये हैं। यह वीवी वीरो वीवी प्रधानकौर की सहेली थीं। प्रधानकौर जी ने इनका आनन्द धर्मसिंह जी रघावा के साथ पढ़वा दिया था। और उन्हें हर प्रकार की मदद देती रहती थीं।

कहा जाता है वीवी वीरो के कोई सन्तान न थी इसलिये उसने गिल गोत के जाटों में व्याही हुई अपनी वहिन के लड़के काहनसिंह को गोद ले लिया।

अधिक समय वीवी प्रधानकौर धार्मिक कामों में ही लगाती थीं। राजधानी में क्या होता है किसके हाथ मे क्या ताकत है इन वातों पर वहुत ही कम ध्यान रखती थीं। फिर भी यह वात न थी कि वे मौका आने पर किसी काम को सम्भाल नहीं सकती थीं। एक वार उन्होंने दीनूमल के व्यवहार को ठीक करने के लिये हस्तक्षेप भी किया था। और उसे कैद भी करा लिया था किन्तु अत में वीवी साहवकौर की इच्छा के प्रतिकूल जाना उचित न समझ कर अपना रुख शासन प्रवन्ध की उलझनों की ओर से हटा लिया।

सन् १७८६ ई० में वीवी प्रधानकौर का देहान्त हो गया।

आप सच्ची ईश्वर भक्त, धर्म-परायण, और साधु सतों की खातिर करने वाली राजकुमारी थीं।

१ 'पटियाला शाही घराने की शूरवीर वीवियां। पे० २७ ले० आत्मासिंह।

२ सभवत. वशिष्ठ स्मृति।

और जहाँ तक हमे मालूम पड़ता है सिखों मे आप पहली ऐसी महिला थीं जो संस्कृत और गुरुमुखी दोनों में काफी पाडित्य रखती हों।

बीबी राजेन्द्रकौर जी राजा आलासिह जी की पोती और उनके द्वितीय पुत्र भूमियांसिंह जी की पुत्री थीं। इसका जन्म १७३६ ई० मे हुआ था। इनके पिता का देहात जब कि ये केवल नौ वर्ष की थीं हो चुका था। राजा आलासिंह ने इनकी विधवा माता सहजादकौर के नाम अपने राज्य का चौथा भाग जागीर कर दिया था। बीबी राजेन्द्रकौर का विवाह राजा आलासिंह जी ने सन् १८५१ ई० मे फगवाड़े के रईस चौधरी तिलोकचद जी के घर कर दिया था। दैवगति न्यारी होती है। थोड़े ही दिन बाद बीबी राजेन्द्रकौर विधवा हो गई। अपने पति से केवल इनके एक लड़की पैदा हुई थी। अपने पति की कुल जायदाद और माल की आप ही मालिक हुईं हालाकि कुछ दावेदार खड़े हुये किंतु आपस मे ही लड़कर खत्म हो गये।

बीबी राजेन्द्रकौर

बीबी राजेंद्रकौर के पास बहुत बड़ी धनराशि थी। जब अहमदशाह अब्दाली को खिराज मे रुपया देने के लिये राजा आलासिंह को जरूरत पड़ी आपने सत्तर हजार रुपये देने का साहस दिलाया था।

राजा आलासिंह की तरह महाराजा अमरसिंह को भी भट्टी मुसलमानों से बराबर लड़ना पड़ा। एक गरीबदास नाम के सरदार ने इन्हीं दिनों पंजोर पर कब्जा कर लिया। जब कि अमरसिंह जी भाटियों से लड रहे थे। मनीमाजरे की लड़ाई के बाद महाराज अमरसिंह जी ने गरीबदास और उसके हिमायती हरीसिंह सियालवेवाले पर चढ़ाई की। हरीसिंह के सहायक रामगढ़िया जस्सासिंह और गुरदत्तसिंह, और साहबसिंह आदि कई मिसलपति थे। उन सबने इकट्ठे होकर पटियाला की फौजों पर हमला कर दिया। जिसमे ३०० से ऊपर आदमी पटियाले के काम आये और वे लूट-पाट भी कर ले गये। इस घटना से महाराज बडे क्रोधित हुये और उन्होंने अपने समस्त भाई-बन्धुओं और रिश्तेदारों को रण-निमत्रण भेजा। फगवाड़े से बीबी राजेद्रकौर भी लगभग ३०० सैनिक लेकर पटियाला पहुँचीं। कैथल आदि से भी सहायता आई। इसका फल यह हुआ कि छोटी-मोटी लड़ाइयों के बाद हरीसिंह सियालवा से राजीनामा हो गया।

महाराजा अमरसिंह ने बीबी राजेद्रकौर की इस सहायता और बुद्धिमानी के लिये हार्दिक कृतज्ञता प्रकट की।

महाराजा अमरसिंह जी के स्वर्गवास के समय महाराजा साहबसिंह छोटी उम्र के थे। केवल छः वर्ष के। बीबी राजेंद्रकौर ने पटियाला पहुँच कर दीवान नानूमल को वजीर मुकर्रिर किया और सारा राज-प्रबन्ध अपनी बुद्धिमानी से जँचा दिया।

किंतु दो तीन वर्ष बाद ही पटियाला मे गड़बड़ पैदा हो गई। कुछ हकदार खड़े हो गये और उन्होंने बगावत मचा दी। इनमें किलेदार शार्दूलसिंह की रानी खेमकौर और सोभासिंह धारीवाल आदि के नाम उल्लेखनीय हैं। माई हुक्मा महाराज साहब की देख-भाल करती थीं। उनके मरते ही विद्रोह हो गया। राज्य मे चारों ओर अराजकता छा गई। और दीवान नानूमल जी को गिरफ्तार कर लिया गया।

जब यह समाचार फगवाड़े में बीबी राजेंद्रकौर को मिले तो वे तुरंत ही सेना लेकर पटियाला आईं। वहाँ पहुँचकर सारी स्थिति की जानकारी हासिल की और वास्तविकता को जानते ही दीवान नानूमल को कैद से छुड़ाकर उसे फिर से वजीर बनाया।

कहा जाता है कि राजेंद्रकौर कुछ ही महीने पटियाले मे न पहुँचती तो राज्य को भारी क्षति पहुँ-

चाने वाली हालत वहाँ पैदा हो जाती।

दीवान नानूमल को राजेन्द्रकौर ने जेल से छुड़ाकर वजीर बना तो दिया लेकिन खजाने में रुपया तो मालगुजारी और लगान से आता था। देहात के लोग तो यह चाहते ही थे कि राज्य में झगड़ा रहे। इसी में उन्हें लाभ भी दिखाई देता था क्योंकि राज के जागीरदार और अहलकार उन्हें बहकाते रहते थे। बीबी राजेन्द्रकौर आसपास के राजा रईसों को दंड दिलाने के लिये मरहठा सरदार धाराराव को जो कि दिल्ली के आसपास था बुला भेजा।

धाराराव की मरहठा सेनायें थानेसर, कैथल होते हुये अम्बाले की ओर आगई। इधर के सरदारों ने पटियाला का जो हिस्सा दबा लिया था उसे वापिस कराया। जो लोग खिराज और माल गुजारी नहीं दे रहे थे उन्होंने मराठों की लूटपाट के डर से चुकाने मे हीला-हुज्जत करना छोड़ दिया इसी तरह कुछ रुपया भी हाथ आया।

धीरे-धीरे नानूमल का प्रभाव फिर बढ़ गया। और अब वह महाराज, बीबी और उनके दूसरे साथियों की भी परवाह नहीं करने लगा। क्योंकि मरहठों से उसकी दोस्ती हो चुकी थी। उसने बसंतसिंह नाम के किलेदार को जो बीबी राजेन्द्रकौर और महाराज का शुभचिन्तक था कैद कर लिया। इससे बीबी राजेन्द्रकौर को बड़ा दुख हुआ। अब वह भी नानूमल की विरोधी हो गई।

नानूमल समझता था कि मरहठों के डर से बीबीजी दबेंगी किन्तु उन्होंने मरहठों के ही लिये कह दिया कि हमें अब उनकी जरूरत नहीं है और न हम उनको खिराज के तौर (चौथ) देंगे। हाँ लड़ाई का खर्च हम जरूर दे देंगे।

इस प्रकार लड़ाई की नौबत भी आ गई। मरहठा बीबीजी से नाराज हो गये। उनकी कुछ फौजें भी आ चुकी थीं। दीवान मरहठों के पास चला गया। इधर बीबी जी ने उसके पुत्र देवीदत्त को नजरबंद करा दिया। क्योंकि वे समझती थी कि इस तरह वह कोई दगा न कर सकेगा। किन्तु मामला उल्टा हुआ। दीवान नानूमल अपने पुत्रों को छुड़ाने के ३०००० मरहठों सैनिकों को पटियाला पर चढ़ा लाया। मरहठों ने बहादुरगढ़ पर कब्जा कर लिया। इस बीच बीबी राजेन्द्रकौर ने राजधानी पटियाला में बहुत सारी सेना इकट्ठी कर ली। छुटपुट हमले भी मरहठों के साथ हुए। इससे मरहठा सेनापति समझ गया कि बीबी राजेन्द्रकौर को डर दिखा कर नहीं दबाया जा सकता। अंत में यह तय हुआ कि बीबी मथुरा जाकर महादजी सिंधिया से तय कर आवें। वहाँ से वे जो हुक्म ले आवेंगी उसके अनुसार ही मामला निपट जायगा।

बीबी जी मथुरा गईं। वहाँ उनकी सिंधिया ने काफी आवभगत की। और मामला डेढ़ लाख रुपया नकद पर निबट गया। किन्तु बीबी जी के पास रुपया कहाँ था। वे पटियाला पहुँच कर देने का वायदा कर आईं।

इधर अहलकार लोगों ने महाराज साहबसिंह जी को भड़का दिया कि बीबी जी तो इस प्रकार अपना प्रभुत्व बनाये रखना चाहती हैं। दीवान नानूमल भी उनसे माफी मांगने को फिरता है। इससे आप के हाथ में अभी राज्य की बागडोर नहीं आनी है। चुगल लोगों की बातों का साहबसिंह जी पर असर हो गया और उन्होंने निश्चय कर लिया कि वे राजेन्द्रकौर से अब कोई वास्ता नहीं रक्खेंगे। और राज्य प्रबंध भी उन्होंने अपने हाथ में ले लिया।

जब मथुरा से राजेन्द्रकौर लौट कर आईं तो उनका किसी प्रकार का स्वागत-सत्कार नहीं हुआ।

महाराज कई वार बुलाने पर भी उनके पास नहीं गये। उधर वे मरहठों से जो वायदा कर आईं थीं। उसके लिये भी उन्हे दुख हुआ। अत. इन मानसिक वेदनाओं से वे वीमार पड़ गईं और उसी वीमारी मे चल वसीं।

वीवी साहवकौर महाराज अमरसिंह जी की पुत्री थीं इनका जन्म सन् १७७१ ई० मे रानी राजकौर के उदर से हुआ था। राजा साहव इन्हीं के छोटे भाई थे। आपकी शादी सन् १७७७ ई० मे कन्हैया मिसल के नायक सरदार हकीकतसिंह के पुत्र जयमलसिंह के साथ हुई थी। जयमलसिंह इनसे एक वर्ष वडे थे और फतहगढ़ मे उनके वाप का सदर मुकाम था।

वीवी साहवकौर

वीवी साहवकौर के पिता राजा अमरसिंह जी का देहान्त १७८१ ई० मे हो गया। उस समय आपकी उम्र १० साल और आपके भाई की ७ साल की थी। यह हम पहले लिख आये हैं कि आप के भाई राजा साहवसिंह को राजकाज मे वीवी राजेन्द्रकौर जोकि उनकी बुआ होती थीं मदद देती रहीं। वीवी राजेन्द्रकौर का भी सन् १७६१ ई० देहान्त हो गया। उस समय राजा साहवसिंह जी की उम्र लगभग १७ साल की हो चुकी थी और वीवी साहवकौर २० वर्ष की हो चुकी थीं।

पटियाला के अहलकारो मे धड़ावन्दी थी। वे आपस मे एक दूसरे को नीचा दिखाने की कोशिश मे रहते थे। महाराज साहव के आगे भी लड़भिड़ वैठते थे। अलाहीवख्श का खून उनके कैम्प मे ही किया गया था। इन वातों से महाराजा साहव घवरा गये। जैसे तैसे उन्होंने दो वर्ष तो निकाले किन्तु परिस्थिति विगडती जा रही थी। इसलिये सन् १७६३ ई० मे आपने अपनी वहिन साहवकौर को बुला लिया और उन्हें ही वजीर के कुल अधिकार दे दिये। वजारत हाथ मे आते ही वीवी साहवकौर ने सव से पहले अधिकारियों मे हेर फेर किया। अपने विश्वास के लोगों को रक्खा। वाकी झगड़ालू और अविश्वस्त लोगों को निकाल दिया। उन्होंने सरदार तारासिंह को तो अपना नायव वनाया और दीवान नानूमल के भतीजे दीवानसिंह को दीवान मुकर्रिर कर दिया। दूसरे ओहदों पर भी इसी प्रकार की नियुक्तियॉ कर दीं। इस प्रकार उन्होंने पार्टीवाजी को खतम करने का तरीका अखित्यार किया। जो लाभदायक भी रहा।

जवकि पटियाला मे वीवी साहवकौर इस प्रकार का प्रवध करने में लगी हुईं थीं। उसी समय फतहगढ़ में उनके पति जयमलसिंह को उसके चचेरे भाई फतहसिंह ने कैद कर लिया। कैद करने का विवरण इस प्रकार है। सरदार हकीकतसिंह और महतावसिंह दोनों भाई थे। इनमे हकीकतसिंह के लड़के का नाम जयमलसिंह और महतावसिंह के लड़के का नाम फतहसिंह था। जव हकीकतसिंह और महतावसिंह दोनों भाई मर गये तो उनके पुत्रों मे जमीदारी के वटवारे के लिये झगडा हुआ। जब तक बीबी साहबकौर फतहगढ रहीं तबतक तो वे झगड़े को दबाती रहीं किन्तु उनको इधर पटियाला मे फॅसा देख कर सरदार फतहसिंह ने सरदार जयमलसिंह को कैद कर लिया।

जब यह समाचार वीबी साहबकौर को पटियाला से मिला तो वे पटियाला से सेना की एक टुकडी लेकर फतहगढ़ पहुॅचीं। भाभी और देवर की सेनाओं में खूब लडाई हुई। साहबकौर अपनी सेना का खुद ही संचालन करती थीं। देवर हार गया और उसकी सेना भाग खड़ी हुई वे अपने पति को छुडा कर और फिर मजबूत प्रवध करके पटियाला लौट आईं।

उनकी इस बहादुरी का पटियाला मे भी बड़ा असर हुआ। इधर के जो लोग सिर उठाने की तैयारी में थे वे झिझक गये।

दीवान दीवानसिंह अपने काम में लापरवाह और सुस्त था और पार्टीबाजी मे भी दिलचस्पी लेता था, अत साहबकौर ने उसे हटा दिया और उसकी जगह रामदयाल को दीवान बनाया। इस प्रकार वे सरकारी आदमियों के कारनामों पर कड़ी नजर रखती थीं। साथ ही वे इस बात का ख्याल रखती थीं कि अहलकार लोग प्रजा को अनुचित तरीके से डरा धमका कर रिश्वत आदि मे उसे लूटें नहीं। जमीदारों से मिलने-जुलने की उन्होंने खुली छुट्टी देदी। प्रजाजन उनके पास सीधे जाकर शिकायते कर सके, इसका उन्होंने ऐलान कर दिया। जार्ज टामसन का जिक्र पिछले अध्यायों मे आ चुका है। वह किस प्रकार मरहठों की सेना का अफसर हुआ और फिर किस प्रकार उनसे अलग होकर उसने पंजाब मे अपनी हकूमत की नींव डाल दी। इन बातों को यहाँ दुहराने की आवश्यकता नहीं।

टामसन बराबर लूट मार करता था और उसी से अपनी सेना का खर्च चलाता था। उसे पजाब की रियासतों को लूटने का एक मौका हाथ आया। पंजाब के राजा लाहौर में इकट्ठे हुये। नादिरशाह के आक्रमण के समय अपनी रक्षा के सम्बन्ध में विचार करने के लिये। टामसन ने इसे अपने लिये एक मौका समझा और वह जीन्द राज्य में घुस आया। जब तक जीन्द नरेश लाहौर से लौटे वह राजधानी तक पहुँच गया। फिर भी जीन्द की सेना कई दिन तक लड़ती रही।

उधर बीबी साहबकौर ने देखा यह दुश्मन आज जीन्द को तबाह करता है। कल पटियाला को भी लूटेगा। इससे अच्छा यही हो कि उसे जीन्द पर चढ़ाई करने का मजा चखाया जाय और इस समय दो ताकतें उसे हरा भी सकेंगी। अत. उन्होंने एक मजबूत सेना लेकर जीन्द की ओर कूच कर दिया।

दो सेनाओं के बीच में घिरने पर टामसन बड़ी-बहादुरी से लड़ा किन्तु आखिरकार उसे विजय होने के कोई लक्षण दिखाई नहीं दिये। उसके खुद के मुकाबिले पर बीबी साहबकौर आ गईं। अत युद्ध संचालन के काम में उसे सहूलियत नहीं रही। और उसकी सेना भाग खड़ी हुई। इस प्रकार इस युद्ध में बीबी साहबकौर की विजय हुई।

इस विजय से जहां उनका प्रभाव और आतंक बढ़ा। वहाँ जीन्द राज्य के साथ मुहब्बत के ताल्लुकात भी बढ़ गये। पटियाला के पार्टीबाज जागीरदार और अहलकारों के दिल में बीबी जी की दहशत और बढ़ गई।

नाहन की राजपूत रियासत में उस समय राजा कर्मप्रकाश राज्य करता था। उसके राज्य में मौजीराम नाम के एक रईस ने बगावत उठा रक्खी थी। उसके साथ बहादुर डाकुओं का एक दल था। वह बहुत कोशिश करने पर भी नहीं दबाया जा सका। तब राजा कर्मप्रकाश ने बीबी साहब कौर को याद किया। वे अपनी फौजें लेकर नाहन पहुँची। मौजीराम अपने दल-बल के साथ मुकाबिले पर आया। बड़ी बहादुरी के साथ लड़ा किन्तु सिखों के आगे उसके आदमी ठहर न सके। बीबी साहब ने उसकी शक्ति को छिन्न-भिन्न कर दिया और जिन स्थानों पर उसने कब्जा कर लिया था वे सब राजा साहब नाहन के कब्जे मे कर दिये। राजा कर्मप्रकाश बीबी साहब का बडा अहसानमन्द हुआ। उसने बडी २ कीमती चीजें बीबी जी को भेट दीं और उन्हे चार महीने तक नाहन में रखा।

हरिद्वार के कुम्भ के मेले पर भी बीबी जी को अपने धर्म की रक्षा के लिये जाना पडा और उन साधुओं को दंड देना पड़ा। जिन्होंने उदासीन संत सतोपसिंह और प्रियतमदास के सैकड़ों साथियों को जुलूस निकालने के विवाद में मार डाला था।

सन् १७६४ ई० में बीबी साहबकौर जी को एक कठिन मोर्चा लेना पडा और वह मोरचा मरहठों

से हुआ। १५००० फौज के साथ मरहठा सरदार अन्ताराव और लक्ष्मनराव सिख राज्यों से चौथ वसूल करने के लिये पंजाव मे आ घुसे। छोटे २ जागीरदारो का तो कहना ही क्या था किन्तु जीन्द और कैथल के राजाओं ने भी चौथ देकर अपना संकट टाल दिया।

किन्तु बीबी साहबकौर इस चौथ के झगडे को अपमान और सदा के लिये दिक्कत समझती थीं अत. उन्होंने पजाब के सभी छोटे २ सरदारो को लिखा कि आप हमारी मदद को आवे। अगर हम मरहठों से जीत गये तो हमारा और आपका क्लेश मरहठो से सदैव के लिये मिट जायगा।

मराठों की सेना अधिक थी और उसके संचालक भी सुलझे हुए सेनानायक थे। अत सिख फौजे धीरे-धीरे पीछे की ओर हटने लगीं और संभव था कि थोड़ी देर मे भाग निकलतीं। बीबी साहबकौर को मालूम हो गया कि सिख सिपाहियो पर मरहठों का रौब गालिब हो गया है। वरना इनके आगे मरहठे हैं क्या चीज? कहाँ पंजाब के तगड़े जवान और कहां वे नाटे-नाटे मरहठा। उन्होंने अपना घोड़ा आगे बढाया और अपनी सेना को सबोधित करके कहने लगी। "बहादुरो! यह क्या कर रहे हो क्या तुम्हारी मातओं ने इसी दिन के लिए दूध पिलाया था। तुम कैसे मर्द हो। देखो मैं स्त्री हूँ। किन्तु तुमको विश्वास दिलाती हूँ। शरीर की बोटी-बोटी उड जाने पर भी मैं रण से पीछे कदम नहीं उठाऊँगी। आओ मैं आगे बढ़ती हूँ। और जरूर बढूगी। क्या आप मुझे छोड़ कर भाग जाओगे। लोग आपको क्या कहेंगे यही न कि अच्छे मर्द हो तुम। एक औरत तो मैदान मे डटी रही और तुम मैदान से बाहर भाग आये। क्या आप अपने महाराज की बहिन और अपनी बेटी को लड़ाई मे अकेली छोड़ कर भाग जाओगे।" इतना कह कर उन्होंने तलवार खींची और आगे की ओर बढ़ीं। फिर क्या था 'वाहि गुरुजी की फतह का नारा लगा कर सिख डट कर लड़ने लगे। दिन भर लडाई हुई। कोई भी न हारा। रात हुई और लड़ाई बन्द की गई।

रात के समय बीबी के कैम्प मे रईसो और सेनानायकों की सभा हुई। सबने यही कहा कि कि एक तो मरहठों के पास सेना ज्यादा है। दूसरे युद्ध के तरीके वे खूब जानते हैं। अत. जब यह निश्चय है कि हमारी हार होगी तब उचित यही है कि रातों रात हम अपनी सेनाओं को यहां से बचा ले चले किन्तु बीबी जी भागने पर हर्गिज तैयार नहीं हुई और उन्होंने उसी समय कालीरात मे ही महरठों पर छापा मारना निश्चय किया। उन्होंने कहा मरहठा फुर्तीले हो सकते है। लड़ने मे हुशियार भी होंगे किंतु वे पजावियों जैसे मज़बूत नहीं है। अत दिन भर की लड़ाई से वे जरूर थक कर अब सो रहे होंगे। निदान ऐसा ही हुआ। मरहठों की थकी और सोती हुई सेना पर आक्रमण कर दिया गया। मरहठे वीर भले ही थे किंतु चारों ओर से जब दुश्मन उनके बीच मे घुस चुका था तब क्या करते आखिर उन्हे भागना ही पड़ा। क्योंकि उन्हे यह भी ख्याल हो गया था कि सिखों के पास और ताजा सेनायें आगई दिखती हैं।

इस प्रकार हिम्मत और बुद्धिमानी से काम लेने के कारण बीबी साहबकौर को विजय मिल गई। इस लड़ाई के बाद उनका नाम और भी मशहूर हो गया।

सन् १८६५ ई० मे बीबी जी को बेदी साहबसिंह और नवाब मालेरकोटला के बीच में पड़ना पड़ा। क्योंकि उसने गौ-वध करना आरम्भ कर दिया था और इस प्रकार की अफवाह फैलाई बेदी साहबसिंह ऊना वालों ने। सिख बेदी साहब की बातों पर विश्वास करते ही थे। अत. बीबी साहबकौर ने अपनी सेना मालेरकोटला के साथ युद्ध करने भेज दीं। किंतु महाराज कर्मसिंह जी के साथ नवाब की जो सधि हुई थी। उसके अनुसार उन्हे नवाब की मदद करनी चाहिए थी किंतु धर्म के मामले मे

उन्हें खिलाफ होना पड़ता तो वे पीछे न रहीं। दैवयोग से नवाव वीवी साहवकौर की सलाह को मान गया और उसने वेदी साहवसिंह से समझौता कर लिया।

वीवी जी के उपरोक्त इतिहास मे घटनाओं का कुछ हेर-फेर लेखक करते हैं। जार्ज टामसन और नाहन के विवरण को मरहठों के युद्ध से पीछे भी माना जाता है। हमारा मत भी यही है कि जार्ज टामसन से झगड़ा मरहठों की लड़ाई के वाद ही हुआ।

जव वीवी साहवकौर का प्रभाव इस प्रकार वढ़ रहा था तो स्वार्थी लोगों ने महाराज साहव-सिंह के कान भरने शुरू किये और एक दिन आया कि दोनों भाई-वहिनों में गहरा मनमुटाव हो गया। और महाराज साहव ने अपनी वहिन पर निम्न इल्जाम लगाये —

(१) वीवी जी ने राजा कर्मप्रकाश नाहन द्वारा दी गई हथिनी को अपनी निजी सपत्ति वना लिया है हालांकि वह फौजी सहायता के वदले में मिली है।

(२) विना ही महाराज से आज्ञा लिये वीवी जी ने अपनी जागीर भेरिया में एक किला वना लिया है।

(३) साथ ही उन्होंने भेरिया का नाम अपनी ही मरजी से उभयवाल रख दिया है।

(४) वीवी जी महाराज के जो पुत्र हुए उनसे खुश नहीं हुई हैं।

(५) महाराज साहव को यह विश्वास हो गया है कि वीवी जी उनकी आज्ञाओं की कोई परवाह नहीं करतीं।

वस यहीं से दोनों भाई-वहिनों मे गहरा मतभेद हो गया। महाराज साहवसिंह ने एक वार तो यहा तक कृतघ्नता करने की हिम्मत की कि कुछ फौज अपनी वहिन की जागीर पर कव्जा करने को भेजना तय कर लिया किन्तु सरदार दलसिंह आदि के समझाने से वह ऐसा तो न कर सके।

एक वार उन्हे पटियाला वुलाकर कैद करने की भी कोशिश की गई किंतु उस समय वह अपनी वुद्धिमानी से निकल गई।

जार्ज टामसन ने भाई वहिन की लड़ाई से लाभ उठाने के इरादे से पटियाला पर, धावा करने का इरादा किया। इस डर से महाराज ने फिर मेल कर लिया।

अतिम दिनों वीवी जी अपनी जागीर उभयवाल में ही रहने लगी थीं किंतु उन्हे अव जीवन से अधिक दिलचस्पी नहीं रह गई थी। वह अपने भाई के वदले हुए रुख को देख कर सदा ही नाराज रहती थीं। आखिर सन् १८०१ ई० में उभयवाल में ही उनका देहात हो गया।

वीवी साहवकौर वहादुर थीं। वुद्धिमान थीं और थीं हिम्मतवाली। इन वातों से भला कौन इन-कार कर सकता है। साथ ही सव किसी को यह भी मानना पडता है कि पटियाला राज्य की वे रक्षक भी थीं।

वीवी जी के एक पुत्र पैदा हुआ था। जो छोटी ही उम्र मे मर गया। इसलिए सन १८०१ ई० में वीवी साहवकौर जी के देहांत के वाद उनके पति जयमलसिंह जी ने दूसरी शादी कर ली। जयमलसिंह के उस दूसरी सरदारनी से एक लडकी चदकौर नाम की पैदा हुई। यही चदकौर महाराजा रणजीतसिंहजी के पुत्र खड्गसिंह जी के साथ व्याही गई थीं और इन्हीं चदकौर के उदर मे महाराज नौनिहालसिंह का जन्म हुआ था।

वीवी साहवकौर ने मलवई वुंगा अमृतसर में अपने विश्वासपात्र सरदार तारासिंह जी द्वारा

कई मकान बनवाये थे।

दान-पुण्य मे भी बीबी जी की अच्छी रुचि थी। बहादुरी मे तो पटियाला-घराने मे वे अद्वितीय मानी जाती हैं।

लाहौर के हाकिम मीर मन्नू ने सिखों के सताने मे हद कर दी थी। इस बात को तो प्रत्येक भारत-वासी जानता है। उसके समय मे जहाँ सिख पुरुषों के सिरो पर कीमत लगा दी गई थी। वहाँ स्त्रियों और बच्चों के साथ भी काफी बेरहमी की गई थी। मलापुर की बहादुर सिंहिनियों पर उसके द्वारा जो रोमाचकारी जुल्म ढाये गये। उन्हीं का यहाँ हम संक्षिप्त-सा वर्णन करते हैं।

मलापुर की वीरागनायें

सन् १७५७ ई० की बात है। उसके यहाँ देहात से पकड़ी हुई सिख स्त्रियो का एक गिरोह लाया गया। इल्जाम उन पर यही लगाया गया कि इनके खाविन्द हुकूमत के खिलाफ गिरोह बना कर लूट-मार करते फिरते हैं और यह उनके लिये जंगलों मे खाना पानी पहुँचाती हैं।

मीर मन्नू ने उन्हे उस प्रसिद्ध कोठरी मे डलवा दिया जो इसी काम के लिये मशहूर हो चुकी थी। धूप के समय उन्हे बाहर निकाल कर प्रत्येक से १८-१८ सेर चना पिसवाने का और भूखी प्यासी रखने का हुक्म दिया गया। और कहा गया कि अगर यह इस्लाम कबूल करले तो छोड दिया जायगा।

उन्हें इस प्रकार बराबर चार दिन तक तकलीफे दी गई। गर्मी के दिनों मे धूप मे बिठाकर चक्की चलवाना और रात को कोठरी मे बन्द कर देना। यह कितनी भयंकर सजा है। सुनने मात्र से ही रोमाच हो आते हैं। चौथे दिन मीर मन्नू खुद उनके पास गया और उनसे इस्लाम कबूल करने की बात कही, उन मर्दानी सिंहिनियों ने जवाब दिया। जिस इस्लाम मे तेरे जैसे नराधम और शैतान पैदा होते हैं जो स्त्रियों पर इस प्रकार का जुल्म कर सकते हैं। इस प्रकार के धर्म का हम नाम भी नहीं सुनना चाहतीं।

हमे बेतों से पिटवा कर भूख और प्यास से परेशान करके धर्म से नहीं डिगाया जा सकता। हमें तो यह सौभाग्य ही होगा कि अपने धर्म पर कुर्बान हों, जिससे गुरुओं के चरणों मे स्वर्ग मे हमे स्थान मिले।

अत्याचार करने वाला कोई भी फला-फूला हो। ऐसा कभी दुनिया मे हुआ नहीं है।

यदि तेरे इन्सानियत होती, तेरे साथियों के दिल मर नहीं गये होते तो हमारे इन बच्चो को जो अभी दूध और पानी पर ही जीते हैं। इस प्रकार निढ़ाल न होना पड़ता। हम इनका तड़पना देख रही हैं। हमारे माता के हृदय हैं। हृदय चीत्कार कर उठते है किन्तु हम धर्म पर अटल रहेगी चाहे जो कुछ हो।

हमें यह भी विश्वास है कि हम तेरी जेल से मुक्त होंगी। हमारे आदमियों को पता चलेगा तो प्राणों की बाजी लगा कर भी हमें छुड़ा ले जायगे और यदि हमारे प्राण तुरकों के हाथ से जाते है तो देश में ऐसी आग धधकेगी जो मुसलमानी हुकूमत को राख कर देगी।

मीर मन्नू सिंहिनियों के मुंह से इस प्रकार बाते सुन कर आग-बबूला हो गया। उसके सिपाहियों ने डंडे, लात और घूंसों से सिंहिनियों पर हमला कर दिया। उनकी गोद के बच्चे आसमान की ओर उछाल कर बर्छियों से छेद डाले। इसके बाद यह कहता हुआ वह चला गया कि और सोच लो वरना तुम्हें भी भालों की नोंक पर टांग दिया जायगा।

दूसरे दिन मीर मन्नू शिकार को गया हुआ था। उसका घोड़ा एक जानवर को देखकर बिदक गया। वह घोड़े पर से गिर पड़ा किन्तु एक पांव रकाब में उलझा हुआ रह गया। घोड़े ने उसे घसीट-घसीट कर मार डाला। इस प्रकार उसको इन जुल्मों का फल मिल गया।

इधर जब सिखों ने सुना कि उनकी स्त्रियां इस प्रकार गिरफ्तार करके लाहौर ले जाई गई। उन्होंने प्राणों का मोह छोड़कर हमला कर दिया और उस कारावास को तोड़ डाला। लेकिन उनके दिल कांप गये जो कुछ उन्होंने भीतर जाकर देखा उससे। बच्चों के टुकड़े इधर उधर पड़े हुये थे और स्त्रियां प्राय. बेहोश पड़ी थीं। किसी २ के गले में बच्चों की अन्तड़ियां पड़ी थीं जिन्हें मीर मन्नू के आदमी डाल गये थे।

सिख उन देवियों को घोड़ों पर बिठाकर लाहौर से द्रुत गति के साथ निकल गये।

इधर मीर मन्नू की स्त्री पहले तो भागकर दिल्ली पहुँची वहाँ उसे एक ऊँचे ओहदेदार ने अपने घर में रख लिया किन्तु वह फिर वहाँ से लाहौर मे आई इस प्रकार बेचारी को अपने पति के पापों का दण्ड भोगना पड़ा।

हमने इन वीर सिंहिनियों को मुलांपुर शीर्षक से इसलिये याद किया है कि मीर मन्नू के कर्मचारियों ने गिरफ्तार करके इन्हें मलांपुर में ही इकट्ठा किया था। यह विभिन्न इलाकोंसे इकट्ठी की गई थीं और इनकी तादाद लगभग ३०० थी।

जिन लोगों ने लाहौर के शहीदगंज को देखा है वह अनुमान कर सकता है कि उस गहरे तहखाने में जहाँ हवा भी मुश्किल से पहुँचती है। गर्मी के दिनों में ३०० स्त्री-बच्चों को कितना संकट रहा होगा। कलकत्ते की वह काल कोठरी जिसे अंग्रेज आज तक याद रखते हैं। शहीदगंज के तहखानें की बराबर कभी भी कष्टदायक नहीं रही होगी। धर्म का प्यार भी इसे ही कहते हैं। वह धर्म ही क्या जिस पर चलने वालों को तकलीफें बरदाश्त न करनी पड़ी हों या जिसकी नींव में बलिदानों का इतिहास न हो।

सिख धर्म को यह गौरव है कि उस पर पुरुष स्त्री और बच्चे सभी ने अपनी बलि चढ़ा कर उसे समुन्नत किया है।

इसी का यह फल है कि आज भी सिख समाज के स्त्री. पुरुष और बच्चे सभी में अपने धर्म के लिये गहरी श्रद्धा और गौरव है।}

डल्ले वाली मिसल में सरदार तारासिंह जी एक बड़े बहादुर सरदार हुये हैं। कहा जाता है कि प्रसिद्ध आक्रमणकारी बादशाह नादिरशाह छुटपन में बकरियां चराया करता था और वह बकरियाँ चराने वाला नादिरशाह दिग्विजयी वीरों में गिना जाने लगा।

सरदार रतनकौर

इसी प्रकार सरदार तारासिंह जी भी आरम्भ में बकरियां ही चराया करते थे किंतु अमृत चखने के बाद वह ऐसे शूरवीर बन गये कि उन्होंने लगभग आठ लाख आमदनी के इलाके को अपने कब्जे मे कर लिया।

सरदारनी रतनकौर इन्हीं बहादुर सरदार की धर्मपत्नी थी। जब सरदार साहब का देहान्त हो गया तो महाराजा रणजीतसिंह जी मातमपुर्सी के बहाने आपके वहाँ पहुँचे। सरदारनी ने भी महाराज का उचित सत्कार किया उन्हें शहर (राहूँ) से बाहर ठहरा दिया और उनके लिये भेंट मे पांच घोड़े, हाथी का एक जंजीर और छः लाख रुपये पेश किये और कहलाया कि महाराज हमारी जागीर पर सदैव कृपा दृष्टि रक्खें किन्तु महाराज चाहते थे कि इतनी बड़ी जागीर जो कि पांच लाख रुपये सालाना आमदनी

की है इसे अपने राज्य में मिलाले। अत' उन्होंने बुद्धिमानी से किले पर कब्जा करने के लिये सरदारनी के पास खवर भेजी कि हम किले को देखना चाहते हैं। इस पर सरदारनी ने कहला भेजा मैं सब समझती हूँ। किला तो सहज ही महाराज को न दूंगी। महाराज के पास यह खवर भेज कर उधर किले में लड़ाई की तैयारी करा दी। यह घटना १८०७ ई० की है।

पूरे दिन भर सरदारनी लड़ती रहीं उन्होंने सैनिकों का नेतृत्व खुद किया किन्तु शाम के समय एक नमकहराम ने किले का फाटक खोल दिया। इस प्रकार उनका किला पराजित हो गया।

महाराजा रणजीतसिंह जी भी वीरता से खुश हुये। अत उन्होंने उनके गुजारे के लिये कई गांव छोड़ दिये। पीछे १८०८) माहवार नकद पेन्शन जीवन भर देते रहे। सन् १८४६ मे इस वीरागना का देहान्त हो गया।

सरदारनी राजू

यह कोट समेर के रईस सरदार वख्शासिह जी की धर्मपत्नी थीं। समेर उन दिनों भटिंडा के ही जिले से सम्वन्ध रखता था। भटिंडा के सरदार जोधसिंह और राजा आलासिंह मे एक घनघोर लड़ाई हो चुकी थी। कारण यह था। जोधासिंह ने राजा आलासिंह के दुश्मन चौधरी गेडेराम[1] की लड़की से शादी कर ली। गेंडेराम भवानीगढ़ का मालिक था। सन् १७४६ ई० मे राजा आलासिंह और गेडेराम मे युद्ध हुआ था। कहा जाता है कि गेडेराम ने अपनी लडकी की मंगनी (सगाई) कैथल के गुरुवख्शसिंह के साथ कर रक्खी थी। किन्तु जव उसने देखा कि कैथल का गुरुवख्शसिंह तो आलासिंह का दोस्त है। उसने अपली लड़की की शादी बजाय गुरु वख्शसिंह के जोधसिंह के साथ कर दी।

सरदार जोधसिंह पर इसी अपराध मे राजा आलासिह ने चढ़ाई कर दी। जोधसिंह ने इस वहादुरी से मुकाविला किया कि आलासिंह के होश फाख्ता हो गये। अत उसने वुढ़ासिंह के दल को मदद के लिये वुलाया तव कहीं जोधसिंह कावू मे आया। कहा जाता है। यह लड़ाई वरावर तीन महीने तक चली थी।

सुलह मे सरदार जोधसिंह को वहुत सारा इलाका आक्रमणकारियों को देना पड़ा। यह घटना १७५६ ई० की है।

सरदानी राजू अथवा राजकौर इन्हीं जोधसिंह की के स्थानापन्न सुखचैनसिंह सावू गोत के जाट की लड़की थीं।

सुखचैनसिंह भी बड़ा वहादुर सरदार था। इस पर आलासिंह के उत्तराधिकारी राजा अमरसिंह ने चढ़ाई की। एक साल तक लड़ाई होती रही। उसके वाद सधि होगई। सुखचैनसिंह को केवल १२ गॉव रहने दिये गये।

राजा अमरसिंह के मरजाने के वाद और भवानीगढ़मे विद्रोह होनेपर सरदारनी राजूने भी विद्रोह कर दिया। जब दीवान नानूमल चढ़कर आया तो इसने उसको मुकाविला वड़ी वहादुरी से किया और उसे निराश होकर लौट ही जाना पड़ा।

आखिर विवश होकर नानूमल को समेरी के पास ही एक गढ़ वनवाना पड़ा। जिसमें फौज सरदारनी के मुकाविले के लिये रख दी गई।

१. चाहिल गोत के जाट।

अम्वाले के सरदार गुरुबख्शसिंह जी जिन्होंने कि अपने समय में काफी ख्याति प्राप्ति की थी। जब मर गये तो उनकी रानी दयाकौर राज-काज को चलाने लगीं। सन् १८०७ ई० में महाराजा रणजीत-सिंह ने अम्वाले का दौरा किया। उस समय उन्होंने कुछ नजराना देकर उन्हें टरका दिया। किन्तु महाराज की इच्छा तो अम्वाले को ले लेने की थी।

रानी दयाकौर

रानी दयाकौर प्रबन्ध करने में चतुर थीं। वे रियासत का काम भली प्रकार चलाती थीं और प्रजाजन भी उनसे खुश थे किन्तु दूसरे वर्ष महाराजा रणजीतसिंह फिर अम्वाला आ धमके। अब उनके साथ काफी सेना थी। रानी दयाकौर उनके इरादे को जान गईं। उन्होंने लड़ाई के लिये तैयारी की। किन्तु दूसरी ओर उन्हें यह भी पता था कि इधर अंग्रेज वढ़े चले आरहे हैं। उन्होंने सोच लिया कि आखिर राज्य तो अपने पास रहना नहीं है। इससे तो अच्छा यही हो कि अंग्रेजों के वजाय सिखों के ही पास रहे।

किला उन्होंने खाली कर दिया। महाराज ने वहाँ का प्रवन्धक गंडासिंह सानी को बनाया।

रानी दयाकौर ने अपने अतिम दिन भजन-पूजा में काटे।

जैसा उनका नाम था, वैसी ही उनमें दया थी। इसलिये उनके मा वाप ने उनका नाम दयाकौर रक्खा था।

अकालगढ़ में सरदार दलसिंह का आधिपत्य था। दलसिंह ने सरदार महासिंह सुकरचकिया के साथ मिल कर इतनी उन्नति की थी। किन्तु महासिंह के मर जाने के वाद वह साहवसिंह भगी का साथी वन गया। महाराजा रणजीतसिंह को यह वात अखरी उन्होंने दलसिंह को लाहौर वुलाकर कैद कर लिया।

सरदारनी धर्मकौर

सरदानी धर्मकौर इन्हींकी धर्मपत्नी थीं। ज्योंही उन्हे यह समाचार मिला वे ताड गई कि महाराजा रणजीतसिंह अकालगढ पर जरूर हमला करेगा। अत उसने किले के दरवाजे वन्द करा दिये और सैनिकों को हथियार ठीक करने का हुक्म दे दिया।

हुआ भी यही महाराजा रणजीतसिंह जी अपनी सेनायें लेकर अकालगढ पर चढ गये। किन्तु उन्हे अकालगढ़ लेना मुश्किल हो गया। घेरा डाल दिया गया। दोनों ओर से तोपें चलती थीं। सरदारनी घूम २ कर किले की देखभाल करती थी। इससे भी वढ़कर काम उन्होंने यह किया कि साहवसिंह के पास फौजें भेजने को आदमी भेज दिया।

महाराजा रणजीतसिंह को इस वात का पता चला गया। अत उन्हेंने अकालगढ़ पर से घेरा उठाकर साहवसिंह को अकेला जा घेरना उचित समझा। चार दिन की लड़ाई के वाद साहवसिंह और महाराज मे सधि होगई। उस सधि के अनुसार महाराज ने दलसिंह को छोड़ दिया।

दलसिंह अकालगढ पहुँचा और उसने अपनी सरदारनी की इस प्रकारकी वहादुरी और बुद्धिमानी की प्रशंसा की। किन्तु अपनी कैद होने के दु ख से उसका दिल शर्मिन्दा हो गया था। अत. वह चंद ही दिन मे इस ससार से चल वसा। पति के इस प्रकार स्वर्गवास से सरदारनी धर्मकौर को भी वडी विरक्तता हुई और जब दुवारा महाराजा रणजीतसिंह अकालगढ़ आये तो उसने उन्हें किले की चावियाँ देदीं। महाराज ने भी उनके जीवन-निर्वाह के लिये दो गाँव उनको जिंदगी भर के लिये विना खिराज के देकर उनका सन्मान किया।

भंगी सरदारों में अमृतसर पर सरदार गुलावसिंह का अधिकार था। लोहगढ़ में उनका महल था।

सरदार गुलावसिंह के देहान्त होते ही महाराजा रणजीतसिंह सेना लेकर अमृतसर पहुँच गये। अपनी रियासत का प्रवन्ध सरदार गुलावसिंह की स्त्री सुक्खां करती थीं। महाराज ने उनके पास खवर भेजी कि तोप जमजमा हमे दे दी जायं तो हम वापिस लौट सकते हैं। भाई सुक्खां ने कहला भेजा। तोप तो वाहुवल से प्राप्त की गई थी और तभी दी जा सकती है जव हमारी वाहुओ का वल घट जायगा।

माई सुक्खा

महाराज तो तैयार होकर आये ही थे। उन्होंने किले को चारों ओर से घेर लिया और कहलवा दिया कि अव हम भी वाहुवल से ही ले जायेंगे। माई सुक्खां भी तो आखिर शेरनी थी। लड़ाई हुई और कई दिन लगातार हुई और उस समय तक उन्होंने दरवाजों से महाराज के सैनिकों को नहीं घुसने दिया जव तक कि किले की दीवारे गोलों की मार से ढह नहीं गई।

फिर भी माई ने आत्म समर्पण नहीं किया अपने पुत्र को साथ लेकर बरसते हुये पानी मे कड़कती हुई विजली की रोशनी का सहारा पाकर किले से साफ निकल गई और जोधसिंह रामगढ़िया के पास सहायता देने को कहा किन्तु उसकी हिम्मत महाराजा रणजीतसिंह जी से लड़ने की न थी। अत उसने मध्यस्थ का काम किया और महाराजा रणजीतसिंह जी को सुलह के लिये तैयार कर लिया।

किला ओर शहर अमृतसर महाराज के हाथ रहे और उन्होंने माई सुक्खां और उनके लड़के के लिये कुछ गॉव जागीर मे छोड़ दिये।

सिख लेखकों ने लिखा है कि अमृतसर अपने अधिकार मे आने से महाराज ने विजय उत्सव मनाया था और वहुत कुछ दान-पुण्य भी किया था।

कैथल के भाई खान्दान का भी प्रताप एक दिन काफी वढ़ गया था। कैथल एक राज्य बन चुका था। महाराजा रणजीतसिंह जी के समय कैथल में राजा लालसिंह, राज्य करते थे। आप के दो पुत्र हुये एक उदयसिंह और दूसरे प्रतापसिंह, दोनों ही पुत्रों का राजा लालसिंह जी ने शान के साथ विवाह किया किन्तु दैव की मर्जी दोनों ही लावारिस मर गये। राजा लालसिंह जी के स्वर्गवास के वाद उदयसिंह की रानी महतावकौर ने अपने राज्य की वागडोर संभाली। उदयसिंह जी को अच्छे-अच्छे मकान वनाने और बाग लगवाने का वड़ा शौक था किन्तु परमात्मा ने उन्हे मौका ही नहीं दिया। कैथल राज्य की उस समय चार लाख सालाना की आमदनी थी जवकि रानी महतावकौर के हाथ मे राज्य आया। यह घटना सन् १८४६ ई० के अंतिम दिनों की है।

रानो मताहवकौर

रानी महतावकौर स्वाभिमाननी और वीर प्रकृति की स्त्री थीं। उन्हे अपने प्रवध मे अंग्रेजों का हस्तक्षेप अखरा। अंग्रेज तो धीरे-धीरे कैथल पर हाथ साफ करना चाहते थे किन्तु उन्हे चालाकी से काम निकालने की वजाय मैदान मे ही आना पड़ा। रानी महताब कौर भी अपनी सेना के साथ लड़ाई के लिये तैयार हो गई। अंग्रेजों की सेना से उनकी सेना लड़ी तो वहादुरी से किन्तु आखिर वह छोटी सेना कर क्या सकती थी। रानी महतावकौर ने भी भागना ही उचित समझा ताकि वे वाहर से सेनायें लाकर अंग्रेजों से लड़ाये क्योंकि रुपये का उनके यहाँ घाटा नहीं था। किन्तु भागने मे वे सफल नहीं हो सकीं। अंग्रेजी सेना ने उन्हे गिरफ्तार कर लिया। और पौदा नामक गॉव में उनके पति द्वारा वनवाई गई भव्य कोठी में उन्हे वीस हजार सालाना की पेंशन देकर नजर बन्द कर दिया। कहा जाता है आजीवन उनके हृदय में एकवार फिर लड़ने की साध रही।

पंजाव में जहाँ, अंग्रेजों ने सर्व प्रथम अपनी सुदृढ़ छावनी डाली थी और जहाँ सिखों ने अंग्रेजों

को भारत से उखाड़ फेंकने के लिये प्रबल युद्ध किया था। उसी फीरोजपुर जिले में अब से करीब एक सौ वर्ष पहिले रानी लक्ष्मणकौर का राज्य था।

रानी लक्ष्मणकौर

सुकरचकिया मिसल में सरदार महासिंह जी के साथ एक सरदार धन्नासिंह थे। वही फीरोजपुर के आसपास के इलाके के रईस बन गये। जब महाराजा रणजीतसिंह गद्दी पर बैठे तो इन्होंने उनकी सेना के साथ रहकर काफी साथ दिया। महाराज भी इनका खयाल रखते थे। फीरोजपुर उनका खिराजगुजार बन गया था। एक बार वे खुद भी खिराज लेने के लिये फीरोजपुर आये थे। रानी लक्ष्मणकौर ने उस समय महाराज का काफी स्वागत-सत्कार किया क्योंकि इस समय तक सरदार धन्नासिंह मर चुके थे और अब प्रबन्ध उनकी सरदारनी लक्ष्मणकौर ही करती थीं। उनका बहुत कुछ इलाका आस-पास के रईसों ने दबा लिया था। अत महाराज उसे भी वापिस करा गये।

जब महाराज ने देखा कि अंग्रेज बराबर पंजाब की ओर पैर बढ़ाते चले आरहे हैं और वे कोई ऐसा समझौता करना चाहते है जिसके अनुसार हमारी सेनायें सतलज के नीचे की ओर न जा सकेंगी। अत. सन्धि होने से पहले महाराज ने फीरोजपुर को भी अपने राज्य में मिला लेने का विचार किया। लक्ष्मणकौर को जो उस समय तक सरदारनी ही कहलाती थीं। अंग्रेजों ने बहका लिया और उन्हें रानी का खिताब देकर स्वतन्त्र हो जाने की उनसे घोषणा करा दी।

रानी लक्ष्मणकौर शासन करने में निपुण थीं, दयाशील थीं। सिख-धर्म में प्रेम रखती थीं किन्तु इतना कहना पड़ेगा कि वे अधिक चतुर न थीं। उसी का नतीजा यह हुआ कि महाराजा रणजीतसिंह जी के बाद रानी लक्ष्मणकौर का राज्य अंग्रेजों ने अपने कब्जे में कर लिया। फिर भी हम उन्हें अच्छे शासक के रूप में तो याद कर ही सकते हैं।

पंजाब केसरी महाराजा रणजीतसिंह जी की बहुत प्यारी रानी और खालसा राज्य की अधीश्वरी महारानी जिन्दा को हम भारत की दूसरी लक्ष्मी कहें तो कोई अत्युक्ति नहीं होगी। यह ठीक है कि वे रानी लक्ष्मी की तरह अंग्रेजों से युद्ध में नहीं लड़ीं। किन्तु इसमें सन्देह नहीं कि अंग्रेजी राज्य को उखाड़ने के लिये उन्होंने जो प्रयत्न किये उनके बाद रानी लक्ष्मी के सिवा किसी भी भारतीय राज-रानी ने नहीं किये।

महारानी जिन्दा

औलका के जाट सरदार मन्नासिंह की पुत्री और सरदार जवाहरसिंह जी की बहिन थीं। महाराज रणजीतसिंह जी इन पर बहुत प्यार करते थे। वास्तव में आप बहुत सुन्दरी थीं। आपका शरीर सुगठित और रंग उज्ज्वल था। चेहरे पर वैसा ही तेज था जैसा राजरानी के हुआ करता है। स्वभाव गम्भीर, विचार सुलझे हुए और प्रभावशाली लेखिका और बोलचाल का ढंग सौम्य था।

१६, २० वर्ष की उम्र में आप महाराज के राजमहलों में आई थीं। २१ वर्ष की उम्र में आपके एक सुन्दर और सलौने राजकुमार का जन्म हुआ। जिसकी ग्रीवा लंबी मजबूत स्कन्ध और बड़ी-बड़ी आंखें थीं। इस राजकुमार का नाम दिलीपसिंह रक्खा गया। और जिसके कारण ही एक दिन जिन्दा रानी से राजमाता और चन्द ही दिन बाद ब्रुटिश राज्य के चाकरशाहों की निगाह में विद्रोही समझी गई।

राजपुरुष और दरबारियों की लगभग पौन दर्जन आदमियों की हत्या हो जाने के बाद दरबारियों ने उनके सुकोमल राजकुमार दिलीपसिंह जी को गद्दी पर बिठाया। सो इस इच्छा से नहीं कि महाराज दिलीपसिंह के राजत्व-काल में शान्ति और अमन कायम रहे तथा राज्य की जड़ मजबूत हो किन्तु इस

इच्छा से उन्हे गद्दी पर बिठाया गया कि बालक राजा की राजगी मे राज्य के कर्ता-धर्ता हम बिना किसी दस्तन्दाजी के रहे और मनमाने ढग से इस विशाल राज्य का उपयोग करें। इस स्थिति मे महारानी जिन्दा सिख-समाज और सिख-राष्ट्र के मच पर आईं।

महाराज दिलीपसिंह के भी कैसे भाग्य थे-उन्हे तीन बार राजतिलक किया गया। एक बार राजा शेरसिंह को मारने के बाद सिन्धानवालो ने, दूसरी बार सिन्धानवालों का दमन कर के ध्यानसिंह के लड़के हीरासिंह ने और तीसरी बार खालसा सेना को परास्त करके अंग्रेजो ने। महारानी जिन्दा ने हर बार इस तमाशे को देखा। उन्होंने हर किसी पर विश्वास भी किया किन्तु उसके प्रति उन सभी का अविश्वास रहा। यह उनके भाग्य की विचित्रता थी।

हम इस इतिहास का आरम्भ वहां से करते हैं जब शेरसिंह के मारे जाने और सिंधानवालों के दमन के बाद दूसरी बार महाराज दिलीपसिंह गद्दी पर बिठाये गये। महारानी जिन्दा ने राज काज मे दिलचस्पी लेना आरम्भ कर दिया।

एक दिन[1] उन्होंने अपने भाई जवाहरसिंह से कहा कि सब दरबारियों को साथ लेकर पलटनों मे जाओ और महाराज के वास्ते पलटनो का अभिवादन कराओ। जब महाराज पलटनों मे पहुँचे तो सभी पलटनों ने प्रेम से उनको सलामी दी। महारानी जी ने ऐसा इसलिये किया कि वह चाहती थीं कि पलटन के लोगों के दिल मे महाराज के प्रति प्रेम बढे। हुआ भी ऐसा ही कर्नल महताबसिंह व जनरल महिमासिह की जो दो पलटने सिरफिरी हो रही थीं। महाराज को देखकर उन्होंने भी भक्ति के साथ सिर झुकाया।

इसी प्रकार की महारानी जिन्दा की और भी अनेकों बाते है। जो कि उनकी निपुणता, निर्भीकता न्याय-प्रियता और बुद्धिमानी की परिचायक हैं।

सम्वन् १९०२ के वैसाख की ही बात है, अमृतसर के हिंदुओ ने आकर महारानी जी के सामने अर्ज की कि राजमाताजी! अमृतसर मे हिंदू मुसलमानों मे एक कुएँ पर पानी भरते समय झगड़ा होगया वह कुआं हिंदुओं का ही है। पास ही में एक मन्दिर भी था जो इस बात की साक्षी है किंतु हिंदू उस पर मुसलमानों को भी पानी भरने से रोकते नहीं थे। अब झगड़ा हो जाने के बाद मुसलमानो ने आवाज उठाई कि कुआ हमारा है। हीरासिंह जी जो अमृतसर के प्रबंधक है। उन्होंने रिश्वत लेकर कुएँ के पास के मन्दिर को तुड़वा दिया है और कुआ मुसलमानों को बता दिया है। मुसलमान वहाँ मसजिद बनाने की तैयारी में हैं। हिंदुओं ने इस विरोध मे हड़ताल कर रक्खी है। महारानी जी ने सही घटना को समझ लिया उन्होंने हिंदू पचों को मदिर बनवाने के लिये तो पाँच सो रुपया दे दिये और जवाहरसिंह को बुलाकर हुक्म दिया कि हीरासिंह को वहाँ से तुरन्त हटा दो प्रजा के साथ इस प्रकार का अन्याय बर्दास्त नहीं किया जा सकेगा।

वास्तव में वे प्रजा के आगे अपने पारिवारिक लोगों के हित का कुछ भी खयाल नहीं करती थीं। एक बार फौज के कुछ पच इकट्ठे होकर उनके पास गये। उन्होंने कहा, राजामाता जी महाराज जिस समय हाथी पर चढ़कर बाहर निकला करे तो जवाहरसिंह उनके साथ न बैठा करे। हम उनसे राजी नहीं है। महारानी ने तुरन्त ही कहा ठीक है। इसमें तो कोई हर्ज नहीं। अपने महाराज के बराबर मे तुम चाहे जिसे बैठने दो चाहे जिसे नहीं। दूसरे दिन उन्होंने अपने भाई से कह दिया कि वह अवश्य दिलीपसिह का

१. वैसाख सम्वत १९०२

मामा है किन्तु महाराज दिलीपसिंह की बराबरी में बिना सिखों को खुश किये उसे नहीं बैठना चाहिए। प्रजा के प्रति प्रेम की एक और घटना सुनिये। महारानी जी के पास खबर आई कि शहर में बीमारी फैल रही है और लोगों का विश्वास है कि कुछ ब्राह्मणों को भोजन कराया जाय तो शांति हो। महारानी जी ने हुक्म दे दिया। अच्छा पचास ब्राह्मण रोज पूजापाठ करें, उनका खर्च हम देंगे। इसी प्रकार एक बार दुकोहर गाँव के जमींदारों ने आकर शिकायत की कि हमारी फसल को अकालियों के एक दल ने लूट लिया। महारानी ने तुरन्त ही हुक्म दिया कि एक फौजी दस्ता जाकर इस बात की जाच करें। पल्टन के वहाँ पहुँचने पर अकालियों के जत्थे ने अपना कसूर मान लिया और कहा हमने भूख से विवश होकर ऐसा किया है। सेना के प्रमुख ने महारानी के दिये हुये रुपयों में से कुछ तो जमींदारों के नुकसान का दे दिया। बाकी अकालियों को देकर हिदायत कर दी कि महारानी जी अपनी प्रजा को किसी के भी द्वारा पीड़ा देना पसंद नहीं करतीं।

सेना के जिन सरदारों को किसी कारण दंड दिया जाता था। महारानी उनके साथ भी न्याय का ही बर्ताव करतीं। जब उन्हें मालूम हुआ कि कुमेदान सरदार महिमासिंह कैद मे हैं। उन्होंने महाराज को तोशा खाने में भेजकर उसे छुड़ा दिया और महाराज ने उसे उपहार भी दिया।

यदि कोई उनके हुक्म की उदूली करता था तो उसके साथ में सख्ती का भी व्यवहार करती थीं। जब इन्हीं कुमेदान ने उनके हुक्म को फाड़ डाला जो उन्होंने सेना के नाम जवाहरसिंह की सलाह मानने के लिखा था—तो आपने आज्ञा दी। उन आदमियों की इतनी बेइज्जती करो ताकि फिर किसी को इस प्रकार का हौसला न हो सके।

अपने भाई जवाहरसिंह के साथ उनका स्नेह था और वे उस पर विश्वास भी करती थीं। वे डोगरा लोगों या गैर सिखों का बहुत ही कम विश्वास करती थीं। एक बार उन्होंने सेना के पंचों से कहा था। अगर आप लोग जवाहरसिंह को अपना वजीर बनालें तो इससे मुझे राज करने में बहुत सुविधायें प्राप्त हो जाँय। दूसरे लोगों के सामने बहुत सी बातें खुलकर मैं नहीं कह सकती हूँ और न उनसे निजी मामलात पर विचार ही किया जा सकता है। अगर आपलोग मेरी बात मान लेंगे तो मैं आपके बालक महाराज के राज्य और आपकी भलाई के बहुत से काम कर सकूंगी।

खेद है कि सिख सेना ने जयचदों के बहकावे में आकर एक दिन महारानी के भाई जवाहरसिंह जी को मार डाला। इससे महारानी को बहुत ही ज्यादा दुःख हुआ। उनकी आँखें रोते२ सूज गईं। उनने हाथ-पैर जमीन पर पटक मारे। सेनानायकों ने बहुत ही उनकी खुशामद की। तब कहीं अपने भाई की लाश को जलाने के लिये दिया।

वे परमात्मा से प्रार्थना करके उस दिन की बाट देखने लगीं। जब उनका प्यारा पुत्र दिलीप बालिग हो जाय और मजबूती के साथ दरबारियों की जालसाजियों और सेना की उद्दंडता का दमन करके अपनी प्रजा को खुश करने लायक शासन कर सके।

किन्तु 'मेरे मन कछु और है करता के कछु और।" वाली कहावत हुई और सन् १८४५ई० खतम होते न होते ही सिखों और अंग्रेजों की जग छिड़ गई और विजय होते ही अंग्रेजों ने घोषणा कर दी। अब सिख राज्य स्वतंत्र नहीं रहेगा। उसका संचालन हमारी सलाह के अनुसार होगा। हम लाहौर पहुँच कर नये सिरे से शासन की व्यवस्था करेंगे। यह घोषणा २० फरवरी सन १८४६ को की गई थी।

युद्ध के दंड मे स्यालकोट और काश्मीर उनके राज्य से निकल गये। कौंसिल का प्रेसीडेंट भी एक अंग्रेज ही बनाया गया। थोड़े ही दिनों मे दो तीन संधियाँ गढ़ी गई और अब महारानी जी को महलों के अन्दर बिठा दिया गया। राज काज से उन्हे कतई अलग कर दिया गया। फौज भी काफी घटा दी गई। अब जितनी रही उसमे कौम परास्तों की संख्या बहुत थोड़ी थी।

अब महारानी जिन्दा के सामने यह दूसरा संकट आ गया। जो पहले से बहुत भयानक था। फिर भी उन्होंने धैर्य बाधा और इस जाल मे से अपने राज्य को मुक्त करने के लिये वे कुछ विश्वस्त लोगों के साथ सलाह-मशविरा करने लगी। प्रजा का उनकी ओर आकर्षण बढ़े इसलिये आप बहुत-कुछ दान-पुण्य भी करने लगीं। किंतु अंग्रेज कुछ कम चालाक नहीं होते। रेजीडेंट को इन बातों मे सन्देह हो गया और उसने एक पत्र लिखकर महारानी जी को न केवल सरदारों से मिलने मे ही सीमा निश्चित करने की सलाह दी। किन्तु दान-पुण्य मे कमी करने और उन्हे राजपूत रानियों की तरह पर्दे मे रहने की सलाह दी।

यद्यपि मूलराज भी पिछले दिनों सिख राज्य के साथ विश्वासघात कर चुका था। किंतु अंग्रेजों से चौकन्ना वह भी हो गया था। महारानी ने उसके साथ कोई बिगाड़ करने की नहीं सोची। किंतु उसके यहाँ अपनी दासियाँ राजी खुशी के समाचार लेने भेजीं। महारानी जिंदा की यह बाते उनकी राजनीत-मत्ता को सूचित करती हैं। किंतु रेजीडेंट ने इस बात की भी महारानी जी से कैफियत तलब करली।

सन् १८४७ की १६ वीं अगस्त को उन्हे शेखूपुरा के किले मे भेज दिया गया और मासिक वृति भी केवल चार हजार मासिक कर दी गई। महाराजा दिलीपसिंह अपनी माता से अलग होकर बड़े दु.खी हुये। माँ के हृदय की व्यथा को तो कहा ही कैसे जा सकता है। उन्होंने शेखू पुरा मे पहुँचते ही दूसरे दिन राजी खुशी के समाचार खाने को मिठाई और खेलने को तोते भेजे। रेजीडेंट को यह बात भी अखरी और उसने कुछ दिन के बाद महारानी को ताकीद करदी कि वह महाराज के पास सीधा कोई समाचार नहीं भेज सकतीं। इस आदेश को पाकर महारानी जिंदा एक ठंडी सांस लेकर चुप हो रहीं।

इसके कुछ ही समय बाद मुल्तान मे गड़बड़ी फैल गई। मूलराज अंग्रेजों से बिगड़ गया। महारानी ने इस सम्बध के समाचार जानने को दो आदमियों को भेजा। अंग्रेजों ने उन्हे दैवात लड़ाई में पकड़ लिया। उन्हे तो प्राणदण्ड दे दिया गया। किंतु इस घटना का अर्थ यह लिया गया कि मुल्तान विद्रोह मे महारानी जिंदा का भी हाथ है। उनका हाथ रहा हो या नहीं। किंतु इसमे सदेह नहीं अंग्रेजों के लिये महारानी जिंदा के हृदय मे कोई सहानुभूति शेष नहीं रही थी। वह उन्हे घर मे घुसा हुआ साँप समझ चुकी थीं।

इन बातों से इनकार नहीं किया जा सकता कि शेखू पुरा पहुँचकर भी उन्होंने सरदारों से मिलना जुलना नहीं छोड़ा वह उनके हृदय को टटोलती रहीं। सेना के लोगों को भी बुलाती रहीं। इन बातों का भी रेजीडेंट कैरी को पता चलगया और उसने साहबसिंह आदि सरदारों को बुलाकर बुरी तरह से डाटा।

महारानी जिंदा को भी यह बात असहनीय थी। उन्होंने सरदार जीवनसिंह को अपना वकील बनाकर कलकत्ता लाट साहब के पास इसलिये भेजा कि क्या रेजीडेंट को महारानी जिंदा के ऊपर इतने कड़े प्रतिबध लगाने का अधिकार है। किंतु गवर्नर ने जो उत्तर दिया वह निहायत बेहूदा था। जो उसकी दुर्भावनाओं को व्यक्त करने वाला है। गवर्नर ने कहा "चूंकि रानी जिंदा ने अपनी दरख्वास्त में अपने को महाराजा रणजीतसिंह की विधवा और महाराज दिलीपसिंह की माँ कह कर सम्बोधित किया है। अत. वे मुझसे कुछ आशा न करें।

इसके बाद महारानी जिन्दा के लिये पंजाब से बाहर निकलने का हुक्म जारी कर दिया गया मक्कार रेजीडेंट ने उस हुक्म पर महाराज दिलीपसिंह की मुहर लगवा दी। १४वीं जून को हडसन और लिमसडन नाम के दो अग्रेज कुछ सैनिकों के साथ शेखूपुरा भेज दिये गये।

महारानी ने रेजीडेंट का पत्र पढ़ा। उसमें लिखा था आप के पास यह दो अग्रेज आ रहे हैं आप को शेखूपुरा से बाहर ले जावेंगे आप इनके साथ हो लें। कोई दुर्व्यवहार आप के साथ न होगा। हमारी सरकार का यही इरादा है कि आप शेखूपुरा छोड दें। महारानी ने उस समय बडे धैर्य का परिचय दिया वे रोई नहीं, न उन्होंने अपने होश को खोया।

जब पजाब की सीमा से बाहर हुईं तो उन्होंने हडसन से कहा, रेजीडेंट से कह देना। महाराजा रणजीतसिंह जी की विधवा के साथ अग्रेज सरकार जो भी कर रही है वह शायद अच्छा ही कर रही होगी।

बनारस मे उन्हे रक्खा गया मेजर मेकग्रेगर उनके रक्षक नियुक्त किये गये। यहाँ कुछ दिन बाद उन्हे बताया गया कि पंजाब मे आप एक भीषण षडयत्र अग्रेजी राज्य को उखाडने के लिये रच रहीं थीं। आप के दस्तखतों की ऐसी कई चिट्ठिया भी पकडी गईं हैं। इस अपराध में आपके पास जितने भी जेवर और नकद रुपये हैं वह सरकार के हवाले कर दो और अब आपको पेंशन भी केवल एक हजार रुपये सालाना मिलेगी। इस बात को सुनकर महारानी स्तब्ध हो गईं, उनके पैर के नीचे से जमीन खस-कने लगी। पिंजडे मे बद सिंह केवल दहाड़ मार कर अपने क्रोध को प्रकट करके रह जाता है उसी तरह महारानी अपने ओठ चबा कर चुप हो रहीं। उनके पास से लगभग पचास लाख के जेवर और नकद दो लाख रुपये जमा करा लिये।

महारानी के देश निकाले के समाचारों से सिख विक्षुब्ध हो उठे और वह चिल्लाने लगे। जब हमारी राजमाता पजाब से निकाल दी गईं हैं तो हम अग्रेजों का साथ नहीं दे सकते। हम मूलराज के साथ मिलकर लड़ेंगे। ये जो हमारे सरदार इस समय भी अग्रेजों के साथ हैं। हम इन्हे छोड देंगे। सेना मे शहर में और देहात में एक ही चर्चा और उत्तेजना फैल गई और इस सबका जो फल हुआ वह था सिखों का दूसरा युद्ध। महारानी जिंदा के राज्य मे चार लाख सिख रहते थे। उनमे से साठ हजार बागी हो गये। यदि उस समय महारानी जिंदा बाहर होतीं तो वे अवश्य रानी लक्ष्मी की तरह उनका नेतृत्व करतीं और वे फिर बता देतीं कि वह महाराजा रणजीतसिंह का ही अर्द्धांग हैं किंतु शोक है कि बनारस के मकान मे उन्हें इन समाचारों से भी अनभिज्ञ रक्खा गया।

साथ ही उनके साथ कठोर से कठोर व्यवहार भी किया जाने लगा। उनसे किसी को नहीं मिलने दिया जाता था। वह किस प्रकार खर्च करती है। इसकी भी जॉच रक्खी जाने लगी। महारानी जिंदा के इन कष्टों को लक्ष्य में रख कर अग्रेजों के ही पत्र 'इगलिश मैन' ने लिखा था। "इस नारी के साथ जैसा कठोर बर्ताव किया जा रहा है वह हमारे जातीय कलक का एक उदाहरण है।"

जीवनसिंह ने न्यूमार्च नामक एक अग्रेज को वकील बना कर महारानी की पेंशन बढवाने के लिये कोशिशें कीं किंतु वे सभी बेकार हुईं। टालमटूल की नीति से कोई भी ध्यान नहीं दिया गया। चूँकि बनारस धार्मिक स्थान था। वहाँ प्रत्येक प्राँत के हिंदू इकट्टे होते थे। महारानी जिंदा के समाचार उनके कानों तक सही रूप में नहीं तो अफवाह के तौर पर तो पहुँचते ही थे। इसलिये उन्हे बनारस की बजाय चुनार में रख दिया गया।

सहन करने की कोई हद होती है। इसके अनुसार महारानी जिन्दा ने बहुत सहा। उनके हृदय में इस बात के लिये आग धधक उठी कि किसी प्रकार अंग्रेजों से इन अपमानों का बदला लिया जाय। अतः वे चुनार के किले से निकलीं। और भटकती-भटकती नैपाल पहुँचीं। नैपाल के महाराज ने उनका अच्छा स्वागत-सत्कार किया। उनके रहने का भी प्रबन्ध कर दिया और बीस हजार सालाना उनके लिये खाने-पीने को पेन्शन नियुक्त कर दी। किंतु महारानी जिस उद्देश्य से गई थीं वह पूरा न हुआ। भला अंग्रेजों से लड़ने की हिम्मत कौन कर सकता है। जब अंग्रेजों को पता लगा तो वे बड़े आश्चर्य मे हुये और उन्हे भय भी पैदा हुआ। इसलिये वे हृदय से इस बात की इच्छा करने लगे कि महारानी नैपाल से वापिस लौट आये। उनके खर्चे के लिये तीन हजार मासिक का प्रबन्ध कर दिया जायगा। इस काम के लिये सम्भव है अंग्रेजों ने ही एक अपरिचित आदमी को महारानी के हितैषी के रूप मे खड़ा कर दिया और उससे महारानी जिंदा से भारत मे लौटने और उचित पेशन देने की दरख्वास्त दिलादी। इस समय तक महाराज दिलीपसिंह को राज्य छीन कर पञ्जाब से बाहर निकाल दिया गया था यहाँ तक उन्हे ईसाई भी बना लिया और उसके बाद वह इंगलिस्तान जा चुके थे।

वास्तव मे मनुष्य जब विपत्ति मे फँसता है और कोई उसका सहायक नहीं होता है तो उसे अनेकों भूल करनी पड़ती हैं। महारानी की भी यह भूल थी किंतु यह सब उनके कुदिन करा रहे थे।

उधर महाराज दिलीपसिंह जी ने अपनी माता की इस इस प्रकार की कष्ट-कथा सुनी तो वे भारत आने को तैयार हुए और अंग्रेजो ने की अवसर से लाभ उठाने के लिये उन्हे इजाजत दे दी।

जनवरी सन् १८६१ ई० मे महाराज भारत आये कलकत्ते के स्पेनिस होटल मे उन्हे ठहराया गया। चन्द दिन बाद महारानी जिन्दा बुलाई गई। दोनों मां-बेटा, बाप-बेटे, गले से चिपट कर रोये। एक दूसरे की हालत को देख कर दुखी हुये।

बेटे के स्नेह से महारानी जिंदा विलायत जाने को राजी हो गईं। वे इंगलैण्ड चली गईं किंतु वहाँ का रहन-सहन उन्हे पसन्द नहीं आया। वे उसी वेश मे रहीं जो उनका हिंदुस्तान में था। प्रातः-सायं वे अपने घर मे सिख-रीत्यानुसार भजन-कीर्तन करतीं। विशेष अवसरों पर कड़ाह प्रसाद बनातीं। अपनी माँ के इन धार्मिक और पवित्र भावों को देखकर महाराज दिलीपसिंह को शनैः-शनैः सिख धर्म से प्रेम होने लगा। उनकी माँ उनको गुरुओं के पवित्र जीवन और शहीदों की कुर्बानियों के इतिहास सुनातीं जिससे महाराज का खून खौल उठता। उनके विचार एकदम बदल गये।

महाराज ने गिरजाघरों मे जाना, अंग्रेजी सुसाइटियों मे शामिल होना सब कुछ छोड़ दिया। इससे भयभीत होकर कोर्ट आफ डायरेक्टर्स ने महारानी को दिलीपसिंह से अलग रहने का प्रबंध कर दिया।

परदेश मे भी माँ-बेटे एक साथ न रहने दिये गये। इसका महारानी जिंदा के जीर्ण शीर्ण स्वास्थ्य पर बहुत बुरा असर पड़ा और वे चिंताओं से तिल-तिल कर सन् १८६३ ई० मे इस ससार से चल बसीं।

महारानी जिंदा इस संसार मे नहीं रहीं किंतु वे बहुत कुछ अपने अपूर्व तप का प्रभाव छोड़ गई हैं। वह जब भी हमे याद आयेगा। हमारा सिर उनके लिये झुकता रहेगा।

बीबी हरनामकौर

सन् १९३४ ई० के अप्रैल महीने मे अखबारों के पृष्ठों पर जिस वीर युवती के चित्र और बहादुराना समाचार प्रकाशित हुए थे। वह बीबी हरनामकौर उस समय केवल १७ वर्ष की थीं। फीरोजपुर जिले मे थाना पुराना के अंतर्गत चौधरीवाला एक गाँव है जिसे पजाबी बोलचाल मे पिंड चौधरीवाला कहते हैं। बीबी हरनामकौर वहीं के

जमींदार सिख सरदार की पुत्री हैं। उस समय तक आपकी शादी नहीं हुई थी जिस समय कि आपने अपनी बहादुरी से हिन्दुस्तान भर मे शौहरत पाई थी।

रात के समय सशस्त्र चार डाकुओं ने आपके घर पर हमला किया। बीबी हरनामकौर अपने भाई समेत डाकुओं के मुकाबिले पर खड़ी हो गईं। दो डाकुओं को तो मार गिराया और एक को आपने पकड़ लिया। आप पर उस डाकू ने घातक हमला किया किंतु उसे आपने काफी घायल होने पर भी नहीं छोड़ा। एक भाग गया।

आपकी इस छोटी उम्र मे इस प्रकार की बहादुरी की प्रशंसा चारों ओर फैल गई। सरकार ने दोनों भाई-बहिनों को एक एक हजार रुपया और इनकी माँ को दस रुपया महीना पेन्शन कर दी। इसके अलावा दो एकड जमीन भी सरकार ने दी। सिख सस्थाओं ने भी बीबी जी का खूब ही सन्मान किया। गुरुद्वारा डेरा साहब की ओर से आपको सरोपा मिला और सिंह सभा की ओर से भरे दीवान मे मुबारिकबादी दी गई।

वास्तव मे इस बीसवीं सदी मे आपने बीबी दीपकौर की तरह बहादुरी दिखाकर अपनी कौम का नाम ऊँचा किया था।

सिख जगत् की वीरागनाओं, विदुषियों और माता-बहिनों का इतना थोड़ा-सा वर्णन करके हम इस अध्याय को समाप्त करते हैं। सिख जाति ने एक से एक बढ़ कर धर्म भक्त और बहादुर महिलाओं को जन्म दिया है। जो हमारे देश के लिए महान् गौरव की चीज है। हमने तो कुछेक का ही यहाँ वर्णन किया है। जिन्हें अधिक जानना हो वे पंजाब-विभाजन के समय सिख माताओं, बहिनों और पुत्रियों के बलिदान की कहानियों को पढ़ें।

सत्ताईसवाँ अध्याय

सामाजिक दशा

किसी भी जाति की उन्नत और अवनति दशा का पता उसके रहन-सहन, खान-पान, स्वास्थ्य, वर्ताव, शिक्षा, साहित्य, संगठन और जीवन निर्वाह के साधनों को देखकर सहज ही चल सकता है। इन्हीं दृष्टियों से हम सिख जाति की अवस्था का दर्शन करना चाहते हैं।

रहन-सहन

आमतौर से सिखों का रहन-सहन आडम्बरपूर्ण नहीं है। उनमे जो ठाठ बाट से भी रहते हैं उसमे भी विलासिता की गन्ध बहुत कम होती है। शहरों का रिवाज अभी गाँवों मे बहुत कम पहुँची है। पुरुष पगड़ी, कुरता, कच्छ, पाजामा, धोती, कोट, अचकन, सलवार आदि पहनते है। साधारण पहनावा कच्छा, कुर्ता और पगड़ी का ही है। धोती प्राय' तहमदनुमा बाँधते हैं।

अपेक्षाकृत सिख स्त्री-पुरुष और बच्चे साफ सुथरे रहते है। देहातो मे भी अपने सम व्यवसायी अन्य लोगों की अपेक्षा सफाई की ओर उनका ध्यान अधिक रहता है।

खान-पान

अधिकाँश मे सिखों की आबादी देहात में ही ज्यादा है और जो शहरों मे भी है वह भी खान-पान सम्बन्धी अपनी पैतृक आदतों को बहुत दूर तक पालते हैं। गाय भैंसे अधिक रखने के कारण घी दूध खूब खाते हैं। लस्सी उनका उतना ही प्रिय पेय है जितना कि अंग्रेजों का चाय। कड़ाह प्रसाद (हलवा) उनका सबसे प्यारा भोजन है। प्रत्येक उत्सव और त्यौहार पर कड़ाह प्रसाद अवश्य बनवाते हैं। महमान की खातिरदारी मे भी कड़ाह प्रसाद का ही ऊँचा स्थान है। व्रज के जमीदार जिस प्रकार खीर को देवताओं का भोजन का नाम देकर प्रिय मानते हैं उसी प्रकार सिख कड़ाह प्रसाद मे धार्मिक भावना रखते हैं।

भोजन को रसोई, खाना और भोज्य न कहकर प्रसादा कहते हैं भोजन करने को प्रसादा छकना कहते है। उनके यहाँ साधारण भोजन (दाल, रोटी, साग आदि) प्रसाद कहलाता है हलुवा कड़ाह प्रसादा और मांस भोजन महाप्रसाद कहलाता है। वैसे महाप्रसाद कड़ाहप्रसाद की तरह ऊँचा स्थान नहीं रखता और न उसके खानेको लाजिमी करार दिया गया है किंतु चूंकि आरभ मे जो जातिया सिख पथ में शामिल हुई थीं उनमें से अधिकाँश माँस के आदी नहीं थे इसीलिए इसको महाप्रसाद इतना बड़ा नाम

दिया गया उन दिनों सिखों की हालत यह हो ही गई थी कि जंगलों में भूखे मरने की नौवत में महा-प्रसाद से ही प्राण-रक्षा की जा सकती थी। महाप्रसाद ताजा मास का वनता है इसीलिए झटके का खाना निहित वताया गया है।

सिख धर्म के अंदर कुछ ऐसे भी सम्प्रदाय हैं जिनमें मास कतई नहीं खाते। पंजाव जैसे देश मे जहाँ गेंहू और वाजरा जैसे वलिष्ठ अन्न वहुतायत से पैदा होते हैं सौभाग्य से सिखों का वही उपनिवेश है।

स्वास्थ्य

खान-पान का सुढग और सादगी इसके अलावा कुसंस्कारों से निवृत और परिश्रम से रुचि। यह वातें ऐसी हैं जो स्वास्थ्य की सर्वोतम गारटी है। यही कारण है कि दूसरे लोगों की अपेक्षा सिख अधिक तगड़े, सुदृढ़ और वलवान होते हैं। अपनी इस मजवूती के कारण उन्होंने सैनिक जातियों में अपनी सर्वोच्च गणना कराने का सौभाग्य हासिल किया है। वे शारीरिक मानसिक परिश्रम से नहीं घवराते हैं अत खेती और सरकारी सर्विस में वे उन्नति पर हैं। उनके स्वास्थ्य भारत ही नहीं किंतु ससार में सर्वोपरि वना देने लायक हैं। किंतु खेद है कि व्यायाम का इनमें वहुत कम चलन है। सिख-गाँवों में अखाड़ों (मल्लयुद्ध के स्थान) और दंड वैठक लगाने वालों की कमी है। फिर भी वे अपनी मजवूती और अच्छे स्वास्थ्य के लिए भारत मे अच्छा स्थान रखते हैं।

स्वाभाव और वर्ताव

सिख स्वभाव से विनोदी और हँसमुख होते हैं। चिड़चिड़ापन वहुत ही कम उनके मिजाज में होता है। पहली वार की मुलाकात में ही वे खुलकर वातें करते हैं। उनसे मिलने पर ऐसा नहीं मालूम पड़ता कि किसी नये और अपरिचित व्यक्ति से वाते की जा रही हैं। यद्यपि उनके अदर राजसी गुण अधिक है फिर भी वे हृदय के तीव्र और कठोर नहीं होते।

वातचीत वे स्पष्ट कहने और सुनने की आशा करते हैं जहाँ तक भी हो सकता है उनकी वातचीत लाग लपेट की नहीं होती। उनके स्वभाव मे अहमन्यता की झलक भी नहीं होती। वड़ों का आदर करने की उनमें विशेपता है। साधु-सतों के प्रति उनके दिल में भक्ति है। ब्राह्मणों के लिये उनके लिये उनके धर्म में उतना ऊँचा दर्जा नहीं किन्तु उनके दिल में उनसे कोई घृणा भी नहीं है। यद्यपि उनका उत्थान मुसलमान शासकों की जायदाद के कारण हुआ। किन्तु पड़ोसी मुसलमान के साथ वे सदैव हमदर्दी का व्यवहार करते हैं। ऐसा वे किसी पालिसी से करते हों, यह वात नहीं। किन्तु उनका स्वभाव ही ऐसा है।

दान-पुण्य करने में उनका स्वभाव और मन कंजूस नहीं, यही कारण है कि उनके धार्मिक स्थानों पर इतनी आमदनी होती है। जितनी कि भारत की किसी भी वडी रियासत की हो सकती है।

वे अपमान को वहुत कम वर्दास्त करते हैं। वह फिर चाहे अपने घरवालों की ओर से हो चाहे वाहरवालों की तरफ से। इस मामले मे वे कभी-कभी विवेक को भी ताक मे रख देते हैं, यही कारण है कि आये वर्प प्रत्येक जिले मे उनमे आपस में भी खून-खरावियाँ हो जाती हैं।

सैनिक प्रधान जाति होने के कारण धोखा और दगा-फरेव भी वे किसी के साथ नहीं करते यों अपवाद सभी जगह होते हैं।

अपनी वात के लिये उनके स्वभाव में जिद भी है। कभी-कभी तो 'हमीर हठ' का रूप उनकी वात धारण कर लेती है।

नाच रंग में सामूहिक रूप से उनकी रुचि बहुत ही कम है। खेल कूद और घोड़े की सवारी उनकी रुचि की चीजें हैं।

उनकी स्त्रियों का स्वभाव भी सकुचित और कटुतापूर्ण नहीं होता। कथा कीर्तन मे उनकी रुचि पुरुषों की अपेक्षा कहीं अधिक होती है। उन्हे बढ़ा हुआ कुटुम्ब अच्छा लगता है। सिख स्त्री की लालसा रहती है कि उसकी कई सहेली हो और घर मे देवरानियों का टोला। किन्तु जमाने के साथ अब उनमे से यह भावना विनष्ट होती जा रही है।

पंजाब या भारत के किसी भी हिस्से के उन लोगों को जिन्होंने सिख धर्म ग्रहण किया है। उनके लिये पारमार्थिक लाभ कितने हुये है। यह तो सिख ही जाने। किन्तु दो लाभ तो इतने प्रत्यक्ष है कि उहे कोई भी आदमी जिसे तनिक भी समझने का माद्दा है सहज ही मे जान सकता है। एक तो है समाजिक समानता का जिसपर हम आगे के पृष्ठों मे प्रकाश डालेगे। दूसरा है पेशे की आजादी का। खत्री सिख चाहे तो दर्जी और मोची का काम कर सकता है और दर्जी सिख चाहे तो ज्ञानी और ग्रन्थी बन सकता है। जोकि अब जमाने के परिवर्तन के साथ ऐसी स्थिति हो गई है कि दूसरी जातियाँ भी चाहे जिस पेशे को कर सकती हैं। किन्तु सर्व प्रथम यह आजादी दी थी सिख धर्म ने ही। पेशे और जाति का सिख धर्म से कोई ख़ास सम्बन्ध नहीं है। इसका फल यह हुआ कि सिखों ने आर्थिक अवस्था ठीक बनाये रखने के लिये चहुमुखी उन्नति की। राज्य का ऐसा कोई महकमा नहीं जिसमे सिख न मिलेगे। ज्ञात संसार का ऐसा कोई कोना नहीं जहाँ सिख जीवन-निर्वाह के लिये नहीं पहुँच गये हों। कला-कौशल, दस्तकारी आदि सभी धधों को सीखने मे उन्होने पहल की है।

जीवननिर्वाह के साधन

खेती के काम मे भी नये आविष्कारों को आजमाने मे वे पीछे नहीं रहे। गाय बैलों की नस्ल सुधारने तथा अच्छे २ पशु पालने मे उनकी रुचि सदैव उन्नत रही है। अच्छे बीज, अच्छा गुड़, अच्छी कपास पैदा करके सिखों के खेतिहर समुदाय ने अपने को अग्रणी ही साबित करने की कोशिश की है।

हिन्दुस्तान मे ख़ास तौर से हिन्दुओं मे उन्होंने सर्वप्रथम ईरान और काबुल से घोड़ों और हथियारो के लाने का व्यापार आरम्भ किया था।

इस प्रकार जीवन निर्वाह के प्रत्येक धधे मे मे सिख रुचि रखते हैं। यही कारण है कि उत्तरोत्तर उनका समाज हरेक क्षेत्र मे उन्नत होता जा रहा है।

किसी भी मानव समाज का संगठन किन्हीं विशेष परिस्थितियों मे किसी विशेष उद्देश्य की पूर्ति के लिये होता है। परिस्थितियों के निकल जाने अथवा उद्देश्य की पूर्ति के बाद स्वभावत उस संगठन का छिन्न-भिन्न हो जाना अनिवार्य है। पर चूकि वह उत्तम सगठन सदैव बना रहे इसलिये उसे स्थायित्व देने के लिये उन साधनों के प्रति अटूट श्रद्धा के भाव पैदा होना आवश्यक होता है जिनके सहारे वह संगठन उन्नत होकर उद्देश्य की पूर्ति करता है। प्रत्येक ऐसे संगठन के जिसका कि आरम्भ धार्मिक भित्ति पर हुआ हो कम से कम पाच साधन होते हैं। (१) धर्म पुस्तक (२) धर्मस्थान अथवा तीर्थ (३) पर्व और त्यौहार (४) अनुशासन और (५) प्रथाये।

सङ्गठन

सिखों की धर्म पुस्तक श्री ग्रथसाहब जो हैं इस सम्बन्ध मे हम पिछले अध्याय मे काफी लिख चुके हैं। अत: शेष चार आचारों पर अब कुछ प्रकाश डालना चाहते हैं।

सिखों के पांच प्रकार के धर्म स्थान हैं (१) वे जहाँ-जहाँ गुरु साहिबान ठहरे थे और अब उन स्थानों पर स्मारक स्वरूप धर्मशालायें, गुरुद्वारे अथवा दमदमा हैं। (२) जहाँ-जहाँ गुरु साहिबान का जन्म हुआ था और वे स्वर्गारोहण हुये। (३) वे स्थान जहां जहा गुरु साहब ने बावली, तालाब आदि बनवाये। (४) जहाँ-जहाँ गुरु और उनके प्यारे शहीद हुये। (५) जहाँ-जहाँ उनके भक्त उनकी दी हुई वस्तुओं को ले गये और जहाँ कि उन्होंने उन वस्तुओं के रखने के लिये स्मारक स्थान बना लिये। इनके अलावा आज भी जहाँ-जहाँ सिख हैं प्राय: वहीं-वहीं गुरुद्वारे बने हुये हैं और बनते जारहे हैं किन्तु पुराने धर्मस्थान वे ही हैं जो उपरोक्त पाँच प्रकारों में से हैं। हालाकि उनमें कुछ तो बहुत पीछे के बने हुये हैं फिर भी उनकी स्मृति का महत्व उस समय से सम्बन्ध रखना है जिस समय का कि उनके साथ इतिहास जुडा हुआ है।

यह तो निर्विवाद सही बात है कि धार्मिक भावनाओं के अनुसार प्रत्येक धर्मस्थान तीर्थ होता है किंतु लौकिक भाषा मे तीर्थ उसे कहते हैं जहाँ किन्हीं विशेष पर्वों पर भारी जन-समुदाय इकट्ठा होकर प्रथा के अनुसार धार्मिक क्रियाओं को पूरा करता हो।

सिखों मे इस प्रकार के बडे-बडे तीर्थों की सख्या इस प्रकार है—(१) श्री बावली साहब (२) अमृतसर (३)मुक्तसर (४) दमदमा साहब (५)करतारपुर (६) तरनतारन (७) ननकाना (८) गोविन्द वाल बावली साहब (९)डेहरा गुरु श्री अर्जुनदेव (१०)डेहरा बाबा नानक (११)पटना साहब (१२)अबिचलनगर (१३) फतहगढ़ सरहिंद (१४) चमकौर साहब (१५) खद्दूर साहब इनके सिवा करतारपुर और कीरतपुर आदि भी हैं।

इनमे इतने तख्त हैं। (१) अकाल तख्त जो अमृतसर में है (२) तख्त पटनासाहब (३) तख्त केशगढ़ आनन्दपुर में (४) तख्त हुजूर साहब अबिचलनगर।

इनमें तरनतारन और अमृतसर का तो इतना बड़ा नाम हो रहा है जिन्हें सारा हिंदुस्तान और हिंदुस्तान से बाहर के लोग भी जानते हैं किंतु यदि हम सिलसिले से आरम्भ करें तो पहिले ननकाना साहब का वर्णन करना होगा। लाहौर से ४८ मील पच्छिम शेखूपुरा जिले मे रायबुलारकी जो तलवण्डी थी और जिसमें कि गुरु नानकदेव जी महाराज का अवतार हुआ था वही अब गुरुजी के नाम पर ननकाना अथवा नानकायन अर्थात् नानदेव का घर कहलाता है। वहाँ 'जन्म स्थान' गुरुद्वारा बना हुआ है। यह गुरुद्वारा बड़ा आलीशान है। गुरुद्वारे से अठारह हजार एकड़ जमीन और नौ हजार आठ सौ बानवे रुपये साल की जागीर लगी हुई है। लगभग बीस हजार रुपया साल चढ़ावे में आ जाते हैं।

जन्म स्थान के सिवा इतने स्थान यहाँ और हैं।

(१) कियारा साहब—जहाँ प्रथम बार आपने अपने पशु चराये थे। इस गुरुद्वारे से ४५ मुरब्बे जमीन लगी हुई है।

(२) तम्बू साहब—जहाँ कि गुरु नानकदेव जी सच्चा सौदा करने के बाद लौट कर बैठे थे।

(३) पट्टीसाहब—जहाँ कि पाधे के पास उनके पिताजी ने पढ़ने बिठाया।

(४) बाललीला—जहाँ कि बाल-क्रीड़ा करते थे। इस गुरुद्वारे में १२० मुरब्बे जमीन और इक्तीस रुपये सालाना की जागीर है।

(५) मालजी साहब—जिस माल वृक्ष के नीचे गायें चराते हुये सो गये थे और वृक्ष की छाया स्थिर रही थी। इस स्थान से १८० मुरब्बे जमीन और ५०) सालाना नक्द जागीर है।

(७) वे स्थान जो गुरु अर्जुनदेवजी और गुरु हरिगोविंदजी की यात्रा की यादगार में हैं जोकि इस

अकाल बुंगा अमृतसर
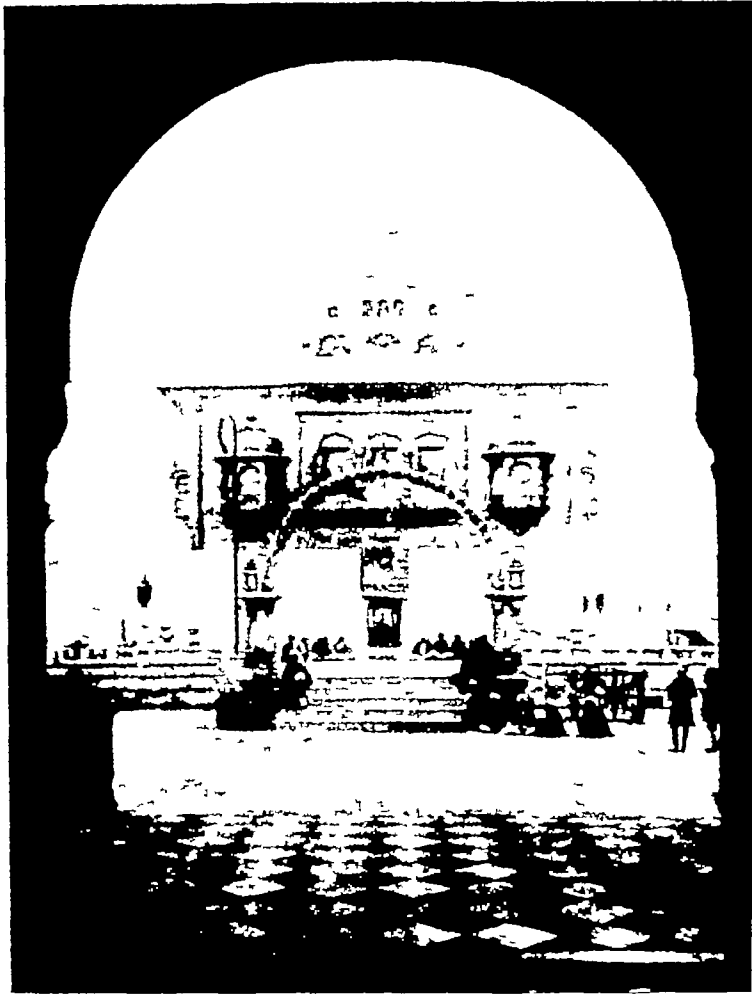
दरबार तरनतारन साहिब

तीर्थ भूमि के दर्शनों के लिये आये थे। इस स्थान से १३ बीघे जमीन माफी मे है।

यहाँ पर कार्तिक की पूर्णमासी पर बड़ा भारी मेला भरता है। अत. भक्तजन इस स्थान के लिये उसी प्रकार उमड़ते है। जिस प्रकार भगवान कृष्ण की जन्मभूमि मथुरा, वृन्दावन को देखने के लिये लोग आते हैं और वास्तव में ही ननकाना सिखों का वृन्दावन है। व्रज मे जैसा हम देखते है कि यहा भगवान खेले थे। यहाँ उन्होंने दधि-माखन खाया था। यहा काली-मर्दन किया था। यहाँ उनकी गायों का खिरक था इसी प्रकार ननकाना मे सिख-दर्शक गुरू नानकदेव जी के समस्त स्मारक स्थान देखते हैं। जहाँ गुरु नानकदेव स्नान करते थे और जिसे कि रायबुलार ने तालाब का रूप दे दिया था। आदि इसी प्रकार के श्रद्धापूर्ण स्थानों के दर्शन ननकाना मे होते है।

सवत् १६२१ वि० मे श्री गुरु रामदास जी ने गुरु अमरदास जी की आज्ञा से तुंग गुमटाला और सुल्तानपिंड नामक गाँवों के पास एक तालाब खुदवाया जिसे गुरु अर्जुनदेवजी ने पूरा करा कर अमृतसर नाम रक्खा। यह बात सवत् १६४५ वि० की है इससे पहले ही संवत् १६३१ वि० मे ही गुरु का चक नाम से एक आबादी गुरु रामदास जी ने कर ली थी। गुरु अर्जुनदेव जी ने अपने समय मे 'गुरु के चक' का नाम रामदासपुर रक्खा और उसे खूब तरक्की दी। यहाँ उन्होने सभी श्रेणियों के लोगों को बसाया। संवत् १६४३ वि० मे उन्होंने उस तालाब को भी पक्का कराना आरभ किया। यह नाम रखने का जो कारण था उसका उल्लेख पहले हो चुका है। इस सरोवर की लम्बाई ५०० फुट चौड़ाई ४६० फुट और गहराई १७ फुट है। संवत् १६४५ में इस सरोवर के निकट गुरु अर्जुनदेवजी ने हरिमन्दिर जी के तैयार हो जाने पर संवत् १६६१ वि० मे उसमे ग्रन्थ साहब की स्थापना की। अमृतसर (सरोवर) के नाम पर ही धीरे-धीरे नगर भी इसी नाम से प्रसिद्ध हो गया।

अमृतसर

यह हरिमंदिर सिखों के समस्त गुरुद्वारों मे शिरोमणि है। सिखों के लिये अमृतसर का वही स्थान है जो हिंदुओं के लिये काशी और मुसलमानों के लिये काबा का है।

यहाँ पर वैसाखी और दीपमालिका पर दो भारी मेले होते है।

इस पवित्र स्थान को मुस्लिम शासकों ने नुकसान पहुँचाया था किंतु जस्सासिंह अहलूवालिया आदि सिख सरदारों ने पुनः ठीक करा दिया। इसके साथ काफी इतिहास है। जिसे हम कुछ-कुछ विभिन्न स्थलों पर इस ग्रथ मे लिख भी चुके हैं।

महाराजा रणजीतसिंह के राज्य मे इस नगर के शामिल हो जाने के बाद इसकी खूब उन्नति हुई महाराज ने हरिमंदिर जी के फर्श सगमरमर के और कलस स्वर्ण के बनवा कर उन्हे देदीप्यमान करने का सौभाग्य प्राप्त किया था।

अमृतसर सिखों की धार्मिक राजधानी है। दरअसल तो यह नगर पजाब के समस्त हिंदुओं का तीर्थ बना हुआ है। यहाँ पर संतोषसर, कोलसर, विवेकसर रामसर नाम के और भी तालाब है।

हरिमदिर जी के अलावा निम्निलिखित और गुरुद्वारे तथा धार्मिक स्थान अमृतसर मे है। (१) अकालतख्त (२) अटलराइ जी का देहरा (३) सालोभाई की धर्मशाला (४) गुरु के महल (५) चरखती-अटारी (६) टाहली साहब (७) थड़ा साहब (८) मंजी साहब (८) दमदमा साहब (६) दरसनी ड्योढ़ी (१०) दुखभजनी बेरी (११) पिप्पली साहब (१२) गुरुद्वारा लोहगढ़।

अकालतख्त मे गुरु साहबान और धर्म पर कुर्बान होने वाले तथा अन्य योद्धाओं के शस्त्र

रक्खे हुये हैं। अमृतसर में अकाली अथवा निहंगवीरों के साथ बाबा फूलासिंह अकाली रहते थे। उनकी स्मृति में वहाँ एक गुरुद्वारा भी है।

जिला अमृतसर में अमृतसर नगर से चौदह मील उत्तर की ओर यह गुरु स्थान है। गुरु अर्जुनदेवजी साहब ने खरीद कर संवत् १६४७ वि० के १७ वैसाख को खारा और पालासुर नामक गाँवों के पास एक तालाब की नींव डाली। इसके ६ वर्ष बाद संवत १६५३ में यहीं पर एक नगर बसाना आरम्भ किया। उन दिनों इस स्थान से तीन मील के फासले पर नूरुद्दीन का लड़का अमीरुद्दीन नाम का पठान जेलदार रहता था। उसने उन सब ईंटों को जो तालाब और नगर के लिये बनवाई थीं उठवा कर अपनी सराय में लगवा दिया। इस प्रकार लगभग ७० वर्ष तक यह स्थान अर्द्धपूर्ण हालात में रहा। संवत् १८२३ ई० में सरदार बुधसिंह फैजलपुरिया और दूसरे सरदारों ने जोर पकड़ा और उस सराय के मकानों की एक-एक ईंट खुदवा डाली और तरनतारन सरोवर के दो किनारे पक्के करा दिये। इसके बाद महाराजा रणजीतसिंह जी ने शेष दो किनारे पक्के करा दिये। कुँवर नौनिहालसिंह जी के समय मे तरनतारन के निर्माण का काम पूरा हुआ। यहाँ गुरु अर्जुनदेव जी ने कुष्टियों को आराम पहुचाने का कार्य किया था अतः यह दुख निवारन भी कहलाता है। ४६६४) सालाना की जागीर भी उसी समय की इस गुरुद्वारे से लगी हुई है। चढ़ावे से चालीस हजार सालाना तक की आमदनी हो जाती है।

तरनतारन

इसके सिवा यहाँ परिक्रमा में एक मंजी साहब हैं। दूसरी मजी शहर से बाहर गुरु के खूह के पास है। दूसरा खूह बीबी भानी जी के नाम पर है।

तरनतारन सरोवर की लम्बाई ६६६ फुट और चौड़ाई ६६० फुट है।

जिला अमृतसर में तरनतारन जी से १० मील के फासले पर खडूर साहब नाम की एक बस्ती है। गुरु अंगद जी यहीं पर निवास करते थे। यहीं से उनका सचखंड प्रस्थान हुआ था। अतः उनकी स्मृति मे यहाँ एक देहरा है। गुरु अंगददेव जी के समय में इस नगर को धर्म-चर्चा का अच्छा सौभाग्य प्राप्त हुआ था। गुरु नानकदेव जी यहाँ पधारे थे और गुरु अमरदास जी ने तो यहाँ वर्षों गुरु अंगददेव जी की सेवा की थी। आबादी के अन्दर गुरुद्वारा है जिससे २६००) सालाना की जागीर लगी हुई है। दरबार साहब की परिक्रमा में किल्ले का वह करीर भी है। जहाँ गुरु अमरदास जी को अपने गुरु अंगददेव जी के स्थान को पानी लाते समय ठोकर लगी थी। इसके अलावा यहाँ यह स्थान और दर्शनीय हैं।

खडूर साहब

(१) तपियाना—जहाँ गुरु अंगददेव जी तप किया करते थे। इसी स्थान के पास भाई बालाजी की समाधि है।

(२) थड़ा साहब—जहाँ पर कि गुरु अंगददेव जी बैठकर पाठ किया करते थे। एक चबूतरा बना हुआ है।

मल्ल अखाड़ा जहाँ पर बैठ कर गुरु अगददेव गाँव के बच्चों को कुश्ती लड़ने की प्रेरणा किया करते थे।

तरनतारन स्टेशन से अग्निकोण में १५ मील के फासले पर गोइन्दवाल नाम का नगर है। गुरु अमरदास जी की सहायता से गोइन्दा नाम के एक खत्री ने इसे बसाया था। अत. उसी के नाम पर यह गोविन्दवाल नाम से मशहूर हुआ। यहाँ पर संवत् १६१६ में गुरु अमरदास जी ने

खडूर साहिब

निवास स्थान श्री गुरु अंगद देव जी

थम्ब साहिब
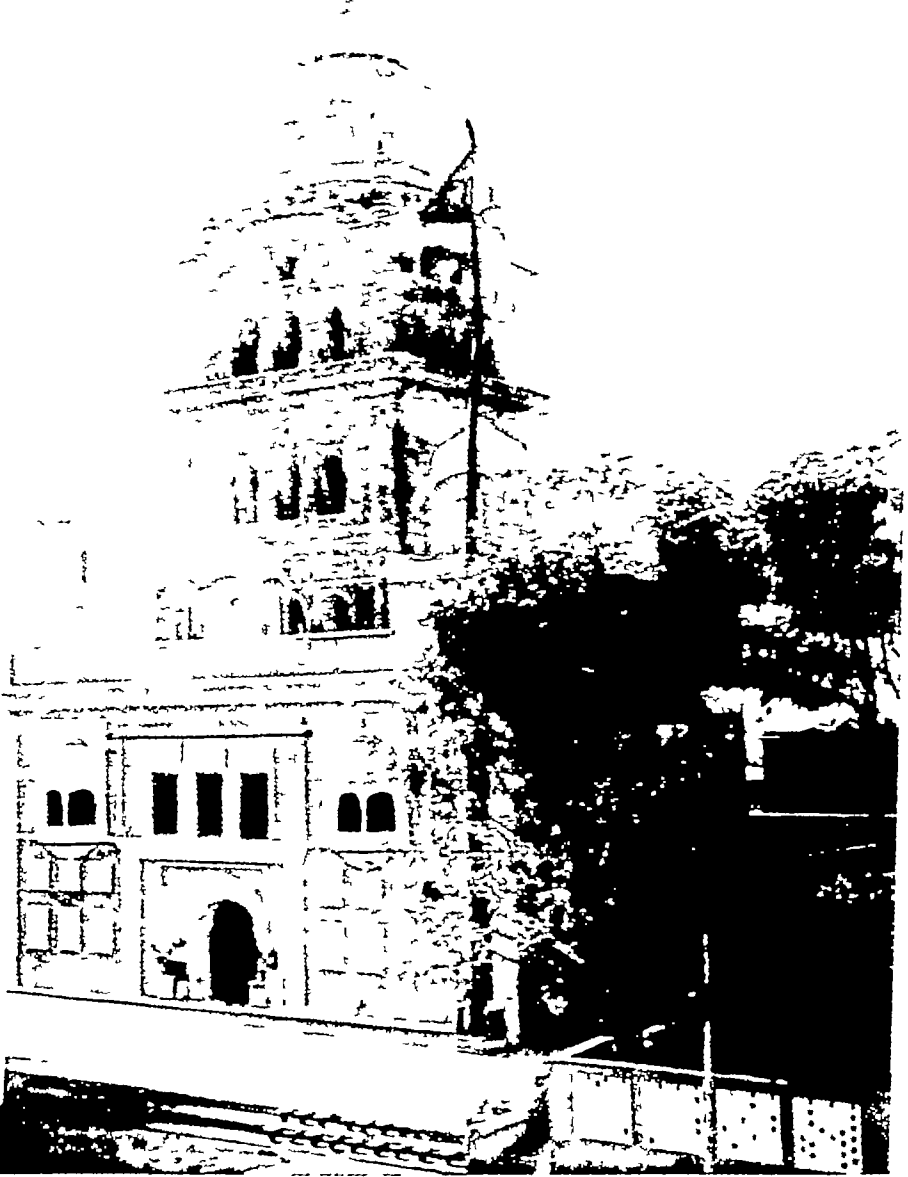
करतारपुर

बावली साहब — एक बावड़ी बनवाई थी। जो शनैः शनैः सिखों के परिश्रम सहायता और प्रेम से सुन्दर बन गई। इसमे ८४ सीढ़ियाँ हैं।

धार्मिक भावनाओं मे यह गया जी से प्रतिस्पर्द्धा करती है। यहाँ क्वार की ५ के दिन बड़ा भारी मेला लगाता है। प्रत्येक सीढ़ी पर अनेको श्रद्धालु सिख जपुजी का पाठ करते हैं। बावली साहब की मान्यता इतनी बढ़ी थी कि मुगल हाकिमों के समय मे जागीर लगना सभव हुआ। उस समय की १११५) की जागीर लगी हुई है। कपूर्थला और नाभा की ओर से भी कुछ-कुछ जागीरे हैं। कई स्थानों पर इस धर्म-स्थान के मकान हैं। जहाँ से किराया आता है।

यहाँ पर कई गुरुद्वारे और धर्मस्थान है। यथा—

(१) अनंद जी का स्थान—गुरु अमरदास जी के पुत्र मोहरी जी के बेटे साहब का नाम अनंद जी था। उन्हीं की स्मृति मे बाजार मे एक मंजी बनी हुई है।

(२) हवेली साहब—श्री गुरु अमरदास जी के रहने का मकान। गुरु जी चौबारे की जिस कीली को पकड़ कर खड़े हुये भजन करते थे। भक्त लोगो ने अब उस कीली को चाँदी से मढ़वा दिया है। इस हवेली मे वह पालकी भी रक्खी है। जिसमे रखकर गुरुवाणियाँ अमृतसर पहुंचाई गई थीं। बरांडे मे वह स्थान है। जहाँ रामदास जी को गुरुआई दी गई थी। यहाँ पर बीबी भाणी जी का चूल्हा भी है। जिसे भक्तों ने अब सगमरमर का बनवा दिया है।

(३) गुरु रामदास जी का बनवाया हुआ यहाँ एक खूह (कूप) भी है।

(४) गुरु अमरदास जी के बड़े पुत्र मोहन जी का चौबारा यहाँ बना बना हुआ है।

कुछ विवरण बावली साहब का अन्य स्थानो पर भी आ चुका है। सिखों का सर्व प्रथम यही स्थान है। जहाँ मेला लगना आरम्भ हुआ था।

सिख धर्म मे पहली शहीदी गुरु अर्जुनदेव जी की हुई है। बादशाह जहाँगीर की आज्ञा से चन्दू ने जो तकलीफें गुरु अर्जुनदेव जी को दी थी। उनकी याद मात्र से रोमांच हो आता है। उन्हीं महान् गुरु

देहरा साहब गुरु अर्जुनदेव जी — का किले के सामने एक भव्य देहरा बना हुआ है। जहाँ कि महाराजा रणजीतसिंह जी की समाधि भी है। दरबार साहब के भीतर एक दीवानखाना भी है। महाराजा रणजीतसिह जी की लगाई हुई इस पवित्र स्थान से जागीर है। रियासत नाभा से भी कुछ रकम बधी हुई है।

यहाँ पर गुरु अर्जुनदेव जी के शहीदी दिन की याद मे प्रति वर्ष जेठ सुदी चतुर्थी को भारी मेला लगता रहा है।

डब्बी बाजार मे गुरु जी के नाम पर एक बावली है। गुरु जी ने इसे छज्जू व्यापारी के दिये हुये धन से बनवाया था। शाहजहाँ के समय मे इस बावली को पाट दिया गया था। किन्तु महाराजा रणजीत-सिंह जी के समय मे उसे फिर दुरुस्त करा दिया गया। इसके साथ ११२ दुकान थीं। जिनसे काफी आमदनी होती रही है।

इनके सिवा यहाँ (१) श्री गुरु नानकदेव जी का गुरुद्वारा (२) चूनामडी मे गुरु रामदास जी का जन्मस्थान (३) जन्मस्थान के पास ही गुरु रामदास जी की धर्मशाला (४) मुजग के बीच श्रीगुरु हरि-गोविन्द जी का स्थान (५) भाटी दरवाजे मे गुरु हरिगोविन्द जी का गुरुद्वारा (६) भाई मनीसिंह जी का शहीदगंज (७) भाई तारुसिंह जी का शहीदगंज और सिंहिनियों का शहीदगंज आदि और भी कई स्थान

दर्शनीय हैं। खेद है कि लाहौर के सब स्थान अब पाकिस्तान में हैं।

गुरु रामदास जी का जन्मस्थान काफी विशाल और आकर्षक है।

जिला होशियारपुर में कीरतपुर नाम का नगर है। यहाँ पर बाबा गुरुदित्ता जी का देहरा बहुत मशहूर है। किंतु गुरु हरिकिशन जी की जन्मभूमि होने का भी इस नगर को सौभाग्य प्राप्त है। इसे गुरु हरिगोविंद जी ने संवत् १६८३ विक्रमी में कहलूर के राजा से भूमि खरीदकर गुरुदित्ता जी की मारफत आबाद कराया। आबादी के बीच में जो शीशमहल है उसी में गुरु हरिगोविंद जी साहब रहते थे। इसी शीशमहल में गुरु हरिकिशन जी का जन्म हुआ था। यहीं पर गुरु हरिगोविंद जी का एक गुरुद्वारा है। जो हरिमंदिर भी कहलाता है। उनका बनवाया हुआ एक कुआँ भी है।

कीरतपुर हरिमन्दिर

जहाँ साईं बुड्ढनशाह से गुरु नानकदेव जी ने ज्ञानचर्चा की थी। वहाँ पर एक नानकदेव जी का भी गुरुद्वारा है।

शहर के बीच में गुरु हरिराय जी साहब का भी गुरुद्वारा है। जिसमे एक बड़ा चुहबच्चा है। जहाँ घोड़ियों के लिये दाना भरा जाता था। दमदमा साहब, पातालपुरी और तीर मजी आदि और भी कई दर्शनीय स्थान हैं।

यहाँ दो एक स्थान को छोड़ सभी से जागीरें लगी हुई हैं। किंतु यह जागीरें बहुत ज्यादा नहीं हैं।

यहाँ पर गुरु हरिराय जी साहब का भी देहरा काफी अच्छा बना हुआ है। इस पर चढ़ावा अच्छा होता रहा। पटियाला से कुछ निश्चित आमदनी बंधी हुई थी।

दिल्ली से गुरु तेगबहादुर जी का शीश जहाँ लाकर यहाँ रक्खा गया था। वहाँ निशानगढ़ बना हुआ है।

इस नगर मे होली पर भारी मेला होता है। जो बाबा गुरदित्ता जी के डेहरे पर मनाया जाता है।

यह हम पहले लिख चुके हैं कि श्री गोविन्दसिंह जी का जन्म उनके पिता जी के प्रवासकाल मे मगध देश की राजधानी पटना में हुआ था। उनके जन्मस्थान पर आज हरिमन्दिर की भव्य इमारत खडी दिखाई देती है और सिख इसे दूसरा तख्त कह कर आदर देते हैं। इस हरिमन्दिर को महाराजा रणजीतसिंह जी ने बनवाया था। तब से अब तक अन्य श्रद्धालु लोग भी बराबर इसमें वृद्धि करते रहे हैं।

हरिमंदिर पटना

यहाँ पर गुरु जी की स्मृति मे इतनी वस्तुयें दिखाई जाती हैं :—

(१) पंघुडा साहिब—पालना जिसमे बालपन मे विराजते थे, (२) तार तीर, (३) एक छोटी तलवार, (४) एक छोटा खंडा, (५) एक छोटा कटार, (६) चन्दन का कघा. (७) हाथ दाँत की खड़ाऊँ और इनके अलावा नवम गुरु जी की खडाऊँ भी हैं।

इस हरिमन्दिर के लिये ३१-)॥ माहवार सरकार देती है। १०००) साल की आमदनी विहार के अमीर गोपालसिंह जी की दी हुई जमीन से होती है। ५००) रियासत नाभा, ४७०) रियासत जीन्द,७००) रियासत पटियाला से सालाना मिलते हैं। ४५६।) सालाना फरीदकोट देता है। १६०) सालाना रामीपुर मुहल्ले की २२ बीघे जमीन की आमदनी है। इसके अलावा और भी जमीन भूभागों मे कुछ आमदनी होती है और चढ़ावे में भी काफी आता है।

हरिमन्दिर जी के सिवा गुरु तेगबहादुर जी की मंजी, बड़ी सगत और छोटी सगत आदि स्थान

हैं। जो निर्मले सिखों के प्रबंध मे है।

पटना मे बैसाख सुदी पंचमी को मंजी साहब पर मेला लगता है।

संवत् १७२३ वि० मे गुरु तेगबहादुर जी ने नैनादेवी पहाड़ के पास माखोवाल गॉव की धरती खरीद कर जो नगर सतलज के पास आबाद किया था वही आनन्दपुर के नाम से मशहूर है। दशमेशजी ने इस नगर को एक समय समस्त सिखों का जीवन प्रसारक केन्द्र बना दिया था। उन्होंने संवत १७४६ वि० में इस नगर की रक्षा के लिए पॉच क़िले आनंदगढ़, लोहगढ़, फतहगढ़, केशगढ़, और होलगढ़ के बनाये। आज इन क़िलों के स्थान पर गुरुद्वारे बने हुए हैं।

तख्त केशगढ़ साहब आनन्दपुर

इस गुरूपुरी मे निम्न स्थान स्मारक स्वरूप बने हुए है। (१) तख्तसाहब शहर के मध्य गुरुद्वारा शीशगज के अहाते मे गुरुआई मिलने की स्मृति को कायम रखने वाला उनके नाम का एक गुरुद्वारा है।

(२) एक गुरुद्वारा आनदगढ़ मे है यह आनंदगढ़ आनंदपुर से केवल आध मील दूर है। यहाँ पर एक वावली है जिसमे भूलभुलैयां जैसी कोठरियां हैं। सब मिलाकर लगभग २०००) साल की जागीर इससे बंधी हुई है।

(३) गुरु तेगबहादुर जी का शीश लाकर जहां आनदपुर मे रक्खा गया था। वह शीशगज कहलाता है। लगभग २००) सालाना की आमदनी पटियाला आदि से बंधी हुई है।

(४) तख्त केशगढ़ आनंदपुर के पास ही है। यहीं पर खालसा पथ की रचना हुई थी। यहां पर होली के दिन बड़ा भारी मेला होता है। दूसरा मेला वैसाखी पर भी होता है। यहां पर गुरु जी की निम्न वस्तुएँ हैं।

(१) नागनी बरछी जो ८ फुट ६ इच लम्बी है।

(२) भाला जो ८ फुट ११॥ इंच लम्बा है। तथा जिसका सिरा २ फुट ६ इंच लम्बा है।

(३) सैफ दस्ते समेत ४ फुट ३ इंच है इसके एक परसे पर 'तौहफा अस्त अली फातिमा हुसैन व हसन' लिखा हुआ है

(४) खडा दुधारा इसी से सिखों की परीक्षा हुई थी। जिसमे पांच प्यारे बने थे।

(५) कटार यह दस्ते समेत २ फुट ३ इंच लम्बी है। वहा पर गुरु के महल, दमदमा साहब, मत्री साहब, भेरासाहब आदि और दर्शनीय स्थान है।

गुरुद्वारा केशगढ़ से काफी जागीरे लगी हुई हैं। यथा ११५०) सालाना की जागीर होशियारपुर जिले के वड्डों गाव मे इसे सरदार बघेलसिंह ने लगाया था। ४००) सालाना की गांव गीगनवाल-जिला जालधर में, सरदार मितसिंह जी जत्थेदार द्वारा दी हुई। ११००) सालाना की मोठेपुर गांव मे जोकि आनन्दपुर के परगने मे ही है। इसे सरदार चड़तसिंह डल्लेवालिया ने भेंट किया था। ७५) सालाना की विलासपुर रियासत की। ३७५) सालाना राज्य पटियाला ३७) राज्य कलसिया द्वारा दी हुई आमदनी है।

इन स्थानों को देखकर सिखों के नवजीवन दाता की महानता हृदय में हिलोरे मारने लगती है। प्रत्येक श्रद्धालु और प्रेमी सिख के मन में स्वभावतः कल्पना उठती है वह समय कितना सुन्दर रहा होगा जब दशमेश जी अपने चारों साहबजादों के साथ अपनी इस आनंदपुरी मे रहते होंगे।

अम्वाला जिला की रोपड़ तहसील मे चमकौर एक गॉव है किंतु सिख इतिहास में इसका स्थान बहुत ऊँचा है आनंदपुर से निकलने के बाद यहां चालीस सिखों और अपने पुत्रों के साथ गुरुजी ही ने

चमकौर साहब

यवनों के अपरिमित दल का सामना किया था। आपके दो साहबजादे श्री अजीत-सिंह जी और जुझारसिंह जी यहीं शहीद हुए थे। उनकी शहीदी के स्थान पर जो गुरुद्वारा है वह कतलगढ़ कहलाता है। सवत १७६१ वि० की पूष की ८ वीं को यह शाका हुआ था। अत पौह की ८ वीं को यहा भारी मेला होता है।

इस पुण्य स्थान से १०० वीघे जमीन सिख राज्य के समय की लगी हुई है। ३००) सालाना की जागीर रायपुर से लगी हुई है और ६५१) सालाना आमदनी पटियाला राज्य से होती है।

गुरु दशमेश जी की यादगार में यहा एक दमदमा भी है। जिस पर कि वे एक वार कुरुक्षेत्र जाते हुए ठहरे थे। १७ घुमाव जमीन इस दमदमा साहब से लगी हुई है।

जिला गुरुदासपुर में रावी किनारे सवत १५६१ वि० में गुरु नानकदेव जी ने अपने रहने के लिए एक स्थान वनवाया था। जोकि धर्मशाला के रूप में था। धीरे-धीरे वहां पर एक नगर वस गया जो कर-

करतारपुर

तारपुर कहलाया। सवत १५७६ वि० से गुरुजी यहां निश्चित रूप से रहने लग गये, क्योंकि अब तक उन्होंने वड़ी-वड़ी यात्रायें करली थीं। यहीं पर सवत १५६६ वि० में उनका स्वर्गारोहण हो गया। भक्त लोगों ने नगर के पास ही गुरुजी की समाधि वनवा दी। जिसे रावी की वाढ़ ने नगर समेत अपने में लीन कर लिया।

वावा लक्ष्मीचन्द जी और श्रीचदजी ने पुन. अपने पिता का डेरा वनवाया और नगर भी वसाया जो अव देहरा वावा नानक के नाम से मशहूर है। गुरुद्वारे के लिये ३७५) सालाना जागीर और

करतारपुर द्वितीय
जिला जालधर

७० वीघा जमीन लगी हुई है। यहां कई स्थान और वस्तुयें दर्शनीय हैं। यहा के शीशमहल में जिसे कि पाचवें और छठे पातशाहों ने वनवाया था। गुरु अर्जुन-देवजी के भाई गुरुदास जी द्वारा लिखाये हुये ग्रन्थ साहव, गुरु हरिगोविंद जी का ६सेर पक्के तौल का खड्ग और गुरु हरिरायजी का खड्ग आदि वस्तुयें रक्खी हुई हैं।

सरहिंद के मुसलमान शासकों ने आरम्भ से ही सिखों पर पाशविक अत्याचार किये थे। दशमेश जी के दो नन्हे साहवजादे श्री जोरावरसिंह और फतहसिंह जी को सरहिंद मे ही शहीद किया गया था।

फतहगढ

वहादुर वदासिंह जी के नेतृत्व में सरहिंद पर चढ़ाई करके यहॉ के हाकिम वजीरखॉ को मार डाला और सरहिंद को ध्वश कर दिया। जहॉ साहवजादे शहीद हुये थे। वहॉ सिख लोगों ने एक विशाल गुरुद्वारा वनवा दिया जो फतहगढ़ कहलाता है।

इस स्थान से सिख-राज के समय की और पटियाला की दी हुई चार हजार रुपया सालाना की जागीर लगी हुई हैं। प्रति वर्ष पूप की १३ वीं को यहॉ मेला लगता है।

इसके अलावा यहॉ इतने गुरुद्वारे और हैं।

(१) शहीदगज-युद्ध में मारे गये ६ हजार शहीदों के सस्कार का स्थान।

(२) शहीदगंज (द्वितीय) जहॉ जैनखा के साथ युद्ध करते हुये जत्थेदार सूवासिंह जी शहीद हुये।

(३) शहीदगज (तृतीय) जहॉ इसी युद्ध में मल्लसिंह जी शहीद हुये।

(४) ज्योतिस्वरूप जहॉं पर माता गूजरी जी और साहवजादों का सस्कार हुआ।

(५) थडा साहव—यहॉ पर गुरु हरिगोविंद जी साहव एक समय थोड़े काल तक विराजे थे।

(६) माता गूजरी जी का वुरज—जिसे कि ठडा या खूनी वुर्ज भी कहते हैं और जहॉ पर कि माता जी और साहवजादे पकडे जाने के वाद कैद में रक्खे गये थे।

देहरा बाबा नानक जी

दरबार श्री मुक्तसर साहिब
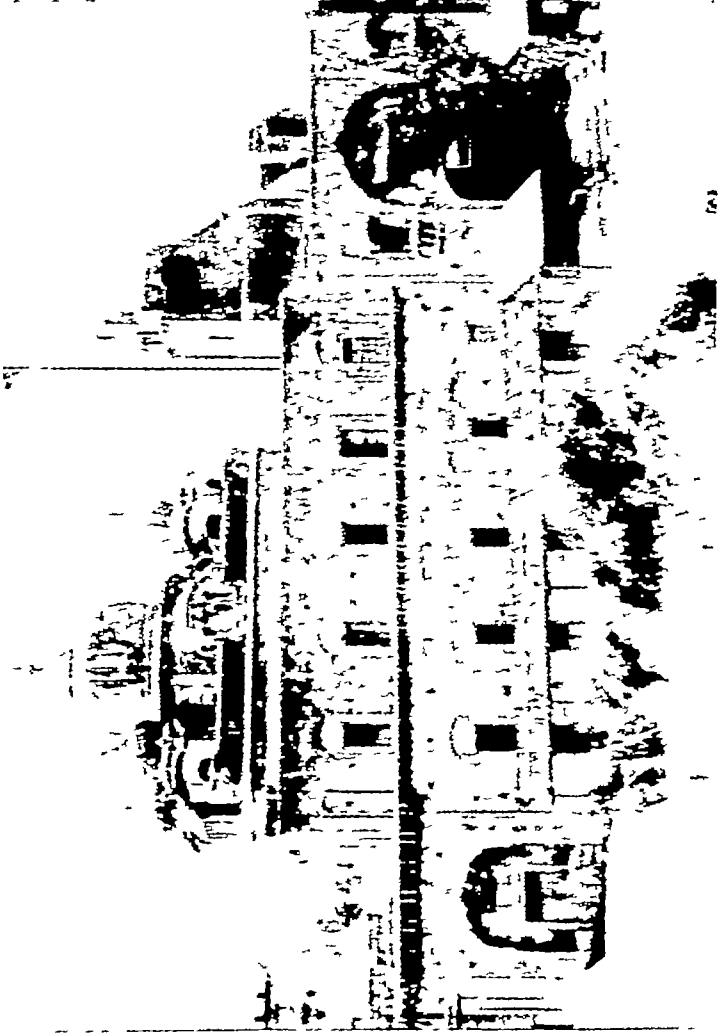
सिखों का यह पवित्र तीर्थ जिला फीरोजपुर मे है पहले यहां खिदराना नाम का एक जोहड़ था जिसमे चारों ओर से वरसात का पानी भर जाता था। १७६१ वि० के बैसाख मे यहां पर गुरु गोविंद-

दरवार मुक्तसर

सिंह के वे योद्धा मुसलमान सेना से लड़कर शहीद हुये थे जो आनन्दपुर मे उन्हे वे दावा लिखकर दे आये थे किंतु फिर उनकी आत्मा अपने लिये धिक्कारती रही और वे गुरु जी की तलाश मे निकल पड़े। इस खिदराना नामक स्थान पर ही वे सब के सब अपने सेनापति महासिंह और माई भागो के साथ शहीद हो गये। गुरु जी ने उन्हे मुक्ते की पदवी दी और तभी से यह स्थान मुक्तसर के नाम से मशहूर हो गया। इस समय यह सरोवर बहुत सुन्दर और पक्का बना हुआ है।

यहाँ पर इतने स्थान हैं —(१) शहीदगंज जहाँ पर कि इन शहीदों का संस्कार किया गया, (२) टिब्बी साहब जिस पर खड़े होकर गुरु जी युद्ध को देख रहे थे। तथा जहाँ से उन्होंने तुरक सेना पर वाण-वर्षा की थी, (३) तम्बू साहब जहाँ सिख वीरो ने पड़ाव डाला था, (४) वड़ा दरबार जहाँ दशमेश जी विराजे थे यह गुरु द्वारा सरोवर के किनारे पर ही बना हुआ है। ४२००) सालाना की जागीर सिख राज के समय से ही लगी हुई है।

यहां पर प्रति वर्ष माघी पर मेला लगता है।

पटियाला राज की वरनाला निजामत मे साबो की तलवंडी मे यह पवित्र स्थान है। यहाँ दशमेश काफी समय तक रहे थे और यहीं उन्होंने ग्रंथ साहब की बीड़ तैयार कराई थी। यहाँ के प्रबन्धक दीपसिंह

दमदमा साहब व तलवण्डी

जी के वंशज है। यहाँ पर जो सरोवर है वह बहुत ही सुन्दर है सिखों का यह स्थान गुरु काशी के नाम से मशहूर है। सत अतरसिंह जी ने यहाँ एक बड़ा विद्यालय स्थापित किया था। तब से यह कहा जाता है यह स्थान सिख लेखकों और ज्ञानियों के लिये टकसाल है। रियासत नाभा से १००) लंगर के लिये मिलता है और भी काफी आमदनी हो जाती है।

चौधरी डल्ले की गुरु जी में बड़ी प्रीति थी यहा से विदा होते समय जो वस्तुऐ गुरूजी ने उसे दी थीं अब वह उनके वंशज सरदार शमशेरसिंहजी के पास हैं जो प्रत्येक शुक्ल दशमी पर दिखाई जाती हैं।

यहाँ पर जंडसर, लिखनसर, टिब्बी और मजी आदि और भी स्थान हैं।

यह स्थान दक्षिण हैदराबाद के पास है श्री गुरु गोविन्दसिंह जी का स्वर्गारोहण यहीं पर कार्तिक सुदी ५ सम्वत् १७८५ वि० को हुआ था। हजूर साहब का दूसरा नाम अविचलनगर भी है। यह खालसे का चौथा तख्त है।

तखत हजूर साहब नंदेड

यहां पर गुरु गोविंदसिंह जी के चक्र, चौडा तेगा, फौलादी की कमान, गुरज, नाराच, कृपाण आदि शस्त्र और दूसरी वस्तुयें रक्खी हुई हैं।

अविचलनगर के इस भव्य गुरुद्वारे के सिवा नादेड में इतने धर्मस्थान और हैं:—

(१) शिकार घाट—गोदावरी के किनारे जहाँ दशमेश जी शिकार खेलकर आराम करते थे।

(२) सगत साहब—संगत साहब—जहाँ पर कि गुरु जी ने संगतों को उपदेश दिये।

(३) हीरा घाट—गोदावरी का वह घाट जहां गुरुजी ने बादशाह बहादुरशाह का भेट में दिया हुआ हीरा नदी मे फेंक दिया था।

(४) गोविन्द बाग—दरबार साहब के पास ही है।

(५) नगीनाघाट—जहां पर कि गुरु जी ने सिखों के भेट किये हुये नगीने नदी मे फेंक दिये थे।

(६) बन्दा थान—जहां पर कि बहादुर बदासिंह तप करते थे और गुरु जी ने उन्हें शिक्षा दी।

(७) माता साहबकौर जी का स्थान—यहाँ पर दशमेश जी की द्वितीय धर्मपत्नी कुछ दिनों रही थीं।

(८) माल टोकरी—यहाँ पर गुरु जी को गुप्त खजाना मिला था। जिससे उन्होंने पठान नौकरों को तनख्वाह बांटी थी।

ये दोनों गुरुद्वारे देहली मे हैं और दोनों ही गुरु तेगबहादुर जी की स्मृति मे बने हुये हैं। शीशगंज तो वह स्थान है, जहाँ अत्याचारी औरंगजेब की कठोर यातनायें सहने के बाद गुरु जी ने धर्महेत अपना सिर दिया था और रकाबगंज वह स्थान है। जहाँ गुरु जी का धड़ लाकर उनके भक्तों ने संस्कार किया था। इनमें पहला चाँदनी चौक देहली मे और दूसरा नई दिल्ली में सचिवालय के पास है।

शीशगज, रकाबगज

पजाब मे सिखों का एक और प्रसिद्ध धर्म-स्थान है। वह है पंजा साहब जिसका कि जिक्र हम गुरु नानकदेव जी के जीवन में कर चुके हैं।

भारत और भारत से बाहर लगभग ८०० स्थान ऐसे हैं। जिनसे गुरुओं का सम्बन्ध है अर्थात् वे सब गुरुओं की यादगार में बने हुए हैं। जिनमे से कुछ मे सिंह प्रबन्धक हैं कुछ मे निर्मले और उदासीन महत हैं। पजाब के गुरुद्वारों के लिये सन् १९२५ ई० मे गुरुद्वारा एक्ट बन गया है। जो सिखों के घनघोर आदोलन का फल है।

गुरुद्वारों के सम्बन्ध में इतना वर्णन करने का हमारा मतलब गुरुद्वारों का इतिहास देना नहीं किन्तु इतना बताना मात्र है कि उनके यहाँ धार्मिक स्थानों की चिरकाल तक उन्हे संगठित बनाये रखने के लिये—कमी नहीं है। संगठन का यह मजबूत अग बहुविस्तृत और पारमार्जित अवस्था मे है तथा यह अंग उनकी श्रद्धा का एक केन्द्र बना हुआ है। गुरु-ग्रन्थ के बाद उनके यहाँ गुरुद्वारों का बहुत ऊंचा स्थान और मान है। यही कारण है कि ये गुरुद्वारे एक प्रकार के छोटे-मोटे गढ़ और महल जैसे बने हुये हैं और लाखों ही रुपये साल इन पर चढ़ावा चढ़ता है।

शिक्षा के क्षेत्र मे भी सिख समाज ने बड़े जोरों से उन्नति की है। महाराजा रणजीतसिंह जी के समय तक तो शिक्षा में यह समाज काफी पीछे था, किन्तु आज पंजाब मे उनका स्थान किसी से पीछे नहीं। प्रारम्भिक और धार्मिक शिक्षा के लिये तो गुरुद्वारे ही काफी मदद देते हैं। ऊचे दर्जे की शिक्षा के प्रबंध करने वाली एक सस्था सिख-शिक्षा कान्फ्रेंस बनाई गई थी। जिसे स्थापित हुए ४०-४२ वर्ष हो गये। यह प्रत्येक अधिवेशन पर एक हाईस्कूल खोल देती था।[1] २२ वें अधिवेशन में जोकि लाहौर मे रायबहादुर सरदार विसाखासिंह जी देहली के सभापतित्व मे हुआ था। खालसा कालेज अमृतसर या यूनीवर्सिटी बना देना निश्चय किया गया था और उसमें उसी समय ढाई लाख रुपया इकट्ठा भी हो गया था।

शिक्षा

अमृतसर में सिखों का एक बड़ा खालसा कालेज है। इसकी नींव ५ मार्च सन १८९२ ई० में

१ अधिवेशन प्रत्येक वर्ष भिन्न-भिन्न शहरों में होते हैं।

पंजाब के तत्कालीन लाट साहब सर जेम्स लायल के हाथो रक्खी गई और १२ अप्रैल सन् १६०४ मे नाभा नरेश महाराजा हीरासिंह जी की अध्यक्षता मे एक भारी जलसा हुआ था जिसमे समस्त रियासतो के प्रतिनिधि और उस समय के पंजाब के गवर्नर सर चार्लस रिवाज भी मौजूद थे इस जलसे मे बहुत धन इकट्ठा हुआ था इस कालेज का रकवा कई मीलों मे होकर है और सभी सिख राज्यो से वधी हुई आमदनी होती रही है। पंजाब सरकार से भी सहायता मिलती रही है। इसके अलावा सिखों के और भी कालेज हैं। जिनमे लाहौर और लायलपुर के पाकिस्तान मे रह गये।

पंजाब के वाहर जहाँ भी सिखो की आवादी है वहाँ-वहाँ सव जगह छोटे-वड़े स्कूल है। दिल्ली मे दरियागज में एक दस्तकारी का स्कूल है। इसके अलावा कुछ दस्तकारी के और भी स्कूल हैं।

लड़कों की शिक्षा की तरह सिखों ने लड़कियों की शिक्षा की ओर भी ध्यान दिया है। उतना तो नहीं किन्तु कुछ असतोषजनक भी नहीं है। सन् १८८७ तक तो २२७ स्त्रियों पीछे एक लड़की सिखों की पढ़ी लिखी थी। उस समय सरकार की ओर से जो कन्या-पाठशालाये खुली थीं। उन्हीं मे खास २ घरो की लडकियाँ जाती थीं। अमृतसर मे खेमसिह जी वेदी ने एक कन्याशाला खोली थी जिसमे वे अपने ढंग से केवल धार्मिक शिक्षा ही देते थे।

सन् १८६० ई० के आस-पास प्रोफेसर गुरमुखसिंह, भाई हितसिह ज्ञानी, नौरंगसिह और डाक्टर चरनसिंह जैसे कुछ पुरुषों ने स्त्री-शिक्षा का आन्दोलन उठाया। इन्होंने एक सिंह सभा वनाई। उसी के द्वारा कुरीतियों के निवारण और धर्म-प्रचार का काम भी होता था। प्रोफेसर गुरुमुखसिंह जी के प्यारों मे एक भाई तख्तसिंह जी थे। कहा जाता है कि सिख जाति मे स्त्री जाति के वे परम उद्धारक और हिमायती थे। उन्होंने फिरोजपुर मे एक कन्या विद्यालय स्थापित किया। जो आगे चलकर पंजाब मे स्त्री-शिक्षा का एक प्रसिद्ध केन्द्र वन गया।

सन् १६११,१२ ई०की सरकारी रिपोर्ट से भाई तख्तसिंहके जोकि जाट जमीदार के घर पैदा हुए थे। कन्या विद्यालय के लिये इस प्रकार लिखा गया था—"यह स्कूल भाई तख्तसिंह और उसकी सुपत्नी का खोला हुआ है। इन दोनो ने इस स्कूल को चलाने के लिये धन संग्रहार्थ हिंदुस्तान, जापान और अमरीका देश का भ्रमण किया है। (रिपोर्ट मे अमरीका जाना भूल से छपा है। वे मलाया गये थे।) इन दोनो स्त्री पुरुषों ने स्कूल के लिये अपना जीवन अर्पण कर दिया है।

सन् १६३८ ई० मे भाई तख्तसिंह जी का स्वर्गवास हो गया। जन्म सन् १८६० ई० मे हुआ था। असली निवासी भरोवाल जिला लुधियाना के थे। इनके पिता सरदार देवासिंह फीरोजपुर मे मुलाजमत पर आये थे। यहीं भाई जी का जन्म हुआ।

वास्तव मे भाई तख्तसिंह सर्वप्रिय थे। हिंदू-मुसलमान सभी उनकी प्रशंसा करते है। अब यह स्कूल सिख कन्या महाविद्यालय के नाम से मशहूर है वहुत दिनों तक भाई जी की सुपुत्री बीबी गुरवख्शकौर जी इसकी सचालक तथा आचार्य्या रही थीं।

भाई धर्मसिंह जी ठेकेदार दिल्ली ने चार लाख रु० कन्या-शिक्षा के लिये दिये और प्रवध करने के लिये एक ट्रस्ट वना दिया था। इस धनराशि से लड़कियो को वजीफा दिया जाता रहा है। लगभग १०० पाठशाओं के चलाने मे भी इस धन से सहायता दी जाती रही है। और प्रत्येक क्षेत्र मे सिख लड़कियाँ से ऊँचे ओहदों पर पहुँच रही हैं। उनमे ज्ञानी, विशारद, डाक्टर लेखक, कवि आदि भी अनेकों हैं।

इस प्रकार लड़के और लड़कियों दोनों ही की शिक्षा मे सिख संतोपजनक रीति से आगे वढ़ रहे

हैं। एक खास बात यह है कि प्राइवेट संस्थाओं मे धार्मिक शिक्षा अनिवार्य है और सिख प्राय उन्हीं सस्थाओं में पढ़ते है जो उनकी हैं। इन्हें सरकार ग्राड देती है। इनकी डिग्रियाँ सरकार से स्वीकृत हैं।

सिखों का अधिकाश साहित्य पजावी जवान और गुरमुखी लिपि में है। साहित्य मे सिखों ने आशातीत उन्नति की है। वैसे इस समय सिखों की लिखी हुई वहुत सारी किताबें हैं। किंतु दूसरी भाषाओं के मुकाविले मे कम ही हैं। जितनी भी हैं, उनमें धार्मिक अधिक हैं। वैसे जीवन के हर पहलू पर थोडा वहुत साहित्य सिखों ने तैयार किया है। गुरमुखी भाषा में सवसे पहले जो ग्रथ लिखा गया था। वह थी भाई वाले जी की साखी। जिसे द्वितीय गुरु अगददेव जी ने लिखाया था। इसमें गुरुवाणियों के सिवा गुरु नानकदेव जी का जीवन वृत्तांत भी था। कुछ समय तक तो इसने धार्मिक ग्रथ का भी काम दिया था। पाँचवे पातशाह गुरु अर्जुनदेव जी के समय मे आदि ग्रथ साहव की रचना हुई। जो जन-भाषा मे भारत मे अनूठा धार्मिक ग्रन्थ है। भाई वाला जो की सखी का आदर उत्तरोत्तर गिरता गया। क्योंकि उनमें वरावर असैद्धान्तिक वातों की वृद्धि दूसरे लोग करते रहे। पजाव के साहित्यकारों में भाई गुरुदास जी का दर्जा वहुत ऊँचा है और कहा जाता है कि जिस समय भाई गुरुदास जी की रचनाओं को गुरु अर्जुनदेव जी ने देखा तो उन्होंने इन्हें गुरुग्रन्थ साहव की कुंजी कहा। भाई गुरुदास जी की पजावो वारों के साथ ही उनके हिन्दी भाषा मे लिखे हुए कवित स्वय एक वडे गौरव की चीज है।

सिख साहित्य

भाई सतोपसिंह जी का महान् ग्रन्थ सूरजप्रकाश एक वडी अद्भुत रचना है। जिनमें सिख गुरुओं के जीवन दिये हुए हैं।

गुरु ग्रन्थ साहव के पश्चात् सिखों में जिस ग्रन्थ का अधिकतम आदर है। वह है श्री गोविंदसिंह जी दशम पातशाह की रचना। उस एक ही महान ग्रन्थ में जोकि दशम ग्रन्थ के ही नाम से प्रसिद्ध है। अनेक महत्त्वपूर्ण विपयों का समावेश है।

इतिहासों ग्रन्थों मे सिख लोग मैकालिफ साहव के लिखे इतिहास को ज्यादा महत्त्व देते हैं। यह इतिहास भाई काहनसिंह जी, ज्ञानो दितसिंह, शार्दूलसिंह आदि की मदद से लिखा गया था। आधुनिक सिख लेखकों मे भाई काहनसिंह जी वहुत ऊंचे लेखक थे। उनका लिखा गुरु रत्नाकर शब्दकोप शायद सव लेखकों के ग्रन्थों से वडा है सिखों के वृद्ध लेखकों में भाई वीरसिंह जी ने काफी लिखा है।

भाई वीरसिंहको यदि आधुनिक पजावी साहित्य का पिता कहा जाय तो अत्युक्ति न होगी। उनकी रचनाओं में से कोई छ सौ के करीव खालसा ट्रैक्ट सोसायटी के लिये लिखे हुए ट्रैक्ट हैं। गुरु नानक चमत्कार, कलगीधर चमत्कार जैसे ग्रन्थ लिखकर उन्होंने पजावी गद्य में एक नई रूह फूक दी थी। गुरु ग्रन्थ कोप भी प्राय उनका ही लिखा हुआ है और भाई सतोपसिंह रचित सूरजप्रकाश जैसे महान ग्रन्थ का १४ जिल्दों मे सपादित करना उनके महान कार्यों में से है। इनके अलावा उन्होंने 'सुन्दरी' और 'विजयसिंह' जैसे अनेकों ऐतिहासिक उपन्यास लिखकर सिखों में जागृति पैदा करने मे वड़ा भाग लिया है। काव्य में प्राय एक सत कवि हैं।

हिन्दी मे गुरुमत साहित्य का प्रचार भाई मोहनसिंह जी वैद्य ने अच्छा किया। कुछ थोडा सा साहित्य हिन्दी में प्रोफेसर (अव डाक्टर) गडासिंह जी ने भी लिखा है। सत गोविंदसिंह ने हिन्दी मे इतिहास गुरु खालसा अच्छी पुस्तक लिखी है। विज्ञान, दर्शन, काव्य, शिल्प, कला और राजनीति की ओर सिख लेखकों की रुचि वरावर वढी है।

अट्ठाईसवाँ अध्याय

सिख धर्म के अन्तर्गत सम्प्रदायों की विवेचना

संसार मे जितने भी धर्म हैं। उनमे शायद एक भी ऐसा नहीं होगा जिसके अंदर फिरके न हो। इस्लाम के अदर ७२ फिरके बताये जाते हैं। 'ईसाइयों' मे भी कई फिरके हैं। वैष्णव, शैव और शाक्त भी फिरकेबन्दी से खाली नहीं। यह फिरके अच्छे भी होते हैं और बूरे भी। अच्छे तो उस हालत मे होते हैं जब वे प्रगतिशील हों किंतु बूरे तो वे हर हालत मे ही हैं। सिर्फ उन दिशाओं को छोड़कर जब किसी विशेष अवसर पर मतभेद को भूलकर एक लाइन मे खड़े हो जांय। सिख धर्म के अंदर भी ऐसे सम्प्रदाय हैं। उन्हीं मे से कुछ प्रमुख सप्रदायों का संक्षेप सा परिचय यहां देना चाहते हैं।

यह सम्प्रदाय सारे भारत मे फैला हुआ है। यह सिखो का अग है भी और नहीं भी। है तो यों कि गुरु ग्रंथसाहब को यह अपना धार्मिक ग्रंथ मानते है इनके डेरो में ग्रंथ साहब का पाठ होता है और गुरु नानकदेव जी से लेकर इस बीसवीं सदी के आरम्भ तक उन्होंने इस पवित्र ग्रन्थ के उपदेशों का प्रचार किया है। दूसरे वे गुरु नानकदेव जी के पुत्र बाबा श्रीचन्द जी को अपने सम्प्रदाय का एक उद्धारक (प्रवर्तक भी) मानते हैं। गुरु नानकदेव जी और बाबा श्रीचन्द जी के उद्देश्यों मे कोई मौलिक भेद भी न था। बाबा श्रीचन्दजी का तप इतना बढा हुआ था कि सिख गुरु उनकी कद्र करते थे और भेट भी देते थे। बाबा श्रीचन्दजी ने अपने पिता की वाणियो और उपदेशों का कोई खडन भी नहीं किया है। लगभग साढ़े तीन शताब्दी तक सिख और उदासीन दूध और पानी की तरह हिल-मिल कर रहे हैं। गुरु मंतव्यों का प्रचार और गुरुद्वारों की पूजा प्राय उदासीनों के ही हाथ रही है। अब गुरुद्वारों के प्रबंध के ऊपर झगड़ा होने पर इस ३०-३५ वर्ष के अंदर दोनों ओर से मतभेद हो गया है।

उदासीन

जिस प्रकार पंजाब मे गुरुद्वारो का घनत्व है उसी प्रकार पंजाब मे उदासियों के डेरों का भी महत्व है यही नहीं किंतु भारत से बाहर यूरोप मे भी उदासियों के प्रबन्ध मे सिख गुरुद्वारों के होने का पता चलता है। चुनाचे एक ऐसा गुरद्वारा सेंटपीटर्सबर्ग मे सन् १७८२-८३ में था जिसका कि जिक्र जार्ज फौस्टर ने अपने सफरनामे में किया है। बाद मे भी एक ऐसे ही गुरुद्वारा के होने का पता मिलता है। उदासियों के डेरे तो पजाब के अलावा,सिन्ध, बिहार और यू०पी० मे भी काफी है और उनमें प्राय: सभी स्थानों से गुरु

नानकदेव, गुरु तेगवहादुर और गोविन्दसिंह जी आदि का इतिहास जुड़ा हुआ है। सिन्ध में साधु-वेला उदासियों का एक वहुत वडा धर्म स्थान है।

उदासीन मत को शिखरत्व देने में वावा श्रीचन्द जी का वड़ा प्रभाव था। इसमें कोई संशय नहीं। वावा श्रीचन्दजी संवत् १५५१ में सुल्तानपुर मे पैदा हुए थे उनके दूसरे छोटे भाई वावा लक्ष्मीचन्दजी थे जिन्होंने करतारपुर में अपना उपनिवेश रक्खा। वावा श्रीचन्दजी भी जन्म से सासारिक मामलों में दिलचस्पी नहीं लेते थे। अत उन्होंने अपना विवाह भी नहीं किया था। संस्कृत के वे अद्भुत विद्वान् थे। शास्त्रार्थ में उन्होंने कई वार अच्छे २ पडितों को हराया था। उनके तप के स्थानों के नाम टालीसाहव और वारठगॉव पड़ गये हैं। यह स्थान गुरदासपुर जिले में हैं। वारठ गॉव मे ही गुरु अर्जुनदेव जी उनसे मिले थे। यहीं पर गुरु हरगोविन्दजी से उन्होंने गुरदिता जी को अपनी सेवा के लिये लिया था। वावा श्रीचदजी के भी कई स्मारक स्थान हैं। नगरठडा दौलतपुर, चम्वा शहर में भी उनके स्थान है। वे एक सौ उन्नीस वर्ष तक जिंदा रहे। उनके भक्तों का ख्याल है कि सच्चे मन से पाठ करने वालों को अव भी दर्शन देते हैं।

वावा श्रीचंदजी की करामातों का भी एक इतिहास है। वादशाह जहॉगीर ने भी उनकी करामातें देखी थीं ऐसा उदासीन लेखकों का कहना है।

उदासीन सतों में अनेक प्रसिद्ध सत हुए हैं। जिनकी पजाव मे कई स्थानों पर यादगारे वनी हुई हैं। सस्कृत के ऊँचे दर्जे के कई विद्वान अभी भी इस सप्रदाय में हैं।

यह हम लिख चुके हैं कि वावा श्रीचंदजी के पहले चेले गुरदित्ता जी हुए। आगे उनके चार सेवक हुये। (१) वालू हसना (२) अलमस्त (३) फूलसाह और (४) गोविन्दजी। यह चारों वडे प्रसिद्ध सत हुये हैं।

अलमस्त वा अलमस्त मुनि[१] काश्मीर के रहने वाले प० हरदत्तजी के पुत्र थे। वह वावा श्रीचद जी के सवत १६३१ ई० में शिष्य हुए। वचपन से ही यह ईश्वर-भक्त थे। शिष्य होने के वाद इन्होंने वावा श्रीचदजी की अपूर्व भक्ति के साथ सेवा की। सदैव उनके साथ रहने और कम्वल और गुदड़ी लादने के कारण यह कमलिया भी कहलाने लगे। आज्ञाकारी ऐसे थे कि वावा जो भी कुछ कह देते थे उसका अक्षरश: पालन करते। अपने गुरु और ईश्वर की भक्ति में हर समय प्रसन्न रहने के कारण यह अलमस्त भी कहलाते थे। वावा श्रीचदजी ने इन्हें वरदान दिया था कि तेरे शिष्यों में भी विद्वान और धर्मी लोग होंगे। तू खुद भी वड़ी ख्याति प्राप्त करेगा। वृद्धावस्था के दिनों में तो वावा को कमलिया जी कंधे पर विठाकर जहा वे चाहते ले जाते थे।

वालू हसना जी का सही नाम वालकृष्ण जी था। यह अलमस्त अथवा कमलियाजी के छोटे भाई थे। सस्कृत में आपने भी भारी योग्यता प्राप्त की थी। शास्त्रों के और ईश्वर के मनन मे आप इतने दत्तचित्त होते थे कि अपने शरीर की भी सुध-वुध भूल जाते थे। एक समय इसी वेसुधी मे एक छत के गिर जाने के कारण आप मृत प्राय हो गये। आपको श्मशान ले जाने की तैयारी होने लगी किन्तु वावा श्रीचन्द जी ने यह कहकर उन्हे जीवित कर दिया कि तुम कहते हो वालू जी मर गया देखो तो वह तो हॅस रहा है सवने देखा तो सचमुच वे हॅस रहे थे। तभी से वे वालू हसना नाम से मशहूर हुये।

१ उदासीन लोग इसी सम्मानप्रद उपाधि से इन्हें याद करते हैं।

डेरा बाबा गुरुदित्ता जी

कीरतपुर

तिलक स्थान

चमकौर साहिब
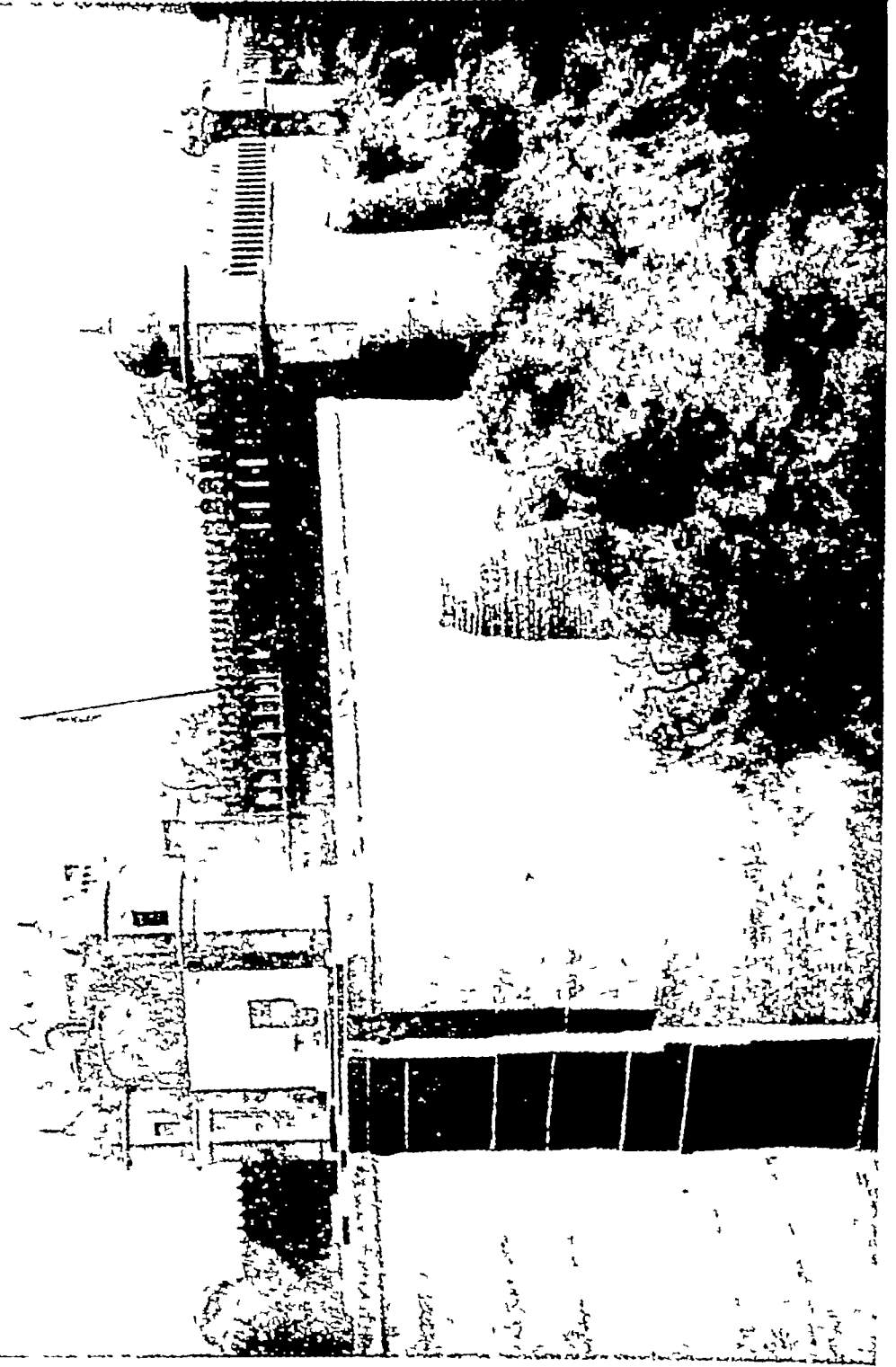
गोइन्द (गेदा जी) और फूलसिंह जी के सही नाम गोविन्ददेव और पुष्पदेव जी थे। इनके पिता जयदेव और माँ सुभद्रा श्रीनगर के रहने वाले थे। एक समय यह दम्पति बाबाजी के पास गये और संतान होने का आशीर्वाद चाहा। बाबा जी ने तथास्तु कह दिया। और कहा तुम्हारे दो पुत्र होंगे। उन स्त्री-पुरुषों ने अपने-अपने मन मे एक पुत्र बाबा जी को भेट करने का निश्चय कर लिया। जब पुत्र पैदा हुये तो स्त्री ने कहा मैंने बड़ा पुत्र देने का संकल्प किया था पुरुष ने कहा मैंने छोटा देने का संकल्प किया था। अन्त मे यही तय हुआ कि जब संकल्प दोनो का हो गया है तो दोनों ही भेट कर दिये जाय। बड़े होने पर यह दोनों ही उदासीन मत के अच्छे प्रचारक साबित हुये।

इसी प्रकार इन महात्माओं के अन्य बहुत से प्रसिद्ध शिष्य हुये है। जिनमे अनेकों संस्कृत और शास्त्रों के धुरंधर विद्वान् हुये है। इनसे संस्कृत साहित्य का बहुत कुछ प्र चार हुआ था। इन्हीं संतों द्वारा जपु जी पर संस्कृत टीका भी हुई थी।

बाबा श्रीचंद जी ने भी अपने पिता की तरह बहुत यात्राये की थीं। काबुल, सिंध, काश्मीर, यू० पी० आदि प्रान्तों में उन्होंने यात्रा करके सतधर्म का प्रचार किया। सिन्ध मे हिन्दुओं पर जो अत्याचार मुसलमान शासक करते थे आपने उधर भी यात्रा की। बाबाजी की जीवन यात्रा, उपदेशों शास्त्रार्थों पर उदासियों के यहाँ काफी साहित्य मिलता है।

अंत में इतना कहकर हम इस सम्प्रदाय के इतिवृत्त को समाप्त करते हैं कि हिन्दू और सिखों की शृखला को जोड़ रखने के लिए उदासीन सम्प्रदाय ने एक मजबूत कड़ी का काम किया है।

गुरु गोविंदसिंह जी महाराज ने भाई रामसिंह कर्मसिंह, गंडासिंह, वीरसिंह और शोभासिंह जी को काशी में संस्कृत विद्या पढ़ने को भेजा था। यह निर्मला शब्द खालसा शब्द का संस्कृत रूपान्तर है आगे जो भी कोई इनके पास विद्या पढ़ता और फिर धर्म-प्रचार मे लग जाता वही निर्मल हुआ। इस प्रकार यह प्रचारकों का समूह निर्मला नाम से मशहूर हुआ। गुरु जी के बाद धर्म-प्रचार मे इनका बहुत हाथ रहा। इसलिये अकाली और दूसरे सभी प्रकार के सिखों में इनका आदर है।

निरमले

इनमें कई बड़े-बड़े धुरन्धर विद्वान् और संत हुये हैं। उदासियों की तरह इन्होंने भी बहुत से डेरे स्थापित किये। बाबा श्रीचद जी जैसे महान् व्यक्तित्व का कोई पुरुष तो अवश्य ही इस सम्प्रदाय को नहीं मिला किन्तु सिख धर्म को बढ़ाने में और उसकी महत्ता प्रकट करने मे इस समुदाय ने काफी प्रयत्न किया है।

उदासीन सम्प्रदाय के महात्मा प्रीतमदास ने हैदराबाद के वजीर नानकचन्द से सात लाख रुपया लेकर प्रयाग में अपने सम्प्रदाय के प्रमुखों को इसलिए सौप दिया कि तीर्थों मे इस रुपये से स्थान बनाये जाय जिसमे देश-देशान्तर से आने वाले उदासीन संत ठहर सके। इस रुपये से प्रयाग, कनखल (हरिद्वार) और काशी आदि मे अनेक अखाड़े बनाये गये। संत गंगाराम, कूटस्थ ब्रह्म, और अटल ब्रह्म इन अखाड़ों के ट्रस्टी बनाये गये।

सतोखदास, हरिनारायनदास आदि ने भी कुछ अखाड़े उदासियों के बनाये। इनमे से एक कनखल में भी है। इससे निर्मले सत-सिख भी उत्साहित हुये। उन्होंने भी तीर्थों मे अखाड़े बनाने का उद्योग किया। भाई तोतासिंह जी महताबसिंह जी और रामसिंह जी आदि संतों की प्रेरणा से संवत १९१८ में महाराज नरेन्द्रसिह पटियाला, महाराजा भरपूरसिंह नाभा, महाराजा सरूपसिंह जींद ने क्रमश ८००००)

नकद ४०००) सालाना की जागीर १६०००) नकद ५७५) सालाना की जागीर और २००००) नकद और १३००) सालाना की जागीर देकर अखाड़ों का प्रवन्ध कर दिया और इस प्रवन्ध का नाम धर्म-पूजा रक्खा। इस धर्म-पूजा के पहले महंत भाई महताबसिह जी नियत किये गये।

अखाड़ा निरमला के प्रवंध के लिये जो नियम बनाये गए हैं। वह दस्तूर-उल-अमल अखाडा कहलाते हैं। इनमे महंत के चुनाव महंत की योग्यता और प्रतिवंध लंगर के प्रवंध आदि नियमों का उल्लेख है। और इन नियमों की पूर्ति तीनों ही राज्यों की जानकारी और सूचना में होनी चाहिए। यह भी इसमे साकेतिक उल्लेख है।

सिखों में निहंग एक ऐसा दल है जिसे शहीदी का उम्मीदवार दल कह सकते हैं। निहंग के अर्थ निशंक के हैं। जिसे मौत की चिंता न हो वह निहंग है। सिख साहित्य मे निहंग के अर्थ आत्मज्ञानी और निर्लेप भी हैं। निहंगों के सबंध में अनेकों कहावतें भी हैं यथा.—(१) विचरे निहग। जैसे पिलंग।[1] (२) निरभय होइये भया निहंगा। (३) निहंग कहावै सो पुरुष दुख सुख मन्ने न अङ्ग।

निहग

निहंग लोग सिर पर फरहरे वाला ऊँचा (त्रशियों जैसा) दमाला बाधते हैं उसके ऊपर चक्र लगाते हैं, खड्ग, कृपान आदि शस्त्र रखते हैं, वस्त्र नीले पहनते हैं, मृत्यु क्या है इसकी उन्हे कोई चिंता नहीं, धर्म पर कुर्बान होने के लिये हर समय तैयार रहते हैं।

निहग दल कब से बना। इसके संबंध में सिख साहित्य मे कई उल्लेख हैं। (१) यह कि साहब-जादे फतहसिंह सिर से दमाला लपेट कर विनोद करते हुए गुरुगोविंदसिंह जी के पास हाजिर हुए। गुरु ने उन्हे देखकर कहा कि इस बाये का भी सिखों में एक पथ होवेगा। या इसे यों कह सकते हैं। "सिर बांधि कफनवा हो शहीदों की टोली निकली।" (२) खयाल यह है कि जब गुरुगोविंदसिंह ने नीले वस्त्र फाड़ फेंके तब उनमे से एक चीर भाई मानसिंह ने बाध ली थी। उसी रूप को याद रखने के लिये यह नीला वस्त्र पहनते हैं।

बहादुर बाबा बन्दा जी का जीवन वृत्तान्त किसी पिछले अध्याय में काफी लिखा जा चुका है। यहा तो केवल यह बताना है कि कुछ सिख उनके श्रद्धालु, और भक्त हैं जो बन्दई कहाते हैं।

बन्दई सिख

चन्द्रभागा नदी के किनारे रियासी के परगना में भम्मर नामी गॉव के पास डेरा बन्दा के नाम डेरा बाबा बन्दा है।

बन्दई "गुरु ग्रन्थ साहब" को ही अपना धर्म ग्रंथ मानते हैं। दसों गुरुओं को ही अपना गुरु मानते हैं अरदासा की समाप्ति के बाद चार पांच आदमी गुरु गोविन्दसिंहजी की स्तुति करते हुये बन्दासिंह और उनके तीन उत्तराधिकारियों के नाम लेते हैं।

डेरे के पास बाबा बन्दा का दमदमा है उसमे एक पहर रात रहे नौबत बजती है और सुबह शाम को कीर्तन होता है। बन्दई लोग मृतक के फूलों को मेले के अवसर पर डेरे के पास चन्द्रभागा मे प्रवाहित करते हैं।

बाबा बन्दासिह जी की शहीदी के बाद उनके पुत्र रणजीतसिंह जी गद्दी पर बैठे। रणजीतसिंह के जोरावरसिंह हुये। जोरावरसिंह के बेटे अर्जुनसिंह हुये। अर्जुनसिंह जी के खन्नसिंह और खन्नसिंह के

१ पिलिग=पील=हाथी।

ननकाना साहिब
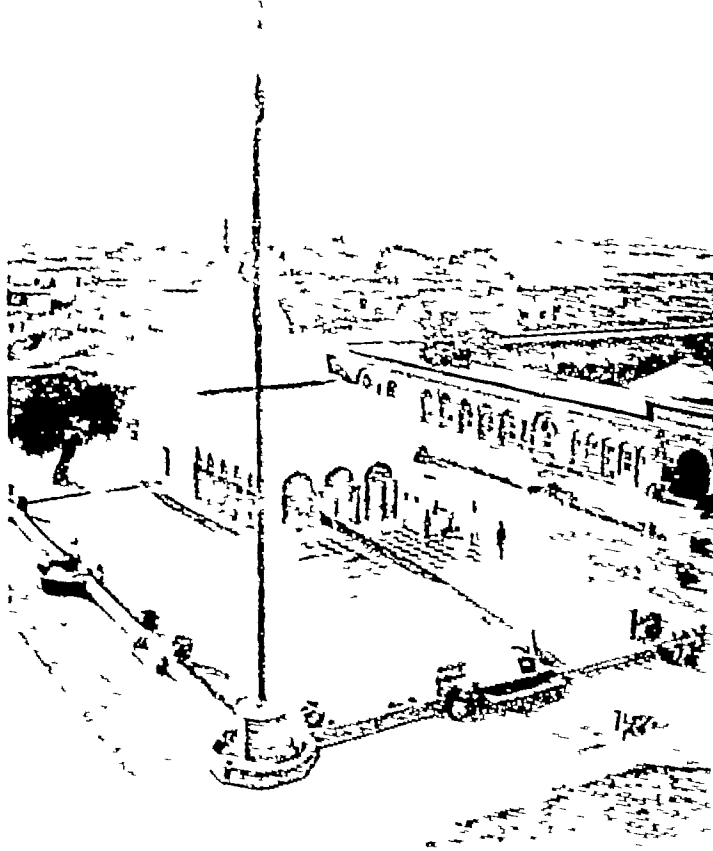
जन्म-स्थान श्री गुरु नानक देव जी

नामधारी सम्प्रदाय के संस्थापक

बाबा बालक सिंह

नामधारी सम्प्रदाय के संस्थापक

बाबा राम सिंह जी

दयासिंह जी हुए। दयासिंह जी के दो पुत्र अतरसिंह और सुजानसिंह जी हुए। इस समय गद्दी पर बाबा अतरसिंह जी ही हैं। इस गुरुद्वारे मे बाबा बन्दासिंह के सम्बन्ध की कोई पुस्तक बताई है। इनके इस देहरेसे महाराजा रणजीतसिंहजी और उनके दरबारी राजा गुलाबसिंह जी की लगाई हुई जागीर भी है।

महाराजा रणजीतसिंह जी के बाद गैर सिख लोगों ने किस प्रकार उनके साम्राज्य का ध्वंश किया यह बात विस्तार से हम पीछे लिख आये है। यह भी लिख चुके है कि लालसिंह और तेजसिंह नाम के दो सेनापतियों ने महारानी जिन्दा को भी बहका कर खालसा सेना को बुरी तरह नष्ट करा दिया था। हित और अनहित की पशु पक्षी भी जान लेते है। अपना विनाश होने पर सिखो के दिल मे तेजसिंह और लालसिंह से घृणा पैदा होनी ही थी। किंतु चूंकि थोडे दिनों बाद उन्होंने भी अपने कर्मों का फल पा लिया। अत. सिखों के दिल मे अब ब्राह्मणों के लिये घृणा पैदा हुई कारण कि ये दोनों ही ब्राह्मण थे। इस घृणा का घनत्व रूप हुआ बाबा बालकसिंह उन्होंने प्रण कर लिया कि सिखों,मे अब तक भी ब्राह्मण धर्म के लिये जो श्रद्धा है उसे उखाड़ कर फेक दूंगा।

नामधारी या कूका

इन्हीं बाबा बालकसिंह के शिष्य हो गये बाबा रामसिंह। बाबा रामसिंह जी का जन्म लुधियाने जिले के राहिया की भैणी मे जस्सासिंह जी के घर सवत् १८७२ की माघ सुदी पंचमी को हुआ था। छोटी उम्र से ही अपने धर्म के प्रति इनके खयाल बड़े पक्के थे। देश भक्ति से भी हृदय लबालब भरा था उन दिनों महाराजा रणजीतसिंह जी लाहौर के शासक थे। आप आरम्भ मे उन्हीं की सेना मे जाकर भर्ती हो गये। किन्तु महाराज की मृत्यु के बाद नौकरी को छोड़ आये। आपका मन देशभक्ति और ईश्वर-भक्ति में लगा हुआ था। लाहौर से आते ही बाबा बालकसिंह जी के पास आगये। जिनसे कि उनका पूर्व परिचय था। आपकी प्रतिभा, उपदेशों मे अमृत वर्षा और सत्य धर्म की पराकाष्ठा को देखकर आपके समूह के लोग आपसे बहुत श्रद्धा रखते थे। श्रेणी साहब मे आपका एक स्वर्गोपम स्थान था। यहीं प्राय: आप रहते थे। धीरे-धीरे सारे लुधियाना जिले मे आपका प्रभाव फैल गया। हजारों ही आदमी आपके श्रद्धालु हो गये।

पंजाब को विजय करनेके बाद अंग्रेज सरकारने मुसलमानोंको स्वभावतः सिर पर चढ़ाया। क्योंकि उसकी नीति ही ऐसी थी। पंजाब मे कहीं भी चाहे वह मुस्लिम राज्य ही क्यों न हो महाराजा रणजीत-सिंह जी के समय गौ-बध नहीं होता था। अब स्थान स्थान पर कमेले खुलने लगे। धार्मिक भावों से ओत-प्रोत होने के कारण आपके अनुयाइयों को यह बात सहनीय नहीं हुई। मालेरकोटला और मलौद के बूचड गायों को ले जाते हुए संवत् १६२६ वि० में रामसिंह जी के समूह के लोगों ने जो नामधारी और कूका के नाम से मशहूर हैं बुरी तरह से मार डाला। सरकार ने इसे खुली बगावत समझा। उसने ४० नामधारियों को तोपसे उड़वा दिया और तीस आदमियों को फांसी लगा दी। इस काम के लिए न कोई प्रमाणिक जाच की गई और न मुकदमा चला। इसके बाद नामधारियों का सरकार ने दृढ़ता के साथ दमन करना शुरू कर दिया। इस दमन मे समस्त रियासतों ने भी साथ दिया। बाबा रामसिंह जी और उनके साथी सूबों को सरकार ने कैद करके रगून भेज दिया। नामधारी सिखों ने उसी समय से अंग्रेज सरकार से असहयोग कर दिया था।

बाबा रामसिंह जी के बाद गद्दी पर उनके भाई बुधसिंह जी बैठे जो हरीसिंह नाम से मशहूर हुए। आजकल बाबा प्रतापसिंह जी उनके उत्तराधिकारी हैं।

नामधारी सिख नाम की उपासना पर विशेष जोर देने से, नामधारी कीर्तन मे घोर कूक लगाने से

कूके कहे जाते हैं। सफेद वस्त्र और प्राय स्वदेशी पहनते हैं। हरिकीर्तन के समय जोर-जोर से गाते हैं। भक्ति में विभोर होकर नाच भी उठते हैं। वाहिगुरु के मंत्र का उपदेश कान में कहा जाता है। हवन के वड़े प्रेमी हैं। भैणीसाहव को देखनेवालों का कहना है कि ईश्वर-भक्ति का यहां जो प्रवाह वहता है। वैसा थोड़े ही स्थानों पर होता होगा। रामसिंह जी व उनके उत्तराधिकारियों को उनके अनुयायी गुरु कहते हैं। और दूसरे सिख उन्हें वावा कहते हैं।
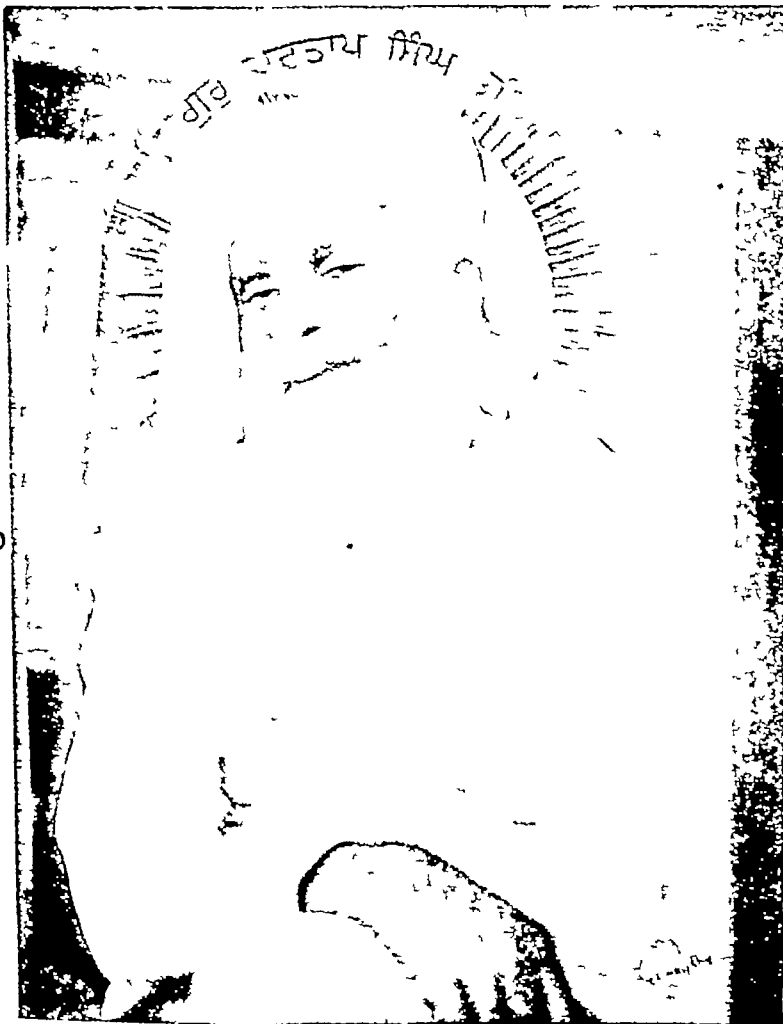
बावा प्रतापसिंह जी
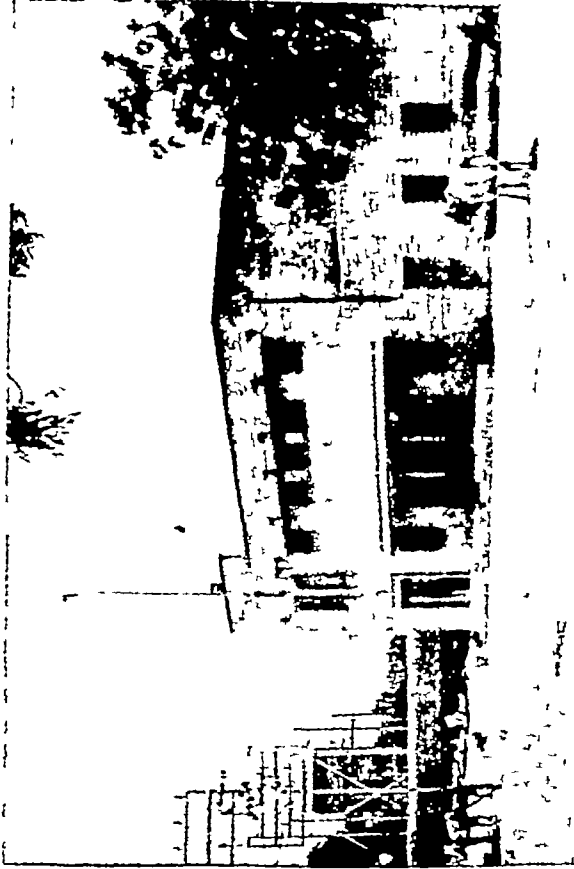
गुरुद्वारा जोधपुर

उन्तीसवाँ अध्याय

सिख-संस्थायें और उनका इतिहास

पिछले अध्याय में हमने सिख-समाज के अंतर्गत जिन सम्प्रदायों का वर्णन किया है। वे एक दिन संस्थाओं के ही रूप में थी किंतु पुरातन जमाने में जो संस्था कायम होती थी वह आगे चलकर सम्प्रदाय का रूप धारण कर लेती थी इस प्रकार की साक्षी इतिहास मे काफी भरी पड़ी है। और कोई भी सस्था भविष्य में भी सम्प्रदाय का ही रूप धारण कर सकेगी यदि उसके संचालक या नेताओं का चुनाव उस संस्था के जन-साधारण के हाथ से न आ जायगा।

सिखों की जमात मौजूदा समय मे प्रायः सम्पूर्णत. ऐसी संस्था गुरुद्वारा शिरोमणि प्रबंधक कमेटी है जिसके संचालकों का चुनाव सिखो के सर्व-साधारण के हाथ है। यह सस्था सिखों की प्रजातंत्री संस्था है इसके अलावा सिखों की कई संस्था है। जो भिन्न-भिन्न अवसरों पर तत्कालीन परस्थितियों के कारण प्रकाश में आई है और उन्होंने कार्य भी सफलतापूर्वक किया है ऐसी ही कुछ संस्थाओं का वर्णन यहाँ हम करते हैं—

सब से पहले संवत् १९३० विक्रमी मे अमृतसर में 'गुरसिंह सभा' नाम की एक संस्था सिखों ने स्थापित की। इसके प्रधान बाबा खेमसिंह जी वेदी वनाये गये थे। सरदार ठाकुरसिंह सिंधानवालिये सरदार मानसिंह जी और भाई ताम्रसिंह जी आदि इसमें आरम्भ मे सहयोगी रहे। इस संस्था ने रस्म-रिवाज सम्वन्धी कुरितियों को दूर करने और सिख धर्म का प्रचार करने का काम किया।

श्री गुरुसिंह सभा

इससे छ वर्ष बाद लाहौर में भी इसी नाम की सभा कायम हुई। इसकी स्थापना और सचालन मे हरिमन्दिर तरनतारनजी के ग्रंथी भाई हरखासिंह, सरदार गुरमुखसिंह, सरदार जवाहरसिंह, भाई निक्का-सिंह, भाई वसन्तसिंह और सरदार करतारसिंह जी आदि ने आरम्भ मे अच्छा काम किया। आरम्भ मे प्रधान भाई बूटासिंहजी थे।

इस सभा की ओर से 'खालसा गजट' नाम का एक उर्दू अखवार भी निकाला गया। इसके संपादक सरदार मइयासिंह जी हुए थे। कुछ समय वाद इसी सभा ने "खालसा अखवार' भी जारी किया किया। जिसके भाई झंडासिंह जी और ज्ञानी दितसिंह जी संपादक रहे।

इसी लाहौर सिंह सभा ने सवत् १६४२ विक्रमी में एक प्रतिनिधि सभा खालसा दीवान के नाम से मुकर्रिर की। इसके प्रधान वावा खेमसिंह वेदी ही वनाये गये और सरदार गुरुवख्शसिंह, गणेशासिंह भाई वूटासिंह, भाई जैमलसिंह आदि सभा के मन्त्री और खजांची आदि मुकर्रिर हुए। यह सभा शनै-शनै. वढ़ रही थी। दो जलसे भी इसके हुए। किंतु कुछ ही वर्षों में इसका काम ढीला सा पड गया।

खालसा दीवान और चीफ खालसा दीवान

खालसा दीवान का काम शिथिल-सा पड़ जाने के कारण संवत १६५८ विक्रमी के वैसाख में अमृतसर में मेले मे आये हुये प्रमुख २ सिखों ने दीवान का काम सुचारु रूप से चलाने और फिर से मजवूत सगठन वनाने के लिए एक कमेटी मुकर्रिर की जिसके संयोजक सरदार गुर-वख्शसिंह जी वैरिस्टर वनाये गये। लगभग सात महीने वाद अमृतसर में लगभग १२०० प्रमुख सिखों ने एकत्रित होकर लाहौर खालसा दीवान को एक चिट्ठी इस आशय की लिखी कि कोई सर्व-सम्मत सग-ठन किया जाय किंतु वहाँ से छ महीने तक भी कोई उत्तर न मिलने पर आखिरकार संवत १६५६ विक्रमी में एक वड़ा अधिवेशन करके "चीफ खालसा दीवान" नाम की एक वड़ी संस्था खड़ी की गई। इसके प्रधान भाई अर्जुनसिंह जी वग्गारिया और मत्री सरदार सुन्दरसिंह जी मजीठिया उपमत्री सोढी सुजान सिंह जी पटियाला नियुक्त हुये। २१ सज्जनों की वर्किङ्ग कमेटी वना दी गई। सवत १६६० वि० तदनु-सार सन १६०३ ई० में यह संस्था रजिस्टर्ड हो गई।

इसने धार्मिक और विद्या-प्रचार में काफी काम किया है। जितने स्कूल और कालेज हैं वे सभी इसी संस्था के प्रयत्नों का फल है।

खालसा कालेज कौंसिल

सन् १८६२ ई० मे सिख सरदारों ने एक भारी दीवान करके खालसा कौलेज कमेटी का निर्माण किया। इस कमेटी ने इसी वर्ष के दिसम्वर मे एक इजलास किया। इसके वाद सन् १८६३ के मई महीने में कालेज की स्थापना के संकल्प से स्कूल जारी कर दिया गया। कालेज की स्थापना के सकल्प से स्कूल जारी कर दिया गया। कालेज सम्वन्वी थोड़ा-सा परिचय अन्यत्र भी दिया जा चुका है। यहाँ इतना ही काफी होगा कि उत्तर भारत की तीन प्रसिद्ध शिक्षण-संस्थाओं—हिन्दू यूनीवर्सिटी वनारस और मुस्लिम यूनीवर्सिटी अलीगढ़—मे खालसा कालेज अमृतसर एक है। जिसे कि सिख यूनीवर्सिटी वनाने के यत्न किये जा रहे हैं।

शिक्षा परिषद्

कालेज को उन्नत किये जाने के लिये यह भी आवश्यक था सिख आवादियों के केन्द्रों मे हाई-स्कूल भी हों और साथ ही जाति में शिक्षा का भाव भी अधिक पैदा हो इसलिये अव से लगभग तीस साल पहले एक सिख एजूकेशन कान्फ्रेंस की भी आयोजना की गई। जिसने प्रति वर्ष नये स्थान मे अपना इजलास करके एक हाईस्कूल स्थापित करने की स्कीम वनाई। उसी के अनुसार यह कान्फ्रेंस प्रति वर्ष भिन्न शहरों में होती है। इजलास मे जो अपील की जाती है उसमें पचासों हजार रुपया इकट्ठा हो जाता है। और फिर लोकल कमेटी वना-कर हाईस्कूल खोल दिया जाता है। और खुले हुये स्कूल को सहायता दी जाती है।

खालसा विरादरी सभा

यह हमने कई जगह जिक्र कर दिया है कि सिखों में अनेकों विरादरियों के लोग हैं। क्योंकि गुरुमत का द्वार सभी धर्मों और सभी जातियों के लोगों के लिये खुला हुआ है। समय की लहर ने समझ-दार सिखों मे इस वात के भाव पैदा किये कि समस्त सिख एक हैं। इनके अन्दर खत्री अरोडे और तिरखान आदि के भेद न होने चाहिये। इसी उद्देश्य को लेकर नन

प्रेस और प्लेटफार्म की वजह से जागृति बराबर होती है। ख्यालातों मे भी सुधार होता है। परदेश आने जाने से भी अपनी हालत सुधारने के खयाल पैदा होते है। सिख भी भला क्यों न जागते। जिन्होंने जागृति के लिये पिछली शताब्दी मे काफी कुरबानी की थी। गुरुद्वारों का उस समय प्रबन्ध उदासी और निर्मले संतों के हाथ मे था और गुरुद्वारों मे अतुल सपत्ति थी और प्रति वर्ष आती भी थी। किन्तु उससे सिख समाज का भला कुछ भी नहीं होता था। यह बात समझदार सिखों को खटकती थी। इससे भी आगे सन् १६२० ई० की १२वीं अक्टूबर को एक और घटना होगई। उस समय 'खालसा बिरादरी सभा' का दीवान हो रहा था। कुछ कथित अछूतों ने उसी समय सिख धर्म की दीक्षा ले ली और हरिमदिर जी मे भेंट लेकर दर्शन के लिये गये। पुजारी उन्हे भीतर आता देखकर मन्दिर से बाहर भाग गये। चूंकि सिखों की प्रणाली के अनुसार तख्त साहब सूने नहीं रहते है अत उसी समय वहाँ पर २५ सिख मुकर्रिर कर दिये गये। पुजारी डि० कमिश्नर के समझाने से भी जब मदिर मे नहीं लौटा तो डि० कमिश्नर ने श्री दरबार साहब और अकाल तख्त के प्रबन्ध के लिये नौ आदमियों की एक कमेटी मुकर्रिर कर दी।

शिरोमणि गुरुद्वारा प्रबन्धक कमेटी

इसी कमेटी ने १५ नवम्बर सन् १६२० को सिखों का एक दीवान किया। इजलास ने १७५ आदमियों की गुरुद्वारा प्रबंध के लिये एक प्रतिनिधि कमेटी बनाई। जिसका 'शिरोमणि गुरुद्वारा प्रबन्धक कमेटी' नाम रक्खा गया। इस कमेटी की पहली बैठक अगले महीने दिसम्बर मे १२वीं तारीख को श्री अकालतख्त साहब मे हुई। जिसमे पदाधिकारियों का निर्वाचन हुआ। ३० अप्रैल १६२१ ई० को इसकी रजिस्ट्री हो गई।

कमेटी ने सगठित होते ही गुरुद्वारों के सुधार अर्थात् अपने प्रबन्धमे लेने का काम आरम्भ किया। श्री तरनतारन में प्रबध सरकार की ओर से था। कमेटी ने एक जत्था तरनतारन पर कब्जा करने के लिये भेजा। किन्तु पुजारी ने इस घमण्ड मे कि यहाँ पर तो सरकार का प्रबन्ध है। जत्थे के साथ मार पीट करादी। इस मारपीट मे १३ अकाली और ११ पुजारी दल के आदमी जख्मी हुये।

इसके बाद ही ननकाना साहब पर कब्जा करने के लिये कमेटी ने ऐलान निकाला। महन्त नारायण दास जी को बड़ी चिन्ता हुई। वे ननकाना साहब को सिखों का मानते भी न थे। उसे स्वतंत्र रूप से उदासियों का मानते थे। सरकारी लोगों ने भी उन्हे इसी रास्ते पर डाला और जल्दी मे ऐसा काम हुआ जो सिख और उदासियों के लिये किसी भी हालतमें लाभदायक नहीं था। २० फर्वरीको १६आदमियों का जत्था लेकर सरदार लक्ष्मणसिंह ननकाना पहुँचे। जब यह जत्था भीतर पहुँचा। तो मारपीट आरम्भ होगई, छुरी और पिस्तौलों का भी प्रयोग हुआ। अनेकों आदमी मारे गये। उसके बाद सिख भड़क गये और भारी सघर्ष करने के बाद उन्होंने ननकाना साहब पर कब्जा कर लिया। सरकार ने महन्त और सिख दोनों ही को दड देने की नीति का अवलम्बन किया।

इससे अधिक रोमाचकारी काड है 'गुरु के बाग का' इस पर कब्जा करने के लिये जो कुर्वानिया सिखों ने कीं। वह भारत के इतिहास मे अद्वितीय हैं।

इस प्रकार शिरोमणि गुरुद्वारा प्रबन्ध कमेटी के द्वारा आंदोलनों का फल यह हुआ कि सरकार ने सन् १६२५ ई० मे गुरुद्वारा एक्ट नाम का कानून बना दिया। इस कमेटी के एक समय मास्टर तारा सिंह जी प्रधान और मत्री ज्ञानी करतारसिंह जी रहे हैं।

उपरोक्त एक्ट के अनुसार इस काम के लिए एक विशेष ट्रिब्यूनल है। जिससे इसी प्रकार के

गुरुद्वारों सम्बन्धी मुकदमे फैसल होते हैं।

शिरोमणि कमेटी में चुने हुये मेम्बर होते हैं यह चुनाव उसी प्रकार होता है जिस प्रकार कि एस-म्बलियों के लिये होता है।

इन संस्थाओं के अलावा सिखों की अन्य भी कई संस्थाये हैं। उदाहरणार्थ "सर्वहिंदसिख मिशन" सिखों की वह संस्था है जो भारत के प्रत्येक कोने में सिखों की संख्या बढाने का प्रयत्न कर रही है यह हिंदी में गुरुमत साहित्य का प्रकाशन भी कर रही है एक समय इसके प्रधान मास्टर तारासिंह प्रचार मंत्री मा० सुजानसिंह और मंत्री सरदार हरीसिंह थे। खालसा ट्रैक्ट सोसाइटी नियमित रूप में सिख इतिहास के संबन्ध में जानकारी भरे ट्रैक्ट निकालती है।

इन संगठनों के अन्दर रहकर अपने साम्राज्य के ध्वन्स होने के बाद भी सिखों ने अनेकों बार अपने बलवीर्य का पता दिया है। उन्हें धार्मिक और राजनैतिक दोनों ही प्रकार के अधिकारों के लिए सरकार और दूसरी शक्तियों से लड़ना पड़ा है। ननकाना साहब, गुरु के बाग के सिवा जैतों में महाराज रिपुदमनसिंह जी के देश निकाले के बाद उन्होंने अखंड पाठ किया। जिसमें बहुत से लोगों की गिरफ्तारी हुईं और कष्ट उठाये, इनकी स्थिति का निरीक्षण करने के लिये जाने पर पंडित जवाहरलाल नेहरू को भी हवालात में बंद किया गया। सन् १९०७ ई० में कानून कास्तकारी में कुछ परिवर्तन कर दिया गया और बारी दुआब में मालियाना बढ़ा दिया गया। इन दोनों इलाकोंमें सिखों की आबादी अधिक थी। सरकार के इन इरादों के खिलाफ सिखों ने दुर्दमनीय आन्दोलन उठाकर अपने अधिकारों की रक्षा की। सरदार अजीतसिंह को इस आन्दोलन में देश निकाला हुआ।

इसके बाद ही सिखों को कृपाण रखने के अधिकार पर भी लडना पड़ा क्योंकि शस्त्र कानून के अनुसार सरकार कृपाण बाधना जुर्म करार देना चाहती थी।

सन् १९१४ ई० में कोमागाटामारू की दुर्घटना भी सिखों के ही साथ हुई थी। यहा से सैंकडों सिख बाबा गुरदित्तसिंह के नेतृत्व में कोमागाटामारू जहाज में बैठ कर कनाडा गये थे किन्तु उन्हें कनाडा में नहीं घुसने दिया गया। विवश उन्हे लौटना पड़ा किंतु जब जहाज कलकत्ता आया तो यहाँ गोरे लोगों ने पुलिस की सहायता से उन्हें जहाज से उतरने से रोका। आखिर अंग्रेजों की यह ज्यादती थी सिख भिड गये। इसके अपराध में उन्हे कठिन से कठिन दण्ड काले पानी का दिया गया।

जब नई दिल्ली बसाई जाने लगी तो सरकार से यहां भी सिखों को भिड़ना पड़ा। कारण कि नई दिल्ली स्थिति रकाबगंज के गुरुद्वारे की इमारत को भी क्षति पहुँचाने की बात इंजीनियरों ने सोच ली। और एक दीवार का थोड़ा सा भाग क्षत-विक्षत भी कर दिया। इस समाचार से पंजाब में सनसनी फैल गई। सितम्बर सन् १९२० में हजारों बहादुर सिखों ने प्रतिज्ञा की कि या तो हम अपने प्राण गॅवा देंगे या दीवार की मरम्मत करा देंगे। एक दल भी बनाया गया किन्तु बुजुर्ग लोगों की आज्ञानुसार उन्होंने फिर वैधानिक लडाई सरकार के प्रति स्वीकार करली।

एक राजनैतिक संस्था सिखों में राष्ट्रवादी सिखों की भी है जो प्रत्येक मामले को राष्ट्रीय दृष्टि-कोण से देखती है। जो शिरोमणि खालसा दल कहलाती है इस समय अकाली दल और खालसा दल सिखों के दो प्रतिद्वन्दी राजनैतिक अखाड़े हैं।

अन्त में हम इन शब्दों के साथ इस अध्याय को समाप्त करते हैं कि सिख जहाँ बहादुर हैं वहा अनुशासनशील और नियंत्रण में रहने वाले भी प्रथम कोटि के हैं।

तीसवां अध्याय

पंजाब-विभाजन

सिखों पर पिछले चार सौ वर्ष मे जितनी मुसीबते आईं और उनको जिस प्रकार उन्होंने पार किया उनका वर्णन इस ग्रन्थ के पिछले पृष्ठों मे हो चुका है किन्तु इस बीसवीं सदी के द्वितीय चरण के अन्तिम वर्षों (सन् १९४६-४७) मे जो मुसीबत आई वह कम भयानक नहीं। पिछली किसी मुसीबत ने उनको सामूहिक रूप से अपने देश से गॉव से और घर से विताडित नहीं किया था किन्तु इस मुसीबत ने जहां उन्हें अन्य हिन्दुओं के साथ उनकी आवास भूमियों से विताड़ित किया वहॉ उनके हाथ से सदा के लिये वह भूमियॉ चली गईं और पाकिस्तान के जन्म के साथ ही उनकी जननी जन्मभूमि पंजाब और सीमाप्रांत के दो टुकड़े होगये। जिनमे पंजा साहिब के जैसे तीर्थ स्थान और लाहौर के जैसे ऐतिहासिक नगर उनके हाथ से निकल गये। यद्यपि सयुक्त पजाव मे वे शेष हिन्दुओं समेत भी अल्पसंख्यक थे किन्तु पंजाव पुकारा और समझा सिखो का ही जाता था।

मुस्लिम लीग के प्रत्यक्ष-झगड़े (डाइरेक्ट-एक्शन) से हिन्द सिखों की सीमान्त पंजाव और वगाल में जो क्षति हुई वह अपरिमित है किन्तु सिखों की जो पंजाव मे हानि हुई वह इसलिये शोचनीय है कि सिख जैसी सामरिक कौम जिसने-मुसलमानों की बादशाहत के दिनों मे भी मुस्लिम सेनाओं के दॉत खट्टे कर दिये थे। इस समय लीगी गुंडों से अपनी इतनी जन-धन की हानि कैसे करा बैठी ? इसके कुछ कारण हैं जिन पर सिख नेताओ का उन दिनों ध्यान नहीं गया।

(१) वह अपने को हिन्दुओं से अलग समझे हुए बैठे थे और पजाव के हिन्दू भी उनसे खिचे हुए थे अत हिन्दू और सिख मुस्लिम लीग के बार-बार के ऐलानों के होते हुए भी कोई संयुक्त मोरचा व दल न वना सके जैसे कि मुस्लिम लीग ने उत्पातों के लिने मुस्लिम वालियन्टर कोर और मस्लिम गार्ड वनाये हुए थे।

(२) सिख सेनाओं का एक दल अंग्रेजों पर बड़ा विश्वास करता था। वह समझता था कि अंग्रेजों ने जव उनकी हिन्दुओं से अलग होने मे पीठ थप थपाई है तो वे उनका कोई नुकसान नहीं होने देंगे वल्कि जव वे हिन्दुस्तान छोड़ेंगे तो हिन्दुस्तान और पाकिस्तान के बीच वे एक तटस्थ राज्य सिखिस्तान की और स्थापना कर जांयगे।

सिखों के इस जन-धन की हानि की कथा बड़ी ही करुणाजनक और हृदय विदारक है। यहॉ

हम कुछ हवाले उस रिपोर्ट से उद्धृत करते हैं "शिरोमणि गुरुद्वारा प्रबन्धक कमेटी" की ओर से मुस्लिम लीगियों के अत्याचार नामक प्रकाशित हुई हैं।

उत्तर भारत में मुस्लिम लीग ने झगड़ों की शुरूआत सरहद्दी सूबे के हजारा जिले से की, क्योंकि यहा मुस्लिम आबादी ६५ फीसदी थी। सन् १६४६ ई० को १२ दिसम्बर को बटल, सुमइलाही भुग, गढ़ी जल्लो और उगी नाम के गांवों पर पहला हमला हुआ। इस हमले में बटल गॉव के ११ सिख-हिन्दू मारे गये और ११ ही घायल हुए। उगी के बाजार को लूट लिया और पांच हत्यायें सिख-हिन्दुओं की हुई। इन दोनों गॉवों के सिख-हिन्दू भागकर सुमइलाही भुग मे पहुंच गये थे। यहाँ भी हमला हुआ और १४ आदमियों को जान से मार दिया गया तथा २१ को जख्मी किया गया। गढ़ी जल्लो के गुरुद्वारे को ध्वंस कर दिया गया।

१८-१२-४६ को मानसेरा तहसील के एक गॉव गढ़ी हबीबुल्ला पर हमला हुआ। यहाँ एक हिन्दू को पहले तो लूटा गया फिर उसे कत्ल कर दिया गया। हवेली गॉव पर कई हमले हुए जिससे तग आकर वहाँ के हिन्दू-सिख मिलिटरी की रक्षा में पंजाब की ओर चल पड़े। इससे एक सप्ताह पहले ता० ११-१२-१६४६ को दड्ड़ गाँव पर हमला हुआ जिसमें वहा पर आए हुए ४० शरणार्थी इस हमले के शिकार हुए। उनमे से १० कत्ल कर दिये गये। जख्मी सभी हुए। सब लूट लिये गये।

इन गाँवों के अलावा मोहरी, दिवल, अखरूटा, पिप्पल, जावा, गहुड़ा फुलगाड़ा, बणाख, मुहाड़ी, कड़छां, मलाछ, दाखली, सैर, बफा, सिहालिआ, समधरा, जवोड़ी, संगकियारी, बालाकोट और भाटा। इन तथा अन्य सभी स्थानों पर लूट पीट और धार्मिक स्थानों के ध्वंस के अलावा कत्ल हुए।

चूंकि अब तक सरहद में धाक्टर खान (कांग्रेस) की सरकार थी। इसलिये कांग्रेस ने केवल शरणार्थियों को सान्त्वना देने के सिवा इस अत्याचार के विरुद्ध कोई जोरदार कार्यवाही नहीं की। इन झगड़ों मे मुस्लिम अफसर दंगाइयों के मददगार रहे। यही कारण था कि गुण्डे लोग पूरी तरह मनमानी करके ही किसी गाँव से बाहर होते थे। भाटा गॉव में ११६ सिख जिंदे ही जला दिये गये। मलाछ में ११५ हिन्दू-सिख कत्ल किये गये।

पंजाब मे इन दिनों सर खिजर हयात-खां की सरकार थी जो यूनियस्ट पार्टी के नेता थे। इस सरकार को सिवा मुस्लिम लीगियों के सभी पार्टियों का सहयोग था और सर खिजर हृदय से भी दो-राष्ट्र सिद्धान्त के विरोधी थे। वह मुस्लिम लीग के प्रोग्राम को कतई पसन्द नहीं करते थे। इसलिये उन्होंने सरहद की आग को पजाब में बढ़ने से भरसक रोका। सर खिजर की इस मुस्तैदी से मुस्लिम लीग बहुत चिढ़ गई और उसने पंजाब में खिजर विरोधी जुलूस निकालने तथा नारे लगाना आरम्भ कर दिया। इन गति विधियों में सिकन्दर हयात के साहबजादे शौकत हयात और बेगम शाह निवाज जैसे सर छोटूराम-कालीन यूनियस्ट भी शामिल होगये। साथ ही पंजाब के तत्कालीन गवर्नर ने भी मंत्रि-मंडल को सहयोग देना छोड़ दिया। मुस्लिम लीग की ओर से जगह-जगह लूट पाट कत्ल और जोर जबर आरम्भ हो गया।

इस गुंडापन को सर खिजर कतई पसन्द नही करते थे पुलिस का उन्हें पूर्ण सहयोग मिल नहीं रहा था। आखिरकार उन्होंने त्याग पत्र दे दिया। त्याग-पत्र देते समय उन्होंने बताया "मुस्लिम लीग को अन्य पार्टियों के साथ समझौता करने के लिये खुला मार्ग छोड़ने की भावना से मैं यह त्याग पत्र दे रहा हूँ।"

खिजर हयात के वजारत छोड़ने पर मुस्लिम लीग की अल्प-संख्या के कारण पंजाब मे वजारत नहीं बन सकी इसलिए इंडिया एक्ट की धारा ९३ के अनुसार वहाँ गवर्नरी शासन हो गया।

मुस्लिम लीगको पंजाब मे अपनी वजारत न बनने से बड़ा धक्का लगा। ब्रटिश सरकारके ऐलान अनुसार पंजाब मुस्लिम लीग को तभी मिल सकता था जब कि वहां उसका मन्त्रिमण्डल होता। अत वह और भी तेजी से झगड़ों पर उतर आई। पंजाब के ऊपरी जिलों मे मुस्लिम आबादी का अनुपात उस समय ६० से लेकर ९० प्रतिशत था।

सारे पश्चिमी पंजाब मे ५ मार्च से मुस्लिमदलो के आक्रमण आरम्भ हुए थे कहीं इनका रूप छुट-पुट था कहीं मध्यम गति का और कहीं सामूहिक और तीव्रतर। रावलपिंडी डिवीजन मे जिसके कि प्रत्येक जिले मे मुस्लिम आबादी ८० फीसदी से ९० फीसदी तक थी यह हमले एक दम हुए।

रावलपिंडी डिवीजन

इस डिवीजन मेशुरूमे शहरो के हिन्दू सिखोंने इन हमलो का बड़ी दिलेरी और हिम्मतसे मुकाबला किया। उन्होंने गलियो मे मोरचे लगाकर हमलों को बराबर विफल किया। रावलपिंडी खास में हिन्दू-सिख विद्यार्थियों के जुलूस पर जब मुसलमानों ने हमला किया तो हिन्दू-मुस्लिम बडी बहादुरी से लडे और हमलावरों के छक्के छुड़ा दिए उन्हे भागते ही बना। किन्तु देहातों मे जो हमले हुए उनमे हिन्दू-सिखों की जन-धन की भारी हानि हुई।

रावलपिंडी जिले के गांवों मे तो एक प्रकार से कत्लआम ही शुरू कर दिया गया। रावलपिंडी के गांवों पर ७ मार्च (१९४७) से हमले आरम्भ हुए और पूरे मार्च भर रहे। वहां जो तबाही हुई वह नोआखाली से कम नहीं थी। इस जिले मे जो नृशंसता हुई उसका अन्दाज इस बात से चलता है कि १२८ गाँवों मे ७००० आदमी मारे गये और प्राय सभी को बे घरबार कर दिया वे जैसे तैसे उन शरणार्थी कैंपों मे पहुँच पाये जो पंजाब से लेकर यू० पी० तक मे फैले हुए थे। एक हजार से ऊपर स्त्रिया उडाई तथा बेइज्जत की गईं। स्त्रियों को उनके भाई बेटों और पुरुषों के सामने भी बेइज्जत किया ये हमले ढोल बजाकर खुलेतौर पर होते थे। घरों मे आग लगा दी जाती थी। धार्मिक स्थान ध्वंस किये जाते थे और धार्मिक ग्रथों को फाड़ फेका जाता था। यह सब गवर्नरी शासन मे हो रहा था। जब गाव लुट-पुट जाते थे तब कहीं बड़ी मुश्किल से फौजी दस्ते भेजे जाते थे।

लूटपाट और मारकाट के अलावा जबर्दस्ती धर्म-परिवर्तन भी कराया जाता था किन्तु धर्म-परिवर्तन से अधिकांश हिन्दू-सिखों और उनकी बहादुर बहू बेटियों ने धर्म पर निछावर होना ही उचित समझा। इस डिवीजन के थोहा गाव की ९३ स्त्रियों के उच्च बलिदान की गाथा एक मिसाल है। यह घटना अधिक प्रसिद्ध है किन्तु इस प्रकार की और भी अनेकों घटनाये हैं।

अत्याचार इन्सानियत को पार कर गये थे। बच्चो को बर्छों की नोक पर टागना, स्त्रियो की छातियां काटना आदि साधारण बात हो रही थी। कई स्थानों पर गर्भवतियों के पेट फाड़ दिये गये। इसी जिले के दुनेरन गांव की आबादी मे से एक भी सिखों जिन्दा नहीं छोड़ा गया। उनकी ६० स्त्रिया अपहरण की गईं। १०० जान से मार दिये गये। १५ बलात् मुसलमान बनाये गये। सारा माल लूट लिया गया। इसी भाति भागपुर की सारी सिख आबादी खत्म कर दी गई। बच्चे और स्त्रियों को नही छोड़ा गया। बेवल गांव के ४०० हिन्दू-सिख स्त्री बच्चों ने गुरुद्वारे मे शरण ली, उस गुरुद्वारे में आग लगा दी गई और किसी को भी जिन्दा नहीं छोड़ा गया। यही हाल थमाली गांव मे हुआ। वहां के गुरुद्वारे मे भी आग लगा दी वहां ४०० में से २० आदमी बचे। नकाऊली गाव

मे २४ सिख मारे गये। स्त्रियों ने आत्मघात कर लिया। ५० सिखों को जबर्दस्ती वेधर्म किया गया। सैयद गाव मे ३० सिख मारे और कुछ जबरन मुसलमान बनाये गये। ८ मार्च १९४७ को अद्रियाले गाव में १०० से ऊपर मारे गये। और ५० जबरन मुसलमान बनाये गये। ९ मार्च १९४७ को मद्रे गाव मे २०० सिख मारे गये। गुरुद्वारा और स्कूल नष्ट कर दिये गये। कठुहे गाव मे ६० सिख मारे गये और ५०० स्त्रियों का अपहरण किया गया। हरनाली में २४ सिख मारे गये। ३० स्त्रिया अपहरण की गईं। प्रसिद्ध सिख नेता मास्टर तारासिंह के गाव में २० सिख मारे गये मास्टर तारा सिंह के घर को ध्वंस कर दिया गया और उस पर हल चलाया गया। घावली गांव मे ८० सिख मारे गये। यहा सिखों ने अपनी स्त्रियों को उनके कहने पर अपने हाथों कत्ल करके उनकी लाज़ बचाई।

मछीआ गांव के २०० सिखों मे से २०० ही मार दिये गये। इसी प्रकार सारे डिवीजन में वहशीपन चला।

अमृतसर

अमृतसर मे लड़ाई ५ मार्च (१९४७) को आरम्भ हुई वहां मुस्लिम लीग ने पूरी तैयारी कराई थी। एक सिख सिपाही को पत्थरों से मार डाला। वैसे अमृतसर सिखों का कहा जाता है किन्तु यहां उनकी आवादी मुसलमानों से तिहाई थी, हा हिन्दुओं समेत डेढ़ हजार वे मुसलमानों से ज्यादा थे किन्तु, मुसलमानों के पास यहां ८००० ट्रेनिङ्ग प्राप्त गार्ड थे। और पुलिस उनकी पीठ पर थी।

गली, मुहल्ले, रेलवे स्टेशन, कालेज, स्कूल सभी जगह कत्ल आरम्भ हो गये। हिन्दू सिख दोनों ही बे खबर थे वे ५ मार्च की प्रात तक भी यही समझते रहे कि शायद यहां झगड़ा न होगा किन्तु उनकी आशाओं पर पानी फिर गया और अमृतसर की पवित्र भूमि लहू से लाल होने लगी। ता० ११-४-४७ से २२-५-४७ तक रिपोर्ट के जो आकड़े इकट्ठे किये गये उसके अनुसार १९७ हिन्दू ५६४ सिख मारे गये किन्तु चू कि यहा हिन्दू सिखों ने लाचार होकर जबावी कार्यवाही आरम्भ कर दी थी। इसलिये उनके द्वारा भी ३१६ मुसलमान मारे गये। अमृतसर में मारकाट का यह सिलसिला जून तक जारी रहा।

सेखूपुरा

रावलपिंडी, लाहौर, मुल्तान. और गुजरानवाला में ये फिसाद मार्च से आरम्भ होकर अगस्त तक जारी रहे। शेखू पुरा में यह फसाद १७ अगस्त के बाद आरम्भ हुये जब कि यह जिला पाकिस्तान को मिलने का एलान हो गया। और एक हफ्ते मे इस जिले के गांव और शहर सिख हिन्दुओं से खाली कर लिए। ता० २५-२६ अगस्त को बहुत सिख हिन्दू यहा मारे गये। अकेले आत्माराम की फैक्टरी में ३००० हिन्दू मारे गये। इस कत्ल आम में कोई १५००० हिन्दू-सिख मारे गये। शेखू पुरे के इस नरमेध की जाच करने जब पं० नेहरू और लियाकतअली गये थे तो शेखू पुरे जिले में २२००० आदमियों के मारे जाने का अन्दाजा किया गया था।

लाहौर

लाहौर मे हमले ४ मार्च (१९४७) को ही आरम्भ हो गये थे। यहां मकानों पर पैट्रोल छिड़क कर आग लगा दी जाती थी। और जब बचाव के लिये हिन्दू -सिख बाहर निकलते थे उन्हें बाहर खड़ी भीड़ कत्ल कर देती थी; सिख-हिन्दुओं को कत्ल करने के लिये लाहौर से बाहर के गुण्डे मुसलमान भी बुला लिये गये थे। भूले बिछुड़े रास्तागीरों को छुरे-बाज कत्ल कर देते थे। ये हमले मई मे और भी बढ़ गये। १८ मई को दस हजार की मुसलिम भीड़ ने भजग पर हमला किया। मुस्लिम थानेदार ने उन्हें थाने के हथियार दे दिये जिन्हे कातिल अपना काम करने के बाद थाने मे लौटा गये। पहले तो आग लुक छिपकर लगाई जाती थी अब खुल्लम-खुल्ला

दस गुने बढ़ गये।
लगाई जाने लगी। और जब पाकिस्तान बनने का एलान हो गया तो हमले दस गुने बढ़ गये।
लाहौर मे बैठा हुआ अंग्रेज गवर्नर रक्षा की कार्यवाही करता था किन्तु गुण्डापन को दबाने की
नहीं। चार महीने की मार काट और लूटपाट ने हिन्दुओं को लाहौर से भागने पर मजबूर कर दिया। यही
अंग्रेज गवर्नर और मुस्लिम लीग का मंशा था जो पूरा हुआ। हमारे कथन का सबसे बड़ा सबूत लाहौर
किले के नीचे जहां फौज भी थी देहरा गुरु अर्जुनदेव के नष्ट हो जाने का है। मुसलिम गार्डों ने इस
गुरुद्वारे को जला डाला। और गुरुद्वारा बावली साहब मे तो बिलोच मुस्लिम सैनिकों ने खुद सिखों को
संगीनों से छेद कर कत्ल किया। अंग्रेज गवर्नर चाहता तो लाहौर के सिख हिन्दुओं की रक्षा के लिये
हिन्दू-सिख सिपाही भी बुलवा सकता था।

इन हत्याकाण्डों का विवरण थोड़ा नहीं है। इस पर शिरोमणि गुरुद्वारा प्रबन्धक कमेटी ने
"मुस्लिम लीगियां दे अत्याचार" नामक जो रिपोर्ट प्रकाशित की है। वह काफी प्रमाणित है। अधिक
जानकारी के इच्छुक उसीसे उस समय की भयानक स्थितियों का एक सूक्ष्म दृश्य देख सकते हैं। उसी
रिपोर्ट से हम अति संक्षेप मे एक तालिका कत्लों की यहां देते हैं—

हजारा जिले मे ३६ स्थानों पर मुस्लिम गुण्डों द्वारा मार काट, लूट पाट और अग्निकांड हुए।
इस जिले के वाफा गाव मे एक सिख मारा गया और २ स्त्रियां अपहरण की गईं। सिहालिया में दो
कत्ल किये गये। जावोरी मे १६ हिन्दू मानसहरे से लौटते हुए मार्ग मे कत्ल कर दिये गये। वाला कोट मे
एक सिख को कत्ल कर दिया गया। भाटा मे ११६ सिख जीते जला दिये गये। इनमे से जो भागे उन्हे
गोलियों से भून दिया गया। मलकच्छ मे ११५ सिख-हिन्दू, झाड़ मे १५० सिख कत्ल कर दिये गये।
स्त्रिया उडा ली गई। पुरनाला, फिवा, पंचनद को तबाह कर दिया गया। बटस, उग्गी, सूस, दद्दड़ मे ५५
सिख-हिन्दू मारे गये, ३० गाव तबाह कर दिये गये। इस जिले से सबको भगा दिया।

रावलपिंडी की गुज्जरखान तहसील मे नडाली गाव पर १५००० मुसलमानों ने हमला किया।
गांव को लूट लिया गया और अनेकों सिख-हिन्दुओं को कत्ल किया। यही दशा इस तहसील के गोरसीआं
गाव में हुई। ढुंढियाल और अडियाला मे स्कूल मन्दिर गुरुद्वारे सब नष्ट कर दिये गये खोज खोज कर
सिख हिन्दुओं को कत्ल किया गया। ४० को जबरन मुसलमान बनाया। रावलपिंडी के ही संधरा गांव
में २०० सिख मारे गये। ४० का पता नहीं चला।

जेहलम तहसील के घुग्गा गांव मे १२८ सिख मारे गये। ४० स्त्रियां अपहरण की गईं। जीहा-
वाघा मे १८ सिख मारे गये। ५२ बेदीन किये गये। 'सरकाल कसेर' ४३ व दरवाल मे ६ नारंग में ६
भसीन में ३५ नमाजीआं मे ५ हिन्दू सिख मारे गये सैंकड़ों जबरन मुसलमान बनाये गये। सब को लूट
लिया गया।

कैम्बलपुर जिले की फतहजंग तहसील के राजड़ गांव मे ३००० सिख-हिन्दुओं को मारा गया।
६५ स्त्रियों को जबर्दस्ती मुस्लिम बनाया गया और जो बच्चे मुस्लिम नहीं बने उन्हे कत्ल कर दिया गया।
इसी जिले के २३ गावों में ६१० सिख हिन्दुओं को मारा गया। १६५६ घर (हिन्दू-सिखों के) नष्ट कर दिये
गये। १३६१ लूट लिये गये। इस जिले में लगभग ५० गांवों मे हत्याकांड लूट पाट और आगजनी हुई।

गुजरात जिले के ३१-३२ गाव लूटे गये और अकेले डिंगा गांव मे ३३०० सिख कत्ल हुए।
अनेकों गावों के कत्ल की सूचना प्राप्त नहीं हो पाई।

रावलपिंडी के कत्लों की सख्या का ब्यौरा पहले दिया जा चुका है जिसमे ७००० सिख हिन्दुओं

के कत्ल का पता लग चुका था।

मुल्तान जिले मे कोई २५-२६ स्थानों पर हमले हुए जिनमे अकले भेलसी कैम्पमे २०००हिन्दू-सिख मारे गये वहा हमला मुस्लिम फौजने किया था। मुल्तान मे पहले हमले में २०० सिख-हिन्दू मारे गये थे।

गुरदासपुर जिले मे भी कोई कसर हमलावरों ने नहीं छोडी थी और उसे हद्द तक पहुचा दिया विलोच सैनिकों ने। यह सब अंग्रेज अफसरों की जानकारी मे हुआ।

सियालकोट जिले के कोटल पठाणा, गॉव को भीड और मुस्लिम सिपाही दोनों ही ने लूटा। कई स्त्रियों को अपहरण किया और अनेकों सिख हिन्दुओं को मौत के घाट उतार दिया। स्यालकोट खास में १३ अगस्त को गुंडों के साथ फौज और पुलिस के मुसलमान सिपाहियों ने लूट पाट की। वजीराबाद आई हुई शरणार्थियों की ट्रेन पर हमला किया और उसे लूट लिया तथा अनेकों की जानें लीं। इसके अलावा नारेवाल, पजगराई, लोहारिया, मेगिया, सम वडियाल, खान खास, भुपाल वाला, शकर गढ़, वावली ताहिरा, नूरपुर, नारोरयीआ, वघेडा, गूजर वाली, जाजा वाला, गेता, सखतरा, रनसीवास, सजादा, सलारीआ, फुलेरा, थानेवान, ढिल्ली, वद्दोमन भोई, सियेवाला, वुधेपुर, कोट कल्लाल आदि पचासों गॉवों पर हमले हुए। गुरुद्वारों को नष्ट किया गया। घरों को लूटा गया, स्त्रियों को उडाया गया और मर्द और वच्चों को कत्ल किया गया। तहसील उमकाके ३५ गॉवों मे २५०० हिन्दू सिख मारे गये थे।

लायलपुर जिले में भी कोई कसर नहीं छोडी गई। खास लायलपुर शहर में ही मुस्लिम सैनिकों ने खूब उपद्रव किया और चक ३७ के पास शरणार्थी ट्रेन को लूट लिया। इस लूट पाट में ५० सिख मारे गये। इसी जिले के जडावाला कस्बे के आस-पास के गॉवों और शरणार्थी कैम्पों पर धावे किये गये। १००० सिख-हिन्दू जान से मारे गये और १०००-१२०० घायल हुए। तारलिया में ३०० जानें ली गई और वारह, २,३,४ मे १६०० हिन्दू-सिख कत्ल किये गये और ४०० स्त्रियों को उड़ाया गया। पच्चीस हजार की भीड़ ने यह हमला २८-६-४७ को किया था, जिसमें पुलिस और फौज के मुस्लिम सिपाही भी शामिल थे। झडावाला और झूमरा के तमाम चकों मे से पीट-पीट कर सिखों को निकाल दिया। इन और दूसरे चकों में डेढ़ हजार से ऊपर आदमी मारे गये अकेले चक ने १४३ (समुन्दरी तहसील) में ७०० मे से २ आदमी वचे थे। कमालिया मे ३५०० झुग्गी मे ३७४२ को गोलियों से मुस्लिम सैनिकों ने भून दिया। चक नं० ७४ और चक न० ३०१ मे भी ऐसा ही हुआ। टोवा टेकसिंह और डवावाला स्टेशनों के वीच शरणार्थी ट्रेन को रोककर १४०० हिन्दू सिखों को मारा गया।

यही दशा माटगुमरी, सयालकोट, गुजरावाला, गुरदासपुर, सरगोधा, शेखपुरा, मीआवाली, झंग, मुल्तान, मुजफर गढ़ आदि जिलों में हुआ। सब स्थानों के कत्ल और स्त्रियों के साथ किये वलात्कारों को लिखने मे भी हमारा तो हाथ कापता है। पाठक इसीमे अन्दाज लगालें कि यह कैसा नर मेध था। जिसमें एक पूरी जाति को नष्ट करने की कमर वॉधी गई थी।

दगे शान्त हो जाने और मजहवी पागलपन तथा प्रतिहिंसा की भावना दूर हो जाने पर आज सिख हिन्दू और मुसलमान सभी को इन घटनाओं पर खेद है और इसमें सन्देह नहीं कि उस समय उन मुसलमानों ने जिनके दिल मे ईश्वर की सत्ता मौजूद थी। हिन्दू और सिखों को वचाने की कोशिश की किन्तु उनकी सख्या धर्मान्धो के आगे नगण्य ही रही। हिन्दू सिख वहुल इलाकों मे भी प्रति-शोध के समय अनेकों हिन्दू सिखों ने मुसलमानों की रक्षा की। यही वाते हैं जो उन पशुतापूर्ण कार्यों को भूल जाने और परस्पर हिलमिल कर रहने को उत्साहित करती हैं।

इक्कीसवां अध्याय

सिख धर्म और गुरुमत दर्शन

ससार मे जितने भी धर्म हैं। उनका आधार कम से कम पॉच बातों पर निर्भर है। अथवा यों कहना चाहिये कि मनुष्यो का कोई भी समूह जब इन बातों के अनुसार अपना जीवन और रहन सहन बना लेता है। तब वह किसी एक धर्म का अनुयायी समझा जाता है। वे पॉच बाते यह हैं—(१) मार्ग दर्शक या प्रवर्तक (२) हिदायत नामा जो कि धर्म ग्रन्थ के नाम से अभिहित होने लगता है। (३) जीवनान्त का लक्ष्य या सार्थक जीवन की लक्ष्य (४) उपास्य और उपासना विधि। (५) आचार और सस्कार।

सिख धर्म की देन

ऐतिहासिक दृष्टि से यह कहना कोई भी गुनाह नहीं होगा कि ससार मे जितने भी मजहब है वे किसी न किसी महान् पुरुष द्वारा प्रवर्तित किये हुए हैं। अत. यह स्वाभाविक है कि मनुष्य जब किसी धर्म को मानता है तो वह उस धर्म के प्रवर्तक की अवश्य मान्यता करता है। और चूंकि धर्म एक मार्ग होता है[1] अथवा उन नियमों का संग्रह होता है जो उस महा पुरुष ने नियत किये थे अथवा उसके अन्त करण से प्रादुर्भूत हुये थे। प्रत्येक धर्म के अनुयायी उस महापुरुष के निर्धारित अथवा कहे हुये नियमों को संग्रह भी कर लेते है क्योंकि ऐसा करना जरूरी होता है। यही संग्रह उस प्रवर्तक अथवा नियामक के अनुयायियो का धर्म ग्रन्थ कहलाता है। उन वचनों को श्रद्धापूर्ण भाषा मे, मत्र, प्रवचन, आयत, वाणी आदि ऐसे ही आदर सूचक नामों से पुकारते है। इन मंत्र, प्रवचन और वाणियों मे प्रवर्तक की अन्तरात्मा की वह आवाजे होती हैं जो मनुष्य जीवन को स्वच्छ, ऊचा और आदर्श बनाने के लिये निकलती हैं। और प्राय सभी धर्म प्रवर्तक मनुष्य-जीवन का अंतिम लक्ष्य ईश्वर की शरण मे अनन्तकाल के लिये स्थान प्राप्त करना मानते हैं। जिन धर्म-प्रवर्तकों ने ईश्वर को नहीं माना है उन्होंने भी जीव के लिये-अनन्तकाल के लिये-मुक्ति प्राप्त करना तो अंतिम लक्ष्य रक्खा ही है। अत. प्रत्येक धर्म मे उपासना, उसका एक आवश्यक अंग होता है। लक्ष्य पूर्ति के लिये मनुष्य को जितनी योग्यताये आवश्यक हैं। उनकी प्राप्ति के लिये जो कसौटी प्रवर्तकों द्वारा रक्खी गई हैं, वही उस धर्म के आचार और सस्कार हैं। प्रत्येक धर्म का यही सक्षिप्त स्वरूप है।

१. सिख लोग तो अपने धर्म को कहते भी मार्ग (पथ) ही है।

अब हम सिख धर्म की इन्हीं पाँच बातों का परिचय देना चाहते हैं।

प्रवर्तक

सिख धर्म-जिसे कि "गुरमत" कहना भी सार्थक है—के प्रवर्तक श्री गुरु नानकदेव हैं। गुरु अंगद जी से लेकर गुरु गोविंदसिंह जी तक और जो नौ गुरु हैं। वे भी नानक देव ही हैं। सिख सम्प्रदाय की यह दृढ़ भावना सारे ससार के धर्मों से विचित्र किन्तु अपने धर्म में अचिन्त्य श्रद्धा के लिये अत्यत उपयोगी है। मुसलमानों की धारणा है कि उनके कई पैगम्बर हुए हैं किन्तु साथ ही वे यह भी कहते हैं कि हजरत मुहम्मद उन सब में अधिक ऊंचे और खुदा के प्यारे थे। इस प्रकार की भावना से शेष पैगम्बरों का न चाहते हुए भी अपमान हो जाता है। हिन्दुओं मे भी दस अवतारों का मानने वाला प्रत्येक हिन्दू इस चिन्ता मे अवश्य पड़ता है कि इनमें अधिक कलावान (प्रतापवाला) कौनसा था? इसी हेतु उनमें रामानुजी, माध्वाचारी आदि अनेक भेद भी हो गये। किन्तु सिखों में यह सवाल नहीं उठता कि अमुक गुरु की वाणी अमुक गुरु से अच्छी हैं। या निवल। न वह ऐसा मानते हैं कि अमुक गुरु इतनी कलाओं के औतार थे। उनका दृढ़ विश्वास है कि सभी गुरु नानक देव ही थे। अथवा उन्हीं की ज्योति आगे के गुरुओं मे प्रकाश मान थी। इस प्रकार वे प्रत्येक गुरु को अपने पूर्व गुरु का पूरक मानते हैं। जिस प्रकार 'आत्मावै जायते पुत्र।' अर्थात् पुत्र पिता ही होता है—का एक सिद्धान्त है उसी प्रकार "आत्मा वै मथीयते शिष्य" अर्थात गुरु के विचारों का प्रतीक ही उसका शिष्य-गुरु है। इस सिद्धान्त को सिख मानते हैं। लेकिन प्रत्येक शिष्य उसी प्रकार गुरु नहीं हो सकता जिस प्रकार प्रत्येक पुत्र अपने पिता का साक्षात सस्करण नहीं होता। यह सिद्धान्त सिख समाज का निर्धारित किया हुआ सिद्धांत नहीं है। अपितु यह बात स्वयं गुरु नानकदेव जी ने कही थी। लहना जी को अगद नाम उन्होंने इसीलिये दिया था कि उन्होंने उनको बिल्कुल अपना संस्करण समझ लिया था।

गुरु नानक देव जी से पीछे जिन गुरुओं ने जो भी प्रवचन किये, वे उन्होंने अपने नाम से नहीं किये। ग्रंथ साहब में दूसरे गुरुओं के जो प्रवचन या वाणिया हैं। इनमें गुरु नानक देव जी का ही नाम है। उदाहरणार्थ "हम अपराधी निरगुनियारे। ना किछु सेवा ना करमारे। गुरु बोहिथु वड़भागी मिलिया। नानक दास सगि पाथर तरिया।" पढ़ने वाला यही समझेगा यि यह वाणी गुरु नानक देव जी की है, किन्तु है वास्तव में पाचवे गुरु अर्जुनदेव जी की। इस प्रकार अन्य गुरुओं की वाणियों मे भी 'नानक' नाम ही आता है। इसका भाव यही है कि गुरु नानक देव जी के समस्त उत्तराधिकारी गुरुओं का यह दृढ़ विश्वास था कि हमारे अन्दर जो भी महानतम् ज्योति है। वह गुरु नानक देव जी की है। इसी धारणा के अनुसार सिख लोगों मे तीसरे नानक देव, चौथे नानक देव कहने की भी प्रथा पाई जाती है।

इस धारणा से कि दसों गुरु नानक देव ही हैं सिखों में अपने प्रवर्तकों के प्रति अगाध और समान श्रद्धा है। और इस श्रद्धा का उन्होंने समय समय पर परिचय भी दिया है।

सिख धर्म के ये प्रवर्तक गुरु कहलाते हैं। और सिख गुरु से ऊपर केवल परमात्मा को ही स्थान देते हैं। इसलिये उनके व्यवहार में परमात्मा का सब से प्यारा नाम वाहिगुरु है।

गुरुओं के सम्बन्ध में सिखों की धारणा है कि वे मुक्त-पुरुष हैं। परमात्मा ने उन्हें मानव जाति के कल्याण के लिये भेजा था। गुरु नानकदेव जी से वेईं नदी मे दैवी ज्योति ने साक्षात किया था। यह

घटना सिख इतिहास मे उससे कहीं ऊंचा स्थान पाती है जितना कि मुस्लिम इतिहास में जिब्राइल द्वारा हजरत मुहम्मद साहब का खुदा के दर्शन कराना। मुसलमानों का विश्वास है कि फरिश्ता जिब्राइल ने हजरत मुहम्मद के कालिब मे उज्ज्वल वस्तु को रक्खा था और जो काला निशान था, उसे बदल दिया था। जिसके अर्थ होते हैं कि उस समय से उनमे खुदा के महान् प्रकाश की ज्योति प्रज्वलित हो गई। सिख लोगों की धारणा इससे कुछ अधिक आगे है वे मानते हैं कि गुरु नानकदेव जी उस प्रकाश को जन्म से ही साथ लाये थे। उनकी यह धारणा बौद्ध और मुसलमान दोनों से ही आगे है। वह अपने गुरु को घटनाओं से प्रभावित हो कर परिवर्तित हुआ नहीं मानते। किन्तु परमात्मा की ओर से इसी काम को भेजा हुआ मानते हैं। इस धारणा का जन्म सिखों मे पीछे से हुआ हो ऐसी बात नहीं है किन्तु स्वयं दसवें नानकदेव गुरु गोविन्दसिह जी ने कहा है:—

"तिन प्रभु जब आयुस मुह दिया।
तब हम जन्म कलू महि लिया।
चित न भयो हमारो आवन कहि।
चुभी रही श्रुति प्रभु चरनन महि।
जिउँ तिउँ प्रभु हमको समझायो।
इम कहि के यह लोक पठायो।

इससे पहले के पदों मे उन्होंने जन्म धारण करने से पूर्व की अपनी स्थिति भी बताई है। कहा है—

"हेम कूट पर्वत है जहां, सप्तश्रृङ्ग सोभित है तहां।
सप्तश्रृंग तह नाम कहावा, पंडुराज जह जोग कमावा।
तहं हम अधिक तपस्या साधी, महां काल काल का अराधी।
इहि विधि करत तपस्या भयो, द्वै ते एक रूप है गयो।

इन पदों मे यह बात अधिक ध्यान देने की है कि "द्वै ते एक रूप है गयो।"

गीता मे श्रीकृष्ण महाराज ने अर्जुन से कहा था.—

"यदाहि यदाहि धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारत.
अभ्युत्थानस् धर्मस्य तदात्मनम् सृजाम्यहम् ॥

इन दोनों महापुरुषों के वाक्य मे एक लम्बी दूरी तक समानता है। अन्तर केवल इतना है कि श्रीकृष्ण का कहना तो है कि जब जब धर्म की हानि होती है। मैं अवतार लेता हूं और गुरु गोविन्दसिंह कहते हैं। "धर्म की स्थापना के लिये मुझे भेजा गया है।" यह अन्तर केवल इसलिये है कि गीता वेदान्त का एक अग है और वेदान्त ईश्वर और जीव मे द्वैत नहीं मानता।

हमारे इस कथन का यह भी अर्थ है कि सिख धर्म के प्रवर्तक द्वैतवादी थे। और दो से एक रूप होने के लिये जो मुख्य साधन सिख धर्म में है–वह है सतगुरु की प्राप्ति।

गुरु नानकदेव जी ने सतगुरु के सम्बन्ध मे बहुत ही कुछ कहा है। यथा.—

"गुरमुखि बूझै अकथु कहावै। सचे ठाकुर साचौ भावै।" यही नहीं कि गुरु की महानता पर नानकदेव जी ने ही जोर दिया हो किन्तु सभी गुरुओं ने गुरु के महत्व का वर्णन किया है। तीसरे गुरु अमरदास जी ने कहा है—

"पूरे गुरु कै सवदि मिलाए।
नानक नामु मिलै वडि आई आपे मेलि मिलावणिआ।"

इस प्रकार सिखों में गुरु का दर्जा वहुत ऊंचा है। और यही कारण है कि उन्होंने अपने धर्म प्रवर्तकों को गुरु नाम दिया है। इस तरह सिख साहित्य में गुरु के मानी केवल उस महापुरुष के हैं जो वाहिगुरु अर्थात् परमात्मा से मिलाने की शक्ति रखता हो।

सोलहवीं सदी में गुरु नानक देव जी और उनके उत्तराधिकारियों की इस घोषणा से कि "सत गुरु तो वही है जो वाहि गुरु से मिला सकता हो।" उस समय के सीमा पर पहुँचे हुए गुरुडम को निश्चय ही वड़ा धक्का लगा था। जव हम पन्द्रहवीं और सोलहवीं सदी का धार्मिक इतिहास देखते हैं तो सहज ही पता लग जाता है कि उस समय गुरुओं की वड़ी भरमार थी। जिसके मन मे आया वही गुरु वन वैठता था। एक-एक शिष्य के वीस-वीस गुरु होते थे। और एक गुरु के पीछे हजारों चेले लगे फिरते थे। इन लाखों गुरुओं मे भले वुरे की पहचान के लिए आखिर कोई कसौटी होनी चाहिये थी और वह कसौटी यही थी कि वाहिगुरु को पहचानने और उससे मिलाने वाला ही गुरु हो सकता है।

इस प्रकार सिखों के गुरु उनके इहिलोक के ही सुधारक नहीं किन्तु ईश्वर से मिलाने वाले भी थे। इतना ऊँचा स्थान है गुरुओं का सिखों के हृदय में।

इन गुरुओं के रास्ते पर चल कर सिखों ने इस लोक मे भी वहुत उन्नति की है। सिखों का दर्जा हिन्दुस्तान की वर्तमान सभी जातियों, समाजों और समुदायों मे आदरणीय है। उनका यह विकास किस प्रकार हुआ? प्रत्येक गुरु के जमाने में वे कितने आगे वढे। इन वातों का जिकर हम गुरुओं के जीवन चरितों में कर चुके हैं। यहाँ केवल इतना ही कहना चाहते हैं कि गुरुओं ने हिन्दु जाति को मानसिक गुलामी से मुक्त करने मे एक वड़ा काम किया था। जिन अन्ध-विश्वासों को गजनवी का मूर्तिध्वसक कार्य और औरगजेव की कठोर यातनायें भी दूर न करा सकी थीं। गुरुओं की मीठी वाणियों से वह सहज ही दूर हो गया। यही नहीं किन्तु गुरुओं के उपदेशों से मुस्लिम तहजीव का भी वहुत कुछ परिमार्जन हुआ था। गुरुओं ने जिस शैली से अपने खयालात लोगों तक पहुँचाये। वह शैली एकदम सात्विक शैली थी। इस्लाम के प्रचारकों की तरह न तो अपने सिद्धान्तों के प्रचार के लिये उन्होंने तलवार उठाने का उपदेश दिया और न ईसाइयों की तरह किन्हीं भौतिक पदार्थों का लोभ।

उन्होंने मनुष्य को कभी भी वुरा नहीं कहा। आर्य, दस्यु और मोमिन काफिर जैसे दूसरों को कडवे और अपने लिये मीठे शब्दों से उन्होंने मनुष्य जाति का कोई विभाजन नहीं किया। ग्रंथ-साहव के आधार पर जो कि गुरुवाणियों का सग्रह ग्रन्थ है। सिख धर्म को विशुद्ध 'प्रेम धर्म' कहा जा सकता है। इस तरह गुरु साहिवान प्रेम धर्म के जन्मदाता और प्रेम के साक्षात अवतार थे। मनुष्य मनुष्य को सच्चा प्रेम करे और उस प्रेमी समाज का सम्पूर्ण प्रेम परमात्मा में केन्द्रित हो। तव वह समाज, वह देश कितना अच्छा होगा? गुरुओं का वह प्रयत्न पूर्णतया सफल हुआ या नहीं? सिख लोग भी गुरुओं के मार्ग पर सोलह आने आरूढ़ हैं या नहीं? यह वातें तो दूसरी हैं किन्तु गुरु साहिव जिस आदेश समाज की रचना करना चाहते थे वह उद्देश्य तो वहुत महान् था।

वौद्ध और ख्रीष्ट धर्मों के प्रवर्तकों में गुरुओं मे पहले यही वात हम देखते हैं। व्यक्ति निर्माण और प्रेम धर्म पर उन्होंने भी वडा जोर दिया है किन्तु वौद्ध धर्म दर्शनिकता प्रधान होने के कारण उत्कट विद्वानों के अधिक काम की चीज था और ख्रीष्ट धर्म शुष्क तर्क और ऐतिहासिक ढग पर वर्णित होने के

कारण आस्था पैदा नहीं कर सकता था। गुरुओं ने जो भी कुछ कहा है वह सहज ही समझ मे आने वाला और सरस होने के कारण सर्वसाधारण के काम की चीज बन गया।

सिखों का धर्म ग्रन्थ "आदि श्री गुरु ग्रन्थ साहब" है। वे अपने धर्म ग्रन्थ का नाम उसी प्रकार इज्जत के साथ लेते है जिस प्रकार हिन्दू वेदों को वेद भगवान् और मुसलमान कुरान को कुरान शरीफ बोलते हैं। वे भी बड़ी श्रद्धा और प्रेम के साथ 'ग्रन्थ साहिब जी' कहते हैं।

धर्म ग्रन्थ

अपनी पवित्र धर्म पुस्तक के सम्बन्ध मे सिखों की एक और मान्यता है वह यह कि ग्रन्थ साहिब जी गुरुओ का ज्योति-स्वरूप है। ऐसी मान्यता की वृद्धि इस पद से हुई है।

"गुरु ग्रन्थ जी मानियहु प्रगट गुरां की देह। जो प्रभु को मिलश्रो चहै, खोज शब्द में लेह।"

गुरु ग्रन्थ साहब का सिख लोग इतना भारी मान करते है जिसे देख कर लोग उन पर भी मूर्ति पूजा का दोषार्पण करने लगे है। ग्रन्थ साहिब जी पर चॅवर ढाला जाता है। और उसे स्वच्छ सुन्दर वस्त्रोंसे आच्छादित करके रखते हैं। रखने का स्थान ऊंचा और पवित्र होता है। यह है ग्रन्थ साहबके प्रति सम्मान का एक उत्कृष्ट ढग ।

'ग्रन्थसाहिब' के पठन को पाठ कहते है और पाठ दो प्रकार का होता है। (१) साधारण पाठ और (२) अखड पाठ। अखंड पाठ आरम्भ करके बीचमे बन्द नहीं किया जासकता और प्राय. ४८ घण्टेमे समाप्त हो जाता है। पाठ के समय पाठक जिसे कि पाठी कहते हैं। स्वच्छ और शुद्ध अंग वस्त्रों से बैठता है। कोई सहारा वह नहीं लगा सकता, न सर नगा रख सकता है। श्रोता लोग इस समय ऊचे आसन पर नहीं बैठ सकते। आने वाले सभी सिख-जन मत्था टेक कर 'श्री ग्रन्थसाहिब' को अभिवादन करते हैं।

पाठ का प्रारम्भ अरदास (मंगल-प्रार्थना) से होता है अरदास हाथ जोड़ कर और खड़े होकर की जाती है। अखड पाठमे कड़ाह प्रसाद भी किया जाता है। घी, आटा, और खाण्ड सम भागसे जो हलवा बनता है उसे कड़ाह प्रसाद कहते हैं। यह कम से कम १। रु० का होता है।

गुरुद्वारों में गुरु ग्रन्थ साहिबजी की सेवा मे जो आदमी रहता है वह ग्रन्थी कहलाता है। ग्रन्थ साहब की वाणियों के अर्थ समझने वाले को ज्ञानी कहते है। यह शब्द शास्त्री का समवाची है।

"श्री आदि ग्रन्थ" के बाद सिख दशम ग्रन्थ को स्थान देते हैं। धार्मिक कृत्यों मे आदि ग्रन्थ ही का उपयोग होता है। हिंदुओं में जो स्थान गीता का है मुसलमानों मे जो स्थान कुरान का है सिखोंमें वही स्थान ग्रन्थ साहिब का है। और सन्मान अपने ग्रन्थ का इन दोनों से कहीं अधिक श्रद्धा से करते हैं।

गुरु ग्रन्थ में सात गुरुओं और ३६ अन्य सतो की वाणियो का सग्रह है। गुरुओं मे छटे सातवे और आठवे गुरुओं ने कुछ नहीं लिखा। दसवे गुरुजी की वाणी का एक ही चरण है। कहा जाता है कि गुरु तेग बहादुर जी ने कारागार से जो पत्र गुरु गोविंदसिंह जी को लिखा था। उसके उत्तर मे ईश्वरीय इच्छा का जो भाव गुरु गोविंदसिंह जी ने व्यक्त किया था वही गरु ग्रथ मे शामिल हैं।

बल छुट गयो बन्धन पडे कछू न होउ उपाय।
कहु नानक अब ओट हरि गज ज्यो छोड सहाय।
बल होआ बन्धन छुटे, सब किछु होत उपाय।
नानक सब कछु तुमरे हाथ में तुम्ही होत सहाय। ५४

यह पद गुरु गोविन्दसिंह जी का बताया जाता है जो कि मुद्रित ग्रन्थ में महला ६ के अतर्गत ही अकित है।

गुरु ग्रथ साहब का संकलन सर्व प्रथम श्री गुरु अर्जुनदेव जी ने जोकि पाचवे पातशाह थे किया

था। उन्होंने अपने पूर्ववर्ती गुरुओं और अपनी वाणियों तथा अन्य संतोंकी वाणियोंका जो सग्रह कियाथा, वह गुरु अर्जुनदेवजी द्वारा कीगई ग्रंथ साहव की वीड़ कहलात है। इससे पहले शिष्य और श्रद्धालु लोग गुरु वाणियोंको जो शव्द कहलाते हैं,जवानी याद करते थे। गुरुअंगदजीने अपने समयमे एक ग्रंथ लिखाया था वह एक जन्म साखी कहलाता था। उसमे गरु नानकदेव जी के जीवन वृतान्त और उनके कुछ शव्द दोनों ही चीजें सग्रहीत थीं। और जव तक ग्रथ साहिवजी का निर्माण नहीं हुआ था, सिखों के लिये यह साखी ही[1] धार्मिक-ज्ञान वृद्धि में सहायता देती थी।

गुरु अर्जुनदेवजी ने वावा वुढ्ढा को वुला कर जोकि पहिले गुरुजी के समयसे अवतक जीवित थे। उनसे शेप गुरुओं के शव्द भी सग्रह करा लिये। वावा वुढ्ढा अमृतसर जिले के जाट जमींदार-घरमें उत्पन्न हुए थे। सिखोंमे और गुरु घर में इनका दर्जा राज पुरोहित का जैसा ऊचा होगया था। इन्हे अपने समय तकके सभी गुरुओंकी वाणिया याद थीं। इसके इलावा गुरु अर्जुनदेव ने गोइन्दवालके वावा मोहिनजी से गुरुवाणी की वह सचियां भी प्राप्त कीं जोकि वहा गुरु अमरदास जी के समय से चली आरही थीं। यह सचिया विशेपतया गुरु ग्रथके सकलनमें सहायक हुई। इस प्रकार गुरु अर्जुनदेव जीके समय में गुरु ग्रथ साहव की पहली वीड वाधी गई। कहा जाता है भाई गुरुदास जी ने आदि ग्रंथ में लेखक का काम किया था।[2] इस पवित्र ग्रंथ के पहले ग्रन्थी वावा वुढ्ढा ही वनाये गये।

ग्रंथ साहव का संकलन रागों के सिलसिले से है। यथा राग गोरी के सव पद एक जगह मिलेंगे। चाहे वह गुरु नानकदेव जी के हों चाहे अमरदास आदि गुरुओं के। कौन शव्द किस गुरु के हैं? इसका ज्ञान महलों से होता है। महला १ जहाँ लिखा हो वह शव्द प्रथम गुरु नानकदेव जी के और इसी क्रम से अन्य गुरुओं के पहचाने जा सकते हैं।

सिखों का यह पवित्र धर्मग्रन्थ उपासना प्रधान ग्रन्थ है। उपनिपदों को जिस प्रकार हम ज्ञान प्रधान और गृहसूत्रों को कर्म प्रधान ग्रन्थ मानते हैं। उसी प्रकार ग्रन्थ साहव उपासना प्रधान ग्रन्थ है। इस ग्रन्थ ने सोलहवीं सदी से लेकर उन्नीसवीं सदी के तृतीय चरण तक पंजाव, सिंध और काश्मीर के हिन्दुओं की आध्यात्मिक प्यास को वुझाकर वह अपरमित शाति प्रदान की थी जो हिन्दू धर्म की रक्षा का एक प्रधान कारण हुई। हम वीसवीं सदी में धार्मिक ग्रन्थों के सरल भापा में जो ढेर देखते हैं। अव से पचास वर्प पहले उनका एक दम अभाव था। हिंदू-धर्म की समस्त वातें और उसूल सस्कृत मे थे। जो सर्व साधारण की समझ में तनक भी न आ सकती थीं। उसके ऊपर भी पावन्दी थी। सस्कृत को केवल व्राह्मण ही पढ़ सकते थे। धर्मग्रन्थों के पाठ का अधिकार भी व्राह्मणों को ही था। इसलिये हिंदू-धर्म चन्द व्राह्मणों की आलमारियों मे वन्द था और वह वडी महँगी कीमत पर सुनने को—सो भी द्विजों के लिये—मिलता था। हिंदुओं की इस स्थिति से मुसलमान प्रचारक खूव लाभ उठा रहे थे। आध्यात्मिक प्यास वुझाने के लिये हिंदू समाज वडी द्रुतगति से मुस्लिम फकीरों और मुल्लाओं की शरण मे जा रहा था। जाता भी क्यों न जव कि "ओं नमो भगवते वास देवाय" कहने का भी समान रूप से सभी हिंदुओं को अधिकार न था। ऐसे ही समय में गुरुलोगों का अवतार हुआ और उनकी कृपा से ग्रथ साहव की रचना हुई। जिसमे अपनी आध्यात्मिक प्यास वुझाने की प्रत्येक मनुष्य को आजादी थी। ग्रथ साहव की वाणियों रूपी अमृत की यह वर्पा उसी भापा मे हुई जो पजाव और प्राय सारे उत्तर भारत की रोज की वोलचाल की भापा

१ साखी से अभिप्राय जीवन गाथा से है।
२. भाई गुरुदास जी, गुरु जी की माता के चचेरे भाई थे।

है। इससे हिंदू जाति विधर्मी होने से बच गई। ग्रंथ साहब से एक चूहड़े से लेकर ब्राह्मण तक सभी ने आत्मिक शांति प्राप्त की। यही नहीं हजारों मुसलमानों ने भी गुरु नानकदेव जी की वाणियों को श्रवण और ग्रहण करके लाभ उठाया। उत्तर भारत के पतनोन्मुख हिंदू समाज के लिये 'ग्रथ साहब' साक्षात संजीवन बूटी साबित हुए।

"गुरु ग्रंथ साहिब" मे कबीर, नामदेव और सूर, आदि संतों की वाणियों के सग्रह को देखकर बहुत से लोगों के दिल मे सवाल उठता है कि गुरुवाणियों के साथ उनका सग्रह क्यों किया गया? सीधा सा उत्तर तो केवल इतना ही है कि गुरु लोग उदार थे और इसी वत्ति से उन्होंने अपने समकालीन सतों की वाणियों को भी अपने ग्रथ मे स्थान दे दिया! परन्तु हम एक गहराई की बात कहना चाहते है। जिन लोगों ने महाभारत का अध्ययन किया है वे जानते है कि उसमे शैव, शाक्त और वैष्णव सभी प्रकार के आचार्यों के प्रतिपादित सिद्धान्तो को स्थान दिया गया है। और इन प्रतिपादनों को सग्रह करने के लिये महाभारत के तीसरे[२] सपादक सौति को यह आवश्यक जान पड़ रहा था कि वौद्ध धर्म के मुकाबिले पर इन सबका एक हो जाना आवश्यक है। ग्रंथ साहब मे हम जिन संतों के नाम देखते हैं, वे भारत के प्रत्येक कोने के प्रतिनिधि थे। यथा जयदेव बंगाल के और धन्ना राजपूताने के, यही नहीं प्रत्येक जाति के भी उनमें प्रतिनिधि हैं। रैदास चमार और नामा छीपी इसके उदाहरण हैं। इस ग्रथ साहब को सारे भारत का और उसमे बसने वाली प्रत्येक जाति का धर्म ग्रथ बनाने की भावना से ही उन सभी सतों की वाणियाँ इस ग्रंथ मे संग्रह करदी गईं जो करीब करीब उन्हीं उसूलों को मानते थे। जिनका कि प्रतिपादन गुरुलोग करते थे। यदि हमारा यह अनुमान ठीक है तो हम कहेगे ग्रंथ साहब द्वारा भारत का एक धर्म,एक जाति और एक मन कर देने का एक महान् कदम उठाया गया था।

ससार के धर्म ग्रथों मे हम एक बात और देखते हैं। वह यह कि उनमें थोड़ा बहुत इतिहास अपने प्रवर्तक का या उस समय के अन्य लोगों का होता है। बाइविल और कुरान मे क्रमश: क्रिश्चियन और इस्लाम मत के प्रवर्तकों के सम्बन्ध मे बहुत कुछ इतिहास है। किंतु ग्रथ साहब मे ऐसा इतिहास नहीं है। वह अधिकांशत: उपासना ग्रंथ है।

यहाँ हम 'गुरु ग्रंथ' के पूर्ण परिचय के लिये विभिन्न शीर्षकों मे कुछ सार पूर्ण सामाग्री उपस्थित करते हैं। इससे 'ग्रंथ साहब' में क्या है? प्रश्न का बहुत दूर तक हल पाठकों को मिल जायगा।

भाषा

श्री गुरु ग्रथ साहब की भाषा—'गुरु कालीन' भारत की समस्त प्रचलित भाषाओं मे से अधिकाश का समुच्चय है। इसके दो कारण हैं। एक तो यह कि प्रथम गुरु नानकदेव ने समस्त भारत की चार यात्रायें कीं और उन्होंने प्राय: सभी जनपदों को देखा। उन जनपदों के संतों विद्वानों और आचार्यों से सतसग किया। उन्हें अपनी बातें समझाईं। यह स्वाभाविक है कि जब कोई यात्री किसी देश मे जाता है और विशेषत: प्रचार के लिये तो वह उस देश की भाषा के अनेक शब्दों को अपनी बात समझाने के लिये ग्रहण करता है। दूसरे यह कि ग्रंथ साहब मे जिन अन्य सतों अथवा भाटों की कविताएँ हैं, उनमे उन प्रदेशों

२ प्रवतक महाभारत कमसे कम तीन बार सपादित हो चुका है। द्वैपायन व्यास का जय नामक ग्रथ जो कि युद्ध की समाप्ति पर बना वही जन्मेजय के नाग यज्ञ के बाद वैशम्पायन द्वारा संपादित होने पर भारत कहलाया। चन्द्रगुप्त मौर्य के समय में शौनक आश्रम में इसे महाभारत का रूप सौति ने दिया।

की भाषाओं के शब्दों का आना स्वाभाविक हैं, जिन प्रदेशों के कि वे निवासी थे। यथा जयदेव जी की कविता में संस्कृत और नामदेव की कविता मे मरहटी शब्दों का होना अनिवार्य है। शेख फरीद की कविता मे फारसी शब्दों का होना भी स्वाभाविक है।

'गुरु ग्रथ' बहुत बडा ग्रथ है। उसमे आये सभी शब्दों पर कुछ लिखना एक लम्बे समय और स्थान की अपेक्षा रखता है, इसलिये हम कुछ शब्दों के उदाहरण ही यहाँ दे रहे हैं। जिससे पाठक समझलें कि गुरु ग्रथ साहब किस प्रकार भारत की शाब्दिक एकता का सूचक ग्रथ है।

	शब्द	भाषा
(अ)	अन्दरि, अमूले, अलाहि	(अरबी)
(आ)	असगाहु, आखहि, आथि अमृतवेला, आपै अनै, अमुल, अखरी, अखरा,	(पंजाबी हिंदी)
	असख (असख्य) अगम (अगम्य)	(सस्कृत)
(इ,ई)	इकदूइक	(पंजाबी)
	इद्र, इद (इद्र) इदासाणि (इद्रासन)	
	ईसरु (ईश्वर)	(संस्कृत-हिंदी)
(उ)	उपरि	(मगही हिंदी)
	उज्जले	(वंगीय-हिंदी)
(ए)	एवँ, ऐहि, एतु	(पजाबी)
(ओ)	ओहु, ओडक, ओथे	(पंजाबी)
(क)	कागदि, कलाम, कादीआ, कतेबा	(फारसी)
	कुदरति, सिफति, सलामत, मसकति	(फारसी)
	कीता, कैं, किव किउ, कवाउ, कुडिआर, कूनू	(पजाबी)
	करता, करते, कवण, कामु, करमी	(हिंदी)
(ख)	खेह, खाहि	(हिंदी)
	खिआ, खल्ला, खावै, खाही, ख्वादु खाणीचारे	(पजाबी)
(ग)	गलबढ़, गिरहा, गावारा, गाह, गइआँ, गेडा गल्ला	(पजाबी-हिंदी)
	गरथ (ग्रथ) गिआनु (ज्ञान) गणत (गणित)	(हिंदी)
(घ)	घाडति, घडीआहि	(पजाबी)
(च)	चगा, चोट चाउ (चाव) चितगुप्तात (चित्रगुप्त)	(हिंदी)
(ज)	जावै, जुगा, जीआ, जीउ, जावा, जिव, जि, जे जे वडु	(पजाबी हिंदी)
	जुग-तारे (युगातर)	(हिंदी)
(ट)	टकसाल	(हिंदी)
(ठ)	ठाक, ठीस	(पजाबी)
(त)	तुहे	(मगही और पजाबी)
	ताणु, तुध, तित्थै	(पजाबी)
	तिसु, तिल, ताउ, तेता	(हिंदी)

(थ) थापिआ, थाव, थिति (पंजाबी-हिंदी)
इनकी ठेठ हिंदी थाप, थाम, तिथि
(द) दाति, दिसै, दुआर (व्रजी हिंदी)
देदा, दइआ, दतू (पंजाबी)
दरिगह, दरिआइ, दरि (पारसी)
(ध) धिआनु, धौलि, धोवै (पंजाबी-हिंदी)
धवले, धातु, धू (हिंदी)
(न) नाल, नालि, नाउ, नेड़े (पंजाबी)
नीसाणु (अरबी)
नदरि, नवरी (पर्शियन नजर का अपभ्रंश)
(प) पड़ि, परवाणु, परधान पसादु, पुत्री, पवहि, पउण, पाणी,
पवदिआ (पंजाबी-हिंदी)
पालि, पोहि (पजीबी)
पलीता (अरबी) पातशाही (फारसी)
(फ) फुरमाण (फर्मान) (पारसी)
(व) वंना, बीचारु, बुझै, वडिआई, वीजि (पंजावी-हिंदी)
बदिखलासी बख्शे (अरबी)
वैसंतर, वरमे (वैश्वानर, व्रह्मा), (सस्कृत हिंदी)
(भ) भिख, भुख, भखिआ, भवाइअहि, भखुसार भरीएँ (पंजावी हिन्दी)
भाव, भाण, भगति, भवण, भखनि (व्रजी हिन्दी)
(म) मुहाँ, मुहि, मुक्कस, (पंजावी)
मन्ने, मति, मनु, मान, मति, मुखि, मोख (पंजावी हिन्दी)
महतु (वंगला-हिन्दी
(र) रजाई (फारसी)
राहु, राजानु, रीस, रग (हिन्दी)
रुती (ऋतु) रिखीसर (ऋषिश्वर) (अपभ्रंश संस्कृत)
(ल) लिवतार लेदे (पजावी)
लेखा (हिन्दी) लोउ (लोग) (मागधी)
(व) विखम, विगसे, वरमा, विसाहि, विभूति (हिन्दी)
विदिआ, वेला, वापारिए, विआई, विदाणु (पंजावी-हिन्दी)
वेखे, वेखाणीर वाचै (पजावी)
(स) सहस, सासतर, सगल, सिमृति, अपभ्रंश हैं सहस्र, शास्त्र सकल, स्मृति (सस्कृत शब्दों के)
सतोख, (सतोप) साई (स्वामी) (हिन्दी)
सुरति, (पंजावी-हिन्दी)
सलाह, (सिफति) (अरबी)

सावूण (साबुन) (पारसी)
सुणिश्रा, समि, सुश्रासित, सति, सुहाणी, समाले सिउ, सोहनि (पजावी हिन्दी)
सजोग, सोहे, सिरठी (सृष्टि) सद (हिन्दी)
(ह) होसी (राजस्थानी-हिन्दी)
हुकमि, हुकम आदि (फारसी) हाडरा, हाई (अरवी)
होर (पजावी) हरामखोर (फारसी) हड हडये (मगही)

यह शव्द गुरु नानक देव जी की वाणियों से लिये हुए हैं। ग्रन्थ साहव में उनकी भापा सवसे अधिक क्लिष्ट और कई भाषाओं का समुच्चय है। दूसरे गुरु अगद जी की भापा गुरुनानक की भापा से मिलती हुई है हलाकि उतनी जटिल नहीं है। इनके शव्दों मे हिन्दी का पजावीकरण रूप वाहुल्यता से है। यथा —

"जिन वदिश्राई तेरे नाम की यह रते मन माहि। नानक श्रमृतु एक है दूजा श्रमृतु नाहि॥
नानक श्रमृतु मनै माहि पाईए गुरु परसादि। तिनी पीता रग सिउ जिन कउ लिखिया श्रादि॥
(सलोक सारग की वार महला २)

तीसरे गुरु अमरदास जी की रचनाओं मे वही रूप हिन्दी का है जो गुरु अगद देव जी की रचनाओं मे है। अतर इतना है, जिस प्रकार गुरु नानकदेव से अंगद देव की रचनाएँ सुवोध हैं। उसी तरह गुरु अगद देव से गुरु अमरदास जी की रचना सुवोध है। इनकी सवसे अधिक प्रिय रचना 'आनन्द,' है जो सिखों में प्रत्येक आनन्दोत्सव पर गाई जाती है। भापा की सरलता और हिन्दी के स्वरुप के दर्शनार्थ उसका कुछ अश हम यहा देते हैं —

"अनदु भइश्रा मेरी माए सतिगुरु मे पाइश्रा। सतिगुरु त पाईश्रा सहज सेती मनि वजीश्रा वधाईश्रा॥[१]
राग रतन मरवार परीश्रा सवद गावण श्राईश्रा। सबदोत गावहु हरी केरा मनि चिनी वसाईश्रा।
कहै नानकु श्रानदु होश्रा सतिगुरु मे पाइश्रा॥ (रागु रामकली महला ३)

चौथे गुरु रामदास जी की रचना पिछले तीनों गुरुओं से अधिक सरल और प्रवाह पूर्ण है। उसमें हिन्दी शव्दों का उत्तरोत्तर वाहुल्य है।

यथा —

सो पुरखु निरजनु, हरि पुरखु निरजनु, हरि श्रगमा श्रगम श्रपारा
सभि धिश्रावहि सभि धिश्रावहि तुधु जी हरि सच्चे सिरजण हारा।
सभि जीउ तुम्हारे तू जीश्रा का दातारा।

(रागु श्रासा महला ४)

श्रावहो सत जनहु गुण गावहु गोविंद केरे राम। गुरमुखि मिलि रहिए घर वाजहि सबद घनेरे राम॥
सवद घनेरे हरि प्रभु तेरे तू करता सभ थाई। श्रहिनिस जपी सवा सालाही साच सवद लिवलाई॥
श्रनुदिन सहजि रहै रगिराता रामनामु रिद पूजा। नानक गुरमुखि एकु पछाणै श्रवरु न दूजा॥
(रागु सूही छत हला ४)

१ इसका ठेठ हिन्दी रूप यह हो सकता है —
श्रानद भये मेरी माता, सुनि सतगुरु मे पाया, सतगुरु मिले सहज सनश्रा, मन में गवा बधाया।
श्रथवा श्रानद भये सुनि मोरी, माता सतगुरु में पाये, सतगुरु मिले सहज सन श्रा, मन मे बजे वधाये।

इस पद के तेरे, तू, थांई, गावहु शब्दों का अधिक प्रयोग व्रज भाषा में होता है। अथवा यो कहिये कि ये व्रज देशीय लोगों की हर समय की बोल चाल के शब्द है। गुरु अर्जुन देव की रचनाओं के समुचित अध्ययन से यह बात भली भांति समझ मे आ जाती है कि उनकी रचनाये लोक भाषा से उठ कर नागरिक भाषा मे चली गई थी।

यथा —

जाको रामनाम लिव लागी।

सजनु सुहृद सुहेला सहजे, सो कहिए वड भागी। रहित विकार अलिप माइआते अहँ बुद्धि विखु तिआगी॥

दरस पिआस आस एकहि की, टेक हिये प्रिय पागी। अचित सोइ जागनु उठि वैसनु अचित हसत वैरागी॥

कहु नानक जिनि, जगतु ठगाना सु माइआ हरिजन ठागी।

(रागु सारग महला ५)

इस पद मे केवल एक शब्द वैसनु लोक भाषा (पजाव की जनपदीय भाषा) का है।

इनकी रची हुई 'सुखमनी' का पाठ सिख घरों मे नित होता है। हमारे अपने विचार से वह अव तक की प्रार्थना सम्बन्धी हिन्दी रचनाओं मे सर्व श्रेष्ठ रचना है। उसका पाठ करते समय सहज ही आत्म विभोर हो जाना पड़ता है।

छटवे, सातवे और आठवे गुरुओं ने कोई रचनाएँ नहीं कीं 'गुरु ग्रथ साहव' मे पाचवे गुरु अर्जुन देव जी के वाद गुरु तेग बहादुर जी की वाणिया है। इनकी रचना की भाषा पन्द्रह आना हिंदी है। ठेठ पंजावी शब्दों (संज्ञा अथवा क्रियाओ) की इनकी भाषा मे वहुत ही न्यूनता है इसका कारण है कि गुरु लोग अव केवल पजाव के न रहकर समस्त उत्तरी भारत के गुरु वन चुके थे। उनकी शिक्षाओं के सुनने के लिए पटना से लेकर अनन्तनाग तक के लोग उत्सुक रहते थे। काशी, मथुरा और हरिद्वार में उनके सिद्धान्तों पर बराबर चर्चा होने लगी थीं। रचना माधुर्य मे इनके पद सूरदास से वहुत कुछ मिलते जुलते हैं। यथा —

"यह मनु नैक न कहिओ रै।
सीखु सिखाइ रहिओ अपनी सी दुरमति ते न टरै।
मद माइआ के भइयो बावरो हरिजसु नहिं उचरै।
करि परपचु जगत कउ डहकै अपनो उदरु भरै।
सुआन पूछ जिउ होइ न सूधी कहिओ न कान धरै।
कहु नानक भजु राम नाम नित जाते काजु सरै।

इस पद मे नैक, कहिओ, (कह्यो) रहिओ (रह्यो), टरै, भइओ बावरो, डहकै, भरै, सूधी, कान धरैं, काज सरैं, शब्द और वाक्य ठेठ व्रज भाषा के हैं।[1]

इसी प्रकार उनकी रचनाओं मे मध्य देशीय अथवा सौरसैनी हिन्दी का ही प्रयोग है।

चू कि गुरु ग्रन्थ एक विशाल ग्रन्थ है। उसका अखण्ड पाठ किया जाय तो सौ से लेकर सवा सौ घटे लग सकते हैं। वैसे ग्रन्थी लोग (कथावाचक) सात दिन मे पाठ पूरा किया करते हैं। इतने वडे ग्रन्थ का सागोपाग अध्ययन सव किसी के लिये संभव नहीं होता। अत यह आवश्यक है कि प्रत्येक गुरु और

१ नैक = तनक, जरासी। कह्यो = कहना (आज्ञा) रह्यो = रहा है। टरै = टलता, हटता। भइओ वावरे = पागल हो गया है। डहकै = ठगता है। भरै = भरता है। सूधी = सीधी। कान धरै = सुनना, मानना। काजु सरै = काम वनना

उनके उपदेशों का संग्रह अलग-अलग करके जनता तक पहुँचाया जाय। हिन्दी पाठकों के लिए उन अमूल्य उपदेशों के समझने में कोई कठिनाई नहीं होगी और इस प्रकार हिन्दी साहित्य के भंडार में वृद्धि भी होगी।

गुरु ग्रन्थ साहब में जिस प्रकार की भाषा का प्रयोग प्रत्येक गुरु ने किया है उसका वर्णन तो हमने कर दिया। अन्य संतों की भाषा के जो नमूने हैं उन्हें हिन्दी पाठक अन्यत्र भी देखते रहते हैं वैसे उनका वर्णन आगे के पृष्ठों में हमने भी दे दिया है और थोड़ा सा प्रकाश भाटों की कविता पर भी डाल दिया है वैसे भाटों की भाषा के नमूने हर प्रांत में देखने को मिलते हैं। फिर यह संत और भाट सब के सब पंजाबी भी न थे।

कविता

अब हम यह देखते हैं कि 'गुरु ग्रन्थ साहब' में जो कविता है। वह किस कोटि की है। अथवा किस ओर जनमत को ले जाने वाली है। तथा जिन छंदों अथवा रागों में यह कविता कथी गई है उनके रूप और नाम क्या क्या है 'गुरु ग्रन्थ साहब' की अधिकांश रचना राग रागनियों में है। उनका बहुत ही थोड़ा भाग सवैये, कवित्त, श्लोक और चौबोलों में है। इस प्रकार ग्रन्थ साहिब की रचना को हम दो भागों में बांट सकते हैं। (१) संगीत अथवा राग भाग (२) छन्द भाग। ग्रन्थ साहब के दोनों ही भागों अर्थात् राग रागनियों और सलोक सवैयों आदि में भी गुरुओं के अलावा अन्य संत और भगतजनों की वाणियां हैं जिनके नाम इस प्रकार हैं—

(१) श्री कबीर जी—इनके तीन सौ से ऊपर पद रागनियों में और २४० से अधिक श्लोक हैं।

(२) श्री फरीद जी—कबीर जी के बाद फरीद जी का स्थान है। रागों के तो इनके १० ही पद हैं किन्तु श्लोक १३० हैं।

(३) श्री नामदेव जी—कबीर जी की भांति ही इनकी वाणियां भी गुरु ग्रंथ में अनेक रागों में हैं जिनकी पद संख्या कम से कम १०० है।

(४) श्री रविदास जी—पद संख्या के लिहाज से इनका चौथा नम्बर है। कई रागों ही में इनकी भी वाणियां हैं।

(५) श्री त्रिलोचन जी—इनके श्री गूजरी और धनासरी रागों में ८ पद गुरु ग्रन्थ साहब में हैं।

(६) श्री वैणी जी— रामकली और प्रभाती राग में इनके ७ पद गुरु ग्रन्थ साहब में हैं।

(७) श्री जैदेव जी—इनके गूजरी और मारूराग में ६ पद गुरु ग्रंथ साहब में हैं।

(८) श्री धन्ना जी—इनके भी ६ ही पद गुरु ग्रंथ साहब में हैं जो कि आसा और धनासरी राग में हैं।

(९) श्री राई बलवंड और डूमि के ८ पद रामकली की वार में हैं।

(१०) श्री भीखन जी—इनके दो पद सोरठि राग में हैं।

(११) श्री सैणु—धनाश्री राग में इनका १ पद है।

(१२) श्री पीपा जी—इनका भी धनाश्री में ही १ पद है।

(१३) श्री रामानन्द—बसंत राग में रामानन्द जी का १ पद है।

(१४) श्री सूरदास—सारंग राग में सूरदास जी का १ पद है।

(१५) श्री सधना—इनका राग बिलावल में १ पद है।

(१६) एक नाम सारंग राग में परमानन्द और आता है किन्तु उस पद में नानक नाम भी है इसलिये यह कहना कठिन है कि परमानन्द ईश्वर के लिये आया है अथवा कोई व्यक्ति ही है।

इन राग रागनियों मे कौन से राग हैं और कौन सी रागनिया यह बता देना भी उचित ही होगा।

इनमे सिरी (श्री राग) वसंत, नटनारायन, भैरव राग और शेप रागनिया हैं। कौन रागिनी किस राग की है इसका पता राग शास्त्र इस प्रकार देता है—

गउडी (गौरी) मारू (मारवा) धनासिरी, देव गंधारी, आसा, रागनिया है श्री राग की। टोढ़ी रागनी हैं वसत राग की। कानडा रागिनी है पचम राग की। वैराडी गूजरी रागिनी है भैरउ राग की। मलार, सोरठि, रागिनी है मेघराग की, कल्याण, रागनी है नटनारायन राग की बिलावल और रामकली रागनी है हिन्डोल राग की। केदारा, गौड़ रागनियां हैं, दीपक राग की।

राग शास्त्र के आचार्यों का एक मत ऐसा है जिसके अनुसार, जैजैवंती, माझ, सूही जैतासिरी। और प्रभावती क्रमश भार्या हैं। दीपक, मेघ, भैरउ, मालकोप हिंडौल राग की। इसका अर्थ है कि ये रागिनियां भी इन्हीं रागों का अग है। इसी प्रकार विहागड़ा श्री राग का पुत्र अथवा अंग है। सारङ्ग मेघ राग का और विडहंस मालकोप राग का (पुत्र) अग है। तिलग, माली गउडा, तुखारी, यह किस राग के अंग हैं यह पता हमे नहीं लगा। वैसे सस्कृत साहित्य मे ३६ राग रागनिया है जिनमे से अनेकों के नाम भी लोप हो गये है।

इन राग रागनियों के गाने के मास, ऋतु और काल निश्चित है यथा —

भैरव राग क्वार कार्तिक महीने (शरदऋतु)मे गाया जाता था। श्रीराग मार्गशीर्ष (अगहन) और पौप के महीने मे (हेमन्तऋतु) मे गाया जाता था। इसी प्रकार मालकोष राग माघ फागुन के (शिशिरऋतु) में, हिन्डोलराग चैत्र, वैसाख के महीने (वसतऋतु) मे दीपक राग जेष्ठ आषाढ़ (ग्रीष्मऋतु) मे और मेघराग श्रावण, भादवा (वर्षाऋतु) में गाया जाता था। आज के देहात के लोग इन राग रागनियों को ऋतु अनुसार ही गाते है। ब्रज देश की स्त्रिया मल्हार श्रावण के ही महीने मे गाती है। चाहे जब नहीं।

'गुरु ग्रंथ साहब' मे जो राग रागनियां हैं। उनके साथ तालों का उल्लेख नहीं किया गया है। इससे ऐसे गायक (रागी) को जो पंजाब का न हो उन राग रागनियों को गाने मे प्रथम वार दिक्कत का सामना करना पड़ता है। कभी कभी तो वे यह भी कह बैठते है ग्रथ साहब की राग रागनियों मे ताल, ठाट, लय और ठेका किसी का पता नहीं। बात ऐसी नहीं है। उसमे लिखा अवश्य नहीं गया कि अमुक राग अमुक ताल के साथ गाया जाता है किन्तु राग शास्त्र के जानने वाले के लिये इन चीजों का उन रागों में ढूंढ़ लेना कठिन नहीं है। यहा हम एक राग का हवाला देते हैं। ग्रथ साहब मे गुरु नानक की वाणियों में भैरव राग में एक पद यह है :—

मनरे राम भगति चित लाईऐ।
गुरु मुखि राम नाम जपि हिरदै सहज सेति घर जाईऐ।
भरम भेद भउ कबहु न छूटसि आवत जात न जानी।
बिनु हरि नामु कोउ मुकति न पावसि डूबि मुए बिनु पानी।
धधा करत सगलि पति खोवसि भरमु न मिटसि गवाए।
बिनु गुरु सबद मुकति नहीं कबही अंधुले धधु पसाए।

इस मे ताल 'तिताला' है और इस पद की ताल और लयों के साथ इसे वखूबी गाया जा सकता है।

करि अभिमान विषय सू राच्यो श्याम सरण नहि आयो॥
यह ससार है फल सेमर को सुन्दर देखि भुलायो।
चाखन लाग्यो रूई उडि गई हाथ कछु नहि आयो॥
कहा होत अव के मन सोचे पहले नाहि कमायो।
कहत सर भगवन्त भजन विनु सिर धुनि धुनि पछतायो।

हमे ऐसा भी जान पडता है कि गुरु नानकदेव ने प्रत्येक राग को आरम्भ करने से पहले दो पक्ति का पद दोहा अथवा इसी प्रकार के किसी अन्य छद में कहा है जैसा कि इसी पद "मनरे राम भगति चितु लाईऐ" के ऊपर "हिरदै नामु सखु, वनु धारण" गुर परसादी पाईए है लेकिन ऐसा राग भैरउ के साथ ही है अन्य रागों के साथ नहीं। इससे जान पड़ता है गुरु नानकदेव ने अपने भैरव राग को सिंध भैरवी समेत लिखा है। आरंभ मे सिंध भैरवी की दो दो पक्तिया हैं फिर भैरव राग है।

हमे ऐसा भी जान पडता है कि गुरुओं के समय पंजाव मे—भारत की चार सगीत मतियों मे शिव मति का प्रचार अधिक था और मध्यभारत मे हनुमत अथवा कृष्ण मति का प्रचार था। किंतु गुरु ग्रथ साहव से पहले का पजावी भाषा मे अथवा पजावी सगीतज्ञ द्वारा लिखा हुआ कोई ग्रथ (राग रागनियों का) उपलब्ध नहीं है। अत इस विषय पर अधिक नहीं लिखा जा सकता है।

और छन्द भाग मे चौपदे, चौवोले श्लोक, सवैये, दोहे और रागमाला के पद्य शामिल है। जिन राग रागनियों मे गुरुओं ने रचना की है उनकी सख्या और नाम इस भाति हैं। सिरी (श्री) माझ, गउड़ी (गौरी) आसा, गूजरी देव गधारी, विहागड़ा, वडहसु, सोरठि, धनासरी, (धनी श्री) जैतसरी (जैत श्री) टोडी, वैराडी, तिलग, सूही, मिलावलु, गौड, रामकली, नटनाराइन, माली गउडा, वारू, तुखारी, केदारा, भैरउ, वसत, सारग, मलार (मल्हार) कानडा कलियान (कल्याण) प्रभाती, जैजावती।

'जपु', 'सोदर', 'सुखिवझा' और सोहिला रागों मे नहीं वांधे गये हैं। ये रागों से विमुक्त हैं। कारण कि प्रार्थना प्रधान हैं। रागों का समय और लय होते हैं। प्रार्थना समय और लय से नहीं वाधी जाय तभी वह सर्व जन प्रिय और चाहे जव अलापने योग्य होती हैं।

गुरु नानकदेव की रचनायें समझने मे दुर्गम और पढ़ने में क्लिष्ट अवश्य हैं किन्तु हैं वे वड़े ऊचे दर्जे की। उनमे भक्तिरस उसी भाति भरा हुआ है जिस भाति नारियल मे दूध भरा रहता है। उनकी जपुजी तो ईश्वर महिमा पर लोक भाषा में अद्वितीय रचना है। सोदर, सोहिला और आसादीवार भी भक्ति का प्रवाह पैदा करने वाली हैं।

गुरु अगद जी की वाणी गुरुओं की वारों के वीच-वीच मे श्लोक, माझ, सोरठि, सूही, रामकली, सारग आदि रागों मे है। इन्होंने प्रेम, विरह और वैराग्य का वडा सुन्दर दृश्य सामने रक्खा है।

तीसरे गुरु अमरदास जी की रचनाओं में 'आनन्दु' ने आनन्दोत्सवों पर मगल गायन का रूप धारण कर लिया है। यह रामकली राग में है। इनकी भाषा रसदार और उच्च श्रेणी की है।

गुरु रामदास जी की रचनाओं में 'सोपुरुखु' अत्यन्त प्रिय पद हैं। इनकी वारें और छद भाव पूर्ण हैं।

गुरु नानक के पश्चात् सब से अधिक रचना गुरु अर्जुनदेव की है। इनके पदों की संख्या कई सैंकड़े है। सुखमनी तो इतनी सुन्दर रचना है कि भक्ति की जैसी अमृत वर्षा वह करती है, वह बार-बार सराहने योग्य है।

गुरु तेगबहादुर की रचना मे वैराग्य की भावना कूट-कूट कर भरी हुई है। ससार का मोह कम करने की भावना आपके पदों के पाठ से सहज ही उत्पन्न होती है। अनित्यता सम्बधी इनके श्लोकों का पाठ सिख लोग मृतक संस्कारो के समय पर किया करते हैं। भाषा इनकी मंजी हुई और प्रवाहपूर्ण है।

सिख लोग इन रचनाओं मे से जपु जी का प्रात' काल जप अथवा पाठ करते है और उसके बाद आसादीवार का कीर्तन करते है। सध्या समय 'रहिरास' के पद गाते है और सोते समय कीर्तन 'सोहिला' का गायन करते हैं। कड़ाह परसाद वरताने और विवाह आदि के शुभ अवसरों पर आनद पढ़ा जाता है।

'गुरु ग्रंथ साहब' मे रागों के पश्चात् 'श्लोक सहसकृती' (श्लोक संस्कृत) आते है। इन श्लोकों के सम्बंध मे हम इतना ही कहेगे कि जिस प्रकार गुरुओं ने अपने मनोभावों को व्यक्त करने के लिये पजाबी से इतर भाषाओं के शब्दों का पंजाबी-करण किया था। तैसे ही सस्कृत शब्दों का भी पजाबी-करण किया है। जिससे उनके श्लोक यानी सलोक अति सुगम बन गये है। यद्यपि उनका सम्बध न तो पडितों की संस्कृत से है और न अपभ्रष्ट संस्कृत से। महला १ अर्थात गुरु नानकदेव का रचा एक श्लोक इस प्रकार है।

पढि पुस्तक सधिआ वाद। सिल पूजसि बगुल समाध।
मुखि झूठु विभूखन सार। त्रै पाल तिहाल विचार।
गलि माला तिलक लिलाट। दोइ धोती वसत्र कपाट।
जो जानसि ब्रहम्र करम। सभ फोकट निसचै धरम।
कहु नानक निचसौ ध्यावे। बिन् सतिगुर बाट न पावें।

यह श्लोक बसन्ततिलका छंद मे है। इस छद मे १४ मात्राएं होती है। वेदों के छंदो को मंत्र और स्मृतियों अथवा पुराणों के छंदों को श्लोक कहने की परिपाटी पड़ गई है।[1]

आगे वाले और इस श्लोक द्वारा गुरु नानकदेव ने ब्राह्मणों के थोथेपन का खाका खींचा है। और कहा है कि वे सध्या, विवाद प्रतिमा पूजन और समाधि आदि दिखावे के रूप मे करते है। उस परम ब्रह्म परमात्मा को नहीं पहचान सके हैं। जो ब्राह्मण, क्षत्रिय और शूद्र सब मे है।

चार सलोकों के पश्चात पाचवे गुरु अर्जुनदेव के ६७ सलोक हैं जिनमे ससार को नाशवान और ईश्वर को सत्य तथा गुरु की महिमा का वर्णन किया गया है। यह श्लोक अनेक वृत्ति छदों मे हैं। ५ वे महलाकी गाथा भी सलोकों मे ही है जो २४ द्विपदी सलोकों मे समाप्त की गई है। इस गाथा मे गुरु अर्जुनदेव ने बताया है कि रुधिर, मज्जा हड्डी आदि से बनी देह पर अभिमान करना व्यर्थ है। यह मलीन देह कपूर और पुष्पगंध से सुगॅधित नहीं होती।

जीवन में साधु संगति ही श्रेष्ठ है साथ मे केवल यश जायगा, माया और नातेदार सब यहीं रह

१. मत्र के लक्षण—प्रयोग सबधित अर्थ का प्रकाशक वाक्य विशेष, द्रव्य देवतादि का प्रकाशक वाक्य विशेष श्लोक छदोबद्ध वाक्य विशेष चातुष्पाद. (न्याय के लक्षण सग्रह से।)

जावेंगे; केवल 'गोपाल भजन' काम आयेगा। गोपाल गाथाही ऐसी है जो काम वासनाओंका हरण करती है।[1] हरीकीर्तन और साधुओं के वचन ही बडे कर्म हैं। साध सगति भाग्यवानों को ही अच्छी लगती है नानक हरिनाम जपनेवाले को संसार सागर नहीं व्यापता है। यह जो बहुत ही गूढ़ गाथा है इसे कोई कोई ही जानता है। संसार की वासनाओं को छोड़कर गोविन्द का भजन और साधुओं की सगति यही सुमत्र है, जो करोडों दुखों का नाश करने वाला है।

जो एकोंकार को हृदय मे रखते हैं। वह बडभागी हैं और उनका सारा ही कुल उद्धर जाता है।'

इन श्लोकों के पढ़ने मे आनन्द आता है और जितना ही अधिक पढ़ते हैं उतने ही अच्छे लगते हैं। वर्ण और मात्राओं की सख्या मीमा से इनमे से अनेकों सलोक मुक्त हैं और अनेकों सीमा के भीतर हैं। जो वर्ण और मात्राओं की सीमासे मुक्त हैं उन्हे मिश्रित छद समझना चाहिये। भाई कान्हसिंह नाभा ने भी अपने 'गुरु छंद दिवाकर' मे यही बात कही है। गुरु ग्रंथमे आई हुई कविताओं के सम्बन्ध में उनके लेख का सार इस प्रकार है—

"कई गिआनी अखदे आते लिखदे हन कि गुरुवाणी
छन्द नियमा ते बाहर है, परन्तु इह उन्हा दी भुल्ल है।
हां असीं इह आख सकदे हा कि असीं गुरुवाणी दे
सारे छदा दे रूप नहीं जाणदे। अरु जिन्हा छंदा दे लक्खण
असीं जान दे भी हां, उन्हां दे सारे रूपा दा ज्ञान नहीं
रखदे, खास करके मुक्तक छदां तो असी पूरे अणजाण हा। गुरुछद दिवाकर पृष्ठ २१, २२

इस गाथा के आगे अर्जुनदेव के 'फुनहे' हैं। इस प्रकार के फुनहे निर्गुण सम्प्रदाय के अनेकों संतों ने लिखे हैं। जो अध्यात्मिक होते हुए भी शृगारिक हो गये हैं। गुरु अर्जुनदेव ने अपने 'फुनहों' को मर्यादा में ही रक्खा है और अध्यात्मिक ही हैं। इनकी संख्या २३ है। प्रत्येक फुनहा चौपदा है।

एक अनुपम रूपवती को लक्ष्य करके उन्होंने कहा है —"तेरी मुँह की शोभा का वर्णन नहीं हो सकता तू नानक के दर्शन से मोह गई है। इसके लिये बलिहारी। उस परमात्मा ने इस जीव को सब सिंगार सौंप दिये हैं। पिया की आसा और प्रेम की पिआस में तैने सेज बिछाई है किन्तु प्रभु ने जो तेरे मस्तक में लिखा होगा तो साजन पा जायगी। हे सखी, तैंने आँखों में काजल लगाया है, गलेको पुष्पहार से शोभित किया है। होंठों को पान की लाली से रगा है। सोलह शृंगार किये हैं। जो घर तेरे कत (स्वामी) आगये तो सब कुछ पा लिया। और जो प्रभु (कंत) नहीं आये तो सब शृगार व्यर्थ जायगा। जिसका पति घर है वही वड़भागिनी है और वही सुहागिणी है। आशावान की आशा की पूर्ति सतगुरु की दयालता पर निर्भर है।

मेरा शरीर तो अवगुणों से भरा हुआ है। सतगुरु दयाल हो गये हैं इससे मन ठहर गया है। उसकी चंचलता जाती रही है। इस असार संसार से सतगुरु ही तार सकता है। जो पूरा गुरु मिल जाय तो आवागमन मिट जाता है।

पर स्त्री की ओर रावण की दृष्टि गई इससे उसको लज्जित होना पड़ा।

ऊपर आकाश नीचे धरती है। दसों दिशाएँ खुल पड़ी हैं, बिजली चमकती है। परदेशों में ढूंढने से पति स्वामी नहीं मिलेगा जो मस्तक में लिखा है। उसके (सहज ही) दर्शन हो जायेंगे अर्थात् मिल जायगा।"

इन पदों में जीव को स्त्री रूप मान कर परमात्म-प्रीतम की दर्शन लिप्सा एव मिलन इच्छा की झाकी कराई है।

इसी प्रसंग मे गुरु अर्जुनदेव ने अमृतसर और रामदासपुर की सराहना की है और कहा है जो लोग बून्द-बून्द जल को भटकते फिरते हैं उन्हे अमृतसरमे जाकर स्नान और जलतृप्ति करनी चाहिये। अंत मे कहा है। ईश्वर के लिये इधर उधर भटनता व्यर्थ है। वह तो प्रभु की शरण मे जाने से ही प्राप्त होगा और सब भव रोगों की औषधि राम नाम है।

फुनहे के पश्चात् इन्हीं पॉचवे गुरु अर्जुनदेव जी के चौबोले है। दो पदो के बध मे यह ११ हैं। इनमे गुरु अर्जुनदेव ने बताया है कि .— ईश्वर प्राप्ति लग्न से होती है वैभव से नहीं।

महला ५ के चौबोलों के पश्चात् कबीर जी के श्लोक है। हमे ऐसा याद नहीं आता कि कबीर जी के श्लोक 'गुरु ग्रन्थ साहब' के अलावा कहीं अन्यत्र भी हैं। इन श्लोकों का प्रवाह अवश्य कबीर जी के दोहों से मिलता जुलता है। वेसे गुरु ग्रन्थ साहब मे जितने श्लोक हैं वे विभिन्न छंदों मे है। यह हम पहले भी कह चुके है। किन्तु कबीर जी के श्लोक दोहा छंद में ही है। गुरु ग्रन्थ साहब मे कबीर जी के इन श्लोकों (दोहों) का पंजाबी ढग ही है। छाया को छाइया, दिया को दिआ, रचाई को रचाइआ करके ही ग्रन्थ साहब में लिखा गया है।

इन श्लोकों को क्रियाओं का ठेठ हिन्दी-करण करके पढ़ने से इनका अर्थ सहज ही समझ मे आ जाता है। सारी रचना हिन्दी शब्दों में है किंतु चार-छ जगह पंजाबी के शब्द भी आ गये हैं। यथा—

झुगीआ, (स० १५) छेक, हरुए (स० ३५) पड़िवो (४५) खिथा (स० ४७) झीवर टोघने (स० ४६) तूठा (सं० ५६) सो दरु (सं० ६६) कुछ फारसी अरबी के भी इन श्लोको मे शब्द हैं जैसे कि नउबति (नौबत) (स० ८८) कलम (स० ८१) गोर (सं० १२७) नापाक (सं० १३६) मुला, मुनारे, बाग (स० १८४) सेख, सबूरी-हज, काबा, साबति, खुदाई (स० १८५) जोरी-जुलम हलाल, दफ्तर, हवाल (सं० १८६) फुरमाई (सं० १६७) खता-पीर (स० १६८) जवाब (स० २००) दीवान (स० २०१) इन श्लोकों मे राजस्थानी हिन्दी का भी एक शब्द मोकला (सं० ५६) है।

कबीर जी के इन श्लोकों मे शाक्त लोगों की खूब खबर ली गई है। यथा.—

"कबीर वैसनउ[1] की कू[2]करि भली, साकत[3] की बुरी माइ।
ओह नित सुनै हरिनाम जस, उह पाप बिसाहन जाइ।
(सं० ५२)

'होनहार सो होइ है साकत सगि न जाउ'। (स० ६६)
साकत कारी कांबरी धोए होइ न सेत, (स० १००)
कबीर साकत सग न कीजिए··· (स० १३१)
साकत ते सूकर भला राखै आछा गाउ (स० १४३)

(सोराहं महला ५ का १ अष्टपद)

इन श्लोकों से पता चलता है कि शाक्तों से कबीर साहब को उनके बलिदानों की हिंसा के कारण अत्यन्त घृणा थी। उनसे वह वैष्णवों को अच्छा समझते थे किन्तु यह नहीं कि वैष्णावो के उन्हे आडम्बर पसन्द हो इसलिए उन्होंने उनके लिए भी कहा।

साकत सगुन की जई पियारे जोका पार बसाइ।

१ वैष्णव २ कुतिया ३ शाक्त

जिसु मिलिए हरि निसरं पिआरे सो मुइ काले उडिजाइ ।

"कबीर वैसनो हूआ त किआ भइआ माला मेलीं चारि ।

बाहरि कचन बारहा भीतरि भरो अगार ।" (स० १४५)

इन श्लोकों मे वैराग और ज्ञान कूट-कूट कर भरा हुआ है। वडी गहराई और वेदना से तथ्यों को प्रकट किया गया है। गुरु और राम इनमें से प्रत्येक की अलग-अलग क्या उपयोगिता है। इस पर कबीर साहब ने यह निर्णय दिया है।

"कबीर सेवा कउ दुइ भले, एकु सतु एक राम, ।

राम जु दाता मुकति को, सतु जपावै नामु ।" (स० १६४)

राम मुक्ति देता है और सत राम का नाम जपाता है इसलिए दोनों की ही आराधना करनी उचित है। किन्तु इससे पहले इन्हीं श्लोकों में वे यह भी कहते हैं।

"कबीर साचा सतिगुरु किआ करु, जउ सिवा महिचूक ।

अंधे एक न लागहि जिउ बांस, बजाहए फूक ।" (सं० १५८)

अर्थात् सतगुरु क्या करेगा जब सिख (चेला) ही लायक न होगा जैसे कि फूटे वास मे फूक देने से वासुरी की आवाज ही आ सकती है।

हिन्दी में ऋ, ॠ, लृ, ॡ समेत ५२ अक्षर हैं। कबीर साहब ने इनके सम्बन्ध मे श्लोक १७३ मे कहा है।

"कवन अखर सोधि हरि चरनी चित लाउ ।"

हमने कहा है कि गुरु ग्रन्थ साहब में "सलोक भगत कबीर" के शीर्षक मे २४३ श्लोक हैं। किन्तु श्लोक २१६ के बाद एक श्लोक महला ३ अर्थात् गुरु अमरदास जी का है। श्लोक २२१ से २३३ तक ऐसे श्लोक हैं जिनमें भोग कबीर हैं महला ५ के भीतर। श्लोक २३४, २३५ ऐसे हैं जो कबीर के बनाये नहीं जान पड़ते उनमें भोग भी कबीर का नहीं है २३७ से २४० तक श्लोकों मे कबीर का नाम है। २२१ वा श्लोक नामा (नामदेव)का और २४२ रविदास का तथा २४३वा सलोक फिर कबीर साहब का है।

'सन्त इतिहास' के लेखकों को इस बात मे सन्देह है कि कबीर साहब गुरु नानक के समय तक भी जीवित थे। फिर कबीर के वचनों का सग्रह गुरु ग्रन्थ साहब में क्योंकर किया गया। इसके दो उत्तर हैं एक तो यह कि कबीर की विचार धारा नानक मत से मिलती-जुलती थी। दूसरे कबीर न सही कबीर पथी से तो नानकों का सम्पर्क पडा ही होगा। हमारे अनुमान से यह श्लोक राम रतन नाम के कबीर पंथी से सग्रह किये जान पड़ते हैं जो गुरु अर्जुन देव के समय में पजाब में गुरु दर्शनों को आया गया होगा। इन श्लोकों मे श्लेष से राम रतनु शब्द आया है यथा—

"कबीरा तू ही, कबीरु तू तेरो नाम कबीरु ।

राम रतनु तब पाईऐ, जदु पहले तजे सरीरु ॥ (स० ३१)

अर्थात्—तू ही कबीरा है कबीरु भी तू है नाम तेरा कबीरु है। राम पी रतन तो तब मिलेगा जब शरीर को त्याग देना। दूसरा इसका यह अर्थ है कि हे राम रतन ! तुझे तेरा सतगुरु-कबीर बिना शरीर छोडे नहीं मिलने का। अर्थ वह तो परलोक मे है।

"कबीर राम रतनु मुख कोथरी पारख आगे खोलि ।

कोई आइ मिलैगो गाहकी लेगो महगे मोलि ॥ (स० २२५)

अर्थात—कबीर तू अपनी राम नाम के रतन वाली कोथरी (थैली) का मुँह किसी पारखी के सामने खोलना जिससे वह उसका अच्छा दाम चुका कर गाहकी करले। इसका दूसरा अर्थ यह भी है कि राम रतन कबीर-वाणी कोथरी का मुँह पारखियो के सामने ही खोला कर। जिससे उसके अमूल्य शब्दों का आदर हो। और कोई अच्छा सा गुण गाहक मिल गया तो अच्छे ही दाम देगा।

गुरु अर्जुनदेव अच्छे पारखी भी थे और दान दाता भी, इसलिये यह श्लोक उन्हे ही संबोधित करके कहा जान पडता है।

इन २४३ श्लोकों की कविता बहुत ऊँचे भावों वाली और प्रवाहशील है। विचारों को व्यक्त करने की शैली बहुत ही मनोहर है।

कबीर साहब के श्लोकों के पश्चात गुरु ग्रन्थ साहब मे 'शेख फरीद' के श्लोक है।

पंजाब मे अजोधन (पाक पट्टन) के रहने वाले ख्वाजा शेख मुहम्मद के लड़के थे। इन का असल नाम शेख ब्रह्म अथवा इब्राहीम था। बाबा फरीद की औलाद मे होने से फरीद ही यह भी कहलाते थे।

आदि फरीद की तरह यह भी ऊँचे थे। और उनकी ग्यारवीं पीढ़ी मे पैदा हुए थे।

गुरु ग्रन्थ साहब मे इनके दो पद और १३० श्लोक है गुरु नानकदेव के साथ उनकी दो वार ज्ञान चर्चा हुई थी। इन्होंने उनसे एक वार कहा था अपने पास तो काठ की रोटी हैं जिसका उत्तर गुरु नानकदेव ने यह दिया था कि खाओ तो कुछ भी किन्तु वह पीड़ा देने वाला न हो।

कई पंजाबी लेखक इन्हे लहँदा भाषा का आदि कवि मानते है।

इनकी भाषा का झुकाव पंजाबी की ओर है। यह श्लोक भी दोहो मे आबद्ध है। शेख फरीद के इन श्लोकों की संख्या १३० है जिनमे पहला अष्टपदी और शेष द्विपदी है। इन श्लोकों मे फारसी शब्दों की भरमार है क्रियाये भी शब्दों की पंजाबी भाषा में ही हैं। इन श्लोकों के बीच १२ वें श्लोक के बाद महला ३ लिखा हुआ है किन्तु भोग शेख फरीद का ही है। श्लोक ८१ के बाद म० ५ लिखा हुआ है किन्तु प्रत्येक श्लोक मे नाम फरीद का ही है। श्लोक १०३ के बाद फिर महला ३ अंकित है। और श्लोक १०४ के बाद फिर महला ५ आरम्भ हो जाता है। श्लोक १०७, १०८, १०९, ११० सबके साथ महला ५ लिखा हुआ है। किन्तु इन सभी श्लोकों मे फरीद का नाम है।

इन श्लोको मे कुछ अति गहरे अर्थ वाले और कुछ सहज गम्य है कुछ मे आत्मा परमात्मा का वर्णन है कुछ उपदेश हैं।

कुछ नमूने—

जितु दिहाडै धन वरी साहे लए लिखाइ।
मलुक जि कनी सुणीदा मुहु दिखाले आइ।
जिंदु निमाणी कढिए हडा कू कडकाइ।
साहे लिखे न चलनी जिंदू कू समझाइ।
जिंद वहुटी मरण वरु लै जासी परणाइ।
आपण हथी जोलिकै गलि लगै धाइ।
वालहु निकी पुरसलात कनी न सुणी आइ।
फ़रीदा किड़ी पवंदई खडा न आपु मुहाई ॥ (स०—१)

अर्थात—जिस दिन धन का व्याह होने वाला था उसका साहा पहिले ही लिखा जा चुका था। और जिस दूलहे की चर्चा थी वह मुँह दिखावनी कराने के लिये आ पहुँचा। हाडों को कडका कर वह उस धन को अपने साथ ले जायगा।

उस वहू को समझा दे (कि वह रोये झींके नहीं) दूल्हा तो उसे व्याह कर ले ही जायगा (कारण कि साहा टल नहीं सकता।)

(विदा होते समय अव) वह किसके गले में गलवहिया डालेगी क्या सुना नहीं कि वह दुलहन वाल से भी कोमल है। फरीद जव तेरा बुलावा आवे तो अपने को असमजस मे न डालना तुरन्त चलने को खडा हो जाना।

भाव यह है कि मौत का दिन निश्चित है काल रूप दुलहा आत्मा रूपी दुलहिन को उस मुहूर्त मे अवश्य ही ले जायगा। आत्मा को उस समय कोई सहारा रुकने का नहीं होगा। इसलिये फरीद तो पहले से ही तैयार है मौत चाहे जव आजाय।

× × × ×

फरीदा जे तू अकलि लतीफ काले लिखनु लेख,
आपनदे गिरीवान महि सिरु नीवा करि देखु, (सलोक ६)

अर्थ—फरीदा यदि तू वारीक अकल रखता है तो (दूसरों की बुराई के) काले लेख मत लिख क्योंकि तू अपने गरेवान को ओर देखेगा तो पता चलेगा तू स्वयम् कितना बुरा है।

× × × ×

फरीदा खाकु न निंदीए खाकू जेडु न कोइ।
जीवदि आ पैरा तलै मुइआ उपरि होइ ॥ (स० १७)

अर्थ—फरीद खाक की निन्दा मत करो इसका जैसा कोई नहीं है जीवन मे तो यह पैरों तले रहती हैं मरने पर ऊपर छा जाती है। अर्थात एक दिन मिट्टी मे ही मिल जाना है।

श्लोक ३१ में शेख फरीद और गुरु नानक के सवाल जवाव हैं।

शेख फरीद कहते हैं—

साहुरे ढोई नालहै पेइये नाही थाउ।
पिरु वावडी ना सुहाई धन सोहागिणी नाउ (स० ३१)

अर्थात्—सासरे में ढोई न लेना उनका पता मिलता नहीं पति नहीं पूछता है फिर उस धन (स्त्री) का नाम सुहागिणी कैसे है।

गुरु नानक ने उत्तर दिया—

साहुरे पेइए कतकी कत अगमु अथाहु।
नानक सो सोहागिणी जु भावे वे परवाइ। (स० ३२)

अर्थात्—सासुरे में कन्त कहाँ है वह अगम्य और अथाह है नानक वही सुहागिणी है जो निश्चिन्त है अर्थात् जानती है कि पिया दूर नहीं।

कविता की दृष्टि से शेख फरीद के यह श्लोक क्लिष्ट होते हुए भी सरस और मन को आकर्षित करने वाले हैं। इन श्लोकों में शृगार रस के माध्यम से भक्ति रस का सुहावना प्रवाह वहाया गया है।

शेख फरीद के श्लोके के वाद 'गुरु-ग्रन्थ' में पाचवें गुरु अर्जुनदेव जी के सवैये हैं। इनमे हिन्दी

का पूरा प्रवाह है। गण और मात्राओं की परिसीमा से सदैव मुक्त हैं। इनकी संख्या ६ है। इनमे ईश्वर की प्राप्ति के लिए गुरु की शरण आने के लिये संसार भंवर मे फँसे हुए लोगों को आमन्त्रण है। इनके बाद ही इन्हीं गुरु अर्जुनदेव के ११ सवैये और हैं। इनमे अन्तर यह है कि पहले ६ सवैया षष्ट पदी है और पिछले ११ चतुष्पदी। पिछले ११ सवैयों मे संतुलित प्रवाह यथेष्ट है। इन्हे मुक्त नहीं कहा जा सकता।[१]

इनके बाद प्रथम, द्वितीय, तृतीय, चतुर्थ और पंचम गुरु की प्रशंसा मे भाटों के सवैये हैं। जिनमे कविता और भाव वैसे ही हैं जैसे यह लोग अपनी परम्परा से अपने यजमानों के करते आये है।

पहले महले के सवैयो में कहा गया है—

"सन्तो के आधार और वर दाता एक परमात्मा के चरणों को हृदय मे धारण करके परम गुरु नानक के गुण गाता हूँ। उनके गुणो को सब कोई, जोगी, जगम, देवता, ऋषि, मुनि और सूरमा गाते हैं। जिनमे कपिल, कणादि अक्रूर आदि सब है। यहाँ तक कि शेष महेश और ब्रह्मा भी गाते हैं। गुरु नानक को सतयुग का बावन, त्रेता का राम, द्वापर का कृष्ण और कलियुग का नानक समझना चाहिये।

यह किसी कल नाम के कवि की कविता है।

'सवइये महले दूजे के' मे गुरु अगद की प्रशसा है। कवि कहता है जिसकी (लहणा की) दृष्टि अमृतमयी है जिससे क्षण भर मे कालोच उतर जाती है और तिमिर के नास होने से द्वार दीखने लगता है। जिन्होंने उनकी सेवा की है उनका भव भार हल्का हो गया है। (लहणा) तू राजा जनक का अवतार है। जो इस ससार मे 'जल कमलवत' रहता है। उनकी दृष्टि से लोभ मोह का नाश होता है और प्राणी भवसागर से पार होने की क्षमता प्राप्त कर लेता है। आदि आदि—

यह रचना भी कल नाम के कवि की ही है।

"सवइऐ महले तीजे के" में गुरु अमरदास जी की स्तुति अथवा गुणगान है। कवि कहता है गुरु 'अमरदास' की सभी प्रशसा करते है, उनका यश सभी दिशाओं मे छाया हुआ है।

कवि कल्युचरे जालपु और भिक्खे नाम के तीन कवियों ने गुरु अमरदास जी की प्रशंसा से ये सवैये बनाये हैं—

'सवइए महले चउथे के' का रचियता ठाकुर हरदास का लड़का कवि कल्य है। इस कल्पय ने ही कल नाम से पहले और दूसरे गुरुओं के सवैये भी बनाये है। इसने गुरु रामदास जी के लिये कहा है—

'जगत उधारण नव विधानु भगतह भव तारण।
अमृत बूंद हरि नामु विस की विखौ' निवारणु॥"

हैं। पजम गुरु के सवैयों के रचयिता कल्य और मथुरा दो कवि है।

इन दोनों के सवैयों की बानगी इस प्रकार है।

"जै जै कारु जासु जग अन्दरि मन्दरि भागु जुगति सिव रहता।
गुरु पूरा पायउ बड भागी लिव लागी मेदानि मरु सहता।

१. कबीर और फरीद जी की इन वाणियों के सिवा सलोक महिला ३ श्रीराग में कबीर त्रिलोचन भगत वेणी और और रविदास की वाणिया है।

भय भजन पर पीर निवारन कल्य सहारू तोहि जमु बकता।
कुलि सोडी गुर रामदास तनु धरम धुजा अरजुन, हरि भगता।"

(सवैया ६)

"कलि समुद्र भये रूप प्रगटि हरिनाम उधारनु।
वसहि सन्त जिसु रिद दुख दारिद्र निवारनु।"
निरमल भेख अपार तासु विनु अवरु न कोई।
मन वच जिनि जगाणि अरु भयउ तिह समसर सोई।
मनि मथुरा कछु भेद नहि गुरुअर्जुन परतक्ष्य रूप हरि।

इन भाटों के सवैयों के वाद "सलोक वाराते वधीक" हैं। अर्थात वह श्लोक जो वारा मे नहीं कहे गये है।

यह श्लोक गुरु नानक देव के हैं। इनकी सख्य ३६ हैं जिन मे २८ श्लोक जिनका कि एक ही पद है गुरु अमरदास के है जिनमे कहा गया है "अमृतसरु सिफती दा घरु" क्योंकि इससे पहले २७ वे श्लोक मे गुरु नानक देव ने "उसका भी एक ही पद है" कहा था "लाहौर सहरु जहरु कहरु सवा पहरु"।

इसके आगे तीसरे गुरु अमरदास जी के श्लोक हैं। इनकी सख्या ६७ है। इनमे से कुछ उपदेश सबन्धी हैं। कुछ मे गुरुनानक की महिमा है और कुछ मे वताया गया है। वडभागी वही है जिसके यहा सतगुरु का उपदेश और हरिचर्चा है—वे कहते हैं—

(१) अतिथि शकाशील नहीं होना चाहिए।
(२) दुखों का नाश शब्द ज्ञान से ही होता है।
(३) जवानी के जाने मे देर नहीं लगती, बुढापे में कोई वात नहीं पूछता।
(४) सच्चा वसत तो वही है जहा हरीहरि हैं। क्योकि विना हरिआली के वसत कैसा ?
(५) जोग न तो रगे कपडों मे न मैले कपडों में उसे तो सतगुरु ही जानता है।

महिला ३ के श्लोकों के वाद महला ४ के श्लोक हैं। जो गिनती में ३० हैं। गुरु रामदास जी ने इन श्लोकों मे सत सगति और गुरु सिखी पर अच्छा प्रकाश डाला है।

इनके वाद पाचवे महले के श्लोक हैं जिनमें गुरु अर्जुन देव जी ने भारत के प्रसिद्ध राग मारु, सोरठि की सार्थकता वताई है और कहा है कि इनमें गुरु के शब्दों की आराधना हो रामनाम की महिमा गाई जाती हो, क्योंकि उनके समय तक इन रागों में अधिकाश विरह वर्णन किया जाता था। इन दो श्लोकों से आगे अर्जुनदेव जी ने गुरु महिमा और नाम महिमा का वर्णन किया है इन श्लोकों की सख्या २२ है।

इनसे आगे ५८ श्लोकों में नवे गुरु श्री तेगवहादुर जी की अमृत वर्षा करने वाली वाणी है। जो ठेठ हिन्दी भाषा मे रची गई है। नमूने के तौर पर देखिए—

सग सखा सभ तज गये कोउन निवह्यो साथ।
कहु नानक इह विपति मे टेक एक रघुनाथ।

ये श्लोक प्राय दोहों मे आवद्ध हैं।

गुरु तेगवहादुर जी के श्लोकों के पश्चात् "मुदावणी महला ५" है। जिसमें कहा गया है। थाल के वीच तीन वस्तु हैं "सत, सतोष और ईश्वर का नाम जो अमर है। उसे ही प्राप्त करना चाहिए

ये जो तीन वस्तु है इनका आहार अथवा उपयोग करने वाले का उद्धार हो जाता है। ये तीनों वस्तुएँ छोड़ने की नहीं हृदय मे रखने की है।

इस मुदावाणी के साथ ही गुरु अर्जुन देव जी का एक श्लोक और है। इस श्लोक के बाद ही सबसे अन्त में राग माला है इसमे कहा गया है।

एक राग की पांच स्त्रियां है। आठ पुत्र हैं। पहिले 'राग भैरउ को गाइये जिसके साथ ही पांचों रागनियों का भी उच्चारण करिये। भैरवी, विलावली, बंगाली और असलेखी ये पांच भैरउ राग की स्त्री हैं। पचम, हरख, विसाख, बगालम, मधु, माधव, ललित और विलावल ये भैरउ राग के आठ पुत्र हैं इन सब को क्रमश गाना चाहिये।

भैरव राग के पश्चात् "मालक उसक राग" (मालकोष राग) का गायन करै। इसके भी साथ इसकी पाचों रागनियों से गावै। गौडकरी, देवगधारी, गंधारी, सीहुती (श्रीहुति) धनासरी (धनाश्री) ये पाच 'भैरउ' राग की स्त्रियां हैं। मारु,-मसत, अग (मस्ताग) मेवारा, प्रबल, चड, खटखट और भवरानद ये भैरउ राग के पुत्र हैं।

तीसरे नम्बर पर हिन्डोल राग का गायन करें। जिसकी पाच स्त्रियां और आठ पुत्र हैं। तेलगी, देवकरी, वसती, संदूर और अहेरी भैरों राग की स्त्रियों के नाम हैं। पुत्रों के नाम सुरमानन्द, भास्कर, चन्द्रबिंब, मगल, सरसवान, विनोदा, वसन्त और कमोद हैं।

हिन्डौल के पश्चात् दीपक राग के गाने की वारी है। कछेली, पटमजरी, टोडी, कामोदी, और गूजरी इसकी पाच स्त्रियां हैं और कालका, कुन्तस, रामा, कमल, कुसुम, चम्पक, गौरा, कानरा और कल्यान आठ पुत्र हैं।

सिरी राग (श्री राग) की पांच स्त्रियों के नाम वैरारी, करनाटी, गउरी, आसावरी, और सिधकी हैं। सालू, सारग, सागरा, गौड, गभीर, गुंड, कुंभ, हमीर उसके आठ पुत्र हैं।

छटा राग मेघ राग है। जिसकी सोरठि, गौडमलारी, आसा, सुही पाच स्त्रियां और बैराधर, गजधर, केदारा, जवलीधर, नट, जलधारा, शकर और श्याम आठ हैं।

यह षट (छः) राग है जिनकी कि तीस रागनिया हैं और ४८ पुत्र है।

यह राग माला मनहरण छद मे है जिसके प्रत्येक चरण में सोलह मात्राये हैं प्रत्येक छद के अत मे २४ मात्राओं वाले द्विपदी झूलना है। राग माला ठेठ हिन्दी मे है और सहज ही समझी जा सकती है।

उपदेश और शिक्षायें

वास्तव मे तो 'गुरु ग्रन्थ साहब' प्रार्थना-ग्रन्थ है, 'किन्तु उसमे प्रसंगवश उपदेश और शिक्षाये भी हैं। उन्हीं उपदेशों और शिक्षाओं मे से कुछ-एक हम यहाँ उद्धृत करते हैं"—

जो कुछ बोलो समझकर बोलो।

"जितु बोलिऐ पति पाईऐ सो बोलिआ परवाणु।
फिक्का बोलि विगुच्चणा सुनि मूरख मनि अजाणु॥" (श्री राग महला १)

वाणी संयम—क्योंकि फीका (व्यर्थ) बोलना (वाणी का) विगुच्चन है इस प्रकार के बोलने वाले को मूर्ख ही समझा जायगा।

ऐसा भी मत बोलो, जिससे पराई निन्दा होती हो :—

"पर निन्दा पर मलु मुख सुधी अगनि क्रोध चडाल।" (श्री राग महला १)

अपने मुह (वाणी) से जहाँ तुम पराई निन्दा से बचो, वहाँ किसी की स्तुति (खुशामद) भी मत करो। अर्थात् निन्दा और खुशामद दोनों को छोड दो।

"उस्तुति निदा दोहु त्यागे खोजे पद निरवाना। (गौडी म० ६)

"गुरमुख बूझै शब्द पतीज उस्तुति किसकी कीजे ॥ (बसन्त महला ६)

क्योंकि जो न तो पर निन्दक हैं और न खुशामदी हैं। तथा जिन्हे लोभ, मोह या हर्ष शोक छू नहीं गये हैं। वे साधारण आदमी नहीं योगीजन हैं। यथा —

"पर निन्दा अस्तुति नहि जाके, कन्चन लोह समाने।
हरख सोग ते रहे अतीता, जोगी ताहि बखाने॥" (धनी श्री महला ६)

मन संयम—वाणी संयम जिस प्रकार व्यर्थ-भाषण और अस्तुति-निन्दा के त्यागने से होता है। उसी प्रकार मन का सयम, काम, (वासना) लोभ, मोह, क्रोध और बुरे विचारों के छोड़ने से होता है। इस सम्बन्ध मे 'ग्रन्थ साहब' कहते हैं —

"काम क्रोध लोभ मोह तजारी, दृढु नाम दान, इसनानु सुचारी।"

"लोभ, मोह मगन अपराधी, करणहार की सेवन साधो॥" (सूही राम महला ५)

"परहर काम, क्रोध, झूठ, निन्दा, तजि माइआ अहँकार चुकावै।
तज काम, कामनी, मोह तजै, ता अजन माहि निरजन पावै ॥" (महला ४ बार माझ)

"पर तिय रूप न पेखे नेत्र, साधु की टहल सत सग हेत।" (गौडी सुख मनी महला ५)

सत संग—अच्छी सगति मे उठने बैठने का उपदेश हमारे देश मे अनन्त काल से चला आता है। एक हिन्दी कवि ने कहा है —

"सात स्वर्ग अपवर्ग सुख धरिये तुला एक अग।
तुले न ताहि सकल मिलि जो सुख लव सत सग॥"

गुरु ग्रथ साहब मे सत संग की काफी महिमा वर्णन की गई है।

चौथे गुरु श्री रामदास जी कहते हैं —

"जिउ चन्दन निकट बसे, हिरड बपुरा।
तिउ सति सगति मिलि पतित परवारु॥" (गौड राग)

अर्थात्—चन्दन के निकट बसने से जैसे अरड आदि अन्य वृक्ष सुगधित हो जाते हैं। उसी प्रकार सतसग से पतित लोग भी पार हो जाते हैं।"

इसी प्रकार पाँचवें गुरु श्री अर्जुनदेव जी ने कहा है —

"खोजत खोजत सुनो इहि सोय।
साधु सगति बिनु तरयो न कोइ॥" (राग आशा)

इस सम्बन्ध मे गुरु नानकदेव ने एक और भी बात कही कि 'सतसग' भी वह श्रेयस्कर है जहाँ हरिचर्चा होती हो। यथा —

सति सगति कैसी जाणिए, जियै एको नाम बखाणिए।" (श्रीराग)

सेवा—गुरु महानुभावों ने सेवा को भी पूरा महत्त्व दिया है। गुरु अगद और अमरदास की

सेवाओं की कहानियाँ ओजस्विनी है। गुरु नानकदेव ने तो कहा है कि यदि तुम ईश्वर के घर जाना चाहते हो तो।

"बिच दुनियाँ सेव कमाइये।
ता दरगह वेसणु पाइए।।" (श्री राग)

श्री गुरु अमरदास जी ने कहा है --

"सति गुरु की सेवा सफल हैं जे को करे चितु लाइ।
मन चिन्दआ फलु पावणा हउमें विचहु जाय।।" (वारसोरठ)

अर्थात्--जो कोई श्री गुरु की सेवा चित्त लगाकर करेगा वह संसार मे मनोवाछित फल पायेगा।

जत्थे बन्दी—सिख पंथ मे जत्थे बन्दी ही सिख समाज का जीवन है। जत्थे बन्दी ने ही उसे भारी संकटो से पार किया और उसी ने उनको ससार मे चमकाया है। ग्रन्थ साहब मे मिल जुल कर रहने और आपस मे न लड़ने के काफी उपदेश हैं।

मिलि वे की महिमा वरनन साकूं, ... (महिला ५)

भारत के आदि विधान निर्माता और समाज-व्यवस्थापक मनु ने धर्म के दश लक्षण वताये हैं।

क्षमा, सन्तोष और दया

धृति (धीरज) क्षमा, मन का दमन, पवित्र रहना, इन्द्रियों पर काबू रखना, विद्या पढ़ना, प्रबुद्ध होना, सत्यवादी बनना, क्रोध को त्यागना और चोरी न करना। गुरुओं ने भी इन सभी वातों पर जोर दिया है उन्होंने कहा है अपनी कमाई पर सन्तोष करो। यथा —

"सम सन्तोष करहू जन भाई। खिमा रहहु सतगुरु सरनाई। (मारु महला १)
सहस खटे लख कउ उठ धावे। तृपत न आवें माया पाछे पावे।
अनिक भोग विखिया के करैं। नहि त्रिपतावें खपि खपि मरे।"
बिना सन्तोषु नहीं कोऊ राजै। सुपन मनोरथ विरथ सब काजैं। (म० ५ सुखमनी)

शील और क्षमा मनुष्य के लिये गुरु नानक की दृष्टि में कितने महत्वपूर्ण थे? इसका अन्दाजा इस पद से लगता है—

खिमा गही व्रत शील सन्तोष। रोग न व्यापै ना जम देखं।—(गौडी महला १)

काम क्रोधादि का त्याग

मनुष्य की इहलौकिक और पारलौकिक दोनों उन्नतियों मे लोभ, मोह, काम, क्रोध और अहकार सदा बाधक रहे हैं। सारे ही प्राचीन ऋषि, मुनियो ने इन्हे मनुष्य का शत्रु माना है। गुरु महानुभाव भी इन्हे परमात्मा के मार्ग मे विकट रोड़े मानते थे इसलिये वार-वार उन्होंने इनका त्याग करने का उपदेश दिया है। यथा—

"अवरि पच हम एक जना। किउ राखहु घर वार मना।
मारहि लूटहि नीत नीत। किस आगे करी पुकार जना। (म० १ राग गौडी)

अर्थात्, हम (जीवात्मा) तो अकेले हैं और हमारे शत्रु पॉच हैं। हे, मन इन्हें क्यों रख रहे हो? यह हमको प्रतिदिन मारते और लूटते हैं। किसके आगे इनके विरुद्ध फरियाद करे। कारण कि इसमें किसी दूसरे का क्या चारा है जव कि इन्हे घट भीतर पाल रक्खा है। गुरु अर्जुन देव तो इन पाच श ओं के सम्बन्ध मे कहते हैं —

चार वरन चउहा के मरदन, खट् दरसन कर-तली रे।
सुन्दर सुघर सरूप सियाने पचहु मोहि छलीरे।
जिनि मिलि मारे पच सूरवीर, ऐसे कउन बलीरे।
जिनि पच मारि विदार सो पूरा वह कलीरे। (आसा राग)

अर्थात्, चार वर्ण जिनके कि हाथ में छ. शास्त्र हैं। उनका इन पाच शत्रुओं (विकारों) ने मान मर्दन कर दिया है। यह वहुत लुभावने हैं। इसलिये इन्होंने सबको छल रक्खा है। जिन्होंने इन पच विकारों को मार लिया है उन्हे मैं तो इस कलियुग में वड़ा वली अर्थात् महापुरुप मानता हूँ। उन्होंने फिर कहा है —

"निमख काम सुआद कारणि, कोटि दिनस दुखु पावहि।
घरी मुहत रग माणहि, फिरि बहुरि बहुरि पछतावहि।[१] (म० ५ राग आसा)

पल भर के स्वाद और घड़ी मुहूर्त के रग के करोडों दिन तक वरावर पछतावा ही रहे। ऐसे काम (वासना) को लोग क्यों न नमस्कार कर दें। यह इस वाणी का भावार्थ है।

क्योंकि काम-वासना से —"नरक वास अनेक योनियों का भ्रमण, चित्त का अपहरण, तीनों लोकों में शोक और सारे जन्म में किये गये जप, तप का नाश हो जाता है" यथा —

हे कामं नरक विस्राम वहु जोनी भ्रमावणह।
चित हरण त्रैलोक गम जप तप सील विदारणह॥

इसी भाति क्रोध के वारे मे श्री गुरु रामदास जी ने कहा है—

"उना पासि दुआसि न मिटिए, जिनि अन्तरि क्रोध चडाल। (श्री राग)

उनके अड़ौस पड़ौस को भी मत छुओ जिनके हृदय में चडाल क्रोध का वास है।

तीसरे गुरु अमरदास जी ने एक श्लोक में लोभ के सम्वन्ध मे वड़े जोरों से कहा है — 'लोभी का वेसाहु न कीजे, जेका पार वसाई।" जिसका तनक भी वस चले वह लोभी का विश्वास न करे।

इसी तरह मोह के सम्वन्ध में गुरुओं ने लोगों को सावधान किया है।

ऐ तू मोह डूबा ससार, गुरु मुख कोई उतरं पारु— (आसा० महला १)
मोह की जेवरी वाधिउ चोर —(गौडी महला ५)
मोह मगन कूप अध ते नानक गुरु काढ —(विलावल महला ५)

अहंकार के विनाश के लिये ग्रथ साहव में अनेकों स्थल पर अनेकों चेतावनी हैं। यथा—गुरु अर्जुन देव कहते हैं।

"हे जनम मरण मूलं अहकार पापातमा।
मित्र तजति सत्रं द्रिडति अनिक माया विस्तीरनह।"

अर्थात् वार-वार के जन्म मरण का मूल कारण अहंकार ही है और यही ऐसा शत्रु है कि जिसके कारण मित्र भी साथ छोड़ जाते हैं और शत्रु मजवूत होते हैं। तथा इसीसे अनेक मायाओं का विस्तार होता है।

भारतवर्ष में दान पुण्य की महिमा अनन्त काल से चली आती है। गुरु लोगों ने इस प्रणाली

१ छिन सुख लागि जन्म शत कोटी। परहि नरक महि तिय सम को खोटी।—तुलसीदास

दान पुण्य को पूर्ववत ही महत्व दिया है ग्रन्थ साहव मे इस सम्वन्ध मे इस प्रकार प्रकाश डाला गया है—

"घाल खाइ किछु हथहु देइ। नानक राह पछाणहि सेइ॥" (सूही महला ५)

अर्थात्—परिश्रम की कमाई को भी कुछ हाथ से देकर अर्थात दान करके खाना चाहिए। जो ऐसा करते है। वे ही भगवान के जानने वाले हैं।

दान देना मनुष्य के लिए उतना ही आवश्यक है जितना शरीर को स्वच्छ रखना और स्नान करना। तथा संसार से पार होने के लिये ईश्वर के नाम-स्मरण मे दृढ़ता। यथा—

"दृढ नाम दान, इसनान सुचारी। कहु नानक यह तत विचारी।" (सूही महला ५)

आपे का सुधार

"पर उपदेश कुशल बहुतेरे। निज अचरहि ते जन जग थोरे" की कहावत अति पुरातन काल से चली आती है। इस सम्वन्ध मे 'ग्रन्थ-साहव' कहते हैं—

"अवर उपदेसै आपु न करै। आवत जावत जन्मै मरै।"

अर्थात—"औरों को तो उपदेश करे किन्तु स्वयम उस पर न चले।" ऐसे लोग संसार मे वार-वार जन्मते मरते है। वह कभी भी मोक्ष नहीं पा सकते। क्योंकि ऐसे लोग जो "उपदेस करै, आपु न कमावै। तत सवद न पछाने ढग के होते है।[1] इसलिये यह आवश्यक है कि—

"प्रथमे मन पर-बोधि अपना पाछे अवर रिझावै। (आसा महला ५)

सार्थक-निरर्थक

हमारे कौनसे काम सारवान है और कौनसे नि.सार अथवा कोनसे कर्म मिथ्या (व्यर्थ) है और कौनसे करने योग्य हैं। इस सम्वन्ध मे भी 'ग्रन्थ साहव' से अच्छा प्रकाश मिलता है। यथा—

"मिथिया स्रवन पर निंदा सुनहि। मिथिआ हसत पर दरब कउ हरिहि॥
मिथिआ नेत्र पेखत त्रिअ रूपाद। मिथिआ रसना भोजन अनस्वाद॥
मिथिआ चरन पर-बिकार कउ धावहि। मिथिआ मन पर लोभु लुभावहि॥
मिथिआ तन नहि पर उपकारा। मिथिआ बासु लेत बिकारा॥"
(गौडी सुखमनी महला ५)

अर्थात्—वे श्रवण (कान) निन्दा योग्य हैं जो पराई निन्दा सुनकर प्रसन्न होते है। वे हाथ निंदनीय हैं जो पर द्रव्य को हरने मे तत्पर होते है। उन नेत्रों को धिक्कार है जो पराई स्त्री के रूप लावण्य पर ललचाते है। वह जिह्वा भी किसी काम की नहीं जिसे भोजन मे स्वाद नहीं आता है। वे पैर अच्छे नहीं जो पराया अहित करने को दौड़ पड़ते हैं। वह मन झूठा है जो पराये पदार्थों पर लुभाता है।'

असल मे तो.—

"वह जिह्वा भली है, जो हरि गुण गाती है। वे कान अच्छे है, जिन्हे हरिकीर्तन सुनना अच्छा लगता है। वह सिर अच्छा है,जो गुरुजनों के चरणों की ओर झुकना है। वे नेत्र प्रशंसा योग्य हैं जो साधु (भले आदमियो) के दर्शनों को लालायित रहते हैं। वे हाथ पवित्र हैं जो हरिकथा लिखते हैं। वे पैर पूजने लायक हैं, जो धर्म मार्ग पर चलते हैं।[2]

गुरुओं को वनावटी जीवन से वहुत घृणा थी। वे चाहते थे कि लोग सही मार्ग पर चले और सही जीवन को अपनाये इस सम्वन्ध मे उनके उपदेशों का सार 'ग्रन्थ साहव' मे इस प्रकार है —

१. आसा महला ३।

"करतूत पसू की मानस जाति। लोक पचार करै दिन राति ॥

चनावटी जीवन

बाहरि भेखु अन्तरि मल माइआ। छपसि नाहि कछु करै छपाइआ ॥

बाहरि गिआन धिआन इसनान। अतरि बिआपै लोभु सुआन ॥

अन्तरि अगनि बाहरि तनु सुआह। गलि पाथर कैसे तरै अथाह ॥

—(गौडी सुखमनी महला ५)

अर्थात्—जो रात दिन लोक-प्रपच मे लगे रहते हैं। वे मनुष्य-यौनि मे रहते हुए भी अपने कर्त्तव्यों के कारण पशु हैं।

उनका बाहरी भेस तो अच्छा होता है किन्तु अन्दर दुर्वासनाओं और दुर्भावनाओं से भरा होता है। वे अपनी करतूतों को चाहे जितना छिपाने का यत्न करें किन्तु वे प्रगट हो ही जाती हैं। जो बाहर से तो वडे ज्ञानी, ध्यानी और स्नान-पूजा करने वाले हैं किन्तु अन्दर मे लोभ रूपी कुत्ता बैठा रक्खा है। और जिनके भीतर तो (द्वेष की) अग्नि धधकती है किन्तु वाहर शात दीख पडते हैं। गले मे (पाप का) पत्थर बाधे हुए, ऐसे लोग अथाह संसार सागर से कैसे पार होंगे।

१ मागृध कस्यास्विद्धनम्। (ईशावास्योपनिषद)

२ सा रसना धन धन्न है, मेरी जिन्दुडीए, गुण गावै हरि प्रभु के रे राम।

ते स्रवन भले सोभनीक हरि मेरी जिन्दुडीए, हरि कीरतन सुणहि हरि तेरे राम ॥ विहागडा महला ४

'ग्रन्थ साहब' मे कुछ ऐसे भी वाक्य समूह हैं जो उपदेश करते समय अनायास बन पडे हैं और अब मजे के साथ कहावतों के तौर पर प्रयुक्त किये जा सकते हैं। इनमे सूत्र रूप मे

कहावतों द्वारा

वही उपदेश है जोकि मुहावरों व कहावतों मे पाये जाते हैं। यथा —

१—जब लग दुनिआ रहिए नानक किछु सुणिए किछु कहिए। —धना श्री महला १

अर्थात्—जब तक दुनिया में रहना है, कुछ न कुछ कहना भी पड़ेगा और सुनना भी पडेगा।

२—बिखिआ माते भरम भुलाए उपदेश कहिऐ किस भाई। —रामकली महला ३

अर्थात्—दुनिया तो विषयों में डूबी हुई और भ्रम में भूली पडी है। उपदेश किसे किया जाय।

३ – इक कहि जाणहि कहिआ बूझहि तेनर सुघड सरूप। —वार सारग महला १

अर्थात्—एक कहना जानता है किन्तु सुघड (चतुर) वह है जो कहे हुए को समझता भी है।

४—परथाइ साखी महापुरख बोलरे साझी सगल जहानै। —वार सोरठ महला ३

अर्थात्—महापुरुष लोग प्रसगानुसार ऐसी बात कहते हैं जो सारे संसार के काम की होती है।

५—अमृत छोडि विखिया लोभाने सेवा करहि विडानी। —श्री राग महला ३

अर्थात्—परमात्मा को छोड़ कर जो सासारिक विषयों में आसक्त हो जाते हैं। वे वास्तव मे पराये दास हैं।

६—सुखिए कउ सभ पखे सुखिया

रोगी के जाणे सभ रोगी। (सोरठ महला ५)

अर्थात्—जो सुखी हैं उनके जाने सारी दुनिया सुखी है और जो रोगी हैं उनके जाने सारा ससार रोगी है।

७—जिउ मन देखहि पर मन तैसा—

जैसी मनसा तैसी दसा—प्रभाती अष्टपदी महला १

अर्थात्—जैसा तुम दूसरो के बारे मे सोचोगे। वैसा ही दूसरे तुम्हारे बारे मे सोचेंगे। क्योंकि जैसी मनसा (भावनाएँ) होती है वैसे ही हालात वन जाते हैं।

८—आपुन बुरा मिटावे, ताहि बुरा निकट नहि आवै।—गौरी बावन अक्षरी महला ५

अर्थात्—अपनी बुराइयो को मिटाने वाले के पास बुरे लोग फटकते भी नही।

'श्री आदि गुरु ग्रन्थ साहव' के बाद सिखों मे 'दशम-ग्रन्थ' का स्थान है। यह गुरु गोविन्द सिंह जी की रचना है।❀

इस ग्रन्थ को विभिन्न विपयो का समुच्चय ग्रन्थ कहा जा सकता है क्योंकि इसके विषय स्वयम मे एक-एक पुस्तक हैं।

दशम ग्रन्थ के विपयो का विभाजन इस प्रकार किया जाता है—

(१) जापुजी, यह गुरु नानकदेवजी की रचना जपुजी का अनुसरण है। इसमे १६८ छद हैं जिनका पाठ प्रात काल की प्रार्थना मे सिख समाज मे किया जाता है।

(२) अकाल उसततु—(अकाल स्तुति) इसका पाठ भी प्रात काल ही होता है।

(३) विचित्र नाटक—इसके प्रारम्भ मे गुरु गोविन्दसिंह जी ने अपना ससार मे आने का कारण तथा वंश वर्णन किया है। अनन्तर गुरुओं के मिशन और उन युद्धों का वर्णन किया है जिनमे स्वयम गुरु गोविन्दसिंह जी को लडना पड़ा था।

(४)—(५) इन दोनो भागों का नाम चडी चरित है। पहले मे महिसासुर, चड, मुंड, सुंभ, निमुंभ आदि दैत्यों के साथ हुए युद्धों का वर्णन है। दूसरे में चंडी विषयक अन्य बाते हैं।

(६) चडी दी वार—यह तीसरी पुस्तक भी चडी (देवियों) सम्बन्धी हैं। इसमे चडी विपयक वार्तायें हैं। यह गुरु गोविन्दसिंहजी की उत्कृष्ट पजाबी रचना है।

(७) गिआन प्रबोध—इसमे महाभारत कालीन राजाओं का साकेतिक वर्णन और परमात्म-बोध सम्वन्धी बाते हैं।

(८) चौबीस अवतारों की चौपई—इस भाग मे उन चौबीस अवतारों की कथाये हैं जिनका वर्णन हिन्दू-पुराणो मे काफी विस्तार से किया गया है।

(९) महदी पीर—इस भाग का नाम अब इसी शीर्षक से प्रसिद्ध है हालाकि ग्रन्थ मे नाम नहीं दिया गया है। इसमे कादियानी मुसलमानों की उस कल्पना का वर्णन है जिनमें कहा गया है कि कलगी अवतार के बाद महदी का अवतार होगा।

(१०) ब्रह्मावतार—इसमे, बालमीक, व्यास, कश्यप, बच्छ आदि ब्रह्मा के अवतारों की कथा है यह भाग भी इसी नाम से प्रकाश मे आता है। ग्रंथ में यह नाम नहीं दिया गया है।

(११) रुद्रावतार—इस भाग मे रुद्र अथवा शिवजी के अवतारों का वर्णन है। इस भाग का भी मूल ग्रथ मे नाम नहीं लिखा है किन्तु अब इसी नाम से इस भाग को याद करते हैं।

(१२) शस्त्र नाम माला—इस भाग मे विभिन्न प्रकार के उन हथियारों की नामावली दी गई है जो महाभारत काल से लेकर गुरु जी के समय तक अस्तित्व मे थे।

❀ इसके कुछ स्थलों पर सिख विद्वान यह सन्देह भी प्रकट करते है कि वह स्थल वास्तव में दशम गुरु जी के है अथवा किन्हीं दरबारियो के।

(१३) श्री-मुख-वाक सवैये (बत्तीस) इन सवैयों में वेद, पुराण और कुराण की आलोचना है।

(१४) हजारे-दे-शब्द—यह शब्द हैं तो कुल दस ही किन्तु बहुमूल्य समझे जाने के कारण हजारे के शब्द कहे जाते हैं।

(१५) स्त्री-चरित—दशम ग्रन्थ के इस भाग में ४०४ स्त्रियों की चतुराई और कुटिलता का मनोहारी वर्णन है।

(१६) हकायता—अर्थात कथावा—इस भाग में १२ गाथायें ८६६ श्लोकों में वर्णित हैं। शब्द अधिकांश में फारसी के हैं।

इन दोनों महान् ग्रंथों के पश्चात् सिख-जगत में भाई गुरुदास जी की वारां सवैये और कवित्तों का आदर है। कहा जाता है पांचवे गुरु अर्जुन देव जी ने भाई गुरुदास जी रचित वारां को सुनकर कहा था 'तुम्हारी यह रचना गुरुमत पन्थ की कुंजी है।'

सुधारक अथवा विनाशक

समस्त गुरुग्रंथ साहब, और दशम ग्रथ के पढ़ जाने के पश्चात् हम इसी निकर्ष पर पहुँचते हैं कि गुरु महानुभाव हिन्दू-धर्म, हिन्दू संस्कृति और सभ्यता के लिए सुधारक थे। विनाशक नहीं। उन्होंने हिंदुओं की उन्हीं रस्म रिवाज मान्यताओं और कर्म विधियों के विरुद्ध कहा है जिनसे लोगों में वास्तविक धर्म से अलगाव और ढोंग ढकोसलों में प्रवृत्ति बढ़ रही थी। कई स्थानों पर उन्होंने बड़े मार्मिक शब्दों में कहा है—

सासतर वेद न माने कोइ। आपो आपै पूजा होइ।
× × ×
गिआन धिआन कछु सूझै नाहीं, चतुर कहावें पडे।
× + ×
असंख मूरख अघ घोर। असंख चोर हराम खोर।
× × ×
पढि पढि पण्डितु वाद वखानै भीतर होदी वसतु न जाने।
× × ×
भस्म चडावें करें पाखड। माया मोह सहें जम दड।
× × ×
इकि कद मूल चुणि खाहि वणखडि वासा।
× × ×
इकि भगवां भेस करि फिरिहि जोगी सनियासा।

वेद और शास्त्रों के प्रति गुरुओं की स्नेहात्मक वृत्ति थी न कि विरोधात्मक। उन्होंने वेद के सम्बन्ध में उससे कहीं अधिक अच्छे विचार प्रकट किये है जो कि अंग्रेजी पढ़े लिखे आज के हिन्दू विद्वान करते हैं। उन्होंने कहा है—

पाताला पाताल लख आकासा आकास ।
ओडक ओडक भाल थके, वेद कहिहिं इक बात ।

अर्थात् लाखो आकाश और लाखों पाताल हैं। उसका भेद लेने मे सब थक गये। परन्तु वेदों ने उस सम्बन्ध मे एक बात कही है। अर्थात् "नहीं है ओर। नहीं है छोर"।

चच्चा चारे वेद जिन साजे चारे खान चार जुगान।

अर्थात् चारो युग चारो प्रकार की सृष्टि और चारों वेद ईश्वर ने ही उत्पन्न किये है।

चार वेद होय सचियार, पडे गुनी जिन चार विचार।
भाव भगति कर नीच सदावें, नानक तो मोखतर पावें।

अर्थात्—चारो वेद सत्य का कथन करते हैं यदि गुनी लोग उन्हे विचारपूर्वक और अपने को साधारण (नीच) समझकर भाव भगति के साथ तो वह मोक्ष प्राप्त कर सकते है।

गुरु महिमा का वर्णन करते हुए भी उन्होंने वेदों की महत्ता इस प्रकार स्वीकार की है।

गुरु मुख नाद गुरु मुख वेद गुरुमुख रहा समाई।

ईश्वर की महानता का वर्णन करते हुए जहा उन्होंने वेदों का हवाला दिया है वहा यही कहा है कि उसके बारे मे निश्चयात्मक बात तो वेद भी नहीं कह सके है। अथवा वेद भी उसका गुण वर्णन करते हुए थक गये हैं इसका अर्थ यह नहीं कि वेद कुछ भी नहीं बलिक यह अर्थ है कि ईश्वर के सम्बन्ध मे जो सबसे अधिक जानकारी रखने वाला वेद है वह भी उसे बताने और उसका गुणगान करने मे अपूर्ण रहा है। यही शब्द वेदों के महान् भक्त सत तुलसीदासजी को "नेति नेति कहि वेद पुकारे।" पद मे कहने पड़े हैं।

वेदों के लिए जहा गुरुओं ने अच्छे भाव प्रकट किये है। वहां पुराणों का भी उन्होंने—आर्यसमाजियों की भाति—बहिष्कार नहीं किया है। अपने उपदेशों में उन्होंने जगह-जगह पौराणिक कथाओ के दृष्टात दिये हैं। यथा अहॅकार की निंदा करते हुए उन्होंने बताया है—

ब्रहमै गरबु कीआ नहीं जानिआ। वेद की विपति पडी पछुतानिआ।
\+ × ×
बलि राजा माइआ अहकारी। जगन[1] करे बहु भार अफारी।
× × ×
हरीचदु दान करे जसु लेवै। बिनु गुरु अतु न पाइआ भेवै।
\+ + +
दुरमति हरणाखसु दुराचारी। प्रभु नाराइण गरब प्रहारी।
प्रहलाद उधारे किरपाधारी।

भूलो रावण मगधु प्रचेति। लूटी लका सीत समति।
सहसबाहु मधु कीट महि खासा[1]। हरणाखसु[2] ले नखह विघासा।
दैत सघारे बिन्दु भगति अभिआसा।
जरासध कालजमुन[3] सघारे। रक्त बीजु कालुनेमु विदारे।
दैत सघारि सत निसतारे।

१, जगन = यज्ञ १ महिषासुर। २ हरिणकश्यप ३ कालियवन

बूडा दुरजोधन[४] पति खोई । रामु न जानिम्रा करता सोई ।

कसु केसु[५] चांडूर न कोई । राम न चोनिम्रा अपनी मतिखोई । गौडी महला १

ईश्वर की महिमा का वर्णन करते हुए सोदरु (आशा राग) मे गुरु नानक ने कहा है तुझे साधारण जनों की तो बात अलग मनुष्यों के धर्माधर्म का लेखा रखने वाला चित्रगुप्त गाता है। महादेव, ब्रह्मा, इन्द्र इन्द्राणी और सारे देवी देवता गाते हैं। यथा—

गावति तुधनो ईसर ब्रहमा देवी सोहति तेरे सदा सवारे।

गावति तुधनों इन्द्र इन्द्रासणी बैठे देवतिया दर नाले।

इतना सब कुछ लिखने का हमारा अभिप्राय यही है कि गुरु लोग हिंदू धर्म का परिमार्जन चाहते थे। विनाश नहीं। वास्तव में तो वे ब्राह्मणों द्वारा फैलाये जाने वाले ढोंग, ढपाले और ऊँच नीच के भावों के विरोधी थे। और इन मामलों मे उनका रवैया बहुत कुछ महात्मा बुद्ध से मिलता-जुलता है जिस प्रकार महात्मा बुद्ध ने ब्राह्मण के लिए कहा था कि सच्चा ब्राह्मण तो वह है जो दूसरों के प्रति उदार होता है तथा क्षमा, शील, संतोष और ज्ञान से शोभित है।

उसी भाति गुरुमत के संस्थापकों ने कहा था —

"सो ब्राह्मण जो बिंदे ब्रहम। जपु तपु सजम कमावै करमु।

सील सतोख का राखै धरमु। बधन तोडे होवै मुकतु।

अर्थात्—ब्राह्मण वह है जो ब्रह्म (ईश्वर) को पहचानता है। जप-तप सयम आदि शुभ कर्मों को करता है। तथा शील और सतोष को रखना अपना कर्त्तव्य मानता है। माया ममता के बंधनों मे छूटा हुआ है।

यदि देश मे ऐसे ब्राह्मण होते तो गुरुओं की आत्मा को पूर्ण संतोष होता और उन्हे उनके विरुद्ध एक शब्द कहने की आवश्यकता न पड़ती।

जब समाज के नेता गिरावट को प्राप्त होने लगते हैं तो समाज भी गिरने लगता है। उसमे अनेकों बुराइया पैदा हो जाती हैं। गुरुकालीन समाज मे वास्तव मे बुरायों की वृद्धि और अच्छाइयों की कमी हो रही थी। इसी से गुरु नानक और उनके परवर्ती गुरुओं ने हिन्दुओं की तत्कालीन बुराइयों के विरुद्ध आवाज उठाई और इसमे सन्देह नहीं कि उनके द्वारा बहुत कुछ परिमार्जन हिंदू लोगों की बुद्धि और बुद्धि जन्य संस्कारों मे हुआ भी।

हम काफी विचार के बाद इस नतीजे पर पहुँचे हैं कि जिस भांति शौनिक ने अपने समय तक फैले हुए, शैव, वैष्णव, नारदीय नारायणीय और भागवत धर्मों का-अपने द्वारा 'सम्पादित-भारत ग्रन्थ में समन्वय कर दिया था। और जिस प्रकार कि तुलसीदास ने रामायण मे सगुणोपासक और निरगुणोपासक शैव और वैष्णव धर्मों का समन्वय करने का प्रयास किया था। उसी भांति गुरु नानक देव ने उत्तर भारत मे फैली हुई धार्मिक विचारधाराओं का सस्कारित एवं परमार्जित रूप ग्रन्थ साहब मे पेश किया है। हमे ऐसा लगता है कि उन्होंने इस बात के लिए गोष्ठिया (कान्फ्रेन्से) भी बुलाई थीं। जिनमे सिद्ध-गोष्ठी का आभास ग्रन्थ साहब

समन्वयात्मक धर्म

४ दुर्योधन ५ केशी।

में भी मिलता है। उत्कृष्ट हिन्सावादी—जो नर बलि देने से भी नहीं चूकते थे—शाक्तों को छोड़कर उन्होंने कबीर पन्थियों, रैदासियो, नामदेव पन्थियो, धन्नाभगतियों रामानंदियो और गोरख पंथियों यहाँ तक कि सूफियों तक से विचार विनिमय किया और फिर इस प्रकार की अमृतवाणी (गुरुमत) उनके सामने पेश किया जो सब का साझे का हो सके तथा जो ढोंग ढकोसलो से आच्छादित भी न हो।

यही कारण है कि गुरु नानक देव ने किसी भी धर्म-सम्प्रदाय की बुराई नहीं की अपितु जो-जो बातें उन्हें किसी धर्म-सम्प्रदाय मे बुरी जँची उनकी आलोचना भर की। यही काम उनके परवर्ती अंगद अमरदास आदि गुरुओं का रहा।

अन्य सम्प्रदायों की आलोचना

गुरुमत पर लिखने से पहले हमे यह भी आवश्यक जंचता है कि गुरु महानुभावों ने किस धर्म-सम्प्रदाय की किन बातो को अनुचित समझा। और उनकी आलोचना अथवा नुक्ता-चीनी सुधार की दृष्टि से थी अथवा विनाश की दृष्टि से।

जनेऊ

सब से पहली आलोचना गुरु नानक देव जी द्वारा यज्ञोपवीत की हुई थी। आरम्भिक आर्यों का उद्देश्य जनेऊ के सम्बन्ध मे बहुत उच्च था। वे उसे शुभ कामों का प्रेरक मानते थे किन्तु गुरु नानक के समय मे जनेऊ पहनने से लोग अपने को उच्च जातीय समझने लग पड़ते थे। इस प्रकार जनेऊ अहमन्यता का प्रतीक बन रहा था। उन्होंने कहा— दया कपाह सतोख सूत जतु गढी सतु वटु। ऐह जनेऊ जीव का हइ त पाडे घतु॥ श्लोक महला[1]

अर्थात्—हमे तो दया रूपी कपास के संतोष रूपी सूत की जतों से गढ़ा (गूँथा) हुआ जनेऊ चाहिए।—वह नहीं जो दूसरों के प्रति हमारे मन मे घृणा और अपने लिए माया-लोभ पैदा करता है।

पिंडदान

गया मे उन्होंने—पंडों के यह कहने पर कि अपने पितरों की शान्ति के लिए पिंडदान तो कराइये—कहा था — पिंड पत्तल मेरी के सो क्रिया सच्च नाम करतार।

इत्थै उत्थै आगे पीछे यह मेरा आधार॥

अर्थात, मृतकों के लिये मेरे पास पिंड-पत्तल के नाम पर भगवान का सच्चा नाम है जो चारों तरफ व्याप्त है। (पितरों का) यह करतार का नाम ही सहारा है।

इससे पहले उन्होने कुरुक्षेत्र के स्नान-पर्व के समय भी जब कि लोग सूरज को जल-अर्पण कर रहे थे। करतारपुर की ओर पानी फेंकना आरम्भ कर दिया था, लोगों के पूछने पर बताया कि मैं अपने खेतों को सींच रहा हूँ। जब लाखों कोस दूर तुम्हारा जल सूर्य को मिल जायगा तो मेरा फेंका हुआ पानी कुछ ही-सौ मील पर मेरे खेतों में भी पहुँच जायगा।

आरती

जगन्नाथ पुरी में जब उनसे आरती मे शामिल होने के लिए कहा गया तो उन्होंने कहा —

गगन में थाल रवि चन्द्र दीपक बने, तारका मंडल जनक मोती।
धूप मलिआन लो पावन चँवरा करे, सगल बनराय फूलन्त जोती।

अर्थात्, मेरे ईश्वर की आरती कुदरत करती है। गगन थाल है। उसमें चन्द्र और

१. महाभारत ग्रन्थ का पहला नाम जय और फिर भारत था। जब शौनिक ने जो कि बौद्धकाल में हुआ है उसका सम्पादन किया तो उसका नाम महाभारत रख दिया क्योंकि उसने उसमें पर्याप्त सामग्री बढाई थी। देखो। महाभारत मीमासा सी० वी० वैद्य रचित।

सूर्य दीपक हैं, अनगिनत तारा गण माणिक मुक्ता हैं। वनों मे फूलने वाली समस्त वनस्पतियों की झिलमिलाहट (प्रफुल्लता) उसकी जोति है। उसके तो अनहद वाजे वजते हैं। सार यह कि तुम इस जरा मे थाल में दीपक रखकर अथवा धूप, नैवेद्य डालकर तथा शंख घडियाल वजाकर जो आरती करते हो यह तो उस विराट पुरुष के लिए मजाक जैसी चीज है।

मूर्ति पूजा के सम्बन्ध में उन्होंने कहा था—थापिआ न जाइ कीता न होय। आपे आपि निरजन सोय।" अर्थात् न तो उसकी स्थापना हो सकती है और न उसे वनाया जा सकता है। वह आप ही आप निरजन अथवा अव्यक्त है। उज्जैन के ओंकार मठ मे उन्होंने पंडों मे कहा था।

मूर्ति पूजा

"ओ ओंकार ब्रह्मा उतपति। ओ ओंकार कीआ जिनि चित।
ओ ओंकार सैलजुग भए। ओ ओंकार वेद निरमए।"

अर्थात् तुम्हारे उस मन्दिर की मूर्ति जिस पर कि गगाजल चढाया जाता है। ओंकार नहीं है। ओंकार तो वह है जिसने ब्रह्मा को पैदा किया है। ओंकार तो वह है जिसने मन (चित) को वनाया है। ओंकार तो वह है जिसने ये विकराल पहाड़ पैदा किये हैं और युगों को वनाया है। ओंकार तो वह है जिसने वेदों (सर्व प्रकार के ज्ञान) की रचना की है।

गोरख पंथियों मे उपासना का मुख्य आधार योग है। योग मे भी वह हठ योग को प्रमुखता देते हैं। गुरु नानक देव ने हठयोग के सम्बन्ध में अपने विचार इस प्रकार प्रकट किये थे।

हठयोग

"हठु निग्रहु करि काइआ छीज। वरतु तपनु करि मनु नहीं भीजे।
राम नाम सरि अवरु न पूजै।।

× × × ×

निउली करम खटु करम करीजै। राम नाम विनु विरथा सांसु लीजै।

× × × ×

अनु न खाहि देही दुख दीजे। विनु गुर गिआन तृपति नहीं थीजै।" —रामकली महला १

अर्थात्—इन्द्रियों के निग्रह (कावू करने) के लिये जो हठयोग करते हैं। उसमे (लाभ तो कुछ नहीं) शरीर का छीजन (हानि) होती है। व्रत (उपवास) और तप (धूनिया लगाकर आग के सामने तपने) मे मन तो नर्म होता नहीं। वास्तव मे राम नाम के स्मरण से वढकर कोई योग, व्रत और तप नहीं है।

नेति, धोती, न्यौली आदि जो पट कर्म हैं। राम नाम के विना सव व्यर्थ हैं।

निराहार (भूखे प्यासे रहकर) शरीर को ही दुख देना है। विना सतगुरु के ज्ञान से मन की तृप्ति नहीं होती है।

जव भूखा रहना, तप करना, उपवास करना और इन्द्रिय निग्रह के लिये हठ करना योग नहीं है और इनके करने वाला योगी नहीं है तो योगी कौन है। इसका उत्तर नवें गुरु तेगवहादुर जी ने इस प्रकार दिया था—

योगी की परिभाषा

"परनिंदा अस्तुति नहीं जाके। कचन लोह समानें।
हरख सोग ते रहे अतीता। जोगी ताहि वखानें। (धनाश्री महला ९)

अर्थात्—जो पराई निन्दा से दूर रहता है, किसी की खुशामद नहीं करता है। जिसके लिये सोने और लोहे मे कोई अंतर नहीं अर्थात् लोभ जिसे छू न गया है। और जो हर्ष और शोक मे निवृत्त है ऐसा ही मनुष्य योगी है।

गुरु नानक देव योग को बुरा नहीं समझते थे। वे नाथ और जोगियों के जो योग
पाखण्ड थे। उन्हे छोड़ने को कहते थे। किसी मत्स्येन्द्री पन्थ के जोगी से योग पर जो उनकी बातें
उनका आभास रामकली राग के महला १ से इस प्रकार चलता है।

सुनि माछिन्द्रा नानक बोलै। वसिगत पच करै नहि डोलै।
ऐसी जुगति जोग कहु पालै। आपु तरै सगले कुल तारै।
सो अउधूत ऐसी मति पावै। अहिनिस सुन्न समाधि समावै।
भिखिआ भाइ भगति भै चलै। होवै सुत्रिपत सतोष अमूलै।
धिआन रूप होइ आसण पावै। सत नाम ताडी चित लावै।
आसा माहि निरास वुलाए। निहचउ नानक करते पाए।
दीखिआ दारू भोजन खाइ। दरसन की सोझी पाइ॥

अर्थात्—काम, क्रोध, लोभ, मोह और अहंकार नाम के जो पांच विकार हैं
और मन को कहीं न डुलावै, यदि ऐसी युक्ति का जोग करले तो आप भी तर
कुटुम्ब को निस्तार दे। सच्चा अवधूत वह है जो रात दिन शून्य में अपने चित्त को
ससार के आकर्षणों से एक दम अलग होकर आसन मार परमात्मा के ध्यान में मग्न
भिक्षुक भाव की भक्ति पर चलै न कि जोर जबरदस्ती (हठ योग
आत्मा में सतोप और मनमे अमूल्य तृप्ति पैदा होगी।

ध्यान मग्न होकर आसन लगा सत्यनाम का त्राटक चित्त में
नता (उन्मन अवस्था) धारण करले। अर्थात् आशा पूर्ति के लिये उतावल
इससे निश्चय ही परमात्मा की प्राप्ति होगी।

दीक्षा रुपी नशे का भोजन बनावे। अर्थात् गुरु उपदेश की
शास्त्रों का मर्म पाया जा सकता है।

गुरु नानक ने नकली साधुओं के लिये भी लताड़
तिलक, छापे, तीर्थ, वेश भी बतलाई है।

"जे आगे तीरथ तां मलु लहे छप्पडि नासै सगवी मन
तीरथपूरा सतिगुरु जो अनु-दिनु हरि हरि नामु

× × ×

इकि कद मूलु चुणि खाहि वण खंडि वासा। इकि भगवा
अन्तरि तृसना वहुतु छादन भोजन की आसा। विरथा जनमु

श्राद्ध (मृतक) पितरों की तृप्ति के लिये
की प्रथा है। उसके सम्बन्ध मे गुरु

"आइआ गइआ मुइआ नाउ। पिछै पत
नानक मनमुख अन्ध पिआर। बाझ गुरु

अर्थात—आने वाला तो चला गया। उसका
पत्तल किसे देते हो।

गुरु नानक देव कहते हैं। मनमुखो (निगुरों) का यह अंधा प्यार है और वास्तविक बात तो यह है कि बिना अच्छे गुरुओं के सारा ससार ही डूब रहा है।

दर्शन

संसार में कोई भी ऐसा धर्म नहीं जिसकी कोई दार्शनिक भित्ति (दीवार) न हो। अपने भारतवर्ष मे अनेकों धर्म-सम्प्रदाय हैं जिनमें एक सिख-सम्प्रदाय भी है। सिख लोग अपने धर्म-सम्प्रदाय को पंथ अथवा गुरुमत कहते हैं। उनका भारत में इस समय अपना एक अलग समाज है और ज्यों-ज्यों समय बीतता जाता है। उनकी यह धारणा दृढ होती जा रही है कि सिख एक अलग जाति हैं और उसका अपना अलग धर्म-ग्रंथ है।

इस अलगाव (पृथकता) की नींव दूसरे गुरु अंगद के जमाने से पड़नी आरंभ हुई। इसका मूल आधार गुरु महानुभाव अथवा सिख नेता न होकर हिन्दुओं के पुरोहित और पंडित हुए। पठन पाठन का ठेका पंडे, पुरोहितों अथवा ब्राह्मणों के पास था। वे चाहते थे जिसे पढ़ने लिखने का अधिकारी समझते। चाहे जिसे नहीं। वेदांत के प्रसिद्ध ग्रंथ विचार सागर के रचयिता श्री निश्चलदास (अठारवीं सदी) को काशी के पंडितों ने तब पढ़ाया। जब उसने अपनी असली जाति (जाट) को छिपाकर ब्राह्मण बताया था। गुरुओं के शिष्यों में जाट, अरोडे और ऐसी ही कृषिकार जातियों के शिष्यों की संख्या अधिक थी। संस्कृत पंडितों की भाषा थी। जो कि देव नागरी में लिखी जाती थी अत गुरु अंगद जी ने एक नई लिपि को अपनाया। जो कि आगे गुरुमुखी के नाम से प्रसिद्ध हुई। गुरुओं ने जो भी उपदेश दिये वे सब इसी लिपि में बद्ध किये गये। और शिष्य लोग इसी लिपि मे पढ़ने लिखने लग पड़े। इस प्रकार हिंदुओं के आचार्य अथवा अगुवा ब्राह्मणों से पंजाब के उन लाखों लोगों का अलगाव आरंभ हो गया जो गुरुओं के शिष्य बनते जा रहे थे। यह पहला अलगाव था जो लिपि के माध्यम द्वारा हिंदुओं की उन धर्म पुस्तकों के पठन पाठन से हुआ जो कि संस्कृत भाषा और देव नागरी लिपि में थीं।

दूसरा अलगाव गुरु रामदास जी के समय में तब हुआ जब कि समस्त सिखों के लिये समान रिवाज और मर्यादाओं की बात सामने आई। यह सर्व विदित बात है कि ब्राह्मण लोग शूद्र जातियों के संस्कार नहीं कराते हैं। गुरु रामदास जी ने चार लावां रची जो आनन्द के नाम से प्रसिद्ध हैं। सिखों के विवाह संस्कार इन्हीं लावाओं को पढ़कर होने लगे। वैदिक आर्यों में भी चार ही भांवरें (लावां) पडती थीं। नामकरण और मृतक सस्कार भी सिखों ने अपने तरीके (किंतु गुरुओं के बनाए अनुसार) निर्धारित कर लिए। इस प्रकार सिखों के हिंदुओं से पृथक होने का यह दूसरा कदम था।

तीसरा अलगाव (पृथकता) पांचवें गुरु अर्जुन देव जी के समय में हुआ, जब उन्होंने अमृतसर के तालाब को तीर्थ का रूप दिया। कुरुक्षेत्र और हरिद्वार जहां पंजाब के बच्चे बच्चे के सर्वोपरि तीर्थ थे। वहां अब उन पंजाबियों के लिये अमृतसर और तरन तारन के तडाग मुख्य तीर्थ हो गये।

चौथा अलगाव भेषभूषा का गुरु गोविंदसिंह जी के समय में आरंभ हुआ। केशों का अलगाव ऐसा अलगाव है, जो देखते ही बिन कुछ पूछे ताछे बता देता है कि यह व्यक्ति सिख है।

गुरु महानुभाव हिन्दुओं में प्रचलित अनेकों ढोंगों को पसन्द नहीं करते थे। वे हिंदू-धर्म का सशोधन करना चाहते थे किंतु हिंदुओं के पेशवाओं अर्थात् ब्राह्मणों ने उनके इस कार्य में रोडे अटकाये, उनकी मुखालफत की। यही नहीं मुस्लिम शासकों से उन्होंने और उनके प्रमुख अनुयाइयों ने चुगली की। इनमे

गुरुनानक और अगद से पीछे होने वाले प्रत्येक 'गुरु को पीढ़ी दर पीढ़ी अपने शिष्यों को इन ब्राह्मण पुरोहितों के संसर्ग से अलग रखने के प्रयत्न करने पड़े।

हमे बिना हीलेहवालेके यह स्वीकार कर लेना चाहिये कि सिख हिन्दुओंमे एक अलग उपजाति है। वैसेही जैसे कि जैन और बौद्ध हैं। और यह भी सच है कि वे अनेकों रिवाजे भी अलग रखते है। लेकिन वे नस्ल से उतने ही हिंदू हैं जितना कोई भी सनातनी जैन अथवा आर्यसमाजी हिंदू हो सकता है। वे बातें जिनमे सिख हिंदुओ से अपने को अलग घोपित करते हैं वहुत स्पष्ट हैं।

यथा —

(१) वे बहुदेव उपासक नहीं है।

(२) वे अवतारों को ईश्वर नहीं मानते।

(३) उन्होंने अनेकों हिन्दू रीतियो को त्यागा हुआ है। यथा श्राद्ध और ग्रहो का पूजन और मुहूर्तो का प्रभाव।

(४) उन्होंने ब्राह्मण पुरोहितों की गुलामी से मुक्ति पा ली है।

(५) वे जाति पाति व ऊच नीच के भेदो को पसन्द नहीं करते।

(६) उन्होंने दीक्षा का एक नया नियम अपना लिया है।

(७) उन्होंने अपने अलग तीर्थ और पूजा स्थान बना लिये है।

इसका मतलब है कि जहां तक सामाजिक रस्म रिवाज का सम्बन्ध है। सिख पौराणिक हिन्दुओ से काफी अलग हो चुके हैं किन्तु शेप बाते ऐसी है जो आज भी उन्हे हिन्दुओ से अलग नहीं कर सकी है। जिनमे से मोटी-मोटी यह है।

(१) उनके नाम सिंह और कौर पर रक्खे जाते हैं जैसे कि भारत के अन्य क्षत्रिय रखते है।

(२) उनकी दैनिक चर्य्या ठीक वैसी ही है—और गुरुओं ने उसका अत्यन्त क्रियात्मक रुप से उदाहरण पेश किया था—जैसा कि मनु चाहते थे। "ब्राह्मे मुहूर्ते बुद्धेत"...

. . "

अर्थात् अमृत बेला (ऊषा काल) मे उठो, शौच, स्नान, ध्यान करो और फिर काम मे जुटो।

दात, केश, और नाखुनों को साफ रक्खो।

सोने से पहले प्रात साय की भाति ही ईश्वर प्रार्थना करो।

(३) राम और कृष्ण उनके भी वैसे ही बुजुर्ग हैं। जैसे अन्य हिन्दुओ के। गुरु गोविन्दसिह जी ने तो इस बात को बड़े जोर के साथ दुहराया था कि हम राम के पुत्रों—लवकुश की सन्तान हैं।[1]

(४) गुरु नानक से लेकर गुरु गोविन्दसिह जी तक किसी भी गुरु ने किसी भी अभारतीय (गैर-हिन्दू) मजहब को नहीं अपनाया। जो कुछ भी उन्होने कहा, वह अपनी ओर से कहा। अत जब वेदान्त के मानने वाले भी उतने ही हिन्दू हो सकते हैं। जितने कि मीमांसा के मानने वाले। तब गुरु ग्रन्थ साहब के मानने वाले अपने को लाख अलग समझते हुए भी हिन्दुओं से अलग नहीं है।

'गुरु ग्रथ' भी हिन्दुओ का अपना वैसा ही निज ग्रन्थ है जैसा गीता, वेद अथवा भागवत है। 'ग्रथ साहव' मे ऐसी कोई बात नहीं जो हिन्दुओ के लिये कल्याणकारी न हो।[2]

१ देखो विचित्र नाटक। २ पजाब और सिन्ध के हिन्दुओ के लिये तो आज भी 'ग्रन्थ साहब' ही वेद है।

(५) सिखों की भाषा भी वही है जो पंजाब के अन्य हिन्दुओं की है।

(६) पंजाब के सिख और हिन्दुओं के नाते रिश्ते भी बराबर होते हैं।

भारत में अनेक सम्प्रदाय हैं जिनकी अनेकों बातें आपस में नहीं मिलती हैं। ब्रज के एक हिन्दू और बंगाल के हिन्दू के खानपान और रहन-सहन में बड़ा अन्तर है। रस्म-रिवाज में अन्तर है।[1]

हम जिस विषय पर लिखने जा रहे थे। उससे इन बातों का कोई गहरा सम्बन्ध नहीं। प्रसंग वश ही यह बीच में आगई।

हम "गुरु-मत-दर्शन" की चर्चा कर रहे हैं उसी पर हमें अब लिखना है।

किन्तु 'गुरु-मत-दर्शन' पर अब तक जितने भी देशी विदेशी विद्वानों ने लिखा है। वे असफल ही रहे हैं। यह केवल हमारी ही राय नहीं। पंजाबी में 'गुरु-मत-दर्शन' के लेखक प्रोफेसर शेरसिंह ज्ञानी ने भी इसी बात को पूरे ब्यौरे के साथ खोला है। विदेशी लेखकों में डाक्टर ट्रम्प और मिस्टर मेकालिफ ने इस ओर लिखने की चेष्टा की है किन्तु वे सिखधर्म (Sikh Religion) पर ही प्रकाश डालने में समर्थ हो सके हैं। सिख विद्वानों में से भी कई ने इस ओर कलम उठाया है किन्तु वे भी दर्शन तक न पहुँच कर सिद्धान्तों और आदेशों तक ही चक्कर काटते रहे हैं।

इसका स्पष्ट कारण यह है कि सिख विद्वानों ने जिन्होंने इस ओर लिखने का प्रयत्न किया है। 'दर्शन' साहित्य का काफी अध्ययन नहीं किया। वास्तव में दर्शन है क्या? जब तक यह न जान लिया जाय तब तक दर्शन का लेखक चाहे वह किसी भी पंथ का दर्शन लिखना चाहे सफल नहीं हो सकता।

इसके साथ ही हम जिस किसी भी पंथ या धर्म का दर्शन लिखना चाहें उसके लिये यह जरूरी होगा कि हम उस पंथ के देश के दार्शनिक-प्रवाह का अध्ययन कर लें। क्या वह व्यक्ति इस्लाम दर्शन को यथार्थ रूप में व्यक्त कर सकेगा, जो अरब के दर्शन-प्रवाह के इतिहास में अनभिज्ञ है।

इस्लाम की दार्शनिकता को अधिक से अधिक सही रूप में व्यक्त करने के लिए अरब के पुराने धर्मों-मूसाई, ईसाई, इसरायली और जिब्राइली—के दर्शन को जानना आवश्यक है।

इसी भांति हमें सिख-धर्म के दार्शनिक तत्वों अथवा 'गुरु-मत-दर्शन' को जानने के लिए भारत में दर्शन उत्तरोत्तर विकसित होने अथवा विभिन्न शाखाओं में फैलने वाले दर्शन का अध्ययन आवश्यक होगा।

इन्हीं दो बातों—दर्शन क्या है—भारतीय दर्शन उत्तरोत्तर किस प्रकार बहुमुखी हुआ—पर पहले हम थोड़ा सा प्रकाश डालना आवश्यक समझते हैं।

दर्शन क्या है?

जो वस्तुएँ हमें आँखों से दिखाई देती हैं। उनके सम्बन्ध में अधिक से अधिक जानकारी देने वाली विद्या को विज्ञान कहा जाता है और जो अदृश्य हैं जिन्हें हम न आँखों से देख सकते हैं और न कानों को जिनका बोध है। अर्थात् जो इन्द्रियों की पहुँच से बाहर हैं। उनके सम्बन्ध में जो हमें अनुभूति होती है। उस जानकारी को दर्शन

१ दक्षिण में मामा की लड़की के साथ शादी कर लेते हैं। जौनसार बावर में बहुपतित्व प्रथा है। रिवाजों के इतने बड़े अन्तर के बाद भी दक्षिण के लोग जब हिन्दू हैं तो सिख उनमें कहीं अधिक निकट हैं। आर्य समाजी जब हरि, राम, गोविन्द और गोपाल नामों को ईश्वर वाची नाम नहीं मानते किन्तु गुरुग्रन्थसाहब इन नामों को ईश्वर वाची समझता है तब सिख आर्य समाजियों की अपेक्षा कहीं अधिक हिन्दू हैं।

कहा गया है ? वैसे यह नहीं कि दर्शन दृश्य वस्तुओं की वास्तविकता पर भी प्रभाव न डालता हो।

ऐसी चीजे न जिनका पता कानों को है न आँखों को और न छूने मे आती हैं। और न सहज ही समझने मे। उनका नाम ईश्वर, जीव और प्रकृति अब तक के विचारकों ने बताया है। इन तीनो चीजों के बारे मे अधिकतम जानकारी कराने वाली बातें ही दर्शन हैं।

ईश्वर क्या है ? कहाँ है ? उसका रूप रंग कैसा है ? वह क्या करता है ? हमारे साथ उसके क्या सम्बन्ध हैं ? क्या हम उसे देख सकते है ? उससे मिल सकते है ? हम क्या हैं? जीव हैं तो जीव क्या है ? उसका अस्तित्व इस महान् संसार मे क्या है। ससार के बनाने मे ईश्वर जीव का कितना हाथ है ? इसे क्यों बनाया जाता है ? क्या संसार का नाम ही प्रकृति है और प्रकृति क्या है ? वह जड है अथवा चेतन है ? आदि प्रश्न है ? इन प्रश्नों के उत्तरों और इस सम्बन्ध की मान्यताओं का नाम ही दर्शन है।

मनुष्य जीवन का अन्तिम लक्ष्य क्या है ? यह प्रश्न और इसका उत्तर दर्शन का फैलाव करते है। दर्शन का कतई फैलाव नहीं होता यदि मनुष्य के साथ मोक्ष का मोह दार्शनिक न बाँध देते।

ऐसे दार्शनिक तो अनेकों हुए हैं जिन्होंने कह दिया है कि ईश्वर नाम का कोई तत्त्व नहीं ? किन्तु ऐसे दार्शनिक कार्लमार्क्स से पहले एकाध ही हुए हैं। जिन्होंने मनुष्य जीवन का सर्वोत्तम लक्ष्य मोक्ष न बतलाया हो।

संसार मे दर्शन ग्रथ तो अनेक हैं। किन्तु दर्शन के केवल दो ही अग हैं। (१) भौतिक (२) आध्यात्मिक। पूर्व ने आध्यात्मिक और पश्चिम ने भौतिक दर्शन के विकास मे उन्नति की है।

दर्शन के सम्बन्ध मे यह हमारी अति लघु परिभाषा है। किन्तु विषय को समझ लेने के लिये यह काफी ही है।

आर्यों के आदि ग्रंथ ऋग्वेद मे जो दार्शनिक चर्चा है, वही भारतीय दर्शन का आदि रूप है। आदिम आर्य सूर्य, चन्द्र, वायु, अग्नि और वरुण (बादलों) के प्रति बड़े कृतज्ञ थे। इनसे उन्हे बहुत कुछ मिलता था और आजतक सारी दुनिया को मिलता है। सूर्य से प्रकाश, जीवन-दायिनी विभिन्न ऋतुएँ चन्द्रमा से शीतलता और अमृतमयी वनस्पतियाँ, वायु से प्राण (श्वास प्रश्वास) अग्नि से स्वास्थ्य, हिंसक जीवों से रक्षा, और रात्रि मे प्रकाश वरुण अथवा बादलों से पानी। इसलिये वे इन्हे अपने जीवन का आधार होने के कारण अपना सबसे अधिक हितू समझते थे और इसी कारण उन्होंने इनकी प्रशसा में अनेकों छन्द और गीत बनाये। जिन्हे वे अनेक प्रसन्नता के अवसरों पर बड़े प्रेम से गाते थे। इन्हे वे देवता अर्थात् दिव्य-गुणों वाला कहकर पुकारते थे।

भारतीय दर्शन का इतिहास

कालान्तर मे इन देवताओं के प्रति अधिक आकर्षण ने इन्हे उनके सम्बन्ध मे जानने की उत्कंठा पैदा की। इस उत्कंठा और जिज्ञासा के उत्तर जो उन्हे बहुत कुछ सोचने और विचारने के बाद मिले वही वेदों का दर्शन भाग है।

वेदों ने जितना दार्शनिक ज्ञान जगत को दिया। उसका सार इतना है। (१) सबसे महान सत्ता ईश्वर है। जो सत, चित और आनन्दपूर्ण है। ईश्वर के बाद जीव अथवा आत्मा है। जो सतचित है। तीसरी सत्ता प्रकृति अथवा माया है जो केवल सत है।

सत क्या है ? इसको समझाने के लिये वेद ने कहा है—हमारे जो कान हैं। इनमे जो सुनने वाला

है। वही सत है। क्योंकि कान तो सुनने का स्थान (गोलक) हैं। सुनने वाला तो कोई और ही है। आँखों में जो देखने वाला है वही सत है।

यह सत सजग है। आँख न रखते हुए भी देखता है। कान न रहते हुए भी सुनता है। अत चेतन है।

जीव भी सत् चित है। वह आत्मा है। जब वह समझ लेता है कि मैं वही हूँ जो यह सब कुछ है। तब वह परमात्म रूप हो जाता है। वेदों ने इस सम्बन्ध में जो कुछ कहा, उपनिषदों ने उसकी व्याख्या करदी। व्याख्या मे असल विषय बढ़ जाता है। इस सम्बन्ध की जानकारी भी बढ़ी। अत उसके पास पहुँचा जा सकता है या नहीं ? और कौन सी दीवार है ? जो हमे ईश्वर से दूर रख रही है। इसी का निपटारा उपनिषदों मे है।

षट-शास्त्र जो षड-दर्शन के नाम से मशहूर हैं और जिनके नाम वेदांत, सांख्य न्याय, वैशेषिक और मीमांसा हैं। उन्होंने एक-एक विषय को लेकर दर्शन का विस्तार किया है।

वेदांत ईश्वर और जीव दोनों को एक मानता है। गुरु गोविन्दसिंह जी ने भी कहा था — "द्वैत एक रूप है गयो' (दशम ग्रंथ) वे एक हैं। यह वह बडी गहन दलीलों से सिद्ध करता है। वह संसार को स्वप्नवत मानता है। वह कहता है। भ्रम का नाम संसार है। 'योग' परमात्मा के मिलने का एक मुख्य साधन चित्त की वृत्तियों को काबू में करना बताता है और चित्त की प्रवृति काबू में कैसे होती है ? यही योग का मुख्य विषय है।

'मीमांसा' दर्शन मे उन यज्ञ कर्मों पर विचार किया है। जिनके करने से मनुष्य का हित होता है। अथवा स्वर्ग-सुख प्राप्त हो सकता है। 'सांख्य' के अर्थ गिनती के होते हैं। उसने २५ तत्वों पर विचार किया है। इस पच्चीस तत्वों में ५ ज्ञानेन्द्रिय और ५ कर्मेन्द्रिय तथा ग्यारहवा मन भी शामिल है ? यह कैसे बनती हैं ? आदि पर इसमें विचार किया गया है।

वैशेषिक-शास्त्र मे परमाणुवाद को महत्व दिया है। संसार की रचना मे वह परमाणुओं को मुख्य मानता है।

'न्याय' मे ईश्वर को तर्कों दलीलों से सिद्ध किया गया है। न्याय का अर्थ ही तर्क (दलील) होता है। न्याय कहता है कि ससार परिमाणुओं (जर्रों) से ही बनता है। ठीक वैसे ही जैसे कि मिट्टी से बर्तन बनते हैं। किन्तु बर्तनों को बनानेवाला जैसे कुम्हार है। उसी भाति परिमाणुओं से ससार को बनाने वाला भी कोई है और वही परमेश्वर है।

दर्शन का यह प्रवाह जिसका हमने ऊपर वर्णन किया है। सीधा तीर की भाति नहीं है। यह उस जलधारा अथवा नदी के पथ के समान है जो अपने सामने आने वाली ऊँची-नीची, अथवा पहाड़ोंवाली जमीन के आने पर बनाती है।

इस धारा को सबसे पहले शैव सिद्धान्तों ने अवरोधित किया। पुन चारवाक, जैन और बौद्ध-सिद्धान्तों ने। चारवाक लोग मानते थे। ईश्वर नाम की कोई सत्ता नहीं। वह अदृश्य मे कोई विश्वास नहीं करते थे। चारवाकों का कहना था न कोई आत्मा है और न परमात्मा। यह सारी सृष्टि चार महाभूतों—पृथ्वी, जल, तेज और वायु से बनती है। इन चारों के विभिन्न तरीकों और परिमाणों मे मिलने से विभिन्न प्रकार के प्राणी उत्पन्न हो जाते हैं।

बौद्ध लोग भी चारवाकों की भाति आत्मा परमात्मा को नहीं मानते थे। वे मन को सब कुछ

मानते थे। सृष्टि के सम्बन्ध मे उनका कहना था कि आलय विज्ञान (साइंस के घर) से सारी रचना होती है। आलय विज्ञान की भाति ही वे प्रवृत्ति विज्ञान को महत्व देते है। उनका कहना है कि आलय विज्ञान की तरगो से जड़ सृष्टि और प्रवृत्ति विज्ञान की तरंगों से चेतन सृष्टि बनती है।

जैन लोग आत्मा की सत्ता को स्वीकार करते हैं। उनके विचार से मोक्ष प्राप्त आत्मा ही परमात्मा है। वे सृष्टि को पुदगलों (सूक्ष्म जर्रों) से बनी मानते हैं। उनके मत के अनुसार जर्रों मे रूप, रस और स्पर्श तीन गुण होते है। आत्मा और अणुओं के संयोग से वे सृष्टि का होना मानते है।

वैदिक दर्शन की जलधारा के सामने यह अवरोधन दर्शन-पहाड़ियाॅ जब आईं तो उसका वही रूप हुआ जो पहाड़ो से नदियों का होता हैं। या तो उसके अनेक प्रवाह हो जाते हैं या मुड़ना पड़ता है।

हिन्दुओं के जो छ दर्शन—वेदांत, योग, मीमांसा आदि हैं वे एक नदी की विभिन्न धाराये है। जिनका आरम्भ मे (मूल) एक था और अत मे भी एक है।

छ हों दर्शनो मे अलग-अलग बातों पर विचार किया गया है किन्तु छ हो के अध्ययन से एक पूर्ण निष्कर्ष बनता है।

'वेदान्त' ने जिसका अर्थ वेदों का अंतिम भाग होता है। आत्मा और परमात्मा की एकता पर विचार किया है। 'मीमासा' ने जिसका अर्थ विचार अथवा मनन करना होता है। वेदों के उस कर्मकाड पर विचार किया है, जिससे मनुष्य जीवन सफल होता है। तथा मोक्ष मिलती है। 'योग' दर्शन ने उन तरीकों पर प्रकाश डाला है, जिनसे जीव (आत्मा) परमात्मा को प्राप्त करले। 'न्याय' ने दलीलो द्वारा ईश्वर की सत्ता को प्रमाणित किया है। 'वैशेषिक' के परिमाणुवाद को स्पष्ट किया है, उसने बताया है, कि सृष्टि परिमाणुओं से बनती है वे परिमाणु कैसे हैं ? उनसे सृष्टि कैसे बनती है ? यह वैशेषिक का मुख्य विषय है। 'साख्य' जिसके कि अर्थ सख्या के होते है—ने बताया है कि यह सारा पसारा २५ तत्वों पर अवलम्बित है। जिनमे पाच ज्ञानेन्द्रिय पांच कर्मेन्द्रिय, ग्यारहवां मन और पृथ्वी, जल, आकाश आदि पाच महाभूत शामिल है।

इन छ'हों शास्त्रों का सगम होता है, श्रीमद्भगवत गीता में आकर। वह मुख्यत षडदर्शन का सार है।

दर्शन एक बड़ा गहन विषय है। इसे समझने के लिये जहां बड़ी बुद्धि की आवश्यकता है। वहां समझाने के लिये भी बुद्धि चाहिये। इसलिये यह ज्ञान विद्वानों तक ही सीमित रह गया। उधर बौद्ध और जैन धर्म बराबर बढ़ने लगे क्योकि उनके अनुयायी बजाय दार्शनिक बातों के महात्मा बुद्ध और भगवान महावीर मे अधिक आस्था रखते थे। इनमे कोई सन्देह भी नहीं कि बौद्ध, जैन प्रवाहों ने वैदिक धर्म और वैदिक दर्शन को पीछे धकेल दिया था। हर नगर और हर गाॅव मे बुद्ध और महावीर की पूजा होने लग पड़ी थी।

तब बुद्ध और महावीर के मुकाबिले हिन्दू पुरोहितों ने भगवान राम और कृष्ण को पूजा के लिये खड़ा किया और कहा गया कि राम और कृष्ण परमात्मा की एक शक्ति विष्णु के अवतार हैं। बस ईश्वर के अवतार लेने की बात यहाॅ से आरम्भ हुई।

इस कल्पना का प्रचार किया गया पुराणों द्वारा। इस उपासना पद्धति का नाम सगुण उपासना रक्खा गया। यहा से हिन्दू दर्शन की फिर दो धारायें हो गईं। एक सगुण उपासकों की और दूसरी निरगुण उपासकों की।

भारतवर्ष में इस समय हिन्दुओं के जितने भी सम्प्रदाय हैं, वे इन्हीं दो मुख्य धाराओं में बटे हुए हैं। दर्शन की यह दो धारायें "सतकाल" में जो ईसा की दसवीं सदी से अठारहवीं सदी तक का है और भी बलवती हुईं।

अब तक के इस विवरण का नकशा इस भाँति दिया जा सकता है।

अस्तित्व और गुण

(१) वेद के अनुसार
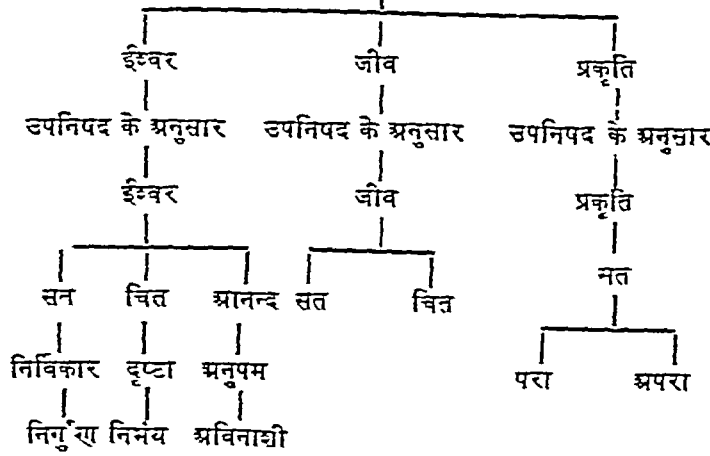
(२) वेद + उपनिषद के अनुसार
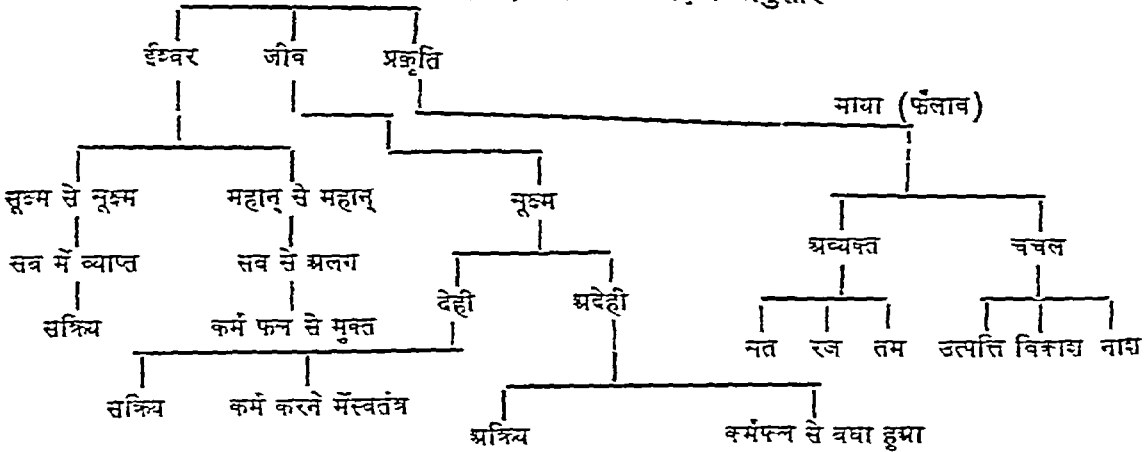
(३) ईश्वर के कार्य

वेद + उपनिषद् + षड-शास्त्र के अनुसार

सृष्टिकर्ता — सृष्टि नियामक — सृष्टि निर्णायक

संतकाल मे सगुण धारा के प्रवाहकों मे बंगाल के चैतन्य, जयदेव, महाराष्ट्र के रामदास तुकोजी, उत्तर-प्रदेश के सूर, तुलसी, दक्षिण के रामानुज और माधव वल्लभ, निम्बार्काचार्य राजस्थान की मीरा-बाई। निरगुण पंथ के प्रवाहक कबीर, रैदास, नामदेव और गुरु नानक देव हैं। इनमे सगुण धारा पुराणों और निरगुण धारा वेद उपनिषदों के अधिक निकट पड़ती है।

भारतीय दर्शन का यह सक्षिप्त सा इतिहास है। इस प्रकरण को समाप्त करने से पहले हम यह यह और बता दें कि सत काल की यह धारा ईश्वर के सम्बन्ध मे ही अलग हुई है। प्रकृति और जीव के बारे मे निरगुणोपासक संतों ने अधिक विचार नहीं किया है। हां, उन्होंने ईश्वर प्राप्ति के कुछ सरल से मार्ग अवश्य नियत किये हैं। इस प्रकार निर्गुणी संतों का दर्शन ऐसे ढग का बन जाता है जो पौराणिक भी है और वैदिक भी। अगले पृष्ठो में हम इसी दृष्टि से गुरमत पर विचार करेंगे।

सृष्टि-सृजन

सृष्टि की रचना किस प्रकार हुई ? इस प्रश्न के उत्तर में गुरुओं ने कहा है —

साचे ते पवना भया पवनै ते जलहोइ।" —श्री राग महला १ घरु १
जल ते त्रिभुवणु साजिआ घट घट जोति समोइ ॥

अर्थात्—उस सत (परमात्मा) से पवन हुआ। पवन से जल हुआ। जल से तीनो लोकों की रचना की। प्रत्येक घट (घटक, इकाई) में उसी का प्रकाश संजोया हुआ है।

और

रातो रुती थिती वार। पवण पाणी अगनी पाताल।
तिसु विचि धरती थापि रखी धरम साल ॥
तिसु विचि जीअ जुगति के रग।
तिनके नाम अनेक अनन्त ॥

अर्थात्—तिथि, दिन, ऋतु (सूर्य्य, चन्द्र) हवा, पानी, अग्नि और पाताल आदि लोक बनाकर उसने इनके मध्य पृथ्वी की स्थापना की। पृथ्वी के बीच मे अनेकों प्रकार के जीव बनाये हैं। जो अनगिनत हैं और जिनके नाम (प्रकार) भी अनेकों हैं। और वास्तविक बात तो यह है कि—

"जल, थल, महीअल पूरिआ स्वामी सिरजन हार।
अनेक भांति होइ पसरिआ नानक एक कार।। —गौडी थिती महला ५

अर्थात्—अपनी इस रचना में वह सृजनहार स्वयम पूर रहा (व्याप्त) है। पृथ्वी पर क्या जल और क्या थल सभी मे वह एक ओंकार (परमात्मा) अनेक भाति से पसरा (फैला) हुआ है। और यही क्यो ? वह तो —

"आपे रसिआ आपुहि रस आपे रावणहारु।
आपे होवे चोलडा आपे सेज भतारु ।।
रगी रत्ता मेरा साहिबु रवि रहिआ भरपूरि।—श्री राग महला ३ घरु ३

अर्थात्—आप ही रस है और आप ही उन रसों का भोक्ता है। अथवा आप ही उन रसो का पैदा करने वाला है ?

आप ही काया (शरीर) हो जाता है और आप ही उस काया कामनी के साथ रमण करने वाला भरतार (जीव) बन बैठता है। वह रंगीला अर्थात् अनेक दृश्य दिखाने वाला है। और जगत मे जो भी कुछ है वह उसमे पूर्ण रूपेण रमा हुआ है।

इसी बात को ईशोपनिषद् कार ने इस भाति कहा था।

"ईशावास्यमिद सर्व यत्किंच जगत्याम् जगत।"

अर्थात्—ससार में जो भी कुछ है वह सब ईश्वर से आच्छादित है।

"साचे ते पवना भया, पवनै ते जल होय।

सृष्टि रचना के सम्बन्ध में प्राय यही मत उपनिषद् और दर्शनों का भी है। 'गुरु-मत' कार 'साचे' (परमात्मा) से प्रथम ही पवन का होना मानते हैं। तैतिरीयोपनिषद् कार प्रथम आकाश और फिर पवन का होना कहता है। यथा —"आत्मन आकाश सभूत। आकाशाद्वायु। वायोरग्नि। अग्नेराय। अद्भ्य पृथ्वी। पृथिव्या औषधय।"—अर्थात् उस आत्मन (परमात्मा) से आकाश हुआ। आकाश से वायु हुई। वायु से अग्नि हुई। अग्नि से जल हुआ और जल से पृथ्वी हुई।

चू कि आकाश अगतिशील अदृश्य और अविनष्ट है शायद इसीलिये गुरुओं ने उसकी उत्पत्ति पर प्रकाश नहीं डाला। वैसे एक स्थान पर यह कहा अवश्य है कि "पउण पाणी सुन्ने ते साजे।" किन्तु शून्य (आकाश) का प्रयोग सत साहित्य में ईश्वर के लिये भी है।

सृष्टि कब रची गई। इसका विकास वादियों—भौतिक शास्त्र के जानने वालों ने—विस्तारपूर्वक वर्णन किया है। हिन्दू ज्योतिष दर्शन ने एक लम्बा समय बताया है।[१] किन्तु गुरु नानक देव और उनके परवर्ती गुरुओं ने इस सम्बन्ध मे जो कुछ कहा है—वह इस प्रकार है —

'कवणु सु वेला वखत कवणु कवणु थिति कवणु वारु।
कवणि सि रुती माहु कवणु जितु होआ आकारु।
वेल न पाइआ पडिती जि होवै लेखु पुराणु।
वखतु न पाइओ कादिआ जि लिखनि कुराणु।

२ लगभग पौने दो अरब वर्ष।

तिथि वारु न जोगी जाणै रुति माहु न कोई ।
जा करता सिरठी कउ साजे आपे जाणै सोई । (जपुजी)

अर्थात्—किस समय, किस महीने, किस ऋतु और किस तिथि वार मे सृष्टि रची गई। न तो उसका पता पंडितों को है न काजियों को, क्योंकि पुराण और कुराण जिन्हे कि लिखते और पढ़ते है इस सम्बन्ध मे कुछ नहीं बताते। योगियों को भी सृष्टि रचना के काल का पता नहीं है। इसे तो सही रूप मे वही जानता है जिसने इसे रचा है।

और यह प्रश्न तो ऐसा ही है जैसे कि कोई पुत्र से उसके पिता के जन्म के तिथि मुहूर्त्त पूछे।[1] जिसने इसे रचा है वही इसके रचना काल को जानता है और तो केवल विचार (अन्दाज) ही कर सकते हैं।[2] यही बात गीता में श्री भगवान कृष्ण ने भी कही थी। यथा—

"न मे विदु सुरगणा प्रभवं नमहर्षय.।
अहमादिर्हि देवाना महर्षीणा च सर्वश.।।" (अध्याय १० श्लोक २)

अर्थात्—मेरी (ईश्वर) की उत्पत्ति (रचना) के सम्बन्ध मे देवता और ऋषि मुनि भी नहीं जानते क्योंकि देवता और ऋषि मुनि मुझ (परमात्मा) से पीछे ही तो पैदा हुए हैं, उन सबका आदि पुरुष तो मैं (परमात्मा) ही हूँ।

सृष्टि की उत्पत्ति कहाँ से होती है और फिर प्रलय काल में यह सब भौतिक पदार्थ कहाँ चले जाते हैं ? इस सम्बन्ध मे 'गुरुमत' इस प्रकार है.—

"उतपति परलउ सबदे होवै। सबदे ही फिरि ओपति होवै। (माझ महला ३)

अर्थात्—उत्पत्ति और प्रलय शब्द (परमात्मा) से होती है। और प्रलय और उत्पत्ति के बीच के समय में सभी भूत उसी परमात्मा मे आरोपित रहते हैं।

"इकस ते होइउ अनता। नानक ऐकस माहि समाये जीउ।"—माझ अष्टपदी ५ महला ५

जिस प्रकार उत्पत्ति काल मे वह एक से अनेक होता है। उसी भांति यह सब कुछ प्रलय काल मे उस एक (परमात्मा) मे ही समा जाता है।

ईश्वर के सम्बन्ध में

सृष्टि प्रकरण मे हमने जो 'गुरुमत' के सृष्टि रचना सम्बन्धी हवाले दिये हैं उनसे यह स्पष्ट हो जाता है कि यह ससार जो हमारे सामने है। यों ही नहीं बन गया। इसका भी बनाने वाला है। और वह बनाने वाला कोई साधारण पुरुप नहीं अपितु मानव सृष्टि के प्रथम जनक ब्रह्मा का भी बनाने वाला है। विद्युत से अधिक गतिवान मन को भी उसी ने बनाया है। उसी ने ऊँचे से ऊँचे पहाडो को बनाया है और उसी ने (सूर्य चन्द्र बनाकर) युगों का निर्माण किया है। संसार के प्रथम ज्ञान-ग्रन्थ वेदों को भी उसी ने बनाया है।[3]

१. 'पिता का जनम कि जाने पूत। सगल परोई अपने सूत।
जिसकी सिरठी सो करणै हार। अवर न बूझ करत विचारे। (गौरी सुखमनी महला ५)

२ लगभग पौने दो अरब बर्ष।

३. "ओ ओंकार ब्रह्मा उतपति। ओ ओंकार कीआ जिनि चिति।।
ओ ओंकार सैल जुग भये। ओ ओंकार वेद निरमये। (रामकली महला ?)

उस महान् निर्माता का नाम क्या है ? इसका उत्तर प्रत्येक काल में भारत के ऋषियों, मुनियों और धर्म संस्थापकों की ओर से यही दिया गया है कि उसका नाम "ओं" है। जिसे भारत के पौराणिकों ने "ॐ" शैवों ने ऊँकार, जैनियों ने 'ॐ', आर्यसमाजियों ने 'ओ३म' कह के पुकारा और लिखा है गुरु नानक देव ने कहा वह '१ ओंकार' है। चूंकि वह सृष्टि के आदि से है। युगों के आदि से है। अब भी है। आगे भी रहेगा। अत उसका नाम 'सत' है।[1]

नाम

अत्यन्त आदिम युग में जब कि ज्ञान का प्रवाह आरम्भ ही हुआ था। ऋग्वेद के एक ऋषि ने भी यही कहा था—एक सद् विप्रा बहुधा वदन्ति" अर्थात्—उस सत को जो एक ही है–विद्वान लोग उसे अनेक नामों से पुकारते हैं। (ऋ० १, ३, ६४, ४६ और १०-११४-५) अनेक नामों से पुकारने का कारण उस 'सत' अथवा 'एकोंकार' के वे गुण और कृपायें हैं जिनका कि मनुष्य-समाज आभारी है। और कभी भी किसी भी युग मे उऋण नहीं हो सका है और न हो सकता है। वेद ने जहाँ उसे ब्रह्म, आत्मा, ईश, सत्य अमृत, भव स्व जन तप और मह आदि विशेषणों से याद किया तथा जहाँ उसे इन्द्र, वरुण, अग्नि, वायु, रुद्र आदित्य संज्ञायें दी। वहाँ पुराणों ने उसे विष्णु, नारायण, विश्वम्भर, लक्ष्मीपति, त्रिलोकी नाथ, असुर निकन्दन, हरि, आदि नामों से पुकारा। भक्तिकाल में राम, कृष्ण, दामोदर मुरारे, माधव, गोविन्द, गोपाल, दीन दयाल, कृपानिधान आदि मधुर नामों से उसे स्मरण किया जाने लगा।

गुरु नानक और उनके परवर्ती गुरुओं ने अपने समय के जन साधारण में प्रचलित सभी (परमात्म-बोधक) नामों को अपना लिया। उन्हीं विभिन्न नामों से हरि-स्मरण की प्रणाली डाली इसके अलावा उन्होंने मुसलमानों द्वारा प्रचलित अल्लाह और रब आदि नामों को भी गुरु-ग्रंथ साहब मे स्थान दिया।[2]

'गुरु-ग्रंथ साहिब' और 'दसम् ग्रंथ' मे परमात्मा के जो नाम आते हैं उनकी सूची इस प्रकार बन सकती है—

"एकोंकार, सत, अकाल पुरुष, हुक्मी, साहिब, दातार, निरजन, गुणनिधान, करता, निरकार, गोविन्द, नाथ, सिरजनहार, जगदीश, राम, सँवारनहार, हरि, माधव, अगमागम, अपारा, दु ख विसारणहार, ठाकुर, पारब्रह्म, बे अन्त, (अनन्त), भगवन्त, निरभय, ढेवणहार, अविनाशी, परमेश्वर, प्रभु, अन्तरजामी, विधाता, करतार, सच्चा पातिसाह, मुरारी, सत गुरु, कीता, दयाल, अमृत, साजन, मिहरवान, परवरदगार, करण कारणस्वामी, समदरसी, कृपाल, अल्लहु, अगम, अपार, अलख, कादिर, करीम, कबीर, कबिरा, रहीम, अगोचर, अभेवा, दीन दयाल, गोपाल, मधुसूदन, कृष्ण, केशव, गोपाल गहिर गंभीर, दु ख भजन, निधान, अमोले, निरभय, निर्वैर, अथाह, अतोले, अकाल-मूरति, अजौनि, स्वयंभु, ओंनमो, भगवन्त, गुसाई, जगन्नाथ, जगजीवन, भवभंजन, हृषीकेश, हरिमुकन्द, नारायण, नरहरि, वासुदेव, प्रीतम (आदि ग्रथ)[3]

१ आदि सचु जुगदि सचु। है भी सचु नानक होसी भी सचु। (जपु जी)

२ लक्ष्मी नारायण, मनोहर, वासुदेव, निरजन, भमसा कत, अविनाशी, अविगत, अगोचर, श्री रंग, वैकुंठ वासी, मच्छ, कच्छप, कर्म, केशव, निराहार, निर्वैर, चतुर्भुज, सांवला, वनमाली, कमल नयन, पीताम्बर, त्रिभुवनधारी, सारगधर, नीछला, निह केवल, धनंजय, पतित पावन, दु ख भजन, भव खडन, जोति स्वरूप, कान्हा, कृपाल, गोविंद, जगदीश, नारायण, चिन्तामणि, श्रीराम। (आदि ग्रथ)

३ पीछे से सिखों में परमात्मा का एक और नाम प्रचलित हुआ। "वाहि गुरु"

भगवन्त, भगवान, विष्णु, विश्वम्भर, ब्रह्म, चक्रमनि, चक्रभरने, पीताम्बर धारी, गोपीनाथ, रघुराय, सारंगधर, सॉवल, श्याम, अकाल, पुरुष वासुदेव मोहन, अच्युत ।

इन नामो में कुछ तो परमात्मा की सर्व व्यापकता को प्रकट करने वाले है—जैसे कि, अगम, अगोचर, अपरम्पार, पारब्रह्म, अलख, निरंजन, निरंकार आदि कुछ उनकी दयालुता के बोधक हैं जैसे, दीनदयाल, कृपानिधान, दातार, बचावनहार, पालनहार, सिरजनहार। कुछ नाम भक्तों ने उसके प्रति अपना अगाध प्रेम जताने के लिये रख लिये हैं। यथा पीउ (परमपिता) प्रीतम, मीत आदि। वाकी वे नाम हैं जो हिन्दुओं के अवतारों के थे,किन्तु व्यवहार मे परमात्मा को याद करने के लिये ही वरते जाते रहे हैं। यथा.-विष्णु, नारायण, नरहरि, राम, कृष्ण, रघुनाथ, जगन्नाथ, दामोदर मुरारे, गोपाल, गिरधर, गोवर्धनधारी आदि आदि। कुछ नाम ईश्वर सम्बन्धी मुसलमानों द्वारा पुकारे जाने वाले भी हैं। उदाहरण स्वरूप.-खुदा, मालिक, अलाहि, करीम, रहीम आदि, इन नामों का प्रचलन उस समय के आम पजाबियों में हो गया था।

गुरु ग्रंथ साहिव मे ईश्वर के समस्त नामों मे सवसे अधिक प्रयोग 'हरि' का हुआ है। वहुत कम पृष्ठ हैं। जिनमे हरि का नाम न आया हो और अनेकों पृष्ठों की लाइन की लाइन 'हरिजीउ' से ओत प्रोत हैं।

'वाहि गुरु' नाम ग्रंथ वाणी मे कहीं नहीं है। वैसे यह सिखों मे प्रयोग खूब होता है। वास्तव मे तो यह एक उल्लासपूर्ण नारा है ठीक वैसा ही जैसा कि "जय हो भगवन्" "धन्य हो परमात्मा" अथवा "सुभान अल्लाह" और "वन्डर फुल गौड" हैं।

वह कैसा है ? यह सिद्ध हो जाने अथवा मान लेने पर,कि परमात्मा "है" सदैव से यह प्रश्न उठता रहा है कि फिर वह है कैसा ? इस सम्बन्ध मे उपनिषदों ने कहा है .—

"वह सूक्ष्म से सूक्ष्म और महान् से महान् है।"

अणो रणीयानम् महतो महीयानम्—कठोपनिषद्

"वह एक से अनेक हुआ है ? यह संसार उसकी अनेकता का ही रूप है।

एकोऽहम् वहुस्यामि प्रजायेय । वेदान्त । तद्वैक्षत वहुस्याम प्रजायेति—छान्दोग्य

"उसका कोई स्थूल रूप (शरीर) नहीं। किन्तु वह देखता है, चलता है और सुनता है।"[1]

1 अपाणि पादो जवनो गृहीता।—श्वेताश्वेतरो०

"वह सवमे व्याप्त है और सवसे अलग भी है।"

बिनु पद चले सुने बिनु काना—रामायण

आसीनो दूर व्रजति शयानो याति सर्वत.।—कठोपनिषद्

"वह जाना नहीं जाता अपितु महसूस (अनुभव) किया जाता है।"

नैव वाचा ' तत्त्वभावे प्रसीददति—कठोपनिषद्

गुरु महानुभावो ने इन्हीं वातों पर इस प्रकार प्रकाश डाला है '—

"वीज वीज देखउ वहु प्रकारा। फल पाके ते एकोंकारा।

घटक वीज महि रवि रहिउ, जाके तीन लोक विस्तार।" (गौडी वावन)

अर्थात्—वह महान् इतना है कि तीनों लोकों मे उसका विस्तार है और सूक्ष्म इतना है कि वीज में भी समाया हुआ है। यही क्यों वह तो—

"सागर में महि बूंद बूंद महि सागरु। (रामकली महला १)

की भाति सूक्ष्म होते हुए महान् में और महान् होते हुए सूक्ष्म में व्याप्त है।

एकसु ते सब रूप हहि रगा।

पवणु पाणि वैसतरु सभि सहलगा।

भिन्न भिन्न वेखै हरि प्रभु रगा।

एक अचरज एको है सोई।

गुरमुखि विचारै विरला कोई—(गौडी गुआरो महला ३ अष्ट)

अर्थात्—वह एक है उसीसे यह रग विरगा ससार है। पवन, पानी और अग्नि जो भिन्न भिन्न दिखाई देते हैं सब उसी (एक) प्रभु के रंग है।

"करण कारण एकु ओही जिनि कीआ आकार।" (श्रीराग महला ५)

वही करता है। तत्व भी वही है।

एको एकु आपि इकु एकै एकै है सगला पासारे।

जपि जपि होए सगल साध जन एकु नामु धिआइ वहुतु उधारे।

अनिक विसथार एक ते भए।—(सुखमनी)—आसा महला ५

वह केवल एक है उस एक ने अपने एकाकी पन से एक एक करके इतना सारा विस्तार कर दिया है।

वह एक है और एक से अनेक हो गया है। (आपहि एक आपहि अनेक)—सुखमनी।

३— रूप न रेखा मिति नहीं कीमत सवद भेद पतियाइया (राग मारू सोलहे महला १)

तिस रूप न रेखा वरन न कोई गुरमति आप वुझावणिया (राग माझ महला ३)

तिस रूप न रेखिया घट घट देखिया गुर मुख अलख लखावणिया। (राग महला ४ अष्टपदी)

अर्थात्—उसका कोई भी न तो रूप (स्थूल) है और न रंग और वरण।

"सहस तव नैन नन नैन हहि तोहि कउ सहस नना एकु तोही।

सहस पद विमल नन एक पद गध विनु सहस तव गध इव चलत मोही।" (राग धना श्री महला १)

अर्थात्—अनेत्री होते हुए भी तेरे सहस्त्र नेत्र हैं। विना पॉव वाला होते हुए भी तेरे हजारों पग हैं। निर्गन्ध होते हुए भी हजार नासिकाओं से सूंघने वाला है।

४—नाना रूप धरे धरे वहु रगी सभते रहे निआरा।—राग विहागडा म० ६

सो अतरि सो वाहरि अनत। घटि घटि विआपि रहा भगवत॥

धरनि माहि आकास पइआल। सरब लोक पूरन प्रतपाल॥—सुखमनी

अर्थात्—वह अनन्त परमात्मा वाहर भीतर सव जगह व्याप्त है। पृथ्वी, आकाश और जितने लोक पाताल आदि हैं—उन सव मे वह घट घट वासी प्रभु समाया हुआ है। और भी—

नगर महि आप वाहरि फुनि आपन,

प्रभु मेरे को सगल वसेरा।

अपनी माया आप पसारी आप ही देखन हारा।

नाना रूप धरे वहु रगी सभते रहे निआरा॥

सभ तै नेर सभते दूरि। राग विहागडा महला ६

नानक आपि अलिपत रहिआ भरि पूर। (सुखमनी)

"कथना कथी न आवै तोटि। कथि कथि कथी कोटि कोटि।"

उसका कितना ही बखान करो उसका छोर नहीं आ सकता। करोड़ों ही उसका बखान करते-करते थक गये हैं।

बोल अबोल मधि है सोई। जस उहु है तस लखै न कोई। (गौडी बावन अखरी)

वह शब्द और नि:शब्द के बीच मे है और जैसा वह है उसे कोई देख नहीं सकता। इसलिये—

काहे रे बन खोजन जाई।

सरब निवासी सदा अलेपा तोही सगि समाई।

पुहप मधि जिउ बास बसतु है मुकर माहि जैसे छाई।

तैसे ही हरि बसे निरन्तर घट ही खोजहु भाई।—(महला ९)

ईश्वर है और वह सर्व व्यापक है। वही इस संसार मे पसरा हुआ है। उसी ने इस संसार को बनाया है। यह जान लेने के पश्चात् यह जानना भी आवश्यक है कि 'गुरु-मत' उसके सगुण निर्गुण होने के सम्बन्ध मे क्या विचार रखता है? क्योंकि 'गुरु-मत' भारत मे उस समय फैला जब कि यहाँ ईश्वर को सगुण और निर्गुण दो भेदों मे विभक्त किया जा चुका था। कुछ एक सम्प्रदाय सगुणोपासक और कुछ निर्गुणोपासक बन चुके थे।

सगुण निर्गुण

'गुरु ग्रन्थ' साहब के समग्र अध्ययन से जो नतीजा निकलता है उसके आधार पर यही कहना पड़ता है कि गुरु लोग सगुण और निर्गुण दोनों ही रूपों को मानते थे। हालाकि अधिक झुकाव उनका निर्गुण की ओर था। जैसा कि नीचे दिये हुए इन पदों से पता चलता है —

"अनेक रंग निरगुन एक रगा। आपै जलु आपहि तरगा

आप ही मन्दरु आपहि देवा। आपहि पुजारी आपहि सेवा।

खोजत खोजत दरसन चाहे। भांति भांति बन अवगाहे।

निरगुण सरगुण हरि हरि मेरा कोई है जीउ आणि मिलावै जीउ।—(माझ म० ५)

निरगुनीआर इआनिआ सो प्रभु सदा समालि।

जिनि कीआ तिसु चीति रखु नानक निवही नालि॥—गोड़ी सुखमनी म० ५ श्लोक ४

इतु निरगुनु गुनु कछू न बूझै।

बखसि लेहु तउ नानक सीझै—सुखमनी अष्टपदी

निरगुनीआरे की बेनती देहु दासु हरि राइओ। राग गोड़ी माझ महला ५

काम क्रोध लोभि मोहि मनु लीनो निरगुण के दातारे।—रागगोडी पूरबी म० ५

राखु पिता प्रभु मेरे। मोहि निरगुन सभगुन तेरे। गौडी म० ५

निरगुण सरगुण आपे सांई। राग माझ अष्टपदी महला ३

तूं निरगुण सरगुण सुख दाता। तू निरवाण सरगुण रसिया रंगराता॥ माझ महला ५

तूं आदि पुरखु अपरम्पारु करता जी तुधु जे वड अवर न कोई।

तूं जुगु जुगु एको सदा सदा तूं एके जी तूं निहचलु किरता सोई।

तुधु आपे भावै सोई बरतै जी तूं आपे करहि सो होई। राग आसा म० ४

तू दरिआउ सभ ही तुझ ही माहि। तुझ विन दूजा कोई नाहि।
जीअ जन सभि तेरा खेलु। राग आसा महला ४
सहस घटा महि एक अकासू। घट फूटे ते उही प्रगासू। (सूही महला ५)
वाजीगर डक वजाई। सभ खलक तमासे आई॥
वाजीगर स्वांग नकेला। अपने रग रवै अकेला—राग सोरठ कबीर वाणी
वाजीगरि जैसे वाजी पाई। नाना रूप भेख दिखलाई।
सागु उतरि थेंमिउ पासारा। तब एको एककारा।—सूही महला ५
चचलु सुपनै ही उरझाइओ। इतनी बूझै कवहू चलना विकल भइओ सगि माइओ। देवगधारी ५
इहि परपचु कीआ प्रभ सुआमी, सभु जग जीवनु जुगणे।
जिउ सललै सलल उठहि वहुलहरी, मिलि सललै सलल समाणे—नट म० ४
मेरे प्रभि साचै इकु खेलु रचाया, कोइ न किस ही जेहा उपाइआ—मारु महला तीन३
ब्रह्म दीसे ब्रह्म सुणिए, ब्रह्मो ब्रह्म वखाणिए।
आतम पसारा करण हारा, ब्रह्म भिन्न न जाणिए।

'गुरु मत' का यह मध्य मार्ग है। उन्होंने निर्गुण और सगुण दोनों विचार धाराओं के बीच ठीक वैसा ही एक मार्ग निश्चित कर दिया। जैसा कि द्वैत और अद्वैत के बीच विशिष्टाद्वैत का मार्ग है। वास्तव में तो गुरु लोग निर्गुण के गुण-गायक थे किन्तु वे सगुण की भी अवहेलना करना नहीं चाहते थे।[1] इस प्रकार हम उनके मत को "एक विशिष्ट प्रकार का निर्गुण-पन्थ"[२] कह सकते हैं।

श्री रामनुज के शिष्य सम्प्रदायों के सगुण ब्रह्म और गुरुओं के सगुण ईश्वर में एक बड़ा अन्तर यह है कि उनका ब्रह्म अवतार लेकर भगतों, सतों, देवताओं और गौ-ब्राह्मण की हित-साधना करता है। और गुरुओं का हरि अपने भक्तों को आत्म-दर्शन से तृप्त करता है और उनके लिए अपने अतुल भण्डारों से सारी नियामते वख्श देता है।

जिन जिन धर्मों और सम्प्रदायों ने ईश्वर के अस्तित्व को स्वीकार किया है। उन उन ने उसकी *ईश्वर की विशिष्टता* महानता के सम्बन्ध में अपनी अपनी रुचि के अनुसार अनेक खयाल जाहिर किये हैं। गुरु महानुभावों ने उसकी महानता को निम्न प्रकार व्यक्त किया है

(१) वह एक है और केवल एक है। दूसरा जो भी कुछ देखने में आता है वह उसी का पसारा अथवा खेल है। माया (प्रकृति) उसका कौतुहल और जीव उसका वैसा ही एक अंश है जैसा कि आकाश का

सभि गुण तेरे मै नाही कोइ। विणु गुण कीते भगति न होइ। जपु जी पौड़ी २१
निरकार आकार आपी निरगुन सरगुन एक। एकहि एक वखानने नानक एक अनेक—गौड़ी बावन अखरी

नोट—भाई काहनसिंह ने निरगुण का अर्थ विना गुण वाला किया है। जो हमारी सम्मति में उचित नहीं, आध्यात्मक पक्ष मे निर्गुण के अर्थ होते है प्रकृतिजन्य अथवा जीवोपम धर्म (जन्म, मरण, उत्पत्ति, लय) आदि से रहित। गुरुओ की दृष्टि में परमात्मा जन्म, मरण, उत्पत्ति, लय के प्रपचों से रहित होने के कारण निरगुण और सृष्टि का कर्ता, पोषक और विनाशक होने के कारण सगुन है। वे पौराणिक की भाँति साकार का अर्थ सगुण और निराकार का अर्थ निरगुण नहीं लेते थे।

घटाकाश होता है। और इसकी उपमा उन्होंने बाजीगर के खेल से दी है। उनका यह मत बहुत दूर तक वेदान्त से मिलता है। वेदान्त जिस प्रकार संसार को स्वप्न मानता है। उसी भाति गुरु महानुभाव भी मानते है। जीव और प्रकृति (माया) का वे नाम तो लेते है किन्तु उनकी दृष्टि मे इसकी महत्ता अधिक नहीं जब केवल (एक मात्र) ईश्वर ही है तो वह सब कुछ है। और उस सब कुछ की जितनी भी अभिव्यक्ति गुरु महानुभाव कर सकते थे। उतनी उन्होंने की है। इस अभिव्यक्ति में केवल ईश्वर ही दिखाई देता है और सब कुछ उसी के नीचे दब जाता है। यथा—

२—वह आज से नहीं बीच से भी नहीं। युगों के आरम्भ के आदि से है। सृष्टि के आदि से है। सदैव से है और सदैव रहेगा।

३. वह करता पुरुष है। कर्ता भी सम्पूर्ण सत्ता सम्पन्न।

४—वह निरभय है। क्योकि उसका प्रतिद्वन्दी कोई नहीं।

५—उसका किसी से भी वैर नहीं। क्योंकि सभी उसी के आश्रित हैं। कोई स्वतत्र नहीं।

६. वह अकाल है काल की परिधियो से बधा हुआ नहीं बल्कि काल का नियंता है।

७. वह किसी से पैदा हुआ नहीं है अपितु स्वयम्भू है।

८—वह सभी जीवों का दाता है। जो कुछ पदार्थ है उनका पैदा करने वाला वही है।

९—उसके पास अतुल भंडार है। कितना ही वह उसमे से दे। घट नहीं सकते।

१०—चॉद, तारे सूरज, पृथ्वी, हवा और पानी सभी उसके हुक्म मे है।

११—उसकी रचनाओ का छोर नहीं है। उसमे असख्य ब्रह्मण्ड और असंख्य आकास पाताल है।

गुरुओं का ईश्वर तो इतना महान है किन्तु ईश्वर के साथ से ही चली आ रही प्रकृति और जीवों की क्या स्थिति है यह जानना भी आवश्यक है।

जीव, प्रकृति

साख्यों, बौद्धों, जैनों और बार्हिस्पत्यों के अनुसार तो प्रकृति ही सब कुछ है किन्तु गुरुओंने प्रकृति को कोई अधिक महत्व नहीं दिया। न उसके विकास, पर। आध्यात्मिक वर्णन मे जो कुछ उनके कथनों मे प्रकृति (माया) के सम्बन्ध मे आ गया है उसमे से यत्र, तत्र फैले हुए कुछ उद्धरण यहॉ देते है—

प्रकृति क्या है?

कुदरति दिसै कुदरति सुणीऐ कुदरति भउ सुख सारु।
कुदति पाताली आकासी कुदरति सरब आकार॥
कुदरति वेद पुराण कतेबा कुदरति सरब बीचार।
कुदरति खाणा पीणा पैन्हणु कुदरति सरब पिआरु॥

कुदरति जाती जिनसी, रगी कुदरति जीअ जहान।
कुदरति नेकीआ कुदरति बदीआ कुदरति मानु अभिमानु॥
कुदरति पउण पाणी वैसतरु कुदरति धरती खाकु।
सभ तेरी कुदरति तू कादिर, करता पाकी नाई पाकु।
नानक हुकमै अदरि वेखै वरतै ताको ताकु॥ आसा महला १

अर्थात्—यह जो दृश्य और श्रवणीय तथा सांसारिक सुखों के पदार्थ हैं सब प्रकृति है। आकाश पाताल सर्व प्रकार के स्थूल रूप प्रकृति हैं। वेद, पुराण और कुरान आदि ग्रंथों मे जो ज्ञान है वह भी प्रकृति है। खाने, पीने और पहनने के समस्त पदार्थ प्रकृति है। जाति, वस्तु, रग और जहान भर के जीव जन्तु प्रकृति हैं। नेकी, बदी, मान, अभिमान, पवन, पानी, अग्नि, धरती और अणु परिमाणु सब प्रकृति हैं।

लेकिन यह जो प्रकृति के नाम से अभिहित होते हैं। सब हे प्रभु तेरी ही माया है। इसका सृष्टा तू ही है।[१] जो कि पवित्रतम् पवित्र है। नानक कहते हैं यह तेरे ही अनुशासन में सचालित होती है। और तू ही इसको देखता तथा निरीक्षण करता रहता है।

तुधु आप जगतु उपाइकै आपु खेल रचाइआ।
त्रै गुण आपि सिरजिआ माइआ मोहु वधाइआ॥[२]
(राग सोरठ महला ३ पौडी ३)

अर्थात्—हे प्रभु तैंने आप ही आप (बिना किसी की सहायता के) इस जगत को बनाकर अपने लिए एक खेल की रचना की है। त्रिगुणात्मक माया का सृजन करके तैंने ही मोह ममता की वृद्धि की है।

तू करण कारण समरथु हहि करते मै तुझ बिनु अवर न कोई।
तुधु आपे सिसटि सिरजीआ आपे फुनि गोई। (श्लोक महला ३ पौडी २६)

अर्थात्—हे, भगवन् तुम्ही इस सृष्टि की रचना में कारण और तुम्हीं करता हो, तुम आप ही सृष्टि को रचते हो और आप ही उसकी प्रलय करते हो।

केते जुग वरते गुबारै। ताडी लाई अपर अपारै।
धधूकारि निरालम बैठा ना तदि धधु पसारा हे।
प्रलय समय जुग छतीह तिनै वरताए जिउ तिसु भाणा तिवै चलाए।
तिसहि सरीकु न दीसै कोई आपे अपर पसारा हे।
गुपते बूझहु जुग चतुआरे घटि घटि वरतै उदर मझारे।
जुग जुग एका एकी वरतै कोई बूझै गुरु, विचारा हे।

अर्थात्—जब प्रलय हो जाती है तो प्रलय उत्पत्ति के बीच के समय में वह परमात्मा तारी लगा जाता है। उस दशा मे जो कि गुबार (धु ध) पूर्ण होती है। कितने ही युग बीत जाते हैं। उस धु धाकार मे वह निरावलंब (ठाली) बैठा रहता है और उस धु ध से पसारा (रचना) नहीं करता। इस स्थिति मे छत्तीस युग बीत जाते हैं। फिर जो कुछ उसे भाता है उसी भाति सचालित होता है। उसके कामों में कोई साझीदार तो है नहीं। आप ही अपना फैलाव कर लेता है। चारों युगों के कहा रहने के गुप्त रहस्य को पूछो तो उसका उत्तर यह है कि यह उस घट घट वासी प्रभु के उदर मे रहते हैं। प्रत्येक युग मे वह एक ही एक व्याप्त है। इस सम्बन्ध की पूरी जानकारी तो कोई विचार शील गुरु ही जानता है।

यह प्रश्न सदैव से उठता रहा है कि प्रलय काल में वह सारा पसारा अर्थात् माया और मायापति *रहे कहा?* रहते कहा हैं? इसका उत्तर गुरुओं ने जो दिया है वह यह है—

सु ने अलख अपार निरालमु सु ने ताडी लाइदा। मारु महला १

१ माया ह्येषा मया सृष्टा यन्मा पश्यसि नारद।
कृष्ण नारद वाद (महाभारत शान्ति पर्व ३३९-४४)
अर्थात्—हे नारद तुम जिसे देख रहे हो, यह माया मेरी ही उत्पन्न की हुई है।
२ त्रिभिर्गुणमयैभावैरेभि सर्वमिद जगत। गीता अध्याय ७ श्लोक १३
अर्नात्—यह सारा जगत मुझ (वासदेव) ने त्रिगुणात्मक माया से बनाया है।

अर्थात्—उस प्रभु ने शून्य मे तारी लगाई।

प्रलयकाल मे वह प्रभु शून्य मे तारी (समाधि) लगा कर रहा तो फिर वह शून्य क्या है ? इसके सम्बन्ध मे गुरु कहते हैं—

शून्य क्या है ?

सुन कला अपरपरिधारी। आपि निरालमु अपर अपारी।
आपे कुदरति करि करि देखे सुनहु सुन उपाइदा॥
पउण पाणी सुने ते साजे। सृसटि उपाइ काया गड राजे।

अर्थात्—अपार कला वाली शून्य वह स्वयम् निरावलंव परमात्मा ही है। वह शून्य से पैदा करके अपनी कुदरति को आप ही देखता है। पवन पानी आदि महातत्वों को वह शून्य से ही रचता है। और सृष्टि का सृजन करके उसके शरीर गढ़ मे (स्वयम ही) विराजता है।

सुंनहु धरति अकासु उपाय बिनु थमा राखे सचु कल पाए।
त्रिभवण साजि मेखुली माइआ आपि उपाइ खपाइदा।
सु नहु खाणी सु नहु वाणी। सुंनहु उपजी सु नि समाणी।
उतभुज चलतु कीआ सिरि करतै विसमादु सबदि दिखाइदा। (मारूमहला १)

अर्थात्—शून्य से पृथ्वी और आकाश को उत्पन्न किया जो कि विना खंभो के टिके हुए हैं। तीनो भुवनों को माया मेखुली से सजाया है। प्रकृति लय और उत्पत्ति भी शून्य से उपज कर शून्य मे ही समा जाती हैं। अडज, स्वेदज और उद्भिज जीवों को शून्य से पैदा करके आश्चर्यजनक काम उस प्रभु ने किया है।

परन्तु यह सब वास्तविक कुछ नहीं वाजीगर का खेल भर है। कारण कि "कीता वेखै साहिब आपणा कुदरति करे किचारो। कुदरति बीचारे धारण धारे जिन कीआ सो जाणे। आपे वेखे आपे बूझै आपे हुकमु पछाणे। जिमि कुछ कीआ सोई जाणं ताका रूप अपारो। नानक किसनो रोईए बाजी है यह ससारो।"

(बडहस महिला १ दखणी)

प्रकृति (कुदरति) अथवा माया सम्बन्धी इस वर्णन का सार यही है कि गुरुमत मे माया अकाल पुरुप के उस पसारे अथवा खेल का नाम है जिसे वह मर्जी से फैलाता है और अपनी मर्जी से ही समेट लेता है। वास्तव मे प्रकृति का स्वतन्त्र कोई अस्तित्व नहीं।

सभि तेरी कुदरति करता पाकि नाई पाकु। आसा महला १

यही बात गीताकार ने भी कही है और वेदान्ती भी यही समझते है कि प्रकृति परमेश्वर से ही उत्पन्न हुई है। "प्रकृतिं स्वामधिष्ठाय" (गीता अध्याय ४ श्लोक ६) अर्थात् प्रकृति अधिष्टाता में (परमेश्वर) हूँ।

प्रकृति अथवा माया के वर्णन के वाद अब हम यह देखते हैं कि जीव के सम्बन्ध मे गुरुओं का मत क्या है ? मारू महला १ मे गुरु नानक कहते हैं—

"पंच ततु मिलि काइआ कीनी। तिस महि राम रतन लै चीनी।
आतम रामु रामु है आतम हरि पाइऐ सबदि वीचारा हे।" ७

अर्थात—पाच तत्वों को मिलाकर शरीर की रचना की। और फिर उस शरीर मे रामरतन (जीव) की स्थापना कर दी। आत्मा (जीव) राम (ईश्वर) है और राम (ईश्वर) आत्मा (जीव) है। जो शब्दो के रहस्य को जानते हैं वे ईश्वर को प्राप्त होते हैं।

"नउ घर थापे थापन हारे । दसवा वासा अलख अपारे ।—मारू महला १

अर्थात्—इस शरीर में उस स्थापन कर्त्ता ने नौ घरों की स्थापना की और दसवां घर बनाया अपने अथवा आत्मा के निवास के लिये ।

जीआ अदरि जुगति समाइ रहिओ निरालमु राइआ ।
जग तिसुकी छाइआ जिस बापु न माइआ ॥ मारू महला १

अर्थात्—वह निरावलम्ब प्रभु युक्ति पूर्वक जीवों के अंदर समा रहा है। और यह जगत उस प्रभु की छाया (रचना) है जिसके न माँ है और न पिता।

इन्हीं बातों को गुरु अमरदास जी ने रामकली राग (आनंद) में इस प्रकार कहा है.—

ऐ शरीरा मेरिआ हरि तुम महि जोति रखी ता तू जग महि आइया ।
हरि जोति रखी तुध विच ता तू जग महि आया ।
हरि आपे माता आपे पिता जिनि जिउ उपाइ जगतु दिखाइआ
गुरु परसादी बूझिआ ता चलतु होआ चलतु नदरी आइआ ।
कहै नानक सृसटि का मूलु रचिआ जोति राखी ता तू जग महि आइआ

अर्थात्—ऐ! मेरे शरीर तुझ में परम पिता परमात्मा ने प्रकाश किया है तब तू इस ससार में आ सका है। तेरे मे प्रभु ने प्रकाश रखा है तब इस जगत मे आया है। प्रभु के न कोई मां है और न बाप। वे स्वयम ही मा है स्वयम ही पिता। ऐसे नकुल (अकुल) प्रभु ने जीव की उत्पत्ति करके ससार का दिखारा किया है।

गुरु के प्रसाद (आशीष) से मैं यह समझ सका हू कि यह शरीर चलने वाला अथवा चैतन्य होगया है और चलता हुआ नजर आता है। ऐ मेरे शरीर सृष्टि के मूल और रचनाकर्त्ता प्रभु ने जब तेरे अन्दर प्रकाश स्थापित किया है तब तू इस संसार मे आ पाया है।

गुरु अर्जुन देव कहते हैं। उस प्रभु की सृष्टि मे असख्य जीव हैं। जो चौरासी लाख योनियों मे फैले हुए हैं। उनमें मनुष्य को प्रभु ने श्रेष्ठता दी है। यथा —

"लख चौरासीह जोनि सबाई। माणस कहि प्रभि दीई वडिआई।
इसु पउडी ते जो नर चूके। सो आइ जाइ दुखु पाइदा।"

—मारू सोलहे महला ५

इस सम्बन्ध में सब मिलाकर गुरुओं का यही मत है कि अंश रूप से परमात्मा ही जीव है। ठीक उसी प्रकार जिस प्रकार कि आग से चिनगारियां, जल से तरगें और मिट्टी से कण[1] पृथक होते हैं। ईश्वर से जीव पृथक होकर अनेकों योनियों (चोलों) में चले जाते हैं और फिर उसी परमात्मा में लीन हो जाते हैं।

१—जैसे एक आग ते कनूका कोट आग उठे निआरे निआरे हुइके फेरि आग में मिलाहिगे।
जैसे एक धूरते अनेक धूर धूरत हैं, धूर का कनूका फेरि धूर ही समाहिगे।
जैसे एक नद ते तरग कोट उपजत हैं पान के तरंग सबै पान ही कराहिगे।
तैसे विश्व रूप ते अभूत भूत प्रगट होइ ताही के उपज सब ताही में समाहिगे।
—(अकाल उस्तुति १७—२)

ऊपर के इन वाक्यो से हमे यह तो पता चल गया कि जीव ईश्वर का अंश है और जीव जिन चोलों को धारण करता है उनका निर्माण पाच तत्वों से परमात्मा द्वारा होता है।

गुरुमत मे प्रकृति की कोई स्वतन्त्र स्थिति न होने के कारण जीव की स्थिति भी अधिक प्रकाश मे नहीं है। (वैसे उनका यह कथन वहुत अंशो मे वेदान्त से मिलता जुलता है) क्योकि वह पूर्ण रूपेण ईश्वराधीन है। जैसा कि नीचे की इन वाणियों से पता चलेगा।

जीव की स्थिति क्या है ?

"वसतु माहि लै वसत् गडाई। ताहू भिन्न ना कहना जाई। (सुखमनी)

अर्थात्—एक ही वस्तु से कोई दूसरी वस्तु वनाई जाय तो वह भिन्न नहीं कही जा सकती। उदाहरणार्थ सोने से हार वनवालो, करधनी, कड़े और छाप, छल्ले कुछ वनवालो नाम तो इनके अलग-अलग अवश्य पुकारे जायेंगे किन्तु उनमे जो पदार्थ है वह तो सोना ही कहा जायगा। आकृतियों की विभिन्नता से उसके मूल रूप मे कोई अन्तर नहीं पड़ता।

जिउ जल महि जल आई खटाना। तिउ जोती सन जोति समाना।
मिट गये गवन पाई विसराम—

अर्थात—जिस प्रकार जल, जल मे आकर एक हो जाता है त्यों ही यह (सूक्ष्म) प्रकाश वाला जीव (महान्) प्रकाश (परमात्मा) मे विलीन हो जाता है।

कारण कि:—

"ब्रह्म महि जन जन महि पार ब्रह्म
ओति पोति रविआ रूप रंग। —सुखमनी

ब्रह्म मे जीव है और जीवो में ब्रह्म है वह सभी रूपों और रंगों अर्थात आकार प्रकार वाले जीवों मे रसा हुआ है।

जीव जव परमात्मा का ही अंश है तो उसमें उसके कुछ तो गुण होने ही चाहिये। इस सम्बन्ध मे गुरु महानुभावों का कहना है।

अजर-अमर

"ना जिउ मरै न डूबै तरै। जिनि किछु कीआ सो किछु करै।"[1] —राग गौडी महला १
मरणहार यह जीअरा नाहीं —राग गौडी महला ५
ना जिउ मरै न कवहू छीजै।" राग वडहस महला ५

अर्थात—वह अजर अमर है। साथ ही एक रस अथवा सम है न घटता है न वढ़ता है।

अपने पिता की भांति वह जीव अजर और अमर तो है किन्तु अधिकार इसके कुछ नहीं हैं। यह जो कुछ करता है वे कर्म भी इसकी निजी प्रेरणा के नहीं होते। कहा है.—

अधिकार

"मारै राखै एको आपि। मानुख के किछु नाही हाथि।
तिसका हुकमु बूझि सुख होई। तिसका नामु रखु कठ परोइ।"—'सुखमनी'

अर्थात्—जैसे वह प्रभु रखेगा चाहे मारकर (दुख से) चाहे रक्षा (सुख) मे वैसे ही रहना

१—नैन छिदन्ति शस्त्राणि नैन दहति पावक (गीता)

पड़ेगा। (इसमे) मनुष्य का कुछ वश नहीं।

तिसके हुक्म (रजायुस) को समझ लेंने से सुख होता है इसलिये उसके नाम को कंठ में पिरोलो अर्थात् एक क्षण भी नाम लेना मत भूलो।

गुरु अर्जुनदेव ने अपनी इस बात को और भी अधिक स्पष्ट किया है।

वे कहते हैं —

"आगिआकारी वपुरा जीउ जो तिसु भावै सोई थीउ।
कवहू ऊची नीच महि बसै। कवहू सोग हरख रंगि हसै।
कवहू निंद चिंद विउहार। कवहू ऊभ अकास पइआल॥
कवहू वेता ब्रह्म बीचार। नानक आप मिलावण हार॥
कवहू निरति करै बहु भांति। कवहु सोइ रहै दिन राति॥
कवहू महा क्रोध विकराल। कवहू सरव की जोति रवाल॥
कवहू होइ वहै वड राजा। कवहू भेखारी नीच का साजा॥
कवहू अपकीरति महि आवै। कवहू भला भला कहावै।
जिउ प्रभू राखै ततिही रहै। गुरु प्रसादि नानक सचु कहै।

× × × ×

कवहू कीट हसति पतंग होइ जीआ। अनिक जोनि भरमै भरमीआ।
नाना रूप जिउ स्वागी दिखावै। जिउ प्रभु भावै तिवै नचावै॥ (सुखमनी)

अर्थात्—जीव तो वेचारा आज्ञाकारी है। उस प्रभु को जो कुछ भाता है वही होता है।

जीव तो कभी ऊँच और कभी नीच वन जाता है। कभी शोक में आकुल होता है। कभी सुख की रँगीनी से हँसता है।

कभी निंदनीय और कभी चिन्तनीय दशा मे पहुँच जाता है। कभी उच्च आकाश में और कभी पाताल मे जा पहुँचता है।

कभी (ब्रह्म) सम्बन्धी विचारों का वेत्ता वन जाता है (किन्तु) इन संयोगों का मिलाने वाला वह प्रभु ही है।

कभी अनेक भाति के नृत्य (नाच रंग) करता है। कभी रात और दिन सोनेमे ही विता देता है।

कभी अत्यन्त क्रोध से भयानक वन वैठता है। कभी उस सर्वेश्वर को (शीतल) जोति का रवा वन जाता है।

कभी राजा महाराजा हुआ फिरता है। कभी भिखारी होकर नीच वेश वाला वन जाता है।

कभी ऐसे काम करने लगता है जिससे उसका अपयश फैल जाता है और कभी ऐसे मार्ग पर चल निकलता है कि चारों ओर से भला ही भला कहा जाता है।

लेकिन सच तो यह है कि (इन कामों में वह स्वयम कुछ नहीं) जैसे प्रभु उसे रखते हैं। वैसे ही रहता है।

जब जीव की यह स्थिति है। उसके हाथ मे कुछ भी नहीं। कतई तौर पर वह ईश्वराधीन है तब वह क्या करे ? कैसे रहे ? जिससे कि उसका जीवन सुख और शांति पूर्वक व्यतीत हो जावे और अत मे आवागमन के चक्कर से छूट कर उस परमानन्द को प्राप्त करले जो मोक्ष कहलाता है।

सुख शाति और मोक्ष

इसके लिये गुरुओं ने जो उपाय बताये है। वे निम्न प्रकार है :—

(१) जीव अहम् (हउमे) को छोड़ दे और वह पूर्णत अपने को गोविन्दार्पण करदे। अर्थात् यह भाव बनाले "हे प्रभु मेरा तो सब कुछ तूही है।

(२) दूसरों की निदा स्तुति से अपने को अलग करले।

(३) साधु (अच्छे) लोगों की सगति मे रहे।

(४) ऐसे गुरु की शिक्षाओं पर चले जो सतगुरु अर्थात् परमात्मा को पहचानता हो।

(५) ससार मे इस भांति रहे जिस भांति कमल जल मे रहता है।

(६) चोरी, झूठ, पर स्त्री गमन, लोभ, मोह का परित्याग करदे।

(७) मन को अच्छे मार्ग और हरि चरणों मे प्रेरित करे।

(८) ऐसे धधे करे जो पर पीडक न हों, और न ईश्वरीय मार्ग मे बाधा डालने वाले हो।

(९) माया से विमुक्त होने का बराबर प्रयत्न करे।

(१०) सत्य ज्ञान को अवश्य प्राप्त करे। क्योंकि ज्ञान ईश्वर-मिलन के लिये आवश्यक है।

(११) जीवन के समस्त कार्मो से ऊपर भक्ति को समझे और सब प्रकार के प्रपंचो को छोड़ हरिजन बनने का यत्न करे।

संभव है गुरुओं ने इससे भी अधिक कोई और उपाय जीव के कल्याण के लिये—उसके कर्त्तव्यों सम्बन्धी बताये हो। किन्तु हम जितना समझ सके है। यह तालिका उसी के अनुसार ही है।

साधारण भाषा मे अहम् का अर्थ "मैं ही हूँ" ऐसा होता है। इस अहम् को सिख साहित्य मे 'हउमे' कह कर याद किया गया है।

अहम्

अहम् से मनुष्य को बहुत हानि उठानी पड़ती है। यह सभी जानते है किन्तु जो लोग पाप और पुण्य मे भेद नहीं करते। स्वर्ग और नर्क के अस्तित्व को स्वीकार नहीं करते। ईश्वर को ठाली दिमाग की उपज बताते हैं वे अहम् पर ही जीते हैं। ईश्वर के भक्त अहम् को अपने प्रियतम से मिलने में दीवार मानते हैं। यही कारण है कि समस्त सन्त सम्प्रदाय अहम् के विरोधी रहे है। सिख धर्म के सस्थापकों ने अहम् की काफी भर्त्ससना की है। वे कहते हैं —

"हउ विचि आइआ, हउ विचि गइआ।
हउ विचि जम्मिआ, हउ विचि मुआ।
हउ विचि दिता, हउ विचि लइआ।
हउ विचि खटिआ, हउ विचि गइआ।

× × ×

हउ विचि मूरख, हउ विचि सिआणा।
मोख मुकति की, सार न जाणा।

हउ विचि माइग्रा, हउ विचि छाइग्रा।
हउमे करि करि जत उपाइग्रा।" —सलोक महला १

अर्थात्—अहम् के कारण ही आवागमन है। अहम् से ही जन्मना और मौत है। अहम् से ही सब प्रकार के लेन देन हैं और अहम् में ही मिलन विछुरन हैं।

× × ×

अहम् में मूर्ख है और सियानप भी है किन्तु ससारी बन्धनों से छुटकारा पाकर मोक्ष प्राप्त करने का सार (तत्व) अहम् में नहीं है। अहम् मे माया तो है ही किन्तु छाया अर्थात् थोथी वस्तु भी है।

× × ×

"ग्रन्तरि ग्रलखु न जाई लखिग्रा विचि पडदा हउमै पाई।"
माइग्रा मोह सभो जगु सोइग्रा इहु भरमु कतहु किउ जाई॥
—राग गौडी पूरबी महला ५

अर्थात्—अहम् का ऐसा पर्दा पडा हुआ है कि अन्तर मे बैठे प्रभु भी अलख हो रहे हैं। इस अहम् से पैदा होने वाले माया मोह मे सारा जगत सोया हुआ है। यह भ्रम कैसे मिटे?

हउमै मैला इहु ससारा। नित तीरथि नावै न जाइ ग्रहकारा।
बिनु गुरु भेटे जमु करे खुग्रारा।
सो जनु साचा जि हउमै मारै, गुर कै सबदि पच सहारे।
ग्रापि तरै सगले कुल तारे। गौडी महला ३

अर्थात्—यह ससार अहम् से मलीन हो रहा है। नित तीर्थों मे स्नान करने से भी यह अहम् (अहकार) नहीं जाता है। यदि इसे छुडाने वाला कोई सतगुरू नहीं मिला तो जिन्दगी को जम विगाड देगा।

वही सच्चा मनुष्य है जो 'अहम्' को मार देता है। गुरु उपदेशों से काम, क्रोध, मोह, लोभादि पाच शत्रुओं का विनाश कर देता है। ऐसा मनुष्य स्वय तो (इस भव से) पार हो ही जाता है अपितु अपने समस्त कुटुम्ब का निस्तार भी कर देता है।

'त्रैगुण मेट चौथे चितु लाइग्रा। नानक हउमै मारि ब्रह्म मिलाइग्रा।' राग गौडी महला ३

अर्थात—अहम् को मारने का एक उपाय है। माया के तीनो गुणों (सत, रज तम मे निवृत्त होकर चौथी अवस्था (उन्मन अथवा उदासीन वृत्ति) में चित का लगाना। अहम् के मरने से ब्रह्म की प्राप्ति हो जायगी।

× × ×

हउमै वडा गुवार, है हउमै विचि बुझि न सके कोई।
हउमै विचि भगति न होवई, हुकमु न बूझिग्रा जाइ।
हउमै विचि जीउ बधु है, नामु न वसै मन ग्राइ। —वडहस महला ३

अर्थात—अहम मे बडा गुवार है, अहम् के होते हुए कोई (सत्य) को नहीं समझ सकता है और न 'अहम' के होते हुए भक्ति हो सकती है। और न ईश्वरीय आदेश को समझा जा सकता है।

'अहम्' जीव के लिये बन्धन है। इसके होते हुए परमात्मा का नाम भी मन में आकर नहीं बसता। क्योंकि —

हउमै नावै नालि विरोधु है, दुइ न वसहि इक ठाइ ।
हउमै विचि सेवा न होवह, ता मनु बिरथा जाइ ।"

अर्थात्—'अहम्' और राम नाम मे विरोध है। दोनों एक स्थान पर नहीं रह सकते कारण कि 'अहम्' वाले मनुष्य से सेवा नहीं हो सकती उसका मन व्यर्थ वातो मे फँसा रहता है।

साराश यह कि विना 'अहम्' (अहकार) के छोड़े जीव ईश्वर को नहीं प्राप्त कर सकता है।

लेकिन अहम् छूट कैसे ? यह एक वडा टेढ़ा प्रश्न है। उपनिषदों और स्वयं गुरुओं ने 'अहम्' को छोड़ने के जो साधन वताये हैं। उनमे संसार से विरक्ति और प्रभु के प्रति अनुरक्ति पैदा होना मुख्य है। किन्तु संसार से विरक्ति और प्रभु से अनुरक्ति विना इस ज्ञान के तो नहीं हो सकती कि ससार और प्रभु को समझा जाय। वस, इस समझने का नाम ही आध्यात्मिक ज्ञान है। आध्यात्मिक अथवा ब्रह्म ज्ञान के सम्बन्ध मे गुरुओं का मत इस प्रकार है—

"ब्रह्म गिआनी सदा निरलेप। जैसे जल महि कमल अलेप।
ब्रह्म गिआनी सदा निरदोख। जैसे सूरु सरब कउ सोख ॥
ब्रह्म गिआनी कै दृसटि समानि। जैसे राज रक कउ तुलि लागै पवान।

× × ×

ब्रह्म गिआनी निरमल ते निरमला। जैसे मैलु न लागै जला ॥
ब्रह्म गिआनी कै मनि होइ प्रगास। जैसे धर ऊपर आकासु।
ब्रह्म गिआनी कै मित्र शत्रु समानि। ब्रह्म गिआनी कै नाहीं अभिमानु।

× × ×

ब्रह्म गिआनी सदासद जागत। ब्रह्म गिआनी अह वुधि तिआगत।
ब्रह्म गिआनी कै मनि परमानन्द। ब्रह्म गिआनी कै घरि सदा आनद।
ब्रह्म गिआनी ब्रह्म का वेता। ब्रह्म गिआनी एक सगि हेता।
ब्रह्म गिआनी कै होइ अचिन। ब्रह्म गिआनी का निरमल मत। सुखमनी

× × ×

अर्थात्—ब्रह्म ज्ञानी सव तरह की वासनाओं से उसी प्रकार निरलिप्त रहता है जिस प्रकार कि कमल जल में रहते हुए पानी से भीगा हुआ नहीं होता।

जैसे सूर्य्य सर्व रसों का सोखने वाला होते हुए भी निर्दोष है उसी भाति ब्रह्म ज्ञानी (गृहस्थ-धर्म का पालन करते हुए भी) निर्दोष है कारण कि वह अपने कर्त्तव्य को पूरा करता है उनमे आसक्त नहीं होता।

जिस प्रकार कि पवन गरीव,-अमीर सभी को समान रूप से लगता है उसी प्रकार ब्रह्मज्ञानी सवको समान दृष्टि से देखता है (क्योंकि वह सव मे ही परमात्मा का प्रकाश देखता है)।

× × × ×

ब्रह्म ज्ञानी उसी भाति निर्मल से निर्मल है। जिस प्रकार (वहता हुआ) जल निर्मल रहता है।

जिस भाति पृथ्वी के ऊपर आकाश प्रकाशमान है उसी भांति ब्रह्म ज्ञानी के हृदय मे प्रकाश होता है।

ब्रह्म ज्ञानी अपनी ओर से न किसी से शत्रुता रखते हैं और न मित्रता और यदि कोई उनसे शत्रुता मित्रता करे तो वे न तो शत्रुता करने वाले से कुपित होते हैं और मित्रता करने वाले पर रीझते हैं। क्योंकि ब्रह्म ज्ञानी मान, अभिमान की परिधि से वाहर होते हैं।

× × ×

ब्रह्म ज्ञानी को जागृत अवस्था प्राप्त हो जाती है। उनका 'अहम्' भी छूट जाता है।

ब्रह्म ज्ञानी ब्रह्म (आत्म) ज्ञान का जानकार अथवा व्याख्याता हो जाता है क्योंकि ब्रह्म ज्ञानी का हेत (ध्यान) एक प्रभु से ही लगा रहता है।

ब्रह्म ज्ञानी का मन निर्मल हो जाता है और वह चिन्ताओं से छुटकारा पा जाता है।

आगे गुरु अर्जुनदेव ने यहाँ तक कह दिया कि—"ब्रह्म गिआनी मुकति जुगति जीअ का दाता। ब्रह्म गिआनी पूरन पुरखु विधाता" है। वेदान्त का भी यही मत है और इसीका प्रतिपादन गुरु नानक देव ने इन शब्दों मे किया था। "जिनी आत्म चिनिआ परमात्म सोई।"[1] अर्थात् जिन्होंने आत्मा अर्थात् आप को जान लिया वह परमात्मा ही है।

किन्तु ब्रह्म ज्ञान ऐसी चीज तो नहीं कि चाहा और हो गया। इस सम्बन्ध मे संत तुलसीदास ने कहा था—"विनु गुरु होइ कि ज्ञान, ज्ञानकि होय वैराग विनु। गावहिं वेद पुराण सुख कि लहहि हरि भगति विनु।" अर्थात् ज्ञान गुरु के विना नहीं हो सकता और विना वैराग के (ब्रह्म) ज्ञान का होना सम्भव नहीं। ब्रह्म ज्ञान की प्राप्ति के लिए पहले सतगुरु का मिलना आवश्यक है। सतगुरु ही होता है जो इस संसार के माया मोहों से विरक्ति (वैराग) करा सकता है और वैराग के उत्पन्न होते ही जीव अपने को पहचानने लगता है। 'ग्रंथ साहब' मे इसी हेतु सतगुरु की महिमा इन शब्दों मे गाई है।

गुरु की आवश्यकता

> जो सौ चंदा उगवहि, सूरज चढहि हजार।
> एंत चानण होदिआ गुरु विन घोर अन्धार। (वार आशा महला २)

अर्थात्—अनेक सूर्य्य चन्द्रों के प्रकाश से भी हृदय का अन्धेरा दूर नहीं हो सकता। वह तो गुरु शिक्षा ही से दूर होगा। किन्तु —

> "सत पुरख जिन जानिआ सतगुर तिसका नाउ।
> तिसके सग सिख उधरै नानक हरि गुन गाउ ॥" (सुखमनी)

अर्थात्—सच्चा गुरु वह है जो सत्य पुरुष (परमात्मा) को जानता है। उसके संसर्ग से ही शिष्य का उद्धार हो सकता है। और

> "जिसु मिलिए होइ अनदु, सो सत गुरु कहिए।
> मन की दुविधा विनसि जाइ हरि परम पद लहिए।" गौडी महला ४

अर्थात्—जिसके मिलने से प्रसन्नता प्राप्त हो, मन की दुविधा मिट जाय। हरि चरणों मे लौ लग जाय वह सत गुरु है।

दुविधा अथवा सशय[1] जहाँ मनुष्य की उन्नति मे बाधक हैं वहाँ उनके रहते परमात्मा मे कभी भी सच्ची निष्ठा नहीं हो सकती। इसलिये पाचवें पातशाह गुरु अर्जुन देव ने कहा था:—

१. आसा राग अष्ट पदी महला ७

ऐसा कोई जि दुविधा मारि भगावै । इसहि मारि राज योग कमावै । रहाउ—
जो इसु मारै तिस कउ भउ नाहि । जो इसु मारे सो नाभि समाहि ।
जो इसु मारै तिसकी त्रिसना बुझै । जो इसु मारे सु दरगह सिझै ।
जो इसु मारे सो धनवन्ता । जो इसु मारे सो पतिबन्ता ।
जो इसु मारे सोइ जती । जो इसु मारे तिसु होवै गती ।"—गोडी महला ५

अर्थात्—कोई ऐसा है जो इस दुविधा (सशय) को मार भगावे क्योंकि इसके मारने से राज· योग की कमाई हो सकती है । इसके मारने से तृष्णा बुझ सकती है । इसका मारने वाला ही सच्चा धनी और लाजवन्त है । इसका मारने वाला ही जती है । इसके मारने वाले को ही सुगति प्राप्त हो सकती है ।

भगवान श्रीकृष्ण ने अर्जुन से कहा था—"हे अर्जुन तू समस्त संशयों[1] (दुविधाओं) को छोड़कर मेरी बात पर विश्वास कर । यही बात गुरुओं ने जन जन से कही कि संसार के दुखों से छुटकारा पाने के लिये, चौरासी के चक्कर से बचने के लिये, जम के दण्ड से विमुक्त होने के लिये, नर्क यातनाओं से बचाव के लिये सत गुरुओं की शरण में आओ । यथा —

"बलिहारी गुरुदेव चरन ।
जाके सग पारब्रह्म धिआइऐ, उपदेश हमारी गति करन ।
दूख रोग भै सगल बिनासै, जो आवै हरि सत सरन ।
आप जपै अवरहि नाम जपावै, बड़ समरथ तारन तरन ॥—सारंग महला ५

× × × ×

काटे कसट पूरे गुरु देव । सेवक कउ दीनी अपनी सेव ॥
मिट गई चित पुनी मन आसा । करी दइआ सतगुर गुण तासा ॥
दुख नाठे सुख आइ समाए । ढील न परी जा गुरु फुरमाए । —गौडी महला ५

× × × ×

गुरु का बचन सदा अविनासी । गुरु कै बचनि कटी जम फासी
गुरु का बचन जीअ कै सगि । गुरु कै बचनि रचै राम कै रगि

+ × × ×

गुरु कै बचनि नरकि न पवै । गुरु कै बचनि रसना अमृतु रवै ॥ —गौडी गुआरेरी महला ५

× × × ×

सतिगुरु सिख के बधन काटे । गुर का सिखु विकार ते हाटै ।
सति गुरु सिख कउ नाम धन देइ । गुर का सिख वडि भागी हे . —सुखमनी

× × × ×

मेरे मन गुर जे बडु अवरु न कोई । दूजा थाउ न को सुझै गुरु मेले सचु सोइ ।
सगल पदारथ तिसु मिले जिनि गुरु डिट्ठा जाइ । —रहाउ
गुरु चरणी जिनि मनु लगा से बड भागी माइ ।—श्री राग महला ५
गुरु मुखि नाद गुर मुखि वेदं, गुर मुखि रहा समाई
गुरु ईसरु गुर गोरख बरमा गुरु पारवती माई—जपुजी

१. 'संशयात्मा विनश्यति ।

अर्थात्—गुरुदेव के चरनों को वलिहारी है।

जिनके पास वैठकर पारब्रह्म पिता को स्मरण करने का अवसर प्राप्त हुआ है। गुरुदेव का उपदेश हमारी सुगति करने वाला है। जो भी कोई इन हरि के सन्तों की शरन मे आता है उसके भय, दुख और रोग सव मिटा देते है। ये सत (गुरु) आप हरि का नाम जपते हैं और दूसरों को जपाते हैं। इसलिए निस्तार करने मे यह वडे समरत्थ हैं।

× × × ×

पूरे गुरु ने अपनी सेवा देकर मेरे समस्त कष्ट दूर कर दिये हैं। सतगुरु के दया करने से मेरी मनोकामनायें पूरी हो गई हैं और चिंता मिट गई है। दुख नष्ट हो गये हैं और सुखों की प्राप्ति हो गई है। गुरु ने जो भी फरमाइश की उस सेवा मे मैंने ढील नहीं की है।

× × × ×

गुरु का वचन सदैव सत्य है। गुरु के वचन (आशीर्वाद) से जम का फन्दा भी कट गया है। गुरु का वचन जीवनदायी और राम के रग से भरा हुआ है।

× × × ×

गुरु वचनों पर चलने वाला नरक से वच जाता है, गुरु वाणी में अमृत वरसता है।

× × × ×

सच्चा गुरु अपने शिष्य के वधनों को काट देता है। और शिष्य समस्त विकारों को त्याग देता है। सच्चा गुरु अपने शिष्य को हरिनाम रूपी महाधन देता है। वह शिष्य वड़भागी है जिसको ऐसा गुरू प्राप्त है।

× + ◟ ×

मेरे मन मे तो गुरु से वडा कोई नहीं है। दूसरा मार्ग मुझे तो कोई सूझता नहीं। गुरु ने जिस मार्ग पर डाल दिया है वह सच्चा मार्ग है। उसको सभी पदार्थों—की प्राप्ति हो गई जिसने गुरु को पा लिया है। वास्तव में तो वे वडभागी हैं जिनका मन गुरु चरणों में लग गया है।

ईश्वर प्राप्ति के दोनों साधन नाद (शव्द) और वेद (ज्ञान) गुरु वचनों में हैं। गुरु ही नाद के आदि कर्ता शिव और गोरखनाथ हैं तथा वेद का प्रथम व्याख्याता ब्रह्मा भी गुरु ही है पारवती और सरस्वती मा भी गुरु हैं जो कि क्रमश नाद और वेद की प्रथम श्रोता हैं।[1]

गुरदेव माता गुरदेव पिता गुरदेव सुआमी परमेसुरा।
गुरदेव सखा अगिआन भजनु गुरदेव वधिप सहोदरा।
गुरदेव दाता हरिनामु उपदेसै, गुरदेव मतु निरोधरा।
गुरदेव साति सति वुधि मूरति गुरदेव पारस परसपरा।
गुरदेव तीरथु अमृत सरोवरु गुर गिआन मज्जनु अपरपरा।
गुरदेव करता सभि पाप हरता गुरदेव पतित पविन करा।

अर्थात्—गुरु माता है और पिता है। स्वामी है और ईश्वर है। गुरु ही अज्ञान का दूर करने वाला मित्र है। गुरु कुटुम्बी जन और मा जाया भाई है।

१ कहा जाता है कि निर्जन कैलास में जव शिवजी ने नाद किया तो वहां उसको सुनने वाली अकेली पारवती मां थी। और वेदो का प्रथम व्याख्यान भी सरस्वती देवी ने सुना था।

गुरु हरिनाम का उपदेश करने वाला (भक्ति) का दाता है। गुरु ही चित्त की वृत्तियों के निरोध करने वाला मंत्र है। गुरु शांति, सद्बुद्धि की मूर्ति और स्पर्श से ही लोहे को सोना बनाने वाला पारस है।

गुरु तीर्थों में अमृतसर है मन के मार्जन (शुद्धि) के लिये अगाध ज्ञान है।

गुरु ही पापों का हरने वाला कर्त्ता पुरुष है। गुरु ही गिरे हुए लोगों को पवित्र करने वाला है।

— गौडी बावन अखरी महला ५

× × × ×

अब प्रश्न यह होता है कि गुरु इतना समरथ और महान् क्यों होता है? इसका उत्तर यह है कि गुरु (१) ईश्वर की भक्ति करता है। (२) गुरु ईश्वर मिलन की साधना मे अपने को खपा देता है। (३) गुरु को ईश्वर के सिवा कुछ सूझता ही नहीं। वह उसके लिये बिना जल की मछली, परदेशी प्रीतम की प्रिया और बिछडे चातक की चकवी की भाति तड़पता है। इस तरह गुरु पूरा हरिजन है। सगुण की उपासना करने से वह भक्त है। आत्मज्ञान की साधना में सलग्न रहने से साध है और निर्गुण को पा लेने की तड़प में संत है।

गुरुमत के प्रवर्त्तकों ने इन तीनों ही प्रकार के हरिजनों को आदर दिया है और कहा है लोगो साधुओं की सगति करो, भक्त जनों से हरिकीर्तन सुनो और सतों की शरण मे जाओ। गुरु ग्रन्थ साहब मे स्थान-स्थान पर भक्त, साध और सतों की महत्ता पर प्रकाश डाला गया है। यथा —

"चरन साध के धोइ धोइ पीउ। अपि साध कउ अपना जीउ ।।
साध की धूरि करहु इसनानु। साध उपरि जाइये कुरबानु ।।
साध सेवा वडभागी पाईए। साध सगि हरि कीरतनु गाइऐ।
अनिक विघन ते साधू राखै। हरि गुन गाइ अमृत रस चाखै।" — सुखमनी

अर्थात् साधु के चरनों को धो-धो कर पीना चाहिये। अपना प्राण भी उसके अर्पण कर देना चाहिए। साधु की चरण रज भी पवित्र है। उसके ऊपर कुर्बान रहना चाहिये। साधु की सेवा वड़े भाग्य से मिलती है। उसके साथ मिलकर हरि कीर्तन करना चाहिये। साधु अनेको विघ्न बाधाओ से बचाने वाला है वह हरिगुण गाकर अमृत रस का आस्वादन करता है।

× × × ×

सुनि हरि कथा उतारी मैलु। महा पुनीत भये सुख सैलु।
बडे भाग पाइआ साध सगु। पारब्रह्म सिउ लागो रगु। - गौडी गुआरेरी महला ५

× × × ×

तेरी महिमा तू है जाणहि। अपाणा आपु तूं आपि पछाणहि।
हउ बलिहारी सतन तेरे। जिनि कामु, क्रोध लोभु पीठा जीउ।
तू निरवैरु सत तेरे निरमल। जिन देखे सभ उतरहि कलमल ।। - माझ महला ५

× × × ×

सतन की महिमा कवन बखानहु। अगाधि बोधि किछु मिति नही जानउ ।।
पारब्रह्म मोहि कृपा कीजै। धूरि सतन की नानक दीजै ।। —गौडी गुआरेरी महला ५

× × × ×

जेते माइआ रग रस बिनसि जाहि खिन माहि ।
भगत रते तेरे नाम सिउ सुख भुंचहि सभ ठाइ ।—आसावरी महला ५ घर ३
चल चित्त वित्त भ्रमाभ्रम जगु मोह मगन हित ।
थिरु नामु भगत दिडमती गुर वाकि सबद रतं ॥ —गूजरी महला १ घरू ४
आपि नचाए सो भगतु कहीऐ आपणा पिआरु आपि लाए ।
आपें गावें आपि सुणावें इसु मनु अन्धे कउ मारगि पाए ॥—गूजरी महला ३ घरू १
जो तुध भावहि सेई नाचहि जिन गुरमुखि सबदि लिव लाए ।
से भगत से ततु गिआनी जिन कउ हुकम मनाए ॥ —गूजरी महला ३ घरू १
सफलु जनमु भगतां कीता । घुर सेवा आपि लाए ।
सबदे राते सहजें माते अनदिनु हरि गुण गाए । —सोरठि महला ३

अर्थात्—परमात्मा की महत्ता को परमात्मा ही जानता है। और वह स्वयम क्या है ? इसे भी वह (परमात्मा) स्वयम् ही जानता है । मैं तो वलिहारी उसके सतों की हूँ, जिन्होंने काम, क्रोध, और लोभ को पछाड़ दिया है ।

हे ! भगवन तू जहाॅ निरवैर है। वहा तेरे सत निर्मल हैं। जिनके दर्शन से सब दोप दूर हो जाते हैं ।

× × × ×

संतों की महिमा को कौन वर्णन कर सकता है। वे अथाह हैं उनका बोध (जानकारी) करने स उनकी गम्भीरता की कुछ भी सीमा तो नहीं जान पाया हूॅ ।

× × × ×

संसार में माया द्वारा दिखाई देने वाले जितने भी रस रग हैं वे क्षण भंगुर हैं किन्तु हे परमात्मा ! तेरे भक्तजन सभी जगह सुख भोगते है ।

× × × ×

अनस्थिर वृत्ति वाला मन मोह में मगन होकर ससार में भ्रमाया है किन्तु भक्त जन परमात्मा के नाम को जो स्थिर है दृढ़ता के साथ पकड़े हुए हैं। और गुरु के उपदेशों में तल्लीन है ।

परमात्मा संसार को नचाता है किन्तु भगत वह है जो अपने प्यार को परमात्मा में लगाकर स्वयम परमात्मा को नचाये ।

भगत परमात्मा का ही गायन करता है उसे ही सुनाने को गाता है, और यह जो अंधा मन है। इसको सही मार्ग पर डाल देता है ।

ईश्वर को जैसा अच्छा लगता है वैसा ही नाच नाचता है। जिन गुरुमुखों (शिष्यों) ने ईश्वर में ध्यान लगाया हुआ है वही भगत हैं। वही तत्वज्ञानी हैं जिन्होंने परमात्मा को मना लिया है अर्थात अनुकूल कर लिया है ।

गुरु सेवा में अपने को लगाने वाले भगतों का जीवन सफल हो गया है। वे शब्द मे रगे हुए हैं सहजि में मगन हैं और रात दिन ईश्वर का गुण गान करते हैं।

'गुरुमत' के संस्थापकों का दृढ़ विश्वास था कि जो मनुष्य किसी अच्छे गुरु के उपदेशों के अनुसार चलता है। साधु संगति में रहता है। भगतों के साथ मिलकर हरि चर्चा करता है। संतों के पास बैठकर ईश्वर का चिन्तन करता है। वह अवश्य ही इस भव सागर से पार हो जायगा।

वास्तविक वात यह है कि जिस प्रकार के लोगों में हम वैठते है। उनके आचरणों का हम पर प्रभाव पड़ता है। हमारा मन आजाद अवश्य है किन्तु श्रवणों से जो सुना जाता है। आँखों से जो देखा जाता है, जिह्वा से जो चखा जाता है त्वचा से जो स्पर्श किया जाता है। नासा से जो सूंघा जाता है। उसका हमारे मन पर असर न पड़ता हो ऐसी वात नहीं है। श्रवणों से हम यदि किसी का विलाप सुने तो हमारे मन मे दया एवं करुणा उत्पन्न होगी। श्रृंगार रस के गाने सुनें तो मन में विषय वासना उत्पन्न होगी। जिह्वा से हम स्वादिष्ट पदार्थ खावे तो मन मे मधुरता आयेगी और सड़े गले खावे तो मन मे व्याकुलता पैदा होगी। त्वचा से हम यदि रेशम अथवा स्त्री केश जैसी कोमल वस्तुओं को छुएे तो मन मे गुदगुदाहट पैदा होगी और बिजली के तार को छू ले तो मन धड़कने लगेगा। फूलों को सूंघने से मन मे ताजगी आती है और दुर्गन्ध से मन में मिचलाहट पैदा होती है। सुन्दर वस्तुओं को देखकर चित्त प्रफुल्लित होता है और भयानक वस्तुओं को देखकर सिकुड़ता है। तात्पर्य यह है कि इन्द्रियो की स्थितियों का मन पर प्रभाव पड़ता है। अत मन को अच्छे रास्ते पर लाने के लिये हरिनाम, हरिस्मरण, हरि जाप हरि चर्चा और हरि दर्शन की लालसा पैदा करने का संत धर्म मे यह सर्वोत्तम साधन समझा जाता था कि व्यक्ति की समस्त प्रवृत्तियों को हरि मे केन्द्रित कर दो और यह सतगुरु, संत, साधु और भगत जन ही कर सकते थे अत प्रत्येक संत सम्प्रदाय ने इसी साधन पर जोर दिया और चूंकि सिख गुरु सत ही थे अत उन्होंने भी इसी साधन को मनुष्य के कल्याण का आधार माना।

मनुष्य के उत्थान और पतन का मुख्य कर्त्ता सदैव से और सभी मत मतान्तरों मे 'मन' माना गया है। अत. किसी ने उसे मारने की शिक्षा दी है। किसी ने वश मे करने की और किसी ने उसके रुख को मोड़ देने की। किसी ने यह भी कहा है कि मन दो है। एक वाह्य वृत्तियों वाला और एक अन्तर्वृत्तियों वाला। वाह्य वृत्तियों वाले मन को नष्ट करदो और अन्त वृत्तियों वाले मन को जगा दो।

बात सब की एक है। कहने के तरीके भिन्न-भिन्न अवश्य है। यहा हम मन के सम्बन्ध मे भारत मे प्रचलित कुछ मत उद्धृत करते हैं।

"मानसं प्राणिनामेव सर्व कर्मैककारणम्।
मनोनुरूपं वाक्य च वाक्येन प्रस्फुट मन.।" —नारद पचरात्र १-७-१८

अर्थात्—मन ही लोगों के सर्व कर्मो का एक मात्र कारण है। जैसा मन होता है। वैसी ही बात-चीत निकलती है और बातचीत से मन प्रगट होता है।

"मनो पुब्बङ्गामा धम्मा मनो सेट्ठा मनोमया।
मनसाचे पदुट्ठेन भासति वा करोति वा।
त तो न दुक्ख मन्वेति चक वा वहतो पद ॥'—धम्मपद

अर्थात्—सभी धर्म पहले मनमे उत्पन्न होते है। मन ही मुख्य है। वे मनोमय है। जब आदमी मलिन मन से वोलता व कार्य करता है। तब दुख उसके पीछे वैसे ही हो लेता है, जैसे (गाड़ी के) पहिए वैल के पैरों के पीछे हो लेते है। और मन साचे पसन्नेन भासति वा करोति वा। ततो न सुक्ख मन्वेति छाया व अन्त पाविनी।" अर्थात् जब आदमी प्रसन्न मन से वोलता व कार्य करता है तो सुख उसके पीछे छाया की भांति हो लेते है।

"न त माता पिता कयिरा अञ्ञे वापिच ञातिका।
सम्मापणि हितं चितम् सेय्य सोन ततो करे।" धम्म पद

अर्थात् - माता पिता और दूसरे नातेदार कोई भी मनुष्य की उतनी भलाई नहीं कर सकते हैं। जितना कि सुमार्ग पर गया हुआ चित (मन) कर सकता है।

"यथा गारं दुच्छन्नं वुट्ठी समति विज्झति।
एव अभावित चित रागी समति विज्झति ॥" धर्मपद ६

अर्थात्—जैसे कि घर की छत ठीक न होने पर वर्षा का पानी घर में प्रवेश कर जाता है उसी प्रकार असावधान रहने से चित मे राग प्रविष्ट हो जाते हैं।

"मन एव मनुष्याणा कारण वध मोक्षयो।
वन्धाय विषयासगि मोक्षे निर्विषय स्मृतम।"—मैत्र्युपनिषद ६-३-२

अर्थात्—मनुष्य के वन्धन या मोक्ष का कारण मन ही है. मन के विषयासक्त होने से वन्धन और निसर्ग होने से मोक्ष मिलता है।

मनस्ते महदस्तु च (महाभारत अश्वमेघ पर्व १०-२१)

अर्थात्—तू अपने मन को विशाल वना।

"मन प्रसाद सौम्यत्व मौनमात्म विनिग्रह।
भाव सशुद्धिरित्येतत्तयो मानसमुच्यते।" गीता अ० १७ श्लोक १६

अर्थात्—मन को शुभ विचारों से प्रसन्न रखना, सौम्यता धारण करना और अनाप शनाप न वोलना, सावधान रहना, भावनाओं को शुद्ध रखना मानस अथवा मन का तप है।

"अथाध्यात्म यदेतद्गच्छती वच मनोऽनेन-
चैतदुपस्मरत्यभीक्ष्णं सकल्प ॥ केनोपनिषद ४-५

अर्थात्—यह जो मन चलता सा दिखाई देता है। इससे लगातार ब्रह्म का स्मरण करे और उसी का सकल्प करे।

"यह मन सक्ती यह मन सीव। यह मन पांच तत्त का जीव ॥
यहु मन लै जं उनमनि रहे। तो तीन लोक को वाता कहे।"—गोरखवानी पद ५० वा

अर्थात्—यह मन ही शक्ति है। यह मन ही शिव है। पाच तत्व वाला जीव भी यह मन ही है जो कोई इस मन को लेकर उनमनि (संसार से उदासीन वृत्ति वाले) रहते हैं। वे तीनों लोकों के रहस्य को जान जाते हैं।

× × × ×

कै मन रहै आसा के पास। कै मन रहै परम उदास।
कै मन रहै गुरु के ओलै। कै मन रहै कामनि के खोलै।"—गोरख वानी
दावि न मारिवा, खाली न राखिवा जानिवा अगिन का भेक।

अर्थात्—या तो मन आशा के झूले में झूलता है। या एकान्त वास चाहता है। या गुरु के सहारे रह सकता है। अथवा स्त्री के अगल-वगल वहलता है।

न तो उसे दवाकर मारो क्योंकि मन को मारकर तुम कौनसा काम कर लोगे। अच्छे कामों का सकल्प भी तो मन मे ही होता है। न उसे खाली रक्खो कारण कि खाली मन मे शैतान का वास होता है। मनरूपी अग्नि (प्रकाश) के इस भेद को जान लो।

"मणु जाणइ उवएसडउ जहं सोवेइ अचितु।
अचित्तचित्त जो मेलवइ सोइ पुणु होइ णिचिंतु ॥—संत मुनि रामसिंह

अर्थात्—मन तभी उपदेश को समझता है, जब वह निश्चिन्त हो जाता है। और निश्चिंत वही होता है जो चित को अचित से अलग कर देता है।

मन मेरो गज जिहवा मेरी काती। मपि मपि काटो जम की फांसी—नामदेव

अर्थात्—मेरा मन गज है और जिह्वा केंची है। मन रूपी गज से नाप कर जिह्वा रूपी कैंची से मैं जम के फन्दे को काट रहा हूँ। भाव यह कि मै मन का उपयोग अपने पाप निवारण में कर रहा हूँ।

× × × ×

"कबिरा मनहि गयन्द है, आकुस दै-दै राखु।
विष की बेली परिहरी, अमृत का फल चाखु॥
मन के हारे हार है, मन के जीते जीत।
कह कबीर पिउ पाइये, मनही की परतीत॥
मन गयद मानै नहीं, चले सुरति के साथ।
दीन महावत क्या करै, अंकुश नाही हाथ॥
मन कुंजर महमंत है, फिरता गहर गभीर।
दोहरी तिहरी चौहरी, डारहु प्रेम जजीर॥"—'कबीर'

अर्थात्—मन हाथी रूप है। इसे अंकुश के द्वारा मन चाहे मार्ग पर चलने से रोको। विषय रूपी विष बेलि को उखाड़ कर फेक दो और अमृत फल को चाखो। स्वाद लो।

"मन से हार जाने पर (जीव की) हार है और मन को जीत लेने पर जीत क्योंकि प्रियतम (परमात्मा) तभी मिलेगा जब हमें मन पर विश्वास हो जायगा।

हस्ती रूपी मन (सहज ही) नहीं मानता, सुरति के साथ दौड़ा फिरता है। जिस महावत के हाथ में अंकुश नहीं है वह गरीब इसे कैसे वश में कर सकेगा।

मन मस्त हाथी है। वह गह्वर वनों मे फिरता है। उसका इलाज यही है कि प्रेम रूपी दुहरी, तिहरी और चौहरी जंजीरों से उसे जकड़ दिया जाय। क्योंकि यदि उसे मारा जायगा तो टुकड़े टुकड़े हो जायगा।[1]

चल मन, हरि चटसाल पढाउ।
गुरु की साठि ग्यान का अच्छर, बिसरै तौ सहजि समाधि लगाऊं।
प्रेम की पाटी सुरति की लेखनि, ररौ ममौ लिखि आक लखाऊं॥
इहि विधि मुक्त भये सनकादिक, रिदै विचार-प्रकाश दिखाऊ॥
कागद कँवल, मसि कर निर्मल, बिन रसना निस दिन गुन गाऊ।
कहि रैदास, राम भजु भाई, सत साखि दे बहुरि न आऊ।"—रैदास भगत

अर्थात्—मन चल तुझे भगवान् की पाठशाला मे पढ़ा दूं। उस पाठशाला मे छडी (उद्दण्ड बच्चों को पीटने का बेत) गुरु रूप है। ज्ञान रूप अक्षर हैं। इस पढ़ाई को तू भूलेगा तो मैं समाधि लगाकर तुझे ठीक करूंगा। अर्थात हिलने डुलने नहीं दूंगा।

उस पाठशाला मे प्रेमरूप पाटी (तख्ती) है और सुरति रूपी लेखनी (कलम) है। इस पट्टी पर मैं तुझे रा और म (राम) अक्षर लिख कर दिखाऊगा। सनक आदि मुनीश्वर इसी विधि से सांसारिक

१ कबीर मारों मन कु, टूक-टूक ह्वै जाय।

वधनों से छूटे थे। हृदय में सुविचारों का प्रकाश करना है।

जब तू इस पट्टी की पढ़ाई को समाप्त कर लेगा। तब (हृदय) कमल को कागज बना सुरतिरूपी निर्मल स्याही से हरिगुन गान का मौन पाठ लिखाऊंगा। इस सम्बन्ध में सतों की साक्षी है कि इस प्रकार से राम भजन का करने वाला आवागमन से मुक्त हो जाता है।

'मन निर्मल तन निर्मल भाइ। आन उपाइ विकार न जाइ ॥
जो मन कोयला तौ तन कारा। कोटि करै नहि जाहि विकारा ॥
जो मन विषहर तौ तन भुयगा। करै उपाइ विषै फुनि सगा ॥
मन मैला तन उज्वल नाही। बहुत पचिहारे विकार न जाही ॥
मन निर्मल तन निर्मल होई। दादू साच विचारै कोई ॥—'दादू दयाल'

चलुरे मन जहँ अमृत बना। निर्मल नीके संत जना।
निर्गुण नाउ फल अगम अपार। सतन जीवनि प्राण अधार।
सीतल छाया सुखी सरीर। चरण सरोवर निर्मल नीर।
सुफल सदा फल बारह मास। नाना वाणी धुनि परकास।
तहा बास बसि अमर अनेक। तहँ चलि दादू इहँ विवेक।—दादू दयाल

अर्थात्—मन की निर्मलता से ही शरीर निर्मल रह सकता है। दूसरा उपाय कोई नहीं। मन काला है तो शरीर भी काला है कितने ही उपाय करो विकार नहीं जा सकते। यदि मन विषधर है तो तन भयानक सांप है। यत्न करने से विष ही हाथ पडता है। मन मैला है तो शरीर उज्वल नहीं हो सकता। बहुतों ने उपाय किये हैं किन्तु वे पचकर हार ही गये हैं। मनकी निर्मलता से ही शरीर की निर्मलता है। यही सत्य है और इसी का विचार करना चाहिये।

भाव यह है कि शरीर के जो अन्य अग हैं वह दस इन्द्रिय मे विभाजित हैं। अत. चाहते हो कि हमारी आखें किसी को कुदृष्टि से न देखें। हमारे कान बुरी बात न सुनें (आदि) तो मन को स्वस्थ और निर्मल बनाओ।

मन निर्मल कैसे बने इसके उत्तर में दादू दयाल का दूसरा पद है जिस मे वे कहते हैं—

"अरे मन चल वहाँ चलें जहाँ निर्मल सत-जन हैं।

वहा उन्हों ने अमृत सदावर्त लगा रक्खा है। उन सतों का जीवन प्राण निर्गुन हरि के नाम जप का फल है वहाँ शरीर को सुखी करने वाली शीतल छाया है। निर्मल नीर वाले चरण-सरोवर हैं। नाना प्रकार की वाणियों के उपदेश रूपी सुन्दर फल,वहा बारह मास फलते हैं। वहा बसकर अनेकों ने अमरत्व को प्राप्त कर लिया है।

भाव यह कि मन सतजनों की सगति मे ही निर्मल हो सकता है क्योंकि वे अपनी अमृतमयी वाणी से सुन्दर उपदेश करते हैं। उनकी रहनी और ज्ञान चर्चा का प्रताप ही मनको निर्मल बना देता है।

मनके लिये सिख गुरुओं ने भी यह भाव जाहिर किये हैं जैसा कि नीचे लिखे उद्धरणों से प्रकट है—

"मन मुख मन अजित है, दूजै लगै जाइ।
तिसनो सुख सुपनै नहीं दुखै दुख विहाइ।

घर घर पड पड़ पडित थके, सिध समाधि लगाइ।
इहु मन वसि न ग्रावही, थके करम कमाइ।
भेख धारी भेख करि थके, अठसठ तीरथ नाइ।
मन की सार न जाणनी हउमै भरम भुलाइ।
गुरु परसादी भउ पइग्रा बड भाग वसिग्रा मन ग्राइ।
भै पइए मन वसि होग्रा, हउमैं सबद जलाइ।"—वार सोरठ महला ३

अर्थात्—स्वतत्र हुए मन का जीतना कठिन है। क्योंकि वह दूसरे ही मार्ग को ग्रहण कर लेता है। (और जिसका मन ऐसा हो गया है) तिसे स्वप्न मे भी सुख नहीं है। दुःख ही दु ख की वृद्धि है।

पंडित पढ़ते पढ़ते थक गये और सिद्ध समाधि लगाते लगाते, यह मन वश मे ही नहीं आता है। अनेकों वेशों वाले सम्प्रदायी वेश धरि धरि के थक गये। और तीर्थों मे जाने वाले अड़सठों तीर्थ की यात्रा करके थक गये।

वास्तव मे बात यह है कि यह लोग 'अहम्' के भ्रम मे भूले हुए हैं। इसलिये मन के सार को नहीं जान सके।

गुरु के प्रसाद से मेरा सौभाग्य है कि भयभीत हुआ मन वश मे आ गया है, कारण कि मैंने 'अहम्' को जला दिया है।

× × × ×

"गुरु मुख करणी कार कमावै। ता इस मन की सोझी पावै।
मन मैमत मैगल सिक दारा। गुरु ग्रकुस मार जीवालण हारा॥
मन ग्रसाध साधे जन कोई, ग्रचर चरै ता निरमल होई।
गुरु मुख इहु मन लइग्रा सवार, हउमै विचहु तजै विकार।"—धनाश्री महला ३

अर्थात्—मन की गति पर वही काबू पा सकता है। जो गुरुमुख होकर गुरु के बताये हुए कर्मों को करता है। मन मद मस्त हाथी के समान है। गुरु (मन्त्र) अंकुश है। जिसके मारने से इसे होश मे लाया जा सकता है।

इस असाध्य मन को वही सभाल सकेगा जिसका गुरु के बताये आचरणों पर चलने से मन निर्मल हो गया है।'

"मन कु चर ग्राइग्रा उदिग्राने, गुरु ग्रकुस सचु सबदु नीसाने।"
—राग गौडो ग्रष्टपदी महला १

अर्थात्—यह शरीर तो उदयान (गह्वर वन) है। इसमे विचरने वाला मन मस्त हाथी जैसा है। इसे वश मे लाने के लिये गुरु (मंत्र) अकुश और सत्य उपदेश निशाने है।

"साधो इहु मनु गहयो न जाई।
चचल त्रिसना सगि बसत है, याते थिर न रहाई॥"—गौडी महला ९

अर्थात—सतजनो! यह मन पकड़ मे नहीं आ रहा है। कारण चचल तृष्णा साथ मे वसी हुई है। वही इसे स्थिर नहीं रहने देती है। भाव यह कि मनको स्थिर करनेके लिये तृष्णाको छोडना पड़ेगा।

"मन हट करम कमावदे नित नित होइ खुग्रार।
ग्रतर साति न ग्रावई ना सच लगै पिग्रार॥"—श्रीराग ग्रष्टपदी महला ३

अर्थात्—ओ ! मन हठ करके जो तू (अकर्म) कर्म कर रहा है। इससे तो नित खराब ही होता है। तेरे इन कामों से न तो अन्त करण में शांति आ रही है और न उस सत्य सरूप परमात्मा में प्यार (ध्यान) ही लग रहा है।

"काइआ नगर इकु बालक वसिआ, खिन पल थिर न रहाई।
अनेक उपाव जतन कर थाके, बारबार भ्रमाई ॥"—बसत अष्टपदी महला ४

अर्थात्—शरीर रूपी नगर में मन रूपी एक चंचल बालक बसता है (यह इतना नट खट है कि) जो क्षण भर भी स्थिर नहीं रहता है। अनेक उपाय और यत्न किये गये हैं किन्तु यह बार बार भ्रम जाता है।

"मन खुट रह, तेरा नहीं बिसासु, तू महा उदमादा।
खर का पैखर तउ छूटै जउ ऊपर लादा ॥—बिलावल महला ५

अर्थात्—अरे मन बंधा रह तेरा विश्वास नहीं है। क्योंकि तू बड़ा उपद्रवी है। (जानता है) गधे के पैरों का रस्सा तब खोला जाता है जब उस पर बोझा लाद दिया जाता है। भाव यह कि तुझे सयम में रखने में ही हित है।

"इह मनु आरसी कोई गुरमुख वेखै,मोर्चा न लागै जां हउमै सोखै ॥"माझ अष्टपदी महला ३

अर्थात्—यह मन दर्पण है, जो कोई गुरुमुख हैं वही इसे देखते हैं। इस पर जग न चढ़ जाय। इसलिये इसके 'अहम्'को सुखा देना चाहिये। भाव यह है कि जैसा मन होगा वैसा ही तन होगा। स्वच्छ दर्पण में जिस भांति चेहरा अच्छा दिखाई देता है। वैसे ही स्वच्छ मन वाले की शारीरिक चेष्टायें भी अच्छी होती हैं।

"मनि जीते जगु जीत ॥ जपु

अर्थात्—मन को जीत लेने में ही मनुष्य की सच्ची जीत है।

× × × ×

सिख गुरुओं ने जहाँ अपने मन को वश में करने का उपदेश दिया है। वहाँ यह भी कहा है कि मन मुख लोग अर्थात् निगुरे भवसागर से पार नहीं हो सकते।

हरिरंग कउ लोचै सभ कोई, गुरमुख रंग चलूणा होई।
मनमुख मनमुख मुगध नर कोरा होई, जे सउ लोचै रंग न होवै कोई ॥—सूही महला ४

अर्थात्—सब कोई हरि रंग (हरि नाम के रंग) को पसन्द करते हैं और यह रंग गुरुमुख पर ऐसा चढ़ता है कि टिकाऊ रहता है। सार यह कि गुरु ऐसे (हरि प्रेम रंग में रंग देता है जो सहज ही नहीं छूटता। मन मुख मनुष्य बेरंग होता है। क्योंकि जो सब रंगों को देखता है उसे कोई भी रंग नहीं लगता।

"मन की मति तिआगहु हरिजन ऐहा बात कठैनी।
अनदिन हरि हरि नाम धिआवहु गुरु सतगुरु की मति लेनी।"—बिलावल महला ४

अर्थात्—हरिजनो ! मन मुख पने को छोड़ दो और रात दिन गुरु अथवा सतगुरु की सलाह लेकर हरिनाम का स्मरण करो।

"माइआ मोहु गुबार है, तिसदा न दिस्सै उरवारु न पारु।
मनमुख अगिआनि महा दुख पाइदे डुब्बे हरिनामु विसारि।"—सलोक महला ३

अर्थात्—माया मोह का जो गुबार है। उसका कोई ओर छोर नहीं दिखाई देता। मनमुख जो मूर्ख हैं वह यहाँ दुःख पाते है और हरिनाम को त्याग देने के कारण उस गुबार (भँवर) मे डूब जाते हैं।

"मन मुख करम कमावणे, जिउ दोहागणि तनि सीगारु।
सेजै कतु न आवही नित नित होइ खुआरु।
पिरु का महलु न पावही ना दीसै घरु बारु।"—श्री राग महला ३

अर्थात्—मनमुख का काम ऐसा है जैसे दोहागिनी स्त्री का शृंगार। क्योंकि वह नित नित शृंगार करके दुःखी होती है। कारण कि उसकी सेज पर उसका पति नहीं आता है। वह न तो पति के महल (अटारी) को पा सकती है और न उसे घर बार ही दीखता है। और जो —

"गुरमुखि सदा सुहागणी पिरु राखिआ उरधारि।
मिठा बोलहि निवि चलहि सेजै रवै भतारु॥"—श्री राग महला ३

अर्थात्—गुरमुख जो हैं वह सदा सुहागिन की भांति हैं। क्योंकि उसका पति उन्हे हृदय मे धारण किये रहता है। वह मीठा बोलती है। विनम्र होकर व्यवहार करती है। उसका पति उसकी सेज पर पौढ़ कर उसकी तृप्ति करता है।

भाव यह है कि जो लोग अपने मन के मुताबिक चलते हैं। उन्हे ईश्वर नहीं मिल सकता। ईश्वर तो उन्हीं लोगों को मिलेगा जो सतगुरुओं के बताए मार्ग पर चलते है अर्थात् हरि कीर्तन और हरि स्मरण मे जिनका मन लगा हुआ है।

सिख गुरुओं के कथनानुसार गुरुमुख लोगों के लिये यहाँ भी शाति है क्योंकि वह गुरु उपदेशों से माया मोह के फंदे से छूट जाता है और अपने 'अहम्' को त्याग कर प्रभु मे अपने को रमा लेता है। और उनका परलोक भी सुधर जाता है क्योंकि वह हरि रूप ही हो जाते हैं।

मनमुख गुरुओं की दृष्टि मे नदी किनारे का वृक्ष है।

गुरु मत में अधिक से अधिक जिस बात पर बल दिया गया है 'हरि नाम' का स्मरण है। साधु बड़ा इसलिये है कि वह हृदय को 'हरि आवास' बनाने लायक बनाता है। भगत बड़ा इसलिये है कि वह हरि दर्शनों का प्यासा है और गुरु बड़ा इसलिये है कि मनमुखों को हरि की ओर लगाकर उनके हृदय को शुद्ध बनाता है। सारांश कि यह सब इसलिये बड़े हैं कि उनका लक्ष्य 'हरिनाम' है। सिख गुरुओ का कोई वाक्य कोई उपदेश ऐसा नहीं जिसमे हरि और 'हरिनाम' का जिक्र न आता हो। उनकी दृष्टि मे जप, तप, संयम, वेद, पुराण और शास्त्र सब सार हीन हैं यदि वे हरि को बताने मिलाने और उसके प्रति प्रेम पैदा करने मे असमर्थ है। इसलिये जहां उन्होंने 'हरि स्मरण' की बार बार शिक्षा दी है और हरि स्मरण को ही मनुष्य का मुख्य कर्त्तव्य बताया है वहाँ उन्होंने नाम की महिमा पर भी बहुत कहा है। यथा —

नाम महिमा

"नाम के धारे सगले जन्त। नाम के धारे खड ब्रह्मण्ड॥
नाम के धारे सिमृत वेद पुरान। नाम के धारे सुनन गिआन धिआन।
नाम के धारे आगास पाताल। नाम के धारे सगल आकार॥
नाम के धारे पुरिआ सभ भवन। नाम कै संगि उधरे सुनि स्रवन।
करि किरपा जिसु आपनै नामि लाए। नानक चउ पद महि सो जन गति पाये। सुखमनी।

अर्थात्—सब जीव जन्तु नाम के ही आधार पर हैं। सारे ब्रह्माड भी नाम पर आश्रित हैं। स्मृति. वेद और पुराणों का आधार भी (हरि) नाम ही है। श्रवण मनन और ध्यान भी नाम का ही किया जाता है। आकाश, पाताल और सभी साकार वस्तुओं का धारण करने वाला वह नाम रूप हरि नगर और नगरों के घर सभी नामाधार हैं। नाम के धारण करने और श्रवण से अनेकों का उद्धार हो गया है।

कृपा करिके ईश्वर ने जिन्हे अपने नाम स्मरण में लगा लिया है। वह आदमी चौथी अवस्था (तुरीय) को प्राप्त होकर सुगति पा जायेंगे।

महान् भक्त तुलसीदास ने भी हरि नाम की खूब प्रशसा की है उन्होंने कहा है राम से राम का नाम कहीं बड़ा है। क्योंकि राम ने तो एक अहिल्या का ही उद्धार किया था। राम के नाम ने भील, अजामिल, गीध आदि अनेकों पापियों को निस्तार दिया।

नाम के चमत्कारों की प्रशसा मे गुरु लोगों ने कहा है "हथ कंगन को आरसी क्या"? अपना पुराना इतिहास उठाकर देख लो 'नाम स्मरण' से कितनों का कल्याण हो गया है।

"सुणि साखी मन जपि पिआर। अजामिलु उधरिआ कहि एक बार।
वालमीकै होआ साध सगु। ध्रू कउ मिलिआ हरि निसग।,
तेरिआ संता जाचउ चरन रेन। ले मसतकि लावउ करि किरपा देन। १।
गनि का उधरी हरि कहै तोत। गजइन्द्र धिआइओ हरि कीओ मोख। *। रहाउ।*
विप्र सुदामे दालदु भज। रे मन तू भी भजु गोविन्द।
बधिकु उधारिओ खमि प्रहार। कुविजा उधरी अंगुसट धार।
विदुर उधारिआ दासत भाइ। रे मन तू भी हरि धिआइ॥
प्रहलाद रखी हरि पैज आप। बसत्र छीनत द्रोपदी रखी लाज।
जिनि जिनि सेविआ अतबार। रे मन सेवि तू परहि पार।
धन्नै सेविआ बाल बुधि। त्रिलोचन गुरि मिलि भई सिधि।
बेणी कउ गुरि किओ प्रगासु। रे मन तू भी होइ दासु।
जैदेव तिआगिओ अहंमेव। नाइ उधरिओ सैनु सेव।
मनु डीगि न डोलै कहूँ जाइ। मन तू भी तरसहि सरणि पाइ।
जिह अनुग्रह ठाकुरि किओ आपि। से तै लीन्हे भगत राखि।
तिनका गुण अवगुण न विचारिओ कोइ। इह विधि देखि मनु लगा सेव।
कबीरि धिआइओ इक रंग। नाम देव हरि जीउ बसहि संगि।
रविदास विआए प्रभ अनूप। गुरु नानक देव गोविन्द रूप। वसंत महला ५ घरु १ दुतुकिआ

अर्थात्—अरे मन इन घटनाओं (साखियों) को सुन कर प्रभु का प्यार के साथ स्मरण कर। अजामिल तो एक वार के उच्चारण से ही तर गया।

वालमीक को साधुओं के सत्संग से (हरिनाम) का बोध हो गया और फिर उसने (हरि स्मरण से) अपना उद्धार कर लिया। और ध्रुव को तो परमात्मा (सच्चे प्रेम के कारण) विना ही किसी संग के मिल गये।

गोतम की त्रिया (अहिल्या) चरण रज के मस्तक पर लगते ही तर गई।

गणिका अपने तोते को राम नाम पढ़ाने से ही पाप निवृत्त हो गई और स्वर्ग को चली गई। और गजेन्द्र ने ग्राह (मगर) से पकड़े जाने पर जब हरि नाम स्मरण किया तो उसे भगवान ने ऐन मौके पर ग्राह से मुक्त कर दिया।

अरे मन तू भी परमात्मा का भजन कर, देख उसने सुदामा जैसे दरिद्र ब्राह्मण के दुख दूर करके उसका वेड़ा पार कर दिया।

वधिक का उद्धार खभ के प्रहार से कर दिया। कंस की दासी कुब्जा का उद्धार पैर के अगूठे को पैर से दवाकर कर दिया।

महात्मा विदुर को उसके दास भाव की भगति से प्रसन्न होकर उद्धार दिया। अरे मन तू भी अपने उद्धार के लिये हरि स्मरण कर।

प्रह्लाद की पैज (हरि नाम न छोड़ने की जिद) को अहंकारी हरिणाकुश को जिसने कि रात दिन घर वाहर और देव दानव तथा मनुष्य किसी से भी न मरने के वरदान हासिल कर लिये थे—मार कर रक्खा। और द्रोपदी की—दुष्ट दु शासन द्वारा वस्त्र हरण करके नंगी होने से बचाकर लाज की रक्षा की। जिस जिसने भी हरिनाम को याद किया चाहे अंत समय मे ही सही उनका उद्धार हुआ। अरे मन तू भी हरि स्मरण कर जिससे तेरा वेड़ा पार हो जाय।

धन्ना भगत ने वाल वुद्धि से उसे याद किया तो उसकी वालहट को पूरा किया और त्रिलोचन को गुरु को मिलने पर उनके वताये मार्ग से सिद्धि हुई।

वेणी भगत के हृदय मे गुरु ने राम नाम का प्रकाश किया अरे मन तू भी भगवान का सेवक वन जा।

जयदेव ने हरि दर्शन के लिये अहंकार को छोड़ दिया। हरि भगत के कारण सेना नाई का उद्धार हो गया। मन तू भी डिगै मत हरि शरण मे जाने से तू भी तर जायेगा।

उस प्रभु ने जिस पर भी दृष्टि की, उसका ही निस्तार कर दिया उसने किसी के गुण अवगुणों का खयाल नहीं किया इसी भरोसे पर तू भी उसकी शरण मे जा।

कवीर ने उसकी उपासना केवल एक रंग (निर्गुण भाव) से की। नामदेव उसे (मूर्ति रूप) में साथ रखता रहा। रैदास ने उसका भजन विचित्र रूप को सामने रख कर किया और गुरु नानक देव ने गोविन्द रूप से। तू भी उसे भज। वर्ना तो—

"कण बिना जैसे थोथर तुखा। नाय विहून सूने से मुखा।
नाम बिना नाही मुखि भागु। भरते बिहून कहा सोहाग ॥
नाम बिसारि लगै अन सुआइ। ताकी आस न पूजं काहि।
मनु रे नामु जपै सुख होइ। गुरु पूरा सालाहिए सहज मिले प्रभु सोइ।

अर्थात्—अन्न के दोनों के बिना जैसे तुख (सिट्टे) थोथे (व्यर्थ) हैं। उसी प्रकार विना (हरि) नाम के मुँह थोथा है। हरि नाम से खाली मुँह उसी भाति निरभाग है जैसे कि बिना भरतार के स्त्री सुहाग व्यर्थ है। जो हरि नाम को छोड़ कर दूसरे मजे लेते हैं। उनकी इच्छाये पूरी नहीं होती हैं। इसलिए हे मन! सुख तो हरि नाम के जपने से ही मिलेगा। उस पूरे गुरु की सराहना करनी चाहिए जिससे कि प्रभु का मिलना सरल हो जाता है।

ईश्वर प्राप्ति के लिये जहाँ भक्ति का होना आवश्यक है वहाँ भक्ति के तरीकों की जानकारी भी

आवश्यक है। भारतीय भक्ति परम्परा में भक्ति-प्रदर्शन के नौ प्रकार बताए गये हैं। जो नवधा-भक्ति के नाम से अभिहित होते हैं। 'ग्रन्थ साहब' का अनुशीलन करने से हम इस निष्कर्ष पर पहुँचे हैं कि सिख गुरुओं ने मानव कल्याण के लिये नवों प्रकार की भक्तिको अपनाया है। वे नौ प्रकार श्रवण अर्थात् १-ईश्वरके नाम और गुणों का सुनना २-कीर्तन-ईश्वर के नाम और गुणों का गायन। ३—स्मरण—ईश्वर के नाम और गुणों का जप। ४—सेवन—अपने मन से ईश्वर की सेवा तथा उसमें प्रीत करना ५—अर्चन—आत्मा को परमात्मा का समीपी समझ कर उसके संग रहने की भावना। ६—वन्दना—परमात्मा को महान् समझ कर (उसके सामने) विनम्र होना। ७—सेवक भाव—ईश्वर को अपने तन मन और सर्वस्व का मालिक समझ कर उसकी इच्छा के अनुकूल चलने का प्रयत्न करना। ८—मित्र भाव—यह समझना कि मेरा सबसे बड़ा सच्चा हितैषी ईश्वर है जो सुख, दु.ख और आपत्ति सम्पत्ति में सदा मेरा सहायक है। ६—आत्म समर्पण—वह भक्ति है जिस में मनुष्य यह समझ लेता है कि मैं कुछ नहीं। न मेरे करने से कुछ होने का है। परमात्मा जैसे रखेगा मैं रहूँगा और उसकी शरण में रहने में ही मेरा कल्याण है।

भक्ति के प्रकार

'ग्रन्थ साहब' में इन नवों प्रकार की भक्ति के सम्बन्ध में इस प्रकार प्रकाश डाला गया है।

श्रवण

"सुणिऐ पडि पडि पावहि मान। सुणिऐ लागहि सहजि धिआनु।
सुणिऐ अंधे पावहि राहु। सुणिऐ हाथ होवै असगाहु।
नानक भगता सदा विगासु। सुणिऐ दूख पाप का नासु। —जपु जी

अर्थात्—सुनने और फिर सुने हुए को पढ़ने से उसके मान (परिमाण) का पता चलता है। अर्थात् ईश्वर सम्बन्धी ज्ञान प्राप्त होता है।

उसके सम्बन्ध में सुनने से सहज ध्यान में मन लग जाता है।

ईश्वर मार्ग के सम्बन्ध में जो अन्धे हैं अर्थात् जिन्हें ईश्वर के सम्बन्ध में कुछ भी पता नहीं है। वे उसके गुणों को सुनकर राह पर चल निकलते हैं। सुनने से ही अगम्य पदार्थ (ईश्वर प्रेम) हाथ लगता है।

ईश्वर के सम्बन्ध में सुनने से भक्तों का सदैव विकास होता है। दु.ख और पापों का नाश भी हरिगुण सुनने से होता है।

"ऐसा कीरतनु करि मन मेरे। ईहा ऊहा जो काम तेरै। रहाउ।
जासु जपत भउ अपदा जाय। धावत मनुआ आवै ठाइ।—गौडी महला ५

\+ \+ \+ \+

कीर्तन

"राति न विहावी साकतां, जिन्हा विसरै नाउ।
राती दिनस सुहेलिया, नानक हरि गुण गाउ।।—सलोक म० ५

\+ \+ \+ \+

हरि कीरति साधु संगति है सिर करमन के करमा।
तेरे सेवक इह रंग माता।
भयउ कृपालु दीन दुख भंजन हरि हरि कीरतन इहु मन राता।—सोरठ महला ५ अष्टपदी

\+ \+ \+ \+

"भली सुहावी छापरी जासहि गुन गाए।
कित ही कास न धवलहर जित हरि बिसराए।"—सूही महला ५

\+ + + +

"हउ बलिहारी जो प्रभु धिआवत। जलनि बुझै हरि हरि गुन गावत।"—बिलावल म० ५

\+ + + +

"मनूआ नाचै भगति द्रिडाए। गुरु कै सबद मन मनै मिलाए।
सचा ताल पूरे माइआ मोह चुकाए। सबदे निरत करावणिआ।"—माझ महला ३ अष्टपद

अर्थात्—मेरे मन ऐसा कीर्तन कर जो इस लोक और उस लोक दोनों मे तेरे काम आवै। जिसके जपने से भव (संसार) की आपदा चली जाय और दौड़ता हुआ मन ठिकाने पर आजाय।

\+ + + +

"अरे शाक्त रात को व्यर्थ मत गँवावे। उसके नाम को छोड़ने से—और इन अकृत्यों को करने से—तेरा जन्म व्यर्थ ही जायगा इसलिये रात दिन तू हरि गुण का सुहेला गा।

\+ + + +

साधु सगति और हरि कीर्तन सब कर्मों मे सिरमौर (श्रेष्ठ) हैं। प्रभु के सेवक इसी रंग मे अपने को रंगते हैं। इनको भगवान की दया से हरि कीर्तन ही अच्छा लगता है।

\+ + + +

उन महलों से जहाँ कि मनुष्य ईश्वर के गुण-गान को भूल जाता है वह झोंपड़ी अच्छी है जहाँ हरि कीर्तन होता है।

\+ + + +

'मैं उन लोगों पर निछावर हूं। जो भगवान का ध्यान करते है। क्योंकि हृदय की जलन तो हरि के गुणों का कीर्तन करने से ही शांत होती है।

\+ + + +

"भक्ति मे मन का दृढ़ होना ही सच्चा नाच है। गुरु के शब्दों का मन मे मिलान कर लेना सच्चा संगीत है और माया मोह का छोड़ देना सच्ची लय (ताल) है। शब्द ही सच्चा नृत्यकार है।'

\+ + + +

"प्रभु कै सिमरम गरभ न बसै। प्रभु कै सिमरन दूख जम नसै॥
प्रभु कै सिमरनि काल परहरै। प्रभु कै सिमरन दुश्मन टरै॥
प्रभु सिमरत कछू बिघन न लागै। प्रभु कै सिमरन अनुदिन जागै॥—गौडी सुखमनी महला ५

स्मरण "सो सुरता सो वैसनो सो गिआनी धनवंत।
सो सूरा कुलवत सोइ जिन भजिआ भगवत॥
खत्री ब्रहमण सूद वैस उधरै सिमर चंडाल।
जिन जानिउ प्रभु आपना नानक तिसहि रवाल॥—गौडी थिती महला ५
जोकै सिमरन होइ अनंदा, बिनसै जनम मरन भै दुखी।
चार पदारथ नवनिधि पावहि, बहुरि न तिरसना भुखी।—सोरठ महला
सचि सिमरिऐ होवै परगासु। ताते बिखिआ महि रहै उदास।—धनाश्री म० १ घरु दूजा

अर्थात्—प्रभु के स्मरण से मनुष्य गर्भवास के कष्टों से छुटकारा पा जाता है अर्थात् वह जन्म और मरण के चक्कर से छूट जाता है। और प्रभु के स्मरण से यम-यातनाओं के दुख भी नष्ट हो जाते हैं।

प्रभु के स्मरण से मृत्यु भी छोड देती है। अर्थात सहज ही नहीं आती। और दुश्मन का भय भी प्रभु स्मरण से टल जाता है।

प्रभु-स्मरण से हानि कुछ भी नहीं होती। अपितु जो प्रभु का स्मरण करता है वह सदैव जागरूक रहता है।

\+ + + +

वही श्रोता अथवा वेदज्ञ है। वही वैष्णव, ज्ञानी और सच्चा धनी है और शूरवीर और कुलीन भी वही है—जिसने कि भगवान का भजन किया है। उस परम पिता परमेश्वर को स्मरण करने से क्षत्रिय, ब्राह्मण, वैश्य, और शूद्र-यहा तक कि चडाल भी उद्धर गये हैं।

जिन्होंने प्रभु के साथ अपनापन जोड़ लिया है नानक तिन पर बलिहार है।

\+ + +

उसके स्मरण से आनन्द प्राप्त होता है और जन्म मरण के भय और कष्ट नष्ट होते हैं। यही क्यों उसके स्मरण से जीवन के जो परम लक्ष्य—अर्थ, धर्म, काम, मोक्ष नाम के चार पदार्थ हैं वे और नवों प्रकार की निधिया प्राप्त होती हैं और तृष्णा की भी भूख मिट जाती है। ऐसा है हरि स्मरण।

\+ + +

(वास्तविक बात तो यह है कि) उस सत्य स्वरूप के स्मरण से हृदय का अन्धकार दूर हो जाता है और निर्मल ज्ञान का प्रकाश हो जाता है। हृदय में ज्ञान का प्रकाश होने से मनुष्य विषय-वासनाओं की ओर से उदासीन हो जाता है और विषय-वासनाओं से जहाँ हृदय खाली हुआ, वहीं उसका सर्वतोमुखी कल्याण है। *कारणकि*

"कलि महि राम नामु सारु।" (धनाश्री महला १ घरु ३)

अर्थात्—कलियुग में हरि नाम ही सार है।

साकार प्रभु की सेवा करने वालों ने मन्दिरों और मठों में उसके अनेक नामों पर मूर्तिया स्थापित करली हैं किन्तु जो निराकार के उपासक हैं। वे परमात्मा की सेवा कैसे करें। उसका विधान समस्त निर्गुणी सन्तों ने यह बताया है कि उसकी मानसिक सेवा करो। इस सम्बन्ध में सिख गुरुओं ने जो कुछ कहा है उसका थोड़ा सा अंश इस प्रकार है —

'तुझ बिन कौन हमारा, मेरे प्रीतम प्राण अधारा।
अंतर की विधि तुमही जानी, तुम्ही सजन सुहेले।
सेवन सरब सुखा मैं तुझने पाए, मेरे ठाकुर अगह अतोले।
बरन न साकिउ तुमरे रगा, गुण निधान सुख दाते।
अगम अगोचर प्रभु अविनासी' पूरे गुरते जाते।"—गौडी महला ५

"हम मल मल धोवहि पाव गुरु के जो हरि हरि कथा सुनावै।—गौडी महला ४

"सतगुरु की सेवा गाखडी, सिर दीजै आप गवाइ।
सबद मिलहि ता हरि मिलै, सेवा पवै सभ थाइ॥—श्री राग म० ३

"जेते जीअ तेते सभि तेरे, विणु सेवा फल किसै नहीं।"—आसा महला १

ऐसो सेवकु सेवा करै, जिसका जीउ तिसु आगै धरै।—धनाश्री महला १ घरू दूजा

अर्थात्—ओ, मेरे प्राणों के आधार प्रियतम (परमात्मा) तेरे विना हमारा कौन है? मेरे अन्त.करण मे जो कुछ है उसे तुम भली प्रकार जानते हो। क्योकि.—

"तू मेरा पिता तू हं मेरा माता, तू मेरा बधुप तू मेरा भ्राता।
तूं मेरा सभनी थाई, ताभउ केहा काडा जीउ।[1]

ओ, मेरे अथाह और अतोल ठाकुर सारे सुख मैने तुझ से ही पाये है।

ओ! गुण निधान और सुखदाता! मैं तुम्हारी विचित्राओ का वर्णन कैसे कर सकता हूँ क्योंकि तुम अगम अगोचर हो। हे अविनाशी! तुम्हे पूरे गुरु के द्वारा ही जाना जा सकता है।

× × ×

हम उस गुरु के पैरो को मल कर धोते है जो ईश्वर की कथा का वर्णन हमसे करता है।

× × ×

सतगुरु की सेवा अति कठिन है। किन्तु फिर भी अपने को गॅवा कर और सिर देकर भी उसकी सेवा करनी चाहिए। जब अनहद शब्द का घोष ब्रह्माण्ड मे होने लगे तो समझ लो हरि मिल गये और सेवा तो सब स्थानो पर प्राप्त की जा सकती है।

× × ×

इस ससार मे जितने भी जीव है। वे सब हे परमात्मा तेरे ही है। विना सेवा के इन सब का जन्म निष्फल है अर्थात् सेवा अनिवार्य है।

× × ×

हमारी समझ मे उस निरंकार की सेवक ऐसी सेवा करे कि कहदे कि हे प्रभु यह तेरा जीव तेरे आगे है।

जो सेवक यह कह देगा कि 'साहब भावै सो परवाणु।' उसके लिये यह निश्चय है "सो सेवकु दरगाह पावै माणु।" अर्थात् वह सेवक ईश्वर की दरगाह मे सन्मान पावेगा।

प्रचलित अर्थों मे अर्चन का अर्थ पूजा लिया जाता है। और पूजा का अर्थ मूर्ति पूजन समझा जाता है। मूर्तियों पर लोग फूल, चावल, सुपारी, हल्दी, तिलक आदि चढ़ाते है। इन्हीं रिवाजों को देखते हुए संत रैदास ने कहा था'—

"दूध तो बछरे थनहु विटारिउ। फूल भँवर जल मीन बिगारिउ।

अर्चन × × ×

मैलागिरि बेरे है भुइ अगा। बिख अमिरत बसहि इक सगा।
धूप दीप नईवेदहि बासा। कैसे पूज करै तेरी दासा।"

अर्थात्—दूध तो बछड़े ने थन मे ही जूठा कर दिया। फूल को भौंरे ने जूठा कर दिया। मलयगिरि पर चन्दन के वृक्षो से सांप लिपटे हुए हैं जिससे चन्दन की अमृतमयी सुगन्धि मे सांपों की श्वास-प्रश्वांस का विष मिल गया है। धूप और नैवेद्य बासी हैं। ताजा नहीं। यह तेरा दास फिर किससे तेरी पूजा करै।"

1. तुमेव माता च पिता तुमेव। तुमेव बन्धुश्च सखा तुमेव (भागवत)

किन्तु धूप, दीप, नैवेद्य तथा दूध और फल फूलों से तो साकार पथी पूजा अर्चन करते थे। निरा कार पंथी अपने प्रभु की पूजा कैसे करें ? इसके लिये सिख गुरुओं ने कहा —

"आतमादेउ पूजिए, बिनु सतगुरु बूझ न पाइ।" — वार श्रीराग महला ३
तेरा नाम करी चानणाठीआ जे मन उरसा होइ।
करणी कगु जे रलै, घट अन्तर पूजा होइ। —गूजरी महला १

अर्थात्—आत्मदेव की जो कि घट भीतर है पूजा करो। किन्तु इस पूजा की विधि सतगुरु के समझाये बिना समझ में नहीं आ सकती।

× × ×

हे प्रभु ! तेरे नाम की तो चन्दन वटी बनाई जाय और अपने मन को (मनुष्य) बनावे मिल। फिर सुकृत्यों की केसर मिला कर घिसे। इस प्रकार की जो पूजा है वह अन्त करण में ही हो सकती है।

उस पूजा और अर्चना की तो सिख गुरुओं ने भर्त्सना ही की है। जो मन्दिर और मठों में पुजारी लोग करते हैं। जैसा कि इस एक पद से ही प्रकट हो जायगा।

"मन बेकारी बेड़िया बेकारा करम कमाइ।
दूजै भाइ अगिआनी पूजदे दरगहि मिलै सजाइ। —वार श्रीराग महला ३

अर्थात्—मन तो बिना काम के लम्पट हो गया है। जो व्यर्थ के कर्मों में उलझा हुआ है। परमात्मा को मूर्तियों में पूजना द्वैत भाव है जो अज्ञानियों का काम है। इन अज्ञानियों को ईश्वर की दरगाह में सजा मिलेगी।

कालान्तर में कुछ हेर फेर के साथ यह पूजा पद्धति सिखों में 'ग्रथ साहिब' के प्रति अगाध श्रद्धा के रूप में प्रस्फुटित हुई।

बंदना हरि बंदना गुण गावहु गोपाल राउ। —रहाउ॥
वडै भागि भेटे गुर देवा। कोटि पराध मिटै हरि सेवा।

वन्दना

चरन कमल जाका मन रापै। सोग अगनि तिसु जन न विआपै।—धनाश्री महला ५
नमस्कार ताकउ लखवार। इहु मनु दीजै ताकउ वारि।
सिमरनि ताकै मिटहि सन्ताप। होई अनन्दु न विआपहि ताप॥—भैरव महला ५
सुभ दिवस आए गहि कंठ लाए प्रभ ऊँच अगम अपारे।
बिनवंति नानक सफलु सभु किछु प्रभु मिले अति पिआरे॥—बिहागड़ा महला ५ छंत
निवि निवि पाइ लगउ गुरु अपुने आतम रामु निहारिआ।
करत विचारु हिरदै हरि रविआ हरदै देखि विचारिआ।—आसा महला १

अर्थात्—हरि का वन्दन करो। एक वार नहीं अनेकों वार हरि की वन्दना करो। गोपालराय के गुणों का गायन करो। (इस प्रकार का उपदेश देने वाले) गुरुदेव का मिलन बड़े भाग्य से हुआ है। परमात्मा की सेवा से करोड़ों अपराध मिट जाते हैं। जिस मनुष्य का मन प्रभु के चरण कमलों में रम जाता है। उसे चिन्तारूपी अग्नि नहीं जलाती।

उस प्रभु के लिये लाखों वार नमस्कार है। जिसके स्मरण से समस्त संताप (कष्ट) मिट जाते हैं तथा आनन्द की प्राप्ति हो जाती है और दैहिक, दैविक तथा भौतिक नाम के तीनों प्रकार के जो ताप हैं वे पास नहीं आते। इस मन को उस प्रभु पर निछावर कर दो।

+ + +

यह प्रथम दिन का आगमन है जो उस महान् और अगम अपार प्रभु ने मेरे को कंठ से लगा लिया है। नानक अति नम्रता से उस प्रभु की बन्दना करते है क्योंकि सब कुछ प्यारे प्रभु के मिलने से सफल हो गया।

\+ + +

अपने गुरु के पैरों की झुककर बन्दना करो। जिनके उपदेश से अपने आपको पहचानने मे समर्थ हुए। यह हृदय में विचार करके देख लिया है कि परमात्मा हृदय मे ही रम रहा है।

\+ + +

सेवक-भाव

तिसु सेवक कै हउ बलिहारी जो अपने प्रभ भावै।
तिसकी सोइ सुणी मनु हरिआ तिसु नानक परसणु जावै।—आसा महला ५

ठाकुर का सेवक आगिआकारी। ठाकुर का सेवक सदा पूजारी।
ठाकुर के सेवक कै मन परतीति। ठाकुर के सेवक की निरमल रीति।
ठाकुर कउ सेवक जानै संगि। प्रभ का सेवक नाम कै रंगि।—सुखमनी

अर्थात्—उस सेवक की हम बलिहार जाते हैं जो अपने प्रभु को अच्छा लगता है। हमने उसकी यश (गंध) सुनी है। तिसका स्पर्श (आलिंगन) करने जाने को नानक का मन चाहता है।

\+ + +

ठाकुर के सेवक मे कुछ अद्भुत गुण होते हैं। वह अपने को ठाकुर का आज्ञाकारी समझता है। सदा ही वह उसी की पूजा करता है। उसके मन मे अपने प्रभु का अगाध विश्वास होता है। उसकी समस्त रीतियां शुद्ध पवित्र हो जाती हैं। क्योंकि वह कोई पाप नहीं करता कारण कि वह अपने प्रभु को सदैव अपने इर्द गिर्द समझता है और वह समस्त झंझटों और सोच-विचारों को छोड़कर प्रभु के रंग में रंग जाता है।

\+ + +

जब सेवक इस प्रकार अपने को अपने प्रभु की सेवा मे अर्पण कर देता है तो—

"सेवक कउ प्रभ पालन हारा। सेवक की राखै निरंकारा।"

× × ×

"अपने जन का परदा ढाकै, अपने सेवक की सर पर राखै।
अपने दास कउ देह बडाई, अपने सेवक कउ नांव जपाई।
अपने सेवक की आप पति राखै। ताकी गति मित कोउ न लाखै।"—सुखमनी

अर्थात्—प्रभु भी अपने सेवक का पालनहार बन जाता है। और निरंकार होते हुए भी उसकी घात, जिद अथवा पैज को रखता है।

\+ + +

वह अपने सेवक की पुरानी बुराइयों पर परदा डालता है। और उसके सिर की पगडी की रक्षा करता है। (एक अर्थ यह भी है कि उस की बात को ऊंची रखता है) ।

अपने सेवक से नाम का जाप कराकर उसकी कीर्ति को फैलाता है। (लोग कहने लगते हैं अमुक व्यक्ति तो बड़ा भारी भगत है)

मन मुख सेती दोसती थोडडिग्रा दिन चार।
मित्र-भाव इस परीती तुटदी विलम न होवई, इहु दोसती चलन विकार।—वार वडहस म० ३
मनमुख सउ करि दोसती सुख कि पुछं मित।
गुरमुख सउ करि दोसती सतगुर सिउ लाइ चित।
जमण मरण का मूल कटीए ता सुख होवी मित। —सलोक वारां ते वधीक म० ३
मिलिग्रा होइ न वीछडे जे मिलिग्रा होई।—सूही महला १
मिलिग्रे मिलिग्रा ना मिलै, मिलै मिलिग्रा जो होइ।
ग्रन्तर ग्रातमं जो मिलै मिलिग्रा कहिग्रै सोइ।—वार सूही महला २
ग्रपना मीतु सुग्रामी गाइऐ।
ग्रास न ग्रवर काहू की कीजै—सुखदाता प्रभु धिग्राइऐ।—सारग महला ५
तू मेरे मीत सखा हरि प्रान।
मनु धनु जीउ पिडु सभ तुमरा इहु तनु सीतो तुमरै धान।—सारग महला ५
हरि सा मीतु नाही मै कोई। जिनि तनु मनु दीग्रा सुरति समोई। —मारू म० १
कोउ है मेरो साजनु मीतु। हरिनाम सुनावै नीत।
बिनसै दुख बिपरीति। सभ ग्ररपउ मनु तनु चीतु।—नट पडताल महला ५

अर्थात्—ऐसे लोगों से—जिनका मन क़ाबू में नहीं है अर्थात् भ्रष्ट आचरण वाले हैं—मित्रता निभने वाली नहीं होती। चार छ दिन में ही टूट जाती है। और ऐसी मित्रता का चलना भी वेकार है।

\+ × ×

मनमुखों से दोस्ती करके कोई सुख चाहे वह मूर्ख है। दोस्ती तो गुरुमुखों से करनी चाहिये अर्थात् जो सदाचार के रास्ते पर चल रहे हों। और सतगुरु परमात्मा में चित्त लगाना चाहिये जिससे जन्म-मरण की व्याधिया मिट जाय और सुख शाति मिले।

× × ×

सच्चा मेली (मित्र) मिलने पर कमी विछुड़ता नहीं। और ऐसा मेली (मित्र) तो परमात्मा ही है।

\+ + +

मिलने वाले अनेकों मिलते हैं किन्तु सच्चे मिलने वाले तो मिलते नहीं। सच्चा मेली (मित्र) तो वह है जो अन्त. करण (आत्मा) में समा जाता है। (ऐसा मेली तो परमात्मा ही है)

× × ×

आपका जो वास्तविक मित्र अर्थात (परमात्मा) है। उसी का गुण-गान करो और किसी दूसरे पर आस मत लगाओ।

\+ + +

हे प्राणाधार भगवान् तू ही मेरा सच्चा सखा और मित्र है। मेरा यह तन, मन, धन और प्राण सब कुछ तेरा ही है। यह मेरा शरीर पृथ्वी जैसा है। मेरे इस शरीर में अपने प्रेम रूपी हल (सीतो) से आप भक्ति रूपी धान बीजिए।

\+ + +

हरि सरीखा मेरा कोई मित्र नहीं है जिसने इस शरीर मे सुरति (सुबुद्धि) का संयोग करके मन

को रचा है। जिससे कि हम उसका चिन्तन कर सकते है ।

\+ + +

कोई मेरा ऐसा सज्जन मित्र है ? जो मुझे नित हरि गुन सुनाता रहे। जिससे मेरे विरोधी दुखो का नाश हो और मैं अपने तन, मन अथवा सर्वस्व को जिसे अर्पण कर दूं। (ऐसा मित्र सिवा भगवान के कौन है)

समर्पण-भाव

पूर्ण समर्पण भाव मे भक्त अपने और परमात्मा के मध्य मे पत्नी और पति का भाव अपना लेता है।

निर्गुणवाद के प्राय सभी सन्तों ने भक्ति के इस प्रकार को अपनाया है यथा'—

"मैं बौरी मेरा राम भतार। रचि-रचि ताको करो सिंगार ॥
भले निंदौ भले निंदो भले निंदो लोग। तन मन मेरा राम पियारे जोग।" —नामदेव (सत सुधासार)

अर्थात्—मेरा भरतार (प्रियतम) राम है। मैं उसी पर बावली हुई फिरती हूँ। उसी से मिलने के लिये मैं सुधार-सुधार कर शृंगार करती हूँ।

लोग मेरी चाहे जितनी निन्दा करो। मैंने अपने तन, मन को राम प्रियतम से जोड़ लिया है।

हू बारी, मुख फेरि पियारे। करवट दे मोहि काहे को मारे।
करवत भला, न करवट तेरी। लाग गरे सुन विनती मेरी।
हम तुम बीच भया नहिं कोई। तुमहिसो कत नारि हम सोई ॥
कहत कबीर सुनो नर लोई। अब तुम्हरी परतीत न होई ।।—कबीर (सत सुधासार)

\+ + +

अर्थात्--मैं तो वारी (नवीना) हूँ। मेरे प्रियतम मेरी ओर मुँह करलो। करवट बदल कर अर्थात पीठ देकर मुझे क्यों दुखी करते हो। तेरी करवट भली नहीं है भली तो करवत (गलवांही) है। इसलिये मेरी विनय सुनकर गले से चिपट जा। तुम्हारा जैसा कत और हमारी जैसी काता हमारे तुम्हारे जमाने मे तो कोई हुए नहीं है। अरे (दुनियांदार) लोगों तुम्हारा अब विश्वास जाता रहा है और मैंने तो अपने मन को प्रभु-प्रियतम मे लगा लिया है।

\+ + +

"मैं बेदनि कासनि आखूं, हरि बिन जिव न रहै कस राखू ।
जिव तरसै ल्यौं आसरु तेरा, करहु सॅभाल न सुर मुनि मेरा।
विरह तपै तन अधिक जरावै, नींद न आवै भोज न भावै।
सखी सहेली गरब गहेली। पिय की बात न सुनहु सहेली।
मै रे दुहागिनि अघ कर जानी। गया सो जोवन साघ न मानी।

\+ + +

अर्थात् —मैं वैद्य को क्या रोग वताऊ।

प्रियतम के विना यह जीव नहीं रहता, इसे किस विधि से रक्खू। जब तेरा आसरा लेती हूँ। मेरी सॅभाल ता तुम्हीं करो क्योंकि मेरे तो संभाल करने वाले देवी, देवता भी नहीं है।

जो साथिन है वे अभिमानिनी हैं। और हे सखी उस पति (परमेश्वर

दुहागिन (दुर्भागी) रही। सिर्फ पाप कर्म करके ही मैंने जाने हैं। यौवन अब चला जा रहा है। कोई साध पूरी नहीं हुई।

\+ + +

कहियो जाइ सलाम हमारी राम कूं। नैन रहे झडलाय तुम्हारे नाम कू।
कमल गया कुम्हलाय कलिया भी जायसी। हरि हर, वाजिद, इस बाडी में बहुरि न भँवरा आयसी।

—'वाजिद' (सन्त सुधासार)

अर्थात्—राम से जाकर हमारी नमस्कार कहना कि तुम्हारे दर्शन के लिये नैनों में झड़ी लग रही है।

कमल तो कुम्हला गया है। कलियां भी मुरझा कर गिरने वाली हैं। फिर इस वाटिका में भँवरा आकर क्या करेगा।

\+ + +

इस आत्म समर्पण भक्ति को सिख गुरुओं ने भी अपनाया था उन्होंने भी कहा—

"मै मनि तनि बिरहु अति अगला किउ प्रीतमु मिलै घरि आइ।
जा देखा प्रभु आपणा प्रभि देखियै दुख जाइ।
जाइ पुछा तिन सज्जणा प्रभु कितु विधि मिलै मिलाइ।"—श्री राग महला ४ घरु १

\+ + +

मिलु मेरे प्रीतमा जिउ तुधु विनु खरी निमाणी।
मै नैणी नीद न आवै जीउ भावै अन्नु न पाणी।
पाणी अन्नु न भावै मरीऐ हावै विनु पिर किउ सुखु पाईऐ।—गौडी महला ३

\+ + +

× × × ×

गुनु अवगुनु मेरो कछु न वीचारो।
नह देखिओ रूप रग सींगारो॥
चज अचार किछु विधि नहीं जानी।
बाह पकरि प्रिय सेजै आनी॥
सुनिबो सखी कति हमारो कीअलो खसमाना।
करु मसतकि धारि राखिओ करि अपुना किआ जानै इहु लोक अजाना॥

—आसा महला ५

अर्थात्—मेरे तन, मन में विरह की अत्यन्त तडपन है। किसी तरह प्रीतम घर आकर मिल लें। जिसने अपने प्रियतम को देख लिया है। उसका दु ख चला गया। क्योंकि प्रियतम के तो देखते ही दु ख चला जाता है। मैं अपने साजन से पूछती हूँ। प्रभु जिस विधि से तुम मिलते हो, उसी विधि से मिल जाओ।

× × × ×

मेरे प्रियतम मिल जाओ। तुम्हारे विना मैं दुर्बल हो रही हूँ। मेरे नेत्रों की नींद उड गई है।

और अन्न पानी कुछ भी नहीं भाते है। अन्न पानी अच्छा नहीं लगता है। जी मे मरने की आती है। क्योंकि बिना प्रियतम के सुख कहाॅ है।

× × × ×

प्रियतम जब मेरे ऊपर निहाल हो गये तो उन्होंने न तो मेरे गुण अवगुणों को देखा और न रूप रंग और शृंगार को।

चर्य्या (रोज मर्हि के रहन सहन के ढंग) और आचार विचार की किसी विधि को भी नहीं जाना। बॉह पकड़ कर प्रियतम ने सेज पर सुला ली।

सखी! हमारे प्रियतम के खसमाने के ढंग को सुना। अब प्रियतम से निवेदन है कि अपने कोमल हस्त को मेरे मस्तक पर रक्खे रहो। अनजानो से भरा हुआ यह लोक भी क्या जानेगा? कि प्रीत ऐसी होती है।

संतो और गुरुओ के इन समस्त पदों मे आत्मा को नारी और परमात्मा को पुरुष मान कर उस विरह का रूपक बांधा है जो ईश-मिलन के लिये भक्ति की पराकाष्टा मे होता है। इस प्रकार की भक्ति का नाम "आत्म-समर्पण" भक्ति है।

भक्ति-भाव मे हरिजनों ने ईश्वर को बालक, माता पिता, सखा और प्रियतम विभिन्न रूपों मे देखा है। इन भावनाओं के अनुसार ही उसे हॅसाने, खिलाने, पालन पोषण करने और "बिगरे काज" सॅवारने के लिये प्रेरित किया है।

गुरु-मत में भक्ति को किसी भी संत सम्प्रदाय से कम महत्व नहीं दिया गया है।

भक्ति और योग

वैदिक आर्य्य यहि लोक और परलोक के सुखों की प्राप्ति के लिये कर्म, ज्ञान और उपासना को आधार मानते थे।

कर्मो में शुभ कर्म, कुकर्म दो भेद थे। चोरी, व्यभिचार, दगा, फरेब, अहंकार, ईर्षा द्वेष और कुकर्म अथवा त्याज्य कर्म समझे जाते थे। परोपकार, परहित, दान, क्षमा, दया आदि शुभ कर्म कहे जाते थे। शुभ कर्मो मे अग्नि-होत्र का एक विशेष स्थान था। यह अग्नि होत्र ही बड़े पैमाने पर होने के कारण यज्ञ कहलाए।

प्राचीन आर्य्यों का यह भी ख्याल था—जोकि पौराणिक काल मे पूर्णता को प्राप्त होगया था-कि अमुक्त जीवो के लिये उनके कर्मों के अनुसार या तो स्वर्ग नर्क मे जाना पडता है या विभिन्न योनियों मे भटकना पड़ता है। पुराणकारों ने इन योनियो की संख्या चौरासी लाख निर्धारित की थी और सात स्वर्ग और चौदह नर्क गिनाये थे।

पौराणिक आर्य्यों की दृष्टि में यह कोई नियम न था कि जीव को चौरासी लाख योनियाॅ भुगतनी ही पड़ें। उनकी निगाह मे तो यह दंड प्रकार था ठीक वैसे ही जैसे कि ताजीरातहिन्द मे पॉचसौ दस दफाये हैं किन्तु वे किसी भी एक आदमी पर लागू नहीं होती बल्कि जो जैसा अपराध करता है वह वैसी ही सजा का भागी होता है। जैसे कि दगा फरेब के लिये दफा ४२० अथवा कत्ल के लिये ३०२ हैं। उसी भांति चौरासी लाख योनियाॅ भी भिन्न२ अपराधों की सजा भुगतने के लिये कल्पना मे लाई गईं थीं। यथा कंजूसों के लिये सर्पयोनि का उल्लेख था, योवन पर घमंड करनेवालों का गुबरीला कीड़ा बनने की कल्पना थी।[1]

१. जो जानै मै जोवन वतु। सो होवन विसटा का जतु।—सुखमनी

ऐसे अपराध जिनमे किसी भी योनिद्वारा सजा पूरी होने की सभावना नहीं थी। उन्हें भुगतने के लिये चौदह प्रकार के नर्क थे और चूकि समस्त कर्मों मे यज्ञ श्रेष्ठ कर्म थे। अत यज्ञ करने वालों के लिये स्वर्ग थे।

आर्य्यों की कर्म फिलास्फी का यही संक्षिप्त व्याख्यान है। ज्ञान फिलास्फी ससार को स्वयम् को और जो ससार और स्वयम से ऊपर है। उसे समझने के लिये काम की चीज थी। जिज्ञासा, मनन चिंतन और हल ज्ञान-फिलास्फी के आधार थे।

यह निश्चित हो जाने तथा मान लेने पर कि ससार और हमारे से कोई ऊपर भी है और वह सबका नियता तथा पोषक भी है तथा पूर्ण आनन्द उसकी प्राप्ति में है। उपासना का प्रादुर्भाव हुआ। और ज्यों ज्यों प्रभु-मिलन की उत्कण्ठा प्रबल हुई उपासना के विभिन्न प्रवाह हो गये। जिनमें योग और भक्ति मुख्य हैं।

ज्ञान ने यह बताया कि परमात्मा है किन्तु उससे मिलन आत्मा का ही हो सकता है। तब आत्मा को परमात्मा का साक्षात् होने में बाधा क्या है? वह दीवार कौनसी है? जो दोनों के बीच मे है इस प्रश्न का हल भी ज्ञान फिलास्फी ने किया। ज्ञान ने कहा, आत्मा तो चार कोषों से ढँका हुआ पांचवाँ कोष है। अन्न, प्राण, मन और ज्ञान कोषों के बाद आनन्दमय कोष है। आत्मा का मुख्य स्थान यही है।

जैसा हम अन्न खाते हैं। वैसा हमारा प्राण और मन बनता है। सड़ा गला अन्न खाने से प्राण कमजोर और मन मलीन रहेगा। जैसा मन वैसी बुद्धि। और बुद्धि ही ज्ञान की प्रेरक है। अत निष्कर्ष निकला कि ऐसा खाद्य सेवन करो जो प्राण को पुष्ट करने वाला, मन को निर्मल बनाने वाला और सद्-बुद्धि का उत्पन्न करने वाला है। अत परमात्म-प्राप्ति के लिये आहार भी एक विषय बन गया। अहिंसा, दया और आचार इस आहार-शास्त्र के अग हुए।

अन्न पूर्ण मिलता है अथवा आवश्यकता से भी अधिक मिलता है और प्राण भी पुष्ट हैं तो इंद्रियां स्फूर्तिवान होने के कारण चचल होंगी। चचल इन्द्रिया अनिष्ट कर्म भी कर सकती हैं। इस शका का समाधान ज्ञान ने यह कह कर किया कि इन्द्रिया मन से बधी हुई हैं। वही इनका प्रेरक है अत मन की वृत्ति पर काबू पा लो। मन की वृत्ति पर काबू पाने का नाम ही संयम हुआ। सत्यवद, प्रियम्वद, मा गृध परदारेषु मातृवत और परद्रव्येषु लोष्टवत् संयम शास्त्र के अग हुए।

शरीर की शुद्धि, प्राण की शुद्धि, मन की शुद्धि और बुद्धि की शुद्धि केवल आत्मा की स्वतत्रता के लिये अनिवार्य सिद्ध हो गये।

शरीर की शुद्धि ने स्नान, उबटन, क्षौर, मर्दन और व्यायाम को जन्म दिया। प्राण की शुद्धि ने अरण्य निवास, उद्यान भ्रमण, ब्रह्मचर्य्य और प्राणायाम को जन्म दिया। मन की शुद्धि ने एकान्त, ध्यान, धारणा और अन्तर्वृत्ति को जन्म दिया। बुद्धि की शुद्धि के भावों ने सत्संग, स्वाध्याय और शुभाशुभ के निर्णय तथा स्थित-प्रज्ञता को पैदा किया।

इस प्रकार आत्मा के परमात्मा तक पहुँचने तथा तदाकार होने का जो राज मार्ग बना उसका चित्र निम्न भाति सामने आता है।

१—शरीर को स्वच्छ और स्वस्थ रक्खो। उसे शुद्ध व स्वस्थ रखने के लिए—न्हाओ धोओ, मजन करो, मर्दन करो और सात्विक आहार करो तथा श्रम एवं व्यायाम करो।

२—मन को स्वस्थ रक्खो। कायिक वाचिक, और मानसिक किसी प्रकार का पाप न करने से मन स्वच्छ और स्वस्थ रहता है। किसी को कटु वचन कहना, किसी की निन्दा करना, झूठ बोलना आदि वाचिक पाप हैं और किसी को पीटना, किसी का द्रव्य हरण करना, बुरी दृष्टि से देखना, दुर्गन्ध फैलाना योनि संसर्ग करना आदि कायिक पाप है। किसी के अहित की योजनाएं बनाना। बुरे विचार करना मानसिक पाप है।

३—प्राणों को सबल और स्वस्थ बनाओ। प्राणों की सबलता सुगन्धित द्रव्यों युक्त स्वच्छ वायु के सेवन और प्राणायाम से होती है।

४—बुद्धि का सदुपयोग करो। बुद्धि के सदुपयोग की प्रेरणा स्वाध्याय और सत्संग से होती है और यदि बुद्धि अच्छी हो तो मन को सुमार्ग पर डाल सकती है। ज्ञान को जागृत कर सकती है। जगा हुआ ज्ञान ही परमात्मा और जीवात्मा को मिलाने वाला है।

५—आत्मा को ईश्वरोन्मुख कर दो।

ऊपर के समस्त प्रयत्नों के पूर्ण होते ही आत्मा ईश्वरोन्मुख हो जाती है।

वस इस सारे ही साधनों से सज्जित होने का नाम योग था। योग से जीवात्मा परमात्मा को प्राप्त करता है और उसमे लीन हो जाता है।

ज्ञान से जीवात्मा अपनी स्थिति का बोधत्व अथवा सजगता प्राप्त करता है। मन से बाहरी बन्धनों को तोड़ता है और प्राण से क्रियाशील अथवा स्फूर्तिवान रहता है। अन्न प्राणों का आधार है।

अत' जीवात्मा के परमात्म-प्राप्ति में प्राण मन और ज्ञान सभी की सहायता अपेक्षित है। और इन सभी साधनों को यथावत जुड़ाने अथवा प्रयोग मे लेने का नाम ही योग है।

योग और भक्ति अर्थों में अलग अलग भले ही हैं किन्तु लक्ष्य अथवा साधन दोनो का एक ही है। योग का अर्थ मिलना है और भक्ति का अर्थ अलग करना है। योग मन को प्रवृत्त करता है साधना मे। प्राणों को प्रयुक्त करता है ध्यान मे। भक्ति मन को अलग करती है माया मोह और अहम् से। प्राणों को चिन्ता से।

योग का आधार ज्ञान है और भक्ति का आधार श्रद्धा और प्रेम। योगी परमात्मा का साक्षात्कार करता है और भक्त उसमे अपने को खो देता है।

सिख गुरुओं ने स्वर्ग, नर्क, चौरासी लाख योनि, कर्मफल, और यम और उसके दूत एव गणक (चित्र गुप्त) का अस्तित्व वैसा ही माना है जैसा पौराणिक काल के आर्य्य मानते थे किन्तु उन्होंने तीर्थ श्राद्ध और पूजा अर्चा को उसी रूप मे स्वीकार नहीं किया।

ईश्वर के मिलने के जो दो मार्ग योग और भक्ति थे। उनमे से उन्होंने भक्ति को प्रधानता दी। वैसे योग को भी अपनाया किन्तु योग के हठ अग को नहीं अपनाया। प्राणायाम मे से रेचक कुम्भक को छोड दिया किन्तु जप को अपना लिया।

हठ योग के नेति धोती और वस्ती आदि षट कर्मों को अग्राह्य कहते हुए भी उन्होंने हठ योगियों के इस कथन को स्वीकार किया कि नाभि कमल मे अमृत झरता है और उसकी ऊर्ध्व गति होने पर अमृतपान किया जा सकता है।

हठ योग के एक अंग (नासा) स्वर विज्ञान मे उन्होंने इड़ा, पिंगला का वर्णन किया है किन्तु वह

वर्णन केवल वर्णनात्मक है क्रियान्वित करने की कोई चर्चा उन्होंने नहीं की।

योगियों के ब्रह्माण्ड सिद्धान्त को भी उन्होंने स्वीकार किया है। योगी लोग हृदय से लगाकर मस्तिष्क तक कई लोक मानते हैं। इसी भांति गुरुओं ने भी कुछ हेर फेर के साथ माना है और यह भी स्वीकार किया है कि आत्मा के तुरीयावस्था प्राप्त कर लेने पर अनहद नाद होने लगता है।

इस प्रकार गुरुओं की भक्ति सहजि—योगयुक्त-भक्ति है। और इसी भक्ति के रस मे विभोर होकर उन्होंने हरिदर्शन की अपनी छट-पटाहट को वड़े ही मार्मिक शब्दों में अनेक वार और अनेक प्रकार से कहा है। इस कहने और छटापट की झाकी 'गुरु ग्रन्थ साहब' में पूर्णतया होती है।

अब हम सिख गुरुओं की वे वाणिया देकर इस प्रकरण को समाप्त करते हैं जो कि हमारे उपरोक्त समस्त कथन की आधार हैं—

कई जनम भये कीट पतगा। कई जनम गज मीन कुरंगा।
कई जनम पखी सरप होइओ। कई जनम हैवर वृख जोइओ।
मिलु जगदीस मिलन की वरिआ। चिरकाल यह देह सजरीआ।

चौरासी का चक्र

अर्थात्—कई जन्म कीड़े पतंगों की योनि भुगतनी पड़ी। कई जनम हाथी मछली और हिरन वनना पड़ा। कई जन्म तक पक्षियो और सर्पों मे पैदा होना पड़ा। कई जन्म तक घोड़े और वैल का जीवन विताना पड़ा। हे जीव अब परमात्मा से मिल क्योंकि मिलने की वारी आगई है। वड़े लम्बे समय के वाद तुझे यह मानव का चोला मिला है।

लेकिन इन विभिन्न योनियों मे यह जीव क्यों फिरा ? इसके उत्तर मे गुरु अर्जुन देव जी कहते हैं—

'वहु जोनी फिरहि घुरि किरति लिखिआसा। जैसा वीजा तैसा खासा।

अर्थात्—यह जीव विभिन्न योनियों में अपने कृत्यों की धुरी पर लेखानुसार घूमता है। जैसा कोई वोयेगा वैसा ही खायेगा। भाव यह है कि मनुष्य जैसे कर्म करता है उसी के अनुसार उसका लेखा यानी हिसाव वनता है कि इसने अमुक कर्म किया है इसलिये अमुक योनि भुगतनी पड़ेगी। क्योंकि अमुक कर्म का फल अमुक योनि है। वास्तव मे यह योनि-चक्र कर्म की धुरी पर घूमता रहता है। जैसे कर्म वैसी योनि।

इस वाणी मे इतना अर्थ और समाविष्ट है कि मनुष्य (जीव) जो कर्म करता है। उन्हीं के अनुसार ईश्वर उनको भाग्य रेखा अथवा कर्म लेख तैयार करता है। इस भाग्य लेख को ही पूर्व संस्कार कहा गया है।

यह हमने पहले कहा है कि कुछ ऐसे भी दुष्कृत्य हैं जिनका फल भोगने के लिये किसी योनि के कष्ट अपर्याप्त हैं उन पापों का फल भुगतने के लिये नर्क है। नरक का व्यवस्थापक वताया गया है यम को। यम के सैनिक यमदूत और उसके यहा का लेखा जोखा रखने वाला चित्र गुप्त कहलाता है।[१]

यमदूत

"कूकर कूड कमाईऐ गुर निंदा पचै पचान।
भरमे भूला दुख घणों जमु मारि करै खलि हानु।"—श्री राग महला १ घरु १
"अनर विखु मुख अमृत सुणावै। जमपुर बाधा चोटा खावै।"—गौड़ी महला ५

अर्थात्—बुरे कर्मों के लिये भ्रम और गुरु निन्दा पचते नहीं है। इनका कुफल भोगना ही पडता है। और जब मनुष्य भ्रम मे भूल जाता है घने दुख उठाता है। (अंत मे) जमदूत उसकी हड्डी पसलियो को तोड़कर खलिहान बना देते हैं।

अन्त.करण तो विष से भरा हुआ हो और मुंह से मीठा बोले। ऐसा आदमी बाध कर जमपुर ले जाया जाता है जहाॅ उसकी कुटाई होती है।

× × × ×

"ऐथै कमावै सो फलु पावै मनमुखि है पति खोई।
जमपुरि घोर अन्धारु महतुगुवारु ना तिथै भैण न भाई।"—वडहस महला ३

अर्थात्—यहा जो हम करते है उसी के फल भोगने पड़ते हैं। यह मनमुख होने का नतीजा है। यमपुरी मे भयानक अंधेरा है और गहरे गुवार (धुआ) से ढकी हुई है। वहाॅ अपना कोई नहीं है।

"लालचि लागै नामु विसारिओ आवन जावन जनमु गइआ।
जा जमु धाइ केस गहि मारै सुरति नही मुख काल गइआ।

अर्थात्—लोभ मे पड़कर परमात्मा के नाम को बिसार दिया। जिससे आवागमन मे ही कई जन्म बीत गये। कितनी बार केस पकड कर के जम ने मार लगाई है। यह याद ही नहीं क्योंकि बहुतेरा समय काल के मुह मे चला गया।

लेकिन जम का त्रास किस प्रकार दूर हो इस पर गुरुओं ने कहा है—

'एक ऊपर जिस जन की आसा। तिसकी कटिऐ जम की फासा।

अर्थात्—जिस मनुष्य की आस एक (परमात्मा) मे ही लगी रहती है। उसके लिये जम फास कट जाता है।

जम की भाति ही गुरुओं ने चित्र गुप्त को भी याद किया है गुरु नानक देव ने कहा है—

"गावति तुधनोचितुगुपतु लिखि जाणनि लिखि धरा बिचारै" (सोदरु म० १)

अर्थात्—कर्मों का हिसाब रखने वाला चित्र गुप्त भी तुम्हारा ध्यान करता है।

सत कबीर ने तो झुंझला कर गहा था—

"बाबा अब न बसउ इह गाउ। घरी घरी का लेखा मागै काइथु चेतू नाउ।"

अर्थात्—अब मैं (जीव) इस (काया) नगर मे नहीं बसूंगा क्योंकि चित्र गुप्त घड़ी-घड़ी का हिसाब मागता है। (राग मारू)

"अधिक जनम भ्रमे जोनि माहि। हरि सिमरन बिनु नरक पाहि।

स्वर्ग नर्क —बसन्त महला ५ घरू १ दुतुकीआ

बैकुंठ गोबिंद चरन नित धिआउ। मुकति पदारथु साधू सगति अमृत हरि का नाउ। (सारग महला ५

"ईहां दुखु आगै नरकु भुचे बहु जोनि भरमावै। —सारग महला ५

अर्थात्—ईश्वर के सिमरन को भूल जाने से अनेकों योनियों का भ्रमण और नरक वास है।

१. यहां यह ध्यान में रखने की बात है कि नरक दड भी सावधि (मियादी) है। जोकि पाप के माप के अनुसार निश्चित हैं।

गोविन्द के चरणों के नित के ध्यान मे वैकुंठ मिलता है। साधु सगति मुक्ति का हेतु और हरि नाम अमृत है।

हरि के भूल जाने से यहां दुख है और आगे (मरने पर) नरक तथा योनियों का भ्रमण है।

योगियों का कहना है कि नाभि चक्र के ऊपर एक सर्पिणी रूप नाड़ी है। उसे उलट दिया जाय तो ब्रह्मांड से जो अमृत स्राव होता है उसका रसास्वादन योगी स्वयम कर सकता है गुरुओं ने इस सम्बन्ध में कहा है —

अमृत स्राव "अदिसटु अगोचरु पार ब्रहमु मिलि साधू अकथु कथाइआ था।

अनहद सबदु दसम दुआरि वजिओ तह अमृतु नाम चुआइआ था—(मारू महला ५)

अर्थात्—अदृश्य और न समझ में आने वाले परमात्मा के सम्बन्ध मे एक साधु ने मिलने पर एक विचित्र कथा कही थी कि जब दसवे द्वार (ब्रह्मांड) में अनहद शब्द का रव हुआ तो वहां अमृत नाम का स्राव हुआ।

इसी बात को भगत वेणी जी ने इस प्रकार कहा था —

इडा पिंगला और सुखमना तीन बसहि इक ठाई।
वेणी संगमु तह पिरागु मन मजन करे तिथाई।"

× × × ×

उपजै गिआनु दुरमति छीजै। अमृत रस गगनतरि भीजै। (रामकली)

निरगुनी संतों ने एक ऐसे लोक की कल्पना की थी जहाँ केवल ईश्वर के भक्त ही जा सकते हैं। सिख गुरुओं ने इस प्रकार के एक स्थान की कल्पना की है और उसे सुख महल नाम दिया है यथा—

सुख महल

"सूख महल जाके ऊँच दुआरे। ता महि वसहि भगत पिआरे।
सहज कथा प्रभ की अति मीठी, विरलै काहू नेत्रहु डीठी। ।रहाउ।
तह गीतनाद खवारे संगा। अरा संत करहि हरि रंगा।
तह मरणु न जीवणु सोगु न हरखा। साच नाम की अमृतवरखा।—सूही महला ५

अर्थात्—इस सुख महल (आनन्द भवन) के ऊंचे-ऊंचे दरवाजे हैं। उसमें बस्ती भगत लोगों की है। वहां प्रभु की सहज मधु कथाओं का कीर्तन होता है। किसी विरले ने ही उसे नेत्रों से देखा होगा। वहाँ नृत्य के साथ (हरि) गीतों का घोर रव होता है, और संत लोग हरि के साथ मिलकर रंग मनाते हैं। वहां मरण जीने का झंझट नहीं। न शोक और हर्ष है। वहाँ तो हरि नाम की अमृत वर्षा ही तुल्य है।

गुरु अर्जुनदेव जी ने रामकली राग में इसी 'सुख महल' को 'आनन्द भवन' के नाम से भी याद किया है। गुरु नानक देव ने इसी सुख महल (आनन्द भवन) को सचखंड कहा था। उनका कहना था "सच खंड वसै निरंकारु। करि करि वेखै नदरि निहाल।" —जपुजी

भावातिरेक में गुरुओं ने इस सचखड को सुख महल, आनन्द भवन कहने के सिवा अनुभव नगर और बेगमपुरा नाम भी दिये हैं। गुरु अर्जुन देव ने तो यहा तक कहा है कि "इन्द्रपुरी महि सर पर मरना। ब्रह्मपुरी निहचल नहीं रहना। शिवपुरी का होइगा काला।" अर्थात् जिसका विनाश नहीं होना है वह यह 'सुख महल' अथवा सचखड ही है।

यह सचखंड कहां है। इसका कुछ-कुछ पता नानकदेव जी की पवित्रतम वाणी जपु जी से चलता है (पौडी ३५ और ३६)

प्रहिले धर्म खंड है फिर ज्ञान खंड तीसरा सरम (शील) खड है चौथा कर्म और पांचवा सच खंड है।

इनमे धर्म खड मे परमात्मा धरम साल अथवा धर्मराज के रूप मे सृष्टि रचता और मनुष्यों के कर्म फलों के निर्णायक का काम करता हुआ बताया गया है। वहाँ उन्हीं को प्रवेश मिलता है जो कच्चे नहीं है और सच्चे सिद्ध हुए है क्योंकि यह दरबार ही सच्चा है। कहने का मतलब यह कि जो लोग अपने जीवन मे सच्चे उतरते हैं वे इस (धर्म खण्ड) लोक की प्राप्त होते हैं।

ज्ञान खण्ड मे यह विवेचन किया जाता है कि कितनी प्रकार की वायु है ? कितने जल और वैश्वानर हैं[1] तथा कितने कान्ह (विष्णु) और महेश है। अनेक रूप रंग और केशों से रचना करने वाले कितने ब्रह्मा हैं।[2]

काम में आने वाली कितनी भूमियां हैं और मेरु (पहाड़) कितने है। कितने ध्रुव देश है और कितने (उप=दूसरे+देस) दूसरे देश है। कितने इन्द्र हैं कितने चन्द्र और सूर्य्य है और कितने इनके मडल-देश हैं। (मंडल देश से अभिप्राय सौर मंडल अथवा सौर परिवार चन्द्र मडल आदि से है) इन मंडल देशों में कितनी प्रकार के सिद्ध-बुद्ध और नाम हैं तथा देवियों के कितने प्रकार है। कितने देव, दानव, ऋषि, मुनि, और कितने रत्नागार एवं समुद्र हैं। आदि आदि।

इस प्रकार ज्ञान खंड मे ज्ञान की ही प्रबलता है अर्थात् वहां ज्ञान विज्ञान का लेखा जोखा रहता है। वहां शब्द-विनोद का घना आनन्द है।

शील (सरम) खंड मे वाणी सौंदर्य अथवा वाणी की मधुरता ही प्रमुख है। उसकी रचना अति विचित्र है। वहां की विचित्रता का वर्णन नहीं किया जा सकता। जो कोई वहां के सम्बन्ध मे कहेगा तो पीछे पछतायेगा कि मैं तो उसका कुछ भी नहीं कह सका। वहां पर सुरति (स्मरण) मति मनन, बुद्धि और शूर वीर व सिद्धों की शुचिता की रचना होती है।

कर्म खंड मे वाणी प्रबल है। उसमे केवल योद्धाओं, महावीरों और शूरवीरों का प्रवेश है और किसी का नहीं। उनमे परमात्मा रामरूप में बसता है। वहा शांति सीता के यश गान के रूप मे है। वे लोग जो कि वहां रहते हैं न तो मरते हैं और न ठगे जाते है क्योंकि उनके मन मे परमात्मा रामरूप मे बसते हैं।

सचखंड मे स्वयम् निरंकार परमात्मा का वास है। जहां से वह प्रत्येक खड और खंड मडलो तथा

१. कहते है ४९ प्रकार की वायु सात प्रकार के जल और पाच प्रकार के वैश्वानर (अग्नि) है।

२. ब्रह्मा विष्णु, और महेश के सम्बन्ध में गुरु नानकदेव के ये शब्द भी विचारणीय है। एका माई जुगति विआई तिनि चेले परवाणु। इकु ससारी इकु भंडारी इकु लाए दीवाणु। जपु

अर्थात—एक माँ ने युक्ति पूर्वक तीन बच्चे शिष्य रूप से जन्मे। उनमें से एक तो ससार को संवारने वाला हुआ। दूसरा भंडारी अर्थात पालन कर्त्ता बना, तीसरा दीवाल अर्थात दडधिकारी बना।

विभिन्न प्रकार के लोकों पर प्रसन्न दृष्टि डालता है तथा उन्हे नियत्रण में रखता है। वहीं से वह उनके देखने (सभालने) और विनिष्ट करने के विचार (आयोजन) करता है।

गुरु गोविन्दसिंह जी ने इस सच खंड का और भी भव्य चित्र खींचा था।

अपनी रचना 'विचित्र नाटक' में गुरु गोविन्दसिंह जी ने शरीर धारण से पूर्व जो कुछ देखा था उसका वर्णन उन्होंने इस प्रकार किया है —

"उत्तरा खड में एक हेमकूट पर्वत है। उसके सात शृ ग (शिखर हैं) यह सातों शिखर हेमकूट की शोभा चांदी के कलसों की तरह वढ़ाते हैं। प्रात काल में जव सूर्य किरणें इन चोटियों पर पड़तीं हैं तो इनका रंग देखने ही वनता है। इसे दूर से देखने से मालूम पड़ता है मानो तप्त सोना चमक रहा है।

इन चोटियों के नीचे एक ढलाव है। जहा समथल है। वहा स्वच्छ पानी का स्रोत भी है। ईश्वर की विचित्र माया यह है कि इन वर्फीली चोटियों के वीच यह स्रोत गर्म पानी देता है।

यहां एक छोटी-सी किन्तु मनोहर वाटिका है। उस वाटिका में एक सुन्दर कुटिया है। इसी कुटिया मे गुरु गोविन्दसिंह जी कहते हैं कि मैंने तपस्या की थी।

यहीं से तपस्वी गुरु गोविन्दसिंह जी की श्रुति रस और रग के देश को पार करके आनन्द घर होती हुई अनन्त में पहुची थी।

उस अनन्त का वर्णन विचित्र नाटक के अनुसार इस प्रकार है वह अनन्त निर्जीव और जड़ पदार्थ नहीं किन्तु सजीव है और स्वयम् प्रकाशमान चेतना है। वह अनन्त मूर्ति-अमूर्ति और अकाल मूर्ति है। वह अनन्त अनादि अयोनि और आनन्द स्वरूप है किन्तु ऐसा नहीं जैसा हम समझते हैं किन्तु हमारी समझ से वाहर की और उसी के समझने की चीज है। वह स्वयम् अक्रिय है किन्तु होता सव उसी के करने से है। वह अनयन है किन्तु देखता सव कुछ है और सारा ससार जो देखता है वह देखने की शक्ति मिलती उसी से है। अनन्त में जो यह चमत्कार है इसका नाम 'आयुस' है। 'यह आयुस' ही ससार के कल्याण के लिये विशिष्ट आत्माओं को संसार में भेजता है।

वह अनन्त निर्जन भी नहीं है। इसमें वस्ती है। घर ऐसे पदार्थों के वने हैं जिनके लिये हमारी भापा में कोई शब्द नहीं है। अर्थात् ससार के मानवी घरों से यह विचित्र है।यह तो न पुराने होते हैं और न जीर्ण शीर्ण सदैव ही एक से रहते हैं। यहा न अपराधी हैं और न अपराधों को रोकने वाले अर्थात् यहा अपराध ही नहीं। फिर यह मकान ऐसे हैं जव जैसी इच्छा करो वन जाते हैं। यह विचारों से भी अधिक सूक्ष्म-किसी वस्तु के वने हैं इनमें जो रहते हैं वे भी प्रकाश मूर्ति हैं। उनके चेहरे सूर्य से भी अधिक प्रकाशवान और चन्द्र से भी अधिक सौम्य हैं। खाने को यहां नाम-रस और कीर्तन नामक पदार्थ हैं इनसे ही तृप्ति होती है यहां किसी को भूख नहीं। और है तो यही कि अनन्त के मध्य में जो यह नगर है इसमें अविचल विश्राम रहे। यहां फूल हैं किन्तु तोडने से वे घटते नहीं। इस नगरी के परे एक दिव्य महल है वह विलकुल दिव्य उसकी उपमा नहीं दी जा सकती। दीवारें भी तो प्रकाश की ही वनी जान पडती हैं। यह महल सारे ससार के प्रकाश का केन्द्र है। ससार को जो भी कुछ मिलता है या संसार में जो कुछ मिलता है या संसार में जो भी कुछ है उसका पसारा यहीं से होता है। वहां का प्रकाश आखों को चौंधियाता नहीं ठडक देता है। इस महल मे एक सिंहासन है वह भी प्रकाश की किरणों से ही वना जान पडता है। इस सिंहासन पर जो ज्योति है वही वाहि गुरु हैं। वही जगत का पसारा है। इस ज्योति के निकट ही मुक्त पुरुषों को स्थान मिलता है। वे भी ज्योति-मय ही दिखाई देते हैं।

मुक्ति-पथ

इस सचखंड की प्राप्ति एवं ईश मिलन के लिये जो साधन एवं सीढ़ियां ग्रन्थ साहब मे यत्र-तत्र वर्णन की हैं उन्हे यदि एक स्थान पर सग्रह कर दिया जाय तो गुरुमत का मुक्ति-पथ इस भाति बन जाता है।

मुक्ति के इच्छुक को पहले समारी मोह से निवृत्त होना पडेगा। क्योंकि गुरुनानकदेव ने कहा है –

"परविरती नरविरति पछाणै। गुरु कै सगि सबदि घरु जाणै।
किसही मदा आखि न चलै सचि खरा सचिआरा हे।" मारु महला १

अर्थात् पहले तो किसी सत गुरु से शब्द (ईश्वर) के घर के बारे मे जान ले कि वह कैसा है और किस प्रकार प्राप्त हो सकता है। फिर प्रवृत्ति और निवृत्ति का ज्ञान प्राप्त करले और किसी को बुरा कह कर न चले अर्थात् दूसरों के अवगुणों को देखने की वजाय अपने अवगुणों को ढूंढे और अपने ही को खरा और सत्यवादी वनावे।

इस पद मे ये वातें कही गई है –ईश्वर के घर की जानकारी प्राप्त करना, प्रवृत्ति निवृत्ति का बोध, दूसरों की निन्दा स्तुति से अपने को अलग रखना और आपे को सुधारने का प्रयत्न अथवा अपने को सत्य मय वनाने की चेष्टा करना।

अनन्त काल से भारतीय दार्शनिक कहते आये हैं कि ईश्वर तो महान् से महान् है वह अगम् है। अगोचर है। अपरम्पार है। दूर से दूर है किन्तु सूक्ष्म से सूक्ष्म और निकट से निकट भी है। यही वात गुरुओं ने भी कही है जैसा कि इन पदों से स्पष्ट होता है।

"वडा साहिब ऊंचा थाउ। ऊंचे उपरि ऊंचा नाउ।।
ए वड ऊंचा होवे कोइ। तिस वडु कउ जाणै सोइ।।"—जपु जी २

× ×

"पार ब्रह्म अपरम्पार देवा। अगम अगोचर अलख अभेवा।।"—मारु महला ५

× ×

"जब देखउ तब सभ किछु मूलु, नानक सो सूखम सोई अस थूल।"—सुखमनी-४

× ×

"एक पुरबु में तेरा देखिआ, तू सभना माहि रवता।"—सोरठ महला १

अर्थात्—परमात्मा वहुत वड़ा है। उसका स्थान भी बहुत ऊँचा है। ऊंचे से ऊंचा उसका नाम है। वह कितना वड़ा और कितना ऊंचा है। इसे तो वही वता सकता है जो उमसे भी वड़ा और ऊंचा हो।

× × × ×

वह पारब्रह्म परमात्मा अगम्य है। इन्द्रियों की पहुँच से बाहर है। न उसे देखा जा सकता है और न उसके भेदों को जाना जा सकता है।

× × × ×

जब हम अधिक गहराई से उसे देखते हैं तो वह सब कुछ का मूल (आधार) दिखाई देता है। वह स्थूल भी है और सूक्ष्म भी।

एक अपूर्वता (अनोखापन) हमने और देखा है कि वह (महान् से महान् होते हुए भी) सब में रमा हुआ है।

मोक्ष के आकांक्षी के लिये यही सहारा है कि वह सब जगह है और सब में है यहाँ तक कि घट ही माहिं समा रहा है और उसे वन में अथवा पर्वतों में खोजने के लिये जाने की आवश्यकता नहीं है।

जब मुमुक्षु को यह विश्वास हो जाय कि ईश्वर सब में है और मेरे घट में भी है। तब न तो किसी की निन्दा करे और न खुशामद "स्तुति निन्दा दोनों त्यागे खोजे पद निर्वाना" और न किसी की हिंसा करे। इससे चित्त निर्मल होगा। निर्मल चित्त में ही परमात्मा का प्रकाश होता है।

यह पता जब चल गया कि ईश्वर का घर तो अपने घट भीतर ही है तो फिर यह देखना है कि वह कौनसी ओट है जो हमें अपने भीतर बैठे परमात्मा को नहीं देखने देती है। गुरु कहते हैं कि वह है संसार (माया) की अनुरक्ति अर्थात् मेरे तेरे में प्रवृत्ति।

माया से विरक्त होने के लिए गुरुओं ने निम्न शब्दों में सोये हुए लोगों को जगाया है।

संगि न चालसि तेरै धना, तूं किआ लिपटा वहि मूरख मना।
सूत मीत कुटम अरु बनिता, इनते कहहु तुम कवन सनाथा॥
राज रंग माइआ बिसथार, इनते कहहु तुम कवन छुटकार।
असु हसती रथ असवारी, झूठा डंफु झूठु पासारी।
जिनि दीए तिसु बुझै न बिगाना, नामु विसारि नानक पछताना॥—सुखमनी

× ×

जिनि कीता माटी ते रतनु, गरभ महि रखिआ जिनि करि जतनु।
जिनि दीनी सोभा वडिआई, तिस प्रभ कउ आठ पहर धिआई॥

× ×

जिनि कीता मूंड ते बकता, जिनि कीता बे सुरति ते सुरता।
जिसु परसादि नवै निधि पाई, सो प्रभु मनते विसरति नाही॥
जिनि दीआ निथावे कउ थानु, जिनि दीआ निमाने कउ मानु।
जिनि कीनी पूरन सभ आसा, सिमरउ दिनु रैनि सास गिरासा॥—गौडी गुआरेरी म० ५

अर्थात्—ओ मूर्ख मन, तेरे साथ न तो यह धन जायगा और न पुत्र, स्त्री, मित्र और कुटुम्बी जायेंगे, इनसे तू भला कैसे अपने को सनाथ मानता है और क्यों लिपटा हुआ है। राज (वैभव) रंग यह तो माया का फैलाव है। इससे तुम्हारा कब छुटकारा होगा। हाथी, घोड़े, रथ और अनेकों प्रकार की सवारियाँ सब ढोंग और मिथ्यापन का पसारा है और जिसने यह सब कुछ दिया है उसे तू पहचानता नहीं है। पराई वस्तु अर्थात् धरोहर पर जान दे रहा है। तैंने हरिनाम को छोड़ दिया है। इसके लिये तुझे पछताना पड़ेगा।

× × × ×

जिस परमात्मा ने तुझ मिट्टी के पुतले को रतन का रूप दिया है। और गर्भ के भीतर यत्न पूर्वक तेरी रक्षा की और जिसने तुझे यह शोभापन और बड़प्पन दिया है। उस प्रभु का ध्यान कर (नहीं तो फिर पछताना पड़ेगा)।

× × × ×

जिस परमात्मा ने तुझे मूढ़ से ज्ञानी और बेसुरति (नासमझ) से सुरतिवान (बुद्धिमान) बनाया है। तथा जिसकी कृपा से नवोनिधि प्राप्त की है, उस प्रभु को मन से विसार न देना। जिस परमात्मा ने बिना सहारे वाले को सहारा और बिना मान वाले को मान दिया है तथा जिसने सम्पूर्ण आशाओं की पूर्ति की है उसे प्रत्येक श्वास के साथ याद करो।

गुरुओं ने विरक्ति-पक्ष मे यह भी कहा :—

"बालकु मरै बालक की लीला, कहि कहि रोवहि बालु रगीला।"

× × × ×

"भरि जोवन मरजहिकिजे, मेरा मेरा करि रोवीजे।"—मारु महला १

अर्थात्—बालक मर जाता है तो बालक के चुलबुल पन और उसके रंग ढंग को याद करके रोते हैं।

× × × ×

जवान मर जाता है तो "मेरे लिये वह ऐसा था। वह जीता होता तो मेरे लिये यह करता" ऐसा कह कर रोते हैं।

भाव यह कि बालक के मरने से हमारे मनोरजन और भावी आशाओं को धक्का लगता है और युवा के मरने से हमारे हितों और स्वार्थों को चोट पहुँचती है। इसलिये रोते हैं वरना कोई किसी के लिये नहीं रोता है। गुरुओं के इस उपदेश के साथ हमे याज्ञवल्क्य ऋषि का वह उपदेश याद आता है जोकि उन्होंने मैत्रेयी को दिया था कि हे मैत्रेयी ! पुरुष स्त्री को इसलिये नहीं प्यारा है कि वह पुरुष है अपितु इसलिये प्यारा है कि वह उसकी आकाक्षाओं को पूरी करता है और स्त्री पुरुष को इसलिये प्यारी नहीं है कि वह स्त्री है। अपितु इसलिये प्यारी है कि वह उसके अभाव की पूरक है।

इस प्रकार संसार से विराग का उपदेश देते हुए गुरुओं ने बताया है कि माया से बचना चाहते हो तो ईश्वर की ओर (हरि-उन्मुख) हो जाओ क्योंकि —

"जह अछल अछेद अभेद समाइआ।
ऊहा किसहि विआपत माइआ॥"—सुखमनी म० १

अर्थात्—जहाँ केवल परमात्मा का ध्यान है वहाँ माया की व्यापना नहीं हो सकती।

मनुष्य ससारी वस्तुओं को पराई अर्थात् ईश्वर की समझते हुए उन्हे इस भाति बरते कि यह ईश्वर की धरोहर है। धरोहर से मेरा मोह न होना चाहिए। क्योंकि —

"बसतु पराई अपनी करि जाने।
हउमे विचि दु ख घाले॥—सुखमनी महला १

अर्थात्—पराई वस्तु के अपनी समझने में अहम् पैदा होता है जो दु:ख का कारण है। बल्कि कबीर के शब्दों में यह भाव होना चाहिये कि —

"मेरा मुझको कुछ नहीं, जो कुछ है सो तोर। तेरा तुझको सोपते क्या लागै है मोर॥"

गुरु नानक कहते हैं कि वस इस वृत्ति को धारण करे :—

"राम जपुहि अन्तरि गति धिम्राने ।

लालच छोड़ि रचहु अपरम्परि इहु पावहु मकति दुआरा ।।"— मारु महला १

अर्थात्—अन्त करण से ध्यान पूर्वक राम का भजन करो। लोभ लालचों को छोड़ उस अपरम्पार परमात्मा के रंग में रंग जाओ। वस तुम्हे मुक्ति का द्वार मिल गया - ऐसा समझ लो और इस समझ का नाम ही ब्रह्मज्ञान है जो वैराग्य से ही प्राप्त हो मकता है।

जहाँ इस प्रकार का वैराग्य हुआ नहीं कि मनुष्य के ज्ञान कपाट खुल जाते हैं। यह ब्रह्मज्ञानी बन जाता है।

यह एक स्वयं-सिद्ध मिद्धान्त है कि यह ससार सागर अनेक संशय रूपी विकारों से भरा हुआ है।सशयों का निवारण ब्रह्मज्ञानी ही कर सकता है।यह एक गोपनीय अथवा रहस्य पूर्ण वात है और इसे वही समझ सकता है जिनकी आत्मा को किमी ब्रह्मज्ञानी ने जगा कर इस रस का आस्वादन कराया हो।

क्योंकि —

गिम्रानु अंजन भै भंजना देखु निरजन भाइ।

गुपतु प्रगटु सभ जानिए जे मनु राखे ठाइ ।।"—श्री राग महला १

अर्थात्—क्योंकि ज्ञानांजन ही सम्सार के माया मोहों को नष्ट करने वाला है। इसी से निरंजन को देखा जा सकता है। संसार और ईश्वर के जो रहस्य हैं वे भी इसी से जाने जा सकते हैं। इसी से मन को स्थिर रखा जा सकता है।

ज्ञान मन को समझा कर कह सकता है —

"परिहरि कामु क्रोध झुठु निंदा तजि माइआ अहंकार चुकावै ।

तजि काम कामिनी मोह तजैता अंजन माहि निरजन पावै ।।"

अर्थात्—काम, क्रोध, भूठ, निन्दा को छोड़ दे। इसके छोड़ने से माया छूट जायगी और अहम् खत्म हो जायगा और काम वासनाओं तथा कामिनी के मोह को भी छोड़ दे। इनके छोड़ने वाले को परमात्मा दृष्टि-गत होने लगता है।

लेकिन इस प्रकार का ज्ञान बिना गुरु के नहीं हो सकता है। यथा :—

"भाई रे गुरु बिनु गिम्रान न होई ।

पूछहु ब्रह्मे नारदै वेद विम्रासै कोई ।।"

अर्थात्—ब्रह्मा, नारद, और वेद व्यास चाहे जिससे छ लो वह यही कहेगा कि ज्ञान गुरु से ही प्राप्त होता है।

१—"इहि संसारु विकारु सहजे रखि, तरिम्रो ब्रह्म गिम्रानी ।

जिसहि जगाइ पिम्रावै इहु रस, अकथ कथा तिनि जानी ।।"—राग गौडी पूर्वी महला ५

क्योंकि—

चारि पदारथ कहै सभु कोई। सिमृति सासत पंडिन मुखि सोई ।

बिनु गुर अरथु विचारु न पाइया। मुकति पदारथु भगति हरि पाइआ ।

(गौडी महला १)

\+ \+ \+

जनमि मरै त्रैगुण हित कारु । चारे वेद कथहि आकारु ।

तीन अवसथा कहहि वखिआनु । तुरी अवसथा सतिगुर ते हरि जान ।

(गौडी महला १)

\+ \+ \+

अर्थात्—स्मृति, शास्त्र और प्रमुख पण्डित सब कोई ऐसा कहते है कि अर्थ, धर्म, काम, मोक्ष ये चार पुरुपार्थ है जो मनुष्य जीवन का लक्ष्य हैं किन्तु विना गुरु के उपदेश के यह भाव विचार मे ही नहीं आ सकता है कि मनुष्य जीवन का जो अन्तिम लक्ष्य मुक्त-पदार्थ है। वह हरि भगति से ही प्राप्त हो सकता है।

\+ \+ \+

चारों वेदों का यह कथन है कि जीव का मरण जीवन उसके त्रिगुणात्मक प्रकृति के फंदे में पडने से है। भाव यह कि प्रकृति के सतगुण की अधिकता से जीव अच्छे सात्विकी कर्म करता है और रजोगुण एवं तमोगुण की प्रधानता से राजसी और तामसी कर्म करता है। यह कर्म ही उसको भली बुरी योनियों में लाने ले जाने के कारण हैं।

जीव की तीन अवस्थाओं जाग्रत, स्वप्न और सुषुप्त की तो सब कोई व्याख्या कर सकते हैं किन्तु चौथी तुरीय अवस्था का अनुभव तो हरि का जानने वाला सत-गुरु ही करा सकता है।

इस व्याख्या से गुरुओं का अभिप्राय है कि गुरु ही ज्ञानी है। ज्ञानी और गुरु दो नहीं है। क्यों कि दुनियां के जितने भी महादेव, ब्रह्मा, गोरख, व्यास, नारद आदिक ज्ञानी थे वह गुरु थे ज्ञानी ही गुरु हो सकता है। और वही सत असत और मनुष्य जीवन तथा भक्ति के रहस्यों को बता सकता है। इस प्रकार गुरु मत का सम्पूर्ण उपदेश सार रूप से इस पद "परविरती नरविरती पछाणै गुरु कै संगि सवदि घरु जाने"। अर्थात् गुरु के सतसग से प्रवृत्ति निवृत्ति (परा अपरा विद्या, के रहस्य को समझ ले।) और शब्द (ईश्वर) के घर अर्थात् ब्रह्म विद्या को प्राप्त कर ले और साथ ही "किस ही मंदा आखि न चलै, सचि खरा सचियारा है।" अर्थात् दुनियां के दूसरे लोगों के अवगुणों को देखने की बजाय अपने को उस सत्य स्वरूप परमात्मा के अनुरूप बनाये।

लेकिन सभी लोग तो किसी भी सम्प्रदाय में मुक्ति के अभिलाषी नहीं होते। अधिकांश तो गृहस्थ मे रहकर अपने जीवन को नेक बनाने के इच्छुक होते हैं। उन के लिए भी गरुओं ने कुछ सिद्धांत स्थिर किये थे।

उन्होंने सच्चा होने की सलाह तो सब को दी थी। कहा था —

बाबा एहु लेखा लिखि जाणु। जित्थै लेखा मंगीए तित्थै होइ सच्चा निसाणु।

अर्थात् अपने भविष्य के लिए ऐसा लेखा (हिसाब) डालो कि जब वहा (परलोक में) हिसाब मांगा जाय तो सच्चा उतरे। और

"अनुदिन कीरतनु केवल वखयानु। गृहसत महि सोई निरवानु"

अर्थात्-गृहस्थ का केवल प्रतिदिन के हरि कीर्तन और हरि चर्चा से ही कल्याण हो जाता है क्योंकि —

कल मैं एक नामु किरपानिधि जाहि जपे गति पावै।

और धरम ताके सम नाहित इहि विधि वेद बतावै। सोरठि म० ६

वैसे पूर्ण धर्म तो वह था जिसे लोग सतयुग मे बरतते थे किन्तु उसका ह्रास बराबर होता रहा है यथा:—

सत युग साच कहै सभ् कोई । सचि वरते साचा सोई ।
त्रैते धरम कला इक चूकी । तीन चरन इक दुविधा सूकी ।

+

दया दुआपुरि अंधी होई । गुरमुखि विरला चीन्हैं कोई ।

+

इस कथन का अभिप्राय था कि जो लोग पूरा धार्मिक जीवन विताना चाहते हैं, वे सत्य आचरण वाले वनें । अपनी नेक कमाई में से दान पुण्य भी करते रहें ।[1] और दीन दुखियों पर दया भाव रक्खें ।[2] हरि का सच्चे दिल से स्मरण करें । वस यही गृहस्थ के लिये कल्याण का मार्ग है । एक वात उन्होंने गृहस्थ के लिये और वड़े जोर की कही थी कि कोई किसी का शोषण न करे । उनके इस सम्वन्ध के शब्द वड़े मार्मिक हैं यथा —

"जे रत्त लग्गे कपड़े जामा होए पलीत । जो रत्त पीऐं माणसा तिन कउ निरमल चीत ।"

अर्थात्–कपड़ों को लगने वाला रक्त जव अमिट होता है तो उन लोगों के चित्त कैसे निर्मल होंगे जो मनुष्य का रक्त पीते हैं और इसी हेतु गुरु नानक ने अमीर मलिक भागों का भोजन गरीवों के रक्त में सना हुआ कह कर खाने से इन्कार कर दिया था ।

१. घालि खाहि कछु हथहु देहि ।
२ हिंसा तउ मन ते नहीं छुटी जीअ दया पाली ।

अनुकूल-प्रतिकूल

ग्रन्थ साहब में जहाँ गुरु महानुभावों की अपनी वाणियाँ है। वहाँ अन्य,भगतों की भी है। जिन भगतों की वे वाणियाँ है वे भी अधिकाशत. उन्हीं विचारों के निकटवर्ती थे जिनका कि गुरु महानुभाव प्रचार करते थे। अत. उन्होंने इस प्रकार के भक्तों की वाणियों का तो संग्रह किया ही साथ ही भक्ति सम्बन्धी उन विधियों को भी 'ग्रन्थ साहब' मे स्थान दिया है जिन्हे कि कबीर, नामदेव, दादूदयाल और रैदास प्रभृति संत मान्य करते थे।

इसी भांति जिन सतो अथवा भगतो से गुरुओं का मत नहीं मिलता था उनकी बहुत सी बातो का ग्रन्थ साहब मे खंडन भी किया है। इस प्रकार के सम्प्रदायों मे अवधूत, नाथ, आई, नारदीय आदि थे। वैष्णव लोगों का मत गुरु-मत के निकट नहीं था किन्तु चूंकि श्री रामानन्द जी एक उदार वैष्णव थे इसलिये वैष्णवों के सम्बन्ध मे केवल इतना कहकर ही गुरु लोग चुप हो गये कि :—

वैसनो सो जिसु अपरिसु प्रसन्न। बिसनकी माइआ ते होइ भिन्न ॥

करम करत होवे निह करम। तिसु वैसनो का निरमल धरम ॥"—सुखमनी

अर्थात्—वैष्णव तो वह है जिससे अस्पृश्य (अछूत) भी प्रसन्न रहे और जो विष्णु की माया से बचा हुआ हो। अर्थात् जिसे धन दौलत का मोह न हो। कर्म करते हुए भी निष्कर्म हो, (बिना फल की इच्छा से किये कर्म निष्कर्म कहलाते हैं)। इस तरह का जो वैष्णव है उसका ही धर्म शुद्ध है। इसी से मिलती जुलती बात किसी सत ने इन शब्दो में कही थी .—

"वैष्णव जन तो तैने कहिए पीर पराई जाने रे।"

वैष्णवों की भांति ही उन्होंने भागवत लोगों के लिये कहा था कि सच्चा भागवत तो वह है जो:—

"भगउती भगवत भगति का रगु, सगल तिआगे दुसट का सगु।

मनते बिनसै सगल भरमु, करि पूजै सगल पारब्रह्म।

साध संगि पापा मलु धोवै, तिसु भगवती की मति ऊतम है ॥"—सुखमनी

अर्थात्—जिसे एक भगवान की भक्ति का रंग लगा हो और जिसने सब प्रकार के दुष्ट संग को छोड़ दिया हो तथा जो मन के समस्त संशयों को दूर करके केवल पारब्रह्म का पुजारी बना हुआ हो। बस वही उत्तम भागवत है जिसने साधुओं के सतसंग से अपने पापों को धो डाला है।

भागवत और वैष्णवों की भांति ही पंजाब में उन दिनों साधुओं की एक सम्प्रदाय रामदासियों के नाम से भी प्रख्यात थी, उसके सम्बन्ध में भी गुरुओं ने कहा था .—

"जिसके मनि पार ब्रह्म का निवासु, तिसका नाम सति रामदास।"

× ×

"सगल संगि आतमु-उदासु, ऐसी जुगति नानक रामदासु।"

अर्थात्—जिसके मन में केवल परमात्मा का निवास है। उसी को सच्चा रामदास कहा जा सकता है।

× × × ×

सर्व प्रकार के झंझटों को छोड़कर जो अपने आत्मचिन्तन में रहता है। ऐसी ही युक्ति वाला आदमी रामदास है।

ऐसा जान पड़ता है कि पंजाब में अथवा निचले भारत में कोई अस्पर्श (अपरस) नामका भी सम्प्रदाय था और यह लोग अपने को किसी से भी छू जाने से बचते थे। ऐसे लोगों को गुरुओं ने इन शब्दों में समझाया था —

"मिथिआ नाहि रसना परस, मन महि प्रीति निरंजन दरस

× ×

"पर त्रिय रूप न पेखे नेत्र, साध की टहल संत सग हेत।
करन न सुनै काहू की निंदा, सभतै जानै आपस कउ मंदा॥
गुरु प्रसादि विखिआ परिहरे, मन की वासना मन ते टरै।
इन्द्री जीत पच दोख ते रहत, नानक कोटि मधे ऐसा अपरस—सुखमनी

अर्थात्—जिसकी जिह्वा ने स्वादों को छोड़ दिया है। मन में निरजन के दर्शन की लालसा है। पर स्त्री के रूप पर जिसके नेत्र चंचल नहीं हो उठते हैं। साधु संतों की सेवा मे अपना समय बिताता है। कानों से किसी की निन्दा नहीं सुनता, अपने को सबसे छोटा मानता है। गुरु के आशीर्वाद से समस्त विषयों और मानसिक विकारों को छोड़ दिया है। इन्द्रियजित होकर पांचों प्रकार के दोषों से मुक्त हो चुका है। ऐसा ही मनुष्य सच्चा अस्पर्श (अपरस) है जो करोड़ों में ढूंढने पर मिलता है।

भारतवर्ष में पंडितों का कभी भी कोई सम्प्रदाय नहीं रहा किन्तु वे सदैव ही समाज के अगुवा रहे हैं और प्रत्येक नये समाज संशोधक ने उनके सम्बन्ध मे टीका की है। महात्मा बुद्ध ने कहा था :—"पडित तो वह है जिसके हृदय मे ज्ञान का प्रकाश है दृष्टि में समता है और जो प्राणियों में भेद नहीं समझता है। तथा जिसने अपने को वासनाओं से मुक्त कर लिया है।

इसी प्रकार गुरुओं ने भी कहा—

'सो पडितु जो मन पर बोधे। रामनाम आतम महि सोधे।

× × × ×

बेद पुराण सिमृत बूझै मूलु। सूखमं महि जानै असथूलु।
चहु वरना कउ दे उपदेसु। नानक उस पडित कउ आदेसु। —सुखमनी

अर्थात्—पडित तो वह है जिसने मन को समझ लिया है और रामनाम को आत्मा में सजो दिया है। वेद पुरान और स्मृतियों के मूल भाव को समझ लिया है और इस सत्य को जिसने स्वीकार कर लिया है कि स्थूल भी सूक्ष्म का ही रूप है। और चारों ही वर्णों को उपदेश देता है। ऐसा आदमी ही पंडित है और वही बलिहारी योग्य है।[1] उस समय के भारत मे कुछ सम्प्रदाय ऐसे भी थे जो यह मानते

१ उस समय के पडित शूद्र वर्णों को उपदेश देना पाप समझते थे।

थे कि आदमी इस जीवन मे भी मुक्त हो जाता है।[1] इस प्रकार के विचार रखने वालों के लिए गुरुओ का मत था कि—

"प्रभ की आगिआ आतम हितावै। जीवन मुकत सोऊ कहावै।
तैसा हरखु तैसा उसु सोगु। सदा अनदु तह नहीं बियोगु।
तैसा सुवरन तैसा उसु माटी। तैसा अम्रतु तैसी विखु खाटी।
तैसा मानु तैसा अभिमानु। तैसा रकु तैसा राजानु।
जो वरताए साई जुगति। नानक ओहु पुरखु कहिए जीवन मुकति। —सुखमनी

अर्थात्—जिसने अपने आपको प्रभु की रजायुस पर छोड़ दिया है और जिसके लिये हर्ष, शोक, मिलन, वियोग सुवरन, माटी, अमृत, विष, मान, अपमान, राजा रंक सब समान है तथा जो प्रभु की युक्ति पर चलता है वही मनुष्य इस जीवन मे जीवन्मुक्त है। नारदीय सम्प्रदाय के पूजा विधान पर गुरुओं ने इस भांति कटाक्ष किया था—

"हिन्दू मूले भूले अखूटी जाही। नारद कहिआ पूज कराही।
अंधे गूंगे अन्ध अधार, पाथर लै पूजहि मुगध गवार
उहिजा आप डूबे तुम कहा तारणहार। (वार विहाग महला १)

अर्थात्—हिन्दू आरम्भ से ही गलती करते हैं कि अक्षय वट के पास जाकर नारद के द्वारा कथन की गई रीति से (मूर्ति) पूजन करते हैं। ये पत्थरों के पूजने वाले जब आप ही (मूर्खता) मे डूब रहे हैं तब यह औरों का क्या निस्तार करेंगे।

एक और स्थान पर इसी भांति कहा है कि "नारद करै खुआरी।" अर्थात् लोगों को सही रास्ते पर जाने से यह नारद-पन्थी रोकते हैं।

कुछ साधु वैरागी कहलाते थे। यह प्राय. वैष्णवों का ही एक दल था जो लोग घर वार को छोड़ कर जंगलों और तीर्थों मे जाकर भजन करते थे। उन्हे लोग वैरागी और उदासी दोनों नामों से याद करते थे। गुरु नानक स्वयम् वैरागी होगये थे, वैरागी लोग गृहस्थ में उलटना पसन्द नहीं करते थे किन्तु नानकजी जब से अपने परिवार को लेकर करतारपुर की धर्मशाला में रहने लगे तो उनसे वैरागियों ने पूछा भी कि तुम्हारा कैसा वैराग है तव अथवा ऐसे ही अन्य अवसर पर उन्होंने कहा था—

हरि की भगति रते बैरागी, चुकै मोह पिआसा।
नानक हउमै मार पतीजे विरले दास उदासा। —आसा महला १ छन्द
गुर वचनी वाहर घर एकै नानक भया उदासी। मारू महला १

अर्थात्—वैरागी वह है जो मोह को छोड़ कर हरि भगति मे अनुरक्त हो गया हो और जिसने अहम् को भी मार दिया हो। ऐसा आदमी चाहे घर रहे चाहे वाहर क्योंकि गुरु का उपदेश तो घर वाहर एकसा है। उसे कहीं भी पालन कर लो।

गोरख पंथी लोगों के हठ निग्रह के तो गुरु लोग कतई विरुद्ध थे जैसा कि नीचे लिखे पदों से पता चलता है।

१ शंकर मत के कुछ अनुयायी अपने को जीवन में मुक्त हुआ खयाल कर लेते थे।

निउली करम खट् करम करीजै । रामनामु बिन बिरथा सासु लीजै ।

× + × ×

सुण माछिन्द्रा नानक बोले । वसिगत पच करै नहि डोले ।

ऐसी जुगति जोग कहै पालै । आप तरै सगले कुल तारै ।—रामकली महला १

अर्थात्—हठ योग सम्बन्ध नौली आदि छहों कर्म बिना राम नाम के व्यर्थ हैं ।

× × × ×

मच्छीन्द्रनाथ के अनुयायी सुनो—नानक ने कहा—पांचों विकारों से बचाव करले वही सच्चा योग है ।

'आई पथ' के लोगों से उन्होंने कहा था —

"आई पथी सगल जमाती मन जीते जग जीत ।" (जपु)

अर्थात्—सच्चा "आई" तो वह है जो सब को अपनी जमात (सम्प्रदाय) का मानता है और जिसने मन पर काबू पा लिया है ।

पंजाब के हरियाना इलाके में नाथ लोगों का एक सम्प्रदाय था । उनके पड़ौस में ही नाथ थे और उनसे ऊपर सिद्ध। इन लोगों के सम्बन्ध में गुरु नानक देव ने कहा था—"आपिनाथ नाथी सभ जाकी रिद्धि-सिद्धि अवरा साद ।" (जपु)

अर्थात्—रिद्धियों (करामातों) के दिखाने वाले सिद्ध लोग और दूसरे नाथ लोग तथा नाथ इन सब का नाथ (मालिक) एक वही परमात्मा है जिसने सारी दुनिया को नाथ रक्खा है अर्थात नकेल डाल रक्खा है । अत. इन सब को व्यर्थ की बातों को छोड़ कर उसी जगत् नाथ की शरण में जाना चाहिए ।

ये तो हैं वह बातें जिनका गुरु-मत के संस्थापकों ने विरोध किया । अब हम उन बातों पर प्रकाश डालते हैं जो उन्होंने अन्य सन्त सम्प्रदायों की भांति ही ग्रहण करलीं थीं ।

परमात्मा को निर्गुन भाव में मानने वाली समस्त सन्त सम्प्रदायों ने अनहद नाद की ओर हरि-दर्शन के आकांक्षियों का ध्यान दिलाया है । गुरु गोरखनाथ ने कहा था कि प्राणों के ब्रह्मरन्ध्र अर्थात्

अनहद

नासा तक पहुचने पर नाद सुनाई देता है जो गहिर गम्भीर और सार का भी सार है ।[1] इन्द्रियों के दमन और संसार के विकारों से उदासीन रहने से यह अनहद नाद बजता है ।[2] कबीर साहब ने इसी बात को यों कहा था.—"जब कुम्भक भरपुर लीना । तह बाजै अनहद बीणा ।"

गुरु नानक देव ने अनहद के सम्बन्ध में अपनी स्वीकारोक्ति इस प्रकार दी थी —पाच सबदि धुनि अनहद वाजे हम घर साजन आये ।" (सूही महला १)

निर्गुणै सतों का खयाल था कि परमात्मा का जब निर्मल हृदय से चिन्तन किया जाता है तो ब्रह्मांड में एक अद्भुत प्रकार का शब्द होता है जो बड़ा ही अच्छा लगता है और यह निरन्तर बजता है । इस सुन लेने पर फिर किसी वस्तु की इच्छा नहीं रहती । जैसे बीण पर सर्प मुग्ध होकर खेलने लगता है

१ सारम् सार गहिर गभीर गगन उछनिम्रो नाद ।

२ अवधू दम को गहिवा उनमनि रहिवा ज्यू बाजवा अनहद तूर ।

और हरिण चरना छोड़ कर आत्म-विभोर हो जाता है। अनहद को सुनकर वही दशा योगी अथवा भक्त की हो जाती है।

गगन मडल अर्थात् ब्रह्माड मे इस अनहद को सुन वही सकता है जो उन्मनि अवस्था को प्राप्त कर लेता है गोरख, कबीर, नाम देव आदि सभी ने इस उनमनि पर जोर दिया है।

उनमनि यथा —

"उनमनि रहिबा भेद न कहिबा पीयवा निर्झर पाणी।—गोरख नाथ

× × × ×

पवन पति उनमनि रहन खरा। नहीं मिरतू न जनम जरा—कबीर—रामकली।

गुरुओं ने इसी मत को इस प्रकार व्यक्त किया जो हमारी समझ मे कहीं अधिक सहज गम्य है—
"रसिक रसिक गुन गावहु गुरमति लिव उनमनि नाम लगान। अम्रितु रसु पीआ गुरसबदी हम नाम विरहु कुरवान।"

परमात्मा के मिलन के लिये जो मार्ग बहुत सोच विचार के बाद पुरातन ऋषियों ने तय किया था वह था योग मार्ग। आगे चलकर योग मार्ग दो पगडडियों मे विभक्त हो गया एक हठ योग मार्ग और

सहजि दूसरा राज-योग-मार्ग। बौद्ध-मत के योगियों ने इन्हे वज्रयान और सहज यान मे परिणत कर दिया। सतकाल मे हठ योग-नाथ, सिद्ध जोगियों और अवधूतों तक सीमित रह गया। कबीर के परवर्ती और उनसे प्रभावित दूसरे सन्तों ने सहज मार्ग को अपनाया। जैसा कि नीचे उद्धरण से स्पष्ट हो जाता है—

दादू भाडा देह का तेता सहजि बिचारि।
जेता हरि बीचि अन्तरा, तेता सवै निवारि।—दादू दयाल
मन का भ्रम मनही तें भागा। सहज रूप हरि खेलन लागा—कबीर

गुरुओं ने इस सहजि के सम्बन्ध मे इस प्रकार के अपने विचार प्रकट किये थे —

भाई रे गुरु बिनु सहजि न होइ।
सबदेहीते सहजि ऊपजै हरि पाइआ सच सोइ।—श्रीराग महला ३

× × ×

सहिज सालाही सदा सद सहिज समाधि लगाई।—श्रीराग महला ३

× × ×

गुरु कै चरनि कीओ राज योग।—गौडी म० अष्टपदी

× × ×

गुरु सत सभा दुख मिटै रोग। जन नानक हरिवर सहिज योग—वसत महला १

समस्त निर्गुणी सन्तों की वाणियों मे शून्य शब्द का व्यवहार हुआ है जो निर्जन और पारब्रह्म दोनों ही के लिये प्रयुक्त हुआ है।

गुरुओं ने कहा था —

शून्य "सुन कला अपरम्परि पारी। आपु निरालमु अपर अपारी।
भावै कुदरति करि करि वेखै सुनहु सुंन उपाइदा।"

इसी शून्य को दूसरे संतों ने जिस प्रकार अपनी वाणियों मे प्रयोग किया है उसके कुछ नमूने इस भाति हैं .—

"सु नि मंडल मे सोधिले, परम जोति परकास।"—कबीर

× × ×

सहज सुन्नि सब ठौर हैं, सब घट सबही माहि।
तहां निरजन रमि रहा, कोउ दुख व्यापै नाहि।—दादू दयाल

× × ×

बसती न शून्यं, न बसती अगम अगोचर ऐसा।—गोरख

निरगुनी सन्तों से इसी प्रकार की भाव-व्यंजना सम्बन्धी अनेकों समता हैं। सुरति, विरति, शब्द, सत्य लोक, और निर्वाण का वर्णन लगभग सबका—कुछ ही अन्तरों मे एकसा है।

इस प्रकार हम देखते हैं महात्मा बुद्ध और शकराचार्य के बाद जिस निर्गुण कल्प-तरु का बीज वपन हुआ था। उसके पौदे की गोरख ने बाड़ की। कबीर और उनसे प्रभावित नामा, दादू और रैदास ने सींचा और गुरुओं ने उसे खाद देकर बड़ा किया और यह भी कहा जा सकता है कि इसकी कलम भी की। बस 'गुरु-ग्रन्थ साहब' से जिस 'गुरु-मत' की झांकी होती है वह वही निर्गुन पंथ है। जिसका बौद्ध और शंकर के पश्चात् पौदा अंकुरित हुआ जो अनेकों एकेश्वरीवादी सन्तों द्वारा पालित-पोषित होकर गुरुओं के हाथों मूर्त रूप को प्राप्त हुआ। आचार्य विनोबा भावे ने इस धर्म-वृक्ष (गुरु-मत) को उपनिषदों के अधिक नजदीक बताया है।

सिखों का स्वर्ग

स्वग की कल्पना नई नहीं है और न यह दो चार सदियो से ही है। ससार मे ऐसा कोई भी धर्म नही है जिसने किसी न किसी रूप मे स्वर्ग की कल्पना न की हो। वैदिक आर्यों से लेकर मूसावी, ईसाई, जरदुश्ती और मुहम्मदी सभी ने स्वर्ग की कल्पना की है। नास्तिक लोगो ने भी निर्वाण और परमानन्द के रूप मे—आंशिक तौर पर ही सही-स्वर्ग को माना है।

स्वर्ग कहाँ है? यह प्रश्न होने पर उसके स्थान का भी पता दिया है। ईसाइयो ने चौथे आसमान पर और मुसलमानों ने सातवें आसमान पर अपने स्वर्ग (वहिश्त) का अस्तित्व माना है। जो लोग आस्मान को ठोस पदार्थ नहीं मानते–और वास्तव में वह ठोस है भी नही–वे इस बात का सहज ही उपहास उड़ाते रहे हैं। वैसे बात है भी सही यही कि आस्मान स्थूल न होने के कारण गिने भी नही जा सकते। किन्तु विज्ञान की अधिक खोज यह वताती है कि इस पोल मे भी मडल अथवा स्तर हैं। जहा का Timedphere (वायुमडल) (एक के बाद एक का) अलग है। इस तरह के चार स्तरो का पता उन वैज्ञानिको ने लगा लिया है जो मगल या चन्द्र की यात्रा के प्रयत्नो मे लगे हुए है। इन स्तरों अथवा मण्डलो पर कैसा लगता है? वहा का वातावरण कैसा है? मन को प्रफुल्लित करने वाला है अथवा डराने वाला? इसकी सूचना वैज्ञानिक शायद उस समय सही रूप में दे सकेंगे जब इन स्तरों पर अड्डे कायम करना सभव हो जायगा।

यह हो सकता है कि पच्छिम (यूरोप) के प्राचीन ज्योतिषियो ने तारो की खोज के साथ ही इन स्तरों (मडलो) का भी आभास कर लिया हो और ज्योतिषियों की उसी सूचना के आधार पर ईसाई लोगो ने यह कहा हो कि हमारा स्वर्ग चौथे आसमान पर है। मुस्लिम धर्म प्रचारकों के अपने वहिश्त को सातवे आसमान पर बताने के दो कारण हो सकते हैं एक तो यह कि ईसाइयों से ऊँचे पर अपने स्वर्ग को बताया दूसरे अरब अथवा मिश्र के नजमियों (ज्योतिषियों) की जानकारी में सात आसमानो (वातावरण) के स्तर जँच गये हो।

पौराणिक आर्य्यो ने स्वर्ग को बैकुण्ठ नाम भी दिया है। और इसे विष्णुलोक में बताया है। उन्होंने स्वर्गो की गिनती भी दी है। "सात स्वर्ग अपवर्ग सुख धरिये तुला इक अग" मे तुलसीदास ने यही सकेत किया है। यह विष्णुलोक कहा है? यह तो नही बताया गया किन्तु बताया उसे कहीं आसमान में ही है। जहा वह स्वर्ग है, वहा कोई क्षीर सागर है। वहीं विष्णु रहते है। पौराणिक आर्य्यो मे जो लोग शैव हैं वह शिवलोक मे स्वर्ग मानते हैं। शिवलोक में कोई कैलाश है, वहाँ शिवजी रहते हैं। ब्रह्मा के उपासकों ने अपना स्वर्ग ब्रह्मलोक मे माना था।

पौराणिक लोगों से पहले के लोग जिन्हें वैदिक आर्य की संज्ञा इतिहासकार देते हैं। स्वर्ग को (सम्भवतया) इन्द्रलोक मे मानते थे जो देवलोक भी कहलाता था। इस स्वर्ग मे सदा सुख ही सुख का भोग था। भोगों के फलों

का विधान नहीं था। दुख का नामनिशान न था। इन्द्रिया यहा जिन भोगो को प्राप्त करने मे असमर्थ अथवा लालायित रह जाती थीं वे सब भोग इस स्वर्ग मे थे। उपनिषद् काल तक ऐसे ही स्वर्ग की कल्पना आर्यों में चली आ रही थी। यम ने नचिकेता को इसी स्वर्ग का प्रलोभन दिया था।

इस स्वर्ग-सुखको वही लोग प्राप्त कर सकते थे जो शुभ कर्म कर सकते थे। शुभ कर्मों का सार पच महा कर्मों मे केन्द्रित कर दिया गया था। इन पच महाकर्मों को ब्रह्मयज्ञ, देवयज्ञ, पितृयज्ञ, अतिथि यज्ञ और बलिवैश्व यज्ञ के नाम से पुकारा जाता था। सब प्रकार की ईश्वर प्रार्थनाऍ ब्रह्मयज्ञ में शामिल थीं और सर्व प्रकार के—दैनिक[1], पाक्षिक[2], ऋत्विक[3], पार्विक[4] और समारोहिक[5] अथवा सोद्देश्यिक[6] अग्निहोत्र (हवन) देव-यज्ञ कहे जाते थे। आगत लोगो के भोजन और सत्कार तथा दीन और विद्वानों को दान अतिथि यज्ञ कहलाते थे। गाय, बैल, कुत्ते, कीट आदि के प्रति सदय होना और उनके लिए खाने को देना तथा दूसरे रूपसे उनका हित करना बलिवैश्व यज्ञ थे।

इन समस्त यज्ञों का मुख्य आधार त्याग, परोपकार और अपनी कमाई का समाज के हित में उपयोग था। बहिश्त की प्राप्ति के लिए मुसलमानों ने भी पाच ही लाजिमी महाकर्म (रुकुन) तय किये थे। नमाज, रोजा, जकात सुन्नत और हज उनके नाम दिये थे।

हिन्दुओं में पौराणिक युग के बाद सिद्ध, योगी, अवधूत और साधु, सन्तों का क्रमश युग आता है। सिद्ध और योगियों ने दर्शनो के मार्ग का ग्रहण किया और योग के द्वारा आत्मा की मुक्ति के प्रयत्न को अपनाया। यह ध्यान में रखने की बात है कि वैदिक-उपनिषद कालीन आर्य्य मुक्ति और स्वर्ग दोनों को मानते हुए भी मुक्ति के अधिक इच्छुक थे किन्तु पौराणिक काल के आर्य जिन्हें कि हिन्दू कहना अधिक उपयुक्त है। स्वर्ग प्राप्ति के अधिक इच्छुक थे। सिद्ध, अवधूत और योगियों के बाद भक्त और सन्तों का समय आया। भक्त लोगों का मुक्ति की बजाय ईश्वर-दर्शन व वैकुण्ठवास की ओर और सन्तों का मुक्ति एवं निरंजन के सामीप्य की ओर अधिक झुकाव रहा। पौराणिक लोगों का धार्मिक नेतृत्व ब्राह्मणों के हाथ और भक्तिकाल के लोगों का नेतृत्व विरक्त वैरागी एव भक्त लोगों के हाथ रहा। ये भक्त, वैरागी अथवा साध लोग विचारों की दृष्टि से पौराणिकों के अधिक नजदीक थे किन्तु कर्मकाण्ड इनका यज्ञ, हवन न होकर पूजा और भक्ति प्रधान था। सन्त लोग विचार की दृष्टि से वैदिक औपनिषदिक और दार्शनिक लोगों के अधिक निकट थे किन्तु मोक्ष के लिये इन्होंने योग के कठिन साधनों का ग्रहण न करके सहजि मार्ग को अपनाया और मुक्ति अथवा निर्वाण के बाद जीव की स्थिति के सम्बन्ध में ऐसी कल्पना की जिसमें मुक्त पुरुष को मुक्ति और स्वर्ग दोनों का आनन्द प्राप्त हो जाय।

यों तो भारत में कई प्रमुख सन्त हुए हैं किन्तु उत्तरी हिन्दुस्तान मे कबीर और नानक ही दो ऐसे सत हुए है जिनके लाखों लाख अनुयायी हैं। रैदास, नामदेव पीपा और दादू कबीर से ही अनुप्राणित थे।

कबीर ने निर्वाण के साथ ही स्वर्ग को भी स्वीकार किया था। उनके स्वर्ग का स्वरूप हम उन की ही वाणियों से इस प्रकार व्यक्त कर सकते हैं—

लोक दस हैं। जिसका जैसा ज्ञान और साधना है उसी के अनुसार भक्त लोग इन लोकों को प्राप्त करते हैं। इन दसों लोकों—नासूत, मलकूत जबरूत, लाहूत, अचिन्त्य सोहग, इच्छा, ओंकार, सहज सत्य। में सत्यलोक सर्वोच्च लोक है। कबीर पथियों का यह लोक विभाजन सूफियों और निर्गुनियों दोनों के लिये समन्व-

१—दैनिक-प्रात· साय किये जाने वाले हवन। २—पाक्षिक अमावस, पूर्णिमा पर होने वाले हवन। ३—ऋत्विक ऋतुओ (मौसमों) के आरम्भ पर होने वाले। ४—पार्विक पर्वो एव त्यौहारों पर होने वाले। ५—समारोहिक जन्म मरण, ब्याह शादी, विजय पर होने वाले। ६—सोदेश्येक उद्देश्य पूर्ति के लिये जैसे राजसूय, अश्वमेधादि।

त्मक विभाजन है। इन दस लोको की कल्पना कबीर के पश्चात् कबीर-पंथियों द्वारा की गई कल्पना है। स्वयम् कबीर जी के पदो से सत्यलोक रंग महल और बेगम देश का ही पता चलता है। वे गगनमडल मे सत्यलोक को मानते हैं। उसी सत्यलोक में बेगम देश है और बेगम देश मे रगमहल है। वहीं कबीर का स्वर्ग है। यथा:—

"सत्यलोक सतपुरुष का करे सुरति से ध्यान।"

\+ \+ \+

"अवधू बेगम देस हमारा।
घरन, अकास-गगन कछु नाहीं, नहीं चन्द्र नहीं तारा।
सत्य धर्म की हैं महरावें, साहिव के दरवारा॥

× × ×

जोग जुगति सो रग महल में पिय पायो अनमोल रे।
कहं कबीर आनन्द भयो है, बाजत अनहद ढोल रे।

× × ×

अपनें विचारि असवारी कीजै। सहजै के पावडै पांव जब दीजै।

× × ×

दे मुहरा लगाम पहराऊं। सिकली जीन गगन दौराऊं।
चलि वैकुंठ तोहिं लै तारौं। थकि हित प्रेम ताज नें मारूं।

× × ×

जहा जरा मरण व्यापै नहीं, मुवा न सुणिए कोइ।
चलि कबीर तेहि देसडें, वैद विधाता होइ।
कबीर हरि चरणों चला, माया मोह ते छूटि।
गगनमण्डल आसन किया, काल गया सिर कूटि।

× × ×

देखो करम कबीर का, कछु पूरब जन्म का लेखा।
जाका महल न मुनि लहैं, सो दोसत किया अलेखा।

गुरु महानुभावों ने भी अपने पूर्ववर्ती एव समकालीन निर्गुनिये संतों की भाति स्वर्ग की कल्पना की है। उनके स्वर्ग का नाम सच खड है। यह सचखड पाचवा लोक है। इन पाचो स्वर्गों (खडों) का सिलसिला इस प्रकार है। (१) धर्मखण्ड (२) ज्ञानखण्ड (३) सरमखण्ड (४) कर्मखण्ड (५) सचखण्ड। इस सचखण्ड में ही परमात्मा का वास है।

गुरुनानक देव जी ने इन पाचो खण्डों पर इस प्रकार प्रकाश डाला है:—

राती रुती थिती वार। पवन पाणी अगनी पाताल।
तिसु विचि धरती थापि रखी धरमसाल।
तिसु विचि जीअ जुगति के रग। तिनके नाम अनेक अनंत।
करमी करमी होइ बीचारु, सचा आपि सचा दरबारु॥
तिथै सोहनि पच परवाणु। नदरी करमि पवै नीसाणु॥
कच पकिआई ओथै पाइ। नानक गइआ जन्में जाइ।, ३४॥
धरम खन्ड का एहो धरमु। (गियानखन्ड का आखहु कर्म)।

अर्थात्—(उस अकाल पुरुष ने) (अहो)—रात्रि के पश्चात् ऋतुओं, तिथियों और वारों में काल का विभाजन किया। फिर पवन से पानी और पाताल से अग्नि को विभक्त करके धरती को स्थापित किया। सृष्टि रचना के सम्बन्ध में परम्परा से भारतीयों का यह मत रहा है कि सृष्टि रचना से पूर्व अर्थात् प्रलय की स्थिति में एक धधूकारा (कुहरा) जैसा आच्छादन था। उसी का ठोस रूप होने और तत्वों के विभाजन से जगत बन गया अग्नि, पानी, पवन और पृथ्वी तत्वों के अलग अलग होने से जो पोल हुई, अर्थात् आसमान बना, उस आसमान और पाताल के बीच में पृथ्वी की स्थापना की। यह पृथ्वी (स्वर्ग एव मोक्षके अभिलाषिओंके लिये उनके आवागमन के मार्ग में) धर्मशाला जैसी है। सूफी साहित्य में भी जगत को सराय फानी कहा गया है।

फिर इस पृथ्वी पर युक्ति के साथ अनेकों रगों (प्रकारों) के जीवों की रचना की। जिनके कि उनके रूप रग, बनावट, चालढाल और कार्य अथवा जीवन के ढगों के अनुसार अनेक नाम हैं, और वे हैं भी, अनेकों प्रकार के।

ये जीव इस पृथ्वी पर जैसा कर्म करते हैं उन कर्मों पर सत्य (धर्म) रूप परमात्मा अपने सत्य दरबार में विचार करता है।

उस दरबार में उन्हें ही शोभा (प्रतिष्ठा) प्राप्त होती है जो च परवाण हैं। अर्थात् जिन्होंने पाच विकारों से अपना आचरण मुक्त रखा है। अपने शुभ कर्मों के कारण वे वहा रहने का निशान प्राप्त करते हैं। उन्हें भी परमात्मा की कृपा दृष्टि प्राप्त होती है।

बस (सक्षेप) में धर्मखण्ड अथवा धर्मलोक का यही धर्म (व्यवहार एवं कारोबार) है।

(धरम खंड का एहो धरमु)। गिआन खड का आखहु करमु ॥
केते पवण पाणी वैसन्तर केते का‌ह महेस।
केते बरमे घाडति घडीअहि रूप रग के वेस।
केतीआ करम भूमी मेर केते केते धू उपदेस।
केते इन्द चन्द सूर केते केते मडल देस।
केते सिध बुध नाथ केते केते देवी वेस।
केते देव दानव मुनि केते केते रतन समु द।
केतीआ खाणी केतीआ बाणी केते पात नरिंद।
केतीआ सुरती सेवक केते नानक अतु न अतु। ॥ ३५ ॥
गिआनखड महि गिआनु परचडु। तिथै नाद विनोद कोड अनदु।

अर्थात्—अब ज्ञान खण्ड अथवा ज्ञानलोक के व्यवहार व कारोबार के सम्बन्ध में कहते हैं। परमात्मा के विराट विश्व में कितनी ही प्रकार की अग्निया हैं। कितनी ही प्रकार के पवन और पानी है। और कितनी कर्म-भूमिया हैं। इन कर्मभूमियों मे कितने ही मेर अर्थात् उच्च स्थान और कितने ही ध्रु वप्रदेश और रतनों के भडार समुद्र हैं अर्थात् इन कर्मभूमियों में जल-थल वाले तथा शीत और उष्ण सभी प्रकार के देश हैं। जिनके लिये कितने ही इन्द्र और कितने ही चन्द्र, सूर्य हैं और उन चन्द्र सूर्य के कितने ही मडल (अर्थात सौर मडल और चन्द्र मडल आदि) हैं। अभिप्राय यह कि इन चन्द्र, सूर्यों के साथ ही उनके मडल भी हैं (इन ग्रहों के प्रत्येक मडल में कई कई उपग्रह होते हैं)।

इन सभी कर्मभूमियों के लिये कितने ही कृष्ण (विष्णु) महेश और ब्रह्मा हैं। जो कि इसका सृजन पालन और विनाश करने के काम में लगे हुए हैं। इन भूमियों में कितने ही धर्माचार्य अर्थात् कपिल (सिद्ध) कितने ही सिद्धार्थ गौतम (बुद्ध) कितने ही गोरख मछेन्द्र आदि (नाथ) और शाक्त उपासक हैं। तथा कितने ही देव, दानव हैं।

इन भूमियों में अनेकों प्रकार के जीव (प्राणी) हैं और उनकी अनेकों ही बोलिया हैं। उस अकाल पुरुष के इस विराट विश्व का सचालन ज्ञानखण्ड अथवा ज्ञानलोक से होता है जहा कि नाद (अनहद ध्वनि) और विनोद (चिदानन्द) का बहुतेरा आनन्द है।

(इसके पश्चात् सरम खड अथवा शील लोक की बात सुनो ।)

सरम खंड की बाणी रूप। तिथै घाड़ित घडीए बहुत अनूप।
ताकीआ गला कथीआ ना जाहि। जे को कहै पिछै पछुताइ॥
तिथै घडीऐ सुरति मनि बुधि। तिथै घडीऐ सुरा सिधा की सुधि॥

अर्थात्—सरम (शील) खड की अभिव्यक्ति वाणी से नहीं अपितु उसके सौंदर्य से होती है जहा पर कि (परमात्मा अपने) विराट विश्व की विचित्रताओं का सृजन करता है। उस विचित्रताओं के रचना सौंदर्य की बात कही नहीं जा सकती अर्थात् उसे कहने को शब्द और भाव व्यजना शक्ति दोनो का ही अभाव है। जो कोई कहने की चेष्टा भी करेगा तो उसे पीछे पछताना पड़ेगा। क्योंकि वह समझेगा कि मैं ठीक से उसका वर्णन नहीं कर सका। वहा पर सुरति, मनोभाव और बुद्धि (मेधा) का सृजन होता है। और वहीं देवताओं और सिद्ध पुरुषों के लिये सुधि (दिव्य गुणों और साधनाओं) की रचना होती है।

और—

करम खंड की बाणी जोरु। तिथै होरु न कोई होरु।
तिथै जोध महाबल सूर। तिन महि राम रहिआ भरपूर।
तिथै सीतो सीता महिमा माहि। ताके रूप न कथनें जाहि।
ना ओहि मरै न ठगें जाहि। जिनकै रामु वसै मन माहि।
तिथै भगत वसहि कै लोअ। करिहि अनन्दु सचा मन सोइ।

अर्थात्—कर्म खड की यदि हम वाणी द्वारा व्याख्या करें तो कहना होगा कि वह शक्ति लोक है।[1] वहा पर महाबली शूरवीर योद्धाओं का वास है और कोई वहा नहीं प्रवेश पाता। इनमे वीर रूपसे राम व्याप्त होरहा है और महिमा (कीर्ति) रूप से सीता जी हैं। उनके सौंदर्य का बखान नहीं किया जा सकता। उन लोगों के हृदय में राम का वास है। इसलिये वे न तो मरते हैं और न ठगे जाते हैं। वहा कई प्रकार के भक्तो का वास है। जिनका कि मन सच्चा था वे वहा (पहुँच कर) आनन्द (मौज) कर रहे हैं।

"सचि खंड वसै निरकार। करि करि वेखै नदरि निहाल।
तिथै खंड मंडल वर भंड। जे को कथै अतन अत।
तिथै लोअ लोअ आकार। जिव जिव हुकमु तिवै तिवकार।
वेखि विगसै करि विचार। नानक कथना करडा सारु।

अर्थात्—(इन सब लोकों में जो सबसे ऊपर लोक है वह सचखण्ड है) सचखण्ड (सत्य लोक) में निराकार परमात्मा का वास है। यहा से ही वह अपनी रचना को कृपापूर्ण दृष्टि से अवलोकन करता है। वहा उस सचखण्ड में बड़े २ श्रेष्ठ मडल हैं। उनके सम्बन्ध में कहा जाय तो पार नहीं आ सकता वहा अनेकों प्रकार के लोग हैं जब जिसे जो हुकुम दिया जाता है उसे करने को वह प्रस्तुत रहते हैं।

नानक कहते हैं मेरे लिये (वहा की रचना का) कथन करना लोहे के चने चबाना जैसे कठिन है। (मैं

१. पौराणिक लोगों ने इस लोक का नाम सूरलोक, सूर्य मण्डल और शिवलोक दिया था। जहा पर युद्ध क्षेत्र में मरनें वालें जाते थें।

इतना ही कह सकता हूँ कि) उसें देखने और विचार करने से ही चित्त प्रफुल्लित हो जाता है।

इन पाचों प्रकार के खण्डों (लोकों) के वर्णन में गुरु जी ने जो कुछ कहा है उसका सार यह है कि परमात्मा ने 'अहोरात्रि' काल की सामाप्ति पर ऋतुओं, तिथियों और वारों में काल का विभाजन किया। पवन, पानी अग्नि और पृथ्वी के रज कणों से जो धु धूकारा छाया हुआ था। उसे अलग अलग करके आकाश और पाताल के मध्य में पृथ्वी को जीवों के लिये एक धर्मशाला (सराय) के रूप में स्थापित किया। इसका भाव यह है जीव के लिये यह ससार एक सराय के रूप में है यह उसका वास्तविक घर नहीं है यहा उसे चन्द दिन रहना है।

इस पृथ्वी पर अनेकों योनियों वाले जीव हैं उनमें जो कर्मी जीव हैं (यह याद रहे कि प्राय: सभी यौनिया तो केवल भोग यौनिया हैं। इन में कुछ ही कर्म योनिया और भोग योनिया दोनों हैं। मनुष्य योनि भोग के साथ ही कर्म योनि भी है) उनके कर्मों पर धर्मखण्ड (धर्म लोक) में सच्चे प्रभु के सच्चे दरबार में विचार होता है। इनमें से जो श्रेष्ट कर्मों वाले होते हैं वही वहा ठहरते हैं और उन्हें ही वहा रहने का चिह्न मिलता है। और जो कच्चे होवे हैं उन्हें पक्के (सच्चे) होने के लिये वापिस कर दिया जाता है। बस यही धर्म खण्ड का वर्णन है। तात्पर्य यह कि इस धरती रूपी धर्मशाला में रैन बसेरा करने वाले मुसाफिरों में कुछ को तो उनके अच्छे आचरण के फल स्वरूप धर्म खण्ड में रोक लिया जाता है और जो आचरण के कच्चे साबित होते हैं, वे फिर इधर ही वापिस कर दिये जाते हैं। इस धर्म खण्ड में साधारण ग्रहस्थ भी अपने कर्त्तव्य में सच्चे उतर जाय तो जा सकते हैं।

ज्ञान खण्ड में ज्ञानियों के लिये ही स्थान है। और ज्ञान खण्ड की विचित्रता का तो कहना ही क्या ? इस पृथ्वी पर क्या है। वहा तो ऐसी पृथ्वियों के रचने वाले ब्रह्मा तक हैं आदि आदि। वहा पहुचने वालों के लिये आनद ही आनन्द है।

ज्ञान खण्ड में परमात्मा के विराट विश्व दर्शन हैं तो सरम खण्ड में मनुष्यों के लिये घड़ी जानी वाली दैवी सम्पदायें बुद्धि, विवेक, शील आदि हैं।

कर्म खण्ड में उन लोगों का प्रवेश है जो परोपकार के लिये अपने प्राणों की बाजी लगाते हैं। वहा उन्हें महिमा की देवी सीता और बल के स्वरूप राम के दर्शन होते हैं।

सचखण्ड में केवल वे ही लोग प्रवेश पाते हैं जो कि हुक्मी के हुक्म पर चलें अर्थात् जिन्होंने अपने को ईश्वर के अर्पण कर दिया है।

ससार के सुधार के लिये भी इस सचखण्ड में से ही (सुधारक) भेजे जाते हैं। इस सचखण्ड में ही बेगमपुरा नामका एक नगर है। उस नगर में जो सुख महल (आनन्द भवन) हैं। सत लोग उसी में स्थान पाते हैं। गुरु गोविन्दसिंहजी के कथनानुसार उन्हें इस पृथ्वी लोक में परमात्मा ने इसी सच खण्ड नाम के लोक से भेजा था।

"सुख महल जाके ऊच दुआरे। तामहि बसहि सत पिआरे" इस सम्बन्ध का वर्णन हम पीछे के पृष्ठों में दे चुके हैं। पाठक इस सदर्भ और उस वर्णन को साथ साथ मिला कर पढें, इससे उनकी जानकारी–इस सम्बन्ध की–और भी वृद्धि होगी।

सिख-गुरुओं का स्वर्ग सम्बन्धी यह कल्पना चित्र आध्यात्मिक है तब भी अच्छा है और यदि वास्तव में ही ऐसे कहीं स्वर्ग हों तब भी अच्छा है।

आज जबकि आस्था पर तर्क हावी है। सहज ही लोगों की समझ में नहीं आता है कि स्वर्ग किन्हीं स्थान विशेषों पर हो सकते हैं किन्तु यदि हों तो कोई आश्चर्य की बात नहीं है। क्योंकि स्वर्गों की कल्पना दो चार सदियोंसे नहीं और नहीं किसी एक देश की ही है।

जो लोग कर्म-फल-सिद्धान्त को मानते हैं उन्हें कर्म फलोंके भोग के लिये, योनि-प्रवाह (आवागमन), विश्राम

(Interval) और इति (End) अथवा मोक्ष भी मानना पड़ेगा। और अस्थायी और स्थायी विश्रामों की अवधिमें किसी स्थान की कल्पना कर ली जाय तो हमारे वर्तमान जीवन को उन्नत बनानेमे कोई बाधा भी नहीं पहुँचती। अपने जीवनमें जहा हम अनेक आशाओं और मनोइच्छाओ की पूर्ति के लिये जूझते रहते हैं वहा स्वर्ग की प्राप्ति के लिये भी प्रयत्न करें तो कुछ बुरा भी नही होगा और जब स्वर्ग मिलने के लिये कर्म भी ऐसे बताये गये हों जिनमें दूसरों का हित भी सन्निहित है तो भला ही भला है।

अब रहा यह प्रश्न कि स्वर्ग को देखकर कोई लौटा हो तो उससे तसल्ली की जावे। इसका तो सीधा सा उत्तर है कि चन्द्र, सूरज और राहु, केतु को कोई भी देखकर नहीं लौटा है। अत. ज्ञान से अथवा विज्ञानसे जब पुराने लोगों द्वारा इनके सम्बन्धके बताये गये अन्वेषण काफी दूर तक सच हैं तो फिर स्वर्ग के सम्बन्धकी सूचनायें भी सही हों तो कोई आश्चर्य नहीं।

अपनी ओर से तो इस सम्बन्ध में हम इतना ही कह सकते हैं कि गुरु नानक देव जी ने सूख महल का और गुरु गोविन्दसिंहजीने सचखड का जैसा चित्र खींचा है उसके अनुसार सिखोंका सचखड (स्वर्ग) निहायत भव्य है। तथा हृदय में प्राप्ति के लिये भावनाओं का बीज बोता है। और आत्मा कहती हैं कि ऐसे स्वर्ग की अस्ति (हू द) सच ही हो। कल्पना नहीं।

गुरुमत हमारी दृष्टि में

सिखों के सम्बन्ध में लिखते हुए विभिन्न विभिन्न विचारकों ने गुरु-मत पर एक से ही विचार प्रकट नहीं किये। डाक्टर ट्रम्प ने 'ग्रन्थ साहब' का जो अनुवाद अंग्रेजी में किया था उसमें लिखा था कि गुरु नानक एक पूर्ण हिन्दू-विचारक थे।[1] उन्होंने यह भी लिखा था कि उन पर इस्लाम मत का जो प्रभाव था वह भी इस्लाम-जन्य नहीं अपितु सूफी-जन्य था जो कि हिन्दुओं के ही सर्वात्मवाद का एक रूप है किन्तु "दी डिक्शनरी आफ इस्लाम" में—सिख धर्म पर एक निबन्ध लिखते हुए फेडरिक पिंकाट ने उन्हे इस्लाम धर्म्मावलम्बी बताया था और पंजाबियों के सुपरिचित मित्र मैकालिफ साहब ने 'दि सिख रिलीजन" नामक पुस्तक में गुरु-मत को नितान्त तीसरा धर्म माना है।

फेडरिक पिंकाट के कथन का समर्थन तो कोई भी नहीं करता न सिख और न ही मुसलमान ऐसा मानते हैं। हाँ यह बात अवश्य है कि गुरु नानक की यह भावना अवश्य रही थी कि हिन्दू और इस्लाम दोनों धर्म अपनी-अपनी बुराइयों को छोड़कर एक दूसरे के निकट आ जावें हालाकि उस समय की स्थिति यह थी कि "हिन्दू कहू तो मारा जाऊँ मुसलमान मैं नाहीं।" लेकिन फिर भी गुरु नानक और उनके परवर्तियों ने इस्लाम धर्म की त्रुटियों की खुले दिल से आलोचना की।

"गुरु-मत" तीसरा धर्म है। बाहर से देखने और सुनने में ऐसा ही लगता है किन्तु यह बात ग्रन्थ साहब से सिद्ध नहीं होती। क्योंकि तनिक से मतभेद से अथवा विचार-स्वातन्त्र्य की अभिव्यक्ति से "गुरु-मत" तीसरा धर्म है तो उसे तीसरा न कहकर हजारवां कहना भी गलत न होगा क्योंकि चारों वेदों, छ हों शास्त्रों और सभी उपनिषदों में एक ही प्रश्न का उत्तर देने के लिये मत स्वातन्त्र्य का पूरा उपयोग किया गया है।

वास्तव में तो "ग्रन्थ-साहब" में एक तीसरा पथ चलाने की कोई बात ही नहीं है। वहां तो यह है कि मनुष्य अपने जीवन को सच्चा बनावे—ताकि वह सत्य स्वरूप परमात्मा को प्राप्त कर ले। परमात्मा की प्राप्ति के लिये जो साधन बताये गये हैं वे भी सहस्रों उन साधनों में से ही हैं जो कि हिन्दू धर्म-ग्रन्थों में विभिन्न ढगों से कहे गये हैं। अत गुरु-मत की उपमा हम वृक्ष की उस डाल से दे सकते हैं जो पुरानी डालों के बीच में एक नवीन-जीवन को लेकर नव पल्लवों से आच्छादित होती हुई फूट पड़ती है।

यही कारण है कि उस विशाल हिन्दू धर्म-वृक्ष से खाद्य प्राप्त करते हुये भी 'गुरु-मत' रूपी

१ दी आदि ग्रन्थ इन्ट्रोडक्शन पृ० ६७—११८।

शाख अपना अलग ही अस्तित्व दिखाती है। प्रमाण के लिये हम यहां कुछ शीर्षको के ,साथ ग्रन्थ साहब के कुछ स्थलों पर विचार करते है।

द्वैत अद्वैत

गुरु महानुभाव द्वैतवादी थे या अद्वैतवादी "ग्रन्थ साहब" को पढ़ने के पश्चात् यह प्रश्न स्वभावतः मस्तिष्क मे उठता है ? जिन लोगों का द्वैतवाद की ओर झुकाव है वे 'ग्रंथ साहब' मे से द्वैतवाद सिद्ध कर सकते है और जिन लोगों का 'अद्वैत' से मोह है वह अद्वैत के प्रमाण—'ग्रन्थ साहब' में से सामने लाकर रख देंगे। जैसा कि नीचे के उद्धरणों से प्रकट है :—

"तू पिरु गुणवन्ता हउ अउगुण आरा। (राग वडहस म० ४) —द्वैत

'कहु नानक हम नीच करमा'

सरणि परे की राखहु सरमा।—(राग आसा म० ५) —द्वैत

नाहि न गुन नाहि न कछु जपु तपु कउन करम अब कीजै।

नानक हारि परियो सरनागति, अभै दानु प्रभ दीजै। (राग जैतश्री म० ९) —द्वैत

हारि परियो सुआमी के दुआरे दीजै बुधि विवेका। (रा० सो० म० ५) —द्वैत

जो दीसै सो तेरा रूप (राग तिलग म० १)—अद्वैत

जिउ जल तरग जलु जलहि समावहि—राग वडहस अष्टपदी म० ४ —अद्वैत

नानक आपि आपै रमइआ —अद्वैत

जव इनु किछु करि माने भेदा।

तव ते दूख दड अरु खेदा। राग गौडी अष्टपदी। महला ५ —अद्वैत

प्रणवे नामा भए निह कामा को ठाकुर को दासा रे। राग माली।—अद्वैत

इस प्रकार दोनों पक्षों के पचासों उदाहरण 'ग्रन्थ साहब' से दिये जा सकते हैं। और जिन लोगों ने गम्भीरता से गुरु-मत दर्शन का अध्ययन नहीं किया है। वे अपना चाहे जैसा मत बना सकते हैं।

ऊपर के उदाहरणों के अनुसार यदि कोई कहता है कि गुरु लोग द्वैतवादी थे तो हिन्दू-दर्शन मे द्वैतवादी मीमांसक हैं ही और यदि कोई उन्हे अद्वैतवादी बतावे तो वेदान्ती सामने हैं। हिन्दू दर्शन वहुत विस्तृत है उसका सक्षिप्त रूप ग्रन्थ-साहब है।

द्वैत अद्वैत के सम्बन्ध में हमारा अपना निर्णय यह है कि गुरु महानुभाव थे तो अद्वैतवादी ही। किन्तु उन्होंने अपने अहम् को इस स्थिति तक समाप्त कर दिया था कि वे द्वैतवादी से जान पड़ते हैं वे यह कहने का साहस ही नहीं करते कि "मैं ही ब्रह्म हूँ"। सोऽहम अथवा "तत्वमसि" कहने के वजाय उन्होंने अपने लिये "मैं कीट, मैं नीच" आदि शब्दों का प्रयोग किया है। "घटाकाश और महाकाश" के सिद्धान्त को मानते हुए भी उन्होंने परमात्मा को सागर कहा है तो अपने लिये उसकी बूंद माना है। उसे सूर्य्य कहा है तो अपने लिये उसकी किरण कहा है। "मैं वही हूँ" यह दावा उन्होंने कहीं नहीं किया। वस वेदान्त के अद्वैत और ग्रन्थ साहब के अद्वैत मे यही अन्तर है। वेदान्ती कहता है जीव ब्रह्म ही है। माया के आवरण में ढका होने के कारण वह अपने को अथवा 'स्वात्म' को पहचान नहीं पाता है अत. वह जीव है। माया के पर्दे के हटते ही वह ब्रह्म है। गुरु लोग भक्त तुलसी दास की भाति कहते हैं "जीव ईश्वर का अंश है।[1] माया से छुटकारा पाते ही वह ईश्वर में उसी भाति समा जाता है जैसे जल, जल मे मिल

१. ईश्वर अश जीव अविनासी। रामायण

जाता है।[1] जब तक पानी का बुदबुदा पानी मे नहीं मिलता तब तक सभी लोग उसे बुदबुदा ही कहते हैं। इसी प्रकार जब तक जीव ईश्वर में नहीं मिलता है तब तक गुरुओं ने उसे जीव ही माना है और चूंकि वह अपने किसी अवगुणों के कारण ही ईश्वर मे मिलने से वंचित हो रहा है अत' उसे अवगुणी और नीच भी कहा है। वह अपनी सेवा से अथवा प्रेम से ईश्वर को प्राप्त कर लेने का यत्न करता है तो गुरुओं के शब्दों में वह सेवक, दास और प्रियतमा है और यत्न के सफल होने पर "ज्यों जल तरंग फेन जल होइ है तथा सेवक ठाकुर भये एका" हो जाता है। उस समय न सेवक सेवक रहता है और न ठाकुर ठाकुर, दोनों का एक रूप (ब्रह्म) हो जाता है। गुरुमत के जिज्ञासु को बस यहीं द्वैत का भास होने लगता है किन्तु यह द्वैत न तो स्थायी है न वास्तविक यह तो सावधि और अलंकारिक है।

इस बात को हम यों भी कह सकते हैं कि गुरुमत आदि मे अद्वैत को मानता है और अन्त में भी अद्वैत को मानता है किन्तु बीच के समय में जब तक कि ईश्वर से अलग हुआ जीव ईश्वर में ही नहीं समा जाता है 'द्वैत' को मानता है और वास्तव मे यह द्वैतपन उस समय तक रहता भी है जैसा कि गुरु गोविन्दसिंह जी ने कहा है कि "द्वैते एक रूप ह्वै गयो।" किन्तु यह द्वैते एक रूप हुआ कब? "तब हम बहुत तपस्या साधी। महां काल काल का आराधी" अर्थात् काल का भी जो महाकाल (प्रभु) है उसकी आराधना करते हुए बहुत समय तक तप किया एवं—अपने में जो अवगुण और कमियाँ है उनको दूर किया तब हमारा द्वै से एक रूप हुआ।

गुरु लोग बीच के जिस समय को जीव के लिये "द्वैत काल" मानते हैं उसे वेदान्त 'भ्रम काल' कहता है। गुरु-मत अद्वैत होने के लिये भक्ति को प्रमुख साधन मानता है और वेदान्त आत्म-चिंतन को प्रमुखता देता है। वास्तव में गुरु-मत अद्वैतवाद को सिद्धान्त के तौर तो वेदान्त की भाति मानता है।[2] किन्तु साधन उसका वेदांतिक न होकर भागवतिक है।

हम समझते हैं कि ईश्वर जीव अथवा द्वैत और अद्वैतवाद के सम्बन्ध में गुरुओं का जो मत है उसकी हमने सही अभिव्यक्ति की है। अब ससार के सम्बन्ध मे जो गुरु-मत है उस पर विचार करते हैं।

संसार

वेदान्तका मत है कि यह ससार मिथ्या है किन्तु न्याय दर्शन ऐसा नहीं मानता। इसी भांति 'गुरु ग्रथ' में भी दोनों ही मतों की पुष्टि करने वाली सामग्री मिलती है जैसा कि नीचे दिये गए उद्धरणों से स्पष्ट है.—

जगु सुपना बाजी बनो, खिन महि खेलु खिलाइ।
सजोगी मिलि एक से विजोगी उठि जाइ॥—(श्री राग महला १)

× × × ×

मृग त्रिसना जिउ जग रचना यह देखहु रिदै विचारि। (राग देव गधारी म० ६)
यह जग धुए का पहार। तै साचा मानिआ किह बिचार। (राग बसन्त महला ६)

× × × ×

इस ससार की रचना मृग-मरीचिका जैसी है।

जैसे धुंए का पहाड नहीं है। वैसे यह जगत सत्य नहीं है।

यह वाणियाँ तो कहती हैं कि ससार—स्वप्न, मृग—मरीचिका और धुंए के पहाड़ की भांति मिथ्या है।

१ जल जल मांहि खटाना—ग्रन्थ साहब
२ तब ही आतम तन्त को दरसै परम पुरुष कह पावै। गुरु गोविन्दसिंह

और निम्न वाणियां कहती है कि उस सत्य से उत्पन्न सब कुछ सच्चे हैं।

यथा. सचे तेरे खड सचे ब्रह्मन्ड। (राग आ० वा० म० १)

× × × ×

आपि सति धारी सभु सति। तिस प्रभु ते सगली उतपति (सु० अ० म० ५)

अर्थात् तेरे खंड-ब्रह्मण्ड सब सच है।

जब आप सत्य का धारण करने वाला है तो जो कुछ भी तैंने किया है सब सत्य है क्योंकि सब की उत्पत्ति तुझ सांचे से ही तो है।

इन दोनों तरह की वाणियों को पढने वाले के लिये भ्रम होना सहज बात है किन्तु यह दोनों बातें अधिक गौर करने पर विरोधी नहीं अपितु एक दूसरे की पूरक हैं। जहाॅ तक इनके अस्तित्व का प्रश्न है। यह सब सच हैं क्योकि जिन पाॅच तत्व और पच्चीस प्रकृतियों से यह संसार अथवा ससार के पदार्थ बने हुए हैं। उनका अस्तित्व तो है ही किन्तु जहाॅ उनके इसी रूप मे रहने की स्थिरता का सवाल है यह विनष्ट होने वाले है।[1] और इन्द्रियो के भोग के लिये भी सब सच हैं किन्तु आत्मा के भोग के लिये तो यह कुछ भी नहीं है। अत. संसार ससारी की दृष्टि में सत्य है। जिन तत्वों से बना है वे भी सत्य हैं किन्तु उन तत्वो का वर्तमान रूप चिरकाल तक के लिये स्थायी न होने के कारण नाशवान अथवा मिथ्या है और इसी भाति इन्द्रियाॅ जिन वस्तुओं का भोग करती हैं इन्द्रियों के लिए सब सत्य है किन्तु आत्मा जो स्वयम एक तत्व है उसके लिए यह कोरा स्वप्नवत ही हैं। हम समझते हैं कि षड़-दर्शन का भी संसार के सम्बन्ध में (समन्वयात्मक) भाव यही है।

हिन्दू दर्शन ने कर्म सिद्धान्त का मथन करके यह निर्णय दिया है कि "संचित, प्रारब्ध और क्रियमाण" तीन तरह के कर्म होते हैं। वर्तमान मे जैसे भी—सुकर्म अथवा कुकर्म—कर्म हम करते हैं। वे 'क्रियमाण' कर्म कहलाते हैं। और इन किये हुए कर्मों का योग जो होता है। वही संचित कर्म के नाम से पुकारे जाते हैं। उदाहरण के लिए एक आदमी एक रुपया रोज कमाता है और बारह आने खर्च करता है तो चार आने बचत वाले उसका संचित धन (कर्म) हैं। यदि पिछले दिन के चार आने और उसकी जेब मे हैं तो आज उसके पास आठ आने सचित हैं।[2] इस संचित धन (कर्मों) के भोग का नाम ही प्रारब्ध कर्म है। प्रारब्ध को ही लेखा-जोखा ? 'कर्म रेख', 'भाग्य लिखा' आदि संज्ञायें दी गई हैं। हिन्दू कर्म विज्ञान ने कर्म-फल का भोग भोगना तो जीव के लिये अनिवार्य बताया है किन्तु उसे कर्म करने मे स्वतन्त्र और फल-भोगने मे सस्का-राधीन अथवा ईश्वराधीन रक्खा है। अच्छे कर्मों के भोगने के लिये अच्छी स्त्री, अच्छे पुत्र, अच्छी विद्या अच्छे घरों में जन्म और अच्छी संगति की प्राप्ति के अलावा स्वर्ग मिलन का विधान और है। इसी प्रकार बुरे कर्मों के भोगने के लिये चौरासी लाख योनिया एव विभिन्न प्रकार के नरक और यम की यातनायें हैं। गुरुओं ने इन सब को स्वीकार किया है।

कर्म-सिद्धान्त

यथा — बहु जोनी भवहि धुरि किरति लिखि आसा।

जैसा बीजहि तैसा खासा—(गोडी गुआरेरी म० ५)

\+ + + +

१. संचित कर्म (धन) ऋण और भोग दोनों ही दिशाओं में होता है।

२. छिसट मान सब बिनसिये · (बिलावल म० ५)

कई जनम भये कीट पतगा। कई जनम गज मीन कुरगा।
कई जनम पखी सरप होइग्रो। कई जनम हैवर[1] बृख[2] जोइग्रो।

\+ + + +

फल पावहि मिटै जम त्रास। नित गावहि हरि हरि गुण जास। (गौडी गुग्रारेगी म० ५

\+ + + +

ऐ तू मोह फिर जोनी पाइ। मोहे लागा जमपुरि जाइ।—(ग्रासा महला १)

\+ + + +

सरन गही पार ब्रह्म की मिटिग्रा ग्रावागमन। —(गौडी थिती महला ५)

\+ + + +

स्वर्ग वास ना बाछीए, डरीए न नरकन वास।
होना है सो होइ है मनहि न कीजे ग्रास।
रमइया गुन गाइए जाते पाइए परम विधान।

\+ + + +

त्रिविधि करम कमाईग्रहि ग्रास ग्रन्देमा होइ। (श्री गग म० १)

\+ + + +

कर्म के प्रसंग में जहाँ सर्व मान्य सिद्धान्त हिन्दू दर्शन का यह है कि जो जैमा करेगा उसे वैसा भोगना पड़ेगा। वहां कर्म-विपाक का विधान भी है और वह यह कि यदि किसीने कोई बरा काम किया है और उसके करने से उसे मानसिक वेदना हुई है तो कर्म की गुरुता के अनुपात से ही उसे प्रायश्चित करना चाहिये। इस प्रकरण में 'हिन्दू-कर्म-विज्ञान' विविधि कर्मों के प्रायश्चित के लिये विभिन्न ही विधान बताता है किन्तु गुरुमत इस सम्बन्ध में हिन्दू-दर्शन का साथ न देकर सत मार्ग का ही अनुकरण करता है और बड़े मजे के साथ केहता है—

"जब होवत प्रभ केवल धनी। तब बन्ध मुकति कहु किस कउ गनी॥
जब ग्रविगत ग्रगोचर प्रभ एका। तब चित्त गुपत किसु पूछत लेखा। (सुखमनी)

अर्थात्—जब केवल प्रभु ही हमारा धनी हो जाता है। अर्थात् हम प्रभु की शरण में चले जाते हैं। तब बन्धन और मुक्ति किस लेखे में हैं। और जब केवल परमात्मा ही हमारा धनी है। तब चित्र-गुप्त भी किस से हिसाब पूछेगा। इसका भाव यह है कि बन्ध, मोक्ष और स्वर्ग नर्क तो उन लोगों के लिये हैं जो संसारी हैं और जब हम केवल राम के हो जाते हैं तब इनकी हमें क्या परवाह है।

ईश्वर के मिलने के जो अनेकों मार्ग पूर्ण विकास पर पहुँचे हुए हिन्दू-दर्शन अथवा धार्मिक ग्रन्थों में बताये गए हैं उनमें से गुरुओं ने भी अन्य निरगुनी सतों की भांति सहज मार्ग को ही अपनाया है। अंतिम लक्ष्य उनका सच खड प्राप्ति अथवा ईश्वर मिलन ही है।

सहजि

नानक महान्

इस कथन के पश्चात कि गुरु नानक देव पिछली दस शताब्दियों में एक महान् पुरुष थे हम इस प्रसंग को समाप्त करते हैं। उनकी महानता को साधारण जनता ही नहीं अपितु उनके युग के सन्तों ने

१— हैवर=घोड़ा २ बृख=भेड़िया। बृखभ=बैल।

भी स्वीकार किया था । इसके कुछ प्रमाण जो हमें मिल सके हैं इस प्रकार हैं —

पानप, नानक, रैदास, कबीरा । एक तत्व के चारि शरीरा ।[1]
नानक सूरज रूप, भूप सारे परकासे । मघवा दास कबीर ऊसर सूसर बरखा से ।
दादू चंद सरूप, अमीकर सबको पोषे । वरन निरंजनी मनो त्रिषा हदि जीव सतोषे ।
ये चारि महंत चदु चक्कवै चारि पंथ निरगुन थपे ।
नानक, कबीर, दादू, जगन, राघो परमातम जपे ।—राघोदास निरंजनी संत

अर्थात्—कबीर, नानक, रैदास और पानप नाम के जो चार महासंत हुए हैं । वे एक ही तत्व के चार शरीर थे । (इनमें) नानक सूर्य्य रूप थे जिनका सभी लोकों में प्रकाश है । कबीर इन्द्र की तरह थे जिन्होंने ऊसर जमीन को भी उपजाऊ बना दिया अर्थात् नास्तिकों को आस्तिक बना दिया । दादू चन्द्रमा की भांति उपदेश रूपी अमृत की वर्षा करने वाले थे । ये चारों निर्गुणी पन्थ के चक्रवर्ती थे ।

१. पानपदासी सम्प्रदाय की जन श्रुति (उतरी भा० की० सं० प)

परिशिष्ट

विविध विषय

सिखों की जन-संख्या सन् १६५१ ई० की गणना के अनुसार कुल भारत मे ६२ लाख है। जिसका व्योरा निम्न प्रकार है। उत्तरप्रदेश १ लाख ६७ हजार ६ सौ १२, बिहार ३८ हजार ७ सौ ३, उड़ीसा ४ हजार १ सौ ६३, पश्चिमी बगाल २६ हजार ८ सौ ६७, आसाम ४ हजार १ सौ ७, मद्रास २ हजार ८ सौ २६, बम्बई ३८ हजार १७, मध्यप्रदेश ३३ हजार ३ सौ ६६, मैसूर ३ हजार २ सौ ४७, ट्रावनकोर राज्य २ सौ ७५, सौराष्ट्र ८ सौ ८१, मध्य-भारत १२ हजार ५ सौ २१, हैदराबाद ८ हजार ४ सौ ४६, राजस्थान १ लाख ४४ हजार २ सौ ३१, दिल्ली १ लाख ३७ हजार ६६, पेप्सू १७ लाख २१ हजार ६ सौ ३५, अजमेर राज्य ३ हजार ६ सौ ६४, मनीपुर ५०, त्रिपुरा ३५, कुर्ग ६, कच्छ ४ सौ ७८, विन्ध्य प्रदेश ५ सौ २६, भूपाल ५ सौ ६२, हिमांचल ५ हजार १६, अंडमान १ सौ २६, सिक्कम १८।

जन-संख्या

इनमे सिख जाटों की सख्या अन्य १७ जातियों की सयुक्त सख्या से भी दो गुनी है। इस प्रकार अन्य बड़ी से बड़ी किसी भी सिख जाति से जाट सिख १४ गुने से भी अधिक हैं। अरोड़े सिखों से बीस गुने और खत्रिय सिखों से चालीस गुने हैं। रियासतों की जन-सख्या मे उनका अनुपात इससे बहुत कहीं ज्यादा है। किन्तु शिक्षा मे वे उतने अग्रसर नहीं जितने कि सख्या मे हैं।

पंजाब, सीमान्त और काश्मीर से बाहर के अन्य सूबों में जो आबादी सिखों की है। वह प्राय शहरों में है। देहात में बहुत ही सूक्ष्म है। यह भी याद रहे उपरोक्त गिनती मे उदासी और सहिजधारी लोगों की गिनती शामिल नहीं है। न भारत से बाहर की संख्या इसमे शामिल है।

एक समय था जब पंजाब के समस्त इलाके मे सिख सिक्के चलते थे। महाराजा रणजीतसिंह ने अपने राज्य में सिक्के ढलवाने की टकसाल खुलवा रक्खी थी। पटियाला, नाभा, जीन्द और कैथल में भी अपने रुपये चलते थे।

सिख मुद्रायें

कहा जाता है सबसे पहला सिख-सिक्का गुरु गोविन्दसिंह जी ने चलाया था और आनन्दपुर मे एक टकसाल भी खोली थी। यह असंभव बात नहीं है किन्तु प्रमाणों का अभाव अवश्य है।

"सैरे पंजाब" के लेखक को कुछ सिक्के पंजाब के सिखों के मिले थे। उसने लिखा है—"जब यह सरदारान सिख इस मुल्क मे फैल गये। हरेक ताइफउल्मुल्क होगया और दारुलजर अपनी-अपनी रियासतों का बतौर खुद जारी करके सिक्का जुदागाना जारी कर दिया। चुनाचे बहुत किस्म के सिक्के

(रुपये) इस दुआवा सतलज व जमुना मे हमने जारी पाये। उनकी जिस कदर तफसील मालूम हुई व कैद मरुजा कीमत हाल जैल है। इन सिक्कों के अक्षर पढ़ने में नहीं आते हैं।

जगाधडी ।।।−) सगतसिंह ।।।) जीन्द स्वरूपसिंह ।।=) कैथली ।।।−) पटियाला शाही ।।।≡) नाभा शाही ।।।=) यह कीमत पजाब पर प्रभुत्व हो जाने के बाद अग्रेज सरकार ने स्थिर की थी।

सभी सिक्कों पर एक ओर "देगो तेगो फतहो नुसरत व दरग। याफ्त अज नानक गुरु गोविन्द सिह" लिखा रहता था। पटियाले के सिक्के पर एक ओर इस प्रकार लिखा रहता था "हुक्म शुद अज कादरे बे चू व अहमद बादशाह। सिक्कह् जन बर सीमो जर अज्ञ ओ जे माही ता बसाह।" यही इबारत जीन्द के सिक्के पर भी होती थी। नाभा के सिक्के की इबारत खालसा शाही या नानक शाही सिक्के की भाति होती थी। किसी-किसी सिख राज्य में सोने के भी सिक्के थे।

सिखों के पूरे शस्त्रों के नाम दशम ग्रन्थ में शस्त्र नाम माला में श्री गुरु गोविन्दसिंह जी ने गिनाये हैं किन्तु कूटस्थ पद होने के कारण समझने मे गलती होने की सम्भावना होती है। वैसे अनेक धर्म-स्थानों पर गुरु गोविन्दसिंह जी के शस्त्र दिखाये भी जाते हैं। आम तौर से जो हथियार सिख योद्धा बाधते थे उनके नाम इस प्रकार हैं।

सिख शस्त्र

खड्ग—तलवार जैसा शस्त्र सिख सवार प्राय इसे कधे के सामने करके चलते थे। हाथ का समकोण बनाकर मू ठ को इस प्रकार पकडते थे कि सिर ऊपर की ओर हो। यह हथियार कन्धे के सामने आ जाता है। कभी २ कमर मे भी लटकाया जा सकता है।

बर्छी—भाला और बर्छी में अधिक अन्तर नहीं होता इसकी नोकें त्रिधारा होती हैं यह सिखों के पास नौ-नौ फुट तक की होती थी। यह दोनों ही हाथ से हूल-हूल कर चलाई जाती है।

कृपाण—यह तो सिखों के पच ककार में शामिल है और उनका चिर सहचर हथियार है। तलवार में और इसमें कोई खास अन्तर नहीं है।

चक्र—यह कन्धे पर बगल में होकर लटकाया जा सकता है। घुमाकर चलाने का शस्त्र है।

तीरकमान—सिर तक ऊची कमान और तीक्ष्ण तीर चलाने में सिख बडे पैने साबित होते थे।

बन्दूक—तुफग भी कहलाती थी।

तोप—पिछले समय में अच्छी २ तोपें आ गई थीं।

बघनख—यह भी लाहौर के किले में है।

जिरह बख्तर—जिन्हे पहनकर गोली का भी डर नहीं रहता था।

लौह टोप—जो सिर पर पहने जाते थे।

भाई कान्हसिंह जी ने गुरु शब्द रत्नाकर महान् कोष मे शस्त्रों के चार चित्रों में नामावली इस प्रकार दी है —

१, असि २ अर्धचन्द्र ३. परशु ४ शमशेर ५ सारग ६ सिरोही ७ सूल ८ सैफ ९ कती १० करद ११, करौती १२ किरच, १३ कुहुकबाण १४. कुकरी १५ कृपाण १६ खजर १७ खडा १८ गुप्ती १९ गुरज २० गोफिया २१ चपडा २२ जमदाड़ २३ तॅबर २४ ढाल २५ धनुष बाण २६ तेग २७ बन्दूक २८ त्रिशूल २९ नेजा ३० बरछा ३१ बघनख ३२ पेशकब्ज ३३ रामपल आदि लगभग ६२ नाम बताये हैं। इन शस्त्रा के नमूने पटियाला के म्यूजियम में आज भी मौजूद हैं।
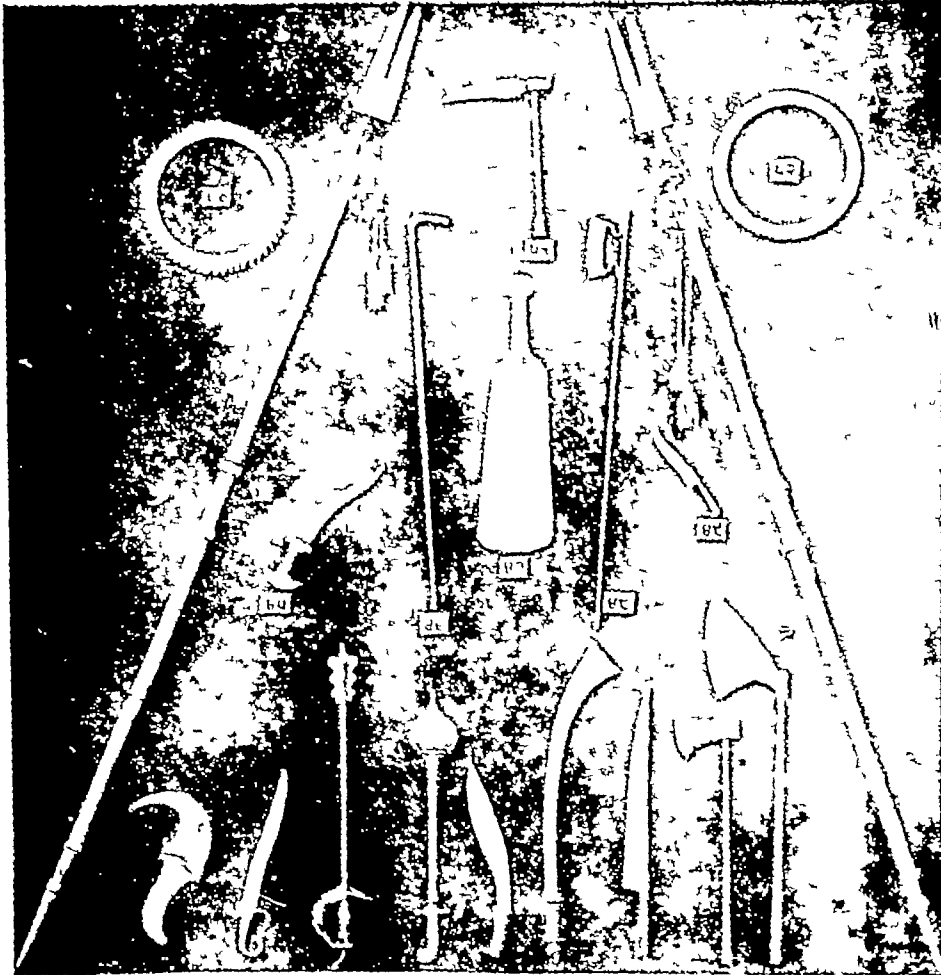
३५ नाचक, ३६ बगनक, ३७ बिछुआ, ३८ वज्र, ३९ गुर्ज,
४० कुकरी, ४१ फाक, ४२ छुरा, ४३ परशु, ४४ तबर, ४५ बुगदा,
४६ गुप्ती ४७ मुगदर, ४८ छोई, ४९ कृपाण, ५० चक्कर पुराना,
५१ जम्भुआ, ५२ चक्कर नया।

५२ तोड़ेदार बन्दूक ५४ पथरकला ५५ रिवाल्वर ५६ धमाका
५७ जम्बूरक ५८ मसाले टोपीदार बन्दूक ५९ मीनमुन्ना तीर
६० जजोल, ६१ तमचा।

सिखो के झडे का रग केसरी है और उसके बीच मे चक्र और कृपाणो का चित्र होता है। यही सिखो का धार्मिक और राजनैतिक दोनों प्रकार का झडा है। इसे सिख लोग निशान साहब के नाम से पुकारते है। प्रत्येक ग्राम मे और प्रत्येक गुरुद्वारे पर यह निशान फहराता रहता है। झडे की सलामी देने की प्रथा सिखों मे नही है किन्तु यह बात नहीं कि वे अपने झडे के सन्मान मे कोई बड़ी कुर्बानी न कर सकते हों।

पताका

विजयोत्सव तथा उल्लास मे वे 'सत श्री अकाल' नारा लगाते है। सभाओं मे हर्ष-वर्द्धक अथवा सिख धर्म के सन्मान की बात आने पर "एक आदमी जोर से चिल्ला कर कहता है" 'जो बोले सो निहाल' फिर समस्त जन घोर धुनि के साथ बोलते है "सत श्री अकाल" नमस्कार जयकारो की जगह 'वाहि गुरुजी का खालसा वाहि गुरुजी की फतह' लिखते है।

कौमी नारा

जिस समय खान बहादुर जकरिया खान माहियाखान और मीर मन्नू के जमाने मे तरह तरह के अत्याचारो से पैदा हुये कष्टों मे गुजर रहे थे तो उनके मन की व्यवस्था का अन्दाजा उन शब्दों से लगाया जा सकता है जो कि उन्होंने उस समय रचे थे। भूख और प्यास से मरते थे लेकिन दुखित जीवो की तरह वे निराशापूर्ण और उत्साहहीन नहीं होते और कहते थे कि खालसा 'कड़ाके' है। लगर मे जब कोई चीज न पकी हो तो 'लंगर' को मस्त कहते। जब खाने पीने को कुछ न मिलता और घास फूस पर गुजारा करना पड़ता, ईश्वर इच्छा मे सन्तुष्ट उसे 'स्वादी' के नाम से पुकारते, खाते तो वे चने होते किन्तु नाम उन्हे 'बादाम' का देते। जब कभी अकेला ही सिंह शत्रुओ से घिर जाता तो घबरा कर निस्सहाय होने की बजाय अपने आपको 'सवा लाख' घोषित कर शत्रु पर टूट पड़ता और जब कोई शत्रु से लड़ता भिड़ता मर जाता तो उसे शहीद हो गया या चढ़ाई कर गया पुकारते। जब किसी ओर को जाने को तैयार होते तो कहते फौजे अमुक स्थान पर धावा बोल रही हैं। और जब किसी कार्य्य के लिए तैयारी करते तो कहते खालसा ने 'कमर कस्सा' कर लिया। फौज मे कुछ ऐसे शब्द बोले जाते हैं जो साहित्यिक भाषा से घनिष्ठ सम्बन्ध न रखने वाले होते हुए भी स्फूर्ति दायक होते हैं। अपने कष्ट व सैनिक काल मे खालसा वीरो ने भी ऐसे अनेकों शब्दों की रचना की थी। यहा हम कुछ ऐसे ही शब्दो को देते हैं जो सिख जबान मे 'सिंहों दे बोले' कहलाते हैं।

सिहों के बोले

कमर कस्सा=तैयार, (अग्रेजी में रैडी शब्द जैसा)
महा प्रसाद=जगी खाना, गोश्त का भोजन
रामजगे=बन्दूक
सिह जी=पुरुष का सबोधन
सिहणी=स्त्री का सबोधन
भुजग=बालक
भुजंगिनी=बालिका
अफलातून=रजाई, रुई वाला ओढ़ने का कपडा
सरब रस=नमक (स्वतन्त्रता के सैनिक की सचमुच नमक ही सर्व रस है)
सजना=तैयार होना
अथक्क=मरियल टट्टू
पांच लख=पाच
अकाली फौज=शहीदी दल

असवारा करना=चढ़ाई करनी
अरदासा=प्रार्थना
सुचालासिंह=लगड़ा
लखवाँहा=लु जा
लख अक्खां=काणा
रूपा=प्याज
लड्डू=टींड
खुरमे=वेर
जलेवी=जंड की फली
दाख=पीलू
वदाम=चने
सवा लख=एक
अकल दान=सोटा, डडा
आनन्द=विवाह
बाज=खुरपा
कुही=दाती
पतालपुरी=कस्सी
सफाजग=तकुआ
सिरखडी=शकर
कलगासिंह=गजे
सूरासिंह=अधे
स्वर्गद्वारी—नकटा
ठीकरी=रुपया

कुछ ऐसे भी शब्द हैं जो विभिन्नपरिस्थितियों से सम्बन्ध रखते हैं। वानगी देखिये— असवारा=गुरु ग्रथ साहव की वीड़, आकाशपरी=वकरी, अजनी=रात, ऐरावत=भैंसा, अमृत वेला=प्रात'काल, इन्द्रजल=वर्षा का पानी, इन्द्राणी=तवा, मचखड=स्वर्ग, सच्चा पातशाह=गुरु, शिकारी=व्यभिचारी, शीशमहल=झोंपड़ी, कच्चा पिल्ला=मर्यादा हीन, कोतल=चारपाई, गोपाल चदन=मरहम।

इसी प्रकार के सैंकडों शब्द हैं। यह सव साकेतिक शब्द हैं। षडयन्त्र कारियों और क्रान्ति कारियों को इन शब्दों को पढ़कर आश्चर्य होगा कि मुगल हुकूमत को नष्ट करने का कठोर व्रत लेने वाले सिखों को कितनी २ वुद्धिमानी से काम लेना पडा था।

सहायक पुस्तक सूची

इस हिन्दी "सिख इतिहास" को लिखने मे जिन पुस्तको का अध्ययन किया गया तथा जिनसे किसी न किसी रूप में सहायता ली गई उनमे से प्रमुख पुस्तको की सूची इस प्रकार है—

अंग्रेज लेखकों की

दी हिस्ट्री आफ सिख	कनिंघम।
हिस्ट्री आफ पंजाब राजाज एवं पंजाब चीफस	सर लेपिल ग्रिफन
सर लोगन एन्ड महाराजा दिलीपसिंह	मिसेज लोगिन
दी सिख रिलीजन	एम० ए० मैकालिफ
दी आदि ग्रन्थ इन्ट्रोडक्शन	डा० ट्रम्प
दी डिक्शनरी आफ इस्लाम	फ्रेडरिक पिकाट
दी आर्यन रूल इन इंडिया	ई० वी० हैवल
ओरीजन आफ दी सिख	एच० टी० प्रिन्सिप
हिस्ट्री आफ दी सिख	डब्ल्यू० एल० एम० ग्रेगर
रणजीतसिंह	सर लेपिल ग्रिफन

मुस्लिम लेखकों की

हिस्ट्री आफ दी पंजाब—फ्रोम एन्टी क्वालिटी आफ टाइम		सैयद मुहम्मद लतीफ
तारीख फरिश्ता		मुहम्मद कासिम
तारीख काशमीर		मुहम्मद फौक
आइने अकबरी	(उर्दू)	अबुल फजल
तुजुक जहांगीरी	(उर्दू)	
औरंगजेब नामा	(उर्दू)	
सैर-उल-मुताखरीन	(उर्दू)	मुंशी लतीफ
दास्ताने हिन्द	(उर्दू)	मकबूल शाह
बाबा-फरीद, (गंज शकर)	(उर्दू)	बशीर अहमद
सवाने हयात दातागंज	(उर्दू)	,, ,,

हिन्दू लेखकों की

तारीख पंजाब	(उर्दू)	भाई परमानन्द
नानकी गुरु नानक देव	(उर्दू)	ला० दौलतराम
गोविन्दसिंह	(उर्दू)	
सिखों का परिवर्तन	(हिन्दी)	डाक्टर गोकुलचंद नारंग
सिखों का उत्थान पतन	(हिन्दी)	पं० नन्दकुमार शर्मा
पंजाब हरण और दिलीपसिंह	(हिन्दी)	
इतिहास गुरु खालसा	(हिन्दी)	सन्तोषसिंह
जाट इतिहास	(हिन्दी)	ठाकुर देशराज
मुगल साम्राज्य का क्षय और उसके कारण	(हिन्दी)	पं० इन्द्र विद्यावाचस्पति
भारतवर्ष का इतिहास	(हिन्दी)	ला० लाजपतराय
तारीख पंज हजार साला	(उर्दू)	अज्ञात
रिपोर्ट बन्दोबस्त पंजाब	(उर्दू)	अज्ञात
गुरु का बाग	(हिन्दी)	प्रताप प्रेस
भारत में अंग्रेजी राज	(हिन्दी)	पं० सुन्दरलाल
गुरुकुल (काव्य ग्रंथ)	(हिन्दी)	मैथलीशरण गुप्त
सन्त सुधासार	(हिन्दी)	वियोगी हरि
उत्तरी भारत की संत परम्परा	(हिन्दी)	परशुराम चतुर्वेदी
कबीर की विचारधारा	(हिन्दी)	डा० गोविन्द त्रिगुणायत
श्री रामानन्द ग्रन्थ माला	(हिन्दी)	अवधकिशोर 'श्रीवैष्णव
हिन्दी काव्य में निर्गुण सम्प्रदाय	(हिन्दी)	डा० पीताम्बरदत्त बड़थ्वाल
कबीर पदावली	(हिन्दी)	डा० रामकुमार वर्मा
श्रीचन्द्रदिग्विजय	(हिन्दी काव्य)	पं० अखिलानन्द शास्त्री
कल्याण 'संत अंक	(हिन्दी मासिक)	'गोरखपुर
भारत का धार्मिक इतिहास	(हिन्दी)	पं० शिवशंकर मिश्र
सिखों का बलिदान	(हिन्दी)	श्रीमती कुमुदिनी
गुरु नानक	(हिन्दी)	श्री शालिग्राम
गुरु गोविन्दसिंह	(हिन्दी)	श्री रामवृक्ष शर्मा
उदासीन कमल	(हिन्दी)	श्री ब्रह्मदेव
गुरु गोविन्दसिंह	(हिन्दी)	श्री राधामोहन गोकुलजी
गुरु गोविन्दसिंह के पुत्रों की बलि वलि	(हिन्दी)	पुरोहित हरनारायण
पंजाबी शब्द भंडार	(गुरुमुखी)	भाई विशनदास पुरी
दसम ग्रंथ कोष	(उर्दू)	अनुवादक पं० तुलसीलाल
संत काव्य संग्रह	(हिन्दी)	परशुराम चतुर्वेदी

नाथ सम्प्रदाय	(हिन्दी)	हजारी प्रसाद द्विवेदी
गोरखनाथ जी	(हिन्दी)	पीताम्बर दत्त बडथ्वाल

सिख लेखकों की

सूरज प्रकाश	(गुरुमुखी)	
पन्थ प्रकाश	(गुरुमुखी)	
भाई गुरुदास की वारे	(गुरुमुखी)	भाई गुरुदास
तवारीख राज खालसा	(गुरुमुखी)	भाई ज्ञानसिंह
तवारीख सिधू बैराडा अते खानदान फूल	(गुरुमुखी)	
तारीख कपूरथला	(उर्दू)	
तारीख पटियाला	(उर्दू)	
तारीख नाभा	(उर्दू)	
सिख सिहनिया	(गुरुमुखी)	अज्ञात
बीबी दीपकौर	(,,)	भाई मोहनसिह
गुरु नानक प्रकाश चार भाग	(हिन्दी)	भाई सतोखसिह
प जाब केसरी महाराजा रणजीतसिह	(अंग्रेजी)	प्रो० गडासिह केवल
गुरु शब्द रत्नाकर महान् कोष	(गुरुमुखी)	भाई कान्हसिंह
पजाब दीआ वारा	(गुरुमुखी)	डा० गडासिंह
गुरुमत प्रकाश	(,,)	प्रो० साहबसिंह
गुरुमत दिवाकर	(गुरुमुखी)	प्रो० गुरुमत-प्रेस अमृतसर
अनहद शब्द दसम दुआर	(गुरुमुखी)	भाई रणधीरसिंह
गुरुमत-दर्शन	(गुरुमुखी)	प्रो० शेरसिह ज्ञानी
गुरुमत फिलास्फी	(गुरुमुखी)	ज्ञानी प्रतापसिंह
सूफिया दा कलाम	(गुरुमुखी)	डा० मोहनसिंह
कतक कि वैसाख	(गुरुमुखी)	स० कर्मसिह
बाबा फरीद दर्शन	(गुरुमुखी)	प्रो० दीवानसिह
अरदास '	(गुरुमुखी)	स० ब० जोधसिह
सिख धर्म की रूपरेखा	(हिन्दी)	शिरोमणि गु० द्वा० प्र० कमेटी
मुस्लिम लीगियों के अत्याचार	(गुरुमुखी)	,, ,
सिख रहित मर्यादा	(हिन्दी)	,, ,,
विचित्र नाटक	(,,)	,, ,,
गुरुमत लेकचर	(गुरुमुखी)	ज्ञानी प्रतापसिह
सिख इतिहास लेक्चर	(,)	,, ,
सिखी की है ?	(,)	प्रिंसिपल जोधसिंह

टीका जपुजी साहिब	(हिन्दी)	प्रो० तेजसिंह
जीवन कथा गुरु हरिगोविन्द सा०	(गुरुमुखी)	प्रो० गंगासिंह
सरदार हरीसिंह नलुवा	(गुरुमुखी)	बाबा प्रेमसिंह

धार्मिक ग्रन्थ

श्री० आदि गुरु ग्रन्थ साहिब	(गुरुमुखी हस्तलिखित सं० १८२६)	
श्री० ,, ,,	(हिन्दी संस्करण) शि० गु० प्र० कमेटी)	
ऋग्वेद संहिता	(हिन्दी टीका समेत) आ० सा० मंडल	
ईश-केन-कठ० छांदोग्य	(हिन्दी टीका समेत)	
आदि दस उपनिषदें	(विभिन्न प्रकाशकों की)	
छः दर्शन	(हिन्दी टीका)	वेंकटेश्वर प्रेस
श्रीमद्भागवत	(पं० ज्वालाप्रसाद जी हिन्दी टीका समेत)	
गीता रहस्य	(हिन्दी संस्करण)	लोकमान्य तिलक
धम्मपद	(हिन्दी टीका)	आनन्द कौशल्यायन
जपु जी टीका	(हिन्दी टीका)	प्रो० तेजासिंह
जपु साहिब टीका	(गुरुमुखी टीका)	प्रो० साहिबसिंह
सुखमनी साहिब	(गुरुमुखी टीका)	,, ,,
अवधूत गीता		श्री० वेंकटेश्वर प्रेस
नारद पंचरात्र		तरनतारन से प्रकाशित

पत्र पत्रिकाएँ

फुलवाड़ी	(गुरुमुखी)	सन् १९३८ से १९४० तक
प्रीत लड़ी	(गुरुमुखी)	,, ,,
कल्याण	(हिन्दी)	संत अंक
सिख वीर	(हिन्दी)	
सतजुग	(गुरुमुखी)	संत अंक सं० १९९६ बसंत अंक सं० १९९४
निर्गुणीआरा	(गुरुमुखी)	सन् १९३२ से १९३७ के फुल अंक

नोट—इनके अलावा पंजाब के कुछ जिलों के गजेटियर, मर्दुमशुमारी की रिपोर्ट। (अंग्रेजी) में। खालसा ट्रेक्ट सुसायटी और शिरोमणि गुरुद्वारा प्रबन्धक कमेटी के अनेकों ट्रेक्ट (गुरुमुखी) में देखने का भी अवसर मिला उन सबके नाम देने की आवश्यकता नहीं समझी गई।

दान-दाताओं की सूची

श्री शिरोमणी गुरुद्वारा प्रबन्धक कमेटी, अमृतसर	५०००)
स० रघुराजसिंह शिवराजसिंह सुपुत्र स० रणजतसिंह जी गॉव बादल	२०००)
स० जोगेन्द्रसिंह जी गॉव झीडवाली	१०००)
स० राजेन्द्रसिंह जी ,, ,, ,,	२५०)
स० नरेन्द्रसिंह जी ,, ,, ,,	२५०)
स० प्रेमसिंह करतारसिंह जी गॉव गोविन्दगढ	१०००)
स० कपूरसिंह जी (डाक्टर) सुपुत्र स० प्रतापसिंह जी सिद्धू गॉव गोबिन्दगढ	१०००)
पत्ती स० धौकलसिंह जी गॉव गोविन्दगढ	१००)
स० नारायणसिंह, विशनसिंह, बसन्तसिंह जी गॉव अजीमगढ (अबोहर)	१०००)
स० थानासिंह, लखमीरसिह, जयमलसिंह, भागसिंहजी गाव हौजगन्दड़ (फाजिलका)	१०००)
स० जोधसिंह नगेन्द्रसिंह जी सुपुत्र स० नारायणसिंह जी गाव दानेवाला	५००)
पत्ती सरदार साहिबसिह जी दानेवाला	५००)
सरदारनी प्रतापकौर, धर्मपत्नीस्व० स० बूटासिह जी दानेवाला	२००)
स० बलवन्तसिंह जी गाव दानेवाला	१२५)
स० जसवन्तसिंह जी ,, ,,	१२५)
स० रणजीतसिंह जी ,, ,,	१२५)
स० चरनसिंह जी गाव दानेवाला	८०)
स० सन्तसिह जी ,, ,, ,,	५०)
स० कोयरसिंह जी ,, ,, ,,	५०)
स० निधानसिंह जी गाव बाम	५००)
श्री सन्त रामसिंह जी, गुरुद्वारा फाजिलका	५००)
स० पृथ्वीसिंह जी सिद्धू, फाजिलका	५००)
श्री डाक्टर मोहनसिंह जी, फाजिलका	५०)
सरदार हरिसिंह जी इन्सपेक्टर महकमा जिरायत, फाजिलका	५)
स० बचनसिंह जी गाव बाडीवाली	५००)
स० लालसिंह जी गाव बाडीवाली	१०१)
चौ० मगलूराम देवीलाल जी गाव बाडीवाली	१०१)
स० हरिसिह जी ,, ,, ,,	१००)
स० निरजनसिंह, अजमेरसिंह जी ,, ,,	१००)
स० उत्तमसिह जी ,, ,, ,,	५१)
स० बहालसिंह जी ,, ,, ,,	५१)
स० हजूरसिंह जी ,, ,, ,,	५०)
स० माहलासिंह जी ,, ,, ,,	३०)
स० गुरुबखशसिह जी ,, ,, ,,	२५)

स० दिलीपसिंह, कीकरसिंह जी गाव रामपुरा फेरूवाला	५०१)
स० हरनामसिंह जी वान्दर सुपुत्र स० शुभसिंह जी गाव टाहलीवाला	५००)
स० ईश्वरसिंह, वीरसिंह जी गांव सिद्धपुरा	५००)
स० महेन्द्रसिंह जी गाँव महेन्द्रनगर (बल्लू)	५००)
स० गुरुबख्शसिंह जी, गाँव अवलखराना	५००)
स० रणजीतसिंह, टेकसिंह जी गाँव अवलखराना	५००)
स० पूर्णसिंह जी एम० एल० ए० गाँव मदीर	५००)
स० कुण्डासिंह जी, पचायत थेहकलन्दर (फाजिलका)	४००)
स० मोहरसिंह जी गाँव पूर्णपट्टी	३५०)
स० कृपालसिंह, रघुवीरसिंह बलवीरसिंह जी गाँव कुरिगया केहरसिंह	३००)
चौ० हनुमान जयकृष्ण जी नम्बरदार गाँव कौड़ियावाला	१०१)
चौ० तुरजाराम राजाराम जी ,, ,, ,,	१००)
स० अजायबसिंह जी ,, ,, ,,	१००)
चौ० चुन्नीलाल जी ,, ,, ,,	४)
महन्त सुच्चासिंह जी ,, कोटभाई	५००)
स० अर्जुनसिंह जी ,, चिबड़ावाली	१००)
ल० सज्जनसिंह जी ,, ,, ,,	१००)
श्री ज्ञानी हरनामसिंह जी ,, अबोहर	१००)
स० जीवनसिंह दयालसिंह जी गाँव शेरेवाला	१००)
स० ईश्वरसिंह जी ,, गद्दोंडोब	१००)
स० नन्दसिंह जी सस्थापक पजाबी प्रेस, सदर बाजार, देहली	१५१)
स० वरियामसिंह जी, अकाल इजीनियरिंग वर्क्स सदर बाजार, देहली	५१)
श्री सूद एण्ड कम्पनी ,, देहली	५३।≡)
स० शामसिंहजी ,, खुड्ज	५०)
स० गुरुचरणसिंह डाक्टर ,, मण्डी डबवाली	५०)
ला० रामधनदास जी ,, ,, ,,	५०)
ला० मोहनलाल जी ,, ,, ,,	२५)
ला० लाहौरीराम जी ,, ,, ,,	१५)
स० करनैलसिंह जी ,, माहूआना	५०)
स० नारायणसिंह जी गाँव बुडियाना	२५०)
स० दलसिंह जी ,, सिंघेवाला	३००)
स० श्रवणसिंह जी ,, सिंघेवाला	१००)
स० अर्जुनसिंह जी ,, सिंघेवाला	२५)
स० हरचन्दसिंह जी ,, मिढड़ी	१००)
स० जगनन्दनसिंह जी ,, तापखेड़ा	१००)
स० हकीकतसिंह जी ,, टावाग्रोलख	५०)

आर्थिक सहयोग देने वाले जिन महानुभावों के फोटो हमें प्राप्त हो सके हैं उनके चित्र आगे दिये जा रहे हैं।

प्रकाशक—

स्वर्गीय सरदार नन्द सिह जी

मालिक व सस्थापक

पजाबी प्रेस, सदर बाज़ार देहली-६.

स० करतारसिंहजी, गोविन्दगढ

स० प्रताप सिंह जी सिद्धू, गोविन्दगढ़

श्रीमती ईश्वर कौर व स० जोगिन्द्र सिंह जी भींडवाली

स० रणजीत सिंह ढिल्लों, बादल

सन्त राम सिंह जी, गुरुद्वारा फाजिलका
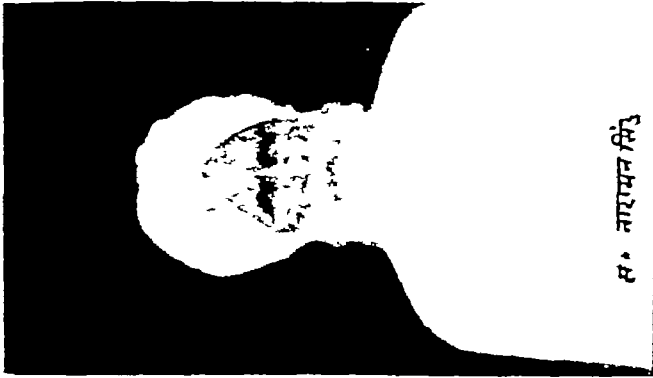
स० नारायण सिंह जी, अजीमगढ
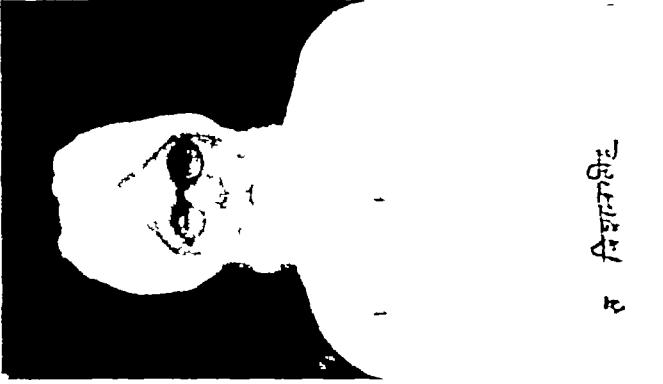
स० बिशन सिंह जी, अजीमगढ
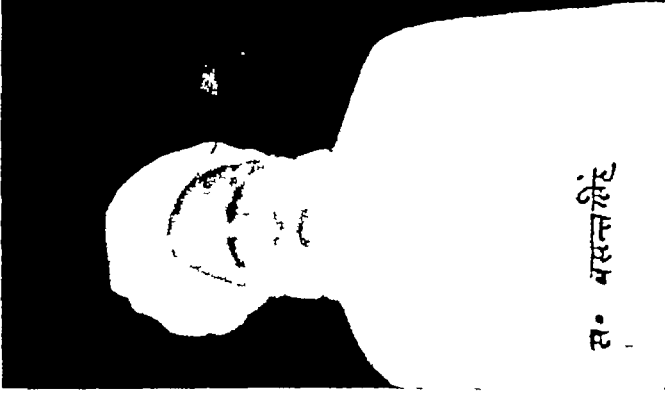
स० बसन्त सिंह जी, अजीमगढ

सरदार रणजीतसिंह टेकसिंह जी, अबलखराना (फाजिलका)

रदार करतारसिह जी नम्बरदार, दानेवाला

स० दिलीप सिह सिद्धू , रामपुरा केरुवाल।

महत सुचासिह जी, कोट भाई
मेम्बर शि० गु० प्र० कमेटी
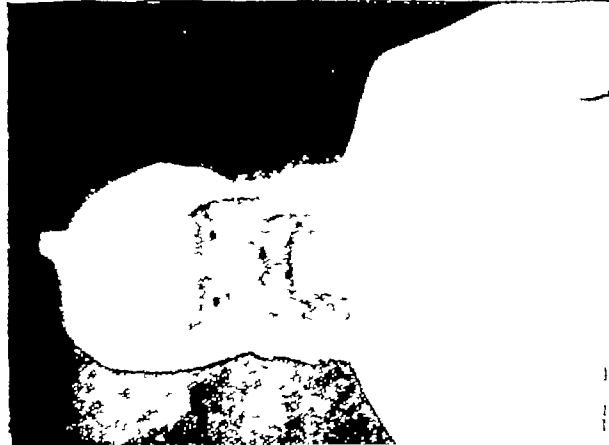
स० पूर्णसिंह जी एम-एल-ए, मटीर (फाजिल्का)
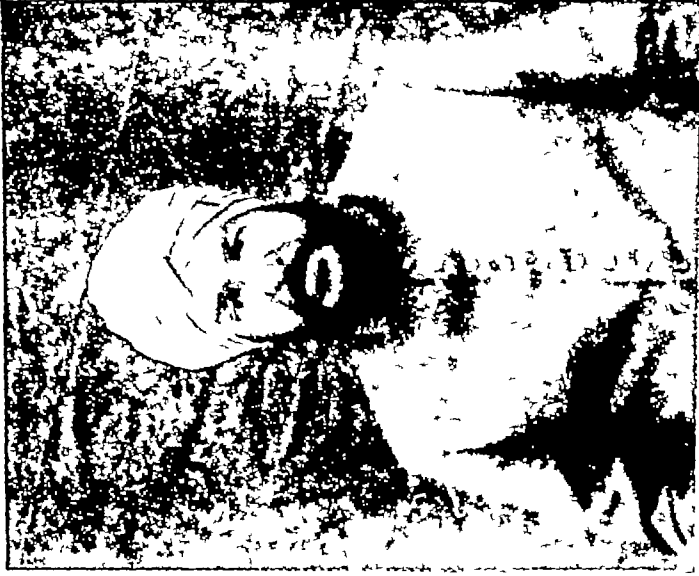
सरदार महेन्द्रसिंह जी, महेन्द्र नगर, (वल्ल०)

स्वर्गीय सरदार बूटासिंह जी दानेवाला

सरदार निधानसिंह जी, बाम (फाजिलका)

स० लाल सिंह् जी, वाडीवाला

स० वचन सिह् जी, वाडीवाला

स० नारायण सिंह जी, दानेवाला

स० ईश्वर सिंह जी, गढ़ोंडोव